श्री वरदराजाचार्यविरचिता

मध्यसिद्धान्तकौमुदी

मध्यमनोरमा-मध्यमनोरमापूरणी संस्कृत-हिन्दी व्याख्याद्वयोपेता

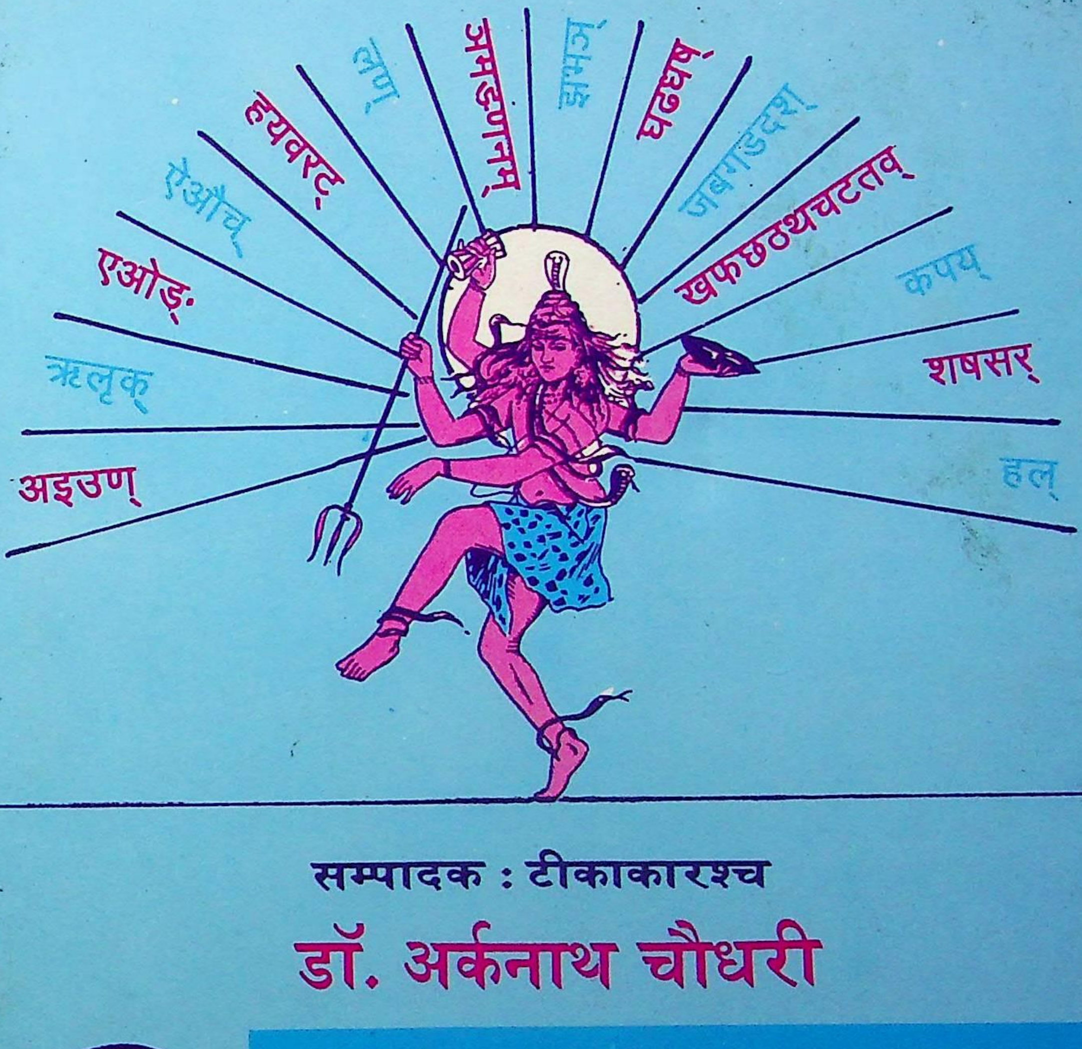

सम्पादक : टीकाकारश्च

डॉ. अर्कनाथ चौधरी

जगदीश संस्कृत पुस्तकालय
जयपुर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्री वरदाराज की कृति मध्यसिद्धान्त-कौमुदी पर लिखी गई प्राचीनतम टीका 'मध्यमनोरमा' आज तक अप्रकाशित रही है। इस ग्रन्थ को 1850 संवत् में श्रीराम शर्मा द्वारा लिखित टीका मध्यमनोरमा एवं डॉ. अर्कनाथ चौधरी कृत मध्यमनोरमापूरणी व्याख्या सहित प्रकाशित करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

जिस प्रकार सिद्धान्त-कौमुदी के ज्ञान के लिए बाल-मनोरमा एवं तत्त्वबोधिनी टीकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं उसी प्रकार मध्यसिद्धान्तकौमुदी के ज्ञान के लिए मध्यमनोरमा टीका महत्त्वपूर्ण है। फक्किकाओं का विस्तृत एवं स्पष्ट व्याख्यान, सूत्रों की व्याख्या, प्रत्युदाहरणों की चर्चा, कठिन प्रयोगों की सिद्धि, बड़े सुन्दर एवं स्पष्ट हैं। वर्णन-शैली अत्यन्त सुन्दर, स्पष्ट एवं छात्रबोध के लिए उपयोगी है। प्रतिपादन-शैली बालमनोरमा एवं तत्त्वबोधिनी से भी श्रेष्ठ है। परिशिष्टभाग में लिङ्गानुशासन, गणपाठ, पाणिनीय शिक्षा, सूत्र वार्तिक परिभाषा एवं धातुसूची को देकर सम्पादक ने इसे अधिक उपयोगी बना दिया है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नवदेहलीस्थ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानात् प्राप्तेन आर्थिक साहाय्येन प्रकाशितम्
(राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित)

प्रकाशक

जगदीश संस्कृत पुस्तकालय,

झालानियों का रास्ता, किशनपोल बाजार,

जयपुर - 302001 (राजस्थान)

दूरभाष— 321518

प्रथम-संस्करण 1995

मूल्य 128.00

प्रमुख वितरक

आयुर्वेद संस्कृत हिन्दी पुस्तक भण्ड़ार

झालानियों का रास्ता, किशनपोल बाजार

जयपुर - 302001 (राजस्थान)

दूरभाष - 312974

Published with the financial assistance from the Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi

लेजरटाईप सैटिंग

कामप्रिन्ट, जयपुर-1

मुद्रक

हरिहर प्रिन्टर्स, जयपुर

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

The

SARASWATI SANSKRIT SERIES

1

MADHYASIDDHANTA KAUMUDI

OF

SRI VARADARAJACHARYA

with

MADHYAMANORAMA –
MADHYAMANORAMA PURANI
SANSKRIT & HIDNI COMMENTARIES

Edited and Writen
By

DR. ARK NATH CHOUDHARY

Vyakaranacharya M.A., B.Ed.,Ph.D.

जगदीश संस्कृत पुस्तकालय
जयपुर

JAGDISH SANSKRIT PUSTAKALAYA
JAIPUR

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नवदेहलीस्थ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानात् प्राप्तेन आर्थिक साहाय्येन प्रकाशितम्
(राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित)

JAGDISH SANSKRIT PUSTAKALAYA
(Publishers & Distributors)

Jhalaniyon ka Rasta
Kishan Pole Bazar Jaipur. 302001

Telephone No. 321518

First Edition
1995

Published with the financial assistance from the Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi

Sole Distributiors :
Ayurved Sanskrit Hindi Pustak Bhandar
Jhalanion ka rasta
Kishan pole Bazar,Jaipur – 302001

Telephone No. 312974

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकरण सूची

प्रकरणानि	पृष्ठसंख्या
1. संज्ञाप्रकरणम्	1
2. अच्सन्धिप्रकरणम्	9
3. हल्सन्धिप्रकरणम्	20
4. विसर्गसन्धिप्रकरणम्	29
5. स्वादिसन्धिप्रकरणम्	30
6. अजन्तपुँल्लिङ्गाः	34
7. अजन्तस्त्रीलिङ्गाः	58
8. अजन्तनपुंसकलिङ्गाः	63
9. हलन्तपुँलिङ्गाः	69
10. हलन्तस्त्रीलिङ्गाः	97
11. हलन्तनपुंसकलिङ्गाः	101
12. अव्ययप्रकरणम्	105
13. भ्वादिप्रकरणम्	110
14. अदादिप्रकरणम्	184
15. जुहोत्यादिप्रकरणम्	214
16. दिवादिप्रकरणम्	222
17. स्वादिप्रकरणम्	234
18. तुदादिप्रकरणम्	239
19. रूधादिप्रकरणम्	247
20. तनादिप्रकरणम्	251
21. क्र्यादिप्रकरणम्	254
22. चुरादिप्रकरणम्	259
23. णिजन्तप्रकरणम्	268
24. सन्नन्तप्रकरणम्	276
25. यङ्न्तप्रकरणम्	286
26. यङ्लुगन्तप्रकरणम्	292
27. नामधातुप्रकरणम्	296
28. कण्ड्वादिप्रकरणम्	306
29. आत्मनेपदप्रकरणम्	306
30. परस्मैपदप्रकरणम्	315
31. भावकर्मप्रक्रिया	319
32. कर्मकर्तृप्रक्रिया	324
33. लकारार्थप्रकरणम्	328

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

	336
34. कृदन्तेकृत्यप्रक्रिया	355
35. पूर्वकृदन्तम्	409
36. उणादिप्रकरणम्	430
37. उत्तरकृदन्तम्	444
38. विभक्त्यर्थाः	471
39. केवलसमासः	474
40. अव्ययीभावसमासः	485
41. तत्पुरुषसमासः	520
42. बहुव्रीहिसमासः	537
43. द्वन्द्वसमासः	545
44. एकशेषप्रकरणम्	549
45. समासान्तप्रकरणम्	555
46. अलुक्समासः	559
47. समासाश्रयविधयः	569
48. अपत्याधिकारप्रकरणम्	584
49. रक्ताद्यर्थकप्रकरणम्	595
50. चातुरर्थिकप्रकरणम्	600
51. शैषिकप्रकरणम्	617
52. प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम्	622
53. ठगधिकारः	628
54. यदधिकारः	630
55. छयतोरधिकारः	633
56. ठञधिकारः	637
57. भावकर्मार्थाः	642
58. भवनाद्यर्थकाः	648
59. मत्वर्थीयाः	661
60. प्राग्दिशीयाः	666
61. प्रागिवीयाः	678
62. स्वार्थिकाः	693
63. स्त्रीप्रत्ययप्रकरणम्	719
64. वैदिकप्रक्रिया	729
65. स्वरप्रक्रिया	732
66. लिङ्गानुशासनम्	747
67. पाणिनीयशिक्षा	751
68. गणपाठः	

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रो. आर.के. शर्मा,
भू.पू. उपकुलपति

का. सिं. दरभंगा सं. विश्वविद्यालयः
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
भूतपूर्व निदेशक : (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम्)
विजिटिंग प्रोफेसर, शिकागो, कोलम्बिया (अमेरिका)
63, विज्ञान विहार, नई दिल्ली 110092

वर्धतामर्कनाथः

जयति महर्षिः पाणिनिः सर्वप्रथमः सर्वोत्कृष्टश्च विश्वस्यापि विश्वस्य भाषा-विवरणकारः। अद्यापि स वर्त्तते प्रेरणाभूमिर्भाषातत्त्वविदाम्। विवदन्तां नाम दार्शनिकाः स्वमतमण्डनपरमतखण्डनपरायणाः। किन्त्वेकेयमस्ति परम्परा पाणिनीया यत्र संवादायन्ते सर्वेऽपि विवादाः साम्प्रदायिकाः। सर्व एव सादरं वन्दन्ते सावधानमधीयते च महाशास्त्रं पाणिनीयमिदम्।

तमिम पाणिनीयमहाशास्त्रार्णवं तितीर्षूणां सौविध्याय विरचिते रूपावतार-प्रक्रियाकौमुदीतरणी उभे अतिशेते भट्टोजिदीक्षितसुविनिर्मितो वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीमहापोतः। एष महापोतोऽपि दुर्गमस्तटस्थानामिति वरदराजाचार्येण विरचितः प्रथमं लघुकौमुदीनामा लघीयान् पोतः। तदनु च तेनैव व्याख्याकृता व्यरचि मध्यसिद्धान्तकौमुदीनामा मध्यमपरिमाणः पोतः समानगतिरनुतटमपि मध्येऽर्णवमपि निर्बाधम्।

चिरमुपेक्षितामिमां मध्यसिद्धान्तकौमुदीपरम्परामुद्दिधीर्षुरिष वर्धापनीयतामर्हति समेषां वैयाकरणशिरोमणिः पण्डितकुलावतंसः श्री डॉ. अर्कनाथ चौधरी सम्पादयदिदं गन्थरत्नं मध्यमनोरमासंवलितम्। सुविदिता सर्वेषां प्रौढमनोरमा बालमनोरमा च। मध्यमनोरमा नामाप्यविदितम्प्रायेण विद्यावतामपि। सेदानीम्प्राकाश्यं याति मध्यमनोरमाऽपूर्णाऽपि च पूरयति कमप्यभिलाषं विदितवेदितव्यानामिति परमं प्रमोदस्थानं नः। न साऽधुना वस्तुतोऽस्त्यपूर्णा। विदुषा सम्पादकेन ननु पूरिता सा स्वोपज्ञां मनोरमापूरणीत्याख्यां व्याख्यां प्रस्तुतवता समग्रग्रन्थोपरि हिन्दीव्याख्यां च पूरितवतेति तुष्यतितमामद्य विद्वल्लोको विविदिषुलोकश्च।

वर्धतामर्कनाथः।

रामकरण शर्मा

मार्ग. शु. पंचमी 2052

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्री कलानाथ शास्त्री,

अध्यक्ष,
राजस्थान संस्कृत अकादमी

संस्कृतभाषा के प्राणभूत पाणिनीय-व्याकरण के बोधार्थ भट्टोजि दीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी का क्या महत्त्व है, यह सुधीजनों को सुविदित है। सिद्धान्तकौमुदी विस्तृत ग्रन्थ है, अत: उससे कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र और साधनिका प्रक्रिया लेकर संक्षिप्त रूप में भट्टोजिदीक्षित के ही शिष्य वरदराज ने जो लघुसिद्धान्तकौमुदी बनाई वह अनेक संस्कृत की परीक्षाओं हेतु पाठ्य-पुस्तक के रूप में निर्धारित है। सिद्धान्तकौमुदी की विस्तृतता एवं लघुकौमुदी की संक्षिप्तता को दृष्टि में रखते हुए मध्य के सन्तुलन के रूप में इन्हीं वरदाराज ने 2315 सूत्रों को चुनकर मध्यसिद्धान्तकौमुदी बनाई वह माध्यमिक संस्कृत परीक्षाओं के लिए उपयुक्त पाई गई, अत: वह उन परीक्षाओं हेतु पाठ्यक्रमों में निर्धारित होती रही है और बहुत लोकप्रिय है।

इस मध्यसिद्धान्तकौमुदी पर कोई सहज बोध-सहायक और व्यापक सन्दर्भ देने वाली ऐसी टीका उपलब्ध नहीं थी जो सिद्धान्तकौमुदी की टीका बालमनोरमा की पद्धति पर लिखी गई हो।

सत्रहवीं अठारहवीं सदी के संधिकाल के वैयाकरण पं. राम शर्मा ने इस रिक्ति की पूर्ति हेतु 'मध्यमनोरमा' लिखने का सत्प्रयास किया। जिन प्रकरणों पर यह टीका पूरी नहीं लिखी जा सकी उनकी पूर्ति टीकाकार के शिष्य पं. ब्रह्मप्रकाश ने करने का प्रयत्न किया, फिर भी कुछ प्रकरण अपूर्ण रह गए, लगभग आधी पुस्तक पर ही टीका उपलब्ध हो पाई। इस टीका की पाण्डुलिपि जयपुर के केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के व्याकरण-प्राध्यापक विद्वद्वर डॉ. अर्कनाथ चौधरी ने प्राप्त की, उसका सम्पादन किया तथा उसमें जहां तहां पाण्डुलिपि जीर्ण होने के कारण कुछ अंश खण्डित थे, उनकी पूर्ति करते हुए जिन अंशों में और स्पष्टता की आवश्यकता थी उसे उपलब्ध करवाने हेतु अपनी 'मध्यमनोरमापूरणी' व्याख्या लिखी। समास, तद्धित, कारक आदि जिन अंशों पर टीका उपलब्ध नहीं थी उन पर तो नये सिरे से 'पूरणी' लिखकर ही टीका उन्होंने उपलब्ध कराई। यह

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रसन्नता का विषय है। छात्रों को इस प्रकार पूर्ण-सुखबोध की सुविधा प्रदान करने के लिए डॉ. अर्कनाथ चौधरी सभी के साधुवाद के पात्र हैं। सूत्रों आदि का हिन्दी अनुवाद साथ में देते हुए समस्त ग्रन्थ का सम्पादन और भी अधिक स्वागतार्ह है, जो डॉ. चौधरी ने किया है।

उन्होंने अपनी भूमिका में संस्कृत और हिन्दी में नव्यव्याकरण की रूपरेखा और इतिहास के बारे में जो संक्षिप्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है, साथ ही परिशिष्ट के रूप में लिङ्गानुशासन, पाणिनीयशिक्षा और गणपाठ भी दे दिये गये हैं, जिससे ग्रन्थ की परिपूर्णता के साथ उपयोगिता भी बढ़ गई है।

इससे यह स्पष्ट है कि छात्रों के लिए ही नहीं व्याकरण के अध्यापकों के लिए भी यह ग्रन्थ बहुत सहायक सिद्ध होगा। डॉ. चौधरी ने कौमुदी-साहित्य पर पहले भी अध्ययन और टीका-व्याख्या लेखनादि का कार्य किया है, अतः इस ग्रन्थ के सम्पादन और टीका-लेखन, व्याख्यान आदि हेतु उनकी अधिकारिता स्वतः स्पष्ट है। इस ग्रन्थ पर मध्यमनोरमापूरणी टीका लिखकर कौमुदी-साहित्य के टीकाकारों में नाम जुड़ जाने के कारण डॉ. चौधरी बधाई के पात्र हैं।

इन टीका, टिप्पणी, अनुवाद, भूमिका आदि से ग्रन्थ की जो उपयोगिता बढ़ गई है, उसे देखते हुए व्याकरण के छात्रों, अध्यापकों आदि में यह ग्रन्थ आदर प्राप्त करेगा और लोकप्रिय होगा, इसमें संदेह नहीं है। इस श्रमसाध्य कार्य को पूर्ण करने के उपलक्ष्य में डॉ. चौधरी लेखक, तथा ग्रन्थ का सुरुचिपूर्ण मुद्रण सम्भव करवाने के उपलक्ष्य में प्रकाशक, दोनों बधाई के पात्र हैं।

कलानाथ शास्त्री

जयपुर,
कार्तिकी पूर्णिमा, संवत् 2052
7 नवम्बर 1995

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

डॉ. हिन्दकेसरी

अधिकारिभेदमालक्ष्य सुग्रथिता मध्यमपरिमाणापि मध्यसिद्धान्तकौमुदी व्याकरणग्रन्थेषु विशिष्टमास्पदमैतिह्यं च बिभर्ति। सत्यपि लाघवे वरदराजाचार्यस्य सारसिद्धान्तकौमुदी लघुसिद्धान्तकौमुदी च शास्त्रप्रवेशाय द्वारभूते एव। कारकसूत्राणामल्पतया विभक्तिनियमानां परिचयार्थमन्य एव ग्रन्थ आश्रयणीयो भवति। मध्यसिद्धान्तकौमुदी तु स्वरवैदिकोणादिप्रकरणैर्विभूषिता सर्वावयवैरनवद्या च संग्रहभूतेव राजते वैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्याः। अद्यतनपरिस्थितौ संपूर्णव्याकरणपुस्तकमिति सुशकं निरूपयितुम्। अस्य ग्रन्थस्य सत्स्वपि अनेकेषु नवीनव्याख्यानग्रन्थेषु प्राचीनव्याख्याग्रन्थानामनुपलब्ध्या विदुषां कश्चिदुपेक्षाभाव आसीत्, किन्तु भाषाव्यवहारोपयोगिसूत्रसंग्रहवैशिष्ट्येन समाद्रियत एवाधुनापि विश्वविद्यालयानां पाठ्यग्रन्थेषु। व्याकरणशास्त्रप्रक्रियागहनवनचारिणा विदुषा डॉ. अर्कनाथ चौधरीमहानुभावेन महता श्रमेण सम्पादितायाः मध्यमनोरमाव्याख्यायाः प्रकाशनेन नूनं प्रचारमेष्यति मध्यसिद्धान्तकौमुदी। अन्वर्थाभिधानायाः अस्या व्याख्यायाः प्रसन्ना शैली, विचारबाहुल्यं च मध्यभागस्य मनोरमत्वं प्रकाशयति। पञ्चनदप्रदेशाद् नेपालपर्यन्तमुपलब्धैरस्या हस्तलेखैर्व्याप्तिः शक्यानुमातुम्। उपलब्धाया व्याख्याया अपूर्णतया डॉ. चौधरीमहानुभावेन 'मध्यमनोरमापूरणी' तत्र तत्र विहितेति खण्डितदोषोऽपाकृत एव। गणपाठशिक्षादिभिरलंकृतं मध्यमनोरमासंबलितायाः मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः संस्करणमिदं छात्राणामुपकाराय विदुषां च प्रमोदाय कल्पिष्यत इति विश्वसिति।

डॉ. हिन्द केसरी

प्रवाचकः व्याकरणस्य
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, जयपुरम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निवेदनीयम्

संसारस्य प्राचीनासु भाषासु संस्कृतभाषा प्राचीनतमा विश्वभाषाधारभूता निर्दोषा वैज्ञानिकी चास्ति । संसारस्य प्रथमं साहित्यम्-"ऋग्वेदः" अस्यामेव भाषायामुपलब्धोऽस्ति । ज्ञानविज्ञानयोः सकलशाखासु संस्कृतस्य साहित्यं प्राचुर्येण विद्यमानम् । संश्लेषणविश्लेषणरूपवैशिष्ट्यात् अत्युन्नतकम्प्यूटरसदृशवैज्ञानिकयन्त्राणां कृतेऽद्यापि संस्कृत-भाषैव उपयुक्ततमेति विज्ञातारः प्रत्यपादयन् ।

कस्या अपि भाषायाः ज्ञानाय व्याकरणस्य ज्ञानं भवत्यावश्यकम् । यतः व्याकरणं भाषाप्रवाहं तत्र उत्पत्स्यमानान् दोषान् च निवार्य भाषायाः शुद्धस्वरूपं रक्षति । संस्कृतसदृश विशिष्टभाषायाः ज्ञानाय तु व्याकरणज्ञानं नितान्तमपेक्षितं, न च व्याकरणज्ञानमन्तरा संस्कृत भाषायां पाण्डित्यं केनाऽपि लब्धुं शक्यते ।

यथाऽद्यत्वे सरलतया भाषाशिक्षणाय नूतना विधयो नूतनाः पद्धतयश्च आविष्क्रियमाणा अवलोक्यन्ते, नूतनं नूतनं विविधभाषाव्याकरणशास्त्रमुपलभ्यते च, तथैव संस्कृत-भाषाया उत्पत्तिकालात् एव संस्कृतव्याकरणशास्त्रस्य निर्माणं प्रारब्धमित्यवलोक्यते । यत्र "ब्रह्मणः उच्छ्वसितं वेदाः" इति स्वीक्रियते । तत्रैव व्याकरणस्य प्रथमःप्रवर्तकः ब्रह्मा स्वीक्रियते । अत्र " ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः", इति ऋक्तन्त्रवचनं (१।४।) प्रमाणभूतम् । अक्षरसमाम्नायस्य=वर्णमालायाः प्रथमवक्तृत्वेन स्मृतात् ब्रह्मणः आरभ्य पाणिनिं यावत् अनेकैः मनीषिभिः व्याकरणं व्यरचि । आचार्ययुधिष्ठिरमीमांसकाः- "पञ्चाशीतिव्याकरण-प्रवक्तारः सन्ति पाणिनेः पूर्ववर्तिनः", इति सप्रमाणं व्याकरणशास्त्रस्येतिहासे प्रतिपादयाञ्चक्रुः।

ब्राह्ममैशानमैन्द्रञ्च प्राजापत्यं बृहस्पतिम् ।
त्वाष्ट्रमापिशलञ्चेति पाणिनीयमथाष्टकम् ॥

इति हैमबृहद्वृत्त्यवचूर्णिग्रन्थे प्रमुखाणां तत्काले प्रसिद्धानां वैयाकरणानाम् उल्लेखोऽस्ति । वोपदेवस्य कविकल्पद्रुमारम्भे-

इन्द्रश्चान्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः ॥

इति अष्टानां प्रसिद्धानां शब्दशास्त्रज्ञानामुल्लेखः । भगवान् पाणिनिः स्वयमपि स्वाष्टाध्याय्यां दशाचार्यान् स्मरति । एतैः प्रमाणैः सिद्ध्यति-नवनवानि सरलानि व्याकरणानि रचयितुं काले काले प्रयासो व्यधायि । तेष्वधुना पाणिनेः अष्टाध्यायी एव न केवलं सम्पूर्णतः उपलब्धा अपि तु अध्ययनाध्यापनक्रमे प्रवर्तमाना विभिन्नाभिः व्याख्याभिः सम्वर्धिता संस्कृतभाषाज्ञानाय परमसहायिका निर्दुष्टा च विद्यते ।

पाठनक्रमः-

अष्टाध्याय्या आरम्भकालात् बहुशताब्दीं यावत् व्याकरणस्याध्यापनमष्टाध्यायीक्रमेणाभूत् । अष्टाध्यायीसूत्राणां बहवः वृत्तिग्रन्था आसन्, तेष्वधुना काशिका श्रेष्ठो वृत्तिग्रन्थः । अष्टाध्यायीक्रमे सूत्रपाठधातुपाठोणादिपाठगणपाठान् लिङ्गानुशासनञ्चाधीत्य छात्राः एकैकशः सूत्राणामुदाहरणानि पठन्ति स्म । तत्राधिककालस्यापेक्षा आसीत् । अधिकसमयसापेक्षत्वात् शनैः शनैः अष्टाध्यायीक्रमेण प्रयोगसाधनप्रक्रिया शिथिलतामभजत् । तत्स्थानेऽष्टाध्याय्या अध्यापनाय प्रक्रियानुसारिक्रमस्यारम्भोऽभवत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अष्टाध्याय्याः प्रक्रियाग्रन्थेषु (1) रूपावतारः (2) प्रक्रियाकौमुदी (3) सिद्धान्तकौमुदी च । रूपावतारे स्वरवैदिकप्रक्रियाया अभावः, प्रक्रियाकौमुद्यां २४७० सूत्राण्येव व्याख्यातानि, सिद्धान्तकौमुदी एव प्रक्रियानुसारिव्याख्यानग्रन्थेषु सम्पूर्णानामष्टाध्यायी-सूत्राणां व्याख्यात्रीत्वेन मुख्या जाता, विद्वत्सु अतीवादृता चास्ति ।

अस्याः सिद्धान्तकौमुद्याः लघुमध्यसंस्करणे लघुसिद्धान्तकौमुदीमध्यसिद्धान्तकौमुद्यौ **वरदराजेन** कृते ।

मध्यसिद्धान्तकौमुदी

व्याकरणशास्त्रे बालानां सुलभप्रवेशाय शास्त्रान्तराध्येतॄणां कृते च अल्पसमयेनैव व्याकरणस्य सामान्यज्ञानाय आचार्यवरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी व्यरचि । व्याकरणमहोदधौ प्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं लघ्वीञ्चावलोक्य, सिद्धान्तकौमुदीं दुःखावहां दुरूढां परिश्रमसाध्याञ्चानुभूय वरदराजः २३१५ सूत्राणि व्याख्याय मध्यसिद्धान्तकौमुदीं विरचितवान् । मध्यसिद्धान्तकौमुदी च सिद्धान्तकौमुदीलघुसिद्धान्तकौमुद्योः मध्यभूतत्वात् सार्थकं नामावहति । केचन मध्यसिद्धान्तकौमुदीमेव वरदराजस्य प्रथमां कृतिं स्वीकुर्वन्ति ।

मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः प्रकरणक्रमः

सिद्धान्तकौमुद्यपेक्षया मध्यसिद्धान्तकौमुदी लघ्वी सरला प्रकरणक्रमदृष्ट्या युक्तियुक्ता चास्ति । यतोऽल्पकालेन पाणिनिव्याकरणस्य पूर्णज्ञानाय मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः निर्माणमभूत्, अतो वरदराजः अस्याः प्रकरणक्रमं परिवर्तितवान् । सिद्धान्तकौमुद्यपेक्षया अस्याः प्रकरणक्रमः मनोविज्ञानसम्मतः वाक्यज्ञानाय युक्तियुक्तश्च प्रतिभाति । मध्यसिद्धान्तकौमुद्याम् अव्ययप्रकरणादनन्तरं तिङन्तप्रकरणं कृदन्तं कारकं समासः तद्धितप्रकरणं स्त्रीप्रत्ययादिप्रकरणञ्च क्रमशः सन्ति । सिद्धान्तकौमुद्यां तु अव्ययादनन्तरं कारकं स्त्रीप्रत्ययः समासतद्धिततिङन्त कृदन्तप्रकरणादीनि च सन्ति । वाक्यार्थज्ञानाय सुबन्तपदज्ञानानन्तरं तिङन्तपद-(क्रियापद) ज्ञानं, कृत्प्रत्ययज्ञानं ततः कारकज्ञानञ्च प्रथमतः नितान्तमावश्यकम् । तदनन्तरं समासतद्धितादि ज्ञानम् । स्त्रीप्रत्ययज्ञानञ्च कृत्तद्धितसमासज्ञानसापेक्षं, तस्मादस्यान्त उल्लेखो युक्तः मध्यसिद्धान्तकौमुद्याम् ।

मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः टीका- "मध्यमनोरमा"

मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः उपरि काचित् महत्त्वपूर्णा टीका लिखिता स्यात्, यथा सिद्धान्तकौमुद्याः बालमनोरमा-तत्वबोधिनीटीके स्तः इत्यन्वेषणक्रमे सौभाग्यवशात् मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः महत्त्वपूर्णा प्राचीना च एका टीका **"मध्यमनोरमा-"** नाम्नी मया पाण्डुलिपिरूपेण आचार्य विश्वनाथशास्त्रिमहोदयाल्लब्धा, यदाऽहं तेषां श्री सरस्वती-संस्कृत-महाविद्यालये खन्ना नगरे १९७६ ई. वर्षे प्राध्यापक आसम् । टीकानुरोधेन मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः पुनः सम्पादनाय तैरहं प्रेरितः । खन्नानगरात् प्राप्तायां पाण्डुलिप्याम् आदितः हलन्तपुँल्लिङ्गस्य "ददत् इति- द्राधातोः शतृप्रत्यये तस्मिन् परतः कर्तरि शप् इति विहितस्य", इति अपूर्णरूपसिद्धिं यावदस्ति पाठः । पुनः कृदन्तप्रकरणादारभ्य "उदरेशय इति-उदरेण शेते इत्यर्थः", इति वाक्यं यावदेवोपलब्धः पाठः ।

एशियाटिक सोसायटी पुस्तकालयात् (कलकत्तानगरात्) प्राप्तायां पाण्डुलिप्यां टीकेयम् **आदितः लकारार्थप्रकरणं** यावद् पूर्णा प्राप्ता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्री गङ्गानाथ झा केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठात् प्राप्तायां पाण्डुलिप्याम् आदितः स्वादिसन्धिं यावत्, पुनः अजन्तस्त्रीलिङ्गे "मतेः" इति वैकल्पिकरूपसिद्धेरारभ्य सुबन्तं यावत्, पुनः समास-प्रकरणस्य आरम्भात् तत्पुरुषसमासस्य "एकविभक्ति चापूर्वनिपाते" इति सूत्रस्य व्याख्यां यावत्, तथा च स्त्रीप्रत्ययप्रकरणस्यारम्भात् "यञश्चेति" सूत्रपर्यन्तमुपलब्धा मध्यमनोरमा टीकेयम् । बहुप्रयासे कृतेऽपि वाराणसीतः मध्यमनोरमायाः पाण्डुलिपिं नैवावाप्तवानहम् । परन्तु तत्रत्य कैटलाग इत्यस्यावलोकनेन ज्ञातं यत् साऽपि हलन्तपुँल्लिङ्गं यावदेवास्ति ।

इत्थं मया सम्पादितायामस्यां मध्यमनोरमायाम् आदितः लकारार्थप्रकरणं यावत् पूर्णता विद्यते, ततः अपूर्णं कृदन्तप्रकरणं, समासप्रकरणं, स्त्रीप्रत्ययप्रकरणञ्चास्ति ।

मध्यमनोरमायाः लेखकः, तदीयसमयश्च

"कैटलागस कैटलागरम्" इत्याख्ये पाण्डुलिपिविवरणग्रन्थे अस्याः लेखकत्वेन "राम शर्मन्" इत्यस्योल्लेखो विद्यते । परन्तु मध्यमनोरमायाः पाण्डुलिप्यां लेखकद्वयस्य नाम विद्यते । संज्ञा-प्रकरणादारभ्य लकारार्थं यावत् मध्यमनोरमां राम शर्मा रचितवान् । कृदन्तप्रकरणादारभ्य तच्छिष्येण ब्रह्मप्रकाशेन व्याख्याता मध्यमनोरमा इति ज्ञायते । लकारार्थप्रकरणस्यान्ते दत्तः परिचयः एवम्-"इति शिवानन्द भट्टानाम् आज्ञया (महानामाज्ञया इत्यपि पठितुं युज्यते) रामशर्मणा व्याख्यातं मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः टीकायाः मध्यमनोरमायाः सुप्तिङन्तं समाप्तम्" । पुनः-

कण्ठे विद्यानिवासस्य स्थिता मध्यमनोरमा ।
गोस्वामि श्री शिवानन्दमुदं वितनुतां सदा ।।

तिङन्तसंख्या ३९००, संवत्-१८५०, इति विद्यते ।

कृत्यप्रक्रियायाः समाप्तौ "इति तपस्विराज-दासान्त-रामशब्दाभिधेयशिष्यब्रह्मप्रकाश कृतायां कृन्मध्यमनोरमायां कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ।

स्त्रीप्रत्ययस्यारम्भे-

"श्री कृष्णाय नमः", इति, तदनन्तरम्-
नत्वा कृष्णपदाम्भोजं स्मृत्वा च गुरोर्गिरः ।
कुर्वेऽहं मध्यकौमुद्याः व्याख्यां मध्यमनोरमाम् ।।

इत्युल्लिखितं विद्यते । एतेन स्पष्टं ज्ञायते यत् लकारार्थप्रकरणं यावत् राम शर्मणा रचिता मध्यमनोरमा, ततोऽग्रे तदन्तेवासिना ब्रह्मप्रकाशेन च पूरिता ।

लकारार्थप्रकरणस्यान्ते लिखिते श्लोके विद्यानिवासस्य कण्ठे मध्यमनोरमायाः स्थितिः वर्णिता, तेन विदितम्भवति-राम शर्मणः गुरुः विद्यानिवास आसीत्, यस्य कण्ठे स्थितां मध्यमनोरमामधीत्य शिष्येण व्याख्यानं कृतम् । तत्र प्रेरकत्वेन शिवानन्द नामा कश्चन भक्तः मठाधीशो वा स्मृतः । कालस्तु १८५० संवत् इति स्पष्ट एव । तिङन्तसंख्या ३९०० इत्युक्ते तिङन्तरूपाणां संख्या भवितुमर्हति ।

अयं राम शर्मा जीवनस्यान्ते गार्हस्थ्यं त्यक्तवान्, राम शर्मणः रामदास अभूत् इति कृत्यप्रक्रियान्तपरिचयेन बुध्यते । तस्य वचांसि स्मृत्वा ब्रह्मप्रकाशेन मध्यमनोरमा पूरिता इति मन्ये ।

एतौ विद्वान्सौ स्वजनुषा कं प्रदेशमलञ्चक्रतुरिति न विद्यते । कलकत्तापाठे अनेकशः षकारयकारयोः स्थाने खकारजकारयोः प्रयोगः, इलाहाबादपाठे फक्किका शब्दस्य प्रयोगः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

हलन्तस्त्रीलिङ्गे दृश्शब्दे, खन्नापाठे कृत्यप्रक्रियायां "सूचकः"=परद्रोही, "चुगल" इति प्रसिद्धः, "हलिः"- सुहागेति प्रसिद्धः", विपूयेति सूत्रे "मुञ्जेत्येवं प्रसिद्धं पाश्चात्यानाम् इति प्रयोगाः मिलन्ति । सुहागाशब्दः कृष्टसमीकरणार्थं यत् काष्ठं तस्य कृते पञ्चाम्बुप्रदेशे प्रयुज्यते । फक्किकाशब्दस्य "चुगल" इति शब्दस्य च प्रयोगः मध्यपूर्वभागयोः, विशिष्य फक्किकाशब्दस्य प्रयोगः सिद्धान्तकौमुद्याः शङ्कासमाधानविषयक-पङ्क्त्याः कृते मध्यपूर्वभागे प्रसिद्धः । षकारयकारयोः प्रयोगस्थाने खकारजकारयोः प्रयोगः पूर्वभागे मध्यपूर्वभागे चापि भवति । एभिः ज्ञायते लेखकौ मध्यपूर्वभागस्यैवास्ताम् । पञ्चाम्बुप्रदेशस्य सम्भावना मुञ्जेत्येवं प्रसिद्धं पाश्चात्यानामित्युक्त्या नश्यति । एतत्तु अवश्यं स्वीकर्तव्यं यत् पाण्डुलिपिकाराः भिन्न-भिन्नदेशीया आसन्निति ।

मध्यमनोरमायाः वैशिष्ट्यम्-

मध्यमनोरमानाम्नी टीका मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः ज्ञानाय तथैव महत्त्वपूर्णा यथा सिद्धान्तकौमुद्याः ज्ञानाय बालमनोरमा तत्त्वबोधिनी च वर्तेते । शङ्कापरकपङ्क्तीनां विस्तृतं स्पष्टं च व्याख्यानमत्रोपलभ्यते । विशिष्टसूत्राणां व्याख्यानं, प्रत्युदाहरणानां चर्चा, कठिनानां प्रयोगाणां च सिद्धिः सम्यक् कृताऽत्र । वर्णनशैली अतीव शोभना छात्रबोधिका च । प्रतिपादनशैली बालमनोरमां तत्त्वबोधिनीञ्चातिशेते ।

बाध्यबाधकभावः

व्याकरणशास्त्रे अनेकसूत्राणामेकत्र लक्ष्ये प्राप्तौ सत्यां कस्य प्राप्तिः समीचीना एतद्विषये केचन नियमाः निर्धारिताः सन्ति । यथा-"परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः" इति सामान्यतो नियमः । व्याख्याकाराः एतान् नियमान् विशिष्टस्थले पालयन्ति, सामान्यस्थले च न पालयन्ति । किन्तुं मध्यमनोरमाकारः प्रायशः एतान् नियमान् पालयति लक्ष्यसिद्धये नियमानुल्लिखति च ।

अन्तरङ्गशास्त्रविषये अनेके पक्षाः सन्ति, तत्र प्राचीननवीनयोर्मतभेदः । तद्विषये टीकाकारस्याभिप्रायप्रदर्शनार्थम् अधोलिखितपङ्क्तिविषये चर्च्यते-

पूर्वं धातुः उपसर्गेण युज्यते साधनेन वा-

सम्प्रसारणाच्चेति सूत्रे भाष्ये "धातूपसर्गयोर्यत् कार्यं तदन्तरङ्गम्", इति प्रतिपादितम् । पुनश्च 'सुट् कात् पूर्वः' इत्यत्र भाष्ये-"किमन्तरङ्गम्, किं बहिरङ्गम् इति ? धातूपसर्गयोः कार्यं यत्तदन्तरङ्गम् । कुत एतत् ? पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात् साधनेन", इत्युक्तम् । तदनुरोधेन प्राचीनैः पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात् साधनेन इति मतं स्वीक्रियते । तेन अनुभूयते इत्यादौ अकर्मकस्य भूधातोः अनु इत्युपसर्गेण पूर्वं योगे सति अनुभू इत्यस्य सकर्मकत्वात् कर्मणि लकारसिद्धिः भवतीति प्रतिपाद्यते प्राचीनैस्तैः । शिवेहि खट्वोढा अद्योढा इत्यादि उदाहरणानि अपि प्रस्तूयन्ते ।

नागेशस्तु "पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते पश्चात् साधनेन" इति मतं न स्वीकरोति । सः दृढं प्रतिपादयति यत्" पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण" । यतः उपसर्गाः क्रियायोगे इत्यनेन क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञा विधीयते । क्रियायाः साध्यत्वेन बोधो भवति, साध्यञ्च साधनाकाङ्क्षम् । अतः साधनकार्यप्रवृत्तेः पश्चादेव क्रियायोगनिमित्तोपसर्गसंज्ञकस्य सम्बन्धः उचितः । स्वपक्षस्य पुष्टये सुट्कात् पूर्वः इति सूत्रस्थभाष्यमप्युदाहरति । नागेशमते अनुभूयते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

इत्यत्र उपसर्गद्योत्यार्थान्तर्भावेन धातुनैव अर्थाभिधानं भवति, तेन कर्मणि लकारसिद्धिर्भवति। पश्चाच्छ्रोतुर्बोधाय द्योतकस्योपसर्गस्य सम्बन्धो भवति। अत एव प्रणिदापयति इत्यत्र णत्वं यदागमन्यायेन साध्यते। पूर्वं धातोः साधनेन योगादेव "प्रत्यय" इत्यादिशब्दाः सिद्ध्यन्ति। वस्तुतः लक्ष्यसिद्धये उभौ अपि पक्षौ वैयाकरणैः स्वीक्रियेते। यत्र सिद्धान्ततः "पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते" इति समीचीनं प्रतिभाति तत्रैव स्वनामधन्यैः वैयाकरणैः "पूर्वं धातुः उपसर्गेण युज्यते" इति पक्षमादाय लक्ष्यसिद्धिः कृता।

बालमनोरमाकारः सुषुषुपतुरित्यस्य सिद्ध्यै पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते इति मतं स्पष्टं प्रतिपादयति। प्राङ् इत्यस्य सिद्धौ प्राच् इति कृत्वा सुबुत्पत्तिं करोति बालमनोरमाकारः।

मध्यमनोरमाकारः:-

"पूर्वं धातुः उपसर्गेण युज्यते साधनेन वा ? इत्येतद्विषये स्पष्टं किमपि न वक्ति। मध्यमनोरमायां कृतां रूपसिद्धिमाधारीकृत्य एतत् वक्तुं शक्नोमि यत् "पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते" इति मतस्यैवायं पक्षपाती। निदर्शनाय रूपसिद्धिं प्रदर्शयामि-

प्राङिति-

प्रपूर्वकोऽञ्च्धातुः अञ्चू गतिपूजनयोः, ऋत्विगादिना ततः क्विन्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वे ततः स्वाद्युत्पत्तिः, हल्ङ्यादिना सुलोपः, प्र अञ्च् इति स्थिते अनिदितामिति नकारलोपः। सर्वनामस्थाने परतः उगिदचामिति नुम्, चकारस्य संयोगान्तस्य लोप इति लोपः। प्र अन् इति जाते क्विन् प्रत्ययस्य कुरिति नकारस्य कुत्वेन ङकारः, सवर्णदीर्घः। (यद्यप्यत्र नलोपः पूर्वं कर्तव्य आसीत् तथाऽपि न कृतः)। अधीयन् अध्यगात् प्रयाणीयमित्यादिषु च "पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते" इति पक्षं न प्रदर्शितवान्।

अल्पापेक्षस्यान्तरङ्गता :-

"अल्पापेक्षमन्तरङ्गमिति" वैयाकरणाः लिखन्ति मन्वते च। किन्तु वैयाकरणशिरोमणिः नागेशभट्टः अल्पापेक्षत्वस्यान्तरङ्गत्वं न स्वीकरोति। परिभाषेन्दुशेखरे "स्योनः इत्यत्र सिवेर्बाहुलकात्.....इत्यारभ्य भाष्यासङ्गतेः", इति यावत् कैयटमतं दूषयन् कथयति- "बहिरङ्गान्तरङ्गशब्दाभ्यां बह्वपेक्षत्वाल्पापेक्षत्वयोः शब्दमर्यादया अलाभाच्च। तथा सत्यसिद्धं बह्वपेक्षमल्पापेक्ष इत्येव वदेत्", इति।

मध्यमनोरमाकारः रुद्यादित्यत्र अल्पापेक्षत्वस्यान्तरङ्गतां स्वीकरोति। रुद्यादित्यत्र, "प्रकृतिप्रत्ययविशेषापेक्षाभ्यामडीड्भ्यामन्तरङ्गत्वाद् यासुट्", इत्यस्याः पङ्क्तेः व्याख्यां कुर्वन् अचकथत् "अन्तरङ्गत्वादिति-यासुटो धातुमात्रप्रकृतिसापेक्षत्वात् लिङ्मात्रप्रत्ययसापेक्षत्वात् अन्तरङ्गत्वमित्यर्थः। यद्यपि प्रकृतिप्रत्ययोभयसापेक्षत्वं यासुटोऽस्ति, तथापि अल्पापेक्षत्वमस्त्येव। अट ईटश्च प्रकृतिप्रत्ययविशेषरूपद्वयापेक्षत्वादिति भावः"।

एतेन स्पष्टं भवति-प्राचीनमतमपि अङ्गीकरोत्ययं यथाऽन्येऽङ्गी कुर्वन्ति।

लावस्थायामट् पश्चाद् वा :-

लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः इति सूत्रमनुरुध्य 'लावस्थायामट्', इति भाष्यमतम्। नागेशादिभिः नव्यैः प्राचीनैश्च सिद्धान्तत एतन्मतमाद्रियते। परन्तु प्रक्रियायां प्रायशः सर्वां क्रियां निष्पाद्य अडाटोः विधानं कुर्वन्ति ते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

काशिकाकार:-

आडजादीनामिति सूत्रे औह्यत इति प्रयोगे लङि कृते लावस्थायामडागमात् अन्तरङ्गत्वाल्लादेशं करोति, कृते लादेशे नित्यत्वाद् विकरणोऽडागमं बाधते, विकरणे कृते सम्प्रसारणमडागमान्नित्यत्वादेव भवति इत्युक्त्वा अन्ते आडागमं विधाय अडाटौ लावस्थायां नाङ्गीकरोति ।

बालमनोरमाकार:-

"लुङ्लङ्लृङ्क्षु....." इति सूत्रे कथयति- "अन्तरङ्गत्वान्नित्यत्वात् परत्वाच्च यथायथं तिपि शपि विकरणे गुणेऽवादेशे विकरणविशिष्टस्याङ्गस्य अडागम:", इत्युक्त्वा, "लावस्थायामेवाडागम:, इति पक्षान्तरं भाष्ये स्थितम्" इत्यपि कथयति । अयम् अडाटौ अन्ते करोति किन्तु भाष्यमतमपि नावमन्यते ।

भट्टनागेश:

यदागमपरिभाषाया: स्थानिवत्सूत्रेण गतार्थता नास्ति तथा स्थानिवत्सूत्रविषये निर्दिश्यमानपरिभाषाया: प्रवृत्ति: न भवति इति प्रतिपादयितुकाम: कथयति-अपिबत् इत्यत्र लङि लावस्थायामेवाडागमे अपा इत्यस्मात् तिपि शपि इतश्चेतीकारलोपे अपा अत् इत्यवस्थायां पा इत्यस्य स्थाने अपा बुद्धि: कर्तव्या भविष्यति, तथा च अपाशब्दे स्थानिवद्भावेन पात्वातिदेशे अट्सहितस्य पा इत्यस्य पिबादेशापत्ति: भवति । एवञ्च "लावस्थायामट्" इति भाष्योक्तसिद्धान्तासङ्गति:", इति उक्त्वा भाष्यमतमपि उररीकरोति । मध्यमनोरमाकार: काँश्चन प्रयोगान् परित्यज्य अन्यत्र सर्वां प्रक्रियां सम्पाद्यान्ते अडाटौ विधत्ते ।

उपलब्धमध्यसिद्धान्तकौमुदी-संस्करणात् भिन्नता :-

मध्यमनोरमाटीकानुरोधेन उपलब्धसंस्करणात् भिन्नं संस्करणमस्य भवितुमर्हति । यत: कानिचित् शब्दरूपाणि, सप्तदश शङ्कापरकपङ्क्तयश्चाधिका: अत्र । सूत्रवृत्तौ, एकत्र सूत्रस्वरूपेऽपि भेद: स्यात् टीकानुरोधेन । धात्वर्थेऽपि क्वचित् भेद: । यथा चूष् पाने इत्यस्य स्थाने चूष् च इति पाठ:, श्लोकृधातो: स्थाने श्लोक् इति, अञ्जूव्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु इत्यत्र व्यक्तेरर्थ: विवेचनमिति, अर्तिह्रीब्लीति सूत्रे रीङ् क्षये इति, ण्यन्ते घटादिषु गद्लृ गतिदानयो: इति च पाठ: अस्यां टीकायाम् ।

मध्यमनोरमाया: न्यूनता :-

टीकाकार: यादृशेन प्रयत्नेन सूत्राणि वार्तिकानि पङ्क्तीश्च व्याख्याति तादृशेन प्रयत्नेन कारिकाणां व्याख्यानं न करोति । बालमनोरमावत् प्रतिसूत्रं प्रत्येकमुदाहरणं वा नात्र व्याख्यातम् इति एतादृश्या: महत्वशालिन्याष्टीकाया: न्यूनतैव विद्यते । रूपसाधनप्रक्रियायां त्रैपादिकशास्त्रं पूर्वं प्रवर्तयति बहुत्र, इत्सपरो दोष: ।

ममप्रयास:-

कलकत्तानगरत: प्राप्तायां पाण्डुलिप्यां प्रायश: प्रतिपत्रमस्पष्टता अपाठ्यता रिक्तस्थानं वा आसन्, कानिचनाक्षराणि पाठ्यानि कानिचिदपाठ्यानि, पदानि वाक्यानि चाऽपि अपाठ्यान्यासन् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

खन्नापाठेऽक्षराशुद्धयः, इपाठेऽपि तथैव । कस्मिन्नपि पाठे अल्पविरामचिह्नानि नासन्, न वा अनुस्वारविसर्गयोः लेखने पाण्डुलिपिकारेण अवधानं कृतम् । अनुनासिकवर्णानां लेखनस्थलेऽनुस्वारस्यैवोल्लेखः प्रायशः । ह्रस्वदीर्घयोः अशुद्धयः, (विशिष्य इट ईटः प्रसङ्गे) बह्व्यः आसन् ।

अपाठ्यानि पाठ्यानि विधातुं, रिक्तिं पूरयितुम् अक्षराणि शोधयितुं पूर्णाल्पविरामौ निश्चित्य लेखितुं तु श्रमः कृत एव, पाठान्तराणां समीक्षणानन्तरं मूले कस्योल्लेखो युक्तः इति व्यवस्थापि मम काठिन्यायाभूत् । तथापि यथामति मया प्रयासः कृतः निर्दुष्टसम्पादनाय । सम्पादनं निर्दुष्टं जातं नवेति तत्र विद्वान्सः एव प्रमाणम् ।

मध्यमनोरमापूरणी-व्याख्या :-

मध्यमनोरमा व्याख्या लकारार्थं यावदेव पूर्णोपलब्धा । तदग्रे कानिचित् एव पत्राणि लब्धानि इति मया सूचितम् । अपूर्णया टीकया सहाऽपि मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः प्रकाशनकार्यं विदुषां कृते यद्यप्युपयोगि तथापि प्रकाशकानां छात्राणाञ्च कृते न पूर्णतः उपयोगि इति विचार्य मध्यमनोरमाशैल्यां सम्पूर्णग्रन्थोपरि मध्यमनोरमापूरणी- व्याख्या मया कृता । येषु प्रकरणेषु मध्यमनोरमा व्याख्या उपलब्धाऽस्ति तत्र मध्यमनोरमाकारैः परित्यक्तांशमादाय मध्यमनोरमापूरिता मध्यमनोरमापूरणी नामिकया टीकया । येषु प्रकरणेषु मध्यमनोरमा टीका नोपलब्धा, अंशतो वोपलब्धा तत्र मध्यमनोरमापूरणी टीका मूलं बोधयितुं मया रचिता । तत्र सूत्राणां संक्षेपेण अर्थकरणविधिं पङ्क्तिव्याख्यानं प्रयोगाणां च सिद्धिम् अहमुपस्थापितवान् छात्राणामुपकाराय । यद्यपि विदुषां समक्षम् एनां व्याख्याम् उपस्थापयन् उपहास्यतां गमिष्यामि तथाऽपि प्रांशुलभ्ये फले उद्बाहुः वामन इव मदीयः प्रयासः । गुणैकपक्षपातिनो विपश्चितः दोषान् न गणयिष्यन्ति अपि तु दोषाणां निराकरणाय मां बोधयिष्यन्ति इति प्रार्थना ।

कृतज्ञता

पाण्डुलिपिप्राप्तौ सहायकाः सम्पादनाय प्रेरकाः राष्ट्रपति पुरस्कृताः विद्वान्सः आचार्य श्री विश्वनाथ शास्त्रिणः (खन्ना) डा. के. इ. गोविन्दन् महाभागाः (तिरुपतिः) एशियाटिक सोसायटी पुस्तकालयस्य प्रसिद्धाः दार्शनिकाः राष्ट्रपतिपुरस्कृता विद्वान्सः श्री अनन्तलाल ठक्कुर महाभागाश्च सहायतां ददुरिति तान् प्रति कृतज्ञतां ज्ञापयामि । डा. हिन्दकेसरी महोदयाः सम्पादने मार्गनिर्देशनेन महोपकारं कृतवन्तः इति विशिष्य कृतज्ञः तेषाम् । मम गुरवः डा. हर्षनाथ मिश्रमहाभागाः डा. मणिनाथ झा महाभागाश्च काले काले टीकया सह पुस्तकप्रकाशनाय प्रेरितवन्तः इति प्रणामाञ्जलिं तान् प्रति समर्पयामि ।

अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशनाय अशीतिप्रतिशतम् आर्थिकसहायता राष्ट्रिय-संकृत-संस्थानेन प्रदीयते इति तस्याधिकारिणः प्रति विशिष्य तत्कालीननिदेशकपदमलङ्कुर्वतः श्री प्रियदर्शी ठाकुर महाभागान् प्रति वर्तमाने निदेशकपदमलङ्कुर्वतः डा. कमलाकान्त मिश्र महाशयान् प्रति तथा च भारतशासनस्य संस्कृत शिक्षायाः उपपरामर्शकान् डा. गङ्गाधर पण्डा महोदयान् प्रति अपि कार्तज्ञं प्रकटयामि । अन्ते जगदीश संस्कृत पुस्तकालयसञ्चालकस्य पं. गङ्गासहाय शर्मणः तेषां पुत्रस्य श्री ओम्प्रकाश शर्मणश्च आभारं प्रकटयामि यैः अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशनाय शेषधनस्य अन्यस्य च सौविध्यस्य व्यवस्था कृता ।

छात्राणां सुबोधाय पाणिन्यादिवैयाकरणानां परिचयः व्याकरणसम्बन्धिपारिभाषिक-शब्दानां विवेचनञ्च हिन्दीभाषयां प्रस्तूयतेऽग्रे ।

विदुषां वशम्वदः
अर्कनाथ चौधरी

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रस्तावना

संसार की प्राचीन भाषाओं में संस्कृत भाषा प्राचीनतम है। यह भाषा अखिल भाषाओं की आधारभूत वैज्ञानिक एवं दोषरहित भाषा है। विश्व का प्रथम साहित्य 'ऋग्वेद' इसी देववाणी में उपलब्ध है। ज्ञान एवं विज्ञान की समग्र शाखाओं में संस्कृत साहित्य प्रचुरमात्रा में उपलब्ध है। संश्लेषण-विश्लेषण रूप विशिष्टता के कारण अत्युन्नत कम्प्यूटर के लिए आज भी संस्कृत भाषा ही सभी अन्य भाषाओं से अधिक उपयोगी है, ऐसा वैज्ञानिकों का कहना है।

किसी भी भाषा के ज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक होता है। व्याकरण भाषा प्रवाह को नियन्त्रित करता है तथा उसमें उत्पन्न होने वाले दोषों का निवारण कर भाषा के शुद्धस्वरूप की रक्षा करता है। संस्कृत जैसी विशिष्ट भाषा के ज्ञान के लिए तो व्याकरण का ज्ञान नितान्त अपेक्षित है। व्याकरण ज्ञान के बिना कोई पाण्डित्य प्राप्त नहीं कर सकता है।

वेद के छः अंगों में भी व्याकरण को मुख बताकर इसकी प्रधानता सिद्ध की गई है। कहा भी गया है कि—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि —"ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च, षडङ्गेषु प्रधानं व्याकरणम् प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।"

प्राचीन समय में तो यह उक्ति प्रचलित थी कि "यद्यपि सब शास्त्र नहीं पढ़ सकते फिर भी शुद्धता की रक्षा के लिए व्याकरण अवश्य पढ़ना चाहिये।

यद्यपि बहु नाधीषे तथाऽपि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्॥

जिस प्रकार आजकल भाषाशिक्षण के लिए नयी विधि, नई पद्धतियाँ निकाली जा रही हैं, भिन्न भिन्न भाषाओं के नए नए व्याकरण शास्त्र उपलब्ध हो रहे हैं, उसी प्रकार संस्कृत भाषा की उत्पत्ति के समय से ही संस्कृत व्याकरणशास्त्र का निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

व्याकरण के प्रवर्तक

ब्रह्मा—जिस प्रकार वेद को ब्रह्मा के उच्छ्वास से प्रादुर्भूत माना जाता है उसी प्रकार व्याकरण शास्त्र के आद्यप्रवर्तक ब्रह्मा माने जाते हैं। स्वयं महाभाष्य में पतञ्जलि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ने कहा है कि —"ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः।"

इस प्रकार ब्रह्मा से लेकर पाणिनि तक अनेकों मुनियों ने व्याकरण की रचना की है। आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक तो 'पाणिनि से पूर्ववर्ती पचासी वैयाकरण हुए' ऐसा सप्रमाण कहते हैं।

ब्राह्ममैशानमैन्द्रञ्च प्राजापत्यं बृहस्पतिम्।
त्वाष्ट्रमापिशलञ्चेति पाणिनीयमथाष्टकम्॥

वोपदेव के कविकल्पद्रुम के प्रारम्भ में—

इन्द्रश्चान्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥

इस वचन के अनुसार भी आठ प्रसिद्ध वैयाकरणों का उल्लेख है। भगवान् पाणिनि अष्टाध्यायी में स्वयं दस आचार्यों का उल्लेख करते हैं। इन सभी व्याकरणों में पाणिनि व्याकरण ही अद्यावधि साङ्गोपाङ्ग उपलब्ध है, तथा अध्ययन परम्परा में अष्टाध्यायी तथा इसके व्याख्यान ग्रन्थ ही प्रचलित रह गये हैं। इससे पाणिनि व्याकरण का महत्त्व स्वतः स्पष्ट है।

पाणिनि--पाणिनि के देशकाल एवं स्थिति के विषय में यद्यपि हम अनुमान लगाते हैं, फिर भी यही सही है, ऐसा निश्चित रूप में नहीं कह सकते हैं। व्याकरण शास्त्र के इतिहासकारों में युधिष्ठिर मीमांसक तथा वासुदेव शरण अग्रवाल ने उनके विषय में प्रकाश डाला है। डॉ॰ अग्रवाल ने ईसा पूर्व 500 वर्ष पाणिनि का काल माना है। उनके अनुसार पाणिनि नन्द राजा महानन्द के समकालीन थे। मीमांसक जी ने पाणिनि का स्थितिकाल 2800 विक्रम पूर्व माना है तथा 3000 ईसा पूर्व। गणतन्त्र महोदधि के अनुसार ये पाणिनि शालातुर ग्राम के निवासी थे। इसलिए कहा गया है कि "शालातुरो नाम ग्रामः, सोऽभिजनोऽस्यास्तीति शालातुरीयः, तत्र भगवान् पाणिनिः"। शालातुर को मीमांसक जी लाहौर मानते हैं जो अब पाकिस्तान में है। पाणिनि के पिता का नाम पाणि और माता का नाम दाक्षी था। पतञ्जलि ने भी लिखा है, "दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः"। पाणिनि के गुरु का नाम उपवर्ष था, जो नालन्दा विश्वविद्यालय (बिहार) के प्रसिद्ध आचार्य थे। यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि वस्तुतः पाणिनि पश्चिम पंजाब के थे या बिहार के। कारण यह है कि उनका गुरु नालन्दा में था, उस समय इतनी दूर से शिक्षा ग्रहण करने के लिए पाणिनि के नालन्दा आगमन का कोई प्रमाण नहीं है। अतः कुछ लोग इन्हें बिहार का ही मानते हैं। जिस तरह मगध के पतञ्जलि ने पाणिनि परम्परा की रक्षा की है तथा इन्हें सम्मान दिया है वह भी उसी क्षेत्र को इंगित करता है। अस्तु, यह विवाद का विषय है। पाणिनि के विषय में प्रसिद्धि है कि वे मन्दबुद्धि थे। अतः भगवान् शंकर की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न किया तथा उनके उपदेश

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

से गुरु के आश्रम (नालन्दा में) में ही अष्टाध्यायी का निर्माण किया। धातुपाठ, गणपाठ, लिङ्गानुशासन आदि की भी रचना की। कहा भी गया है—

अथ कालेन वर्षस्य शिष्यवर्गो महानभूत्।
तत्रैकः पाणिनिर्नाम जडबुद्धितरोऽभवत्॥ 1 ॥
येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै श्री पाणिनये नमः॥ 2 ॥

मृत्यु—पंचतंत्र के मित्रसम्प्राप्ति प्रकरण में "सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत् प्राणान् प्रियान् पाणिनेः" वचन प्राप्त होता है। जिससे ज्ञात होता है कि सिंह ने पाणिनि को मार दिया। यह भी किम्वदन्ती है कि इनकी मृत्यु त्रयोदशी को हुई थी।

कात्यायनः—व्याकरण के त्रिमुनि में कात्यायन द्वितीय मुनि माने जाते हैं। अनेकों वैयाकरणों ने पाणिनि व्याकरण पर वार्तिक लिखे। किन्तु कात्यायन रचित वार्तिक ही सर्वमान्य व प्रसिद्ध हुए। कात्यायन के वार्तिकों के बिना पाणिनि व्याकरण अपूर्ण ही रह जाता।

कात्यायन एवं पाणिनि दोनों समकालीन थे तथा एक ही गुरु के शिष्य थे। आचार्यों ने कात्यायन को गोत्रज नाम माना है। इनका असली नाम तो वररुचि था। कात्यायन को महर्षि याज्ञवल्क्य का पुत्र माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि स्मृतिकार एवं वार्तिककार कात्यायन एक ही थे। इनका काल 350 ईसा पूर्व मानते हैं। यदि ये पाणिनि के समकालीन थे तो समय सही प्रतीत नहीं होता है।

प्रियतद्धिता : दाक्षिणात्याः' इस महाभाष्य के वचन से इनको दाक्षिणात्य माना जाता है। किन्तु इसकी पुष्टि स्कन्दपुराण के वचन का समन्वय इस प्रकार करने पर ही होती है—

स्कन्दपुराण के अनुसार—"मिथिला के ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य का एक आश्रम आनर्त (गुजरात) प्रदेश में भी था।" उसी प्रकार, सम्भव है कि कात्यायन का कोई पीठ महाराष्ट्र में रहा होगा तथा अधिक समय उन्होंने वहीं बिताया होगा। अतएव उन्हें दाक्षिणात्य कहने की परम्परा चल निकली होगी।

कात्यायन स्मृतिकार एवं वार्तिककार ही नहीं थे अपितु ये महाकवि भी थे। 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य की प्रशंसा ग्रन्थों में की गई है। जिसके रचयिता कात्यायन थे ऐसा उल्लेख मिलता है—

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः॥
न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः।
काव्येपिभूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्षः॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पतञ्जलि– त्रिमुनि में पतञ्जलि ही तीसरे मुनि हैं तथा सर्वाधिक प्रामाणिक वैयाकरण माने जाते हैं। 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' वचन उनकी सर्वाधिक प्रामाणिकता सिद्ध करता है। महर्षि पतञ्जलि का महाभाष्य, व्याकरण परम्परा में 'आकर' कहलाता है। यह ग्रन्थ न केवल व्याकरण का प्रामाणिक ग्रन्थ है अपितु संपूर्ण संस्कृतवाङ्मय में अपनी विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने लिखा है कि

कृतेऽथ पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने॥

रचना–महर्षि पतञ्जलि ने मन वचन एवं शरीर के दोषों का निवारण करने के लिए तीन ग्रन्थरत्न रचे। (1) पातञ्जलयोग सूत्र (2) महाभाष्य (3) चरकसंहिता। कैयट ने अपने मंगलाचरण में लिखा है कि—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

महाभाष्य में इनके दो नाम मिलते हैं— गोनर्दीय तथा गोणिका पुत्र। इससे ज्ञात होता है कि गोनर्द के ये निवासी थे तथा इनकी माता गोणिका थी। इनके अन्य नाम भी मिलते हैं — फणाभृत्, शेषावतार। कुछ लोग गोनर्द को आधुनिक 'गोण्डा' भी मानते हैं। तथा कुछ इसे कश्मीर में मानते हैं। परन्तु ये दोनों पक्ष अपुष्ट ही हैं।

पतञ्जलि राजा पुष्यमित्र के समकालीन थे। महाभाष्य में इन्होंने "इह पुष्यमित्रं याजयामः, पुष्यमित्रो यजते, इसका उल्लेख किया है जिससे पाटलिपुत्र के राजा पुष्यमित्र से इनका सम्बन्ध स्थापित होता है। ऐतिहासिकों ने पुष्यमित्र का काल 150 ई. पू. बताया है, अतः पतञ्जलि का काल भी 150 ई. पू. का माना जाता है। महाभाष्य में पाटलिपुत्र का अनेकशः उल्लेख कर ये अपना अभिजन पाटलिपुत्र ही को प्रकट करते हैं।

पतञ्जलि की उत्पत्ति के विषय में एक कथा प्रचलित है कि — महासती गोणिका ने पुत्र की प्राप्ति के लिए भगवान शंकर की आराधना की थी। जब वह नदी के जल में खड़ी होकर सूर्य को अर्घ्य दे रही थी उसी समय उनकी अञ्जलि में छोटा सा सर्प का बच्चा प्रकट हुआ। उसको देखकर गोणिका बोली —"को र्भवान्" शेष बोला — सप्पोऽहम्। गोणिका ने कहा — रेफःक्व गतः? शेष ने कहा — त्वयाऽपहृतः। इसके बाद उस शेष को बालक के रूप में गोणिका ने पाला। वही बालक शेषावतार माना गया।

जयादित्य वामन–पाणिनि कात्यायन एवं पतञ्जलि के योगदान के कारण पाणिनि की अष्टाध्यायी के सुव्यवस्थित हो जाने पर व्याडि कुण आदि ने भिन्न भिन्न टीकाएँ लिखीं। अष्टाध्यायी की व्याख्याओं में महापण्डित जयादित्य एवं वामन की 'काशिकावृत्ति' व्याख्या आज भी सम्पूर्णतः उपलब्ध है तथा बाद की व्याख्याओं की आधार है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जयादित्य एवं वामन ने काशिकावृत्ति की रचना 650 से 700 ई. के मध्य की थी, ऐसा माना जाता है। काशिका के प्रथम पाँच अध्यायों की रचना जयादित्य ने की तथा शेष तीन अध्यायों की रचना वामन ने की। इन दोनों के द्वारा रचित होने के कारण काशिकावृत्ति के रचयिता के रूप में 'जयादित्य वामन' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। इस व्याख्या में उदाहरण, प्रत्युदाहरण आदि प्राचीन ग्रन्थों से भी लिये गये तथा ग्रन्थकार ने स्वबुद्ध्या भी उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण आदि लिखे। काशिका की अनेक व्याख्यायें इसके महत्त्व को प्रकट करती हैं। काशिकाविवरणपञ्जिका (न्यास) तथा हरदत्त कृत पदमञ्जरी टीका तो काशिका की व्याख्या के लिए ही लिखी गई।

भर्तृहरि--महाभाष्यकार पतञ्जलि के बाद वैयाकरणों में सर्वाधिक आदरणीय नाम है भर्तृहरि का। भर्तृहरि महावैयाकरण और महान् दार्शनिक थे। स्फोटायन आदि ने व्याकरण के स्फोटादि सिद्धान्त का प्रतिपान किया होगा किन्तु उसका प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। भर्तृहरि ने ही सर्वप्रथम पाणिनीय व्याकरण को दार्शनिक रूप दिया, यह निर्विवाद कहा जा सकता है। आचार्य्र भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' नामक ग्रन्थ लिखा तथा इस पर 'स्वोपज्ञ' नामक टीका भी लिखी। व्याकरण-दर्शन का यह ग्रन्थ आदि ग्रन्थ है, ऐसा भी हम कह सकते हैं। वाक्यपदीय में आगम, वाक्य, और प्रकीर्ण ये तीन काण्ड हैं। इस ग्रन्थ में भर्तृहरि ने स्फोटवाद तथा विवर्तवाद का प्रतिपादन किया है। प्रथम काण्ड ब्रह्मकाण्ड के नाम से भी जाना जाता है। इसमें व्याकरण और व्याकरण-दर्शन के सिद्धान्तों का तात्विक विवेचन है। पद और वाक्य के सम्बन्ध के सम्बन्ध में जैसा विवेचन इस ग्रन्थ में है, वैसा अन्य भाषा के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है।

भर्तृहरि ने महाभाष्य पर महाभाष्यदीपिका नामक टीका भी लिखी। प्रदीपकार कैयट ने स्वीकार किया है कि "मैंने भर्तृहरि की टीका रूपी सेतु पर चढ़कर ही महाभाष्य रूपी समुद्र को पार करने का प्रयास किया है।" ("हरिबद्धेन सारेण ग्रन्थसेतुना" इत्यादि)

युधिष्ठिर मीमांसक प्रभृति इनका काल 420 विक्रम संवत् मानते हैं। कुछ लोगों ने इसका समय 400 ई. के आसपास माना है। शतकत्रय शृंगारशतक, नीतिशतक तथा वैराग्यशतक के निर्माता भी भर्तृहरि ही है। परन्तु शतकत्रय का निर्माता भर्तृहरि ही व्याकरण शास्त्र के वाक्यपदीय ग्रन्थ का रचनाकार है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

भट्टोजिदीक्षित--सिद्धान्तकौमुदी के रचयिता भट्टोजिदीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर तथा गुरु का नाम शेषकृष्ण था। ये काशी में रहते थे। इनका समय 16वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध माना जाता है। ये व्याकरणशास्त्र के अतिरिक्त वेदान्त धर्मशास्त्र और मीमांसा के निष्णात विद्वान् थे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मुख्य रचना--इनकी मुख्य रचना सिद्धान्त-कौमुदी है। इनको समझने के लिए स्वयं ग्रन्थकार ने प्रौढ़मनोरमा नामक वृत्ति लिखी जो आज अन्यत्र पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती है। दूसरी रचना 'शब्दकौस्तुभ' ग्रन्थ है जो कि अनुपलब्ध है। सिद्धान्तकौमुदी मुनित्रय के व्याकरण सिद्धान्तों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करने वाला ग्रन्थ हैं। इसमें ग्रन्थकार ने महाभाष्य के सार-तत्त्व को समेटकर पिनद्ध कर दिया है। अतएव कहा गया है कि—

कौमुदी यदि आयाति वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यदि नायाति वृथा भाष्ये परिश्रमः॥

तथा "कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः"।

इस ग्रन्थ ने इतनी ख्याति प्राप्त की कि इसके पूर्ववर्ती प्रक्रिया ग्रन्थ अध्ययन-अध्यापन से बाहर हो गये। "बालमनोरमा" प्रामाणिक टीका ने इस ग्रन्थ को और अधिक सुग्राह्य बना दिया। ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का ही यह महत्त्व है कि आज भी सैकड़ों विद्वान् इस ग्रन्थ पर टीकायें लिख रहे हैं।

वरदराजः—आचार्य वरदराज दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम दुर्गातनय तथा गुरु का नाम भट्टोजिदीक्षित था। भट्टोजि दीक्षित के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम वरदराज का है। आज कौन ऐसा है जो लघुकौमुदी एवं वरदराज को नहीं जानता। अपने गुरु की सिद्धान्तकौमुदी को और अधिक सरल रूप में प्रस्तुत करने के लिए वरदराज ने लघुकौमुदी तथा मध्यसिद्धान्तकौमुदी का सम्पादन किया। जटिल तथा बालकों के शीघ्र ज्ञान में बाधक कुछ सौ सूत्रों को कम करके इन्होंने दोनों पुस्तकों को रचा। सिद्धान्त कौमुदी के प्रकरणक्रम से हटकर मनोवैज्ञानिक आधार पर इन्होंने क्रम का पुनर्निर्धारण किया। वस्तुतः वरदराज ने अपने गुरु की आज्ञा से ही सिद्धान्त कौमुदी में प्रवेश के लिए दो सोपान ग्रन्थ के रूप में लघु कौमुदी तथा मध्यसिद्धान्तकौमुदी की रचना की। इनका यह योगदान अत्यन्त प्रशंसनीय है। स्वयं उन्होंने लिखा है कि—

नत्वा वरदराजः श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान्।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम्॥

काल—वरदराज का काल 17वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध रहा है। लघुकौमुदी की रचना के बाद प्रायः 1750 ई. में मध्यसिद्धान्तकौमुदी को संकलित किया। वस्तुतः वरदराज ही वह व्यक्ति है जिन्होंने पाणिनि व्याकरण को अपने सम्पादन द्वारा लोकप्रिय व सुग्राह्य बना दिया।

नागेशभट्ट—नव्यव्याकरण पढ़ने वाला कौन ऐसा होगा जो नागेश भट्ट का नाम नहीं जानता होगा। नव्य व्याकरण एवं नागेश भट्ट एक तरह से पर्याय है। नागेश भट्ट भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम 'शिवभट्ट' तथा माता का नाम 'सती'

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

देवी था। लघुशब्देन्दुशेखर के मङ्गलाचरण में नागेश ने माता-पिता का उल्लेख किया है--

पातञ्जले महाभाष्ये कृतभूरि परिश्रमः।
शिवभट्टसुतो धीमान् सतीदेव्यास्तु गर्भजः॥इत्यादि।

भट्टोजिदीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित इनके गुरु थे। व्याकरण शास्त्र को इनका बहुत बड़ा योगदान है। इन्होंने लघुशब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, वैयाकरणसिद्धान्तमंजूषा, परमलघुमंजूषा आदि, प्रसिद्ध एवं प्रौढ़ व्याख्यान ग्रन्थ लिखे। महाभाष्य पर 'उद्योत' नामक टीका लिखी। भर्तृहरि व कौण्ड भट्ट के बाद व्याकरण की दार्शनिक परम्परा में उनका अत्यधिक योगदान है। न केवल व्याकरण, अपितु धर्मशास्त्र, साहित्य, योग, आदि शास्त्रों के वे प्रकाण्ड विद्वान् थे। लगभग सभी शास्त्रों पर इन्होंने अपनी लेखनी चलाई।

काल--नागेश भट्ट का काल युधिष्ठिर मीमांसक जी के अनुसार विक्रम संवत् 1730-1810 के मध्य माना जाता है।

व्याकरणशास्त्रोपयोगी पारिभाषिकशब्द

व्याकरणम्--"व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्।" जिस शास्त्र द्वारा शब्दसाधुत्व का प्रतिपादन किया जाये वह व्याकरण शास्त्र है। महाभाष्य के अनुसार "लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्" यह लक्षण है। लक्ष्य = उदाहरण। लक्षण = सूत्र।

सूत्रम्-- **अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम्।**
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अल्प अक्षर वाला, सन्देह रहित, सारवान्, सर्वतोभावेन प्रभावी, दोषरहित, एवं अनिन्द्य रचना को सूत्र को जानने वाले सूत्र कहते हैं। सूत्र छः प्रकार के हैं—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

संज्ञासूत्र--संज्ञा एवं संज्ञी का ज्ञान कराने वाले सूत्र संज्ञा सूत्र हैं। जैसे वृद्धिरादैच्, अदेङ् गुणः इत्यादि।

परिभाषा सूत्र--"अनियमे नियमकारिणी परिभाषा"। अनियम की स्थिति में नियम की व्यवस्था करने वाला सूत्र परिभाषा सूत्र है। जैसे — तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य। अलोन्त्यस्य इत्यादि। सुधी + उपास्यः में इको यणचि से धी के ई को तथा सु के उ को भी यण् प्राप्त होता है, किन्तु 'तस्मिन्निति' परिभाषा सूत्र अच् से अव्यवहित पूर्व के इक् को यण् हो, ऐसी व्यवस्था देता है। अतः सु के उ को यण् नहीं होता है।

विधिसूत्र--"कार्यादि का विधान करने वाला सूत्र विधि सूत्र है"। "आदेशादिविधायकं सूत्रं विधिसूत्रम्।" जैसे आद्गुणः, वृद्धिरेचि, इको यणचि आदि।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नियमसूत्रम्—"प्राप्तस्य विधेः नियामकं सूत्रं नियमसूत्रम्"। प्राप्तविधि के विषय में नियम करने वाला सूत्र नियमसूत्र होता है। जैसे — रात्सस्य। क्रोष्टुर्स् इस दशा में संयोगान्तस्य लोपः से ही 'स्' का लोप, 'र' को विसर्ग कर 'क्रोष्टुः' प्रयोग बन सकता था। फिर भी यहाँ स् का लोप करने के लिए 'रात्सस्य' सूत्र जो बना, वह अपनी सार्थकता के लिए नियम करता है कि "रेफ से परे यदि संयोगान्त का लोप हो तो स् का ही हो, अन्य का नहीं"। इस तरह रात्सस्य यह नियम सूत्र हुआ।

अतिदेशसूत्रम्—"अतस्मिन् तद्धर्मापादकं सूत्रम् अतिदेशसूत्रम्"। जो वस्तु वैसा नहीं है (वस्तु की विद्यमानता न होने पर भी) उसमें वैसे धर्म का (उसके धर्म का) आरोप करने वाला सूत्र अतिदेशसूत्र होता है। जैसे — स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ। राम + य इस दशा में विद्यमान य में सुप् का धर्म नहीं है, किन्तु स्थानिवत् सूत्र द्वारा इसमें सुप् धर्म लाया जाता है, तथा य को सुप् मान कर 'सुपि च', से दीर्घ कर रामाय बनाया जाता है।

अधिकारसूत्रम्—"उत्तरोत्तरसूत्रेषु स्वघटकपदसमर्पकं सूत्रम् अधिकारसूत्रम्"। आगे के सूत्रों में किसी पूर्वसूत्र के पद को ले जाना अधिकार सूत्र है। जैसे स्त्रियाम्, कारके, इत्यादि। स्त्रीप्रत्यय प्रकरण में स्त्रीप्रत्यय विधायक सूत्रों में 'स्त्रियाम्' (स्त्रीलिङ्ग में) का अधिकार हो जाता है। तथा 'कारके' का कर्म, करण आदि विधायक सूत्रों में अधिकार जाता है।

वार्तिकम्—

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्तिकज्ञाः विचक्षणाः॥

जिस वाक्य में सूत्र में उक्त, अनुक्त या दुरुक्त (असमीचीन कथन) की चिन्ता (विचार) की जाये उस ग्रन्थ (वाक्य) को वार्तिकज्ञ विद्वान् वार्तिक कहते हैं।

भाष्यम्—

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥

जिस ग्रन्थ में सूत्र में आये हुए पदों से सूत्रार्थ का वर्णन किया जाता है, तथा ग्रन्थकार अपने द्वारा पद प्रस्तुत कर उनका वर्णन करता है उस ग्रन्थ को भाष्य के जानकार लोग भाष्य कहते हैं।

व्याख्यानम्—महाभाष्यकार 'पतञ्जलि' ने व्याख्यान का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि "न केवलं चर्चापदानि व्याख्यानं, किन्तर्हि ? उदाहरणं प्रत्युदाहरणं वाक्याध्याहारः इत्येतत् समुदितं व्याख्यानं भवति"। इसी भाव को श्लोक में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पदच्छेदः पदार्थोक्तिः विग्रहो वाक्ययोजना।

आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम्॥

अर्थात् पदच्छेद करना, जैसे वृद्धिः आत् ऐच = वृद्धिरादैच्, पदार्थोक्ति = पदार्थ का कथन, जैसे - वृद्धिः = संज्ञा, आत् = आ, ऐच = ऐ, औ।

विग्रह = विग्रह प्रदर्शित करना, जैसे वृद्धिरादैच् में आदैच् पद का विग्रह 'आत् च ऐच् च इति समाहार द्वन्द्वः' को दिखाना।

वाक्ययोजना—जैसे वृद्धिरादैच् में आत् एवं ऐ औ वृद्धि संज्ञक हैं।

आक्षेपः—आक्षेप करना। नियम है कि **"उद्देश्यवचनं पूर्व विधेयं तु ततः परम्"**। अर्थात् उद्देश्य का कथन पहले एवं विधेय का कथन बाद में होना चाहिए। इस नियम के अनुसार वृद्धिरादैच् सूत्र में उद्देश 'आदैच्' का कथन पहले होना चाहिए, तथा 'वृद्धिः' इस विधेयं का कथन बाद में होना चाहिए। पाणिनि ने उल्टा क्रम कैसे लिखा? यह आक्षेप यहाँ पर किया जाता है।

समाधानम्— आक्षेप = आपत्ति का युक्ति - युक्त उत्तर देना ही समाधान है। जो आक्षेप वृद्धिरादैच् सूत्र पर हुआ है, महाभाष्यकार ने उस आक्षेप का समाधान करते हुए कहा है कि सूत्र में वृद्धि पद को मंगल के लिए मानकर आचार्य पाणिनि ने विधेय का प्रथम प्रयोग कर दिया है।

कारकम्—"क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्" अथवा "क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्"। यह कारक का लक्षण है। क्रिया में जिसका साक्षात् अन्वय हो, या जो क्रिया का जनक उत्पादक हो वह कारक है। कारक छः है—

कर्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।

अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

सम्बन्ध = षष्ठी को कारक नहीं मानते हैं, क्योंकि इनका न तो क्रिया में अन्वय होता है और न ही यह क्रिंया का उत्पादक है। सम्बोधन को भी उपर्युक्त कारणों से कारक नहीं माना जाता है।

सुप्— 'सु औ जस्' से लेकर 'ङि ओस् सुप्' के प् तक 21 प्रत्यय सुप् कहलाते हैं। ये जिनके अन्त में होंगे वे सुबन्त कहलाते हैं। जैसे — रामः, रामाय, वनम्, स्त्री इत्यादि।

तिङ्—तिप् तस् झि के ति से लेकर इट् वहि महिङ् के ङ् तक 18 प्रत्यय तिङ् कहलाते हैं, तथा ये जिनके अन्त में होंगे वे तिङन्त कहलाते हैं। जैसे पठति, पठतु, अपठत्, पठेत् इत्यादि।

विभक्ति—सुप् एवं तिङ् को विभक्ति कहते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपदेशः—आचार्यों ने सूत्रपाठ, गणपाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ, लिङ्गानुशासन, वार्तिकपाठ, आगम, प्रत्यय और आदेश को उपदेश कहा है। "उपदेश आद्योच्चारणम्" यह भट्टोजिदीक्षित का मत है।

उपदेश को बताने के लिए श्लोक—

धातुसूत्रगणोणादिवाक्यलिङ्गानुशासनम्।
आगमाः प्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥

एक अन्य मत है—

प्रत्ययाः शिवसूत्राणि आदेशा आगमास्तथा।
धातुपाठो गणपाठ उपदेशाः प्रकीर्तिताः॥

आगम—जो अवयव बनकर आता है, उसे आगम कहते हैं। (मित्रवत् आगमाः भवन्ति) जैसे — सन् + अच्युतः में नुट् का आगम कर सन्नच्युतः बनता है।

आदेश—आदिश्यते इति आदेशः। शत्रुवदादेशः। जो किसी स्थानी को हटाकर आता है, वह आदेश है। आदेश को शत्रुवत् मानते हैं। जैसे — कृष्णाय में कृष्ण + ङे इस दशा में ङे को हटाकर 'ङेर्यः' ने य कर दिया।

निपात—द्रव्यार्थक से भिन्न च, वा इत्यादि निपात है। ये अव्यय होते हैं, अतः इनमें विभक्ति नहीं दिखती है।

अव्यय—जिस शब्द में किसी प्रकार का विकार न आवे वह अव्यय है। अर्थात् सभी विभक्तियों, वचनों एवं लिङ्गों में जिसमें परिवर्तन न हो वह अव्यय है। जैसे -- यत्र, अतः, तदा, इत्यादि।

निपातन—जो कार्य विहित नियम के बिना ही हो जाता है, उसे निपातन कहते हैं।

लक्षणं विनैव निपतति, प्रवर्तते लक्ष्येषु, इति निपातनम्।

जैसे 'मयूरव्यंसकादयश्च' इत्यादि से होने वाला समास नपातन से माना जाता है। इसके अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

प्रत्याहार—प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णाः यस्मिन् स प्रत्याहारः। जिसमें वर्णों का संक्षिप्तीकरण किया जाता है वह प्रत्याहार है। पाणिनीय व्याकरणशास्त्र में निम्नलिखित 42 प्रत्याहारों का उपयोग होता है। क्रम से ये हैं—

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रम संख्या	प्रत्याहार	प्रत्याहार के अन्दर आने वाले वर्ण	उदाहरण के सूत्र
१.	अण्	अ इ उ।	ढ्रूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ३ ।३ ।१११
२.	अक्	अ इ उ ऋ लृ।	अकः सवर्णे दीर्घः ६ ।१ ।१०१
३.	अच्	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।	इको यणचि ६ ।१ ।७७
४.	अट्	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य् व् र्।	शश्छोऽटि ८ ।४ ।६३
५.	अण्	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य् व् र् ल्।	अणुदत्सिवर्णस्य चाप्रत्ययः १ ।१ ।६९
६.	अम्	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न्।	पुमः खय्यम्परे ८ ।३ ।६
७.	अश्	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्।	भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि ८ ।३ ।१७
८.	अल्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स् ह्।	अलोऽन्त्यस्य १ ।१ ।५२
९.	इक्	इ उ ऋ लृ।	इको यणचि ६ ।१ ।७७
१०.	इच्	इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।	नादिचि ६ ।१ ।१०४
११.	इण्	इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य् व् र् ल्।	इणः षः ८ ।३ ।३९
१२.	उक्	उ ऋ लृ।	उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७ ।१ ।७०
१३.	एच्	ए ओ।	एङः पदान्तादति ६ ।१ ।१०९
१४.	एच्	ए ओ ऐ औ।	एचोऽयवायावः ६ ।१ ।७९

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रम संख्या	प्रत्याहार	प्रत्याहार के अन्दर आने वाले वर्ण	उदाहरण के सूत्र
१५.	ऐच्	ऐ औ।	वृद्धिरादैच् १।१।१
१६.	हश्	ह् य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्।	हशि च ६।१।११४
१७.	हल	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् ह।	हलन्त्यम् १।३।३
१८.	यण्	य् व् र् ल्।	इको यणचि ६।१।७७
१९.	यम्	य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न्।	हलो यमां यमि लोपः ७।४।६४
२०.	यञ्	य्, व्, र् ल्, ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ।	अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१
२१.	यय्	य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प्।	अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ७।४।५७
२२.	यर्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा श् ष् स।	यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ७।४।४५
२३.	वश्	व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द।	नेड् वशि कृति ७।२।८
२४.	वल्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प श् ष् स ह्।	लोपो व्योर्वलि ६।१।६६
२५.	रल्	व् को छोड़कर शेष सभी पूर्वोक्त वर्ण।	रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६
२६.	मय्	म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख फ् छ् ठ् थ च ट् त् क् प्।	मय उञो वो वा ८।३।३३
२७.	ङम्	ङ् ण् न।	ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम ८।२।३२

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्रम संख्या	प्रत्याहार	प्रत्याहार के अन्दर आने वाले वर्ण	उदाहरण के सूत्र
२८.	झष्	झ भ् घ् ढ् ध्।	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य ध्वोः
२९.	झश्	झ भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्।	झलां जश् झशि ८।४।५३
३०.	झय्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प्।	झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२
३१.	झर्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा श् ष् स्।	झरो झरि सवर्णे ८।४।६५
३२.	झल्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा ह्।	झलो झलि ८।१।२६।
३३.	भष्	भ् घ् ढ् ध्।	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७
३४.	जश्	ज् ब् ग् ड् द्।	झलां जश् झशि ८।४।५३
३५.	बश्	ब् ग् ड् द्।	एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८।२।३७
३६.	खय्	ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प्।	पुमः खय्यम्परे ८।३।६
३७.	खर्	पूर्वोक्त सभी वर्ण तथा श् ष् स्।	खरि च ८।४।५५
३८.	छव्	छ् ठ् थ् च् ट् त्।	नश्छव्यप्रशान् ८।३।७
३९.	चय्	च् ट् त् क् प्।	चयो द्वितीयाः शरि पोष्करसादेरिति वाच्यम् (वा.)
४०.	चर्	च् ट् त् क् प् श् ष् स्।	अभ्यासे चर्च ८।४।५४
४१.	शर्	श् ष् स्।	शरोऽचि ८।४।४९
४२.	शल्	श् ष् स् ह्।	शल इगुपधादनिटः क्सः ३।१।४५

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यसिद्धान्तकौमुदी
(मध्यमनोरमा मध्यमनोरमापूरणी इति संस्कृतटीकाद्वयसमलङ्कृता)

अथ संज्ञाप्रकरणम्

नत्वा वरदराजः श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान् ।
करोति पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

मध्यमनोरमा

ओं श्रीगणेशाय नमः ।

महेश्वरं नमस्कृत्य पाणिन्यादीन् गुरूनपि ।
करोमि मध्यकौमुद्याः व्याख्यां मध्यमनोरमाम् ॥

ग्रन्थारम्भे विघ्नविघाताय कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति, **नत्वेति-** वरदराजनामा ग्रन्थकारः पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदीं करोति । पाणिनिना प्रोक्तानि सूत्राणि पाणिनीयानि, तेषां सिद्धान्तानां कौमुदीव प्रकाशिकेत्यर्थः । मध्या नातिविस्तरा नातिसंक्षिप्ता च, तां, तथा च पाणिनिप्रोक्तसूत्रसम्बन्धिनीं मध्यसिद्धान्तकौमुदीं करोतीत्यर्थः । अथवा पाणिनिप्रोक्तं शास्त्रं पाणिनीयं, तत् अधीयते पाणिनीयाश्छात्रास्तेषां कृते इत्यध्याहार्यम् । एतेन प्रयोजनमप्युक्तं भवति । **किं कृत्वा-**श्रीगुरून् भट्टोजिदीक्षितान्नत्वा ।

मध्यमनोरमापूरणी

नत्वा चन्द्रकलोपेतमुमेशं पितरं गुरुम् ।
रचयत्यर्कनाथो मध्यमनोरमापूरणीम् ॥

ग्रन्थारम्भे ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च कृतं मङ्गलं विघ्नविनाशकं भवतीति शिष्टोक्तत्वादादौ मङ्गलाचरणं विधीयते, शिष्यशिक्षायै च । **नत्वेति-**श्रीवरदराजो नामा विद्वान्, श्रीगुरुन् = श्रिया युक्तो गुरुः श्रीगुरुः, तान् भट्टोजिदीक्षितान् = एतन्नामकान् प्रथितव्याकरणविदुषः (आदरार्थे बहुवचनम्) नत्वा = प्रणम्य, पाणिनीयानाम् = पाणिनिना प्रोक्तानि सूत्राणि, पाणिनीयानि, तानि अधीयते इति पाणिनीयाश्छात्राः, तेषां कृते, मध्यसिद्धान्तकौमुदीं करोति, रचयतीत्यर्थः। सिद्धान्तानां कौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, मध्या च सिद्धान्तकौमुदी मध्यसिद्धान्तकौमुदी ताम् । कौमुदीव इयं कौमुदी प्रकाशिका, केषामिति चेत् सिद्धान्तानाम् = वादिप्रतिवादिभ्यां निर्णीतोऽर्थः सिद्धान्तः, तेषां प्रकाशिकेयम् । मध्या नातिसंक्षिप्ता नातिविस्तृता इच्युच्यते । मध्यसिद्धान्तकौमुदीनामकग्रन्थं रचयतीति भावः ।

हिन्दी

श्री वरदराज, गुरु भट्टोजिदीक्षित को प्रणाम कर पाणिनिव्याकरण को पढ़ने वाले छात्रों के लिए मध्यसिद्धान्त-कौमुदी की रचना करते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

माहेश्वरसूत्राणि-

(१) अइउण् (२) ऋलृक् (३) एओङ् (४) ऐऔच् (५) हयवरट् (६) (७) ञमङणनम् (८) झभञ् (९) घढधष् (१०) जबगडदश् (११ खफछठथचटतव् (१२) कपय् (१३) शषसर् (१४) हल् ।

इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादिसंज्ञार्थानि । एषामन्त्या इतः । हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः । लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः ।

हकारो द्विरुपात्तोऽयमटि शल्यपि वाञ्छता ।
अर्हेणाधुक्षदित्यत्र द्वयं सिद्धंभविष्यति ॥

१. हलन्त्यम् १।३।३।। उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम् । सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ।

मध्यमनोरमा

अइउण्-असन्धिः सौत्रः । **अणादिसंज्ञार्थानीति**—अण् आदिर्यासां ताः, अणादयः संज्ञाः अर्थः प्रयोजनं येषां तानि अणादिसंज्ञार्थानि । **एषामिति**-एषां सूत्राणामन्त्या णकारादयः इतः इत्संज्ञकाः हलन्त्यमिति सूत्रेण, लणितिसूत्रे अकारश्च इत्संज्ञकः, उपदेशेऽजनुनासिक इति सूत्रेण । ननु सर्वे वर्णाः सकृदुच्चारिता हकारस्तु बारद्वयं पठितस्तत् किमिति इत्यत आह- **हकार इति**- अयं हकारः अटि अट्प्रत्याहारे शलि शल्प्रत्याहारे च वाञ्छता आचार्येण अर्थात् हकारमिच्छता आचार्येण द्विरुपात्तः । हयवरडित्यत्र एको हकारः, हलित्यत्र द्वितीयः । तत्र प्रथमो हकारः अट्प्रत्याहारे हकारग्रहणार्थः, द्वितीयः शल् प्रत्याहारे । तत्र अटि हकारग्रहणस्य प्रयोजनमाह **अर्हेणेति**- अर्हशब्दस्य तृतीयैकवचने टा इत्यस्येनादेशे गुणे च कृते अट्कुप्वाङिति सूत्रेण अटा व्यवधाने विधीयमानं णत्वं हकारव्यवधानेऽपि भवति ।

मध्यमनोरमापूरणी

इति माहेश्वराणीति—महेश्वरात् एतन्नामकात् वैयाकरणात्, शिवात् वा आगतानि माहेश्वराणि । महेश्वरप्रोक्तानि इति भावः । **अणादिसंज्ञार्थानि**—अणादिसंज्ञाः अर्थः = प्रयोजनं येषां तानि अणादिसंज्ञार्थानि । प्रत्याहार निर्माणाय अइउण् इत्यादिसूत्राणि सन्ति । **हकारादिष्विति** —हयवरट् इत्यादिषु हकारादिव्यञ्जनेन सह उच्चारितोऽकारः केवलमुच्चारणाय वर्तते । स्वरं विना व्यञ्जनोच्चारणं न सम्भवत्यतः । **लण्मध्ये इति**—लण्सूत्रस्योऽकारः इत्संज्ञकः, तेन रप्रत्याहारः सिद्ध्यति ।

हिन्दी

इति माहेश्वराणि—उपर्युक्त चौदह सूत्र महेश्वर (शिव) की कृपा से प्राप्त हैं तथा अण् आदि प्रत्याहार निर्माण के लिए हैं । इन सूत्रों के अन्तिम अक्षर इत्संज्ञक हैं । हयवरट् इत्यादि सूत्रों में अकार उच्चारणमात्र के लिए हैं । किन्तु लण् सूत्र के मध्य का अकार इत्संज्ञक है । ('र' प्रत्याहार की सिद्धि लण् के इत्संज्ञक अ से होती है ।) अट् और शल् प्रत्याहार में हकार के पाठ के लिए हयवरट् और हल् सूत्र में दो बार 'ह' का पाठ हुआ हैं । अट् में ह के पाठ से अर्हेण में णत्व तथा शल में 'ह' के पाठ से अधुक्षत् में शल इगुपधा. से क्स होते हैं । १- हलन्त्यम्- उपदेश में अन्त्य हल् की इत्यसंज्ञा हो। ग्रन्थकार पाणिन्यादि का प्रथम उच्चारण **उपदेश** कहलाता है । सूत्रार्थ के समय सूत्र में अदृष्ट पद की अन्यसूत्र से अनुवृत्ति कर लेनी चाहिए ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२. अदर्शनं लोपः १।१।६० प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

३. तस्य लोपः १।३।९।। तस्येतो लोपः स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

४. आदिरन्त्येन सहेता- १।१।७१।।

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् । यथा अण् इति अइउ- वर्णानां संज्ञा । एवम् अच् हल् अल् इत्यादयः ।

५. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः-१।२।२७।।

उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः, वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद्- ह्रस्वदीर्घप्लुत संज्ञः स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ।

मध्यमनोरमा

हयवरडित्यत्र हकाराभावे हकारस्याट्प्रत्याहारे ग्रहणं न स्यात् । ततश्चार्हेणेत्यत्र णत्वं न सिद्ध्येत् । दुह् प्रपूरणे, लुङ्, च्लि लुङि, शल इगुपधादिति च्लेः क्सादेशः शलन्ताद्धातोर्विधीयते, स दुह्धातोः परस्य च्लेर्भवति, होढः इति सूत्रेण हकारस्य ढकारादेशे एकाच इति भष्भावे षढोः कः सि इति कादेशककारात् परीभूतस्य सकारस्यादेशप्रत्यययोरिति षत्वे कषसंयोगे क्षः । हलिति सूत्रस्थहकाराभावे शल्प्रत्याहारे हकारग्रहणं न स्यात् । ततश्च दुह्धातोः शलन्तत्वाभावात् ततः परस्य च्लेः क्सो न स्यात् । **इत्यत्रेति**— अस्मिन् द्विरुपादाने सति अर्हेण अधुक्षदिति द्वयं सिद्धं भविष्यतीत्यन्वयः । **आद्येति**-आद्यमुच्चारणमित्यर्थः । **सूत्रेष्विति**-यथा हलन्त्यमिति सूत्रे उपदेशेऽजनुनासिक इदिति सूत्रादुपदेशे इदिति च पदद्वयमनुवर्तते । एवमन्यत्रापि । **प्रसक्तस्य**- उच्चारणप्रसङ्गवतः, एतच्च स्थानेऽन्तरतम इति सूत्रात् स्थाने ग्रहणानुवृत्त्या लभ्यते । **अन्त्येनेति**—अन्त्येनेत्संज्ञकेन णकारेण सहितः आदिरकारः अण् इति मध्यगस्य अइउण् इति सूत्रेऽकारणकारयोर्मध्यगस्य इकारस्य उकारस्य च संज्ञाग्राहकः । स्वपदेन संज्ञास्वरूपं, तच्च आद्यन्तरूपं वर्णद्वयात्मकम् । तत्रादिरेव स्वपदेन ग्राह्यः । स्वपदस्य सर्वनामतया सर्वनाम्नामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शित्वात्, प्रधानञ्चात्रादिरेव । अन्त्येनेति अप्रधानतृतीयानिर्देशेनान्त्यस्याप्रधानत्वात् । **एवमच्**—ऐऔच्-सूत्रे अन्त्येनेत्संज्ञकेन चकारेण सहितः आदिरकारः अच् इति मध्यगानाम् = अइउण् इत्यादि

हिन्दी

२. उच्चारण प्राप्त का अदर्शन होना लोप है ।

३. जिसकी इत्संज्ञा होती है उसका लोप होता है ।

४. अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण के साथ उच्चारित आदि अक्षर दोनों के मध्य में आए वर्णों की संज्ञा होते हैं तथा स्वयं की भी संज्ञा (बोधक) होता है । यथा- अण् अच् इत्यादि ।

५. एकमात्रा वाले दो मात्रा वाले तथा तीन मात्रावाले उकार के समान उच्चारण काल वाले अच् को क्रमशः ह्रस्व दीर्घ व प्लुत संज्ञाएँ होती हैं । इस तरह अच् ह्रस्व दीर्घ प्लुतभेद से तीन प्रकार का हुआ । वही अच् पुनः उदात्तादि भेद से तीन प्रकार का हुआ ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६. उच्चैरुदात्तः १।२।२९॥ ताल्वादिसभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽज् उदात्तसंज्ञः स्यात् ।

७. नीचैरनुदात्तः १।२।३०॥ ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषु अधोभागे निष्पन्नोऽजनुदात्तसंज्ञः स्यात् ।

८. समाहारः स्वरितः १।२।३१॥ उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन् सोऽच् स्वरितसंज्ञकः स्यात्॥ स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

मध्यमनोरमा

सूत्रेष्वकारचकारयोर्मध्यस्थितानाम् इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ वर्णानां संज्ञा, स्वस्य अकारस्य संज्ञा । प्रत्याहारेषु इत्संज्ञकानां मध्यगानां न ग्रहणम् । तेषां तस्य लोप इति सूत्रेण लोपात् । एतदर्थमेवात्र हलन्त्यमिति सूत्रानन्तरं तस्य लोप इति सूत्रं लिखितम् । उच्चारणसामर्थ्यात्तु प्रत्याहारस्वरूपघटकानामन्त्यानां प्रत्याहारग्रहणकालेऽवस्थानम् । एवमेव हलादयः प्रत्याहाराः ग्राह्याः । **ऊकालः**—ऊश्चेति एकमात्रद्विमात्रत्रिमात्राणां द्वन्द्वः, तेषामकः सवर्णे इति द्वयोर्द्वयोर्दीर्घः । ततो जस्, ततो यणादेशे व इति ऊशब्दस्य प्रथमाबहुवचनम् । तस्य ऊपदस्य कालपदेन सह बहुव्रीहिः । ऊपदेन ऊकारोच्चारणकालः, तथा च ऊकाल इत्यस्य ऊकारोच्चारणकाल इव कालो यस्येत्यर्थः । तत्रोकारोच्चारणे यावान् कालस्तत्तुल्यो यस्योच्चारणकालः स ह्रस्वः । ऊकारोच्चारणे यावान् कालस्तत्तुल्यो यस्योच्चारणकालः स दीर्घः। ऊ३कारोच्चारणे यावान् कालस्तत्तुल्यो यस्योच्चारणकालः स प्लुतः । तदेतद् व्याचष्टे- **वामिति**–वाम् एकमात्रद्विमात्रत्रिमात्रोकाराणां काल इव उच्चारणकाल इव कालः उच्चारणकालो यस्येत्यर्थः। सूत्रस्थस्य ऊकाल इति बहुव्रीहिः । वां काल इव कालो यस्येति न विग्रहः, किन्तु वः कालो यस्येति, षष्ठ्यन्तवां पदस्य प्रथमान्त- कालपदस्य यतो न समासः । प्रथमान्तमनेकमन्यपदार्थे वर्तमानं समस्यते स बहुव्रीहिः भवति, न तु अप्रथमान्तं बहुव्रीहिः। क्वचिदप्रथमान्तबहुव्रीहिर्ज्ञापनात् । चक्रं पाणौ यस्येति स चक्रपाणिरिति यथा । **स इति** - स ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञकः अच् प्रत्येकम् एकैकं त्रिधा । तत्र ह्रस्वोऽपि उदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन त्रिधा । दीर्घोऽप्युदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन त्रिधा । प्लुतोऽप्युदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन त्रिधेत्यर्थः । **उच्चैरुदात्तः**-उच्चैः उच्चार्यमाणः ताल्वादिषु स्थानेषु ऊर्ध्व भागे निष्पन्न उदात्तः । **एवं नीचैरनुदात्तः**-ताल्वादिस्थानेऽध्वधोभागे निष्पन्नोऽनुदात्तः । **समाहारः स्वरितः**-उदात्तानुदात्तत्वे यस्मिन् समाह्रियेते सः स्वरितः, यस्मिन्नचि उदात्तत्वमनुदात्तत्वमुभयमस्ति तस्य प्रथमार्धभागे उदात्तत्वमुत्तरार्धभागेऽनुदात्तत्वमिति वेदे प्रसिद्धम् । स **नवविधोऽपीति**—सः अच् ह्रस्वोदात्तो ह्रस्वानुदात्तो ह्रस्वस्वरितः, दीर्घोदात्तो दीर्घानुदात्तो दीर्घस्वरितः, प्लुतोदात्तः प्लुतानुदात्तः

हिन्दी

६. तालुकण्ठआदि सभाग स्थानों के ऊर्ध्वभाग में निष्पन्न अच् को उदात्त संज्ञा होती है।

७. तालु आदि सभाग स्थानों में अधोभाग में उच्चारित अच् अनुदात्त संज्ञक है ।

८. उदात्तत्व और अनुदात्तत्व वर्ण धर्मों का एकत्रीकरण जिस अच् में होता है वह अच् स्वरित कहलाता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८॥ मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्थम् अ इ उ ऋ- एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः, लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्।
१०. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १।१।९॥ ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञः स्यात् । वा. ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ॥ अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां

मध्यमनोरमा

प्लुतस्वरितः इति नवविधःप्रत्येकमनुनासिकत्वाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा । तथाहि- ह्रस्वोदात्तानुनासिको ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः ह्रस्वानुदात्तानुनासिको, ह्रस्वानुदात्ताननुनासिकः, ह्रस्वस्वरितानुनासिको ह्रस्वस्वरिताननुनासिकः, दीर्घोदात्तानुनासिको दीर्घोदात्ताननुनासिकः, दीर्घानुदात्तानुनासिको दीर्घानुदात्ताननुनासिकः, दीर्घस्वरितानुनासिको दीर्घस्वरिताननुनासिकः, प्लुतोदात्तानुनासिकः प्लुतोदात्ताननुनासिकः, प्लुतानुदात्तानुनासिकः प्लुतानुदात्ताननुनासिकः, प्लुतस्वरितानुनासिकः प्लुतस्वरिताननुनासिक इति । **तदित्थम् इति-** तस्मादित्थममुना पूर्वोक्तप्रकारेण अ इ उ ऋ इति वर्णानां प्रत्येकमष्टादशभेदास्ते च उक्ता एव । **लृवर्णस्येति-** दीर्घीयभेदषट्काभावाद् द्वादश भेदाः। एवमेचामपि । ए ओ ऐ औ वर्णानां ह्रस्वीयभेदषट्काभावाद् द्वादशभेदाः । **तुल्यास्येति-** आस्ये भवम् आस्यम् । शरीरावयवाद्यत् । तच्च ताल्वादिस्थानं, प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः, आभ्यन्तरयत्नः । तुल्यौ आस्यप्रयत्नौ यस्य तत्तुल्यास्यप्रयत्नम् । **ऋलृवर्णयोरिति-** आ च लृवर्णश्च ऋलृवर्णौ, तयोः ऋलृवर्णयोः, ऋत्यक इति ऋकारस्य प्रकृतिभावः । विग्रहवाक्ये आ इति ऋशब्दस्य प्रथमैकवचनम् । स्थानभेदात्तुल्यास्येति सूत्रेण सवर्णसंज्ञा न प्राप्ता, साऽनेन वार्तिकेन विधीयते । **नासिका चेति-** चकारात् स्वस्ववर्गानुकूलं ताल्वादिस्थानं समुच्चीयते ।

मध्यमनोरमापूरणी

मुखनासिकेति- मुखसहिता नासिका मुखनासिका, मध्यमपदलोपिसमासः । उच्यते यः स वचनः = वर्णः, मुखनासिकया वचनः मुखनासिकावचनः । अत आह- मुखसहितनासिकया इत्यादि । उदाहरणम्- अभ्रआँ अपः । आ इत्यस्य आङोऽनुनासिक इति अनुनासिकत्वं भवति। **मुखग्रहणं किम्-** अनुस्वारस्यैव स्यात् । नासिकाग्रहणाभावे- कचटतपानामपि स्यात् ।

हिन्दी

९. मुखसहितनासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक कहलाते हैं ।
इस प्रकार अ इ ऊ ऋ वर्ण ह्रस्वदीर्घप्लुत × उदात्तअनुदात्त स्वरित × अनुनासिक निरनुनासिक भेद से अठ्टारह प्रकार के हैं । लृवर्ण बारह प्रकार के हैं, उनमें दीर्घ का अभाव है । एच् भी बारह प्रकार के हैं । एच् में ह्रस्व का अभाव है ।
१०. ताल्वादि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण के जिस वर्ण से तुल्य हों उन्हें सवर्ण संज्ञा होती है । **वा.** ऋलृवर्णों को परस्पर सवर्णसंज्ञा होती है । अ कवर्ग हकार और विसर्ग का स्थान कण्ठ है । इ चवर्ग य और श का स्थान तालु है । ऋ टवर्ग र और ष का स्थान मूर्धा है । लृ तवर्ग-ल और स का स्थान दन्त है । उ, पवर्ग व उपध्मानीय का स्थान ओष्ठ है । ञ म ङ ण और न का उच्चारणस्थान नासिका, और स्वस्ववर्ग का

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मूर्धा । लृतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य । इति स्थानानि । यत्नो द्विधा-आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा । स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम् । ईषद्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणाम् । ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्, प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव । बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा- विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति ।

खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च । हशः संवारा नादा घोषाश्च । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः । वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः। कादयो मावसानाः स्पर्शाः । यणोऽन्तस्थाः । शषशहा ऊष्माणः । अचः स्वराः।

मध्यमनोरमा

आद्य. इति—आभ्यन्तर इत्यर्थः । **ह्रस्वस्येति**—प्रयोगें उच्चारणदशायां विवृत एव । तेन दण्ड आढकमिति स्थिते ह्स्वाकारस्य दीर्घाकारस्य च विवृतरूपप्रयत्नैक्येन सावर्ण्यादकः सवर्णे इति दीर्घो भवति । अन्यथा ह्स्वाकारस्य संवृतत्त्वेन दीर्घाकारस्य च विवृतत्त्वेन प्रयत्नभेदात् सावर्ण्यं न स्यात् । तस्माद्ध्रस्वोऽकारः प्रयोगकाल एव संवृतः । तस्य कार्य्ये क्रियमाणे तु विवृतत्वमेवेति विवृतेन दीर्घाकारेण प्रयत्नैक्यात् सावर्ण्यं सिद्ध्यति । **बाह्य इति**—उदात्तानुदात्तस्वरितरूपो बाह्यप्रयत्नोऽचामेव । स च पूर्वमुक्त एव । हलां बाह्य-प्रयत्नानाह-**खरइति**-खफछठथचटतकपशषसाः खरः । हयवरल ञमङणनझभघढधजबगडदा हशः । वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमाः कचटतपाः जबगडदबाः ङञणनमाश्च, यणःयवरलाः द्वितीयचतुर्थौ खछठथफाः घझढधभाश्च ।

हिन्दी

उच्चारण स्थान भी है । ए ऐ का स्थान कण्ठ- तालु है । ओ औ का स्थान कण्ठ-ओष्ठ है । व का स्थान दन्त-ओष्ठ है । जिह्वामूलीय (≍क ≍ख) का स्थान जिह्वामूल है । अनुस्वार का स्थान नासिका है ।

यत्न दो प्रकार का है । आभ्यन्तर और बाह्य । आभ्यन्तर पाँच प्रकार का है- स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट ईषद्विवृत, विवृत और संवृत । स्पर्शवर्णो का स्पृष्ट प्रयत्न है । ईषद् स्पृष्ट अन्तःस्थ वर्णों का है । ईषद्विवृत ऊष्मावर्णो का है । विवृत प्रयत्न स्वरों का है । प्रयोग दशा में ह्रस्वअवर्ण का संवृत प्रयत्न है, तथा प्रक्रिया दशा में विवृत ही है । बाह्य यत्न ग्यारह हैं- विवार संवार श्वास नाद घोष अघोष अल्पप्राण महाप्राण उदात्त अनुदात्त और स्वरित । (उदात्त अनुदात्त व स्वरित केवल अचों का यत्न है) खर् वर्णों के विवार श्वास अघोष प्रयत्न होते हैं । हश् प्रत्याहार के वर्णों के संवार नाद घोष प्रयत्न हैं । वर्गों के प्रथम तृतीय पञ्चम वर्ण और यरलव (यण्) के अल्पप्राण प्रयत्न हैं । वर्गो के द्वितीय चतुर्थवर्ण व शल् प्रत्याहार के वर्णों का महाप्राण प्रयत्न है । क से म तक के वर्ण स्पर्शवर्ण कहलाते हैं । यण् वर्णों को अन्तःस्थ कहते हैं । शषसह ऊष्मावर्ण हैं । अच् वर्णों को स्वर कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

≍क ≍ख इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः । ≍प ≍फ इति पफाभ्यां प्रागर्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः । 'अं' 'अः' इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

११. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः- १।१।६९॥

अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कु चु टु तु पु एते उदितः । तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथेकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः । एवं लृकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् । अनुनासिकाऽननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाऽननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ।

मध्यमनोरमा

अविधीयमान इति—विधीयमानस्तु न सवर्णग्राहकः । यथा इदम इश्-इह, अत्रेदमः स्थानिनस्त्रिमात्रतया तस्य स्थाने त्रिमात्र इकारो न भवति, विधीयमानत्वात् । एवञ्चान्यत्र सर्वत्र अण्प्रत्याहारः पूर्वणकारेणैवेत्यर्थात् सिद्धम् । **तदेवमिति-** तत्तस्मादेवं प्रकारेण अ इति पूर्वोक्तानामष्टादशभेदानां सवर्णानां संज्ञा । अकारग्रहणेन अकारस्याष्टादशभेदानां ग्रहणमित्यर्थः । अत्र प्रथमम् ऊकाल इत्यादिना अकारादीनां ह्रस्वादयोऽष्टादशभेदास्सन्तीत्युक्तम्, तेषां परस्परं सावर्ण्यं भवतीति तुल्यास्यप्रयत्नम् इति सूत्रेण कृतम्, तेषां सवर्णानामकारादिग्रहणेन ग्रहणं भवतीत्यणुदित् सवर्णस्येति सूत्रेण विधीयते । **त्रिंशत् इति-** ऋकारस्याष्टादशभेदाः लृकारस्य द्वादशेति त्रिंशद्भेदाः । तेषाम् ऋकारग्रहणेन लृकारग्रहणेन च ग्रहणं भवतीत्यर्थः । **यवला द्विधेति**—यवलाः द्विविधाः, अनुनासिका अननुनासिकाश्च ।

मध्यमनोरमापूरणी

खर इति—बाह्ययत्नेषु खर्प्रत्याहारस्थवर्णानां विवारः श्वासः अघोषश्च यत्नः । हश् वर्णानां संवारः नादः घोषश्च यत्नः । अर्थात् क च त प् ख छ ठ थ फ श ष स वर्णानाम् यत्नाः विवारश्वासाघोषाः । ग ज ड द ब घ झ ढ ध भ ङ ञ ण न मयवरलहवर्णानां संवारनादघोषयत्नाः । क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न पबमयरलववर्णानाम् अल्पप्राणोऽपि। खघछझ ठढथध फभशषसहवर्णानां महाप्राणोऽपि यत्नः ।

हिन्दी

क और ख से पूर्व ≍आधे विसर्ग सदृश वर्ण को जिह्वामूलीय कहते हैं । ≍प ≍फ में पफ से पूर्व ≍आधे विसर्ग सदृश वर्ण को उपध्मानीय कहते हैं । 'अं' और अः में अ के आगे लगे चिह्नों को क्रमशः अनुस्वार और विसर्ग कहते हैं ।

११. अविधीयमान (जिसका विधान न किया गया हो) अण् और उदित् सवर्ण के ग्राहक होते हैं । इसी सूत्र में अण् प्रत्याहार पर णकार (लण्) से बनता है । उदित कु चु टु तु पु (पाचों वर्गों के सभी वर्ण) कहलाते हैं । इस तरह (ह्रस्वादि संज्ञा होने से) अ अट्ठारह प्रकार के हैं । इकार उकार भी अट्ठारह प्रकार के हैं । ऋकार व लृकार (मिलाकर) तीस प्रकार के हैं । एच् बारह प्रकार के हैं । यवल अनुनासिक व अननुनासिक भेद से दो प्रकार के हैं । अननुनासिक यवल अनुनासिक व अननुनासिक दोनों के बोधक हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२. परः सन्निकर्षः संहिता १।४।१०९॥ वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात् ।

१३. हलोऽनन्तराः संयोमः १।१।७॥ अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसंज्ञाः स्युः।

१४. सुप्तिङन्तं पदम् । १।४।१४॥ सुबन्तं तिङन्तञ्च पदसंज्ञं स्यात् ।

इति संज्ञाप्रकरणम्

मध्यमनोरमा

तत्र चतुर्दशसूत्र्यामननुनासिका उच्चारितास्ते एवाण् प्रत्याहारान्तर्गताः, ते अनुनासिकान् स्वसवर्णान् गृह्णन्ति अणुदित् सवर्णस्येति सूत्रेण । अनुनासिकास्तु अण्प्रत्याहारेऽनन्तर्भूताः, अतो नाननुनासिकस्य ग्राहकाः । यथा अणन्तर्भूतोऽकारो दीर्घस्य ग्राहकः । अणस्तु अनन्तर्भूतो दीर्घादिर्न ह्रस्वस्य ग्राहकः इति । अत एवाह अननुनासिका इति, न अनुनासिका अननुनासिकाः, अनुनासिकभिन्ना इत्यर्थः ।

॥ इति संज्ञाप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमापूरणी

परः इति—परःइत्यस्यार्थः अतिशयः, सन्निकर्षः = सामीप्यम् । अर्थात् अर्धमात्राधिककालेन व्यवधानस्य अभावः । एवं वर्णानामर्धमात्राधिककालाऽव्यवधाने सति संहितासंज्ञा भवतीत्यर्थः **हलःइति**—अन्तरशब्दार्थः व्यवधानम् । अविद्यामानम् अन्तरं येषां ते अनन्तराः। नञोऽस्त्यर्थानामिति समासः, विद्यमानशब्दस्य लोपश्च भवति । हलः इत्यत्र हलौ च हलश्च इति एकशेषे सति सूत्रार्थो भवति- अज्व्यवधानरहितयोः द्वयोः हलोः हलां वा संयोग संज्ञा भवति इति ।

हिन्दी

१२. वर्णों की अतिशय समीपता (आधी मात्रा के उच्चारण काल से अधिक काल के व्यवधानाभाव) को संहिता कहते हैं ।

१३. अचों के व्यवधान से रहित हल् (दो या अधिक हल् को) को संयोग संज्ञा होती है।

१४. सुबन्त और तिङन्त शब्द को पद संज्ञा होती है ।

॥ इति संज्ञाप्रकरण ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ अच्सन्धिप्रकरणम्

१५. इको यणचि- ६।१।७७।। इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुधी उपास्य इति स्थिते ।

१६. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य- १।१।६६।। सप्तमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य पूर्वस्य ज्ञेयम् ।

१६. स्थानेऽन्तरतमः १।१।५०।। प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः स्यात् । सुध्य् उपास्य इति जाते ।

१८. अनचि च ८।४।४७।। अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धस्य द्वित्वम् ।

१९. झलां जश् झशि ८।४।५३।। झलां जश् स्यात् झशि परे । इति पूर्वधस्य दः ।

२०. संयोगान्तस्य लोप :- ८।२।२३।। संयोगान्तं यत् पदं तस्य लोपः स्यात्।

२१. अलोऽन्त्यस्य । १।१।५२।। षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते ।

वा. यणः प्रतिषेधो वाच्यः ।। सुद्ध्युपास्यः । मध्वरिः । धात्रंशः । लाकृतिः ।

मध्यमनोरमा

सप्तमीनिर्देशेनेति—इको यणचीति सूत्रे अचीति सप्तमीनिर्देशः, तेन विधीयमानं कार्यं यण्, स अजपेक्षया अव्यवहितपूर्वस्य इकः स्थाने भवति । तस्मिन्निति सूत्राभावे इको यणचीति सूत्रे अचि इति सति सप्तम्या अचि सति पूर्वस्य परस्य च यण् प्राप्तः, अजपेक्षया व्यवहितस्य च इको यण् प्राप्तस्तत्र तस्मिन्निति सूत्रेण सप्तमीनिर्देशेन यत्कार्यं तत् सप्तमीनिर्दिष्टाजपेक्षयाऽव्यवहितपूर्वस्यैवेति नियमात् सप्तमीनिर्दिष्टात् अचः अव्यवहित पूर्वस्य इको यण् इत्यर्थः सम्पद्यते । अतएव इको यणचीत्यस्य वृत्तौ अचि परतः इत्युक्तम्, अव्यवहितपूर्वस्य इक इत्यादि बोध्यम् । **प्रसङ्गे सति इति**—यथा अत्रैवेकः प्रसङ्गः उच्चारणप्रसङ्गः, तत्र यण् सदृशतमो भवति, स्थानेन तुल्यो भवति । तेन तालुस्थानीयो यकारः । **षष्ठीनिर्दिष्ट इति**—संयोगान्तस्येति षष्ठीनिर्देशः ।

हिन्दी

१५. इक् के स्थान में यण् हो अच् पर में रहने पर संहिताविषय में ।

१६. सप्तमीनिर्देश से क्रियमाण कार्य सप्तमीनिर्दिष्ट से अव्यवहित पूर्व के स्थान में हो ।

१७. स्थानी को अनेक आदेश प्राप्त रहने पर सदृशतम आदेश हो ।

१८. अच् से पर यर् को द्वित्व हो विकल्प से, अच् परे रहते नहीं ।

१९. झल् के स्थान पर जश् आदेश हो झश् पर में रहने पर ।

२०. संयोगान्त पद का लोप हो ।

२१. षष्ठीनिर्दिष्ट (सूत्रों में षष्ठीनिर्दिष्ट) कार्य अन्त्य अल् को होता है ।

वा. संयोगान्त यण् के लोप का प्रतिषेध होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२. एचोऽयवायावः ६।१।७८।। एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि।
२३. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १।३।१०।। समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्।
हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः । २४. वान्तो यिप्रत्यये ६।१।७९।। यादौ प्रत्यये परे ओदौतोरवावौ स्तः । गव्यम् । नाव्यम् । वा. अध्वपरिमाणे च । गव्यूतिः ।
२५. धातोस्तन्निमित्तस्यैव ६।१।८०।। यादौ प्रत्यये परे धातोरेचश्चेद्वान्तादेशस्तर्हि तन्निमित्तस्यैव नान्यस्य । लव्यम् । अवश्यलाव्यम् । तन्निमित्तस्येति किम् ? ओयते । औयत ।

मध्यमनोरमा

समसम्बन्धीति— समाः सम्बन्धिनो यस्य स विधिः यथासंख्यं यथाक्रमं स्यात् । यथा एचोऽयवेत्यत्र एचश्चत्वारस्तत्स्थानेविधेया अयादयोऽपि चत्वारस्ते क्रमेण भवन्ति। एकारस्य अय् ओकारस्य अव् ऐकारस्य आय् औकारस्य आव् स्युः। **गव्यमिति**— गोर्विकारो गव्यम्, गोपयसोर्यत् । नावा तार्य्यं नाव्यम्, नौ वयोधर्मेत्यादिना यत् । गव्यूतिरिरितिऊतिजूतिसाती-त्यादिना यूति शब्दो निपातितः । **तन्निमित्तस्यैवेति**— यादिप्रत्ययनिमित्तस्यैवेत्यर्थः । लव्यमित्यत्र लू धातोः यति प्रत्यये सति तस्मिन् यति परतः सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे जाते लो यमिति स्थिते लूधातुसम्बन्धिन ओकारस्य यकारादिप्रत्ययनिमित्तकत्वाद् अवादेशः।

मध्यमनोरमापूरणी

सुधी+उपास्यः इति दशायां तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य स्थानेऽन्तरम इति सूत्रद्वयसहकारेण इको यणचीति इकारस्य यकारः, सुध्य् इति जाते अनचि चेति धस्य द्वित्वे सुध्ध्य् उपास्य इति जाते झलां जश् झशीति पूर्वधस्य दकारे अलोऽन्त्यस्येति सहकारेण संयोगान्तस्येति यलोपे प्राप्ते यणः प्रतिषेधो वाच्यः इति निषेधे **सुद्ध्युपास्यः** इति रूपम् । एवमेव मधु+अरिः इत्यत्रापि यणि वकारे कृते मध् व् अरिः इति जाते अनचि चेति धस्य द्वित्वे पूर्वधकारस्य झलां जश् झशीति दकारे मद्ध्व् + अरिः इति, अलोऽन्त्यस्य इति सूत्रसहकारेण संयोगान्तस्य लोपः इति वलोपे प्राप्ते यणः प्रतिषेधो वाच्यः इति निषेधे संयोगे च कृते **मद्ध्वरिः इति** । धातृ+अंशः धात्रंशः इत्यपि बोध्यम् । लृ+आकृतिः = लाकृतिरिति । **हरये**— हरे+ए एत्यत्र यथासंख्यमिति सूत्रसहकारेण एकारस्य अय् । विष्णो+ए = विष्णवे । नै+अकः = नायकः । पौ+अकः पावकः। **गव्यम्**— (गो शब्दात् गोपयसोर्यत् इति यति) गो+यम् इति जाते वान्तो यि प्रत्यये इति अवादेशः । नाव्यम्-(नौ शब्दात् नौवयेत्यादिना यति) नौ+यम् इति, वान्तो यीति आवादेशः। गव्यूति :- गो+यूतिः इति, अध्वपरिमाणे चेति अय् ।

हिन्दी

२२. एच् (ए ओ ऐ औ) के स्थान पर अय् अव् आय् आव् आदेश हो अच् परे रहते।
२३. सम सम्बन्धी विधि क्रम से हो ।
२४. यादि प्रत्यय के परे रहते ओ और औ को अव् आव् आदेश हों ।
वा. गो शब्द को यूति परे रहते अव् आदेश हो अध्वपरिमाण अर्थ में ।
२५. यादि प्रत्यय के परे धातु के एच् को यदि वान्त आदेश हो तो यादि प्रत्ययनिमित्तक एच् को ही हो, अन्य एच् को नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२६. क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ६।१।८१।। यान्तादेशनिपातनार्थमिदम् । क्षय्यम् । शक्यार्थे किम् ? क्षेतुं जेतुं योग्यं क्षेयं-पापम्, जेयं = मनः ।

२७. क्रय्यस्तदर्थे ६।१।८२।। क्रेतारः क्रीणीयुरिति बुद्ध्या आपणे प्रसारितं क्रय्यम् । क्रेयमन्यत् । क्रयणार्हमित्यर्थः ।

२८. अदेङ् गुणः १।१।२।। अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात ।

२९. तपरस्तत्कालस्य १।१।७०।। तः परो यस्मात् तात् परो वा उच्चार्यमाणो वर्णः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ।

३०. आद्गुणः ६।१।८७।। अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात् । उपेन्द्रः । रमेशः । गङ्गोदकम् ।

मध्यमनोरमा

अवश्यलाव्यमिति—लूधातोर्ण्यति अचो ञ्णितीति वृद्धौ लौ यमिति स्थिते यादिप्रत्ययनिमित्तकत्वादौकारस्यावादेशः । **ओयत इति-** आङ्-पूर्वस्य वेञ् तन्तुसन्ताने इत्यस्य कर्मणि लकारे यकि वेञः सम्प्रसारणे पूर्वरूपेऽकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घे च आ ऊयत इति स्थिते आद्गुण इति आकारस्य ऊकारस्य च गुणैकादेशे ओयते इति सिद्धम् । अत्र ओकारस्य वान्तादेशो न, ओकारस्य यादिप्रत्यय निमित्तकत्वाभावात् । **औयत इति-** वेञः कर्मणि लङि लकारे यकि सम्प्रसारणादौ आडजादी नामिति आट्, तस्य ऊकारेण सह आटश्चेति वृद्धिरेकादेशः । नायमौकारो यादिप्रत्ययनिमित्तकः, अतो न तस्य अवादेशः । **क्रय्यस्तदर्थे**—तस्मै इदं तदर्थं, तस्मिन् तदर्थे, तत्पदेन क्रीधात्वर्थः क्रयणं, तस्मै क्रयणाय यत् प्रसारितं तत्क्रय्यम् । एतदेवाह, क्रेतार इति = ग्राहका इत्यर्थः । **तपरः**—अदेङ् गुणः इत्यत्र अकारस्तपर इति ह्रस्वाकारो गुणसंज्ञको न तु दीर्घादिः । अत्रैव एङ् तात्पर इति प्लुतस्य एकारस्य ओकारस्य च न गुणसंज्ञा ।

मध्यमनोरमापूरणी

उप+इन्द्रः इति दशायाम् आद्गुणः इति पूर्वपरयोः स्थाने गुणे एकारे कृते **उपेन्द्रः** इति सिद्धम्। रमा+ईशः, गुणः एकारः । गङ्गा+उदकम् इत्यत्रापि गुणः ओकारः ।

हिन्दी

२६. शक्य अर्थ में क्षि और जि धातु से क्षय्य और जय्य निपातन होता है ।

२७. क्रेता खरीदें इस बुद्धि से बाजार में प्रसारित वस्तु के लिए क्री धातु से क्रय्य निपातन होता है ।

२८. अत् (अ) और एङ् (ए ओ) को गुण संज्ञा होती है ।

२९. त् पर में हो जिसके तथा त् से पर जो वर्ण वह समकाल (उच्चारित काल) का ही बोधक होता है ।

३०. अवर्ण के आगे अच् रहने पर पूर्व पर के स्थान में गुण एक आदेश हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३१. उपदेशेऽजनुनासिक इत् १।३।२।। उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लण्सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ।

३२. उरण् रपरः १।१।५१।। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञा इत्युक्तम्, तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः । तवल्कारः ।

३३. लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९।। अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वा अशि परे ।

मध्यमनोरमा

प्रतिज्ञाऽनुनासिक्या इति—अनुनासिकस्य भावः आनुनासिक्यम्, प्रतिज्ञायते इति प्रतिज्ञा प्रतिज्ञानविषयः, प्रतिज्ञा आनुनासिक्यं येषां ते प्रतिज्ञाऽनुनासिक्या पाणिनीयाः = पानिनेश्छात्राः । तथा च पाणिनीयानां प्रतिज्ञानविषयोऽनुनासिक इत्युक्त्या एतदुक्तं भवति, पूर्वमनुनासिकपाठः स्थितः, तद्वेदिभिः पाणिनीयैर्यत्र तत्र प्रतिज्ञातमनुनासिकत्वम्, तत्र तत्र इत्संज्ञारूपकार्येण अनुनासिकत्वमाधुनिकैरनुमाय व्यवहर्तव्यमिति । **लणसूत्रस्थेति**-लण्सूत्रस्थोऽकारोऽ नुनासिकः प्रतिज्ञायते, तेन स उपदेशे इति सूत्रेण इत्संज्ञकः । तेनाकारेण सह उच्चार्यमाणो हयवरट् सूत्रस्थो रेफः र् अ इत्याकारको 'र'- प्रत्याहारः मध्यगस्य लकारस्य ग्राहकः, स्वस्य आदिभूतस्य रेफस्य च ग्राहकः । लण्सूत्रस्थोऽकारो यद्यपि अन्त्यो न भवति, प्रत्याहारस्तु अन्त्येन इत्संज्ञकेन भवति, तथापि इत्संज्ञाविधानसामर्थ्यात् अनन्त्येनाप्यकारेण रप्रत्याहारः सिद्ध्यति । **उरण् रपरः**—अत्र षष्ठी स्थानेयोगेति सूत्रात् स्थाने इत्यनुवर्तते, तेन उः स्थाने योऽण् इत्यर्थः सम्पद्यते । स्थानेऽन्तरतम इति सूत्रादपि स्थानेग्रहणमनुवर्तते । तेन स्थाने रपरो भवतीति योजनया प्रसङ्ग एवं रपरो भवतीत्यर्थस्तदेतदाह- रपरः सन्नेवेति । तेन आदेश समय एव रपत्वम्, न तु आदेशे कृते पश्चात्तस्य रपरत्वमित्यर्थो लभ्यते । तथा च कृष्णर्द्धिरित्यत्र कण्ठमूर्धस्थानीययोरकार ऋकारयोः कण्ठमूर्धस्थानीयोऽर् भवति । तवल्कार इत्यत्र कण्ठदन्तस्थानीययोरकारलृकारयोस्तादृश एव अल् भवति । आदेशे कृते पश्चात् रपरत्वे तु प्रसङ्गाभावात् स्थानेऽन्तरतमपरिभाषाया अप्रवृत्तौ ऋकारस्थानेऽण् लपरः, लृकारस्थानेऽण् रपरः इत्यादि सम्भाव्येत । तस्मात् स्थानेऽन्तरतम परिभाषाया व्यवस्थोपपत्तये प्रसङ्गकाल एव रपरत्वं विधीयते इति ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृष्ण+ऋद्धिः इत्यवस्थायाम् उरण् रपरः इति सूत्रसहकारेण आद्गुणः इति अर् गुणः एकादेशः। तव+लृकारः इत्यत्र अल् एकादेशः ।

हिन्दी

३१. उपदेश में अनुनासिक अच् की इत्संज्ञा होती है । जहाँ अच् की इत्संज्ञा हो वहाँ अनुनासिक की प्रतिज्ञा समझें । लण् सूत्रस्थ अवर्ण के साथ उच्चारित 'र' र् और ल् की संज्ञा है ।

३२. ऋकार लृकार तीस प्रकार के हैं, उनके स्थान में आने वाला अण् रपर के साथ ही प्रवृत्त होता है ।

३३. अवर्णपूर्वक पदान्त य् व् का लोप हो अश् परे रहते, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३४. पूर्वत्रासिद्धम् ८।२।१॥ अधिकारोऽयम् । तेन सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । हर इह, हरयिह, विष्ण इह, विष्णविह ।

३५. वृद्धिरादैच् १।१।१॥ आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ।

३६. वृद्धिरेचि ६।१।८८॥ आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् । गङ्गौघः । देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठ्यम् ।

३७. एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९॥ अवर्णादिजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवादः । उपैति । उपैधते । प्रष्ठौहः । एजाद्योः किम् । उपेतः। मा भवान् प्रेदिधत् ।

मध्यमनोरमा

प्रष्ठौह इति—प्रष्ठवाह् शब्दस्य शसि वाह ऊठ् इत्यूठि पूर्वरूपे प्रष्ठ ऊहः इति स्थितेऽनेन वृद्धिः। **मा भवान् इति**—न माङ्योगे इति आडागमप्रतिषेधे एध्धातोर्णिजन्तात् लुङि

मध्यमनोरमापूरणी

अधिकारोयमिति—अधिक्रियते उपरितनसूत्रजालशेषत्वेन पठ्यते इत्यधिकारः, कर्मणि घञि कृते सिद्ध्यति । घञन्ताः पुंसि इति पुंस्त्वम्, अधिकारापेक्षया अयमिति पुँल्लिङ्गनिर्देशः । इदं सूत्रम् उपरितनसूत्रेषु अनुवृत्त्यर्थमेवास्ति, न तु स्वतन्त्रविधिः, अस्य सूत्रस्य स्वतन्त्रसूत्रत्वे त्रिपादी पूर्वं प्रति असिद्धा इत्येवार्थो लभ्येत न तु पूर्वत्रिपादीं प्रति परं त्रिपादिशास्त्रमसिद्धमिति अर्थः प्राप्येत । अतः अधिकारत्वमेवोचितम् । तेन सपादसप्ताध्यायीशास्त्रं प्रति त्रिपादीशास्त्रमसिद्धं, त्रिपाद्यामपि पूर्वत्रिपादिशास्त्रं प्रति परत्रिपादिशास्त्रमसिद्धमित्यर्थो लभ्यते। **हर इह इति**—हरे इह इति दशायामेचोऽयवायाव इति अयादेशे लोपः शाकल्यस्येति यलोपे हर इह इति जाते आद्गुण इति गुणो न भवति, पूर्वत्रासिद्धमित्यनेन त्रैपादिकस्य लोपः शाकल्यस्येत्यस्य असिद्धत्वात् । यलोपविकल्पे हरयिह इति । एवमेव विष्णो+इह इत्यत्र अवादेशवलोपादिकार्यमूह्यम् । **वृद्धिरादैच् इति**—आच्च ऐच्चेति समाहारद्वन्द्वः, समासान्तविधेरनित्यत्वात् द्वन्द्वाच्चुदषेति टच् न । अयस्मयादीनि च्छन्दसीति भत्वात् चस्य कुत्वं न । आत् इति तपरनिर्देशः । तेन आकारमात्रग्रहणम् । आ ऐ औ इति वर्णत्रयं वृद्धिसंज्ञकमस्ति । **कृष्णैकत्वमिति**—कृष्ण+एकत्वमित्यत्र अपवादत्वात् गुणं प्रबाध्य वृद्धिरेचीति पूर्वपरयोः वृद्धिः ऐकारः । एवमेव गङ्गा+ओघः, देव+ऐश्वर्यम्, कृष्ण+औत्कण्ठ्यमिति ज्ञेयम् । उप+एति इत्यत्र आद्गुणः एङि पररूपमिति सूत्रद्वयं बाधित्वा

हिन्दी

३४. सपादसप्ताध्यायी (८।१ तक) की दृष्टि में त्रिपादीशास्त्र (८।२ से-अन्त तक) असिद्ध होते हैं । त्रिपादी में भी पूर्व की दृष्टि में पर त्रिपादी-शास्त्र असिद्ध होते हैं ।

३५. आत् और ऐच् को वृद्धिसंज्ञा होती है ।

३६. अवर्ण से परे एच् रहने पर वृद्धि एकादेश हो ।

३७. अवर्ण से परे एजादि इण् धातु व एध् धातु तथा ऊठ् रहने पर वृद्धि एकादेश हो । (पररूप व गुण का यह सूत्र अपवाद है ।)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. स्वादीरेरिणोः । स्वैरम् । स्वैरी । स्वैरिणी । वा. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्। अक्षौहिणी सेना । वा. प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु । प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः । प्रैषः । प्रैष्यः। वा. ऋते च तृतीयासमासे । सुखेन ऋतः सुखार्तः । तृतीयेति किम्–परमर्तः। वा. प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे । प्रार्णम् । वत्सतरार्णम् । कम्बलार्णम्। वसनार्णम् ।

ऋणार्णम् । दशार्णो देशः ।

३८. उपसर्गाः क्रियायोगे १।४।५९।। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः । प्र।परा । अप । सम् । अनु । अव् । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि । अधि । अपि । अति । सु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । एते प्रादयः ।

३९. भूवादयो धातवः १।३।१।। क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः ।

४०. उपसर्गादृति धातौ ६।१।९१।। अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्रार्च्छति ।

मध्यमनोरमा

च्लेश्चङि द्वित्वादौ प्रपूर्वादिदिधदिति स्थिते एजादित्वाभावान्नवृद्धिः । किन्तु आद् गुणः । **परमर्त इति**— परमश्चासौ ऋतश्च परमर्त इति विशेषणसमासः । **भूवादय इति**- भूश्च वाश्च भूवौ, आदिश्च आदिश्च आदी, भूवौ आदी येषां ते भूवादयः । एकः आदिशब्दः प्रभृत्यर्थकः, एकः सदृशार्थकः, तेन भूप्रभृतयो वासदृशाः, वासादृश्यञ्च क्रियावाचित्वेनेत्यभिप्रेत्याह- क्रियेत्यादि ।

मध्यमनोरमापूरणी

एत्येधत्यूठ्सु इति वृद्धौ उपैति इति । उप+एधते = उपैधते । **स्वैरम्**—स्व+ईरम् इति स्थिते स्वादीरेरिणोरिति वृद्धिः । स्व+ईरी, स्वैरी, स्व+ईरिणी = स्वैरिणी । अक्ष+ऊहिणी इत्यत्र अक्षादूहिन्यामिति वृद्धिः । प्र+ऊहः इति दशायां गुणं प्रबाध्य प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु इति वृद्धिरेकादेशः । प्र+ऊढः = प्रौढः। प्र+एषः = प्रैषः । प्र+एष्यः = प्रैष्यः । **सुखार्त इति**—सुखेन ऋत इति विग्रहे समासे सुख+ऋत इत्यस्य ऋते च तृतीयेति वृद्धौ रपरत्वे च सुखार्तः इति । **प्रार्णम्**—प्र+ऋणमिति स्थिते गुणं प्रबाध्य प्रवत्सतरेति वृद्धौ रपरत्वे प्रार्णमिति । **प्रार्च्छति इति-**

हिन्दी

वा. स्व से परे ईर व ईरिन् रहने पर वृद्धि एकादेश हो ।

वा. अक्ष के परे ऊहिनी रहने पर वृद्धि एकादेश हो ।

वा. प्र से परे ऊह ऊढ एष व एष्य रहने पर वृद्धि एकादेश हो ।

वा. अवर्ण से परे ऋत रहने पर वृद्धि हो तृतीया समास में ।

वा. प्र वत्सतर कम्बल वसन ऋण व दश इनके आगे ऋण शब्द रहते वृद्धि एकादेश हो ।

३८. प्रादिको क्रियायोग में उपसर्ग संज्ञा होती है ।

३९. क्रियावाची भूआदि को धातुसंज्ञा होती है ।

४०. अवर्णान्त उपसर्ग के परे ऋकारादि धातु के रहते वृद्धि एकोदश होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४१. वा सुप्यापिशलेः ६।१।९२।। आदुपसर्गादृकारादौ सुब्धातौ परे वृद्धिर्वा । आपिशिलिग्रहणं पूजार्थम् ।
४२. अचो रहाभ्यां द्वे ८।४।४६।। अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः । इति प्राप्ते ।
४३. शरोऽचि ८।४।४९।। द्वे न । प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति ।
४४. एङि पररूपम् ६।१।९४।। आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः । प्रेजते । उपोषति ।
४५. अचोऽन्त्यादि टि १।१।६४।। अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञं स्यात् । वा. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् । वा. तच्च टेः । शकन्धुः । कर्कन्धुः। कुलटा । वा. सीमन्तः केशवेशे । सीमान्तोऽन्यः । मनीषा । हलीषा । लाङ्गलीषा । पतञ्जलिः । सारङ्गः पशुपक्षिणोः । साराङ्गोऽन्यः । आकृतिगणोऽयम् । मार्तण्डः । वा. एवे चानियोगे । क्वेव भोक्ष्यसे । अनियोगे किम् । तत्रैव । वा. ओत्वोष्ठयोः समासे वा । स्थूलोतुः, स्थूलौतुः । बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः । समासे किम् - तवौष्ठः।

मध्यमनोरमा

पूजार्थमिति—प्राचामाचार्याणां मतोपन्यासेन ग्रन्थस्य पूजा भवति इत्यर्थः । **प्रार्षभीयति**—ऋषभमात्मन इच्छति ऋषभीयति, क्यजन्तः। **मनीषेति**—मनस्+ईषा इति स्थिते टेः असः ईकारस्य च पूर्वपरयोः पररूपम् । पतत् अञ्जलिरिति स्थिते अत् इत्यस्य अकारस्य च अकारः । **एवे चानियोगे**—अनियोगे अनिश्चये, क्वेव भोक्ष्यसे इत्यत्र क्वापीत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्र+ऋच्छति इति जाते गुणं प्रबाध्य उपसर्गादृति धाताविति वृद्धिः । प्र+ऋषभीयतीत्यत्र वा सुप्यापिशलेरिति वृद्धौ रपरत्वे **प्रार्षभीयति** इति । अचो रहाभ्यामिति षस्य द्वित्वे प्राप्ते शरोऽचीति निषिध्यते । वृद्धिविकल्पे गुणे सति प्रर्षभीयतीति । प्र+एजते, उप+ओषति इत्युभयत्र वृद्धिं प्रबाध्य एङि पररूपमिति पररूपम् । शक+अन्धुः, कर्क+अन्धुः, इत्युभयत्र शकन्ध्वादिषु इति टेः पररूपम् । कुल+अटा=कुलटा । केशविन्यासे सीमन्+अन्तः=**सीमन्तः । मनस्+ईषा, हल+ईषा, लाङ्गल+ईषा इतिच्छेदः । सार+अङ्गः = सारङ्गः । मृत+अण्डः इत्यस्य शकन्ध्वादिषु इति पररूपे कृते मृतण्ड इति, तस्मादणि आदिवृद्धौ मार्तण्ड इति ।**

हिन्दी

४१. अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि सुब्धातु होने पर वृद्धि हो विकल्प से ।
४२. अच् से पर जो रेफ हकार उससे पर यर् को द्वित्व हो, विकल्प से ।
४३. अच् के परे रहते शर् को द्वित्व नहीं हो ।
४४. अवर्णान्त उपसर्ग के परे एङादि धातु रहने पर पररूप एकादेश होता है ।
४५. अचों के मध्य में अन्त्य अच् को टि संज्ञा होती है, तथा वह अन्त्य अच् जिस् व्यञ्जन के आदि में हो उस व्यञ्जन सहित अच् को भी टि संज्ञा होती है ।
वा. शकन्ध्वादिगण में पठित शब्द की 'टि' के स्थान में पररूप होता है ।
वा. अकार से परे अनिश्चयात्मक एवं शब्द रहने पर पररूप होता है ।
वा. अ के आगे ओतु व ओष्ठ रहने पर पररूप हो समास में, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४६. ओमाङोश्च ६।१।९५॥ ओमि आङि चात् परे पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायों नमः । शिव आ इहि इति स्थिते शिव एहि । शिवेहि ।
४७. अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१॥ अकः सवर्णेऽचि परे दीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः । श्रीशः । विष्णूदयः । वा. ऋति सवर्णे ऋ वा । होतॄकारः ।
४८. एङः पदान्तादति ६।१।१०९॥ पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात्। हरेऽव । विष्णोऽव ।
४९. सर्वत्र विभाषा गोः ६।१।१२२॥ लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते । गो अग्रम् । गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम्-चित्रग्वग्रम् । पदान्तस्य किम् ? गोः ।
५०. अनेकाल् शित् सर्वस्य १।१।५५॥ इति प्राप्ते ।
५१. ङिच्च १।१।५३॥ ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ।
५२. अवङ् स्फोटायनस्य ६।१।१२३॥ पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वा स्यादचि । गवाग्रम् । पदान्ते किम् ? गवि । व्यवस्थितविभाषया गवाक्षः ।

मध्यमनोरमा

शिव एहीति—आङ् पूर्वादिण्धातोः लोटि मध्यमपुरुषैकवचने एहीति रूपम् । **होतॄकार इति**—होतृ ऋकार इति स्थिते होतॄकारः । होतृ ऌकारः इति स्थितेऽपि होतॄकारः, ऌवर्णो दीर्घो नास्ति इति ऌवर्णस्यापि दीर्घ ॠकार एवैकादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्थूला+ओतुः, बिम्ब+ओष्ठः इत्युभयत्र ओत्वोष्ठयोरिति पररूपे **स्थूलोतुः, बिम्बोष्ठः** इति । शिवाय+ओं नमः इतिच्छेदः । **शिवेहि**—शिव आ इहि इत्यत्र धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गमिति पूर्वं गुणे शिव+एहि इति, ओमाङोश्चेति पररूपम् । दैत्य+अरिः= **दैत्यारिः**, अकः सवर्णे इति दीर्घः । श्री+ईशः = **श्रीशः**। विष्णु+उदयः = विष्णूदयः । हरे+अव, विष्णो+अव इत्युभयत्र एङः पदान्तादतीति पूर्वरूपम्। गो+अग्रम् इति स्थिते पूर्वरूपं प्रबाध्य सर्वत्र विभाषा गोरिति प्रकृतिभावः, तस्मान्न सन्धिः। विकल्पे पूर्वरूपे गोऽग्रमिति । एङन्तत्वाभावात् चित्रगु+अग्रम्= चित्रग्वग्रमित्यत्र प्रकृतिभावो न । **गवाग्रमिति**—गो+अग्रमित्यत्र सर्वत्र विभाषेति सूत्रं परत्वात् प्रबाध्य अवङ् स्फोटायनस्येति ओ-स्थाने अवङ् भवति ङिच्चेति बलेन । गव+अग्रमिति जाते सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

४६. अकार से परे ओम् व आङ् रहने पर पररूप एकादेश होता है ।
४७. अक् के आगे सवर्ण अच् रहने पर दीर्घ एकादेश हो ।
४८. पदान्त एङ् के परे अत् रहने पर पूर्वरूप एकादेश हो ।
४९. लोक और वेद में एङन्त गो शब्द के आगे अत् रहने पर प्रकृतिभाव हो, विकल्प से।
५०. अनेकाल् आदेश और शित् आदेश सम्पूर्ण के स्थान पर होता है ।
५१. ङित् अनेकाल् आदेश अन्त्य के स्थान में ही होता है ।
५२. पदान्त में एङन्त गो शब्द को अवङ् आदेश हो अच् परे रहते, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५३. इन्द्रे च ६।१।१२४॥ गोरवङिन्द्रे । गवेन्द्रः ।

५८. दूराद्धूते च ८।२।८४॥ दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा

५५. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५॥ एतेऽचि प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ।

५६. ह्रस्वं लघु १।४।१०॥

५७. संयोगे गुरु १।४।११॥ संयोगे परे ह्रस्वं गुरुसंज्ञं स्यात् ।

५८. दीर्घं च १।४।१२॥ गुरु स्यात् ।

५९. गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ८।२।८६॥ प्लुतो वा । दे३वदत्त; देवद३त्त, देवदत्त३ । गुरोः किम् वकारादकारस्य माभूत् । अनृतः किम्- कृष्ण३। एकैकग्रहणं पर्यायार्थम् ।

६०. ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११॥ ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू । मणीवोष्ट्रस्येति तु इवार्थे व शब्दो वा शब्दो वा बोध्यः ।

मध्यमनोरमा

आगच्छ कृष्ण ३ अत्रेति—दूराद्धूते चेति टेः प्लुतत्वे तस्य प्रकृतिभावात् सवर्णदीर्घो न । प्लुताभावपक्षे आगच्छ कृष्णात्र गौश्चरति, वा सन्धिः । **ह्रस्वं लघु**—ह्रस्वमक्षरं लघुसंज्ञं भवति। **अनन्त्यस्यापीति**—अपिशब्दादन्त्यस्यापि । एतावान् विशेषः, गुरोरिति विशेषणमनन्त्यस्यैव, न तु अपिशब्दलभ्यस्यान्त्यस्यापि । तेन देवदत्त३इति अन्त्यस्य गुरुत्वाऽभावेऽपि प्लुतः । **वकारादिति**—देवदत्त इत्यत्र वकारात्परस्याकारस्य न प्लुतः, गुरुत्वाभावात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

व्यवस्थितविभाषेति—अत्र विधिरेव अत्र निषेध एव भवतीत्येवंरूपा व्यवस्था व्यवस्थितविभाषेति उच्यते । तेन गो+अक्षः इत्यत्र विधिरेवेति व्यवस्थितविभाषया अवङादेशः। **गवेन्द्रः इति**—गो+इन्द्रः इत्यत्र अवङ्स्फोटायनस्येति सूत्रं प्रबाध्य नित्यम् इन्द्रे चेति अवङ् । **एकैकग्रहणमिति** —सर्वेषां युगपत् माभूत् इति भावः । हरी+एतौ इत्यत्र ईदूदेदिति प्रगृह्यसंज्ञा, प्लुतप्रगृह्या इति प्रकृतिभावे न यण् । **मणीवोष्ट्रस्येति**—अत्र मणी इवेति न शब्दः, तथा सति सन्धिरसङ्गतः स्यात्, अतः इवार्थे व शब्दः वा शब्दो वा गृह्यते ।

हिन्दी

५३. एङन्त गोशब्द को इन्द्र परे रहते अवङ् हो ।

५४. दूर से सम्बोधन करने पर जो वाक्य आता है उसकी टि को प्लुत हो विकल्प से ।

५५. प्लुतसंज्ञक व प्रगृह्यसंज्ञक को अच् परे रहते प्रकृतिभाव हो विकल्प से ।

५६. ह्रस्व वर्ण को लघु संज्ञा होती है ।

५७. संयोग परे रहते ह्रस्ववर्ण को गुरु संज्ञा होती है ।

५८. दीर्घ वर्ण को भी गुरु संज्ञा होती है ।

५९. दूर से सम्बोधनवाक्य के सम्बोध्यमान पद के ऋकार भिन्न अनन्त्य गुरु वर्ण को पर्याय से प्लुत होता है । गुरु या अगुरु अन्त्य को भी प्लुत होता है ।

६०. ईदन्त ऊदन्त एदन्त द्विवचन को प्रगृह्यसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६१. अदसोमात् १।१।१२।। अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः । अमी ईशाः । रामकृष्णावमू आसाते । मात् किम् – अमुकेऽत्र । असति माद्ग्रहणे एकारोऽप्यनुवर्तेत ।

६२. चादयोऽसत्त्वे १।४।५७।। अद्रव्यार्थाश्चादयो निपात संज्ञाः स्युः ।

६३. प्रादयः १।४।५८।। एतेऽपि तथा ।

वस्तूपलक्षणं यत्र सर्वनाम प्रयुज्यते ।
द्रव्यमित्युच्यते सोऽर्थो भेद्यत्वेन विवक्षितः ।।

लिङ्गसंख्यान्वययोग्यं द्रव्यम् ।

६४. निपात एकाजनाङ् १।१।१४।। एकोऽज् निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः स्यात्। इ इन्द्रः । उ उमेशः । वाक्यस्मरणयोरङित् आकारः । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अन्यत्र ङित् । ईषदुष्णम् ओष्णम् ।

मध्यमनोरमा

अस्मादिति—अदस्शब्दसम्बन्धिमकारात् इत्यर्थः । **असति मादिति**—माद्ग्रहणे कृते तु अदस्शब्दस्य मकारात् पर एकारो न सम्भवति अत ईदूदेति सूत्रात् ईदूत्पदमनुवर्तते, न तु एत् पदमपि । माद्ग्रहणाभावे तु अदश्शब्दस्य अमुके इत्यत्र एकारः सम्भवतीति एद्ग्रहणमप्यनुवर्तेत । **वस्तूपलक्षणमिति**—यत्र अर्थे वस्तुनः स्वरूपस्य उपलक्षणं विशेषणं सर्वनामयत्तदादिकं प्रयुज्यते सोऽर्थः द्रव्यमित्युच्यते । सोऽर्थः कीदृशः, भेद्यत्वेन विशेष्यत्वेन विवक्षितः, तेन पदेन वक्तुमिष्टः, यथा घटाद्यर्थानां विशेषणं सर्वनाम प्रयुज्यते स घट इति, तत्र सर्वनाम- विशेष्यत्वेन घटो विवक्षितः इति स द्रव्यम्, तद्वाचका घटादिशब्दा द्रव्यवाचकाः । चादीनान्तु न द्रव्यवाचकत्वम्, तदर्थस्य सर्वनामविशेषणाभावात् । यद्यपि तत्रापि स समुच्चयः सविकल्प इत्यादीनां चादीनामप्यर्थः सर्वनाम्ना विशेष्यते, तथापि चादिपदेन विशेष्यतया विवक्षितः चकारस्य समुच्चयरूपोऽर्थः सर्वनाम्ना विशेषयितुं न युज्यते, तथैव व्युत्पत्तेः । समुच्चयादिपदप्रतिपाद्यस्य समुच्चयस्य तु द्रव्यत्वमिष्टमेव । **वाक्यस्मरणेति**—आकारो निपातो द्विविधः, एको ङित्, अङित् द्वितीयः, तत्र ङितः प्रगृह्यसंज्ञा नास्ति किन्तु अङितः । अङित्तु अर्थद्वये, वाक्ये स्मरणे च । तत्र वाक्ये उदाहरति- **आ एवं नु मन्यसे इति**—अत्र आकारो वाक्यद्योतकः, तेन पूर्वमेवन्नामंस्था इति पूर्ववाक्यमाकारेण

मध्यमनोरमापूरणी

अमी ईशाः—इत्यत्र अदसो मादिति प्रगृह्यसंज्ञायां प्रकृतिभावः । ई+इन्द्रः, उ+उमेशः इत्युभयत्र इकारोकारयोः निपात एकाजिति प्रगृह्यसंज्ञायां प्रकृतिभावे च कृते न सन्धिः । **अन्यत्रेति**—वाक्यस्मरणाभ्यां भिन्नेऽर्थे प्रगृह्यसंज्ञा न भवति, अतः ईषदर्थे आ+उष्णम् इत्यत्र गुणे कृते ओष्णम् इति भवति ।

हिन्दी

६१. अदस् सम्बन्धी मकार से परे ईत् ऊत् को प्रगृह्य संज्ञा होती है ।

६२. अद्रव्यार्थक चादि को निपात संज्ञा होती है ।

जहाँ वस्तु को बताने के लिए विशेषणरूप में सर्वनाम का प्रयोग होता है, वहाँ विशेष्यत्वेन प्रयुक्त वह वस्तु (अर्थ) द्रव्य कहलाती है । (लिङ्ग संख्या में अन्वययोग्य द्रव्य है ।)

६३. प्रादि को भी निपात संज्ञा होती है ।

६४. आङ्भिन्न एकाच् निपात को प्रगृह्यसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६५. ओत् १।१।१५।। ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः स्यात् । अहो ईशाः ।
६६. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६।। सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे । विष्णो इति, विष्णविति, विष्ण इति ।
६७. मय उञो वो वा ८।३।३३।। मयः परस्य उञो वो वा स्यादचि । किमु उक्तम्, किम्वुक्तम् ।
६८. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६।१।१२७।। पदान्ता इको ह्रस्वाः प्रकृत्या च स्युरसवर्णेऽचि वा । ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः । चक्रि अत्र, चक्र्यत्र। पदान्ताः किम्–गौर्यौ । वा. न समासे । वाप्यश्वः ।
६९. ऋत्यकः ६।१।११८।। ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा । ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः । पदान्ता किम्–आर्च्छत् ।

।। इति अच्सन्धिः ।।

मध्यमनोरमा

द्योत्यते । **स्मरणे उदाहरति**—आ एवमिति, एवं किल तत् इत्यस्य स्मरणरूपत्वमाकारो द्योतयति । **चक्रि अत्रेति**—चक्री अत्रेति स्थिते ईकारस्य ह्रस्वे जाते न सन्धिः । ह्रस्वदीर्घयोः सन्धौ विशेषाभावात्, ह्रस्वविधानमन्यथा व्यर्थं स्यात् । ब्रह्मा ऋषिः इत्यसमस्त स्थितिः । ब्रह्मा चासौ ऋषिश्चेति समासे ब्रह्म ऋषिरिति स्थिते ह्रस्वस्यैव ह्रस्वः प्रकृतिभावार्थः । **आर्च्छदिति**–ऋच्छतेर्लङ्, आडजादीनामिति आडागमः, अयमाकारो न पदान्तः ।

।। इति स्वरसन्धिप्रकरणम् ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अहो+ईशाः इत्यत्र ओदिति प्रगृह्यत्वे प्रकृतिभावः । **विष्णो+इति** इति स्थिते सम्बुद्धाविति प्रगृह्यत्वे प्रकृतिभावः । विकल्पे अवादेशे लोपः शाकल्येति वलोपे विष्ण इति । वलोपविकल्पे विष्णविति । **किम्वुक्तम्**—किम् उ उक्तमित्यत्र मय उञ इति उकारस्य वकारे किम्वुक्तम्, पक्षे निपात एकाच् इति प्रगृह्यत्वे प्रकृतिभावः । **वाप्यश्व इति**—वाप्याम् अश्व इति विग्रहे समासे वापी+अश्व इति जाते इकोऽसवर्णे इति प्रगृह्यसंज्ञा प्राप्ता, न समासे इति निषिध्यते । यणि कृते वाप्यश्वः इति । **ब्रह्मा ऋषिरिति स्थिते** ऋत्यक इति आकारस्य ह्रस्वे ब्रह्म ऋषिः इति जाते प्रकृतिभावः । विकल्पे गुणे रपरत्वे च कृते ब्रह्मर्षिरिति । (वाक्ये संहितायाः विवक्षाधीनत्वात् ब्रह्मा इति प्रथमैकवचनम् बुद्ध्वा सन्धिः क्रियते ।)

।। इत्यच्सन्धिः ।।

हिन्दी

६५. ओदन्त निपात को प्रगृह्यसंज्ञा हो अच् परे रहते ।
६६. सम्बुद्धिनिमित्तक ओकार को अवैदिक इति शब्द परे रहते प्रगृह्यसंज्ञा हो ।
६७. मय् से परे उञ् के उ को व् होता है अच् परे रहते, विकल्प से ।
६८. पदान्त इक् को ह्रस्व व प्रकृतिभाव हो असवर्ण अच् परे रहते, विकल्प से ।
वा. समास में पदान्त इक को ह्रस्व व प्रकृतिभाव नहीं होता है ।
६९. पदान्त अक् को ह्रस्व हो, ऋत् परे रहते विकल्प से ।

।। इति अच्सन्धिप्रकरण ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ हल्सन्धिः

७०. स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ८।४।४०॥ सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । हरिश्शेते । रामश्चिनोति । सच्चित् । शार्ङ्गिञ्जय ।

७१. शात् ८।४।४४॥ शात् परस्य तवर्गस्य श्चुत्वं न स्यात् । विश्नः । प्रश्नः।

७२. ष्टुना ष्टुः ८।४।४१॥ स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा। तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ।

७३. न पदान्ताट्टोरनाम् ८।४।४२॥ पदान्ताट्टवर्गात् परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात्। षट् सन्तः । षट् ते । पदान्तात् किम्-ईट्टे । टोः किम्-सर्पिष्टमम् ।

वा. अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् । षण्णाम् । षण्णगर्यः । षण्णवतिः ।

७४. तोः षि ८।४।४३॥ न ष्टुत्वम् । सन्षष्ठः ।

७५. झलां जशोऽन्ते ८।२।३९॥ पदान्ते झलां जशः स्युः । वागीशः । चिद्रूपम्।

मध्यमनोरमा

स्तोः श्चुना श्चुरिति—स्तोरिति समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुंस्त्वम् । एवं ष्टुना ष्टुरित्यत्रापि बोध्यम्। **विश्नः प्रश्न इति**—विच्छ् गतौ प्रच्छ्, ज्ञीप्सायाम्, यजयाचेत्यादिना नङ्, च्छ्वोः शूडिति शत्वं, नङो ङित्वाद् गुणाभावः । प्रच्छेस्तु प्रश्ने चासन्ने इति निर्देशात् सम्प्रसारणाभावः । ईट्टे इति - ईड् स्तुतौ, ते इत्यात्मनेपदम् । **अनामिति**—न पदान्ताट्टोरित्यत्र न केवलमनाम् ग्रहणं किन्तु अनाम्नवतिनगरीणां ग्रहणं कर्तव्यम् । **षण्णाम्**—षड् नाम् इति स्थिते नकारस्य ष्टुत्वेन णः, ततो डकारस्य प्रत्यये भाषायामिति अनुनासिको णकारः । षड् नवतिरिति स्थिते ष्टुत्वं यरोऽनुनासिक इति डकारस्यानुनासिकः । एवं षण्णगर्यः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हरिस्+शेते, रामस्+चिनोति इत्युभयत्र स्तोरिति श्चुना योगे सस्य शः । सत्+चित्, शार्ङ्गिन्+जयेत्युभयत्र तनयोः चञौ भवतः क्रमशः । रामस्+षष्ठः, रामस्+टीकते इत्युभयत्र ष्टुना ष्टुरिति सस्य षः । तत्+टीका, चक्रिन्+ढौकसे इतिच्छेदः । षड् सन्तः, षड्+ते इत्युभयत्र प्राप्तं ष्टुत्वं न पदान्ताट्टोरिति निषिध्यते । **टोः किमिति**—सूत्रे टोरिति पदाभावे सर्पिष्+तममित्यत्रापि ष्टुत्वं न स्यात् अतः टोरित्युच्यते । **तोः षि**—तवर्गस्य षे परे न ष्टुत्वम्। तेन सन्+षष्ठ इत्यत्र ष्टुनेति प्राप्तं ष्टुत्वं न भवति। वाक्+ईशः, चित्+रूपमिति च्छेदः, जश्त्वेन गः, दश्च ।

हिन्दी

७०. शकार चवर्ग के योग में स् तवर्ग को शकार और चवर्ग होते हैं ।

७१. शकार के परे तवर्ग को श्चुत्व नहीं हो ।

७२. सकार तवर्ग को षकार टवर्ग के योग में षकार टवर्ग होते हैं ।

७३. पदान्त टवर्ग से परे नाम्भिन्न सकार तवर्ग को ष्टुत्व नहीं हो ।

वा. पदान्त टवर्ग से परे नाम् नवति- नगरी भिन्न सकारतवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है ।

७४. ष परे रहते तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है ।

७५. पदान्त में झल् को जश् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७६. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८।४।४५॥ यरः पदान्तस्याऽनुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् । एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः । स्थानप्रयत्नाभ्यामन्तरतमे स्पर्शे चरितार्थो विधिरयं रेफे न प्रवर्तते । चतुर्मुखः

वा. प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

७७. तोर्लि ८।४।६०॥ परसवर्णः स्यात्तवर्गस्य लकारे परे । तल्लयः । विद्वाँल्लिखति । नस्यानुनासिको लः ।

७८. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८।४।६१॥ उदः परयोः स्थास्तम्भोः पूर्वसवर्णः स्यात् ।

७९. तस्मादित्युत्तरस्य १।१।६७॥ पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ।

८०. आदेः परस्य १।१।५४॥ परस्य यद्विहितं तत्तस्यादेर्बोध्यम् । अघोषस्य महाप्राणस्य विवारस्य श्वासस्य सस्य तादृश एव थकारः ।

८१. झरो झरि सवर्णे ८।४।६५॥ हलः परस्य झरो लोपो वा सवर्णे झरि । इति थस्य लोपः ।

८२. खरि च ८।४।५५॥ खरि परे झलां चरः स्युः । इत्युदो दस्य तः । उत्थानम्। उत्तम्भनम् ।

मध्यमनोरमापूर्णी

एतद्+मुरारिरित्यत्र यरोऽनुनासिके इति दस्यानुनासिको नकारः । **चतुर्मुख इति**-ननु चतुर्+मुख इत्यत्र यरो रेफस्य स्थानसाम्यात् णत्वं कथं न भवतीति चेदुच्यते- अयमनुनासिको णकारः स्थानप्रयत्नाभ्यां सदृशतमे स्पर्शे टकारादौ चरितार्थः, अतः केवलं स्थानसाम्येन रेफे न प्रवर्तते इति । तद्+मात्रम्, चिद् + रूपमित्युभयत्र प्रत्यये भाषायामिति दस्य नः । तद्+लयः इत्यत्र तोर्लीति परसवर्णो दस्य लः । विद्वाँल्लिखतीत्यत्र विद्वान् इति नस्य तोर्लीति अनुनासिको लकारः । **उत्थानमिति**—उद् स्थानमिति स्थिते सकारस्य स्थाने पूर्वदकारस्य सवर्णः, तत्र दकारसवर्णाः पञ्चतवर्गीयास्तन्मध्ये सकारस्य सदृशतमस्थकारः, यतः सकारोऽघोषः महाप्राणश्च, तस्य स्थानेऽघोषो महाप्राणश्च थकार आदेशः । खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्चेति सकारस्य खर्मध्यस्थतया अघोषत्वम् । वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा इति शल्त्वात् महाप्राणत्वम्, तथा थकारोऽपि, खर् इति अघोषः, द्वितीय इति महाप्राणः । **थस्येति**—थकारस्य थकारे परे लोपः । लोपाभावपक्षे उत्थ्थानमिति थकारद्वयम् ।

हिन्दी

७६. पदान्त यर् को अनुनासिक हो अनुनासिक परे रहते, विकल्प से ।

वा. पदान्त यर् को अनुनासिक प्रत्यय परे रहते नित्य अनुनासिक हो, लोक में ।

७७. तवर्ग को परसवर्ण हो, लकार परे रहते ।

७८. उद् से परे स्था और स्तम्भ को पूर्वसवर्ण हो ।

७९. पञ्चमीनिर्देश से क्रियमाण कार्य पञ्चमीनिर्दिष्ट से अव्यवहित पर को समझना चाहिए।

८०. पर को जो कार्य किया जाये वह पर के आदि वर्ण को होता है । (अघोषमहाप्राण विवार श्वास वाले स् को वैसा ही थकार होता है) ।

८१. हल् से परे झर् का लोप हो सवर्ण झर् परे रहते ।

८२. खर् परे रहते झल् को चर्त्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८३. झयो होऽन्यतरस्याम् ८।४।६२।। झयः परस्य हस्य पूर्वसवर्णो वा स्यात्। संवारस्य नादस्य घोषस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः । वाग्घरिः । वाग्हरिः ।

८४. शश्छोऽटि ८।४।६३।। पदान्तात् झयः परस्य शस्य छो वा स्यादटि । तच्छिवः, तच्शिवः । पदान्तात् किम्–विरप्शम् । वा. छत्वममीति वाच्यम् । तच्छ्लोकेन । अमि किम्–वाक् श्च्योतति ।

८५. मोऽनुस्वारः ८।३।२३।। मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि । हरिं वन्दे । पदस्य किम्–गम्यते ।

मध्यमनोरमा

उत्थ्तम्भनमित्यत्र एकस्यकारः, थकारस्य खरि चेति चर्त्वं न भवति । खरि चेति सूत्रं त्रिपाद्यां पूर्वम्, उदः स्थास्तम्भोरिति परम्, अतः खरि चेति चर्त्वं प्रति उदः स्थास्तम्भोरिति असिद्धम्, तस्यासिद्धतया तेन विहितस्य थकारस्य सुतरामभावात् । खरि चेति सूत्रदृष्ट्या सकार एवास्ति, कस्य चर्त्वं विधेयमिति । **वाग्घरिरिति**—वाग्+हरिः इति स्थिते हस्य पूर्वसवर्णः घकारः । हशः संवादा नादा घोषाश्चेति हकारस्य संवारनादघोषस्य, वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणा इति महाप्राणस्य च स्थाने तादृशो घकारः । **तच्छिव इति**—तद्+शिव इति स्थिते दकारात् झयः परस्य शकारस्य अटि इकारे परतश्छकारः । दकारस्य स्तोः श्चुना श्चुरिति जकारः, तस्य खरि चेति चकारः। **विरप्शमिति**—विपूर्वात् रप् धातोः पकारो झय् भवति न तु पदान्तः इति शस्य न छः, शप्रत्यय औणादिकः । **छत्वममीति**—शश्छोऽटीति सूत्रे अटीत्यपहाय तस्य स्थाने अमीति वक्तव्यमित्यर्थः । अम् प्रत्याहारः अइउण् इत्यकारेण ञमङणनम् इति मकारेण । **तच्छ्लोकेनेति**—तद्+श्लोकेनेति स्थिते शस्य छः, लकारे अमि परतः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उत्तम्भनम्—उद्+स्तम्भनमिति दशायाम् उदः स्थास्तम्भोरिति सस्य पूर्वसवर्णे थकारे उद् थ् तम्भनमिति जाते झरो झरि सवर्णे इति थस्य लोपें खरि चेति दस्य चर्त्वे तकारे उत्तम्भनमिति। थलोपाभावे उत्थ्तम्भनमिति । तच्छिव इत्यत्र पूर्वं दस्य श्चुत्वेन जः, ततः छत्वमिति ज्ञेयम् । मध्यमनोरमापाठः चिन्त्यः। **हरिवन्दे**—हरिम् वन्दे इत्यत्र मोऽनुस्वार इति मस्यानुस्वारः । **पदस्येति**—गम्यते इत्यत्र मकारस्य पदान्तत्वाभावान्नानुस्वारः ।

हिन्दी

८३. झय् से पर हकार को पूर्वसवर्ण हो, विकल्प से ।

८४. पदान्त झय् से परे अट्परक श् को छ् होता है, विकल्प से ।

वा. पदान्त झय् से परे अम् परक श् को छ् हो ऐसा कहना चाहिए ।

८५. मान्त पद को अनुस्वार हो हल् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८६. नश्चापदान्तस्य झलि ८।३।२४॥ अपदान्तस्य नस्य मस्यानुस्वारो झलि । यशांसि । आक्रंस्यते । झलि किम् – मन्यते ।
८७. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८॥ शान्तः । अङ्कितः ।
८८. वा पदान्तस्य ८।४।५९॥ त्वङ्करोषि, त्वं करोषि ।
८९. मो राजि समः क्वौ ८।३।२५॥ क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । सम्राट् ।
९०. हे मपरे वा ८।३।२६॥ मपरे हकारे मस्य मो वा । किम्ह्मलयति, किं ह्मलयति । वा. यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम् । कियँ ह्यः, किं ह्यः । किवँ ह्वलयति, किं ह्वलयति । किलँ ह्लादयति, किं ह्लादयति ।
९१. नपरे नः ८।३।१७॥ नपरे हकारे मस्य नो वा । किन्ँ ह्नुते, किं ह्नुते ।
९२. ङः सि धुट् ८।३।३९॥ ङात्परस्य सस्य धुड् वा ।

मध्यमनोरमा

यशांसीति—यशस् शब्दस्य शौ परतः नुमागमे सति नकारस्याऽनुस्वारः । **आक्रंस्यते इति**—आङ्पूर्वात् क्रमः लृटि स्यप्रत्यये क्रमो मस्याऽनुस्वारः । **शान्त इति**—शम् धातोः क्तप्रत्यये उपधादीर्घे शमो मस्याऽनुस्वारे तस्य तकारे परतस्तकारसवर्णो नकारः । त्वम् करोषीति स्थिते मोऽनुस्वारे तस्य ककारसवर्णो ङकारः । **सम्राडिति**—सम्पूर्वात् राज् धातोः क्विपि व्रश्चेति षत्वे झलां जशोऽन्त इति षस्य डकारे सम् राडिति स्थिते मोऽनुस्वारे प्राप्ते मस्य म एव । **कियँ ह्यः इति**— किम् ह्यः इति स्थिते यपरे हकारे मस्याऽनुनासिको यकारः । एवञ्च वपरहकारे मस्यानुनासिको वकारः । लपरे हकारे मस्यानुनासिको लकारः ।

मध्यमनोरमापूरणी

झलि किमिति—सूत्रे झल्पदाभावे मन्यते इत्यत्र यकारस्य झल्त्वाभावात् अनुस्वारः स्यात्। **अङ्कित इति**—अन्क् धातोः क्तप्रत्यये नश्चापदान्तस्येति अनुस्वारे अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण इति परसवर्णः ङकारः । **त्वङ्करोषीति**—त्वम् करोषि इति जाते नश्चापदान्तस्य झलीति मस्यानुस्वारे वा पदान्तस्येति परसवर्णो ङकारः । **यवलपरे**—यपरे वपरे लपरे च हकारे मस्य 'यवल' इत्येते अनुनासिका आदेशाः क्रमशः भवन्ति । **कियँ ह्यः**—किम् ह्यः इत्यत्र 'यवलपरे यवला वेति' मस्यानुनासिको यँ इत्यादेशः ।

हिन्दी

८६. अपदान्त न् और म् को अनुस्वार हो झल् परे रहते ।
८७. अनुस्वार को परसवर्ण हो यय् परे रहते ।
८८. पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण हो ।
८९. क्विबन्त राज्धातु के परे रहते सम् के म् को म् ही हो ।
९०. म-परक हकार परे रहते म् को म् ही हो ।
वा. यवलपरक हकार के परे रहते म् को अनुनासिक यँ वँ लँ आदेश हो ।
९१. नपरक हकार के परे रहते म् को न् हो विकल्प से ।
९२. ड से परे स् को विकल्प से धुट् का आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९३. आद्यन्तौ टकितौ १।१।४६॥ टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः । षटत्सन्तः, षट्सन्तः ।

९४. ङ्णोः कुक् टुक् शरि ८।३।२८॥ ङकारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा स्तः शरि । कुक्टुकोरसिद्धत्वान्न जश्त्वम् ।

वा. चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् । प्राङ्ख् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, प्राङ् षष्ठः । सुगण्ठ् षष्ठः । सुगण् षष्ठः ।

९५. नश्च ८।३।३०॥ नान्तात्परस्य सस्य धुड् वा । सन्त्सः, सन्सः ।

९६. शि तुक् ८।३।३१॥ नस्य पदान्तस्य शे तुग् वा । सञ्छम्भुः , सञ्च्छम्भुः, सञ्च्शम्भुः, सञ् शम्भुः ।

ञछौ ञचछां ञचशा ञशाविति चतुष्टयम् ।
रूपाणामिह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पनात् ॥

मध्यमनोरमा

षट्त्सन्तः इति—षड् सन्तः इति स्थिते डात्परस्य सस्य धुडागमः, तस्य धकारस्य खरि चेति तकारः, डस्य खरि चेति टः । प्राङ्क्षष्ठ इति– प्राङ् षष्ठ इति स्थिते शरि षकारे परतः ङकारस्य कुक्, कष्संयोगे क्षः । **सञ्छम्भुरिति**—सन् शम्भुरिति स्थिते शे परे नकारस्य तुक्, सन्त् शम्भुरिति जाते शश्छोऽटीति शस्य छकारे[I] तकारस्य स्तोः श्चुनेति श्चुत्वेन चः, नकारस्य तेनैव चुत्वेन ञः, झरो झरीति चकारलोपे सञ्छम्भुः । चलोपाभावे सञ्च्छम्भुः, तुकोऽभावे सञ्छम्भुः, छत्वाभावे सञ्च्शम्भुः, छत्वतुकोर्द्वयोरभावे सञ्शम्भुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

किन्ँ ह्नुते इति—किम् ह्नुते इति जाते नपरे नः इति मस्यानुनासिको नः । विकल्पेऽनुस्वारः। **प्राङ्ख् षष्ठ इति**—प्राङ् षष्ठ इत्यत्र कुकि चयो द्वितीया इति कस्य खः । विकल्पे कषसंयोगे क्षो भवति । अत्र ककारस्य जश्त्वं न भवति पूर्वत्रिपादिदृष्ट्या कुकोऽसिद्धत्वात् । **सन्त्सः इति**—सन्+सः इति स्थिते नश्चेति सस्यादौ धुटि सन्धसः इति जाते धस्य जश्त्वे दकारे दस्य चर्त्वे तकारे सन्त्सः इति । धुटो विकल्पे सन्सः इत्येव ।

हिन्दी

९३. टित् और कित् जिसको कहा जाये वे क्रम से उक्त वर्ण के आदि और अन्त–अवयव होते हैं ।

९४. ङकार णकार को कुक् और टुक् आगम विकल्प से हो शर् परे ।

वा. चय् को द्वितीय अक्षर हो जाये शर् परे रहते, पौष्करसादि आचार्य के मत में ।

९५. नान्त से पर स् को धुट् आगम विकल्प से होता है ।

९६. पदान्त न् को श-परे रहते तुक् हो विकल्प से ।

I. पूर्वं तकारस्य श्चुत्वं नकारस्य च श्चुत्वं विधाय छत्वं विधेयम्, पूर्वत्रिपादिशास्त्रस्य प्राक्प्रवृत्तिरुचिता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९७. ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८।३।३२।। ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं तस्मात् परस्याचो नित्यं ङमुट् । प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । सन्नच्युतः ।
९८. समः सुटि ८।३।५।। समो रुः सुटि ।
९९. अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८।३।२।। अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्याऽनुनासिको वा ।
१००. अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ८।३।४।। अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः ।
१०१. खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८।३।१५०।। खरि अवसाने च पदान्तस्य रेफस्य विसर्गः ।
वा. संपुंकानां सो वक्तव्यः । सँस्कर्ता, सँस्स्कर्ता ।
१०२. पुमः खय्यम्परे ८।३।६।। अम्परे खयि पुमो रुः स्यात् । पुँस्कोकिलः पुंस्कोकिलः ।

मध्यमनोरमा

अनुनासिकं विहायेति—अत्र सूत्रे अनुनासिकादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, तेन अनुनासिकं विहायेत्यर्थो लभ्यते । तेन रोः पूर्वस्याकारस्य यदा अनुनासिको न भवति तदा रोः पूर्वस्मादकारात् परोऽनुस्वारागमः । **सँस्कर्तेति**—सम् पूर्वकात् कृधातोः तृच्, संपरिभ्यां करोतौ भूषणे इति कृधातौ सुडागमः । सम्+स्कर्ता इति स्थिते समो मस्य रुः । रोः पूर्वस्याकारस्य पक्षेऽनुनासिकादेशः ।[1] तदभावपक्षेऽकारात् परोऽनुस्वारागमः, रोर्विसर्गः, तस्य संपुंकानामिति सः । **पुँस्कोकिल इति**—पुम् कोकिल इति स्थिते पुमो मस्य रुः, रोर्विसर्गः, तस्य संपुंकानामिति सः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रत्यङ्ङात्मेति- प्रत्यङ्+आत्मेति स्थिते ङमो ह्रस्वादिति ङुट् । सुगण्+ईशः इत्यत्र णुटि सुगण्णीश इति । सन्+अच्युतः, नुटि सन्नच्युतः ।

हिन्दी

९७. ह्रस्व से पर जो ङमन्त पद उससे पर अच् को नित्य ङमुट् हो ।
९८. सम् के म् को रु हो, सुट् परे रहते ।
९९. इस रुप्रकरण में रु से पूर्व को अनुनासिक होता है विकल्प से ।
१००. अनुनासिक को छोड़कर रु से पूर्व अच् को अनुस्वार होता है ।
१०१. खर् परे रहते या अवसान में पदान्त रेफ को विसर्ग होता है ।
वा. सं पुं और कान् सम्बन्धी विसर्ग को स् आदेश हो ।
१०२. अम्परक खय् के परे रहते पुम् के म् को रु होता है ।

---

1. मध्यमनोरमायाम् अनुनासिकःआदेशो लिखितः अनुस्वारश्चागमः । तत्र कारणम्- अकारस्य अनुनासिकः 'अँ' इति आदेशः, किन्तु अकारात् परः 'ं' इति आगम एव ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०३. नश्छव्यप्रशान् ८।३।७।। अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः स्यात् ।

१०४. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४।। खरि । चक्रिँस्त्रायस्व । चक्रिंस्त्रायस्व । अप्रशान् किम्- प्रशान्तनोति । पदस्य किम्-हन्ति । अम्परे किम् सन्त्सरुः= खड्गमुष्टिः ।

१०५. नॄन् पे ८।३।१०।। नॄनित्यस्य रुर्वा पे ।

१०६. कुप्वोः ≈क≈पौ च ८।३।३७।। कवर्गे पवर्गे च परे विसर्गस्य≈क≈पौ स्तः, चाद्विसर्गः । नॄँ≈ पाहि, नॄँः≈पाहि । नॄं ≈पाहि, नॄंः पाहि ।

१०७. सोऽपदादौ ८।३।३८।। विसर्गस्य सः स्यादपादाद्योः कुप्वोः ।

वा. पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम् । पयस्पाशम् । पयस्कल्पम् । यशस्काम्यति।

मध्यमनोरमा

अम्परे छवीति—अम्प्रत्याहारः परो यस्मात् तादृशश्छव् प्रत्याहारः, तस्मिन् परतो नकारान्तस्य पदस्य रुः । **चक्रिन्+त्रायस्वेति** स्थिते त्रेति रेफोऽम्, स परो यस्य तादृशश्छव् तकारस्तस्मिन् परतो नान्तस्य पदस्य चक्रिन् इत्यस्य रुः, अलोऽन्त्यस्येत्यन्तादेशः । **प्रशान्तनोति इति**—प्रशाम्यतीति प्रशान्, मोनो धातोरिति मस्य नः । अत्र अम् अकारस्तत्परश्छव् तकारः, तस्मिन् परतः प्रशान् इति नान्तस्य पदस्य रुत्वं स्यात् यदि अप्रशानिति निषेधो न क्रियेत । **हन्तीति**—हन्धातोस्तिपि हन्तीति पदं न तु हन् इति नान्तं पदम् । कुप्वोः ≈क ≈पौ स्तः इति- ककारः पकारश्च उच्चारणार्थः । तेन विसर्गस्य अर्धविसर्गसदृश आदेशः इत्यर्थः । नॄन् पाहीति स्थिते नकारस्य रुत्वे विसर्गे तस्योपध्मानीयः । अत्र पक्षेऽनुनासिकाऽनुस्वाराभ्यां रूपद्वयम्, विसर्गस्य पक्षे विसर्गः । अस्मिन्नपि पक्षेऽनुनासिकाऽनुस्वाराभ्यां रूपद्वयम्, रुत्वाभावे तु नॄन् पाहीति । तेन पञ्चरूपाणि।

मध्यमनोरमापूरणी

चक्रिँस्त्रायस्वेति—चक्रिन् इति नस्य रुत्वे अनुनासिके रेफस्य विसर्गे च कृते चक्रिँः त्रायस्वेति जाते विसर्जनीयस्य स इति विसर्गस्य सत्वम् । अनुस्वारपक्षे चक्रिंस्त्रायस्वेति रूपम् । **अम्परे किमिति**—नश्छव्येति सूत्रे अम्पर इति पदाभावे सन्त्सरुः इत्यत्र नकारात् परे तकारस्य अम्त्वाभावात् नकारस्य रुत्वं प्रसज्येत ।

हिन्दी

१०३. अम्परक छव् के परे रहते नान्त पद को रु आदेश हो ।

१०४. खर् परे रहते विसर्ग को स् होता है ।

१०५. नॄन् के न् को रु होता है प-परे रहते ।

१०६. कवर्ग और पवर्ग के परे रहते विसर्ग को≈ क और ≈ प आदेश होते हैं, पक्ष में विसर्ग को विसर्ग भी होता है ।

१०७. अपदादि कवर्ग पवर्ग के परे विसर्ग को स् होता है ।

वा. पाश कल्प क और काम्य परे रहते विसर्ग को स् हो ऐसा कहना चाहिए ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अनव्ययस्येति वाच्यम् । प्रातः कल्पम् ।
वा. काम्ये रोरेवेति वाच्यम् । नेह गीः काम्यति ।
१०८. इणः षः ८।३।३९।। इणः परस्य विसर्गस्य षः स्यात् पूर्वविषये । सर्पिष्पाशम् । सर्पिष्कल्पम् । सर्पिष्काम्यति ।
१०९. कस्कादिषु च ८।३।४८।। एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षः स्यादन्यस्य तु सः । कस्कः । कौतस्कुतः । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालमित्यादि । आकृतिगणोऽयम् ।
११०. तस्य परमाम्रेडितम् ८।१।२।। द्विरुक्तस्य परमाम्रेडितं स्यात् ।
१११. कानाम्रेडिते ८।३।१२।। कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते परे । काँस्कान्. कांस्कान् ।

मध्यमनोरमा

पयस्पाशमिति—पयस् शब्दात् पाशप् प्रत्ययः, पाशप् प्रत्ययस्तु पदं न भवति इति अपदादि पकारः, तस्मिन् परतः पयसः सकारस्य विसर्गे तस्य कुप्वोरिति सूत्रेण उपध्मानीये प्राप्ते सकारो विधीयते । **पयस्कल्पमित्यत्र** कल्पप्–प्रत्ययः । **यशस्कमित्यत्र** यशस्-शब्दात् कप्रत्ययः । **यशस्काम्यतीत्यत्र** यशस् शब्दात् काम्यच् प्रत्ययः । सनाद्यन्ता धातव इति धातुसंज्ञा, यशस्काम्येति धातुस्तस्माल्लडादिः, यशस्काम्यतीति सिद्धम् । **अनव्ययस्येति**—अव्ययभिन्नसम्बन्धिनो विसर्गस्य सकारो भवति । तेन प्रातर्शब्दात् कल्प प्रत्यये रस्य विसर्गे तस्य न सकारः, विसर्गस्याव्ययसम्बन्धित्वात्, प्रातरित्यस्याव्ययत्वात् । **काम्ये रोरेवेति**—काम्यच् प्रत्यये परतो रुस्थानिकस्यैव विसर्गस्य सकारः । तेन गीः काम्यतीत्यत्र गिर्शब्दात् काम्यचि गिरो रेफस्य विसर्गे तस्य न सकारः, रुस्थानिकविसर्गाभावात् । **इणः षः**—पूर्वविषये इति– अपदाद्योः कुप्वोः परतः इत्यर्थः । **कस्कादिषु च**—अन्यस्य **तु सः**—इण उत्तराद् विसर्गाद् भिन्नस्य । यथा कः+कः इति स्थिते कस्कः । कौतः+कुत इति स्थिते कौतस्कुतः, अत्र विसर्गोऽकारादुत्तरः न तु इण उत्तरः, तेन सकारः । **सर्पिष्कुण्डिकेत्यत्र** सर्पिः कुण्डिकेति स्थिते इण उत्तरो विसर्ग इति तस्य षकारः । **काँस्कानिति**—कान्+कान् इति स्थिते प्रथमकान्नकारस्य रुः, तस्य संपुंकानामिति सः ।

इति हल्सन्धिः

मध्यमनोरमापूरणी

सर्पिष् शब्दात् पाशपि कल्पपि काम्यचि च कृतेषु षत्वस्यासिद्धतया ससजुषो रुःइति सस्य रुत्वे विसर्गे च कृते कुप्वोरिति सूत्रं प्रबाध्य इणः षः इति विसर्गस्य षत्वम्, तेन **सर्पिष्पाशम्. सर्पिष्कल्पं**, सर्पिष्काम्यतीति ।

हिन्दी

वा. अव्यय से भिन्न विसर्ग को स हो ऐसा कहना चाहिए ।
वा. काम्य के परे रु के विसर्ग को ही स् हो ।
१०८. इण् से परे विसर्ग को ष हो अपदादि कवर्ग पवर्ग परे रहते ।
१०९. कस्कादिगण में इण् से उत्तर विसर्ग को ष हो तथा इण्भिन्न से परे को स् ।
११०. द्विरुक्त के पर रूप को आम्रेडित संज्ञा होती है ।
१११. कान् के नकार को रु हो आम्रेडित परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११२. छे च ६।१।७३।। ह्रस्वस्य छे तुक् । स्वच्छाया । शिवच्छाया ।
११३. आङ्माङोश्च ६।१।७४।। तुक् छे । आच्छादयति । माच्छिदत् ।
११४. दीर्घात् ६।१।७५।। तुक् छे । म्लेच्छति ।
११५. पदान्ताद् वा ६।१।७६।। दीर्घात् पदान्ताच्छे तुग्वा । लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मीछाया ।

।। इति हल्सन्धिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

काँस्कानिति—कान्+कानिति स्थिते कानाम्रेडिते इति नस्य रुत्वेऽत्रानुनासिक इति अनुनासिके रोः विसर्गे संपुंक़ानामिति सः । अनुस्वारपक्षे कांस्कानिति । **स्वच्छायेति**—स्व+छायेति, शिव+छायेति च छेदः, छे चेति तुकि तस्य जश्त्वे दकारे स्तोरिति दस्य जकारे जस्य खरि चेति चर्त्वे चकारे स्वच्छाया, शिवच्छायेति बोध्यम् । **आ+छादयति, मा+छिदत्** इत्युभयत्र आङ्माङोश्चेति तुकि जश्त्वे श्चुत्वे चर्त्वे च **आच्छादयति, माच्छिददिति** । लक्ष्मी+छायेति जाते तुकि सर्वं कार्यं पूर्ववत् ।

।। इति हल्सन्धिः ।।

हिन्दी

११२. ह्रस्व को तुक् हो छ परे रहते ।
११३. आङ् व माङ् से परे छ् रहते तुक् होता है ।
११४. दीर्घ से परे छ् रहने पर तुक् हो जाए ।
११५. पदान्त दीर्घ से परे छ रहने पर तुक् हो जाए ।

।। इति हल्सन्धिः ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम्

११६. विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४।। खरि । विष्णुस्त्राता ।

११७. शर्परे विसर्जनीयः ८।३।३५।। शर्परे खरि विसर्गस्य विसर्गो नत्वन्यत् । कः त्सरुः । घनाघनः क्षोभणः ।

११८. वा शरि ८।३।३६।। शरि विसर्गस्य विसर्गो वा । हरिः शेते । हरिश्शेते।

वा. खर्परे शरि वा विसर्गस्य लोपो वक्तव्यः । हरि स्फुरति, हरिः स्फुरति।

।। इति विसर्गसन्धिः ।।

मध्यमनोरमा

शर्परे—शर् परो यस्मात् स शर्परस्तस्मिन् खरीत्यर्थः । **कः त्सरुः** इत्यत्र शर् सकारः, तत्परः खर् तकारः, तस्मिन् परतः क इति विसर्गस्य विसर्ग एव । क्षोभण इत्यत्र कषसंयुक्ते क्षकारे शर् षकारः, तत्परः खर् ककारः, तस्मिन् परतः **घनाघनः इति** विसर्गस्य विसर्गः । वा शरि। विसर्गस्य विसर्गाभावपक्षे विसर्जनीयस्य सः, तस्य स्तोः श्चुना श्चुरिति शः । **खर्परे शरीति**- खर् परो यस्मात् तादृशे शरि विसर्गलोपः । **हरि स्फुरति** इत्यत्र खर् फकारस्तत्परः शर् सकारः, तस्मिन् परतो हरिः इति विसर्गस्य लोपः । तद्भावे वा शरि इति विसर्गविकल्पः । विसर्गाभाव-पक्षे विसर्जनीयस्य सः ।

।। इति विसर्गसन्धिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

विष्णुस्त्रातेति—विष्णुः त्राता इति स्थिते विसर्जनीयस्य सः इति विसर्गस्य सः । **शर्परे इति**— खरवसानयोर्विसर्जनीयः इति सूत्रात् मण्डूकप्लुत्या खर इत्यनुवर्तते । शर् परो यस्मात्, सः शर्परः, तस्मिन् शर्परे इति पदम् खरि इत्यस्य विशेषणम् । विसर्जनीयस्यः सः इति सूत्रात् 'विसर्जनीयस्य' इत्यनुवर्तते । **सूत्रार्थः**—शर्परे खरि विसर्जनीयस्य = विसर्गस्य विसर्ग एव भवति, नान्यः । तेन **कः त्सरुः** इत्यत्र विसर्जनीयस्य सः इति सत्वं न भवति, घनाघनः क्षोभणः इत्यत्र च कुप्वोरिति जिह्वामूलीयश्च न भवति । विसर्गस्य उभयत्र विसर्ग एव भवति। **हरिः शेते**—विसर्जनीयस्येति सूत्रं प्रबाध्य वा शरीति विकल्पेन विसर्गस्य विसर्गः । पक्षे विसर्गस्य रुत्वे सकारस्य स्तोः श्चुना श्चुरिति शकारे हरिश्शेते इत्यपि भवति ।

हिन्दी

११६. विसर्ग को स् हो खर् परे रहते ।

११७. शर्परक खर् के परे रहते विसर्ग को विसर्ग ही हो अन्य नहीं ।

११८. शर् परे रहते विसर्ग को विसर्ग हो विकल्प से ।

वा. खर्परक शर् परे रहते विसर्ग का विकल्प से लोप होता है ।

इति विसर्गसन्धिः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ स्वादिसन्धिः

११९. ससजुषो रुः ८।२।६६।। पदान्तस्य सस्य सजुष्शब्दस्य च रुः स्यात् ।

१२०. अतो रोरप्लुतादप्लुते ६।१।११३।। अप्लुतादतः परस्य रोरुःस्यादप्लुतेऽति । शिवोऽर्च्यः । अतः किम्- देवा अत्र । अतीति किम्- श्व आगन्ता । अप्लुतात् किम्- एहि सुस्रोत ३ अत्र स्नाहि । प्लुतस्यासिद्धत्वादतः परोऽयम् । अप्लुतादिति विशेषणे तु तत्सामर्थ्यान्नासिद्धत्वम् । तपरकरणस्य तु न सामर्थ्यम्, दीर्घनिवृत्त्या चरितार्थत्वात् । अप्लुत इति किम्- तिष्ठतु पय अ३ग्निदत्त ।

मध्यमनोरमा

शिवोऽर्च्य इति—शिवस् अर्च्य इति स्थिते सकारस्य रुत्वे रोरुकारस्य उपदेशेऽजनुनासिक इदितीत्संज्ञायां तस्य लोपे रेफस्य अतो रोरिति उकारे शिव उ अर्च्य इति जाते आद्गुण इति अकारोकारयोर्गुणे शिवो अर्च्य इति जाते एङः पदान्तादिति ओकाराकायोः पूर्वरूपम् । **देवा अत्रेति**—देवास् अत्रेति स्थिते सकारस्य रुत्वे तस्य भोभगो इति यादेशे तस्य 'लोपः शाकल्यस्येति' लोपः । अत्र रोरुत्वं न भवति, रोराकारात् परत्वात्, अतः परत्वाभावात् । **श्व आगन्तेति**—श्वस् आगन्तेति स्थिते सकारस्य रुत्वे यत्वे यलोपः । अत्र रोरत्परत्वं नास्ति किन्तु आकारपरतो रुरस्तीति न उत्वम् । **एहि सुस्रोत ३ इति**—सुस्रोतस् अत्र इति स्थिते दूराद्धूते चेति प्लुते रुत्वे यत्वे लोपे सुस्रोत ३ अत्रेति सिद्धम् । अत्र रोः प्लुताकारात् परत्वान्न उत्वम् । ननु अतः इति तपरकरणादेव सुस्रोत ३ अत्रेत्यत्रापि उत्वं निवार्यताम्, दीर्घप्लुतयोः को विशेषः । यथा देवा अत्रेत्यत्र अत इति तपरकरणाद् दीर्घाकारात् परस्य रोरुत्वं न भवति तथा सुस्रोत ३ अत्रेत्यत्रापि प्लुताकारात् परस्य रोरुत्वं न भविष्यति । तपरकरणेन दीर्घप्लुतयोः तुल्यतया निराकरणात् अप्लुतादिति विशेषणं व्यर्थमेवेत्याशङ्क्य समाधते- प्लुतस्यासिद्धत्वादतः परोऽयमिति इत्यादि तपरकरणस्य त्विति- पर्यन्तप्रघट्टकेन । अतो रोरिति सूत्रं **त्रिपाद्यां पूर्वं**[1], प्लुतविधायकानि सूत्राणि गुरोरित्यादीनि पराणि, तेन अतो रोरिति दृष्ट्या प्लुतोऽसिद्ध इति अतः परोऽयं रुर्भवत्येवेति अप्लुतग्रहणं कृतमित्यर्थः । नन्वेवं प्लुतस्यासिद्धत्वादतः परो यथा रुस्तथा अप्लुतादपि परो रुर्भवत्येवेति सुस्रोत ३ अत्रेत्यत्र उत्वं स्यादेवेत्याशङ्क्याह- **अप्लुतादिति-**, अप्लुतादिति विशेषणे कृते उत्वं प्रति प्लुतस्यासिद्धत्वं न भवति तत्सामर्थ्यात्, तस्य अप्लुतादिति विशेषणस्य सामर्थ्यात् प्लुतस्यासिद्धत्वेऽप्लुतादिति विशेषणमेव व्याहतं स्यात् । तत्सामर्थ्यानुरोधादप्लुतादितिविशेषणं प्रति प्लुतस्य नासिद्धत्वम् । तपरकरणं प्रति तु असिद्धत्वमस्त्येव, यतः प्लुतस्याऽसिद्धत्वेऽपि तपरकरणं दीर्घनिवृत्त्या सफलम् ।

हिन्दी

११९. पदान्त स् और सजुष् शब्द को रु हो जाये ।

१२०. अप्लुत अत से पर रु को उ हो जाये अप्लुत अत् परे रहते ।

---

1. "अतो रोरिति त्रिपाद्यां पूर्वम्, प्लुतविधायकानि सूत्राणि गुरोरित्यादीनि पराणि" इति मध्यमनोरमा पाठोऽयुक्तः । अतो रोरित्यस्य सपादसप्ताध्यायीस्थत्वात् । वस्तुतः अतो रोरिति सपादसप्ताध्यायीसूत्रदृष्ट्या गुरोरनृत इति त्रैपादिकस्यासिद्धत्वं बोध्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२१. हशि च ६।१।११४।। अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्याद्धशि । शिवो वन्द्यः।
१२२. भो-भगो-अघो-अपूर्वस्य योशि ८।३।१७।। एतत्पूर्वस्य रोर्यादिशोऽशि परे। देवा इह, देवायिह ।
भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः, तेषां रुत्वे यत्वे च कृते ।
१२३. व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ८।३।१८।। पदान्तयोर्वकारयकार-योर्लघूच्चारणौ वयौ वा स्तोऽशि परे । यस्योच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां शैथिल्यं जायते स लघूच्चारणः ।
१२४. ओतो गार्ग्यस्य ८।३।२०।। ओकारात् परस्य पदान्तस्यालघुप्रयत्नस्य यस्य नित्यं लोपः । भो अच्युत । लघुप्रयत्नपक्षे-भोयच्युत । पदान्तस्य किम्-तोयम्।
१२५. हलि सर्वेषाम् ८।३।२२।। भो-भगो-अघोऽपूर्वस्य यस्य नित्यं लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि । देवा यान्ति ।

मध्यमनोरमा

प्लुतस्यांसिद्धत्वे अप्लुतादित्युक्तिस्तु व्यर्थैव स्यादिति विशेषणस्य सामर्थ्यम्, तपरकरणस्य नेत्यर्थः । एवं पयस् अग्निदत्तेति स्थिते गुरोरनृत इतितअकारः प्लुतः । **शिवो वन्द्य इति**—शिवस् वन्द्य इति स्थिते सस्य रुत्वे उत्वेआद्गुणः। देवास्+इह इति स्थिते सस्य रुत्वे यत्वे लोपः शाकल्यस्येति यकारलोपे यलोपस्यासिद्धत्वाद् गुणो न, **देवा इहेति** रूपम् । यलोपाभावे **देवायिहेति** । **लघूच्चारणौ वयाविति**—ययोर्वकारयकारयोरुच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्रमध्यमूलानां शैथिल्यं तौ लघूच्चारणौ । ओकारात् परस्यालघूच्चारणस्य नित्यं लोपः, **भो अच्युतेति** । लघुप्रयत्नपक्षे न लोपः **भोयच्युतेति** । **तोयमिति**—यकारो न पदान्तः, अतोऽलघूच्चारणस्यापि यकारस्य न लोपः । **हलि सर्वेषामिति**—सर्वेषां ग्रहणेन लघूच्चारणानामलघूच्चारणानाञ्च यकाराणां लोपस्तेन भो देवा इत्यत्र लघुप्रयत्नपक्षेऽपि लोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हशि चेति—अतो रोः अप्लुताद् इति त्रीणि पदानि पूर्वसूत्रात् अनुवर्तन्ते । ऋत उत् इति सूत्रात् 'उत्' इत्यनुवर्तते । **सूत्रार्थः**—अप्लुतात् अतः = 'अ' इत्यस्मात् परस्य रोः उत्त्वं भवति, हशि परे । भोस्+अच्युतेति स्थिते ससजुषो रुरिति सस्य रुत्वेऽनुबन्धलोपे भो भगो इति रोर्यादिशे भोय् अच्युतेति जाते व्योर्लघुप्रयत्नतरः इति यस्य लघुप्रयत्नतरे यादेशे **भोयच्युतेति** । पक्षे ओतो गार्ग्यस्येति यलोपे **भो अच्युत** इति । भोस् देवाः, भगोस् नमस्ते, अघोस् यान्ति, देवास् यान्ति, इत्यादिषु सस्य रुत्वे भोभगो इति रोर्यादिशे हलि सर्वेषामिति यलोपे **भो देवाः, भगो नमस्ते, अघो याहि,** देवा यान्तीति ।

हिन्दी

१२१. अप्लुत अत् से पर रु को उ हो जाये हश् परे रहते ।
१२२. भो पूर्वक भगोपूर्वक अघोपूर्वक व अवर्ण पूर्वक रु को य् आदेश होता है, अश् परे रहते ।
१२३. पदान्त वकार यकार को लघु - उच्चारण वाले व् और य् आदेश होते हैं, अश् परे रहते, विकल्प से ।
१२४. ओकार से परे पदान्त अलघु-प्रयत्न य् का नित्य लोप हो ।
१२५. भो पूर्वक भगोपूर्वक अघोपूर्वक एवं अवर्णपूर्वक य् का नित्य लोप होता है, हल् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२६. रोऽसुपि ८।२।६९।। अह्नो रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः। असुपि किम्– अहोभ्याम् । अत्र अहन् इति रुत्वम् । वा. रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् ।। अहोरूपम् । गतमहोरात्रिरेषा । एकदेशविकृतन्यायेनाहोरात्रः । अहो रथन्तरम् । वा. अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः । विसर्गापवादः । अहर्पतिः। धूर्पतिः । पक्षे विसर्गोपध्मानीयौ ।

१२७. रो रि ८।३।१४।। रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् ।

१२८. ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११।। ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः स्यात् । पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते ।

१२९. ढो ढे लोपः ८।३।१३।। लीढः । अणः किम्–तृढः, वृढः । मनस्+रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति लोपे च प्राप्ते ।

मध्यमनोरमा

अहरह इति—अहन् अह इति स्थिते नकारस्य रेफः, रोरभावादुत्वं न । **अहोरूपमिति**—अहन् रूपमिति स्थिते रोऽसुपि इति रेफे प्राप्ते अनेन रुत्वं, रुत्वे जाते तस्य हशि चेति उत्त्वम् । रेफे सति उत्वं न स्यात् । **एकदेशेति**—अहश्च रात्रिश्चेति समासे समासान्तप्रत्यये इकारलोपेऽपि एकदेशस्य इकारस्य लोपरूपविकारेऽपि स शब्द एवास्ति इति अत्रापि रुत्वे उत्वे गुणः, अहोरात्रः । **अहर्पतिरिति**—अहन् पतिरिति स्थिते रोऽसुपीति नकारस्य रेफे तस्य विसर्गे प्राप्ते पक्षे रेफस्य रेफ एव विधीयते विसर्गादिबाधनार्थम् । रेफाभावपक्षे विसर्गादिकं भवत्येव। **ढ्रलोपे इति**—ढश्च रश्चेति ढ्रौ, तौ लोपयतीति ढ्रलोपः, ढकारलोपनिमित्तो ढकारः, रेफलोपनिमित्तो रेफः, तयोः परतः पूर्वस्य दीर्घः । पुनर्+रमते इति स्थिते रेफस्य रेफे परतो लोपः, रेफलोपनिमित्ते रेफे परतः पूर्वस्याकारस्य दीर्घः । ढकारलोपनिमित्ते ढकारे परतो दीर्घस्तु लीढ इत्यादौ । लिह् धातोः क्तप्रत्यये होढः इति ढ़कारे झषस्तथोर्धोऽधः इति तकारस्य धकारे ष्टुना ष्टुरिति धस्य ढकारे ढो ढे लोप इति प्रथमढकारलोपे ढ्रलोप इति ढकारे परत इकारस्य दीर्घः । **अणः किम् ? तृढः वृढः इति**—तृंहू हिंसायां वृहू उद्यमने, क्तप्रत्ययः, अनिदितामिति नलोपः, होढः, झषस्तथोरिति तकारस्य धकारः, तस्य ष्टुत्वेन ढः, ढो ढे लोप इति ढस्य लोपः । अत्र ढ़कार- लोपनिमित्ते ढकारे परतः ऋकारस्य दीर्घो न अण्त्वाभावात् । अत्राण् पूर्वणकारेण ।

मध्यमनोरमापूरणी

असुपि किम्—यद्येतन्नोच्येत तदा अहोभ्याम् इत्यत्र नस्य सुपि परे रेफे सति उत्वं न स्यात्, उत्वाभावे गुणो न स्यात् । गुणाभावे इष्टं रूपं न सिद्ध्येत् । हरिस्+रम्यः शम्भुस् राजते इत्युभयत्र सस्य रुत्वे रोरीति रलोपे ढ्रलोपे पूर्वस्येति पूर्वस्य इकारस्य उकारस्य च दीर्घे **हरी रम्यः, शम्भू राजते इति ।**

हिन्दी

१२६. अहन् के न् को रेफ आदेश हो जाये सुप् परे नहीं वा. रूप रात्रि और रथन्तर के आगे रहने पर अहन् के न् को रु होता है ।

वा. पत्यादि के आगे रहने पर अहरादिगण पठित को विकल्प से रेफ होता है ।

१२७. रेफ परे रहते रेफ का लोप होता है ।

१२८. ढ़कार और रेफ के लोप में निमित्त ढ़कार व रेफ परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो ।

१२९. ढकार के परे रहते पूर्वढकार का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३०. विप्रतिषेधे परं कार्यम् १।४।२॥ तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति लोपे प्राप्ते । पूर्वत्रासिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ।

१३१. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२॥ अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपः स्याद्धलि न तु नञ्समासे । एष विष्णुः । स शम्भुः । अकोः किम्– एषको रुद्रः । अनञ्समासे किम्– असः शिवः । हलि किम्– एषोऽत्र ।

१३२. सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ६।१।१३४॥ स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि, पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत । सेमामविड्ढि प्रभृतिम् । सैष दाशरथी रामः ।

॥ इति स्वादिसन्धिः ॥

मध्यमनोरमा

मनोरथ इति—मनसः सकारस्य रुत्वे हशि चेति उत्वं भवति । परत्वात्तु रोरीति लोपः प्राप्नोति, तुल्य बलयोर्विरोधे सति परं कार्यं भवति, उत्वलोपौ तुल्यबलौ, शिवो वन्द्य इत्यत्र उत्वं सावकाशन्तत्र रेफपरत्वाभावाल्लोपप्राप्तिरेव नास्ति । पुनर् रमते इत्यत्र रोरीति सावकाशं, तत्रोत्वस्य प्राप्त्यभावात्, पुनरिति रेफस्य रुसम्बन्धित्वाभावात् । तुल्यबलत्वं परस्पराबाधेन सावकाशत्वम् । तयोस्तुल्यबलयोः हशि चेति उत्वस्य रोरीति लोपस्य च मनोरथ इत्यत्र विरोधे परस्य रोरीति लोपस्य प्रसङ्गः इति पूर्वपक्षः । **तत्रोत्तरं**—रोरीति लोपस्यासिद्धत्वादिति – रोरीति लोपो हशि चेति सूत्रात् त्रिपाद्यां परः इति हशि चेति दृष्ट्या रोरीति सूत्रं नास्त्येव, कानयोस्तुल्यबलता, नहि अस्ति असिद्धः सिद्धेन तुल्यबल इति रोरीति लोपेन हशि चेत्युत्वं बाधितुं न शक्यते इत्युत्वमेवेति सिद्धं मनोरथ इति । **अककारयोरिति**—न ककारो ययोस्तौ अककारौ, तयोरेतत्तदोः परो यः सुस्तस्य लोपः । एषस् विष्णुरिति स्थिते एतच्छब्दात् परस्य सोर्लोपः । **सस् शम्भुरिति** स्थिते तच्छब्दात् परस्य सोर्लोपः। **एषक इति**—एषकस् रुद्र इति स्थिते अयमेतद् सककारक इति तस्मात् परस्य सोर्न लोपः, किन्तु रुत्वम् उत्वं, गुणः । **अस इति**—न सः असः, अत्र नञ्समासे तद् शब्द इति तस्मात् परस्य सोर्न लोपः, किन्तु रुत्वं, विसर्गः । **एषोऽत्रेति**—एषस् अत्रेति स्थिते हल्परत्वाभावात् एष एतस्मात् परस्य सस्य न लोपः, किन्तु रुत्वे उत्वे गुणे एङः पदान्तादिति पूर्वरूपम् । **सेमामविड्ढि इति**—अयम् ऋक्पादः, तत्र सस् इमामिति स्थिते सकारस्य लोपे आद्गुण इति गुणे सेमामिति रूपं भवति, तदा पादपूरणं भवति । सकारस्य लोपोऽनेन विधीयते चेत्तदा पादपूरणं भवति । सस् इति सकारस्य रुत्वे तस्य भोभगो इति यत्वे यकारस्य लोपे यलोपस्यासिद्धत्वात् सन्धिर्न स्यात्, सोऽचि लोप इति सूत्रेण लोपे एतस्य सपादसप्ताध्यायी स्थत्वादसिद्धत्वाऽभावेन सन्धिर्भवति, तदा छन्दोभङ्गो न भवतीति पादपूरणम् । एवं **सैष दाशरथी राम** इत्यत्र सस् एष इति स्थिते सकारलोपाऽभावे रुत्वे यत्वे यलोपे तस्यासिद्धत्वात् सन्ध्यभावे स एष दाशरथी राम इति स्यात्, तदा छन्दोभङ्गात् पादपूरणं न स्यात् । सोऽचि लोपे चेदिति सूत्रेण सस्य लोपे तस्यासिद्धत्वाभावात् वृद्धिरेचीति वृद्धिः, तदा पादपूरणं भवति इत्यर्थः ।

॥ इति स्वादिसन्धिः ॥

हिन्दी

१३०. तुल्यबल वालों में विरोध होने पर जो पर होता है वही कार्य होता है ।

१३१. ककार रहित एतद् और तद् के सु का लोप हो हल् परे रहते, नञ्समास में नहीं।

१३२. तद् के सु का लोप हो अच् परे रहते पाद की पूर्ति यदि लोपे होने पर ही हो रही हो तब।

॥ इति स्वादिसन्धिः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ अजन्त पुँल्लिङ्गप्रकरणम्

१३३. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १।२।४५।। धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्

१३४. कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६।। कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः ।

१३५. प्रत्ययः ३।१।१।। आपञ्चमपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

१३६. परश्च ३।१।२।। अयमपि तथा ।

१३७. ङ्याप्प्रातिपदिकात् ४।१।१।। ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च इत्यापञ्चमपरिसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

मध्यमनोरमा

अर्थवत्—धातोः प्रातिपदिकसंज्ञायां लडादिना स्वादिबाधेऽपि अहन् इत्यत्र प्रातिपदिकान्तत्वान्नकारस्य लोपः स्यान्न लोपः प्रातिपदिकेति सूत्रेण । अतो धातोः प्रातिपदिकसंज्ञाया वर्जनम्। ननु प्रत्ययं प्रत्ययान्तमिति द्वयमपि किमिति वर्जितम्, एकस्य अपि प्रातिपदिकसंज्ञाया वर्जने प्रत्ययात् प्रत्ययान्ताद् वा विभक्त्युत्पत्तौ विशेषाभावादुभयोरर्थादिव वर्जनं भविष्यतीति चेदुच्यते- अस्ति विशेषः, प्रत्ययस्य प्रातिपदिकत्वे हरिषु करोषीत्यत्र प्रत्यययोः सुप्सिपोः प्रातिपदिकत्वं स्यात्, तस्मात्स्वाद्युत्पत्तौ सुपसिप्मात्रस्य पदत्वं स्यात्, ततश्च सात् पदाद्योरिति षत्वनिषेधः स्यात्, हरिषु करोषीति विशिष्टस्य प्रातिपदिकत्वे तु हरिषु शब्दात् स्वाद्युत्पत्तौ हरिषुः इत्यादिपदम्, इति सकारस्य पदादित्वाभावात् षत्वं स्यादिति विशेषादुभयोरुपादानम् । **अर्थवदिति किम् ?** धनं वनमित्यादौ प्रतिवर्णं स्वाद्युत्पत्तिः स्यादिति। **कृत्तद्धितेति**—कृद्ग्रहणेन कृदन्तः, तद्धितग्रहणेन तद्धितान्तः । यद्यपि संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति, तथापि अर्थवदित्यनुवर्तते, तत्र मतुप् प्रशंसायाम्, तेन प्रशस्तार्थवत्वलाभः, प्राशस्त्यञ्च एकार्थीभावलक्षणं, तादृशप्रशस्तार्थवत्वं तु कृदन्ततद्धितान्तानामेव इत्यभिप्रायेण व्याचष्टे कृत्तद्धितान्तौ इति । **समास इति**—यद्यपि समासस्य प्रत्ययान्तत्वं नास्ति, राजन् ङस् पुरुष सु इति हि समासः । अत्र सुप्रत्ययः पुरुष शब्दाद् विहितः अतः पुरुष सु इति प्रत्ययान्तः, प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहिस्तदादेस्तदन्तस्यैव ग्रहणात् । एवं राजन् ङस् पुरुष सु इत्यादिरूपः समासोऽप्रत्ययान्त एवेति समासग्रहणं व्यर्थम्, तथापि समासग्रहणेन **नियम्यते-** अनेकपदस्य यदि प्रातिपदिकत्वं तर्हि समासस्यैवेति । तेन घटो भवतीति वाक्यस्य न प्रातिपदिकत्वम्। अन्यथा भवतीति तिप्प्रत्ययस्य भूधातोरेव विधानात् भवतीति प्रत्ययान्तं, घटो भवतीति वाक्यन्तु अप्रत्ययान्तमेवेति अर्थवदिति सूत्रेण प्रातिप-

हिन्दी

१३३. धातु प्रत्यय एवं प्रत्ययान्त तदादि को छोड़कर अर्थवान् शब्द स्वरूप को प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।

१३४. कृदन्त तद्धितान्त व समास को प्रातिपदिक संज्ञा होती है ।

१३५. पञ्चमाधिकार की समाप्ति तक प्रत्यय का अधिकार है, ।

१३६. परश्च का भी पञ्चमाध्याय तक अधिकार है ।

१३७. ङ्यन्तात् आबन्तात् व प्रातिपदिकात् का भी पञ्चमाध्याय की समाप्ति तक अधिकार है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३८. स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ४।१।२॥ ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः । सु औ जस्- प्रथमा । अम् औट् शस् द्वितीया । टा भ्याम् भिस्- तृतीया । ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस् - पञ्चमी । ङस् ओस् आम्- षष्ठी । ङि ओस् सुप् - सप्तमी ।

१३९. सुपः १।४।१०३॥ सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकैकश एकवचन- द्विवचन- बहुवचनसंज्ञानि स्युः ।

१४०. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १।४।२२॥ द्वित्वैकत्वयोरेते स्युः ।

१४१. विरामोऽवसानम् १।४।११०॥ वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञः स्यात् । रुत्वविसर्गौ । रामः । वा. अयोगवाहानामकारस्योपरि शर्षु चेति वाच्यम् । यमानुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीया अयोगवाहाः । तेनेह विसर्गस्य यर्त्वादनचि चेति द्वित्वपक्षे रामः ।

मध्यमनोरमा

दिकत्वं स्यादेव, तस्मान्नियमार्थमेतत्- अनेकपदस्य चेत् प्रातिपदिकत्वं तदा समासस्यैवेति। **स्वौजसिति**—प्रथमेत्यादि प्राचामाचार्याणां प्रथमादिव्यवहारेणात्रापि व्यवहार इति भावः । **ङ्याप् प्रातिपदिकादिति**— इदमधिकारसूत्रम् । स्वादिविधायकं स्वौजसित्यादि सूत्रमेव, तेन द्वाभ्यां मिलित्वाऽर्थमाह- ङ्यन्तादिति । **अवसानसंज्ञेति- अवसानसंज्ञायां खरवसानयोरिति विसर्गः । अयोगवाहेति**—अस्योपरि अइउणिति सूत्रेऽकारादुत्तरं शर्षु च शषसर् इति सूत्रे च पाठः कर्त्तव्यः। अकारोपरि पाठस्य फलम् अच्त्वम् । प्रकृते शर् प्रत्याहारे पाठात् यर्प्रत्याहारेऽन्तर्भावो जात इति विसर्गस्य अनचि चेति द्वित्वम् । अत्रायोगवाहमध्ये यमाः पठितास्ते वेदे प्रसिद्धाः । तथा चोक्तं प्रातिशाख्ये- वर्गेष्वाद्यानां चतुर्णां वर्णानां पञ्चमे परे मध्ये यमो नाम पूर्वसदृशः, यथा पलिक्नी चख्खनतुः अग्गिनः, प्रघ्घ्नन्ति इत्यत्र कखगघानां नकारे परतो मध्ये ककारादिसदृशाः वर्णाः सन्ति ते यमाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

रामः इति—रामशब्दस्यार्थवदिति प्रातिपदिकसंज्ञायां प्रथमैकवचने स्वौजसित्यादिना सुविभक्तौ उकारलोपे राम स् इति । ससजुषोरुरिति सस्य रुत्वे खरवसानयोरिति विसर्गे रामः इति ।

हिन्दी

१३८. ङ्यन्त आबन्त एवं प्रातिपदिक से स्वादिप्रत्यय होते हैं ।

१३९. सुप् के तीन-तीन वचन को क्रमशः एकवचन द्विवचन बहुवचन संज्ञा होती है ।

१४०. एकत्वविवक्षा में एकवचन और द्वित्व विवक्षा में द्विवचन होता है ।

१४१. वर्णो के अभाव को अवसान संज्ञा होती है ।

वा. अयोगवाहों का अकार के ऊपर एवं शर् में पाठ करना चाहिए ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४२. सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १।२।६४।। एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ।
१४३. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६।१।१०२।। अकः प्रथमाद्वितीययोरचि परे पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः स्यात् । इति प्राप्ते
१४४. नादिचि ६।१।१।१४।। आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः । वृद्धिरेचि । रामौ।
१४५. बहुषु बहुवचनम् १।४।२१।।
१४६. चुटू १।३।७।। प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्तः ।
१४७. विभक्तिश्च १।४।१०४।। सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः ।

मध्यमनोरमा

सरूपाणाम्—समानं रूपं येषां ते सरूपाः । **सरूपाण्येवेति**—क्वचिदपि विभक्तौ वैरूप्यं येषां नास्तीत्यर्थः ।। तेन जननीपरिच्छेत्तृवाचकयोर्मातृशब्दायोर्मातृभ्यामित्यादौ सारूप्येऽपि औजसादिषु जननीवाचकस्य मातरौ मातर इत्यादि, परिच्छेत्तृवाचकस्य मातारौ मातार इत्यादिप्रयोगाद्वैरूप्यमस्ति, तेन न तत्रैकशेषः । किन्तु मातृमातारौ मातृमातरौ इति वा द्वन्द्वः । अयञ्चार्थोऽत्र एकपदाल्लभ्यते । एकविभक्तौ सरूपाणामित्युक्त्या एकस्यामपि विभक्तौ वैरूप्यं येषां नास्तीति, अर्थात् सर्वस्यां विभक्तौ सरूपाणामेकशेष इत्यर्थः । **एक एव शिष्यते इति**—अर्थादन्येषां लोपो भवति । एकशेषश्च विभक्त्युत्पत्तेः प्रागेव । विभक्ताविति सरूपाणां विशेषणं नत्वेकशेषे विभक्तावित्यस्य निमित्तम् । तेन राम औ राम औ इति स्थिते एकशेष इति भ्रान्तिः । पश्चात् एकशेषे जाते अनैमित्तिकत्वेन विभक्तेः पूर्वमेव द्विवचनादि । एकशेषाऽभावे सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं गमयतीति न्यायात् एकेन रामपदेन रामद्वयं नोपस्थापयितुं शक्यते इति द्वयो रामयोर्बोधनाय रामशब्दयोर्द्वयोरुच्चारणं प्रसक्तम्, तत्रैकस्य लोपे शिष्यमाणो लुप्यमानार्थाभिधायी इति एकेनैव रामपदेन द्वयोरुपस्थितिः । अयमेकशेषः सह विवक्षायामेव। तेन घटोऽयं घटोऽयमित्यादौ नैकशेषः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रथमयोरिति—प्रथमयोरित्यनेन प्रथमाद्वितीये इति सुब्विभक्ती गृह्येते । प्रथमयोरिति अवयवषष्ठी । अकः सवर्णे इत्यतः 'अकः' इति, इको यणचीत्यतः 'अचि' इति च अनुवर्तते। 'एकःपूर्वपरयोः' इत्यस्याधिकारः । **सूत्रार्थः**—अकः परे प्रथमाद्वितीयासम्बन्धिनि अचि सति पूर्वसवर्णदीर्घः एकादेशो भवति । कृतैकशेषात् राम शब्दात् द्वित्वविक्षायां प्रथमा–द्वितीया–द्विवचने औ विभक्तौ प्रथमयोः पूर्वसवर्ण इति पूर्वसवर्णदीर्घे प्राप्ते नादिचि इति तस्य निषेधे वृद्धिरेचीति वृद्धौ **रामौ इति** रूपम् । **चुटू**—उपदेशेऽजनुनासिक इत् इत्यतः इत् इत्यनुवर्तते, तच्च द्विवचने विपरिणमते । आदिर्ञिटुडवः इत्यतः आदिरिति षः प्रत्ययस्येत्यतः प्रत्ययस्येति चानुवर्तते । **सूत्रार्थः**—प्रत्ययस्य आदिः चवर्गः टवर्गश्च इतौ भवतः ।

हिन्दी

१४२. एकविभक्ति में जो सरुप ही देखे जायें उनमें एक ही शेष रहता है ।
१४३. अक् से परे प्रथमा द्वितीया सम्बन्धी अच् परे रहते पूर्वसवर्ण दीर्घ हो ।
१४४. अवर्ण से परे इच् रहने पर पूर्वसवर्ण दीर्घ नहीं होता है ।
१४५. बहुत्वविवक्षा में बहुवचन होता है ।
१४६. प्रत्यय के आदि चवर्ग टवर्ग की इत्संज्ञा होती है ।
१४७. सुप् तिङ् को विभक्ति संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४८. न विभक्तौ तुस्माः १।३।४॥ विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा नेतः स्युः। इति सस्य नेत्वम् । रामाः ।

१४९. एकवचनं सम्बुद्धिः २।२।४९॥ सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धि-संज्ञं स्यात् ।

१५०. यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३॥ यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन्नङ्गं स्यात् ।

१५१. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ६।१।६९॥ एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गात् हल् लुप्यते सम्बुद्धेश्चेत् । हे राम ! हे रामौ ! हे रामाः !

मध्यमनोरमा

न विभक्तौ—तु-तवर्गः सकारो मकारश्च, तत्र तवर्गः रामात्, सकारो-जस्‌शिसादिषु मकारोऽम्भ्यामादिषु । **यः प्रत्यय इति**—यथा रामशब्दात् सुप्रत्ययः कृतः, तस्मिन् सु प्रत्यये परतो राम इत्यादि अङ्गसंज्ञम् । तत्र यद्यपि राम इत्यादिकमन्यत् किमपि नास्ति, सुप्रत्यये परतः राम इत्यस्यैव सत्त्वात्, तथापि आद्यन्तवद्भावेन राम इत्येव रामादिः । तदादिग्रहणाऽभावे भवामि भविष्यामीत्यादौ मिप् परतो भव इति शप् विशिष्टस्य भविष्य इति स्यविशिष्टस्याङ्गसंज्ञा न स्यात् । मिप् प्रत्ययो भूधातोर्विहितस्तस्मिन् मिपि परतो भूधातुरादिर्यस्य तादृशं भव इति भविष्य इति शप्स्यविशिष्टस्याङ्गसंज्ञा, तेनातो दीर्घो यञीति अदन्ताङ्गस्य विहितो दीर्घः शप्स्यविशिष्टस्य भवति । **हे रामेति**—राम सु इति स्थिते ह्रस्वान्तादङ्गात् राम शब्दात् परो हल् सकारः, स सम्बुद्धिसम्बन्धी इति तस्य लोपः । हे शब्दः सम्बोधनाभिव्यक्तये पूर्वम्प्रयुज्यते ।

मध्यमनोरमापूरणी

एङ्ह्रस्वात्—एङ् च ह्रस्वश्चेति समाहारद्वन्द्वः, एतत्पदमङ्गस्य विशेषणम् । विशेषणात् तदन्तविधिः । हलङ्याब्भ्यः इत्यतः 'हल्' इत्यनुवर्तते लोपो व्योर्वलीत्यतः लोप इति च। सम्बुद्धेरिति अवयवषष्ठी हलि अन्वेति । **सूत्रार्थः**—एङन्तात् ह्रस्वान्तात् च अङ्गात् सम्बुद्धेरवयवो हल् लुप्यते । **रामाः**—राम शब्दाज्जसि चुटू इति जस्येत्संज्ञा, सकारस्य हलन्त्यमिति लोपे प्राप्ते न विभक्ताविति निषेधे प्रथमयोः पूर्वसवर्ण इति पूर्वसवर्णदीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च कृते रामाः इति । प्रथमावदेव सम्बोधने द्विवचनबहुवचनयोर्बोध्यम् ।

हिन्दी

१४८. विभक्ति में स्थित तवर्ग सकार मकार की इत्संज्ञा होती है ।

१४९. सम्बोधन में प्रथमा एकवचन को सम्बुद्धि संज्ञा होती है ।

१५०. जो प्रत्यय जिससे विधान किया जाये तदादिशब्दस्वरूप को उस प्रत्यय के परे रहते अङ्ग संज्ञा होती है ।

१५१. एङन्त और ह्रस्वान्त अङ्ग से पर सम्बुद्धि के हल् का लोप हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५२. अमिपूर्वः ६।१।१२७।। अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । रामम् । रामौ ।

१५३. लशक्वतद्धिते १।३।८।। तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः ।

१५४. तस्माच्छसो नः पुंसि ६।१।१०३।। पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसः सस्तस्य नः स्यात् पुंसि ।

१५५. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८।४।२।। अट्कवर्गपवर्ग आङ्नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः स्यात् समानपदे । इति प्राप्ते ।

१५६. पदान्तस्य ८।४।३७।। नस्य णो न । रामान् ।

१५७. टाङसिङसामिनात्स्याः ७।१।१२।। अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः । णत्वम्। रामेण ।

१५८. सुपि च ७।३।१०२।। यञादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः । रामाभ्याम् ।

१५९. अतो भिस् ऐस् ७।१।९।। अनेकाल् शित्सर्वस्य । रामैः ।

मध्यमनोरमा

अट्कुप्वाङ्—व्यस्तैरिति एकेनैकेन व्यवधाने, न केवलमेकेनैव किन्तु यथासम्भवमिलितैरपि व्यवधाने णत्वम्, समान पदे- एकपदे, तेन रामनाम इत्यादौ न णत्वम् । **रामानिति**—अत्र प्रत्ययस्य नकारस्य णत्वं न भवति पदान्तस्येति निषेधात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

रामशब्दात् शसि लशक्वेति शस्येत्संज्ञा । सकारस्य नेत्संज्ञा, न विभक्ताविति निषेधात् । पूर्वसवर्णदीर्घे **रामास्** इति, तस्माच्छसो नः इति सस्य नः, अट्कुप्वाङिति णत्वे प्राप्ते पदान्तस्येति निषिध्यते । **रामेणेति-** राम शब्दात् तृतीयैकवचने टा विभक्तौ चुटू इत्यनेन टस्येत्संज्ञा । अंगसंज्ञा । टाङसिङसामिनात्स्याः इति टा स्थाने इन इत्यादेशे राम+इन इति। आद्गुणः इति गुणे 'अट्कुप्वाङ्' इति णत्वम् । रामैः - रामशब्दात् भिस् । अतो भिस् ऐस् इति भिसः स्थाने ऐस् । वृद्धिरेचीति वृद्धिः, सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

१५२. अक् से परे अम् सम्बन्धी अच् रहने पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

१५३. तद्धितभिन्न प्रत्यय के आदि ल् श् और कवर्ग की इत्संज्ञा होती है ।

१५४. पूर्वसवर्ण दीर्घ से पर शस् के स् को न् हो पुँल्लिङ्ग में ।

१५५. रेफ षकार से परे अट् कवर्ग पवर्ग आङ् नुम् प्रत्येक के व्यवधान होने पर या यथासम्भव मिलित व्यवधान होने पर भी न् को ण् हो, एक पद में ।

१५६. पदान्त न् को ण् नहीं हो ।

१५७. अदन्त से परे टा को इन ङसि को आत् और ङस् को स्य आदेश होते हैं ।

१५८. यञादि सुप् के परे रहने पर अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है ।

१५९. अदन्त अङ्ग से परे भिस् को ऐस् आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६०. ङेर्यः ७।१।१३।। अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः स्यात् ।
१६१. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १।१।५६।। आदेशः स्थानिवत् स्यान्नतु स्थान्यलाश्रयविधौ । इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम्।
१६२. बहुवचने झल्येत् ७।३।१०३।। झलादौ बहुवचने सुपि अतोऽङ्गस्यैकारः स्यात् । रामेभ्यः । सुपि किम्–पचध्वम् ।
१६३. वाऽवसाने ८।४।५६।। अवसाने झलां चरो वा । रामात्, रामाद् । रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य ।

मध्यमनोरमा

स्थानिवदिति—आदेशः स्थानिवत् स्यात् नत्वल्विधौ । अलाश्रितो विधिः अल्विधिः, अल् च स्थानिभूतो ग्राह्यः । तेन स्थान्यलाश्रयविधौ स्थानिवद्भावो न भवतीति सिद्धम् । यथा सुधी उपास्य इति स्थिते ईकारस्य यकारे जाते धकारस्य द्वित्वे कर्त्तव्ये यकारस्य स्थानिवद्भावेनाल्त्वात् 'नत्वचीति' द्वित्वनिषेधःस्यात् । द्वित्वनिषेधवारणाय अनल्विधाविति स्थानिवद्भावो निषिध्यते । अत्र हि नत्वचीति निषेधविधिरलाश्रितः । स्थानिभूतो य ईकारः अलज्रूप एकवर्णस्तदाश्रितः इति । यकारस्य स्थानिवद्भावेन नाच्त्वम्, अतो न द्वित्वनिषेधः। **रामाय** इत्यत्र राम शब्दात् ङेप्रत्यये जाते तस्य यादेशे जाते यादेशस्य स्थानिवद्भावेन सुप्त्वात् सुपि चेति दीर्घः । सुपि चेति दीर्घो न स्थान्यलाश्रयः, यतः स्थानिभूतं सुपमाश्रयति। यथा अजादयः एकैकवर्णविश्रान्तास्तथा न सुप्, भ्यां भिसादीनां नैकवर्णत्वात् । यद्यपि अत्र यञ्रूपमलमाश्रयति सुपि चेति दीर्घोऽपि, तथापि यञ् न स्थानिभूत आश्रीयते, किन्तु आदेशनिष्ठ एव यञ् इति भवत्यत्र स्थानिवद्भाव इति । **पचध्वमिति**—पच् धातोः मध्यमपुरुषबहुवचने ध्वमिति जाते तस्मिन् बहुवचने परतः शपोऽकारस्य न एत्वम्, ध्वमो बहुवचनत्वेऽपि सुप्त्वाभावात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

रामायेति—राम शब्दात् ङेविभक्तौ लशक्वेति ङस्येत्संज्ञा । ङेर्यः इति एस्थाने यादेशे राम य इति जाते स्थानिवद्भावेन यकारे सुप्त्वमानीय सुपि चेति दीर्घे रामायेति साधु । **रामाभ्यामिति**– राम+भ्यामिति जातेऽङ्गसंज्ञायाञ्च कृतायां सुपि चेति दीर्घः । **रामेभ्यः इति**- रामशब्दात् चतुर्थीपञ्चमी बहुवचने भ्यसि बहुवचने झल्येदिति रामान्त्याकारस्य एत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ । **रामात्**—राम ङसि इति जाते टाङसिङसामिति ङसेः आत् आदेशे राम+आत् इति जाते सवर्णदीर्घे रामात् इति । तस्य जश्त्वे दकारे वाऽवसाने इति चर्त्वे तकारे रामात् इति । विकल्पे रामाद् इति । **रामस्य**—राम+ङस् इति स्थित टाङसिङसामिति ङसः स्यादेशः।

हिन्दी

१६०. अदन्त अङ्ग से परे ङे को य आदेश होता है ।
१६१. आदेश स्थानिवत् होता है, स्थानी सम्बन्धी अल् के आश्रयण में स्थानिवत् नहीं होता है ।
१६२. झलादि बहुवचन सुप् परे रहते अदन्त अङ्ग को ए होता है ।
१६३. अवसान में झल् को चर् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६४. ओसि च ७।३।१०४।। अतोऽङ्गस्यैकारः । रामयोः ।

१६५. ह्रस्वनद्यापो नुट् ७।१।५४।। ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागमः ।

१६६. नामि ६।४।३।। अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्यान्नामि परे । रामाणाम् । रामयोः।

१६७. आदेशप्रत्यययोः ८।३।५९।। इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्धन्यादेशः । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव षः । रामेषु । एवं कृष्णमुकुन्दादयः ।

१६८. सर्वादीनि सर्वनामानि १।१।२७।। सर्वादीनि शब्दस्वरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि स्युः । सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम्, एते सर्वादयः ।

मध्यमनोरमा

रामयोरिति—राम ओस् इति स्थिते एत्वे जाते एचोऽयवायाव इति अयादेशः । **आदेशरूप इति**—आदेशस्य यः सकार इत्युच्यमाने तिसृादेशेऽपि सकारस्य षत्वं स्यात् । आदेशो यः सकार इत्युक्तौ तु तिसृ इत्यादेशो न तु सकारमात्रमिति न षत्वम् । प्रत्ययरूपः सकार इत्युच्यमाने रामेष्वित्यत्र सुप्प्रत्ययावयवस्य सस्य षत्वन्न स्यात्, सकारमात्रस्य प्रत्ययरूपत्वाभावात् । तस्मात् आदेशरूपः प्रत्ययस्यावयवश्च यः सस्तस्य इण्कवर्गाभ्यां परस्यापदान्तस्य षकारो भवतीति । ननु षकार एव कुतः, मूर्धन्यस्यान्यस्याऽपि सत्त्वादित्याशंक्याह– ईषद्विवृतस्येति, ईषद्विवृतमूष्मणामिति षकारसकारयोराभ्यन्तरप्रयत्नसाम्यात् सस्य षः । **सर्वादीनि**— पूर्वपरावरेत्यादि त्रिसूत्री द्विविधा, एका अष्टाध्यायीस्था एका गणपाठस्था । तत्र गणपाठस्थां त्रिसूत्रीमाह– पूर्वेत्यादि ! पूर्वादीनि सप्त व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वादिगणान्तर्भूतानि । स्वशब्दस्तु ज्ञातिधनव्यतिरिक्तः आत्मात्मीयरूपयोरर्थयोः सर्वादिगणेऽन्तर्भूतः । अन्तरशब्दो बहिर्योगोपसंव्यानयोः सर्वादिगणेऽन्तर्भूतः इत्यर्थः । सर्वनामसंज्ञा तु सर्वादीनि इति सूत्रेणैव!

मध्यमनोरमापूरणी

रामाणामिति—राम आम् इति स्थितेऽङ्गसंज्ञा । ह्रस्वनद्याप इति नुटि अनुबन्ध लोपे च राम नामिति, नामीति दीर्घे अट्कुप्वाङिति नामः नस्य णत्वे रामाणामिति ।

हिन्दी

१६४. अदन्त अङ्ग को ओस् परे रहते एकार होता है ।

१६५. ह्रस्वान्त नद्यन्त व आबन्त अङ्ग से परे आप् को नुट् आगम होता है ।

१६६. अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है, नाम् परे रहते ।

१६७. इण् कवर्ग से परे अपदान्त आदेश और प्रत्यय के अवयव स् को मूर्धन्यादेश होता है ।

१६८. सर्वादिगण पठित को सर्वनामसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६९. जसः शी ७।१।१७॥ अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् । अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । सर्वे ।
१७०. सर्वनाम्नः स्मै ७।१।१४॥ अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै । सर्वस्मै ।
१७१. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७।१।१५॥ अतः सर्वनाम्नः एतयोरेतौ स्तः । सर्वस्मात् ।
१७२. आमि सर्वनाम्नः सुट् ७।१।५२॥ अवर्णान्तात् परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागमः स्यात् । एत्वषत्वे-सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत्। एवं विश्वादयोऽप्यदन्ताः ।

मध्यमनोरमा

अनेकाल्त्वादिति—शी, अयमादेशोऽनेकाल्, एकः अल् शकारः, द्वितीयः इकारः । जसः शीत्यादेशे जाते तस्य स्थानिवद्भावेन प्रत्ययत्वात् लशक्वतद्धिते इतीत्संज्ञा । अत एवात्र शित्त्वात् सर्वादिश इति नोक्तम्, आदेशकाले शित्त्वाभावात् । यत्र तु अष्टाभ्य औश् इत्यादौ हलन्त्यमिति सूत्रेणोपदेशावस्थायामेवेत्संज्ञा तत्र शित्त्वात्सर्वादिशः । **एतयोः**—ङसिङ्योः एतौ स्मात्- स्मिनौ । **आमि सर्वनाम्नः**—अवर्णान्तात् परस्य सर्वनाम्नो विहितस्येति अवर्णान्तात् सर्वनाम्नो विहितस्य, अदन्तात् परस्येत्युक्तौ तेषामित्यत्र सुट् न स्यात् । यतः आम् तद् शब्दात् हलन्ताद् विहितः, तस्मात् सर्वनाम्नो विहितस्यादन्तात् परस्येत्युक्तम्, तेषामित्यत्र आम् सर्वनाम्नस्तदो विहितः, आमि जाते तस्मिन्परतस्त्यदादीनाम इत्यकारान्तादेशे कृते सति अवर्णान्तात् परश्च भवतीति तत्र सुडागमो भवति । यदि तु तेषामित्यत्र सुट्सिद्धये अवर्णान्तात् सर्वनाम्नः परस्येत्येतावदेवोच्येत तथा वर्णाश्रमेतराणामित्यत्र द्वन्द्वे चेति समुदायस्य संज्ञानिषेधेऽपि इतरशब्दमात्रस्य सर्वनामसंज्ञा अस्त्येवेति अवर्णान्तात् सर्वनाम्नः परो भवत्येव आम्, तस्य सुट् स्यात् । अत उक्तम्- सर्वनाम्नो विहितस्येति । असौ आम् वर्णाश्रमेतरशब्दात् विहितः तस्य तु द्वन्द्वे चेति निषेधात् सर्वनामसंज्ञाया अभावात् । इतरशब्दस्य तु सर्वनामत्वमस्ति, परन्तु तस्मादाम् न विहितः । अवर्णान्तात् परस्येति तेषामिति सिद्ध्यर्थमित्युक्तमेव । **एत्वषत्वेइति**—बहुवचने झल्येदित्येत्वम्, आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम्। शेषं रामवत् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सर्वे—सर्वप्रातिपदिकस्य सर्वादीनि इति सर्वनामसंज्ञायां जसि विभक्तावनुबन्धलोपे अनेकाल् शित्सर्वस्येति सूत्रसहकारेण जसःशी इति जसः स्थाने श्यादेशेऽनुबन्धलोपे सर्व+ई, इति, गुणे कृते सर्वे इति । **सर्वेषामिति**—सर्वसर्वनाम्नः आमि आमि सर्वनाम्नःसुडिति सुटि सर्वसामिति जाते बहुवचने झल्येदिति एत्वे षत्वे च कृते सर्वेषामिति ।

हिन्दी

१६९. अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी आदेश होता है ।
१७०. अदन्त सर्वनाम से परे ङे को स्मै होता है ।
१७१. अदन्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि को स्मात् और स्मिन् आदेश हो ।
१७२. अवर्णान्त से पर सर्वनाम से विहित आम् को सुट् आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः। उभौ। उभौ। उभाभ्याम् ३। उभयोः २। तस्येह पाठोऽकजर्थः। उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्ति। डतरडतमौ प्रत्ययौ। प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः। नेम इत्यर्धे। समः सर्वपर्यायः, तुल्यपर्यायस्तु न। समानामिति ज्ञापकात्।

१७३. पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४॥ एषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणपाठात् सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा स्यात्। पूर्वे, पूर्वाः। स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था। व्यवस्थायां किम्–दक्षिणा गाथकाः, कुशला इत्यर्थः। असंज्ञायां किम्–उत्तरा कुरवः।

१७४. स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १।१।३५॥ ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। स्वे, स्वाः। आत्मीया आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः ज्ञातयोऽर्था वा।

मध्यमनोरमा

ननु उभशब्दो यदि द्विवचनान्त एव तर्हि सवादिगणमध्ये किमर्थं पठितः। द्विवचने सर्वादिगणकार्याभावादित्याशङ्क्याह **तस्येह पाठस्त्विति**—तस्योभशब्दस्य इह सर्वादिगणे पाठः अकजर्थः। अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेरिति सर्वनामसंज्ञाप्रयुक्ताकजर्थः। **प्रत्ययग्रहण इति**—यद्यपि संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणन्नास्ति, तथापि केवलयोः संज्ञायाः प्रयोजनाभावात् तदन्तविधिः। डतरडतमप्रत्ययान्ताः कतरकतमादयः। **सम इति**—समशब्दः सर्वार्थकस्तुल्यार्थकश्च। तत्र सर्वादिग्रहणे सर्वार्थकस्यैव ग्रहणन्न तुल्यार्थकस्य, यतः तुल्यार्थकसमशब्दस्य समानामिति सूत्रकारेण प्रयोगः कृतः। सर्वनामकार्यं तत्र विहितम्, तेन निर्णीयते नासौ तुल्यार्थकः समशब्दः सर्वादिगणे पठितः इति। अष्टाध्यायीस्थां पूर्वपरावरेति त्रिसूत्रीमाह–**पूर्वपरेत्यादि**। **स्वाभिधेयेति**—स्वशब्देन पूर्वादिशब्दः, तस्याभिधेयेनापेक्षः, अपेक्षते इत्यपेक्षः, कर्मणि घञ्। अपेक्षमाणो योऽवधिस्तस्य नियमो व्यवस्था। यथा काशी पूर्वा, अत्र पूर्वशब्दस्याभिधेया काशी, तयाऽवधिरवश्यमपेक्ष्यते। कस्मात् पूर्वा, प्रयागात् पूर्वेति। अतोऽस्त्यत्र व्यवस्था। यत्र क्वचिदवधिर्न प्रयुज्यते "दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः", इत्यादौ, तत्राप्यवधिराक्षेपादिना लब्धुं शक्यते एव। **दक्षिणा गाथका** इत्यत्र कस्माद्दक्षिणा इत्यवश्यमपेक्षा न भवतीति नावधेर्नियमः। **उत्तराः कुरव इति**— सुमेरुमवधीकृत्य कुरुषु उत्तरशब्दो वर्तते इत्यस्तीह व्यवस्था, किन्त्वाधुनिकसङ्केतः। प्राचीनसङ्केतस्तु नात्र संज्ञात्वेनं गृह्यते। पूर्वादिशब्दानां दिक्संज्ञकत्वेऽपि न क्षतिः। कुरुष्वाधुनिकसङ्केतो दिक्षु तु प्राचीन इत्यत्र व्याख्यानमेव प्रमाणम्। **स्वमज्ञाति**—स्वशब्दस्य चत्वारोऽर्थाः–आत्मात्मीयः ज्ञातिर्धनञ्च। तत्र ज्ञातिधनयोः पर्युदासात् आत्मात्मीययोरर्थयोः सर्वनामसंज्ञा।

मध्यमनोरमापूरणी

स्वे इति—आत्मनि आत्मीये चार्थे स्वशब्दस्य 'स्वमज्ञाति' इति सर्वनामसंज्ञात्वात् जसः श्यादेशे गुणे स्वे इति। तद्भिन्नेऽर्थे स्वाः इति।

हिन्दी

१७३. पूर्व पर अवर उत्तर दक्षिण अपर अधर को गणपाठ से जो सर्वत्र सर्वनामसंज्ञा प्राप्त थी वह जस् परे व्यवस्था और असंज्ञा में विकल्प से होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७५. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १।१।३६॥ बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । अन्तरे अन्तरा वा गृहाः, बाह्या इत्यर्थः। अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः । परिधानीया इत्यर्थः ।

१७६. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७।१।१६॥ एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा स्तः। पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे । एवं परादीनामपि । शेषं सर्ववत् । वा. संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः । सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि । अतिक्रान्तः सर्वमतिसर्वस्तस्मै अतिसर्वाय । वा. अन्तरमिति गणसूत्रे अपुरीति वक्तव्यम् ॥ अन्तरायां पुरि ।

मध्यमनोरमा

अन्तरं बहिरनावृतो देशस्तस्य योगो बाह्योऽस्तीति बहिर्योगो बाह्यम् । उपसंवीयते इति उपसंव्यानम्, परिधानीयम् । **संज्ञोपसर्जनीभूता इति**—संज्ञाभूता उपसर्जनीभूताश्च न सर्वादयः, न सर्वादिगणेऽन्तर्भूताः । सर्वेषां नाम सर्वनाम इत्यन्वर्थसंज्ञाबलेन तादृशार्थानुकूलानामेव गणे सन्निवेशात् । संज्ञाभूतस्य सर्वशब्दस्य एकव्यक्तिवाचकत्वात् । एवमुपसर्जनीभूतस्यापि, गुणी भूतस्याप्यतिसर्वशब्दस्य, सर्वशब्दस्यान्यपदार्थीभूतेऽतिक्रान्त-रूपार्थविशेषे संक्रान्तत्वेन सर्वार्थवाचकत्वम्, अतस्तदन्तस्य न सर्वनामसंज्ञा । तत्र संज्ञाभूते उदाहरणं सर्वो नामेत्यादि। उपसर्जनीभूतेऽतिक्रान्तः सर्वमतिसर्वाय इति । **अन्तरमिति**—अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोरिति गण- सूत्रे अपुरीति = नगरीभिन्ने इति वक्तव्यम्, तेन नगरीरूपेऽर्थेऽन्तरशब्दस्य सर्वनामसंज्ञा न भवतीति फलितम्। गणसूत्रे नत्वष्टाध्यायीस्थसूत्रे । तथात्वे जस्येव सर्वनामसंज्ञानिषेधः स्यात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

पूर्वस्मादिति—पूर्वशब्दस्य सर्वनामसंज्ञा, ङसि 'पूर्वादिभ्यो' इति विकल्पेन स्मात् इत्यादेशे पूर्वस्मात् । एवमेव ङौ पूर्वस्मिन् इति । **संज्ञोपसर्जनीभूताः**—सर्वनाम इति अन्वर्थसंज्ञा, अतःसर्वेषां नामवाचकस्यैव सर्वनामसंज्ञा भवति । संज्ञाभूतस्तु व्यक्तिविशेषस्य वाचकः, एवमुपसर्जनीभूतोऽपि । तस्मादनयोः न सर्वनामसंज्ञा । अतएव सर्वो नाम कश्चित्तस्मै 'सर्वाय' इत्यत्र 'अतिसर्वाय' इत्यत्र च न ङे स्थाने 'स्मै' इत्यादेशः । **अन्तरायां पुरि** इत्यत्र अपुरीति वक्तव्यमिति न सर्वनाम संज्ञा । तेन स्याडादयो न ।

हिन्दी

१७४. जाति और धन से भिन्न अर्थ वाले स्व शब्द को जस् में प्राप्त सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है ।

१७५. बाह्य और परिधानीय अर्थ में अन्तर शब्द को प्राप्त सर्वनामसंज्ञा जस् में विकल्प से हो ।

१७६. पूर्व आदि नव शब्दों से परे ङसि और ङि को विकल्प से स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं । वा. संज्ञाभूत और उपसर्जनीभूत सर्वादि नहीं होते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७७. तृतीया समासे १।१।३०।। सर्वनामता न । मासपूर्वाय । तृतीया समासार्थवाक्येऽपि न । मासेन पूर्वाय ।

१७८. द्वन्द्वे च १।१।३१।। उक्ता संज्ञा न । वर्णाश्रमेतराणाम् ।

१७९. विभाषा जसि १।१।३२।। वर्णाश्रमेतरे । वर्णाश्रमेतराः ।

१८०. प्रथमचरमतयाल्पार्धकतिपयनेमाश्च १।१।३३।। एते जस्युक्तसंज्ञा वा स्युः । प्रथमे, प्रथमाः । तयप्प्रत्ययः । द्वितये, द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे, नेमाः। शेषं सर्ववत् ।

वा. तीयस्य ङित्सु वा । द्वितीयस्मै, द्वितीयायेत्यादि । एवं तृतीयः ।

मध्यमनोरमा

तृतीयासमासार्थेति—तृतीयासमासार्थबोधकं यद्वाक्यं मासेन पूर्वायेति लौकिकविग्रहवाक्यं तत्रापि न सर्वनामसंज्ञेत्यर्थः । प्रथमचरमनेमशब्दस्य सर्वादित्वान्नित्यं संज्ञा या प्राप्ता तत्र जसि सर्वनामसंज्ञाविकल्पः । **तयप् प्रत्यय इति**—संख्याया अवयवे तयप् । **तीयस्येति**—द्वेस्तीयः, त्रेः सम्प्रसारणञ्चेति सूत्राभ्यां द्वितीयतृतीयशब्दौ सिद्धौ । तत्र तीयप्रत्ययान्तस्य ङिद्वचने परतोऽप्राप्ता सर्वनामसंज्ञा विकल्पेन विधीयते ।

मध्यमनोरमापूरणी

वर्णाश्रमेतराणामिति—वर्णाश्च आश्रमाश्च इतरे चेति द्वन्द्वे वर्णाश्रमेतरशब्दः, तस्मादामि द्वन्द्वे चेति सर्वनामसंज्ञानिषेधान्न सुट्। नुटि दीर्घे णत्वे च वर्णाश्रमेतराणामिति । **वर्णाश्रमेतरे**-वर्णाश्रमेतरशब्दस्य जसि द्वन्द्वे चेति सर्वनामसंज्ञानिषेधं प्रबाध्य विभाषा जसीति सर्वनाम-संज्ञायां जसः श्यादेशे गुणे रूपम् । **प्रथमचरमेति**—अत्र विभाषा जसि इति सूत्रं, सर्वादीनि सर्वनामानि इत्यतः 'सर्वनामानि' इति चानुवर्तते । नेमशब्दस्य गणे पाठात् जसि सर्वनाम संज्ञा नित्यं प्राप्ता आसीत्, अनेन सा विकल्प्यते । अन्येषां प्रथमादीनां सर्वादिगणे पाठाभावात् सर्वनामसंज्ञा न प्राप्ता । सा जसि विकल्पेन क्रियते । **प्रथमे**—प्रथम शब्दाज्जसि अनेन सर्वनामसंज्ञायां जसः शी इत्यादेशेऽनुबन्धलोपे गुणे रूपम् । पक्षे- प्रथमाः इति ।

हिन्दी

वा. अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः इस गण सूत्र में पुर् भिन्न अर्थ में अन्तर शब्द को सर्वनामसंज्ञा कहनी चाहिए ।

१७७. तृतीया समास में तथा तृतीयासमासार्थ वाक्य में सर्वनामसंज्ञा नहीं होती है ।

१७८. द्वन्द्व समास में सर्वादिगण पठित को सर्वनामसंज्ञा नहीं होती है ।

१७९. सर्वादिगण पठित को द्वन्द्व समास होने पर जस् परे विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है ।

१८०. प्रथम चरम तयप्प्रत्ययान्त अल्प अर्ध कतिपय और नेम को जस् परे सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होती है ।

वा. तीय प्रत्ययान्त को ङिद्विभक्ति परे सर्वनाम संज्ञा विकल्प से हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निर्जरः । १८१. जराया जरसन्यतरस्याम् ७।२।१०१।। जराया जरस् वाऽजादौ विभक्तौ । प. पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च । प. निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। प. एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाज्जरशब्दस्य जरस् । निर्जरसौ । निर्जरसः । उपजीव्यविरोधान्न जरस्- निर्जरैः । पक्षे हलादौ च रामवत् ।

१८२. पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ६।१।६३।। पाददन्तनासिकामासहृदयनिशाअसृज् यूष दोष यकृत् शकृत् उदक् आस्य एषां पदादय आदेशाः स्युः शसादौ वा । यत्तु आसनशब्दस्यासन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकम् । पादः । पादौ । पादाः । पादम् । पादौ। पदः, पादान् । पदा, पादेन । इत्यादि । विश्वपाः ।

मध्यमनोरमा

निर्जर इति—जराया निर्गतो निर्जरः । **पदाङ्गाधिकारे इति-** इयं परिभाषा येन विधिस्तदन्तस्येति सूत्रप्रपञ्चभूता । पदाधिकारे अङ्गाधिकारे च पदमङ्गञ्च विशेष्यम् । तथा चात्र जराया अङ्गस्य जरसादेश इत्यर्थः । जराया इत्यङ्गविशेषणम्, विशेषणेन तदन्तविधिस्तेन जराशब्दान्तस्याङ्गस्य स्वस्य च ग्रहणात् जराशब्दरूपाङ्गस्य च जरस् भवतीति । नन्वेवं जराशब्दान्तस्य निर्जरशब्दस्य जरसादेशो निर्विशिष्टस्य स्यादित्याह **निर्दिश्यमानेति** । तदन्तस्य येन विधिरिति परिभाषया लाभः । सूत्रे निर्दिष्टो जराशब्द एवेति तदन्तविधिना जराशब्दान्तस्य जरसादेशो विधीयमानो निर्जरशब्दैकदेशस्य जरशब्दस्य भवति । ननु निर्जरशब्दैकदेशो न जराशब्दः किन्तु जरशब्दः, कथं तत्र जरसादेशस्तत्राह **एकदेशेति** । एकदेशस्य जराशब्दैक देशस्याकारस्य ह्रस्वत्वावच्छिन्नान्तःपातित्वस्य ह्रस्वरूपे विकारेऽपि जराशब्दाद् भिन्नत्वं न भवति । **पक्षे इति**—जरसाभावपक्षे अजादावपि रामवत् । हलादौ तु जरसोऽभावाद् रामवदेव।

मध्यमनोरमापूरणी

निर्जरसौ इति—निर्जरप्रातिपदिकात् औ विभक्तौ पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च, निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति, एकदेशविकृतमनन्यवदिति परिभाषात्रयसहकारेण निर्जरशब्दैक-देशस्य जर इत्यस्य जराया जरसन्यतरस्यामिति जरसादेशे निर्जरसौ इति । **यत्तु उपजीव्य विरोधादिति**—उपजीव्यं निमित्तं, तद्विरोधादिति भावः । यथा निर्जरैरित्यत्र निर्जर भिस् इति दशायां निर्जरस्यादन्तत्वप्रयुक्तो भिस ऐसादेशो भवति, स ऐस् अदन्तत्वविघाते (जरसादेशे कर्त्तव्ये) निमित्तं न भविष्यति, तथा सति सन्निपातपरिभाषाविरोधः इति भावः। **यत्तु आसन् शब्दस्येति**—काशिकायामासनशब्दस्यासन् आदेश उक्तः, सोऽसमीचीनः । 'आस्नो वृकस्य वर्तिकामित्यत्र मन्त्रे आस्न इत्यस्य मुखवाचकत्वमस्ति । अतः आस्यस्थाने आसन्नादेश उचितः । **पदः इति**-पादशब्दाच्छसि पद्दन्नोमास् इति पदादेशे सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

१८१. जरा शब्द को जरस् आदेश हो, अजादि विभक्ति परे रहते ।

प. पदाधिकारी कार्य और अङ्गाधिकारी कार्य सूत्रोक्त को तथा तदन्त को भी हो ।

प. सूत्र में निर्दिश्यमान को आदेश होता है ।

प. एकदेश में विकार रहने पर भी शब्द अन्यवत् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८३. दीर्घाज्जसि च ६।१।१०५।। दीर्घाज्जसि इचि च परे न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिः । विश्वपौ । विश्वपाः । हे विश्वपाः । हे विश्वपौ । हे विश्वपाः ।

१८४. सुडनपुंसकस्य १।१।४३।। स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ।

१८५. स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १।४।१७।। कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु परतः पूर्वं पदं स्यात् ।

१८६. यचि भम् १।४।१८।। यादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्व सर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ।

१८७. आकडारादेका संज्ञा १।४।१।। इत ऊर्ध्वं 'कडाराः कर्मधारये' इत्यतः प्रागेकस्यैकेव संज्ञा ज्ञेया, या पराऽनवकाशा च । तेन शसादावचि भसंज्ञैव, न पदसंज्ञा ।

मध्यमनोरमा

न पूर्वसवर्ण इति—प्रथमयोः पूर्वसवर्ण इति प्राप्तो दीर्घः । **स्वादिषु असर्वनामस्थाने इति**—पर्य्युदासात् सुरत्र न सप्तमी बहुवचनं किन्तु प्रथमैकवचनमेव। सुपिति वक्तव्ये स्वादिष्वित्युक्तिः अधिकसंग्रहार्थमित्याशयेन व्याचष्टे **कप्प्रत्ययेति,** कप्प्रत्ययः उरः प्रभृतिभ्यः कबिति विहितः, तेन स्वादयः सुप्, स्त्रीप्रत्ययस्तद्धितः समासान्ताश्चेति सर्वेऽपि ग्राह्याः । तत्र हलादौ पदसंज्ञा, यकारादौ अजादौ च भसंज्ञेति च विवेकः । यकारादिषूदाहरणम्- **गार्ग्यः**। **वात्स्यः** । अत्र गर्गादिभ्यो यञिति यञ्, तस्मिन्परतो भत्वात् यस्येति चेत्यकारलोपः । **आकडारात्**-या परेत्यादि, तत्र परस्या उदाहरणम्- धनुषा विध्यतीति । अत्र शराणां विश्लेषं प्रति धनुरवधिभूतमित्यपादानसंज्ञा प्राप्नोति, वेधनक्रियां प्रति साधकत्वमिति करणसंज्ञाऽपि प्राप्नोति, तत्र परत्वात् करणसंज्ञा अपादानसंज्ञाबाधिका भवति! निरवकाशायास्तूदाहरणम्- भवतष्ठक्छसौ, भवदीय इति । अत्र सिति चेति पदसंज्ञा यचि भमिति भसंज्ञां परामपि बाधते । यदि भसंज्ञां न बाधेत तदा निरवकाशैव सिति चेति पदसंज्ञा स्यादिति, तेन भवदीय इत्यत्र तकारस्य झलां जशोऽन्ते इति जश्त्वम् । प्रकृते च विश्वप इत्यत्र भसंज्ञा परत्वादनवकाशत्वाच्च पदसंज्ञां बाधते ।

मध्यमनोरमापूरणी

विश्वपाः—विश्वं पातीति विग्रहे विच्, विश्वपा शब्दात् सौ रुत्वविसर्गौ । **विश्वपौ**—विश्वपा औ इति स्थिते प्रथमयोः पूर्वसवर्ण इति प्राप्तो दीर्घः दीर्घाज्जसि चेति निषिध्यते । वृद्धिरेचीति वृद्धौ विश्वपौ इति ।

हिन्दी

१८२. पाद आदि को क्रमशः पद् दत् नस् मास् हृत् निश् असन् यूषन् दोषन् यकन् शकन् उदन् आसन् आदेश होते हैं, शसादि विभक्ति परे विकल्प से ।

१८३. दीर्घ से परे जस् और इच् रहते पूर्वसवर्णदीर्घ नहीं होता है ।

१८४. सु औ जस् अम् औट् को सर्वनामस्थानसंज्ञा हो नपुंसक छोड़कर ।

१८५. सु से कप् प्रत्यय तक स्वादि असर्वनाम स्थान के परे रहते पूर्व को पद संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८८. आतो धातोः ६।४।१४०।। आकारान्तो योधातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः । अलोऽन्त्यस्य । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि । एवं शङ्खध्मादयः । धातोः किम्– हाहान् । 'आतः' इति योगविभागादधातोरप्याकार लोपः क्वचित् । कृत्वः । श्नः । हरिः । हरी ।

१८९. जसि च ७।४।१०९।। ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः स्याज्जसि । हरयः ।

१९०. ह्रस्वस्य गुणः ७।४।१०८।। सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरीन् ।

१९१. शेषो घ्यसखि १।४।१७।। शेष इति स्पष्टार्थम् । अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञं स्यात् ।

१९२. आङो नाऽस्त्रियाम् ७।३।१२०।। घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । आङिति टा–संज्ञा प्राचाम् । हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः ।

१९३. घेर्ङिति ७।३।१११।। घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः । हरये । हरिभ्यः।

मध्यमनोरमा

शेषो घि—पूर्वं नदीसंज्ञाप्रक्रमात् शेष इत्यनेनानदी संज्ञौ यौ इदुतौ तौ घिसंज्ञौ स्तः इत्यर्थः। तत्र नदीसंज्ञाया घिसंज्ञाबाधकत्वेन नदीसंज्ञाविषये घिसंज्ञा न भविष्यति । संज्ञाद्वय-समावेशस्तु आकडारादेका संज्ञा इति सूत्रेण बाधितस्तथा च शेषप्रकरणं व्यर्थमित्याह- स्पष्टार्थमिति । **टासंज्ञेति** प्राचीनैराचार्यैः कृतेति शेषः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विश्वपः इति—विश्वपा शब्दात् शसि यचि भमिति विश्वपेत्यस्य भसंज्ञा। आतो धातोरिति आलोपे विश्वपस् इति । सस्य रुत्वविसर्गौ । **आतः इति**—आतो धातोरित्यत्र आत इति विभज्यते । तेन आकारान्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः इत्यर्थोऽपि भवति । अतः श्नः क्त्वः इत्यादि शसि आलोपे रूपं सिद्ध्यति । **हरयः**—हरि जस् इति स्थिते जसि चेति गुणे अयादेशे रुत्वविसर्गौ। हे **हरे**—सम्बोधने हरि स् इति जाते ह्रस्वस्य गुणः इति गुणे एङ्ह्रस्वादिति सुलोपः। **हरीन्**—हरिशब्दात् शसि लशक्वतद्धिते इति शस्येत्संज्ञा । पूर्वसवर्णदीर्घे हरीस् इति। तस्माच्छसो नः पुंसि इति सस्य नकारः । अट्कुप्वाङिति णत्वे प्राप्ते पदान्तस्येति निषिद्धम्।

हिन्दी

१८६. कप् प्रत्यय की अवधि में यादि और अजादि स्वादि- असर्वनामस्थान परे रहते पूर्व को भसंज्ञा होती है ।

१८७. इस के आगे 'कडाराः कर्मधारये' से पूर्व एक को एक ही संज्ञा हो जो पर तथा अनवकाश हो ।

१८८. आकारान्त धातु के भसंज्ञक अङ्ग का लोप होता है ।

१८९. ह्रस्वान्त अङ्ग को जस् परे रहते गुण होता है ।

१९०. ह्रस्वान्त को गुण हो सम्बुद्धि परे रहते ।

१९१. नदीसंज्ञक से भिन्न ह्रस्व इकारान्त उकारान्त सखिभिन्न को घिसंज्ञा होती है ।

१९२. घिसंज्ञक से परे आङ् को 'ना' आदेश हो, स्त्रीलिङ्ग में नहीं ।

१९३. ङित् सुप् परे रहते घिसंज्ञक को गुण हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९४. ङसिङसोश्च ६।१।११०।। एङो ङसिङसोरति परे पूर्वरूपमेकादेशः। हरेः। हर्योः । हरीणाम् ।

१९५. अच्च घेः ७।३।११९।। इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत् घेरत् । हरौ । हरिषु। एवं कव्यादयः ।

१९६. अनङ् सौ ७।१।९३।। सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ ।

१९७. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा १।१।६५।। अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः स्यात् ।

१९८. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ६।४।८।। नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने ।

१९९. अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १।२।४१।।

२००. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् ६।१।६८।। हलन्तात् परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते ।

मध्यमनोरमा

हरौ इति—हरि ङि इति स्थिते ङेरौकारः इकारस्याकारः, वृद्धिरेचीति तयोर्वृद्धिरौकारः । **अपृक्त एकाल् प्रत्ययः**—एको यः अल् तद्रूपो यः प्रत्ययः स एकाल् प्रत्ययः । यथात्रैव सोरुकारलोपे सकार एकवर्णात्मकः प्रत्ययः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हरिणा—हरि टा इति स्थिते टस्येत्संज्ञा । शेषोघ्यसखि इति घिसंज्ञा । 'आङो ना' इति आ स्थाने नादेशे नस्य णत्वे हरिणा इति । हरि+ङे इत्यत्र घिसंज्ञा, घेर्ङिति इति गुणे अयादेशे **हरये इति** । **हरेः**—हरि+ङसि, हरि+ङस् इत्युभयत्रानुबन्धलोपे घिसंज्ञा, घेर्ङिति इति गुणः। हरे+अस् इति । ङसिङसोश्चेति पूर्वरूपे सस्य रुत्वविसर्गौ । हरि+आमिति जाते नुटि, नामिति दीर्घे नस्य णत्वम् । **अनङादेश इति**—अलोऽन्त्यसूत्रसहकारेण सखि इति इकारस्य अनङादेशो भवति । **सर्वनामस्थाने**—नोपधायाः इति सूत्रमत्र अनुवर्तते । तत्र 'न' इति लुप्तषष्ठीकं पदम्। अङ्गस्य इत्यवयवषष्ठ्यन्तं पदं तस्य विशेष्यम् । न इति विशेषणात् तदन्तविधिः । ढ्रलोपे पूर्वस्य इत्यतः 'दीर्घः' इत्यनुवर्तते । **सूत्रार्थः**—नान्तस्य अङ्गस्य उपधायाः दीर्घः असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने परे ।

हिन्दी

१९४. एङ् से परे ङसि ङस् सम्बन्धी अत् रहने पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

१९५. इत् उत् से परे ङि को औत् और घिसंज्ञक को अत् आदेश होते हैं ।

१९६. सखि अङ्ग को अनङ् आदेश हो असम्बुद्धि सु परे रहते ।

१९७. अन्तिम वर्ण से पूर्व वर्ण (अल्) को उपधासंज्ञा होती है ।

१९८. नान्त की उपधा को दीर्घ हो असम्बुद्धि सर्वनाम स्थान परे रहते ।

१९९. एक वर्ण रूपी प्रत्यय को अपृक्त संज्ञा होती है ।

२००. हलन्त से परे तथा दीर्घीभूत ङ्यन्त आबन्त से परे सु ति सि के अपृक्त हल् का लोप हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०१. प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १।१।६२॥ प्रत्यये लुप्ते तदाश्रितं कार्यं स्यात्।
२०२. नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८।२।७॥ प्रातिपदिकसंज्ञकं यत् पदं तदन्तस्य नस्य लोपः । सखा ।
२०३. सख्युरसम्बुद्धौ ७।१।९२॥ सख्युरङ्गात् परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात् ।
२०४. अचो ञ्णिति ७।२।११५॥ अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च । सखायौ। सखायः । हे सखे । सखायम् । सखायौ । सखीन् । सख्या । सखिभ्याम् । सखिभिः । सख्ये ।
२०५. ख्यत्यात् परस्य ६।१।११२॥ खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उत् स्यात् । सख्युः २ ।
२०६. औत् ४।३।११८॥ इदुद्भ्यां .(इतः) परस्य ङेरौत् । शेषं हरिवत् ।
२०७. पतिः समास एव १।४।८॥ घिसंज्ञः । पत्या । पत्युः २। पत्यौ । शेषं हरिवत् । समासे तु भूपतये ।

मध्यमनोरमा

णिद्वदिति—णितीव णिद्वत्, णिति परतो यत्कार्यं तत्करोतीत्यर्थः । **ख्यत्यात्**—खिखीशब्दयोः कृतयणादेशयोः ख्य इत्यनुकरणम्, कृतयणादेशयोः तितीशब्दयोरनुकरणं त्य इति । अतो व्याचष्टे-खितिशब्दाभ्यामिति । **औत्**—एतच्चसूत्रं नदीसंज्ञकेषु इदुद्भ्यामिति पूर्वसूत्रेण

मध्यमनोरमापूरणी

प्रत्ययलोपे इति—प्रत्ययो लक्षणं निमित्तं यस्य तत् प्रत्यय्लक्षणम् । प्रत्यये सति यत्कार्यं भवति तत्प्रत्यये लुप्तेऽपि भवतीत्यर्थः । **सखा**—सखि सु इति स्थिते अनङ् साविति अनङ्, सर्वनामस्थाने इति उपधादीर्घे हल्ङ्याबिति सुलोपे नलोपः प्रातिपदिकेति न लोपे सखेति । **सखायौ**—सखि औ इति जाते सख्युरिति णिद्वद्भावेऽचो ञ्णितीति वृद्धौ आयादेशः । **सख्युरिति**—सखि ङस् इति जाते यणि सख्यस् इति । ख्यत्यात् परस्येति उत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ । **पत्या इति**—पति आ इति जाते शेषोघ्यसखि इति प्राप्ता घिसंज्ञा पतिः समास इति निषिध्यते। तेन नादेशो न । यणि कृते पत्या इति ।

हिन्दी

२०१. प्रत्ययलोप होने पर भी प्रत्ययाश्रित कार्य होता है ।

२०३. सखि अङ्ग से परे सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान णिद्वत् होता है ।

२०४. अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो ञित् णित् प्रत्यय परे रहते ।

२०५. कृतयणादेश खि ति शब्द और खी ती शब्द से परे ङसि ङस् के अत् को उत् होता है ।

२०६. इकार उकार से परे ङि को औत् हो ।

२०७. पति शब्द को समास में ही घिसंज्ञा हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कति शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः ।

२०८. बहुगणवतुडति संख्या १।१।२३॥

२०९. डति च १।१।२५॥ डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ।

२१०. षड्भ्यो लुक् ७।१।२२॥ षड्भ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् स्यात् ।

२११. प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १।१।६१॥ लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात्तत्तत्संज्ञं स्यात् । जसि चेति गुणे प्राप्ते ।

२१२. न लुमताङ्गस्य १।१।६३॥ लुक्श्लुलुप् एते लुमन्तः । लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात् । कति २। कतिभिः । कतिभ्यः २। कतीनाम् । कतिषु । अस्मद् युष्मद् षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः । त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ ।

२१३. त्रेस्त्रयः ७।१।५३॥ आमि । त्रयाणाम् । त्रिषु । गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम्। द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः ।

मध्यमनोरमा

मत्यामित्यादौ ङेराम्विधायकेन बाध्यते । घिसंज्ञकेषु अच्च घेरित्युत्तरसूत्रेण बाध्यते। तस्मात् संज्ञाद्वयशून्योऽस्य विषयः । न च घिनदीसंज्ञाशून्य उकारोऽस्तीत्यतः इदुद्भ्यामिति सूत्रादुकारग्रहणं विहाय केवलमिद्ग्रहणमौदिति सूत्रेऽनुवर्तते, अतो व्याचष्टे इतः परस्येति । **कति इति**—कतिशब्दो बहुवचनान्त इत्यर्थः । का संख्या येषां ते कति । संख्यावाचकशब्दात् किमः संख्यापरिमाणे डति चेति किम् 'शब्दात् डतिः, डित्वाट्टिलोपः । **बहुगण**—बहुगणशब्दौ संख्यावाचकौ, वतु-प्रत्ययान्तः यावांस्तावानित्यादि । एषां संख्यासंज्ञाप्रयोजनं कृत्वसुजादिषट्संज्ञादितत्तत्संज्ञमिति । लुक्शब्देन यो लोपस्तस्य लोपस्य लुक् संज्ञा, श्लुशब्देन यो लोपस्तस्य श्लुसंज्ञा, लुप् शब्देन यो लोपस्तस्य लुप्संज्ञा इत्यर्थः । कतीत्यत्र जसः षड्भ्यो लुक् इति लुक्शब्देनादर्शनं कृतमिति लुक्संज्ञकम् । **न लुमतेति**—लुशब्दो विद्यते यस्मिन्, तेन लुमता । लुक्श्लुलुप् इति त्रिष्वपि लुशब्दो विद्यते, तेन त्रयोऽपि लुमन्तः । तथा च लुक्श्लुलुप्शब्दैर्लोपे कृते तन्निमित्तमङ्गकार्यं प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति सूत्रेण प्राप्तं न भवतीत्यर्थः । अङ्गकार्यमित्युक्तेः कतीत्यादौ प्रत्ययलक्षणेन सुप्तिङन्तमिति पदसंज्ञा भवत्येव । पदसंज्ञायाः प्रत्ययान्तकार्यत्वेनाङ्गकार्यत्वाभावात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

त्रयः इति—त्रि शब्दाज्जसि जसि चेति गुणेऽयादेशे सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

२०८. बहु, गण शब्द, वतु व डति प्रत्ययान्त को संख्या संज्ञा हो ।

२०९. डत्यन्त संख्या को षट्संज्ञा हो ।

२१०. षट्संज्ञक से परे जस् शस् का लुक् होता है ।

२११. लुक् श्लु लुप् शब्दों के द्वारा प्रत्यय लोप होने पर उन्हें क्रमशः लुक् श्लु लुप् संज्ञा होती है ।

२१२. लुमता शब्द से लुप्त होने पर उस को निमित्त बनाकर अङ्ग कार्य नहीं हो ।

२१३. त्रि शब्द को त्रय आदेश हो आम् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१४. त्यदादीनामः ७।२।१०२।। एषामकारो विभक्तौ । वा. द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः । द्वौ २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २ । द्विपर्यन्तानां किम्–भवान्, भवन्तौ । पाति लोकमिति पपीः– सूर्यः । पप्यौ । पप्यः । हे पपीः । पपीम्। पपीन् । ङौ तु सवर्णदीर्घः, पपी । पपीषु । एवं वातप्रम्यादयः । बह्व्यः श्रेयस्यः यस्य स बहुश्रेयसी ।

२१५. यूस्त्र्याख्यौ नदी १।४।३।। ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः । वा. प्रथमलिङ्गग्रहणं च । पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः।

मध्यमनोरमा

प्रत्ययान्तकार्यत्वेनाङ्गकार्यत्वाभावात् । **असमदिति**—अत्रास्मद्युष्मद्ग्रहणं प्रसङ्गात् । **गौणत्वेऽपीति**—बाधकाभावाद् गौणत्वेऽपि त्रयादेशो भवत्येवेत्यर्थः । **द्विपर्यन्तानां किमिति**—द्विपर्यन्तानामित्यनेन कस्य व्यावृत्तिः ? युष्मदस्मच्छब्दयोरात्वयत्वलोपैः स्वस्वविषयेऽत्वं बाधनीयम् । किमः कादेशो विशिष्य विहितः इति स एव अत्वबाधकः इति द्विपर्यन्तानामिति प्रश्नः । तत्रोत्तरं **भवानिति**—अत्र भवत्सु इति स्थिते द्विपर्यन्तानामित्यस्याभावेऽत्रापि त्यदादीनाम इत्यत्वं स्यात् । ततश्चातो गुणे इति पररूपे उगिदचाम् इति नुमि सति सर्वनामस्थाने इति दीर्घे नकारसुलोपे च भवा इति रूपं स्यादित्यर्थः। **भवन्ताविति**—पूर्ववत्तकारस्यात्वे पररूपे नुमि दीर्घे च भवानाविति स्यादित्यर्थः । **बहुश्रेयसीति**-अतिशयेन प्रशस्या श्रेयसी, प्रशस्यशब्दादीयसुनि प्रशस्यस्य श्रादेशे उगितश्चेति ङीप् । बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य सः बहुश्रेयसी । हल्ङ्यादिना सुलोपः । अत्र गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति श्रेयसीत्येतस्य ह्रस्वो न, ईयसो बहुव्रीहेर्नेति तन्निषेधात् । **यूस्त्र्याख्यौ**—ईश्च ऊश्च यू, व्याख्यानाद्दीर्घयोरेव ग्रहणम्! अविभक्तिको निर्देशः, अन्यथा य्वौ इति स्यात् । स्त्रियमाचक्षाते इति स्त्र्याख्यौ, मूलविभुजादित्वात् कः । चक्षिङः ख्याञ्, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । स्त्रियामिति वक्तव्ये आख्याग्रहणान्नित्यस्त्रीत्वलाभः । यू इति नित्यस्त्रीलिङ्गावित्यस्य विशेषणम् । विशेषणेन तदतन्तविधिस्तदेतद् व्याचष्टे- ईदूदन्ताविति। अत्र ईऊवर्णयोरेव नदीसंज्ञेत्यपि पक्षोऽस्ति । अत एव आच्छीनद्योर्नुम् इति नदीसंज्ञके ईकारे परतो नुम् विधीयते तुदन्तीत्यादौ । तत्र ईदूतोः स्त्राख्यत्वं ङीबूङादिषु स्वत एवास्ति, स्त्रियामेव तद्विधानात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

द्वौ—द्वि औ इति जाते त्यदादीनाम इत्यत्वे वृद्धिरेचीति वृद्धिः । **त्रयाणाम्**—त्रि आम् इति स्थिते त्रेस्त्रय इति त्रयादेशे नुटि नामीति दीर्घे णत्वे च रूपम् । पाति लोकमिति **पपीः**-सूर्यः । पा धातोः यापोः किद् द्वे चेति ईत्वे द्वित्वादिकार्ये पपा ई इति । आतो लोप इति आलोपे पपी इति । सौ **पपीरिति** । **पपी इति**—पपी+ङि इति जाते सवर्णदीर्घे पपी इति ।

हिन्दी

२१४. त्यदादिगण पठित द्विपर्यन्त की टि को अत्व होता है ।

२१५. ईदन्त ऊदन्त नित्य स्त्रीलिङ्ग को नदी संज्ञा होती है । वा. पूर्व में नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द के उपसर्जनवश अन्य लिङ्ग प्राप्त करने पर भी नदी संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१६. अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७।३।१०७।। अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः स्यात् सम्बुद्धौ । हे बहुश्रेयसि ।

२१७. आण्नद्याः ७।३।११२।। नद्यन्तात् परेषां ङितामाडागमः ।

२१८. आटश्च ६।१।९०।। आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्याः । बहुश्रेयसीनाम् ।

२१९. ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७।३।११६।। नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च परस्य ङेरामादेशः स्यात् । इह परत्वादाटा नुट् बाध्यते । बहुश्रेयस्याम् । शेषं पपीवत्। अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः । अतिलक्ष्मीः । शेषं बहुश्रेयसीवत् । प्रधीः ।

२२०. अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६।४।७७।।

श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते ।

मध्यमनोरमा

लक्ष्मीरित्यादौ तु स्त्रीवाचकवर्णसमुदायान्तर्गतत्वेनेति बोध्यम् । **पूर्वं स्त्र्याख्यस्येति**— समासात् पूर्वं श्रेयसीशब्दो नित्यस्त्रीलिङ्गः, समासे जातेऽन्यपदार्थस्य प्राधान्यात् श्रेयसीशब्दो गुणीभूतः । अयं भावः– समासस्थले विशिष्टे शक्तिः स्वीक्रियते, तेन बहुश्रेयसीशब्दस्य बहुश्रेयसीकः पुरुष इत्यर्थः। श्रेयसीशब्दस्तु समासात् पूर्वं स्त्रीत्वविशिष्टां व्यक्तिं बोधयन्नपि समासे सति न स्वार्थाभिधायकः। अतः स्त्र्याख्यत्वाभावात् अप्राप्ता संज्ञाऽनेन विधीयते । **ङेराम्**— नदी च आप् च नीश्च नद्याम्न्यः, तेभ्यः, तेन नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च ङेराम् इत्यर्थः । **अतिलक्ष्मीरिति**— ङ्यन्तत्वाभावात् न सुलोप इति बहुश्रेयसीशब्दात् सौ परतः विशेषः । **शेषमिति**— लक्ष्मीशब्दो नित्यस्त्रीलिङ्गः । अतः तस्य समासे पूर्ववत् स्त्रीवाचकत्वाभावेऽपि नदीत्वं भवत्येवेति बहुश्रेयसीवदित्यर्थः । **प्रधीरिति**— प्रकर्षेण ध्यायतीति प्रधीः । ध्यायतेः सम्प्रसाणञ्चेति क्विपि सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च हलः इति दीर्घः । नित्यस्त्रीलिङ्गत्वान्नदीसंज्ञकः

मध्यमनोरमापूरणी

बहहुश्रेयस्यै— बहुश्रेयसी+ङे इत्यत्र यूस्त्र्याख्याविति नदीसंज्ञा । आण् नद्याः इति आट्, आटश्चेति वृद्धिः, यण् । **बहुश्रेयस्यामिति**— ङि विभक्तौ नदी संज्ञायां ङेराम्नद्याम्नीभ्यः इति ङेरामि कृते परत्वात् नुटं प्रबाध्य आण्नद्याः इति आटि, आटश्चेति वृद्धौ यणि रूपम् । **अति लक्ष्मीरिति**— सुलोपाभावात् रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

२१६. अम्बार्थक और नद्यन्त को सम्बुद्धि परे रहते ह्रस्व होता है ।

२१७. नद्यन्त से परे ङित् विभक्ति को आट् का आगम होता है ।

२१८. आट् से परे अच् रहने पर वृद्धि एकादेश हो ।

२१९. नद्यन्त आबन्त और नी शब्द से परे ङि को आम् आदेश होता है ।

२२०. श्नुप्रत्ययान्त इवर्णान्त उवर्णान्त धातु और भ्रूरूप अङ्ग को अजादि प्रत्यय परे रहते इयङ् और उवङ् आदेश हों ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२१. एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६।४।८२।। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादजादौ प्रत्यये परे । प्रध्यौ। प्रध्यः । प्रध्यम् । प्रध्यः । प्रध्यि । शेषं पपीवत् । एवं ग्रामणीः । ङौ तु ग्रामण्याम्। अनेकाचः किम्– नीः । नियौ । नियः । नियम् । असंयोगपूर्वस्य किम्– सुश्रियौ, यवक्रियौ ।

२२२. गतिश्च १।४।६०।। प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । वा. गतिकारके तरपूर्वपदस्य यण्नेष्यते । शुद्धधियौ । शुद्धधियः ।

मध्यमनोरमा

यदा तु प्रकृष्टा धीर्यस्येति विग्रहः तदा धीशब्दस्य नित्यस्त्रीत्वात् प्रथमलिङ्गग्रहणञ्चेति नदीसंज्ञा इत्यर्थः । **अचि श्नुधातुभ्रुवामिति**—श्नुप्रत्ययान्तस्य अङ्गस्य इवर्णोवर्णान्तधातोरङ्गस्य भ्रू इत्येतस्याङ्गस्य च इयङुवङौ स्तः । अत्र श्नुप्रत्ययान्तस्य भ्रूशब्दस्य उवर्णान्तधातोश्च उवङ्, इवर्णान्तधातोरियङ् इति विवेकः । भ्रूरिति न धातुः किन्तु ऊप्रत्ययान्तः इति पृथगुपादानम्। श्नुप्रत्ययान्तस्योदाहरणम् **अश्नुवानि इति**—अश् धातोर्लोडुत्तमपुरुषैकवचने मेर्निः, श्नुप्रत्ययः, आडुत्तमस्येत्याडागमः, उवङादेशः । **इति प्राप्ते इति**—प्रधी-शब्दो ध्यै चिन्तायामिति धातोर्निष्पन्नः, क्विपि सति कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वम्, तत्र क्विपि लोपे धातुमात्रमवशिष्यते । तस्य कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वेऽपि धातुत्वमस्त्येवेति इवर्णान्तधातोः प्रधीशब्दस्य इयङि प्राप्ते इत्यर्थः । **एरनेकाचः**—धातोरवयवयोर्यः संयोगस्स पूर्वो यस्य इवर्णस्य तद्भिन्नो य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तमनेकाच् यदङ्गं तस्य यण् । यथा प्रधीशब्दस्य इवर्णो धात्ववयदसंयोगपूर्वो न भवति । यतः इकारात् पूर्वं धात्ववयवो धकारो न तु संयुक्ताक्षरम्। अत इकारो धात्ववयवसंयोगपूर्वकादिकाराद्भिन्नः, तदन्त इकारान्तो या धातुर्धी इति, तदन्तमनेकाजङ्गं प्रधी इति, तस्य यण्, अलोऽन्त्यस्येत्यन्तादेशः । यदि धात्ववयव इति नोच्येत, संयोगपूर्वो न भवति य इवर्ण एतावदेवोच्येत तदा उन्न्यौ उन्न्यः इत्यत्र यणादेशो न स्यात् । अत्र उत्पूर्वको नीधातुः, अयमपीकारः संयोगपूर्वो भवति, परन्तु संयोगो न धात्ववयवः, किन्तु उदो दकारस्य नियो नकारस्य च उपसर्गावयवधात्ववयवयोः । अतो धात्ववयवसंयोगपूर्वको न भवति उन्नीशब्दस्येकार इति भवति तस्य यणादेशः । श्रियौ श्रियः इत्यत्र यणादेशो न । अत्रेवर्णात् पूर्वः श्रशब्दः, स तु धात्ववयवयोश्शकारेफयोः संयोग इति तत्पूर्वकः श्री इति ईकारः । अत्र तदन्तो यो धातुरिति नोच्येत, धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तस्यानेकाचो यण् इत्येतावदेव चेदुच्येत तदा हरिम् हरीनित्यत्राऽपि यण् स्यात्। हरिशब्दस्येकारोऽपि धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति, तदन्तोऽनेकाच् हरि शब्द इति । एवं **ग्रामणीरिति** । ग्रामणीशब्दोऽपि प्रधीशब्दवत् । ङौ तु विशेषः । ङेराम्नद्याम्नीभ्यः इति आमि ग्रामण्यामिति, तदेवाह ङौ तु इति । **गतिकारकेति**—गतिसंज्ञकः प्रादिः कारकं कर्मादि, तद्भिन्नं

हिन्दी

२२१. धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं हो ऐसे जो इवर्णान्त धातु उसके अनेकाच् अङ्ग को यण् हो, अजादि प्रत्यय परे रहते ।

२२२. प्रादि को क्रियायोग में गति संज्ञा होती है ।

वा. गति और कारक से भिन्न पूर्वपद रहने पर धातु को यण् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२३. न भूसुधियोः ६।४।८५॥ एतयोरचि सुपि यण् न । सुधीः, सुधियौ । सुधियः । इत्यादि । सुखमिच्छतीति सुखीः । सुतमिच्छतीति सुतीः । सुख्युः २। सुत्युः २। शेषं प्रधीवत् । शम्भुर्हरिवत् । एवंभान्वादयः ।

२२४. तृज्वत्क्रोष्टुः ७।१।९५॥ असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टु इत्यस्य स्थाने क्रोष्टृ इति प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ।

२२५. ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७।३।११०॥ ङौ सर्वनामस्थाने च परे ऋदन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । इति प्राप्ते ।

मध्यमनोरमा

पूर्वपदं यस्य तस्य धातोर्न यण् । एवञ्च गतिकारकभिन्नपूर्वस्य न भवतीत्युक्त्या गतिकारकपूर्वस्य भवतीति सिद्धम् । तर्हि गतिकारकपूर्वस्यैव यण् इत्येव कुतो नोक्तमिति चेच्छ्रूयताम्- गतिकारकेतरपूर्वस्येत्युक्तौ गतिकारकपूर्वस्य यण् इत्यायाति । यत्र किमपि पूर्वपदं नास्ति कुमारीमिच्छति कुमारी कुमार्य्यः इत्यादौ, सोप्यायाति । यतः कुमारीत्यस्य पूर्वपदं किमपि नास्ति, तु सुतरामेव गतिकारकेतरपूर्वपदमिति तत्र यण् । गतिकारकपूर्वस्यैवेत्युक्तौ कुमारीशब्दस्य गतिकारकपूर्वत्वाभावात् यण् न स्यात् । **शुद्धधियाविति**—शुद्धा धीर्यस्य स शुद्धधीः । अत्र शुद्धेति न गतिः, न वा कारकमतो गतिकारकभिन्नं, तत्पूर्वको धी इति धातुरिति न यण् । शुद्धं ब्रह्म ध्यायतीति विग्रहे शुद्धध्यौ, शुद्धध्यः इति भवत्येव । शुद्धमित्यस्य कर्मकारकत्वात् । **सुखीरिति**—सुखमिच्छतीति विग्रहे सुखशब्दात् क्यचि सति तस्मिन् परत ईत्वे सुखीय इति क्यजन्तः । सनाद्यन्ता धातव इति धातुसंज्ञको नामधातुस्तस्मात् क्विपि अतो लोपे यलोपे च सुखी-शब्दः । एवं सुतशब्दात् क्यचि सुतीशब्दः, प्रधीशब्दवत् । ङसिङसोस्तु विशेष इत्याह- **सुख्युरित्यादि** । कृतयणादेशात् खीतीशब्दात् परस्य ङसिङसोरकारस्य ख्यत्यादिति सूत्रेणोकारः । अत्र यणादेशः एरनेकाच् इति सूत्रेण । **तृज्वत्क्रोष्टुः**—क्रोष्टुशब्दः तृज्वत् तृजन्तेन तुल्यो भवति । क्रुश् आह्वाने रोदने च, अस्मात् तुन् प्रत्यये क्रोष्टुशब्दः, तृचि क्रोष्टृ शब्दः । द्वावपि शृगालवचनौ, तत्राविशेषेण तयोः प्रयोगे प्राप्ते सर्वनामस्थाने तृजन्त एव प्रयोक्तव्यः, न तु तुन्नन्तः क्रोष्टुशब्द इत्येवमर्थमिदं सूत्रम् । तृतीयादिष्वजादिषु तृजन्तोऽपि तुन्नन्तोऽपि, तत्र विभाषा तृतीयादिष्वचीति विकल्पेन तृज्वद्भावविधानात् । स्त्रियां तृजन्त एव । तत्र स्त्रियाञ्चेति तृज्वद्भावात् । अन्यत्र सर्वत्र क्रोष्टुशब्द एव । यथा क्रोष्टून् क्रोष्टुभ्यां क्रोष्टूनां क्रोष्टुषु इत्यादि । अत्र तृज्वदिति रूपातिदेशस्तेन क्रोष्टुशब्दः तृजन्तरूपो भवति । तत्फलितमाह क्रोष्टुः इत्यस्य । **ऋतो ङि**—ङौ सर्वनामस्थाने परे ऋदन्ताङ्गस्य गुणः स्याद् इति सूत्रार्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुधियौ इति—सुधी औ इति दशायामेरनेकाच इति प्राप्तो यण् न भूसुधियोरिति निषिध्यते। अतः अचिश्नुधातु इति इयङादेशः ।

हिन्दी

२२३. भू और सुधी शब्द को अजादि सुप् परे रहते यण् नहीं हो ।

२२४. असम्बुद्धि सर्वनाम स्थान परे रहते क्रोष्टु को क्रोष्टृ आदेश हो ।

२२५. ङि और सर्वनामस्थान के परे रहते ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२६. ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ७।१।९४॥ ऋदन्तानामुशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ ।

२२७. अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तृणाम् ६।४।११॥ अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ । क्रोष्टॄन् ।

२२८. विभाषा तृतीयादिष्वचि ७।१।९७॥ अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना । क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे ।

२२९. ऋत उत् ६।१।१११॥ ऋदन्तात् ङसिङसोरति परे उकार एकादेशः स्यात् ।

२३०. रात्सस्य ८।२।२४॥ रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । रेफस्य विसर्गः। क्रोष्टुः २। क्रोष्टोः ।

मध्यमनोरमा

उशनसादीनामिति—उशनस् पुरुदंसस् अनेहस् एतेषामित्यर्थः । **अबादीनामिति**—अप् आदिर्येषां ते अबादयः, तेषाम् । अप्शब्दो वारिवाचकः स्त्रीलिङ्गे वक्ष्यते, तदादयस्तृनादयः। तत्र तृन्, कर्त्ता कर्त्तारौ, तृच्-धाता, क्रोष्टा । नप्त्रादयः उणादिव्युत्पन्नाः तृन्-तृच्प्रत्ययान्ता एवेति तेषां तृन्तृच्ग्रहणेनैव दीर्घे सिद्धे उणादिव्युत्पन्नास्तृन्तृजन्ता एते एव ग्राह्याः, नत्वन्ये इति नियमार्थं पृथगुपात्ताः । तेन उणादिव्युत्पन्नाः पितृभ्रातृप्रभृतयो नात्र तृन् तृजन्तत्वेन गृह्यन्ते । **ऋत उत्**—षष्ठ्येकवचने क्रोष्टुशब्दस्य तृज्वद्भावे क्रोष्टृ अस् इति स्थिते ऋवर्णादकारे परतः पूर्वपरयोरुकार एकादेशः । स रपरः उरण् रपर इति सूत्रेण, ततश्च क्रोष्टुर्स् इति जाते रेफसकारयोः संयोगे रात्सस्येति संयोगान्तस्य सस्य लोपः । ननु संयोगान्तस्य लोपः इति सूत्रेणैव लोपः क्रियतां किमनेन पुनर्विधानेन, तस्मात् सिद्धे सत्यारम्भो नियमायेति न्यायात् पुनर्विधानं नियमार्थम् । तेन रेफात् सस्यैव संयोगान्तस्य लोपो नान्यस्येति सिद्धम् । तेन उर्क् परिमार्ट् अत्र रेफात् संयोगान्तककारः टकारश्च न तु सकार इति न संयोगान्त लोपः । **रेफस्य विसर्ग इति**—सलोपे सति क्रोष्टुर् इति जातेऽन्त्यस्य रेफस्य विसर्गः ।

मध्यमनोरमापूरणी

क्रोष्टा—क्रोष्टु सु इति जाते तृज्वत् क्रोष्टुरिति क्रोष्टृ आदेशे 'ऋतो ङि' इति प्राप्तं गुणं प्रबाध्य 'ऋदुशनस्' इति ऋकारस्थाने अनङि क्रोष्टन् स् इति, अप्तृन्निति उपधादीर्घे सकारस्य हल्ङ्यादिलोपे नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपे क्रोष्टा इति । **क्रोष्टारौ**– **क्रोष्टुऔ इति जाते 'ऋतो** ङि' इति ऋकारस्य गुणे रपरत्वे अप्तृन्तृजिति उपधादीर्घः ।

हिन्दी

२२६. ऋदन्त और उशनस् आदि को अनङ् आदेश हो असम्बुद्धि सु परे रहते ।

२२७. अप् आदि की उपधा को दीर्घ हो असम्बुद्धि सर्वनामस्थान के परे रहते ।

२२८. क्रोष्टु शब्द को तृज्वद्भाव हो विकल्प से अजादि तृतीयादि विभक्ति परे ।

२२९. ऋदन्त से परे ङसि, और ङस् सम्बन्धी अत् रहने पर पूर्व पर के स्थान में उकार एकादेश होता है ।

२३०. रेफ से परे संयोगान्त स् का ही लोप हो अन्य का नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन । क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि । पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहू: । हूह्वौ, इत्यादि । अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेष:। हे अतिचमु । अतिचम्वै । अतिचम्वा: २ । अतिचमूनाम् । अतिचम्वाम् । खलपू:। २३१. ओ: सुपि ६।४।८३।। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि । खलप्वौ । खलप्व: । एवं सुल्वादय: । स्वयम्भू: । स्वयम्भुवौ । स्वयम्भुव: । एवं स्वभू:, वर्षाभू: । २३२. वर्षाभ्वश्च ६।४।८४।। अस्य यण् स्यादचि सुपि । वर्षाभ्वौ इत्यादि । दृन्भू: । वा. दृन्करपुन:पूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्य: । दृन्भ्व: । एवं करभू: । पुनर्भू:। दृग्भूकाराभू- शब्दौ तु स्वयम्भूवत् । धाता । धातारौ । धातार: । हे धात: । वा. ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् । धातॄणाम् । एवं नप्त्रादय: ।

मध्यमनोरमा

नुमचिरेति—क्रोष्टु आम् इति स्थिते विभाषा तृतीयादीति तृज्वद्भावे प्राप्ते ह्रस्वनद्याप इति नुटि प्राप्ते पूर्वो नुट् भवति, परोऽपि तृज्वद्भावो बाध्यते । **नुम् वारीणामित्यादौ**, वारि आम् इति स्थिते इकोऽचि विभक्ताविति नुम्प्राप्ते ह्रस्वेति नुटि च प्राप्ते परमपि नुमं बाधित्वा पूर्वोऽपि नुट् । अत्र नुमि सति नामीति दीर्घो न स्यात् । **अचिरेति**—तिसृणामित्यादौ तिसृ आम् इति स्थिते अचिर ऋत इति सूत्रेण ऋकारस्य रेफे प्राप्ते नुटि च प्राप्ते परमपि अचि रं बाधित्वा नुट् पूर्वविप्रतिषेधेनेति, पूर्वस्य विप्रतिषेधो बाधकता तेनेत्यर्थ: । **हूह्वावित्यादि**—इको यण-चीति यणादेश: । **नदीकार्यमिति**—प्रथमलिङ्गग्रहणञ्चेति नदीसंज्ञायां तन्निमित्तकं कार्यं सम्बुद्धौ अम्बार्थनद्योरिति ह्रस्व: । आण् नद्या: इति ङितामाडागम:, आमि ह्रस्वनद्याप इति नुट् । ङौ ङेरामिति आमादेशश्चेत्यर्थ: । खलपूशब्दस्याजादौ सर्वत्र यण्, हलादौ हूहूवत् । **स्वयम्भुवाविति**—न भूसुधियोरिति यणो निषेधात् अचिश्नुधात्विति उवङ् । **धातारौ इति**—अप्तृन्निति दीर्घो व्युत्पत्तिपक्षे इति उणादौ पक्षद्वयमस्ति, व्युत्पत्तिपक्षोऽव्युत्पत्तिपक्षश्च। तत्रा-व्युत्पत्तिपक्षे पितृभ्रातृप्रभृतीनामव्युत्पन्नानां तृन्तृजन्तत्वाभावादेव दीर्घो न भवति । यदा तु व्युत्पत्तिपक्षस्तदा तु तृन्तृजन्तत्वमस्त्येवेति तेषां दीर्घ: स्यात्, तदर्थं नियम: कृत:- उणादिव्युत्पन्नानां तृन्तृजन्तानां मध्ये नप्त्रादीनामेव दीर्घो नान्येषाम् । तेन पितरौ इत्यादौ

मध्यमनोरमापूरणी

क्रोष्ट्रा—क्रोष्टु टा इत्यत्र विभाषा तृतीयादि इति तृज्वद्भावे यणि रूपम् । पक्षे घिसंज्ञा, नादेश: । **हे अतिचमु**—सम्बोधने सौ नदीसंज्ञा, अम्बार्थेति ह्रस्व:, एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेरिति सुलोप: । ङिद्विभक्तिषु अतिचम्वै अतिचम्वा: इत्यादिषु नदीत्वादाडागम: वृद्धि: यण् च भवन्ति । **खलप्वौ इति**— खलपूऔ इति स्थिते ओ: सुपि इति यण् । **वर्षाभ्वौ इति**—वर्षाभू

हिन्दी

वा. नुम्, अच् परे र आदेश, और तृज्वद्भाव से पहले पूर्वविप्रतिषेध से नुट् का आगम होता है ।

२३१. धातु का अवयव संयोग पूर्व में न हो ऐसा जो उवर्ण तदन्त जो धातु उसके तदन्त अनेकाच् अङ्ग को यण् हो अजादि सुप् परे रहते ।

२३२. वर्षाभू शब्द को अजादि सुप् परे रहते यण् होता है ।

वा. दृन् पूर्वक कर पूर्वक व पुन: पूर्वक भू धातु को यण् हो अजादि प्रत्यय परे ।

वा. ऋवर्ण से परे न को णत्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अप्तृन्निति सूत्रे नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम् । तेनेह न । पिता । पितरौ। पितरः । पितरम् । पितरौ । शेषं धातृवत् । एवं जामात्रादयः । ना नरौ । नरः ।

२३३. नृ च ६।४।६।। अस्य नामि वा दीर्घः । नृणाम् । नॄणाम् ।

२३४. गोतो णित् ७।१।९०।। ओकाराद् विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत् । गौः। गावौ । गावः ।

२३५. औतोऽम्शसोः ६।१।९३।। ओकारादम्शसोरचि आकार एकादेशः । गाम्। गावौ । गाः । गवा । गवे । गोः २।

२३६. रायो हलि ७।२।८५।। रैशब्दस्याकारादेशो हलि विभक्तौ । राः । रायौ। रायः । राभ्यामित्यादि । ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः । ग्लौभ्यामित्यादि ।

।। इत्यजन्ताः पुँल्लिङ्गाः ।।

मध्यमनोरमा

न दीर्घः । कर्ता इत्यादौ तु भवत्येव । कर्तृशब्दस्य उणादिव्युत्पन्नत्वाभावात् । **गोतो णित्-** अत्र गोत इति तकारोच्चारणसामर्थ्यादोकारमात्रोपलक्षकं गोपदम् । अत एव वार्तिककारेण गोतो णिदिति सूत्रे ओतो णिदिति वक्तव्यमित्युक्तम् इत्यभिप्रायेण व्याचष्टे ओकारादिति । **औतोऽम्शसोः**—आ ओतः अम् शसोः इतिच्छेदः । इति मध्यकौमुदीव्याख्यायाम्

।। अजन्ताः पुँल्लिङ्गाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

-औ इत्यत्र न भूसुधियोरिति निषेधं प्रबाध्य वर्षाभ्वश्चेति यण् । **धातेति**—धातृ सु इति जाते अनङि अप्तृन्निति उपधादीर्घे सुलोपे नलोपे च धाता इति । **हे धातः**—सम्बोधने सौ ऋतो ङिसर्वनाम इति गुणे रपरत्वे हल्ङ्यादिना सुलोपे रेफस्य विसर्गः । धातृ आमिति जाते नुटि नामीति दीर्घे ऋवर्णान्नस्येति णत्वे **धातॄणाम् इति** । **अप्तृन्निति**—उणादिषु व्युत्पत्तिपक्षः अव्युत्पत्तिपक्षश्च स्वीक्रियेते। व्युत्पत्तिपक्षे अप्तृनिति सूत्रे नप्त्रादीनामपि तृन्तृजन्तत्वेनैव दीर्घे सिद्धे पुनः तेषां ग्रहणं नियमार्थम् । नियमश्चेत्थम्- 'उणादिनिष्पन्नानां तृन्-तृच्-प्रत्ययान्तानां यदि उपधादीर्घस्तर्हि नप्त्रादीनामेव' इति । तेन पित्रादिसंज्ञाशब्दानां नोपधादीर्घः । नृणामिति- नृ आमिति स्थिते नुटि नामीति नित्यं दीर्घं प्रबाध्य नृ चेति विकल्पेन दीर्घः । दीर्घाभावपक्षे **नृणामिति,** ऋवर्णान्नस्येति णत्वम् । **गौः**—गो स् इति स्थिते गोतो णिदिति गोर्णिद्वद्भावे अचो ञ्णिति इति ओकारस्य वृद्धौ सो रुत्वविसर्गौ । **राः**—रै स् इत्यत्र रायो हलीति ऐकारस्यात्वे सो रुत्वविसर्गौ । मध्यमनोरमापूरण्याम्

इत्यजन्तपुँल्लिङ्गप्रकरणम् ।

हिन्दी

२३३. नृ शब्द को नाम् परे रहते विकल्प से दीर्घ हो ।

२३४. ओकार से विहित सर्वनामस्थान णिद्वत् होता है ।

२३५. ओकार से परे अम् शस् सम्बन्धी अच् रहने पर आकार एकादेश हो ।

२३६. रै शब्द को आकारान्त आदेश हो हलादि विभक्ति परे रहते ।

इति अजन्तपुँल्लिङ्ग प्रकरण

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ अजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम्

रमा । २३७. औङ आपः ७।१।१८॥ आबन्तादौङः शी स्यात् । औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा । रमे । रमाः ।

२३८. सम्बुद्धौ च ७।३।१०६॥ आप एकारः । हे रमे । हे रमे । हे रमाः। रमाम् । रमाः ।

२३९. आङि चापः ७।३।१०५॥ आङि ओसि चाप एकारः । रमया । रमाभ्याम्। रमाभिः ।

२४०. याडापः ७।३।११३॥ आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः स्यात् । वृद्धिः। रमायै । रमाभ्यः २। रमायाः २। रमयोः २। रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गादयः ।

२४१. सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७।३।११४॥ आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याडापश्च ह्रस्वः । सर्वस्यै । सर्वस्याः २। सर्वासाम् । सर्वस्याम् । शेषं रमावत्। एवं विश्वादयोऽप्याबन्ताः ।

२४२. विभाषा दिक् समासे बहुव्रीहौ १।१।२८॥ सर्वनामता वा स्यात् । उत्तरपूर्वस्यै । उत्तरपूर्वायै इत्यादि । अन्तरस्यै शालायै । अपुरीत्युक्तेर्नेह- अन्तरायै नगर्यै । तीयस्य ङित्सूपसंख्यानात् द्वितीयस्यै, द्वितीयायै । एवं तृतीया । अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल ।

मध्यमनोरमा

रमेति—रमा सु इति स्थिते सोरुकारलोपे हल्ङ्याबिति सुलोपः । **औकार विभक्तेरिति-** प्रथमाद्वितीयाद्विवचनस्येत्यर्थः । **रमे इति**—रमा औ इति स्थिते औङः शी आदेशे शकारस्य लशक्वतद्धिते इति लोपे आद्गुणः । **रमाः इति**—रमा शस् इति स्थिते प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णदीर्घः । **रमयेति**—आप एकारे जाते तस्यायादेशः । **रमायामिति**—ङेराम्नद्याम्नीभ्यः इति सूत्रेण ङेराम्, याडागमः, वृद्धिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हे रमे—सम्बोधने रमा स् इति स्थिते सम्बुद्धौ चेति एत्वे एङ्ह्रस्वादिति सुलोपः । **सर्वस्यै इति**—सर्वा ङे इति जाते सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्चेति स्याट्, आपः ह्रस्वत्वञ्च । सर्वस्या ए इति जाते वृद्धिः । **सर्वस्याः इति**—ङसिङसोः स्याटि ह्रस्वे सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वविसर्गौ । सर्वासामित्यत्र सुट् ।

हिन्दी

२३७. आबन्त अङ्ग से परे औङ् को शी आदेश होता है ।

२३८. सम्बुद्धि परे रहते आबन्त को एकार हो ।

२३९. आङ् और ओस् परे रहते आबन्त को एकार हो ।

२४०. आबन्त से परे ङिद्विभक्ति को याट्-आगम होता है ।

२४१. आबन्त सर्वनाम से परे ङित् विभक्ति को स्याट् आगम हो तथा आप् को ह्रस्व हो जाये ।

२४२. दिक्समास में बहुव्रीहि को विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. असंयुक्ता ये डलकास्तद्वतां ह्रस्वो न ।। हे अम्बाडे ! हे अम्बाले ! हे अम्बिके! जरा । जरसौ । जरे ! इत्यादि । पक्षे हलादौ च रमावत् । गोपा विश्वपावत् । मतीः । मत्या ।

२४३. ङिति ह्रस्वश्च १।४।६।। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति । मत्यै। मतये । मत्याः । मतेः । परत्वात् 'औत्' इति प्राप्ते ।

२४४. इदुद्भ्याम् ७।३।११७।। नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्यां परस्य ङेराम् । मत्याम्, मतौ । शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः ।

मध्यमनोरमा

उत्तरपूर्वस्यै इति—उत्तरपूर्वयोरन्तरालदिक् उत्तरपूर्वा, दिङ्नामान्यन्तराले इति बहुव्रीहि-समासः । **अपुरीति**—अन्तरमिति गणसूत्रेऽपुरीत्युक्तेरिह सर्वनामता नेत्यर्थः । **तीयस्येति**—तीयप्रत्ययान्तस्य ङिद्वचने परतः सर्वनामसंज्ञाविकल्पः । **असंयुक्ता इति**—अम्बालाशब्दे लकारोऽसंयुक्तः । अम्बाडाशब्दे डकारोऽसंयुक्तः । अम्बिकाशब्दे ककारोऽसंयुक्त इति तेषां न ह्रस्वः । अक्का-अल्लाशब्दयोस्तु ककारलकारौ संयुक्तौ इति तत्र ह्रस्वः । **जरसाविति**—जराया जरसन्यतरस्यामिति अजादौ विभक्तौ विकल्पेन जरसादेशः । जरसादेशाऽभावे रमावत् । तेनाजादौ विभक्तौ रूपद्वयं, हलादौ जरसाभावाद् रमावदेकमेव रूपम् । अत एवाह पक्षे हलादौ चेति । **गोपा इति**—गोपायतीति गोपाः, गुप् धातोः गूपूधूपेत्यायः गुणः, गोपाय इत्यस्य सनाद्यन्ता इति धातुत्वं, तस्मात् क्विपि अतो लोपे यलोपे च गोपा इति धातुरूपमवशिष्यते। तस्य शसादावातो धातोरित्यालोपः, गोपः, गोपा, गोपाभ्यामित्यादि । **मतीरिति**—स्त्रीलिङ्गे मतिशब्द इति तस्माच्छसो नः पुंसीति शसः सकारस्य नकारो न भवति । **मत्येति**—मति शब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वादाङो नास्त्रियामिति नाभावो न । **ङिति ह्रस्वश्च**—इयङुवङ्स्थानाविति दीर्घेकारोकारविशेषणम्, स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ इति च दीर्घयोरेव विशेषणम् । ह्रस्वयोस्तु स्त्रियां वर्तमानमात्रम् । तेन मतिशब्दस्येयङुवङ्स्थानत्वाऽभावेऽपि नदी संज्ञाविकल्पः ! **मत्यै इति**—नदीसंज्ञायामाडागमे आटश्चेति वृद्धौ इको यणचीति यणादेशः। **मतये इति**—नदीसंज्ञाया वैकल्पिकत्वात्तदभावे शेषो घ्यसखीति घिसंज्ञायां घेर्ङितीति गुणः । **मत्या इति**—ङसिङसोर्नदीसंज्ञापक्षे आण्नद्या इति आडागमे वृद्धौ इको यणचीति यणादेशः।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तरस्यै शालायै इति—अन्तरा इति बाह्यार्थवाचकात् ङे विभक्तौ सर्वनाम्नः स्याडिति स्याडागमे ह्रस्वे च कृते वृद्धिः । **हे अम्बाडे**—अम्बाडा सु इति सम्बोधने अम्बार्थेति ह्रस्वे प्राप्ते तत् 'असंयुक्ता ये डलका' इति निषिध्यते । एत्वे सुलोपे रूपम् ।

हिन्दी

वा. असंयुक्त डकार लकार व ककार वाले शब्दों को अम्बार्थ नद्योर्ह्रस्वः से ह्रस्वता नहीं होती है ।

२४३. इयङ् उवङ् के स्थानी स्त्रीशब्दभिन्न नित्यस्त्रीलिङ्ग ईकार ऊकार तथा ह्रस्व इवर्ण उवर्ण की नदीसंज्ञा हो विकल्प से ङित् विभक्ति परे ।

२४४. नदीसंज्ञक इकार उकार से परे ङि को आम् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२४५. त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७।२।९९।। स्त्रीलिङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ।
२४६. अचि र ऋतः ७।२।१००।। तिसृचतस्रोः ऋतो रादेशोऽचि। गुणदीर्घोत्वानामपवादः। तिस्रः २। तिसृभिः। तिसृभ्यः २। आमिनुट्।
२४७. न तिसृचतसृ ६।४।४४।। एतयोर्नामि दीर्घो न। तिसृणाम्। तिसृषु। द्वे २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २। गौरी। गौर्यौ। गौर्यः। हे गौरि। हे गौर्यौ। गौरीम् इत्यादि। एवं नद्यादयः। लक्ष्मीः। शेषं गौरीवत्। एवं तरीतन्त्र्यादयः। स्त्री। हे स्त्रि।

मध्यमनोरमा

मतेरिति—नदीसंज्ञाभावे घिसंज्ञायां घेर्ङितीति गुणे ङसिङसोश्चेति पूर्वरूपम्। **औतोऽपवाद इति**—औदिति सूत्रेण प्राप्तस्यौत्वस्य बाधक इत्यर्थः। **मत्यामिति**—मति ङि इति स्थिते नदीसंज्ञापक्षे ङेरामादेशे आण्नद्या इत्याडागमे आटश्चेति वृद्धौ इको यणचीति यणादेशः। **मताविति**—नदीत्वाभावे अच्च घेरिति ङेरौकारे इकारस्याकारे च वृद्धिरेचीति वृद्धिः। **गुणदीर्घोत्वेति**—तिसृ जस् इति स्थिते जकारलोपे सति जसि चेति ऋकारस्य गुणे प्राप्ते तदपवादो रेफः। शसि तिसृ अस्, प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णे दीर्घे प्राप्ते तदपवादोऽचिर ऋत इति रेफः। उत्वस्यापवादो रेफः प्रियतिसृशब्दस्य ङसिङसोः परतो बोध्यः। तिसृशब्दो ङसिङसोः परतः गौणत्व एव सम्भवति। प्राधान्ये तु नित्यबहुवचनान्तत्वादेकवचनयोर्ङसिङसोरभावात्। प्रियत्रि-शब्दस्य ङसिङसोः परस्तिस्रादेशे कृते ऋत् उदिति प्राप्ते तदपवादोऽचिर ऋत इति रादेशः। **आमि नुडिति**—ह्रस्वनद्याप इति सूत्रेणेति शेषः। नुमचिरेति वार्तिकेन परमपि अचि रेति रादेशं बाधित्वां ह्रस्वनद्याप इति नुडिति भावः। **द्वे इति**—द्विऔ इति स्थिते त्यदादीनाम इति अकारान्तादेशे स्त्रीलिङ्गत्वादजाद्यतष्टाबिति टाप् प्रत्यये द्वा औ इति जाते औङ आप इति औङः शीभावे शस्येत्संज्ञायाम् लोपे आद्गुण इति आकारेकारयोरेकारः। एवं द्वितीया द्विवचनेऽपि। **द्वाभ्यामिति**—त्यदादीनाम इत्यत्वे टाप्। **द्वयोरिति**— टापि आङि चाप इति एत्वे अयादेशः। **गौरीति**—हल्ङ्याबिति सुलोपः। **गौर्याविति**—गौरीऔ इति, प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णे प्राप्ते दीर्घाज्जसि चेति निषेधः। इक इति यणादेशः। **हे गौरि इति**— एङ्ह्रस्वादिति सुलोपः। **गौरीमिति**—अमि पूर्व इति ईकाराकारयोरीकारः। **लक्ष्मीरिति**— लक्षेर्मुट् चेति लक्ष्धातोरीप्रत्ययः मुडागमश्च। अयमीकारो न ङीप् इति हल्ङ्यादिलोपो न। नदीसंज्ञायां

मध्यमनोरमापूरणी

तिसृणामिति—त्रि आम् इति जाते न तिसृचतसृ इति तिस्रादेशे नुमचिरेति रादेशं बाधित्वा नुटि तिसृ नाम् इति, नामीति दीर्घे प्राप्ते न तिसृचतसृ इति निषिध्यते। ऋवर्णान्नस्येति णत्वम्। **तिसृषु**—तिसृ सु इति जाते आदेशेति षत्वम्।

हिन्दी

२४५. स्त्रीलिङ्ग में त्रि व चतुर् शब्द को तिसृ व चतसृ आदेश हो विभक्ति परे।
२४६. तिसृ व चतसृ के ऋ को र आदेश हो अच् परे रहते।
२४७. तिसृ और चतसृ शब्द को नाम् परे रहते दीर्घ नहीं हो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२४८. स्त्रियाः ६।४।७९।। अस्येयङ् अजादौ प्रत्यये । स्त्रियौ । स्त्रियः ।
२४९. वाऽम्शसोः ६।४।८०।। अमि शसि च स्त्रिया इयङ् वा । स्त्रियम्, स्त्रीम्। स्त्रियः, स्त्रीः । स्त्रिया । स्त्रियै । स्त्रियाः २। स्त्रियोः २। परत्वान्नुट् । स्त्रीणाम्। स्त्रियाम् । स्त्रीषु । श्रीः । श्रियौ । श्रियः ।
२५०. नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १।४।४।। इयङुवङोः स्थितिर्ययोः तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै, श्रिये । श्रियाः २। श्रियः २।
२५१. वाऽऽमि १।४।५।। इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ वा स्तः आमि, न तु स्त्री । श्रीणाम् । श्रियाम् २। श्रियि । धेनुर्मतिवत् ।
२५२. स्त्रियाञ्च ७।१।९६।। स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते ।
२५३. ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५।। ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् स्यात् । क्रोष्ट्री । गौरीवत् । वधूः । शेषं नदीवत् । भूः श्रीवत् । स्वयम्भूः पुम्वत् ।

मध्यमनोरमा

तु नित्यस्त्रीलिङ्गत्वं निमित्तत्वं न तु ङीप् इति नदीकार्यमस्यापि भवत्येवेति गौरीशब्दवत् । हे लक्ष्मि लक्ष्म्यौ इत्यादि । एवं तरीतन्त्र्यादयः इति, एतेऽपि ईप्रत्ययान्ताः न तु ङ्यन्ताः इति लक्ष्मीशब्दवद् बोध्याः । **स्त्रीति-** स्त्यायतेः ड्रट्, डित्वादाकारलोपः, यकारस्य लोपो व्योरिति लोपे टित्वान्ङीप् । स्त्रीसु इति स्थिते हल्ङ्याबिति सुलोपः । **हे स्त्रि इति**—अम्बार्थेति ह्रस्वः, सम्बुद्धिलोपः । **परत्वादिति**—स्त्री आम् इति स्थिते स्त्रिया इति इयङि प्राप्ते तं बाधित्वा परत्वात् ह्रस्वनद्याप इति नद्यन्तत्वप्रयुक्तो नुट्, अट्कुप्वाङिति तस्य णत्वम् । **श्रीरिति**—श्रिञ् सेवायाम्, क्विप्, श्रीः । ङ्यन्तत्वाभावात् न सुलोपः । **श्रियाविति-** अचिश्नुधात्विति इयङ्। एरनेकाच इति यण् तु न भवति, ईकारस्य धात्ववयवसंयोगपूर्वत्वात् । **इयङुवङोरिति**— श्रीशब्दस्येकारस्येयङ्स्थानत्वान्नदीसंज्ञाया यूस्त्र्याख्येति प्राप्ताया निषेधः, तेन हे श्रीरित्यत्र न अम्बार्थेति ह्रस्वत्वम् । **न तु स्त्रीति**—स्त्रीशब्दस्येकार इयङ्स्थानः, स्त्रिया इति सूत्रेण तस्येयङ्विधानात् । तथापि न तत्र नदीसंज्ञानिषेधः । **श्रियै, श्रिये इति**—अत्र ङिति ह्रस्वश्चेति नदीसंज्ञाविकल्पो ङिद्वचने परतो बोध्यः । तत्र नदीसंज्ञापक्षे आण्नद्या इत्याडागमे वृद्धिरेचीति वृद्धौ अचिश्नुधात्विति इयङ्, नदीसंज्ञाऽभावे इयङेव । नदीसंज्ञापक्षे **श्रिया इति** ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्त्रियौ इति—स्त्री औ इति स्थिते स्त्रिया इति इयङि रूपम् । **स्त्रियम् स्त्रीमिति**—स्त्री अम् इति जाते पूर्वरूपं प्रबाध्येयङ् । विकल्पे अमि पूर्वः । **स्त्रियः, स्त्रीरिति**—शसि विकल्पेन इयङ्। ाक्षे सवर्णदीर्घे सस्य रुत्वविसर्गौ । **स्त्रियै**—स्त्री ङे इति, आडागमः, वृद्धिः, इयङ् ।

हिन्दी

२४८. स्त्री शब्द को इयङ् हो अजादि प्रत्यय परे रहते ।
२४९. अम् और शस् परे रहते स्त्री शब्द को इयङ् हो विकल्प से ।
२५०. इयङ् व उवङ् की स्थिति वाले ई ऊ को नदी संज्ञा नहीं हो, स्त्री शब्द को छोड़कर।
२५१. इयङ् व उवङ् की स्थिति वाले ईकार ऊकार को आम् परे रहते विकल्प से नदी संज्ञा होती है, स्त्री शब्द को नहीं ।
२५२. स्त्रीवाची क्रोष्टु शब्द तृजन्त के समान रूप प्राप्त करता है ।
२५३. ऋदन्त और नान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२५४. न षट्स्वस्रादिभ्यः ४।१।१०।। एभ्यो ङीप्टापौ न स्तः ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ।।

स्वसा । स्वसारौ । माता । पितृवत् । शसि मातॄः । द्यौर्गोवत् । राः पुंवत् । नौग्लौवत् । इत्यजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।

मध्यमनोरमा

नदीसंज्ञाऽभावे श्रिय इति । **श्रीणामिति**-वामीति नदीसंज्ञापक्षे ह्रस्वनद्याप इति नुडागमः । नदीसंज्ञाऽभावे इयङ् श्रियामिति। ङौ परतो ङिति ह्रस्वश्चेति नदीत्वपक्षे ङेराम्नद्याम्नीभ्यः, ङेरामादेशे कृते श्रियामिति । नदीसंज्ञाऽभावे इयङि **श्रियि इति** । **धेनुरिति** । ङितिह्रस्वश्चेति नदीसंज्ञाविकल्पात् ङिद्वचने परतो रूपद्वयम्, अन्यत्र हरिवत् । अतो धेनुर्मतिवदित्यर्थः । **स्त्रियाञ्च**---- पूर्ववदत्रापि क्रोष्टुशब्दस्य क्रोष्टृ इत्यादेशो भवतीत्यर्थः । क्रोष्ट्रादेशे जाते ऋकारान्तत्वात् ङीप् । **भ्रूरिति**—भ्रम्धातोर्डूप्रत्ययः, डित्वाट्टिपोपः । भ्रूरिति न धातुस्तथापि अचिश्नुसूत्रे भ्रुवः पृथगुपादानात् उवङ् । अतो भ्रूशब्दोकारस्य उवङ्स्थानत्वात् श्रीशब्दवद् रूपम् इत्यर्थः । **स्वयम्भूरिति**—स्वयम्भूशब्दस्य नित्यस्त्रीत्वाभावात् नदीत्वाभावः । **न षट्स्वस्रादिभ्यः**-एभ्यः इति षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्चेत्यर्थः । शसि मातॄरिति- पितृशब्दस्य पुँल्लिङ्गत्वात्तस्माच्छसो न इति नत्वम् । मातृशब्दस्य स्त्रीत्वान्नत्वाभावः इति पितृशब्दात् विशेषः इति भावः । **द्यौरिति**—द्यो शब्दात् सौ गोतो णिदिति सोर्णित्वे अचो ञ्णितीति वृद्धिः। **रा इति**—रै शब्दात् सौ रायो हलि इत्यात्वम् ।

।। इति अजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

क्रोष्ट्रीति—क्रोष्टु शब्दस्य स्त्रीलिङ्गे स्त्रियाञ्चेति क्रोष्टृ आदेशे ऋन्नेभ्यो ङीबिति ङीपि ऋकारस्य यणि क्रोष्ट्री इति जाते सौ, सोर्हल्ङ्यादिलोपः । **स्वसेति**—स्वसृ शब्दात् सौ ऋन्नेभ्यो ङीबिति ङीपि प्राप्ते न षट्स्वस्रादिभ्य इति तन्निषेधे ऋदुशनस् इति अनङि अप्तृन्निति उपधादीर्घे सोर्हल्ङ्याब्भ्यः इति लोपे स्वसा इति रूपम् । मातॄः इति- मातृ शब्दात् शसि अनुबन्ध लोपे ऋन्नेभ्यो ङीबिति ङीपि प्राप्ते न षट्स्वस्रादिभ्य इति निषेधे प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णदीर्घे मातॄस् इति जाते सस्य रुत्वविसर्गौ ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यामजन्तस्त्रीलिङ्गप्रकरणम् ।।

हिन्दी

२५४. षट्संज्ञक और स्वसृ आदि से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् और टाप् नहीं होते हैं ।

कारिका- स्वसृ तिसृचतसृ ननान्दृ दुहितृ यातृ व मातृ ये सात स्वस्रादि शब्द हैं । (इन से ङीप् और टाप् नहीं होते हैं)

।। इति अजन्तस्त्रीलिङ्ग प्रकरण ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाजन्तनपुंसकप्रकरणम्

२५५. अतोऽम् ७।१।२४॥ अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम् । ज्ञानम् । एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः । हे ज्ञान ।

२५६. नपुंसकाच्च ७।१।१९॥ क्लीबादौङः शी स्यात् । भसंज्ञायाम् ।

२५७. यस्येति च ६।४।१४८॥ ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः । इत्यकारलोपे प्राप्ते । वा. औङः श्यां प्रतिषेधः । ज्ञाने ।

२५८. जश्शसोः शिः ७।१।७०॥ क्लीबात् ।

२५९. शि सर्वनामस्थानम् १।१।४२॥

२६०. नपुंसकस्य झलचः ७।१।७२॥ झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुमागमः स्यात् सर्वनामस्थाने ।

२६१. मिदचोऽन्त्यात् परः १।१।५७॥ अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात् परस्तस्यैवान्तावयववो मित्स्यात् । उपधादीर्घः । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । एवं धनवनफलादयः ।

मध्यमनोरमा

स्वमोरमिति—सोरमश्च अमादेशो भवतीत्यर्थः । अमोऽमादेशः स्वमोर्नपुंसकादिति लुग्बाधनार्थः । **ज्ञानमिति**—ज्ञान सु इति स्थिते सोरमादेशे अमिपूर्वः । **हे ज्ञानेति**—सम्बुद्धौ ज्ञान सु इति स्थिते अमादेशे अमि पूर्वरूपत्वे ज्ञानमिति जाते एङह्रस्वादिति सूत्रेण ह्रस्वाकारात् परस्य सम्बुद्धिसम्बन्धिनो हलो मकारस्य लोपः । **भसंज्ञायामिति**—सुडनपुंसकस्येति सूत्रेण नपुंसके स्वादिपञ्चवचनस्य सर्वनामस्थानसंज्ञाया अभावात् औङः असर्वनामस्थानतया तस्मिन् परतो यचि भमिति सूत्रेण भसंज्ञायामित्यर्थः । **ज्ञाने इति**– ज्ञान औ इति स्थिते औङः श्यादेशे शकारलोपे ज्ञान ई इति जाते अकारस्य यस्येति चेति लोपः प्राप्तः, ईकारस्य असर्वनामस्थानतया भसंज्ञत्वात् , औङः श्यां प्रतिषेध इति स निषिध्यते । औङ आदेशो यः शी तस्मिन् परतो यस्येति लोपो न भवतीति वार्तिकार्थः । **क्लीबादिति**– क्लीबात् परयोः जश्शसोः शिरादेशः । **मिदचोऽन्त्यात्**—अच इति षष्ठी न पञ्चमी, तेन अचां मध्येऽन्त्यादित्यर्थः ।

हिन्दी

२५५. अदन्त नपुंसक से परे सु और अम् को अम् आदेश हो ।

२५६. नपुंसक से परे औङ् को शी आदेश हो ।

२५७. ईकार और तद्धित के परे भसंज्ञक इवर्ण अवर्ण का लोप हो ।

वा. औङ् के स्थान में आए शी के परे भसंज्ञक इवर्ण अवर्ण का लोप नहीं हो ।

२५८. नपुंसक से परे जस् शस् को शि आदेश हो ।

२५९. शि को सर्वनामस्थान संज्ञा होती है ।

२६०. झलन्त और अजन्त नपुंसक को नुम् आगम हो, सर्वनाम स्थान परे रहते ।

२६१. अचों के मध्य जो अन्त्य अच् उससे पर मित् कार्य हो और वह उसी का अन्त अवयव माना जाये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२६२. अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७।१।२५।। एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्डादेशः ।

२६३. टेः ६।४।१४३।। डिति भस्य टेर्लोपः । कतरत्, कतरद् । कतरे । कतराणि। हे कतरत् । शेषं पुम्वत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमशब्दस्य तु अन्यतममित्येव । वा. एकतरात्प्रतिषेधः । एकतरम् ।

मध्यमनोरमा

ज्ञान इत्यत्र अज्द्वयम्, आकारः अकारश्च । तयोर्मध्येऽन्त्योऽकारस्तस्मात् परो भवति नुमागमः, तस्यैवाकारस्य अन्त्यावयवभूतश्च । नकारस्य अकारान्तावयवत्वात् नान्तमङ्गम् । यद्यपि अङ्गसंज्ञायां तदादिग्रहणात् ज्ञानशब्दात् जस् प्रत्ययो विहितः, स ज्ञान शब्दः आदिर्यस्य तादृशं ज्ञानन् इति अङ्गसंज्ञं भविष्यत्येव । तथापि वहंलिह इत्यत्र वहे उपपदे वहाभ्रे लिहः इति सूत्रेण खशि अरुर्द्विषदिति मुम् वहशब्दस्य भवति, स वहशब्दस्यान्त्यावयव इति वहमिति मान्तं पदं भवति। अतो मोऽनुस्वार इति अनुस्वारः । **ज्ञानानीति**— ज्ञान जस् इति स्थिते जसः शौ ज्ञान इ इति जाते शेः शि सर्वनामस्थानमिति सर्वनामस्थानसंज्ञायां नपुंसकस्य झलच इति नुमागमः, तेन ज्ञानन् इ इति जाते तत्रोपधाया अकारस्य सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ इति दीर्घः। **पुनस्तद्वदिति**—अम्-औट्-शस्सु ज्ञानं ज्ञाने ज्ञानानि इत्येवं रूपमित्यर्थः । **पुम्वदिति**— पुँल्लिङ्गरामशब्दवदित्यर्थः । **अड्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः**—अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः इति पदच्छेदः । सूत्रे दकारस्य ष्टुत्वेन डकारे कृते अड्ड् इति द्विडकारनिर्देशः । **क्लीबेभ्य इति**— क्लीबेभ्यः डतर डतम अन्य अन्यतर इतर इति डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः परयोः स्वमोः अद्ड्। तत्र डकार इत्संज्ञको हलन्त्यमित्यनेन, कतर अद् इति स्थिते यचि भमिति भसंज्ञायां टेरित्यकारलोपः, वाऽवसान इति दकारस्य तकारविकल्पः । **हे कतरदिति**- कतर शब्दात् सम्बोधने कतर सु इति स्थिते स्वमोर्नपुंसकादिति सुलोपम्, अतोऽम् इति अमादेशञ्च बाधित्वा सोरद्ड्आदेशे कतर अद् इति स्थिते टेरिति कतर शब्द—स्यान्त्याकारस्य लोपे कतरदिति रूपम्। अत्र सम्बुद्धेर्लोपो न, ह्रस्वान्तादङ्गात् परस्य सम्बुद्धेः एङ्ह्रस्वादिति लोपविधानात् । अत्र कतरशब्दान्त्यस्याकारस्य लोपे सति अङ्गस्य ह्रस्वान्तत्वाभावात् । अद्ड्सम्बन्धिना अकारेण कतरशब्दस्याकारान्तत्वेऽपि तस्याङ्गत्वाभावात्।

मध्यमनोरमापूरणी

कतराणि—कतर जस् इति जाते जसः शिः, सर्वनामस्थानसंज्ञा, नपुंसकस्येति नुम्, उपधादीर्घः, णत्वम् ।

हिन्दी

२६२. डतरादि पाँच नपुंसक शब्दों से परे सु और अम् को अद्ड् आदेश हो ।
२६३. डित् प्रत्यय परे भसंज्ञक की टि का लोप हो ।
वा. एकतर शब्द से सु और अम् को अद्ड् आदेश नहीं हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२६४. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७।। अजन्तस्येत्येव । श्रीपम् । ज्ञानवत् ।

२६५. स्वमोर्नपुंसकात् ७।१।२३।। लुक् । वारि ।

२६६. इकोऽचि विभक्तौ ७।१।७३।। इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ । वारिणी । वारीणि । न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः । हे वारे ! हे वारि ! घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते–

मध्यमनोरमा

प्रत्यये परतः पूर्वस्य अङ्गसंज्ञाविधानात् अद्ड् इत्यकारविशिष्टः प्रत्ययः, तस्मिन् परतो लुप्ताकारस्य रेफान्तस्य कतर् इति शब्दस्याङ्गसंज्ञकत्वात्, अतो यत् ह्रस्वान्तम् अद्ड्प्रत्ययसम्बन्धिनाऽकारेण विशिष्टं कतर इति, न तदङ्गं, लुप्ताकारं कतर् इति अङ्गं तन्न ह्रस्वान्तमिति न सम्बुद्धिलोपः । **अन्यतमस्येति–** अन्यतमशब्दो न डतमप्रत्ययान्तः, किन्तु अव्युत्पन्नं प्रातिपदिकम्, अतस्तस्मात् परस्य न अद्डादेशः । अन्यतरशब्दोऽपि न डतर प्रत्ययान्तः किन्तु अव्युत्पन्न एव, तथापि तस्य डतरादिपञ्चकमध्ये पाठात्ततः परस्य स्वमोरद्डादेशो भवत्येव । अन्यतमशब्दस्य डतरादिमध्ये पाठाभावात्ततः परस्य स्वमोरद्डादेशो न भवतीत्यर्थः । **अजन्तस्येत्येवेति**—अजन्तस्य प्रातिपदिकस्य नपुंसकस्य ह्रस्वो भवतीति सूत्रार्थः । **श्रीपमिति**—श्रियं पातीति विग्रहे पाधातोः श्रीशब्दे उपपदे क्विन्, ततः श्रीपाशब्दस्य कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायाम् आकारस्य ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः, ततः स्वाद्युत्पत्तिः, श्रीपसु इति स्थिते सोरमादेशे अमि पूर्वरूपत्वे श्रीपमित्यादि । **लुक् इति**—नपुंसकात् परयोः स्वमोर्लुगित्यर्थः । **वारिणी इति–** वारि औ इति स्थिते नपुंसकाच्चेति औङः शी, नुमि अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **वारीणि इति**—वारि शब्दाज्जसि जसः शौ नुमागमे वारिन् इ इति जाते शेः सर्वनामस्थानत्वात् तस्मिन् परतो वारिन् इति नकारात् पूर्वस्येकारस्योपधासंज्ञकत्वात् तस्य दीर्घ ईकारः, णत्वं वारीणि इति सिद्धम् । **न लुमता इत्यस्येति**—सम्बोधने वारि सु इति स्थिते स्वमोर्नपुंसकादिति सोर्लुकि जाते वारि इत्यस्य ह्रस्वस्य गुण इति सूत्रेण सम्बुद्धिनिमित्तको गुणः। ननु सम्बुद्धिलोपे जाते सम्बुद्धिपरत्वाभावात् कथं गुणः, न ह्यत्र प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायेन सम्बुद्धिपरत्वमस्ति, न लुमताङ्गस्येति तन्निषेधात् । यतो लुक् शब्देन लोपे प्रत्ययलक्षणनिषेधात् । अत उक्तं न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात् इति । तथा च न लुमतेति निषेधः पक्षे न प्रवर्तते, तदा प्रत्ययलक्षणं भवत्येव । अतः प्रत्ययलक्षणेन सम्बुद्धिपरत्वाद् गुणः । यदा तु प्रत्ययलक्षणस्य निषेधः प्रवर्तते तदा सम्बुद्धिपरत्वाभावाद् गुणो न। तेन हे वारे । हे वारि । इति रूपद्वयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

वारि– वारि सु इति जाते स्वमोर्नपुंसकादिति सोर्लुक् ।

हिन्दी

२६४. नपुंसक में अजन्त प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है ।

२६५. नपुंसक शब्द से परे सु और अम् का लुक् होता है ।

२६६. इगन्त नपुंसक को नुम् हो, अजादि विभक्ति परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन । वारिणे । वारिणः २। वारिणोः २। नुमचिरेति नुट्, नामीति दीर्घः । वारीणाम् । वारिणि । हलादौ हरिवत् ।

२६७. तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद्गालवस्य ७।१।७४॥ प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तं क्लीबं पुंवद् वा टादावचि । अनादये, अनादिने इत्यादि । शेषं वारिवत् ।

मध्यमनोरमा

ननु न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वे किं प्रमाणमिति **चेदुच्यते-** इकोऽचि विभक्ताविति सूत्रे अचि ग्रहणं ज्ञापकम् । तथाहिं वारिभ्यामित्यादौ नुमोऽभावार्थं कृतम् । तद् व्यर्थम् । तत्र नुमि सति नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपेन रूपसिद्धेः । तर्हि सौ नुमभावार्थमज्ग्रहणमस्तु, तत्रापि नलोपेन निर्वाहात् । तथा च सम्बुद्धौ नुमभावार्थमज्ग्रहणम्, न च तत्र नलोपप्रसङ्गः, न ङिसम्बुद्ध्योरिति निषेधात् । ननु सम्बुद्धेर्लुप्तत्वात् विभक्तिपरत्वाभावादेव सम्बुद्धौ नुम्न भविष्यतीति किमज्ग्रहणेनेति चेद्- इदमेवाज्ग्रहणं ज्ञापयति न लुमतेति निषेधो नात्र प्रवर्तते। तच्चु न लुमतेत्यस्यानित्यत्व एव युज्यते । तथा च न लुमतेत्यस्यानित्यत्वादप्रवृत्तिपक्षे विभक्तिपरत्वान्नुम् स्यात्तदर्थमचीत्युक्तम् । एवञ्च इकोऽचीत्यत्राज्ग्रहणं न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वे प्रमाणमिति । **वृद्ध्यौत्वेति-** वृद्धिश्च औत्वञ्च तृज्वद्भावश्च गुणश्च वृद्ध्यौत्व तृज्वद्भावगुणास्तेभ्यः । तत्र वृद्धिं बाधित्वा नुम् । यथा प्रियाः सखायो यस्य तत्कुलं प्रियसखि, तस्य जसि सख्युरसम्बुद्धाविति सखिशब्दात् परस्य जसो णिद्वद्भावे अचो ञ्णितीति वृद्धौ प्राप्तायां तां बाधित्वा इकोऽचि विभक्ताविति नुम् । प्रियसखीनि । औत्वं बाधित्वा नुम्, यथा प्रियसखि ङि इति स्थिते इदुद्भ्यामिति ङेरौत्वे प्राप्ते औत्वं बाधित्वा नुम्, प्रिसखिनि । तृज्वद्भावं बाधित्वा नुम्, यथा प्रियाः क्रोष्टारो यस्मिन् तत्कुलं प्रियकोष्टु, तेन प्रियक्रोष्टुना, प्रियक्रोष्टु टा इति स्थिते विभाषा तृतीयादिष्वचीति तृज्वद्भावे प्राप्ते तृज्वद्भावं बाधित्वा नुम् । प्रकृते वारि ङे इति स्थिते घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते गुणं बाधित्वा इकोऽचीति नुमागमः। **वारीणामिति-** वारि आम् इति स्थिते इकोऽचीति नुमं नुमचिरेति वार्त्तिकेन बाधित्वा ह्रस्वनद्याप इति नुट् । ततो नामीति दीर्घः । **वारिणि इति**—वारि ङि इति स्थिते अच्च घेरिति औत्वे प्राप्ते वृद्ध्यौत्वेति औत्वं बाधित्वा इकोऽचीति नुम् । तृतीयादिषु भाषित पुंस्कमिति- भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः । **प्रवृत्तिनिमित्तैक्ये इति-** शब्दस्यार्थविशेषे प्रवृत्तौ यन्निमित्तं हेतुभूतं, यथा घटशब्दस्य घटरूपेऽर्थे प्रवृतौ निमित्तं घटत्वं, तथा अनादिशब्दस्य न आदिर्यस्य स अनादिरीश्वरः इत्यत्र पुंसि ईश्वरेऽनादिशब्दस्य प्रवृत्तौ अनादित्वम् आद्य भावस्वरूपमेकमेव निमित्तमित्यस्मिन् प्रवृत्तिनिमित्तैक्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

वारिणः इति-वारि ङसि, वारि ङस् इत्युभयत्र घेर्ङितीति गुणः वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यः इति बाध्यते, इकोऽचीति नुमिं अट्कुप्वाङिति णत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ । **वारिणोः**- वारि ओस् इति जाते यणं प्रबाध्य नुमि णत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ । भिस्भ्यामादौ नुमोऽप्राप्त्या हरिवत् वारिभिः वारिभ्यामित्यादि रूपाणि ज्ञेयानि ।

हिन्दी

वा. वृद्धि औत्व तृज्वद्भाव और गुण से पूर्व पूर्वविप्रतिषेध से नुम् होता है ।

२६७. प्रवृत्ति निमित्त के एक होने पर भाषितपुंस्क इगन्त नपुंसक को पुम्वद्भाव हो विकल्प से टा आदि अच् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते ।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यादुक्तपुंस्कं तदुच्यते ॥
पीलुर्वृक्षः फलं पीलु, पीलुने न तु पीलवे ।
वृक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फले पुनः ॥

पीलुर्वृक्षः, पीलु फलं, तस्मै पीलुने । न पुंवत् । प्रवृत्तिनिमित्तभेदात् ।

२६८. अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ७।१।७५॥ टादावचि ।

२६९. अल्लोपोऽनः ६।४।१३४॥ अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिप्रत्ययपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः । दध्ना । दध्ने । दध्नः २। दध्नोः २।

२७०. विभाषा ङिश्योः ६।४।१३५॥ अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिप्रत्ययपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा ङिश्योः । दध्नि, दधनि । शेषं वारिवत् । एवमस्थिसक्थ्यक्षीणि । सुधि । सुधिनी । सुधीनि । हे सुधे । हे सुधि! सुधिये । सुधिने । इत्यादि ।

मध्यमनोरमा

अनादये इति—पुंवद्भावपक्षे इकोऽचीति नपुंसके विहितो नुम् न, किन्तु घेर्ङितीति गुणः । पुम्वद्भावस्याभावपक्षे इकोऽचीति नुम्, अनादिने इति । **पीलुर्वृक्ष इति**– वृक्षे पीलुशब्दस्य प्रवृत्तौ वृक्षविशेषवृत्तिरसाधारणो धर्मः पीलुत्वं निमित्तं, तदीयफले पीलुशब्दस्य प्रवृत्तौ तदीयफलत्वमेव निमित्तम् । पीलुशब्दो हि पीलुवृक्षे संकेतितः, तस्मात् पीलुशब्दात् ओरञ् इति अञ्-प्रत्यये तस्य फले लुक् इति लुकि पीलुशब्दः फले प्रवर्तते इति लुप्तप्रत्ययार्थबलात् यौगिकस्य पीलुशब्दस्य पीलुफलत्वेन फले प्रवृत्तिः । वृक्षे तु सङ्केतितत्वात्, पीलुत्वेनेति विवेकः । **दध्नेति**—दधि टा इति स्थिते अस्थिदधीति इकारस्य अनङि दधन् आ इति जाते दधन् इत्यङ्गं, तस्यावयवोऽन् असर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरः, सर्वनामस्थानभिन्नो

मध्यमनोरमापूरणी

दध्नि इति—दधि ङि इति स्थिते अस्थिदधीति अनङि दधन् ङि इति स्थिते ङस्येत्संज्ञा, यचि भमिति दध्नः भसंज्ञा, अल्लोपोऽनः इति सूत्रं प्रबाध्य विभाषा ङिश्योरिति अनः अकारलोपे दध्नि इति । लोपाभावे दधनि इति ।

हिन्दी

कारिका—जिस निमित्त को लेकर पुँल्लिङ्ग में शब्द प्रवृत्त होता है वही नपुंसक में भी यदि निमित्त हो तो वह शब्द भाषितपुंस्क होता है । पीलु शब्द पुँल्लिङ्ग में वृक्ष निमित्तक है और नपुंसक में वृक्षजन्य फलनिमित्तक है, अतः भाषित पुंस्क नहीं हुआ । फलतः चतुर्थ्यादि में पीलुने रूप होगा, पीलवे नहीं । (टा में नपुंसक और पुँल्लिङ्ग में समानता है ।)

२६८. अस्थि दधि सक्थि और अक्षि शब्द को टादि अच् परे रहते अनङ् हो ।

२६९. अङ्ग का अवयव सर्वनामस्थान भिन्न यजादि स्वादिपरक अन् के अ का लोप हो।

२७०. अङ्ग का अवयव असर्वनामस्थान यजादि स्वादि परक अन् के अ का लोप हो ङि और शी परे रहते विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मधु । मधुनी । मधूनि । हे मधो । हे मधु । एवमम्ब्वादयः । सुलु । सुलुनी। सुलूनि । सुलुना, सुल्वा इत्यादि । धातृ । धातृणी। धातॄणि । हे धातः । हे धातृ । धात्रा, धातृणा । एवं ज्ञातृकर्त्रादयः।

२७१. एच् इग्घ्रस्वादेशे १।२।४८।। आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात्। प्रद्यु । प्रद्युनी। प्रद्यूनि । प्रद्युना । इह न पुंवत् यदिगन्तं न तत्पुंसि दृष्टम् । प्ररि । प्ररिणी । प्ररीणि । प्ररिणा । वा. एकदेशविकृतमनन्यवत् । प्रराभ्याम् । प्ररीणाम् । सुनु । सुनुनी । सुनूनि । सुनुनेत्यादि ।

।। इत्यजन्ताः नपुंसकलिङ्गाः ।।

मध्यमनोरमा

यकारादिरजादिर्वा यः स्वादिः आ इति स परो यस्य तादृशोऽन्, तस्याकारस्य लोपः । **हे सुधे इति**—न लुमतेति निषेधस्यानित्यत्वात् पक्षे गुणः । एवं हे मधो ! हे धातः, हे सुलो ! इत्यादौ पाक्षिको गुणो बोध्यः । **सुधियेति**—तृतीयादिषु भाषितपुंस्कमिति पुम्वद्भावे इकोऽचीति नुमभावे अचि श्नुधात्विति इयङ् । **सुल्वेति**– पुम्वद्भावपक्षे ओः सुपीति यण्, तद्भावे तु नुम् । **एच इक्**– एचः स्थाने ह्रस्वादेशे कर्त्तव्ये इगेव भवति । **न पुंवदिति**—पुम्वद्भावो हि इगन्तं यत् क्लीबं भाषितपुंस्कं तस्य विधीयते, तत्र प्रद्यो शब्दस्य ह्रस्वे जाते प्रद्युशब्दः इगन्तः क्लीबः स न भाषितपुंस्कः, पुंसि प्रद्योशब्दस्य दर्शनात् । अत एवोक्तं यदिगन्तं न तत्पुंसि दृष्टमिति । एवं सुनुना प्ररिणा इत्यादावपि न पुंवत् । प्ररिशब्दस्य सुनु शब्दस्य च इगन्तस्य पुंसि अदर्शनात्। पुंसि प्रै शब्दस्य सुनो शब्दस्य च दर्शनात् इति । **एकदेशविकृतेति**- रायो हलीति रै शब्दस्यात्वं विहितम्, रैशब्दैकदेशस्य ऐकारस्य ह्रस्वरूपे विकारेऽपि रि शब्दो रैशब्दवदेव नान्यः, रैशब्दप्रयुक्तं कार्यं रि शब्देऽपि भवतीत्यर्थः । तेन रायो हलीति रैशब्दस्य विहितमात्वं प्ररिशब्दस्यापि भवति ।

।। इति मध्यकौमुदीव्याख्यायाम् अजन्ता नपुंसकलिङ्गाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

सुधिये इति—सुधि ङे इति जाते तृतीयादिष्विति पुंवद्भावे एरनेकाच इति प्राप्तो यण् न भूसुधियोरिति निषिध्यते, अचिश्नुधातु इति इयङि सुधिये इति । पुंवद्भावाभावे नुमि सुधिने इति । **प्रद्यूनि इति**—प्रद्यो-शब्दस्य एच इग्घ्रस्वादेश इति ह्रस्वे प्रद्यु इति, जसि, जसः श्यादेशे सर्वनामस्थान संज्ञा, इकोऽचीति नुमि उपधा दीर्घे प्रद्यूनि इति । **प्रद्युना इति**—ह्रस्वे कृते प्रद्यु टा इति स्थिते नुमि प्रद्युनेति । अत्र पुंवद्भावो न भवति, प्रद्यु शब्दस्य भाषितपुंस्कत्वाभावात्। पुंलिङ्गे प्रद्योशब्दः, अत्र इगन्तः प्रद्यु इति न भाषितपुंस्कत्वम् । एवमेव प्ररिणा सुनुनेत्यादौ बोध्यम् । **प्ररीणामिति**—प्रै शब्दस्य ह्रस्वे कृते प्ररि इति, आमि नुमचिरेति नुमं बाधित्वा ह्रस्वनद्याप इति नुटि नामीति दीर्घे णत्वे प्ररीणामिति । **सुनु इति**—सुनो इत्यस्य ह्रस्वे सुनु इति, तस्मात् सौ अमि वा कृते स्वमोर्नपुंसकादिति लुकि सुनु इति । इत्यजन्त नपुंसकलिङ्गप्रकरणम्।

हिन्दी

२७१. आदिश्यमान ह्रस्वों के मध्य एच् को इक् ही ह्रस्व हो ।

वा. एकदेश में विकार रहने पर वह विकृत अन्य नहीं होता ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ हलन्तपुँल्लिङ्गाः

२७२. हो ढः ८।२।३१।। झलि पदान्ते च । लिट्, लिड् । लिहौ । लिहः । लिड्भ्याम् । लिटत्सु, लिट्सु ।

२७३. दादेर्धातोर्घः ८।२।३२।। झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः ।

२७४. एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः-८।२।३७।। धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च । इह व्यपदेशिवद्भावेन धात्ववयवत्वात् भष्भावः । धुक्, धुग् । दुहौ । दुहः । दुहा । धुग्भ्याम् । धुक्षु ।

२७५. वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८।२।३३।। एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च। ध्रुक्, ध्रुग् । ध्रुट् । ध्रुड् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् । ध्रुड्भ्याम् । ध्रुक्षु, ध्रुटत्सु ध्रुट्सु। एवं मुह ।

मध्यमनोरमा

लिट् इति—लेढीति, लिह् आस्वादने, क्विप्, हस्य ढत्वे, हल्ङ्याबिति सुलोपे ढस्य झलां जशोऽन्ते इति डः, तस्य वावसाने इति टकारविकल्पः । **लिट्त्सु इति**—डः सीति धुट्, डस्य धस्य च खरि चेति चर्त्वम् । **धुक् इति**– दुह् प्रपूरणे, उपदेशे दकारादिरिति हस्य घकारे दुघ् इति झषन्तः एकाच् धात्ववयवश्च, तस्य बशो दकारस्य भष् धकारः, जश्त्वचर्त्वे । ननु धातोरवयवस्य एकाचो भष्भावः, दुघ् इति न धातोरवयवः किन्तु धातुरेवासौ तत्राह व्यपदेशिवदिति । आद्यन्तवदेकस्मिन्निति सूत्रे आद्यन्तवदित्यपहाय व्यपदेशिवदिति वक्तव्यमिति वार्तिकम् । तस्यायमर्थः– विशिष्टोऽपदेशो व्यपदेशः, मुख्यो व्यवहारः, सोऽस्यास्तीति व्यपदेशी मुख्यव्यवहारवान् । तद्वत् एकस्मिन् कार्यं भवति । तेन मुख्यव्यवहारवति अनेकस्मिन् यथा अवयवावयविविभागः, राहोः शिरः इतिवद् गौणः, वचनबलादत्रशास्त्रे व्यवहर्तव्यः। तेन दुधुक्षतीत्यत्र सन्नन्तस्य दुह् धातोर्द्वित्वे दुदुह् इति जाते दादेरिति हस्य घत्वे दुदुघ् इति धातुः, तस्यावयवो यथा दुघ् इत्येकाच् तथा दुघ् इति धातोरवयवो दुघ् इत्येकाच् । एवं मुख्यव्यवहारवति अनेकस्मिन् यथा आद्यन्तव्यवहारस्तथा एकस्मिन् आद्यन्तव्यवहारो गौणः इत्यादि स्वयमूह्यम् । **धुक्षु इति**—घकारस्य[1] खरि चेति चर्त्वे ककारः, सस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम्

मध्यमनोरमापूरणी

लिड्भ्यामिति—लिह् भ्यामिति स्थिते हो ढः इति हस्य ढत्वे भ्यामि परतो लिह् इत्यस्य पदत्वात् झलां जशोऽन्ते इति ढस्य डकारः । **धुग्भ्यामिति**– दुह् भ्यामिति स्थिते दादेर्धातोरिति हस्य घत्वे एकाचो बशो भष् इति दस्य धकारे झलां जशिति घस्य गकारे रूपम् ।

हिन्दी

२७२. ह को ढ् हो झल् परे और पदान्त में ।

२७३. उपदेश में दादि धातु के ह् को घ् हो झल् परे और पदान्त में ।

२७४. धातु का अवयव एकाच् झषन्त के बश् को भष्भाव हो, स, ध्व के परे और पदान्त में ।

२७५. द्रुह् मुह् ष्णुह् और ष्णिह् के ह् को घ् हो विकल्प से झल् परे व पदान्त में ।

---

1. धुघ्सु इत्यवस्थायां घकारस्य झलां जशोऽन्ते इति जश्त्वे गकारे पुनः चर्त्वं भवति । मध्यमनोरमापाठश्चिन्त्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२७६. धात्वादेः षः सः ६।१।६४।। स्नुक्, स्नुग् । स्नुट्, स्नुड् । एवं स्निह् ।
२७७. इग्यणः सम्प्रसारणम् १।१।४५।। यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात् ।
२७८. वाह ऊठ् ६।४।१३२।। भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ् ।
२७९. सम्प्रसारणाच्च ६।१।८।। सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः । वृद्धिः । विश्वौहः । इत्यादि ।
२८०. चतुरनडुहोरामुदात्तः ७।१।९८।। सर्वनामस्थाने ।
२८१. सावनडुहः ७।१।८२।। नुम् । आच्छीनद्योरिति सूत्रादादित्यधिकाराद् अवर्णात् परोऽयं नुम् । अतो विशेषविहितेनापि नुमा आम् न बाध्यते । अमा च नुम् न बाध्यते । सुलोपः, संयोगान्तलोपः, नुम्विधिसामर्थ्याद् वसुस्रंसिवदिति दत्वं न । संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वान्नलोपो न । अनड्वान् ।

मध्यमनोरमा

धुट् इति—धकाराभावे होढः इतिः ढः । **स्नुडिति**– ष्णुह् इति मूर्धन्यादिर्धातुः, धात्वादेः षः सः इति षस्य सः । एवं ष्णिह् इत्यपि मूर्धन्यादिः । **इग्यणः इति**—यणः स्थाने प्रयुज्यमानः इक् सम्प्रसारणसंज्ञकः । तेन वाहः सम्प्रसारणसंज्ञक ऊठ् भवतीत्यत्र वाह्शब्दस्य यण्स्थानिक ऊठ भवतीत्यर्थः सम्पद्यते । **विश्वौह इति**—विश्ववाह् अस् इति स्थिते वकारस्य ऊठ्, ठकारः एत्येधत्यूठ्स्विति विशेषणार्थः । सम्प्रसारणाच्चेति ऊकारस्य आकारस्य च पूर्वरूप ऊकार एकादेशः । विश्व ऊह् इति जाते एत्येधत्यूठ्स्विति वृद्धिः। **सर्वनामस्थान इति**—चतुरनडुह्शब्दयोरामागमो भवति, स चोदात्तः सर्वनामस्थाने । मित्त्वादन्त्यादचः परः । **नुमिति**-अनडुह् शब्दस्य सौ परतो नुमागमो भवतीत्यर्थः । **अवर्णात् पर इति**—अयं नुम् सावनडुह इति सूत्रेण विहितः अवर्णात् परः । अयं भावः– आदित्यधिकारात् अवर्णात् परो नुमनेन विधीयते, स च मित्त्वादन्त्यादचः परः । तेनाकाररूपादन्त्यादचः परो नुम् भवतीति सिद्धम्।

मध्यमनोरमापूरणी

धुट्त्सु इति—द्रुह् सु इति स्थिते वा द्रुहेति विकल्पेन हस्य ढत्वे भष्भावे ढस्य जश्त्वे ध्रुड् सु इति, डः सीति धुटि, डस्य धस्य च चर्त्वे ध्रुट्त्सु इति । **स्नुगिति**—ष्णुह् इति षस्य धात्वादेरिति सः, सौ हस्य वा द्रुहेति घः, सोर्लोपः, घस्य जश्त्वे चर्त्वे च रूपम् ।

हिन्दी

२७६. धातु के आदि ष् को स् होता है ।

२७७. यण् के स्थान में प्रयुक्त इक् को सम्प्रसारण संज्ञा होती है ।

२७८. भसंज्ञक वाह् को सम्प्रसारण ऊठ् होता है ।

२७९. सम्प्रसारण से परे अच् होने पर पूर्वरूप एकादेश होता है ।

२८०. सर्वनामस्थान परे रहतें चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् आगम हो और वह उदात्त हो ।

२८१. अनडुह् शब्द को सु परे रहते नुम् का आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२८२. अम् सम्बुद्धौ ७।१।९९॥ चतुरनडुहोः । हे अनड्वन् । अनड्वाहौ । अनडुहः ।

२८३. वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८।२।७२॥ सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात् पदान्ते । अनडुद्भ्यामित्यादि । सान्तेति किम् ? विद्वान् । पदान्ते किम् ? स्रस्तम् । ध्वस्तम् ।

२८४. सहेः साडः सः ८।३।५६॥ साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्धन्यादेशः । तुराषाट् । तुराषाड् । तुरासाहौ । तुराषाड्भ्यामित्यादि ।

२८५. दिव औत् ७।१।८४॥ दिविति प्रातिपदिकस्यौत् स्यात् सौ । सुद्यौः । सुदिवौ । सुदिवः ।

मध्यमनोरमा

अनडुह् शब्दस्यान्त्योऽच् अकारः तदैव भवति यदा आमागमोऽमागमश्च विधीयते । तेन असम्बुद्धौ सौ चतुरनडुहोरित्यामागमे सम्बुद्धौ सौ तु अम्सम्बुद्धावित्यमागमे सति अकारात् परो नुम् । अतः आमः प्रवृत्तिकाले नुम्प्रवृत्तेरभावात् नुम् आमो न बाधकः। तुल्यकालप्रवृत्तयोरेव विध्योर्यतो बाध्यबाधकभावः । अतो विशेषविहितोऽपि नुम् सौ परतो विशिष्य विहितस्तेन आम् न बाध्यते । आम् सर्वनामस्थानसामान्ये विहितः, अतः सामान्यविशेषभावाद् बाध्यबाधकभावयोग्यतास्ति परन्तु नुम् आमो नापवादकः, अकार सापेक्षत्वान्नुमः आम्प्रवृत्तिकाले अप्रवृत्तेः । एवम् अमा च नुम् न बाध्यते । अम् नुमपेक्षयाऽपि विशेषविहितः, सुसामान्ये नुम् विधानात् । सम्बुद्धौ परतोऽमो विशेषविधानादनयोरपि बाध्यबाधकभावयोग्यतास्ति । परन्तु अमा नुम्न बाध्यते, अम्प्रवृत्तिकाले नुमोऽप्राप्तेः, अकारात् परं नुमो विधानात् । **नुम्विधीति–** अनडुह् सु इति स्थिते चतुरनडुहोरित्यामागमे आकारादुत्तरं सावनडुह इति नुमागमे **अनड्वान्ह् इति** जाते सुलोपे संयोगान्तस्येति हलोपे **अनड्वान्** इति सिद्धम् । अत्र नुमोऽनडुह्मध्यपतितत्वात् अनड्वान् इति नान्तोऽनडुह्शब्दः, तदन्त्यनकारस्य वसुस्रंसुध्वमिति दत्वं प्राप्तं, तत् नुम् विधानसामर्थ्यान्न भवति । यदि नुमो नकारस्य दकारः स्यात् तर्हि नुम्विधानं व्यर्थं स्यात्, हकारस्यैव दकारेण रूपसिद्धेरिति । **स्रस्तमिति**—स्रंसु ध्वंसु अधः पतने, क्तप्रत्ययः । **साड्रूपस्येति**—साड् इति रूपं यस्य सहेः तस्य सकारस्य स्थाने षः । सहेर्णिजन्तस्य क्विपि परतो णिलोपे हो ढ इति ढत्वे तस्य जश्त्वे साड् इति रूपम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

हे अनड्वन्—सम्बोधने **अनडुह् स्** इति स्थिते अम् सम्बुद्धाविति अमि यणि सावनडुह इति नुमि अनुबन्धलोपे अनड्वन् ह् स् इति जाते सस्य हल्ङ्याबिति लोपे हस्य संयोगान्तलोपे हे अनड्वन् इति ।**सुद्यौरिति-** सुदिव् सु इति स्थिते अलोऽन्त्यस्येति सहकारेण दिव औत्

हिन्दी

२८२. चतुर् और अनडुह् शब्द को सम्बुद्धि परे रहते अम् आगम हो ।

२८३. सान्त वस्वन्त स्रंस् ध्वंस् और अनडुह् को द् अन्त में आदेश हो पदान्त में ।

२८४. साड्रूप सह के स् को ष् होता है ।

२८५. दिव् प्रातिपदिक को औत् आदेश हो सु परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२८६. दिव उत् ६।१।१३१।। पदान्ते । सुद्युभ्यामित्यादि । चत्वारः । चतुरः। चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २।
२८७. षट्चतुर्भ्यश्च ७।१।५५।। एभ्य आमो नुडागमः स्यात् ।
२८८. रषाभ्यां नो णः समानपदे ८।४।१।। चतुर्णाम् ।
२८९. रोः सुपि ८।३।१६।। रोरेव विसर्जनीयः सुपि । चतुर्षु ।
२९०. मो नो धातोः ८।२।६४।। पदान्ते । प्रशान् । प्रशामौ ।
२९१. किमः कः ७।२।१०३।। विभक्तौ । अकच्सहितस्याप्ययमादेशः । कः कौ । के ।
२९२. इदमो मः ७।२।१०८।। सौ । त्यदाद्यत्वापवादः ।
२९३. इदोऽय् पुंसि ७।२।१११।। इदम इदोऽय् सौ पुंसि । अयम् । त्यदाद्यत्वे।
२९४. अतो गुणे ७।१।९७।। अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः स्यात् ।

मध्यमनोरमा

चतुर्षु इति—चतुर् शब्दस्य रेफो न उकारानुबन्धः, अतो नायं रुः । पयस्सु इत्यादौ पयस् शब्दस्य सुपि सकारस्य रुत्वे विसर्गो भवत्येव । **अकच्सहितेति**—इमः अकारादेशे कर्त्तव्ये किमः कविधानस्येदमेव प्रयोजनमिति भावः । मस्य मविधानमनर्थकमित्याशङ्क्याह– **त्यदाद्यत्वापवाद इति** । इदमो मकारस्य मकारः त्यदादीनाम इत्यकारबाधनार्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

इति वस्यौत्वे यणि सस्य रुत्वविसर्गयोः कृतयोः सुद्यौरिति । **सुद्युभ्यामिति**—सुदिवः वकारस्य दिव उदिति उत्वे यण् भवति । **चत्वार इति**—चतुर् जस् इति स्थिते चतुरनडुहोरामिति उकारात्पर आम्, मस्येत्संज्ञा, यण्, चत्वारस् इति जाते सस्य रुत्वविसर्गौ । **चतुर्णामिति**– चतुर् आमिति स्थिते षट्चतुर्भ्यश्चेति नुटि रषाभ्यामिति णत्वे अचो रहाभ्यामिति णस्य द्वित्वे चतुर्ण्णाम् इति । **प्रशाम्यतीति—प्रशान्** । सौ प्रशामो मस्य मो नो धातोरिति नः । **क इति**-किम् सु इति जाते किमः क इति कादेशे सोरुत्वविसर्गौ । **कौ इति**—कादेशे वृद्धिः । **के इति**-किम् जस् इति स्थिते किमः कादेशे जसः शीति श्यादेशे गुणे के इति । **अयमिति**--इदम् स् इति स्थिते अत्वं प्रबाध्य इदमो मः इति मस्य मकारे इदोऽय् पुंसीति इदः अय् आदेशे सोर्हल्ङ्यादि लोपः ।

हिन्दी

२८६. दिव् को उ अन्त में आदेश हो पदान्त में ।
२८७. षट्संज्ञक और चतुर् शब्द से परे आम् को नुट् होता है ।
२८८. रेफ षकार से परे न को ण हो समान पद में ।
२८९. सप्तमी बहुवचन सुप् परे रहते रु के रेफ को ही विसर्ग हो अन्य को नहीं ।
२९०. धातु के म् को न् होता है प्रदान्त में ।
२९१. किम् को क आदेश हो विभक्ति परे । (अकच् सहित को भी क आदेश होता है।)
२९२. इदम् के म् को म् आदेश हो सु परे रहते ।
२९३. इदम् के इद् भाग को अय् आदेश हो सु परे रहते, पुँल्लिङ्ग में ।
२९४. अपदान्त अ के आगे गुण (अएओ) रहने पर पररूप एकादेश हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२९५. दश्च ७।२।१०९॥ इदमो दस्य मः स्याद् विभक्तौ। इमौ। इमे। त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः।

२९६. अनाप्यकः ७।२।११२॥ अककारस्य इदम इदोऽन् स्यादापि विभक्तौ। आबिति प्रत्याहारः। अनेन।

२९७. हलि लोपः ७।२।११३॥ अककारस्य इदम इदो लोप आपि हलादौ।

प. नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।

२९८. आद्यन्तवदेकस्मिन् १।१।२१॥ एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव च स्यात्। सुपि चेति दीर्घः। आभ्याम्।

मध्यमनोरमा

उत्सर्ग इति—बाधकाभावे नियमः इत्यर्थः। तेन हे स इति भाष्यप्रयोगात् तच्छब्दस्य सम्बोधनसत्वेऽपि न क्षतिः। **आबिति प्रत्याहार इति**–टा इत्याकारमारभ्य सुपः पकारपर्यन्तमित्यर्थः। **अनेनेति**—इदम् आ इति स्थिते त्यदादीनाम इत्यकारे अतो गुण इति दकाराकारस्य मस्थानिकाकारस्य पूर्वपरयोः पररूपे इद् इत्यस्य अनादेशे अन आ इति स्थिते 'टाङसि' इति इनादेशः, आद्गुणः। **नानर्थक इति**—इदम् भ्याम् इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे हलि लोप इति इद् शब्दस्य लोपः। ननु अलोऽन्त्यस्येति दकारमात्रस्यैव लोपोऽस्तु ? इत्याशङ्कायामिदमुक्तरं नानर्थक इति। अनर्थके अलोऽन्त्यविधिर्नास्ति। इद् इति अनर्थकम्; इदम् शब्दो हि अर्थवान्, न तु तदेकदेशः इद् इति। तेन इद् इत्यस्यानर्थकत्वादलोऽन्त्यसूत्राऽप्रवृत्तौ निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति इति न्यायात् इद् शब्दस्य लोपः। अनर्थके अलोऽन्त्यविधिर्न प्रवर्तते तत् किं सर्वत्र? नेत्याह, **अनभ्यासेति**– अभ्यास- विकारभिन्ने, अभ्यासविकारो बभूवेत्यत्र भवतेरः इति सूत्रेण भवतेरभ्यासस्याकारादेशः अभ्यासान्त्यस्य उकारस्य स्थाने भवति न तु सर्वस्याभ्यासस्य। **आभ्यामिति**-इदो लोपे अ भ्यामिति जाते अकारस्यैव अकारान्तत्वात् सुपि चेति दीर्घः, व्यपदेशिवद्भावेन तस्यैव तदन्तत्वात्।

मध्यमनोरमापूरणी

इमौ—इदम् औ इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे दश्चेति दस्य मकारे वृद्धिरेचीति वृद्धिः। **इमे**—इदम् जस् इति स्थिते त्यदादीनाम इति मस्यात्वेऽतो गुणे इति पररूपे जसः शीति श्यादेशेऽनुबन्धलोपे इद ई इति, दश्चेति दस्य मकारे आद्गुण इति गुणे इमे इति रूपम्। **अककारस्येति**—अविद्यमानः क् यस्य स अक्, तस्य, ककार रहितस्येदम इदोऽन् इत्यर्थः।

हिन्दी

२९५. इदम् के द् को म् होता है विभक्ति परे रहते।

२९६. ककार रहित इदम् के इद् को अन् आदेश हो टा आदि विभक्ति परे रहने पर।

२९७. ककार रहित इदम् के इद् का लोप हो आप् हलादि विभक्ति परे।

२९८. असहाय में किया जाने वाला कार्य आदिवत् और अन्तवत् होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२९९. नेदमदसोरकोः ७।१।११।। अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न स्यात् । एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अस्य । अनयोः । एषाम् । अस्मिन् । एषु।
३००. द्वितीया टौस्स्वेनः २।४।३४।। इदमेतदोरन्वादेशे । किञ्चित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथा-अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापयेति । अनयोः पवित्रं कुलम्, एनयोः प्रभूतं स्वमिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन । एनयोः २। राजा ।
३०१. न ङिसम्बुद्ध्योः ८।२।८।। नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च । हे राजन्! वा. ङावुत्तरपदे प्रतिषेधः । ब्रह्मनिष्ठः । राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ। जञोर्ज्ञः, राज्ञः ।
३०२. नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ८।२।२।। सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र राजाश्वः इत्यादौ । इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न । राजभ्याम् । राजभिः । राजभ्यः । राज्ञि, राजनि । यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ।

मध्यमनोरमा

यथा अनेनेति–व्याकरणाध्ययनम्विधातुं प्रथममनेनेत्युपात्तम्, पुनः वेदाध्ययनं विधातुम् इदं शब्दस्योपादाने एनादेशः । एवं पवित्रं कुलं विधातुं प्रथममनयोरित्युपात्तं बहुतरं धनं विधातुं पुनरुपादाने एनादेशः । ङावुत्तरे इति—उत्तरपदे परतः ङौ नलोपनिषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः । ब्रह्मनिष्ठ इति—ब्रह्मणि निष्ठा यस्य सः, अत्र समासे सति विभक्तिलोपे नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः । अत्र न ङिसम्बुद्ध्योरिति नलोपनिषेधः प्राप्तः, प्रत्ययलक्षणेन ङिपरत्वसत्त्वात्, तस्य नलोपनिषेधस्य ङावुत्तरेति निषेधात् नलोपो भवत्येव । राज्ञ इति—राजन् अस् इति स्थिते अनोऽकारलोपे नकारस्य श्चुत्वेन ञकारे जञोर्ज्ञः ।

मध्यमनोरमापूरणी

एभिरिति—इदम् भिस् इति स्थिते अत्वे पररूपे हलि लोप इति इदो लोपे अ भिस् इति, अतो भिस इति प्राप्तमैसादेशं नेदमदसोरकोरिति बाधते । व्यपदेशिवद्भावेन बहुवचने झल्येदिति अस्य एत्वम्, सस्य रुत्वविसर्गौ । अनयोरिति—ओसि अत्वे पररूपत्वे अनाप्यक इति अनादेशे ओसि चेति एत्वेऽयादेशे सस्य रुत्वविसर्गौ । एषाम्—आमि अत्वं पररूपम्, सुट्, इदो लोपः, अस्य एत्वम्, षत्वम् च । एषु—सुपि अत्वे पररूपे इदो लोपे बहुवचने इति

हिन्दी

२९९. ककार रहित इदम् और अदस् के भिस् को ऐस् नहीं होता है ।
३००. द्वितीया विभक्ति टा और ओस् परे रहते अन्वादेश में इदम् और एतद् शब्द को एन आदेश होता है ।
३०१. ङि और सम्बुद्धि परे रहते न का लोप नहीं होता है । वा. उत्तरपद परक ङि परे रहते नलोप प्रतिषेध नहीं होता है ।
३०२. सुब् विधि संज्ञाविधि स्वरविधि और कृत् प्रत्यय परे तुग् विधि में नलोप असिद्ध होता है, अन्यत्र नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३०३. न संयोगाद् वमन्तात् ३।१।३।। वमान्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न । यज्वनः । यज्वना । यज्वभ्याम् । ब्रह्मणः ।
३०४. इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ६।४।१२।। एषां शावेवोपधाया दीर्घः ।
३०५. सौ च ६।४।१३।। इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ । वृत्रहा । हे वृत्रहन्!
३०६. एकाजुत्तरपदे णः ८।४।१२।। एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णत्वं स्यात्। वृत्रहणौ । वृत्रहणः ।
३०७. हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७।३।५४।। ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् ।
३०८. हन्तेः ८।४।२२।। उपसर्गस्थान्निमित्ताद्धन्तेर्नस्य णः । प्रहण्यात् ।

मध्यमनोरमा

अन्यत्रेति—अन्यत्रेति विशेषणम्, **राजाश्व** इत्यादाविति-राज्ञः अश्वो राजाश्वः, राजन् अश्व इति स्थिते नकारस्य नलोपेति सूत्रेण लोपे राज अश्व इति जाते अकः सवर्णे इति दीर्घः। तत्र दीर्घे कर्तव्ये नलोपो नासिद्धः, दीर्घस्य सुबादिविधित्वाभावात् । राजभ्यामित्यत्र सुपि चेति सूत्रेण आत्वस्य सुपि विहितत्वात् तस्मिन् कर्तव्ये नलोपस्तु असिद्धः, तेन अदन्तत्वाभावात् न सुपि चेति दीर्घः । राजभिः इत्यत्र अतो भिस ऐस् प्राप्तो नलोपस्यासिद्धत्वेन अदन्तत्वाभावादैस् न । अत्रैव बहुवचने झल्येदित्येत्वं प्राप्तं, तस्मिन् कर्त्तव्ये नलोपोऽसिद्धः। एषां सर्वेषां सुब्विधित्वं, सुपि परतो विधीयमानत्वात् । **शावेवेति**—सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धाविति दीर्घे सिद्धे पुनर्विधानं नियमार्थमित्यर्थः । तेन बहवो वृत्रहणो येषु तानि बहुवृत्रहाणि, अत्र नपुंसके जसः शौ दीर्घः । नेह वृत्रहणौ । वृत्रहणः । सौ तु दीर्घो भवत्येव- **वृत्रहा,** अत्र सौ चेति विशिष्य विधानात् दीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अस्यैत्वे आदेशेति सुपः षत्वे रूपम् । **एनमिति**–अन्वादेशे इदम एनादेशे पूर्वरूपम् । अन्वादेशे रामवत् रूपं बोध्यम् । **राजा इति**-राजन् सु इति स्थिते सर्वनामस्थाने इत्युपधादीर्घे सुलोपः हल्ङ्याबित्यादिना, नलोपः इति नलोपः । **हे राजन् इति**—सम्बोधने सुविभक्तौ सोर्हल्ङ्यादिलोपः । नलोपः प्रातिपदिकान्त इति नलोपे प्राप्ते न ङिसम्बुद्ध्योरिति निषिध्यते । **राज्ञि**-राजन् ङि इति स्थिते भसंज्ञा, विभाषा ङिश्योरिति अलोपः विकल्पेन । नस्य श्चुत्वेन ञः, संयोगे राज्ञि इति । विकल्पे राजनि इति । **यज्वनः**—यज्वन् अस् इति स्थिते अल्लोपोऽनः इति न संयोगाद् इत्यनेन निषिध्यते ।

हिन्दी

३०३. वान्त मान्त संयोग से परे अन् के अकार का लोप नहीं होता है ।
३०४. इन्नन्त हन्नन्त पूषन् और अर्यमन् की उपधा को शि परे रहते ही दीर्घ हो अन्यत्र नहीं।
३०५. इन्नादि की उपधा को दीर्घ हो, असम्बुद्धि सु परे रहते ।
३०६. एकाच् उत्तर पद है जिसका ऐसे समास में पूर्वपद में स्थित निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ न को णत्व हो ।
३०७. ञित् णित् प्रत्यय परे और नकार परे रहते हन् के ह् को कुत्व होता है ।
३०८. उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे हन् के न को ण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३०९. अत् पूर्वस्य ८।४।२२।। हन्तेरत्पूर्वस्यैव नस्य णो नान्यस्य । प्रघ्नन्ति। योगविभागसामर्थ्यादनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति न्यायं बाधित्वा कुमति चेति णत्वमपि निवर्तते । वृत्रघ्नः, इत्यादि । एवं शार्ङ्गिन् । यशस्विन्। अर्यमन् । पूषन् ।

३१०. मघवा बहुलम् ६।४।१२८।। मघवन् शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः । ऋ इत्।

मध्यमनोरमा

वृत्रहणौ इति—अत्र वृत्रहन्निति समस्तं, तत्र हन् इत्युत्तरपदमेकाच्, वृत्रेति पूर्वपदं, तत्र स्थितं निमित्तं रेफः, रषाभ्यामिति सूत्रे रेफषकारयोर्णत्वनिमित्तत्वात् तस्मात् परः अटा अकारेण हकारेण च व्यवधानेऽपि रेफात् परः प्रातिपदिकान्तस्थो हनो नकारस्तस्य णत्वम् । **हो हन्तेः**- वृत्रहन् शस् इति स्थिते अल्लोपोऽन इत्यकारलोपे सति नकारे परतो हस्य कुत्वेन घकारे वृत्रघ्न् इति जाते कुमति चेति णत्वं प्राप्नोति, कवर्गवति उत्तरपदे पूर्वपदस्थात् निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णत्वं स्यादिति कुमति चेति सूत्रार्थः । कवर्गवदुत्तरपदं घ्न इति, पूर्वपदस्थनिमित्तं वृत्रशब्दस्थरेफः, तस्मात् परः प्रातिपदिकान्तो घ्नो नकार इति तद्वारणाय अत्पूर्वस्येति नियमसूत्रम् । **अत्पूर्वस्यैव** हनो नस्य णत्वं, तेन घ्नो नकारो न अत्पूर्वः, अकारस्य लोपेनापहारात् । अतस्तस्य न णत्वम् । अत्पूर्वस्येति सूत्रेण कस्य णत्वस्य नियमः क्रियते इति विचारयितुं हन्तेरिति सूत्रमुपन्यस्तम्, उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य हन्तेर्नस्य णत्वम्भवतीति सूत्रार्थः । **प्रहण्यादिति**—प्र पूर्वस्य हन् धातोर्लिङ्लकारे यासुटि उपसर्गस्थाद् रेफात् परस्य हनो नस्य हन्तेरिति सूत्रेण णत्वम् । तत्र अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति न्यायेन अव्यवहितस्य विधेः नियमादिति विधिः प्रतिषेधश्च न व्यवहितस्येत्यर्थकेन अव्यवहितस्य हन्तेरिति णत्वस्यैव अत्पूर्वस्येति नियमो निवर्तकःस्यान्नतु कुमति चेति णत्वस्य व्यवहितस्य निवर्तकः स्यात् । ततश्च प्रघ्नन्तीत्यत्र हन्तेरिति प्राप्तं णत्वम् अत्पूर्वस्येति नियमो निवर्तयेत्, न तु वृत्रघ्न इत्यत्र कुमति (चेति) णत्वं निवारयेत् । अतः अत्पूर्वस्येत्यत्र अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वेति न्यायो न प्रवर्तते । **योग विभागसामर्थ्यात्**—अयमर्थः यदि हन्तेरिति णत्वमेवात्पूर्वस्येति नियमेन निवर्तनीयं स्यात्तदा हन्तेरत्पूर्वस्येत्येकमेव सूत्रं कुर्यात् किमिति हन्तेरिति सूत्रेण । सामान्यतो णत्वं विधाय तत् णत्वम् अत्पूर्वस्यैवेति नियम्येत, हन्तेरत्पूर्वस्येत्येकेनैव सूत्रेणेष्टसिद्धेः । अत्पूर्वस्य नस्य णत्वविधानेन प्रहण्यादित्यादिसिद्धौ प्रघ्नन्तीत्यादावत्पूर्वत्वाभावात् णत्वप्राप्तिरेव नास्तीति योगविभागवैयर्थ्यप्रसक्तेः, तत्सार्थक्याय अत्पूर्वस्येति सूत्रेण हन्तेरन्येनापि सूत्रेण प्राप्तं णत्वमत्पूर्वस्यैवेति नियम्यते। तेन वृत्रघ्न इत्यत्र नकारस्यात्पूर्वत्वाभावात् कुमति चेत्यपि णत्वं न भवतीति सिद्धम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

वृत्रघ्न इति—वृत्रहन् शस् इति स्थिते शस्येत्संज्ञा । भसंज्ञा, अल्लोपोऽन इति उपधाकारस्य लोपे हो हन्तेरिति हस्य कुत्वे घकारे वृत्रघ्न् अस् इति, एकाजुत्तरपदे णः कुमति चेति प्राप्तं णत्वं अत्पूर्वस्येति नियमेन न भवति । सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

३०९. हन् के अत्पूर्व न् को ही णत्व हो अन्य को नहीं ।

३१०. मघवन् शब्द को 'तृ' अन्त में आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३११. उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७।१।७०।। अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने परे । मघवान् । इह उपधादीर्घे कर्त्तव्ये संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वं न भवति, बहुलग्रहणात् । मघवन्तौ । शसि- मघवतः । मघवता । तृत्वाभावे मघवा । सुटि राजवत् ।

३१२. श्वयुवमघोनामतद्धिते ६।४।१३३।। अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते परे सम्प्रसारणं स्यात् । मघोनः । मघवभ्यामित्यादि । एवं श्वन्, युवन् ।

३१३. न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् ६।१।३७।। इति यकारस्य नेत्वम् । अतएव ज्ञापकादन्त्यस्य यणः पूर्वं सम्प्रसारणम् । यूनः । युवभ्यामित्यादि । अर्वा । हे अर्वन् ।

मध्यमनोरमा

संयोगान्तलोपस्येति—मघवन् सु इति स्थिते नकारस्य तृ-आदेशे ऋलोपे नुमि मघवन्त् स् इति जाते सोर्लोपे संयोगान्तस्येति तस्य लोपः, उपधादीर्घः । नलोपः प्रातिपदिकेति नकारलोपे कर्त्तव्ये संयोगान्तस्य तकारस्य लोपोऽसिद्धः, ततश्च तकारान्तत्वान्नलोपो न । उपधादीर्घे कर्त्तव्ये तु तलोपस्यासिद्धत्वं न भवति बहुलग्रहणात् । दीर्घे कर्त्तव्ये तलोपस्यासिद्धत्वे उपधायामकाराभावाद्दीर्घो न स्यात् । अतो बहुलग्रहणेन उपधादीर्घे कर्तव्ये संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वं निवार्यते । **तृत्वाभावे, सुटि इति**—मघवा मघवानावित्यादि । एवं तृत्वाभावे हलादौ राजवदित्यपि बोध्यम् । शसादावचि सम्प्रसारणं विशेषः । **न सम्प्रसारणे-** सम्प्रसारणे ,परतः पूर्वस्य यणस्सम्प्रसारणं न । **यून इति**—युवन् अस् इति स्थिते श्वयुवेति सूत्रेण वकारस्य सम्प्रसारणे उकारे वकारादुत्तरेण सह उकारस्य सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपेण उकारे यु उन् इति जाते उकारयोरकः सवर्णे इति दीर्घः । यूनः इति सिद्धे यकारस्यापि सम्प्रसारणं प्राप्नोति तस्य न सम्प्रसारणे इति निषेधः । अन्तादिवच्चेति दीर्घैकादेशस्य परादिवद्भावेन सम्प्रसारणतया तस्मिन् परतो यकारस्य सम्प्रसारणं नेत्यर्थः । न च व्यथो लिटीति विदेशस्थेन यकारस्य सम्प्रसारणे कृते पुनः वकारस्य सम्प्रसारणाभावाय न सम्प्रसारण इति सूत्रं प्रवर्त्य पुनः सम्प्रसारणग्रहणं चरितार्थमिति व्यवधाने निषेधो न भविष्यतीति वाच्यम्, व्यथो

मध्यमनोरमापूरणी

तृत्वाभावे मघवा इति—मघवन् सु इति स्थिते सर्वनामस्थाने इति उपधादीर्घे सोः हल्ङ्याबिति लोपे नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपः । मघोनः इति- मघवन् शस् इति स्थिते शस्येत्संज्ञा । यचि भमिति भसंज्ञा, श्वयुवमघोनामतद्धिते इति वकारस्य सम्प्रसारणे उकारे मघ उ अन् अस् इति, सम्प्रसारणाच्चेति उकाराकारयोः पूर्वरूपे मघ उन् अस् इति, आद्गुण इति गुणे, सस्य रुत्वविसर्गौ । नलोपे मघवभ्यामिति ।

हिन्दी

३११. धातुभिन्न उगित् (उक्+इत्) और नलोपी अञ्च् धातु को नुम् आगम होता है, सर्वनामस्थान परे ।

३१२. अन्नन्त श्वन् युवन् और मघवन् इन भसंज्ञकों को तद्धितभिन्न प्रत्यय परे रहते सम्प्रसारण होता है ।

३१३. सम्प्रसारण के परे रहते पूर्व यण् को सम्प्रसारण नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३१४. अर्वणस्त्रसावनञः ६।४।१२७।। नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ । अर्वन्तौ । शसि-अर्वतः । अर्वद्भ्याम् ।

३१५. पथिमथ्यृभुक्षामात् ७।१।५।। एषामाकारोऽन्तादेशः स्यात् सौ ।

३१६. इतोऽत् सर्वनामस्थाने ७।१।८६।। पथ्यादेः ।

३१७. थो न्थः ७।१।८७।। पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने । पन्थाः । हे पन्थाः । पन्थानौ । पन्थानः ।

३१८. भस्य टेर्लोपः ७।१।८८।। पथ्यादेर्भस्य टेर्लोपः । पथः । पथिभ्याम् । पथिभ्यः । एवं मन्थाः । ऋभुक्षाः ।

३१९. ष्णान्ता षट् १।१।२४।। षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा स्यात् । पञ्च। पञ्चभिः । षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् ।

मध्यमनोरमा

लिटीत्येतद् हलादिःशेषापवाद इत्याकरे स्पष्टत्वात् । ननु यु उन् इति स्थिते यकारस्य न सम्प्रसारणं परमस्ति पूर्वेण उकारेण व्यवधानात्, तत्कथमत्र निषेधः, विव्याधेत्यादावव्यवधाने निषेधचरितार्थत्वात् । न च सवर्णदीर्घे कृते नास्ति व्यवधानमिति वाच्यम्, अचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावात्, सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवदिति वचनात् सवर्णदीर्घात् पूर्वं सम्प्रसारणप्रवृत्तेश्च । **अत्राहुः**—विदेशस्थनिषेधार्थात् पुनः सम्प्रसारणग्रहणादेव व्यवधानेऽपि निषेधो भवतीत्यदोषः । **पथ्यादेरिति**-पथिमथ्यृभुक्षामिकारस्य अकारः सर्वनामस्थाने परतः इत्यर्थः । **पन्था इति**—पथिन् सु इति स्थिते पथिमथीति नकारस्याकारे इतोऽदिति इकारस्याकारे थकारस्य न्थादेशे सवर्णदीर्घः, सोरुत्वविसर्गौ । **भस्य टेर्लोपः**- भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः स्यात्। **पञ्चेति**—पञ्चन्-शब्दस्य नान्तत्वात् षट्संज्ञायां षड्भ्यो लुक इति जश्शसोर्लोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अर्वा इति-सौ उपधादीर्घः, सर्वं मघवा इतिवत् । **अर्वणः इति**—अर्वणः तृ असौ अनञः इति पदच्छेदः । सुभिन्ने सर्वत्र तृ इत्यन्तादेशः। **अर्वन्तौ इति**-अर्वन् औ इति जाते तृ इत्यन्तादेशे ऋकार इत्, उगिदचाम् इति नुम् । **पन्थानौ इति**—पथिन् औ इति स्थिते इतोऽदिति इकारस्याकारे थो न्थः इति न्थादेशे सर्वनामस्थाने इति उपधादीर्घः । **पथः**—पथिन् शस् इति स्थिते भसंज्ञा, भस्य टेर्लोप इति इनो लोपः । सस्य रुत्वविसर्गौ । एवमेव मथिन् ऋभुक्षिन् इत्यनयोः मथः ऋभुक्षः इति ।

हिन्दी

३१४. नञ् रहित अर्वन् शब्द को तृ अन्त में आदेश हो, सु परे नहीं ।

३१५. पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् को आकार अन्त में आदेश हो सु परे ।

३१६. पथिन् आदि के इ को अ आदेश हो सर्वनामस्थान परे रहते ।

३१७. पथिन् व मथिन् के थ को न्थ आदेश होता है सर्वनाम स्थान परे रहते ।

३१८. पथिन् आदि के भसंज्ञक टि का लोप होता है ।

३१९. षान्त और नान्त संख्या की षट् संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३२०. नोपधायाः ६।४।७॥ नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि । पञ्चानाम् । पञ्चसु।
३२१. अष्टन आ विभक्तौ ७।४।८४॥ हलादौ वा स्यात् ।
३२२. अष्टाभ्य औश् ७।१।२१॥ कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश् । अष्टन् इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्वं ज्ञापयति । अष्टौ २। अष्टाभिः । अष्टाभ्यः २। अष्टानाम् । अष्टासु । आत्वाभावे- अष्ट । पञ्चवत् ।
३२३. ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३।२।५९॥ एभ्यः क्विन्। अञ्चेः सुप्युपपदे । युजिक्रुञ्चोः केवलयोः । कुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते । कनावितौ ।
३२४. कृदतिङ् ३।१।९३॥ अत्र धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः ।
३२५. वेरपृक्तस्य ६।१।६७॥ अपृक्तस्य वस्य लोपः ।

मध्यमनोरमा

पञ्चानामिति—पञ्चन् आमिति स्थिते षट्चतुर्भ्यश्चेति नुटि नोपधाया इति उपधादीर्घे नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपः । नलोपे कृते नामीति दीर्घेण न रूपसिद्धिः, नामीति सूत्रं प्रति नलोपस्याऽसिद्धतया नामीति दृष्ट्या अकारान्तत्वाभावात् । अतो नोपधाया इति दीर्घः कृतः। **कृतात्वनिर्देश इति**—हलादौ विभक्तावात्वस्य वैकल्पिकतया अष्टभ्यः अष्टाभ्यः इति रूपद्वयस्यापि सत्त्वात् अष्टभ्य इत्येव लाघवाद् वक्तव्ये अष्टाभ्य इत्युक्त्यायमर्थो लभ्यते- **कृताकारादष्टनः परस्येति**। अत एव ज्ञायते जश्शसोरपि आत्वविकल्पोऽस्ति इति । तेन यदैव आत्वं तदैवौश् । आत्वाभावे औश् नेत्यर्थः । **ऋत्विग्दधृक्**—ऋतावुपपदे यजेः क्विन्, तस्मिन् परतो वचिस्वपीति सम्प्रसारणम्, यणादेशः । **निधृषा प्रागल्भ्ये**- अस्मात् क्विनि धृष् इत्यस्य निपातनात् द्वित्वे उरदत्वे हलादिशेषे अभ्यासे चर्चेति धकारस्य दकारे **दधृष्**, तस्य क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वम् । सृज्धातोः क्विनि अमागमो निपात्यते । दिश् धातोः क्विन् । अञ्चेः सुप्युपपदे एव क्विन् । युजिक्रुञ्चोः केवयोरेव क्विन् । क्रुञ्चेरनिदितामिति प्राप्तस्य नलोपस्याभावः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अष्टौ—अष्टनः जश्शसोः अष्टन आ विभक्तौ इति नस्यात्वे सवर्णदीर्घे अष्टाभ्य औशिति जश्शसौरौश् सर्वादेशः । वृद्धिः । **अष्टानाम्**—अष्टन् आमिति स्थिते षट्संज्ञा, नुट्, नोपधाया इति दीर्घः, नलोपः ।

हिन्दी

३२०. नान्त की उपधा को दीर्घ होता है नाम् परे रहते ।
३२१. अष्टन् शब्द को आ अन्त में आदेश हो हलादि विभक्ति परे विकल्प से ।
३२२. कृतात्व अष्टन् से परे जस् व शस् को औश् होता है ।
३२३. ऋत्विज् आदि शब्द क्विन् प्रत्ययान्त निपातन हैं । अञ्चु धातु से सुबन्त उपपद रहते क्विन् हो, युज् व क्रुञ्च् केवल से क्विन् होता है । क्रुञ्च् धातु से क्विन् व नलोप का अभाव निपातन है ।
३२४. इस धातु के अधिकार में तिङ्भिन्न प्रत्यय को कृत् संज्ञा होती है ।
३२५. अपृक्त संज्ञक व् का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३२६. क्विन् प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२॥ क्विन् प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते। अस्यासिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम्। ऋत्विक्, ऋत्विग्। ऋत्विग्भ्याम्।

३२७. युजेरसमासे ७।१।७१॥ युजेः सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे। सुलोपः। संयोगान्तस्य लोपः। कुत्वेन नस्य ङः। युङ्। अनुस्वारपरसवर्णौ। युञ्जौ। युञ्जः। युजः। युजा। युग्भ्याम्। असमासे किम्?

३२८. चोः कुः ८।१।३०॥ चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च। सुयुक्। सुयुजौ। सुयुजः। सुयुग्भ्याम्। खन्। खञ्जौ। खञ्जः। खन्भ्याम्।

३२९. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः ८।२।३६॥ झलि पदान्ते च। जश्त्वचर्त्वे। राट्। राजौ। राजः। राड्भ्याम्। एवं विभ्राट्। विश्वसृट्। परिमृट्।

मध्यमनोरमा

एतत् सर्वं निपातनाल्लभ्यते। निपातनं नाम तत्तत्कार्यविशिष्टोच्चारणम्। यथा क्रुञ्चेरिति नकारस्य विशिष्टोच्चारणं लोपाभावार्थमित्याद्यूह्यम्। **कृत्संज्ञ इति**—तेन कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा। अन्यथा प्रत्ययान्तत्वादर्थवत्सूत्राप्रवृत्तेः। **अस्यासिद्धत्वादिति**—अस्य क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति सूत्रस्य चोः कुः इति सूत्रदृष्ट्या असिद्धत्वाच्चोः कुरिति कुत्वमित्यर्थः। क्विन् प्रत्ययस्येति सूत्रं चवर्गान्तभिन्ने दधृष् दिश् उष्णिह् युङ् इत्यादौ कुत्वार्थम्। **युङिति**—युज्धातोः ऋत्विगादिना क्विनि प्रातिपदिकत्वे स्वाद्युत्पत्तौ युजेरसमास इति नुमागमे सोर्लोपे संयोगान्तस्य जकारस्य लोपे नकारस्य क्विन् प्रत्ययस्येति कुत्वेन ङकारः, युङ्। **युञ्जाविति**—युज् औ इति स्थिते नुमागमे तस्य परसवर्णे युञ्ज् इति जाते ञकारस्य झलि जकारे परतश्चोः कुरिति कुत्वं प्राप्तं, चोः कुरिति सूत्रं प्रति परसवर्णस्य ञकारस्यासिद्धत्वान्न भवति। **खन् इति**—खञ्ज् सु इति स्थिते सोर्लोपे जकारस्य संयोगान्तलोपः। **विभ्राडिति**—विभ्राज् शब्दः। देवं यजतीति देवेट्, देवेज् शब्दः।

मध्यमनोरमापूरणी

ऋत्विक् इति—ऋतावुपपदे यजेः ऋत्विगादिना क्विन्, यस्य सम्प्रसारणे इकारे पूर्वरूपे यणि ऋत्विज् इति, तस्मात् सौ सोर्हल्ङ्यादिलोपे क्विन्प्रत्ययस्येति कुत्वं प्रबाध्य चोः कुरिति जस्य गः, तस्य वाऽवसाने इति चर्त्वेन कः। विकल्पे ऋत्विग् इति। **सुयुक् इति**—सुयुज् शब्दः समस्तः तत्र न नुम्। कुत्वेन गः, गस्य चर्त्वम्। **खन्भ्यामित्यत्र** खञ्जेति जस्य संयोगान्तलोपः।

हिन्दी

३२६. जिससे क्विन् प्रत्यय हुआ हो उसको कवर्ग अन्त में आदेश हो पदान्त में।

३२७. युज् धातु को सर्वनाम स्थान परे नुम् हो असमास में।

३२८. चवर्ग को कवर्ग हो पदान्त में और झल् परे रहते।

३२९. व्रश्चादि तथा छान्त शान्त को षकार अन्त में आदेश होता है झल् परे और पदान्त में।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. परौ व्रजेः षः पदान्ते । परावुपपदे व्रजेः क्विप् दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि । परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राट् । परिव्राजौ ।

३३०. विश्वस्य वसुराटोः ६।३।१२८।। विश्वस्य दीर्घः स्याद्वसौ राट् शब्दे च परे । राडिति पदान्तोपलक्षणार्थम् । विश्वाराट् । विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम्।

३३१. स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ८।२।२९।। पदान्ते झलि च परे यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोपः । भृट् । सस्य श्चुत्वेन शः । झलां जश् झशीति शस्य जः । भृज्जौ । भृज्जः । भृड्भ्याम् । त्यदाद्यत्वं पररूपत्वम् ।

३३२. तदोः सः सावनन्त्ययोः ७।२।१०६।। त्यदादीनां तकार दकारयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ । स्यः । त्यौ । त्ये । सः । तौ । ते । यः। यौ । ये । एषः । एतौ । एते । एनम् । एनौ । एनाम् । एनेन । एनयोः ।

३३३. ङे प्रथमयोरम् ७।२।२८।। युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे इत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः ।

मध्यमनोरमा

राट् शब्दे इति—पदान्ते राज् शब्दस्य राट् इति रूपं, तेन विश्वराजौ इत्यादौ न दीर्घः । **भृट् इति**—भ्रस्ज् धातोः क्विपि ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे भृस्ज् इति जाते संयोगादेः सकारस्य लोपे व्रश्चेति षत्वे झलां जशोऽन्ते इति षस्य जश्त्वेन डकारे वाऽवसाने इति चर्त्वविकल्पः । **त्ये इति**—त्यद् शब्दस्य त्यदाद्यत्वे अकारात् परत्वात् जसश्शी । **एष इति**—एतद् सु इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे एत सु इति जाते तकारस्य तदोरिति सः, सस्य आदेशेति षः ।

मध्यमनोरमापूरणी

परिव्राट् इति—परिपूर्वकव्रज्धातोः परौ व्रजेः षः पदान्ते इति वार्तिकेन क्विपि व्रजेः उपधादीर्घे जस्य षत्वे कृते क्विपः सर्वापहारलोपे परिव्राष् इति, सौ सोर्हल्ङ्यादिलोपे षस्य जश्त्वेन डः, डस्य चर्त्वेन टः । **विश्वाराडिति**—विश्वराज् सु इति, सोर्लोपः । व्रश्चेति षः, जश्त्वचर्त्वाभ्यां टः, विश्वस्य वसुराटोरिति विश्वाकारस्य दीर्घः, **विश्वाराट्** इति । **भृज्जौ इति**—भ्रस्ज् धातोः क्विपि सम्प्रसारणे रेफस्य ऋकारे भृस्ज् इति, औ विभक्तौ स्तोः श्चुनेति सस्य शः, झलां जश् झशीति शस्य श्चुत्वेन जकारे भृज्जौ इति। **भृड्भ्यामिति**—भृस्ज् भ्यामिति स्थिते पदसंज्ञायां स्कोरिति सस्य लोपे, व्रश्चेति जस्य षत्वे, षस्य जश्त्वे डकारे रूपम् । **स्यः इति**—त्यद् सु इति जाते त्यदादीनाम इति दस्यात्वे पररूपे तदोः सः इति तकारस्य सकारे स्य स् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । **सः इति**—तद् सु इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च त स् इति , तदोः सः इति तस्य सः, सोः रुत्वविसर्गौ । **एनमित्यादि**—एतद् शब्दस्य अन्वोदशे द्वितीयाटौस्वेन इति एनादेशे एनम् एनौ इत्यादिरूपं ज्ञेयम् ।

हिन्दी

वा. परिपूर्वक व्रज् धातु से क्विप् हो दीर्घ हो तथा षकार हो पदान्त में ।

३३०. विश्व शब्द को दीर्घ अन्त में हो वसु और राट् शब्द परे रहते ।

३३१. झल् परे व पदान्त में जो संयोग तदादि सकार ककार का लोप होता है ।

३३२. त्यदादि गण पठित शब्दों के अन्त्यभिन्न तकार दकार को स आदेश होता है, सु परे रहते ।

३३३. युष्मद् अस्मद् से परे ङे और प्रथमा द्वितीया के स्थान में अम् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३३४. त्वाहौ सौ ७।२।९४।। अनयोर्मपर्यन्तस्य ।

३३५. शेषे लोपः ७।२।९०।। आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तौ अनयोष्टिलोपः । त्वम् । अहम् ।

३३६. युवावौ द्विवचने ७।२।९२।। द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ।

३३७. प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७।२।८८।। औङ्येतयोरात्वं लोके । युवाम् । आवाम् ।

३३८. यूयवयौ जसि ७।२।९३।। अनयोर्मपर्यन्तस्य । यूयम् । वयम् ।

३३९. त्वमावेकवचने ७।२।९७।। एकत्वोक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ स्तो विभक्तौ ।

३४०. द्वितीयायाञ्च ७।२।८७।। अनयोरात् स्यात् । त्वाम् । माम् ।

मध्यमनोरमा

ङे प्रथमयोः—ङे इति लुप्तषष्ठ्यन्तं, प्रथमयोरिति– प्रथमा च प्रथमा, ते प्रथमे, तयोः प्रथमयोरित्येकशेषः । तत्रैकं प्रथमापदं प्रथमापरं, द्वितीयं प्रथमापदं द्वितीयापरं, तेन ङे इत्यस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेश इत्यर्थः । **अनयोरिति**—युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व अह इत्यादेशः। **त्वम् अहम् इति**—युष्मद् सु अस्मद् सु इति स्थिते सोरमादेशे मपर्यन्तस्य त्व अह इत्यादेशे त्व अद् अह् अद् इति जाते अतो गुणे इति पररूपे त्वद् अहद् इति जाते टेः अद् इत्यस्य लोपे त्व् इति अह् इति हलन्तममा योज्यम् । **युवामिति**—युव-आवादेशे अतो गुणे इति पररूपे शेषे लोप इति टिलोपं बाधित्वा प्रथमायाश्चेति अन्त्यस्यात्वे युवावाकारेण सह सवर्णदीर्घे अमि पूर्वे च युवाम् आवामिति । **यूयमिति**-यूय वयादेशे पररूपे टिलोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

शेषे लोप इति—कौमुद्यादिषु अलोन्त्यपरिभाषालभ्यः शेषशब्दार्थः अन्त्यलोपत्वेन वर्णितः। त्व अम् अह अम् इत्यत्र स्त्रीलिङ्गे टाब्वारणाय शेषशब्दार्थः 'मपर्यन्ताच्छेषस्य अद् इत्यस्य लोपः' इत्यर्थकत्वेन टिलोपार्थकः ।

हिन्दी

३३४. युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को त्व और अह आदेश हो सु परे रहते ।

३३५. आत्व और यत्व के निमित से भिन्न विभक्ति के परे रहते युष्मद् अस्मद् की टि का लोप होता है ।

३३६. द्वित्व की उक्ति होने पर युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को युव आव आदेश हों विभक्ति परे रहते ।

३३७. प्रथमा के द्विवचन परे युष्मद् अस्मद् को आत्व अन्त में होता है ।

३३८. युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को जस् परे यूय वय आदेश होते हैं ।

३३९. एकत्वविवक्षा में युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को त्व और म आदेश होते हैं विभक्ति परे रहते ।

३४०. द्वितीया विभक्ति परे युष्मद् अस्मद् को आ अन्त में आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३४१. शसो नः ७।१।२९।। आभ्यां शसो नः । अमोऽपवादः । आदेः परस्य । संयोगान्तलोपः । युष्मान् । अस्मान् ।
३४२. योऽचि ७।२।८९।। अनयोर्यदेशोऽनादेशेऽजादौ विभक्तौ । त्वया । मया।
३४३. युष्मदस्मदोरनादेशे ७।२।८६।। अनयोरात् स्यादनादेशे हलादौ विभक्तौ। युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ।
३४४. तुभ्यमह्यौ ङयि ७।२।९५।। अनयोर्मपर्यन्तस्य । टिलोपः । तुभ्यम् । मह्यम्।
३४५. भ्यसोऽभ्यम् ७।१।३०।। आभ्यां परस्य । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।
३४६. एकवचनस्य च ७।१।३२।। आभ्यां ङसेरत् । त्वत् । मत् ।
३४७. पञ्चम्या अत् ७।१।३१।। आभ्यां भ्यसः । युष्मत् । अस्मत् ।
३४८. तवममौ ङसि ८।१।९६।। अनयोर्मपर्यन्तस्य ।
३४९. युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ८।१।२७।। तव । मम । युवयोः । आवयोः ।
३५०. साम आकम् ७।१।३३।। आभ्यां साम आकम् । युष्माकम् । अस्माकम्। त्वयि । मयि । युष्मासु । अस्मासु ।

मध्यमनोरमा

त्वां मामिति—त्वमादेशे पररूपे त्वद् मद् इति जाते द्वितीयायाञ्चेत्यात्वं, पूर्वाकारेण सह सवर्णदीर्घे अमोऽकारेण सह पूर्वरूपम् । द्वितीयाद्विवचने युवाम् आवाम् इति पूर्ववत् । **युष्मान् अस्मानिति**—युष्मद् अस् अस्मद् अस् इति स्थिते शसो न इति सूत्रेण शसः आदेरकारस्य नकारे न्स् इति संयोगे तदन्तस्य सस्य लोपः, द्वितीयायाञ्चेति दकारस्य आत्वं सवर्णदीर्घः । **त्वया मया इति**—तृतीयैकवचने त्वमावेकवचन इति त्वमादेशे त्व अद् टा म अद् टा इति स्थिते अतो गुणे, त्वद् मद् इति जाते शेषे लोपं बाधित्वा योऽचीति दकारस्य यकारः । **तुभ्यमह्यौ ङयि**—चतुर्थ्येकवचने परे युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ स्तः । **तुभ्यं मह्यमिति**—ङे प्रथमयोरित्यमादेशे मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यादेशे पररूपे शेषे लोप इति टिलोपः । युवाभ्यामावाभ्यामिति पूर्ववत् । **भ्यसोऽभ्यम्**–भ्यसः अभ्यम् इत्यादेशः । युष्मद् अभ्यम् अस्मद् अभ्यम् इति जाते टेरद् इत्यस्य लोपः । **त्वत् मत् इति**—ङसेः अत् इत्यादेशे

हिन्दी

३४१. युष्मद् अस्मद् से परे शस् को न् आदेश होता है ।
३४२. अनादेश अजादि विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् को य आदेश होता है ।
३४३. अनादेश हलादि विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् को आकार आदेश हो ।
३४४. युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को ङे परे रहते तुभ्य मह्य आदेश हों ।
३४५. युष्मद् अस्मद् से परे भ्यस् को अभ्यम् आदेश होता है ।
३४६. युष्मद् अस्मद् से परे पञ्चमी एकवचन को अत् आदेश होता है ।
३४७. युष्मद् अस्मद् से परे पञ्चमी भ्यस् को अत् आदेश होता है ।
३४८. युष्मद् अस्मद् के मर्पन्त को ङस् परे तव मम आदेश होते हैं ।
३४९. युष्मद् अस्मद् से परे ङस् को अश् आदेश होता है ।
३५०. युष्मद् अस्मद् से परे साम् को आकम् आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३५१. युष्मदस्मदोःषष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ ८।१।२०॥ पदात् परयोर-पदादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नावौ ।

३५२. बहुवचनस्य वस्नसौ ८।१।२१॥ उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्त-योर्वस्नसौ स्तः ।

३५३. तेमयावेकवचनस्य ८।१।२२॥ उक्तविधयोरनयोः षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्त-योस्ते मे एतौ स्तः ।

३५४. त्वामौ द्वितीयायाः ८।१।२३॥ उक्तविधयोः द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वामौ स्तः ।

मध्यमनोरमा

युष्मदस्मदोस्त्वमावेकवचन इति त्वमादेशे पररूपे टिलोपः । युवाभ्याम् आवाभ्यामिति पूर्ववत्। **पञ्चम्या अत्**—पञ्चम्या भ्यसः अत् इत्यादेशः। युष्मद् अत् इति अस्मद् अत् इति स्थिते शेषे लोपः इति टिलोपः । **तव ममेति**—मपर्यन्तस्य तवममादेशः । ङसः अशादेशः, अतो गुणे, शेषे लोपः । **युवयोरावयोरिति**—ओसि परतो युवावौ द्विवचने इति युवावादेशः, अतो गुणे, युवद् आवद् इति जाते योऽचीति दकारस्य यकारः । **साम आकम्**—अत्र सकारो व्यर्थः, शेषे लोपः इति टिलोपः, युष्म् अस्म् इति हलन्तस्यावशेषात् ततः परस्यामः सुट्प्रसङ्गाभावात्, अवर्णात् परस्यामः सुड्विधानात् । शेषे लोपस्यान्त्यलोपपक्षे तु सकारोच्चारणं सफलं भवति। स पक्षस्तु नेहाश्रितः । शेषे लोप इति सूत्रे टिलोपस्यैव प्रथमं ग्रन्थकृताऽङ्गीकारात् इति । **युष्माकमिति**—आमः आकमादेशे शेषे लोप इति टिलोपः । **त्वयि मयीति**—ङौ परतः त्वमावेकवचन इति त्वमादेशे अतो गुणे, योऽचीति दकारस्य यकारे त्वयि मयि इति । **युष्मासु इति**—दकारस्य युष्मदस्मदोरनादेशे इति आत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

षष्ठ्यादिविशिष्टयोरिति—षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाभिः सह तिष्ठतः इति षष्ठी–चतुर्थी–द्वितीयास्थौ, तयोरिति विग्रहे उपपदसमासः । तेन षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीया-विभक्ति-सहितयोः युष्मदस्मदोर्वान्नावौ भवतः इत्यर्थ आयाति । अनुदात्तं सर्वम् इति सूत्रे सर्वग्रहणाधिकारात् सर्वस्यैव= विभक्तिविशिष्टस्यैव आदेशा भवन्ति इति भाष्येऽपि स्पष्टम् । **उक्तविधयोरिति**–पदात् परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविभक्तिविशिष्टयोः युष्मदस्मदोरि त्यर्थः । **त्वामौ इति**—अत्रैकवचनस्येति अनुवर्तते। त्वाश्च माश्चेति विग्रहे त्वामौ इति । द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वामा इति आदेशौ भवतः इत्यर्थः ।

हिन्दी

३५१. पद से परे किन्तु पाद के आदि में स्थित नहीं रहने वाले षष्ठी चतुर्थी और द्वितीयाविभक्ति विशिष्ट युष्मद् और अस्मद् को वाम् व नौ आदेश होते हैं ।

३५२. पूर्ववत् ही षष्ठ्यादिविशिष्ट युष्मंद् और अस्मद् को बहुवचन में वस् नस् आदेश होते हैं ।

३५३. उक्तविषयक षष्ठी चतुर्थी एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् को ते व मे आदेश होते हैं।

३५४. उक्त विषयक द्वितीया एकवचनान्त युष्मदस्मद को त्वा और मा आदेश होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

श्रीशस्त्वावतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।
स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥१॥
सुखं वां नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ।
सोऽव्याद्वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः ॥२॥

वा. एकवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः ।

वा. एकतिङ् वाक्यम् । तेनेह न । ओदनं पच तव भविष्यति । इह तु स्यादेव– शालीनां ते ओदनं दास्यामि । वा. एते वान्नावादय आदेशा अनन्वादेशे वा वक्तव्याः । अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते भक्तोऽस्ति । तव भक्तोऽस्तीति वा । तस्मै ते नमः इत्येव।

३५५. न चवाहाहैव युक्ते ८।१।२४॥ चादिपञ्चकयोगे नैते आदेशाः स्युः । हरिस्त्वां मां च रक्षतु, कथं त्वां मां वा न रक्षेदित्यादि ।

३५६. पश्यार्थैश्चानालोचने ८।१।२५॥ अचाक्षुषज्ञानार्थैर्धातुभिर्योगे एते आदेशा न स्युः । चेतसा त्वां समीक्षते । आलोचने तु भक्तस्त्वां पश्यति चक्षुषा ।

३५७. सपूर्वायाः प्रथमायाः विभाषा ८।१।२६॥

मध्यमनोरमा

श्रीश इति–श्रीशस्त्वावतु इह मामपि अवतु । अत्र द्वितीयैकवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोस्त्वामा आदेशः । ते तुभ्यं मे मह्यं शर्म दत्तात् । श्रीश इत्येव सम्बद्ध्यते । अत्र चतुर्थ्येकचनान्तयोः ते मे आदेशः । स हरिः ते तव मे मम स्वामी । अत्र षठ्येकवचनान्तयोः ते मे आदेशः । विभुः वां युवाम् पातु नौ आवाम् पातु । अत्र द्वितीयाद्विवचनान्तयोः वां नावौ । वां युवाभ्यां नौ आवाभ्याम् ईशः सुखं ददातु । अत्र चतुर्थीद्विवचनान्तयोः वां नावौ । हरिः वां= युवयोः नौ= आवयोः पतिः । अत्र षष्ठीद्विवचनान्तयोः वां नावौ । सः वः= युष्मान् नः= अस्मान् अव्यात्। अत्र द्वितीयाबहुवचनान्तयोः वस्नसौ । वः= युष्मभ्यं, नः= अस्मभ्यं शिवं दद्यात्। अत्र चतुर्थीबहुवचनान्तयोः वस्नसौ । वः= युष्माकं, नः= अस्माकं स सेव्यः। अत्र षष्ठीबहुवचनान्तयोर्वस्नसादेशः । अत्र षष्ठीचतुर्थ्येकवचने ते मे इत्यादेशः । द्वितीयैकवचने त्वामादेशः । षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाद्विवचनान्तयोः वां नावौ । षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोः वस्नसौ भवतः इति विवेकः । **एकतिङिति**—एकं तिङन्तं यस्मिन् तत् एकतिङ् वाक्यम् इति । एकवाक्यमित्यर्थः ।

हिन्दी

वा. एकवाक्य में अनुदात्त उक्त आदेश युष्मद् अस्मद् को होते हैं ।

वा. एक तिङ् हो जिसमें उसे वाक्य कहते हैं ।

वा. ये वां नौ आदि आदेश अनन्वादेश में विकल्प से होते हैं । अन्वादेश में नित्य आदेश होते हैं ।

३५५. च वा हा अह एव के योग में पूर्वोक्त आदेश नहीं हों ।

३५६. अचाक्षुषज्ञानार्थक धातुओं के योग में उक्त आदेश नहीं होते हैं।

३५७. विद्यमान पूर्वपद वाले प्रथमान्त से परे युष्मद् अस्मद् को अन्वादेश में भी पूर्वोक्त आदेश विकल्प से होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विद्यमानपूर्वात् प्रथमान्तादन्वादेशेऽप्येते आदेशा वा स्युः । भक्तस्त्वमप्यहं, तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम् । त्वा मा इति वा ।

३५८. सामन्त्रितम् २।३।४८।। सम्बोधने या प्रथमा तदन्तमामन्त्रितसंज्ञं स्यात्।

३५९. आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ८।१।७२।। अग्ने तव । देवास्मान् पाहि ।

३६०. नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ८।१।७३।। विशेष्यं समानाधिकरणे विशेषणे आमन्त्रिते परे नाविद्यमानवत् । हरे दयालो नः पाहि। सुपात् । सुपाद् । सुपादौ ।

मध्यमनोरमा

ओदनं पच इत्येकवाक्यम् । अत्र एकस्य तिङन्तस्य पच् इत्यस्य घटकतया प्रविष्टत्वात् । तव भविष्यतीति अपरं वाक्यं, तत्र भविष्यतीति तिङन्तस्य घटकतया प्रवेशात्, अत्र तव इत्यस्य ते इत्यादेशो न, एकवाक्यस्थपदात् परत्वस्याभावात् । तस्मात् पदात् परयोर्युष्मदस्मदोरादेशः तस्य पदस्य युष्मदस्मदोश्चैकवाक्यस्थत्व एव वां नावादय आदेशा इति हि एकवाक्ये आदेशा वक्तव्या इति वार्तिकार्थः । **धाता ते भक्त इति**—धातुर्भक्तत्वं विधातुं ते इत्युपात्तम्, इदं तु न अन्वादेशवाक्यं, ते इत्यस्य प्रथममेवोपादानात् । द्वितीयोपादानं तु "तस्मै ते नमः" इति । इदन्तु अन्वादेशवाक्यम् । अत्र भक्तिरूपं कार्यं विधातुमुपात्तस्य नमस्कारं विधातुं पुनरुपादानात् । अतः पूर्ववाक्यस्य धाता ते भक्तः इत्यादेरनन्वादेशत्वाद् विकल्पेन ते इत्यादेशः । उत्तरवाक्यस्य तस्मै ते नमः इत्यस्यान्वादेशतया नित्यमेवादेशः । **न चवाहेति**—च वा हा अह एव एतैः पञ्चभिर्योगे एते आदेशा नेत्यर्थः। त्वां मां च इत्यत्र चकारयोगः । त्वां मां वेत्यत्र वा शब्दयोगः । **पश्यार्थैः**—आलोचनं चाक्षुषज्ञानं, तद्भिन्नमनालोचनं, तस्मिन् सति पश्यार्था ज्ञानार्था ये धातवः, चाक्षुषभिन्नज्ञानार्थका ये धातव इति फलितम् । तैर्योगे एते आदेशा नेत्यर्थः । **चेतसेति**—अत्र ईक्ष् धातुः मानसे ज्ञाने वर्तते, चेतसेति पदोपादानात् । त्वा पश्यति चक्षुषा इत्यत्र चक्षुषा इत्युपादानात् । दृशिश्चाक्षुषज्ञानवचनः । **सपूर्वायाः**—विद्यमानेति विद्यमानः पूर्वो यस्य तादृशं यत्प्रथमान्तं तस्मात् परयोर्युष्मदस्मदोरेते आदेशा अन्वादेशेऽपि विकल्पेन भवन्तीत्यर्थः । **भक्तस्त्वमप्यहमपि इति**—युष्मदस्मदोः प्रथममुपादानं, तेन हरिः त्वां मां वा त्रायते इति पुनरुपादानम् इति अन्वादेशः । अत्र नित्यमादेशे प्राप्ते विकल्पः । अत्र त्वामिति युष्मच्छब्दस्य हरिरिति प्रथमान्तात् पदात् परत्वमस्ति, हरिरिति प्रथमान्तं विद्यमानपूर्वम्, हरिरित्यस्मात् पूर्वं तेनेत्यस्य विद्यमानत्वात्। एवं मामितिअस्मच्छब्दस्य स इति प्रथमान्तात् पदात्परत्वम्, स इति प्रथमान्तं विद्यमानपूर्वं, स इत्यस्मात् पूर्वं त्रायते इत्यस्य विद्यमानत्वात्। **अग्ने तवेति**—अग्ने इत्यामन्त्रितम् अविद्यमानवत् । तेन युष्मच्छब्दस्य पदात् परत्वाभावात् न ते इत्यादेशः ।

हिन्दी

३५८. सम्बोधन में प्रथमान्त को आमन्त्रित संज्ञा होती है ।

३५९. पूर्व में स्थित आमन्त्रित अविद्यमानवत् होता है ।

३६०. समानाधिकरण विशेषण आमन्त्रित के परे रहते विशेष्यवाचक अविद्यमानवत् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३६१. पादः पत् ६।४।३०।। पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः । सुपदः । सुपदा । सुपाद्भ्याम् । अग्निमत्, अग्निमद् । अग्निमथौ । अग्निमद्भ्याम् ।

३६२. अनिदितां हल उपधाया क्ङिति ६।४।२।। हलन्तानामनिदितामङ्गाना-मुपधायाः नस्य लोपः किति ङिति च । उगिदचामिति नुम् । संयोगान्तस्य लोपः । नस्य कुत्वेन ङः । प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः ।

३६३. अचः ६।४।१३८।। लुप्तनकास्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः ।

३६४. चौ ६।३।१३८।। लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः । प्राचः। प्राचा । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीचः । प्रत्यग्भ्याम् । उदङ् । उदञ्चौ।

मध्यमनोरमा

देवास्मानिति—देवेत्यामन्त्रितम् अविद्यमानवत्, तेन अस्मद् शब्दस्य पदात् परत्वाभावात् नस् इत्यादेशो न । **हरे दयालो इति**—अत्र हरे इति विशेष्यं दयालो इति समानाधिकरणम् आमन्त्रितसंज्ञकम् । समानाधिकरणमित्यस्य समानविभक्तिकमित्यर्थः । हरे इत्यस्य दयालो इत्यस्य च प्रथमान्ततया तुल्यविभक्तिकत्वम्, अतो दयालो इति समानाधिकरण्ये आमन्त्रिते परतो हरे इति विशेष्यं नाविद्यमानवत् । आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवदिति अविद्यमानवद्भावः

मध्यमनोरमापूरणी

सुपदः इति—सुपाद् शस् इति स्थिते यचि भमिति भसंज्ञायाम् पादः पदिति सुपाद्घटक पाद्शब्दस्य पदादेशे सुपद् अस् इति, संयोगे सस्य रुत्वविसर्गौ । **अग्निमत्**—अग्निमथ् स् इति स्थिते सोर्हल्ङ्याादिलोपे झलां जशोऽन्त इति थस्य दकारे वाऽवसाने इति दस्य चर्त्वम् । **अग्निमद्भ्याम्**—अग्निमथ् भ्यामिति स्थिते थकारस्य जश्त्वेन दकारः । **प्राङिति**—प्र अञ्च् इति स्थिते नलोपे सवर्णदीर्घः प्राच् इति जाते नुमादिकार्यं मध्यमनोरमावत् । **प्राचः**—प्र अच् अस् इति स्थिते मध्मनोरमोक्तं कार्यं कर्त्तव्यम् । सन्निपातपरिभाषया सन्धेरप्रवृत्तिः । सन्धिनिमित्तस्याकारस्य लोपेन विनाशोन्मुखत्वात् प्रतीच इत्यत्र मध्यमनोरमोक्तं "यणो निवृत्तिरिति" चिन्त्यम् ।

हिन्दी

३६१. पाद्शब्दान्त भसंज्ञक अङ्ग के अवयव पाद् को पद् आदेश हो ।

३६२. अनिदित् हलन्त अङ्ग की उपधा न् का लोप हो कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ।

३६३. लुप्तनकारवाले अञ्च् के भसंज्ञक अ का लोप होता है ।

३६४. लुप्त अकार व नकार वाले अञ्च् के परे रहते पूर्व अण् को दीर्घ हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३६५. उद ईत् ६।४।१३९।। उच्छब्दात् परस्य लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् । उदीचः । उदीचा । उदग्भ्याम् ।

३६६. समः समि ६।३।९३।। वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे । सम्यङ् । सम्यञ्चौ । समीचः । सम्यग्भ्याम् ।

मध्यमनोरमा

प्राप्तोऽनेन निषिध्यते । अत्र दयालो इति विशेषणभूतस्यामन्त्रितस्य अविद्यमानवद्भावेऽपि विशेष्यभूतस्य हरे इत्यस्याविद्यमानवद्भावनिषेधात् हरे इत्यस्मात् पदात् परत्वमस्मच्छब्दस्यास्तीति नसादेशः । **सुपादिति**—शोभनौ पादौ यस्येति बहुव्रीहिः, संख्यासुपूर्वस्येति पादस्यान्तलोपः । **अग्निमदिति**—मथ्नातेः मन्थतेश्च एतदेव रूपम् । **अनिदितामिति**—इकारः इत् इत्संज्ञको यस्य स इदित्, तद्भिन्नः अनिदित् । **प्राङिति**—प्रपूर्वक अञ्च् धातुः, अञ्चुगतिपूजनयोः, ऋत्विगादिना ततः क्विन्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वे ततः स्वाद्युत्पत्तिः, हल्ङ्यादिना सुलोपः, प्रअञ्च् इति स्थिते अनिदितामिति नकारलोपः । सर्वनामस्थाने परत उगिदचामिति नुम्, चकारस्य संयोगान्तस्य लोप इति लोपः, प्र अन् इति जाते क्विन् प्रत्ययस्य कुरिति नकारस्य कुत्वेन ङकारः, सवर्णदीर्घः । **प्राञ्चौ इति**—अनिदितामिति नलोपे उगिदचामिति नुम् । **प्राचः इति**—शसि **प्राञ्च्**[1] अस्, अनिदितामिति नकारलोपे अच् इति अकारलोपे प्रच् अस् इति स्थिते चौ इति सूत्रेण चकारे परतः प्रशब्दस्य दीर्घ आकारः, प्राचः इति सिद्धम् । **प्राग्भ्यामिति-** प्राञ्च्भ्यामिति स्थिते अनिदितामिति नकारलोपे सति सर्वनामस्थान परत्वाभावात् उगिदचामिति नुम् न । चोः कुरिति कुत्वम् । **प्रत्यङ् इति**—प्रत्यञ्च् इति प्रति पूर्वकोऽञ्च्धातुः, अत्रापि पूर्ववत् क्विनादि, अनिदितामिति नलोपः, उगिदचामिति नुम्, संयोगान्तस्येति चलोपः । क्विन् प्रत्ययस्येति कुत्वेन नस्य ङः । **प्रतीच इति–** शसि प्रति अञ्च् अस् इति स्थिते अनिदितामिति नलोपे अच् इत्यकारस्य लोपः । अकारलोपे सति तन्निमित्तस्य यणो निवृत्तिः । तेन प्रति च् अस् इति स्थिते चौ इति प्रतिशब्देकारस्य दीर्घः। **प्रत्यग्भ्याम् इति**—नलोपे चकारस्य चोः कुरिति कुत्वम् । **उदङ् इति**—उत्पूर्वकोऽञ्च् धातुः, अत्रापि पूर्ववन्नलोपे नुमि चकारस्य संयोगान्तलोपे नकारस्य कुत्वेन ङः । **उदीच इति**—उदञ्च् अस् इति स्थिते अनिदितामिति नलोपे उद् अच् अस् इति जाते अच् इत्यकारलोपे प्राप्ते अकारस्य उद ईत् इति ईकारः । **वप्रत्ययान्त इति-** क्विप्-विच्-क्विन्-प्रत्ययादीनां ककारेकारलोपे वकारमात्रस्यावशेषे वप्रत्ययान्तत्वं क्विबन्तादीनामिति भावः । **सम्यङ् इति**—सम् अञ्च् इति स्थिते सम् शब्दस्य समि इत्यादेशे इकारस्य यण्, सम्यञ्च् इति जाते पूर्ववन्नकारलोपे नुमि संयोगान्तलोपे कुत्वम् । **समीच इति-** समः समि आदेशे अच इत्यकारलोपे समि च् इति जाते चावितीकारस्य दीर्घः ।

हिन्दी

३६५. उद् से परे लुप्तनकारवान् अञ्च् के भसंज्ञक अ को ई होता है ।

३६६. अप्रत्ययान्त अञ्च् के परे सम् को समि आदेश होता है ।

---

1. सन्निपातपरिभाषया सन्धेरप्रवृत्त्या प्रअञ्च् अस् इत्येव लेख्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३६७. सहस्य सध्रिः ६।३।९५॥ तथा । सध्र्यङ् । सध्र्यञ्चौ । सध्रीचः । सध्र्यग्भ्याम् ।

३६८. तिरसस्तिर्यलोपे ६।३।९४॥ अलुप्ताकाराञ्चतौ अप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिरश्चः । तिरश्चा । तिर्यग्भ्याम् ।

३६९. नाञ्चेः पूजायाम् ६।४।३०॥ पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न । प्राङ् । प्राञ्चौ । नलोपाभावादल्लोपो न । प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु । प्राङ्षु। एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुञ्चः । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक्, पयोमुग् । पयोमुचः । पयोमुग्भ्याम् । मह पूजायाम्, 'वर्तमाने पृषन्महद्वृहज्जगच्छतृवच्च' एते निपात्यन्ते । शतृवच्चैषां कार्यं स्यात् । उगित्वान्नुम् ।

मध्यमनोरमा

सध्र्यङ् इति—सह अञ्चतीति सध्र्यङ्, सहशब्दस्य सध्रि इत्यादेशे नलोपादि पूर्ववत् । **तिर्यङिति**—तिरः अञ्चतीति तिर्यङ्, तिरसः तिर्य्यादेशः । **तिरश्चः इति**—अत्राञ्चतेरकारस्य अच इति लोपात् अलुप्ताकारत्वं नास्तीति तिर्य्यादेशो न, किन्तु तिरसः सकारस्य चकारयोगात् स्तोः श्चुना श्चुरिति शकारः । **तिर्यग्भ्याम् इति**—अत्राकारलोपाभावात् तिर्यादेशः । **प्राङिति**—अत्र नकारलोपाभावात् उगिदचामिति नुम् न, उगिदचामिति नलोपिनोऽञ्चतेर्नुम्विधानात् । चकारस्य संयोगान्तलोपे नकारस्य कुत्वम्। **प्राञ्चः इति**—शसि प्राञ्च् अस् इति जाते नाञ्चेः पूजायामिति नलोपनिषेधात् लुप्तनकारस्याञ्चतेरभावात् अच इति अकारलोपो न । **प्राङ्भ्यामिति**—प्राञ्च् भ्यामिति स्थिते संयोगान्तस्येति चकारलोपे क्विन् प्रत्ययस्येति नकारस्य कुत्वेन ङः । **क्रुङ् इति**— क्रुञ्च् धातोः ऋत्विगादिना क्विन्, कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वे स्वाद्युत्पत्तौ हल्ङ्यादिना सुलोपः, संयोगान्तस्येति चलोपः, क्विन्प्रत्ययस्येति **कुत्वम्** ।

मध्यमनोरमापूरणी

सध्र्यङ् इति—सह अञ्च् इति स्थिते सहस्य सध्रि इत्यादेशे अनिदितामिति नलोपे यणि सध्र्यच् इति, सौ उगिदचामिति नुमि सोर्हल्ङ्यादिलोपे चकारस्य संयोगान्तलोपे क्विन् प्रत्ययस्येति नस्य कुत्वे ङकारे सध्र्यङ् इति । **सध्रीचः**-सध्रि अच् अस् इति स्थिते भसंज्ञायाम् अचः इति अकारलोपे चौ इति इकारस्य दीर्घे सध्रीचस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । सध्र्यग्भ्यामिति—सध्र्यञ्च् भ्यामिति स्थिते अनिदितामिति नलोपे चोः कुरिति कुत्वेन ककारे कस्य जश्त्वेन गकारः । **तिर्यङ् इति**—तिरस् अञ्च् इति स्थिते सौ तिरसस्तिर्यलोपे इति तिरि आदेशे अनिदितामिति नलोपे उगिदचामिति नुमि यणि तिर्यञ्च् स् इति । सोर्लोपः, संयोगान्तलोपः, नस्य कुत्वम् । **प्राङ्क्षु इति**—प्राञ्च् सु इति स्थिते चस्य संयोगान्तलोपे

हिन्दी

३६७. (अ) वप्रत्ययान्त अञ्च् धातु के परे सह को सध्रि आदेश होता है ।

३३८. अलुप्ताकारक व अप्रत्ययान्त अञ्च् धातु के परे तिरस् को तिरि आदेश होता है ।

३६९. पूजार्थक अञ्च् धातु की उपधा नकार का लोप नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३७०. सान्तमहतः संयोगस्य ६।४।१०॥ सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । महान् । महान्तौ । महान्तः । हे महन् । महतः । महद्भ्याम् ।

३७१. अत्वसन्तस्य चाधातोः ६।४।१४॥ अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ । धीमान् । धीमन्तौ । धीमन्तः । हे धीमन्। शसादौ महद्वत् । भातेर्डवतुः । डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । भवान् । भवन्तौ । शत्रन्तस्य तु भवन् ।

मध्यमनोरमा

पयोमुगिति—पयो मुञ्चतीति पयोमुक् । मुञ्च्धातोः क्विप्, अनिदितामिति नलोपः, चोः कुरिति चकारस्य कुत्वम् । **महानिति**—मह् धातोः अति महत् इति । शतृप्रत्ययस्य ऋकारेत्संज्ञकत्वेन उगित्त्वम्, महच्छब्दस्य तु शतृप्रत्ययान्तवद्भावात् उगित्वं, तेन उगिदचामिति नुम् । महन्त् स् इति जाते सान्तमहत इति नकारात् पूर्वस्याकारस्य दीर्घः । सुलोपः, संयोगान्तस्येति तकारलोपः । तस्यासिद्धत्वान्नलोपो न । **हे महन् इति**—नुमागमे सुलोपे संयोगान्तलोपः, सम्बुद्धिपरत्वान्न दीर्घः । **महत इति**—सर्वनामस्थानपरत्वाभावान्नुम् न । **महद्भ्यामिति**—तकारस्य झलां जशोऽन्त इति दकारः । स्वादिष्वसर्वनामस्थान इति सूत्रेण भ्यामि परतः पूर्वस्य पदत्वात् । **धीमान् इति**—धीः विद्यते यस्य स धीमान्, धीमत् शब्दो मतुप् प्रत्ययान्तः । तेन अतु अन्ते यस्य स अत्वन्तः इति धीमत् शब्दोऽत्वन्तः । तेन असम्बुद्धौ सौ दीर्घः, उगिदचामिति नुम्, सुलोपे संयोगान्तस्येति तकारलोपः । **डित्त्वसामर्थ्यादिति**—भाधातोर्डवतु प्रत्यये डकारस्येत्संज्ञायाम् लोपे भा अवत् इति स्थिते टेरिति सूत्रेण आकारलोपः । अत्र यद्यपि डवतुप्रत्ययस्य कप्रत्ययावधिस्वादिप्रत्ययमध्येऽसत्त्वात् तस्मिन् परतो यचि भमिति भसंज्ञाया अभावात् टेरिति लोपो न प्राप्नोति, टेरिति सूत्रेण भसंज्ञकस्यैव टेः लोपविधानात् । तथापि डवतुप्रत्ययस्य डकारेत्संज्ञकत्वसामर्थ्यात् भसंज्ञाया अभावेऽपि टिलोपः । अन्यथा यदि भसंज्ञाभावात् टिलोपो न स्यात् तदा डकारेत्संज्ञकत्वमस्य डवतुप्रत्ययस्य व्यर्थमेव स्यादिति मत्वा भसंज्ञाऽभावेऽपि टिलोप इत्यर्थः ।**शत्रन्तस्येति**—भूधातोः शतृप्रत्यये शकारऋकारयोर्लोपे भूधातोः सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे भवत् शब्दः । तस्य अतु इति अन्तो नास्ति, किन्तु अतृ इति अन्तः । अतोऽत्वन्ताभावात् न दीर्घः।

मध्यमनोरमापूरणी

नस्य कुत्वे ङकारे ङ्णोः कुक्टुगिति कुकि अनुबन्धलोपे प्राङ्क् सु इति, सस्य षत्वे कषयोस्संयोगे प्राङ्क्षु इति । कुकोऽभावे प्राङ्षु इति। पयोमुग्भ्यामित्यत्र मुञ्च् इत्यस्य नलोपे चस्य कुत्वे ककारे तस्य जश्त्वेन गः । **भवान् इति**—भातेः डवतुप्रत्यये डस्येत्संज्ञायां

हिन्दी

३७०. सान्तसंयोग और महत् का जो नकार उसकी उपधा को दीर्घ होता है असम्बुद्धि सर्वनामस्थान परे रहते ।

३७१. अत्वन्त और धातुभिन्न असन्त की उपधा को दीर्घ हो, असम्बुद्धि सु परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३७२. उभे अभ्यस्तम् ६। १।१५।। षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्तः ।

३७३. नाभ्यस्ताच्छतुः ७।१।७८।। अभ्यस्तात् परस्य शतुर्नुम् न । ददत् । ददतौ।

३७४. जक्षित्यादयः षट् ६।१।१६।। षड्धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एतेऽभ्यस्तसंज्ञाः स्युः । जक्षत् । जक्षतौ । जक्षतः । एवं जाग्रत् । दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः । वेवीङ्- वेतिना तुल्ये । एतौ छान्दसौ। दीव्यत् । वेव्यत् । गुप्, गुब् । गुपौ । गुपः । गुब्भ्याम् ।

३७५. त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च ३।२।६०।। त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद् दृशेर्धातोः कञ् स्यात् चात् क्विन् ।

३७६. आ सर्वनाम्नः ६।३।९१।। दृग्दृशवतुषु । तादृक्, तादृग् । तादृशौ । तादृशः । तादृग्भ्याम् । व्रश्चेति षः । जश्त्वचर्त्वे । विट्, विड् । विशौ । विशः। विड्भ्याम् ।

मध्यमनोरमा

षाष्ठेति—अष्टाध्याय्यां द्वित्वप्रकरणं स्थलद्वयेऽस्ति । षष्ठाध्यायेऽष्टमाध्याये च । तत्र लिटि धातोरित्यादि षाष्ठद्वित्वप्रकरणम् । सर्वस्य द्वे इत्याद्याष्टमिकम् । तत्र षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे, तद्द्वयमपि समुदितमभ्यस्तसंज्ञम् । **ददत् इति**—दाधातोः शतृप्रत्यये तस्मिन् परतः कर्तरि शप् इति विहितस्य शपः जुहोत्यादित्वात् श्लुः, श्लौ परतः श्लाविति सूत्रेण द्वित्वम् । इदं सूत्रं षाष्ठद्वित्वप्रकरणेऽस्तीति दा दा इत्यस्याभ्यस्तसंज्ञा, अभ्यासह्रस्वः, अनभ्यासाकारस्य लोपः, ददत् सु इति स्थिते उगिदचामिति नुमि प्राप्ते नाभ्यस्तादिति निषेधः । **जक्षत्**—जक्ष् धातोः शतृप्रत्ययः, अत्रापि उगिदचामिति नुमि प्राप्ते तस्य नाभ्यस्तादिति निषेधः । **दीधीङ् इति**—अस्य दीध्यत् इति शतृप्रत्यये रूपम् । एवं वेवीङ् इत्यस्य वेव्यत् इति ।

मध्यमनोरमापूरणी

डित्त्वसामर्थ्याद् टेर्लोपे भवत् इति, सौ अत्वसन्तस्येति उपधादीर्घे नुमि सुलोपे तस्य संयोगान्तलोपे भवानिति । भवन्तौ इत्यत्र सुपरत्वाभावान्न दीर्घः । शेषं शसादौ महद्वत् । **जाग्रदिति**—जागृधातोः शतरि प्रातिपदिकत्वेन सौ जाग्रत् स् इति जाते जक्षित्यादयः इति अभ्यस्तसंज्ञाकारणात् प्राप्तस्य नुमो निषेधः नाभ्यस्ताच्छतुरिति भवति । एवमेव दरिद्राधातोः दरिद्रत्, शास् चकासृधात्वोः शासत् चकासदिति च रूपं बोध्यम् । **गुप्**—धातोः क्विपि सर्वापहारलोपे आयादेशविकल्पे प्रातिपदिकत्वात् सौ सोर्लुकि, पस्य जश्त्वे चर्त्वे च गुप् इति।

हिन्दी

३७२. षष्ठाध्यायस्थ द्वित्व प्रकरण में द्वित्व किए गए दोनों समुदाय को अभ्यस्त संज्ञा हो।

३७३. अभ्यस्तसंज्ञक से परे शतृप्रत्ययान्त को नुम् नहीं होता है ।

३७४. जागृ आदि छः धातुओं और जक्ष् धातु को अभ्यस्त संज्ञा हो ।

३७५. त्यदादि उपपद रहने पर अज्ञानार्थक दृश् धातु से कञ् प्रत्यय और क्विन् प्रत्यय होते हैं ।

३७६. दृग् दृश् और वतु के परे रहते सर्वनाम को आकार अन्त में आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३७७. नशेर्वा ८।२।६३।। नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते । नक्, नग् । नट्, नड् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् । नड्भ्याम् ।

३७८. स्पृशोऽनुदके क्विन् ४।२।५६।। अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् । घृतस्पृक्, घृतस्पृग्। घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । दृधृक्, दधृग् । दधृषौ । दधृषः । दधृग्भ्याम्। रत्नमुट्, रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुषः । रत्नमुड्भ्याम् । षट्, षड् । षड्भिः। षण्णाम् । षट्त्सु, षट्सु । यतु प्राचा षण्णां षड्णामित्युदाहृतं तत्प्रामादिकमेव । प्रत्यये भाषायामिति नित्यवचनात् । रुत्वं प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्वात् ससजुषो रुरिति रुत्वम् ।

मध्यमनोरमा

गुब्भ्यामिति—पकारस्य झलां जशोऽन्त इति बकारः । **तादृगिति**—तद्पूर्वको दृश् धातुः, तस्य कञ्प्रत्यये ककारञकारलोपे तादृश इति अकारान्तः रामवत् । क्विनि तु तत् दृश् इत्यस्मात् क्विनि क्विनः सर्वापहारलोपः । **आ सर्वनाम्नः इति** सर्वनामसंज्ञकस्य तद् शब्दस्य आकारोऽन्तादेशः, क्विन् प्रत्ययस्येति शकारस्य कुत्वे प्राप्ते कुत्वस्याऽसिद्धत्वात् प्रथमं व्रश्चेति षः, तस्य झलां जशोऽन्त इति डः, ततः क्विन् प्रत्ययस्येति डकारस्य गः, तस्य वाऽवसाने इति पक्षे कः । **विट् इति**—विश् धातुः क्विन् प्रत्ययान्तः, तस्य व्रश्चेति शस्य षः, तस्य झलां जशोऽन्त इति डकारः, तस्य वाऽवसाने इति चर्त्वेन पक्षे टकारः । **नक् इति**—नश् इति क्विन्प्रत्ययान्तः, तस्य कव र्गान्तादेशः, शस्य खकारः, तस्य झलां जशोऽन्त इति गः, तस्य वाऽवसाने इति ककारः। **नशेर्वा इति** कुत्वाभावपक्षे शस्य व्रश्चेति षः, षस्य झलां जशोऽन्ते इति डः, तस्य वाऽवसान इति टः । **घृतस्पृक् इति**—उदकभिन्ने घृतशब्दे उपपदे स्पृश् धातोः क्विन्, क्विन्नन्तवत् पूर्ववत् कुत्वम् । अत्रापि कुत्वस्यासिद्धत्वात् प्रथमं व्रश्चेति षत्वे तस्य झलामिति जश्त्वेन डकारे तस्य कुत्वेन गकारो बोध्यः । **दधृक् इति**—अत्र धृष् धातोः ऋत्विगादिना क्विनि निपातनाद् द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च, दधृष् इति जाते झलां जशोऽन्त इति षकारस्य डकारे जाते क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति डस्य गः, तस्य वाऽवसान इति कः । **रत्नमुट् इति**—रत्नमुष् इति क्विबन्तः, तस्य झलामिति डः, तस्य वाऽवसान इति टकारः ! **षट् इति**—षष् शब्दः संख्यावाची नित्यं बहुवचनान्तः । तस्मात् परयोः जश्शसोः

मध्यमनोरमापूरणी

तादृग्भ्यामिति—क्विन्नन्ततादृशशब्दात् भ्यामि व्रश्चेति शकारस्य षकारे, षस्य झलां जशोऽन्ते इति जश्त्वेन डकारे क्विन् प्रत्ययस्येति गः । **नग्भ्यामिति**—नश् भ्यामिति स्थिते नशेर्वा इति शस्य खकारे तस्य जश्त्वे गकारे रूपम् । नशेर्वेति विकल्पे व्रश्चेति शस्य षत्वे तस्य जश्त्वेन डकारः ! **दधृग्भ्यामिति**—दधृष्भ्यामिति स्थिते षस्य जश्त्वे डकारे तस्य क्विन् प्रत्ययस्येति कुत्वेन गकारः । **षट्त्सु इति**—षष् सु इति स्थिते झलां जशोऽन्ते इति षस्य डकारे डः सि धुडिति धुटि षड्ध्सन्त इति, डकारधकारयोश्चर्त्वेन षट्त्सु इति । धुड्विकल्पे षट्सु इति ।

हिन्दी

३७७. नश् धातु को कवर्गान्त आदेश होता है, पदान्त में ।

३७८. उदकभिन्न सुबन्त उपपद रहने पर स्पृश् धातु से क्विन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३७९. र्वोरुपधाया दीर्घ इकः ८।२।७६।। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते । पिपठीः । पिपठिषौ । पिपठिषः । पिपठीर्भ्याम् ।

३८०. नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८।३।५८।। एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपीण्कुभ्यां परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः । ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः । पिपठीःषु । पिपठीष्षु । चिकीः। चिकीर्षौ । चिकीर्षु । विद्वान् । विद्वांसौ । हे विद्वन् ।

मध्यमनोरमा

षड्भ्यो लुगिति लुक् । षकारस्य झलां जशोऽन्त इति डकारः, चर्त्वम् । **षण्णामिति**—षष् शब्दात् आमि षट्चतुर्भ्यश्चेति नुटि षष् नाम् इति स्थिते झलां जशोऽन्त इति षकारस्य डकारे षड् नामिति जाते नुटो नकारस्य ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वेन णकारः । डकारस्य प्रत्यये भाषायां नित्यमिति अनुनासिको णकारः । प्राचा तु डकारस्य यरोऽनुनासिक इति अनुनासिकविकल्पेन षड्णामिति रूपद्वयमुक्तम्, तन्न। यरोऽनुनासिक इति सूत्रेण प्राप्तविकल्पं बाधित्वा प्रत्यये भाषायामिति नित्यमनुनासिक-विधानात् । **पिपठीरिति**—पिपठिष् शब्दः सन्नन्तः, पठितुमिच्छतीति पठ्धातोः सनि इटि पठ् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे सन्यत इत्यभ्यासस्येत्वे सनः सकारस्य षत्वे निष्पन्नः । पिपठिष् सु इति स्थिते सोर्लोपे षत्वस्याऽसिद्धत्वात् ससजुषो रुरिति पिपठिस् शब्दान्तस्य सकारस्य रुः । तेन पिपठिर् इति जाते रेफान्तोऽयं धातुः, सन्नन्तस्य सनाद्यन्ता इति सूत्रेण धातुसंज्ञकत्वात्, तेन रेफात् पूर्वस्य इकारस्य उपधाभूतत्वाद्दीर्घः । **पिपठीर्भ्यामिति**—भ्यामादिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थान इति पूर्वस्य पदत्वात् सस्य रुत्वे रेफान्तत्वात् दीर्घः । **पिपठीःषु इति**—पिपठिष् सु इति स्थिते स्वादिष्विति पदत्वात् सस्य रुत्वे पूर्वस्य दीर्घे खरवसानयोरिति रोर्विसर्गे तस्य वा शरीति पाक्षिके विसर्गे नुम्विसर्जनीय इति सूत्रेण विसर्गव्यवधानेऽपि ईकारादिणः परस्य सुप्सम्बन्धिनः सकारस्य षत्वं, पिपठीःषु इति विसर्गसहितमेकरूपम् । वा शरीति विसर्गस्य विसर्गाभावे तस्य विसर्जनीयस्य स इति सकारः । तत्रापि सनः सकारेण व्यवधाने ईकारात् परस्य सुपः सकारस्य षत्वं, पूर्वसकारस्य ष्टुना ष्टुरिति षकारः, पिपठीष्षु इति द्विषकारकं रूपान्तरम् । **चिकीरिति**—चिकीर्ष् सु इति स्थिते सोर्लोपे षत्वस्यासिद्धतया रात्सस्येति सकारं लोपः, सकारनिमित्तकस्य हलि चेति दीर्घस्य सकारलोपे सति निवृत्तौ चिकिर् इति जाते र्वोरुपधाया दीर्घ इति इकारस्य दीर्घे रेफस्य विसर्गः । **चिकीर्ष्विति**—चिकीर्ष् सु इति स्थिते रात्सस्येति सकारलोपे सकारनिमित्तिकदीर्घनिवृत्तौ र्वोरुपधाया इति पदान्तनिमित्तको दीर्घः । अत्र रेफस्य विसर्गो न भवति, रोः सुपीति सप्तमी बहुवचने परतो रोरेव विसर्गनियमात् । अयं रेफो न रुसम्बन्धी

हिन्दी

३७९. रेफान्त वान्त धातु की उपधा इक् को दीर्घ हो पदान्त में ।

३८०. नुम् विसर्ग और शर् प्रत्येक के व्यवधान में भी इण् कवर्ग से परे स् को मूर्धन्य ष्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३८१. वसोः सम्प्रसारणम् ६।४।१३१।। वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणम् । विदुषः। वसुस्रंस्विति दत्वम् – विद्वद्भ्याम् ।

३८२. पुंसोऽसुङ् ७।२।८९।। सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् स्यात् । पुमान्। हे पुमन् । पुमांसौ । पुंसः । पुम्भ्याम् । पुंसु । ऋदुशनेत्यनङ्, उशना । उशनसौ। वा. अस्य सम्बुद्धौ वानङ् नलोपश्च वा वाच्यः । हे उशन । हे उशनन् ! । हे उशनः । उशनोभ्याम् । अनेहा । अनेहसौ । अनेहसः । हे अनेहः ! । वेधाः। हे वेधः ।वेधसौ । वेधसौ । वेधोभ्याम् ।

मध्यमनोरमा

किन्तु कृधातोः ऋकारस्थाने इकारे तस्य रपरत्वेन जात इति न तस्य विसर्गः । **विद्वान् इति**—विद्वस् सु इति स्थिते वसुप्रत्ययस्य उगित्त्वादुगिदचामिति नुम्, विद्वन्स् इति जाते सान्तमहत इति न्स् इति सान्तसंयोगात् पूर्वस्य अकारस्य दीर्घः, सुलोपः, संयोगान्तस्येति सकारलोपः । **विदुष इति**—शसि विद्वस् इति वसोर्वकारस्य सम्प्रसारणम् उकारः, सम्प्रसारणाच्चेति वकाराकारेण समं पूर्वरूपत्वे विदुस् इति जाते प्रत्ययावयवत्वात् सस्य आदेशप्रत्यययोति षत्वम् । **दत्वमिति**– विद्वस् इति सकारस्य दकारः । **पुमानिति**—पुंस् शब्दः डुगसुन्नन्तः, पूधातोः डुमस् , डकारलोपे डित्त्वात् पूल उकारलोपे डुमसुनो मकाराकारस्योच्चारणार्थत्वात् पुंस् इति जाते तस्य सर्वनामस्थाने असुङ्, स च ङित्त्वादन्त्यस्य सकारस्य स्थाने भवति । तेन पुमस् इति जाते डुमसुन उगित्त्वादुगिदचामिति नुमि पुमन्स् इति रूपे सान्तमहत इति दीर्घः, सुलोपः, संयोगान्त लोपः। **पुंस इति**—अस्य सर्वनामस्थानपरत्वाभावादसुङादेशो न । **पुम्भ्यामिति**—संयोगान्तस्येति सकारलोपः । **उशनेति**-

उशनस् शब्दस्य सकारस्य ऋदुशनेत्यनङ्, नकाराकारस्य अनङाकारेण सह अतो गुणे इति पररूपत्वम् । तेन उशनन् सु इति स्थिते सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धाविति दीर्घः, सुलोपः नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपः । **अस्येति**—अस्य उशनस् शब्दस्य सम्बुद्धौ विकल्पेन अनङ् नलोपश्च विकल्पेन । **हे उशनेति**—अनङ्पक्षे रूपद्वयम्, तत्र नकारलोपे उशनेति, तदभावे **उशनन्** इति । अनङोऽभावे उशनसः सकारस्य विसर्गः, हे **उशनः** इति । **उशनोभ्यामिति**—सकारस्य रुत्वे हशि चेत्युत्वे आद्गुणः । **अनेहेति**—अनेहस् शब्दस्य सकारस्य अनङ्, अतो गुणे,

मध्यमनोरमापूरणी

हे पुमन् इति—सम्बोधने सौ पुंस् स् इति स्थिते पुंसोऽसुङिति सस्थानेऽसुङि उगिदचामिति नुमि पुमन्स् स् इति । सुलोपः, सस्य संयोगान्तलोपः । **पुमांसौ इति**—असुङ्, नुम्, सान्तेति दीर्घः ।

हिन्दी

३८१. भसंज्ञक वस्वन्त अङ्ग को सम्प्रसारण होता है ।

३८२. सर्वनाम स्थान की विवक्षा में पुंस् को असुङ् आदेश होता है ।

वा. उशनस् को सम्बुद्धि परे विकल्प से अनङ् हो और न् का लोप भी विकल्प से होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३८३. अदस औ सुलोपश्च ७।२।१०७॥ सौ परे । तदोरिति सः । असौ । वा. औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य वा वक्तव्यः सादुत्वञ्च । असकौ । असुकः ।
३८४. अदसोऽसेर्दादु दो मः ८।२।८०॥ अदसोऽसान्तस्य दात् परस्य उदूतौ स्तो दस्य च मः । आन्तरतम्याद्ध्रस्वस्य उः, दीर्घस्य ऊः । अमू । जशः शी । गुणः।
३८५. एत ईद्बहुवचने ८।२।८१॥ अदसो दात् परस्यैत ईद्दस्य च मो बह्वर्थोक्तौ। अमी । पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्, पश्चादुत्वमत्वे । अमुम् । अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः ।

मध्यमनोरमा

अनेहन् सु इति जाते सर्वनामस्थाने इति दीर्घे सुलोपे नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपः । **वेधा इति**—वेधस् शब्दस्य असन्तत्वात् अत्वसन्तस्येति दीर्घः । **वेधोभ्यामिति**—सस्य रुत्वे हशि चेत्युत्वे आद्गुणः । **असाविति**—अदस् सु इति स्थिते सौ परतो अदसो दात् परस्य सकारस्य औकारे सुलोपे च अद औ इति जाते तदोः सः साविति दकारस्य सकारे वृद्धिरेचीति वृद्धिः। **असकौ इति**—अदस् शब्दस्य अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः इति अस् इति टेः पूर्वमकचि अदकस् इति जाते अकच्सहितस्य औत्वनिषेधविकल्पः । तत्र औत्वनिषेधाऽभावपक्षे सकारस्य औकारे दकारस्य तदोरिति सकारे सुलोपे च वृद्धिरेचीति वृद्धिः, असकौ । औत्वनिषेधपक्षे अदस् स् इति स्थिते त्यदादीनाम इत्यन्त्यस्य सकारस्य अकारे अतो गुणे इति पररूपे तदोरिति सत्वे सकारात् परस्य अकारस्य सादुत्वञ्चेति वार्तिकेन उकारे सोर्विसर्गे असुक इति । **अमू इति**— अदस् औ इति स्थिते त्यदादीनाम इति सकारस्य अकारे अतो गुणे इति पररूपे अद औ इति जाते वृद्धिरेचीति अकारौकारयोरौकारे अदौ इति स्थिते अदसो सेरिति दस्य मः, दात् परस्य औकारस्य ऊकारः । **आन्तरतम्यादिति**—प्रमाणतः सादृश्यादित्यर्थः । **अमी इति**—जसि त्यदाद्यत्वे जसः शीभावे आद् गुणे च अदे इति जाते एत ईदिति दस्य मः, दकारात् परस्य एकारस्य ईकारः । **विभक्तिकार्यमिति**—विभक्तिकार्यञ्च विभक्तिसम्बन्धिकार्यं तेन त्यदाद्यत्वे पररूपे अद अम् इति जाते अमि पूर्व इति पूर्वरूपत्वे अदम् इति, तदनन्तरम् अदसो सेरिति दस्य मत्वं ततः परस्याकारस्य उत्वम् **अमुम् इति** । **अमून् इति**—अदस् शस् इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे प्रथमयोः पूर्वसवर्णः इति शसोऽकारेण सह अदशब्दान्त्याकारस्य पूर्वसवर्णदीर्घे आकारे जाते 'तस्माच्छसो न' इति शसः सकारस्य नकारे अदसो सेरिति दकारस्य मकारे ततः परस्याकारस्य ऊकारः ।

हिन्दी

३८३. अदस् शब्द के अन्त्य को औ आदेश होता है और सु लोप होता है ।
वा. अकच् सहित अदस् को औत्व का प्रतिषेध हो और सकार से परे अकार को 'उ' आदेश हो ।
३८४. असान्त अदस् के दकार से पर वर्ण को उत् और ऊत् हो तथा द को म हो ।
३८५. अदस् सम्बन्धी दकार से परे एत को ईत् और द् को म् होता है बहुत्व अर्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३८६. न मु ने ८।२।३।। नाभावे कर्त्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः । अमुना। अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयोः। अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमुयोः । अमीषु ।

।। इति हलन्ताः पुँल्लिङ्गाः ।।

मध्यमनोरमा

अमुना इति—अदस् शब्दस्य त्यदाद्यत्वे पररूपे च अदसो सेरिति उत्वे मत्वे अमु आ इति जाते उकारान्तस्य शेषो घ्येति घिसंज्ञायाम् आङो नेति टा इत्यस्य नादेशः । अत्र आङो नेति सपादसप्ताध्यायीस्थं, तस्मिन् कर्त्तव्ये मुभावस्य त्रिपादीस्थस्य नासिद्धत्वं, नमुने इति नाभावे कर्त्तव्ये मुभावस्य असिद्धत्वनिषेधात् । **अमूभ्यामिति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे अदभ्यामिति स्थिते सुपि चेति दीर्घे अदाभ्यामिति जाते दस्य मः, तस्मात् परस्य आकारस्य दीर्घ ऊकारः । **अमीभिरिति**—भिसि त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे अकारस्य बहुवचने झल्येदित्येत्वे एत ईद्बहुवचने इति एकारस्य ईकारः, दस्य मः । **अमुष्मै इति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे सर्वनाम्नः स्मै इति ङेः स्मै, उत्वमत्वे । सस्य आदेश प्रत्यययोरिति षत्वम् । **अमुष्मादिति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे ङसिङ्योरिति ङसेरादेशः, उत्वमत्वे, सस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **अमुष्येति**-त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे ङसः टाङसि इति स्यादेशे उत्वमत्वे, षत्वम् । **अमुयोरिति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे ओसि चेति अकारस्य एत्वे एकारस्य एचोऽयवायाव इति अयादेश अदय् ओस् इति जाते दस्य मः, ततः परस्याकारस्य उः । **अमीषामिति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे च आमि सर्वनाम्न इति आमः सुडागमे बहुवचने झल्येदिति एत्वे च एत ईदिति ईत्वे दस्य मादेशे रूपम् । **अमुष्मिन्निति**—त्यदाद्यत्वे पररूपे ङेः स्मिन्, उत्वमत्वे, सस्य षत्वम् । **अमीषिति**-त्यदाद्यत्वे पररूपे च बहुवचने झल्येदिति एत्वे च एत ईदिति ईत्वं मत्वं षत्वञ्च ।

।। इति मध्यकौमुदीव्याख्यायां हलन्तपुँल्लिङ्गव्याख्या समाप्ता ।।

हिन्दी

३८६. नाभाव कर्तव्य में या नाभाव किये गये हों तो मुभाव असिद्ध नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ हलन्तस्त्रीलिङ्गाः

३८७. नहो धः ८।२।३४।। नहो हस्य धः स्याद् झलि पदान्ते च ।

३८८. नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ६।३।११६।। क्विबन्तेष्वेषु पूर्वस्याणो दीर्घः । उपानत् । उपानहौ । उपानहः । उपानद्भ्याम् । उपानत्सु । क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन हस्य घः । जश्त्वचर्त्वे । उष्णिक् । उष्णिग् । उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम् । द्यौः । दिवौ । दिवः । द्युभ्याम् । गीः । गिरौ । गिरः । एवं पूः । चतस्रः २। चतसृभिः । चतसृभ्यः २। चतसृणाम् । चतसृषु । का । के। काः । सर्वावत् ।

३८९. यः सौ ७।२।११०।। इदमो दस्य यः सौ । इदमो मः । इयम् । त्यदाद्यत्वम् , पररूपत्वम्, टाप् । दश्चेति मः । इमे । इमाः । इमाम् । इमे। इमाः । अनया । हलि लोपः । आभ्याम् । आभिः । अस्यै । अस्याः २। अनयोः२। आसाम् । अस्याम् । आसु ।

मध्यमनोरमा

उपानत् इति—उपपूर्वकात् नह् धातोः क्विपि उपेत्यन्तस्य दीर्घः । नहो धः इति हकारस्य धकारः, तस्य झलां जशोऽन्त इति दकारः, तस्य वाऽवसान इति तकारविकल्पः । **उष्णिक् इति**—उत्पूर्वात् स्निहः, ऋत्विगादिना क्विन्, निपातनात् उदो दकारस्य लोपः । स्निहः सस्य षत्वम्, क्विन् प्रत्ययस्येति हकारस्य कुत्वेन घकारः, जश्त्वेन गकारः, चर्त्वेन कः । **द्यौरिति**—दिव् सु इति स्थिते दिव् औत् इति वस्य औकारः, इकारस्य इको यणचीति यण्, सोर्विसर्गः। **द्युभ्यामिति**—दिव् उत् इति वकारस्य उत्वे यणादेशः । **गीरिति**—गिर् सु इति स्थिते सोर्लोपे वोंरुपधाया इति दीर्घः । एवं पुर्शब्दस्य **पूरिति** । **चतस्र इति**—चतुर् शब्दात् जसि शसि च त्रिचतुरोः स्त्रियामिति चतुर् शब्दस्य चतसृ इत्यादेशः, अचि र ऋतः इति ऋकारस्य रेफ :। **चतसृणाम् इति**—षट्चतुर्भ्यश्चेति आमो नुटि चतस्रादेशे च नामीति दीर्घे प्राप्ते 'न तिसृचतसृ' इति तस्य निषेधः । **केति**—किमः कादेशे टाप्, आबन्तत्वात् ततः परस्य सोर्लोपः । **इयमिति**—इदम् सु इति स्थिते यः साविति दस्य यकारे इयम् इति जाते इदमो म इति मकारे सोर्हल्ङ्यादिना लोपः । **इमे इति**—इदम् औ इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपे अजाद्यत इति टापि सवर्णदीर्घे इदा औ इति जाते दश्चेति दकारस्य मकारे औङ आप इति सूत्रेण औङः श्याम्, आद्गुणः । **इमा इति**—इदम् जस् इति स्थिते त्यदाद्यत्वे टापि इदा इति जाते दश्चेति मकारे प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णदीर्घे सस्य विसर्गः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उष्णिग्भ्याम् इति—उत्स्निह् इत्यस्मात् क्विनि निपातनात् तकारलोपे सस्य षत्वे नस्य णत्वे उष्णिह् इति, भ्यामि क्विन्प्रत्ययस्येति हस्य घकारे घस्य जश्त्वे रूपम् । **के इति**—औङि कादेशे टापि सवर्णदीर्घे श्यादेशे गुणः ।

हिन्दी

३८७. नह् के ह् को ध् हो झल् परे और पदान्त में ।

३८८. क्विबन्त नह्वृत् आदि के परे पूर्व अण् को दीर्घ होता है ।

३८९. इदम् के द् को य् हो सु परे स्त्रीलिङ्ग में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्रक्, स्रग् । स्रजौ । स्रजः । स्रग्भ्याम् । त्यदाद्यत्वे टाप् । स्या । त्ये । त्याः। एवं तद् यद् । वाक्, वाग् । वाचौ । वाचः । वाग्भ्याम्३। अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । अप्तृन्निति दीर्घः । आपः । अपः ।

३९०. अपो भि ७।४।४८।। अपस्तकारो भादौ प्रत्यये । अद्भिः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । दिक्, दिग्, दिशौ । दिशः । दिग्भ्याम् । त्यदादिष्विति दृशेः क्विन्विधानादन्यत्राऽपि कुत्वम् । दृक्, दृग् । दृशौ । दृशः । दृग्भ्याम् ।

मध्यमनोरमा

इमामिति—त्यदाद्यत्वे टापि दश्चेति मत्वे इमा अम् इति जाते अमि पूर्वः । **अनयेति**—इदम् टा इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि अनाप्यक इति इदः अनादेशे अना आ इति स्थिते आङि चाप इति आकारस्य एकारः, तस्य एचोऽयवेत्ययादेशः । **आभ्यामिति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि हलि लोप इति इदो लोपः । एवम् **आभिरिति** । **अस्यै इति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि सर्वनाम्नः स्याड्डिति ङे इत्यस्य स्याडागमः, टापः आकारस्य अनेनैव ह्रस्वः । स्याट आकारस्य ङे इत्यस्य एकारेण सह वृद्धिरेचीति वृद्धिः, हलि लोप इति इदो लोपः। **अस्या इति**—पूर्ववत् इदा ङसि इति स्थिते ङकारस्य इकारस्य च लोपे स्याडागमे पूर्वस्य ह्रस्वत्वे स्या इत्यस्याकारस्य ङसेरकारेण सवर्णदीर्घे हलि लोप इति इदो लोपः । एवं षष्ठ्येकवचनेऽपि । **अनयोरिति**—इदा ओस् इति जाते अनाप्यक इत्यनादेशे आङि चाप इत्याकारस्य एकारः, अयादेशः, सकारस्य विसर्गः । **आसाम् इति**—इदा आम् इति जाते आमि सर्वनाम्नः इति सुट्, हलि लोप इति इदो लोपः । **अस्यामिति**—इदा ङि इति स्थिते ङेराम्नद्याम्नीभ्य इति ङेरामादेशे सर्वनाम्नः स्याड्डिति स्याट्, पूर्वस्य ह्रस्वः, आमा सह दीर्घैकादेशे हलि लोप इति इदो लोपः । **स्रग् इति**—सृज् धातोः ऋत्विगादिना क्विन्, ऋकारात् परोऽमागमश्च, ऋकारस्य यण्, स्रज् सु इति जाते सुलोपः, चोः कुरिति जस्य गः, तस्य वाऽवसान इति पक्षे कः । **स्येति**—त्यद् शब्दस्य त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे अजाद्यतष्टाप्, सवर्णदीर्घः, तदोः सः साविति तस्य सः । **त्ये इति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि सवर्णदीर्घे त्या औ इति स्थिते औङ आपः इति औङः श्याम् आद्गुणः । **त्या इति**—त्या जस् इति स्थिते जलोपे प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णदीर्घः, सस्य विसर्गः । **एवं तदित्यादि । सा, ते, ताः, या ये याः, एषा एते एताः इत्यादि । वागिति**—वाच्शब्दात् सोर्लोपे चोः कुरिति चकारस्य ककारः, झलां जशोऽन्त इति गः, तस्य वाऽवसाने इति पक्षे कः । **दिगिति**—दिश् धातोः ऋत्विगादिना क्विन्, स्वाद्युत्पत्तौ हल्ङ्यादिना सुलोपे क्विन्प्रत्ययस्येति शकारस्य कुत्वेन खकारे तस्य झलां जशोऽन्त इति गकारे वाऽवसाने इति पक्षे कः । **त्यदादिष्विति**– क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति सूत्रे क्विन् प्रत्ययो यस्मात् इति बहुव्रीहिरतद्गुणसंविज्ञानः । तेन यस्माद् धातोः क्विन्

मध्यमनोरमापूरणी

आपः—नित्यबहुवचनान्ताद् अप् शब्दात् जसि अप्तृन्तृजिति उपधादीर्घे आपस् इति जाते सस्य रुत्वविसर्गौ । शसि सर्वनामस्थानपरत्वाभावान्न दीर्घः, अपः इति । **अद्भिरिति**– अप् भिस् इति स्थिते अपो भि इति पकारस्य तकारे तस्य झलां जशोऽन्ते इति जश्त्वेन दकारे सस्य रुत्वविसर्गौ । एवमेव भ्याम्भ्यसादौ ज्ञेयम् ।

हिन्दी

३९०. अप् के प् को तकार होता है भादि प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

त्विट्, त्विड् । त्विषौ । त्विषः । त्विड्भ्याम् । ससजुषोरिति रुत्वम् । सजूः । सजुषौ। सजूर्भ्याम् । आशीः । आशिषौ । आशीर्भ्याम् । असौ । उत्वमत्वे । अमू । अमूः। अमूम् । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्यः । अमुष्याः २। अमुयोः २। अमूषाम् । अमूषु ।

॥ इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

मध्यमनोरमा

प्रत्ययः क्वचिद् विहितस्तस्य धातोः क्विन् प्रत्ययो यत्र नास्ति तत्रापि भवति कुत्वमित्यर्थः सम्पद्यते । अतः त्यदादिषूपपदेषु सत्सु दृश् धातोस्तादृग् इत्यादौ क्विन् विहितः, तस्यैव दृश्धातोस्त्यदाद्युपपदाभावेन दृगित्यादौ क्विन्प्रत्ययाऽभावेऽपि कुत्वं भवतीति वाक्यार्थः । **दृगिति**—दृश् धातोः क्विपि प्रातिपदिकत्वे स्वाद्युत्पत्तौ सोर्लोपे क्विन् प्रत्ययस्येति कुत्वेन खकारे तस्य जश्त्वचर्त्वे । **त्विडिति**—त्विष् शब्दात् सोर्लोपे जश्त्वचर्त्वे। **सजूरिति**—सोर्लोपे सजुष् शब्दस्य षकारस्य ससजुषो रुरिति रुत्वे रेफान्तधातुत्वात् र्वोरुपधाया इति दीर्घः, रोर्विसर्गः। **आशीरिति**—आङ्पूर्वात् शासः क्विप्, शास इदङ् हलोरिति आकारस्य इकारे शासिवसिघसीनामिति सस्य षत्वे आशिष् शब्दः । ततः सोर्हल्ङ्याबिति लोपः, अत्र षत्वस्याऽसिद्धत्वात् ससजुषो रुरिति सस्य रुत्वे र्वोः इति दीर्घः, रस्य विसर्गः । **असाविति** — अदस् सु इति स्थिते अदस औ सुलोपश्चेति सकारस्यौकारे सुलोपे च तदोः सः साविति दकारस्य सकारे वृद्धिरेचीति वृद्धिः । **अमू इति**—अदस् और इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि सवर्णदीर्घे अदा औ इति स्थिते औङ आप इति औङः श्याम् आद् गुणे अदे इति जाते अदसो सेरिति दस्य मः, दात् परस्य एकारस्य ऊकारः । **अमूरिति**—पूर्ववत् अदा अस् इति जाते प्रथमयोरिति पूर्वसवर्णे दस्य मः, दात्परस्याकारस्य ऊः, सस्य विसर्गः । **अमुयेति** — त्यदादीनामः, अतो गुणे, अजाद्यतष्टाप्, अदा आ इति जाते आङि चाप इत्याकारस्य एकारे तस्य अयादेशे अदय् आ इति जाते दस्य मः, दात् परस्याकारस्य ह्रस्व उकारः। **अमूभ्यामिति** —त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टापि अदाभ्यामिति जाते अदसो सेरिति दस्य मः, दात्परस्याकारस्य दीर्घ ऊकारः,। एवम् अमूभिरिति । **अमुष्यै इति**—अदा ए इति स्थिते सर्वनाम्नः स्याडिति ङेः स्याट्, टाप आकारस्य ह्रस्वः, स्याट आकारस्य ङे इत्येकारस्य च वृद्धिरेकादेशः, अदसो सेरिति दात् परस्याकारस्य उकारः दस्य मः, सस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **अमूभ्य इति**- अदा भ्यस् इति स्थिते दस्य मत्वे दात्परस्याकारस्य दीर्घ ऊकारः, सस्य विसर्गः । **अमुष्या इति**- ङसिङसोः अदा अस् इति स्थिते सर्वनाम्नः इति स्याडागमे पूर्वस्य ह्रस्वे सवर्णदीर्घे अदस्यास् इति जाते उत्वमत्वे सस्य षकारे अन्त्यसकारस्य विसर्गः। **अमुयोरिति**—अदा ओस् इति स्थिते आङि चाप इति आकारस्य एकारे अयादेशे अदय् ओस् इति जाते उत्वमत्वे, सस्य विसर्गः।

मध्यमनोरमापूरणी

त्विड्भ्यामिति—त्विष् दीप्तौ इत्यस्मात् क्विप् । कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वेन भ्यामि विभक्तौ त्विष् भ्यामिति, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इति पदसंज्ञायां झलां जशोऽन्ते इति षस्य डः । **सजूर्भ्यामित्यत्र** षस्य ससजुषोरिति रुत्वे र्वोरुपधाया इति उपधादीर्घः । **आशीर्भ्यामिति**—आशिष् भ्यामिति स्थिते षत्वस्यासिद्धत्वात् ससजुषो रुरिति सस्य रुत्वे र्वोरुपधाया दीर्घ इक इति उपधादीर्घे आशीर्भ्यामिति । **अमूम् इति**—अदस् अम् इति स्थिते त्यदादीनाम इति सस्य अत्वे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमा

अमूषामिति—अदा आम् इति स्थिते आमि सर्वनाम्नः इति आमः सुट्, अदसो सेरिति दात्परस्याकारस्य दीर्घ ऊकारे दस्य मः, सस्यादेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **अमुष्यामिति**—अदा ङि इत्यत्र ङेराम्, स्याडागमः, पूर्वस्य ह्रस्वः, स्याट आकारस्य आम आकारस्य च दीर्घ एकादेशः, उत्वमत्वे । **अमूष्विति**—अद्स् सु इति स्थिते त्यदाद्यत्वे अतो गुण इति पररूपत्वे अजाद्यत इति टापि अदा सु इति जाते अदसो सेरिति दात्परस्याकारस्य दीर्घे ऊकारे दस्य मत्वे आदेशप्रत्यययोरिति षः ।

॥ इति हलन्तस्त्रीलिङ्गव्याख्या ॥

मध्यमनोरमापूरणी

अतो गुणे इति पररूपे टापि सवर्ण दीर्घे अदा अम् इति , अमि पूर्वः इति पूर्वरूपे अदसोऽसेर्दादु दो म इति दस्य मकारे आकारस्य ऊकारे च अमूम् इति ।

इति मध्यमनोरमापूरण्यां हलन्तस्त्रीलिङ्गाः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ हलन्तनपुंसकलिङ्गाः

स्वमोर्लुक् । दत्वम् । स्वनडुत् । स्वनडुही । चतुरनडुहोरित्याम् । स्वनड्वांहि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । वाः । वारी । वारि । वारा । वार्भ्याम् । चत्वारि। चतुर्णाम् । किम् । के । कानि । इदम् । इमे । इमानि ।

वा. अन्वादेशे नपुंसके एनद् वक्तव्यः ।। एनत् । एने । एनानि । एनेन । एनयोः २ । व्योम । व्योम्नी, व्योमनी । व्योमानि । ब्रह्म । वा. सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्यः ।। हे ब्रह्म । हे ब्रह्मन् । ब्रह्मणी । ब्रह्माणि । रोऽसुपि । अहः। विभाषा ङिश्योः । अह्नी, अहनी । अहानि ।

मध्यमनोरमा

स्वनडुदिति—शोभना अनड्वाहो यस्मिन् नगरे तत् स्वनडुत् । स्वनडुह् सु इति स्थिते स्वमोर्नपुंसकादिति सोर्लुकि वसुस्रंस्विति हकारस्य दकारः, तस्य वाऽवसान इति पक्षे तकारः । **स्वनडुहीति**—नपुंसकाच्चेति औङः शी । **स्वनड्वांहीति**—स्वनडुह् जस् इति स्थिते जश्शसोः शिरिति जसः शिः, शि सर्वनामस्थानमिति शेः सर्वनामस्थानसंज्ञा, सर्वनामस्थानपरत्वाच्चतुरनडुहोरिति सूत्रेण आम्, स मित्त्वादन्त्यादचः उकारात् परस्य, यणादेशः, नपुंसकस्य झलच इति अन्त्यादचः आकारात् परः नुम्, नुमो नकारस्य नश्चापदान्तस्येत्यनुस्वारः । **वाः इति**—वार् शब्दो रेफान्तः, सोर्लुकि रस्य विसर्गः । **वारी इति-** नपुंसकाच्चेति औङः शी । **वारि इति**—जश्शसोः शिः । **चत्वारि इति**—जश्शसोः शिः, तस्य शि सर्वनामस्थानमिति सर्वनामस्थानसंज्ञकत्वात् तस्मिन् परतः चतुरनडुहोरित्याम्, उकारस्य यण् वकारः । **चतुर्णामिति-** षट्चतुर्भ्यश्चेति नुट् । **किम् इति**—सोर्लुका लुप्तत्वेन प्रत्ययलक्षणाभावात् विभक्तिपरत्वाभावान्न कादेशत्वम् । **कानीति**—कादेशे जश्शसोः शिः, नपुंसकस्य झलचः इति नुमागमः, सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ इति उपधादीर्घः । **इदमिति**—सोर्लुका लुप्ततया विभक्तिपरत्वाऽभावान्न त्यदाद्यत्वम् । **इमे इति**—इदम् औ इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे नपुंसकाच्चेति औङः शी, दश्चेति दस्य मः, आद्गुणः । **इमानीति**—इदम् अस् इति स्थिते त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे दस्य दश्चेति मकारे जश्शसोः शिरिति शौ इम इ इति जाते नपुंसकस्य झलच इति नुमि सर्वनामस्थाने इति उपधादीर्घः । **अन्वादेशे** नपुंसके एनदिति वार्तिकं द्वितीयाटौस्वेन इति सूत्रे पठितमिति द्वितीयायां टौसोश्च परतः इदमः एनत् आदेशः। **एनदिति**—इदम् अम् इति स्थिते एनदादेशे स्वमोर्नपुंसकादिति अमो लुक्, दस्य वाऽवसान इति तकारविकल्पः । **एने इति-** इदम् औ इति स्थिते एनदादेशे तस्य त्यदादीनाम इत्यकारोऽन्तादेशः, अतो गुणे इति पररूपम्, नपुंसकाच्चेति औङः शी, आद्गुणः । **एनानीति**—एनदादेशः, त्यदाद्यत्वं पररूपत्वं, जश्शसोः शिः, एन इ इति जाते नपुंसकस्य झलच इति नुमागमे सर्वनामस्थानं इति उपधादीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

के इति–किम् औ इति स्थिते किमः कः इति कादेशे नपुंसकाच्चेति औङः शी, क ई इति जाते भत्वात् अल्लोपे प्राप्ते औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः इति निषेधे गुणे च कृते के इति।

हिन्दी

वा. अन्वादेश में नपुंसक में इदम् शब्द को एनत् आदेश होता है ।

वा. सम्बुद्धि परे नपुंसक शब्दों के न का लोप विकल्प से होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३९१. अहन् ८।२।६८।। अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि । दण्डिनी । दण्डीनि ।

सुपथि । टिलोपः । सुपथी । सुपन्थानि । ऊर्क्, ऊर्ग् । ऊर्जी । ऊर्न्जि । नरजानां संयोगः । त्यद् । त्ये । त्यानि । तत् । ते । तानि । यत् । ये । यानि। एतत् । एते । एतानि । अवङ् स्फोटायनस्येत्यवङ् ।

गवाक्शब्दस्य रूपाणि क्लीबेऽर्चागतिभेदतः ।
असन्ध्यवङ्पूर्वरूपैर्नवाधिकशतं मतम् ॥१॥
स्वम्सुप्सु नव षड् भादौ षट्के स्युस्त्रीणि जश्शसोः ।
चत्वारि शेषे दशके रूपाणीति विभावय ॥२॥

मध्यमनोरमा

एनेनेति—एनदादेशे त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे टाङसीति इनादेशः, आद्‌गुणः । **एनयोरिति**—त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे ओसि चेति अकारस्य एकारे अयादेशः। **ब्रह्मणीति**—नपुंसकाच्चेति औङः शी, अट्कुप्वाङिति णत्वम् । ब्रह्माणीत्यत्र सर्वनामस्थान इति दीर्घः । **अहरिति**—अहन् सु इति स्थिते स्वमोरिति सोर्लुक्, सोर्लुका लुप्तत्वात् असुपि अहनो नकारस्य रेफः, तस्य विसर्गः। **अह्नी, अहनी इति**-औङः शी, विभाषा ङिश्योरित्यकारलोपः । **अहानीत्यत्र** जश्शसोः शिः, सर्वनामस्थान इति दीर्घः । **अहोभ्यामिति**—भ्यामि परतः स्वादिष्वसर्वनामस्थान इति पदत्वात् अहनो नकारस्य रुः, तस्य हशि चेत्युत्वम्, आद् गुणः । **दण्डि इति**—स्वमोरिति सुलुकि नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपः। **दण्डीनि इति**—जश्शसोः शिः, सर्वनामस्थान इति दीर्घः । **सुपथि इति**—सुपथिन् शब्दात् स्वमोर्लुकि नलोपः । **सुपथी इति**—सुपथिन् औ इति स्थिते औङः शी, तस्मिन् परतो यचि भमिति पूर्वस्य भसंज्ञायां भस्य टेर्लोप इति पथ्यादेर्भसंज्ञकस्य टिलोपविधानात् इनित्यस्य लोपः । **सुपन्थानीति**—जश्शसोः शौ सुपथिन् इ इति स्थिते शेः सर्वनामस्थानत्वात् तस्मिन् परतः इतोऽत् सर्वनामस्थाने इति इकारस्य अकारे थो न्थः इति न्थादेशे सुपन्थन् इति जाते सर्वनाम स्थान इति अकारस्य दीर्घः । **ऊर्क् इति**—ऊर्ज् शब्दात् स्वमोर्लुक्, जकारस्य चोः कुरिति गकारः, तस्य वाऽवसान इति पक्षे कः । **ऊर्न्जीति**—ऊर्ज् शब्दात् जश्शसोः शिः, नपुंसकस्य झलच इति ऊकारात् परः नुम्, तस्य रेफपरत्वेन झल्परत्वाभावात् नश्चापदान्तस्येति नानुस्वारः । अत एवाह-नरजानां संयोग इति । **तदिति**—तद् शब्दात् सोर्लुक् । विभक्तिपरत्वाभावान्न त्यदाद्यत्वम् । **ते इति**—नपुंसकाच्चेति औङः शी, त्यदाद्यत्वादि, आद्‌गुणः । **तानीति**—जश्शसोः शौ त्यदाद्यत्वे पररूपत्वे तद् इ इति जाते

मध्यमनोरमापूरणी

व्योम्नीति-व्योमन् औ इति स्थिते नपुंसकाच्चेति श्यादेशे भसंज्ञायां विभाषा ङिश्योरिति विकल्पेन अनोऽकारस्य लोपे व्योम्नी इति पक्षे व्योमनी इति । **हे ब्रह्म इति**—सम्बोधने ब्रह्मन् सु इति स्थिते सोर्लुकि नलोपः प्रातिपदिकेति नलोपं न ङिसम्बुद्ध्योरिति बाधते, तमपि प्रबाध्य सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा वाच्य इति नलोपे हे ब्रह्म इति । विकल्पे हे **ब्रह्मन् इति** ।

हिन्दी

३९१. अहन् के न् को रु होता है पदान्त में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गवाक्, गवाग् । गोची । गवाञ्चि । पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाग्भ्याम् । शकृत्। शकृती । शकृन्ति । शकृद्भ्याम् । ददत् । ददती ।

३९२. वा नपुंसकस्य ७।१।७९।। अभ्यस्तात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य क्लीबस्य नुम् वा स्यात् सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति । तुदत् ।

३९३. आच्छीनद्योर्नुम् ७।१।८०।। अवर्णान्तादङ्गात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम्वा शीनद्योः । तुदन्ती । तुदती । तुदन्ति । भात् । भान्ती, भाती । भान्ति। पचत् ।

मध्यमनोरमा

नपुंसकस्य झलच इति नुमि सर्वनामस्थान इति दीर्घः । एवं यद् एतद् इत्यादि । **गवाक् इति**- गामञ्चतीति विग्रहे ऋत्विगादिना क्विन्, अनिदितामिति अञ्चेर्नलोपे गो अच् इति जाते अवङ् स्फोटायनस्येत्यनङ्, सवर्णदीर्घः, गवाच् इति जाते चकारस्य चोः कुरिति कुत्वम्, सोर्लुका लुप्तत्वेन सर्वनामस्थानपरत्वाभावादुगिदचामिति नुम् न । **गोचीति**—नपुंसकाच्चेति औङः शी, तस्मिन् परतो यचि भमिति भसंज्ञा, अनिदितामिति नलोपे अच इति अकार लोपः, अच्परत्वाभावादवङ् न । **गवाञ्चीति**— गो अच् अस् इति स्थिते जश्शसोः शिः, शेः सर्वनामस्थानसंज्ञत्वात् तस्मिन् परतो न भसंज्ञा, भसंज्ञायामसर्वनामस्थान इत्युक्तत्वात्, अतः अच इत्यकारलोपो न । किन्तु नपुंसकस्य झलच इत्यवर्णात् परो नुम्, गोरवङ्ङादेशः नुमो नकारस्यानुस्वारपरसवर्णौ । **गोचा इति**—अच इत्यकारलोपः । **गवाग्भ्यामिति**—चोः कुः । **शकृन्तीति**- शेः सर्वनामस्थानत्वात् तस्मिन् परतो नपुंसकस्य झलच इति नुम् । **शकृद्भ्याम् इति**—झलां जशोऽन्त इति दकारः । **ददन्तीति**—ददत् इति शतृप्रत्ययान्तम्, उभे अभ्यस्तमिति दद् इति अभ्यस्तं, तस्मात् परः शता शतृप्रत्ययः अत् इति, तस्य नुमागमः, मित्त्वादकारात् परः, तस्यानुस्वारपरसवर्णौ । नुमो वैकल्पिकत्वात् नुमभावे ददति । **तुदन्तीति**—तुद् धातोः शतृप्रत्ययः, तुदादिभ्यः शः, तुद् अ अत् इति जाते अतो गुणे इति पररूपे तुदत् इति सिद्धम्, तस्मात् औङः शी, आच्छीनद्योरिति नुम् शप्रत्ययाकारस्य, शप्रत्ययाकारस्य एकादेशे जाते तस्य एकादेशस्य पूर्वान्तत्वेन ग्रहणात् तुद इत्यवर्णान्तमङ्गम्, ततः शतुरवयवस्तकारः तदन्तं क्लीबं तुदत् इति, तस्य नुम् मित्त्वादन्त्यादचः परः । नुमभावे तुदती इति । **तुदन्ति इति**—जश्शसोः शौ तुदत् इ इति जाते नपुंसकस्य झलच इति तस्य नुमागमः । **भात् इति**—भा दीप्तौ, तस्मात् शतृप्रत्ययः, अदादित्वात् शपो लुक्, भा अत् इत्यत्र सवर्णदीर्घे भात् इति सिद्ध, ततः सोर्लुक् । **भान्तीत्यादि**- औङः शी इत्यादेशे अवर्णान्तात् भा इत्यस्मादङ्गाच्छतुरवयवस्तकारस्तदन्तस्य नुम् विकल्पः । **भान्ति इति**—नपुंसकस्य झलच इति नुम् । **पचन्तीति**—पच् धातोः शतृप्रत्यये

मध्यमनोरमापूरणी

गवाक्शब्दस्येति—क्लीबे नपुंसके गत्यर्थकस्य अञ्चुधातोरनिदितागिति नलोपो भवति, अर्चायां तु नाञ्चेः पूजायामिति नलोपनिषेधो भवति । एवञ्चार्चागतिभेदात् गवाक् शब्दस्य असन्धिः- प्रकृतिभावः, अवङ्, पूर्वरूपम् इत्यादिरूपभेदैः नवाधिकशतं रूपाणि भवन्ति । तत्र सु अम्

हिन्दी

३९२. अभ्यस्तसंज्ञक से परे शतृ प्रत्यय का जो अवयव तदन्त नपुंसक को नुम् होता है सर्वनामस्थान परे रहते ।

३९३. अवर्णान्त अङ्ग से परे जो शतृ का अवयव तदन्त को नुम् हो विकल्प से शी और नदीसंज्ञक परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३९४. शप्श्यनोर्नित्यम् ७।१।८१॥ शप्श्यनोरात् परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् शीनद्योः । पचन्ती । दीव्यत् । दीव्यन्ती । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः। नुम्विसर्जनीयेति षः । धनूंषि । धनुर्भ्याम् । एवं चक्षुर्हविरादयः । पयः । पयसी। पयांसि । पयोभ्याम् । सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि । अदः । विभक्तिकार्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषं पुम्वत् ।

॥ इति हलन्ताः नपुंसकलिङ्गाः ॥

मध्यमनोरमा

शपि अतो गुणे पचत् इति रूपम्, तस्मादौङः श्यां पचत् ई इति स्थिते अन्तादिवच्चेति शपोऽकारस्य शत्रकारेण सममेकादेशस्य पूर्वान्तत्वेन ग्रहणात् शपोऽकारात् परः शतुरवयवस्तकारस्तदन्तस्य पचत् इत्यस्य नुम्, मित्त्वादन्त्यादचः परः । **पचन्तीति**—जसः शौ नपुंसकस्य झलच इति नुम् । **दीव्यन्तीति**—अत्र श्यनोऽवर्णात् परः शतुरवयवस्तकारस्तदन्तस्य दीव्यत् इत्यस्य नुम् । **दीव्यन्ति इति**—नपुंसकस्य झलच इति नुम् । **धनुरिति**—धनेरुस्-प्रत्ययः, प्रत्ययावयवत्वात् सस्य षत्वे धनुष् शब्दः, षत्वस्यासिद्धतया सस्य रुः, तस्य विसर्गः। **धनुषीति**– औङः शी । **धनूंषि इति**—जशशसोः शिः, नपुंसकस्य झलच इति नुमागमः । षत्व-स्याऽसिद्धतया नकारसकारसंयोगेन सान्तसंयोगात् पूर्वस्य उकारस्य सान्तमहत इति दीर्घः । **धनुर्भ्याम् इति**—षत्वस्यासिद्धतया ससजुषोरिति रुत्वम् । **पयांसीति**—नपुंसकस्य झलच इति नुमागमः, सान्तमहत इति दीर्घः । **सुपुम् इति**—सुपुंस् शब्दात् सोर्लुकि संयोगान्तस्येति सकार-लोपः । **सुपुंसीति**—नपुंसकाच्चेति औङः शी । **सुपुमांसि इति**—जश्शसोः शौ तस्य सर्वनाम-स्थानसंज्ञायाम्, पुंसोऽसुङ् इति सकारस्यासुङ्, नपुंसकस्य झलच इति नुमागमः, तेन नकार-सकारसंयोगे सान्तमहत इति दीर्घः । **अदः इति**—अदस्-शब्दात् स्वमोर्नपुंसकादिति सोर्लुकि सस्य रुत्वं, विसर्गः, विभक्तिपरत्वाभावात् त्यदाद्यत्वन्न । **अमू इति**—अदस् औ इति स्थिते त्यदादीनाम इति अकारोऽन्तादेशः, नपुंसकाच्चेत्यौङः शी, आद् गुणः इत्यकारेकारयोरेकारः, अदे इति जाते अदसो सेरिति ऊत्वमत्वे । **अमूनि इति**—अदसो जश्शसोः शौ त्यदाद्यत्व-पररूपत्वे, नपुंसकस्य झलच इति नुमि सर्वनामस्थान इति दीर्घे अदान् इ इति जाते दस्य मः, तस्मात् परस्याकारस्य दीर्घ ऊकारः ।

॥ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गव्याख्या । इति षट् लिङ्गानि ॥

मध्यमनोरमापूरणी

सुप् विभक्तौ प्रत्येकं नवरूपाणि, भादौ षट्के भिस्भ्याम्भ्यस्भेदात् भादिः प्रत्ययाः षड्, तस्मिन् भादौ प्रत्येकं षड्रूपाणि, जसि शसि च प्रत्येकं त्रीणि रूपाणि, शेषे दशके औ इति विभक्तिद्वये टायां ङयि ङसिङसोः ओसि आमि ङौ च प्रत्येकं चत्वारि रूपाणि भवन्ति इति कारिकाशयः । **तुदत् इति**—शतृप्रत्ययान्तः तुदत् इति, तस्मात् सौ स्वमोरिति सोर्लुकि तस्य जश्त्वं, पुनः दस्य चर्त्वं तकार इति ।

॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां षड्लिङ्गानि ॥

हिन्दी

३९४. शप् और श्यन् के अवर्ण से परे जो शतृप्रत्यय का अवयव तदन्त को नुम् हो, शी और नदी परे रहते ।

॥ इति हलन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरण ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाव्ययप्रकरणम्

३९५. स्वरादिनिपातमव्ययम् १।१।३७।। स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः स्युः। १ स्वर् । २ अन्तर् । ३ प्रातर् । ४ पुनर् । ५ सनुतर् । ६ उच्चैस् । ७ नीचैस्। ८ शनैस् । ९ ऋधक् । १० ऋते । ११ युगपत् । १२ आरात् । १३ पृथक्। १४ ह्यस् । १५ श्वस् । १६ दिवा । १७ रात्रौ । १८ सायम् । १९ चिरम्। २० मनाक् । २१ ईषत् । २२ जोषम् । २३ तूष्णीम् । २४ बहिस् । २५ अवस्। २६ अधस् । २७ समया । २८ निकषा । २९ स्वयम् । ३० वृथा । ३१ नक्तम्। ३२. न । ३३ नञ् । ३४ हेतौ । ३५ इद्धा । ३६ अद्धा । ३७ सामि । ३८ वत् । ब्राह्मणवत् । क्षत्रियवत् । ३९ सना । ४० सनत् । ४१ सनात् । उपधा। ४२ तिरस् । ४३ अन्तरा । ४४ अन्तरेण । ४५ ज्योक् । ४६ कम् । ४७ शम् । ४८ सहसा । ४९ विना । ५० नाना । ५१ स्वस्ति । ५२ स्वधा । ५३ अलम् । ५४ वषट् । ५५ श्रौषट् । ५६ वौषट् । ५७ अन्यत् । ५८ अस्ति । ५९ उपांशु । ६० क्षमा । ६१ विहायसा । ६२ दोषा ६३ मृषा । ६४ मिथ्या। ६५ मुधा । ६६ पुरा । ६७ मिथो । ६८ मिथस् । ६९ प्रायस् । ७० मुहुस् । ७१ प्रबाहुकम् । ७२ प्रवाहिका । ७३ आर्यहलम् । ७४ अभीक्षणम् । ७५ साकम्। ७६ सार्धम् । ७७ नमस् । ७८ हिरुक् ७९ धिक् । ८० अथ ८१ अम् । ८२ आम् । ८३ प्रताम् । ८४ प्रशान् । ८५ प्रतान् । ८६ मा । ८७ माङ् (आकृतिगणोऽयम् ।) ८८ च । ८९ वा । ९० ह ।

मध्यमनोरमा

स्वरादिनिपातमव्ययम्—स्वरादयो निपाताश्चेति समाहारद्वन्द्वः । **स्वरिति**—स्वर्गे परलोके च। **अन्तरिति**—मध्ये । **प्रातर्**—प्रत्यूषे । **पुनर्**—अप्रथमे विशेषे च । **सनुतर्** अन्तर्धाने । स्वराद्याः पञ्च रेफान्ताः । **उच्चैस्**—महति । **नीचैस्**—अधः । **शनैस्**- क्रियामान्द्ये । **ऋधक्**—सत्ये वियोगशीघ्रसामीप्यंलाघवेष्वित्यन्ये । **ऋते**—वर्जने । युगपदित्येककाले । आराद् दूरसमीपयोः। पृथग् भिन्ने । **ह्यस्** अतीतेऽह्नि । **श्वो**ऽनागतेऽह्नि । **दिवा**-दिवसे । **रात्रौ** इति निशि । **सायमिति** निशामुखे । **चिरमिति** बहुकाले । **मनाक् ईषत्** इमौ अल्पे । **जोषं** सुखे मौने च । **तूष्णीमिति** मौने । **बहिस् अवस्** इमौ बाह्ये । **समयेति** समीपे मध्ये च । **निकषेत्यन्तिके** । **स्वयमिति** आत्मना इत्यर्थे । **वृथेति** -व्यर्थे । **नक्तमिति**- रात्रौ । **नञ्**- निषेधे । **हेताविति**- निमित्ते । **इद्धेति** प्राकाश्ये । **अद्धेति** स्फुटावधारणयोः । तत्त्वातिशययोरित्यन्ये । **सामि** इत्यर्धजुगुप्सितयोः । **वत्** इति प्रत्ययः, तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः इति विहितस्तदन्ताः ग्राह्याः । अस्योदाहरणम्-ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत् इति । **सना सनत् सनात्** एते नित्ये । **उपधेति**- भेदे । **तिरस्**- अन्तर्धे, तिर्यगर्थे परिभवे च । **अन्तरेति** मध्ये विनार्थे च । **अन्तरेणेति** वर्जने । **ज़्योगिति** कालभूयस्त्वे प्रश्ने शीघ्रार्थे सम्प्रत्यर्थे च । कमिति वारिमूर्धनिन्दासुखेषु। **शं** सुखे । **सहसे** त्याकस्मिकाविमर्शयोः । **विनेति नानेत्यनेकविनार्थयोः** । **स्वस्तीति** मङ्गले । **स्वधा**- पितृदाने । अलं भूषणपर्याप्तिवारणशक्तिनिषेधेषु । **वषट् वौषट् श्रौषट्** एते हविर्दाने।

हिन्दी

३९५. स्वरादि और निपात को अव्यय संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९१ अह । ९२ एव । ९३ एवम् । ९४ नूनम् । ९५ शश्वत् । ९६ युगपत्। ९७ भूयस् । ९८ कूपत् । ९९ सूपत् । १०० कुवित् । १०१ नेत् । १०२ चेत् । १०३ चण । १०४ यत्र । १०५ कच्चित् । १०६ नह । १०७ हन्त । १०८ माकिः १०९ माकिम् । ११० नकिः । १११ नकिम् । ११२ माङ् । ११३ नञ् । ११४ यावत् । ११५ तावत् ११६ त्वै । ११७ न्वै । ११८ द्वै । ११९ रै ।

मध्यमनोरमा

अन्यदित्यन्यार्थे । **अस्तीति** सत्तायाम् । **उपांशु** इत्यप्रकाशोच्चारणरहस्ययोः । **क्षमेति** क्षान्तौ । **विहायसेति** वियदर्थे । **दोषेति** रात्रौ । **मृषामिथ्येत्येतौ** वितथे । **मुधेति** व्यर्थे । **पुरेत्यविरते** चिरातीते भविष्यदासन्ने च । **मिथो मिथस्** एतौ रहःसहार्थयोः । **प्रायस्** इति बाहुल्ये । **मुहुस्** इति पुनरर्थे । **प्रबाहुकमिति** समकाले ऊर्ध्वार्थे च । **प्रवाहिकेति** पाठान्तरम् । **आर्यहलमिति** बलात्कारे । शाकटायनस्तु **आर्येति** प्रतिबन्धे **हलम्** इति प्रतिषेधविवादयोरित्याह। **अभीक्ष्णमिति** पौनःपुन्ये । **साकं सार्धम्** एतौ सहार्थे । **नमस्** नतौ । हिरुक् वर्जने । **धिक्** निन्दाभर्त्सनयोः। **अम्** शैघ्र्ये अल्पे च । **आम्** अङ्गीकारे । **आम्** इति प्रत्ययस्यापि ग्रहणम्, तेन पचतितरां कारयामास इत्यादौ आम् प्रत्ययान्तमव्ययम् । **प्रशानिति** समानार्थे । **प्रतानिति विस्तारे** । **मा माङ्** एतौ निषेधाशङ्कयोः । आकृतिगणोऽयं, तेनान्येऽपि ग्राह्याः । तथाहि **कामं** स्वाच्छन्द्ये । प्रकाममित्यतिशये । **भूय** इति पुनरर्थे । **साम्प्रतमिति** न्याय्ये । **परमिति** किन्त्वर्थे। **साक्षात्** प्रत्यक्षे। **साचि** तिर्यगर्थे । **सत्यमित्यर्धाङ्गीकारे** । **मंक्षु आशु एतौ शैघ्र्ये** । **संवत् वर्षे** । **अवश्यं** निश्चये। **सपदि** शैघ्र्ये । **बलवदित्यतिशये** । **प्रादुस् आविस्** इति प्रकाशे । **अनिशं, नित्यं, सदा अजस्रं सततम्** एते सातत्ये । **उषेति** रात्रौ । **रोदसी** द्यावापृथिव्यर्थे । **ओमित्यङ्गीकारे** ब्रह्मणि च । **भूरिति** पृथिव्यां, भुवरिति अन्तरिक्षे । **झटिति झगिति तरसा** इति शैघ्र्ये । **सुष्ठु** प्रशंसायाम्। **दुष्ठु** निकृष्टे । **सु** पूजायाम् । **आ** आश्चर्ये । **कु** इति कुत्सितेषदर्थयोः। **अञ्जसेति** तत्त्वशीघ्रार्थयोः। **मिथु** इति द्वावित्यर्थे । **ताजक्** शैघ्र्ये । चिराय चिररात्राय चिरस्य चिरेण चिरादित्येते चिरार्थकाः। **अस्तमिति** विनाशे । **आनुषक्** आनुपूर्व्ये, **अनुषक्** अनुमाने। **अन्नस्** इति शीघ्रसाम्प्रतिकयोः । **स्थाने** इति युक्ते । **वरमितीषदुत्कर्षे** । **सुदि** शुक्लपक्षे । **वदि** कृष्णपक्षे इत्यादि । चादयोऽसत्त्वे इति निपाातसंज्ञकान् चादीनाह–चेति समुच्चयादिषु । वा स्याद् विकल्पोपमयोरिवार्थेऽपि समुच्चये ।**हेति** प्रसिद्धौ । **अह** इति पूजायाम् । **एवे** त्यवधारणेऽनवक्लृप्तौ च । **एव** मित्युक्तपरामर्शे । **नूनमिति** निश्चये तर्के च । **शश्वदिति** पौनः पुन्ये नित्ये सत्ये च । **युगपदित्येककाले**। **भूयस्** इति पुनरर्थे आधिक्ये च । **कूपदिति** प्रश्ने प्रशंसायाञ्च । **कुविदिति** भूर्य्यर्थे प्रशंसायाञ्च। **नेदिति** शङ्कायाम् प्रतिषेधविचारसमुच्चयेषु। **चेदिति** यद्यर्थे । **चण** अयं चेदर्थे णित्, समुच्चये चकारस्तु न णित् इति विशेषः । कच्चिदिति इष्टप्रश्ने । **यत्रेति** अनवक्लृप्त्यमर्षगर्हाश्चर्येषु । अस्योदाहरणम्– नावकल्पयामि न मर्षये, गर्हे आश्चर्ये वा यत्र भवान् वृषलं याजयेत् । **नहेति** प्रत्यारम्भे । **हन्तेति** हर्षे विषादे अनुकम्पायां वाक्यारम्भे च । **माकिः माकिं नकिरिति** त्रयोऽपि वर्जने । **माङ्नञौ** स्वरादिषु पठितौ, चादिष्वपि। **यावत्तावदेतौ** साकल्यावधिमानावधारणेषु ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रताम् इति ग्लानौ ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२० श्रौषट् । १२१ वौषट् । १२२ स्वाहा । १२३ स्वधा । १२४ वषट् । १२५ तुम्। १२६ तथाहि । १२७ खलु । १२८ किल । १२९ अथो । १३० अथ । १३१ सुष्ठु । १३२ स्म । १३३ आदह । (ग.) उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च । १३४ अवदत्तम् । १३५ अहंयुः । १३६ अस्तिक्षीरा । १३७ अ । १३८ आ । १३९ इ । १४० ई । १४१ उ । १४२ ऊ । १४३ ए । १४४ ऐ । १४५ ओ । १४६ औ । १४७ पशु । १४८ शुकम्। १४९ यथा कथा च । १५० पाट् । १५१ प्याट् । १५२ अङ्ग । १५३ है । १५४ हे । १५५ भोः । १५६ अये । १५७ द्य । १५८ विषु । १५९ एकपदे । १६० युत् । १६१ आतः । चादिरप्याकृतिगणः ।

मध्यमनोरमा

अस्योदाहरणम्–साकल्ये–यावत् कार्यं तावत् कृतम् । **अवधौ–** यावत् गन्तव्यं तावत् तिष्ठ। माने– यावद् दत्तं तावद् भुक्तम् । **अवधारणे–** यावदमत्रं ब्राह्मणानामामन्त्रयस्व ।**त्वै** विशेष-वितर्कयोः, **द्वै** वितर्के । **न्वै** इति पाठान्तरम् । **रै** दाने अनादरे च । **रै** करोति ददातीत्यर्थः। त्वं रै किं करिष्यसि । **श्रौषट् वौषट्** एतौ हविर्दाने । **स्वाहा** देवताभ्यो दाने, **स्वधेति** पितृभ्यः। **तुमिति** तुङ्कारे । **गुरुं** तुङ्कृत्य हुङ्कृत्य । **तथाहीति** निदर्शने । **खलु** इति निषेधे वाक्यालङ्कारे निश्चये च । **किलेति** वार्तायामलीके च । **अथेति**— मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्याधिकार प्रतिज्ञासमुच्च-येषु । **सुष्ठु** प्रशंसायाम् । अयं स्वरादावप्याकृतिगणत्वात् संगृहीतः स्वरभेदार्थः । **स्मेत्यतीते** पादपूरणे च । **आदह**हेत्युपक्रमहिंसाकुत्सनेषु । **उपसर्गविभक्तिस्वर** प्रतिरूपकाश्चेति गणसूत्रम्। उपसर्गसमानाकाराः विभक्त्यन्तसमानाकाराश्च चादि गणे बोध्या इत्यर्थः । **अवदत्तमिति**-अत्र अवेत्युपसर्गसमानाकारमव्ययम् । न तु प्रादिषूपसर्गेषु पठितः। तेन अच उपसर्गात्तो न भवति। **अहमिति** सुबन्तप्रतिरूपकम् । 'एते न गेये' के न विनीतौ', वामित्यव्ययम् । **युवामित्यर्थे** वाम् इत्यव्ययम् । अस्तीति तिङन्तप्रतिरूपकम् । एवमस्मीत्यहमर्थे । त्वामस्मि वच्मि इति। **आहेत्युवाचेत्यर्थे** । **आसेति** बभूवेत्यर्थे इत्यादि । **अ** इति सम्बोधअधिक्षेपे निषेधे च । **आ** इति वाक्यस्मरणयोः । **इ** इति सम्बोधन जुगुप्साविस्मयेषु । ई उ ऊ ए ऐ ओ औ सम्बोधने। **पशु** सम्यगर्थे । **शुकं** शैघ्र्ये । **यथाकथा** चेत्यनादरे । **पाट् प्याट् अङ्ग है हे भोः अये** एते सम्बोधने। **द्य** इति हिंसाप्रातिलोम्यपादपूरणेषु । **विषु** नानार्थे । **एकपदे** इत्येकस्मादित्यर्थे । **युत्** कुत्सायाम्। **आत** इति इतोऽपीत्यर्थे । **आकृतिगण** इति, तेनान्येऽपि ज्ञेयाः । तद् यथा–**यत्तदिति** हेतौ । **आहोस्वित्** विकल्पे । **सीम** सर्वतो भावे । **कं** पादपूरणे । **तुकमतिशये** । **अनुकं** वितर्के। **शंवद्** अन्तःकरणे आभिमुख्ये च । **व** पादपूरणे इवार्थे च । **दिष्ट्येत्यानन्दे** च । **चटु चाटु** प्रिये वाक्ये । **हुमिति** भर्त्सने । **इवेति** सादृश्ये । **अद्यत्वे** इतीदानीमित्यर्थे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३९६. तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १।१।३८॥ यस्मात् सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययं स्यात् । परिगणनं कर्तव्यम्– तसिलादयः प्राक् पाशपः । शस् प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । अम् । आम् । कृत्वोऽर्थाः । तसिवती । नानाञाविति । एतदन्तमव्ययम् । अत इत्यादि ।

३९७. कृन्मेजन्तः १।१।३९॥ कृद् यो मान्त एजन्तश्च तदन्तमव्ययम् । स्मारं स्मारम् । जीवसे । पिबध्यै ।

३९८. क्त्वातोसुन्कसुनः १।१।४०॥ एतदन्तमव्ययम् । कृत्वा । उदेतोः । विसृपः ।

मध्यमनोरमा

तद्धितश्च—यस्मात् तद्धितान्तात् सर्वा विभक्तिः नोत्पद्यते किन्तु एकवचनमेव स तद्धितान्तोऽव्ययसंज्ञकः । यतः ततः इत्युदाहरणम् । अत्र संख्याकारकाऽभावात् द्विवचनादीनामभावः । एकवचनमुत्सर्गतः करिष्यते इति भाष्यकारवचनादेकवचनं तु भवत्येव । एकवचनस्यैकत्वाऽभावेऽपि भाष्यकृताऽनुशासनात् तत्रापि प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमाया एव एकवचनम् । कर्मत्वादिकारकाभावान्न द्वितीयादीनि । नन्वेवं पचतिरूपं पचतिकल्पम् इत्यादावपि प्रथमैकवचनमेवोत्पद्यते इति पचतिकल्पादिशब्दानां तद्धितश्चासर्वेति अव्ययसंज्ञा स्यादित्याशङ्क्याह-परिगणनमिति । तथा च परिगणितानामेव तद्धितानां मध्ये यस्मात् तद्धितान्तात् सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते तस्यैव अव्ययत्वम् । तेन पचतिकल्पादीनां परिगणित तद्धितान्तत्वाऽभावात् नाव्ययत्वमिति बोध्यम् । **स्मारं स्मार मिति**-मान्तो णमुल् प्रत्ययः, तदन्तं स्मारं स्मारमिति । **जीवसे** इति छान्दसः, असे प्रत्ययः एजन्तः कृत् । **पिबध्यै इति** छान्दस एवशध्यै प्रत्ययः, एजन्तः कृत् । **क्त्वातो-** क्त्वाप्रत्ययान्तं तोसुन्प्रत्ययान्तं कसुन्प्रत्ययान्तं च अव्ययम् इति । **तत्र शालायाम्**—शालाशब्दस्य स्त्रीलिङ्गस्य विशेषणीभूतात् तत्र शब्दात् अजाद्यत इति टाप्, तस्य लुक् ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृत्वेति—कृ धातोः क्त्वाप्रत्यये कृत्वा इति, तस्य कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा क्त्वातोसुनिति कृत्वा इत्यस्य अव्ययसंज्ञायां कृतायां प्रातिपदिकत्वात् जातायाः स्वादिविभक्तेः अव्ययादाप्सुप इति लुग् भवति । **उदेतोरिति**—उत्पूर्वादिणः तोसुनि प्रत्यये इणः सार्वधातुकेति गुणे उदेतोस् इति । तस्य क्त्वातोसुनिति अव्ययसंज्ञात्वात् ततः परस्य स्वादिविभक्तेः अव्ययादाप्सुपः इति लुकि सस्य रुत्वविसर्गौ । **विसृपः इति**— विपूर्वकसृप्धातोः सृपितृदोः कसुन्निति कसुन्, ककारोकारनकाराः इतः । विसृपस् इति, तस्य अव्ययसंज्ञा, अतः तस्माज्जातस्य सुपो लुकि सस्य रुत्वविसर्गौ । **अव्ययीभावश्चेति–** समासोऽव्ययसंज्ञकः ।

हिन्दी

३९६. जिस तद्धितान्त से सभी विभक्तियाँ उत्पन्न नहीं होती हैं अर्थात् केवल एकवचन ही आता है उस तद्धितान्त को अव्यय संज्ञा होती है ।

३९७. मान्त और एजन्त कृत् प्रत्ययान्त को अव्यय संज्ञा होती है ।

३९८. क्त्वान्त तोसुनन्त और कसुन् प्रत्ययान्त को अव्यसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३९९. अव्ययीभावश्च १।१।४१।। अधिहरि ।

४००. अव्ययादाप्सुपः २।४।८२।। अव्ययाद् विहितस्यापः सुपश्च लुक् । तत्र शालायाम् । विहितविशेषणान्नेह-अत्युच्चैसौ । अव्ययसंज्ञायां यद्यपि तदन्तविधिरस्ति, तथापि न गौणे । आब्ग्रहणं व्यर्थम्, अव्ययस्यालिङ्गत्वात् । तथा च-का.

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ।।१।।
वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ।।२।।

वगाहः । अवगाहः । पिधानम्- अपिधानम् । इत्यव्ययानि ।

।। इति सुबन्तं समाप्तम् ।।

मध्यमनोरमा

अत्युच्चैसाविति-अत्राव्ययादुच्चैः शब्दाद् विभक्तिर्न विहिता, किन्तु अत्युच्चैः शब्दात् । अत्युच्चैरिति नाव्ययम्, अतोऽत्युच्चैः शब्दाद् विहितस्य सुपो न लुक् । अव्ययात् परस्य सुपो लुगित्युक्तौ तु **अत्युच्चैसावित्यत्र**— अत्युच्चैसावित्यत्र अव्ययाद् उच्चैः शब्दात् परस्तु सुब् भवत्येवेति तस्य लुक् । तदन्तविधिना उच्चैश्शब्दान्तस्य अत्युच्चैश्शब्दस्यापि अव्ययसंज्ञाऽस्त्येव, तथा च अव्ययाद् विहित एव सुप् इति विहितविशेषणे सत्यपि अत्युच्चैः शब्दात् सुपो लुक् स्यादेवेत्याशङ्क्य समाधत्ते, **न गौणे इति** । अत्युच्चैरित्युच्चैः शब्दस्य गौणत्वात् न तदन्तग्रहणम् । अव्ययमिति महासंज्ञाकरणेन यन्न व्येति स्वार्थान्नच्यवते तदव्ययमित्यन्वर्थसंज्ञाबलात् । यत्र उच्चैः प्रभृतयः स्वार्थं प्राधान्येनाभिदधते तत्रैव तदन्तस्याव्ययत्वम् । यथा परमोच्चैरिति । यत्र तु अन्यगुणत्वेन स्वार्थं वदन्ति यथा अत्युच्चैसावित्यादौ, तत्र तदन्तस्याव्ययसंज्ञा न भवतीति भावः । **आब्ग्रहणमिति**— स्त्रीलिङ्गविशेषणेभ्यः टाबादीति पक्षं दूषयित्वा विशिष्टवाचकटाबादीति पक्षस्य स्थापितत्वादव्ययानां स्त्रीत्वविष्टबोधकत्वाभावात् टापः प्रसक्तिरेव नास्ति, तल्लोपविधानं र्थमेवेत्यर्थः । अव्यययालिङ्गत्वे **प्रमाणमाह-सदृशमिति**-त्रिषु लिङ्गेषु तुल्यं, किमपि लिङ्गमव्ययस्य नास्तीत्यर्थः । विभक्तिष्वित्यनेन कारकाभाव उक्तः । वचनेष्वित्यनेन संख्याभाव उक्तः । **वष्टीति**- भागुरि नामाचार्यः अवाप्योरुपसर्गयोः अल्लोपं वष्टि इच्छतीत्यर्थः । हलन्तानामापञ्च इच्छति अस्योदाहरणम् वाचेत्यादि । अल्लोपस्योदाहरणम् वगाह इत्यादि । इत्यव्ययानि ।

।। इति मध्यकौमुदीव्याख्यायां मध्यमनोरमायां सुबन्तं समाप्तम् ।।

हिन्दी

३९९. अव्ययीभाव समास को अव्ययसंज्ञा होती है ।

४००. अव्ययसंज्ञक से विहित आप् और सुप् का लुक् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथभ्वादिप्रकरणम्

लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् । एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

४०१. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३।४।६९।। लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

४०२. वर्तमाने लट् ३।२।१२३।। वर्त्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्वम् । भू सत्तायाम् । कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते। लस्येत्यधिकारः ।

४०३. तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिब्वस्-मस्-तातांझथासाथांध्वमिड्-वहिमहिङ् ३।४।७८।। एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ।

४०४. लः परस्मैपदम् १।४।९९।। लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

४०५. तङानावात्मनेपदम् १।४।१००।। तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत् संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञापवादः ।

मध्यमनोरमा

ओं नमः गणाधिपतये नमः ।

गौरीगिरीशयोरङ्के पङ्केन कृतमेखलः ।
विघ्नं विनिघ्नन् भजतामवतात्तु गजाननः ।।

पञ्चमो लकारेति—लेट्लकार इत्यर्थः । छन्दोमात्रगोचरः- वेदमात्रविषयः । छन्दस्येवेत्यनुशासनादित्यर्थः । **लः कर्मणि च**—चकारेण कर्तरि कृदित्यतः कर्तरीत्यनुकृष्यते। अकर्मकाणां कर्माऽभावात्, अर्थात् सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः कर्मणि कर्तरि लकाराः । **भावे चेति**-चकारेण पुनः कर्तरि इत्यनुकृष्यते । सकर्मकेभ्यः लः कर्मणि चेति पूर्ववाक्येन विधानात्, अर्थात् अकर्मकेभ्यो धातुभ्यो भावे कर्तरि च लकाराः भवन्तीति सूत्रार्थः । तदेतद् व्याचष्टे-**लकारा इत्यादि** । तेन सर्वधातुभ्यः कर्तरि लकारास्तेषु सकर्मकेभ्यः कर्मण्यपि, अकर्मकेभ्यो भावे चेति सिद्धः । **वर्तमानेति**—वर्तमानक्रियायां वर्त्तिर्वाचकत्वं यस्य तस्माद्धातोरित्यर्थः । एतेन कालविशेषविशिष्टा क्रिया धातोरेव वाचिका । वर्तमानादिकालविशेषो लडादिलकारेण द्योत्यते । लकारवाच्यास्तु कर्त्तृकर्मभावा इत्यनुपदमेव विदितम् । **लस्य नेत्वमिति**—लशक्वतद्धिते इति सूत्रेणेत्यर्थः । **भू सत्तायाम्**—सतो भावस्सत्ता कालसम्बन्धित्वम् । **कर्तृविवक्षायामिति**—कर्तुर्विवक्षा वक्तुमिच्छा, तस्यां सत्यामित्यर्थः । **तिप्तस्**—एकपदं सूत्रं, नानापदम्वा । महिङो ङकारस्तिङ्प्रत्याहारार्थः । **शानच्कानचौ चेति**—तङानावित्यत्र शानच्कानचोर्ग्रहणमिति भावः।

हिन्दी

४०१. सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में तथा अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव में लकार होते हैं ।

४०२. वर्तमान क्रिया के वाचक धातु से लट् लकार होता है ।

४०३. तिप् तस् आदि अट्ठारह प्रत्यय ल् के स्थान पर आदेश होते हैं ।

४०४. ल् के स्थान में हुए आदेश को परस्मैपद संज्ञा होती है ।

४०५. तङ् प्रत्याहार और शानच्, कानच् को आत्मनेपद संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४०६. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२।। अनुदात्तेत उपदेशे यो ङित्तदन्ताच्च धातोर्लस्य स्थाने आत्मनेपदं स्यात् ।

४०७. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२।। स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

४०८. शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् १।३।७८।। आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

४०९. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१।। तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ।

मध्यमनोरमा

पूर्वसंज्ञेति—परस्मैपदसंज्ञेत्यर्थः । केभ्यो धातुभ्यः परस्मैपदसंज्ञकाः, केभ्य आत्मनेपदसंज्ञका इत्याशङ्कायां संक्षेपेण व्यवस्थापयति अनुदात्तङित इत्यादिसूत्रत्रयेण । **अनुदात्तेत इति**-अनुदात्तः इत् यस्य तस्मादनुदात्तेतः, उपदेशे यः ङित् ङकारेत्संज्ञकस्तदन्ताच्च धातोरित्यस्यैव विशेषणम् । यथा यङ्णिङादिप्रत्यया उपदेशे ङितः, इङादीनान्तु ङिदन्तत्वं व्यपदेशिवद्-भावेन । **उपदेशे इति किम् ?** चुकुटिषति, गाङ्कुटादिभ्यः इति सूत्रेण कुट् धातोः परस्य सनः ङिद्वद्भावादातिदेशिकं ङित्वम् । उपदेशे तु सन् न ङित्, अतस्तदन्तात् चुकुटिषेति सन्नन्ता-न्नात्मनेपदम् । **स्वरितञितः**—स्वरितश्च ञ् च स्वरितञौ, तौ इतौ यस्य, तस्माद्धातोरात्मने-पदसंज्ञकास्तङादयो भवन्तीत्यर्थः । कर्त्रभिप्रायमित्यस्य कर्त्तारमभिप्रैति गच्छतीत्यर्थः । **तदेतद् व्याचष्टे, कर्तृगामिनीति**—क्रियाफले कर्तृगामिनि आत्मनेपदं भवति । यथा पचति यजति करोति ददाति इत्यादौ पचियज्योः स्वरितेतोः करोतिददात्योर्ञितोः क्रियाफले कर्तृगामिनि आत्मनेपदं, तत्र पच्क्रियाफलं भोजनस्य तृप्त्यादि, यजिक्रियाफलं स्वर्गादिकं, करोतिक्रियाफलं कृतघटादिना जलाहरणादि, ददातिक्रियाफलं स्वर्गादि, यदा कर्तृगामि तदात्मनेपदम् । यदा तु परार्थं पाकयागादिक्रिया विधीयते तदा तु शेषात् कर्तरि इति सूत्रेण परस्मैपदमेव भवती-त्यर्थः । **तिङस्त्रीणि**—अत्र परस्मैपदग्रहणमात्मनेपदग्रहणं चानुवर्तते । तिङादेशस्य परस्मै-पदस्य त्रयः त्रिकाः, प्रत्ययत्रयसमुदायाः, तिप् तस् झि इत्येकः प्रत्ययत्रयसमुदायः, सिप् थस् थ इति द्वितीयो मिप् वस् मस् इति तृतीयः, एते त्रयः त्रिकाः क्रमेण प्रथममध्यमोत्तमसंज्ञकाः भवन्तीति सूत्रार्थः। तदेतद् व्याचष्टे तिङ **उभयोरिति**- उभयोः पदयोः आत्मनेपदपरस्मैपदयोः। **तान्येकवचनेति** —तानीत्यस्य व्याख्यानं लब्धप्रथमादिसंज्ञानीति । एकशब्द इत्यस्य व्याख्यानं प्रत्येकमिति, एकैकमित्यर्थः ।

हिन्दी

४०६. अनुदात्तेत् धातु और उपदेश में ङिदन्त धातु से परे ल् के स्थान में आत्मनेपद होता है ।

४०७. स्वरितेत् और ञित् धातु से आत्मनेपद होता है, कर्तृगामी क्रियाफल रहने पर ।

४०८. आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से कर्ता में परस्मैपद होता है ।

४०९. तिङ् के आत्मनेपद व परस्मैपद के तीन तीन त्रिकों की क्रमशः प्रथम मध्यम और उत्तम संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४१०. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२।। लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः ।

४११. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५।। तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ।

४१२. अस्मद्युत्तमः १।४।१०७।। तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः ।

४१३. शेषे प्रथमः १।४।१०८।। मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात् । भू ति इति जाते ।

४१४. तिङ्शित् सार्वधातुकम् ३।४।११३।। तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः ।

४१५. कर्तरि शप् ३।१।६८।। कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् ।

मध्यमनोरमा

युष्मद्युपपदे इति—तिङ्वाच्यं यत् कारकं तद्वाचिनि युष्मदि उपपदे सति प्रयुज्यमाने सति स्थानिन्यपि, स्थानमस्यास्तीति स्थानी, तस्मिन् स्थानिनीति, अर्थवशेनाक्षेपादि लभ्यते, अत एवाप्रयुज्यमानेऽपि मध्यमः । **यथा त्वं करोषीत्यत्र** तिङ्वाच्यं कारकं कर्तृ, तद्वाची युष्मच्छब्दस्तस्मिन् उपपदेऽपि मध्यमः पुरुषः । घटं करोषीत्यादौ युष्मच्छब्दाप्रयोगेऽपि मध्यमः। एवं त्वं क्रियसे इत्यत्र कर्मलकारः । तिङ्वाच्यकर्मवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमाने, क्रियसे इत्यत्र अप्रयुज्यमानेऽपि मध्यमः । **तथाभूते इति**—तिङ्वाच्यकारकवाचिनि अस्मदि प्रयुज्यमाने च उत्तम इत्यर्थः । यथाऽहं करोमीत्यत्र तिङ्वाच्यकर्तृवाचिनि अस्मदि प्रयुक्ते, करोमि इत्यत्र अप्रयुक्तेऽपि उत्तमः । **भू ति इति जाते** युष्मदस्मद्भिन्नस्य कर्त्तुरेकत्वविवक्षायां प्रथमपुरुषैकवचने तिपि जाते पकारस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञायां लोपे च सति भूति इति जाते

मध्यमनोरमापूरणी

भवतः इति—भू-धातोः वर्तमाने लडिति लट्लकारेऽनुबन्धलोपे तिप्तस्झि इत्यादिना प्रथम-पुरुषद्विवचने तसि तिङ्शित् इति सार्वधातुकसंज्ञायां कर्तरि शप् इति शपि पुनः सार्वधातुकसंज्ञायां भू अ तस् इति, सार्वधातुकार्धधातुकयोः इति ऊकारस्य गुणे ओकारे एचोऽयवायाव इति अवादेशे भवतस् इति जाते सस्य ससजुषो रुरिति रुत्वे रस्य खरवसानयोरिति विसर्गः ।

हिन्दी

४१०. प्रथम मध्यम उत्तमसंज्ञा को प्राप्त तिङ् के त्रिकों को क्रमशः एकवचन द्विवचन और बहुवचन संज्ञाएँ होती हैं ।

४११. तिङ्वाच्य कारकवाची युष्मद् शब्द के प्रयुज्यमान होने अथवा अप्रयुज्यमान रहने पर भी मध्यम पुरुष होता है ।

४१२. तिङ्वाच्यकारकवाची अस्मद् के प्रयुक्त होने पर या अप्रयुज्यमान रहने पर भी धातु से उत्तम पुरुष होता है ।

४१३. मध्यम और उत्तमपुरुष के अविषय में धातु से प्रथम पुरुष होता है ।

४१४. तिङ् और शित् को सार्वधातुक संज्ञा होती है ।

४१५. कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे रहते धातु से शप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४१६. सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४।। अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः स्यात् । अवादेशः । भवति । भवतः ।

४१७. झोऽन्तः ७।१।३।। प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः । अतो गुणे । भवन्ति। भवसि । भवथः । भवथ ।

४१८. अतो दीर्घो यञि ७।३।१०१।। अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके । भवामि । भवावः । भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि। युवां भवथः । यूयं भवथ । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः ।

४१९. शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे ८।४।१८।। उपदेशे कादिखादिषान्तवर्जे गदनदादेरन्यस्मिन्धातावुपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य नेर्णत्वं वा स्यात् । प्रणिभवति । प्रनिभवति ।

मध्यमनोरमा

इत्यर्थः । **एतत्संज्ञा इति**—सार्वधातुकसंज्ञा इत्यर्थः । **इगन्ताङ्गस्येति**—इगन्तमङ्गमिति तस्य सार्वधातुके शपि परतो गुणः । स च अलोऽन्त्यपरिभाषया अन्तस्योकारस्य भवति । ओष्ठ-स्थानस्य ऊकारस्यं ओष्ठस्थानिक ओकारः । **अवादेशः इति**– एचोऽयवायाव इति सूत्रेणेत्यर्थः। **अतोऽङ्गस्येति**—अकारान्तस्याङ्गस्येत्यर्थः । प्रथममध्यमोत्तमपुरुषेषु भूधातो रूपं प्रदर्श्य प्रथम-पुरुषादिषु दर्शयति । **स भवतीति**—अत्र तिङ्वाच्यकर्ता न युस्मच्छब्देन उच्यते नास्मच्छब्देन, किन्तु तच्छब्देन, अतो मध्यमोत्तमयोरविषय इत्यस्य प्रथमपुरुषः: । **त्वं भवसीति**-अत्र तिङ्-वाच्यः युष्मच्छब्दवाच्य इति मध्यमः । **अहं भवामीति**—अत्र अस्मच्छब्देन तिङ्वाच्यः कर्ताऽभि-धीयते इति उत्तमपुरुषः । **शेषे विभाषा**—उपदेशे ककारादयः खकारादयः षकारान्ताश्च ये धातवः अथ च गदनदादयोऽग्रे वाच्याः धातवस्तेभ्यो भिन्नो यो धातुस्तस्मिन्परे उपसर्गस्थान्नि-मित्तात् रेफात् परस्य नेर्णत्वमित्यर्थः । ककारादिकृञ्-धातुः तस्य प्रनिकरोतीत्येव । खकारादिः प्रनिखनति इति । षकारान्तः पिष्धातुः, प्रनिपिनष्टि । उपदेशविशेषणात् प्रनिचकार प्रनिचखान प्रनिपेक्ष्यति इत्यत्र सम्प्रति कादिरवादिषान्तत्वाऽभावेऽपि उपदेशे कादिखादिषान्तत्वान्न णत्वम्।

मध्यमनोरमापूरणी

भवन्ति इति—भू धातोः झिप्रत्यये झोऽन्त इति झस्य अन्तादेशे भू अन्ति इति, तिङ्शित् इति प्रत्ययस्य सार्वधातुकसंज्ञा, कर्तरि शप् इति शपि, शपावितौ । पुनः सार्वधातुकसंज्ञा शपः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे अवादेशे भव अन्ति इति, अतो गुणे इति पररूपे भवन्तीति रूपम् । एवमेव सिप्थस्थविभक्तिषु बोध्यम् । **भवामि इति**—भू मि इति स्थिते सार्वधातुक-संज्ञा, कर्त्तरि शप् इति शप्, पुनः सार्वधातुकसंज्ञा, भू–अङ्गस्य सार्वधातुकेति गुणेऽवादेशे भव मि इति, मिपि परतो भव इत्यङ्गं, तस्य अतो दीर्घो यञीति दीर्घे रूपम् । **भवावः भवामः** इत्युभयत्र भवामि इतिवत् कार्यं, सस्य रुत्वविसर्गौ विशेषकार्यम् । त्रिष्वपि

हिन्दी

४१६. सार्वधातुक और आर्धधातुक के परे इगन्त अङ्ग को गुण होता है ।

४१७. प्रत्यय के अवयव झ् को अन्त् आदेश होता है ।

४१८. अदन्त अङ्ग को गुण हो यञादि सार्वधातुक परे रहते ।

४१९. उपदेश में कादिखादिषान्त भिन्न गदनदादि से भिन्न धातु के परे रहते उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के न को ण् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४२०. परोक्षे लिट् ३।२।११५।। भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात् । लस्य त्तिबादयः ।
४२१. परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३।४।८२।। लिटस्तिबादीनां णलादयः स्युः । भू अ इति स्थिते ।
४२२. भुवो वुग् लुङ्लिटोः ६।४।८८।। भुवो वुगागमः स्याल्लुङ्लिटोरचि ।
४२३. लिटि धातोरनभ्यासस्य ६।१।८।। लिटि परेऽनभ्यासस्य धात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् इति जाते ।

मध्यमनोरमा

पुरुषेषु क्रमशः एकवचनद्विवचनबहुवचनानां प्रयोगः प्रदर्शितः 'स भवति' इत्यादिना । **परोक्षे लिट्**–अत्र भूते इति अनद्यतने इति चानुवर्तते, तेन अनद्यतन इति यः भूतकालस्तत्र परोक्षः क्रियारूपो योऽर्थस्तत्र वृत्तिर्यो धातुस्तस्माद्धातोर्लिट् इत्यर्थः ! अत्र अद्यतनपदेन अतीताया रात्रेर्यामद्वयं चरममादाय अग्रिमरात्रेराद्यं यामद्वयं चोपादाय सम्पूर्णदिवसोऽद्यतन इति प्राचीनैः परिभाषितः। तद्भिन्नोऽनद्यतनः । तेन अद्य चकारेति न भवति । रामो राजा बभूवेत्यत्र तु लिट् भवत्येव। परोक्ष इत्यनेन पपाचेति लिट्प्रयोक्तुः पाकक्रियारूपार्थः परोक्षश्चेत् प्रयोगकर्त्रा पाकक्रिया इन्द्रियैरगोचरीकृता चेत् तदा लिट् इत्युक्तम्। तेन मत्समक्षं **चकारेति** न प्रयोगः । चकारेत्युत्तमपुरुषः कथम् ? अत्र प्रयोक्तुरेव कर्तृत्वात् तेन च कर्त्रा स्वक्रियायाः स्वयं प्रत्यक्षीकृतत्वादिति **चेदत्राह**– यदा चित्तविक्षेपादनिद्रादिना स्वकर्तृकाऽपि क्रिया न प्रत्यक्षीकृता तत्र उत्तरकाले तस्याः क्रियायाः अनुमानादिना ज्ञाने परोक्षत्वमस्त्येव । तेन सुप्तोऽहं किल विललाप, बहुजगद पुरस्तात्तस्य, मत्ता किलाऽहम् इत्यादौ लिट् भवतीति बोध्यम्। **लस्य तिबादय इति**-तिप्तसझीति सूत्रेणेति शेषः । **परस्मैपदानामिति**—तिपो णल्, तसोऽतुस्, झेरुस्, सिपस्थल्, थसोऽथुस्, थस्य अः, मिपः णल्, वसो वः, मसो मः इति क्रमेण आदेशा भवन्ति। लकारस्य हलन्त्यमिति इत्संज्ञा, णकारस्य चुटू इति इत्संज्ञा, तयोर्लोपे भू **अ इति स्थिते** । **अचीति**—भू- धातोर्लुङ्लिट्सम्बन्धिनि अचि परतो वुगागमः स्यादित्यर्थः । वुगागमे सति भूव् अ इति जाते । **अनभ्यासस्येति**—अनभ्यासो यो धातुस्तदवयवो यः प्रथम एकाच् तस्य द्वित्वम् । अत्र द्वित्वप्रकरणे सर्वत्रैव अनभ्यासस्येत्यादि सम्बध्यते । तेन दिदरिद्रिषति अत्र दरिद्रिषेति सन्नन्तधातोः प्रथमस्य एकाचो दर् इत्यस्य सन्यङोरिति सूत्रेण द्वित्वम् । भूव् इत्यत्र चत्वार एकाचः । एकः अच् यस्मिन् स एकाच् । एवञ्च भू इत्येकः एकाच्, ऊ इति द्वितीयः, ऊव् इति तृतीयः, भूव् इति चतुर्थः। तत्र भूव् इत्यस्य द्वित्वे सर्वेषामेकाचां द्वित्वं सिद्धं भवति। वृक्षचलने सकलशाखाचलनवत् । अत्र भूव् इत्येकाचः प्राथम्यं न सम्भवति द्वितीयैकाचोऽभावात्, तथा व्यपदेशिवद्भावेन प्राथम्यं बोध्यम् । एवं भूव् इत्यस्यैव

हिन्दी

४२०. भूत अनद्यतन परोक्षार्थवृत्ति धातु से लिट् लकार होता है ।
४२१. लिट् स्थानीय तिप् तस् आदि को क्रम से णलादि आदेश होते हैं ।
४२२. भू धातु को वुक् का आगम होता है लुङ्–लिट् सम्बन्धी अच् परे ।
४२३. लिट् परे रहते अभ्यासभिन्न धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो, आदि में अच् रहने पर धातु के आदि अच् से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४२४. पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४॥ अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्।
४२५. हलादिः शेषः ७।४।६०॥ अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यतेऽन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः।
४२६. ह्रस्वः ७।४।५९॥ अभ्यासस्याचो ह्रस्वः।
४२७. भवतेरः ७।४।७३॥ भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि।
४२८. अभ्यासे चर्च ८।४।५४॥ अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च। झशां जशः, खयां चर इति विवेकः। बभूव। बभूवतुः। बभूवुः।

मध्यमनोरमा

धातुत्वात् धातुत्वमपि व्यपदेशिवद्भावेनैव। **आदिभूतादिति**—आदिभूतो यः अच् तस्मात् परः। अत्र द्वितीय एकाच्, तत्र द्वितीयस्य एकाचो द्वित्वम्। यथा एधीति णिजन्ताच्चङि ऐदिधत्। अत्र धिशब्दस्य द्वित्वम्। एवञ्च यत्रादिभूतादचः परो द्वितीय एकाच् नास्ति तत्रास्य अजादेर्द्वितीयस्येति विधेरप्रवृत्तेः प्रथमस्येत्यनेनैव द्वित्वं भवति। तेन आत आततुरित्यत्र अत् इत्यस्य द्वित्व भवति। **अत्रेति**—एकाचो द्वे प्रथमस्येति प्रकरणे ये उच्चारिते तयोर्मध्ये पूर्वोऽभ्याससंज्ञः। **हलादिः शेषः**—हल् आदिः शेषस्त्रिपदम्। शिष्यते इति शेषः, असर्वोपयोगेन सजातीयान्यलोपेनावस्थानं शेषः। तत्र अवस्थानस्य सिद्धत्वादन्त्यलोपविधायकमिदम्। तथा च आदिहल्भिन्नस्य अभ्यासहलो लोपो भवति इति सूत्रार्थस्तदेतदाह- अन्ये हल इति। तेन आततुः आटतुरित्यादौ आदिहलोऽभावे अन्त्यहलो लोपः, तस्य आदिहल्भिन्नत्वात्। **विवेक इति**—झलां जशश्च विहिताः, तत्र झलो द्वेधा, झश् वर्णाः खय्वर्णाश्चेति। शषसहास्तु न प्रयत्नाभ्यां सदृशाः। जशश्चरश्च न सदृशा इति उच्यते। तत्र झशां जशः, संवारा नादा घोषाश्चेति झशां जश्वर्णानाञ्च प्रयत्नसाम्यात्। **खयां तु चरः**, खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्चेति खयां चरां प्रयत्नसाम्यादिति प्रविवेकः। **बभूवेति**—अभ्यासे चर्चेति झशो भकारस्य ज् बकारः, स्थानसाम्यात्। **बभूवेति**- मध्यमपुरुषबहुवचने थस्य स्थाने अकार आदेशः, सच आदेः परस्य थकारमात्रस्य भवति। अतो गुणे इति अकारयोः पररूपमेकादेशः।

मध्यमनोरमापूरणी

बभूवतुरिति—भू-धातोः परोक्षे लिट् इति लिटि तस्य स्थाने तसि 'परस्मैपदानां णल' इति तसः अतुसि भुवो वुग् इति वुगागमे भूव् अतुस् इति, लिटि धातोरिति द्वित्वे पूर्वोऽभ्यासः इति अभ्याससंज्ञा, हलादिःशेष इति वलोपे भू भूव् अतुस् इति, ह्रस्वः इति अभ्यासोकारस्य ह्रस्वे भवतेर इति उकारस्याकारे अभ्यासे चर्चेति भकारस्य बकारे बभूव अतुस् ऽ, सस्य रुत्वविसर्गौ।

हिन्दी

४२४. यहाँ जिनको द्वित्व हुआ है उनमें पूर्व को अभ्यास संज्ञा होती है।
४२५. अभ्यास के आदि हल् का शेष हो व अन्य हलों का लोप होता है
४२६. अभ्यास अच् को ह्रस्व होता है।
४२७. भू धातु के अभ्यास उकार को अ होता है लिट् परे रहते।
४२८. अभ्यास में झल् वर्णों को चर्त्व होता है व जश्त्व होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४२९. लिट् च ३।४।११५।। लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् । ४३०. आर्धधातुकस्येड् वलादेः ७।२।२५।। वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात् । बभूविथ। बभूवथुः । बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम । ४३१. अनद्यतने लुट् ३।३।१५।। भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् स्यात् । ४३२. स्यतासी लृलुटोः ३।१।३३।। धातोरेतौ स्तो लृलुटोः परतः । शबाद्यपवादः । ल् इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम् । ४३३. आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४।। तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्ययः एतत्संज्ञः स्यात् । इट् । ४३४. लुटः प्रथमस्य डारौरसः २।४।८५।। डित्त्वसामर्थ्यादभस्याऽपि टेर्लोपः । भविता ।

मध्यमनोरमा

अनद्यतने लुट्– अद्यतनपदार्थः पूर्वमेवोक्तः । अद्यतनभिन्ने अनद्यतने भविष्यति काले या क्रिया तस्यां वर्तमानाद् धातोर्लुट् । **इट् इति**—आर्धधातुकस्येड् वलादेरिति सूत्रेण इत्यर्थः। **डित्त्वेति**– डाप्रत्ययस्य डकारो डित्कार्यार्थः । डित्कार्यं च टेरिति टिलोपः । स तु भसंज्ञायां सत्यां प्रवर्तते । भसंज्ञा तु स्वादिप्रत्यये, तस्मादिह डित्त्वं व्यर्थं सत् ज्ञापयति भसंज्ञाविरहेऽप्यत्र भवति टिलोपः।

मध्यमनोरमापूरणी

बभूवुरित्यत्र झेरुस् विशेषः । **बभूविथेति**—भू धातोः लिटि तस्य सिपि सिपः थलि भू थ इति, लिट् चेति थल आर्धधातुकसंज्ञा, आर्धधातुकस्येड्वलादेरिति इट्, वुगागमः, द्वित्वम्, अभ्यासादिकार्ये कृते बभूविथेति । मिपि तस्य णलादेशे बभूव इत्येव । **बभूविव बभूविम** इत्यत्र वसः मसश्च वमौ आदेशौ, आर्धधातुकसंज्ञात्वात् इट्, वुक्, द्वित्वमभ्यासादिकार्यं पूर्ववत् । मध्यमनोरमायां बभूवेति मध्यमपुरुषबहुवचने थस्य अ आदेशः, अतो गुणे इति पररूपमित्यादि यदुक्तं तदसङ्गतम् । **शबाद्यपवाद इति**—तिङः सार्वधातुकसंज्ञात्वात् सर्वत्र शप एव प्राप्तिः, तथा च रवकाशौ स्यतासी भवतः, निरवकाशो विधिरपवादः इति न्यायाद् शप्श्यनादीनामपवादौ स्यती भवतः । **लुटः प्रथमस्येति**—लुटः स्थाने आगतस्य तिप्तस्झि इत्यस्य क्रमात् डा-रौ-रस् आदेशाः भवन्ति । **भवितेति**—भू धातोः अनद्यतने लुट् इति लुटि तस्य तिबादेशे लुटः प्रथमस्य तिपः डादेशे, डकार इत् । शपं प्रबाध्य स्यतासी लृलुटोरिति तास्प्रत्यये आर्धधातुकं

हिन्दी

४२९. लिट् के स्थान में आदेश तिङ् आर्धधातुक होता है ।

४३०. वलादि आर्धधातुक को इट् आगम होता है ।

४३१. अनद्यतन भविष्यत् अर्थ में धातु से लुट् लकार होता है ।

४३२. धातु से स्य और तासि प्रत्यय होते हैं लृ व लुट् के परे रहते । (सूत्र में लृ पद लृट् व लृङ् बोधक है ।)

४३३. तिङ् और शित् से भिन्न धातु से विहित प्रत्यय को आर्धधातुक संज्ञा होती है ।

४३४. लुट् के प्रथम पुरुष (तिप् तस् झि) को डा रौ रस् आदेश क्रमशः होते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४३५. तासस्त्योर्लोपः ७।४।५०॥ सादौ प्रत्यये। ४३६. रि च ७।४।५१॥ रादौ प्रत्यये तथा। भवितारौ। भवितारः। भवितासि। भवितास्थः। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्वः। भवितास्मः।
४३७. लृट् शेषे च ३।३।१३॥ भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां च। स्यः, इट्। भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः। ४३८. लोट् च ३।३।१६२॥ विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट्। ४३९. आशिषि लिङ्लोटौ ३।३।२७३॥ ४४०. एरुः ३।४।८६॥ लोट इकारस्य उः। भवतु।

मध्यमनोरमा

भवितारौ इति—रि चेति सकारलोपः। **भवितासीत्यत्र** तासस्त्योरिति सलोपः। **क्रियार्थायां क्रियायामिति**—क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था, तादृशी क्रिया चेदुपपदं प्रयुज्यते, यथा भोक्ष्यतीति पचतीति, भोजनक्रियाफलं यस्यास्तादृशी पचिक्रिया प्रयुज्यते। तस्यामुपपदभूतायां सत्यां भोक्ष्यतीति लृट्। एवं क्रियार्थायां क्रियायामसत्यां घटो भविष्यतीति। **विध्यादिष्विति**- विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेष्वित्यर्थः। तत्र विधिः प्रेरणम्। निमन्त्रणं श्राद्धभोजनादौ प्रवर्तनम्। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः। सम्प्रश्नः पृच्छा। प्रार्थनं वाञ्छा।

मध्यमनोरमापूरणी

शेष इति आर्धधातुकसंज्ञा, आर्धधातुकस्येड् इति इटि भू इतास् आ इति, सार्वधातुकेति गुणेऽवादेशे भवितास् आ इति, डित्त्वसामर्थ्यात् टेः आसः लोपे भवितेति। **भवितारौ** इत्यत्र भवितास् रौ इति जाते रि चेति सलोपः कर्तव्यः। **भवितासीत्यत्र** तासस्त्योरिति सलोपः कर्त्तव्यः। **तासस्त्योरिति**- सस्यार्धधातुके इति सि इत्यनुवर्तते। तासः अस् धातोश्च सलोपः सादिप्रत्यये परे इति सूत्रार्थः। **रि चेति**—अत्रापि तासः अस्-धातोश्च सलोपः रादौ प्रत्यये परे इत्यर्थो ग्राह्यः। **भविष्यति इति**—भू धातोः लृट् शेषे चेति लृट्, तिबादेशः, शपं प्रबाध्य स्यतासीति स्यप्रत्ययः, आर्धधातुकमिति आर्धधातुकत्वादार्धधातुकस्येड् इति इटि भू इस्यति इति, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे अवादेशे भविस्यति इति, आदेशप्रत्यययोरिति सस्य षत्वम्। भविष्यन्तीत्यत्र झोऽन्त इति अन्तादेशः, स्याकारेण सह अतो गुणे इति पररूपं विशेषः।

हिन्दी

४३५. तास् व अस् के स् का लोप हो सादि प्रत्यय परे रहते।

४३६. तास् व अस् के स् का लोप हो रादि प्रत्यय परे रहते।

४३७. क्रियार्थक क्रिया के उपपद रहने या नहीं रहने पर भी भविष्यत् अर्थ में धातु से लृट् लकार हो।

४३८. विधिनिमन्त्रण आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हो।

४३९. आशिष् अर्थ में धातु से लिङ् व लोट् लकार हों।

४४० लोट् लकार सम्बन्धी इ को उकार होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४४१. तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७।१।३५।। आशिषि तुह्योः तातङ् वा। परत्वात् सर्वादेशः । ननु ङिच्चेत्यस्य क्वाऽवकाशः इति चेच्छृणु–अनन्यार्थङकार- युक्तानङादिष्विति गृहाण । भवतात् । ४४२. लोटो लङ्वत् ३।४।८५।। लोटस्तामादयः सलोपश्च । ४४३. तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः । ३।४।१०१।। ङितश्चतुर्णां तामादयः स्युः । भवताम् । भवन्तु । ४४४. सेर्ह्यपिच्च ३।४।८७।। लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च । ४४५. अतो हेः ६।४।१०५।। अतः परस्य हेर्लुक् । भव । भवतात् । भवतम् । भवत । ४४६. मेर्निः ३।४।८९।। लोटो मेर्निः स्यात् ।

मध्यमनोरमा

ङिच्चेति सूत्रात् अनेकाल्शित्सूत्रस्य परत्वात् ङिच्चेत्यन्तादेशं बाधित्वा अनेकालिति सर्वादेशः । नन्वेवं ङिदादेशः सर्वोऽपि सर्वस्यैव भविष्यति नान्त्यस्येति ङिच्चेति सूत्रं व्यर्थमेव स्यादतोऽनेकाल्सूत्रस्य ङिच्चेत्यादिना समाधत्ते, **शृण्विति**—ङिच्चेति सूत्रमनेकालसूत्रापवादकं भवत्येव, परन्तु यत्रान्त्यादेशार्थमेव ङित्त्वं तत्र सर्वत्र ङित्त्वसामर्थ्याभावादनेकाल् सूत्रं बाधितुं ङिच्चेति सूत्रं न शक्नोति । अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्हि परेण बाध्यते इति न्यायात्। एतदेवाह **अनन्यार्थेति**, न अन्यः अर्थः प्रयोजनं यस्य सः अनन्यार्थः । अनन्यार्थश्चासौ ङकारश्च अनन्यार्थङकारः, तेन युक्तः अनन्यार्थङकारयुक्तः, तादृशेष्वनङादिष्वित्यर्थः । अन्यः अन्त्यादेशादन्यः, तेन अन्त्यादेशादन्यत् फलमनङादीनां नास्तीति तत्र ङिच्चेति सूत्रं सावकाशम् इति । **लोटो लङ्वत्**—लङा तुल्यं लङ्वत् । लोटो लङा तुल्यं कार्यं भवति । लङो यत् कार्यं ङित्त्वप्रयुक्तं तल्लोटोऽपि भवतीत्यर्थः । एतत् फलितार्थमाह–**तामादय इति** । तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः इति ङिल्लकारादेशादीनां तसादीनां क्रियमाणाः तामादयो

मध्यमनोरमापूरणी

भविष्यामि इत्यत्र भविष्य मि इति जाते अतो दीर्घो यञीति दीर्घे षत्वम् । **भवतु इति**—भू धातोः लोट् चेति लोटि तस्य तिपि एरुरिति इकारस्योत्वे सार्वधातुकसंज्ञा, कर्त्तरीति शप्, पुनः सार्वधातुकत्वात् गुणेऽवादेशे भवतु इति । **भवतादिति**—भूधातोः आशिषि लिङ्लोटौ इति लोटि तस्य तिबादेशे एरुरिति उत्वे भू तु इति, तुह्योरिति तातङ्, अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः। सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुणः अवादेशः । **भवतामित्यत्र** लोटो लङ्वदिति ङिद्वद्भावे तस्थस्थमिपामिति तसः तामादेशः, शप्, गुणः, अवादेशः ।

हिन्दी

४४१. आशिष् अर्थ में तु और हि को तातङ् आदेश हो ।

४४२. लोट् लङ्वत् हो । (अर्थात् लङ् लकार की तरह तस् थस् थ मिम् को तामादि आदेश व स् का लोप हो ।)

४४३. ङित् लकार सम्बन्धी तस् थस् थ मिप् को क्रमशः ताम् तम् त अम् आदेश होते हैं।

४४४. लोट् के सि को हि हो और वह अपित् हो ।

४४५. अदन्त से परे हि का लुक् होता है ।

४४६. लोट् लकार के मि को नि आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४४७. आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२।। लोडुत्तमस्याट् स पिच्च । हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात् । भवानि । ४४८. ते प्राग्धातोः १।४।८०।। ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः । ४४९. आनि लोट् ८।४।१६।। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात् । प्रभवाणि । वा. दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः । दुःस्थितिः । दुर्भवानि । वा. अन्तः शब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् । अन्तर्भवाणि । ४५०. नित्यं ङितः ३।४।९९।। सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः । अलोऽन्त्यस्येति सलोपः। भवाव । भवाम ।

मध्यमनोरमा

लोडादेशादीनामपि तसादीनां भवन्ति । एवं नित्यं ङित इति ङिल्लकारादेशयोर्वस्मसोः सलोपो लोडादेशयोरपि भवति । लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्त इत्यडागमस्तु लङि परतो धातोर्विधीयते, न तु लङस्तेन अडागमो न । **चतुर्णामिति**— तस्थस्थमिपामित्यर्थः। **सोऽपिच्चेति**– स हिरादेशः अपित्, सिपः पित्वं हेरादेशस्य स्थानिवद्भावेन प्रसक्तं प्रतिषिध्यते । नन्वल्विधित्वात् स्थानिवद्भावात् सिप आदेशस्य हेः पित्त्वमप्रसक्तमेव निषिध्यते इति चेन्न, न ल्यपीति ल्यपः निषेधेन अनुबन्धकार्ये अनल्विधावित्यस्याप्रवृत्तिज्ञापनात् । तथाहि प्रदायेत्यादौ दाधातोः क्त्वाप्रत्ययस्य ल्यबादेशे सति क्त्वादेशस्य ल्यपः स्थानिवद्भावेन कित्त्वात् तस्मिन् परतः किन्नमित्तं घुमास्थेतीत्त्वं प्राप्तं तन्निषेधार्थं न ल्यपीति सूत्रम् । यदि अनुबन्धकार्येऽपि अनल्विधाविति निषेधः प्रवर्तेत तर्हि ल्यपः कित्त्वाभावात् स्थानिवद्भावस्य अनल्विधाविति निषेधात् घुमास्थेति इत्त्वस्याप्राप्तेर्न ल्यपि इति सूत्रं व्यर्थमेव स्यात् । तेन न ल्यपीति ज्ञापयति अनुबन्धकार्ये अनल्विधाविति स्थानिवद्भावनिषेधो न प्रवर्तते । तेन स्थानिवद्भावेन हेः पित्त्वं

मध्यमनोरमापूरणी

भवेति–भू धातोः लोटि सिपि आदेशे सेर्ह्यपिच्चेति ह्यादेशे अपित्त्वे च कृते, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुणः, अवादेशः, भव हि इति, अतो हेरिति हेर्लुक् । आशिषि अर्थे हेस्तातङ्ङादेशे **भवतादिति। भवानि इति**—भू मिप् इति जाते मेर्निरिति निः, आडुत्तमस्येति आटि, शप्, गुणोऽवादेशः, भव आनि इति, सवर्णदीर्घः । **अन्तर्भवाणि**—'अन्तः शब्दस्याङ्कि' इति वार्त्तिकेन अन्तरित्यस्य उपसर्गत्वे आनि लोडिति नस्य णत्वम् । **भवाव, भवाम इति**—लोटि उत्तमपुरुषे वसि मसि आटि, शपि गुणेऽवादेशे सवर्णदीर्घः, नित्यं ङितः इति सलोपः ।

हिन्दी

४४७. लोट् लकार के उत्तमपुरुष को आट् का आगम हो और वह पित् हो ।

४४८. उपसर्गसंज्ञक और गतिसंज्ञक धातु से पूर्व ही प्रयुक्त होने चाहिये ।

४४९. उपसर्गस्थ-निमित्त से परे लोट् के स्थान में आदेश आनि के न् को ण् हो ।

वा. षत्व व णत्व कर्त्तव्य में दुर् को उपसर्ग संज्ञा का प्रतिषेध होता है । वा. अन्तः शब्द को अङ् किविधि और णत्व कर्त्तव्य में उपसर्ग संज्ञा होती है ।

४५०. ङित् लकार सम्बन्धी उत्तमपुरुष के संकारान्त का नित्य लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४५१. अनद्यतने लङ् ३।२।१११॥ अनद्यनंभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् ।

४५२. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६।४।७१॥ एषु अङ्गस्य अट् ।

४५३. इतश्च ३।४।१००॥ ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तस्य लोपः । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम्। अभवाव । अभवाम ।

४५४. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१॥ एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ।

मध्यमनोरमा

प्राप्तमेव । अपित्त्वफलं तु अश्नुहीत्यत्र हेरपित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङिद्वद्भावेन क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **स पिच्चेति**—तेन करवाणि करवाव इत्यादौ पित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति न ङित्त्वं, ततश्च गुणनिषेधो न भवति । **इकारोच्चारणेति**—प्रक्रियालाघवाय उकारान्तावेवादेशौ कुर्यात्, इकारान्तावादेशौ विधाय तस्य उकारान्तादेशे प्रक्रियागौरवं स्यादित्यर्थः । इकारोच्चारणसामर्थ्यादिव इतश्चेति लोपोऽपि न भवति इति बोध्यम् । **दुःस्थितिरिति**—अत्र दुरः उपसर्गसंज्ञानिषेधात् उपसर्गस्थान्निमित्तात् परत्वाभावादुपसर्गात् सुनोतीति न षत्वम् । **दुर्भवानि** इत्यत्र णत्वे कर्त्तव्ये उपसर्गसंज्ञानिषेधः । **अन्तरिति**—तेन आतश्चोपसर्गे इति सूत्रेण अन्तः शब्दे उपपदे धाधातोः अङ्, ततष्टाप् अन्तर्धा, उपसर्गे घोः किरिति सूत्रेण अन्तर्द्धिरित्यत्र किप्रत्ययः । **अनद्यतनेति**—भूतानद्यतनकालवृत्तिर्योऽर्थः क्रियारूपस्तद्वृत्तेस्तद्वाचकाद् धातोरित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

लुङ्लङिति—एषु लुङ्-लङ्-लृङ्क्षु परेषु अङ्गस्य अडागमो भवति स चोदात्तो भवति । लावस्थायामट् इति भाष्यमतम् । नव्यैः प्राचीनैश्च यद्यपि एतन्मतमाद्रियंते तथापि प्रक्रियायां क्वचित् परत्वात् क्वचिन्नित्यत्वात् क्वचिच्चान्तरङ्गत्वात् कार्यान्तराणि विधाय अडागमः क्रियते । एवमुभयोऽपि पक्षः युक्त एवेति ज्ञेयम् । **अभवदिति**—भू धातोः अनद्यतने लङिति लङ्, तिबादेशः, इतश्चेति इकारलोपः, सार्वधातुकसंज्ञायां शपि पुनः सार्वधातुकत्वे सति गुणः, अवादेशः, लुङ्लङ्लृङ्क्ष्विति अडागमः । **अभवतामिति**—तसः तस्थस्थेति तामादेशः । **अभवन् इति**—भू झि इति स्थिते झोऽन्त इति अन्तादेशे, इतश्चेति इकार लोपे भू अन्त इति, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, गुणः, अवादेशः, अडागमे अभव अन्त् इति जाते अतो गुणे इति पररूपे तस्य संयोगान्तस्येति लोपः । मिपोऽमि पररूपे **अभवमिति** । **अभवाव इति**— वसि प्रत्यये शपि गुणेऽवादेशेऽडागमें अभव वस् इति, अतो दीर्घो यञीति दीर्घे नित्यं ङित इति वसः सकारलोपः ।

हिन्दी

४५१. अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से लङ् लकार होता है ।

४५२. लुङ् लङ् और लृङ् परे रहते अङ्ग को अट् आगम होता है और वह उदात्त होता है।

४५३. ङित् लकार के परस्मैपद इकारान्त का लोप होता है ।

४५४. विधि निमन्त्रण- आमन्त्रण अधीष्ट सम्प्रश्न और प्रार्थना अर्थ में धातु से लिङ् लकार होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४५५. यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३।४।१०३॥ लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च । ङित्त्वोक्तेर्ज्ञायते क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति प्रतिषेध इति । तेन वक्ष्यमाणेत्यत्र न ङीप् ।

४५६. लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९॥ सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते ।

४५७. अतो येयः ७।२।८०॥ अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् । गुणः । लोपो व्योर्वलि । भवेत् । भवेताम् ।

४५८. झेर्जुस् ३।४।१०८॥ लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः । भवेतम् । भवेत । भवेयम् । भवेव । भवेम ।

मध्यमनोरमा

ङित्त्वोक्तेरिति—लिङादेशस्य परस्मैपदस्य यासुडागमो विधीयते तस्य स्थानिवद्भावेनैव ङित्त्वमस्ति किमिति ङित्त्वं विधीयते ? ननु अल्विधौ स्थानिवद्भावो न भविष्यतीति ङित्त्वविधानं तत्फलमस्त्विति चेन्न, अनुबन्धकार्ये अनल्विधाविति निषेधाप्रवृत्तेः । तत्र 'न ल्यपि' इति निषेधो ज्ञापक इत्यवोचाम । तथा च ङित्त्वं व्यर्थं सज्ज्ञापयति-अनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति निषेधः क्वचित् प्रवर्तते एव । तथा च न ल्यपीति ज्ञापकादनुबन्धकार्ये अनल्विधाविति निषेधो न प्रवर्तते इति ज्ञापितं, तस्यासार्वत्रिकत्वं ङित्त्वोक्तिर्ज्ञापयति इत्यर्थः । तेन **वक्ष्यमाणेति**—वच् परिभाषणे, लृट्, तस्य शानच्, आने मुक्, स्यः, चोः कुः, सस्य षत्वं, कषसंयोगे क्षः, णत्वं, टाप् । अत्र लृटः टित्त्वादुगित्त्वाच्च टिड्ढेति उगितश्चेति वा ङीप् स्यात्। तस्मात् ज्ञापितताया निषेधाप्रवृत्तेरसार्वत्रिकतया क्वचित् अनुबन्धकार्येष्वनल्विधाति निषेधः प्रवर्तते । स्थानिवद्भावोऽत्र न भवति, ततश्च ङीप् न भवतीति । **भवेदिति**—भू- धातोर्लिङ्, तस्य यासुट् । भूयास् इति स्थिते कर्तरि शप्,सार्वधातुकेति गुणः । इतश्चेति इकार लोपः । भवयास् त् इति जाते यासः इय्, आद्गुणः, यकारस्य लोपो व्योरिति लोपः । **भवेतामिति**-तसस्तामादेशः । अन्यत् सर्वं पूर्ववदेव । **झेर्जुस्**-लिङादेशस्य झेर्जुस् स्यात् । जुसो जकारस्य चुटू इतीत्संज्ञा, सस्य रुत्वविसर्गौ ।

मध्यमनोरमापूरणी

लिङः सलोप इति—रुदादिभ्यः सार्वधातुके इति सूत्रात् सार्वधातुके इत्यनुवर्तते । तेन सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोप इत्यर्थः । **भवेयुः**—भूधातोः विधिनिमन्त्रणेति लिङ् । लिङः स्थाने झिः । झेर्जुस् इति जुसि अनुबन्धलोपे सार्वधातुकत्वात् शपि, यासुट् परस्मैपदेष्विति यासुट् । सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणेऽवादेशे भवयास् उस् । अतो येयः इति यासः इय्। आद्गुणः इति गुणे सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

४५५. लिङ् सम्बन्धी परस्मैपद को यासुट् का आगम हो और वह ङित् हो ।

४५६. लिङ् लकार के अनन्त्य सार्वधातुक स् का लोप होता है ।

४५७. अदन्त से परे सार्वधातुक के अवयव यास् को इय् आदेश होता है ।
(या को इय् होता है यह पक्षान्तर सिद्धान्तकौमुदी में स्वीकृत है ।)

४५८. लिङादेश झि को जुस् आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४५९. लिङाशिषि ३।४।११६।। आशिषि लिङस्तिङार्धधातुकसंज्ञः स्यात् ।

४६०. किदाशिषि ३।४।१०४।। आशिषि लिङो यासुट् कित् । स्कोरिति सलोपः।

४६१. क्क्ङिति च १।१।५।। गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासुः । भूयाः । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व। भूयास्म ।

४६२. लुङ् ३।२।११०।। भूतार्थे धातोर्लुङ् ।

४६३. माङि लुङ् ३।३।१७५।। सर्वलकारापवादः ।

४६४. स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६।। स्मोत्तरे माङि लङ् स्याल्लुङ् च ।

४६५. च्लि लुङि ३।१।४३।। शबाद्यपवादः ।

४६६. च्लेः सिच् ३।१।४४।।

मध्यमनोरमा

भवेतमिति- थसस्तमादेशः । **भवेतेति**—थस्य तादेशः । **भवेयमिति**- मिपोऽमादेशः । **भवेव भवेमेति**- वसमसोः सकारस्य नित्यं ङित इति लोपः । **क्क्ङिति च**-अत्र ककारात् पूर्वं चर्त्वेन गकारोऽपि प्रश्लिष्यते । अत एवाह गिति इति । तेन ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः, जिष्णुः, अत्र गिति गुणो न । **इग्लक्षणे इति** -तेन लैगवायनः, अत्र लिगुशब्दात् फकि फस्य आयन्नादेशः, तद्धितेष्वचामादेरित्यादि वृद्धिगुणयोरिङ्निमित्तत्वाभावान्न निषेधः, किति अचो वृद्धिविधानात् उकारस्य गुणविधानाच्च । **भूयादिति**- आशीर्लिङि भू ति इति स्थिते तिपो यासुट् । अशीर्लिङ आर्धधातुकत्वात् तस्मिन् परतः शप् न । इतश्चेति इकारलोपः, स्कोरिति सकारलोपः। सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः प्राप्तः, तस्य क्क्ङिति चेति निषेधः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भूयाः इति—भू धातोः आशीर्लिङि तस्य सिपि आदेशे 'यासुट् परस्मैपदेषु' इति यासुटि किदाशिषि इति कित्त्वे, लिङाशिषि इति आर्धधातुकसंज्ञा, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति प्राप्तस्य गुणस्य क्क्ङिति चेति निषेधे भूयास्सि इति, इतश्चेति इकारलोपे स्कोरिति सलोपे शेषस्य सस्य रुत्वविसर्गौ, भूयाः इति ।

हिन्दी

४५९. आशिष् लिङ् के तिङ् को आर्धधातुक संज्ञा होती है ।

४६०. आशिष् लिङ् का यासुट् कित् होता है ।

४६१. गित् कित् और ङित् निमित्तक इग्लक्षण (इक् को होने वाले) गुण वृद्धि नहीं होते हैं ।

४६२. भूतार्थ वृत्ति धातु से लुङ् लकार हो ।

४६३. माङ् उपपद होने पर धातु से लुङ् होता है ।

४६४. स्म उत्तर रहते, माङ् उपपद होने पर धातु से लुङ् लकार और लङ् होता है ।

४६५. लुङ् परे रहते धातु से च्लि प्रत्यय होता है ।

४६६. च्लि को सिच् आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४६७. गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २।४।७७।। एभ्यः सिचो लुक् । गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते ।

४६८. भूसुवोस्तिङि ७।३।८८।। भू सू एतयोः सार्वधातुके तिङि गुणो न । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभूः । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ।

४६९. न माङ्योगे ६।४।७४।। अडाटौ न स्तः । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत्। मा स्म भूत् ।

४७०. लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३९।। हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यदर्थाद् धातोर्लृङ् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् ।

मध्यमनोरमा

सर्वलकारापवाद इति—मास्त्वित्यादौ निषेधार्थको मा शब्दः, न तु माङ् । **च्लि लुङि**—इकार उच्चारणार्थः । चकारः चुटू इति इत्संज्ञकः । **गातिस्था**—अत्र गातिक्रियया विकरणशून्यस्य निर्देशाल्लुग्विकरण इण आदेशो गा- धातुर्गृह्यते । एवं लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग् विकरण-स्यैव ग्रहणमिति परिभाषया भूसाहचर्याच्च भौवादिकस्यैव पा पान इत्यस्य ग्रहणम्, न तु आदादिकस्य पा रक्षणे इत्यस्य । तदेतदाह **गापावित्यादि** । **अभूदिति**—सिचो लुकि भू इत्यस्य सार्वधातुकेति गुणः प्राप्तस्तस्य भूसुवोरिति निषेधः । **अभूवन्निति**—झोऽन्तः, इतश्चेतीकारलोपः । भुवो वुग् लुङ्लिटोरिति वुगागमः । **हेतुहेतुमद्भावेति**—हेतुः कारणं हेतुमत् कार्यं, तयोः भावः हेतुहेतुमद्भावः । यथा सुवृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षम-भविष्यत् । अत्र सुवृष्टिभवनं हेतुः, सुभिक्षभवनं कार्यम्, तत्र हेतुहेतुमतोर्लिङ्विधानात् भविष्यत्यर्थे हेतुहेतुमतोर्लिङ् । **क्रियाया अनिष्पत्ताविति**—अत्र क्रियाया भवनरूपाया अनिष्पत्तिं चेच्छब्दः तदा शब्दश्च कथयतः ।

मध्यमनोरमापूरणी

माङि लुङिति—माङि प्रयुज्यमाने धातोर्लुङ् इत्यर्थः । **अभूरिति**—भू सिप् इति स्थिते लुङ्-लङ्लृङिति अटि इतश्चेतीकारलोपे च्लि लुङीति च्लौ च्लेः सिच् इति सिच्यनुबन्धलोपे अभू स् स् इति । गातिस्थेति सिचो लुकि सार्वधातुकेति प्राप्तस्य गुणस्य भूसुवोस्तिङि इति निषेधः। सस्य रुत्वविसर्गौ । **अभूवमिति**—मिपः तस्थसिति अमादेशे भुवो वुगिति वुगागमेऽटि अभूव् अम् इति, च्लि लुङि इति च्लिप्रत्यये च्लेः सिच् इति सिचि गातिस्थेति सिचो लुकि अभूवम् इति । **मा भवान् भूदिति**—माङि उपपदे भूधातोः माङि लुङिति लुङि तस्य तिबादेशे लुङ्लङिति प्राप्तोऽडागमः न माङ् योगे इति निषिध्यते । इतश्चेति इकारलोपः, च्लिः, तस्य

हिन्दी

४६७. गा स्था घुसंज्ञक पा और भू धातु से परे सिच् का लुक् हो परस्मैपदों में ।

४६८. भू और सू धातु को सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण नहीं होता है ।

४६९. माङ् के योग में अट् और आट् आगम नहीं हों ।

४७०. हेतुहेतुमद्भाव आदि लिङ् का निमित्त होने पर भविष्यत् अर्थवाले धातु से लृङ् लकार हो क्रिया की अनिष्पत्ति का बोध होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् । इत्यादि ज्ञेयम् ।

प्रणिभवतीत्यादौ उपसर्गाणामसमस्तत्त्वेऽपि संहिता नित्या । तदुक्तम्—

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥१॥

सत्ताद्यर्थनिर्देशश्चोपलक्षणम् । यागात् स्वर्गो भवतीत्यादौ उत्पद्यत इत्याद्यर्थात् । उपसर्गास्त्वर्थविशेषस्य द्योतकाः । प्रभवति । पराभवति । सम्भवति । अनुभवति। अभिभवति । उद्भवति । परिभवति इत्यादौ विलक्षणार्थावगतेः । उक्तञ्च—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहार परिहारवत् ॥

२. अत् सातत्यगमने । अतति । अततः । अतन्ति । अतसि । अतथः । अतथ। अतामि । अतावः । अतामः ।

मध्यमनोरमा

उपलक्षणमिति—इदञ्च सत्ताद्यर्थनिर्देशं कृतवतो भीमसेनस्यापि सम्मतमित्यत्र कुर्द खुर्द गुर्द क्रीडायामेवेत्येवकारो ज्ञापकः । **अत् सातत्यगमने**—सातत्येन नैरन्तर्येण गमने । अततीति-अत् धातोस्तिप्, तस्मिन् परतः शप् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सिच्, सिचो लुक्, भूसुवोरिति गुणनिषेधः । **मा स्म भवदित्यत्र** स्मोत्तरे लङ् चेति लङि न माङ योगे इति अटो निषेधः, तिपि शपि गुणेऽवादेशे इकारलोपे च रूपम् । **अभविष्यत् इति-** भू धातोः लिङ्निमित्ते इति लृङ्, तिप्, स्यतासीति स्यप्रत्यये आर्धधातुकं शेष इति आर्धधातुकत्वादार्धधातुकस्येड् इति इटि, अडागमे, अभूइस्यति इति, गुणेऽवादेशे आदेश-प्रत्यययोरिति षत्वे अभविष्यदिति । **अभविष्याव**—लृङ्, वस्- प्रत्ययः, स्यः, आर्धधातुकत्वादिट्, अडागमः, गुणोऽवादेशः, अतो दीर्घ इति दीर्घः, नित्यं ङित इति सलोपः, षत्वम्। **प्रणिभवतीति**—णत्वविधायकं शास्त्रं संहिताऽधिकारेऽस्ति । प्रणिभवतीत्यादौ संहिता विवक्षायां णत्वं स्यात्, संहिताया अविवक्षायां णत्वं न स्यात्, तथा च प्रणिभवति, प्रनिभवति इति रूपद्वयं सिद्ध्येत् एवेति विभाषा कखादावषान्त इत्यनेन किमर्थं णत्वविकल्पः इति प्रश्ने उक्तम्- उपसर्गाणामसमस्तत्वेऽपि संहिता नित्या । अतः विकल्पेन णत्वाय विभाषा कखादाविति सूत्रम् । **उपसर्गास्त्विति**—धातूनामेव अर्थवाचकत्वम् , उपसर्गास्तु अनेकार्थक-धातोरर्थविशेषस्य द्योतका एव न वाचकाः इति भावः । प्रभवति पराभवतीत्यादौ उत्पत्ति-पराजयरूपौ अर्थौ भूधातोरेव, किन्तु सोऽर्थविशेषः प्र परा इत्युपसर्गाभ्यां द्योत्यते । **एतदेवोक्तम्-** उसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते इति कारिकया । अर्थस्तु स्पष्ट एव । **अतामीति**—अत् धातोः लटः मिपि शपि अतो दीर्घो यञीति दीर्घः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४७१. अत आदेः ७।४।७०॥ अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्याल्लिटि । पररूपापवादः । आत । आततुः । आतुः । आतिथ । आतथुः । आत । आत। आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अततु ।

४७२. आडजादीनाम् ६।४।७२॥ अजादेरङ्गस्याड् लुङ्लङ्लृङ्क्षु । आतत् । अतेत् । अत्यात् । लुङि सिचि इडागमे कृते ।

४७३. अस्तिसिचोऽपृक्ते ७।३।९६॥ विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्यापृक्तस्य हल ईडागमः ।

४७४. इट ईटि ८।२।२८॥ इटः परस्य सस्य लोपः स्यादीटि । वा. सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः । आतीत् । आतिष्टाम् ।

मध्यमनोरमा

आतेति—लिट्, तिप्, तस्य णल् । अत् इत्यस्य द्वित्वम् । अत्र द्वितीयस्यैकाचोऽभावेन अजादेर्द्वितीयस्येत्यस्याप्रवृत्तौ प्रथमस्यैव एकाचो द्वित्वम् । हलादिः शेष इति तकार लोपः। आदेर्हलोऽभावेऽपि अभ्यासस्य हलो लोपो भवत्येवेत्यवोचाम । अ अत् अ इति स्थिते अत आदेरिति अभ्यासाकारस्य दीर्घः अतो गुण इत्यस्य बाधनार्थः । ततः सवर्णदीर्घः । **आतिथेति**—आर्धधातुकस्येतीट् । **आतत् इति**—लङस्तिप्, इतश्चेतीकारलोपः, शप्, आडागमः, आटश्चेति वृद्धिः । **अतेत् इति**—लिङस्तिप्, इकारलोपः, यासुडागमः, शप्, अतो येय इति यासः इय्, आद्गुणः, लोपो व्योर्वलीति यकारलोपः । **अत्यादिति**—आशीर्लिङि स्कोरिति यासुटः सस्य लोपः । **अस्तिसिचः**—सिच् च् अस् च् सिचस्, ततः अस्ति च सिचस् अस्तिसिचस् । सौत्रत्वात् पञ्चम्या लुक्, चकारस्य कुत्वाभावश्च । **अत आह**—विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्चेति । तेन अभूदित्यत्र गातिस्थेति सिचो लुकि सिचोऽविद्यमानत्वात् स्थानिवद्भावेन सिचः परत्वेन तिपो न ईट् । अस्तेर्भूरिति सूत्रेण लुङि परे असधातोर्भ्वादिशे गातिस्थेति सिचो लुकि स्थानिवद्भावेन भू धातोरस्तितया ततः परस्य तिपो न ईट्, अस्तेर्विद्यमानत्वाऽभावात् । भ्वादेशेन तस्य विद्यमानत्वापहारात् । **आतीदिति**—अत्धातोः लुङस्तिप्, इतश्चेतीकारलोपः, च्लिः, तस्य सिच्, आडजादीनामित्याट्, आटश्चेति वृद्धिः, आत् स् त् इति जाते सिचः आर्धधातुकस्येतीट्। अस्तिसिच इति सिचः परस्य तिपस्तकारस्य ईट्, आत् इ स् ईत् इति जाते इट ईटीति सस्य लोपः । अत्र सवर्णदीर्घे कर्तव्ये सिज्लोपस्यासिद्धत्वे प्राप्ते 'सिज्लोप एकादेशे सिद्ध' इति असिद्धत्वनिषेधः, अतः सवर्णदीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अतितेति—अत् धातोः लुटः तिप्, लुटः प्रथमस्येति डादेशः, तासिः, आर्धधातुकत्वात् इट्, डित्त्वसामर्थ्यात् टेरासः लोपे अतितेति ।

हिन्दी

४७१. अभ्याससम्बन्धी आदि अत् को दीर्घ हो लिट् परे रहते ।

४७२. अजादि अङ्ग को आट्-आगम होता है, लुङ्लङ्लृङ् परे रहते ।

४७३. विद्यमान सिच् और अस् धातु से परे अपृक्त हल् को ईट् आगम होता है ।

४७४. इट् से परे स् का लोप हो ईट् परे रहने पर । वा. एकादेश कर्त्तव्य में सिज्लोप सिद्ध रहता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४७५. सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३।४।१०९॥ सिचोऽभ्यस्ताद् विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस्। आतिषुः। आतीः। आतिष्टम्। आतिष्ट। आतिषम्। आतिष्व। आतिष्म। आतिष्यत्। एवम् अव् रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु। अवतीत्यादि। षिध् गत्याम्।

४७६. पुगन्तलघूपधस्य च ७।३।८६॥ पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। धात्वादेरिति सः। सेधति। सिषेध।

का. सेक्सृप्सृस्तृसृजस्तृस्त्यान्ये दन्त्याजन्तसादयः।
एकाचः षोपदेशाः स्युः ष्वष्क् स्विद्स्वद्स्वञ्ज्स्वप्स्मिङः॥

दन्त्यः केवलदन्त्यो न तु दन्तोष्ठजोऽपि। ष्वष्कादीनां पृथक् ग्रहणात्।

मध्यमनोरमा

आतिष्टामिति— सिचः आर्द्धधातुकस्येति इट्, तासित्यस्य अपृक्तत्वाभावात् ईट् न, सस्य आदेशप्रत्यययोरिति षः। ष्टुना ष्टुरिति तकारस्य ष्टुत्वम्। **आतीरिति**— सिप इकारस्य इतश्चेति लोपः। पूर्ववत् सिच इट्, सिचः परस्य सकारस्य ईट्, इट ईटीति सिचो लोपः, दीर्घः, सस्य रुत्वविसर्गौ। **आतिषमिति** मिपोऽम्। **पुगन्तस्येति**— हेपयति, अत्र ह्री- धातोः णिचि पुगागमे ह्रीप् इत्यस्य णिचि परतः ईकारस्य गुणः लघूपधत्वाभावान्न प्राप्नोतीति विशिष्य पुगन्तस्य गुणो विहितः। लघ्वी उपधा यस्य स लघूपधः। **सिषेधेति**— सिध् णल् इति स्थिते सिध् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे सिसिध् अ इति जाते सिधः सकारस्य षत्वं[1], पुगन्तस्येति गुणः। धातुपाठे पाणिनिना तालव्यादिदन्त्यादिवत् षकारादयः सकारादयश्च व्यवस्थयैव पठिताः, स च पाठः इदानीं परिभ्रष्टः। साध् धातुष्षकारादिः, धातुपाठे तु सम्प्रति राध्साध् संसिद्धाविति सकारादिरेव दृश्यते। अतो लक्षणमुखेन **व्यवस्थापयति- सेगिति**। दन्त्यश्च अच् च दन्त्याचौ, तौ अन्तौ अव्यवहितपरौ यस्य स दन्त्याजन्तः, दन्त्याजन्तश्चासौ सश्च दन्त्याजन्तसः, स आदिर्येषां धातूनां ते दन्त्याजन्तसादयः। दन्त्याजन्तसकारादयश्च धातवः एकाचः षोपदेशाः बोध्याः। यथा स्तौति षोपदेशः। अत्र दन्त्यस्तकारः, स अन्तस्तादृशः सकारः आदिभूतः स्तुधातोः। तेनु तुष्टुवुः, अत्र सकारस्यादेशरूपत्वात् षत्वम्। तथा सिध्धातुः अजन्तसादिः, अच् इकारस्तदन्तः सकारोऽस्यादिभूतः,तेन सिषेधेत्यत्र षत्वम्। एवञ्च दन्त्याजन्तसादिभिन्नो न षोपदेशः। यथा स्कुदि धातुः, अस्यादिभूतः सकारो न दन्त्यान्तो न वा अजन्तः किन्तु ककारान्तः। तेन चुस्कुन्दे इत्यत्र सकारस्य षोपदेशरूपत्वाभावादादेशप्रत्यययोरिति षत्वं न। **एकाच इति किम्**— सूचसूत्रधातू चुरादौ त्वदन्तौ, तयोरजन्तसादित्वेऽपि एकाच्त्वाभावात् न षोपदेशत्वम्। तेन सोसूच्यते सोसूत्र्यते अत्र षत्वं न। दन्त्याजन्तसादय एकाचोऽपि केचन

हिन्दी

४७५. सिच् अभ्यस्तसंज्ञक व विद् धातु से परे ङित् लकार सम्बन्धी झि को जुस् होता है।
४७६. पुगन्त व लघूपध अङ्ग को गुण हो सार्वधातुक व आर्धधातुक परे रहते।

1. षत्वात् पूर्वं गुणो वक्तव्यः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४७७. **असंयोगाल्लिट् कित् १।२।५॥ असंयोगात् परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । सिषिधतुः । सिषिधुः । सिषेधिथ । सिषिधथुः । सिषिध । सिषेध । सिषिधिव। सिषिधिम । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत्। असेधिष्यत् ।**

४७८. सात् पदाद्योः ८।३।१११॥ **सातेः पदादेश्च सस्य षो न । इति निषेधे प्राप्ते ।**

४७९. उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ८।३।६५॥ उपसर्गस्थान्निमित्तादेषां सस्य षः ।

मध्यमनोरमा

षोपदेशा न, तान्वारयितुमाह– **सेगिति**—सेक् गतौ सृप्लृ गतौ सृ स्तृञ् आच्छादने सृज् विसर्गे स्तृञ् आच्छादने स्त्यै शब्दसंघातयोः, एभ्योऽन्ये दन्त्याजन्तसादयः एकाचः षोपदेशाः । तेन सेक् सृप् सृ सृज् एतेषामजन्तसादित्वेऽपि स्तृञ् स्तृ स्त्या एतेषां दन्त्यान्त्यसकारादित्वेऽपि न षोपदेशत्वम् । किञ्च ष्वष्क् गतौ ञिष्विदा गात्ररक्षणे स्वद् आस्वादने ष्वञ्ज् परिष्वङ्गे ञिष्वप् शये स्मिङ् ईषद्धसने एते षोपदेशाः । एते दन्त्याजन्तसादयो न भवन्तीति पृथगुपात्ताः । नन्वेषु स्मिङ् धातुः न दन्त्याजन्तसादिः किन्तु अस्यादिभूतः सकारो मान्तः । अतः तस्य षोपदेशाद्यर्थं पृथगुपादानं युक्तम् । ष्वष्कादीनान्तु आदिभूतः सकारो दन्त्यान्त्य एव, वकारस्य दन्तोष्ठमिति वकारस्य दन्त्यत्वात् । तथा च ष्वष्कादीनां पृथगुपादानं व्यर्थमिति चेदत्राह– **दन्त्यः केवलदन्त्य इति** । एवञ्च वकारो न केवलदन्त्यः किन्तु दन्त्योष्ठ्यः । अतः ष्वष्कादीनां पृथगुपादानमेव। तेन **असिस्वदत्** अत्र षत्वं न । स्वाद् आस्वादने, णिजन्ताल्लुङ्, चङि द्वित्वम्, अभ्यासहस्वः। हलादिशेषः, णौ चङ्युपधाहस्वः, सन्यत इति अभ्यासस्येत्वम् । अत्र इण उत्तरस्यापि सकारस्य षोपदेशरूपत्वाभावान्न षत्वम् । स्वाद्धातुर्हि दन्त्योष्ठ्यवकारान्तसकारादिः, ष्वष्कादिमध्ये न गणितश्चेति न तस्य षोपदेशत्वम् । ष्वष्कादौ हि हस्वोपधः स्वद्धातुः पठितो न तु दीर्घोपधः स्वाद्धातुरिति । **सिषिधतुरिति**—द्वित्वादौ षत्वे जाते सिषिध् अतुस् इति स्थिते पुगन्तलघूपधस्येति गुणे प्राप्ते असंयोगा दिति अतुसः कित्त्वम्, असंयोगधकारस्तस्मात् परः अपित् लिट् अतुस् । ततश्च क्क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **एवं सिषिधुः । सिषेधिथेति**— थलः आर्धधातुकस्येड् वलादेरिति इट् । सिपः पित्त्वेन तत्स्थानिकस्य थलः पित्त्वादपितः कित्त्वं विहितमिह थलो न भवति । तेन गुणो भवत्येव । **सिषिधेति**—मध्यमपुरुषबहुवचने थस्य अकारः, तस्य अपित्त्वात् कित्त्वं, तेन गुणनिषेधः । **सिषेधेति** उत्तमपुरुषे मिपः णल्, तस्य स्थानिवद्भावेन पित्त्वात् कित्त्वन्न । अतो न गुणनिषेधः । **सिषिधिवेति**—आर्धधातुकस्येति इट् । **सेधतु इति**—शप्, एरुः । **असेधत् इति**—लङस्तिप्, शप्, इतश्चेति इकारलोपः ।**सिध्यात्-** यासुटः सकारस्य स्कोरिति लोपः । **असेधीत्**—लुङि च्लेः सिच्, तस्य इट्, तिपः इकारलोपे ईडागमः अस्तिसिच इति सूत्रेण, इट ईटीति सलोपः, असेधीत् इति ।

हिन्दी

४७७. असंयोग से परे अपित् लिट् कित् होता है ।

४७८. साति के स् और पदादि स् को ष् नहीं होता है ।

४७९. उपसर्गस्थ निमित्त से परे सुनोत्यादि के स् को षत्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४८०. सदिरप्रतेः ८।३।६६।। प्रतिभिन्नादुपसर्गात् सदेः सस्य षः ।
४८१. स्तन्भेः ८।३।६७।। सौत्रस्य षः ।
४८२. अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः ८।३।६८।। अवात् स्तन्भेरेतयोरर्थयोः सस्य षः।
४८३. वेश्च स्वनो भोजने ८।३।६९।। व्यवाभ्यां स्वनतेः सस्य षः ।
४८४. परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञाम् ८।३।७०।। परिनिविभ्यः परेषामेषां सस्य षः । निषेधति ।
४८५. प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ८।३।६३।। सितशब्दात् प्राक् ये सुनोत्यादयस्तेषामड्व्यवायेऽपि सस्य षः । न्यषेधत् । न्यषेधीत् । न्यषेधिष्यत् ।

मध्यमनोरमा

निषेधे प्राप्ते— निषेधतीति— निपूर्वकः सिध् धातुस्तस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वे प्राप्ते तस्य षत्वस्य सात् पदाद्योरिति निषेधे प्राप्ते इत्यर्थः । सेधतीति पदं तस्यादिभूतस्सकारस्तस्य षत्वन्नेति निषेधे प्राप्ते तदेव षत्वमग्रिमसूत्रैः प्रतिप्रसूयत इति भावः । **उपसर्गात् सुनोतीति—** सेनयेति णिजन्तो नामधातुः, सेनया अभियाति अभिषेणयति, सेनाशब्दात् सत्यापपाशेति णिचि इष्ठवद्भावात् टिलोपे सति अभिसेन् इ इति णिजन्तं, तस्मात् अभिषेणयति इति । **सेधेति-** सिध्धातोः शपा निर्देशः, तेन दैवादिकस्य न ग्रहणम् । परिसिद्ध्यतीति । उपसर्गादित्यस्य उपसर्गस्थादित्यर्थः । गृहा दारादिवत् तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यम्, इत्याशयेनाह– उपसर्गस्थान्निमित्तादिति । षत्वनिमित्तम् इण् कवर्गश्च, तत्र उपसर्गस्थकवर्गस्याभावात् प्रकृते इण् एव निमित्तपदेन गृह्यते । तेन प्रसेधतीत्यत्र न षत्वम्। **स्तम्भेः-सौत्रस्येति—** स्तन्भुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्चेति सूत्रेण निर्दिष्टस्य रोधनार्थस्य न तु ष्टभि प्रतिष्टम्भे इत्यस्येति भावः । एतच्च लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषया गृह्यते । सौत्रो हि धातुर्नकारोपध इति प्रतिपदोक्तः । ष्टभिस्तु इदित्त्वान्नुमि लाक्षणिक स्तन्भः । तेन विष्टम्भतीत्यत्रैव षत्वं न तु विस्तम्भते इत्यत्र । उदस्थास्तम्भोरिति सूत्रे तु मकारोपधग्रहणेन उभयोरपि ग्रहणात्, मकारस्योभयत्र लाक्षणिकत्वात् । **प्राक् सितात्—** सितशब्दात् प्राक् सेव स्वनस्तम्भसद् एते चत्वारः, एकादश सुनोत्यादयः, एषां पञ्चदशानाम् अडा व्यवायेऽपि

मध्यमनोरमापूरणी

न्यषेधीदिति— निपूर्वकात् सिध्धातोर्लुङ्, तिप्, इतश्चेति इकारलोपः, सिच्, इट्, अस्तिसिच इति ईट्, अडागमः, यण्, इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः, प्राक्सितादिति षत्वम् । **न्यषेधिष्यत्—** लृङ्, तिप्, स्यः, इट्, अडागमः, यण्, इकारलोपः, प्राक् सितादिति षत्वम्, स्येति सकारस्यादेश इति षत्वम् ।

हिन्दी

४८०. प्रतिभिन्न उपसर्ग से परे सद् के स को ष होता है ।
४८१. उपसर्गस्थ निमित्त से परे सौत्र स्तन्भ धातु के स को ष होता है ।
४८२. अव से परे स्तन्भ् के स् को ष् हो आलम्बन और सामीप्य अर्थ में ।
४८३. वि और अव से परे स्वन् के स् को ष् हो, भोजन अर्थ में ।
४८४. परि नि और वि उपसर्ग से परे सेव आदि धातुओं के स् को ष् हो ।
४८५. सित से पूर्व सुनोत्यादि के स् को अट् के व्यवधान में भी षत्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४८६. स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ८।३।६४।। प्राक् सितात् स्थादिष्वभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्वं स्यात्, एषामेव चाभ्यासस्य न तु सुनोत्यादीनाम् । निषिषेध । निषिषिधतुः ।

४८७. सेधतेर्गतौ ८।३।११३।। गत्यर्थस्य सेधतेः सस्य षो न । गङ्गां विसेधति। एवं चिती संज्ञाने । शुच् शोके । गद् व्यक्तायां वाचि ।

४८८. नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्राति प्सातिवपतिवहति शाम्यतिचिनो- तिदेग्धिषु च ८।४।१७।। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य नेर्णत्वं स्यात् गदनदादिषु परेषु । प्रणिगदति ।

४८९. कुहोश्चुः ७।४।६२।। अभ्यासकवर्गहकारयोश्च वर्गादेशः ।

४९०. अत उपधायाः ७।२।११६।। उपधाया अतो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये । जगाद । जगदतुः । जगदुः । जगदिथ । जगदथुः । जगद ।

मध्यमनोरमा

षत्वम्। **स्यादिष्वभ्यासेन**—स्थासेनयसेध्सिच् सञ्ज्स्वञ्ज्सद्स्तम्भ स्वन्सेव् इति दशधातवः, एषामभ्यासव्यवधानेऽपि षत्वम् । निषिषिधेत्यत्र अभ्यासादुत्तरस्य सस्य षः । अत्र यद्यपि अनभ्याससकारस्य इण उत्तरत्वादादेश प्रत्यययोरिति सूत्रेणैव षत्वं सिद्धं तथापि अधिपूर्वस्य तस्थावित्यस्य सकारो न इण् परः इति तत्रादेशप्रत्यययोरित्यस्याप्रवृत्तेस्तत्र षत्वार्थमभ्यास-व्यवायेऽपीति बोध्यम् । 'अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ' । **अभ्यासस्येति**– अभ्यासे सकारस्य षत्वं तु उपसर्गात् सुनोतीति सूत्रेणैव सिद्धम्, अतः सिद्धस्य पुनर्विधानं नियमाय, स एषामेवाभ्यासस्य षत्वं न तु सुनोत्यादीनाम् । तेन अभिसुसावेत्यादौ अभ्यासस्य न षत्वम्।

मध्यमनोरमापूरणी

विसेधतीत्यत्र उपसर्गात् इति प्राप्तं सेधतेर्गताविति निषिध्यते ।**प्रणिगदति**— प्र नि पूर्वकात् गद्धातोर्लट्, तिप्,शप्, नेगर्दनदेति णत्वम् । **जगादेति**—गदेर्लिटि तिपि णलि लिटि धातो-रिति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे ग गद् अ इति, कुहोश्चुरिति अभ्यासगकारस्य जकारः, अत उपधाया इति **उपधावृद्धिः** । **जगदिथेति**—गद् थ इति जाते लिट् चेति आर्धधातुकत्वादार्धधातुकस्येति इट्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, हलादिशेषे कुहोश्चुरिति जः ।

हिन्दी

४८६. सित से पूर्व स्था आदि धातुओं में अभ्यास के व्यवधान में भी षत्व हो, तथा इन्हीं को अभ्यासव्यवधान में षत्व हो, सुनोत्यादि को नहीं ।

४८७. गत्यर्थक सिध् के स् को षत्व नहीं होता है ।

४८८. उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के न् को ण् होता है गदनदादि धातु परे रहते ।

४८९. अभ्यास कवर्ग और ह को चवर्ग आदेश होता है ।

४९०. उपधा अ को वृद्धि हो, ञित् और णित् प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४९१. णलुत्तमो वा ७।१।९१।। णित् स्यात् । जगाद, जगद । गदिता । गदिष्यति। गदतु । अगदत् । गदेत् । गद्यात् ।
४९२. अतो हलादेर्लघोः ७।२।७।। हलादेर्लघोरकारस्य वृद्धिर्वेडादौ सिचि परस्मैपदेषु । अगादीत्, अगदीत् । अगदिष्यत् ।
४९३. णो नः ६।१।६५।। धात्वादेर्णस्य नः । णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध् नन्द्नक्कनॄ नृतः ।
४९४. उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८।४।१४।। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य णोपदेशस्य णः स्यात् समासेऽपि । प्रणदति । प्रणिनदति । ननाद ।
४९५. अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६।४।१२०।। लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽसंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि । नेदतुः । नेदुः ।

मध्यमनोरमा

णोपदेशास्त्विति—नर्द् शब्दे, नट् अवस्यन्दने, चुरादिस्तस्य णिचि नाटीति, नाथृ नाधृ याच्ञादौ, टुनदि समृद्धौ, नक्क नाशने, नॄ नये, नृती गात्रविक्षेपे एभ्योऽष्टभ्यो भिन्ना नकारादयो धातवो णोपदेशाः । **उपसर्गादसमासेऽपि**—उपसर्गादित्यस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादित्यर्थः । णत्वस्य निमित्तं रेफः षकारश्च । **प्रणदतीत्यत्र** उपसर्गनिमित्तं रेफः, तस्मात् परस्य णत्वम् । **प्रणिनदति इति**—नेर्गदिति नेर्णत्वम् । तेन व्यवधानात् उपसर्गस्थरेफात् परत्वाभावात् धातोर्नस्य न णत्वम् । **अत एकहल्मध्ये**—एकशब्दोऽत्र असहायवचनः । एकयोर्हलोर्मध्ये इत्यर्थस्तेन असंयुक्तहल्मध्ये इति लब्धम् । **लिण्निमित्तेति**– लिट् निमित्तं यस्य स लिण्निमित्तः, लिण्निमित्तश्चासौ आदेशश्च लिण्निमित्तादेशः, लिण्निमित्तादेशः आदिर्यस्य तत् लिण्निमित्तादेशादिकम्, तद्भिन्नं यदङ्गमित्यर्थः । **नेदतुरिति**—द्वित्वादौ सति न नद् अतुस् इति स्थिते, अत्र ननद् इत्यङ्गं तस्यादिभूतो नकारः, स लिण्निमित्तादेशो न भवति, यद्यपि णो न इति णकारस्य स्थाने नकारो जातोऽस्ति तथापि नासौ लिटि परतो विहितः । अतो ननद्

मध्यमनोरमापूरणी

जगाद-जगदेति—मिपो णलि द्वित्वादिषु कृतेषु जगद् अ इति । णलुत्तमो वेति णलो णित्वे उपधावृद्धिः, णित्वाभावे वृद्धेरभावः । **गदितेति**—लुटि तिपि डादेशे तास् प्रत्ययः, इट्, टेर्लोपः । **गदिष्यतीति**—लृटस्तिप्, स्यः, इट्, षत्वम् । **गदेत्**—विधिलिङि तिप्, यासुट्, शप्, यासः इय्, गुणः, लोपो व्योरिति यलोपः । तिप इकारलोपः । **अगादीत् इति**—गदेर्लुङि तिप्, इकारलोपः, च्लिः, च्लेः सिच्, आर्धधातुकः इट्, अस्तीति ईट्, अडागमः, अगद् इस् ईत् इति, अतो हलादेरिति उपधाकारस्य वृद्धिः, इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्ण दीर्घः। वृद्ध्यभावेऽ **गदीत् इति** ।

हिन्दी

४९१. उत्तम पुरुष का णल् णित् हो विकल्प से ।
४९२. हलादि लघुसंज्ञक अकार को वृद्धि हो इडादि परस्मैपद सिच् परे, विकल्प से ।
४९३. धातु के आदि ण् को न् होता है ।
४९४. उपसर्गस्थनिमित्त से परे णोपदेश धातु के न को ण् हो, समास या असमास में भी।
४९५. लिट्निमित्तक आदेशादि न हुआ है ऐसे अङ्ग के अवयव असंयुक्त हल्मध्यस्थ अ को एत्व हो और अभ्यास का लोप हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४९६. थलि च सेटि ६।४।१२१।। इड्वति थलि प्रागुक्तं स्यात् । नेदिथ । नेदथुः नेद । ननाद, ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत्। नदेत्। नद्यात् । अनादीत्, अनदीत् । अनदिष्यत् । श्च्युतिर् क्षरणे । वा. इर इत्संज्ञा वाच्या।

४९७. शर्पूर्वाः खयः ७।४।६१।। शिष्यन्ते अभ्यासस्य । हलादिः शेषापवादः । चुश्च्योत ।

४९८. इरितो वा ३।१।५७।। इरितो धातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु । अश्च्युतत्, अश्च्योतीत् । यकाररहितोऽप्ययमित्येके । श्चोतति । अश्चोतत् । अश्चोतीत् । श्च्युतिर् आसेचने- श्च्योतति । टुनदि समृद्धौ । ४९९. आदिर्ञिटुडवः १।३।५।। उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ।

मध्यमनोरमा

इति अङ्गं लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति । तस्यावयवयोः नकारदकारयोरसंयुक्तयोर्मध्ये स्थितस्य एत्वमभ्यासलोपश्च । अतुसः असंयोगाल्लिट् इति कित्त्वम् । एवं नेदुरिति । **नेदिथेति-** थलः सिप्स्थानिकत्वात् पित्त्वेनासंयोगादित्यनेन कित्त्वाभावादत एकहल्मध्ये इत्यप्राप्तमेत्वमभ्यासलोपश्च थलि च सेडिति सूत्रेण विधीयते । **नेद इति**—झस्य अकारादेशस्तस्यापित्त्वात् कित्त्वेन एत्वाभ्यासलोपौ। **ननादेति**—णलुत्तमो वेति णित्त्वविकल्पात् णित्त्वपक्षे अत उपधाया इति वृद्धिः । णित्त्वाभावे **ननदेति** । मिपः पित्त्वात्तदादेशस्य णलः कित्त्वाभावादेत्वादिकं न। **अनादीदिति-** अतो हलादेर्लघोरिति वृद्धिविकल्पः । वृद्ध्यभावे **अनदीदिति । इर इत्संज्ञेति-** इर् इति समुदायस्य इत्संज्ञा विधीयते । ननु इकारस्य उपदेशेऽजनुनासिक इतीत्संज्ञाऽस्तु रेफस्य हलन्त्यमिति, विशिष्टेत्संज्ञाविधानं व्यर्थमिति चेन्न, इकारस्येत्संज्ञायाम् इदितो नुम् धातोरिति नुम्प्रसङ्गात् । विशिष्टेत्संज्ञायामिकारमात्रस्येत्संज्ञाभावान्न नुम् । **शिष्यन्तेऽभ्यासस्येति**— अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते अन्ये हलो लुप्यन्ते । शर् पूर्व एषां ते शर्पूर्वाः । **चुश्च्योतेति-** श्च्युत् इत्यस्य द्वित्वे श्च्युत् इति स्थिते शर् शकारः, तत्पूर्वकः खय् चकारः इति चकारोऽवशिष्यते, अन्ये हलः [1]शकारयकारश्च तयोर्लोपः । **अश्च्युतदिति** च्लेरङ्पक्षे । **अश्च्योतीदिति** अङोभावे ।

मध्यमनोरमापूरणी

अश्चोतत् इति—श्चुतिर् इतिं यकाररहितपक्षे इरः इत्संज्ञा, लुङि तिपि, इकारलोपे च्लेः इरितो वेति अङि अडागमे रूपम् । अङोऽभावे च्लेः सिच्, इट्, अपृक्ततस्य ईट्, इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः, अडागमः, अश्चोतीत् इति । **नन्दति इति**—टुनदि इत्यत्र आदिर्ञिटुडवः इत्यनेन टु इत्यस्येत्संज्ञा,'इकार इत्, इदितो नुम् धातोरिति नुमि नन्द् इति धातुः, तस्माल्लटि तिपि शपि रूपम् । **नदितेति**—नन्द् धातोः लुटि तिपि डादेशे तासि प्रत्यये इटि टेर्लोपे रूपम्।

हिन्दी

४९६. सेट् थल् परे भी एत्व अभ्यास लोप होता है । वा. इर् की इत्संज्ञा कहनी चाहिए।

४९७. अभ्यास का शर् पूर्वक खय् शेष रहता है, अन्य हलों का लोप होता है ।

४९८. इरित् धातु से परे च्लि को अङ् आदेश होता है विकल्प से ।

४९९. उपदेश में धातु के आदि ञि टु डु की इत्संज्ञा होती है ।

1. शकारः यकारः तकारश्च तेषां लोप इति वक्तव्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५००. इदितो नुम् धातोः ७।१।५८।। नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति। नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । इदित्त्वान्नलोपो न । नन्द्यात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत्। एवं कुथि पुथि लुथि मथि हिंसासंक्लेशनयोः । बिदि अवयवे । बिन्दति । भिदीति पाठान्तरम् । भिन्दति । गडि वदनैकदेशे । चदि आह्लादने । चन्दति । त्रदि चेष्टायाम् । त्रन्दति । कदिक्रदिक्लदि आह्वाने रोदने च । क्लिदि परिदेवने । तकि कृच्छ्रजीवने । युगि जुगि वुगि वर्जने । मघि मण्डने । शिधि आघ्राने । मन्थ विलोडने। मन्थति । ममन्थ । कित्त्वान्नलोपः । मथ्यात् । अर्च पूजायाम् । अर्चति।

५०१. तस्मान्नुड् द्विहलः ७।४।७१।। द्विहलो धातोर्दीर्घीभूताकारात् परस्य नुट्। आनर्च । आनर्चतुः । आनर्चुः । अर्चिता । आर्चिष्यत् । एवम् अर्द गतौ याचने च । अति अदि बन्धने । वन षण संभक्तौ । वनति । ववान ।

५०२. न शसददवादिगुणानाम् ६।४।१२६।। शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन भावितो योऽत् तस्य च एत्वाभ्यासलोपौ न । ववनतुः । ववनुः । सनति । ससान। सेनतुः । सेनुः । सनिता । सनिष्यति । सनतु । असनत् । सनेत् ।

मध्यमनोरमा

इदित्त्वान्नलोपो नेति- अनिदितां हल उपधाया इति सूत्रे अनिदितामित्युक्तम्, अस्य तु इदित्त्वानोपो नेत्यर्थः । **कित्त्वान्नलोप इ**ति—किदाशिषीति लिङो यासुटः कित्त्वात् अनिदितामिति मन्थ् धातोः अनिदितो नकारस्य लोप इत्यर्थः । **आनर्चेति**—अर्च् अ(णल्) इति स्थिते अर्चेत्यस्य द्वित्वे अ अर्च अ इति जाते अत आदेरित्यभ्यासाकारस्य आकारे आ अर्च् अ इति स्थिते अस्य द्विहल्त्वात् आकारात् परो नुट्। **न शसददवादिगुणानाम्-** शस्धातोर्दद्धातोर्वकारादीनाञ्च धातूनां गुणशब्देन विहितो योऽकारस्तस्य च एत्वमभ्यासलोपश्च न भवतः । ववन् अतुरित्यत्र अत एकहल्मध्ये इति एत्वादिकं प्राप्तं वकारादित्वात् वन्धातोर्न शसददवादीति तन्निषेधः। **ससानेति**—सन् इत्यस्य हलादिशेषे स सन् अ इति स्थिते अत उपधाया इति वृद्धिः । **सेनतुरिति-**ससन् अतुस् इति जाते अत एकेति एत्वादिकमिति । अत्र धात्वादेरिति सूत्रेण षकारस्य सकारादेशो न लिण्निमित्तः, इत्यनादेशादित्वमस्य। **सनेदिति**—विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, शप्, यासुटः इय्, आद्गुणः, यकारस्य लोपो व्योरिति लोपः । इतश्चेतीकारलोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नन्द्यादिति—आशीर्लिङि तिपि इकारलोपे यासुटि, यासुटः कित्त्वे सति अनिदितामिति नलोपो न भवति, धातोः इदित्त्वात् । स्कोरिति सलोपः । **ममन्थेति**—लिटि तिपो णलादेशे द्वित्वमभ्याससंज्ञा, हलादिःशेषः । **मथ्यादिति-** मन्थ् धातोराशीर्लिङ्, तिप्, इतश्चेति इकारलोपः, यासुट् परस्मैपदेषु इति यासुट्, किदाशिषि इति यासुटः कित्त्वात् अनिदितामिति नलोपे मथ्यास्त् इति, स्कोरिति सलोपे मथ्यात् इति सिद्धम् ।

हिन्दी

५००. इदित् (इकार की इत्संज्ञा वाले) धातु को नुम् होता है ।

५०१. द्विहल् धातु के दीर्घी भूत अकार से परे नुट् का आगम होता है ।

५०२. शस् दद् व वकारादि धातु को तथा गुण शब्द से भावित अ को एत्वाभ्यास लोप नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५०३. ये विभाषा ६।४।४३।। जनसनखनामात्त्वं वा यादौ क्ङिति । सायात् । सन्यात् । **व्रज व्रज गतौ** । व्रजति । वव्राज । व्रजिता । व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत्। व्रजेत् । व्रज्यात् ।

५०४. वदव्रजहलन्तस्याचः ७।२।३।। एषामचो वृद्धिः परस्मैपदे सिचि । अव्राजीत्। अव्रजिष्यत् । **कटे वर्षावरणयोः** । कटति । चकाट । कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कट्यात् ।

५०५. ह्मयन्तक्षणश्वस्जागृणिश्व्येदिताम् ७।२।५।। हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि परस्मैपदेषु । अकटीत् । अकटिष्यत् । **गुपू रक्षणे** । **५०६. गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ३।१।२८।।** स्वार्थे ।

५०७. सनाद्यन्ता धातवः ३।१।३२।। सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्ययाः अन्ते येषां ते धातुसंज्ञाः स्युः ।

का. सन्क्यच्काम्यच्क्यङ्क्यषोऽथाचारक्विब् णिज्यङौ तथा ।
यगाय-ईयङ्-णिङ् चेति द्वादशामी सनादयः ।।

मध्यमनोरमा

सायादिति—आशीर्लिङ्, तस्य तिप्, यासुट्, इतश्चेति इकारलोपः, [1] स्कोरिति सलोपः, सन् यात् इति जाते ये विभाषा इति नकारस्य आकारः । आकारादेशाऽभावे सन्यादिति । **वव्राजेति**- अत उपधाया इति वृद्धिः । **अव्रजत् इति**- लङ्, तिप्, शप्, तिपः इकारलोपः, अडागमः । **व्रजेदिति**—विधिलिङि । **व्रज्यादित्याशीर्लिङि** । **वदव्रजेति**—हलन्तस्याचो वृद्धिरित्येतावतैव वदव्रजयोरपि वृद्धिसम्भवे पुनरुपादानं नेटीति निषेधनाय । अत एव नेटीति सूत्रे हलन्तलक्षणा वृद्धिर्नेति व्याख्यानम् । **कटतीति**—एकारस्योपदेशेऽजनुनासिकइतीत्संज्ञा । **चकाटेति**—लिटो णलि कट् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषः, कुहोश्चुः, अत उपधायाः । **हमयान्तस्येति**—हकारान्तस्य मकारान्तस्य यकारान्तस्य च धातोः क्षण्श्वस्जागृधातूनां ण्यन्तस्य धातोः श्विधातोरेकारेत्संज्ञकस्य धातोश्च वृद्धिर्न । **अकटीदिति**—अत्र अतो हलादेरिति विकल्पेन वृद्धिः प्राप्ता, सा

मध्यमनोरमापूरणी

अव्राजीदिति—व्रजेर्लुङि तिपि तिपः इकारलोपे, च्लिः, च्लेः सिच्, आर्धधातुकत्वात् इट्, अस्तिसिच इति ईट्, अडागमः, अव्रज् इस् ई त् इति, हलन्तलक्षणाया वृद्धेर्नेटीति निषेधे प्राप्ते वदव्रजेति वृद्धिः, सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः । **चकाटेति**—कटेः लिटि तिपि णलि द्वित्वादिषु कृतेषु कुहोश्चुरिति कस्य चः, अत उपधाया इति वृद्धिः ।

हिन्दी

५०३. जन् सन् एवं खन् धातु के न् को आत्व हो यादि कित् ङित् परे विकल्प से ।

५०४. वद् व्रज् और हलन्त धातु के अच् को वृद्धि हो, परस्मैपद सिच् परे रहते ।

५०५. हान्त मान्त यान्त क्षण् स्वस् जागृ ण्यन्त-धातु श्वि और एदित् धातु के अच् को वृद्धि नहीं . होती इडादि परस्मैपद सिच् परे रहते ।

५०६. गुपू-धूप्-विच्छ पण- पन इन धातुओं से स्वार्थ में आय प्रत्यय होता है ।

५०७. सनादि से लेकर कमेर्णिङ् तक के प्रत्ययान्त शब्दों की धातु संज्ञा हो ।

---

1. आत्वात् परं स्कोरिति सलोपो वाच्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सनाद्यन्ता धातव इत्यस्यानन्तरं 'भूवादय' इत्येव सूत्रयितुं युक्तम् । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति ।

५०८. आयादय आर्धधातुके वा ३।१।३१।। आर्धधातुकविवक्षायामायेयङ्णिङो वा स्युः । वा. कास्यनेकाच आम् वक्तव्यो लिटि । कास आम्विधानान्मस्य नेत्त्वम्।

५०९. अतो लोपः ६।४।४८।। आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके ।

५१०. आमः २।४।८१।। आमः परस्य लुक् ।

५११. कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३।१।४०।। आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनु प्रयुज्यन्ते । तेषां द्वित्वादि ।

५१२. उरत् ७।४।६६।। अभ्यासस्य ऋतोऽत् स्यात् प्रत्यये । वृद्धिः । गोपायाञ्चकार । द्वित्वात् परत्वाद्यणि प्राप्ते ।

मध्यमनोरमा

निषिध्यते, कट् धातोरेकारेत्संज्ञकत्वात् । **स्वार्थे इति**–प्रकृतिभूतधातोरर्थे । **सूत्रयितुं युक्तमिति**-एवञ्च सनाद्यन्ता धातवः भूवादयो धातव इति बारद्वयं धातुग्रहणं न कृतं भवतीति लाघवम्। सनाद्यन्ता धातव इति धातुग्रहणस्य भूवादय इति सूत्रेऽनुवर्तनेनैव कृतार्थत्वादिति । **गोपायतीति**—गुप् धातोः आयः, पुगन्तलघूपधेति उकारस्य गुणः । गोपाय इत्यस्य धातुसंज्ञा, ततस्तिप्, शप्, अतो गुण इति आय इत्यकारस्य शपोऽकारस्य च एकादेशः । **कास्यनेकाजिति**–कास्धातोरनेकाचश्च धातोराम्प्रत्ययो भवति । **मस्य नेत्त्वमिति**— हलन्त्यमितीत्संज्ञा मकारस्य न भवति । अत्र हेतुः–कास्धातोराम् विधानम् । मकारस्येत्– संज्ञकत्वे मिदचोऽन्त्यात् पर इति सूत्रेण श्नम्- प्रत्ययवत् अन्त्यादचः परस्स्यात्ततश्च कास् धातोराम् आकारात् परः स्यात् । तत्र सवर्णदीर्घे कास् इत्येव रूपं स्यादतः कास् धातोराम् विधानं व्यर्थमेव स्यात् । तेन ज्ञायते मकारस्येत्संज्ञा न भवतीति । आमः परस्य लिट्लकारस्य लोपः, तिबाद्यादेशात् पूर्वमेव लुक् । **कृञ्चानु–, आमन्तादिति**—आमन्तादव्यवधानेन कृभ्वस्तीनामनुप्रयोगः । तेन "प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकारे" त्यादयः प्रयोगाः प्रामादिकाः । **गोपायाञ्चकारेति**—गुप् धातोर्लिटि विवक्षिते आयादय आर्धधातुके वेति पक्षे आयः, ततः सनाद्यन्ता इति धातुत्वाल्लिट्परे कास्यनेकाच इत्याम् । आयस्यान्तस्याकारस्य अतो लोप इति लोपः, आमः परस्य लिटो लोपः। गोपायामित्यस्मात् कृ लिट् इत्यनुप्रयोगः, तस्य तिप्, तस्य णल्, कृ इत्यस्य द्वित्वे अभ्यास ऋकारस्य उरत् इत्यकारः, स उरण् रपर इति रपरः, तेन कर् कृ इति जाते हलादिशेषे कुहोश्चुः, च कृ इति जाते अचो ञ्णितीति ऋकारस्य आर् । गोपायाञ्चकारेत्यत्र गोपायाम् इति पृथक्

हिन्दी

५०८. आर्धधातुक विवक्षा में आय इयङ् और णिङ् विकल्प से हों ।

वा. कास् और अनेकाच् धातु से आम् प्रत्यय हो लिट् परे रहते ।

५०९. आर्धधातुक उपदेशकाल में अदन्त धातु के अ का लोप हो, आर्धधातुक परे रहते।

५१०. आम् से परे लिट् का लुक् हो ।

५११. आमन्त से परे लिट् परक कृ भू अस् धातुओं का अनुप्रयोग होता ह ।

५१२. अभ्यास ऋकार को अत् हो प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५१३. द्विर्वचनेऽचि १।१।५९।। द्वित्वनिमित्तेऽचि परे अच आदेशो न द्वित्वे कर्त्तव्ये । गोपायाञ्चक्रतुः । गोपायाञ्चक्रुः ।

५१४. एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७।२।१०।। उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्यार्धधातुकस्येण् न ।

का. ऊद्दृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ् श्रिभिः ।
वृङ्वृञ्भ्याञ्च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ।।

कान्तेषु शक्लृ एकः । चान्तेषु पच्‌मुच्-रिच्-वच्-विच्-सिचः षट् । छान्तेषु प्रच्छ्येकः । जान्तेषु त्यज्-निजिर्-भज्-भञ्ज्-भुज्-भ्रस्ज्-मस्ज्-यज्-युज्‌रुज् रञ्ज्-विजिर्-सञ्ज्-स्वञ्ज्-सृजः पञ्चदश । दान्तेषु अद्-क्षुद्-खिद्-छिद्-तुद्-नुद् पद्य-भिद्-विद्य-विनद्-विन्द्-शद्-सद्-स्विद्य-स्कन्द-हदः षोडश । धान्तेषु क्रुध् क्षुध्-बुध्य-बन्ध-युध्-रुध्-राध्-व्यध्-शुध्-साध्-सिध्याः एकादश । नान्तेषु मन्य-हनौ द्वौ । पान्तेषु आप्-क्षिप्-छुप्-तप्-तिप्-तृप्य-दृप्य-लिप्-लुप्-वप्-शप्-स्वप्- सृपः त्रयोदश । भान्तेषु यभ् रभ् लभ् त्रयः । मान्तेषु गम्-रम्-नम्-यमः चत्वारः। शान्तेषु क्रुश्-दंश्-दिश्-दृश्-मृश्-रिश्-रुश्-लिश्-विश् स्पृशः दश । षान्तेषु कृष्-त्विष्-तुष्-द्विष्-दुष्-पुष्य-पिष्-विष्-शिष्-शुष्-श्लिष्याः एकादश । सान्तेषु घसवसती द्वौ । हान्तेषु दह्-दुह्-दिह्-नह्-मह्-रुह्-लिह्-वहः अष्टौ।

"अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम्" ।।

गोपायाञ्चकर्थ । गोपायाञ्चक्रथुः । गोपायाञ्चक्र। गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकर । गोपायाञ्चकृव । गोयायाञ्चकृम । गोपायाम्बभूव। गोपायामास ।

मध्यमनोरमा

पदं, तथाहि आम इति सूत्रेण लावस्थायामेव तिबाद्यादेशात् पूर्वं लिटो लोपः । तस्य च लिट-स्तिङ्भिन्नत्वेन धातोर्विहितत्वेन च कृदतिङिति सूत्रेण कृत्‌संज्ञकत्वात् तदन्तस्य कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, प्रातिपदिकत्वात् स्वाद्युत्पत्तिः । आमन्तस्य च कृन्मेजन्त इत्यव्ययसंज्ञकत्वाद-व्ययादाप्सुपः इति सुपो लुक् । सुप्तिङन्तमिति सूत्रेण पदसंज्ञा । **गोपायाञ्चक्रतुरिति**—पूर्ववत् गोपायाम् कृ अतुस् इति जाते द्वित्वात् पूर्वं यणि प्राप्ते द्विर्वचनेऽचीति तन्निषेधे द्वित्वम् । उरदित्यादि पूर्ववत् । गोपायाञ्चकृ अतुस् इति जाते इको यणचीति ऋकारस्य रेफः । **गोपायाञ्चकर्थेति**- कृधातुरनुदात्तः एकाच् । अतस्तस्मात् परस्य थल आर्धधातुकस्येति प्राप्त-स्येटो निषेधः । सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । **गोपायाञ्चक्रेति**- मध्यमपुरुषबहुवचने थकार-स्याकारादेशे यण् । **गोपायाञ्चकारेति**—उत्तमपुरुषैकवचने मिपो णलि णलुत्तमो वेति णित्त्वविकल्पः । अचो ञ्णितीति वृद्धिः । णित्त्वाभावे सार्वधातुकेति गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

'गोपायाम् चकार इत्यतः परं मोऽनुस्वारः इति मस्यानुस्वारे अनुस्वारस्य ययीति परसवर्णः' इति मध्यमनोरमावचने योज्यम् ।

हिन्दी

५१३. द्वित्वनिमित्तक अच् के परे अच् के स्थान पर आदेश नहीं हो द्वित्व कर्तव्य में ।
५१४. उपदेश में एकाच् और अनुदात्त जो धातु उससे पर आर्धधातुक को इट् नहीं हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः । ५१५. स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७।२।४४।। स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड् वा । जुगोपिथ । जुगोप्थ । गोपायिता । गोपिता । गोप्ता । गोपायिष्यति । गोपिष्यति । गोप्स्यति। गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात् । गुप्यात् । अगोपायीत् । ५१६. नेटि ७।२।४।। इडादौ सिचि हलन्तलक्षणा वृद्धिर्न । अगोपीत् । अगौप्सीत् ।

५१७. झलो झलि ८।२।२६।। झलः परस्य सस्य लोपः स्याज्झलि । अगौप्ताम् । अगौप्सुः । अगौप्सीः । अगौप्तम् । अगौप्त । अगौप्सम् । अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगोप्स्यत् ।

मध्यमनोरमा

गोपायाम्बभूवेति—आमन्तात् भूधातोर्लिट्प्रत्ययान्तस्यानुप्रयोगः । बभूवेति पूर्वमेव साधितम्। **गोपायाम्मासेति**—अत्र अस्- धातोरनुप्रयोगः । अस् अस् इति द्वित्वम्, हलादिशेषः, अत आदेरिति अभ्यासस्य दीर्घः, अकः सवर्णे इति दीर्घ इत्येकादेशः । आयादय आर्धधातुके वा इत्यायाभावे **जुगोपेति** । गुप् अ इति स्थिते द्वित्वादौ गुगुप् इति जाते कुहोश्चुरिति गकारस्य जः। उपधाया लघूपधगुणः । **जुगुपतुरित्य** त्रासंयोगाल्लिट् किदनेन कित्त्वात् क्ङिति चेति गुणो न । **जुगोपिथेति**— गुपू इत्यूदित्त्वादिड्विकल्पः । **गोपायितेति**— अत्र गुप्धातोरूदित्त्वेऽपि तासस्ततः परत्वं नास्ति, आयप्रत्ययेन व्यवधानात् । अतो नेड्विकल्पः । **गोपिता–गोप्तेति**- आयाऽभावे इड्विकल्पः । **गोपायेदिति**— विधिलिङि गोपाय यास् त् इति जाते शप्, अतो गुणे, यासः इय्, आद्गुणः । आशीर्लिङि गोपाय यास् त इति स्थिते अतो लोप इत्यायस्याकारलोपः, सकारतकारयोः संयोगः, यासः सकारस्य स्कोरिति लोपः । आयाभावे **गुप्यादिति**। **अगोपायीदिति**— गोपाय एतस्माल्लुङ्, तस्य तिप्, इकारलोपः, च्लेः सिच्, तस्य इट्, सिचः परस्य ईट्, इट ईतीटि सिचो लुक्, सवर्णदीर्घः । **अगोपीदिति**— आयाभावे अत्र वदव्रजेति वृद्धौ प्राप्तायां तस्याः नेटीति निषेधः । अत्र स्वरतिसूतीति इड्विकल्पः । इटोऽभावे **अगौप्सीदिति**–गुप् स् त् इति स्थिते अस्तिसिचः इतीट्, वदव्रजेति वृद्धिः । सिचः इडादित्वाभावान्नेटीति निषेधो न । **अगौप्तामिति**— झलः पकारात् परस्य सस्य झलि तकारे परे लोपः। प्रत्ययलक्षणेन सिच्परत्वाद् वदव्रजेति वृद्धिः । **अगौप्सीरिति**—सिप इकारलोपे ईडागमे च रुत्वविसर्गौ । **अगौप्सम् इति**—तस्थस्थेति मिपः अमादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

गोपायिष्यतीति—गुप्धातोर्लृटि आयादय इति आयादेशे पुगन्तेति गुणे गोपाय लृट् इति, तिप्, स्यः, इट्, अतो लोप इति आयः अन्ताकारलोपः, षत्वम् । आयविकल्पे गुप् स्य ति इति जाते स्वरतिसूतीति इटि गुणे षत्वे च गोपिष्यति इति । इड्भावे गोप्स्यति । **अगोपायदिति**— गुपूधूपेत्यायः, गुणः, लङ्, तिप्, शप्, पररूपम्, अडागमः ।

हिन्दी

५१५. स्वृ सूञ् सू धूञ् और ऊदित् धातु से परे वलादि आर्धधातुक को इट् हो विकल्प से।
५१६. इडादि सिच् परे हलन्तलक्षणा वृद्धि नहीं होती है ।
५१७. झल् से परे स् का लोप हो झल् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षि क्षये । क्षयति । चिक्षाय । चिक्षियतुः । चिक्षियुः। एकाच इति निषेधे प्राप्ते।

५१८. कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७।२।१३॥ क्रादिभ्य एव लिट इण् न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ।

५१९. अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७।२।६१॥ उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इण्न ।

मध्यमनोरमा

अगोपायिष्यत् इति—आयपक्षे । तदभावे अगोपिष्यत् । **अगोप्स्यदिति**—स्वरतीति इड्विकल्पः। **क्षयतीति**—तिप्, शप्, गुणः अयादेशः । **चिक्षायेति**—क्षि इत्यस्य द्वित्वे कषसंयुक्तक्षकारस्य हलादिशेषेण षकारलोपे कि क्षि इति जाते कुहोश्चुः, चिक्षि अ इति जाते अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आयादेशः । **चिक्षियतुरिति**—चि क्षि अतुस् इति स्थिते असंयोगाल्लिट् कित् अनेन कित्त्वात् क्क्ङति चेति गुणनिषेधात् अचि श्नुधात्विति इकारस्य इयङ् । **कृसृभृवृ इति**—डुकृञ् करणे, कृञ् हिंसायाम्, उभयोर्ग्रहणम्, सृ गतौ, भृञ् भरणे, डुभृञ् धारणपोषणयोः इत्युभयोर्ग्रहणम्, वृङ् सम्भक्तौ वृञ् वरणे इति द्वयोर्ग्रहणम् । तत्र कृसृभृ एतेषां त्रयाणामनुदात्तत्वादेकाच उपदेशेऽनुदात्तादिति निषेधः सिद्धः । वृङ्वृञोस्तु उदात्तत्वान्निषेधो यद्यपि तेन प्राप्नोति, तथापि वृङः सेध्वेवहिमहिषु, वृञः उभयपदित्वात् सेध्ववहिमहिथल्वमेषु च इट् प्रसङ्गः, तत्र थल्भिन्नस्य सर्वस्यापि कित्त्वात् श्र्युकः कितीति कित्प्रत्ययाश्रितो निषेधः सिद्धः, थलः कित्त्वाभावात् श्र्युकः कितीति निषेधाभावादिड् भवति, तन्निषेधार्थं वृग्रहणम्, इत्यपि नयतश्छन्दसि, ववर्थेति निपातनाद् भाषायामिट् भवत्येवेति वक्ष्यते । सिद्धे सत्यारम्भो **नियमायेत्याह**– क्रादिभ्य एव लिट इण् न स्यात् इति । क्रादिभ्य इत्यस्य कृ-सृ-भृ-वृ, इति चतुर्भ्यः । तेन अन्यस्मात् कृ-सृ-भृ-वृ इति धातुचतुष्टयभिन्नादनिटोऽपि इट् भवति । स्तुद्रुस्रुश्रु इति चतुर्णां ग्रहणं तु न नियमार्थम्, तेषामिण्निषेधस्यासिद्धत्वात् । यद्यपि एतेऽप्यनुदात्तत्वादनिट्का एव तथापि भारद्वाजमते पक्षे इट् प्राप्तः, तन्निषेधार्थस्स्तुद्रवादीनां ग्रहणम् । कृसृभृवृ एतेषां तु ऋदन्तत्वेन भारद्वाजमतेऽपि इट् न प्राप्नोति, अनुदात्तत्वादन्येषामपि इट् न प्राप्नोतीति तेषां चतुर्णां ग्रहणं नियमार्थमिति व्याख्यातम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अगोपायिष्यदिति—गुपूधातोर्लृङि आयादय इति आयादेशे पुगन्तेति गुणे तिपि इकारलोपे स्यः, अडागमः, अगोपाय इस्यत् इति, अतो लोप इति आयस्याकारलोपे षत्वे रूपम् । आयाभावे 'स्वरतिसूतिसूयति' इति इटि गुणे षत्वे अगोपिष्यत् इति । इटोऽभावे गुणे **अगोप्स्यदिति** ।

हिन्दी

५१८. कृ सृ भृ वृ स्तु द्रु स्रु और श्रु धातु से परे ही लिट् को इट् नहीं होता है, अन्य अनिट् धातुओं से परे लिट् को इट् होता ही है ।

५१९. तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट्, उपदेश में जो अजन्त धातु उससे परे थल् को इट् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५२०. उपदेशेऽत्वतः ७।२।६२॥ उपदेशेऽकारवतस्तासौ नित्यानिटः परस्य थल इण्न ।

५२१. ऋतो भारद्वाजस्य ७।२।६२॥ तासौ नित्यानिट ऋदन्तस्यैव थलो नेट्, भारद्वाजस्य मतेन । तेनान्यस्य तु स्यादेव । अयमत्र संग्रहः ।

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥

चिक्षयिथ, चिक्षेथ । चिक्षियथुः । चिक्षिय । चिक्षाय-चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ।

५२२. अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७।४।२५॥ अजन्ताङ्गस्य दीर्घः स्याद्यादौ प्रत्यये न तु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् ।

मध्यमनोरमा

एतन्नियमस्य प्रयोजनं चिक्षियिथ, चिक्षेथ, अत्र क्षिधातोरनुदात्तत्वादेकाच उपदेश इति निषेधः प्राप्तस्तस्यानेन नियमः कृतः, लिटि इण्निषेधः क्रादिभ्य एव । क्षि इत्यस्य क्रादिचतुर्ष्वपाठादिड् भवत्येव । **अचस्तास्वत्-** क्रादिनियमादिट् प्राप्तस्तत्- प्रतिषेधार्थमयमारम्भः । उपदेशे अजन्तः क्षिधातुस्तासौ नित्यानिट्, अतस्तस्मात् थल इट् निषिध्यते । **उपदेशेऽत्वतः**—अत्रापि क्रादिनियमप्राप्तस्य इटस्थल्विषये निषेधः । यथा उपदेशे अकारवान् तप् धातुस्तासौ नित्यानिट्, ततः परस्य थलो नेट् । **ऋतो भारद्वाजस्य-** अचस्तास्वदिति सूत्रेणैव ऋदन्तादपि इट्-निषेधः सिद्धः, पुनर्निषेधो नियमार्थः । अचस्तास्वदिति उपदेशेऽत्वदिति सूत्राभ्यां कृतो निषेधो भारद्वाजमते ऋदन्तादेव । तेन ऋदन्तभिन्नात्तु अनिटोऽपि भारद्वाजमते इट् भवत्येव । ऋदन्तात्तु भारद्वाजमते इट् न भवति इति लब्धम्। तत्र ऋदन्तादन्यस्यापि मते इट् न भवति । अचस्तास्वदित्यादिसूत्राभ्यामिटो निषेधात् । अत ऋदन्तभिन्नः अजन्तोऽकारवान् वा थलि वेट् । **तथा चायं समुदितार्थः-** तासौ नित्यमनिटाम् अजन्तानामकारवताञ्च ऋदन्तभिन्नानां थलि भारद्वाजमते इट् । अन्यस्य मते इण्नेति विकल्पः। तासौ नित्यमनिटाम् ऋदन्तानान्तु थलि भारद्वाजमतेऽपि इण् न । अन्यस्यापि मते नेति तेषां नित्यानिट्त्वमेव । यत्र तु अचस्तास्वदिति उपदेशेऽत्वत इति सूत्रयोर्न विषयः तत्र क्रादिनियमान्नित्यमिट् इति, अयमेवार्थः संग्रहश्लोकेन कथ्यते । **ऋदन्तादन्यस्येति**—ऋदन्तादन्यस्य धातोः सम्बन्धिनस्थल इडागमो, भारद्वाजस्येति सूत्रार्थं संगृह्णाति ऋदन्त इति, क्रादिसूत्रार्थं संगृह्णाति क्राद्यन्यं इति । **चिक्षयिथेति**—भारद्वाजनियमादिड् विकल्पः । चिक्षियथुरिति- अचि श्नुधात्विति इयङ्। **चिक्षियेति**—थस्य अः, इयङ् । **चिक्षायेति**—णलुत्तमो वेति णित्त्वविकल्पः । णित्त्वपक्षे वृद्धिः, तदभावे गुणः । **चिक्षियिवेति**— क्रादिनियमादिट्, इयङ् । एवं चिक्षियिमेति । **क्षेतेति**— एकाच उपदेशे इतीण्निषेधः ।

हिन्दी

५२०. तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट्, उपदेश में जो अकारवान् धातु, उससे परे थल् को इट् नहीं होता है ।

५२१. तास् प्रत्यय परे नित्य अनिट् ऋदन्त धातुओं से परे ही थल् को इट् नहीं होता, भारद्वाज के मत में । अन्य धातुओं को भारद्वाज-मत से थल् परे इट् होता ही है !

५२२. अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो यादि प्रत्यय परे, कृत् और सार्वधातुक परे नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५२३. **सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७।२।१।। इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः परस्मैपदे सिचि। अक्षैषीत् । अक्षेष्यत् । तप सन्तापे । तपति । तताप । तेपतुः । तेपुः । तेपिथ, ततप्थ । तप्ता । तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत्। अताप्ताम् । अतप्स्यत् ।**

५२४. **निसस्तपतावनासेवने ८।३।१०२।। षः स्यात् । आसेवनं पौनः पुन्यं, ततोऽन्यस्मिन् विषये । निष्टपति ।**

मध्यमनोरमा

सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । **क्षेष्यतीति**– पूर्ववदिण्निषेधः, गुणः । **अक्षयदिति**—लङ्, तस्य तिप्, इतश्चेतीकारलोपः, शप्, गुणः, अयादेशः, धातोरडागमः । **क्षयेदिति**—विधि लिङ्, तस्य तिप्, इकारलोपः यासुट्, शप्, अतो येयः, यलोपः, गुणः, अयादेशः । **क्षीयादिति**– स्कोरिति यासः सस्य लोपः, अकृदिति दीर्घः । **अक्षैषीदिति**—लुङ्, तस्य तिप्, इकारलोपः, च्लेः सिच्, अस्तिसिच इति ईडागमः, धातोरडागमः, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, षत्वम् । **अक्षेष्यदिति**–लृङ्, स्यः, गुणः, षत्वमित्यादि । **तेपिथेति**—तप् थ इति स्थिते द्वित्वं, हलादिशेषः, ततप् इति जाते भारद्वाज मते इट्, अन्यस्य मते उपदेशेऽत्वत इति निषेधः । तेन इड्विकल्पः फलितः । **थलि च सेटीति** एत्वाभ्यासलोपौ । इडभावे **ततप्थेति** । **अताप्सीदिति** वदव्रजेति वृद्धिः । **अताप्तामिति**—तसस्तामादेशः, वदव्रजेति वृद्धिः, झलो झलीति सिचो लोपः । **अतप्स्यत् इति**—लृङ्, स्यः, अडागमः, अनुदात्तत्वांत् इण्न । **निष्टपतीति**—अत्र निस्-शब्दो न पौनःपुन्यवाची, अतो निसः सकारस्य षकारः, तस्मात् परस्य तकारस्य टकारः ष्टुना ष्टुरिति सूत्रेण । पुनः पुनस्तपति निस्तपति इत्यत्र षो न ।

मध्यमनोरमापूरणी

क्षीयादिति—आशीर्लिङि क्षि यास् त् इति जाते अकृत् सार्वधातुकयोरिति दीर्घे स्कोरिति सलोपः । **सिचि वृद्धिः**—सूत्रे वृद्धिपदश्रवणेन 'इको गुणवृद्धी' इत्यतः 'इकः' इत्युपस्थितं भवति । अङ्गस्य इत्यधिकारः । 'इकः' इति अङ्गस्य इत्यस्य विशेषणम् । विशेषणात् तदन्तविधौ कृते सति सूत्रार्थो भवति– इगन्तस्य अङ्गस्य वृद्धिर्भवति परस्मैपदे सिचि परे । **अक्षैषीत्**— क्षिधातोः 'लुङ्' इति लुङि, लुङ्स्थाने तिपि आडागमे इतश्चेतीकार लोपे च्लिप्रत्यये च्लेः सिच् इति सिचि अनुबन्धलोपे अ क्षि स् त् इति । अस्तिसिचोऽपृक्ते इति ईडागमे सिचि वृद्धिरिति धातोरिकारस्य वृद्धौ ऐकारे अक्षैसीत् इति । आदेशप्रत्यययोरिति इणः ऐकारात् परस्य सस्य षत्वम् । **अक्षेष्यत्**—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ इति लृङ्, लृङस्तिप्, इतश्च, अट्, स्यतासी लृलुटोरिति स्यप्रत्ययः । अक्षिस्य त् । आर्धधातुकं शेषः इति आर्धधातुकसंज्ञा । आर्धधातुकस्येड् वलादेरिति प्राप्तस्य इटः एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् इति निषेधः । सार्वधातुकगुणे षत्वे च अक्षेष्यत् इति । **ततापेति**—तपः लिटि तिपि णलि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे त तप् अ इति, अत उपधाया इति वृद्धिः । **तेपतुरिति**—त तप् अतुस् इति स्थिते अत एकहल्मध्ये इति एत्वाभ्यासलोपौ । **निसस्तपताविति**—अपदान्तस्य मूर्धन्य इत्यधिकारात् निसः सस्य षः स्यात् तप् धातौ परे अनासेवनेऽर्थे इत्यर्थः । **तपेत्** —तप् सन्तापे इत्यस्मात् धातोः विधिनिमन्त्रणेति लिङ्, तिप्, यासुट् परस्मैपदेषु इति यासुट् । अनुबन्धलोपः । तिङ्शित् इति सार्वधातुकसंज्ञा । कर्तरि शप् । शपयोरित्संज्ञा लशक्वतद्धिते हलन्त्यमित्याभ्यां

हिन्दी

५२३. इगन्त अङ्ग को वृद्धि हो परस्मैपद सिच् परे रहते ।

५२४. निस् के स् को ष् हो अनासेवन अर्थ में । (पौनः पुन्य से भिन्न अर्थ में ।)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५२५. वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ३।१।७०।। एभ्यःश्यन्वा कर्तरि सार्वधातुके । पक्षे शप् ।
५२६. क्रमः परस्मैपदेषु ७।३।७६।। क्रमेर्दीर्घःस्यात् परस्मैपदे शिति । क्राम्यति। क्रामति । चक्राम ।
५२७. स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते ७।२।३६।। अत्रैवेट् । क्रमिता । क्रमिष्यति। क्राम्यतु, क्रामतु । अक्राम्यत्, अक्रामत् । क्राम्येत्, क्रामेत् । क्रम्यात् । अक्रमीत्। अक्रमिष्यत् ।

मध्यमनोरमा

क्राम्यतीति–क्रम् धातोः श्यन्, नकारस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञा, तस्य लोपः, शकारस्य लशक्वतद्धित इतीत्संज्ञा, तस्य लोपः, क्रमः परस्मैपदेष्विति उपधादीर्घः । श्यनोऽभावे कर्त्तरि शप्, क्रमः परस्मैपदेष्विति दीर्घः, **क्रामतीति।** **चक्रामेति**—लिट्, तस्य तिप्, तस्य णल्, क्रम् क्रम् इति द्वित्वम्, हलादिः शेष इति रेफमकारयोर्लोपे कक्रम् इति जाते कुहोश्चुः, चक्रम् इति जाते अत उपधाया वृद्धिः । **स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते**—अनयोरुदात्तत्वादिटि सिद्धे पुनर्विधानं नियमार्थम् । स्नुक्रमोरात्मनेपदनिमित्ताभावे सत्येव इट् । तेन भावकर्मादिषु आत्मनेपद-निमित्तेषु स्नुक्रमोरिट् न भवति । उपस्नोष्यते जलेन, उपक्रंस्यते आक्रंस्यते इत्यादौ इट् न । **क्रमितेति**— आत्मनेपदनिमित्ताभावादत्र इट् । **क्राम्यत्विति**—वा भ्राशेति श्यन्, क्रमः परस्मैपदेष्विति दीर्घः। श्यनोऽभावे शप्, दीर्घः, **क्रामतु** । **अक्राम्यदिति**—लङि श्यन्, दीर्घः, तदभावे **अक्रामदिति**—शप्, दीर्घः । **क्राम्येदिति**—विधिलिङ्, श्यन्, दीर्घः, अतो येय इत्यादि। श्यनोऽभावे **क्रामेदिति**– शप्, दीर्घः, अतो येय इत्यादि । **क्रम्यादिति**– आशीर्लिङ् । **अक्रमीदिति**-लुङि च्लिः, तस्य सिच्, तस्य सिचः स्नुक्रमोरितीट्, अस्तिसिच इति सिचः पर

मध्यमनोरमापूरणी

क्रमशः । तप् अ यास् ति । इतश्चेतीकारलोपः । अतो येयः इति यासः इय् । आद्गुणः । लोपो व्योर्वलि इति यलोपः । **वाभ्राशेति**—अत्र सूत्रे दिवादिभ्यः श्यन् इति सूत्रात् श्यन् इत्यस्य, कर्तरि शप् इत्यतः 'कर्तरि' इत्यस्य, सार्वधातुके यक् इत्यतश्च 'सार्वधातुके' इत्यस्यानुवृत्तयः आयान्ति । **इत्थं सूत्रार्थः**—भ्राशभ्लाशादिधातुभ्यः श्यन् भवति कत्रर्थे सार्वधातुके परे । **क्रमः इति**—'क्रमामष्टानां दीर्घः' इत्यादितः दीर्घः' इति, 'ष्ठिवुक्लमुचमाम्' इत्यस्मात् 'शिति' इत्यनुवर्तते । **तदाह**—क्रमेदीर्घः इत्यादि । **स्नुक्रमोरिति**—स्नुक्रमोरिति पञ्चम्यर्थे षष्ठी वर्तते । आत्मनेपदस्य निमित्तम् आत्मनेपदनिमित्तम्, तस्याभावः अनात्मनेपदनिमित्तम्, तस्मिन् अनात्मनेपद निमित्ते इति विग्रहः । अर्थाभावे अव्ययीभावेन सह नञ्- तत्पुरुषो विकल्प्यते इत्युक्तत्वात् समासः । **सूत्रार्थः**—स्नुक्रमाभ्यां परस्य वलाद्यार्धधातुकस्य इट् भवति आत्मनेपदनिमित्ताभावे सति । **अक्रमीदिति**—अक्रम्इस् ईत् इति स्थिते वदव्रजेति वृद्धौ प्राप्तायां ह्यन्तक्षण इति वृद्धिनिषेधः, सलोपः, सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

५२५. भ्राश् भ्लाश् आदि धातुओं से कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते श्यन् होता है ।
५२६. क्रम् धातु को दीर्घ हो परस्मैपद में, शित् प्रत्यय परे ।
५२७. आत्मनेपद के निमित्त से हीन स्नु व क्रम् धातु से परे वलादि आर्धधातुक को इट् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

छमु चमु जमु झमु अदने । ५२८. ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ७।३।७५।। एषामचो दीर्घः स्याच्छिति । वा. आङि चम इति वक्तव्यम् ।। आचामति । आङि किम् चमति । विचमति । अचमीत् । स्खल् संचलने । स्खलति । चस्खाल । ५२९. अतो ल्रान्तस्य ७।२।२।। अतः समीपौ यौ ल्रौ तदन्तस्याङ्गस्यातो वृद्धिः परस्मैपदपरे सिचि । अस्खालीत् । त्सर छद्मगतौ । अत्सारीत् पा पाने । ५३०. पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छ पश्यर्च्छधौशीयसीदाः ७।३।७८।। पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये परे । पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः । पिबति ।

मध्यमनोरमा

ईट्, इट ईटीति सलोपः, सवर्णदीर्घः। **आङि चम इति**—आङि उपपदे एव चम् धातोरचो दीर्घः इत्यर्थः । **आचामतीति**—शपः शित्त्वात्तस्मिन् परतो दीर्घः । **चमति, विचमतीति**—आङि उपपद एव दीर्घ इति नियमान्निरुपपदे आङ्भिन्नोपपदे च न दीर्घः । **अचमीदीति**- चम्धातोर्लुङ्स्तिप्, इतश्चेतीकारलोपः, च्लिः, तस्य सिच्, आर्द्धधातुकस्येतीट्, अस्तिसिच इति सिचः परस्य ईट्, इट ईटि, सवर्णदीर्घः, लुङ्लङित्यडागमः । **स्खलतीति**- तिप्, शप् । **चस्खालेति**—स्खल् स्खल् इति द्वित्वं, शर्पूर्वाः खय इति सकारलकारयोर्लोपः । तेन खस्खल् इति जाते कुहोश्चुः, अत उपधाया इति वृद्धिः । **अतो ल्रान्तस्य**-लेति लुप्तषष्ठीकम्, अत शब्दः सामीप्ये । अत आह अतः समीपाविति । ल्रौ लकाररेफौ । अस्खालीदिति-स्खलेत्यकारसमीपो लकारस्तदन्तमङ्गं, तस्याकारस्य वृद्धिः, त्सर् छद्मगतौ छझना-कपटेन गतौ गमने । **अत्सारीदिति**—अतः समीपोऽत्र रेफः, तदन्तमङ्गं त्सर् इति, तस्याकारस्य वृद्धिः । **पाघ्राध्मा इति**—अत्र शिति इत्यनुवर्तते । तत्र शितीति कर्मधारयः, श् चासावित्, तत्प्रत्यये इत्यस्य विशेषणं, यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे इति परिभाषया इत्संज्ञक-शकारादावित्यर्थो लभ्यते । तेन पपे इत्यादौ भावकर्मणि आत्मनेपदे लिटस्तशब्दस्य एशि जाते न पिबादेशः। एश इत्संज्ञकशकाराद्यभावात् । **पिबतीति**—तिप्, शप्, पिबादेशः । पिबादेशोऽकारान्तः, तेन लघूपधत्वाभावात् पुगन्तेति गुणो न । अतो गुणे इति शपोऽकारेण

मध्यमनोरमापूरणी

अस्खालीदिति–लुङि तिपि तिप इकारलोपे च्लिः, तस्य सिच्, आर्धधातुकत्वादिट्, अस्तिसिच इति ईट, अडागमः, अत्र अतो हलादेरिति विकल्पेन प्राप्तायाः वृद्धेः, नेटीति वृद्धिनिषेधस्य च अतो ल्रान्तस्येति सूत्रेण अपवादत्वात् बाधे जातेऽनेनैव नित्या वृद्धिः, इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः । एवमेव **अत्सारीदिति** ।

हिन्दी

५२८. ष्ठिव् क्लम् और चम् धातु के अच् को वृद्धि हो, शित् प्रत्यय परे ।

वा. आङ् पूर्वक चम् धातु के अच् को वृद्धि कहनी चाहिए शित् प्रत्यय परे ।

५२९. अत् के समीप जो र् ल् तदन्त अङ्ग के अत् को वृद्धि हो परस्मैपदपरक सिच् परे रहते ।

५३०. पा घ्राध्मा स्था म्ना दाण् दृश् ऋ सृ शद् और सद् को पिब जिघ्र तिष्ट मन यच्छ पश्य ऋच्छ धौ शीय और सीद आदेश क्रमशः होते हैं इत्संक शकारादि प्रत्यय परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५३१. आत औ णलः ७।१।३४।। आदन्ताद्धातोर्णल औकारादेशः । पपौ ।
५३२. आतो लोप इटि च ६।४।६४।। अजाद्योरार्द्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः स्यात् । पपतुः । पपुः । पपिथ, पपाथ । पपथुः । पप । पपौ। पपिव। पपिम । पाता । पास्यति । पिबतु । अपिबत् । पिबेत् ।
५३३. एर्लिङि ६।४।६७।। घुसंज्ञकानां मास्थागैपिबतिजहातिस्यतीनां चात एत्वमार्धधातुके किति लिङि । पेयात् । लुग्विकरणस्य पा इत्यस्य एत्वसिज्लुकौ न। गातिस्थेति सिचो लुक् । अपात् । अपाताम् ।

मध्यमनोरमा

सह पिबादेशान्त्यस्य अकारस्य पररूपम् । **आत औ णलः**—आकारान्ताद् धातोः परस्य णलः औकारादेशः स्यात्। **पपाविति**—पा णल् इति स्थिते लकारणकारयोरित्संज्ञायां लोपे च पा इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासस्य ह्रस्वे प पा अ इति जाते णल औकारादेशे वृद्धिरेचीति वृद्धिः । **क्ङिदिटोरिति**—कङौ इतौ यस्य स क्ङित्, क्ङित् च इट् च क्ङिदिटौ, तयोः परतः इत्यर्थः । **पपतुरिति**—पाधातोर्द्वित्वे ह्रस्वे च पपा अतुस् इति स्थिते असंयोगाल्लिट् कित् इति अतुसः कित्वात्तस्मिन् परत आकार लोपः, सस्य **रुत्वविसर्गौ** ।एवं पपुरिति । **पपिथेति**—भारद्वाजमते पाधातोः ऋकारान्तत्वाऽभावादिट्, इटि परतः आकार लोपः । **पपाथेति**—अचस्तास्वदिति भारद्वाजभिन्नमते इण्निषेधः । सिप्स्थानिकत्वेन थलः पित्त्वादसंयोगाल्लिडिति कित्त्वाभावान्नाकारलोपः । **पपथुरिति**—अथुसः कित्वादाकारलोपः । **पपेति**—मध्यमुपरुषबहुवचने थस्य अकारः, द्वित्वम्, अभ्यासह्रस्वः, आतो लोप इटि चेत्याकारलोपः **पपाविति**—उत्तमपुरुषैकवचने णलः आत औ णल इत्यौकारः । **पपिवेति**—क्रादिनियमान्नित्यमि्ट, आलोपः । **पातेति**—एकाजुपदेश इति इण्निषेधः । **पिबत्विति**—लोट्, तस्य तिप्, एरुः, शप्, पिबादेशः, अतो गुणे । **अपिबदिति**—लङस्तिप्, शप्, पिबादेशः, अतो गुणे, इतश्चेतीकारलोपः । **पिबेदिति**—विधिलिङ्, तस्य तिप्, यासुट्, शप्, पिबादेशः, अतो येयः, यलोपः, आद्गुणः, इतश्चेतीकारलोपः । **पेयादिति**—आशीर्लिङ्, किदाशिषीति कित्त्वात् तस्मिन् परत एर्लिङीत्येत्वम् । यासुटः सकारस्य स्कोरिति लोपः । लुग् **विकरणेति**—पा रक्षण इति लुग्विकरणः, अदादित्वात् । पा पाने, अयमलुग्विकरणः, भौवादिकत्वात् । तयोरत्र ग्रहणे प्रसक्ते भौवादिकस्य पा पाने इत्यस्यैव ग्रहणम् । नतु आदादिकस्य पा रक्षणे इत्यस्य एत्व-सिज्लुकाविति, एर्लिङीत्येत्वं, गातिस्थेति सिज्लुक् च नेत्यर्थः । **अपादिति**- लुङि च्लेः सिच्, तस्य गातिस्थेति लुक् ।

हिन्दी

५३१. आदन्त धातु से परे णल् को औ आदेश होता है ।
५३२. अजादि आर्धधातुक कित् ङित् प्रत्यय परे व इट् परे आकारान्त धातु के आ का लोप होता है ।
५३३. घुसंज्ञक धातु मा स्था गा पा हा और सा धातुओं के आकार को एत्व होता है आर्ध-धातुक कित् लिङ परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५३४. आतः ३।४।११०॥ सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् ।

५३५. उस्य पदान्तात् ६।१।९६॥ अपदान्तादवर्णादुसि पररूपमेकादेशः । अपुः। अपास्यत् । ग्लै म्लै हर्षक्षये । ग्लायति ।

५३६. आदेच उपदेशेऽशिति ६।१।४५॥ उपदेशे एजन्तस्य धातोरात्वं न तु शिति। जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति । अग्लायत् । ग्लायेत् ।

५३७. वाऽन्यस्य संयोगादेः ६।४।६८॥ घुमास्थादेरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वा आर्धधातुके किति लिङि । ग्लेयात् । ग्लायात् ।

मध्यमनोरमा

आतः—अत्र सिज्ग्रहणमनुवर्तते । [1]तत्र आकारात् परत्वं, सिचश्च परत्वं, सिचो लुक्येव सम्भवति इत्याशयेनाह- सिज्लुकि सति आदन्तादेवेति, आदन्तादपि सिजभ्यस्तेति सूत्रेण झेर्जुसि सिद्धे नियमार्थमिति भावः । तेन अभूवन्नित्यादौ सिजभ्यस्तेति झेर्जुसि प्राप्ते नियम्यते । सिज्लुकि सति आदन्तादेव झेर्जुस् । भूधातोर्गातिस्थेति सिचो लुकि आदन्तत्वाभावान्न झेर्जुस् । **अपुरिति**—पाधातोर्लुङि प्रथमपुरुषबहुवचने झिः, सिच् प्रत्ययः, तस्य सिचो गातिस्थेति लुक्, आतश्चेति झेर्जुस्, अडागमः, अपा उस् इति जाते पाधातोराकारोऽपदान्तः, तस्मादुसि पूर्वपरयोः आकारोकारयोः स्थाने उकारः । **ग्लायतीति**–ग्लै ति इति स्थिते शप्, एचोऽयवायाव इति अयादेशः । **जग्लाविति**—ग्लैरित्यैकारस्याकारः । आतऔ णल इति औकारः, ग्ला इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, गग्ला औ इति जाते कुहोश्चुः, जग्ला औ इत्यत्र वृद्धिरेचीति वृद्धिः । **ग्लातेति**- आदेच इत्यात्वम् । **ग्लायतु इति**—शप्, शित्त्वात्तस्मिन् परतो नात्वम् । आयादेशः । **अग्लायदिति**- लङस्तिप्, शप्, अडागमः, इतश्चेतीकारलोपः । ग्लायेदिति-विधिलिङ्, तिप्, तस्य यासुट्, शप्, आयादेशः, अतो येयः, यकारस्य लोपो व्योर्वलीति लोपः, आद्गुणः, इतश्चेतीकार लोपः । **घुमास्थादेरन्यस्येति**-घुसंज्ञकेभ्यो मास्थागापाजहातिस्यतिभ्यश्च भिन्नस्य धातोराकारस्य एत्वं वेत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पेयादिति–आशीर्लिङि तिपि इतश्चेति इकारलोपे यासुट् परस्मैपदेषु इति यासुट्, किदाशिषि इति यासुटः कित्त्वात् एर्लिङीति पाधातोराकारस्य एत्वे पेयास्त् इति जाते स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः । **अपातामिति**—पाधातोर्लुङि तसि तस्थस्थेति तसस्तामादेशे च्लि लुङि इति च्लौ तस्य सिच्, अडागमः, गातिस्थाघुपेति सिचो लुक् । [1]**आत इति** सूत्रे झेर्जुस् इति, सिज्ग्रहणमित्यनुवर्तते च । सिचः आकाराच्च परस्य झेर्जुस् इति सूत्रार्थः, तत्र सिचः प्रत्ययलक्षणेन सिचः परत्वं झेः भवति इत्याशयः मध्यमनोरमाकारस्य ।

हिन्दी

५३४. सिज्लुक् होने पर आदन्त से परे ही झि को जुस् हो ।

३५५. अपदान्त अवर्ण से परे उस् रहने पर पररूप एकादेश हो ।

५३६. उपदेश में एजन्त धातु को आत्व होता है, शित् प्रत्यय परे नहीं ।

५३७. घुमास्था आदि से भिन्न संयोगादिधातु के आ को एत्व हो आर्धधातुक कित् लिङ् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५३८. यमरमनमातां सक् च ७।२।७३।। एषां सक् स्यादेभ्यः सिच इट् परस्मैपदेषु । अग्लासीत् । अग्लास्यत् । एवं म्लायति । धेट् पाने । धयति । दधौ । धाता । धास्यति । धयतु । अधयत् । धयेत् ।

५३९. दाधा घ्वदाप् १।१।२०।। दारूपा धारूपाश्च धातवो घुसंज्ञाः स्युर्दाप्दैपौ विना । धेयात् ।

५४०. विभाषा धेट्श्व्योः ३।१।४९।। आभ्यां च्लेश्चङ् वा कर्तृवाचिनि लुङि परे।

५४१. चङि ६।१।११।। चङि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्य प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य । अदधत् । अदधताम् । अदधन् ।

मध्यमनोरमा

ग्लेयादिति— आशीर्लिङः कित्त्वात्तस्मिन् परतः आदेच उपदेशेऽशितीति सूत्रेण जातस्य आकारस्य एकारः । तदभावे **ग्लायादिति** । **यमरमनमाताम्-** आकारान्तधातूनां सक् आगमः, एभ्यो यमरमनम्भ्य आकारान्तेभ्यश्च सिचः इट् इत्यर्थः । **अग्लासीदिति**–ग्ला सिच् तिप् इति स्थिते अडागमः, इतश्चेतीकारलोपः, यमरमेति सूत्रेण सिचः इडागमः धातोः सगागमश्च, अग्लास् इस् त् इति जाते अस्तिसिच इति सिचः परस्य ईट् । इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः । अत्र इट्सकोरभावेऽपि रूपसिद्धिर्भवत्येव । **अग्लासिष्टामित्यत्र** तयोः फलं बोध्यम् । **धयतीति**— तिप्, शप्, एचोऽयवायावः । **दधाविति**—आत औ णलः , धा इत्यस्य द्वित्वम्, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च इति धस्य दः, वृद्धिरेचि । **धेयादिति**– आशीर्लिङि धारूपत्वादस्य घुसंज्ञायाम् एर्लिङीत्येत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

यमरमेति—यम्–रम्–नम्–धातूनामाकारान्तस्य च धातोः सक् आगमः सिचः इट् च भवति। **धातेति**—धेट् धातोर्लुटि आदेच इति आत्वे तिपि तासि डादेशे धातास् आ इति, टेर्लोपे धातेति । **धयेदिति**—विधिलिङि तिपि इकारलोपे यासुटि शपि अयादेशे यासुट इयि गुणे लोपो व्योर्वलीति यलोपः । **अदधनिति**–धेट आत्वे धा इत्यस्माज्झिः, झोन्तः, इकारलोपः, च्लि लुङि इति च्लौ तस्य विभाषा घ्राधेट् इति चङि धा अ अन्त् इति, चङि इति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञा, हलादिशेषः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्चेति धस्य दः, अडागमः, अदधा अ अन्त् इति, आतो लोप इति आलोपे अतो गुणे इति पररूपे तस्य संयोगान्तलोपे रूपम् ।

हिन्दी

५३८. यम् रम्नम् व आदन्त धातुओं से परे सक् हो और सिच् को इट् हो परस्मैपद परे।

५३९. दा-रूप और धा-रूप धातुओं को घुसंज्ञा होती है ।

५४०. धेट् और श्वि धातु से परे च्लि को चङ् होता है कर्तृवाची लुङ् परे रहते ।

५४१. चङ् परे रहते अभ्यासभिन्न धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो, अजादि से परे द्वितीय एकाच् को द्वित्व हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५४२. विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८।। एभ्यः सिचो लुग्वा परस्मैपदेषु । अधात् । अधाताम् । अधुः । पक्षे इट्सकौ । अधासीत् । अधासिष्टाम् । अधासिषुः। द्यै न्यक्करणे । द्यायति । द्रै स्वप्ने । द्रायति । ध्रै तृप्तौ । ध्रायति । दध्रौ । ध्यै चिन्तायाम् । ध्यायति। दध्यौ । रै शब्दे । रायति । स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः । स्त्यायति । षोपदेशस्याऽपि सत्वे कृते रूपं तुल्यम् । षोपदेशफलं तु तिष्ट्यासतीत्यादौ भविष्यति । खै खदने। खायति । क्षै जै षै क्षये । क्षायति । जायति । सायति । घुमास्थेत्यत्र विभाषा घ्राधेट् इत्यत्र च स्यतेरेव ग्रहणं नत्वस्य, तेन एत्वसिज्लुकौ न । सायात् । असासीत् । कै गै शब्दे । शै श्रै पाके ।

मध्यममनोरमा

अदधदिति—धाधातोर्लुङ्, तस्य तिप्, इतश्चेतीकारलोपः, अडागमः, च्लेश्चङादेशः, अदधा अत् जाते आतो लोप इटि चेत्याकारलोपः । **अदधतामिति**– तसस्तामादेशः । अन्यत् सर्वं पूर्ववत् । चङादेशस्य वैकल्पिकत्वात्तदभावे सिचो लुक्- **अधादिति** । सिचो लोपस्यापि वैकल्पिकत्वात्तदभावे **अधासीदिति** । अधास् त् इति स्थिते यमरमेति सिच इट्, धातोः सक्, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटि इति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः । **अधासिष्टाम् इति**– तसस्तामादेशः, सिचः इट्, सगागमः, अडागमः, अधास् इस् ताम् इति जाते इकारात् परस्य सस्य आदेश प्रत्यययोरिति षत्वम् । षकारात् परस्य तकारस्य ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वम् । **द्यायतीति**– तिप्, शप्, आयादेशः । **ध्रायतीति**—तिप्, शप्, आय् । **दध्राविति**—ध्राध्रा इति द्वित्वे हलादिशेषः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्त्व, आत औ णलः, वृद्धिरेचि । स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः, षोपदेशसंग्रहश्लोके स्त्यान्ये इति स्त्यैधातोर्वर्जनान्न षोपदेशत्वम् । द्वितीयस्तु षोपदेशः । तत्र षोपदेशस्याऽपि धात्वादेरिति षस्य सः । निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपाय इति षकारनिमित्तकस्य ष्टुना ष्टुरिति टकारस्य निवृत्तौ तकार एव भवति । **स्त्यायतीति** रूपं तुल्यम् । विशेषस्तु सन्नन्ते भविष्यति। षोपदेशस्य **तिष्ट्यासति**, अषोपदेशस्य **तिस्त्यासतीति** । तत्र स्त्याधातोः सन्, तस्त्यास इति जाते सन्यत इत्यभ्यासस्य इत्वे तिस्त्यास इति जाते आदेशप्रत्यययोरिति अभ्यासेकारादिणः परस्य सकारस्य षकारः । अषोपदेशस्य तु न षः । यतस्तस्य सकारस्य आदेशरूपत्वं नास्ति। **सायतीति**– धात्वादेरिति षस्य सकारे तिपि शपि आयादेशः । घुमास्थेति सूत्रमदादौ वक्ष्यति। घुमास्थागापाजहातिसां क्ङित्यार्धधातुके हलादौ परे इत्वं, तेन सूत्रेण विधीयते । तत्र सामिति षोऽन्तकर्मणीत्यस्य, ग्रहणं, न तु षै क्षये इत्यस्य । आत्वे कृते सा इति जाते तस्य ग्रहणम् । एतस्मादेव सूत्रात् घुमास्थेत्यादि एर्लिङीति सूत्रे अनुवर्तते । तेन तत्रापि सामिति षोऽन्तकर्मणीत्यस्यैव ग्रहणम् । अत एव तस्य सूत्रस्य वृत्तौ सातीनामित्युक्तम्। तथा विभाषा घ्राधेट्शाच्छास इत्यत्र स इति षोऽन्तकर्मणि इति, ओकारस्य आदेच इति आकारे धात्वादेः सत्वे च जाते तस्य ग्रहणम् । न तु षै इत्यस्यात्वे षत्वे तस्य ग्रहणम् । तेन सायादित्यत्र एर्लिङीति एत्वं न । **असासीदित्यत्र** विभाषा घ्राधेट् इति सिचो लुग् न । **असासीदिति**–षै

हिन्दी

५४२. घ्रा धेट् शा छा एवं सा (षो) धातु से परे सिच् का लुक् होता है परस्मैपद में, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पै ओ वै शोषणे । पायात् । अपासीत् । घुमास्थेतीत्त्वं तदपवाद एर्लिङीत्येत्वं, गातिस्थेति सिज्लुक् च न । प. लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् इति पारूपस्य लाक्षणिकत्वात् । ष्टै वेष्टने । स्तायति । स्नै वेष्टने । शोभायां चेत्येके । स्नायति । दैप् शोधने । दायति । अघुत्वादेत्वसिज्लुकौ न । दायात्। अदासीत् । घ्रा गन्धोपादाने । जिघ्रति । घ्रायात् । घ्रेयात् । अघ्रात् । अघ्रासीत्। अघ्रास्यत् । ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । धमति । अध्मासीत् । ष्ठा गतिनिवृत्तौ । तिष्ठति । स्थादिष्विति षत्वम् । अधितष्ठौ । उपसर्गादिति षत्वम् । अधिष्ठाता।

मध्यमनोरमा

इत्यस्य आदेच उपदेशेऽशिति इत्यात्वम्, धात्वादेः षः सः इति षस्य सः । लुङ्, तस्य तिप्, इकारलोपः, तस्मिन् च्लिः, च्लेः सिच्, धातोरडागमः, असा स् त् इति स्थिते यमरमनमातामिति इट्सकौ, अस्तिसिच इति ईट्, असा स् इस् ईत् इति जाते इट ईटि, सवर्णदीर्घः । **पै ओ वै शोषणे-** ओ वै इत्यस्य ओकार इत्संज्ञकः, ओदितश्चेति निष्ठानत्वार्थः । **पायादिति–** ऐकारस्यात्वे आशीर्लिङि तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । एर्लिङि इति सूत्रे पिबतेरेव ग्रहणम् । पा पाने इत्यस्य पारूपत्वं प्रतिपदोक्तम् । यतः पै इत्यस्य आत्वे जाते पारूपत्वम् । लाक्षणिकत्वेन एत्वं न । **अपासीदिति**—आत्वे लुङ्, तस्य तिप्, सिच्, यमरमनमातामिति इट्सकौ, इकारलोपः, अडागमः, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटि, सवर्णदीर्घः । अत्र गातिस्थेति सिचो लुग्न । गातिस्थेति सूत्रे पा इति प्रतिपदोक्तस्य पा पान इत्यस्यैव ग्रहणम् न तु पै इत्यस्यात्वे कृते लाक्षणिकस्य पारूपस्य ग्रहणम् । **घुमास्थेति**—घुमास्थेतीत्त्वं पीत्वा इत्यत्र, पै धातोस्तु पात्वा इत्येव । इदन्तु प्रसङ्गादुक्तम् । प्रकृते एर्लिङीति एत्वं, गातिस्थेति सिचो लुक् प्राप्तः सन्निराकृतः । एर्लिङीत्यस्य घुमास्थेति सूत्रापवादत्वकथनं पेयादित्यत्र पाधातोराशीर्लिङि पूर्वोक्तेन ईत्वं कुतो न भवतीत्याशङ्कानिवारणार्थम् । **लक्षणेति**—लक्षणोक्तः- लक्षणेन- सूत्रेण व्युत्पाद्यः, उक्तः प्रयुक्तः । प्रतिपदोक्तः- प्रतिपदम् उक्तः, स्वरूपेण उच्चारितः । **प्रतिपदमिति**—पदेनेति तृतीयाविभक्त्यर्थे अव्ययीभावः । पदं स्वरूपम् । प्रकृते पै इत्यस्य पारूपत्वं लाक्षणिकं, लक्षणेन सूत्रेण साधितम् । पा पान इत्यस्य पारूत्वं प्रतिपदोक्तम् । लक्षणप्रतिपदोक्तयोरुभयोः ग्रहणे प्रसक्ते प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणं नतु लाक्षणिकस्य ग्रहणमिति परिभाषार्थः । **स्तायतीति**—ष्टैरित्यस्य धात्वादेरिति षकारस्य सकारे तन्निमित्तकष्टकारो निवर्तते । स्तैरित्यस्मात्तिप्, शप्, आयादेशः । ष्णै वेष्टने, षस्य सत्वे षकारनिमित्तको नकारस्य णकारः निवर्तते । स्नैरित्यस्मात्तिप्, शप्, आयादेशः । **दैप् शोधने**—पकार इत्संज्ञकः हलन्त्यमिति, ततो लोपः । तिप्, शप्, आय् । **अघुत्वादिति**—दाधाघ्वदाप् इति सूत्रे अदाप् इति दाप्दैपौ विना अन्येषां दारूपाणां घुसंज्ञाविधानादस्य दैपोऽघुत्वात्, घुसंज्ञकत्वाभावादित्यर्थः । तेन एर्लिङीति घुसंज्ञाप्रयुक्तम् एत्वं, गातिस्थेति सिचो लुक् च न भवतीति । **दायादिति**—ऐकारस्यात्वे लिङ्, तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । **अदासीदिति–** ऐकारस्य आत्वे लुङ्, तिप्, सिच्, यमरमेति इट्सकौ, इतश्च, अस्तिसिचः, इट ईटीति, दीर्घः । **जिघ्रतीति**—घ्रा इत्यस्मात्तिप्, शप्, पाघ्राध्मेति जिघ्रादेशः, अकारस्य शपोऽकारेण सह पररूपम् ।

प. लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त शब्दों में प्रपिदोक्त का ही ग्रहण होता है !

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थेयात् । सत्वे कृते प्रकृतिस्तवर्गः स्यात् ।

का. नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु ।
सकारजः शकारश्चे षाट्टवर्गस्तवर्गजः ।

गातिस्थेति सिचो लुक् । अस्थात् । म्ना- अभ्यासे । मनति । दाण् दाने । प्रणियच्छति । ह्वृ कौटिल्ये गतौ । ह्वरति ।

५४३. ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७।४।१०॥ ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि। उपधाया वृद्धिः । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरुः । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार, जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिम । ह्वर्ता ।

मध्यमनोरमा

घ्रायात्-घ्रेयादिति—आशीर्लिङि वान्यस्य संयोगादेरिति एत्वविकल्पः । **घ्राधातोः** संयोगादित्वात्। **अघ्रासीत्, अघ्रादिति**- विभाषा घ्राधेट्शाच्छास इति सिचो लुग्विकल्पः । सिचो लुक् पक्षे अघ्रादिति । लुकोऽभावे यमरमेति इट्सकौ, अस्तिसिच इति ईट्, इट ईटीति, सवर्ण-दीर्घः । **धमतीति**—शपि पाघ्रेति धमादेशः, अतो गुणे । **अध्मासीदिति**—यमरमेति इट्सकौ । **तिष्ठतीति**- पाघ्रेति तिष्ठादेशः । **अधितष्ठौ**—सकारलोपः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्चेति थस्य तः । स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासेति अभ्यासव्यवधाने उपसर्गस्थान्निमित्तादिकारात् परस्य अनभ्याससकारस्य षकारः । ष्टुना ष्टुरिति थस्य ठः । **अधिष्ठातेति**—उपसर्गात् सुनोतीति सस्य षः, ष्टुना ष्टुः । **स्थेयादिति**—एर्लिङीत्येत्वम् । **सत्वे कृते इति**—धात्वादेरिति सूत्रेणादिभूतस्य षकारस्य सकारे कृते षकारनिमित्तष्टुना ष्टुरिति टवर्गो निवर्तते । निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इति न्यायात् । तेन प्रकृतिस्तवर्गः स्यात् । प्रकृतिभूतः स्थानिभूतस्तवर्गो भवति, तवर्गस्वरूपमापद्यते इत्यर्थः । ननु नायं षकारयोगेन टवर्गः किन्तु स्वरूपत एव टवर्ग इत्याशङ्कां निवर्तयितुं वर्णव्यवस्थापकं वचनमाह- **नकारजाविति,** धातुष्विति वाक्यत्रयेऽपि सम्बध्यते । धातुषु झलि परतः अनुस्वारपञ्चमौ नकारजौ, पञ्चमो वर्णपञ्चमो ङकारादिः । यथा स्रंसुध्वंसु अधः पतने, अत्र झलि सकारे परतोऽनुस्वारो नकारजो बोध्यः । एवं धातुषु चे चकारपरतः शकारः, सकारजो बोध्यः । यथा **व्रश्चू छेदने**-अत्र चकारे परतः शकारः सकारजो बोध्यः । धातुषु षात् षकारात् टवर्गस्तवर्गजो बोध्यः- ज्ञेयः । यथा ष्ठा गतिनिवृत्तावित्यत्रैव षकारात् ठकारस्थकारजो बोध्यः **सिचो लुगिति**—गातिस्थेति सूत्रेण अस्थादित्यत्र सिचो लुगित्यर्थः । **मनति इति**—म्ना धातोः पाघ्रेति मनादेशः । **प्रणियच्छति इति**—प्रनिपूर्वको दाण् धातुः । णकारस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञा । पाघ्रेति यच्छादेशः । दाधाघ्वदाबिति घुसंज्ञकत्वान्नेर्गदेति सूत्रेण नेर्नकारस्य णकारः । **ह्वरतीति**—तिप्, शप्, सार्वधातुकार्द्धधातुकयोरति ऋकारस्य अर् । **जह्वारेति**—ह्वृधातोर्णल्, ह्वृइत्यस्य द्वित्वम्, अभ्यास ऋवर्णस्य उरत् इत्यकारः, स रपरः, हलादिः शेषः इति वकार रेफलोपः । हस्य कुहोश्चुरिति झकारः, तस्य अभ्यासे चर्चेति जः, जह्वृ अ इति जाते ऋकारस्य ऋतश्च

मध्यमनोरमापूरणी

स्थेयादिति—ष्ठा धातोः षकारस्य धात्वादेरिति षत्वे स्था इति जाते आशीर्लिङि तिपि तिप इकारलोपे यासुट् परस्मैपदेषु इति यासुटि एर्लिङीति एत्वे स्कोरिति सलोपे स्थेयात् इति । **मनति**-म्ना इत्यस्माल्लटि तिपि शपि पाघ्रेति मनादेशेऽतो गुणे इति पररूपम् ।

हिन्दी

५४३. संयोगादि ऋदन्त अङ्ग को गुण हो लिट् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५४४. ऋद्धनोः स्ये ७।२।७०।। ऋतो हन्तेश्च स्यस्य इट् । ह्वरिष्यति । ह्वरतु। अह्वरत् । ह्वरेत् ।

५४५. गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः ७।४।२९।। अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणो यकि यादावार्धधातुके लिङि च । ह्वर्यात् । अह्वार्षीत् । अह्वरिष्यत् । स्वृ शब्दोपतापयोः। स्वरति । स्वरतीति वेट् । सस्वरिथ । सस्वर्थ । मयोस्तु स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्याच्छ्र्युकः कितीति निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । सस्वरिव । सस्वरिम । परत्वाद् ऋद्धनोरिति नित्यमिट्। स्वरिष्यति । अस्वारीत् । अस्वार्षीत् ।

मध्यमनोरमा

संयोगादेरिति अर् गुणः । तस्याकारस्य अत उपधाया इति वृद्धिराकारः । **जह्वरतुरिति**– ह्वृ अतुस् इति स्थिते द्वित्वं, हलादिः शेषः, कहोश्चुः, जह्वृ अतुस् इति जाते ऋतश्चेति गुणः। **जह्वर्थेति**– जह्वृ थ इति जाते ऋतो भारद्वाजस्येति ऋकारान्तत्वान्नित्यमनिट् । **जह्वरथुः इति**- ऋतश्चेति गुणः । **जह्वरेति**– मध्यमपुरुषबहुवचने थस्य अकारः, ऋतश्चेति गुणः । अकारस्य णित्वाभावादुपधावृद्धिर्न । **जह्वार, जह्वरेति**– णलुत्तमो वेति णित्त्वपक्षे वृद्धिः, तदभावे न वृद्धिः । **जह्वरिवेति**– क्रादिनियमाद् वसमसोर्नित्यमिट् । **ह्वर्ता**– एकाजुपदेश इति इटो निषेधः। सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । **ह्वरिष्यतीति**– एकाच इति इण्निषेधं बाधित्वा ऋद्धनोः स्ये इति इट्, आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **ह्वरतु इति**– सार्वधातुकेति गुणः । **अह्वरदिति**– लङ्, तिप्, शप्, इतश्च, अडागमः, सार्वधातुकेति गुणः। **ह्वर्यादिति**– आशीर्लिङि तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । आशीर्लिङः कित्त्वात् क्ङिति चेति सूत्रेण सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति प्राप्तस्य गुणस्य बाधने प्राप्ते गुणोऽर्तीति गुणः । **अह्वार्षीदिति**– लुङ्, तिप्, सिच्, अडागमः, इतश्च, अस्तिसिच इतीट्, अह्वृ सीत् इति जाते सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, षत्वम्। **अह्वरिष्यदिति**– लृङ्, तिप् स्यः, अट्, इतश्च, ऋद्धनोः स्ये इति इट्, षत्वम् । **स्वरतीति**- स्वृधातोः लट्, तिप्, शप्, सार्वधातुकेति गुणः । **सस्वरिथ– सस्वर्थेति**– स्वृ थल्, द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, स्वरतीति इट्, ऋतश्च संयोगादेरिति गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

जह्वरतुरिति– ह्वृ धातोर्लिटि तस्यातुसि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञा, उरदिति ऋकारस्यात्वे हलादिशेषे कुहोश्चुरिति हस्य झकारे तस्याभ्यासे चर्चेति जकारे असंयोगाल्लिट् इति लिटः कित्त्वात् क्ङिति चेति प्राप्तं गुणनिषेधं पबाध्य ऋतश्चेति गुणे रपरत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ । **ह्वरेदिति**– विधिलिङि तिपि यासुटि शपि गुणे रपरत्वे यास इयादेशे गुणे तिप इकारलोपे रूपम् । **अस्वारीदिति**– स्वृ-धातोर्लुङि तिपि इकारलोपे, च्लिः, तस्य सिच्, अडागमः, स्वरतिसूतीति इट्, अस्तिसिच इति ईट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धौ रपरत्वे, इट ईटि इति सिचो लोपे सवर्णदीर्घे रूपम ।

हिन्दी

५४४. ऋदन्त और हन् धातु से परे स्य को इट् आगम होता है ।

५४५. ऋ धातु और संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होता है यक् परे और यादि आर्धधातुक लिङ् परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्मृ चिन्तायाम् । स्मरति । ह्वृ संवरणे । ह्वरति । सृ गतौ । क्रादित्वान्नेट् । ससर्थ। ससृव । ससृम ।

५४६. रिङ् शयग्लिङ्क्षु ७।४।२८।। शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् । रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्यान्न दीर्घः । स्रियात् । असार्षीत् । असरिष्यत् । शीघ्रगतौ तु पाघ्रेति शिति धौरादेशः । धावति । गृ घृ सेचने। ध्वृ हूर्च्छने । ध्वरति । दृशिर् प्रेक्षणे । पश्यति । ददर्श ।

वा. ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात् पूर्वविप्रतिषेधेन । ददृशतुः । ददृशुः ।

५४७. विभाषा सृजिदृशोः ७।२।६५।। आभ्यां थल इड्वा ।

मध्यमनोरमा

पक्षे इटो भावः । **वमयोस्त्विति**—स्वृव स्वृम इति स्थिते द्वित्वम्, उरदित्यत्वे हलादिशेषे सस्वृव सस्वृम इति जाते स्वरतीति इट् विकल्पः प्राप्तस्तस्य श्र्युकः कितीति निषेधः प्राप्तः, ननु श्र्युकः कितीत्यनेन आर्धधातुकस्येड्वलादेरिति प्राप्तस्यैवेटो निषेधः, सन्निधानात् । न तु स्वरत्यादि-विकल्पस्य निषेधो व्यवधानादिति **चेत्तत्राह**-पुरस्तात् प्रतिषेधकाण्डारम्भसामर्थ्यादिति । अष्टा-ध्याय्यां पुरस्तात् इड्विधायकसूत्रेभ्यः पूर्वं निषेधकाण्डस्य इण्निषेधविधायकसूत्रसमुदायारम्भ-सामर्थ्यात् श्र्युकः किति इत्यनेन सर्वोऽपि इट् निषिध्यते। निषेधो हि प्राप्तिसापेक्षः । तेन इड्-विधायकसूत्राणां पूर्वमारम्भो युक्तस्ततो निषेधकाण्डारम्भः । सूत्रकारेण तु तद्विपरीतः कृतः । प्रथमं तन्निषेधकाण्डं ततो विधिसूत्राणि, तेनेदं ज्ञायते व्यवहितमव्यवहितञ्च सर्वमिण्निषेधो बाधते । तेन श्र्युकः कितीति स्वरत्यादिविकल्पस्यापि निषेध इति सिद्धम् । ततश्च **सस्वरि-वेत्यादौ** श्र्युकः कितीति निषेधः प्राप्तस्तं बाधित्वा क्रादिनियमान्नित्यमिट् । स्वरत्यादि-विकल्पस्य क्रादिनियमो न बाधकः । श्र्युकः कितीति निषेधस्य तु बाधक एवेति क्रादिनियमः प्रवर्तते । विकल्पं बाधित्वा निषेधस्यात्र प्राप्तिरिति दर्शितम् । ऋतश्च संयोगादेरिति गुणः । **परत्वादिति**—स्वरतिसूतीति इटो विकल्पनात् ऋद्धनोः स्य इति सूत्रस्य परत्वान्नित्यमिट् इत्यर्थः । **स्वरिष्यतीति**—इट्, सस्य षत्वं, सार्वधातुकेति गुणः । **स्मरतीति**—स्मृधातोर्लट्, तिप्, शप्, सार्वधातुकेति गुणः। एवं ह्वृधातोः ह्वरति । **सृगतौ**—कृ सृ भृ वृ सूत्रे सृग्रहणाद-स्मान्नेट् । **ससर्थेति**– सृ इत्यस्य द्वित्वे उरत्, हलादिः शेषः, सार्वधातुकार्धधातुकयोः । **ससृवेति**– असंयोगाल्लिट् किदिति कित्त्वात् क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **स्रियादिति**– आशीर्लिङ्, तिप्,

मध्यमनोरमापूरणी

अस्वार्षीदिति– स्वरतीति इटोऽभावे वृद्धौ रपरत्वे सस्य षत्वे रूपम् । **ददर्शेति**—दृशो लिट्, तिप्, णलादेशे द्वित्वेऽभ्याससंज्ञा, उरदिति ऋकारस्यात्वे रपरत्वे हलादिशेषे ददृश् अ इति, पुगन्तेति गुणः । **ददृशतुरिति**—दृश् अतुस् इति स्थिते द्वित्वेऽभ्यास- संज्ञायाम् उरदिति अत्वे रपरत्वे हलादिशेषे च ददृश् अतुस् इति जाते असंयोगाल्लिट् इति सूत्रं परत्वात् प्रबाध्य पुगन्तेति गुणे प्राप्ते ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात् इति वार्तिक- सहकारेण पूर्वं कित्त्वे क्ङिति चेति गुणनिषेधे सस्य रुत्वविसर्गौ भवतः ।

हिन्दी

५४६. श यक् और यादि आर्धधातुक लिङ् परे ऋत् को रिङ् आदेश होता है । वा. ऋदुपध धातुओं से परे लिट् कित् होता है गुण को पूर्वविप्रतिषेध से बाधकर ।

५४७. सृज् और दृश् धातु से परे थल् को इट् हो विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५४८. सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६।१।५८।। अनयोरमागमः स्याज्झलादावकिति । दद्रष्ठ । ददर्शिथ । द्रष्टा ।
५४९. षढोः कः सि ८।२।४१।। द्रक्ष्यति । दृश्यात् । इरित्वादङ् वा ।
५५०. ऋदृशोऽङि गुणः ७।४।१६।। अदर्शत् । अङभावे ।
५५१. न दृशः ३।१।४७।। च्लेर्वक्ष्यमाणः क्सो न । अद्राक्षीत् । अद्राष्टाम् । अद्रक्ष्यत् । श्रु श्रवणे ।

मध्यमनोरमा

यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । सृयादिति स्थिते रिङ्शयेति ऋकारस्य रिङ्आदेशः । अत्र अकृत्सार्वेति दीर्घः प्राप्तः तन्न भवति । पूर्वसूत्रे रीङ्ग्रहणमस्ति, तस्यानुवृत्तौ कर्तव्यायां रिङ्-ग्रहणं कुर्वतः सूत्रकारस्यायमभिप्रायः स्रीयादिति मा भूत्, स्रियादित्येव भवतीति । यदि तु रिङ् कृत्वा तस्य दीर्घं कुर्यात् तदा वर्णलाघवाय च रीङमेवानुवर्तयेत्, रिङ्ग्रहणं विधाय तस्य दीर्घं न कुर्यादिति। **असार्षीदिति**—सृधातोर्लुङ्, तिप्, च्लेः सिच्, अडागमः, इतश्च, अस्ति-सिचोऽपृक्ते, सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु, षत्वम् । सृधातुर्यदा शीघ्रगतौ वर्तते तदा तस्य धौ इत्यादेशः, तथैव व्याख्यानात् । औकारस्य एचोऽयवेत्याव्, **धावति** । गृ घृ सेचने, गृ धातुश्च सेचने । ध्वृ हूर्च्छने, हूर्च्छनं कौटिल्यम् । **पश्यतीति**—दृशिर् इत्यत्र इर् इत्संज्ञा वाच्येति इर इत्संज्ञा, तस्य लोपः । लट्, तिप्, शप् पश्यादेशः, अतो गुणे । **दद्रष्ठेति**– दृश् थल् इति स्थिते द्वित्वे दृश् दृश् इति, उरत्, रपरः, हलादिशेषः, द दृश् थ इति जाते सृजि- दृशोरिति मिदचोऽन्त्यादिति ऋकारात् परः अम्, अमो मकारस्येत्संज्ञालोपः । इको यणचीति ऋकारस्य रेफः । व्रश्चभ्रस्जेति सूत्रेण सकारस्य षकारः, ष्टुना ष्टुरिति थस्य ठः । विभाषा सृजिदृशोरिति इट्-पक्षे सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति अर् । **द्रष्टेति**–दृश् लुट् इति स्थिते लस्य तिप्, स्यतासीति तास्, लुटः प्रथमस्येति तिपो डादेशः, डित्त्वाट्टिलोपः, दृश् ता इति जाते व्रश्चेति शस्य षः, ष्टुत्वेन तस्य टः, सृजिदृशोरिति अम्; यण् । **द्रक्ष्यतीति**—दृश् स्य इति स्थिते सृजिदृशोरिति अमागमः, यण्, व्रश्चेति शस्य षः, षढोः कः सीति कः, सस्य षत्वं, क ष-संयोगे क्षः । **दृश्यादिति**—आशीर्लिङि । **अदर्शदिति**—दृशो लुङ्, तिप्, इरितो वेति च्लेरङ्, सार्वधातुकार्ध-धातुकयोरिति प्राप्तस्य गुणस्य क्ङिति निषेधे प्राप्ते ऋदृशोऽङीति गुणः, इतश्चेतीकारलोपः, अडागमः । अङोऽभावे **अद्राक्षीदिति**—च्लेः सिच्, शल इगुपधादनिटः क्सः इति वक्ष्यमाणसूत्रेण प्राप्तस्य च्लेः क्सादेशो 'न दृशः' इत्यनेन निषिध्यते । दृश् स् ति इत्यत्र इतश्चेति इकारलोपे अस्तिसिच इतीट्, व्रश्चेति शस्य षः, षढोः कः सीति षस्य कः, आदेशेति सस्य षः, कषसंयोगे क्षः, अडागमः, सृजिदृशोरिति अम्, यण्, वदव्रजहलन्तेति वृद्धिराकारः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अद्राक्षीदिति—अदृश् स् ई त् इति स्थिते पूर्वममि यणादेशे वृद्धौ शस्य षत्वे तस्य कत्वे सिचः षत्वं बोध्यम् ।

हिन्दी

५४८. सृज् और दृश् धातु को अकित् झलादि प्रत्यय परे रहते अम् आगम हो ।
५४९. ष और ढ को क होता है स् परे रहते ।
५५०. ऋकारान्त और दृश् धातु को अङ् परे रहते गुण होता है ।
५५१. दृश् से परे च्लि को क्स नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५५२. श्रुवः शृ च ३।१।७४॥ श्रुवः शृ आदेशः श्नुप्रत्ययश्च कर्तरि सार्वधातुके। शृणोति ।

५५३. सार्वधातुकमपित् १।२।४॥ अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत् स्यात् । शृणुतः।

५५४. हुश्नुवोः सार्वधातुके ६।४।८७॥ जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्यानेकाचोऽङ्गस्यासंयोगपूर्वस्योवर्णस्य च यण् स्यादचि सार्वधातुके । शृण्वन्ति। शृणोषि । शृणुथः । शृणुथ । शृणोमि ।

५५५. लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६।४।१०७॥ असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः । शृण्वः, शृणुवः । शृण्मः शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः। शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रुव । शुश्राव, शुश्रव । शुश्रुव । शुश्रुम । श्रोता। श्रोष्यति । शृणोतु, शृणुतात् । शृणुताम् । शृण्वन्तु ।

मध्यमनोरमा

अद्राक्षीमिति— दृश् स् ताम् इति स्थिते दृशः अम्, यण्, वृद्धिः, व्रश्चेति षत्वं, झलो झलीति सिचः सस्य लोपः, ष्टुत्वञ्च । **अद्रक्ष्यदिति**— लृङस्तिप्, स्यः, व्रश्चेति षः, षढोः कः सि, सृशोर्झल्यमकिति, इको यणचि, इतश्च, अडागमः । **शृणोतीति**— श्रुधातोस्तिप्, श्रुवः शृ चेति श्नुप्रत्ययः, श्रु इत्यस्य शृ इत्यादेशः, श्नु प्रत्ययशकारो लशक्वेति इत्संज्ञकः । शृ णु ति इति स्थिते सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति श्नुप्रत्ययोकारस्य गुणः । श्नुप्रत्ययस्य सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वात्तस्मिन् परतः शृ इत्यस्य क्क्ङिति चेति गुणनिषेधः। **शृणुत इति**- सार्वधातुकमपिदिति तसो ङित्त्वात् श्नुप्रत्ययोकारस्य न गुणः । श्नुप्रत्ययस्य ङित्त्वात् शृ इति ऋकारस्यापि न गुणः। **शृण्वन्तीति**— शृणु अन्ति इति जाते अचि श्नुधात्विति उवङि प्राप्ते हुश्नुवोरिति यण्, यतः शृणु इति श्नुप्रत्ययान्तमनेकाच् अङ्गसंज्ञकम् । **शृणोषीति**— सिप् पित्त्वात् ङित्वं न, अतो गुणः, षत्वम् । **शृणुथ इति**- थसोऽपित्त्वात् ङित्त्वम्, अतो गुणो न । **शृणोमीति**— मिपः पित्त्वात् ङित्त्वन्नेति गुणः । **शृण्वः, शृणुव इति**-शृणु वस् इति स्थिते शृणु इत्युकारः प्रत्ययसम्बन्धी असंयोगपूर्वकश्च, तेन तस्य लोपविकल्पः । **शुश्रावेति**- द्वित्वे श्रु श्रु इति, हलादिशेषः, शुश्रु इति जाते अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आवादेशः । **शुश्रुवतुरिति**-अचि श्नुधात्विति उवङ्। **शुश्रोथेति**- कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटीति इटो निषेधः । सार्वधातुकेति गुणः । **शुश्रुवथुरिति**- अचि श्नुधात्विति उवङ् । **शुश्रुवेति**- मध्यमपुरुषे बहुवचने थस्य अकारः, तस्य अपित्त्वेन ङित्त्वाद् गुणनिषेधः, उवङ् । **शुश्रावेति**— णलुत्तमो वेति णित्त्वपक्षे वृद्धिः, णित्त्वाभावे गुणः। मिप आदेशस्य णलः पित्वान् ङित्त्वाभावस्तेन गुणवृद्धिनिषेधो न । **शुश्रुवेति**-वमयोः कृसृसूत्रेण इण्निषेधः, ङित्वाद् गुणाभावः । **श्रोतेति**-सार्वधातुकेति गुणः ।

हिन्दी

५५२. श्रु को शृ आदेश हो और श्नु प्रत्यय हो कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे ।

५५३. अपित् सार्वधातुक ङिद्वत् होता है ।

५५४. हु धातु व श्नु-प्रत्ययान्त अनेकाच् अङ्ग के असंयोगपूर्वक उकार को यण् हो अजादि सार्वधातुक परे ।

५५५. असंयोगपूर्वक प्रत्यय के उकार का लोप हो म् और व परे रहते विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५५६. उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६।४।१०६।। असंयोगपूर्वात् प्रत्ययोतो हेर्लुक् । शृणु, शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणावादेशौ । शृणवानि । शृणवाव। शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृणुत। अशृणवम् । अशृण्व, अशृणुव । अशृण्म, अशृणुम । शृणुयात् । शृणुयाताम् । ५५७. उस्यपदान्तात्६।१।९६।। अपदान्तादवर्णादुसि पररूपमेकादेशः स्यात् । शृणुयुः । शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव। शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत् । अश्रोष्यत् । गम्लृ सृप्लृ गतौ ।

मध्यमनोरमा

श्रोष्यतीति—गुणः, षत्वम्। **शृणोतु इति**—श्रुवः शृ चेति श्रादेशः, श्नुप्रत्ययः, सार्वधातुकेति गुणः, एरुः । **शृणुतामिति**—तस्थेति तसस्तामादेशः, तस्य सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वात्तस्मिन् परतो न गुणः । **शृण्वन्त्विति**—श्रुवः शृ च, झोऽन्तः, एरुः, शृणु अन्तु इति जाते उवङि प्राप्ते हुश्नुवोरिति यण् । **असंयोगेति**—असंयोगसम्बन्धी यो यः प्रत्ययसम्बन्धी उकारस्तस्मात् परस्य हेर्लुक् । शृणु हि इति स्थिते हेर्लुक्, तस्य लुकः प्रत्ययलोप इति स्थानिवद्भावेन ङित्त्वात् पक्षे तुह्योरिति तातङ् । नलुमताङ्गस्येति निषेधस्त्वङ्गकार्य्ये कर्त्तव्ये, तातङ्ङादेशस्तु नाङ्गकार्यमिति भावः । **शृणुतमिति**—थसस्तमादेशस्तस्य सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वान्न गुणः। **शृणुतेति**—थस्य तादेशः । **शृणवानि इति**—मेर्निः, आडुत्तमस्य पिच्चेत्याट्, तस्य पित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वं न, अतो गुणः सार्वधातुकेति सूत्रेण, अवादेशः एचोऽयवेति सूत्रेण। **शृणवावेति**- वसः आडुत्तमस्येत्याट्, तस्य पित्त्वान् ङित्त्वं न, अतो गुणः, अवादेशः, नित्यं ङित इति वसो मसश्च सकारलोपः । एवं मसि **शृणवाम** इति । **अशृणोदिति**-श्रुधातोर्लङ्, तिप्, श्नुप्रत्ययः, शृ इत्यादेशः, सार्वधातुकेति गुणः, इतश्च, अडागमः । **अशृणुताम् इति**—तसस्तामादेशः, श्नुप्रत्ययः, श्रादेशः, अडागमः, तसोऽपित्त्वान्ङित्त्वं, तेन न गुणः । **अशृण्वन्निति**—झोऽन्तः, इतश्चेतीकारलोपः । **अशृणोरिति**—सार्वेति गुणः, सस्य रुत्वविसर्गौ, अडागमः । **अशृणुतम् इति**—थसस्तमादेशः । **अशृणुतेति**—थस्य तादेशः । **अशृणवमिति**—मिपोऽमादेशः, सार्वधातुकेति **गुणः** । **अशृण्वेति**–उतश्च प्रत्ययादिति श्नुप्रत्ययोकारलोपः । नित्यं ङित इति सलोपः । उकारलोपाभावे अशृणुवेति,अशृणुमेति । **शृणुयादिति**—विधिलिङि तिप्, यासुट्, श्नु-प्रत्ययः, शृ इत्यादेशः, नस्य णत्वं, यासुटो ङित्त्वात्तस्मिन् परतः श्नोर्न गुणः। इतश्चेतीकारलोपः [1]स्कोरिति सलोपः । **शृणुयाताम्**– तसस्तामादेशः, लिङः सलोप इति सलोपः। **शृणुयुरिति**– झेर्जुस्, लिङः सलोप इति यासः सलोपः, उस्य पदान्तादित्याकारोकारस्य च मिलित्वा पररूपम् ।

हिन्दी

५५६. असंयोगपूर्व वाले प्रत्यय सम्बन्धी उकार से परे हि का लुक् होता है ।

५५७. अपदान्त अवर्ण से परे उस् रहने पर पररूप एकादेश हो ।

---

1. लिङः सलोप इति सकारलोपो भवति । अतः मध्यमनोरमापाठश्चिन्त्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५५८. इषुगमियमां छः ७।३।७७।। शिति । गच्छति । जगाम ।

५५९. गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८।। एषामुपधाया लोपः स्यादजादौ क्ङिति नत्वङि । जग्मतुः । जग्मुः । जगमिथ । जगन्थ । जग्मथुः। जग्म । जगाम । जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता ।

५६०. गमेरिट् परस्मैपदेषु ७।२।५८।। गमेः सादेरार्धधातुकस्येट् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गम्यात् ।

५६१. पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५।। श्यन्विकरणपुषादेर्द्युतादेर्ॢदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु । अगमत् । अगमिष्यत् ।

मध्यमनोरमा

शृणुया इति— सिपः इकारलोपे लिङः सलोप इति यासः सकारलोपे च सिपः सकारस्य रुत्वविसर्गौ । थस्य तः, सस्य लोपः । **शृणुयामिति**–मिपोऽमादेशः, यासः सलोपः, सवर्णदीर्घः। **शृणुयाव इति**— नित्यं ङितः इति वस्मसोः सलोपः । लिङः सलोप इति यासः सलोपः । **श्रूयादिति**— आशीर्लिङः आर्धधातुकत्वात् श्नुप्रत्ययः श्रादेशश्च न । अकृत्सार्वेति दीर्घः । **अश्रौषीदिति**— श्रुधातोर्लुङ्, तस्य तिप्, च्लेः सिच्, सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु इति वृद्धिः । सस्य षत्वम्, इतश्चेतीकारलोपः, अस्तिसिच इति ईट्, अडागमः । **अश्रोष्यदिति**— सार्वधातुकेति गुणः । **गम्लृ सृप्लृ** अनयोर्लृकार इत्संज्ञः उपदेशेऽजनुनासिक इति सूत्रेण । **गच्छतीति**— गम् ति इति स्थिते शप् । इषुगमीति मकारस्य छकारः । **जगामेति**— लिट्, तिप्, णल्, गम् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अत उपधायाः । **जग्मतुरिति**— द्वित्वे हलादिशेषे कुहोश्चुरिति जकारे जगम् अतुस् इति स्थिते गमहनेत्युपधाभूतस्याकारस्य लोपः । एवं **जग्मुरिति** । **जगमिथेति**— ऋतो भारद्वाजस्येति नियमादिड्विकल्पः । इडभावे नश्चापदान्तस्येति मस्यानुस्वारः, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । **जग्मेति**— मध्यमपुरुषबहुवचने थस्य अकारः । जगम् अ इति जाते गमहनेत्युपधालोपः, थस्य अपित्त्वेन तदादेशाकारस्य ङित्त्वात् । **जगाम, जगमेति**- णलुत्तमो वेति णित्त्वविकल्पः । णित्त्वपक्षे अत उपधाया इति वृद्धिः । **जग्मिवेति**— जगम् वेति स्थिते क्रादिनियमान्नित्यमिट्, गमहनेत्यकारलोपः । एवं जग्मिमेति । **गमिष्यतीति**— गमेरिट् परस्मैपदेष्विति इट्, षत्वम् । **गच्छत्विति**— लोट्, तस्य तिप्, शप्, इषुगमीति छः, एरुः । **अगच्छदिति**— लङ्, तिप्, शप्, इषुगमीति छः, इतश्च, अडागमः ।

मध्यमनोरमापूरणी

गच्छतीति– गम् धातोः लटि तिपि सार्वधातुकत्वात् शपि गम् अ ति इति जाते इषुगमियमां छ इति मस्य छकारे छे चेति तुकि गत् छ ति इति जाते तस्य श्चुत्वेन चकारे गच्छति इति।

हिन्दी

५५८. इष् गम् और यम् धातु के अन्त्यवर्ण को छ हो शित् प्रत्यय परे ।

५५९. गम् हन् जन् खन् और घस् धातु की उपधा अ का लोप होता है अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे, अङ् प्रत्यय परे रहते लोप नहीं होता है ।

५६०. गम् से परे सादि आर्धधातुक को इट् होता है, परस्मैपद में ।

५६१. श्यन् विकरण पुषादि द्युतादि और लृदित् धातुओं से परे च्लि को अङ् होता है, परस्मैपद परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सर्पति । ५६२. अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६।१।५९।। उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम् वा झलादावकिति । स्रप्ता, सर्प्ता । असृपत् । ञिक्ष्विदा अव्यक्ते शब्दे । क्ष्वेदति । यभ् मैथुने । यभति । वेट्- येभिथ ।

५६३. झषस्तथोर्धोऽधः ८।२।४०।। झषः परयोस्तथोर्धः स्यान्नतु दधातेः । ययब्ध । यब्धा । णम् प्रह्वत्वे शब्दे च । नेमिथ । ननन्थ । नन्ता । नंस्यति ।

मध्यमनोरमा

गम्यादिति—आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । श्यन्विकरणेन दैवादिक इत्यर्थः । **अगमदिति**—लुङस्तिप्, च्लेः पुषादि इति सूत्रेण अङ्, इतश्च, अडागमः, गमहनेत्यत्र अङीत्युक्तत्वान्नोपधालोपः । **अगमिष्यदिति**—गमेरिट् परस्मैपदेष्विति इट् । **सर्प्तीति**—सृप् ति इति जाते शप्, पुगन्तलघूपधेति गुणः । **उपदेशेऽनुदात्त इति**—अनिट्कारिकासु पठितः इत्यर्थः । तेन सृप्धातोस्तु ञ्नित्यादिर्नित्यमिति आद्युदात्तत्वेऽपि उपदेशेऽनुदात्तत्वादमागमो भवत्येव, स्रप्तुमिति । **स्रप्तेति**—सृप् ता इति जाते अम् आगमः, इको यण् । आगमाभावे पुगन्तेति गुणः । **असृपदिति**—लृदित्वाच्च्लेरङ्, अङो ङित्त्वात् गुणो न । **ञिक्ष्विदा**—आदिर्ञिटुडव इति ञिकार इत्संज्ञकः, उपदेशेऽजनुनासिक इति आकार इत् । **क्ष्वेदतीति**—तिप्, शप्, पुगन्तेति गुणः । **यभतीति**- तिप्, शप् । **येभिथेति**-ऋतो भारद्वाजस्येति नियमादिड्विकल्पः । यभ् यभ् इति द्वित्वे हलादिशेषे इट् पक्षे थलि च सेटीति एत्वाभ्यासलोपौ । इटोऽभावे ययभ् थ इति स्थिते झषस्तथोरिति थस्य धः, झलां जश् झशीति भस्य बः, ययब्धेति । **णम् प्रह्वत्वे**-प्र ह्वत्वं नम्रत्वम् । **नेमिथेति**-णो नः, लिट्, सिप्, थल्, द्वित्वं, हलादिशेषः, न नम्थ इति जाते भारद्वाजनियमादिड्विकल्पः, इट्पक्षे थलि च सेटि इत्येत्वाभ्यासलोपौ । इडभावे मकारस्य नश्चापदान्तस्येति अनुस्वारः, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । **नन्तेति**— अनुदात्तत्वादिट् न, नश्चापदान्तेत्यनुस्वारः, परसवर्णः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अनुदात्तस्येति—सृजिदृशोर्झल्यमकिति इति सूत्रात् झल्यमकिति इत्यनुवर्तते, आदेच उपदेशे इत्यतश्च उपदेशे इत्यनुवर्तते, तदा सूत्रार्थो भवति- उपदेशावस्थायां यः अनुदात्तः ऋदुपधस्तस्य अम् वा भवति । झलादौ अकिति परे । **स्रप्ता इति**—सृप्-धातोर्लुटि तिपि तास् प्रत्यये, तिपः डादेशे डित्वसामर्थ्यादासो लोपे सृप् ता इति जाते अनुदास्येति ऋकारात् परोऽम्, यणादेशः । **यब्धेति**—यभ् तास् ति इति जाते डादेशे टेर्लोपे झषस्तथोरिति तस्य धकारे भस्य जश्त्वे यब्धा इति ।

हिन्दी

५६२. उपदेश में जो अनुदात्त ऋदुपध धातु उस को अम् आगम हो झलादि अकित् प्रत्यय परे रहते ।

५६३. झष् से परे त् और थ् को ध् होता है, धा धातु को नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनंसीत् । अनंसिष्ट। त्यज् हानौ । त्यजति । तत्याज । तत्यजिथ, तत्यक्थ । त्यक्ता । अत्याक्षीत्। अत्याक्ताम् । अत्यक्ष्यत् । अक्षू व्याप्तौ ।

५६४. अक्षोऽन्यतरस्याम् ३।१।७५।। श्नुर्वा स्यात् कर्त्तरि सार्वधातुके । पक्षे शप्। अक्ष्णोति । अक्षति । अक्ष्णुवन्ति । आनक्ष । आनक्षिथ, आनष्ठ । अक्षिता, अष्टा। स्कोरिति कलोपः ।

५६५. षढोः कः सि-८।२।४१।। अक्ष्यति । अक्ष्णोतु । अक्ष्णुहि । तक्षू त्वक्षू तनूकरणे ।

मध्यमनोरमा

नंस्यतीति—लृट्, तिप्, स्यः, अनुस्वारः । **अनंसीदिति**—लुङ्, तिप्, च्लेः सिच्, तस्य इडागमः यमरमनमेति सूत्रेण, तेनैव सूत्रेण सगागमश्च । **अनंसिष्टेति**—इटः परस्य सिचः सस्य षत्वं, ष्टुना ष्टुरिति षकारयोगे तकारस्य ष्टुत्वं, मकारस्य नश्चापदान्तस्येति अनुस्वारः । **त्यजतीति**—तिप्, शप् । **तत्यजिथेति**— भारद्वाजनियमादिड्विकल्पः । इडभावे **तत्यक्थेति**-त्यज् थ इति स्थिते द्वित्वे हलादिशेषे तत्यज् थ इति जाते जकारस्य चोः कुरिति गः, तस्य खरि चेति कः । **त्यक्तेति**-लुट्, तिप्, तास्, तिपः डादेशः, आस् इत्यस्य लोपः, त्यज्ता इति जाते चोः कुः, खरि च। **त्यक्ष्यतीति**—लृट्, तिप्, स्यः, त्यज् स्यतीति जाते चोः कुः, खरि च, त्यक्स्यतीति जाते आदेशप्रत्यययोरिति सस्य षः, कषसंयोगे क्षः । **अत्याक्षीदिति**-लुङ्, तिप्, च्लेः सिच्, इतश्च, अस्तिसिच इतीट्, अडागमः, अत्यज् स् ई त् इति जाते वदव्रजेति वृद्धिः, चोः कुः, खरि च, आदेशप्रत्यययोः, कषसंयोगः । **अक्ष्णोतीति**- ऊकार इत्संज्ञकः इड्विकल्पार्थः । अक्ष् ति इति स्थिते श्नुः, लशक्वतद्धित इति शः इत्, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति श्नोर्गुणः । **अक्ष्णुवन्तीति**- लट्, झिः, झोऽन्तः, श्नुः, अक्ष् नु अन्ति इति स्थिते अचिश्नु इत्युवङ्, रषाभ्यामिति णत्वम्। **अक्षतीति**—अक्षोऽन्यतरस्यामिति श्नुप्रत्ययाभावे शप्, कर्त्तरि शबिति । **आनक्षिथेति**—स्वरतिसूतीति ऊदित्त्वादिड्विकल्पः, द्वित्वं, हलादिशेषः, अ अक्ष् इथ इति स्थिते अत आदेरिति अभ्यासस्य दीर्घः, तस्मान्नुड् द्विहलः । **आनष्ठेति**-इटोऽभावे द्वित्वं हलादिशेषः, अत आदेः, नुट्, आनक्ष्थ इति जाते स्कोरिति सूत्रेण क्षकारस्य कषसंयुक्तस्यादिभूतककारलोपः, आनष् थ इति जाते ष्टुना ष्टुरिति थस्य ठः। **अक्षितेति**—स्वरतीति वेट्, इडभावे **अष्टा** । स्कोरिति कलोपः, ष्टुना ष्टुः । **अक्षिष्यतीति**— ऊदित्त्वाद् वेट् । इडभावे **अक्ष्यतीति**—अक्ष् स्यति इति स्थिते स्कोरिति ककारलोपे अष् स्यति इति जाते षढोः कः सीति षस्य ककारे आदेशप्रत्यययोरिति सस्य षः, कषसंयोगे क्षः । **अक्ष्णोतुइति**—लोट्, तिप्, एरुः, अक्षोऽन्यतरस्यामिति श्नुविकल्पः । सार्वधातुकेति श्नोर्गुणः। **अक्ष्णुहि इति**—सेर्हिः, श्नुः, अत्र उकारस्य संयोगपूर्वकत्वात् उतश्च प्रत्ययादिति हेर्न लुक्। हेरपित्त्वात्, [1]असंयोगादिति ङित्त्वं, तेन गुणनिषेधः ।

हिन्दी

५६४: अक्ष् धातु से श्नु प्रत्यय होता है कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते ।

५६५. ष और ढ़ को क् होता है, स् परे रहते ।

1. टिप्पणी– सार्वधातुकमपित् इति ङित्त्वं भवति । मध्यमनोरमापाठोऽशुद्धः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५६६. तनूकरणे तक्षः ३।१।७६।। श्नुर्वा शाब्विषये । तक्ष्णोति तक्षति वा काष्ठम् । ततक्ष । ततक्षिथ । ततक्षिय । ततष्ठा अतक्षीत् । अतक्षिष्टाम् । अताक्षीत् । अताष्टाम् । तनूकरणे किम् ? वाग्भिः संतक्षति । मर्त्सयतीत्यर्थः । रक्षपालने । रक्षति । णिक्षचुम्बने । प्रणिक्षति । वक्ष रोषे । संघाते इत्येके । वक्षति। मृक्ष संघाते । म्रक्ष इत्येके । तक्ष त्वचने । त्वचनं संवरणम् त्वचो ग्रहणं च । पक्ष परिग्रहे इत्येके । सूर्क्ष आदरे । सुसूर्क्ष । काक्षि वाक्षि माक्षि काङ्क्षायाम्। द्राक्षि ध्राक्षि ध्वाक्षिधोरवाशिते च । चूष् पाने । तूष् तुष्टौ । पूष्-वृद्धौ मूष् स्तेये। लूष रूप भूषायाम् । शूष प्रसवे । यूष हिंसायाम् । जूष च । भूष अलङ्कारे । जि जये । जयति ।

५६७. सन्लिटोर्जेः-७।३।५७।। सन्लिण्निमित्तादभ्यासात् परस्य जेः कुत्वम् । जिगाय । जिग्यतुः । जिगयिथ । जिगेथ । जीव प्राणधारणे । जीवति । पीव मीव तीव णीव स्थौल्ये । पीवति । पिपीव । मुर्वी बन्धने ।

मध्यमनोरमा

अक्ष्णवानीति—मेर्निः, आडुत्तमस्य पिच्च, श्नुप्रत्ययः, आटः पित्त्वविधानात् आनि इत्यपित्-सार्वधातुकं न भवतीति सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वं न भवति, तेन क्ङिति चेति निषेधाभावात् सार्वधातुकेति श्नोर्गुणः । **आक्ष्णोदिति**—लङ्, तिप्, श्नुः, सार्वधातुकगुणः, आडजादीनामित्याट्, इतश्चेतीकारलोपः । **आक्ष्णवमिति**—तस्थस्थमिपामिति मिपोऽम्, श्नुः, सार्वधातुकगुणः अवादेशः । **अक्ष्णुयादिति**—विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, श्नुः, यासुटो ङित्त्वान्न गुणः, इतश्च, लिङ इति सलोपः । **अक्ष्णुरिति**—प्रथमपुरुषबहुबचने झिः, यासुट्, लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य, झेर्जुस्, उस्यपदान्तादिति पररूपम् । **अक्ष्यादिति**—आशीर्लिङ्, तपि, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । **आक्षिदिति**—लुङ् तिप्, सिच्, तस्य स्वरतीति वेट्, इतश्चेति तिप इकारलोपः, अतिसिच इतीट्, इट ईटीति सिचो लोपः, आडजादीनाम्, आटश्चेति वृद्धिः। इडभावेऽपि आक्षीदित्येव रूपम् । तत्र अक्ष स् त् इति स्थिते अस्तिसिच इति ईट्, स्कोरिति क्षकारादिभूतककारलोपः । क्षकारान्तर्भूतषकारस्य षढोः कः सीति ककारः, तस्मात् परस्य सिचः सकारस्यादेशप्रत्ययोरिति षः । कषसंयोगे क्षः, आडागमः, वृद्धिः । **आक्षिष्टामिति**—तस्थस्थेति तसस्तामादेशः, सिच्, तस्य स्वरतीति पक्षे इट्, सिचः सस्य आदेशप्रत्ययेति षः, ष्टुना ष्टुरिति तकारस्य टकारः । आडागमो वृद्धिः । इडभावे **आष्टाम् इति**—अक्ष् स् ताम् इति स्थिते स्कोरिति कलोपे अष्स् तामिति जाते झलो झलीति सिचो लोपे ष्टुना ष्टुरिति तस्य टः, आट्,

मध्यमनोरमापूरणी

सन्लिटोर्जेरिति—सन् लिटोरिति निमित्तसप्तमी, अभ्यासाच्चेति सूत्रादनुवृत्ते अभ्यासादिति पदेऽन्वेति, चजोः कु घिण्यतोरिति सूत्रात् कु इत्यनुवर्तते । तथा च सूत्रार्थः-सन्लिण्निमित्ताद भ्यासात् परस्य जिधातोः कुत्वम् भवतीति । **जिगायेति**—जिधातोर्लिटि तत्स्थाने तिपि तिपो णलादेशेऽनुबन्धलोपे च कृते जि इत्यस्य द्वित्वेऽभ्याससंज्ञा, जि जि अ इति, सन् लिटोर्जेरिति

हिन्दी

५६६. तनूकरण अर्थ में विद्यमान तक्ष् धातु से श्नु प्रत्यय हो शप् के विषय में विकल्प से ।

५६७. सन् और लिट् निमित्तक अभ्यास से परे जि धातु को कुत्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५६८. उपधायाञ्च ८।२।७८।। धातोरूपधाभूतयो रेफवकारयोर्हल्परयोः परत इको दीर्घः स्यात् । मूर्वति । मुमूर्व । पुर्व पर्व मर्व पूरणे । पूर्वति । पर्वति । मर्वति। चर्व अदने । चर्वति । कष खष् शिष् जषझषचषमषरुषरुष हिंसार्थाः । शेषति । शिशेष । शेष्टा ।

५६९. शल इगुपधादनिटः क्सः-३।१।४५।। इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः । अशिक्षत् ।

मध्यमनोरमा

वृद्धिः । **तक्ष्णोतीति**—लट्, तिप्, श्नुः, सार्वधातुकगुणः, णत्वम् । **श्नुप्रत्ययाभावे तक्षतीति**—कर्त्तरीति शप् । **ततक्षिथेति**—स्वरतीति वेट् । **इडभावे ततष्ठेति**—द्वित्वे हलादिशेषे ततक्ष् थ इति स्थिते स्कोरिति कलोपः । थस्य ष्टुना ष्टुरिति ठः । **अतक्षीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, स्वरतीति पक्षे इट्, इतश्चेतीकारलोपः, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटि, अडागमः । वदव्रजेति वृद्धिर्न, तस्य नेटीति निषेधात् । **अतक्षिष्टामिति**—तसस्तामादेशः, सिच्, पक्षे इट्, षत्वं, ष्टुत्वम्, अडागमः । **अताक्षीदिति**—इडभावपक्षे अतक्ष् स् ई त् इति जाते वदव्रजेति वृद्धिः, स्कोरिति कलोपः, षढोः कः सि, आदेशप्रत्ययोः । **अताष्टामिति**—तसस्तामादेशः, सिच, तस्य इडभावपक्षे वदव्रजेति वृद्धिः, स्कोरिति कलोपः । ष्टुना ष्टुः, अडागमः । **रक्षतीति**—तिप्, शप् । **प्रणिक्षतीति**—तिप्, शप्, प्रपूर्वको णिक्ष्धातुः, णो नः इति णस्य नकारे उपसर्गादसमासेऽपि इति णत्वम् । **वक्षतीति**—लट् तिप्, शप् । **सुसूर्क्षेति**—द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः। **घोरवाशितेति चेति**-घोरशब्दे चेत्यर्थः । चकारात् काङ्क्षायामपि । **चूष् चेति**– चकारो हिंसायामित्यस्यानुवृत्त्यर्थः । **जयतीति**—तिप्, शप्, गुणः, अय् । **जिगायेति**- जि इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासात् परस्य गकारः । अचोः ञ्णितीति वृद्धिः, आयादेशः । **जिगयिथेति**- ऋतो भारद्वाजस्येति इड्विकल्पः, द्वित्वं, सन्लिटोर्जेः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अयादेशः। इडभावे जिगेथेति । **जीवतीति**—तिप्, शप् । **पिपीवेति**—द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः । **मूर्वति इति**—मुर्वी इतीकारः उपदेशेऽजनुनासिकेति इत्संज्ञः, तिप्, शप्, उपधायाञ्चेति उकारस्य दीर्घः, अत्र उपधाभूतो रेफः, स हल्परः, हल् वकारः, तत्परः, तस्मिन् परत उकारस्य ऊकारः । मुवूर्वेति– णल्, द्वित्वं, हलादिशेषः, अनभ्यासोकारस्य दीर्घः । **पूर्वतीति**—उपधायाञ्चेति दीर्घः । **पर्वतीति**—तिप्, शप् । **शेषतीति**—शिषस्तिप्, शप्, पुगन्तेति गुणः। **शिशेषेति**—णलि द्वित्वे हलादिशेषे पुगन्तेति गुणः । **अशिक्षदिति**—शिष् धातुः शलन्त इगुपधः अनिट्, तस्मात् परस्य च्लेः क्सः । ककारस्य लशक्वेतीत्संज्ञा, लोपः । षढोः कः सीति षस्य कः, आदेशप्रत्ययेति सस्य षः, इतश्च, अडागमः । **रोषितेति**—रुष् धातोः लुट्, तिप्, डा, तास्, टिलोपः, तीषसहेति इड् विकल्पः, पुगन्तेति गुणः । इडभावे **रोष्टेति**- ष्टुना ष्टुः । एवं

मध्यमनोरमापूरणी

अभ्यासात् परस्य द्वितीयस्य जेः जकारस्य कुत्वे गकारे जिगि अ इति, अचो ञ्णितीति वृद्धौ आयादेशे रूपम् । **जीवतीति**—लटि तिपि शपि रूपम् । लघूपधत्वाभावान्न गुणः । एवमेव पीवतीत्यत्र बोध्यम् । **उपधायाञ्चेति**—'सिपि धातोः' इति सूत्रात् धातोरिति, र्वोरुपधाया दीर्घ इक इत्यत र्वोरिकः दीर्घः इति चानुवर्तन्ते, हलि चेति सूत्रात् हलि इत्यनुवर्तते । सूत्रार्थः

हिन्दी

५६८. धातु के उपधाभूत हल्परक रेफ वकार के परे रहते इक् को दीर्घ होता है ।

५६९. इगुपध जो शलन्त धातु उससे परे अनिट् च्लि को क्स आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५७०. तीषसहलुभरुषरिषः ७।२।४८॥ इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा। रोषिता, रोष्टा। भष् भर्त्सने। इह भर्त्सनं श्वरवः। पुष पुष्टौ। पोषिता। अनुदात्तेषु श्यना निर्देशादयमुदात्तः। अङ्विधौ दैवादिकस्य ग्रहणात् नाङ्। अपोषीत्। श्रिषु श्लिषु प्रुषु प्लुषु दाहे। श्रेषति। श्लेषति। प्रोषति। प्लोषति। इति परस्मैपदिनः। एध वृद्धौ।
५७१. टित आत्मनेपदानां टेरे ३।४।७९॥ टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते।
५७२. आतो ङितः ७।२।८१॥ अतः परस्य ङितामात इय् स्यात्। एधेते। एधन्ते।
५७३. थासः से ३।४।८०॥ टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। एधे। एधावहे। एधामहे।

मध्यमनोरमा

रिष् धातोः रेषितेति। तीषसहेति इड्विकल्पः। **श्वरव इति**—शुनो रवः शब्दः। **पोषितेति**-पुष् धातोः आर्धधातुकस्येतीट्। **अनुदात्तेष्विति**—अनिट्कारिकायां पुष्येति श्यनानिर्देशात् श्यन्-विकरणस्य दिवादेर्ग्रहणं न तु शब्विकरणस्य भ्वादेस्तेनायमुदात्तः। अतोऽस्येट् आर्धधातुकस्येति। पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु इति सूत्रे श्यन्विकरणपुषादेर्ग्रहणादस्मात् पुष्धातोः च्लेरङ् न, किन्तु च्लेः सिच्, तस्य आर्धधातुकस्येतीट्, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटि, पुगन्तलघूपधस्येति गुणः। श्रेषतीत्यादि, पुगन्तेति सर्वत्र गुणः। इति मध्यमनोरमायां परस्मैपदव्याख्यानम्। **एध वृद्धौ**—अकारोऽनुदात्तस्तस्य उपदेशेऽजिति इत्संज्ञा, तस्य लोपः। **एधते इति**—लट्, एध-धातोरनुदात्तेत्संज्ञकत्वादनुदात्तङित आत्मनेपदमिति सूत्रेण लस्य स्थाने आत्मनेपदसंज्ञकः प्रथम-पुरुषैकवचने तः, कर्तरि शप्, टित आत्मनेपदानामिति टिदन्तस्य तकाराकारस्य एत्वम्। **एधेते इति**—प्रथमपुरुषद्विवचने आताम्, तस्य टेः आम् इत्यस्य एत्वम्, एध् अ आते इति स्थिते आतो ङित इति अदन्तात् परस्य आकारस्य इय्, लोपो व्योरिति यकारलोपः, आद्गुणः। **एधन्ते इति**—बहुवचने झः, तस्य झोऽन्तः, शप्, अतो गुणे, टेरेत्वम्। **एधसे इति**—मध्यमपुरुषैक-वचने थास्, थासः से, शप्। **एधेथे इति**—द्विवचने आथाम्, तस्य टेरेत्वम्, शप्, आतो ङित इति इय्, लोपो व्योरिति यलोपः, आद्गुणः। **एधध्वे इति**—बहुवचने ध्वम्, तस्य टेरम् इत्यस्य एत्वम्, शप्। **एधे इति**—उत्तमपुरुषैकवचने इट्, टलोपः, शप्, टित आत्मने इति इकारस्य एत्वम्, अतो गुण इति शपोऽकारस्य एकारेण सह पररूपमेकारः। **एधावहे इति**—द्विवचने वहिः, तस्य टेरिकारस्य एकारः, शप्, शपोऽकारस्य अतो दीर्घो यञीत्याकारः। **एधामहे इति**—बहुवचने महिङ्, तस्य टेरिकारस्य एकारः, शप्, दीर्घः।

मध्यमनोरमापूरणी

इत्थम्धातोरुपधाभूतयो रेफवकारयोः हल्परयोः परतः इको दीर्घो भवति। यथा मुर्व् अति इत्यत्र हलपरः वकारपरः उपधाभूतो रेफः, तस्मिन् परे इकः उकारस्य दीर्घो भवति। **शेष्टेति**-शिष् धातोर्लुट्, तिप्, स्यतासीति तासि प्रत्यये लुटः प्रथमस्येति डादेशे डित्त्वसामर्थ्यादासः लोपे पुगन्तेति गुणे शेष् ता इति, ष्टुना ष्टुरिति तस्य ष्टुत्वे **शेष्टेति**।

हिन्दी

५७०. इष् सह लुभ रुष और रिष धातु से परे तादि आर्धधातुक को इट् होता है विकल्प से।
५७१. टित् लकार सम्बन्धी आत्मनेपद की टि को एत्व होता है।
५७२. अत् से परे ङित् सम्बन्धी आ को इय् होता है।
५७३. टित् लकार सम्बन्धी थास् को से आदेश होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५७४. इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६।। इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् ऋच्छत्यन्यस्तत आम् लिटि ।

५७५. आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३।। आम्प्रत्ययो यस्मादित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदं स्यात् ।

५७६. लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४।८१।। एधाञ्चक्रे । एकारोच्चारणं ज्ञापकम् तङादेशानां टेरेत्वं नेति । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे।

मध्यमनोरमा

इजादिरिदि—यथा एध् धातुरिजादिः, एज्प्रत्याहारस्तदन्तर्गत एकारोऽस्यादिभूतः गुरुमान्, गुरुः एकारः दीर्घञ्चेति, गुरुसंज्ञकस्तद्वानयं, तेन एध्-धातोः लिटि परत आम्, एधाम् लिट् इति जाते आम इति लिटो लुक् । एधाम् इत्यस्मात् कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटीति लिट्परस्य कृञोऽनुप्रयोगः, एधाम् कृ लिट् इति जाते, **आम्प्रत्ययवत्**—आम्प्रत्ययो यस्मात् स आम्प्रत्ययः, आम्-प्रकृतिभूतो धातुः प्रकृते एधधातुस्तेन तुल्यम् आम्प्रत्ययवत् । तेन एध्धातोर्यथात्मनेपदं तथा कृञोऽप्यात्मनेपदम् । तेन कृञः ञित्वेन स्वरितञित इति कर्तृगामिक्रियाफले एव विधानात् परगामिनि क्रियाफले परस्मैपदं शेषादिति प्राप्तं निवारितं भवति । तेन लिटस्तङ्, ततस्तस्य लिटस्तझयोरिति एश्, शस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञा, लोपः । **एधाम् कृ ए इति** जाते लिटि धातोरिति द्वित्वम्, उरत् इति अभ्यास ऋवर्णस्य अकारः, उरण् रपर इति रपरः, हलादिः शेष इति रेफलोपः, कुहोश्चुरिति ककारस्य चकारः, इको यणचीत्यनभ्यास ऋवर्णस्य रेफः । अत्र[1]सार्वधातुकगुणो न, सार्वधातुकमपिदिति तकारस्य ङित्त्वात् क्क्ङिति चेति गुणनिषेधात् । एधाञ्चक्र इति लिटः प्रथमपुरुषैकवचने रूपम् । **एकारोच्चारणमिति**—एश्, इरेच् अनयोरेकारोच्चारणं व्यर्थम्, इश् इरिच् इति कृतेऽपि टित आत्मनेपदानामिति एत्वे ए इरे इति जाते रूपसिद्धेः । अतो व्यर्थं **सज्ञापयति**– लकारस्य ये आदेशास्तादयस्तेषामेत्वं भवति, तादीनां ये आदेशास्तेषामेत्वं न भवति । यदि तङामादेशस्यापि टेरेत्वं स्यात्तदा तझयोरादेशयोः एशिरेचोरेकारोच्चारणं व्यर्थमेव स्यात् । तेन लुटः प्रथमपुरुषाणां तातांझानां डारौरसादेशे

मध्यमनोरमापूरणी

तीषसहलुभेति– ति इति सप्तम्येकवचनम्, तस्मात्तदादिग्रहणम् । इष् सह लुभरुषरिष इत्येषां द्वन्द्वे कृते पञ्चम्येकवचने रूपम् । अत्र इष् इति शविकरणो गृह्यते, अतो वृत्तौ इच्छतीति श्तिपा निर्देशः, आर्धधातुकस्येड् इत्यत इडित्यनुवर्तते, स्वरतिसूतीत्यतो वा इति च, तथा च **सूत्रार्थः**- इष् सह लुभरुषरिषधातोः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड् वा भवति । **श्रेषतीति**– लटि तिपि सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, सार्वधातुकेति गुणः । **आतो ङितः इति**– अतो येय इत्यतोऽत इति पञ्चम्यन्तम्, इय् इति प्रथमान्तञ्चानुवर्तेते । ङितः इति षष्ठ्यन्तम् । एवञ्च अतः परस्य ङितसम्बन्धिनः आकारस्य इय् भवतीति सूत्रार्थः निष्पद्यते ।

हिन्दी

५७४. ऋच्छ से भिन्न इजादि गुरुमान् धातु से आम् प्रत्यय हो लिट् परे ।

५७५. आम् प्रकृति के तुल्य अनुप्रयुज्यमान कृञ् से भी आत्मनेपद होता है ।

५७६. लिट् लकार के त और झ को एश् और इरेच् आदेश होते हैं ।

---

1. टिप्पणी :- 'अत्र सार्वधातुकेति गुणो न, असंयोगाल्लिट् कित् इति तकारस्य कित्त्वात्, क्क्ङिति चेति गुणनिषेधात्, इति पाठः समीचीनः स्यात् । मूलपाठश्चिन्त्यः, लिट् चेति लिटः आर्धधातुकत्वात्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५७७. इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८।। इणन्तादङ्गात् परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः । एधाञ्चकृढ्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । भूधातोरनुप्रयोगः। एधाम्बभूव । एधामास । अनुप्रयोगसामर्थ्यादस्तेर्भूभावो न । अन्यथा हि क्रस्यानुप्रयुज्यते इति कृभ्विति वा ब्रूयात् । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे।

५७८. धि च ८।२।२५।। धादौ प्रत्यये सलोपः । एधिताध्वे ।

मध्यमनोरमा

कृते एत्वं न भवति । **एधाञ्चक्राते इति**—लिट्, तस्मिन् परत आम् । आम इति लिटो लुक्, कृञोऽनुप्रयोगः, ततो लिट्, तस्य आताम्, टेरेत्वं, कृ इत्यस्य द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, इको यणचि । **एधाञ्चक्रिरे**—झस्य इरेच्, चकारो हलन्त्यमिति इत्संज्ञकः । **एधाञ्चकृषे-थासः** से, आदेशप्रत्ययेति सस्य षः । **एधाञ्चक्राथे इति**—आथामित्यस्य टेरेत्वम् । **एधाञ्च-कृढ्वे इति**—ध्वमष्टेरेत्वम्, इणः षीध्वमित्यनेन धस्य ढः । **एधाञ्चक्रे इति**—उत्तमपुरुषैकवचने इट्, टकारः इत्, इकारस्य एत्वम् । **एधाञ्चकृवहे**—वहेष्टेरेत्वम् । एवम् एधाञ्चकृमहे इति बोध्यम् । भूधातोरनुप्रयोगः- **एधाम्बभूवेति**—अत्र एध्धातोरात्मने-पदित्वेऽपि अनुप्रयुज्यमानस्य भूधातोरस्धातोश्च नात्मनेपदम् । आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनु-प्रयोगस्येति सूत्रे कृञ्ग्रहणात् । अत्र कृञ्पदेन कृधातुरेव । कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटीति सूत्रे तु कृञ् प्रत्याहारस्तेन कृभ्वस्तिलाभ इति बोध्यम् । एध्धातोर्लिट्, आम्, आमः, भूधातोरनुप्रयोगः, लिट्, तिप्, णल्, भुवो वुक्, भूव् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च । **एधामासेति**—एधामिति जाते अस्धातोरनुप्रयोगः, ततो लिट्, तिप्, णल्, अस् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिः शेषः, अत आदेः, सवर्णदीर्घः । **अनुप्रयोगसामर्थ्यादिति**—अस्-धातोरनुप्रयोगं कृत्वा भ्वादेशं कुर्यात् तदा भूधातोरनुप्रयोगेणैव गतत्वात् अस्धातोरनुप्रयोगो निष्फल एव स्यात् । अस् धातोरनुप्रयोगस्तदैवं सफलः यदा भूभावो न भवेत्, अतः अस्धातोरनुप्रयोगस्य सामर्थ्यादस्तेर्भूरिति सूत्रेण भू इत्यादेशे न भवति । ननु अस्धातोर्विशिष्य सूत्रे न ग्रहणं किन्तु प्रत्याहारप्रविष्टतया, तर्हि अस्ग्रहणसामर्थ्यं नास्तीत्यत आह **अन्यथेति**, यदि अस्तेर्भूभावः स्यात्तदा कृञ्प्रत्याहारं नाश्रयेत्, प्रतिपत्तिलाघवाय क्रस्यानुप्रयुज्यते लिटीति सूत्रं कुर्यात् । अर्धमात्रालाघवाय कृञ् इति प्रत्याहाराश्रयणगौरवं नोरीकुर्यात् । नन्वेवमपि क्रियागौरवमस्त्येव, असोऽनुप्रयोगं कृत्वा तस्य भू भाव इति तत्राह- **कृभ्विति वेति** । एकमात्रालाघवाय प्रत्याहाराश्रयणं न कृतं किन्तु अस्धातोरनुप्रयोगोऽस्तु, तस्य च भूभावो मास्त्वित्येतदर्थं कृञ् प्रत्याहाराश्रयणमिति भावः । **एधितेति**—लुट्, तः, डा, तास्, टिलोपः,

मध्यमनोरमापूरणी

एधाञ्चक्रे इत आरभ्य एधाञ्चकृमहे इति यावत् मकारस्यानुस्वारपरसवर्णौ भवतः, मध्य-मनोरमायां तद् योज्यम् । **एधाम्बभूवेत्यत्र** एधाम् भू भूव् अ इति जाते ह्रस्वः, भवतेरः, अभ्यासे चर्चेति च कार्याणि यथायथं बोध्यानि । **धि चेति**—अङ्गाक्षिप्तप्रत्ययो धि इत्यनेन

हिन्दी

५७७. इणन्त अङ्ग से परे षीध्वम् और लुङ् लिट् सम्बन्धी ध् को ढ होता है ।

५७८. धादिप्रत्यय परे रहते स् का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५७९. ह एति ७।४।५२।। तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे । एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे ।
५८०. आमेतः ३।४।९०।। लोट एत आम् । एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम्।
५८१. सवाभ्यां वामौ ३।४।९१।। सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद् वामौ स्तः। एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ।
५८२. एत ऐ ३।४।९३।। लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात् । एधै । एधावहै । एधामहै। आटश्च । ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधथाः । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधे। ऐधावहि । ऐधामहि ।
५८३. लिङः सीयुट् ३।४।१०२।। लिङः सलोपोऽनन्त्यस्येति सलोपः ।

मध्यमनोरमा

आर्धधातुकस्येतीट् । **एधितारौ इति**—आतामित्यस्य रौ, तास्, इट्, रि च । **एधितार इति**झस्य रस्, तास्, इट्, रि च, रुत्व-विस्वर्गौ । **एधिताध्वे इति**—ध्वमष्टेरेत्वम्, तास्, इट्, धि चेति तासः, इट् । **एधितास्महे इति**—महि इत्यस्य टेरेत्वम्, तास् इट् । **एधिष्यते इति**—लृट्, तः स्यः, इट्, षत्वम् आतो ङित इति टेरेत्वम् । **एधिष्येते इति**—आतामित्यस्य टेरेत्वं, स्यः, इट्, षत्वम् आतो ङित इति स्याकारात् परस्याकारस्य इय्, सार्वधातुकमपिदिति आतामित्यस्य ङित्त्वात्, आद्गुणः, यलोपः । **एधिष्यन्ते इति**—झोऽन्तः, टेरेत्वं, स्यः, इट्, यस्याकारस्यान्ताकारस्य च अतो गुण इति पररूपम् । **एधिष्यसे इति**—थासः से, स्यः, इट्, षत्वम् । **एधिष्येथे इति**—आथामित्यस्य टेरेत्वम्, स्यः, इट्, षत्वम्, आतो ङित इति इय्, आद्गुणः, यलोपः। **एधिष्यध्वे इति**—ध्वमष्टेरेत्वम्, स्यः, इट्, षत्वम् । **एधिष्यावहे इति**—अतो दीर्घो यञीति दीर्घः । **एधिष्यामहे इति**—महेष्टेरेत्वम्, स्यः, इट्, षत्वम्, दीर्घः । **आमेतः**—लोट एकारस्यामादेशः स्यात् । **एधतामिति**—लोट्, तः, टित इति टेरेत्वं, तस्य आमादेशः, कर्त्तरि शप् । **एधेतामिति**- आतामित्यस्य टेरेत्वं, पुनरामादेशः, शप्, आतो ङित इत्याकारस्य इय्, आद्गुणः, लोपो व्योर्वलि । **एधन्तामिति**—झोऽन्तः, टेरेत्वम्, तस्यामादेशः, शप्, अतो गुणे । **एधस्वेति**—थासः से, सवाभ्यामिति सकारात् परस्य एकारस्य वकारः, शप् । **एधेथामिति**-आथामित्यस्य टेरेत्वं, पुनरामादेशः, शप्, आतो ङितः, आद्गुणः, यलोपः। **एधध्वमिति**—ध्वमष्टेः एत्वे सवाभ्यामिति धकारात् परस्य एकारस्य अम्, शप्, दीर्घः । **ऐधतेति**—लङ्, तः, शप्, आडजादीनाम्, आटश्चेति वृद्धिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विशेष्यते, तदादिविधिः, सस्यार्धधातुके इति सूत्रात् स इत्यनुवर्तते, तासस्त्योरित्यतः लोप इति चानुवर्तते । तदा भवति सूत्रार्थः-धादौ प्रत्यये परे सस्य लोपो भवतीति । **एधै इति**—एध् धातोः लोटः उत्तमपुरुषैकवचने इट्, आडुत्तमस्येत्याट्, टित आत्मनेपदाना- मिति इट एत्वम्, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, एध् अ आ ए इति, एत ऐ इति एकारस्य ऐकारः, आटश्चेति

हिन्दी

५७९. तास् और अस् के स् को ह् हो एकार परे रहते ।
५८०. लोट् लकार सम्बन्धी ए को आम् होता है ।
५८१. सकार वकार से परे लोट् के ए को क्रमशः व् और अम् होता है ।
५८२. लोट् उत्तम पुरुष के ए को ऐ आदेश होता है ।
५८३. लिङ् लकार को सीयुट्- आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५८४. लोपो व्योर्वलि ३।१।६६।। एधेत । एधेयाताम् ।

५८५. झस्य रन् ३।४।१०५।। लिङो झस्य रन् स्यात् । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् । एधेध्वम् ।

५८६. इटोऽत् ३।४।१०६।। लिङादेशस्य इटोऽत् स्यात् । एधेय । एधेवहि । एधेमहि ।

५८७. सुट् तिथोः ३।४।१०७।। लिङस्तथोः सुट् । यलोपः । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ।

मध्यमनोरमा

टितो लकारस्याभावाट्टेरेत्वं न । **ऐधेतामिति**— आताम्, शप्, आतो ङितः, आद्गुणः, यलोपः, आट्, वृद्धिः । **एदन्तेति**— झोऽन्तः, शप्, आतो गुणे, आट्, वृद्धिः । **ऐधध्वमिति**— ध्वम्, शप्, आट्, वृद्धिः । **एधेतेति**— विधिलिङ्, तः, तस्य सीयुडागमः, टकारो हलन्त्यमितीत्, उकार उच्चारणार्थः, एध् सीय् त इति जाते धातोः शप्, लिङः सलोप इति सीयुटः सकारलोपः, आद्गुणः, लोपो व्योरिति यलोपः ।**एधेयातामिति**–आतां, सीयुट्, शप्, सकारलोपः, आद्गुणः, वल्परत्वाभावाद् यकारलोपो न । **झस्य रन्**— लिङो झस्य रन् स्यात् । **एधेरन्निति**— झस्य रन्, सीयुट्, शप्, सलोपः, यलोपः, आद्गुणः। **एधेथाः इति**- थास्, सीयुट्, शप्, सलोपः, यलोपः, आद्गुणः, रुत्वं, विसर्गः । **एधेयाथामिति**- आथाम्, सीयुट्, शप्, सलोपः, आद् गुणः। **एधेध्वमिति**— ध्वम्, सीयुट्, शप्, सलोपः, यलोपः, गुणः । **एधेयेति**— इट्, तस्य अकारः, सीयुट्, सलोपः, शप्, आद्गुणः । **एधेवहि इति**— वहिः, सीयुट्, सलोपयलोपौ, शप्, आद्गुणः । **एधेमहीति**— महिङ्, सीयुट्, शप्, सलोपः, यलोपः, आदगुणः । **एधिषीष्टेति**— आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, सुट्तिथोरिति तकारस्य सुट्, एध् सीय् स् त इति जाते आशीर्लिंङः आर्धधातुकत्वात् सीयुट्सुटोः सकारलोपो न । आर्धधातुकस्येतीट्, लोपो व्योरिति यलोपः, आदेशप्रत्यययोरिति सकारद्वयस्यापि षकारः, ष्टुना ष्टुः । **एधिषीयास्तामिति**– आताम्, सीयुट्, आतामित्यत्र तकारात् पूर्वं सुट् तिथोरिति सुट्, इडागमः, षत्वम् । **एधिषीरन्निति**— झस्य रन्, सीयुट्, इट्, षत्वं, यलोपः । **ऐधिष्टेति**— एध्धातोर्लुङ्, च्लि लुङि, च्लेः सिच्, इडागमः,

मध्यमनोरमापूरणी

वृद्धिः, पुनः वृद्धिरेचीति वृद्धिः । **एधिषीष्ठाः इति**— एध्धातोराशीर्लिङि थास् प्रत्यये, लिङः सीयुडिति सीयुट्, सुट् तिथोरिति थस्य सुट्, लिङाशिषीति आर्धधातुकत्वादार्धधातुकस्येति इट्, एधि सीय् स् थास् इति जाते लोपो व्योर्वलीति यलोपे सकारद्वयस्य क्रमशः आदेशेति षत्वे थकारस्य ष्टुना ष्टुरिति ठः, सस्य रुत्वविसर्गौ । **एधिषीध्वमिति**– ध्वम्, सीयुट्, इट्, यलोपः, षत्वम् । अत्र षीध्वमो धस्य ढो न भवति इणः षीध्वमित्यनेन । इण्णन्तादङ्गात् परत्वाऽभावात्। इट् तु षीध्वमः एवावयवः न तु धातोः । **ऐधिदवमिति**— लुङि तु सिचः इट्, ध्वमि परतः सिज्विशिष्टस्याङ्गत्वात् सिचो लोपेऽपि ऐधिइति अङ्गमतस्तत्र सूत्रप्रवृत्तिः ।

हिन्दी

५८४. व् और य् का लोप होता है वल् परे रहते ।

५८५. लिङ् लकार के झ को रन् होता है ।

५८६. लिङादेश इट् प्रत्यय को अत् आदेश होता है ।

५८७. लिङ् लकार के त और थ को सुट् आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५८८. आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५॥ अनकारात् परस्यात्मनेपदेषु झस्यात् स्यात्। ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ऐधिढ्वम् । ऐधिषि । ऐधिष्वहि । ऐधिष्महि। ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधिष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्यध्वम् ऐधिष्ये । एधिष्यावहि । ऐधिष्यामहि । कमु कान्तौ ।

५८९. कमेर्णिङ् ३।१।३०॥ स्वार्थे । कामयते ।

५९०. अयामन्ताल्वाय्येत्विष्णुषु ६।४।५५॥ एषु णेरय् । कामयाञ्चक्रे । आयादय इति वा णिङ् । चकमे । चकमाते । चकमिरे। चकमिषे । चकमाथे । चकमिढ्वे।

मध्यमनोरमा

षत्वं, ष्टुत्वम्, आडजादीनाम्, आटश्च । **ऐधिषातामिति**—आताम्, सिच्, इट्, षत्वम्, आट्, वृद्धिः । **ऐधिषतेति**—एध् झ इति स्थिते च्लिः, तस्य सिच्, इडागमः, एधि स् झ इति जाते अकाररहितात् सकारात् परस्य झकारमात्रस्य अत्, एधि स् अत इति जाते [1]षत्वम्, आट्, वृद्धिः । **ऐधिष्ठाः इति**—थास्, सिच्, इट्, षत्वम्, ष्टुत्वम्, आट्, वृद्धिः, रुत्वविसर्गौ । **ऐधिषाथामिति**—आथाम्, सिच्, तस्य इट्, आट्, वृद्धिः । **ऐधिढ्वमिति**—ध्वम्, च्लेः सिच्, इडागमः, धि चेति सलोपः, इणः षीध्वमिति धस्य ढः, आट्, वृद्धिः । **ऐधिषीति**—उत्तमपुरुषैकवचनम् इट्, सिच्, तस्य इट्, षत्वम्, आडागमः, वृद्धिः । **ऐधिष्वहीति**—वहिः, सिच्, इट्, षत्वम्, आट्, वृद्धिः । **ऐधिष्महीति**—महिङ्, सिच्, इट्, षत्वम्, आट्, वृद्धिः। **ऐधिष्यन्तेति**—लृङ्, तः, स्यः, आट्, वृद्धिः । **ऐधिष्येति**—झोऽन्तः, स्यः इट्, षत्वम्, अतो गुणे । **ऐधिष्यथा इति**—थास्, स्यः इट्, आट्, वृद्धिः, रुत्वविसर्गौ । **ऐधिष्येथामिति**—आथाम्, स्यः, इट्, षत्वम्, आट्, वृद्धिः । आतो ङित इति आकारस्य इय्, आद्गुणः, यलोपः। **ऐधिष्यध्वमिति**—ध्वम्, स्यः, इट्, षत्वम्, आट्, वृद्धिः । **कमु कान्तौ**– कान्तिरिच्छा । **कामयते इति**—कम् धातोर्णिङ्, णकारः चुटू इति इत्संज्ञकः, ङकारो हलन्त्यमिति । कम् इ इति स्थिते अत उपधायाः, काम् इ इति जाते सनाद्यन्ता इति धातुसंज्ञा, ततो लट्, णिङो ङित्त्वात् तदन्तात् कामि इत्यस्मात् लस्य स्थाने आत्मनेपदं तः, टित आत्मने इति टेरेत्वं, शप्, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति सूत्रेण इकारस्य गुण एकारः, अयादेशः । **कामयाञ्चक्रे इति**- कमेर्णिङ्, अत उपधायाः, लिट्, तस्मिन् परतः कास्यनेकाच् इत्याम्, अयामन्तेति आमि परतो णेरय्, कामयामिति आमन्ताल्लिटो लुक्, ततः कृञोऽनुप्रयोगः, ततो लिट्, कृञो द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, [2]लिटस्तः, तस्य लिटस्तझयोरिति एश्, इकोयणचीति ऋकारस्य रेफः ।

हिन्दी

५८८. अकारभिन्न से परे आत्मने पद सम्बन्धी झ को अत् आदेश होता है ।

५८९. कम् धातु से स्वार्थ में णिङ् प्रत्यय होता है ।

५९०. आम् अन्त आलु आय इत्नु और इष्णु परे रहते णि को अय् हो ।

---

1. टिप्पणीः- मध्यमनोरमाकारः ऐधिषत इत्यादिषु त्रैपादिकं षत्वं विधाय, पश्चात् आडागमं वृद्धिं च करोति । तन्न समीचीनम् । आडागमे वृद्धौ च कृतायां षत्वं विधेयम् । ऐधिष्यन्तेत्यत्रापि अतो गुणे इत्यतः परं षत्वं कार्यम् ।
2. कामयाञ्चक्रे इत्यत्र मध्यमनोरमायां द्वित्वादीनामनन्तरं लिटस्तः तस्य एश् च विहितः, तन्न साधु । तादेशः एत्वं च द्वित्वात् प्रागेव कर्तव्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चकमे । चकमिवहे । चकमिमहे । कामयिता, कमिता । कामयिष्यते, कमिष्यते। कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट, कमिषीष्ट ।

५९१. णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३।१।४८।। ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् कर्त्रर्थे लुङि । अचकाम् इ अत इति स्थिते ।

५९२. णेरनिटि ६।४।५१।। अनिडादावार्धधातुके परे णेर्लोपः ।

५९३. णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७।४।१।। चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः स्यात्

मध्यमनोरमा

चकमे इति—आर्धधातुके आयादय इति णिङो वैकल्पिकत्वात् णिङभावे कम् लिट् इति स्थिते तस्य स्थाने तः, तस्य लिटस्तझयोरिति एश् । कम् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे कुहोश्चुः । **चकमाते इति**—कम् आताम् इत्यस्य टेरेत्वं, कम् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः। **चकमिरे इति**- झस्य लिटस्तझयोरिति इरेच्, कम् इत्यस्य द्वित्वम्, हलादिःशेषः, कुहोश्चुः । **चकमिषे इति**—थासः से, तस्य आर्धधातुकस्येतीट्, षत्वम् । **चकमाथे इति**—आथामित्यस्य टेरेत्वं, द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः । **चकमिध्वे इति**—ध्वमष्टेरेत्वं हलादिशेषः, कुहोश्चुः । **चकमिवहे इति**—वहेष्टेरेत्वम्, इट्, द्वित्वादि । **चकमिमहे इति**— एत्वं द्वित्वादि । **कामयितेति**—णिङ्, अत उपधायाः, ततो धातुसंज्ञा, लुट्, तिप्, डा, तास्, टिलोपः, इट्, णेः सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । एचोऽयवेत्ययादेशः । **कामयितासे इति**-थासः से, तास्, तासस्त्योर्लोपः इति तासः सलोपः, इट्, णेर्गुणः, अयादेशः । **कमितेति**—णिङभावपक्षे तस्य डा, तास्, टिलोपः, इडागमः । **कमितासे इति**–णिङोऽभावे थासः से, तास्, इट्, तासस्त्योरिति सलोपः । **कामयिष्यते इति**–कमेर्णिङ्, अत उपधायाः, कामि इत्यस्य सनाद्यन्ता इति धातुत्वं, ततो लृट्, तः, टित इति टेरेत्वं, स्यः, इट्, [1]षत्वं, गुणः, अयादेशः। **अकामयतेति**—णिङ्, वृद्धिः, लङ्, तः, शप्, गुणः, अय्, अडागमः। **कामयेतेति**—णिङ्, वृद्धिः, ततो विधिलिङ्, तः, सीयुट्, कामि सीय् त इति जाते कामि इत्येतस्मात् शप्, कामीत्यस्य सार्वधातुकेति गुणः। कामयसीय् त इति जाते लिङः सलोप इति सकारलोपः, आद् गुणः इति शपोऽकारस्य इकारेण सह एकारः । **कामयिषीष्टेति**—कामीति णिङन्तादाशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, इडागमः, सुट्तिथोरिति तकारस्य सुट्, कामि इ सीय् स् त इति जाते लोपो व्योरिति यलोपः, आदेशप्रत्यययोः इति सकारद्वयस्य षत्वं, ष्टुना ष्टुरिति तस्य टः । णेर्गुणः, अयादेशः । **कमिषीष्टेति**-णिङोऽभावे तः, सीयुट्, यलोपः, इट्, सकारयोः षत्वं, ष्टुत्वम् । **अचकाम् इ अ त इति स्थिते इति**—कम्धातोर्णिङ्, अत उपधायाः, णिङन्तस्य सनाद्यन्ता इति धातुत्वात्ततो लुङ्, तस्य प्रथमपुरुषैकवचने तः, च्लि लुङि, णिश्रीति च्लेश्चङ्, ङकारस्य हलन्त्यमिति चकारस्य चुटू इति इत्संज्ञा लोपः । चङीति सूत्रेण प्रथमस्यैकाच काम् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः,

हिन्दी

५९१. ण्यन्तधातु श्रि द्रु और स्रु धातुओं से विहित च्लि को चङ् आदेश होता है, कर्त्रर्थ लुङ् परे ।

५९२. अनिडादि आर्धधातुक के परे रहते णि का लोप होता है ।

५९३. चङ्परक णि के परे जो अङ्ग, उसकी उपधा को ह्रस्व होता है ।

---

1. कामयिष्यते इत्यत्र गुणायादेशयोः पश्चात् षत्वं विधेयम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५९४. सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७।४।९३।। चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति ।
५९५. सन्यतः ७।४।७९।। अभ्यासस्यात इत् सनि ।
५९६. दीर्घो लघोः ७।४।९४।। लघोरभ्यासस्य दीर्घः सन्वद्भावविषये । अचीकमत । णिङभावपक्षे–वा. कमेश्च्लेश्चङ्वाच्यः । अचकमत । अकामयिष्यत। अकमिष्यत ।
भाम् क्रोधे– भामते । बभामे । क्षमूष् सहने । क्षमते । चक्षमे । चक्षमिषे । चक्षंसे । चक्षमिवहे । चक्षमिमहे ।

मध्यममनोरमा

अडागमः । एवं क्रियया अचकाम् इ अत इति स्थिते इत्यर्थः । णेरनिटीति णिलोपे अचकाम् अत इति जाते णौ चङीति उपधाह्रस्वः । चङ् परो यस्मात् स चङ्परः, तादृशो यो णिः (णेरनिटीति णिलोपे जातेऽपि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति सूत्रेण णिरस्त्येव) तस्मिन् परतो यदङ्गम् अचकाम्, तस्य उपधाभूतस्याकारस्य ह्रस्वः, अचकम् अत इति जाते सन्वल्लघुनीति सूत्रेण चङ्परे णौ लुप्तेऽपि प्रत्ययलक्षणेन तस्मिन् परतः यदङ्गम् अचकम् इति तस्याभ्यासः चकारः, स लघुपरः लघुककाराकारः स परो यस्य तादृशः, तस्य सनीव कार्यम् । सनि परतो यत् कार्यं तत् भवति, तेन सनि परतः सन्यत इति इत्वं विहितं तदत्रापि भवति । तेन अचिकम् अत इति जाते दीर्घो लघोरिति दीर्घः । **णावग्लोपेऽसतीति** किम् ? अचकथत्-कथ वाक्यप्रबन्धे, अकारान्तः, तस्य णिचि अतो लोप इत्यकारलोपे कथि इति णिजन्तः । तस्माल्लुङि चङि द्वित्वे हलादिशेषे कुहोश्चुरित्यभ्यासस्य चुत्वे अडागमे अचकथ् इ अत् इति जाते णिलोपः । अत्र चङ्परे लुप्तणिचि परतो यदङ्गम् अचकथ् इति, तस्याभ्यासस्य लघुपरस्य न सन्वद्भावः । यतो णौ परतस्तत्र अतो लोप इति सूत्रेण अकोऽकारस्य लोपः कृतोऽस्तीति तत्र सन्यत इति इत्वं न। **णिङभावपक्षे इति**—आयादय आर्धधातुके वेति णिङो वैकल्पिकत्वात्तदभावपक्षे इत्यर्थः । **अचकमतेति**—कम् धातोर्लुङ्, च्लि लुङि, तस्य कमेश्च्लेश्चङ् इति वार्त्तिकेन चङ्, चङीति द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, अडागमः । अत्र चङ्परणेरभावान्न सन्वद्भावः । **अकामिष्यतेति**-कमेर्णिङ्, अत उपधायाः, कामीति णिङन्तधातोर्लृङ्, तः, स्यः, इट्, णेः सार्वधातुकेति गुणः, एचोऽयवेत्ययादेशः, आदेशेति षत्वमडागमः । **अकमिष्यतेति**—णिङभावे लृङ्, तः, स्यः, इट् षत्वमडागमः । **भामते इति**– भाम् धातोर्लट्, तः, शप् । **बभामे इति**- लिट्, तः, तकारस्य लिटस्तझयोरित्येश्, भाम् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्चेति बः । **क्षमूष् सहने**-षकारो हलन्त्यमिति उकार उपदेशेऽजनुनासिक इति इत्संज्ञकः। **क्षमते इति**—तः, एत्वम्, शप् । **चक्षमे इति**—लिट्, तः, द्वित्वम्, हलादिशेषः इति क्षकारादिभूतककारस्य शेषः, षकारमकारयोर्लोपः, कुहोश्चुः ।

हिन्दी

५९४. चङ्परक णि के परे जो अङ्ग, उस अङ्ग का जो लघुपरक अभ्यास, उसको सन् प्रत्यय परे रहने के समान कार्य होता है, यदि णि परे रहते अक् का लोप न हुआ हो ।
५९५. अभ्यास अकार को इत् होता है सन् परे रहते ।
५९६. अभ्यास सम्बन्धी लघुवर्ण को दीर्घ होता है; सन्वद्भाव के विषय में । वा. कम् धातु से परे च्लि को चङ् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५९७. म्वोश्च ८।२।६५।। मान्तस्य धातोर्मस्य नः स्यान्म्वोः परयोः । चक्षण्वहे। चक्षण्महे । गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च । गाधते । बाधृ लोडने । लोडनं प्रतिघातः । बाधते । नाथृ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु । वा. आशिषि नाथ इति वाच्यम् । अस्याशिष्येवात्मनेपदं स्यात् । नाथते । अन्यत्र नाथति । दध धारणे। दधते । स्कुदि आप्रवणे । आप्रवणमुत्प्लवनमुद्धरणं च । स्कुन्दते । चुस्कुन्दे । श्विदि श्वैत्ये। श्विन्दते । शिश्विन्दे । वदि अभिवादनस्तुत्योः । वन्दते । ववन्दे । भदि कल्याणे सुखे च । भन्दते । बभन्दे । मदि स्तुतिमदमोदस्वप्नकान्तिगतिषु । मन्दते । स्पदि किञ्चिच्चलने । स्पन्दते । पस्पन्दे । मुद हर्षे । मोदते । मुमुदे । उर्द-माने क्रीडायाञ्च । ऊर्दते । ऊर्दाञ्चक्रे। कुर्द खुर्द गुर्द गुद क्रीडायामेव । कूर्दते । खूर्दते । गूर्दते । गोदते । जुगुदे । षूद-क्षरणे । सूदते । सुषूदे । ह्राद अव्यक्ते शब्दे । ह्रादते । जह्रादे । ह्लादी सुखे च । चादव्यक्ते शब्दे । ह्लादते । स्वाद-आस्वादे । स्वादते । पर्द कुत्सिते शब्दे गुदरव इत्यर्थः । पर्दते । पपर्दे । यती- प्रयत्ने । यतते । येते । श्रथि शैथिल्ये-श्रन्थते । ग्रथि-कौटिल्ये । ग्रन्थते ।

मध्यमनोरमा

चक्षमिषे इति—थासः से, स्वरतिसूतीति ऊदित्त्वाद् वा इट् षत्वं, द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः। चक्षम् वहे इति स्थिते ऊदित्वात् पक्ष इट् । इटोऽभावे म्वोश्चेति मकारस्य नकारः, तस्य अट्-कुप्वाङिति णत्वम्, क्षभूतषकारात् नकारस्य अटा अकारेण व्यवधानात् । एवं **चक्षम्महे, चक्षण्महे इति**- महेरेत्वे द्वित्वे हलादिशेषे कुहोश्चुः, इट् विकल्पः । इडभावे म्वोश्चेति मस्य नः, तस्य णत्वमिति । **गाधते इति**—ऋ इत्, लट्, तः, टेरेत्वं, शप्। **बाधते इति**- टेरेत्वं, शप् । **स्कुन्दते इति**—स्कुन्दीति इकारः इत्, इदित्त्वान्नुम्, शप् । **चुस्कुन्दे इति**—लिट्, तः, एश्, द्वित्वं,शर्पूर्वाः खय इति ककारस्य शेषः । सकारनकारदकाराणां लोपः, कुहोश्चुः । **श्विन्दते इति**—अयमपि इदित् । इदितो नुम्धातोः, तः, टेरेत्वं, शप् । **शिश्विन्दे इति**-लिटस्तस्य एश्, श्विन्द् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिः शेष इति शकारशेषः, वकारनकारदकाराणां लोपः । **वन्दते इति**- इदितो नुम्, तः, एत्वं, शप् । **ववन्दे इति**—लिट्, तः, एश्, वन्द् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः। **ऊर्दते इति**—उर्द् इत्यस्माल्लट्, तः, एत्वम्, शप्, उपधायाञ्चेति उकारस्य दीर्घः । **ऊर्दाञ्चक्रे इति**-लिट्, उपधायाञ्चेति उकारस्य दीर्घे इजादेश्च गुरुमत इति आम् । लिटो लुक्, कृञोऽनुप्रयोगः, लिट्, तः, एश्, द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, इको यणचि । **कूर्दते इत्यादि**- उपधायाञ्चेति सर्वत्र दीर्घः। **गोदते इति**—गुद्धातोः तः, एत्वं, शप्, पुगन्तेति गुणः । **जुगुदे इति**—लिटस्तः, एश, द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

म्वोश्चेति—अत्र मोनो धातोरित्यनुवर्तते । तथा च सूत्रार्थः- मान्तस्य धातोः मस्य नः भवति मकारे वकारे च परे इति । **आशिषि इति**- नाथधातोरनुदात्तत्वादेव आत्मनेपदे सिद्धे, वार्तिकेन नियम्यते यत् नाथधातोः आशिष्यर्थे एवं आत्मनेपदं भवति । अन्यत्र याच्ञोपतापैश्वर्यार्थे न भवति आत्मनेपदं, तत्र शेषात् कर्तरीति परस्मैपदमेव भवति ।

हिन्दी

५९७. मान्त धातु के म को न होता है मकार व वकार परे रहते ।
वा. आशिष् अर्थ में नाथ धातु से आत्मने पद हो ऐसा कहना चाहिए ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कत्थ–श्लाघायाम् । कत्थते । चकत्थे । श्लोकृ संघाते । संघातो ग्रन्थः । स चेह ग्रथ्यमानस्य व्यापारो ग्रन्थितुर्वा । आद्येऽकर्मको द्वितीये सकर्मकः । श्लोकते । शुश्लोके । शकि शङ्कायाम् । शङ्कते । शशङ्के । अकि–लक्षणे । अङ्कते । आनङ्के। ककि वकि श्वकि त्रकि ढौकृ त्रौकृ ष्वष्क वस्क मस्क टिकृ टीकृ तिकृ तीकृ रघि लघि गत्यर्थाः । कङ्कते । वङ्कते । श्वङ्कते । त्रङ्कते । ढौकते । डुढौके । त्रौकते। तुत्रौके । वा. सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषेधः । ष्वष्कते । षष्वष्के । वस्कते।

मध्यमनोरमा

सूदते इति—धात्वादेरिति षस्य सः, लट्, तः, एत्वं, शप् । **सुषूदे इति**—लिटस्तः, एश्, द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, द्वितीयसकारस्यादेशप्रत्ययेतिं षः । **ह्रादते इति**—शप् । **जह्रादे इति**-लिटस्तस्य एश्, द्वित्वं हलादिशेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः। **चादव्यक्ते शब्द इति**—चात् चकारात् सुखे चेति चकारादव्यक्ते शब्द इत्यनुवर्तते इत्यर्थः। **यती प्रयत्ने**—ईकार इत्संज्ञकः । **येते इति**-लिटस्तस्य एश्, यत् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, अत एकहल् मध्य इत्यभ्यासलोपः, अकारस्य एत्वम् । **कत्थते इति**—लटस्तः, शप्, एत्वम्। **चकत्थे इति**—लिटस्तस्य एश्, कत्थ इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः । **श्लोकृ संघाते**– संघातः समुदायः । स च प्रकृते वाक्यसमुदायरूपो ग्रन्थो विवक्षितः । तस्य क्रियारूपत्वाभावात् कथं धातुत्वमित्याशङ्कायामाह – स चेहेति । इह धात्वर्थे स ग्रन्थः व्यापाररूपः । स द्विविधः- ग्रन्थनिष्ठो व्यापारः, ग्रन्थानुकूलः कर्तृनिष्ठश्च । तत्र ग्रन्थनिष्ठव्यापार एषोऽत्र ग्रथ्यमानस्य व्यापारः इत्यनेनोक्तः, ग्रन्थानुकूलः कर्तृनिष्ठो व्यापारः, ग्रन्थितुर्वा इत्यनेनोक्तः । तत्र आद्ये ग्रथ्यमान स्वव्यापारे श्लोक् धातुः, तदा अकर्मकः, यथा महतां यशः स्वयमेव श्लोकते, ग्रथितं भवतीत्यर्थः । द्वितीये ग्रन्थितुर्व्यापारे सकर्मकः,यथा एतत् शतं ग्रन्थन् श्लोकते ग्रन्थान् । ग्रथ्नातीत्यर्थः । **शङ्कते इति**-इदित्त्वान्नुम् । **शशङ्के इति**—लिटस्तस्य एश्, नुमागमे शङ्क इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषः । **अङ्कते इति**—नुम्, तः, एत्वं, शप् । **आनङ्के इति**—लिटस्तस्य एश्,' अङ्क अङ्क इति द्वित्वे हलादिशेषे अ अङ्क इति जाते अत आदेः इति अभ्यासस्य दीर्घः। **डुढौके इति**—लिटस्तस्य एश्, ढौक् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वः इति अभ्यासौकारस्य उकारः, अभ्यासे चर्चेति ढस्य डः । **त्रौकते इति**—ऋत् इत् । लटस्तस्य टेरेत्वे शप् । **तुत्रौके इति**—एशि द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वः । **सुब्धात्विति**—सुबन्तात् क्यङादि प्रत्यये सति सुब्धातुः, ष्ठिवुधातुः, ष्वष्कधातुश्च, एषां धात्वादेः षः सः इति प्राप्तं षकारस्य सत्वं न भवतीत्यर्थः । तत्र तु उदाहरणं षण्ढं करोति षण्ढयति इत्यादि । **ष्वष्कते इति**—ष्वष्क् धातोर्लट्, तः, टेरेत्वं, शप्, पुगन्तेति गुणः । **षष्वष्के इति**—लिटस्तस्य एशिद्वित्वे हलादिशेषः । **टेकते इति**—टिकृ धातोः ऋकारस्य इत्संज्ञायाम् लोपे लट्, टः, टेरेत्वं, शप् पुगन्तेति गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

आनङ्के इति—अकि धातोरिदितो नुमिति नुमि अङ्क इति, तस्माल्लिटः तस्य एशि कृते द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे च कृते अ अङ्क ए इति, अत आदेरिति अभ्यासाकारस्य दीर्घे, तस्मान्नुड् द्विहलोः इति नुटि आनङ्के इति । **षष्वष्के इति**—ष्वष्क् धातोः षकारस्य धात्वादेरिति प्राप्तं सत्वं सुब्धातुष्ठिवु इति वार्तिकेन निषिध्यते । लिटि त-प्रत्यये तस्य एशि द्वित्वेऽभ्यास-संज्ञायां हलादिशेषे च षष्वष्के इति ।

वा. सुब्धातु ष्ठिव् और ष्वष्क धातु के ष को सत्व का प्रतिषेध होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ववस्के । मस्कते । ममस्के । टेकते । टीकते । तेकते, तीकते । रङ्घते । लङ्घते। श्लाघृ कत्थने । श्लाघते । पचि व्यक्तीकरणे । पञ्चते । पपञ्चे । ऋज् गति-स्थानार्जनोपार्जनेषु । अर्जते । नुड्विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते । आनृजे । ऋजि भृजी भर्जने । ऋञ्जते । ऋञ्जाञ्चक्रे । भर्जते । एजृ भ्रेजृ भ्राजृ दीप्तौ । एजते । एजाञ्चक्रे । भ्रेजते । बिभ्रेजे । भ्राजते । बभ्राजे । वेष्ट वेष्टने। वेष्टते । विवेष्टे । चेष्ट चेष्टायाम् । चेष्टते । चिचेष्टे । स्फुट विकसने । स्फोटते। पुस्फुटे । टुवेपृ कम्पने । वेपते । कपि चलने । कम्पते । भिक्ष भिक्षायाम् अलाभे लाभे च । भिक्षते । बिभिक्षे । दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु । दीक्षते। दिदीक्षे । भाष् व्यक्तायां वाचि । भाषते । बभाषे । वर्ष स्नेहने । वर्षते । ववर्षे। ईह चेष्टायाम् । ईहते । ईहाञ्चक्रे । गर्ह गल्ह कुत्सायाम् । गर्हते । गल्हते । काशृ दीप्तौ । काशते । ऊह वितर्के । ऊहते । ऊहाञ्चक्रे । कथम् तर्हि 'अनुक्तम-प्यूहति पण्डितो जनः' इति । परि. अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् । अनु-दात्तेतश्चक्षिङो ङित्करणाज्ज्ञापकात् । तेन 'उदयति यदि भानुः', 'स्फायन्निर्मोक-सन्धिः' इत्यादि सिद्धमित्याहुः । अय् गतौ । अयते ।

मध्यमनोरमा

टीकते इति—अस्य दीर्घोपधत्वाल्लघूपधगुणो न । **तेकते इति**—तिक्धातोः लघूपधगुणः । **अर्जते इति**—ऋज्धातोः लट्, तः, शप्, टेरेत्वं, लघूपधगुणः । **आनृजे इति**—ऋज् ऋज् इति द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, अत आदेः, आ ऋज् इति स्थिते तस्मान्नुड् द्विहल इति नुट् । **बिभ्रेजे इति**—लिटस्तस्य एश्, भ्रेज् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्व इति एकारस्य इकारः, अभ्यासे चर्चेति भस्य बः । **बभ्राजे इति**—भ्राज् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वे अभ्यासे चर्त्व । **पुस्फुटे इति**—स्फुट् इत्यस्य द्वित्वं, शर्पूर्वाः खय इति फकार शेषः, सकारटकार-योर्लोपः । फुस्फुट् इति जाते अभ्यासे चर्चेति फस्य पः । **गर्हते इति**—गर्ह् धातोर्लटि । **जगल्हे इति**—गल्हधातोर्लिटि । **कथं तर्हि इति**– ऊह-धातोरनुदात्तत्वादात्म नेपदमेव भवति, न तु परस्मैपदं, तथा च ऊहतीति प्रयोगः, कथमित्यर्थः । **तत्रोत्तरम्**—अनुदात्तेत्वलक्षणमात्मने-पदमनित्यमित्यस्य ज्ञापकं चक्षिङो ङित्करणमिति । तथा हि चक्षिङ् धातोरिकारोऽनुदात्तः, स चेत्संज्ञकः । तस्य प्रयोजनम् अनुदात्तेतश्च हलादेरिति सूत्रेण युच् प्रत्ययः । तथा च युच् प्रत्ययार्थं कृतेन अनुदात्तत्वेनैवात्मनेपदे सिद्धे आत्मनेपदार्थं कृतेन ङित्त्वेन व्यर्थीभवता स्वसामर्थ्यायेदं ज्ञाप्यते यत् अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् इति । अतोऽनुदात्तत्वे सत्यपि आत्मनेपदस्य नित्यत्वाय ङित्त्वं कृतमिति । तेन ऊहधातोरनुदात्तेत्त्वात्मनेपदस्यानित्य-तया क्वचित् परस्मैपदमपि भवति । तेनोहत्यपि साध्वेव । अनुदात्तेत्त्वलक्षणस्यात्मनेपदस्या-नित्यत्वे प्रयोजनान्तरमप्याह–**उदयतीति**, अयं धातुरनुदात्तेत् । तथापि तस्मात् परस्मैपदम् । एवं **स्फायन्निति**—स्फाय्धातोरनुदात्तेतः परस्मैपदसंज्ञकः शतृप्रत्ययः । अयते इति– लट्, तः, टेरेत्वं, शप् ।

मध्यमनोरमापूरणी

ऋजाञ्चक्रे– लिटि इजादेश्चेति आम् । **बभाषे इति**—भाष्धातोर्लिटस्तः, एश्, द्वित्वेऽभ्यास-संज्ञायां हलादिशेषे ह्रस्वः इति अभ्यासाकारस्य ह्रस्वे अभ्यासे चर्चेति बः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५९८. उपसर्गस्यायतौ ८।२।१९।। अयतावुपसर्गरेफस्य लत्वम् । प्लायते । पलायते ।

५९९. दयायासश्च ३।१।३७।। दय अय आस् एभ्य आम् लिटि । अयाञ्चक्रे। अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट ।

६००. विभाषेट : ८।३।७९।। इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वं- लुङ्लिटां धस्य वा ढः । अयिषीढ्वम् । अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिढ्वम् । आयिध्वम्। आयिष्यत । द्युत दीप्तौ । द्योतते ।

६०१. द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् ७।४।६७।। अभ्यासस्य । दिद्युते । द्योतिता। द्योतिष्यते । द्योतताम् । अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट ।

मध्यमनोरमा

प्लायते इति—प्र अयते इति उपसर्गरेफस्य लकारः । सवर्ण दीर्घः । **अयाञ्चक्रे इति**—लिटि दयायासश्चेति आम् । आम इति लिटो लुक्, लिट्परस्य कृञोऽनुप्रयोगः, लिटस्तः, एश्, कृ इत्यस्य द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः । **अयतामिति**—लोट्, तः, टेरेत्वम्, आम्, शप् । **आयतेति**—लङ्, तः, शप्, आट्, वृद्धिः । **अयेतेति**—विधिलिङ्, तः, सीयुट्, शप्, लिङः सलोप इति सीयुटः सलोपः, लोपो व्योरिति यलोपः, आद् गुणः । **अयिषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, सुट् तिथोः, इट्, यलोपः, सकारयोः षत्वम्, ष्टुत्वम् । **अयिषीढ्वम् इति**—मध्यमपुरुषबहुवचनं ध्वम्, सीयुट्, इट्, षत्वम्, यलोपः, विभाषेट इति धस्य ढः । अत्र इण् अय् धातोर्यकारः, तस्मात् परः इट्, ततः परं षीध्वमिति, तस्य धकारस्य ढकारः । ढत्वाऽभावे अयिषीध्वमिति । **आयिष्टेति**—लुङ्, तः, सिच्, इट्, तस्य षः, ष्टुत्वम्, आट्, वृद्धिः । **आयिढ्वमिति**— ध्वम्, सिच्, इट्, सिचः सस्य धि चेति लोपः । विभाषेट इति पक्षे ढः, आट्, वृद्धिः । ढत्वाभावे आयिध्वमिति । **आयिष्यतेति**– लृङ्, तः, स्यः, इट्, षत्वम्, आट्, वृद्धिः। **द्योतते इति**—शप्, लघूपधगुणः । **दिद्युते इति**—लिटस्तस्य एश्, द्युत् इत्यस्य द्वित्वम्, द्युतिस्वाप्योरित्यभ्यासयकारस्य सम्प्रसारणमिकारः, सम्प्रसारणाच्चेति इकारोकारस्य च

मध्यमनोरमापूरणी

ईहाञ्चक्रे ऊहाञ्चक्रे इत्यादौ लिटि इजादेश्चेति आम्, लिटो लुक्, लिट्परककृञोऽनुप्रयोगे द्वित्वादिकार्यं पूर्ववत् । **लत्वं स्यादिति**—कृपो रो ल इत्यतो रो लः इत्यनुवर्तते । सूत्रार्थः- अयधातौ परे उपसर्गस्थरेफस्य लत्वं स्यादिति । **विभाषेट इति**—इणः षीध्वमिति सूत्र-मनुवर्ततेऽत्र, अपदान्तस्येत्यत मूर्धन्य इति, तदा इणन्तादङ्गात् परो य इट् ततः परेषां षीध्वं-लुङ्लिटां धस्य ढः इति अर्थः ।

हिन्दी

५९८. अय् परे उपसर्ग के रेफ को ल होता है ।

५९९. दय अय और आस् धातुओं से परे आम् होता है लिट् परे रहते ।

६००. इण् से परे जो इट्, उससे परे षीध्वम् और लुङ लिट् लकार सम्बन्धी ध को ढ हो, विकल्प से ।

६०१. द्युत् और स्वप् धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है लिट् परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६०२. द्युद्भ्यो लुङि. १।३।९१।। द्युतादिभ्यः परस्मैपदं वा लुङि । पुषादीत्यङ्। अद्युतत्, अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत । एवं श्विता वर्णे । ञिमिदा स्नेहने । ञिष्विदा स्नेहमोचनयोः, मोहनयोरित्येके, ञिक्ष्विदा चेत्येके । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च। घुट परिवर्तने । शुभ दीप्तौ । क्षुभ संचलने । णभ तुभ हिंसायाम्। स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु अवस्रंसने । ध्वंसु गतौ च । श्रम्भु विश्वासे । वृतु वर्तने । वर्तते । वा. ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात् पूर्वविप्रतिषेधेन । ववृते । वर्तिता ।

मध्यमनोरमा

पूर्वरूपमिकारः, हलादिशेषेण तकारलोपः । असंयोगाल्लिट् कित् इति कित्त्वात् क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **द्योतितेति**—लुट्, तः, डा, तास्, टिलोपः, इट् लघूपधगुणः । **द्योतिष्यते इति**-लृट्, तः, एत्वं, स्यः, आदेश इति षत्वं, गुणः । **द्योतताम‍िति**—लोट्, तः, एत्वम्, आमेतः, शप्, गुणः । **अद्योततेति**—लङ्, तः, शप्, गुणः, अडागमः । **द्योतेतेति**- विधिलिङ्, तः, सीयुट्, सलोपः, यलोपः, आद् गुणः । **द्योतिषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, इट्, सुट्, लघूपधगुणः, यलोपः, सकारयोः षत्वं, ष्टुना ष्टुः । **अद्युतदिति**—द्युद्भ्यो लुङीति द्युतादिभ्यः परस्य लुङः स्थाने परस्मैपदसंज्ञक आदेशो विकल्पेन भवतीति पक्षे तिप्, पुषादिद्युतादीति परस्मैपदे परतः च्लेरङ्, इतश्चेति तिपः इकारलोपः, अडागमः, अङो ङित्त्वात् क्ङिति चेति गुणनिषेधः । परस्मैपदाभावपक्षे द्युत्धातोर्लुङस्तः, सिच्, आर्धधातुकस्येतीट्, लघूपधगुणः, षत्वं, ष्टुत्वमडागमः । **अद्योतिष्यतेति**—लृङ्, तः, स्यः, इट्, गुणः, षत्वम्, अडागमः । **श्विता वर्णे**- आकार इत् । एवमग्रेऽपि । ञिमिदा स्नेहने- अत्र ञिकारोऽपीत्संज्ञकः । **वर्तते इति**— वृत्धातोर्लट्, तः, शप्, टेरेत्वं, लघूपधगुणः । **ऋदुपधेभ्य इति**—ऋत् ऋकारः उपधायां येषां ते ऋदुपधाः, तेभ्य ऋदुपधेभ्यो धातुभ्यः परस्य लिटः असंयोगाल्लिट् किदिति सूत्रेण कित्त्वं पूर्वमपि लघूपधगुणं परं बाधते । अयं भावः- ववृते इत्यत्र वृत्धातोरेशि द्वित्वे उरदत्वे हलादिशेषे ववृत् ए इति स्थिते असंयोगाल्लिट् किदिति कित्त्वं बाधित्वा परत्वात् पुगन्तेति गुणः प्राप्तो वार्तिककृतो वचनात् पूर्वमपि कित्त्वं परस्य गुणस्य बाधकमिति कित्त्वे सति क्ङिति चेति निषेधाद् गुणस्य पुनरप्रसङ्गः । नन्वेवम् ऋदुपधेभ्यो धातुभ्यो लिटो कित्त्वमस्तु, दिद्युते शुशुभे इत्यादौ कित्त्वाद् परत्वात् गुणो भविष्यत्येव, द्युत्-शुभ्-प्रभृतीनाम् ऋदुपधत्वाभावात् प्रकृतवार्तिकाप्रवृत्तेरिति चेत् सत्यम्, दिद्युते इत्यादौ परत्वाद् गुणः प्राप्तस्तं बाधित्वा नित्यत्वाद् कित्त्वम् । कृताकृतप्रसङ्गी विधिर्नित्य इति परिभाषणात् । कित्त्वं हि गुणे कृतेऽपि प्राप्नोति गुणात् पूर्वमपि प्राप्नोतीति नित्यम् । गुणस्तु कित्त्वात् पूर्वमेव प्राप्नोति, न तु कित्त्वे कृते गुणस्य प्राप्तिः, क्ङिति चेति निषेधात् । नन्वेवम् ऋदुपधेभ्योऽपि लिटः कित्त्वं नित्यत्वादेव भविष्यति किं पूर्वविप्रतिषेधेनेति चेन्न, ऋदुपधेभ्यः कित्त्वस्य नित्यत्वाभावात् । तत्र हि ऋकारस्य अर् गुणः, तस्मिन् कृते रेफेन समं संयोगात् असंयोगाल्लिट् किदिति सूत्राप्रवृत्तेः । दिद्युते इत्यादौ उकारस्य ओकारे कृतेऽपि लिटः संयोगात् परत्वं न भवतीति गुणे

हिन्दी

६०२. द्युतादिधातुओं से परस्मैपद होता है लङ् में विकल्प से ।

वा. ऋदुपध धातुओं से परे लिट् कित् होता है गुण को पूर्वविप्रतिषेध से बाधकर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६०३. वृद्भ्यः स्यसनोः १।३।९२॥ वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्ये सनि च।
६०४. न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७।२।५९॥ वृत्वृध्शृध्स्यन्दूभ्यः सादेरार्धधातुकस्येण्न तङानयोरभावे । वर्त्स्यति । वर्तिष्यते । वर्तताम् । अवर्तत। वर्तेत । वर्तिषीष्ट । अवृतत्, अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत्; अवर्तिष्यत । एवं वृधु वृद्धौ । शृधु शब्दकुत्सायाम् । स्यन्दू प्रस्रवणे । स्यन्दते । सस्यन्दे । सस्यन्दिषे, सस्यन्त्से । सस्यन्दिध्वे, सस्यन्ध्वे । स्यन्दिता । स्यन्ता ।

मध्यमनोरमा

कृतेऽपि कित्त्वस्य प्रसङ्गादिति ऋदुपधेभ्य एव कित्त्वं पूर्वविप्रतिषेधेन । ऋदुपधभिन्नेभ्यस्तु नित्यत्वादेव गुणं बाधते इति सिद्धम् । **वर्तितेति**—लुट्, तः, डा, तास्, टिलोपः, इट्, लघूपधगुणः । **वृतादिभ्यः पञ्चभ्य इति**—वृत् वृध् शृध् स्यन्द् कृप् एभ्यः पञ्चभ्यः इत्यर्थः । **स्ये सनि चेति**—स्यप्रत्यये विवक्षिते सन् प्रत्यये कृते चेत्यर्थः । **तङानयोरभावे इति**—परस्मैपदे इति तु नोक्तम् । **विवृत्सितेति**—सन्नन्ताद् वृत् धातोः तृचि सादेरार्धधातुकस्य सनो न वृद्भ्य इति इण्निषेधो भवति । तृच्परत्वेन तङानयोः परत्वाभावात् । परस्मैपदे परतः सादेरार्धधातुकस्येण् न भवतीत्युक्तौ तु अत्र सनः इण्निषेधो न स्यात् । तृचः परस्मैपदत्वाभावात् । **वर्त्स्यति इति**—वृतः लृट्, पक्षे परस्मैपदं, तिप्, स्यतासी लृलुटोः, परस्मैपदपक्षे न वृद्भ्यः इति इटो निषेधः, लघूपधगुणः, वर्त्स्यतीति जाते सहितोच्चारणे वर्त्स्यतीति । परस्मैपदाभावपक्षे **वर्तिष्यते** इति । आत्मनेपदं तः, स्यः, तस्य तङ्परत्वान्न वृद्भ्यः इति इण्निषेधाभावात् आर्धधातुकस्येति इट्, गुणः, षत्वमित्यादि । **वर्ततामिति**—लोट्, तः, टेरेत्वम्, आमेतः, शप्, लघूपधगुणः । **अवर्ततेति**—लङ्, शप्, गुणः, अडागमः । **वर्तेतेति**—विधि लिङ्, तः, सीयुट्, शप्, लिङः सलोपो इति सीयुट्सलोपः, लोपो व्योरिति यलोपः, लघूपधगुणः, आद्गुणः । **वर्तिषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, सुट् तिथोः, इट्, यलोपः, सकारयोः षत्वम्, ष्टुत्वम्, लघूपधगुणः। **अवृतदिति**—लुङ्, द्युद्भ्यो लुङीति परस्मैपदपक्षे तिप्, च्लि लुङि, तस्य पुषादिद्युतादीत्यङ्, अङो ङित्वात् तस्मिन् परतः क्ङिति चेति गुणनिषेधः, इतश्च, अडागमः । द्युद्भ्यो लुङीति परस्मैपदाभावे **अवर्तिष्टेति**—आत्मनेपदं तः, च्लेः सिच्, आर्धधातुकस्येतीट्, लघूपधगुणः, षत्वं, ष्टुत्वमडागमः । **अवर्त्स्यदिति**— लृङ्, स्यसनोरित्युक्तत्वात् परस्मैपदपक्षे तिप्, स्यः, न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः इत्यनेन तङानयोरभावे इटो निषेधः, लघूपधगुणः, इतश्च, अडागमः । परस्मैपदाभावपक्षे **अवर्तिष्यतेति**—अत्र तङः सत्त्वादिण्निषेधो न । **सस्यन्दिषे इति**—थासः से, द्वित्वं, हलादिशेषः, ऊदित्त्वात् स्वरतीति वेट्, षत्वम् । इडभावे **सस्यन्त्से इति**—खरि चेति दस्य तः । **सस्यन्दिध्वे इति**—ध्वम्, टेरेत्वम्, द्वित्वं, हलादिशेषः, ऊदित्त्वाद् वेट् ।

हिन्दी

६०३. स्य के विषय में और सन् परे वृतादि पाँच धातुओं से परस्मैपद होता है ।
६०४. वृत् वृध् शृध् व स्यन्दू से परे सादि आर्धधातुक को इट् नहीं होता है, तङ् और आन के अभाव में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृद्भ्यः स्यसनोरिति परस्मैपदे कृते ऊदिल्लक्षणमन्तरङ्गमपि विकल्पं बाधित्वा चतुर्ग्रहणसामर्थ्यान्न वृद्भ्य इति निषेधः । स्यन्त्स्यति, स्यन्दिष्यते, स्यन्त्स्यते । स्यन्देत । स्यन्दिषीष्ट, स्यन्त्सीष्ट । द्युद्भ्यो लुङीति परस्मैपदपक्षेऽङ् । नलोपः। अस्यदत्, अस्यन्दिष्ट, अस्यन्त । अस्यन्दिषाताम् । अस्यन्त्साताम् । अस्यन्त्सत । अस्यन्त्स्यत्, अस्यन्दिष्यत, अस्यन्त्स्यत ।

६०५. अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ८।३।७२॥ एभ्यः परस्याप्राणिकर्तृकस्य स्यन्दतेः सस्य षो वा । अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते वा जलम् । अप्राणिषु किम्- अनुस्यन्दते हस्ती । कृपू सामर्थ्ये ।

मध्यमनोरमा

इडभावे **सस्यन्ध्वे इति**—झरो झरि सवर्णे इति पाक्षिको दकारलोपः । **स्यन्दितेति**—इट् पक्षे। इडभावे **स्यन्तेति**—अत्रापि पक्षे दलोपः । **स्यन्त्स्यतीति**—लृट्, वृद्भ्यः स्यसनोरिति परस्मैपदं तिप्, स्यतासी लृलुटोः, स्यन्द्स्यति इति स्थिते स्वरतीति इड्विकल्पः प्राप्तः न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः इति इण्निषेधश्च प्राप्तस्तयोर्मध्ये स्वरतीति विकल्पोऽन्तरङ्गः, अल्पापेक्षत्वात्, न वृद्भ्य इति निषेधो बहिरङ्गः, तङानयोरभावस्याधिकस्यापेक्षणात् । अतो यद्यपि अन्तरङ्गत्वाद् विकल्पो भवितुमर्हति तथापि अत्र इण्निषेध एव, चतुर्ग्रहणसामर्थ्यात् । अधिकेन चतुर्भ्य इति पदेन अधिककार्यबोधनात्। अन्यथा चतुर्भ्य इति पदं व्यर्थमेव स्यात् । तथाहि न वृद्भ्य इत्युक्ते वृतादयः पञ्च, तेन कृप्धातोरपि ग्रहणं भविष्यति । भवतु, का क्षतिः ? तासि च क्लृप इत्यनेनैव तत्र इण्निषेधस्य विधानान्न वृद्भ्यः इत्यत्र कृपेरग्रहणस्यापि सम्भवात् । एवं च तासि च क्लृप इत्यत्र क्लृप इति न वक्तव्यं भवति । वृद्भ्यः इत्यनुवृत्त्यैव गतार्थत्वात् । न च तासि च क्लृप इति सूत्रे कृपेरनुपादाने कल्प्तासीत्यादाविव वर्तितेत्यादौ वृतादिभ्योऽपि तासेरिण्निषेधः स्यादिति वाच्यम्, तङानयोरभावे इण्निषेधात् । वृतादिभ्यस्तासौ परस्मैपदाभावेन तङ एव सत्त्वात् न इण्निषेधः । क्लृपेस्तु लुटि च क्लृप इति परस्मैपदविधानात्तासौ तङोऽभावात् इण्निषेधो भवति । एवं स्थिते चतुर्ग्रहणमतिरिच्यमानं प्रोक्तेऽर्थे ज्ञापकमिति । **स्यन्दिष्यते इति**- आत्मनेपदपक्षे इण्निषेधाभावात् स्वरतीति वेट् । इटोऽभावे **स्यन्त्स्यतीति**—खरि चेति दस्य तः । **स्यन्दिषीष्टेति**- आशीर्लिङ् तः, सीयुट्, सुट् तिथोः, स्वरतीति वेट्, यलोपः, सकारयोः षत्वं, ष्टुत्वम् । इडभावे स्यन्त्सीष्टेति । **अस्यददिति**- द्युद्भ्यो लुङीति परस्मैपदपक्षे तिप्, च्लिः, पुषादिद्युतादीति च्लेरङ्, अनिदितामिति नलोपः, इतश्च, अडागमः । **अस्यन्दिष्टेति**—परस्मैपदाभावपक्षे तः, च्लेः सिच्, ऊदित्त्वादिड्विकल्पः, सस्य षत्वं, ष्टुत्वमडागमः । इडभावपक्षे **अस्यन्तेति**—अस्यन्द् स् त इति स्थिते झलो झलीति सिचो लोपः । दकारस्य खरि चेति चर्त्वम् । न चात्र सार्वधातुकमपिदिति तकारस्य ङित्त्वात्तस्मिन् परतोऽनिदितामिति नलोपः स्यादिति वाच्यम्, नलोपे कर्त्तव्ये झलो झलीति सिज्लोपस्यासिद्धत्वेन सकारव्यवधानात्तस्योपधायां नकाराभावादिति बोध्यम् । **अस्यन्दिषातामिति**—आताम्, सिच्, इट्, षत्वम् ।

हिन्दी

६०५. अनु. वि परि अभि और नि से परे अप्राणिकर्तृक स्यन्द धातु के स को ष होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६०६. कृपो रो लः ८।२।१८॥ कृप उः इतिच्छेदः । कृपे रेफस्य लः । कृपेर्ऋकारस्यावयवो यो रेफसदृशस्तस्य च लकारसदृशः स्यात् । कल्पते । चक्लृपे। चक्लृपिषे, चक्लृप्से इत्यादि स्यन्दिवत् ।

६०७. लुटि च क्लृपः १।३।९३॥ लुटि स्यसनोश्च क्लृपेः परस्मैपदं वा ।

६०८. तासि च क्लृपः ७।२।६०॥ क्लृपेः परस्य तासेः सादेरार्धधातुकस्येण्न तङानयोरभावे । कल्प्तासि, कल्पितासे, कल्प्तासे । कल्प्स्यति । कल्पिष्यते । कल्प्स्यते । कल्पिषीष्ट ।

६०९. लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १।२।११॥ इक्समीपाद्धलः परो झलादी लिङात्मनेपदपरः सिच्चेत्येतौ कितौ स्तः । क्लृप्सीष्ट ।

मध्यमनोरमा

इडभावे अस्यन्त्साताम् इति । **अस्यन्त्स्यदिति**-लृङ्, वृद्भ्यः स्यसनोरिति परस्मैपदपक्षे तिप् स्यः, न वृद्भ्यः इति इण्निषेधः, इतश्च, अडागमः, खरि च । परस्मैपदाभावे तः, स्यः, स्वरतीति इट्, षत्वम्, अडागमः । इडभावे **अस्यन्त्स्यतेति** । अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते वा जलमित्यत्र जलं प्राणिभिन्नं कर्तृ, अतः षत्वविकल्पः । **अनुस्यन्दते हस्तीति**- अत्र हस्ती कर्ता, स च प्राणीति न षत्वम् । **कृपो रो लः**—कृप उः रः लः इति चत्वारि पदानि । कृप् इत्यस्य धातोः ऋकारस्य अवयवो रेफः, रेफसदृशस्तस्य लः । कृप् इत्यस्यावृत्तिः, तेन कृप् इत्यस्य लकारो भवतीति द्वितीयवाक्यम् । **कल्पते इति**—लट्, तः, टेरेत्वं, शप्, पुगन्तेति ऋकारस्य अर्, कृपो रो ल इति रस्य लः। **चक्लृपे इति**—लिटस्तस्य एश्, द्वित्वम्, उरदिति अर्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, चकृप् ए इति स्थिते कृपो रो ल इति ऋकारैकदेशस्य रस्य लः । ऋकारस्य स्थाने लकार इत्यर्थः । **चक्लृपिषे इति**—थासः से, ऊदित्त्वाद्वेट् । इडभावे **चक्लृप्से** इति । उभयत्रापि कृपो रो लः । **स्यन्दिवदिति**-ऊदित्त्वादिड्विकल्पः स्यन्दिवदित्यर्थः । **कल्प्तासीति**-लुट्, लुटि च क्लृप इति परस्मैपदपक्षे सिप्, तास्, गुणः, कृपो रो लः, तासस्त्योर्लोपः । तङोऽभावात्तासि चेति इण्निषेधः । परस्मैपदाभावे अनुदात्तेत्त्वादात्मनेपदं, थास्, थासः से, तास्, ऊदित्त्वात् पक्षे इट्, गुणः, लत्वम् । इडभावे **कल्प्तासे इति** । **कल्प्स्यति इति**—लुटि च क्लृप इति परस्मैपदपक्षे तासि च क्लृप इति इण्निषेधः । परस्मैपदाभावे ऊदित्त्वादिड्विकल्पः। **कल्पिषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, ऊदित्त्वादिड्विकल्पः, यलोपः, सकारयोः षत्वं, ष्टुत्वं, [1]पुगन्तेति गुणः, लत्वम् । इडभावे **क्लृप्सीष्टेति**—कृपो रो लः इति ऋकारस्य लृकारः, अत्र गुणे प्राप्ते लिङ्सिचाविति कित्त्वं, क्क्ङिति चेति गुणनिषेधः ।

हिन्दी

६०६. कृप् धातु के रेफ को ल् होता है । कृप् के ऋकार का अवयव जो रेफ सदृश उसको लकार सदृश आदेश होता है ।

६०७. लुट् में और स्य के विषय में तथा सन् परे रहते कृप् से परस्मैपद हो विकल्प से।

६०८. कृप् से परे तास् और सादि आर्धधातुक को इट् नहीं हो, तङ् व आन के अभाव में।

६०९. इक् समीप हल् से परे झलादि लिङ् और आत्मनेपदपरक सिच् कित् होता है ।

टिप्पणी-षत्वात् पूर्वं गुणो भवतीति ज्ञेयं सर्वत्र । मध्यमनोरमायां प्रायः अक्रमता दृश्यते षत्वविषये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अक्लृपत्, अकल्पिष्ट, अक्लृप्त । अकल्प्स्यत्, अकल्पिष्यत, अकल्प्स्यत इति । दद दाने । ददते । ददे। दददाते । दददिरे । ददिता । ददिष्यते । ददताम् अददत । ददेत । ददिषीष्ट। अददिष्ट । अददिष्यत । त्रपूष् लज्जायाम् । त्रपते। ६१०. तॄफलभजत्रपश्च ६।४।१२२।। एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रपिता । त्रप्ता । त्रपिष्यते, त्रप्स्यते । त्रपताम् । त्रपेत। त्रपिषीष्ट । अत्रपिष्ट, अत्रप्त । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत । घट चेष्टायाम् । घटते। जघटे । व्यथ भयसंचलनयोः । ६११. व्यथो लिटि ७।४।६८।। व्यथेरभ्यासस्य संप्रसारणं स्याल्लिटि । हलादिः शेषापवादः । विव्यथे । प्रथ प्रख्याने । प्रथते । प्रस् विस्तारे । प्रसते । म्रद् मर्दने । स्खद् स्खदने । स्खदनं विद्रावणम् । स्खदते। क्रप् कृपायां गतौ च । क्रपते । ञित्वरा सम्भ्रमे । त्वरते । टुभ्राजृ टुभ्राशृ टुभ्लाशृ दीप्तौ । भ्राजते ।

मध्यमनोरमा

अक्लृपदिति—लुङ्, द्युद्भ्यो लुङीति परस्मैपदपक्षे तिप्, च्लिः, तस्य पुषादिद्युतादीत्यङ्, कृपो रो लः । परस्मैपदाभावे आत्मनेपदं तः, च्लेः सिच्, ऊदित्त्वाद् वेट्, पुगन्तेति गुणः, कृपो रो लः, षत्वं, ष्टुत्वमडागमः। इडभावे **अक्लृप्तेति**—अत्र गुणो न, लिङ्सिचाविति सिच् कित् । **अकल्प्स्यदिति**– लुटि च क्लृप इति परस्मैपदपक्षे तिप्, स्यः, तासि च क्लृप इति इण्निषेधः। परस्मैपदाभावपक्षे ऊदित्त्वादिड्विकल्पः । **ददते इति**—तः, एत्वं, शप् । **ददे इति**—लिट्, तः, एश्, द्वित्वं, हलादिशेषः । **दददाते इति**—आतामित्यस्य टेरेत्वम् । **दददिरे इति**—झस्य इरेच् । **ददितेति**—तास्, इट् । **ददिष्यते इति**—लृट्, तः, स्यः, इट् । **ददतामिति**—लोट्, आमेतः । **अददतेति**—लङ्, तः, शप्, अट् । **ददेतेति**-लिङ्, तः, सीयुट्, सलोपः, यलोपः, शप्, आद्गुणः । आशीर्लिङि सीयुट्, सुट्, इट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अददिष्टेति**—लुङ्, सिच्, इट्, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अददिष्यतेति**—लृङ् । **त्रपूष्** लज्जायाम् । षकार इत्संज्ञकः ऊकारश्च । **त्रपते इति**—लट्, तिप्, शप् । **त्रेपे इति**—तः, एश्, द्वित्वं, हलादिशेषः, तत्रप् ए इति जाते तॄफलेति एत्वमभ्यासलोपश्च । संयुक्तहल्ध्यस्थत्वात् अत एकेति एत्वमप्राप्तं तॄफलेति विधीयते । **त्रपिता, त्रप्तेति**—ऊदित्वादिड् विकल्पः । **त्रपिष्यते, त्रप्स्यते इति**—अत्रापि इड्विकल्पः । **त्रपतामिति**—लोट्, आमेतः, शप् । **अत्रपतेति**—पुषादिद्युतादीति च्लेरङ् । **घटते इति**—तः, एत्वं, शप् । **जघटे इति**—एश्, द्वित्वं, कुहोश्चुः । **विव्यथे इति**– एश्, द्वित्वं, व्यथो लिटीति सम्प्रसारणं यकारस्य इकारः, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपं, विथ् व्यथ् इति जाते हलादिशेषः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ददे इति—लिटि तः, एश्, द्वित्वं, हलादिशेषः, ददे इति । दद् धातोः लिटि न शसददवादिगुणानामिति निषेधात् अत एकहलिति एत्वाभ्यासलोपौ न भवतः ।**त्रपिषीष्टेति**– ऊदित्वाद् वेट्, सकारद्वयस्य षत्वे ष्टुत्वेन तस्य टः ।

हिन्दी

६१०. तॄ फल भज और त्रप् धातु के अ को एत्व और अभ्यास का लोप होता है कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते ।

६११. व्यथ् के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है, लिट् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६१२. फणां च सप्तानाम् ६।४।१२५।। फण् राजृ भ्राजृ भ्राशृ भ्लाशृ, स्यमु स्वन एषाम् एत्वाभ्यासलोपौ वा स्तः किति लिटि सेटि थलि च । भ्रेजे । बभ्राजे। वा भ्राशेति श्यन्वा । भ्राश्यते, भ्राशते । भ्रेशे, बभ्राशे । भ्लाश्यते । भ्लेशे, बभ्लाशे। रमु क्रीडायाम् । रमते । रेमे । रन्ता । जभी जृभि गात्रविनामे ।
६१३. रधिजभोरचि ७।१।६१।। नुम् । जम्भते । जजम्भे । जृम्भते । जजृम्भे। इत्यात्मनेपदिनः ।
अथोभयपदिनः । श्रिञ् सेवायाम् । श्रयति । श्रयते । शिश्राय । शिश्रिये । श्रयितासि, श्रयितासे । श्रयिष्यति, श्रयिष्यते । श्रयतु, श्रयताम् । अश्रयत्, अश्रयत । श्रयेत्, श्रयेत । श्रीयात्, श्रयिषीष्ट । अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत् । अश्रयिष्यत । भृञ् भरणे । भरति । भरते । बभार । बभ्रतुः । बभ्रुः । बभर्थ । बभृव । बभ्रे । बभृषे ।

मध्यमनोरमा

भ्रेजे इति—एश्, द्वित्वं, फणां चेति एत्वाभ्यासलोपौ । तयोरभावे बभ्राजे इति । **भ्राश्यते इति**—श्यन्पक्षे, तदभावे शप् । **भ्लाश्यते इति**—श्यन्पक्षे, तदभावे शप् । **भ्रेशे इति**– भ्राश् धातोः एशि द्वित्वे फणां चेति एत्वाभ्यासलोपौ । **रेमे इति**—एशि द्वित्वे हलादिशेषे अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **रन्तेति**—एकाच इति इण्न । **जम्भते**—जभ् धातोः शप्, नुम् । **जृम्भते इति**—जृभ्धातोर्नुम् । इत्यात्मनेपद प्रक्रिया । **श्रयतीति**—स्वरितञित इति कर्तृगामिनि क्रिया-फले आत्मनेपदम्, .परगामिनि परस्मैपदमिति उभयपदम् । श्रिधातोः परस्मैपदपक्षे तिप्, शप्, सार्वधातुकेति गुणः । आत्मनेपदे तः, शप्, गुणः । **शिश्रायेति**— परस्मैपदपक्षे णल्, द्वित्वं, हलादिशेषः, णलो णित्त्वादचो ञ्णितीति वृद्धिः । **शिश्रिये इति**—आत्मनेपदपक्षे द्वित्वे इयङ्। **श्रयितासीति**—सिप्, तास्, सलोपः, इट्, गुणः, अयादेशः। **श्रयितासे इति**—थासः से, तास्, सलोपः, इट्, गुणः । **श्रयिष्यतीति**—स्यः, इट्, गुणः, षत्वम् । **श्रयतु इति**—शप्, गुणः, एरुः । **अश्रयदिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, शप्, गुणः। **श्रयेदिति**—विधिलिङ्, तिप्, यास्, शप्, गुणः, अयादेशः, अतो येयः, आद्गुणः, यलोपः। **श्रयेतेति**—आत्मनेपदे तः, सीयुट्, शप्, सलोपः, गुणः, अयादेशः, आद्गुणः, यलोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ञित्वरा इति—आदिर्ञिटुडव इति ञि इत्यस्येत्संज्ञा । आकारः उपदेशेऽजनुनासिक इदिति इत्। **त्वरते इति**—त्वर् धातोर्लट्, तः, शप् । **फणां चेति**—अत्र अत एक हलित्यतो लिटि इति, थलि च सेटि इति चानुवर्तते । घ्वसोरित्यत एदिति, गमहन् इत्यतः किति, वा जृभ्रमु इत्य-स्मात् वेति चानुवर्तन्ते । तथा च **सूत्रार्थः** –फणादीनां सप्तानां वा एत्वाभ्यासलोपौ किति लिटि सेट्थलि च इति । **भ्रेशे इति**– भ्राश् धातोर्लिटि तप्रत्यये एशि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादि-शेषे ह्रस्वे अभ्यासे चर्चेति बकारे ब भ्राश् ए इति जाते फणां चेति अभ्यासलोपे आकारस्य एत्वे भ्रेशे इति । विकल्पे बभ्राशे इति ।

हिन्दी

६१२. फणादि सात धातुओं को एत्व-अभ्यासलोप विकल्प से होता है किट् लिट् औ सेट् थल् परे ।

६१३. अजादि प्रत्यादि परे रहते रध् और जभ् धातु को नुम् आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भर्तासि । भर्तासे । भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम् । अभरत् । अभरत। भरेत्, भरेत । भ्रियात् ।

६१४. उश्च १।२।१२।। ऋवर्णात् परौ झलादी लिङ् आत्मनेपदपरः सिच्चेत्येतौ कितौ स्तः । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् । अभार्षीत् ।

६१५. ह्रस्वादङ्गात् ८।२।२७।। सिचो लोपो झलि । अभृत । अभरिष्यत्, अभरिष्यत । हृञ् हरणे–हरति । हरते । जहार । जह्रतुः । जह्रुः । जहर्थ ।

मध्यमनोरमा

श्रीयादिति—आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट्, सलोपः, इतश्च, अकृत्सार्वेति दीर्घः । **श्रयिषीष्टेति**-आत्मनेपदे तः, सीयुट्, सुट्, यलोपः, इट्, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अशिश्रियदिति**—लुङ्, तिप्, इतश्च, णिश्रीति च्लेश्चङ्, चङीति द्वित्वं, हलादिशेषः, अडागमः। अशिश्रि अत् इति जाते अचिश्नु इति इयङ् । **अशिश्रियतेति**—आत्मनेपदपक्षे तः, णिश्रीति चङ्, द्वित्वं, हलादिशेषः, अडागमः । **अश्रयिष्यदिति**—परस्मैपदपक्षे तिप्, स्यः, इट्, षत्वमडागमः, इतश्च, सार्वधातुकेति गुणः । आत्मनेपदपक्षे **अश्रयिष्यतेति** । **भरतीति**—तिप्, शप्, सार्वधातुकेति गुणः अरादेशः । आत्मनेपदपक्षे **भरते इति**—तः, टेरेत्वं, शप्, गुणः अर् । **बभारेति**– लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वम्, उरत्, रपरः, हलादिशेषः । भ भृ अ इति जाते अभ्यासे चर्चेति भस्य बः, अचो ञ्णितीति आर् । **बभ्रतुरिति**—अतुस्, द्वित्वादि, ऋकारस्य यण्, असंयोगाल्लिट् कित् इति अतुसः कित्वाद् गुणनिषेधः । **बभ्रुः इति**—उस्, द्वित्वादि, यण् । **बभर्थेति**—कृसृभृवृ इति इण्निषेधः । थलः सिप्स्थानिकत्वेन पित्त्वादसंयोगादिति कित्त्वाभावाद् सार्वधातुकेति गुणः। **बभृवेति**—वमयोरसंयोगादिति कित्त्वाद् गुणनिषेधः, क्रादिसूत्रेण इण्निषेधः । **बभ्रे इति**—आत्मनेपदपक्षे लिटस्तस्य एश्, द्वित्वादि, यण् । **बभृषे इति**—थासः से, क्रादिसूत्रेण इण्-निषेधः । **भर्त्तासीति**—पर स्मैपदपक्षे सिप्, तासिः, तासस्त्योर्लोपः, गुणः, अनुदात्तत्वादिटो निषेधः । **भर्त्तासे इति**—आत्मनेपदपक्षे तासः सलोपः । **भृषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, तस्यात्मनेपदं तः, सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । अत्र सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे प्राप्ते उश्चेति लिङः कित्त्वात् क्ङिति चेति निषेधः । **भृषीयास्तामिति**—आताम्, सीयुट्, तकारस्य सुट् तिथोरिति सुट्, सीयुटः सस्य षत्वम्, कित्वाद् गुणनिषेधः । **अभार्षीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, इतश्च, अस्तिसिच इति ईट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, अडागमः । आत्मनेपदे तः, सिच्, ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः । अत्र प्रत्ययलक्षणेन सिच्परतः सार्वधातुकेति गुणे प्राप्ते उश्चेति आत्मनेपदपरस्य सिचः कित्त्वाद् क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **अभरिष्यदिति** लृङ्, स्यः, ऋद्धनोः स्ये इति इट्, गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भरिष्यति इति—भृ-धातोर्लृट्, तिप्, स्यः, ऋद्धनोः स्ये इति इट्, भृ इस्यति इति जाते सार्वधातुकेति ऋकारस्य गुणे रपरत्वे आदेशेति षत्वे रूपम् । **भ्रियादिति**—आशीर्लिङि तिप्, यासुट्, यासुटः कित्त्वम्, रिङ्शयग् इति ऋकारस्य रिङादेशे इतश्चेति तिपः इकारलोपे स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः ।

हिन्दी

६१४. ऋवर्ण से परे झलादि लिङ् और आत्मनेपद परक सिच् कित् होता है ।

६१५. ह्रस्वान्त अङ्ग से परे सिच् का लोप होता है, झल् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जह्रिव । जह्रिम । जह्रे । जह्रिषे । हर्तासि । हर्तासे । हरिष्यति । हरिष्यते । धृञ् धारणे। धरति, धरते । णीञ् प्रापणे । नयति । नयते । डुपचष् पाके । पचति । पचते । पपाच । पेचिथ, पपक्थ । पेचे । पक्ता । पक्ष्यति, पक्ष्यते । भज सेवायाम् । भजति। भजते । भेजे । भक्तासि । भक्ष्यति । भक्ष्यते । भजतु। भजताम् । अभाक्षीत्। अभक्त । अभक्षाताम् । यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु। यजति, यजते ।

६१६. लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६।१।१७।। वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्याल्लिटि । इयाज ।

मध्यमनोरमा

आत्मनेपदे अभरिष्यतेति । **जहर्थेति**—ऋतो भारद्वाजस्येति भारद्वाजमते इण्निषेधः । अचस्ता-स्वदिति अन्येषामपि मते इण्निषेधः, द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, सार्वधातुकेति गुणः । **जह्रिवेति**—वमयोः क्रादिनियमादिट् । यणादेशः । **जह्रिषे इति**—थासः से । अत्रापि क्रादिनियमादिट्, षत्वं, यणादेशः। **हर्तेति**—अनुदात्तत्वादेकाच उपदेशे इति इण्निषेधः । **हरिष्यतीति**—ऋद्धनोः स्ये इतीट् । **नयतीति**—णो नः । तिप्, शप्, सार्वधातुकगुणः, अया-देशः । **पचतीति**—आदिर्ञिटुडवः । हलन्त्यमिति ष् इत्, उपदेश इत्यकार इत् । अयं स्वरितेत्, स्वरितञित इत्यात्मनेपदम्, शेषादिति परस्मैपदञ्च स्वार्थे । पचते, परार्थं पचति । **पेचिथेति**-थल्, भारद्वाजमते ऋदन्तादेव थलो नेट् इति । तन्मते पच्धातोस्थल इट्, द्वित्वे थलि च सेटीति एत्वाभ्यासलोपौ । अन्येषां मते तु उपदेशेऽत्वत इति इण्-निषेधः । सेट्थलोऽभावा-देत्वादिकं न । चोः कुरिति झलि परतः चस्य कः । **पेचे इति**—आत्मनेपदपक्षे तस्य एश्, द्वित्वम्, अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **पक्तेति**—अनुदात्तत्वादिण्निषेधः । चोः कुः । **पक्ष्यतीति**—कुत्वं, सस्य षत्वं, क्षः । **बभाजेति**—अत उपधायाः । **भेजे इति**—अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ ।**भक्तेति**- चोः कुरिति जस्य गः, खरि चेति गस्य कः । **अभाक्षीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, वदव्रजहलन्तेति वृद्धिः । कुत्वं, चर्त्वं, सस्य षत्वम्, इतश्च, अडागमः । **अभक्तेति**—आत्मनेपदपक्षे सिचो झलो झलीति लोपः । **अभक्षाताम् इति**- आताम्, सिच्, कुत्वं, चर्त्वं, षत्वं, संयोगे क्षः । **यजतीति**—ऋत्विक् यजति, यजमानो यजते । **इयाजेति**-लिट्, तिप्, णल्, यज् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषे य यज् अ इति जाते लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणं यकारस्य इकारः, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे इयज् इति जाते अत उपधाया इति वृद्धिः । **ईजतुरिति**- यज् धातोः लिट्, अतुस्, वचिस्वपीति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च कृते इज् इत्यस्य द्वित्वम्, हलादिशेषः, सवर्णदीर्घः, सस्य रुत्वविसर्गौ ।

मध्यमनोरमापूरणी

जहारेति—ह्वधातोर्लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, उरदिति अत्वे रपरत्वे हलादिशेषः, कुहोश्चुः इति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, अचो ञ्णिति इति वृद्धिः ।

हिन्दी

६१६. वच्यादि और ग्रह्यादि धातुओं के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है लिट् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६१७. वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५।। वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसाणं किति ।

यजिर्वपिर्वहिश्चैव वसिर्वेञ्व्येञ् इत्यपि ।
ह्वेञ्वदी श्वयतिश्चेति यजाद्याः स्युरिमे नव ।।

ईजतुः । ईजुः । इयजिथ, इयष्ठ । ईजे । यष्टा । यक्ष्यति, यक्ष्यते । यजतु, यजताम् । अयजत्, अयजत ।

यजेत । इज्यात् । यक्षीष्ट । अयाक्षीत् । अयष्ट । अयक्ष्यत् । अयक्ष्यत । वह् प्रापणे । वहति । वहते । उवाह । ऊहतुः। ऊहुः । उवहिथ । झषस्तथोर्धोऽधः।

६१८. ढो ढे लोपः ८।३।१३।।

६१९. सहिवहोरोदवर्णस्य ६।३।११२।। ढलोपे । उवोढ । ऊहे । वोढा । वक्ष्यति। वक्ष्यते ।

मध्यमनोरमा

इयजिथेति—थल्, भारद्वाजमते इट्, द्वित्वादिना ययज् इति जाते लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणे पूर्वरूपम् । भारद्वाजान्यमते **इयष्ठेति**—इयज् थ इति जाते व्रश्चभ्रस्जेति जकारस्य षकारः, ष्टुना ष्टुरिति थस्य ठः । **ईजे इति**—तस्य एशि वचिस्वपीति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च कृते द्वित्वे हलादिशेषे सवर्णदीर्घः । **यष्टेति**—अनुदात्तत्वादिण्निषेधः, व्रश्चेति षः, ष्टुत्वम् । **यक्ष्यतीति**—तिप्, स्यः, व्रश्चेति जस्य षः, षढोः कः सि, षत्वं, क्षः। **इज्यादिति**—आशीर्लिङि परस्मैपदे यासुट्, किदाशिषि इति यासुटः कित्त्वात् वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च । **यक्षीष्टेति**—आशीर्लिङ्, आत्मनेपदे सीयुट्, सुट् तिथोः, व्रश्चेति षः, षढोः कः सि, आदेशप्रत्ययेति षत्वं, कषसंयोगे क्षः, ष्टुत्वम् । **अयाक्षीत् इति**—लुङ्, तिप्, च्लेः सिच्, वदव्रजेति वृद्धिः, व्रश्चेति षः, षढोः कः सि, आदेशप्रत्ययेति षः, अडागमः। आत्मनेपदपक्षे **अयष्टेति**—झलो झलीति सिचो लोपः, व्रश्चेति जस्य षः, ष्टुत्वम् । **उवाहेति**– णल्, द्वित्वं, लिट्भ्यासस्येति सम्प्रसारणम् । **ऊहतुरिति**—असंयोगाल्लिडिति अतुसः कित्त्वाद् वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम्, सवर्णदीर्घः । **उवहिथेति**—भारद्वाजमते इट्, सिप्स्थानिकत्वेन थलः पित्त्वाद् असंयोगादिति कित्त्वाभावाद् वचिस्वपीति सम्प्रसारणं न, अभ्यासस्य तु लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणं भवत्येव । भारद्वाजभिन्नमते **उवोढेति**-उपदेशेऽत्वत इति

मध्यमनोरमापूरणी

यष्टेति—लुट्, तिप्, तासि प्रत्ययः, लुटः प्रथमस्येति डादेशेऽनुबन्धलोपे यज् तास् आ इति जाते टेरासो लोपे व्रश्चेति जस्य षत्वे तस्य ष्टुत्वम् । **यजताम् इति**—लोटि आत्मनेपदे तः, टेरेत्वे आमेतः इत्याम्, शप् । **अजयत्**—लङ्, तिप्, इतश्चेति इलोपः, शप्, अडागमः ।

हिन्दी

६१७. वच् स्वप् और यजादिधातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् प्रत्यय परे ।

कारिकाः—यज् वप् वह वस् वेञ् व्येञ् ह्वेञ् वद और श्वि ये नौ धातु यजादि कहलाते हैं ।

६१८. ढकार परे रहते ढ का लोप होता है ।

६१९. ढ्लोप होने पर सह् व वह् धातु के अवर्ण को ओत् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वहतु । उह्यात् । वक्षीष्ट । अवाक्षीत् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम्। अवोढ । अवाक्षम् । अवाक्ष्व । अवाक्ष्म । अवोढ । अवक्षाताम् । अवक्षत। अवोढाः । अवक्षाथाम् । अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि। टुवप् बीजसन्ताने । बीजसन्तानं क्षेत्रे विकिरणं गर्भाधानञ्च । अयं छेदनेऽपि। केशान् वपति । वपते । उवाप । ऊपे । वप्ता । वप्स्यति । वप्स्यते । उप्यात्। वप्सीष्ट। प्रण्यवाप्सीत् । अवप्त । वेञ् तन्तुसन्ताने । वयति । वयते ।

मध्यमनोरमा

क्रादिनियमप्राप्तस्येटो निषेधः । वह् थ इति स्थिते द्वित्वं, सम्प्रसारणम्, उवह् थ इति जाते हो ढः, झषस्तथोर्धोऽधः, झषूपरयोस्तथोर्धः स्यात्, नतु दधातेरिति ढकारात् परस्य थकारस्य धकारः, ष्टुना ष्टुरिति धस्य ढः, ढो ढे लोपः, सहिवहोरोदवर्णस्य इति अवर्णस्य ओकारो भवति। ढकारलोपे सति ओकारः । **ऊहे इति**—लिटस्तस्य एश्, वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, पूर्वरूपम्, द्वित्वादि, सवर्णदीर्घः । **वोढेति**—लुट्, डा, तास्, टिलोपः, अनुदात्तत्वादिण्निषेधः, होढः, झषस्तथोर्धोधः, ष्टुत्वं, ढलोपः, सहिवहोरोत् । **वक्ष्यतीति**–लृट्, स्यः, हो ढः, षढोः कः सीति कः, षत्वम् । **अवाक्षीदिति**—लुङ्, सिच्, वदव्रजेति वृद्धिः, हो ढः, कत्वं, षत्वम् । **अवोढाम् इति**—तसस्ताम्, झलो झलीति सिचो लोपः, हो ढः, धत्वं, ष्टुत्वं, ढलोपः, ओत्त्वम् । **अवाक्षुरिति**–सिच्, सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, जः इत्, वदव्रजेति वृद्धिः, ढत्वं, कत्वं, षत्वम् । **अवाक्षीरिति**—सिच्, इतश्चेति इलोपः, अस्तिसिच इतीट्, वृद्धिः, ढत्वं, कत्वं, षत्वं, सस्य रुत्वविसर्गौ । **अवोढमिति**—थसस्तम् , सिच्, झलो झलीति लोपः, ओत्त्वम् । **अवोढेति**—थस्य तादेशः, सिचो लोपः, ढ़त्वादि पूर्ववत् । **अवाक्षमिति**—मिपः अम्, सिच्, वदव्रजेति वृद्धिः, हो ढः, कत्वं, षत्वम्, अडागमः । **अवाक्ष्वेति**—वस्, सस्य नित्यं ङित इति लोपः, सिचि वृद्धिः, ढत्वं, कः, षः, अट् । **अवोढेति**—आत्मनेपदपक्षे तः, सिच्, झलो झलीति सिचो लोपः, हो ढः, झषस्तथोर्धोऽधः,ष्टुत्वम्, ढलोपः, ओत्त्वम् । **अवक्षातामिति**—आताम्, सिच्, हो ढः, षढोः कः सि, षत्वम् । अडागमः । **अवक्षतेति**- लुङ्, झः, सिच्, आत्मनेपदेष्वनत इति सकारात् परस्य अत्, वह् स् अत् अ इति जाते हो ढः , षढोः कः सि, आदेशप्रत्यययोः, अडागमः । **अवोढाः इति**—थास्, सिच्, झलो झलीति सस्य लोपः, हो ढः, झषस्तथोर्धोऽधः, ष्टुत्वम्, ढलोपः, ओत्त्वम्, रुत्वविसर्गौ । **अवक्षाथामिति**-आथाम्, सिच्, हो ढः इत्यादि । **अवोढ्वमिति**—ध्वम्, सिचो लोपः, ढत्वादि । **अवक्षीति**—उत्तमपुरुषैकवचने इट्, सिच्, होढः । **अवक्ष्वहि इति**—वहेः सिच्, हो ढः, कत्वं, षत्वम् । **उवापेति**—लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणम्, अत उपधायाः । **ऊपे इति**—तस्य एश्, असंयोगाल्लिट् किदिति तस्य कित्त्वाद् वचिस्वपि इति सम्प्रसारणम्, सम्प्रसाणाच्च, ततो द्वित्वम्, उप् उप् इति, हलादिशेषः, सवर्णदीर्घः । **उप्यादिति**—आशीर्लिङ्, यासुट्, अनुदात्तत्वादिण्न भवति, किदाशिषीति यासुटः कित्त्वाद् वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च । **वप्सीष्टेति**-आशीर्लिङ्, आत्मनेपदं तः, सीयुट्, सुट्, अनुदात्तत्वादनिट्, यलोपः, षत्वं ष्टुत्वम् । **प्रण्यवाप्सीदिति**—प्रनिपूर्वक वप्धातोः लुङ्, तिप्, सिच्, वदव्रजेति वृद्धिः, इतश्च, अस्तिसिच इतीट्, अडागमः, नेर्गदनदेति णत्वम् । प्रण्यवाप्सीदित्युपलक्षणम् । प्रणिवपतीत्यादावपि नेर्णत्वं बोध्यम् । अवप्तेत्यात्मनेपदे, झलो झलीति सिचो लोपः । **वयतीति**—तिप्, शप्, एकारस्य अय् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६२०. वेञो वयिः २।४।४१।। वा स्याल्लिटि । इकार उच्चारणार्थः । उवाय।
६२१. ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६।। चात् किति सम्प्रसारणम् । इति यस्य प्राप्ते ।
६२२. लिटि वयो यः ६।१।३८।। वयो यस्य सम्प्रसारणं न स्याल्लिटि । ऊयतुः। ऊयुः । ६२३. वश्चास्यान्यतरस्यां किति ६।१।३९।। वयो यस्य वो वा स्यात् किति लिटि । ऊवतुः । ऊवुः । वयस्तासावभावात् थलि नित्यमिट् । उवयिथ। स्थानिवत्त्वेन ञित्त्वात्तङ् । ऊये । ऊवे । वयादेशाभावे ।
६२४. वेञः ६।१।४०।। सम्प्रसारणं न स्यात् लिटि । ववौ । ववतुः । ववुः। वविथ, ववाथ । ववे । ववाते । वविरे । वाता ।

मध्यमनोरमा

उवायेति—वेञः लिट्, वय इत्यादेशः, णल्, वय इत्यस्य द्वित्वं हलादिशेषः, लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च । अत उपधायाः । अत्र यद्यपि वेञ इति वक्ष्यमाणसूत्रेण सम्प्रसारण-निषेधः प्राप्तः, वयादेशस्य स्थानिवद्भावेन वेञ्त्वात्, तथापि ग्रहिज्येति सूत्रे वयीत्यस्य ग्रहणान्निषेधो न प्रवर्तते । **ग्रहिज्या**—अत्र वयि ग्रहणं व्यर्थम् । वयादेशस्य लिट्येव विधानान् ङिति परतस्तस्योदाहरणाभावात् । किति परतस्तु वचिस्वपीत्यनेनैव सम्प्रसारणसिद्धिः । यजादिषु वेञ्पाठेन स्थानिवद्भावेन वयोऽपि वेञ्त्वात् यजादिपाठेनैवाभ्यासस्यापि लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणसिद्धेः । वेञ इति सम्प्रसारणवारणार्थं वयग्रहणमिति चेन्न, लिटि वयो यः इति यकारस्य सम्प्रसारणनिषेधाद् वकारस्य सम्प्रसारणं भवतीति अर्थात् सिद्धेः । **ऊयतुरिति**—अतुस्, वयादेशः, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, तत उय् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, सवर्णदीर्घः। वश्चास्यान्येति यकारस्य वकारपक्षे **ऊवतुरिति** । एवम् उसि ऊयुः ऊवुरिति रूपद्वयम् । **वयेस्तासावभावादिति**—लिट्येव वयादेशविधानात् तासौ परतो वयो नेति अनुदात्तत्वात् एकाच उपदेश इति इण्निषेधो न, क्रादिनियमस्य तद्बाधकत्वात् । तासावभावादित्यादिना क्रादिनियमबाधकस्य उपदेशेऽत्वत इत्यस्य तद्बाधकस्य ऋतो भारद्वाजेत्यस्य चाप्रवृत्तेः, तत्र तासौ नित्यानिट् इत्युक्तत्त्वात् इड् विकल्पो न । **स्थानिवत्त्वेनेति**—वेञादेशस्य वयोऽपि स्थानिगतञित्त्वातिदेशात् स्वरितञित इति आत्मनेपदमित्यर्थः । **ऊये इति**—एश्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, उय् इत्यस्य द्वित्वं हलादिशेषः, सवर्णदीर्घः । वश्चास्येति यकारस्य वकारपक्षे **ऊवे इति** । **ववाविति**- वयादेशाभावपक्षे वे णल् इति स्थिते आदेच उपदेशेऽशिति इति

हिन्दी

६२०. वेञ् धातु को वय आदेश होता है लिट् परे, विकल्प से ।
६२१. ग्रह् ज्या वय् व्यध् आदि धातुओं को सम्प्रसारण होता है कित् ङित् प्रत्यय परे रहते।
६२२. वय के य को सम्प्रसारण नहीं होता है लिट् लकार में ।
६२३. वय् के य् को व् होता है विकल्प से, कित् लिट् परे रहते ।
६२४. वेञ् धातु को लिट् लकार में सम्प्रसारण नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऊयात् । वासीष्ट । अवासीत् । अवासिष्टाम् । अवासिषुः । अवास्त । व्येञ् संवरणे। व्ययति । व्ययते ।

६२५. न व्यो लिटि ६।१।४६॥ आत्वं न । परमपि हलादिशेषं बाधित्वा यस्य सम्प्रसारणम् । उभयेषां ग्रहणसामर्थ्यात् । अन्यथा वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चानुवृत्त्यैव सिद्धे किं तेन । विव्याय । विव्यतुः । विव्युः ।

६२६. इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६॥ अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् । विव्ययिथ । विव्यथुः । विव्य । विव्याय, विव्यय । विव्यिव, विव्यिम । विव्ये।

मध्यमनोरमा

एकारस्याकारः, आत औ णलः, द्वित्वं, ह्रस्वः, वृद्धिरेचि । **ववतुरिति**—अतुस्, असंयोगादिति कित्त्वादातो लोप इटि चेत्यालोपः । **वविथेति**—आत्वं, वा इत्यस्य द्वित्वं, ह्रस्वः, भारद्वाजमते इट्, इट परत आतो लोप इटि चेत्यालोपः । भारद्वाजभिन्नमते अचस्तास्वदिति इण्निषेधः। **ववे इति**—आत्मनेपदपक्षे तस्य एश्, आत्वं, ह्रस्वः, आलोपः । **ववाते इति**—आतामित्यस्य टेरेत्वम् आत्वं, द्वित्वं, ह्रस्वः, आलोपः । **वातेति**—आत्वम्, अनुदात्तत्वादिण्न । **ऊयादिति**—आशीर्लिङ्, वा या त् इति जाते किदाशिषीति यासुटः कित्त्वाद् वचिस्वपीति वकारस्य उकारः, सम्प्रसारणाच्च, अकृत्सार्वधातुकेति दीर्घः । **वासीष्टेति**—आत्त्वम्, आशीर्लिङ् आत्मनेपदपक्षे तः, सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अवासीदिति**—आत्वं, लुङ्, तिप्, सिच्, यमरमनमातामिति सक्, इट्, इतश्चेति इकारलोपः, 'अस्तिसिच इतीट् । इट ईटि, सवर्ण दीर्घः। **अवासिष्टामिति**—तसस्तामादेशः, सिच् इट्, सक्, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अवास्तेति**—आत्वं, लुङ्, सिच्, आडागमः । **व्ययतीति**—तिप्, शप्, अयादेशः । **न व्यो लिटि**-व्येञो लिटि आत्वं न। तस्मात् **विव्यायेति**—न व्यो लिटीति आदेच इति प्राप्तस्य निषेधः, व्ये इत्यस्य द्वित्वं, लिट्यभ्यासस्येति यकारस्य सम्प्रसारणमिकारः, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपं, वि व्ये अ इति, अचो ञ्णितीति एकारस्य ऐकारः, आयादेशः । अत्र लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणं बाधित्वा यकारस्य हलादिशेषलोपः प्राप्तः, उभयेषां ग्रहणसामर्थ्यात् सम्प्रसारणमेव भवति । उभयेषां ग्रहणेन अधिकस्यार्थस्य करणादिह हलादिः शेष इति अस्य बाध उभयेषां ग्रहणेन क्रियते । अन्यथा उभयेषां ग्रहणं व्यर्थमेव स्यात् । उभयेषां ग्रहणेन वचिस्वपीति सूत्रोपात्तानां ग्रहिज्येति सूत्रोपात्तानां च धातूनां ग्रहणं क्रियते । तत्र उभयेषामिति नोपादेयं, किन्तु वचिस्वपियजादीनामित्यावर्तनीयम्। ग्रहिज्येत्यादि भृज्जतीनामित्यन्तं चानुवर्तनीयम्, तावतैव वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणमित्यपि सिद्धे उभयेषां ग्रहणमतिरिच्यमानं प्रोक्तार्थज्ञापकमिति सिद्धम् । **विव्यतुः इति**—न व्यो लिटीत्यात्वनिषेधः, वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, वि इत्यस्य द्वित्वं, वि विअतुस् इति जाते एरनेकाच इति यण् । एवं **विव्युरिति । इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् इति**—अत्तीत्यद्धातुः, अर्तीति ऋधातुः, व्ययतीति व्येञ् धातुः । **विव्ययिथेति**—ऋतो

मध्यमनोरमापूरणी

ऊवतुरिति—वेञः लिटि, वयादेशे, लिटस्तसोऽतुसि असंयोगादिति कित्त्वे वय् अतुस् इत्यत्र यकारस्य सम्प्रसारणे प्राप्ते लिटि वयो य इति निषेधे ग्रहिज्येति वस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे द्वित्वे हलादिशेषे सवर्णदीर्घे ऊय् अतुस् इति जाते वश्चास्यान्येति यस्य वकारे सस्य रुत्वविसर्गौ

हिन्दी

६२५. व्येञ् धातु को लिट् में आत्व नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्याता । व्यास्यति । वीयात् । व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यास्त । ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च । ६२७. अभ्यस्तस्य च ६।१।३३।। अभ्यस्तीभविष्यतो ह्वेञः सम्प्रसारणम् । जुहाव, जुहुवे । ह्वाता । ह्वास्यति । ह्वास्यते ।
६२८. लिपिसिचिह्वश्च ३।१।५३।। च्लेरङ् । अह्वत् । अह्वताम् । अह्वन् ।
६२९. आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ३।१।५४।। अङ् वा । अह्वत । अह्वेताम् । अह्वन्त । अह्वास्त । अह्वासत । राजृ दीप्तौ । राजति, राजते । रराज । रेजतुः, रराजतुः । रेजुः, रराजुः । रेजे, रराजे । हिक्क अव्यक्ते शब्दे । हिक्कति, हिक्कते। अञ्चु गतौ पूजने च । अञ्चति । अञ्चते । अचु इत्येके । अचीत्यपरे । टुयाचृ याच्ञायाम् । याचति, याचते ।

मध्यमनोरमा

भारद्वाजस्येति भारद्वाजमते इट् प्राप्तः, अचस्तास्वदित्यन्येषां मते इटो निषेधः प्राप्तः, तत्र इडत्त्यर्तीति नित्यमिट् । **विव्याय विव्ययेति**-णलुत्तमो वेति णलो णित्त्वविकल्पः । णित्त्वपक्षे अचो ञ्णितीति एकारस्य ऐकारः, आयादेशः । णित्त्वाभावे एकारस्य अयादेशः । **विव्ये इति**—आत्मनेपदपक्षे तस्य एश्, वचिस्वपीति यकारस्य इकारः, पूर्वरूपत्वं, वि इत्यस्य द्वित्वम्, एरनेकाच् इति यण् । **व्यातेति**—आत्त्वम्, अनुदात्तत्वादिण्निषेधः । **वीयादिति**—यासुट्, किदाशिषीति कित्त्वाद् वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च, अकृत्सार्वेति दीर्घः । **व्यासीष्टे**त्यात्मनेपदे आत्वं, तः, सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अव्यासीत् इति**—आत्वं, लुङ्, तिप्, यमरमनमेति इट्सकौ, इतश्च, अस्तिसिचोऽपृक्ते, इट ईटि, सवर्णदीर्घः, अडागमः। **अव्यास्तेति**—आत्मनेपदपक्षे लुङस्तः, सिच्, आत्वम्, अडागमः । **ह्वेञ् स्पर्द्धायां** शब्दे च, शब्दोऽत्र आकाररूपः । **अभ्यस्तीभविष्यत इति**—अभ्यस्तनिमित्ते प्रत्यये द्वित्वात् प्रागेव ह्वेञः सम्प्रसारणमिति फलितोऽर्थः । **जुहावेति**—ह्वे धातोः णल्, अभ्यस्तेति वकारस्य उकारः, सम्प्रसारणाच्च, हु अ इत्येवं जाते द्वित्वं, कुहोश्चुः, अचो ञ्णितीति उकारस्य औकारः, आवादेशः। **जुहुवे इति**—सम्प्रसारणे द्वित्वम्, अचिश्नुधात्विति उवङ् । **ह्वातेति**—आदेच इत्यात्वम् । **लिपिसिचि इति**—च्लेरङ् । **अह्वत् इति**—आदेच इत्यात्वं, लिपि सिचि इति च्लेरङ्, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । **अह्वतामिति**—तस्थस्थेति तसस्तामादेशः, च्लेरङ्, आतो लोपः । **अह्वन्निति**—झोऽन्तः, इतश्चेति झेरिकारलोपः, [1]संयोगान्तस्येति तलोपः, च्लेरङ्, आलोपः, अतो गुणे, अडागमः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भवतः । **विव्यिवेति**—लिटो वसि क्रादिनियमादिटि न व्यो लिटीति आत्वनिषेधे व्ये इ व इति जाते वचिस्वपीति सम्प्रसारणे सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे वि इ व इति जाते द्वित्वे वि वि इ

हिन्दी

६२६. अद् ऋ व व्येञ् धातु से पर थल् को नित्य इट् होता है ।
६२७. अभ्यस्तसंज्ञक होने वाले ह्वेञ् धातु को सम्प्रसारण होता है ।
६२८. लिप् सिच् और ह्वेञ् धातु से परे च्लि को अङ् होता है ।
६२९. लिप् सिच् और ह्वेञ् धातु से परे च्लि को अङ् होता है विकल्प से आत्मने पद में।

1. संयोगान्तलोपः पश्चात् कर्त्तव्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बुधिर् बोधने । बोधति, बोधते । अबुधत् । अबोधीत् । अबोधिष्ट । खनु अवदारणे । खनति, खनते । चखान । चख्नतुः । चख्नुः । चख्ने । खायात्, खन्यात् । चीवृ आदानसंवरणयोः । चीवति, चीवते । चायृ पूजानिशामनयोः। चायति, चायते । व्यय गतौ । व्ययति । व्ययते । दाशृ दाने । दाशति, दाशते। भेषृ भये । गतावित्येके । भेषति, भेषते । अस् गतिदीप्त्यादानेषु । असति, असते। आस, आसे । अयं षान्तोऽपि । स्पश बाधनस्पर्शनयोः । स्पर्शनं ग्रन्थनम् । स्पशति, स्पशते । लष् कान्तौ । लष्यति, लषति । लष्यते, लषते । चष् भक्षणे । चषति, चषते । झष आदानसंवरणयोः । झषति, झषते । दासृ दाने । दासति, दासते। धावु गतिशुद्ध्योः । धावति, धावते । इत्युभयपदिनः । ।। इति भ्वादिप्रकरणम्।।

मध्यमनोरमा

अह्वतेति—आत्मनेपदपक्षे च्लेरङ्, आकारलोपः । **अह्वेतामिति**—आत्वं, च्लेरङ्, आतो ङित इत्यातामित्याकारस्येय्, धातोराकारस्य आतो लोप इटि चेति लोपः, लोपो व्योरिति यलोपः, आद्गुणः । **अह्वन्तेति**—आत्वं, च्लेरङ्, आकारलोपः, झोऽन्तः, अतो गुणे । **अह्वास्तेति**—अङो विकल्पे च्लेः सिच् । **अह्वासतेति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात् । **राजतीति**—तिप्, शप्। **रेजतुरिति**—राज् इत्यस्य द्वित्वं, फणां च सप्तानामित्येत्वाभ्यासलोपविकल्पः । एत्वाभ्यास-योरभावे रराजतुरिति । आत्मनेपदपक्षे **रेजे इति**—फणां चेत्येत्वाभ्यासलोपौ । तदभावे रराजे इति । **अबुधदिति**—इरितो वेति च्लेरङ् विकल्पः । अङोऽभावे **अबोधीदिति**—आर्धधातुक-स्येतीट्, अस्तिसिच इति, इट ईटीति सिचो लोपः । **अबोधिष्टेति**– आत्मनेपदपक्षे तः, सिच्, इट्, षत्वं, ष्टुत्वं, पुगन्तेति गुणः, अडागमः । **चखानेति**—द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, अत उपधायाः । **चख्नतुरिति**—गमहनेत्युपधालोपः । **चख्ने इति**—गमहनेति खकाराकारस्य लोपः । **खायादिति**—ये विभाषेति नकारस्याकारविकल्पः, सवर्णदीर्घः । ये विभाषेत्यात्वाभावे **खन्यादिति** । **लष्यतीति**—वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटि लषः' इतिश्यन् विकल्पः । श्यनोऽभावे कर्त्तरि शप् । लषतीति ।

।। इति भ्वादयः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

व इति, सवर्णदीर्घं प्रबाध्य एरनेकाच इति यणि विव्यिवेति । **अह्वन्निति**-—लुङि आत्वे झि प्रत्यये, झोऽन्त इति झस्यान्तादेशे इतश्चेति इकारलोपे च्लि-प्रत्यये तस्य लिपिसिचीति अङि अडागमे अह्वा अ अन्त् इति, आतो लोप इतिं आलोपे अतो गुणे इति पररूपे तस्य संयोगान्त-लोपः । **रराजेति**—लिटस्तिपि णलि द्वित्वेऽभ्यासादिकार्यम् ।**अबुधदिति**— बुधिर् इत्यस्य इरः 'इर इत्संज्ञा वाच्येति' इत्संज्ञा । लुङि तिपि इतश्च, च्लि लुङि, इरितो वेति च्लेरङ्, अडागमः। अङो ङित्त्वान्नगुणः । **चख्ने इति**-आत्मनेपदे लिटस्तः, लिटस्तझयोरित्येश्, खन् इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासंज्ञा, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, गमहनजनखन इत्युपधालोपः । **खायादिति**—आशीर्लिङि तिपि इकारलोपे यासुटि खन् यास् त् इति, ये विभाषेति नस्य आत्वे सवर्णदीर्घे रूपम् । **आसेति**—लिटस्तिपि णलि द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे अ अस् अ इति, अत आदेः, अत उपधायाः, सवर्णदीर्घः ।

।। इति चौधर्युपाह्वेन अर्कनाथेन कृतायां मध्यमनोरमापूरण्यां भ्वादिप्रकरणम् ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ अदादिप्रकरणम्

६३०. ऋतेरीयङ् ३।१।२९।। स्वार्थे । ऋतिः सौत्रः । जुगुप्सायाम् इति बहवः। कृपायाञ्चेत्येके । ऋतीयते । ऋतीयाञ्चक्रे । आयादय इति इयङभावपक्षे शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम् । आनर्त । अर्तिता । अर्तिष्यति इत्यादि । अद् भक्षणे।

६३१. अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२।। लुक् स्यात् । अत्ति । अत्तः । अदन्ति। अत्सि । अत्थः । अत्थ । अद्मि । अद्वः । अद्मः ।

६३२. लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४०।। अदो घस्लृ वा स्यात् । जघास । उपधालोपः। घस्य चर्त्वे ।

६३३. शासिवसिघसीनाञ्च ८।३।६०।। इण्कुभ्यामेषां सस्य षः । जक्षतुः । जघसिथ । आद । आदतुः । आदुः । आदिथ । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु । अत्तात्। अत्ताम् । अदन्तु ।

मध्यमनोरमा

सौत्र इति—सूत्रे दृष्टो न तु धातुपाठे पठितः, तकारान्तो धातुरिका निर्दिष्टः नत्विकारान्तः। वञ्चिलुञ्च्यृतश्चेति निर्देशात् । **कृपायाञ्चेति**—अर्तनं च ऋतीया च ह्रिणीया च घृणार्थकाः। जुगुप्साकरुणाघृणेति अमरकोशात् । **ऋतीयते इति**—ऋत्धातोरीयङ्, ऋतीय इत्यस्य सनाद्यन्ता इति धातुत्वाल्लडादयः, ईयङो ङित्त्वादनुदात्तङित इत्यात्मनेपदम् । **ऋतीयाञ्चक्रे इति**—लिटि कास्यनेकाच इत्याम् । आमः इति लुक्, आमन्तात् कृञोऽनुप्रयोगः, लिट्, आम्प्रत्ययवदिति कृञ आत्मनेपदम् । **आनर्तेति**—इयङोऽभावे । भ्वादेराकृतिगणत्वात् बहुलमेतन्निदर्शनमिति वक्ष्यमाणत्वाच्च भूवादयः इति धातुसंज्ञा । आत्मनेपदस्याऽभावात् परस्मैपदं, णल्, ऋत् इत्यस्य द्वित्वम्,उरत्, हलादिः शेषः इति रेफतकारयोर्लोपः । अ ऋत् अ इति जाते अत आदेरित्यभ्यासस्य दीर्घः, तस्मान्नुड् द्विहलः, पुगन्तेति गुणः । **अर्तितेति**-आर्धधातुकस्येतीट्, गुणः । **अत्तीति**—शपो लुक्, खरि चेति दस्य तः । **अदन्ति इति**—झोऽन्तः। **अत्सीति**—शपो लुक्, खरि चेति दस्य तः । **जघासेति**—लिट्यन्येति घसादेशे द्वित्वादि, अत उपधाया इति वृद्धिः । **जक्षतुरिति**—घसादेशे द्वित्वादौ च जघस् इति जाते गमहनेत्युपधालोपः, घस्य खरि चेति चर्त्वेन ककारः । न पदान्तेति चर्विधौ स्थानिवद्भाव-निषेधादलोपस्य न स्थानिवद्भावः, शासिवसीति सस्य षत्वं, कषसंयोगे क्षः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अदिप्रभृतिभ्य इति—ण्यक्षत्रियार्ष इत्यादिसूत्रात् लुगित्यनुवर्तते । तथा च अदिप्रभृतिभ्यः धातुभ्यः परस्य शपो लुग् भवतीति सूत्रार्थः । **अत्तीति**—अद्-धातोर्लटि तिपि सार्वधातुक संज्ञायां शपि अदिप्रभृतिभ्यः शप इति शपो लुकि अद् ति इति, खरि चेति दस्य चर्त्वेन तकारे अत्तीति । **लिट्यन्येति**—अद्धातोः स्थाने घस्लादेशो भवति लिटि विकल्पेनेत्यर्थः ।

हिन्दी

६३०. सौत्र ऋतधातु से ईयङ् प्रत्यय होता है स्वार्थ में ।

६३१. अदादिगण पठित धातुओं से परे शप् का लुक् होता है ।

६३२. अद् धातु को घस्लृ आदेश हो लिट् लकार में विकल्प से ।

६३३. इण् और कवर्ग से परे शास् वस् और घस् के स को मूर्धन्य-ष आदेश हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६३४. हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१।। होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् ।. अद्धि । अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ।

६३५. अदः सर्वेषाम् ७।३।१००।। अदः परस्यापृक्तस्य सार्वधातुकस्याट् स्यात्। आदत् । आत्ताम् । आदन् । आदः । आत्तम् । आत्त । आदम् । आद्व । आद्म। अद्यात् । अद्याताम् । अद्युः । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः ।

६३६. लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७।। अदो घस्लृ स्यात् लुङि सनि च । लृदित्त्वादङ्। अघसत् । आत्स्यत् । हन् हिंसागत्योः । हन्ति ।

मध्यमनोरमा

उसि **जक्षुरिति** । **जघसिथेति**– घसस्तासावभावात् उपदेशेऽत्वतः, ऋतो भारद्वाजस्येत्यनयोरप्रवृत्तेः क्रादिनियमान्नित्यमिट् । **आदेति**—घसादेशाऽभावे अद् इत्यस्य द्वित्वादि, अत आदेः, सवर्णदीर्घः । **आदिथेति**—इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनामिति नित्यमिट् । **अत्तेति**- एकाच उपदेश इतीण्निषेधः । **अद्धीति**—लोट्, सिप्, सेर्ह्यपिच्च, हुझल्भ्य इति हेर्धिः । **अत्तादिति**– अत्र तुह्योरिति सूत्रेण हेर्धिं बाधित्वा परत्वात्तातङि कृते स्थानिवद्भावेन हित्वेऽपि पुनर्न धिरादेशः । सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेवेति नियमात् । **अत्तमिति**– तस्थस्थेति थसस्तमादेशः । **अत्तेति**—थस्य तः । **अदानि इति**– मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट् । **अदाव इति**– आडुत्तमस्येत्याट्। **आदत् इति**—लङ्, धातोराडागमः, आटश्चेति वृद्धिः, तिप्, इतश्चेतीकारलोपः, अदः सर्वेषामिति अट् । **आत्तामिति**—आट्, वृद्धिः, तसस्ताम् । **आदन्निति**-झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्येति तलोपः । **आदः इति**—सिप्, इतश्च, अदः सर्वेषामिति लुप्तेकारस्य सिपः अट्, धातोराडागमः, वृद्धिः, रुत्वविसर्गौ । **आत्तमिति**— थसस्तम् । **आत्तेति**-थस्य तः । **आदमिति**—मिपोऽमादेशः । **अद्यादिति**—विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, इतश्च, लिङः सलोपः । **अद्यातामिति**—ततस्ताम्, यासुट्, लिङः सलोप इति सलोपः । **अद्युरिति**—झिः, यासः सलोपः, झेर्जुस्, जुसि चेति पररूपम् । **अद्यादिति**—आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । **अद्यास्ताम् इति**– आशीर्लिङ्, आर्धधातुकत्वाल्लिङः सलोप इति सलोपो न।

मध्यमनोरमापूरणी

जघासेति—लिटि घस्लृ आदेशे तिपि णलि द्वित्वादौ कृते घ घस् अ इति, कुहोश्चुरिति घस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, उपधावृद्धिः । **शासीति**—सहेः साडः सः इति सूत्रात् सः इत्यनुवर्तते। इण् कोः, अपदान्तस्य मूर्धन्य इत्यनयोरधिकारः । तथा चार्थः–इण्कवर्गाभ्यां सूत्रोक्तानां सस्य षः भवतीति । **अद्युरिति**—विधिलिङि झिः, झेर्जुस्, यासुट्, सलोपः अद्या उस् इति, तत्र उस्यपदान्तादिति पररूपम् । मध्यमनोरमायां जुसि चेति पररूपगित्यस्य जुसि परे पररूपमिति भावो ज्ञेयोऽन्यथा पङ्क्तिरशुद्धा । **हन्ति**—हन्धातोर्लटि तिपि, सार्वधातुकसंज्ञायां कर्तरि शबिति शप्, अदिप्रभृतिभ्यः इति शपो लुक् । नस्याऽनुस्वारपरसवर्णौ । मध्यमनोरमायां 'नश्चापदान्तस्येति नस्यानुस्वारः' इत्येव लेखः, तत्र परस्वर्णोऽपि भवतीति बोध्यम् ।

हिन्दी

६३४. हु धातु तथा झलन्त धातुओं से परे 'हि' को 'धि' आदेश हो ।

६३५. अद्धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक को अट् का आगम हो ।

६३६. अद् धातु को घस्लृ आदेश हो लुङ् और सन् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६३७. अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६।४।३७॥ अनुनासिकान्तानामेषां लोपः । यमि रमि नमि गमि हनि मन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः । तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादयः । हतः । घ्नन्ति । हंसि । हथः । हथ । हन्मि । हन्वः । हन्मः।
६३८. वमोर्वा ८।४।२३॥ उपसर्गस्थान्निमित्ताद्धन्तेर्नस्य णो वा । प्रहण्मि । प्रहण्वः । प्रहन्वः । प्रहण्मः, प्रहन्मः । जघान । जघ्नतुः । जघ्नुः ।
६३९. अभ्यासाच्च ७।३।५५॥ हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात् । जघनिथ, जघन्थ । जघ्नतुः । जघ्न । जघान, जघन । जघ्निव, जघ्निम । हन्ता । हनिष्यति । हन्तु, हतात् । हताम् । घ्नन्तु ।

मध्यमनोरमा

अघासुरिति—झेर्जुस् । **लुङ् सनोर्घस्लृ**—अदो घस्लृ आदेशः स्याल्लुङ्सनोः परतः । **अङिति-** पुषादीति लृदित्त्वाच्च्लेरङ् इत्यर्थः । **अघसदिति**—लुङस्तिप्, इतश्च, च्लि लुङि, च्लेरङ्, अडागमः । **आत्स्यदिति**—लृङ्, स्यः, आडागमः, खरि चेति । **हन्तीति-** शपो लुक् नश्चाऽपदान्तस्येति नस्यानुस्वारः । **अनुदात्तोपदेशा इति**—अनुनासिकान्ता अनुदात्तोपदेशाः, तनोत्यादयः, वनतिश्च । **हत इति**—तस्, शपो लुक्, अनुदात्तेति नलोपः । **घ्नन्तीति**— झोऽन्तः, गमहनेत्युपधालोपः, हो हन्तेरिति हस्य घः । **प्रहण्मि-** वमोर्वेति नस्य णत्वविकल्पः। णत्वाऽभावे प्रहन्मि । **जघानेति**—णल्, द्वित्वं हलादिशेषः, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति झस्य जः, हो हन्तेरिति णित्प्रत्यये णलि अनभ्यासहस्य घः । अत उपधायाः । **जघ्नतुरिति-** गमहनेत्युपधालोपः, हो हन्तेरिति नकारपरतः हस्य घत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

घ्नन्तीति—हन् धातोर्लटि झि प्रत्यये, झोऽन्त इति अन्तादेशे हन् अन्ति इति, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, शपो लुक्, सार्वधातुकमपिदिति झेरादेशस्य ङित्त्वात् तस्मिन् ङिति परे गमहनजनेत्यादिना उपधाऽकारलोपे ह्न् अन्ति इति, हो हन्तेरिति कुत्वे घ्नन्तीति रूपम् । **हथः हथ** इत्यादौ थस्थयोर्ङित्वात् अनुदात्तोपदेश इति नलोपो बोध्यः। **वमोर्वेति**—रषाभ्यां नो णः इति सूत्रमनुवर्तते, उपसर्गादसमासेऽपि इत्यत उपसर्गादित्यनुवर्तते, हन्तेरत्पूर्वस्येत्यतो हन्तेरिति चानुवर्तते । तथा च सूत्रार्थः उपसर्गस्थादित्यादि निष्पन्नः । **जघ्नुरिति**—लिटि झेरुसि द्वित्वादौ कृते लिटः कित्त्वादुपधालोपे हन्तेरिति कुत्वम् । सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

६३७. अनुनासिकान्त, अनुदात्तोपदेशधातु, वन धातु और तनोत्यादि धातुओं के अनुनासिक का लोप हो, झलादि कित् ङित् परे रहते ।
६३८. उपसर्गस्थ निमित्त से परे हन् के न् को ण् हो, व और म परे, विकल्प से ।
६३९. अभ्यास से परे हन् के ह को कुत्त्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६४०. हन्तेर्जः ६।४।३६॥ हौ ।

६४१. असिद्धवदत्राभात् ६।४।२२॥ इत ऊर्ध्वमापादपरिसमाप्तेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन् कर्त्तव्ये तदसिद्धं स्यात् । इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक् । जहि, हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम । अहन् । अहताम् । अघ्नन्। अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व । अहन्म । हन्यात् ।

६४२. आर्धधातुके २।४।३५॥ इत्यधिकृत्य ।

६४३. हनो वध लिङि २।४।४२॥

६४४. लुङि च २।४।४३॥ वध्यात् । वध्यास्ताम् । अवधीत् । अहनिष्यत् ।

मध्यमनोरमा

जघनिथेति—भारद्वाजमते इट्, अभ्यासाच्चेति अभ्यासात् परस्य हकारस्य कुत्वेन घः । यद्यपि जघान जघ्नतुरित्यादावपि अभ्यासाच्चेत्यस्य प्राप्तिरस्त्येव, तथाप्यन्तरङ्गत्वाद्धो हन्तेरिति कुत्व-मुक्तम् । जघनिथेत्यत्र हो हन्तेरित्यस्य न प्राप्तिरित्यभ्यासाच्चेति कृतम् । भारद्वाजभिन्नमते उपदेशेऽत्वत इति इण्निषेधः । **जघ्नथुरिति**—अथुस्, उपधालोपः, कुत्वम् । **जघ्नेति**— मध्यम-पुरुषबहुवचने थस्य अः, तस्यापित्त्वादसंयोगादिति कित्वं, तेन गमहनेत्युपधालोपः । **जघानेति**-णलुत्तमो वेति णित्त्वविकल्पः । तस्य मिप्स्थानिकत्वेनापित्त्वाभावः, तेन उपधालोपो न । अत उपधाया इति णित्त्वपक्षे वृद्धिः । **जघ्निवेति**— क्रादिनियमादिट्, गमहनेत्युपधालोपः। **हन्तेति**—अनुदात्तत्वादिण्न । **हनिष्यतीति**—ऋद्धनोः स्ये इतीट् । **जहीति**- हनः लोट्, सिप्, सेर्ह्यपिच्च, हन्तेर्जः इति ततो जादेशः । जादेशे कृते अतो हेरिति हेर्लुकि प्राप्ते असिद्धवदत्राभा-दिति जकारस्यासिद्धत्वादतः परत्वाभावान्न हेर्लुक् । अत्र हन्तेर्जः इत्यस्य प्रकृतिप्रत्ययाश्रयत्वम्, अतो हेरित्यस्याप्युभयाश्रितत्वमिति समानाश्रयत्वम् । समानाश्रय इति किम् ? पपुषः, पाधातोर्लिट्, तस्य क्वसुः, पा इत्यस्य द्वित्वम्, अभ्यासह्रस्वः, पपा वस् इति जाते कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वे शसि वसोः सम्प्रसारणमिति सम्प्रसारणे सम्प्रसारणाच्चेति पूर्व-रूपत्वे पपा उस् शस् इति जाते आतो लोप इटि चेत्यालोपे कर्त्तव्ये सम्प्रसारणस्यासिद्धत्वं न भवति, समानाश्रयत्वाभावात्, सम्प्रसारणस्य विभक्तौ परतो विधानात्, आलोपस्य क्वसौ परतो विधानादिति । **हनानीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट् । **अहन्निति**—लङ्, तिप्, शपो लुक्, अडागमः, इतश्च, हल्ङ्याबिति तलोपः । **अघ्नन्निति**—झोऽन्तः, शप्, लुक्, अट्, इतश्चेति इकारलोपः, अहन् अन्त् इति जाते गमहनेत्युपधालोपः, हो हन्तेरिति हस्य घः । संयोगान्तस्येति तलोपः । **अहनिति**—सिप्, इतश्च, हल्ङ्याबिति सलोपः । **अवधीदिति**—लुङ्, वधादेशस्यादन्ततया उपदेशेऽनेकाच्त्वादेकाच उपदेशे इति न प्रवर्तते । अतः सिचः इट्, अस्ति सिच इतीट्, इट ईटीत्यादि । **अहनिष्यदिति**- ऋद्धनोः स्ये इतीट् ।

हिन्दी

६४०. हन् के ह को ज आदेश हो 'हि' परे रहते ।

६४१. समानाश्रय आभीय कार्य कर्त्तव्य हो तो पूर्वकृत आभीय कार्य असिद्ध हो जाता है।

६४२. 'आर्धधातुके' का अधिकार है।

६४३. हन् को वध आदेश हो आर्धधातुक लिङ् परे रहते ।

६४४. हन् को वध आदेश हो लुङ् परे, आर्धधातुक के विषय में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

यु मिश्रणामिश्रणयोः । ६४५. उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७।३।८९।। लुग्विषये उतो वृद्धिः स्यात् पिति हलादौ सार्वधातुके न त्वभ्यस्तस्य । यौति । युतः । युवन्ति। यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । युयुवतुः । युयुवुः । युयविथ । युयुवथुः । युयुव । युयाव, युयव । युयुविव । युयुविम । यविता। यविष्यति । यौतु, युतात् । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इह वृद्धिर्न। भाष्ये पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्नेति व्याख्यानात् । युयाताम् । युयुः । यूयात् । यूयास्ताम् । यूयासुः । अयावीत् । अयविष्यत् ।

मध्यमनोरमा

यौतीति—तिप्, शपो लुक्, उतो वृद्धिरिति उकारस्य औकारः । **युत इति**– सार्वधातुकमपिदिति तसो ङित्त्वान्न गुणः । **युवन्तीति**—झोऽन्तः, अचि श्नुधात्विति उवङ् । **यौषीति**—वृद्धिः, षत्वम् । **युयावेति**—णल्, द्वित्वम्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **युयविथेति** आर्धधातुकस्येति इट्, सार्वधातुकेति गुणः, अवादेशः । **अयौत् इति**- लङ्, तिप्, शपो लुक्, इतश्च, उतेति वृद्धिः, अडागमः । **अयुतामिति**—तसस्तामादेशः । **अयुवन्निति**—झोऽन्तः, इतश्च, अचि श्नुधात्विति उवङ् । **युयादिति**—विधिलिङ्, शपो लुक् । **इह वृद्धिर्नेति**—अत्र तिपो यासुडागम-विधानात् हलादिसार्वधातुकं यास् इति, तस्मिन्परतो यु इत्यस्य वृद्धिर्नेत्यर्थः । तत्र हेतुमाह-**भाष्ये इति** । विशेषविहितं ङित्त्वं पित्त्वस्य बाधकं, पित्त्वं तु विशेषविहितं ङित्त्वस्य बाधक-मित्यर्थः । अत्र यासुटो ङित्त्वं विशेषविहितं, तेन पित्त्वातिदेशो बाध्यते । एवं **युतादित्यत्राऽपि** तिप्स्थाने तातङादेशो ङित्, अतस्तस्य स्थानिवद्भावेऽपि पित्त्वं न भवति । अतो वृद्धिर्नेत्यपि बोध्यम् । **युयुरिति**—यासुट्, झेर्जुस्, लिङः सलोप इति यासः सलोपः । उस्यपदान्तेति पररूपम् । **यूयादिति**—आशीर्लिङ्, अकृत्सार्वेति दीर्घः । **अयावीत् इति**—लुङ्, तिप्, सिच्, आर्धधातुकस्येति इट्, इतश्चेति, अस्ति सिचः इतीट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, आवादेशः, अडागमः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हनो वध इति—हनो वधादेशो भवति आर्धधातुके लिङि । **लुङि चेति**—हनो वधादेशो भवति आर्धधातुके लुङि । **वध्यादिति**—हन् धातोराशीर्लिङि आर्धधातुकविषये हनो वध इति हनो वधादेशे तिपि यासुटि, लिङाशिषीति आर्धधातुकसंज्ञा, अतो लोप इति धकाराकारलोपे वध् यास्ति इति, इतश्चेति इलोपे, स्कोरिति सलोपः । **अवधीदिति**—लुङि 'लुङि चेति' वधादेशे तिपि इतश्चेति इलोपे अडागमे च्लिः, सिच, अवध स् त् इति, आर्धधातुकसंज्ञा, इट्, 'अस्ति सिचः' इति ईट्, अतो लोपः, अतो हलादेरिति वृद्धौ प्राप्तायामल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्न वृद्धिः । इट ईटि इति सिज्लोपः । सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

६४५. लुक् के विषय में उकार को वृद्धि हो 'हलादि पित् सार्वधातुक' परे रहते । अभ्यस्त संज्ञक को वृद्धि नहीं हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

या प्रापणे । याति । यातः । यान्ति । ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात्। अयाताम् ।

६४६. लङः शाकटायनस्यैव ३।४।१११।। आदन्तात् परस्य लङो झेर्जुस् वा । अयुः । अयान् । यायात् । यायाताम् । यायुः । यायात् । यायास्ताम् । यायासुः। अयासीत् । अयास्यत् । एवं वा गतिगन्धनयोः । भा दीप्तौ । ष्णा शौचे । वान्यस्य संयोगादेरित्येत्वम् । स्नेयात्, स्नायात् । श्रा पाके । द्रा कुत्सायां गतौ । प्सा भक्षणे। पा रक्षणे । रा दाने । ला आदाने । दाप् लवने । ख्या प्रकथने । अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः । विद् ज्ञाने ।

६४७. विदो लटो वा ३।४।८३।। वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा । वेद । विदतुः । विदुः । वेत्थ । विदथुः । विद । वेद । विद्व । विद्म । पक्षे–वेत्ति । वित्तः । विदन्ति ।

मध्यमनोरमा

ययौ इति—याधातोर्लिट्, तिप्, णल्, आत औ णलः, आतो[1] लोप इटि चेत्यालोपः । **यातेति**-एकाच उपदेशे इतीण्निषेधः । **अयादिति**—याधातोर्लङ्, शप्, लोपः । **अयुरिति**– लङो झिः, तस्य जुस् विकल्पः, उस्यपदान्तेति पररूपम् । जुसोऽभावपक्षे **अयानिति**– झोऽन्तः, इतश्च, तलोपः सवर्णदीर्घः । **यायादिति**—विधिलिङ्, यासुट्, लिङः सलोप इति यासुटः सलोपः । **यायुरिति**—यासुटः सलोपः, झेर्जुस् इति जुस्, उस्यपदान्तादिति पररूपम् । **यायादिति**-आशीर्लिङ्, तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । **यायासुरिति**—लिङो झेर्जुस्, आशीर्लिङः आर्धधातुकत्वाल्लिङः सलोप इति न सलोपः । **ष्णा शौचे**—धात्वादेः षः सः, निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपाय इति षकारनिमित्तकस्य णकारस्य निवृत्तिः । स्नातीत्यादि । **दाप् लवने**—पकारो हलन्त्यमितीत्संज्ञकः । **ख्या प्रकथने**-अयं **सार्वधातुक एवेति**—अत्र भाष्यवार्तिकञ्च प्रमाणम् । तथा हि चक्षिङः ख्याञ् इति सूत्रे भाष्यवार्तिकयोः ख्शादिरयमादेश इत्युक्तम् । तत्र शकारस्य यकारो विधेयः शस्य यो वेति त्रैपादिकेन वार्तिकेन। ख्शादित्वस्य प्रयोजनं नमः ख्यात्रे इत्यत्र शपरि विसर्जनीय इति विसर्गः । शस्य यो वेति यकारस्यासिद्धत्वेन खकारस्य शर्परत्वात् । ख्शादित्वाऽभावे तु शर्परखरोऽभावात् शर्पर इत्यस्याप्रवृत्तेः, कुप्वोरिति जिह्वामूलीयविकल्पः स्यादिति भाष्यवार्तिकयोः स्थितम् । तत्र यदि ख्याधातोरार्धधातुकप्रयोगः स्यात्तर्हि 'नमः ख्यात्रे इत्यत्र चक्षिङादेशस्य ख्याधातोस्तृजन्तप्रयोगे मास्तु जिह्वामूलीयः, ख्याप्रकथने इत्यस्य प्रयोगात् जिह्वामूलं स्यादेवेति नमः ख्यात्रे इत्यत्र जिह्वामूलीयाभावः ख्शादित्वस्य

हिन्दी

६४६. आदन्त धातु से परे लङ् के झि को जुस् होता है, विकल्प से ।

६४७. विद् धातु से परे लट् के स्थान में आये तिप् आदि को णल् अतुस् आदि आदेश हों विकल्प से ।

टिप्पणी-'आतो लोप इटि चेत्यालोपः' इति मध्यमनोरमापाठोऽशुद्धः । अत्र वृद्धिरेचीति वृद्धिः बोध्या ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६४८. उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।३८॥ एभ्यो लिट्याम्वा । विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः । विदाञ्चकार । विवेद । वेदिता । वेदिष्यति।
६४९. विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३।१।४१॥ वेत्तेर्लोटि आम्, गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च वा निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते, इति शब्दोपादानात् ।
६५०. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९॥ शपोऽपवादः । विदाङ्करोतु ।

मध्यमनोरमा

प्रयोजनं भाष्यवार्तिकयोरुक्तं विहन्येतेति बोध्यम् । **वेदेति**– विद् धातोर्लट्, तस्य तिबादयः, तिबादीनां नवानां णलादयो नवविकल्पेन । तत्र तिपो णल्, लस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञा, णस्य चुटू इति, पुगन्तेति गुणः । **विदतुरिति**— तसोऽतुस्, सार्वधातुकमपिदिति कित्त्वान्न गुणः। **विदुरिति**— झेः उस्, ङित्त्वान्न गुणः । **वेत्थेति**– सिपस्थल्, तस्य पित्त्वान्न ङित्वं, तेन गुणः। **विदथुरिति**— थसोऽथुस् । **विदेति**— थस्य अः। **वेदेति**— मिप्, णल् । **विद्वेति**— वसो वः । **विद्मेति**-मसो मः । णलाद्यादेशाऽभावपक्षे **वेत्तीति**– पुगन्तेति गुणः, खरि चेति दस्य तः । **अदन्तत्वप्रतिज्ञानादिति**— आमि विदेर्न गुणः, लघूपधत्वाभावाद् गुणो नेत्यर्थः । **विदाञ्चकार इति**— विद् धातोः लिट्, तस्मिन् परतः उषविदेत्याम् विकल्पः, आमः, कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि, आम्प्रकृतेर्विद आत्मनेपदाभावात् आम्प्रत्ययवदित्यस्याप्रवृत्तिः । कृञो ञित्त्वात् स्वरितेत इति कर्तृगामिनि फले आत्मनेपदं प्राप्नोति, तद्बाधनार्थम् आम्प्रत्ययवदिति सूत्रम् । पूर्ववत्सन इति सूत्रात् पूर्ववदित्यनुवर्तते । तच्च वाक्यान्तरम् । अनुप्रयोगस्य कृञः पूर्ववदेवात्मनेपदं न तु तद्विपरीतमिति कौमुद्यां स्पष्टम्, लिटो णल्, द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अचो ञ्णिति । आम्प्रत्ययाभावपक्षे **विवेदेति**—विद् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिः शेषः, पुगन्तेति गुणः। **वेदितेति**–आर्धधातुकस्येड्वलादेः, पुगन्तेति गुणः । **पुरुषवचने न** विवक्षिते इति– बिदाङ्कुर्वन्तु इति प्रथमपुरुषस्य बहुवचनं, तत्र च आमादिकं निपात्यते इति नार्थः, अपि तु विद्धातोर्लोटि सर्वेषु पुरुषेषु सर्वेषु वचनेषु आमादिकं निपात्यते इत्यर्थः । **विदाङ्करोत्विति**—विद्धातोर्लोट्, विदाङ्कुर्वन्त्विति सूत्रेण लोटि परतः आम्, आमि परतः प्राप्तस्य लघूपधगुणस्याऽभावः, लोटो लुक्, लोडन्तकृधातोरनुप्रयोगश्च, एतत्सर्वं विकल्पेन निपात्यते । तेन विद् आम् कृ ल् इति, लस्य तिप्, एरुः, तनादिकृञ्भ्यः उरिति शपं बाधित्वा उः, आर्धधातुके उप्रत्यये परतः कृञः सार्वधातुकार्धेति गुणः, उप्रत्ययस्य तिपि परतः सार्वधातुकगुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विदो लटो वेति—अत्र परस्मैपदानां णलतुसुस्थल् इति सूत्रमनुवर्तते । अत्र विद् इति आदादिक एव धातुः, नान्यो गृह्य ते । **सूत्रार्थः**—विदः परस्य लडादेशस्य तिबादेः णलादयो आदेशाः स्युः विकल्पेन । **उषविदेति**– कास्प्रत्ययादिति आम् इति लिटि इति चानुवर्तते ।

हिन्दी

६४८. उष् विद् और जागृ धातुओं से आम् प्रत्यय हो लिट् परे रहते विकल्प से ।
६४९. विद् धातु से लोट् परे रहते आम् प्रत्यय, गुण का अभाव, लोट् का लुक् व लोडन्त कृ धातु का अनुप्रयोग निपातन से होते हैं, विकल्प से ।
६५०. तनादि धातु और कृञ् धातु से परे उ प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६५१. अत उत् सार्वधातुके ६।४।११०॥ उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि। वेत्तु । अवेत् । अवित्ताम् । अविदुः ।

६५२. दश्च ८।२।७५॥ धातोः पदान्तस्य दस्य सिपि रुर्वा । अवेः, अवेत् । विद्यात् । विद्याताम् । विद्युः । विद्यात् । विद्यास्ताम् । विद्यासुः । अवेदीत्। अवेदिष्यत् । अस् भुवि । अस्ति ।

६५३. श्नसोरल्लोपः ६।४।१११॥ श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । असि । स्थः । स्थ । अस्मि । स्वः । स्मः ।

मध्यमनोरमा

विदाङ्कुरुतादिति—तुह्योरिति तातङादेशः, तातङो ङित्त्वादुप्रत्ययस्य न गुणः । उप्रत्यये परतः कृञो गुणे जाते तस्याकारस्यात उत् सार्वधातुके इति उकारः । **विदाङ्कुरुतामिति**—विदो लोट्, आम्, लोटो लुक्, लोडन्तकृञोऽनुप्रयोगः, लोटस्तस्, तस्य तामादेशः, उप्रत्ययः, सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वादोर्गुणो न, कृञो गुणः उप्रत्यये परे । **विदाङ्कुर्वन्त्विति**—झोऽन्तः, एरुः । **विदाङ्कुरु इति**—सेर्ह्यपिच्चेति, उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वादिति हेर्लुक् । **विदाङ्करवाणि इति**—मेर्निः, आडुत्तमस्य पिच्चेति आट्, मिप् इत्यस्य पित्त्वान्ङित्त्वं न, तेन गुणः । **अवेदिति**—लङ्, तिप्, शपो लुक्, अडागमः, इतश्चेतीकारलोपः, हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घादिति तकारलोपः । पुगन्तलघूपधस्येति गुणः, वाऽवसाने । **अवित्तामिति**—तसस्तामादेशः, शपो लुक्, अट् । **अविदुरिति**—शपो लुक्, सिजभ्यस्तविदिभ्यश्चेति झेर्जुस्, अडागमः । **अवेः इति**-सिप्, इतश्च, हल्ङ्यादिलोपः, विदः पुगन्तेति गुणः, दश्चेति दस्य रुः, तस्य खरवसानेति विसर्गः । रुत्वाऽभावे **अवेदिति**-वाऽवसाने । **वेद्यादिति**—विधिलिङि आशीर्लिङि तुल्यम् । विधिलिङि लिङः सलोप इति यासुटः सलोपः । आशीर्लिङि इतश्चेतीकारलोपे स्कोरिति लोपः । विधिलिङि विद्यातामिति, आशीर्लिङि विद्यास्तामिति, यासुटो ङित्त्वाद् गुणाऽभावः । **अवेदीदिति**—लुङ्, सिच्, इट्, ईट्, सिचो लोपः, लघूपधगुणः । **अस् भुवि**—भवनं भूः, सत्ता । **अस्तीति**—शपो लुक् । **स्तः इति**—सार्वधातुकमपिदिति तसो ङित्त्वात् श्नसोरित्यल्लोपः । **सन्तीति**—झोऽन्तः, श्नसोरल्लोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दश्चेति—पदस्येति अधिकृतम् । सिपि धातोरुर्वा इति सूत्रमत्रानुवर्तते । दः इति धातुं विशेषयति, तदन्तविधिश्च । एवञ्च सूत्रार्थो भवति-धातोः पदान्तस्य दस्य सिपि परे रुर्भवति विकल्पेन । **श्नसोरिति**—श्नश्च अस् चेति द्वन्द्वे पररूपम्, अत उत् इत्यतः सार्वधातुके इत्यनुवर्तते, गमहनेत्यतः क्ङिति इति चानुवर्तते । तदाह सूत्रार्थम् -श्नस्यास्तेरित्यादि ।

हिन्दी

६५१. उप्रत्ययान्त कृञ् धातु के अ को उ होता है सार्वधातुक कित् ङित् प्रत्यय परे रहते।

६५२. धातु के पदान्त द् को सिप् परे रहते रु होता है, विकल्प से ।

६५३. श्नम् और अस् धातु के अ का लोप होता है सार्वधातुक कित् ङित् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६५४. अस्तेर्भूः २।४।५२।। आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु, स्तात् । सन्तु ।

६५५. घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६।४।११९।। घोरस्तेश्चैत्त्वम् अभ्यासलोपश्च । आभीयत्वाद्धेर्धिः । एधि, स्तात् । स्तम् । स्त । असानि । असाव । असाम । आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् ।

६५६. उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८।३।८७।। उपसर्गेणः प्रादुसश्च परस्यास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रादुःष्यात् । निषन्ति । यच्परः किम्? अभिस्तः । रु शब्दे ।

मध्यमनोरमा

असीति—सिप्, तस्य पित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाभावादल्लोपो न, तासस्त्योरिति सलोपः । **स्थः इति**—श्नसोरल्लोपः । **बभूवेति**—लिटि अस्तेर्भूरादेशः, तिप्, णल्, भुवो वुक्, भूव् इत्यस्य द्वित्वं; हलादिशेषः, ह्रस्वः, भवतेरः, अभ्यासे चर्च । **भवितेति**—लुट्, तिप्, डा, तास्, टिलोपः, इट्, गुणः । **भविष्यतीति**—लृट्, तिप्, स्यः इट्, गुणः, अवादेशः, षत्वम्। **अस्तु इति**—लोट्, तिप्, शपो लुक् । एरुः । **स्तादिति**—तोस्तातङ् पक्षे श्नसोरल्लोपः । **सन्तु इति**—झोऽन्तः, एरुः, अल्लोपः । **अभ्यासलोपश्चेति**—देहि इत्यादौ घुसंज्ञकस्य दाधातोर्जुहोत्यादौ श्लौ द्वित्वे च सति एत्वमभ्यासलोपश्च । अस्धातोस्तु हौ परतोऽभ्यासाभावादेत्त्वमात्रमिति बोध्यम् । **एधीति**—सर्हिः, तस्यापित्त्वात् सार्वधातुंकमपिदिति ङित्त्वं, श्नसोरल्लोपः, घ्वसोरेद्धाविति सस्य एत्वम् । असिद्धवदत्राभादिति सूत्रेण आभीये हुझल्भ्य इति हेर्धौ कर्त्तव्ये आभीयं घ्वसोरिति एत्वमसिद्धम्, तेन झलन्तात् परत्वात् हेर्धिः । **स्तादिति**—हेस्तातङादेशपक्षे अल्लोपः । **असानि इति**—मेर्निः, आडुत्तमस्य पिच्च, तस्य पित्त्वेन, ङित्त्वाभावात् श्नसोरित्यल्लोपो न। **आसीदिति**—लङ्, तिप्, शपो लुक्, इतश्च, अस्तिसिचोऽपृक्ते इति अस्तेः परस्यापृक्तस्य तकारस्य ईट् आगमः, आटश्च । **आस्तामिति**—ततस्तामादेशः, तसः ङित्त्वात् अल्लोपः, आडागमः । **आसन्निति**—झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्य लोपः । **स्यादिति**—विधिलिङि तिपो यासुट्, यासुटो ङित्त्वादस्तेरल्लोपः, इतश्च, लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । **स्यातामिति**—तसस्तामादेशः, यासुट्, अलोपः, । **स्युरिति**– झेर्जुस्, सलोपः, उस्यपदान्तादिति पररूपम् । **भूयादिति**—आशीर्लिङ्, आर्धधातुकत्वादस्तेर्भूरादेशः, तिप्, यासुट्, इतश्च, स्कोरिति सलोपः । **अभूदिति**—लुङ्, च्लेः सिच्, सिच आर्धधातुकत्वादस्तेर्भूः, गातिस्थेति सिचो लुक्, इतश्च, अडागमः । **उपसर्गेणः इति**—उपसर्गसम्बन्धिनः इणः परस्य 'प्रादुस्' शब्दात् परस्यास्तेः सस्य षः इत्यर्थः । **निष्यादिति**—अत्र उपसर्गस्य नेः इकरात् परस्यास्धातोः सकारस्य यासुटो यकारे परे षत्वम् ।

हिन्दी

६५४. अस् धातु को भू आदेश होता है आर्धधातुक परे रहते ।

६५५. घुसंज्ञक धातु और अस् धातु को एत्व हो तथा अभ्यास का लोप भी हो ।

६५६. उपसर्गसम्बन्धी इण् व प्रादुस् से परे अस् के स् को ष् हो, यकार और अच् परे रहते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६५७. तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ७।३।९५।। एभ्यः सार्वधातुकस्य हलादेस्तिङ ईड् वा । नाभ्यस्तस्येत्यतोऽनुवृत्तिसम्भवे पुनः सार्वधातुकग्रहणमपिदर्थम् । रवीति, रौति । रुवीतः, रुतः । हलादेः किम्–रुवन्ति । लिङः किम्– शाम्यति। सार्वधातुके किम्–आशिषि रूयात् । विध्यादौ तु रुयात्, रुवीयात् । अरावीत्। अरविष्यत् । तु इति सौत्रो धातुः गतिवृद्धिहिंसासु । तवीति, तौति । तुवीतः, तुतः । तुवन्ति । तुताव । तोता । तोष्यति । णु स्तुतौ । नौति । नुनाव । नविता टुक्षु शब्दे । क्षौति । चुक्षाव । क्षविता । क्ष्णु तेजने । क्ष्णौति । क्ष्णविता । अक्ष्णवीत् । ष्णु प्रस्रवणे । स्नौति । सुष्णाव । स्नविता । षु प्रसवैश्वर्ययोः । प्रसवोऽभ्यनुज्ञानम् । सौति । सुतः । सुषाव । सोता । असौषीत् । कु शब्दे । कौति । चुकाव । कोता । इण् गतौ । एति । इतः ।

६५८. इणो यण् ६।४।८१।। इणो यण् स्यादजादौ प्रत्यये । इयङोऽपवादः । यन्ति ।

मध्यमनोरमा

एवं प्रादुःष्यादिति । **निषन्ति इति**—अत्राऽच्परः सकारः । एवं **प्रादुःषन्तीति इति** । **अभिस्त इति**—अत्र सकारो तकारपरो न तु यच् परः इति न षत्वम् । **अपिदर्थमिति**—नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके एतस्मिन् सूत्रे सार्वधातुकग्रहणं पितीत्यनेन सह सम्बद्धमतस्तस्मात् सूत्रात् सार्वधातुकग्रहणानुवृत्तौ पिद्ग्रहणानुवृत्तौ च तत्र ईट्, न तु अपित्यपीट् । **तस्मादपिदर्थम्**– अपित्यपि ईडर्थं सार्वधातुकग्रहणमित्यर्थः । **रवीति इति**—तिप्, शप्, लुक्, तुरुस्त्विति ईट्, गुणावादेशौ । **रौतीति**—उतो वृद्धिर्लुकि हलीति वृद्धिः । **रुवीतः इति**—तसोऽपित्त्वेन ङित्त्वात् गुणो न, किन्तु अचिश्नुविति उवङ् । **रुतः इति**—इडभावपक्षे रूपम् । **रुवन्ति इति**—झोऽन्तः, अन्तीत्यस्य हलादित्वाभावात् ईण्न । **शाम्यतीति**—शम्धातोः दैवादिकात् श्यन् । श्यनो यद्यपि सार्वधातुकत्वं, तथापि तिङ्त्वाभावादीण्न । विधिलिङस्तु तिङ्शित् सार्वधातुकमिति सार्वधातुकत्वात् पक्षे ईट्, यासुट्सलोपः, ङित्त्वाद् गुणनिषेधादुवङ् । ईडभावे **रुयादिति**– सार्वधातुकत्वादकृत्सार्वेति न दीर्घः । आशीर्लिङि यासुटः परस्तिङस्ति, तथापि नासौ सार्वधातुकस्तिङ्, अत ईण्न ।

मध्यमनोरमापूरणी

तुतावेति—तुधातोर्लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वम्, तु तु अ इति, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आवादेशः **नवितेति**—लुट्, तिप्, तास्, आर्धधातुकस्येड्वलादेरिति इटि नु इतास् ति इति, तिपः डादेशे, डित्त्वसामर्थ्यात्तासः आस् इत्यस्य लोपे नु इता इति, सार्वधातुकगुणे अवादेशः । एवमेव क्षुधातोः **क्षवितेति**, स्नु इत्यस्मात् स्नवितेति बोध्यम् । **अक्ष्णवीत्**—क्ष्णुधातोः लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, च्लेः सिच्, आर्धधातुकस्येति इट्, अस्तिसिच इतीट्, अडागमः, अक्ष्णु इस् ईत् इति, गुणे अवादेशे इट ईटि इति सिचो लोपे सवर्णदीर्घः । **यन्तीति**—इण् धातोर्लटि झिः, झोऽन्तः, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, लुक्, इ अन्ति, इयङ्ङादेशं प्रबाध्य इणो यणिति यण् ।

हिन्दी

६५७. तु रु स्तु शम् व अम् धातुओं से परे हलादि सार्वधातुक तिङ् को ईट् होता है, विकल्प से ।

६५८. इण् धातु को यण् होता है अजादि प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६५९. अभ्यासस्यासवर्णे ६।४।७८।। अभ्यासस्येवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि । इयाय ।

६६०. दीर्घ इणः किति ७।४।६९।। इणोऽभ्यासस्य दीर्घः किति लिटि । ईयतुः। ईयुः । इययिथ, इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात्। ईयात् ।

६६१. एतेर्लिङि ७।४।२४।। उपसर्गात् परस्य इणोऽणो ह्रस्वः स्यादार्धधातुके किति लिङि । निरियात् ।

मध्यमनोरमा

रूयादिति—अकृत्सार्वेति दीर्घः । **अरावीदिति**–लुङ्, तिप्, सिच्, आर्धधातुकस्येड्वलादेः, इतश्च, अस्तिसिच इति ईट्, इट ईटि, सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु । **सौत्र इति**—तुरुस्त्विति सूत्रे जातः इत्यर्थः । **तवीतीति**– तिप्, शप्, लुक्, ईट्, गुणः, अवादेशः । इडभावे **तौतीति**– उतो वृद्धिरिति वृद्धिः । **तुवीत इति**– ईट्, उवङ् । **तोष्यतीति**– गुणः, षत्वम् । **नौति इति**- णो नः, तिप्, शप्, लुक्, उतो वृद्धिरिति वृद्धिः । **चुक्षावेति**- क्षु इत्यस्य द्वित्वम्, हलादिः शेषः इति षकारलोपः, कुहोश्चुरिति ककारस्य चकारः । अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **सुष्णाव**-धात्वादेः षः सः, षकारनिमित्तकस्य णकारस्य नः, द्वित्वादि, षत्वणत्वे, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **सौतीति** उतो वृद्धिरिति वृद्धिः । **सुषावेति**—तिप्, णल्, अचो ञ्णिति, आवादेशः । **असौषीदिति** सिचि वृद्धिः । **एतीति**—इणो णकारो हलन्त्यमितीत्संज्ञकः, तिप्, शप्, लुक्, सार्वधातुकेति गुणः । **इत इति**—तसि सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाद् गुणनिषेधः । **यन्तीति**—झोऽन्तः, इणो यण्। **इयायेति**—णल्, इ इत्यस्य द्वित्वम्, अनभ्यासस्य इकारस्य अचो ञ्णितीति ऐकारः, तस्य आय्, अभ्यासस्य इकारस्य अभ्यासस्यासवर्णे इति इयङ्, ङकारलोपः, अकारः उच्चारणार्थः । **ईयतुरिति**—तसः अतुस्, द्वित्वम्, अभ्यासादुत्तरस्य इकारस्य इको यण् इति यण्, दीर्घ इणः किति इत्यभ्यासस्य दीर्घः । **एवम् ईयुरिति** । **इययिथेति**—भारद्वाजमते इट्, द्वित्वं, सार्वधातुकेति गुणः, अयादेशः, अभ्यासस्य इयङ् । भारद्वाजभिन्नते अचस्तास्वदिति क्रादिनियमप्राप्तस्येटो निषेधः । **ऐदिति**—लङ्, ति्प, शप्, लुक्, इतश्च, आडागमः, वृद्धिः। **ऐतामिति**-तसस्ताम् । **आयन्निति**—झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्येति तलोपः, इणो यण्,

मध्यमनोरमापूरणी

अभ्यासस्येति—अचिश्नुधातुरित्यतः अचि इति य्वोरियङुवङौ इति चानुवर्तन्ते, तदा च सूत्रार्थः अभ्यासस्येत्यादिः । **इयायेति**—इ इ अ इति दशायां वार्णादाङ्गं बलीयः इति परिभाषया पूर्वं वृद्धौ आयादेशे इ आय इति जाते इणो यणिति सूत्रं प्रबाध्य अभ्यासस्येति इयङ् । ऐदित्यत्र गुणे कृते वृद्धिः ।

हिन्दी

६५९. अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् होते हैं, असवर्ण अच् परे रहते ।

६६०. इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है कित् लिट् परे रहते ।

६६१. उपसर्ग से परे इण् सम्बन्धी अण् को ह्रस्व होता है, आर्धधातक कित लिङ परे रहते।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६६२. अन्तादिवच्च ६।१।८५।। योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत् परस्यादिवत् स्यात् ।

वा. उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् । अभीयात् । अणः किम्-समेयात् ।

६६३. इणो गा लुङि २।४।४५।। गातिस्थेति सिचो लुक् । अगात् । अगाताम्। अगुः । ऐष्यत् । इक् स्मरणे । अयमधिपूर्व एव । अधीगर्थदयेशां कर्मणि इति लिङ्गात् । वा. इण्वदिक इति वक्तव्यम् । अधियन्ति । अध्यगात् । केचित्त्वार्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेशमाहुः, तन्मते यण् न । तथा भट्टिः- "ससीतयोराघवयोरधीयन्निति ।"

मध्यमनोरमा

तस्यासिद्धत्वम् आडजादीनामिति आभीये आडागमे कर्त्तव्ये । असिद्धत्वादजादित्वप्रयुक्त आडागमः । **इयादिति**—विधिलिङि । आशीर्लिङि **ईयादिति**— अकृत्सार्वेति दीर्घः । **निरियादिति**—निर् ईयादिति स्थिते निरुपसर्गपरस्य इण् धातोः ईकारस्य ह्रस्वः । **नान्तादिवदिति**— तेन उपसर्गात् अभी शब्दात् परस्याण् ईकारः इण् धातुः, तस्यैव ईकारस्य उपसर्गात् परत्वं तस्यैव ईकारस्य इण्धातोरादिभूतत्वमित्युभयत आश्रयण अन्तादिवच्चेति सूत्रं न प्रवर्तते इत्यर्थः । तेन अभीयादित्यत्र उपसर्गात् परस्य इणोऽभावान्न ह्रस्वः । **समेयादिति-** सम् आङ् एतदुभयपूर्वकाद् इणः लिङ्, आकारस्य इकारस्य च आद्गुण इति एकारः । तस्य च एकारस्य अन्तादिवच्चेति इण् धातोराद्यन्तत्वात् उपसर्गात् समः परस्य एकारस्य इण् धातोः एतेर्लिङीति ह्रस्वो न, एकारस्य अण्भिन्नत्वात् । अत्र पूर्वणकारेणैवाण्प्रत्याहारात् । अत्र उभयत आश्रयणं नास्ति, एकारस्य धात्वादित्वमात्राश्रयणात्, आङ्भिन्नस्य समित्युपसर्गस्यैव सत्त्वादिति । **अगादिति**—लुङ्, इणो गादेशः, अडागमः, च्लि लुङि, च्लेः सिच्, गातिस्थेति सिचो लुक्, इतश्चेतीकारलोपः । **अगुरिति**—गातिस्थेति सिचो लुक्, **आतः**—सिज्लुकि आदन्तादेव झेर्जुस् स्यादिति झेर्जुस्, ज् इत्, उस्यपदान्तादिति गा इत्याकारस्य जुस उकारेण पररूपम् । **ऐष्यदिति–** लृङ्, तिप्, स्यः, आडजादीनाम्, वृद्धिः, षत्वम् । **अधीगर्थेति**—इक् धातोरधिपूर्वकत्वानियमे इगदर्थदयेशामित्येव ब्रूयादित्यर्थः । **इण्वदिक इति**—तेन इणो यण्, इणो गा लुङि इत्यादिकार्यमिकोऽपि भवतीत्यर्थः । **अधियन्तीति**—लट्, झिः, झोऽन्तः, इण्वदिक इत्यतिदेशात् इको यण् इत्यस्य प्राक् प्रयोगः । **अध्यगादिति**—इणो गा लुङि, गातिस्थेति सिचो लुक्, अडागमः, इतश्च, । अधीत्यस्य उपसर्गेकारस्य अगादिति परे यणादेशः । **तन्मते यण्नेति**—इणो यण आर्धधातुकाधिकारस्थत्वाऽभावात् । इणो गा लुङीति तु भवत्येव, आर्धधातुकाधिकारस्थत्वाभावात्।

हिन्दी

६६२. पूर्व और पर के स्थान में जो एकादेश होता है, वह एकादेश पूर्व के अन्तसदृश और पर के आदिसदृश होता है ।

वा. एकादेश को पूर्वान्तवत् और परादिवत् दोनों कर्त्तव्य हो तो 'अन्तादिवच्च' सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है ।

६६३. इण् को गा आदेश होता है लुङ् परे । **वार्तिक**—इक् धातु को इण्वद्भाव होता है, अर्थात् यण्, गादेश आदि कार्य इक् को भी होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । प्रजनं गर्भग्रहणम् । असनं क्षेपणम् । वेति। वीतः । वियन्ति । वेषि । वेमि । वीहि । अवेत् । अवीताम् । अवियन्। अटि सति अनेकाच्त्वाद् यणिति केचित् । अव्यन् । अत्र ईकारोऽपि धात्वन्तरं प्रश्लिष्यते । एति । ईतः । इयन्ति । ईयात् । ऐषीत् । वचि परिभाषणे । वक्ति। वक्तः । अयमन्तिपरो न प्रयुज्यते । बहुवचनपर इत्यन्ये । झिपर इत्यपरे। वक्तु। वग्धि । वच्यात् । उच्यात् ।

६६४. अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३।१।५२।।

६६५. वच उम् ७।४।२०।। अङि परे । अवोचत् । अवक्ष्यत् । मृजू शुद्धौ ।

६६६. मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४।। मृजेरिको वृद्धिः स्याद् धातुप्रत्यये । मार्ष्टि । मृष्टः ।

मध्यमनोरमा

अधीयन्निति—स्मरन्नित्यर्थः । राघवयोरित्यत्र अधीगर्थदयेशामिति कर्मणि षष्ठी । अतः तन्मते शतरि शपो लुकि धातोरियङ्, उपसर्गेकारधात्विकारयोर्दीर्घः । अत्र इणो यण् इति इणो विहितस्य यणः इण्वदिक इति वार्तिकेन नातिदेशः इति बोध्यम् । **वियन्तीति**—अचिश्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङाविति इयङ् । **वीहि इति**—लोटः सेर्हिः, शपो लुक्, हेरपित्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्वमतो न गुणः । **अवेदिति**—तिप्, शप्, लुक्, गुणः, इतश्च । **अवियन्निति**—इयङ्, अट् । **प्रश्लिष्यते इति**—वी ई इति स्थिते सवर्णदीर्घे वी इति धातुः, तत्र 'ई' धातुः इत्यर्थः ! तस्य तिपि गुणे एतीति । **ईतः इति**—तसो ङित्वाद्गुणनिषेधः । **इयन्तीति**—झोऽन्तः, इयङ् । **ईयादिति**—लिङ् । **ऐषीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, इतश्च, अस्तिसिचः, आट्, वृद्धिः, षत्वम् । **वक्तीति**-तिप्, शप्, लुक्, चोः कुः । **वग्धीति**-लोटः सेर्हिः । शपो लुक्, हुझल्भ्य इति धिः, चोः कुरिति चस्य कः, तस्य झलां जश् झशीति गः । **वच्यादिति**—विधिलिङ् । आशिषि **उच्यादिति**– वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च । **वच उम्**—अङि परत उमागमः स्यात् । मित्त्वादन्त्यादचः परः । **अवोचदिति**-लुङ्, च्लिः, अस्यतिवक्तीति च्लेरङ्, वच उम् इति चकारात् पूर्वम् अकारात् परम् उमागमः । आद् गुण इति वकाराकारस्य उकारेण सह ओकारः, अडागमः, इतश्च । **अवक्ष्यदिति**—लृङ्, स्यः, चोः कुः, षत्वं, क्ष्संयोगे क्षः, अडागमः, इतश्च । मृजेरिको वृद्धिः धातुप्रत्यये, धातोरिति विहिते प्रत्यये परत इत्यर्थः। धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानमित्युक्तेरिति भावः । धातुप्रत्यये किम् ? परिमृट्, परिमृजौ । **मार्ष्टीति**—तिप्, शप्, लुक्, मृजेर्वृद्धिः, व्रश्चभ्रस्जेति जकारस्य षकारः, ष्टुना ष्टुः। **मृष्टः इति**—तसोऽपित्त्वेन सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाद् क्क्ङिति चेति वृद्धिनिषेधः ।

हिन्दी

६६४. अस् वच् और ख्या धातुओं से परे च्लि को अङ् होता है ।

६६५. वच् धातु को उम् का आगम होता है, अङ् परे रहते ।

६६६. मृज्धातु के इक् को वृद्धि हो, धातु से विहित प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. क्ङित्यजादौ वेष्यते । मृजन्ति । मार्जन्ति । ममार्ज । ममार्जतुः, ममार्जिथ, ममार्ष्ठ । मार्जिता । मार्ष्टा । मार्ष्टु । मृड्ढि । अमार्ट्, अमार्ड् । अमार्जम् । अमार्जीत्, अमार्क्षीत् । अमार्क्ष्यत् । अमार्जिष्यत् । रुदिर् अश्रुविमोचने । ६६७. रुदादिभ्यः सार्वधातुके ७।२।७६॥ रुद् स्वप् श्वस् अन् जक्ष् एभ्यः वलादेः सार्वधातुकस्येट् । रोदिति । रुदितः । हौ परत्वादिटि धित्वन्न । रुदिहि । ६६८. रुदश्च पञ्चभ्यः ७।३।९८॥ हलादेः पितः सार्वधातुकस्यापृक्तस्य ईट् । ६६९. अड् गार्ग्यगालवयोः ७।३।९९॥ अरोदीत् । अरोदत् । अरुदिताम् । अरुदन् । अरोदीः, अरोदः ।

मध्यमनोरमा

क्ङित्यजादौ वेष्यते इति—इको गुणवृद्धीति सूत्रे भाष्यकृता क्ङित्यजादौ मृजेर्वृद्धिर्वा भवति इति व्याकरणान्तरस्य वचनं स्वयमङ्गीक्रियते इत्यर्थः । वृद्धिपक्षे **मार्जन्ति** इति, वृद्ध्यभावे **मृजन्तीति** । अत्र झोऽन्तः, तस्यापित्त्वेन ङित्त्वम्, अजादित्वञ्चेति वृद्धिविकल्पः । वृद्ध्यभावे ममृजतुरिति । **ममार्जिथेति**—ऊदित्वात् स्वरतीति वेट्, थलः सिप्स्थानिकत्वेन पित्त्वाद् कित्त्वं नेति नित्यमेव वृद्धिः । **ममार्ष्ठेति**—इडभावे वृद्धिः, व्रश्चेति षः, ष्टुत्वेन थस्य ठः । इट्पक्षे मार्जितेति, तदभावे मार्ष्टा इति । वृद्धिः, व्रश्चेति षः, ष्टुत्वम् । **मार्ष्टु इति**—लोट्, तिप्, एरुः, शप्, लुक्, वृद्धिः, व्रश्चेति षः, ष्टुत्वम् । **मृड्ढीति**—सेर्हिः, हुझल्भ्यो हेर्धिः, व्रश्चेति षत्वं, षस्य झलां जशीति डः, धस्य ष्टुत्वेन ढः । अत्र मृजेर्वृद्धिर्न, हेरपित्त्वेन ङित्त्वात् क्ङिति चेति निषेधात् । **अमार्जमिति**—लङ्, मिपोऽम्, शपो लुक्, मृजेर्वृद्धिः, अडागमः । **अमार्जीदिति**–लुङ, तिप् सिच्, ऊदित्त्वात् पक्षे इट्, इतश्च, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटि, मृजेर्वृद्धिः, अडागमः । इटोऽभावपक्षे **अमार्क्षीदिति**—व्रश्चेति षः, षढोः कः सि, आदेशप्रत्ययेति सिचः सस्य षत्वम् । **अमार्क्ष्यदिति**—लृङ्, स्यः, वृद्धिः, व्रश्चेति षः, षढोः कः सि, षत्वम्, इतश्च, अडागमः । **रुदिहीति**—लोटः सेर्हिः, तस्य हुझल्भ्य इति धित्वे प्राप्ते

मध्यमनोरमापूरणी

अमार्ट् इति—मृजेर्लङि तिपि इतश्चेति इकारलोपे शपि, शपो लुकि अडागमे मृजेर्वृद्धिरिति वृद्धौ रपरत्वे अमार्ज्त् इति, तस्य हल्ङ्यादि लोपे, जस्य व्रश्चेति षत्वे, षस्य जश्त्वेन डकारे तस्य वाऽवसाने इति चर्त्वे अमार्ट् इति । वाऽवसाने इति विकल्पे अमार्ड् इति । **रुदादिभ्य इति**—आर्धधातुकस्येड्वलादेरित्यत इड्वलादेरित्यनुवृत्तिः भवति, अतः वलादेः सार्वधातुकस्येड् इत्यर्थो विशेषः । **रोदिति इति**—रुद्धातोर्लटि तिपि शपो लुकि, रुदादिभ्य इति इटि, पुगन्तेति गुणः । **रुदश्च पञ्चभ्य इति**—'नाभ्यस्तस्याचि' इत्यत पिति सार्वधातुके इति, उतो वृद्धिरित्यतो हलि इति, गुणोऽपृक्ते इत्यतोऽपृक्ते इति, ब्रुव ईट् इत्यत ईट् इति चानुवर्तन्ते, तदाह- हलादेः पितः इत्यादि ।

हिन्दी

वार्तिक :—कित् ङित् अजादि प्रत्यय परे रहते मृज् के इक् को वृद्धि विकल्प से होती है।

६६७. रुद् आदि से परे वलादि सार्वधातुक को इट् होता है ।

६६८. रुदादि पाँच धातुओं से परे हलादि पित् अपृक्त सार्वधातुक को ईट् आगम होता है ।

६६९. गार्ग्य और गालव के मत में हलादि अपृक्त सार्वधातुक को अडागम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकृतिप्रत्ययविशेषापेक्षाभ्यामडीड्भ्यामन्तरङ्गत्वाद् यासुट् । प. असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे । रुद्यात् । अरुदत् । अरोदीत् । अरोदिष्यत् । ञिष्वप् शये । स्वपिति । स्वपितः । सुष्वाप । सुषुपतुः । सुष्वपिथ, सुष्वप्थ ।

६७०. सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ८।३।८८।। एभ्यः सुप्यादेः सस्य षः स्यात्। पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते । किति लिटि परत्वात् सम्प्रसारणे षत्वे च कृते द्वित्वम्। परि. पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने ।

मध्यमनोरमा

धित्वं बाधित्वा रुदादिभ्य इति इट्, इटि जाते इट्सहितस्य हेस्तु धित्वं न, सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद्बाधितमेवेति न्यायादिति भावः । **अरोदीदिति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, रुदश्चेति ईट्, पुगन्तेति गुणः । गार्ग्यगालवमते ईटं बाधित्वा अट्, पुगन्तेति गुणः, धातोरडागमः । **अरुदिताभिति**—तसस्तामादेशः, रुदादिभ्यः सार्वधातुक इति इट्, धातोरडागमः । **अरुदन्निति**—झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तलोपः, शपो लुक्, अडागमः, ङित्त्वान्न गुणः। **अरोदीरिति**—सिप इकारस्य इतश्चेति लोपे सकारस्यापृक्तत्वादीट्, पुगन्तेति गुणः । गार्ग्यगालवयोर्मते अट्, अरोद इति । **रुद्यादिति; प्रकृतिप्रत्ययविशेषेति**–रुद्प्रकृतिविशेषो रुदादिपञ्चकरूपः, प्रत्ययविशेषः अपृक्तहलादिपित्सार्वधातुकरूपः, तदुभयसापेक्षाभ्यामित्यर्थः । **अडीड्भ्यामिति**—अड्गार्ग्यगालवयोरिति अट्, रुदश्च पञ्चभ्य इतीट्, ताभ्यामित्यर्थः । **अन्तरङ्गत्वादिति**– यासुटो धातुमात्रप्रकृतिसापेक्षत्वात् लिङ्मात्रप्रत्ययसापेक्षत्वात् अन्तरङ्गत्वमित्यर्थः । यद्यपि प्रकृतिप्रत्ययोभयसापेक्षत्वं यासुटोऽस्ति तथाऽपि अल्पापेक्षत्वमस्त्येव । अट इटश्च प्रकृतिप्रत्ययविशेषरूपद्वयापेक्षत्वादिति भावः । अन्तरङ्गत्वेन किमायातमितिचेदत्राह– **असिद्धमिति** । तथा च अन्तरङ्गे यासुटि कर्त्तव्ये रुदश्च पञ्चभ्यः, अड्गार्ग्यगालवयोरित्युभयमसिद्धम्, अतो यासुट्सूत्रदृष्ट्या तत्सूत्रद्वयं नास्त्येवेति यासुट् प्रवर्तते । यासुटि जाते अपृक्तत्वाभावान्नाडीटौ । **अरुददिति**—लुङ्, च्लिः, इरितो वेति च्लेरङ्। **अरोदीदिति**—अडोऽभावे च्लेः सिच्, तस्य इट्, अस्ति सिच इतीट्, इत्यादि । **स्वपितीति**—रुदादिभ्यः सार्वधातुके इति इट्। **सुष्वापेति**—तिप्, णल्, स्वप् इत्यस्य द्वित्वं, लिट्यभ्यासस्योभयेषामिति अभ्यासवकारस्य उकारः, सम्प्रसारणाच्च, हलादिः शेषः इति पकारलोपः, सुष्वप् अ इति जाते अत उपधाया इत्युपधावृद्धिः, आदेशप्रत्यययोरिति अभ्यासात् परस्य सकारस्य षकारः । **सुषुपतुरिति**- अतुस्, वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, ततो द्वित्वं, हलादिः शेषः, सु सुप् इति जाते आदेश प्रत्यययोरिति अभ्यासात् परस्य सकारस्य षकारः । **सुष्वपिथेति**—भारद्वाजमते इट्, थलः सिप्स्थानिकत्वेन पित्त्वादसंयोगादिति कित्त्वं न, अतो वचिस्वपीति न सम्प्रसारणं, किन्तु अभ्यासस्य लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणम् । **सुष्वप्थेति**-भारद्वाजभिन्नमते, उपदेशेऽत्वत इतीण्निषेधः।

हिन्दी

परिभाषा—अन्तरङ्गशास्त्र के कर्त्तव्य में बहिरङ्ग शास्त्र असिद्ध होता है ।

६७०. सु वि निर् और दुर् से परे सुप् सूति और सम के स को ष होता है ।

परिभाषा– पूर्वत्रासिद्धीय असिद्ध द्वित्वभिन्न कार्य में होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुषुषुपतुः । अकिति तु द्वित्वेऽभ्यासस्य सम्प्रसारणम् । षत्वस्याऽसिद्धत्वात् ततः पूर्वं हलादिः शेषः नित्यत्वाच्च । ततः सुपि रूपाभावान्न षः । सुसुष्वाप । स्वप्ता । अस्वपीत्,अस्वपत् । स्वप्यात् । सुप्यात् । सुषुप्यात् । अस्वाप्सीत् । अस्वप्स्यत् । श्वस् प्राणने । श्वसिति । श्वसितः। शश्वास । श्वसिता । श्वसिष्यति । श्वसितु । अश्वसीत्, अश्वसत् । अश्वसिताम् । अश्वसन् । श्वस्यात्। श्वस्याताम् । ह्म्यन्तेति वृद्धिर्न । अश्वसीत् । अन च । अनिति । आन । अनिता। आनीत्, आनत् ।

मध्यमनोरमा

सुषुषुपतुरिति—सुपूर्वकस्वप्धातुः, ततोऽतुस्, वचिस्वपीति सम्प्रसारणे सम्प्रसारणाच्च, सुपूर्वकः सुप् अतुस् इति जाते सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः इति षत्वं, ततः षुप् इत्यस्य द्वित्वं, तत्र द्वित्वे कर्त्तव्ये पूर्वत्रासिद्धमिति षत्वस्याऽसिद्धत्वे प्राप्ते पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने इति वार्तिकेन द्विर्वचनभिन्नकार्ये कर्त्तव्ये पूर्वत्रासिद्धमिति सूत्रीयमसिद्धत्वमिति वातिकार्थः । तेन द्वित्वे कर्त्तव्ये षत्वं नासिद्धम् । अतः षुप् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः । **अकिति त्विति**–कित्परत्वाभावेन वचिस्वपीत्यस्याप्रवृत्तेः । लिट्यभ्यासस्येति तु अभ्याससापेक्षम्, अभ्यासस्तु द्वित्वे कृते भवतीति प्रथमं द्वित्वं, लिट्यभ्यासस्येति अभ्यासस्य सम्प्रसारणं, सुसुप् स्वप् इति जाते हलादिशेषात् पूर्वं सु इत्यस्मात् परः सुप्रूपः स्वप्धातुरस्तीति षत्वप्राप्तिः, तत्र षत्वविधायकस्य सुविनिर्दुर्भ्यः इत्यस्यासिद्धत्वात् प्रथमं हलादिशेषः, सु सु स्वप् इति जाते सुप् इत्याकारकस्य स्वरूपस्याभावात् ततो न सुविनिर्दुर्भ्य इत्यस्य प्रवृत्तिः, किन्तु आदेशप्रत्यययोरित्यभ्यासात् परस्य सकारस्य षत्वम् । तेन **सुसुष्वापेति** रूपम् । **सुस्वप्तेति**—अत्रापि सुप्रूपत्वाभावान्न षत्वम्। **अस्वपीदिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, रुदश्च पञ्चभ्य इतीट् । **अस्वपदिति**—अड् गार्ग्यगालवयोरिति पक्षे अट् । **स्वप्यादिति**—विधिलिङ्, शपो लुक् । **सुप्यादिति**—किदाशिषीत्याशीर्लिङि यासुटो कित्त्वाद् वचिस्वपीति सम्प्रसारणम् । **सुषुप्यादिति**—वचिस्वपीति सम्प्रसारणे सुप्रूपत्वात् सुविनिरिति षत्वम् । **अस्वाप्सीति**—वदव्रजेति वृद्धिः । **श्वसति इति**—शपो लुक्, रुदादिभ्य इतीट् । **श्वसित इति**— रुदादिभ्य इतीट् । **श्वसितेति**—लुट्, आर्धधातुकस्येतीट् । **अश्वसीदिति**—लङ्, तिप्, शपो लुक्, इतश्च, रुदश्च पञ्चभ्य इतीट् । गार्ग्यगालवयोरिति अडागमपक्षे **अश्वसदिति** । **श्वस्यादिति**–विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, लिङः सलोपः, इतश्च, अडागमः । **श्वस्याताममिति**—तसस्तां, यासुट्, लिङः सलोप इति सलोपः । **अश्वसीदिति** — अतो हलादेरिति प्राप्ताया वृद्धेर्ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृ इति निषेधः, ईट् । **आनीदिति** लुङ्, तिप्, सिच्, इट्, ईट्, सलोपः, आडागमः, आटश्चेति ।

मध्यमनोरमापूरणी

अश्वसीदिति—लुङि अश्वस् इस् ईत् इति दशायामतो हलादेरिति वृद्धौ प्राप्तायां ह्म्यन्तक्षण इति तस्याः निषेधः । इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्ण दीर्घः । **आनीदिति**—अन्-धातोर्लङि तिपि शपि शपो लुकि इतश्चेति इकारलोपे अनृत् इति जाते रुदश्च पञ्चभ्य इति ईट्, आडजादीनामित्याद्, आटश्चेति वृद्धिः । अट्पक्षे **आनत् इति** । मध्यमनोरमायां लुङि आनीदिति साधितं, तदपि शुद्धम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६७१. अनितेः ८।४।१९।। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्यानितेर्नस्य णः । प्राणिति। जक्ष भक्ष हसनयोः । जक्षिति । जक्षितः ।
६७२. अदभ्यस्तात् ७।१।४।। झस्य अत् स्यात् । अन्तापवादः । जक्षति । अजक्षीत्, अजक्षत् । अजक्षिताम् । सिजभ्यस्तेति जुस् । अजक्षुः ।
जागृ निद्राक्षये । जागर्ति । जागृतः । जाग्रति । जागराञ्चकार । जजागार ।
६७३. जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु ७।३।८५।। जागर्तेर्गुणः स्याद् विचिण्णल्- ङिद्भ्योऽन्यस्मिन् वृद्धिविषये प्रतिषेधविषये च । जजागरतुः । जजागरुः । जागरिता । अजागः । अजागृताम् ।
६७४. जुसि च ७।३।८३।। अजादौ जुसि इगन्ताङ्गस्य गुणः । अजागरुः । अजादौ किम् ? जागृयुः । आशिषि तु जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः। अजागरीत् । दरिद्रा दुर्गतौ । दरिद्राति ।

मध्यमनोरमा

प्राणिति—प्रपूर्वकः अन्, तिप्, शप्, लुक्, इट्, अनितेरिति णत्वं, सवर्णदीर्घः । **जक्षिति इति-** रुदादिभ्यः इति इट् । **जक्षतीति**—जक्षित्यादयः षट् इति अभ्यस्तसंज्ञा, अदभ्यस्तादिति झकारस्य अत् । **अजक्षीदिति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, इतश्च, रुदश्च पञ्चभ्य इति ईडागमः। **गार्ग्यगालवयोरिति** अट्पक्षे अजक्षदिति । **अजक्षुरिति**—जक्षित्यादय इत्यभ्यस्तसंज्ञकत्वात् सिजभ्य स्तेति झेर्जुस् । **जागर्तीति**—शपो लुक्, सार्वधातुकेति गुणः । **जाग्रतीति**— अदभ्यस्तादिति झस्यात्, यणादेशः । **जागराञ्चकारेति**—उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्यामिति आम् विकल्पः । कृञोऽनुप्रयोगः आमोऽभावपक्षे **जजागारेति**—णल्, एकाचो द्वे प्रथमस्येति प्रथमस्य जा इत्येकाचो द्वित्वं, ह्रस्वः, ज जागृ अ इति जाते अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **जाग्रोऽविचिण्णल्- ङिद्भ्यः इति–** जागृविः, विपरे, चिण्परः अजागारि, णल्–जजागार, ङित् जागृतः, अत्र सार्वधातुकमपिदिति ङित् । एवञ्च विचिण्णल्ङित्प्रत्ययं वर्जयित्वा अन्येषु प्रत्ययेषु वृद्धि- विषयेषु वृद्धिनिषेधविषयेषु सर्वत्र गुणः । वृद्धिविषयो ण्वुल्-जागरकः, णिच् जागरयति, निषेध- विषयोऽतुस्– जजागरतुः जजागरुरित्यादि । **जागरितेति**—लुट्, डा, तास्, टिलोपः, इट्, जाग्र इति गुणः । **अजागः इति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, इतश्च, जाग्रः इति गुणः, अडागमः, हल्ङ्यादिना तिपोऽपृक्तस्य लोपः। **अजागृतामिति**—तसस्तामादेशः । **अजागरुरिति**— जक्षित्यादयः षट् इत्यभ्यस्तसंज्ञा, सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, ज् इत्, जुसि चेति गुणः । **जागृयुरिति-** विधिलिङ्, झेर्जुस्, तस्य यासुट्, लिङः सलोपोऽनन्त्यस्येति सलोपः । उस्यपदान्तादिति पररूपम्। अत्र यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते इति जुस्ग्रहणेन यासुडागमसहितस्य जुसो ग्रहणं मा भूदिति अजादौ जुसीत्युक्तम् । तेन यासुट्सहितस्य जुसो न अजादित्वमिति जागृ

हिन्दी

६७१. उपसर्गस्थ निमित्त से परे अन् धातु के न को ण होता है ।
६७२. अभ्यस्तसंज्ञक धातु से परे झ् को अत् आदेश होता है ।
६७३. जागृ धातु को गुण हो, वि चिण् णल् और ङित् से भिन्न अन्य वृद्धि के विषय में या प्रतिषेधविषयक प्रत्यय परे रहते ।
६७४. इगन्त अङ्ग को अजादि जुस् परे रहते गुण हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६७५. इद्दरिद्रस्य ६।४।११४।। हलादौ क्ङिति सार्वधातुके इत् स्यात् । दरिद्रितः।
६७६. श्नाभ्यस्तयोरातः ६।४।११२।। लोपः क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रति । अनेकाच्त्वादाम् । दरिद्राञ्चकार । आत औ णलः इत्यत्र ओ इत्येव सिद्धे औकार- विधानं दरिद्रातेरालोपे कृते श्रवणार्थम् । अत एव ज्ञापकादाम्नेत्येके । ददरिद्रौ ।
वा. (दरिद्रातेरार्धधातुके विवक्षिते आलोपो वाच्यः ।) वा. (लुङि वा) वा. (सनि ण्वुलि ल्युटि च न) । दरिद्रिता ।

मध्यमनोरमा

इत्यस्य न गुणः । जाग्रोऽविचिण्णल् इत्यनेन तु न गुणः, यासुटो ङित्त्वेन अविचिण्-णल्ङित्स्वित्यनेन ङिद्वर्जनात् । **जागर्य्यादिति**—आशीर्लिङि यासुटः किदाशिषीति कित्त्वेन ङित्त्वं बाध्यते, तेन ङिद्भिन्नत्वाज्जाग्रोऽविचिण्णिति गुणः । **अजागरीदिति**—लुङ्, तिप्, इतश्च, सिच्, इट्, ईट्, सिचो लोपः, अडागमः । अत्र सिचि वृद्धिरिति वृद्धौ प्राप्तायां जाग्रोऽविचिण्णलिति गुणः, तत्र गुणे जाते सति वदव्रजेति वृद्धिः प्राप्नोति तं बाधित्वा अतोल्रान्तस्येति नित्यं वृद्धिः प्राप्ता, साऽपि ह्म्यन्तक्षणेति निषिध्यते । दरिद्राधातोरिकारान्तादेश इति सूत्रार्थस्तत्र इद्दरिद्रस्येति सौत्रं ह्रस्वत्वम् । **दरिद्रतीति**-जक्षित्यादित्वादभ्यस्तसंज्ञा, अद-भ्यस्तादिति झेरवयवस्य झस्य अत् । **अनेकाच्त्वादिति**-कास्यनेकाच इति वार्तिकेनेति शेषः । **दरिद्राञ्चकारेति**—आमि जाते सवर्णदीर्घः, कृञोऽनुप्रयोगः । आत औ णल इत्यादि आका-रान्ताद् धातोर्णलः ओकारे औकारे वा न विशेषः, वृद्धिरेचीति वृद्ध्या उभयत्र औकारसम्भवात् तथा च ओकारस्य प्राथम्यात् तस्यैवोपादानं युक्तं, तथा च यत्राकारस्य लोपस्तत्र ओकारे औकारे च विशेषोऽस्तीति तदर्थमौकारस्य ग्रहणम् । एवञ्च दरिद्राधातोः दरिद्रातेरार्धधातुके वि-वक्षिते आलोपो वाच्य इति वार्तिकेन आलोपे जाते ददरिद्रौ इत्यौकारस्य श्रवणम्, अन्यथा प्राप्तिरेव नास्ति इत्यत्राह-अत **एवेति**- यतः ददरिद्रौ इत्यत्र औकारस्य श्रवणार्थम् औकारोच्चारणम्, अतो दरिद्राधातोराम्न भवति इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अजागरीदिति—अजागृ इस् ईत् इति स्थिते सिचि वृद्धिं प्रबाध्य जाग्रोऽविचिण्णिति गुणे वदव्रजेति प्राप्ता वृद्धिः नेटीत्यनेन निषिध्यते । ततः अतो हलादेरिति सूत्रं प्रबाध्य अतोल्रान्तेति प्राप्ता, सा ह्म्यन्तेति निषिध्यते । **दरिद्रितः इति**—लटि तसि दरिद्रा तस् इति, तसोऽङित्त्वात् इद्दरिद्रस्येति आकारस्य इकारे सस्य रुत्वविसर्गौ । **सनि ण्वुलीति**—'दरिद्रातेः आर्धधातुके विवक्षिते आलोपो वाच्यः' इति नियमः सनि ण्वुलि ल्युटि च आर्धधातुके न प्रवर्तते इत्यर्थः । अर्थात् आलोपो न भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

६७५. हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे दरिद्रा के आ को इकार होता है ।
६७६. कित् ङित् सार्वधातुक परे श्ना और अभ्यस्त संज्ञक के 'आ' का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अदरिद्रात् अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दरिद्रियात् । दरिद्र्यात् । अदरिद्रीत् । इट्सकौ- इट्सकौ-अदरिद्रासीत् । चकासृ दीप्तौ । चकास्ति । चकास्तः । चकासति । चकासाञ्चकार । चकासिता । चकास्तु । चकाधि ।

६७७. तिप्यनस्तेः ८।२।७३॥ पदान्तस्य सस्य दः स्यात्तिपि नत्वस्तेः । अचकात्, अचकाद् । अचकास्ताम् । अचकासुः ।

६७८. सिपि धातोरुर्वा ८।२।७४॥ पदान्तस्य सस्य पक्षे रुः । अचकाः, अचकात्। शासु अनुशिष्टौ । शास्ति ।

मध्यमनोरमा

सनीत्यादि—तत्र सनि दिदरिद्रासति । ण्वुलि दरिद्रायकः, ल्युटि दरिद्राणम् इति ।**दरिद्रितेति**-लुट्, तास्, दरिद्रातेः अनेकाच्त्वेन एकाच उपदेशे इति निषेधाभावात् आर्धधातुकस्येति इट्, दरिद्रातेरिति वार्तिकेन आलोपः । **अदरिद्रात् इति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, इतश्च, अडागमः। **अदरिद्रितामिति**—इद्दरिद्रस्येति इत्वम् । **अदरिद्रुरिति**—जक्षित्यादित्वादभ्यस्तसंज्ञा, सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, श्नाभ्यस्तयोरात इत्याल्लोपः । **दरिद्रियादिति**—विधिलिङ्, यासुट्, इद्दरिद्रस्येति इत्वम् । **दरिद्र्यात् इति**-आशीर्लिङ्, आर्धधातुकत्वात् दरिद्रातेरिति आलोपः । **अदरिद्रीदिति**-लुङ्, तिप्, सिच्, दरिद्रातेरिति वार्तिकेन लुङि वेत्युक्तत्वात् पक्षे आलोपः, आर्धधातुकस्येति इट्, इतश्चेति तिपरस्येकारलोपः । अस्तिसिच इति ईट्, इट ईटि, सवर्णदीर्घः । **अदरिद्रासीदिति**—आलोपाऽभावपक्षे यमरमनमातां सक् चेति इट्सकौ । तत्र धातोः सक्, सिचः आदौ इट्, अस्तिसिच इति तकारस्य ईट्, इट ईटीति सलोपः । **चकासतीति**—अदभ्यस्तादिति झस्य अत् । **चकासाञ्चकारेति**—अनेकाच्त्वादाम्, कृञोऽनुप्रयोगः । **अचकादिति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, इतश्चेति तिपो लोपः, तिप्यनस्तेरिति सस्य दः, वाऽवसाने । **अचकासुरिति**—अदभ्यस्तादिति झेर्जुस् । **अचका इति**—सिप्, इतश्च, शपो लुक्, हल्ङ्याबिति सिपो लोपः, सिपि धातोरिति सस्य पक्षे रुत्वं, विसर्गः । रुत्वाभावपक्षे तिप्यनस्तेरिति दः, तस्य वाऽवसाने इति तः । **शास्तीति**—शपो लुक् । **शिष्ट इति**—तस्, शपो लुक्, उपधाभूता-

मध्यमनोरमापूरणी

चकाधीति—चकास् धातोर्लोटि सिचि सिपः हिः, हुझल्भ्य इति हेर्धिः । चकास् धि इति जाते धि चेति सलोपः । **तिप्यनस्तेरिति**—झलां जशोऽन्ते इत्यतोऽन्ते इति, ससजुषो रुः इत्यत स इति षष्ठ्यन्तम्, वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः इत्यतो द इति चानुवर्तन्ते । **तदाह सूत्रार्थम्**-पदान्तस्येति । **अचकासुरिति**—लङि झेः सिजभ्यस्तविदिभ्यश्चेति जुसि अटि अचकासुस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

वा. आर्धधातुक विवक्षा में दरिद्रा के 'आ' का लोप होता है । वा. लुङ् परे दरिद्रा के 'आ' का लोप विकल्प से होता है ।

वा. सन् ण्वुल् और ल्युट् परे दरिद्रा के 'आ' का लोप नहीं होता है ।

६७७. पदान्त स को द् होता है तिप् परे रहते, अस् के स् को छोड़कर ।

६७८. पदान्त स को रु होता है सिप् परे, विकल्प से ।

६७९. शास् धातु की उपधा 'आ' के स्थान में इत् होता है, हलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६७९. शास इदङ्हलोः ६।४।३४।। शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति च । शिष्टः, शासति । शशास । शशासतुः । शासिष्यति । शास्तु, शिष्टात् । शिष्टाम् । शासतु ।

६८०. शा हौ ६।४।३५।। शास्तेः । तस्याभीयत्वेनासिद्धत्वाद्धेर्धिः । शाधि। अशात् । अशिष्टाम् । अशासुः । अशाः, अशात् । शिष्यात् ।

६८१. सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च ३।१।५६।। एभ्यश्च्लेरङ् कर्तृलुङि । अशिषत् । अशासिष्यत् । इति परस्मैपदम् । शीङ् स्वप्ने ।

६८२. शीङः सार्वधातुके गुणः ७।४।२१।। शेते । शयाते ।

६८३. शीङो रुट् ७।१।६।। झादेशस्यातो रुडागमः स्यात् । शेरते । शेषे । शयाथे। शेध्वे । शये । शेवहे ।

मध्यमनोरमा

कारस्य शास इदङिति इत्वम्, शासिवसिघसीनाञ्चेति षत्वं, ष्टुत्वम् । **शासतीति**— अदभ्यस्तादिति झेरत् । **शशासेति**—णल्, शास् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषः, ह्रस्वः। **शास्तु इति**- लोट्, तिप्, शप्, लुक्, एरुः । **शिष्टादिति**—तातङ्पक्षे शास इदङ् हलोरिति आकारस्येत्वम्, इणः परस्य शासिवसि इति सस्य षः, ष्टुना ष्टुरिति । **शिष्टामिति**—तसस्तामादेशः, शास इदङ्-हलोरिति इत्वं, शासिवसीति षत्वं, ष्टुत्वम् । **शासतु इति**—झिः, शपो लुक्, अदभ्यस्तादिति झस्यात्, एरुः । **शा हौ**—हौ परतः शास् धातोः शा आदेशः । **शाधीति**—सेर्हिः, शा हौ इति शा आदेशः, हुझल्भ्य इति हेर्धिः । तत्र आभीयेन हेर्धिभावेकर्त्तव्ये शा हौ इत्याभीयमसिद्धम्। तेन झलन्तत्वाद् हेर्धिः । **अशादिति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, इतश्च, हल्ङ्याब्भ्य इति तलोपः, तिप्यनस्तेरिति सस्य दः, वाऽवसाने । **अशिष्टाम् इति**—शास इत्, षत्वं, ष्टुत्वम्। **अशासुरिति**—जक्षित्यादय इति अभ्यस्तसंज्ञत्वात् अदभ्यस्तादिति झेर्जुस् । **अशा इति**—सिप्, इतश्चेति इकारलोपः, हल्ङ्याबिति सकारलोपः, सिपि धातोरिति सकारस्य पक्षे रुत्वं, विसर्गः। रुत्वाभावे तिप्यनस्तेरिति दत्वं, वाऽवसाने । **शिष्यादिति**—लिङ्. यासुट्, शास इतीत्वं, शासि-वसीति षत्वम् । **कर्तृलुङीति**—कर्त्रर्थके लुङीत्यर्थः । **अशिषदिति**- लुङ्, सर्तिशास्तीति च्लेरङ्, शास इदिति इत्वं, शासिवसीति षत्वम् । **शेते इति**—सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणस्याप्राप्तौ शीङः सार्वधातुके गुणः इति गुणः । **शयाते इति**— आतामित्यस्य टेरेत्वे शीङः सार्वधातुक इति गुणेऽयादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

शास उपधाया इति—अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति इति सूत्रात् 'उपधायाः' इति, क्ङिति इति चानुवर्तेते । तदाह- शास उपधाया इत्यादि ।

हिन्दी

६८०. शास् धातु को शा ओदश होता है हि परे रहते ।

६८१. सृ धातु शास् धातु और ऋधातु से परे च्लि को अङ् होता है कर्त्रर्थ लुङ् परे ।

६८२. शीङ् धातु को गुण होता है, सार्वधातुक परे रहते ।

६८३. झ् के स्थान में आदेश हुए अत् को रुट् आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिश्ये । शयिता । शेताम् । अशेत । अशेरत । शयीत । शयीरन् । शयिषीष्ट। अशयिष्ट । अशयिष्यत । इङ् अध्ययने । इङिकौ अध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः। अधीते । अधीयाते । अधीयते ।

६८४. गाङ् लिटि २।४।४९।। इङो गाङ् स्यात् लिटि । अधिजगे । अध्येता। अध्येष्यते । अधीताम् । अधीष्व । अधीयाथाम् । अधीध्वम् । अध्ययै । अध्ययावहै। अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यैयाताम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् ।

६८५. विभाषा लुङ्लृङोः २।४।५०।। इङो गाङ् वा स्यात् ।

मध्यमनोरमा

शेरते इति—झस्य टेरेत्वं, शीङः सार्वधातुकेति गुणः, शीङो रुट्, उटावितौ। **शेषे इति**—थासः से, 'शीङः' इति गुणः, आदेशेति षत्वम् । **शयाथे इति**—आथामित्यस्य टेरेत्वं, गुणः, आयादेशः । **शये इति**—इट्, एत्वे गुणः, अय् । **शिश्ये इति**—लिटस्तस्य एश्, शी इत्यस्य द्वित्वं, ह्रस्वः, एरनेकाच इति यण् । **शेतामिति**—लोट्, तः, टेरेत्वम् , आमेतः, शपो लुक्, शीङः इति गुणः । **अशेत इति**—लङ्, तः,शप्, लुक्, गुणः, अडागमः । **अशेरतेति**-आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, शीङः सार्वधातुके गुणः, शीङो रुट् । **शयीतेति**—विधिलिङ्, सीयुट्, लिङः सलोप इति सलोपः, शीङो गुणः, अयादेशः, लोपो व्योरिति यलोपः । **शयीरन्निति**—झस्य रन्, सीयुट्, सलोपः, गुणः, अयादेशः । **शयिषीष्टेति**– आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, सुट्तिथोः, आर्धधातुकस्येतीट्, आशीर्लिङः आर्धधातुकत्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाभावात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अयादेशः, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अशयिष्टेति**—लुङ्, सिच्, इट्, सार्वधातुकेति गुणः । **न व्यभिचरत इति**—अध्युपसर्गं विना न प्रयुज्येते, शब्दस्वभावादित्यर्थः । **अधीते इति**—तस्य टेरेत्वं, शपो लुक्, सवर्णदीर्घः । **अधीयाते इति**—आतामित्यस्य टेरेत्वं, धातोरियङ्, सवर्णदीर्घः । **अधीयते इति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्य अत्, इयङ्, दीर्घः । **अधिजगे इति**—गाङ् लिटीति गाङादेशः, द्वित्वं, ह्रस्वः, कुहोश्चुः, तस्य एश्, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । **अध्येता**—लुट्, डा, तास्, टिलोपः, सार्वधातुकगुणः, यणादेशः । **अध्येष्यते इति**—लृट्, तः, स्यः, गुणः, षत्वं, यण् । **अधीतामिति**—लोट्, तः, एत्वम्, आमेतः, शप्, लुक्, सवर्णदीर्घः । **अधीष्वेति**—थासः से, सकारात् परस्य वः, षत्वं, दीर्घः । **अधीयाथामिति**—इयङ्, दीर्घः । **अध्ययै इति**—इट्, एत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, आटश्चेति आकारैकारयोरैकारः, आडुत्तमस्येत्याटः पित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति न ङित्त्वम्, अतः सार्वधातुकेति गुणः, अयादेशः, उपसर्गस्य यण् । **अध्ययावहै इति**—टित इति टेरेत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, धातोर्गुणः, अयादेशः, उपसर्गस्य यण् । **अध्ययामहै इति**-टित इति टेरेत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, धातोः गुणः, अयादेशः, आटः पित्त्वान्न गुणनिषेधः । **अध्यैतेति**—लङ्, तः, शप्, लुक्, आट्, आटश्च, यण् । **अध्यैयातामिति**—धातोरियङ्, आडजादीनां, वृद्धिः, उपसर्गस्य यण् । **अध्यैयतेति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, धातोरियङ्, आट्, वृद्धिः । **अध्यैथाः इति**—आट्, आटश्च । **अध्यैयाथामिति**—इयङ्, आट्, वृद्धिः ।

हिन्दी

६८४. इङ् धातु को गाङ् आदेश हो, लिट् परे रहते ।

६८५. इङ् धातु को गाङ् आदेश होता है लुङ् और लृङ् परे रहते, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६८६. गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् १।२।१॥ गाङादेशात् कुटादिभ्यश्चाऽञ्णितः प्रत्ययाः ङितः स्युः ।

६८७. घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६।४।६६॥ एषामात ईत् स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके । अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत, अध्यैष्यत ।

ईर गतौ कम्पने च । ईर्त्ते । ईराञ्चक्रे । ईरिता । ईरिष्यते । ईर्ताम् । ईर्ष्व । ईर्ध्वम् । ऐरिष्ट । ईड् स्तुतौ । ईट्टे ।

६८८. ईशः से ७।२।७७॥

६८९. ईड्जनोर्ध्वे च ७।२।७८॥ ईशीड्जनां सेध्वेशब्दयोः सार्वधातुकयोरिट् स्यात् । योगविभागो वैचित्र्यार्थः । ईडिषे ईडिध्वे । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् ईडिष्व । ईडिध्वम् । विकृतिग्रहणेन प्रकृतेरग्रहणात्-ऐड्ढ्वम् । ईश ऐश्वर्ये । ईष्टे । ईशिषे । ईशिध्वे ।

मध्यमनोरमा

अध्यैयि इति—इट्, धातोरियङ् आट्, वृद्धिः । **अधीयीतेति**—विधिलिङ्, सीयुट्, सलोपः, यलोपः, धातोरियङ्, दीर्घः । **अधीयातामिति**—सीयुट्, सलोपः, इयङ्, दीर्घः । **अध्येषीष्टेति**-आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, यलोपः, सुट्, षत्वं, ष्टुत्वं, धातोर्गुणः, आशीर्लिङः आर्धधातुकत्वात् सार्वधातुकमपिदित्यनेन ङित्त्वाभावान्न गुणनिषेधः । विधिलिङः सार्वधातुकत्वान्ङित्त्वेन तत्र गुणनिषेधादियङिति बोध्यम् । **अध्यगीष्टेति**—लुङ्, सिच्, विभाषा लुङिति गादेशः, गाङ्-कुटेति सिचः कित्त्वात्तस्मिन् परतः घुमास्थेति आकारस्य ईकारः, षत्वं, ष्टुत्वमडागमः, यण्, गाङादेशाभावे **अध्यैष्टेति**—आट्, वृद्धिः, षत्वं, यण् । **अध्यगीष्यतेति**-लृङ्, तः, स्यः, गा-देशः, ईत्वम्, षत्वम्, अट्, यण् । गाङादेशाभावे आट्, वृद्धिः । **ईर्त्ते इति**—तः, टेरेत्वम्, शपो लुक्, अचोरहाभ्यां द्वे । **ईराञ्चक्रे इति**—इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः इति आम्, कृञोऽनु-प्रयोगः, आम्प्रत्ययवदित्यात्मनेपदम्, तस्य एश्, द्वित्वादि । **ईरितेति**-आर्धधातुकस्येतीट् । **ईर्ष्वेति**—थासः से, सवाभ्यां वामौ, इणो रेफात् परस्य सस्य षः । **ईर्ध्वमिति**—शप्, लुक् । **ऐरिष्टेति**—लुङ्, तः, सिच्, इट्, आडागमः, वृद्धिः । **ईट्टे इति**- लट्, तः, एत्वं, तस्य ष्टुत्वम् । खरि चेति डस्य टः । **ईडिषे इति**—ईड्जनोरिति इट्, षत्वम् । **ईडिध्वे इति**—ईड्जनोरिति इट् । **ईडिष्वेति**—थासः से, सवाभ्यां वामौ, ईड् स्व इति जाते ईड्जनोरिति सूत्रे सेग्रहणादत्र सवाभ्यां वामौ इति एकारस्य वकारेण जातस्वशब्दस्य से शब्दादनन्यत्वाद् इट्। **ईडिध्वमिति**—ध्वमष्टेरेत्वम्, सवाभ्यामिति वकारात् परस्य एकारस्य अम् । ध्वे इत्यस्यैक-देशभूतो य एकारस्तस्य अम्स्वरूपे विकारे जाते ध्वेशब्दादतिरिक्तत्वं न भवति इति स्थानिवद्-भावार्थिकया परिभाषया ईड्जनोरिति इट् । **प्रकृतेरिति**—लङि ध्वमित्यस्य टेरेत्वाभावात्

हिन्दी

६८६. गाङ् और कुटादि धातुओं से परे ञित् णित् भिन्न प्रत्यय ङित् होते हैं ।

६८७. घुसंज्ञक मा स्था गा पा और हा धातुओं के आ को ईत् होता है, हलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ।

६८८., ६८९. ईश् ईड् और जन् धातुओं से परे सार्वधातुक 'से' और 'ध्वे' को इट् आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आस उपवेशने । आस्ते । दयायासश्चेत्याम् । आसाञ्चक्रे । आस्व । आध्वम् । आसिष्ट । आङः शासु इच्छायाम् । आशास्ते । आशासाते । वस आच्छादने । वस्ते । वस्से । वस्वे । ववसे । वसिता । णिसि चुम्बने । निंस्ते । णिजि शुद्धौ निङ्क्ते । निङ्क्षे । निञ्जिता । वृजी वर्जने । वृक्ते । वृजाते । इदिदित्यन्ये । वृङ्क्ते । पृची संपर्चने । पृक्ते । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते । सुषुवे । सुषुविषे। सोता, सविता । सुवै । सविषीष्ट । असविष्ट, असोष्ट । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अयं दर्शनेऽपि । इकारोऽनुदात्तो युजर्थः । नुम् तु न। अन्तेदितः इति व्याख्यानात् । चष्टे । चक्षाते । आर्धधातुके-।

मध्यमनोरमा

ध्वेग्रहणेन न ध्वमः प्रकृतिभूतस्य ग्रहणम् । लोटि तु एत्वे जाते पुनरमादेशे तस्य ध्वम्- शब्दस्य ध्वे-शब्देन विकृतिभूतत्वाद् ग्रहणम् । स्थानिग्रहणे स्थानिवद्भावादादेशग्रहणं, नत्वादेशग्रहणे स्थानिग्रहणमिति भावः । **ऐड्ढ्वमिति**—शपो लुक्, धकारस्य ष्टुना ष्टुरिति ढत्वम्, आट्, वृद्धिः । **ईष्टे इति**—व्रश्चेति शकारान्तत्वात् षः, ष्टुत्वम्। **ईशिषे इति**—थासः से, ईशः से इति इट्, षत्वम् । **ईशिध्वे इति**—ईड्जनोर्ध्वे इति इट् । **आसाञ्चक्रे इति**—दयायासश्चेति आम्, कृञोऽनुप्रयोगः । **आस्वेति**—थासः से, सवाभ्यां वामौ । **आध्वमिति**—ध्वमष्टेरत्वं, सवाभ्यामिति एकारस्य अम्, धि चेति सलोपः । **आसिष्टेति**-लुङ्, तः, सिच्, इट्, षत्वं, ष्टुत्वम्, अडागमः । **वस्से इति**—लट्, थासः से। **वध्वे इति**- धि चेति सलोपः । **ववसे इति**-न शसदवादिगुणानामिति सूत्रेण अत एकेति प्राप्तयोः एत्वाभ्यासलोपयोः निषेधः । **वसितेति**-भौवादिकस्य वस निवासे इत्यस्यानिट्कारिकासु ग्रहणादयं सेट् । **निंस्ते इति**—णो नः, इदित्त्वान्नुम् । **निङ्क्ते इति**—इदित्त्वान्नुम्, चोः कुरिति जस्य गः, तस्य खरि चेति कः, नकारस्य नश्चापदान्तस्येति अनुस्वारः, अनुस्वारस्य परसवर्णङकारः । **निङ्क्षे इति**—थासः से, जकारस्य कुत्वे चर्त्वे सस्य षत्वं, परसवर्णः । **निञ्जितेति**—अनिट्कारिकायां णिजिर् इति जुहोत्यादेर्ग्रहणादयं सेट् । **वृजी वर्जने**—ईकारः श्वीदितो निष्ठायामिति इण्निषेधार्थः । **वृङ्क्ते इति**—इदिदित्यन्येषां इदितो नुम् धातोरिति नुम् । **सूते इति**—धात्वादेः षः सः । **सुषुवे इति**—सू इत्यस्य द्वित्वे ह्रस्वे द्वितीयसकारस्यादेशप्रत्ययेति षत्वम्, उवङ् । **सुषुविषे इति**—स्वरतिसूतीति विकल्पं बाधित्वा श्र्युकः कितीति निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट्, अचिश्नु इति उवङ् । **सवितेति**—स्वरतिसूतीति पक्षे इट् । तदभावे सोतेति । **सुवै इति**—उत्तमपुरुषैकवचनम् इट्, आडुत्तमस्य पिच्चेति आट्, तस्य पित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति न ङित्त्वम्, अतो गुणे प्राप्ते भूसुवोरिति तन्निषेधः, अचिश्नु इत्युवङ् । **सविषीष्टेति**—आशीर्लिङि स्वरतीति वेट्, इडभावे सोषीष्टेति । **अन्तेदित इति**—इदितो नुम्धातोरिति सूत्रे पूर्वसूत्रादन्तग्रहणमनुवर्त्त्य अन्ते यः इकारस्तदित्संज्ञस्य नुम् इति व्याख्यानात् चक्षिङः अन्ते इकाराभावान्न नुमित्यर्थः । **चष्टे इति**-चक्षिङो ङित्त्वादात्मनेपदं, स्कोरिति झलि परतः संयुक्तस्य क्षस्यादिभूतककारस्य लोपः,

मध्यमनोरमापूरणी

ईशः से, ईडजनोरिति—इडत्त्यर्ति इति सूत्रतः इड् इति, रुदादिभ्यः सार्वधातुके इत्यतः सार्वधातुके इति चानुवर्तेते । तदाह ईशीड् इति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६९०. चक्षिङः ख्याञ् २।४।५४।।

६९१. वा लिटि २।४।५५।। अत्र भाष्ये ख्शादिरयमादेशः । असिद्धकाण्डे शस्य यो वेति स्थितम् । ञित्त्वात् पदद्वयम् । चख्यौ, चख्ये । चक्शौ, चक्शे । चचक्षे। ख्याता, क्शाता । ख्यास्यति, ख्यास्यते, क्शास्यति, क्शास्यते । चष्टाम् । अचष्ट । चक्षीत । ख्यायात्, ख्येयात्, क्शायात्, क्शेयात् । अस्यति वक्तीत्यङ् । अख्यत्, अख्यत । अक्शासीत्, अक्शास्त (वा. वर्जने क्शाञ् नेष्टः) समचक्षिष्टेत्यादि । इत्यात्मनेपदिनः ।

मध्यमनोरमा

ष्टुत्वम् । **ख्शादिरिति**—ख्याञ् इत्यस्यादिभूतः ख्यशब्दो न, किन्तु ख्श् इति, तत्र शकारस्य यकारं कृत्वा ख्या इति निर्देशः । शकारस्य यकारः केनेत्याशङ्क्याह- **असिद्धकाण्डे इति** । त्रिपाद्यां णत्वप्रकरणानन्तरम् शस्य यो वा इत्यपि पठनीयमित्यर्थः । **पदद्वयमिति**—कर्त्तृगामिनि क्रियाफले स्वरितञित इत्यात्मनेपदम् । अन्यत्र शेषः । शस्य यो वेति पक्षे शस्य यत्वाभावे **चक्शौ इति**- खरि चेति खस्य कः । ख्याञादेशस्य ञित्वात् स्वरितञित इति कर्तृगे फले आत्मनेपदम् । **चख्ये इति**—लिटस्तस्य एश्, असंयोगाल्लिट् इति कित्त्वादातो लोप इटि चेत्यालोपः। शस्य पक्षे यः । यत्वाभावे **चक्शे इति**, खरि च । **चचक्षे इति**—ख्याञादेशस्य वैकल्पिकत्वात्तदभावे चक्ष् ए इति स्थिते द्वित्वे हलादिशेषे चचक्षे इति। **ख्यातेति** यत्वपक्षे । तदभावपक्षे **क्शातेति** । अत्र चक्षिङः सेट्त्वेऽपि ख्याञोऽनिट्त्वं बोध्यम् । नात्र इट् । परस्मैपदात्मनेपदयोस्तुल्यं, खरि चेति कः । **चष्टामिति**—आर्धधातुकाभावात् ख्याञादेशो न, चक्ष् ताम् इति स्थिते शप्, लुक्, स्कोरिति कलोपः । चष् ताम् इति जाते ष्टुत्वम् । **अचष्टेति**-लङ्, तः, शप्, लुक्, स्कोरिति कलोपः, ष्टुत्वमडागमः । **चक्षीतेति**—विधिलिङ्, सीयुट्, सलोपः । **ख्यायादिति**-आशीर्लिङि ख्शाञः शस्य यो वा । **ख्येयादिति**—वान्यस्य संयोगादेरित्याकारस्य एकारः पाक्षिकः । शस्य यत्वाभावे **क्शायादिति** । तत्रापि वान्यस्येति एत्वपक्षे **क्शेयादिति** । आत्मनेपदपक्षे **ख्यासीष्टेति**–सीयुट्, सुट्, ख्शाञादेशः, शस्य यत्वम्। तदभावे क्शासीष्टेति । **अख्यत् इति**—अस्यतिवक्तीति च्लेरङ्, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । **अख्यतेति**—आत्मनेपदपक्षे च्लेरङ्, आलोपः । **अक्शासीदिति**—अस्यवक्तिख्यातीति कृतयत्वनिर्देशात् शस्य यो वेति यत्वाभावे च्लेरङ् न, यमरमनमातामिति सक्, इट् । आत्मनेपदपक्षे यत्वाभावे

मध्यमनोरमापूरणी

इकारोऽनुदात्तो युजर्थ इति—चक्षिङ् इत्यत्र इकारस्यान्तत्वाभावान्न नुम् स्यात्, अतः इकारोच्चारणं किमर्थमिति जिज्ञासायामुच्यते-इकारः अनुदात्तः अस्ति, तेन चक्षिङ् धातोः ल्युटः अपवादभूतः अनुदात्तश्च हलादेरिति ल्युटं प्रबाध्य युच् भवति, अत उक्तं युजर्थ इति ।

हिन्दी

६९०. चक्षिङ् धातु को ख्याञ् आदेश हो आर्धधातुक परे रहते ।

६९१. चक्षिङ् धातु को लिट् परे ख्याञ् आदेश हो विकल्प से ।

वा. वर्जन अर्थ में चक्षिङ् को क्शाञ् आदेश नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथोऽभयपदिनः । द्विष अप्रीतौ । द्वेष्टि, द्विष्टे। द्वेक्ष्यति । द्विड्ढि । द्वेषै । अद्वेट्।
६९२. द्विषश्च ३।४।११२।। लङो झेर्जुस् वा । अद्विषुः, अद्विषन् । अद्विक्षत्।
दुह् प्रपूरणे । 'दादेर्धातोर्घः' इति हस्य घः । दोग्धि । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि।
दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुक्षे । दुहाथे । धुग्ध्वे । दुहे । दुह्वहे । दुह्महे । दुदोह,
दुदुहे । दोग्धा ।

मध्यमनोरमा

अङोऽभावः । **समचक्षिष्टेति**—लुङ्, तः, सिच्, आर्धधातुकस्येति इट् । षत्वं, ष्टुत्वम्, अडागमः । **दोग्धीति**—[1]इत आरभ्य उभयपदिनः, तत्र परस्मैपदपक्षे तिप्, दादेर्धातोर्घ इति हस्य घः, झषस्तथोरिति तस्य धः, झलां जश् झशीति घस्य गः, पुगन्तेति गुणः । **दुग्धः इति-**तस्, दादेरिति घः, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वं, तसो ङित्त्वान्न गुणः । **दुहन्तीति**— झोऽन्तः, शपो लुक् । **धोक्षीति–** सिप्, दादेरिति घः, एकाचो बश इति भष्भावेन दकारस्य धः, खरि चेति घस्य कः, पुगन्तेति गुणः, आदेशप्रत्यययोरिति सस्य षत्वम्, कषयोः संयोगः । **दुग्धे** इत्यात्मनेपदपक्षे तः, टेरेत्वं, शपो लुक्, दादेरिति घः, झषस्तथोरिति तकारस्य धकारः, झलां जशिति घस्य गः । **दुहते इति**—आत्मनेपदेष्वनतः इति झस्यात् । **धुक्षे इति**—थासः से, घत्वं, भष्भावः, जश्त्वं, खरि च, सस्य षत्वम् । **धुग्ध्वे इति**—घत्वं, भष्भावः, जश्त्वम्। **दुहे इति**—इट्, एत्वम् । **दुदोहे इति**—णल्, द्वित्वं, पुगन्तेति गुणः । **दुदुहे इति**—एश्, द्वित्वम् । **दोग्धेति**—लुट्, तिप्, तास्, घत्वं, धत्वं, जश्त्वं, गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

द्वेष्टि इति—द्विष्धातोर्लटि तिपि शपि शपो लुकि पुगन्तेति गुणे ष्टुत्वम् । **द्वेक्ष्यतीति**—द्विषः लृटि तिपि स्यः, गुणः, षढोः कः सीति षस्य कः, द्वेक् स्य ति इति, आदेशेति षत्वे संयोगे द्वेक्ष्यति । **द्विड्ढि**—लोटः सेर्हिः, हुझल्भ्य इति हेर्धिः, षस्य जश्त्वेन डः, धस्य ष्टुत्वेन ढः, हेरपित्त्वान्न गुणः । **द्वेषै इति**—आत्मनेपदे उत्तमपुरुषैकवचने इट्, टेरेत्वे एत ऐ इति 'ऐ' आदेशः, आडुत्तमस्येत्याट्, आटश्चेति वृद्धिः । **अद्वेट् इति**—लङ्, तिप्, शप्, शपो लुक्, अडागमः, लघूपधगुणः, इतश्च, हल्ङ्याबिति तलोपः, षस्य जश्त्वेन डः, तस्य चर्त्वेन टः। **द्विषश्चेति**—अत्र झेर्जुस् इति सूत्रं लङः शाकटायनस्येति सूत्रं चानुवर्तते तदाह सूत्रार्थम्–द्विषः परस्य लङो झेर्जुस् वा भवतीति । **अद्विषुरिति**—द्विषः लङि झिः, झेः द्विषश्चेति जुसि शप्, शपो लुक्, अट्, अद्विषुस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वान्न गुणः । पक्षे झोऽन्तः, इतश्च, अद्विषन्त् इति जाते, तस्य संयोगान्तस्येति लोपः । **अद्विक्षत् इति**—लुङि तिपि इतश्चेति इलोपः, च्लि लुङि, च्लेः शल इगुपधादिति क्सः, लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्त इति अट्, अद्विष् सत् इति, षढोः कः सीति षस्य कः, सस्य षत्वं, कषयोः संयोगेन क्षः ।

हिन्दी

६९२. द्विष् धातु से परे लङ् के झि को जुस् आदेश होता है, विकल्प से ।

टिप्पणीः-मध्यमनोरमानुसारं द्विष् धातुः मूले नासीत् इति प्रतीयते । यतो हि दुह् इत्यारभ्य उभयपदिनं संङ्केतऽति, अथ द्विषः रूपाण्यपि न साधितानि ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धोक्ष्यति, धोक्ष्यते । दोग्धु । दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि । दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्ष्व । दुहाथाम्। धुग्ध्वम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । अदुग्धाम् । अदुहन् । अदोहम्। अदुग्ध । अदुहाताम् । अदुहत । अधुग्ध्वम् । दुह्यात् दुहीत । धुक्षीष्ट । अधुक्षत् अधुक्षत ।

६९३. लुग्वा दुहदिहलिहगुहात्मनेपदे दन्त्ये ७।३।७३।। एषां क्सस्य लुग्वा दन्त्ये तङि । अलोऽन्त्यस्य । अदुग्ध, अधुक्षत ।

६९४. क्सस्याचि ७।३।७२।। अजादौ तङि क्सस्य लोपः । अधुक्षाताम् । अधुक्षन्त । अधुक्षथाः, अदुग्धाः । अधुक्षाथाम् । अधुक्षध्वम्, अधुग्ध्वम् । अधुक्षि। अधुक्षावहि, अदुह्वहि । अधुक्षामहि । अधोक्ष्यत् । एवं दिह उपचये । उपचयो वृद्धिः । लिह् आस्वादने । लेढि । लीढः, लिहन्ति । लेक्षि । लीढे । लिहाते लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे ।

मध्यमनोरमा

धोक्ष्यतीति—लृट्, स्यः, घत्वं, भष्भावः, खरि च, आदेशप्रत्यययोः, पुगन्तेति गुणः । आत्मनेपदपक्षे धोक्ष्यते इति । **दोग्धु इति**—लोट्, तिप् एरुः, दादेरिति घः, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वम्, गुणः । तातङ् पक्षे **दुग्धादिति** । तातङो ङित्त्वाद् गुणाभावः । **दुग्धामिति**- आत्मनेपदपक्षे तः, टेरेत्वम्, आमेतः, घत्वं, धत्वं, जश्त्वम् । **दुग्धि इति**—सेर्ह्यपिच्च, हु-झल्भ्यो हेर्धिः, घत्वं, जश्त्वम् । हेस्तातङादेशपक्षे घत्वं, झषस्तथोरिति तकारस्य धः, जश्त्वम्। **दुग्धमिति**—थस्, तमादेशः, घत्वं, धत्वं, जश्त्वम् । **दुग्धेति**—थस्य तादेशः । **दुहानीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट् । **दुग्धामिति**- आत्मनेपदपक्षे तः, टेरेत्वम्, आमेतः, घत्वादि । **दुहतामिति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, टेरेत्वमामेतः । **धुक्ष्वेति**—थासः से, सवाभ्यां वामौ, घत्वं, भष्भावः, जश्त्वं, चर्त्वे सस्य षत्वम्। **धुग्ध्वमिति**—घत्वं, भष्भावः, जश्त्वम्। **दोहै इति**—इट्, एत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, आटश्चेति वृद्धिः, गुणः । **दोहावहै इति**-एत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, गुणः । **अधोगिति**—लङ्, तिप्, शप्, लुक्, इतश्चेति लोपः, हल्ङ्याबिति लोपः, घत्वं, भष्भावः, गुणः । **अदुग्धामिति**—तसस्तां, घत्वं, धत्वं, जश्त्वम् । **अदुहन् इति**—झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तलोपः । **अदोहम् इति**—मिपः अम्, गुणः । **अदुग्धेति**-आत्मनेपदपक्षे घत्वं, धत्वं, जश्त्वादि । **अदुहतेति**-आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात् । **अधुग्ध्वम् इति**—घत्वं, भष्भावः, जश्त्वमडागमः । **दुह्यादिति**—लिङ् । **दुहीतेति**–आत्मनेपदपक्षे विधिलिङ्, सीयुट्, सलोपः । **धुक्षीष्टेति**–आशीर्लिङि, सीयुट्, सुट्, घत्वं भष्भावः, जश्त्वं, चर्त्वे षत्वं कषसंयोगे क्षः, सीयुटो यलोपः, सस्य षत्वं, ष्टुत्वम् । **अधुक्षदिति**–लुङ्, तिप्, च्लिः, शल इगुपधादिति च्लेः क्सः, लशक्वेति क इत्, घत्वं, भष्भावः जश्त्वं, चर्त्वे सस्य षत्वं, कषसंयोगे क्षः, इतश्च, अट् ।

हिन्दी

६९३. दुह दिह लिह् और गुह् से परे क्स प्रत्यय का लुक् होता है दन्त्य तङ् परे रहते विकल्प से ।

६९४. अजादि तङ् परे क्स का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लेढु, लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लेहानि । लीढाम् । अलेट्, अलीढ। अलीढाम् । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ।

६९५. ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३।४।८४॥ ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः । आह । आहतुः । आहुः ।

मध्यमनोरमा

[1]**सर्वदिशार्थमिति**—लुग्ग्रहणाभावे अलोऽन्त्यस्येति अन्त्यस्याकारमात्रस्य लोपः । लुग्ग्रहणे कृते प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुप इति प्रत्ययलोपस्य लुक्संज्ञाकरणात् क्सस्य सर्वस्य लुगित्यर्थः । **अदुग्धेति**-आत्मनेपदपक्षे च्लेः शल इगुपधेति क्सः, तस्य लुग्वेति लुक्, घत्वं, धत्वं, जश्त्वम्, अडागमः। क्सस्य लुगभावपक्षे **अधुक्षतेति**—घत्वं, भष्भावः, जश्त्वं, चर्त्वे सस्य षत्वम् । **अधुक्षातामिति**-क्सस्याचीति क्साकारस्य लुक्, घत्वं, धत्वं जश्त्वादि । क्सस्य लुगभावपक्षे **अधुक्षथा इति**—घत्वं, भष्भावः, जश्त्वचर्त्वे, षत्वं, क्षः । **अधुग्ध्वम् इति**—क्सस्य लुक् पक्षे, तदभावे अधुक्षध्वमिति । **अधुक्षि इति**—उत्तमैकवचनम् इट्, क्सः, क्सस्याचीति अकारलोपः । **अदुह्वहीति**—वकारस्य दन्तोष्ठ्यतया दन्त्यत्वात्तस्मिन् परतो लुग्वेति पक्षे क्सस्य लोपः । तदभावे **अधुक्षावहि इति**-अतो दीर्घो यञीति अकारस्य दीर्घः । **अधुक्षामहीति**—मकारस्य दन्त्यत्वाभावादत्र लुगभावः, अतो दीर्घो यञीति दीर्घः । **अधोक्ष्यदिति**—लृङ्, स्यः, घत्वं, भष्भावः, जशत्वं, चर्त्वे षत्वं, गुणः । [2]आत्मनेपदपक्षे **अधोक्ष्यतेति** । **लेढीति**—तिप्, शप्, लुक्, गुणः, हो ढः, झषस्तथोर्धोऽधः, ष्टुना ष्टुः, ढो ढे लोपः । **लीढः इति**—तस्, ढत्वं, धत्वं, ष्टुत्वं, ढलोपः, ढलोपे इकारस्य दीर्घः । **लेक्षि इति**- सिप्, गुणः, ढत्वं, षढोः कः सि, सस्य षत्वम्। **लीढे** इत्यात्मनेपदं तः, एत्वं, शपो लुक् । ढत्वष्टुत्वढलोपदीर्घाः । **लिहते इति**—आत्मनेपदेष्विति झस्यात् । **लिक्षे इति**—थासः से, ढत्वं, कत्वं, षत्वम् । **लीढ्वे इति**—ढत्वं, ष्टुत्वढलोपे दीर्घः, ध्वमष्टेरेत्वम् । **लेढु इति**—लोट्, तिप्, एरुः, गुणः, ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपाः । **लीढादिति**—तातङ्, ढत्वं, धत्वं, ष्टुत्वं, ढलोपः, दीर्घः । **लीढामिति**—तसस्तां, ढत्वादि। **लीढीति**—सेर्ह्यपिच्च, हुझल्भ्यो हेर्धिः, ढत्वं, ष्टुत्वं, ढलोपः, दीर्घः । **लेहानीति**—मेर्निः, आट्, पुगन्तेति गुणः । **लीढा** मित्यात्मनेपदपक्षे तः, टेरेत्वम्, आमेतः, ढत्वादि । **अलेट् इति**-लङ्, तिप्, इतश्च, हल्ङ्याबिति तलोपः, ढत्वं, झलां जशोऽन्ते इति ढस्य डः । वाऽवसाने इति पक्षे टः, गुणः, अडागमः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अलीढामिति—लिह् धातोः लङि तसि, तस्थस्थेति तसस्ताम्, शप्, लुक्, ङित्त्वान्न गुणः, अडागमः, हो ढः, झषस्तथोरिति तस्य धः, ष्टुत्वं, ढलोपः, दीर्घः । **आहेति**—ब्रूधातोर्लट्, तिप्, ब्रुवः पञ्चानामिति तिपो णल् ब्रूधातोराहादेशश्च । **आत्थेति**—आह् थ इति जाते आहस्थ इति हस्य थः, थस्य खरि चेति चर्त्वम् ।

हिन्दी

६९५. ब्रू धातु से परे लट् सम्बन्धी तिबादि पाँच को क्रमशः णल् अतुस् उस् थल् और अथुस् आदेश होते हैं तथा ब्रू धातु को आह आदेश होता है ।

टिप्पणीः-1. इयं पक्तिः सिद्धान्तकौमुद्यां मध्यकौमुद्यां वा उपलब्धसंस्करणेषु नास्ति ।
2. टीकाकाराः दुह्धातुरुपेषु त्रैपादिकात् परं गुणं कुर्वन्ति, तन्न युक्तम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६९६. आहस्थः ८।२।३५।। झलि । चर्त्वम् । आत्थ । आहथुः ।
६९७. ब्रुव ईट् ७।३।९३।। ब्रुवो हलादेः पित् ईट् । ब्रवीति । ब्रूतः । ब्रुवन्ति। ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ।
६९८. ब्रुवो वचिः २।४।५३।। आर्धधातुके । उवाच । ऊचतुः । ऊचुः । उवचिथ, उवक्थ । ऊचे । वक्ता । वक्ष्यति, वक्ष्यते । ब्रवीतु, ब्रूतात् । ब्रूताम् । ब्रूहि। ब्रवाणि । ब्रूताम् । ब्रवै । अब्रवीत् । अब्रूत । ब्रूयात् । ब्रुवीत । उच्यात्, वक्षीष्ट। अवोचत् । अवक्ष्यत् । चर्करीतञ्च । चर्करीतमिति यङ्लुगन्तस्य संज्ञा, तददादौ बोध्यमित्यर्थः । ऊर्णुञ् आच्छादने ।
६९९. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।३।९०।। वृद्धिर्वा हलादौ पिति सार्वधातुके । ऊर्णौति, ऊर्णोति । ऊर्णुतः । ऊर्णुवन्ति । ऊर्णुते । ऊर्णुवाते । ऊर्णुवते ।

मध्यमनोरमा

अलीढेति—आत्मनेपदपक्षे तः, ढत्वं, घत्वादि। तिबादीनां **पञ्चानामिति**—तिप् तस् झि सिप् थस् एतेषां क्रमेण णल् अतुस् उस् थल् अथुस् इत्यादेशा इत्यर्थः । **आहस्थः**—झलि परतः आह् इत्यस्य हकारस्य थकारो भवति । थकारस्य खरि चेति तकारः । **ब्रवीतीति**—आहादेशाभावपक्षे तिप्, ईट्, सार्वधातुकेति गुणः, अवादेशः। **ब्रुवतीति**—अचिश्नुधात्वित्युवङ् । आत्मनेपदपक्षे ईडभावे ब्रूते इति । **ब्रुवाते इति**—ङित्त्वाद् गुणनिषेधे उवङ् । **ब्रुवते इति**—आत्मनेपदेष्वनतः इति झस्य अत् । **उवाचेति**—वच् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणम्, अत उपधायाः । **ऊचतुरिति**—वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, ततो द्वित्वं, हलादिशेषः, सवर्णदीर्घः । **उवचिथेति**—भारद्वाजमते इट्, लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणम् । भारद्वाजभिन्नमते उपदेशेऽत्वत इति क्रादिनियमप्राप्तस्य इटो निषेधः, चोः कुः । **ऊचे इति**—आत्मनेपदपक्षे तस्य एश्, वचिस्वपीति सम्प्रसाणे सति द्वित्वम् । **वक्तेति**-चोः कुः । **वक्ष्यतीति**—कुत्वं, षत्वम् । **ब्रवीतु इति**—आर्धधातुकाभावाद् वचिरादेशो न, ब्रुव ईट्, सार्वधातुकेति गुणः। तातङ्पक्षे ब्रूतादिति । **ब्रूतामिति**—तसस्ताम् । **ब्रूहि इति**—सेर्हिः । **ब्रवाणीति**—मेर्निः, आट्, गुणः, अवादेशः । **ब्रूतामिति**—आत्मनेपदपक्षे आमेतः । **ब्रवै इति**—इट्, आडुत्तमस्येत्याट्, वृद्धिः, धातोर्गुणावादेशौ । **अब्रवीदिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, ब्रुव ईट्, गुणः । आत्मनेपदपक्षे अब्रूतेति । **ब्रूयादिति**—विधिलिङि । **ब्रुवीतेति**— आत्मनेपद पक्षे सीयुट्, सलोपः, यलोपः, उवङ् । **उच्यादित्याशीर्लिङि** परस्मैपदं तिप्, यासुट्, वचिस्वपीति सम्प्रसाणम् । आत्मनेपदे **वक्षीष्टेति**—सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वं, चोः कुः, षत्वम् । **अवोचदिति**—लुङ्, तिप्, च्लिः, ब्रुवो वचिः, अस्यतिवक्तीति च्लेरङ्, वच् उम् इति उमागमः। **अवक्ष्यदिति**—लृङ्, स्यः, कुत्वं, षत्वम् । **अदादौ बोध्यमिति**- तेन अदिप्रभृतिभ्यः शपः, यङ्लुगन्तात् शपो लुगित्यर्थः । **ऊर्णौतीति**-ऊर्णोतेरिति वृद्धिः, तदभावे -

हिन्दी

६९६. आह् धातु के ह् को थ् होता है झल् परे रहते ।
६९७. ब्रू धातु से परे हलादि पित् को ईट् आगम होता है ।
६९८. ब्रूधातु को वच् आदेश होता है आर्धधातुक के विषय में ।
६९९. ऊर्णु धातु को वृद्धि होती है विकल्प से, हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. ऊर्णोतेराम् नेति वाच्यम् । ७००. नन्द्राः संयोगादयः ६।१।३।। अचः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति । नु शब्दस्य द्वित्वम् । ऊर्णुनाव । ऊर्णुनुवतुः। ऊर्णुनुवुः ।

७०१. विभाषोर्णोः १।२।३।। इडादिप्रत्ययो वा ङिद्वत् । ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता । ऊर्णौतु, ऊर्णोतु । ऊर्णवानि । ऊर्णवै ।

७०२. गुणोऽपृक्ते ७।३।९१।। ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्ध्यपवादः । और्णोत् । और्णोः । और्णुतम् । ऊर्णुयात् । ऊर्णुयाताम् । ऊर्णूयात्। ऊर्णूयास्ताम् । ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णविषीष्ट । और्णुवीत् ।

मध्यमनोरमा

ऊर्णोति—सार्वधातुकेति गुणः । **ऊर्णुवन्तीति**—झोऽन्तः, अचि श्नुधात्विति उवङ् । **उर्णुवते इति**—आत्मनेपदेष्विति झस्य अत् । उवङ् । **आम्नेति**—इजादेश्चेति प्राप्तम् आम्नेत्यर्थः । **नु शब्द इति**—ऊकारात् परस्य रेफस्य द्वित्वनिषेधः । ऊकारात् रेफस्य व्यहितस्य द्वित्वं भवत्येवेत्यर्थः । **ऊर्णुनावेति**—अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **विभाषोर्णोः**—अनेन ङित्वविकल्पादिडादिप्रत्ययस्य थलो ङित्त्वात् क्क्ङति चेति गुणनिषेधादुवङ् । ङित्त्वाभावपक्षे गुणः । एवम् **ऊर्णुविता, ऊर्णवितेति**— इडादिप्रत्ययस्य तासेर्ङित्त्वाद् न गुणः । **ऊर्णौतु इति**– ऊर्णोतेर्विभाषेति वृद्धिविकल्पः, वृध्यभावे गुणः । **ऊर्णवानीति**—लोडुत्तमस्य परस्मैपदे मेर्निः, आट्, गुणः । **ऊर्णवै इति**—आत्मनेपदे इट्, एत्वम्, ऐत्वम्, आट्, आटश्च, गुणः । **और्णोदिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, ऊर्णोतेर्विभाषेति वृद्धिविकल्पं बाधित्वा गुणोऽपृक्ते इति गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ऊर्णुनावेति—लिट्, तिप्, णल्, ऊर्णु अ इति, इजादेश्चेति आमि प्राप्ते ऊर्णोतेराम् नेति निषेधे अजादेर्द्वितीयस्येति नियमेन र्णु इत्यस्य द्वित्वे प्राप्ते नन्द्राः संयोगादय इति रेफस्य द्वित्वनिषेधः, द्वित्वं प्रति णत्वस्यासिद्धत्वात् नु इत्यस्य द्वित्वम्, उत्तरपदे वृद्धिः, आवादेशः, पूर्दनकारस्य रषाभ्यामिति णत्वम् । किति लिटि उवङ् । ऊर्णुनुवतुः ऊर्णुनुवुरित्यादि । **ऊर्णुनुविथेति**—उर्णुनु इथ इति जाते विभाषोर्णोः इति ङित्त्वात् न गुणः, उवङ्, ङित्त्वाभावे गुणः, **ऊर्णुनविथेति।** **ऊर्णवै इति**—आत्मनेपदे लोडुत्तमपुरुषैकवचने इट्, टेरेत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, ऊर्णु आ ऐ इति, सार्वधातुकेति गुणेऽवादेशः, आटश्चेति वृद्धिः । **और्णोरिति**—लङि सिप्, इतश्च, शप्, लुक्, आडजादीनाम्, आ ऊर्णु स् इति, वृद्धिविकल्पं बाधित्वा गुणोऽपृक्ते इति गुणे वृद्धौ सस्य रुत्वविसर्गौ । **ऊर्णुविषीष्टेति**—आशिषि लिङि आत्मनेपदे तः, सीयुट्, सुट्, आर्धधातुकत्वादिट्, विभार्षोर्णोरिति इडादिप्रत्ययस्य ङित्त्वान्न गुणः, उवङ्, ऊर्णविसीस्त इति, सकारद्वयस्य षत्वं, ष्टुत्वम् ।

हिन्दी

वा. उर्णु धातु से लिट् में आम् नहीं होता है ।

७००. अच् से परे संयोगादि न् द् र् को द्वित्व नहीं होता है ।

७०१. ऊर्णु धातु से परे इडादिप्रत्यय ङिद्वत् होता है विकल्प से ।

७०२. ऊर्णु धातु को अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे गुण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७०३. ऊर्णोतेर्विभाषा ७।२।६।। इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वृद्धिर्वा । और्णावीत् । और्णाविष्टाम् । और्णवीत् । और्णविष्टाम् । इत्यदादयः ।

मध्यमनोरमा

और्णोरिति—सिप्, इतश्च, गुणः । **ऊर्णुयादिति**—विधिलिङ्, शपो लुक् । **ऊर्णूयादिति**—आशीर्लिङि अकृत्सार्वेति दीर्घः । **ऊर्णुविषीष्टेति**—सुट्, इट्, विभाषोर्णोरिति इडादिप्रत्ययस्य इषीष्टेत्यस्य विकल्पेन ङित्त्वं, ङित्त्वपक्षे गुणनिषेधात् उवङ् । णित्त्वाभावपक्षे **ऊर्णविषीष्टेति-** सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । **और्णुवीदिति**—विभाषोर्णोरिति इडादिप्रत्ययस्य सिचो ङित्त्वपक्षे उवङ् । ङित्त्वाभावपक्षे **और्णवीदिति–** सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । इत्यदादयो व्याकृता : ।

मध्यमनोरमापूरणी

ङित्त्वाभावे गुणः, **ऊर्णविषीष्टेति** । **और्णुवीदिति**—लुङि तिपि इतश्च, सिच्, इट्, अस्तिसिचोऽपृक्ते इति ईट्, विभाषोर्णोरिति ङित्त्वात् गुणाभावे उवङ्, इट ईटि, दीर्घः, आट्, वृद्धिः । ङित्त्वाभावे गुणे **और्णवीदिति** । ऊर्णोतेर्विभाषेति इडादौ सिचि वृद्धौ आवादेशे च **और्णावीदिति** । **इत्यदादिप्रकरणम्** ।

हिन्दी

७०३. इडादि परस्मैपदपरक सिच् परे रहते ऊर्णु धातु को वृद्धि होती है, विकल्प से ।

।। अदादि-प्रकरणपूर्ण ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ जुहोत्यादिप्रकरणम्

हु दानादनयोः । ७०४. जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५।। शपः श्लुः स्यात् ।

७०५. श्लौ ६।१।१०।। धातोर्द्वेस्तः । जुहोति । जुहुतः । हुश्नुवोरिति यण् । जुह्वति ।

७०६. भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९।। एभ्यो लिट्याम् वा स्यादामि श्लाविव कार्यञ्च । जुहवाञ्चकार, जुहाव । होता । होष्यति । जुहोतु, जुहुतात् । जुहुताम्। जुह्वतु । जुहुधि । जुहवानि । अजुहोत् । अजुहुताम् । अजुहवुः । जुहुयात् । हूयात् । अहौषीत् । अहोष्यत् । ञिभी भये । बिभेति ।

७०७. भियोऽन्यतरस्याम् ६।४।११५।। इकारो वा स्याद्धलादौ सार्वधातुके क्ङिति । बिभितः, बिभीतः । बिभ्यति ।

मध्यमनोरमा

जुहोतीति—शपः श्लुः, श्लुसंज्ञको लोपः, श्लौ इति द्वित्वं, कुहोश्चुरित्यभ्यासहकारस्य झकारः, अभ्यासे चर्चेति झस्य जः, सार्वधातुकेति गुणः । **जुह्वतीति**—अदभ्यस्तादिति झस्यात् । हुश्नुवोः सार्वधातुके इति यण् । **जुहवाञ्चकारेति**—भीह्रीति आम्, आमि श्लाविव कार्यं, द्वित्वं, कुहोश्चुः, सार्वेति गुणः । जुहवामिति जाते आम इति लिटो लुक्, कृञो लिट्परस्यानुप्रयोगः, कृञो द्वित्वादि । आमोऽभावे **जुहावेति**—द्वित्वादि । **होतेति**—लुट्, तिप्, डा, तास्, टिलोपः, गुणः । **जुहोतु इति**—लोट्, तिप्, एरुः, शपः श्लुः, श्लौ द्वित्वं, कुहोश्चुः, सार्वेति गुणः । तातङ्पक्षे जुहुतादिति । तसि जुहुतामिति । **जुह्वतु इति**—अदभ्यस्तादिति झस्य अत्, एरुः, हुश्नुवोरिति यण् । **जुहुधि इति**—सेर्ह्यपिच्च, हुझल्भ्य इति हेर्धिः । **जुहवानि इति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येति आट्, श्लाविति द्वित्वादि, सार्वेति गुणः । **अजुहोदिति**—लङ्, तिप्, श्लुः, श्लाविति द्वित्वादि, गुणः । **अजुहवुरिति**—सिजभ्यस्तेति ङिल्लकारसम्बन्धिनो झेर्जुस्, जुसि चेति गुणः । **जुहुयादिति**—विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, शपः श्लुः, श्लौ । **हूयादिति**—आशीर्लिङ्, अकृत्सार्वेति दीर्घः । **अहौषीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, इतश्च, अस्तिसिचोऽपृक्ते इति ईट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, षत्वम् , अडागमः । **बिभेतीति**—तिप्, शप्, श्लुः, श्लौ इति द्वित्वे ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, अनभ्यासस्य गुणः । **बिभितः इति**—अभ्यासस्य ह्रस्वे अनभ्यासस्य भियोऽन्यतरस्यामिति ह्रस्व इकारः । इकाराऽभावे **बिभीतः इति** ।

मध्यमनोरमापूरणी

अजुहवुरिति—लङि झिः, शप्, शपः श्लौ कृते श्लौ इति द्वित्वेऽभ्यासहकारस्य झः, तस्य जः, सिजभ्यस्तेति जुस्, जुसि चेति गुणः, अव्, अट् ।

हिन्दी

७०४. जुहोत्यादि धातुओं से परे शप् को श्लु होता है ।

७०५. धातु को द्वित्व हो श्लु होने पर ।

७०६. भी ही भृ और हु धातुओं से आम् परे होता है लिट् परे, और आम् परे श्लु की तरह धातु को कार्य होता है ।

७०७. भी धातु को इकार आदेश होता है विकल्प से हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बिभयाञ्चकार, बिभाय । भेता । भेष्यति। बिभेतु, बिभितात्, बिभीतात् । । अबिभेत् । बिभियात्, बिभीयात् । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् । ह्री लज्जायाम् । जिह्रेति । जिह्रीतः । जिह्रियति । जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय । ह्रेता। ह्रेष्यति । जिह्रेतु । अजिह्रेत् । जिह्रीयात् । ह्रीयात् । अह्रैषीत् । अह्रेष्यत्। पॄ पालनपूरणयोः ।

७०८. अर्तिपिपर्त्योश्च ७।४।७७।। अभ्यासस्य इत् स्यात् श्लौ । पिपर्ति ।

७०९. उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७।१।१०२।। अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ॠत् तदन्तस्याङ्गस्य उः।

मध्यमनोरमा

बिभ्यतीति—अदभ्यस्तादिति झस्यात् । एरनेकाच इति यण् । **बिभयाञ्चकारेति**—भीह्रीत्याम्, तस्य श्लुवद्भावात् तस्मिन् परतो द्वित्वं, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, गुणः, अयादेशः, बिभयामिति जाते आम इति लिटो लुक्, कृञोऽनुप्रयोगः, लिटः णल्, द्वित्वादि, आमोऽभावपक्षे भी इत्यस्य लिटि धातोरिति द्वित्वम्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **बिभेतु इति**—लोट्, तिप्, एरुः, शपः श्लुः, श्लाविति द्वित्वं, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, गुणः । **तातङ् पक्षे**—बिभीतात् । **बिभितामिति**—भियोऽन्यतरस्यामिति इत्वम् । इत्त्वाभावे बिभीतामिति । इत्वाभावे **बिभीयादिति । भीयादिति**-आशीर्लिङि सार्वधातुकत्वाभावादित्वविकल्पाभावः । **अभैषीदिति**—सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अभेष्यदिति**—लृङ्, स्यः, सार्वधातुकेति गुणः । **जिह्रेति इति**—लट्, तिप्, शप्, श्लुः, द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, सार्वधातुकेति गुणः । **जिह्रियति इति**—अदभ्यस्तादिति झस्य अत्, अचि श्नुधात्विति इयङ् । **जिह्रयाञ्चकारेति**—भीह्रीत्याम्, श्लुवद्भावाद् द्वित्वादि, आमि परतो ह्री इत्यस्य सार्वधातुकेति गुणः, अयादेशः, कृञोऽनुप्रयोगः । आमभावे **जिह्रायेति**- णल्, द्वित्वादि, अचो ञ्णितीति वृद्धिः। **ह्रेतेति**—गुणः। **ह्रेष्यतीति**—गुणः, षत्वम् । **जिह्रेतु इति**-लोट्, तिप्, एरुः, शपः श्लुः, श्लाविति द्वित्वं, गुणः। **अजिह्रेदिति**-लङ्, तिप्, इतश्च, शपः श्लुः, द्वित्वादि । **ह्रीयादिति**– आशीर्लिङ् । **अह्रैषीदिति**-लुङ्, तिप्, इतश्च, सिच्, अस्तिसिच इति ईट्, सिचि वृद्धिरिति, षत्वम्, अडागमः । **पिपर्त्तीति**-शप्, श्लुः, श्लौ, द्वित्वम्, उरत्, रपरः, हलादिशेषे पपॄ इति जाते अभ्यासाकारस्य अर्त्तीति इकारः ॠकारस्य गुणः अर् ।

मध्यमनोरमापूरणी

बिभ्यतीति—झिः, शप्, शपः श्लुः, श्लौ इति द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वेऽभ्यासे चर्चेति भस्य बः, अदभ्यस्तादिति झस्यात्, बिभी अति इति, एरनेकाचोऽसंयोगेति यण् । **बिभीतादिति**—लोटि तोस्तातङि रूपम् । भियोऽन्यतरस्यामिति इकारे बिभितादिति । **जिह्रीयादिति**—विधिलिङि तिपि, यासुट्, शप्, शपः श्लुः, श्लौ इति द्वित्वमभ्याससंज्ञा, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, इतश्च, लिङः सलोप इति । **पपुरिति**– पपॄ उस् इति जाते शॄदॄप्रामिति ह्रस्वे यण् ।

हिन्दी

७०८. ॠ धातु एवं पॄ धातु के अभ्यास को इत् होता है श्लु होने पर ।

७०९. अङ्ग का अवयव ओष्ठ्यपूर्वक जो ॠकार, तदन्त अङ्ग को उ आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७१०. हलि च ८।२।७७।। रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि । पिपूर्तः। पिपुरति । पपार ।

७११. शृदॄप्रां ह्रस्वो वा ७।४।१२।। एषां किति ह्रस्वो वा स्यात् । पप्रतुः । पप्रुः।

७१२. ऋच्छत्यॄताम् ७।४।११।। तौदादिकऋच्छेऋधातोर्ॠताञ्च गुणो लिटि । पपरतुः । पपरुः ।

७१३. वॄतो वा ७।२।३८।। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्नतु लिटि । परीता, परिता । परीष्यति, परिष्यति । पिपर्तु । पिपुरतु । अपिपः । अपिपूर्ताम्। अपिपरुः । पिपूर्यात् । पिपूर्याताम् । पिपूर्युः । पूर्यात् । अपारीत् ।

मध्यमनोरमा

पिपूर्तः इति—द्वित्वे अभ्यासस्य इत्वे पिपॄ तस् इति जाते उदोष्ठ्येति ओष्ठस्थानिकपकारपूर्वस्य ॠकारस्य उकारः, उरण् रपरः, हलि चेति उकारस्य दीर्घः । अचो रहाभ्यामिति तकारस्य पाक्षिकं द्वित्वं, सस्य रुत्वविसर्गौ । **पिपुरति**—अभ्यस्तत्वात् झस्य अत्, श्लाविति द्वित्वे अर्तीति अभ्यासस्य इत्वे उदोष्ठ्येति ॠकारस्य उकारः, हल्परत्वाभावात् दीर्घो न । **पपारेति**—लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वम्, उरत् हलादिः शेषः, श्लुपरत्वाभावादभ्यासस्येत्वं न । अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **पप्रतुरिति**—लिटि द्वित्वादौ शृदॄप्रामिति ह्रस्वत्वम् । ह्रस्वाभावपक्षे ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । एवं उसि पप्रुः पपरुरिति । **परिता, परीतेति**—दीर्घ ॠकारान्तत्वादयं सेट्, वॄतो वेतीटो दीर्घविकल्पः । **अपिपः इति**—लङ्, श्लुः, द्वित्वम्, अर्तीति अभ्यासस्येत्वं, सार्वधातुकगुणः, हल्ङ्यादिना अपृक्तस्य तिपो लोपः, अवसाने विसर्गः । **अपिपूर्तामिति**—तसस्तामादेशः, श्लौ द्वित्वादि, इत्वमुत्वम् दीर्घः । **अपिपरुरिति**—सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, जुसि चेति गुणः । **पिपूर्यादिति**—उदोष्ठ्येति उत्वं, हलि चेति दीर्घः । **अपारीदिति**—लुङ् तिप् सिच्, इतश्च, आर्धधातुकस्येतीट्, अस्तिसिच इति ईट्, इट ईटि, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पपरतुरिति—लिटि तसोऽतुसि द्वित्वादौ कृते पपॄ अतुस् इति, शृदॄप्रामिति विकल्पे ऋच्छत्यॄतामिति गुणे सस्य रुत्वविसर्गौ । **वॄतो वेति**—वृ ॠत् इत्युभयोः समाहारद्वन्द्वः । वृ इति वृङ्वृञोर्ग्रहणम्, आर्धधातुकस्येड् वलादेरिति 'इट्' इत्यनुवर्तते, ग्रहोऽलिटीत्यत अलिटि दीर्घ इति चानुवर्तते । तदाह- वृङ्वृञ्भ्यामित्यादि । **पूर्यादिति**—आशिषि लिङि तिपि यासुटि, यासुटो कित्त्वे इतश्चेतीकारलोपः, उदोष्ठ्यपूर्वस्येति ॠकारस्य उत्वे रपरत्वे हलि चेति दीर्घः, स्कोरिति सलोपः ।

हिन्दी

७१०. रेफान्त व वान्त धातु के उपधा इक् को दीर्घ होता है, हल् परे रहते ।

७११. शृ दॄ और पॄ धातु को ह्रस्व होता है, विकल्प से, कित् लिट् परे रहते ।

७१२. तौदादिक ऋच्छ धातु ऋ एवं ॠदन्त धातु को गुण होता है, लिट् परे रहते ।

७१३. वृङ्, वृञ् एवं ॠदन्त धातु से परे इट् को दीर्घ हो विकल्प से, लिट् में नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७१४. सिचि च परस्मैपदेषु ७।२।४०॥ अत्र वृत इटो न दीर्घः । अपारिष्टाम्। अपरीष्यत्, अपरिष्यत् । ओहाक् त्यागे । जहाति ।

७१५. जहातेश्च ६।४।११६॥ इद् वा स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके । जहितः।

७१६. ई हल्यघोः ६।४।११३॥ श्नाभ्यस्तयोरात ईत् स्यात् सार्वधातुके क्ङिति हलि न तु घोः । जहीतः । जहति । जहौ । हाता । हास्यति । जहातु, जहितात्, जहीतात् ।

७१७. आ च हौ ६।४।११७॥ जहातेरात् स्याच्चादिदीतौ स्तः । जहाहि, जहिहि, जहीहि । अजहात् । अजहीताम् । अजहुः ।

७१८. लोपो यि ६।४।११८॥ जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके । जह्यात् । एर्लिङीति एत्वम् । हेयात् । अहासीत् । अहास्यत् ।

मध्यमनोरमा

अपारिष्टामिति—तसस्ताम्, सिच इट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, वृतो वेति दीर्घे प्राप्ते सिचि चेति इटो दीर्घनिषेधः । **अपरीष्यदिति**—वृतो वेति दीर्घविकल्पः । **जहातीति**—श्लौ द्वित्वे अभ्यासस्य ह्रस्वः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च । **जहितः इति**—जहातेश्चेति इत्वपक्षे । इत्वाभावे ई हल्यघोरिति आकारस्य ईकारः । **जहतीति**—अदभ्यस्तात्, श्नाभ्यस्तयोरिति आलोपः । **जहौ इति**—लिटि द्वित्वम्, आत औ णलः, वृद्धिरेचि । **जहात्विति**—लोट्, श्लौ, द्वित्वम् । **जहितादिति**—तातङ्, जहातेश्चेति इत्वं, तदभावे ई हल्यघोरिति ईत्वं जहीतादिति । **जहाहीत्यादि**—सेर्हिः, हौ परतः आकारस्य आ च हौ इति आत्वम् । पक्षे इत्वम् ईत्वञ्चेति रूपत्रयम् । **अजहादिति**—लङ्, श्लौ द्वित्वादि । **अजहुरिति**—सिजभ्यस्तेति जुस्, आतो लोपः, श्नाभ्यस्तयोरिति सूत्रेण । **जह्यादिति**—विधिलिङ्, श्लौ द्वित्वादि, लोपो यि इत्यालोपः हेयादिति- आशीर्लिङि एर्लिङीत्येत्वम् । अहासीदिति लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लेः सिच्, यमरमनमेति सक् इट् च ।

मध्यमनोरमापूरणी

सिचि चेति—अत्र वृतो वेत्यत वृत इति, न लिङि इत्यतो नेति चानुवर्तेते । **तदाह**—वृत इटो दीर्घो नेति । **जहितः इति**—लटः तसि शपि श्लौ द्वित्वादि, जहा तस् इति जाते जहातेश्चेति आकारस्य इत्वम् । इत्वाऽभावे ई हल्यघोरिति आकारस्य ईत्वे जहीतः इति । **जहाहि**—लोटः सेर्हिः, शप्, श्लौ द्वित्वादि, जहा हि इति जाते इत्वं प्रबाध्य आच हौ इति आकारस्य आकारः । अनेनैव पक्षे इत्वे जहिहि इति ईत्वे च जहीहि इति रूपम् । **अहासीदिति**-अहास् इस् त् इति जाते ईट्, इट ईटि, दीर्घः ।

हिन्दी

७१४. परस्मैपद सिच् परे रहते वृङ् वृञ् एवं ॠदन्तधातु से परे इट् को दीर्घ नहीं होता है ।

७१५. हा धातु को इत् होता है विकल्प से, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते ।

७१६. श्ना और अभ्यस्तसंज्ञक के आ को ई होता है, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे, घु संज्ञक को ईत् नहीं होता है ।

७१७. हा धातु के आ को आ, इ, और ई, आदेश क्रमशः होते हैं हि परे रहते ।

७१८. हा धातु के आ का लोप होता है यादि सार्वधातुक के परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋ गतौ । इयर्ति । इयृतः । इय्रति । आर । आरतुः । आरुः । इडत्त्यर्त्ति इति नित्यमिट् । आरिथ । अर्ता । अरिष्यति । इयर्तु । इयराणि । ऐयः । ऐयृताम्। ऐयरुः । इयृयात् । अर्यात् । आरत् । आरिष्यत् । माङ् माने शब्दे च ।

७१९. भृञामित् ७।४।७६।। भृञ् माङ् ओहाङ् एषामभ्यासस्येत् स्याच्छ्लौ । मिमीते । मिमाते । श्नाभ्यस्तेति आलोपः । मिमते ।

ममे । माता । मास्यते । मिमीताम् । अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त। अमास्यत ।

मध्यमनोरमा

इयर्ति इति—अर्तिपिपर्त्योरिति अभ्यासस्य इत्वम्, अभ्यासस्यासवर्णे इति इयङ्, अभ्यासादुत्तरस्य गुणः । **इयृत इति**—अभ्यासस्य इयङ्, अभ्यासोत्तर ऋकारस्य क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **इय्रतीति**—अदभ्यस्तादिति झस्यात्, श्लौ द्वित्वम्, अभ्यासस्य इत्वम्, इयङ् । **आरेति**—णल्, ऋ इत्यस्य द्वित्वम्, अभ्यासस्य उरत्, रपरः, हलादिशेषः, अत आदेः, आऋ अ इति स्थिते ऋच्छत्यृतामिति अभ्यासात् परस्य गुणः अर्, सवर्णदीर्घः । **आरतुरिति**—द्वित्वादि, ऋच्छेति गुणः । **आरिथेति**—द्वित्वादि, गुणः, इट् । **अर्तेति**—सार्वधातुकेति गुणः। **इयर्तु इति**—लोट्, तिप्, एरुः, श्लौ द्वित्वम्, अर्तिपिपर्त्योरिति अभ्यासस्य इत्वम्, अनभ्यास ऋकारस्य गुणः, अभ्यासस्यासवर्णे इति इयङ् । **इयराणि इति-** मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट्, द्वित्वम्, इत्वम्, गुणः, इयङ्, अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **ऐय इति**—लङ्, तिप्, इतश्च, शपः श्लुः, द्वित्वम्, इत्वम्, गुणः, इयङ्, आडागमः, आटश्च, हल्ङ्याबिति लोपः । **ऐयृतामिति-** तसस्ताम्, द्वित्वम्, इत्वम्, इयङ्, आट्, वृद्धिः । **ऐयरुरिति**—झेर्जुस्, जुसि चेति गुणः । **इयृयादिति**—विधिलिङ्, श्लौ द्वित्वादि । **अर्यादिति**—आशीर्लिङि गुणोऽर्तीति गुणः । **आरदिति**–लुङ्, सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेति च्लेरङ्, ऋदृशोऽङि इति गुणः, आडागमः । **आरिष्यदिति**—सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । इति परस्मैपदम् । अथात्मनेपदम् । **मिमीते इति**—ङित्त्वादात्मनेपदम्, तः, द्वित्वं, ह्रस्वः, भृञामित् इति अभ्यासस्य इत्वम्, ई हल्यघोरिति अनभ्यासस्य ईत्वम् । **मिमाते इति**—[1]सवर्णदीर्घः । **मिमते इति**—झस्य अत्, श्नाभ्यस्तयोरात इत्यालोपः । **ममे इति–** लिट्, आत्मनेपदं तः, तस्य एश्, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । **मिमीतामिति**—लोट्, तः, एत्वम्, आमेतः, श्लौ द्वित्वं, भृञामित्, ई हल्यघोः । **अमिमीतेति**—लङ्, श्लौ द्वित्वम्, इत्वम्, ईत्वम्, अट् । **मिमीतेति**—विधिलिङ्, श्लौ द्वित्वादि, सीयुट्-सलोपादि । **मासीष्टेत्याशीर्लिङ्**, सीयुट्, सुट्, षत्वादि । **अमास्तेति**—लुङ्, सिच् ।

मध्यमनोरमापूरणी

इय्रतीति—इयृ अति इति जाते यण् । **आरेति**—आ अर् अ इति जाते अत उपधाया इति उपधावृद्धौ सवर्णदीर्घः । **आरिथेति**—ऋ थ इति स्थिते इडत्यर्त्तिव्ययतीनामिति नित्यमिट्, ततो द्वित्वादि, अभ्यासदीर्घः, ऋच्छेति गुणः, दीर्घः ।

हिन्दी

७१९. भृञ् माङ् और ओहाङ् धातु के अभ्यास को इत् होता है श्लु के विषय में ।

टिप्पणीः-अत्र श्नाभ्यस्तयोरात इति धातोराकारलोपो भवति, अतः सवर्णदीर्घस्य नास्त्यवसरः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओहाङ् गतौ । जिहीते । जिहते । जहे । जिहीताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत । डु भृञ् धारणपोषणयोः । बिभर्ति । बिभृतः। बिभ्रति । बिभृते । बिभ्राते । बिभ्रते । बिभराञ्चकार । बभार ।बभर्थ । बभृव। बिभराञ्चक्रे, बभ्रे । भर्ता । भरिष्यति । बिभर्तु । बिभराणि । बिभृताम् । अबिभः। अबिभृताम् । अबिभरुः । अबिभृत। बिभृयात् । बिभ्रीत । भ्रियात् । भृषीष्ट । अभार्षीत् । अभृत । अभरिष्यत्, अभरिष्यत । डुदाञ् दाने । ददाति। दत्तः । ददति । दत्ते । ददाते । ददते । ददौ । ददे । दाता । दास्यति । दास्यते। ददातु । देहि । दत्ताम् । अददात्। अदत्त ।

मध्यमनोरमा

जिहीते इति—श्लौ द्वित्वं, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति तस्य जः, भृञामित्, ईहल्यघोरिति ईत्वम् । **जिहते इति**—अदभ्यस्तात्, श्नाभ्यस्तयोरातः, भृञामित् इत्यभ्यासस्य इत्वम् । **जहे इति**—लिट्, तः, एश्, द्वित्वं, ह्रस्वः, कुहोश्चुः, आतो लोप इटि चेत्यालोपः। **जिहीतामिति**—लोट्, तः, एत्वम्, आम्, श्लौ द्वित्वम्, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, भृञामित्, ई हल्यघोः । **अजिहीतेति** लङ् । **जिहीतेति**- विधिलिङ्, श्लौ द्वित्वादि, सीयुट्,[1], सलोपादि। **हासीष्टेत्याशीर्लिङ्**, सीयुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अहास्तेति**—लुङ्, सिच् । इत्यात्मनेपदम् । अथोभयपदिनः । **बिभर्तीति**—लट्, तिप्, शप्, श्लुः, श्लौ द्वित्वम्, उरत्, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्चेति भस्य बः, भृञामित् इति इत्वं, सार्वधातुकेति गुणः । **बिभृतः इति**—द्वित्वम्, इत्वम्, ङित्त्वान्न गुणः । **बिभ्रतीति**—अदभ्यस्तात्, ऋकारस्य यण् । **बिभृते** इत्यात्मनेपदे तः, श्लुः, द्वित्वं, भृञामित्। **बिभ्राते इति**—आतामित्यस्य टेरेत्वम् । **बिभ्रते इति**—अदभ्यस्तात् । **बिभराञ्चकारेति**— भीहीभृहुवामिति आम्, आमः, श्लुवद्भावात्तस्मिन् परतो द्वित्वम्, इत्वम्, कृञोऽनुप्रयोग इत्यादि । आमोऽभावे **बभारेति**-णल्, द्वित्वम्, उरत्, अभ्यासे चर्च, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **बभर्थेति**—कृसृभृवृ इत्यादिना इण्निषेधः । **बभृवेति**—कृसृ इति इण्निषेधः । **बिभराञ्चक्रे इति**—भृञ उभयपदित्वात् आमन्तात् कृञोऽनुप्रयुज्यमानस्यापि उभयपदम् । **भरिष्यतीति**—ऋद्धनोः स्ये इतीट् । **बिभर्त्विति**—लोट्, श्लुः, द्वित्वादि, गुणः । **बिभराणीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट्, श्लौ द्वित्वं, गुणः, अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **बिभृताम् इति**—लोट्-आत्मनेपदं, श्लौ द्वित्वादि । **अबिभ इति**-लङ्, परस्मैपदे तिप्, श्लौ द्वित्वं, गुणः, इतश्चेतीकारलोपे हल्ङ्याबिति तलोपः । **बभरुरिति**—सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, जुसि चेति गुणः । **अबिभृतेति**—लङ्, आत्मनेपदम् । **बिभृयादिति**—विधिलिङ् परस्मैपदम्, श्लौ द्वित्वादि । **बिभ्रीतेति**—विधिलिङ्, आत्मनेपदं, सीयुट्, सलोपः, यलोपः, श्लौ द्वित्वादि, यण् । **भ्रियादित्याशीर्लिङ्**, परस्मैपदं, यासुट्, रिङ् शयग्लिङ्क्षु इति ऋकारस्य रिङ् । **भृषीष्टेति**– आशीर्लिङ्, आत्मनेपदं, सीयुट्, सुट् । **अभार्षीदिति**—सिचो लोपः। **अभरिष्यदिति**—ऋद्धनोः स्य इतीट् । **ददातीति**—श्लौ द्वित्वम्, ह्रस्वः । **दत्तः इति**—द्वित्वे ह्रस्वे श्नाभ्यस्तयोरित्यनभ्यासाकारस्य लोपः, खरि चेति दस्य तः, ई हल्यघोरिति ईत्वं तु न भवति, अघोरित्युक्तत्वात् । **ददतीति**- अदभ्यस्तादिति झस्य अत्, श्नाभ्यस्तयोरित्यालोपः।

हिन्दी

टिप्पणीः- 1. सीयुटः पश्चात् श्लौ द्वित्वादि कार्यं कर्त्तव्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दद्यात्, ददीत । देयात्, दासीष्ट । अदात् । अदाताम् । अदुः ।

७२०. स्थाघ्वोरिच्च १।२।१७॥ अनयोरिदन्तादेशः सिच्च किदात्मनेपदेषु । अदित । अदास्यत् । अदास्यत ।

७२१. दधस्तथोश्च ८।२।३८॥ द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् तथयोः स्ध्वोश्च परतः । धत्तः । दधति । दधासि । धत्थः । धत्ते । धत्से । धध्वे । धेहि ।

७२२. निजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७।४।७५॥ निज्विज्विषाभ्यासस्य गुणः स्याच्छ्लौ । नेनेक्ति । नेनिक्तः । नेनिजति । नेनिक्ते । निनेज । निनिजे ।

मध्यमनोरमा

दत्ते इति—आत्मनेपदपक्षे द्वित्वे अभ्यासह्रस्वे आलोपः। **ददाते इति**—आलोपः । **ददते इति**-अदभ्यस्तेति अत्, आलोपः । **ददाविति**—आत औ णलः, वृद्धिरेचि । **ददे इति**—एश्, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । **देहीति**— ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्चेति आकारस्य एत्वम्, अभ्यासस्य लोपः । **दत्तामिति**—लोट्, तः, एत्वम्, आमेतः, श्लौ द्वित्वं, ह्रस्वः, अनभ्यासाकारस्य श्नाभ्यस्तयोरिति लोपः, खरि चेति दस्य तः । **दद्यादिति**—विधिलिङ्, द्वित्वम्, आलोपः । **ददीतेति**-आत्मनेपदे तः, सीयुट्, सलोपः, श्लौ द्वित्वम्, अभ्यासस्य ह्रस्वः, आलोपः । **देयादिति**—आशीर्लिङ्-परस्मैपदम्, एर्लिङीत्येत्त्वम् । **दासीष्टेति** आशीर्लिङ्, आत्मनेपदं, सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अदादिति**—गातिस्थेति सिचो लुक् । **अदुरिति**—गातिस्थेति सिचो लुक्, आतः इति झेर्जुस्, उस्यपदान्तादिति आकारोकारयोः उकारः । **अदितेति**—स्थाघ्वोरिच्चेति आकारस्य इकारः, ह्रस्वादङ्गात् इति सिचो लोपः, सिचः कित्वादिकारस्य गुणो न । **दधातीति**—श्लौ द्वित्वं, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्चेत्यभ्यासधकारस्य दकारः । **धत्ते इति**—आत्मनेपदे द्वित्वादि, आलोपः, चर्त्वम्, एत्वम् । **धत्से इति**— थासः से । **धद्ध्वे इति**—आकारलोपे दधकारयोगः । **धेहीति**—लोटः सेर्हिः, ध्वसोरेद्धावित्यभ्यासलोपः एत्वश्च । **नेनेक्तीति**—श्लौ द्वित्वं, हलादिशेषः, निजामित्यभ्यासस्य गुणः, पुगन्तेति उपधागुणः । चोः कुरिति जस्य गः, खरि चेति कः । **नेनिक्त इति**—निजामिति गुणः, तसोङित्त्वाल्लघूपधगुणो न । **नेनिजतीति**– अदभ्यस्तादिति झस्य अत् । **नेनिक्ते इति**— आत्मने- पदे । **निनेजेति**-लिट्, तिप्, लिट् चेति आर्धधातुकत्वाच्छपोऽभावेन श्लाविति न द्वित्वम्, किन्तु लिटि धातोरिति द्वित्वम्, पुगन्तेति गुणः, श्लुपरत्वाभावान्निजामित्यभ्यासगुणो न । **निनिजे इति**—एशः कित्त्वान्न गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दधस्तथोश्चेति—कृतद्वित्वस्य धाञः दधः इति रूपम्, एकाचो बशो भष् इति सूत्रात् झषन्तस्य बशोभष् इत्यनुवर्तते, तथोरिति द्वन्द्वसमासः । चकारात् स्ध्वोरिति समुच्चीयते, तेन सकारे ध्वशब्दे चेत्यर्थोऽपि । तदाह द्विरुक्तस्येत्यादि ।

हिन्दी

७२०. स्था और घुसंज्ञक धातु को इत् अन्त में आदेश हो और सिच् कित् हो आत्मनेपद में ।
७२१. द्वित्व किये हुए झषन्त धा धातु के बश् को भष्भाव हो, त, थ और स्, ध्व परे रहते।
७२२. निज् विज् और विष् धातु के अभ्यास को गुण होता है श्लु के विषय में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नेक्ता । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेनेक्तु । नेनिग्धि ।
७२३. नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७॥ लघूपधगुणो न । नेनिजानि। नेनिक्ताम् । अनेनेक् । अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । अनेनिजम् । अनेनिक्त । नेनिज्यात् । नेनिजीत । निज्यात् । निक्षीष्ट । अनिजत्, अनैक्षीत्, अनिक्त । अनेक्ष्यत्, अनेक्ष्यत । एवं विचिर् पृथग्भावे । विष्लृ व्याप्तौ ।
॥ इति जुहोत्यादयः ॥

मध्यमनोरमा

नेक्ष्यतीति—लृट्, स्यः कुत्वम्, खरि च, षत्वं, गुणः । **नेनिग्धि इति**—लोटः सेर्हिः, हुझल्भ्यो हेर्धिः, चोः कुः, हेरपित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वेन लघूपधगुणो न । **नेनिजानीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट्, तस्य पित्त्वकरणात् ङित्त्वाभावेन क्क्ङिति चेत्यस्याप्रवृत्तौ लघूपधगुणे प्राप्ते नाभ्यस्तस्येति निषेधः । **नेनिक्तामिति**—लोट्, आत्मनेपदम् । **अनेनेगिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, श्लौ द्वित्वादि, निजामिति गुणः, लघूपधगुणः, हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् इत्यादिलोपः, चोः कुः, वाऽवसाने। **अनेनिजुरिति**—सिजभ्यस्तेति झेर्जुस् । **अनेनिजमिति**—मिपस्तस्थस्थेति अमादेशः, नाभ्यस्तस्येति लघूपधगुणो न । **अनेनिक्तेति**—लङ्, आत्मनेपदम्, क्क्ङिति चेति लघूपधगुणो न । **नेनिज्यादिति**—विधौ, **निज्यादिति** आशिषि । **नेनिजीतेति**—विधिलिङि आत्मनेपदम्। **निक्षीष्टेति**—आशीर्लिङि आत्मनेपदम्, सीयुट्, सुट्, कुत्वं षत्वम् । **अनिजदिति**—इरितो वेति च्लेरङ् वा । अङभावे **अनैक्षीदीति**—वदव्रजेति वृद्धिः, कुत्वं, चर्त्वं, षत्वम् । **अनिक्तेति**—लुङ्यात्मनेपदम्, झलो झलीति सिचो लोपः । **अनेक्ष्यदिति**—लृङ्, स्यः, कुत्वं, षत्वं, गुणः।
॥ इति जुहोत्यादिः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

नाभ्यस्तस्येति—मिदेर्गुण इति सूत्रात् गुणः इति, पुगन्तेत्यत-'लघूपधस्य' इत्यनुवर्तते । तदाह लघूपधगुणो न । **नेनिजीतेति**—विधिलिङि आत्मनेपदे तः, सीयुट्, शप्, शपः श्लुः, श्लौ द्वित्वादि, निजामिति अभ्यासगुणः, सलोपः, यलोपः ।
॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां जुहोत्यादिप्रकरणम् ॥

हिन्दी

७२३. अभ्यस्तसंज्ञक को अजादि पित् सार्वधातुक परे रहते गुण नहीं होता है ।
॥ इति अदादिप्रकरण ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ दिवादिप्रकरणम्

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

७२४. दिवादिभ्यः श्यन् ३।१।६९।। कर्तरि सार्वधातुके । शपोऽपवादः । हलि चेति दीर्घः । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवं षिवु तन्तुसन्ताने ।

७२५. सिवादीनां वाऽड्व्यवायेऽपि ८।३।७१।। परिनिविभ्यः परेषामेषां सस्य षो वा । पर्यषीव्यत्, पर्यसीव्यत् । नृती गात्रविक्षेपे । नृत्यति । ननर्त । नर्तिता ।

७२६. सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः ७।२।५७।। एभ्यः सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड् वा । नर्तिष्यति, नर्त्स्यति । नृत्यात्, अनर्तीत् । त्रसी उद्वेगे। वा भ्राशेति श्यन्वा । त्रस्यति, त्रसति, । तत्रास ।

मध्यमनोरमा

दिदेवेति—द्वित्वं, गुणः । **देवितेति**—लुट्, तास्, इट्, गुणः । **अदीव्यदिति**—लङ्, श्यन्, दीर्घः, इतश्चेत्यादि । **अदेवीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, इट्, इतश्च, ईट्, लघूपधगुणः, अडागमः। **अनर्तीदिति**—सेऽसिचीत्यत्र असिचीति वचनात् आर्धधातुकस्येति नित्यमिट् ।

मध्यमनोरमापूरणी

दीव्यतीति—वर्तमाने लट्, तिप्, तिङ्शित् सार्वधातुकमिति सार्वधातुकसंज्ञा, कर्त्तरि शप् इति शपं प्रबाध्य दिवादिभ्यः श्यन् इति श्यन्, अनुबन्धलोपः, दिव् यति इति, हलि चेति धातोरुपधायाः दीर्घः । **देविष्यति**—लृट्, तिप्, स्यः, आर्धधातुकसंज्ञा, इट्, लघूपधगुणः, षत्वम् । **दीव्यतु इति**—लोट्, तिप्, एरुः, श्यन्, हलि चेति दीर्घः । **दीव्येदिति**—विधिलिङ्, तिप्, इतश्च, यासुट्, श्यन्, सलोपः, अतोयेयः, दिव् य इय् त् इति। हलि च, आद्गुणः, लोपो व्योरिति यलोपः । **दीव्यादिति**—आशीर्लिङ्, तिप्, इतश्च, यासुट्, हलिचेति दीर्घः, स्कोरिति सलोपः । **सिवादीनामिति**—परिनिविभ्यः परेषां सिवादीनाम्सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जधातूनां सस्य अड्व्यवधानेऽपि षत्वं भवति विकल्पेन इति सूत्रार्थः । **पर्यषीव्यदिति**—षिवुधातोः षस्य धात्वादेरिति सः, परिपूर्वकात् सिव्धातोर्लङ्, तिप्, इतश्च, श्यन्, हलि चेति दीर्घः, अडागमः, परि अ सीव्यत् इति, अड्व्यवायेऽपि सिवादीनामित्यनेन सस्य षत्वं, यण् । षत्वाभावे **पर्यसीव्यदिति** । लटि **परिषीव्यति इति** बोध्यम्, तत्र परिनिविभ्यः इति षत्वं भवति नित्यम् । **नृत्यतीति**-नृत्धातोर्लट्, तिप्, श्यन्, श्यनोऽपित्सार्वधातुकत्वात् ङित्त्वं, ङिच्चेति गुणनिषेधः । **ननर्तेति**-लिटि तिपो णल्, द्वित्वे उरदिति अभ्यासऋकारस्यात्वे रपरत्वे हलादिशेषः, लघूपधगुणः । **नर्तिष्यतीति**—लृटि नृत् स्यति इति जाते सेऽसेचिकृतचृतेत्यादिना इट्, गुणः, षत्वम् । इटोऽभावे **नर्त्स्यति इति** ।

हिन्दी

७२४. कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते दिवादि गण पठित धातुओं से श्यन् होता है ।

७२५. परि नि और वि उपसर्ग से परे सिवादि धातुओं के स को ष होता है, विकल्प से।

७२६. कृत चृत छृद तृद और नृत धातु से परे सिच्भिन्न सादि आर्धधातुक को इट् हो विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७२७. वा जॄभ्रमुत्रसाम् ६।४।१२४।। एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यास लोपौ वा । त्रेसतुः, तत्रसतुः । त्रेसिथ, तत्रसिथ । त्रसिता । शो तनूकरणे । ७२८. ओतः श्यनि ७।३।७१।। लोपः श्यनि । श्यति । श्यतः । श्यन्ति । शशौ। शशतुः । शशुः । शाता । शास्यति । अशात् । अशाताम् । इट्सकौ । अशासीत्। अशासिष्टाम् । छो छेदने । छ्यति । षो अन्तकर्मणि । स्यति । ससौ । सेयात्। दो अवखण्डने । द्यति । ददौ । देयात् । अदात् । व्यध ताडने । विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विव्यद्ध, विव्यधिथ। व्यद्धा । व्यत्स्यति । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । अव्याद्धाम् । पुष पुष्टौ । पुष्यति। पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टा । पोक्ष्यति । पुषादित्यङ् आपरस्मैपदात् । अपुषत् । शुष शोषणे । शुष्यति। शुशोष । अशुषत् ।

मध्यमनोरमा

श्यन्वेति—श्यनोऽभावे कर्त्तरि शप् । **त्रस्यतीति**—श्यन्पक्षे, त्रसतीति शप् पक्षे । **तत्रासेति**—द्वित्वं हलादिशेषः, अत उपधाया इति वृद्धिः । **श्यतीति**—ओतः श्यनि इति ओकारलोपः । **शशाविति**-आदेच उपदेशे इत्योकारस्यात्वम्, आत औ णलः, वृद्धिरेचि, अभ्यासस्य[1] ह्रस्वः। **अशासीदिति**—विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः इति सिचो लुक्, तदभावे यमरमेति इट्सकौ, अशासी-दिति । **छ्यति इति**—ओतः श्यनि इत्योकारलोपः । **स्यतीति-** धात्वादेरिति सः, श्यन्, ओलोपः। **ससाविति**—द्वित्वे ह्रस्वे आत औ णलः, वृद्धिः । **सेयादिति**-आशीर्लिङि एर्लिङीति एत्वम् । **द्यतीति**—ओलोपः । **ददाविति**—णल्, औ, वृद्धिः । **देयादिति**– आशीर्लिङि एर्लिङीत्येत्वम्। **अदादिति**—गातिस्थेति सिचो लुक् । **विध्यतीति**—व्यध्धातोः श्यन्, सार्वधातुकमपिदिति श्यनो ङित्त्वात् तस्मिन् परतो व्यधो यकारस्य ग्रहिज्येति इकारः, सम्प्रसारणाच्चेति इकाराकार-योरिकारः । **विव्याधेति**—लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वम्, लिट्यभ्यासस्येति सम्प्रसारणं, सम्प्र-साणाच्च, ततो हलादिः शेषः इति धकारलोपः, अत उपधायाः । **विविधतुरिति**—अतुसः असंयोगाल्लिट् इति कित्त्वाद् ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं, ततो द्वित्वं, हलादिशेषः । **विव्यद्ध, विव्यधिथेति**—भारद्वाजमते इट्, अन्यमते नेट्, तत्र इडभावपक्षे झषस्तथोरिति थस्य धः, झलां जश् झशि इति धस्य दः, [1]लिट्यभ्यासस्येति अभ्यासस्य

मध्यमनोरमापूरणी

वा जॄभ्रमुत्रसामिति—अत्र अत एकहल्मध्ये इत्यतो लिटि इति थलि च सेटि इति चानुवर्तते, पुनः घ्वसोरेद्धाविति, 'एत्' इति, गमहनेत्यतः किति इति चानुवर्तेते, तदाह एषामिति । **त्रेसतुरिति**—लिटि तसोऽतुस्, द्वित्वादि, तत्रस् अतुस् इति, एत्वाभ्यासलोपौ ।

हिन्दी

७२७. जॄ भ्रम् और त्रस् धातु को एत्व और अभ्यास लोप हो कित् लिट् व सेट् थल् परे रहते ।

७२८. श्यन् के परे धातु के ओ का लोप होता है ।

---

1. अभ्यासह्रस्वः द्वित्वादितः परं बोध्यः । वृद्धितः पूर्वमेव ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

णँश अदर्शने । नश्यति । ननाश । नेशतुः ।

७२९. रधादिभ्यश्च ७।२।४५।। रध् नश् तृप् दृप् द्रुह् मुह् ष्णिह् एभ्यो वलाद्यार्धधातुकस्य वेट् । नेशिथ ।

७३०. मस्जिनशोर्झलि ७।१।६०।। नुम् स्यात् । ननंष्ठ । नेशिव, नेश्व । नशिता, नंष्टा । नशिष्यति, नङ्क्ष्यति । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । प्रणश्यति ।

७३१. नशेः षान्तस्य ८।४।३६।। णत्वं न । प्रनंष्टा । अन्तग्रहणं भूतपूर्वप्रतिपत्त्यर्थम् । प्रणङ्क्ष्यति ।

मध्यमनोरमा

सम्प्रसारणम् । **सिप्स्थानिकस्य** थलः पित्त्वेनाङित्त्वात् ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं न भवति । **व्यत्स्यति इति**—खरि चेति चर्त्वम् । **विध्येदिति**—विधिलिङ्, श्यन्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, अतो येयः इति यासुटः इय्, यलोपः, इतश्चेतीकारलोपः । **विध्यादित्याशीर्लिङ्**, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्। **अव्यात्सीदिति**—लुङ्, सिच्, वदव्रजेति वृद्धिः । **अव्याद्धाम् इति**—तसस्तां, सिच्, झलो झलीति सलोपः, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वं, वदव्रजेति वृद्धिः । **पुपोषिथेति** क्रादिनियमान्नित्यमिट्, लघूपधगुणः । **पोष्टेति**—ष्टुत्वं, गुणः। **पोक्ष्यतीति**— षढोरिति कः, आदेशेति सस्य षः, गुणः । **आपरस्मैपदादिति**—परस्मैपदपर्यन्तं पुषादिगण इति । **अपुषदिति-** अङो ङित्त्वाल्लघूपधगुणो न । **अशुषदिति**—पुषादीति च्लेरङ् । **नश्यतीति**—णो नः, तिप्, श्यन्। **नेशतुरिति**—अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **नेशिथेति**—इट् पक्षे थलि च सेटीति एत्वाभ्यासलोपौ । इडभावे **ननंष्ठेति**–नुमागमः, व्रश्चेति षः, ष्टुत्वम् । **नेशिवेति**–रधादिभ्यश्चेति पक्षे इट्, अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । इडभावे **नेश्वेति** । **नशितेति**—रधादिभ्यश्चेतीट्पक्षे, तदभावे **नंष्टेति- मस्जिनशोरिति नुम् । व्रश्चेति षः ष्टुत्वम् । नशिष्यतीति**—इट् पक्षे, **नंक्ष्यति इति-** इटोऽभावे नुम्, षत्वं, षढोरिति कः, षत्वम् । **नश्येदिति**—विधिलिङ्, श्यन्, अतो येयः । **नश्यादिति**—आशीर्लिङ् ।**अनशदिति**—पुषादीत्यङ् । **प्रणश्यतीति**—णोपदेशत्वादुपसर्गादसमासेऽपीति णत्वम् । **प्रनंष्टेति**—लुटि तासि इडभावपक्षे व्रश्चेति षत्वे सति षान्तत्वान्न णत्वम् । **अन्तग्रहणमिति**—नशेः षस्येत्युक्तावपि येन विधिरिति षान्तलाभे अन्तग्रहणमतिरिच्यमानं पूर्वं षान्तस्य सम्प्रति षान्तत्वाऽभावेऽपि णत्वनिषेधार्थमित्यर्थः । तेन **प्रनंक्ष्यतीत्यत्र** व्रश्चेति षत्वे षढोः कः सीति ककारे जाते सम्प्रति षान्तत्वाऽभावेऽपि कादेशात् पूर्वं षान्तत्वमस्यास्ति, इति एतस्यापि णत्वनिषेधो भवत्येव ।

मध्यमनोरमापूरणी

रधादिभ्यश्चेति—आर्धधातुकस्येड्वलादेः इति सूत्रमत्रानुवर्तते, स्वरतिसूतीत्यतो 'वा' इति चानुवर्तते, तदाह- एभ्यो वलाद्यार्धधातुकेति ।

हिन्दी

७२९. रध् नश् तृप् दृप् द्रुह् मुह् और ष्णिह् धातु से परे वलादि आर्धधातुक को इट् होता है विकल्प से ।

७३०. मस्ज् और नश् धातु को नुम् होता है झलादि प्रत्यय परे रहते ।

७३१. षान्त नश् धातु के न को णत्व नहीं होता है ।

---

2. सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं वलवदिति नियमाद् द्वित्वेऽभ्यासत्वे सम्प्रसारणं कार्यम्, ततः झषस्तथोरित्यादिकार्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

रध हिंसासंराध्योः । ७३२. रधिजभोरचि ७।१।६१॥ नुम् । ररन्ध । ररन्धतुः। ररन्धिथ, ररद्ध । ररन्धिव, रेद्ध्व ।

७३३. नेट्यलिटि रधेः ७।१।६२॥ लिड्वर्जे इटि रधेर्नुम्न । रधिता । रद्धा । रधिष्यति, रत्स्यति । अङि नुम्, अनिदितामिति नलोपः । अरधत् । तृप् प्रीणने। तृप्यति । तत्रप्थ, ततर्प्थ, ततर्पिथ । तर्पिता, तर्प्ता, त्रप्ता । वा. स्पृशमृशकृष तृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः । अतर्पीत्, अत्राप्सीत्, अतार्प्सीत्, अतृपत् । दृप हर्षमोहनयोः । दृप्यति । रधादित्वादिमौ वेट्कावमर्थमनुदात्तता । द्रुह जिघांसायाम् । द्रुह्यति । वा द्रुहेति वा घः । पक्षे ढः । दुद्रोग्ध, दुद्रोढ, दुद्रोहिथ। द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा । अद्रुहत् । मुह वैचित्त्ये । वैचित्त्यमविवेकः । मुह्यति। मुमोहिथ, मुमोग्ध, मुमोढ । मोहिता, मोग्धा, मोढा । मोहिष्यति, मोक्ष्यति । अमुहत् ।

मध्यमनोरमा

ररन्धिथेति—रधादिभ्यश्चेतीट्पक्षे रधिजभोरिति नुमागमे धान्तसंयुक्तहल्मध्यस्थत्वात् थलि च सेटि इति न प्रवर्तते । इडभावे **ररद्धेति** । झषस्तथोरिति धः, जश्त्वं, थलः सेट्त्वाभावादत्रापि थलि च सेटीति न प्रवर्तते । **ररन्धिवेति**—इट्पक्षे नुम् । **रेद्ध्व इति**—इडभावपक्षे एकहल्मध्यस्थत्वादत एकेत्येत्वादि । **अरधत् इति**—पुषादीत्यङ्, रधिजभोरिति नुम्, नलोपः। **तत्रप्थेति**—रधादिभ्यश्चेति इडभावे अनुदात्तस्य चर्दुपधस्येति अमागमः, ऋकारस्य यण् । इट् पक्षे **ततर्पिथेति,** इडभावे अमागमाभावपक्षे **ततर्प्थेति** । लघूपधगुणः । एवम् इट्पक्षे **तर्पितेति,** इडभावे अमागमाभावे **तर्प्तेति** । अमागमे **त्रप्तेति** । **अतर्पीदिति**-लुङ्, तिप्, च्लिः, तस्य स्पृशमृशेति पक्षे सिच्, रधादिभ्यश्चेति सिचः पक्षे इट्, इतश्चेतीकार लोपः, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटि, सवर्णदीर्घः, वदव्रजेति प्राप्ताया वृद्धेर्नेटीति निषेधाल्लघूपधगुणः । **अतार्प्सीदिति**—इडभावे वदव्रजेति ऋकारस्यार् । **अत्राप्सीत्**—अनुदात्तस्येति अमागमपक्षे ऋकारस्य यणि वदव्रजेति अकारस्य वृद्धिः । सिचोऽभावे पुषादीत्यङ्, ङित्वान्न गुणः । **अमर्थमनुदात्ततेति**—अनुदात्तेषु तृपदृप्यती पठितौ, तत्र एकाच उपदेशेऽनुदात्तादिति इण्निषेधार्थं न तयोः पाठः, रधादिभ्यश्चेति इण्निषेधं बाधित्वा विकल्पेन इड्विधानात्, एवञ्च अनुदात्तस्य चर्दुपधस्येति अमागमार्थोऽनुदात्तपाठ इत्यर्थः । **दुद्रोग्धेति**- थल्, द्वित्वं, हलादिः शेषः, इडभावे हस्य वा द्रुहेति पक्षे घत्वं, झषस्तथोरिति थस्य धः, गुणः, जश्त्वम् । घत्वाभावे **दुद्रोढेति**- होढः, झष इति धः, ष्टुत्वं, ढो ढे लोपः , लघूपधगुणः । इट्पक्षे दुद्रोहिथेति । एवम् इट्पक्षे **द्रोहितेति,** इडभावे घत्वे द्रोग्धेति, ढत्वपक्षे **द्रोढेति** ।

मध्यमनोरमापूरणी

द्रोहितेति—द्रुहः लुट् तिप्, तास्, रधादिभ्यश्चेतीट्, तिपः डादेशः, टेर्लोपः । पुगन्तेति गुणः। इडभावे द्रोह् ता इति जाते वा द्रुहेति हस्य घः, झषस्तथोरिति तस्य धः, घस्य जश्त्वेन गः। गत्वाभावे द्रोह् ता इति जाते हो ढः इति हस्य ढः, झषस्तथोरिति तस्य धः, ष्टुत्वम्, द्रोढ् ढा इति, ढो ढे लोपः । **अद्रुहत् इति**—लुङि तिपि इतश्च, अट्, च्लिः, पुषादीति च्लेरङ् ।

हिन्दी

७३२. रध् और जभ् धातु को नुम् होता है अजादि प्रत्यय परे ।

७३३. लिट्भिन्न इट् परे रहने पर रध धातु को नुम् नहीं होता है ।

वा. स्पृशमृश् कृष् तृप् और दृप् धातु से परे च्लि को विकल्प से सिच् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ष्णुह् उद्गिरणे । स्नुह्यति । सुष्णोह । सुष्णोहिथ, सुष्णोग्ध, सुष्णोढ। सुष्णुहिव, सुष्णुह्व । स्नोहिता, स्नोग्धा, स्नोढा । स्नोहिष्यति । स्नोक्ष्यति । अष्णुहत्। ष्णिह प्रीतौ । स्निह्यति । सिष्णेह । स्नेहिता, स्नेग्धा, स्नेढा । अस्निहत्। दुष् वैकृत्ये । दुष्यति । श्लिष आलिङ्गने । श्लिष्यति ।

७३४. श्लिष आलिङ्गने ३।१।४६।। च्लेः क्सः । आश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः । आलिङ्गने किम्- समश्लिषज्जतुकाष्ठम् । प्रत्यासत्ताविह श्लिषिः । क्रुध क्रोधे। क्रुध्यति । क्षुध् बुभुक्षायाम् । क्षुध्यति । शुध् शौचे । शुध्यति । षिधु संराद्धौ। सिद्ध्यति । शमु उपशमे ।

७३५. शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ७।३।७४।। शम् तम् दम् श्रम् भ्रम् क्षम् क्लम्मदामचो दीर्घः श्यनि । प्रणिशाम्यति । शेमतुः । शेमुः । शेमिथ । शमिता। अशमत् ।

मध्यमनोरमा

एवम् इट्पक्षे **मोहितेति**, तदभावे घत्वढत्वाभ्यां मोग्धा, मोढेति । **मोहिष्यति**—इट्पक्षे, तदभावे घत्वढत्वयोस्तुल्यं **मोक्ष्यति इति** । घत्वपक्षे खरि चेति घस्य कः, ढत्वपक्षे षढोरिति कः, षत्वं, कषसंयोगे क्षः । **अमुहदिति**—पुषादीति च्लेरङ् । **स्नुह्यतीति**—धात्वादेरिति सः,षकारनिमित्तकणत्वनिवृत्तिः । **सुष्णोहेति**— अभ्यासोकारात् परस्यादेशप्रत्यययोरिति षत्वं, णत्वं, पुगन्तेति गुणः । इटि **सुष्णोहिथेति**, तदभावे **सुष्णोग्धेति**—वा द्रुहेति घः, जश्त्वं, घत्वाभावे **सुष्णोढेति**—होढः, झषस्तथोरिति धः, ष्टुत्वं, ढो ढे लोपः, गुणः । **स्नेग्धेति**—वा द्रुहेति घः, घत्वाभावे ढः । **अस्निहत् इति**- च्लेरङ् । **श्लिष आलिङ्गने**—आलिङ्गनेऽर्थे श्लिष्धातोः च्लेः क्सादेशः स्यादिति सूत्रार्थः । **आश्लिक्षदिति**- च्लेः क्सः, षढोरिति षस्य कः, षत्वम्, इतश्च अडागमः । आङ्पूर्वः अत्र श्लिषिरालिङ्गनार्थः । अनालिङ्गने तु **समश्लिषदिति**-संपूर्वकात् श्लिषः पुषादित्वाच्च्लेरङ्, प्राणिकर्तृकः संयोगविशेषः आलिङ्गनम् । अत्र हि जतुकर्तृकः काष्ठसंयोगो नालिङ्गनमिति भावः । **प्रत्यासत्ताविति**—संयोगमात्रे न तु प्राणिकर्तृकसंयोगविशेषः इत्यर्थः । **क्रुद्ध्यतीति**- श्यनः सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वा ल्लघूपधगुणो न, अनचि चेति धकारस्य द्वित्वं, झलां जश् झशीति धस्य दः । एवं क्षुध्यतीत्यादि । शमित्यादिमदामित्यन्तानामचो दीर्घो भवतीति शेषः। **प्रणिशाम्यतीति**—श्यन्, शमामष्टानामिति अचो दीर्घः, नेर्गदिति णत्वम् । **शेमतुरिति**—अत एकेति एत्वादि । **शेमिथेति**—आर्धधातुकस्येतीट् । **अशमदिति**—पुषादित्वादङ् ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्नोक्ष्यति इति—इटोऽभावे स्नोह् स्यति इति जाते वा द्रुहेति हस्य घः, घस्य चर्त्वे कः, षत्वम्। हस्य ढपक्षे षढोरिति ढस्य कः, षत्वं, कषयोः संयोगे क्षः ।

हिन्दी

६३४. आलिङ्गन अर्थ में श्लिष् से परे च्लि को क्स होता है ।

७३५. शम् तम् दम् श्रम् भ्रम् क्षम् क्लम् और मद् धातु के अच् को दीर्घ होता है, श्यन् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

दमु उपशमे । दाम्यति । दमिता । अदमत् । श्रमु तपसि खेदे च। श्राम्यति । अश्रमत् । भ्रमु अनवस्थाने । वा भ्राशेति श्यन् वा । भ्राम्यति । भ्रमति। भ्रेमतुः, बभ्रमतुः । अभ्रमत् । क्षमू सहने । क्षाम्यति । चक्षमिथ । चक्षन्थ । चक्षमिव, चक्षण्व । क्षमिता, क्षन्ता। अयं न षित् । भ्वादिस्तु षित् । अषितः क्षाम्यतेः क्षान्तिः, क्षमूषः क्षमतेः क्षमा। क्लमु कान्तौ । ष्ठिवुक्लमुचमामिति दीर्घः । क्लाम्यति, क्लामति । क्लमिता। अक्लमत् । मदी हर्षे । माद्यति । अमदत् । असु क्षेपणे । अस्यति । आस । असिता। अस्यतीत्यङ् ।

७३६. अस्यतेस्थुक् ७।४।१७।। अङि । आस्थत् ।

७३७. यसोऽनुपसर्गात् ३।१।७१।।

७३८. संयसश्च ३।१।७२।। श्यन्वा । यस्यति । यसति । संयस्यति, संयसति। अनुपसर्गात् किम्–प्रयस्यति । जसु–मोक्षणे । जस्यति ।

मध्यमनोरमा

चक्षमिथेति– ऊदित्त्वात्स्वरतीति इड्विकल्पः, द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः । **चक्षन्थेति**— इडभावे नश्चापदान्तेति नस्यानुस्वारः । अनुस्वारस्य ययीति परसवर्णः । **चक्षमिवेति**—इट्पक्षे। तदभावे **चक्षण्वेति**—म्वोश्चेति मस्य नः, तस्य णत्वम् । **अषित् इति**—दैवादिकस्य क्षम्धातोः अषितः भावे स्त्रियां क्तिन् इति क्तिन्, क्षान्तिरिति। भौवादिकस्य क्षमूषः षित्त्वात् षिद्भिदादिभ्योऽङ् इत्यङ्, तेन क्षमेति रूपमित्यर्थः । **आस्थदिति**—पुषादित्वादङ्, असस्थुगागमः, आट्, वृद्धिः । **प्रयस्यतीति**—अनुपसर्गात् संपूर्वकाच्च विकल्पेन श्यन् । प्रादुपसर्गात्तु नित्यमेव श्यन् ।

मध्यमनोरमापूरणी

दाम्यतीति—दम्धातोर्लट्, तिप्, श्यन्, शमामष्टानामिति उपधादीर्घः । एवं श्राम्यतीति । **भ्राम्यतीति**—वा भ्राशभ्लाशेति श्यन् विकल्पः, शमामिति दीर्घः । पक्षे **भ्रमतीति**—लट्, तिप्, शप् । **भ्रेमतुरिति**—लिट्, तसोऽतुस्, द्वित्वादि, बभ्रम् अतुस् इति जाते वा जॄभ्रमुत्रसामिति एत्वाभ्यासलोपौ । विकल्पे **बभ्रमतुरिति** । **क्लाम्यतीति**—क्लम्धातोर्लट्, तिप्, वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमु इति श्यन् विकल्पः, ष्ठिवुक्लमुचमां शितीति दीर्घः । पक्षे शपि दीर्घे क्लामतीति । **अङि इति**—ऋदृशोऽङि गुण इत्यतः अङि इति अनुवर्तते । तथा च अस्धातोस्थुगागमः, अङि परे इत्यर्थः। **आस्थदिति**—अस्धातोर्लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, पुषादिद्युतादीति च्लेरङि अस्यतेस्थुक इति थुक्, आट्, वृद्धिः । **श्यन्वेति**—उभयोः सूत्रयोः दिवादिभ्यः श्यन् इति सूत्रात् श्यन् इति वा भ्राशेत्यत वा इति चानुवर्तेते । तथा च सूत्रार्थः–अनुपसर्गात् यसः वा श्यन्, सम्पूर्वकाच्च वा श्यन् इति । सोपसर्गात्तु नित्यमेव श्यनिति सिद्धः ।

हिन्दी

७३६. अङ् परे रहते अस् धातु को थुक् आगम होता है ।
७३७. उपसर्गरहित यस् धातु से श्यन् होता है, विकल्प से ।
७३८. सम् पूर्वक यस् धातु से विकल्प से श्यन् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तसु उपक्षये । दसु च । तस्यति । अतसत् । दस्यति । अदसत् । वसु स्तम्भे वस्यति । न शसददेति निषेधः । ववास । ववसतुः । बशादिरिति मते तु बेसतुः। बेसुः । व्युष विभागे । व्युष्यति । बिस प्रेरणे । बिस्यति । अबिसत् । बुस उत्सर्गे। बुस्यति । मुस खण्डने । मुस्यति । मसी परिणामे । परिणामो विकारः । लुठ विलोडने। लुठ्यति । उच समवाये । उच्यति । उवोच । ऊचतुः । ऊचुः । भृशु भ्रंशु अधःपतने । भृश्यति । बभर्श । अभृशत् । अनिदितामिति नलोपः। भ्रश्यति। बभ्रंश । अभ्रशत् । कृश तनूकरणे । कृश्यति । ञितृषा पिपासायाम्। तृष्यति । हृष तुष्टौ । श्यन्नङौ भौवादिकाद् विशेषः । हृष्यति । अहृषत् । रुष रिष हिंसायाम्। तीषेति वेट् । रोषिता, रोष्टा । रेषिता, रेष्टा । कुप क्रोधे । कुप्यति। गुप व्याकुलत्वे । लुभ् गार्ध्ये । गार्ध्यमाकाङ्क्षा । लोभिता, लोब्धा । लोभिष्यति। भ्वादेरवृत्करणाल्लोभतीत्यप्याहुः । क्षुभ संचलने । क्षुभ्यति । क्लिदू आर्द्रीभावे। क्लिद्यति । चिक्लेदिथ, चिक्लेत्थ । चिक्लिदिव, चिक्लिद्व । चिक्लिदिम, चिक्लिद्म । ञिमिदा स्नेहने ।

मध्यमनोरमा

बशादिरिति मते त्विति—ववसतुरित्यत्र न शसददवादीति सूत्रेण एत्वाभ्यासलोपौ न, तत्र दन्तोष्ठ्यवकारग्रहणात् । अस्य च दन्तोष्ठ्यवकारादित्वात् । केषाञ्चिन्मते तु अयं बशादिः, पवर्गतृतीयादिस्तन्मते एत्वादिकं भवत्येव । बेसतुरित्यादि । **उवोचेति**—द्वित्वे हलादिशेषे अभ्यासस्याऽसवर्णे इत्युवङ् । **ऊचतुरित्यादि**—द्वित्वादिना उ उच् इति जाते सवर्ण-परत्वादुवङोऽभावे सवर्णदीर्घः । **भृश्यतीति**—सार्वधातुकमपिदिति श्यनो ङित्त्वान्न गुणः । **बभर्शेति**—लघूपधगुणः । **भ्रश्यतीति**—अनिदितामिति नलोपः । **बभ्रंशेति**—लिटः संयोगात् परत्वादसंयोगाल्लिट् इति कित्त्वाभावात् अनिदितामिति नलोपो न । **अभ्रशत् इति**—पुषादित्वादङि नलोपः । **तीषेति वेट्**- रोषिता, रोष्टा । तीषसहलुभरुषरिषः इति सूत्रेण वा इट् इत्यर्थः । **लोभितेति**—तीषेति वेट्, इडभावे **लोब्धेति**- झषस्तथोरिति धः, झलां जश् झशीति भस्य बः । **भ्वादेरवृत्करणादिति**—सर्वत्र गणसमाप्तौ वृत् इति पदमस्ति, वृत् इत्यस्य गणे वृत्तः समाप्तः इत्यर्थः । भ्वादिसमाप्तौ वृत्करणं नास्ति, तेन भ्वादेराकृतिगणत्वम्। ततश्च भ्वादौ संगृहीतस्य लुभ्धातोर्दैवादिकत्वाभावेन श्यनोऽभावात् कर्त्तरि शबिति धातुसामान्यविहिते शपि लोभतीत्यपि रूपं भवतीति केचिद् वदन्तीत्यर्थः । **चिक्लेदिथेति**—ऊदित्त्वात् स्वरतीति वेट्, इडभावे चिक्लेत्थेति ।

मध्यमनोरमापूरणी

बेसतुरिति—बसो लिटि तिपि णल्, द्वित्वादि, बबस् अतुस् इति, वकारादित्वाभावात् न शसददवादिगुणानामिति एत्वाभ्यासलोपयोरनिषेधात् अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **अहृषत् इति**—लुङि तिप्, इतश्च, च्लिः, पुषादित्वाच्च्लेरङ्, अट् । अङो ङित्त्वान्न गुणः । **रेषितेति**-लुटि तीषसहेति वा इट्, इटोऽभावे ष्टुत्वम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७३९. मिदेर्गुणः ७।३।८२॥ मिदेरिको गुण इत्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये । मेद्यति। अमिदत् । ञिक्ष्विदा स्नेहमोचनयोः । क्ष्विद्यति । ऋधु वृद्धौ । ऋध्यति । आनर्ध। गृधु अभिकाङ्क्षायाम् । गृध्यति । अगृधत् । इति परस्मैपदिनः । षूङ् प्राणिप्रसवे । सूयते । सुषुवे । क्रादिनियमान्नित्यमिट् । सुषुविषे । सुषुविवहे। सोता, सविता । दूङ् परितापे । दीङ् क्षये ।

७४०. दीङो युडचि क्ङिति ६।४।६३॥ दीङः परस्याजादेः क्ङित आर्धधातुकस्य युट् । वा. वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ । दिदीये ।

७४१. मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ६।१।५०॥ एषामात्वं ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते । दाता । दास्यते । वा. स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः । अदास्त। डीङ् विहायसा गतौ । डीयते । पीङ् पाने । पीयते । माङ् माने । मायते । ममे । माता ।

मध्यमनोरमा

मेद्यतीति—श्यनो ङित्त्वादत्र लघूपधगुणनिषेधे मिदेरिति गुणः । **आनर्द्धेति**—द्वित्वे उरत्, हलादिशेषः, अत आदेः, तस्मान्नुड्द्विहलः, पुगन्तेति गुणः, अचो रहाभ्यामिति धकारस्य पक्षे द्वित्वं, झलां जश् झशीति पूर्वधकारस्य दः । **अगृधदिति-** पुषादि इति च्लेरङ् । इति परस्मैपदम् । पुषादेरयमवधिः। **सूयते इति**—धात्वादेः षः सः, ङित्त्वादात्मनेपदं, श्यन् । **सोता, सवितेति**—स्वरतीति वेट्। **दिदीये इति**—द्वित्वे ह्रस्वे युडागमे च कृते असिद्धवदत्राभादिति सूत्रेण उवङि यणि च आभीये कर्त्तव्ये दीङो युडचीति कृतस्य युटः आभीयस्यासिद्धत्वं वुग्युटाविति वार्त्तिकेन निषिध्यते, तेन अजादिप्रत्ययपरत्वाभावादेरनेकाच इति यण् न ।

मध्यमनोरमापूरणी

मिदेर्गुण इति—अत्र ष्ठिवुक्लमुचमां शिति इत्यत शिति इत्यनुवर्तते, श् चासौ इत् चेति कर्मधारये शित् इति, सप्तम्येकवचनं, तेन प्रत्ययो विशेष्यते, तदादिविधिश्च भवति । गुण शब्दात् इक इत्युपतिष्ठते, तदाह–मिदेरिको गुणः स्यात् इत्संज्ञक शकारादौ प्रत्यये परे इति। **अमिददिति-** लुङि तिपि इतश्चेतीकारलोपः, पुषादिना च्लेरङ्, अट्, ङित्त्वान्न गुणः । **सवितेति**—लुट्, तिप्, तास्, स्वरतिसूतीति इट्, गुणः, अव्, सवितास् ति इति, तिपः डादेशः, टेर्लोपः । इडभावे **सोतेति** । **अदास्तेति-** दीङो लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, सिच्, मीनातिमिनोतीति ईकारस्यात्वे अडागमे अदा सृत् इति, घुत्त्वात् स्थाघ्वोरिच्चेति आकारस्य इत्वे प्राप्ते स्थाघ्वोरित्त्वे दीङः प्रतिषेधः इति इत्त्वनिषेधः । **ममे इति**—लिट्, तः, एश्, द्वित्वेऽभ्यासह्रस्वे आतो लोप इति आलोपः ।

हिन्दी

७३९. मिद्धातु के इक् को गुण होता है, इत्संज्ञक शकारादिप्रत्यय परे रहते ।

७४०. दीङ् से परे अजादि कित् ङित् आर्धधातुक को युड् आगम होता है ।

वा. उवङ् और यण् कर्त्तव्य में वुक् और युट् सिद्ध ही रहता हे ।

७४१. मी मि और दीङ् धातु को आत्त्व होता है ल्यप् परे व एज् निमित्त शित्भिन्न प्रत्यय परे रहते । **वार्तिक–** स्था और घुसंज्ञक को जो इत्व होता है **वह दीङ् को नहीं होता है।**

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जनी प्रादुर्भावे । ७४२. ज्ञाजनोर्जा ७।३।७९।। शिति । जायते । गमहनजनेति उपधालोपः । स्तोः श्चुना श्चुः । जज्ञे । जनिता । जनिष्यते ।
७४३. दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१।। एभ्यश्च्लेश्चिण् वा एकवचने तशब्दे परे ।
७४४. चिणो लुक् ६।४।१०४।। चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् ।
७४५. जनिवध्योश्च ७।३।३५।। न वृद्धिश्चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि । अजनिष्ट । दीपी । दीप्तौ । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि, अदीपिष्ट ।
पद गतौ । पद्यते । पेदे । पत्ता । पद्येत । पत्सीष्ट ।

मध्यमनोरमा

चादिति—ल्यपि चेति चकारादित्यर्थः । **एज् निमित्ते इति**—गुणवृद्धिनिमित्ते इत्यर्थः । **दातेति**-मीनातीति ईकारस्यात्वम् । **अदास्तेति**- लुङ्, तः, सिच्, दीङः आत्वम्, अडागमः । **जज्ञे इति**—जन् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे जजन् इति जाते गमहनेत्युपधालोपे स्तोः श्चुना श्चुरिति नकारस्य ञकारे जाते जज्ञेर्ज्ञः । **जनितेति**– आर्धधातुकस्येतीट् । **अजनीति**—च्लेश्चिण्, तकारस्य लुक्, अत उपधाया इति वृद्धिः प्राप्ता, जनिवध्योश्चेति निषेधः । चिणो वैकल्पिकत्वात्तदभावे **अजनिष्टेति**। **अदीपि इति**—दीपजनेति च्लेश्चिण्, तकारलोपः । **पेदे इति**-अत एकेति एत्वाभ्यास लोपौ। **पद्येतेति**—विधिलिङ्, तः, सीयुट्, श्यन्, सलोपः, यलोपः, आद्गुणः ।**पत्सीष्टेति**— आशीर्लिङ् । **चिण् ते पदः**-पदधातोश्च्लेश्चिण् तकारे परे इति सूत्रार्थः।

मध्यमनोरमापूरणी

जायते इति—जन्- धातोर्लट्, तः, दिवादिभ्यः श्यन्, शकारनकारौ इतौ । ज्ञाजनोर्जा इति जादेशः, टेरेत्वम् । **जज्ञे इति**—लिटस्तः, लिटस्तझयोरेशिरेच् इति तस्य एश्, द्वित्वं हलादिशेषः, असंयोगाल्लिट् किदिति कित्त्वात् गमहनेत्युपधाकारलोपः, नस्य श्चुत्वम्, **जनिवध्योरिति**—अत उपधाया इत्यत उपधाया इत्यस्य मृजेर्वृद्धिरित्यत वृद्धिरित्यस्य नोदात्तोपदेशेत्यत न इत्यस्य, आतो युगित्यतः चिण्कृतोरित्यस्य अचो ञ्णितीत्यत ञ्णितीत्यस्य चानुवृत्तय आगच्छन्ति । **तदाह–न वृद्धिरित्यादि । अजनि इति**—लुङ्, तः, अट्, च्लिः, दीपजनेति च्लेश्चिण्, अत उपधाया इति प्राप्तवृद्धेर्जनिवध्योश्चेति निषेधः, चिणो लुगिति तस्य लुक् ।

हिन्दी

७४२. शित् प्रत्यय परे ज्ञा और जन् धातु को 'जा' आदेश होता है ।
७४३. दीप जन बुध पूरि ताय् व प्यायी धातुओं से परे च्लि को चिण् होता है, एकवचन त-शब्द परे ।
७४४. चिण् से परे त शब्द का लुक् होता है ।
७४५. जन् व वध् धातु की उपधा को चिण् व ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे वृद्धि नहीं होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७४६. चिण्ते पदः ३।१।६०॥ अपादि । अपत्साताम् । अपत्सत । विद सत्तायाम्। विद्यते । वेत्ता । बुध अवगमने । बुध्यते । बोद्धा । एकाचो बशो भष् झषन्तस्येति भष्भावः । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अबोधि, अबुद्ध । अभुत्साताम् । युध सम्प्रहारे। युध्यते । युयुधे । योद्धा । अयुद्ध । सृज विसर्गे । सृज्यते । ससृजे । ससृजिषे। सृजिदृशोर्झल्यमकितीत्यमागमः । स्रष्टा । स्रक्ष्यते । सृक्षीष्ट । लिङ्सिचाविति कित्त्वम् । असृष्ट । असृक्षाताम् । मीङ् हिंसायाम् । मीयते । रीङ्श्रवणे । रीयते। लीङ् श्लेषणे । लीयते ।

७४७. विभाषा लीयतेः ६।१।५१॥ लीयतेरिति यकारनिर्देशो न तु श्यना । लीलीङोरात्वं स्यादेज्विषये ल्यपि च । लेता, लाता । लेष्यते, लास्यते । एज्विषये किम् ? लीयते । लिल्ये । व्रीङ् वृणोत्यर्थे । व्रीयते । विव्रिये । इत्यात्मनेपदिनः।

मध्यमनोरमा

चिण्ते पदः—पदधातोश्च्लेश्चिण् तकारे परे इति सूत्रार्थः । **अपादि इति**—च्लेश्चिण्, अत उपधाया इति वृद्धिः । चिणः परस्य तस्य लोपः । **अपत्सातामिति**—तकारपरत्वाभावात् च्लेः सिच् । **अपत्सतेति**—आत्मनेपदेष्वनतः इति झस्यात् । **वेत्तेति**—खरि चेति दस्य तः, गुणः। **बोद्धेति**—झषस्तथोरिति धः, झलामिति धस्य दः । **भोत्स्यते इति**—एकाचो बश इति बकारस्य भकारः, गुणः, चर्त्वम् । **भुत्सीष्टेति**—आशीर्लिङि सीयुट्, सुट्, भष्भावः, यलोपषत्वष्टुत्वानि । **अबोधीति**—दीपजनेति पक्षे चिण् । चिणोऽभावे च्लेः सिच्, झलो झलीति सलोपः, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वं, लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विति सिचः कित्त्वान्न गुणः। अभुत्सातामित्यत्र भष्भावः । **अयुद्धेति**—लुङ्, च्लिः, सिच्, झलो झलीति सलोपः । **ससृजिषे इति**—क्रादिनियमादिट् । **स्रष्टेति**—सृजिदृशोर्झल्यमकितीत्यमागमः, ऋकारस्य यण् । **सृक्षीष्टेति**—आशीर्लिङ्, लिङ्सिचाविति लिङः कित्त्वादमागमो न, जस्य कुत्वेन गः, खरि चेति तस्य कः, षत्वम् । **असृष्टेति**—झलो झलीति सिचो लोपः, व्रश्चेति षत्वं, ष्टुत्वम् । **असृक्षातामिति**—व्रश्चेति षत्वे षढोः कः सीति कः, षत्वम् । **यकारनिर्देश इति**—सार्वधातुके यगिति विहितेन यका निर्देशः । यद्यसौ श्यना निर्देशः स्यात्तदा दैवादिकस्य लिङ एव ग्रहणं स्यात्, न तु लीधातोः निरनुबन्धस्य भौवादिकस्य, ततश्च लीङ् इत्येव ब्रूयादतो ज्ञायते लीयतेरिति यका निर्देशो न तु श्नेति भावः। एतादृशव्याख्यानफलमाह **लीलीङोरिति** । तथा च लीय इत्युक्ते भौवादिकस्यैव ग्रहणं स्यात्। लीयतेरिति यका निर्देशादुभयोरपि ग्रहणं भवति इत्यर्थः । **लेता लातेति**—विभाषालीयतेरिति ईकारस्यात्वविकल्पः, आत्वाभावे सार्वधातुकेति

मध्यमनोरमापूरणी

पेदे इति—लिट्, तः, एश्, द्वित्वादि, अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **अबुद्धेति**—लुङ्, तः, अट्, च्लिः, सिच् लघूपधगुणः प्राप्तः, लिङ्सिचाविति सिचः कित्त्वान्न गुणः, झलो झलि, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वम् । **स्रक्ष्यते इति**—लृट्, तः टेरेत्वम्, स्यः, सृजिदृशोरिति आम्, यण्, व्रश्चेति जस्य षः, षढोरिति कः, षत्वम् । **व्रीयते इति**—श्यनो ङित्त्वान्न गुणः ।

हिन्दी

७४६. पद धातु से परे च्लि को चिण् होता है त शब्द परे ।

७४७. ली व लीङ् धातु को आत्व होता है एज्विषय में व ल्यप् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृष तितिक्षायाम् । मृष्यति, मृष्यते । ममर्षिथ । ममृषे । ममृषिषे । मर्षितासि, मर्षितासे । णह बन्धने । नह्यति, नह्यते । ननाह । नेहिथ । नहो धः इति धः । ननद्ध । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत् । अनद्ध । रञ्ज रागे । रज्यति, रज्यते । शप आक्रोशे । शप्यति, शप्यते । शक् विभाषितो मर्षणे । विभाषित इत्युभयपदीत्यर्थः ।. शक्यति, शक्यते हरिं द्रष्टुं भक्तः । शशाक । शेकिथ, शशक्थ। शेके । शक्ता । शक्ष्यति, शक्ष्यते । पुषादित्वादङ्, अशकत्, अशक्त। सेट्कोऽयमित्येके । तन्मतेनानिट्केषु लृदित्पाठः । शकिता । शकिष्यति, शकिष्यते । इति दिवादिः ।

मध्यमनोरमा

गुणः । **लेष्यते** इत्यात्वाभावपक्षे, गुणः, षत्वम्। **लिल्ये इति**—लिट्, तः, द्वित्वं, ह्रत्वः, एरनेकाच इति यण्, असंयोगादिति लिटः कित्त्वेनैज्विषयत्वाभावादत्र नात्वम् । व्रीङ् वृणोत्यर्थे,· वृणोतेरर्थो वरणम् । **विव्रिये इति**—एश्, द्वित्वं, हलादिशेषः, ईकारस्य संयोगपूर्वकत्वादेरनेकाच इति यणोऽप्राप्तेः अचिश्नुधात्विति इयङ् । इत्यात्मनेपदम् । अथोभयपदिनः । मृष्यतीति– अयं स्वरितेत् । एवमग्रेऽपि । **ममर्षेति**—णल्, द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, लघूपधगुणः । **ममर्षिथेति-** आर्धधातुकस्येतीट् । **ममृषे इति**—आत्मनेपदपक्षे एश्, द्वित्वं, हलादिशेषः । **नह्यतीति**—णो नः । **नेहिथेति**—भारद्वाजमते इट्, थलि च सेटीति एत्वाभ्यासलोपौ । **ननद्धेति**—भारद्वाजभिन्नमते उपदेशेऽत्वत इति क्रादिनियमप्राप्तस्यैवेटो निषेधः । नहो धः इति हस्य धः, झषस्तथोरिति थस्य धः, झलां जश् झशीति पूर्वधस्य दः । **नेहे इति**—आत्मनेपदे एश्, द्वित्वम्, अत एकेति द्वित्वादि[1] । **नद्धेति**—लुट्, तः, डा, तास्, टिलोपः, नहो धः, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वम् । **नत्स्यतीति**—नहो धः, खरि च । **अनात्सीदिति**—तिप्, सिच्, इतश्च, अस्तिसिच इतीट्, नहो धः, चर्त्वं, वदव्रजेति वृद्धिः । **अनद्धेति**—आत्मनेपदे तः, च्लेः सिच्, झलो झलीति सिचो लोपः, नहो धः, झषस्तथोरिति धः, जश्त्वम् । **रज्यतीति-** श्यनो ङित्त्वादनिदितामिति नलोपः । शकविभाषितो **मर्षणे**—धातुपाठे परस्मैपदिष्वसौ पठ्यते, अतो विभाषित इत्युक्त्या विकल्पेन परस्मैपदीति लभ्यते । स्वरितेत्सु नासौ पठितः, तेन कर्तृगामिनि अपि क्रियाफले पाक्षिकं परस्मैपदं भवतीति

मध्यमनोरमापूरणी

ममर्षिथेति—लिट्, सिपस्थल्, लिट् चेत्यार्धधातुकत्वादिट्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, उरदिति अत्वं रपरत्वं, हलादिशेषः, पुगन्तेति गुणः । **ननाह**—णो नः, नहः लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वमभ्यास संज्ञा, हलादिशेषः, अत उपधायाः । **नेहे इति**—आत्मनेपदे लिटस्तझयोरेशिरेजिति एश्, द्वित्वादि, अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **रज्यते इति**—लट्, तः, टेरेत्वं, श्यन्, अनिदितां हल उपधाया इति नलोपः ।

टिप्पणी—द्वित्वादि इति पाठोऽशुद्धः । तस्थाने 'एत्वाभ्यासलोपौ' इति ज्ञेयम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमा

बोध्यम् । **एतदभिप्रायेणोदाहरति**–शक्यति शक्यते वा हरिं द्रष्टुं भक्तः इति । अत्र मर्षणस्य शीतोष्णादिसहनरूपस्य फलं हरिदर्शनमेव, तद्भक्तरूपगामीत्युभयपदमित्यर्थः ।**शेकिथेति**—भारद्वाजमते इट्, थलि च सेटीत्येत्वाभ्यासलोपौ । भारद्वाजभिन्नमते उपदेशेऽत्वत इति क्रादिनियमप्राप्तस्येटो निषेधः । **शेके**—अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ । **शक्तेति**—अनिट्-कारिकायां शक्धातोः पाठादिटो निषेधः । **पुषादित्वादिति**—पुषादिगणे परस्मैपदिष्वसौ धातुपाठे पठितः । विभाषित इतिवचनादस्योभयपदिप्रकरणे पुषादितो निष्कृष्य लिखित इति भावः। आत्मनेपदपक्षे **अशक्तेति**, परस्मैपदपरत्वाभावात् पुषादीति च्लेरङ् न, किन्तु च्लेः सिच्, झलो झलीति सलोपः । **सेट्कोऽयमिति**—अनिट्कारिकायां शक्लृ शक्ताविति स्वादेरेव ग्रहणं, तेनायं सेडित्यर्थः । **तन्मतेनेति**—शक मर्षण इत्यस्य सेट्कत्वम् । तेन लृदित् यः शक्लृ शक्ताविति स एव पठित इत्यर्थः । एवञ्च एतस्यानिट्त्वमिति, पूर्वमते तु अनिट्कारिकायां शक् इत्येव पठनीयमिति भावः । । इति दिवादिः मध्यमनोरमायाम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

शशाकेति—लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वादि, अत उपधायाः । **शक्ष्यति इति**—लृट्, तिप्, स्यः, षत्वम् । कषयोः संयोगे क्षः ।

॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां दिवादिप्रकरणम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ स्वादिप्रकरणम्

षुञ् अभिषवे । ७४८. स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३।। कर्त्तरि सार्वधातुके । शपोऽपवादः । सुनोति । सुनुतः । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । लोपश्चास्येति प्रत्ययोकारस्य वा लोपः। सुन्वः, सुनुवः । सुनुते । सुन्वते । सुनुषे । सुषाव, सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि, सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ।

७४९. स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७।२।७२।। सिच इट् । असावीत् । असोष्ट । अभिषुणोति । अभ्यषुणोत् ।

७५०. सुनोतेः स्यसनोः ८।३।११७।। सस्य षो न । विसोष्यति । षिञ् बन्धने। विसिनोति । चिञ् चयने । चिनोति । चिनुते ।

मध्यमनोरमा

सुनोतीति—धात्वादेरिति षस्य सः, श्नुप्रत्ययः, शकार इत्, सार्वधतुकार्धधातुकयोरिति श्नोर्गुणः। श्नोः सार्वधाातुकमपिदिति ङित्त्वाद्धातोर्न गुणः । **सुनुतः इति-** तसोऽपि ङित्त्वात् श्नोरपि न गुणः । **सुन्वन्तीति**—अचि श्नुधात्विति उवङि प्राप्ते हुश्नुवोरिति यण् । **सुन्वः इति-** लोपश्चास्यान्यतरस्यामिति श्नुप्रत्ययोकारस्य पाक्षिको लोपः । लोपाभावे सुनुव इति । एवं सुन्वहे सुनुवहे इति । **सुषुवे इति**—द्वित्वम्, आदेश प्रत्ययोरिति षत्वम्, अचि श्नुधात्विति उवङ्। **सुनु इति-** लोटः सेर्हिः, उतश्च प्रत्ययेति हेर्लुक् । **सुनवानीति–** मेर्निः, आड्डुत्तमस्य पिच्च, गुणः, अवादेशः । **सुनवै इति–** आत्मनेपदे लोट उत्तमपुरुषैकवचनम् इट्, आट्, आटश्चेति वृद्धिः, सार्वधातुकगुणः । **सुनुयात् इति-** विधिलिङ्, यासुट्, श्नुः । **सूयादिति–** आशीर्लिङ्, अकृत्सार्वेति दीर्घः: । **असावीदिति–** लुङ्, तिप्, सिच्, स्तुसु इति सिच इट्, इतश्च, अस्ति-सिचोऽपृक्ते, इट ईटि, सवर्णदीर्घः, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **असोष्टेत्यात्मनेपदपक्षे,** सिच्, सार्व-धातुकेति गुणः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **अभिषुणोतीति–** उपसर्गात् सुनोतीति षत्वम् । **अभ्यषुणोदिति–** अभिपूर्वात् सुनोतेर्लङ्, तिप्, इतश्च, श्नुप्रत्ययः, तस्य गुणः, अडागमः, प्राक्सिता-दिति अटा व्यवधानेऽपि उपसर्गात् परस्य सस्य षत्वम् । **विसोष्यतीति–** अत्र स्यप्रत्यये परतः उपसर्गात् सुनोतीति प्राप्तं षत्वं निषिध्यते । विसिनोतीति-धात्वादेरिति सः, उपसर्गादित्यादि-सूत्रे सुनोत्यादिषु अस्य ग्रहणाभावान्न षत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुनवै इति—लोट्, इट्, एत्वम्, आट्, श्नुः, सुनु आ ए इति, एत ऐ, सार्वधातुकगुणः, अव्, आाटश्चेति वृद्धिः । **सिच इडिति** -इडत्यर्तिव्ययतीनामित्यत इट् इत्यनुवर्तते, अञ्जेः सिचि इत्यतः सिचि इति अनुवर्तते, तच्च षष्ठ्या विपरिणम्यते । तदाह– एभ्यः सिचः इट् इति।

हिन्दी

७४८. स्वादिधातुओं से परे श्नु प्रत्यय होता है कर्त्रर्थसार्वधातुक परे ।

७४९. स्तु सु व धूञ् धातु से परे सिच् को इट् हो परस्मैपद में ।

७५०. स्य और सन् परे रहते उपसर्ग से परे सुनोति के स को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७५१. विभाषा चेः ७।३।५८।। अभ्यासाच्चेः कुत्वं वा सनि लिटि च । चिकाय, चिचाय । चिक्ये, चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट । स्तृञ् आच्छादने । स्तृणोति, स्तृणुते । तस्तार, तस्तरे । तस्तरतुः । गुणोऽर्त्तीति गुणः । स्तर्यात् ।

७५२. ऋतश्च संयोगादेः ७।२।४३।। ऋदन्तात् संयोगादेर्लिङ् सिचोरिड्वा तङि । स्तरिषीष्ट, स्तृषीष्ट । अस्तरिष्ट, अस्तृत । धुञ् कम्पने । धुनोति, धुनुते। दुधाव, दुधुवे । अधौषीत् । अधोष्यत् । धूञ् कम्पने । धूनोति, धूनुते । स्वरतीति वेट् । दुधविथ, दुधोथ । किति लिटि तु ।

७५३. श्र्युकः किति ७।२।११।। श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिण् न । इति प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । दुधुविव । दुधुविम । अधावीत् । अधविष्ट, अधोष्ट।

मध्यमनोरमा

चिकायेति– चि धातोः द्वित्वे अचो ञ्णितीति वृद्धौ विभाषा चेरित्यभ्यासादुत्तरस्य चकारस्य ककारः । कुत्वस्य वैकल्पिकत्वात्तदभावे **चिचायेति** । एवमात्मने पदे **चिक्ये चिच्ये** इति रूपद्वयम्। **अचैषीदिति**—सिचिवृद्धिरिति वृद्धिः । **अचेष्टेत्यात्मनेपदे** सिच्, गुणः, षत्वम् । **तस्तारेति**- स्तृ इत्यस्य द्वित्वम्, उरत्, शर्पूर्वाः खयः इति तकारस्य शेषः, सरेफयोर्लोपः, ऋतश्च संयोगादेर्गुण इति पूर्वोक्तसूत्रेण गुणः ऋकारस्य अर्, अत उपधाया इत्यकारस्याकारः। एवं **तस्तरतुरिति**– तसि ऋतश्चेति गुणः । एवमात्मनेपदे **तस्तरे इति**-ऋतश्चेति गुणः ।**स्तर्य्यादिति**- आशीर्लिङ्, गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योरिति गुणः । विधिलिङि स्तृणुयादिति बोध्यम् । **स्तरिषीष्टेति**- आशीर्लिङ्, तः, सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वम्, ऋतश्च संयोगादेरिति इड्विकल्पः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । इडभावे **स्तृषीष्टेति**-उश्चेति झलादेर्लिङः कित्त्वाद् गुणनिषेधः । **अस्तरिष्टेति**- ऋतश्च संयोगादेरिति पक्षे इट्, सार्वधातुकेति गुणः । इडभावे **अस्तृतेति**- ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः, तस्यासिद्धत्वेन उश्चेति झलादिसिचः कित्त्वान्न गुणः । **दुधावेति**– णलि अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **दुधुवे इति**– एशि अचि श्नु इत्युवङ् । **अधौषीत् इति**– सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **श्रिञ एकाच उगन्ताच्चेति**- एकाच इति उगन्तादित्यस्य विशेषणम् । **क्रादिनियमादिति**- प्रकृत्याश्रयः प्रत्ययाश्रयो वा यावानिण्निषेधः स लिटि चेद्भवति तर्हि क्रादिभ्य एवेति नियमादित्यर्थः । तत्र प्रकृत्याश्रय इण्निषेध एकाच उपदेश इति सूत्रेण विहितः । प्रत्ययाश्रयस्तु श्र्युकः कितीति सूत्रेण कित्प्रत्ययाश्रयो निषेध इति बोध्यम् । **दुधुविवेति**—स्वरतिसूतीति विकल्पं बाधित्वा श्र्युकः कितीति निषेधे प्राप्ते तं बाधित्वा क्रादिनियमान्नित्यमिट् । **अधावीदिति**- स्वरतिसूतीति विकल्पं बाधित्वा स्तुसुधूञ्भ्यः इति नित्यमिट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अधविष्टेति**–स्वरतीति वेट् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अधावीदिति—लुङ्, तिप् इतश्च, अट्, च्लिः, सिच्, स्तसुधूञ्भ्य इति इट्, अतिसिच इतीट्, सिचि वृद्धिः, इट ईटि, सवर्णदीर्घः । **अधोष्टेति**-आत्मनेपदे लुङि स्वरतीति इटोऽभावे सिचि सार्वधातुकगुणः, षत्वम्, ष्टुत्वम् ।

हिन्दी

७५१. अभ्यास से परे चि धातु को कुत्व होता है सन् परे व लिट्लकार में, विकल्प से।
७५२. संयोगादि ऋदन्त धातु से परे लिङ् व सिच् को इट् होता है तङ् परे, विकल्प से।
७५३. श्रिञ् एकाच् और उगन्त धातु से परे गित् व कित् को इट् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृञ् हिंसायाम् । कृणोति । कृणुते । चकार । चकर्थ । चक्रे । क्रियात् । कृषीष्ट। अकार्षीत्, अकृत । वृञ् वरणे । वृणोति, वृणुते ।

७५४. बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति निगमे ७।२।६४।। एषां वेदे इडभावो निपात्यते । तेन भाषायां थलीट् । ववरिथ । ववृथ । ववृव । ववृवहे । वृतो वा । वरीता, वरिता ।

७५५. लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७।२।४२।। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा तङि ।

७५६. न लिङि ७।२।३९।। वॄतो लिङ इटो न दीर्घः । वरिषीष्ट, वृषीष्ट । अवारीत्, अवरिष्ट, अवृत । टु दु उपतापे । दुनोति । हि गतौ वृद्धौ च ।

मध्यमनोरमा

कृणोतीति— ऋवर्णान्नस्य णत्वमिति णः । **क्रियादिति**– आशीर्लिङ्, रिङ्शयग्लिङ्क्षु इति ऋतो रिङादेशः । **कृषीष्टेत्याशीर्लिङ्**, आत्मनेपदम्, उश्चेति तस्य कित्त्वान्न गुणः । **अकार्षीदिति**– सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अकृतेति**- ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः । **बभूथ, ततन्थ**–'त्वं हि होता प्रथमो बभूथ' इत्यत्र वेदे थल इण्निषेधो निपात्यते । लोके तु बभूविथ । 'येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ', अत्र तन् धातोस्थल इट् न, लोके तेनिथेति । 'जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम्', अत्र ग्रह-धातोर्लिट्, उत्तमपुरुषबहुवचने इण् निषेधः । भाषायां जगृहिमेति । वृणोतेस्थलि क्रादिसूत्रेण इण्निषेधे सिद्धेऽपि निगम एव निषेधो न लोके इति नियमार्थं ववर्थग्रहणम्, तेन "ववर्थ त्वं हि ज्योतिषामिति", वेद एवेण्निषेधो न तु लोके । **ववृवेति**- क्रादिसूत्रेण वमादाविण्निषेधः। **वरिता, वरीतेति**– वृतो वेति इटो दीर्घविकल्पः । **न लिङि**— वृत इति वृङ्-वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेत्यर्थः । **वरिषीष्टेति**- लिङ्सिचोरिति इट्विकल्पः, न लिङीत्यनेन वृतो वेति प्राप्तस्य दीर्घत्वस्य निषेधः । इटोऽभावे **वृषीष्टेति । अवारीदिति**– लुङ्, सिच्, आर्धधातुकस्येति इट् इत्यादिं, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अवरिष्ट, अवरीष्टेति**– लिङ्सिचोरात्मनेपदेष्विति इट्पक्षे वृतो वेति इटो दीर्घविकल्पः । इडभावे **अवृतेति**– ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

चकर्थेति– लिटि सिपस्थल्, ऋतो भारद्वाजस्येति इण्निषेधः, द्वित्वे उरदत्त्वे हलादिशेषे गुणः। **ववरिथेति**– वेदे ववर्थेति इडभावनिपातनात् लोके वृधातोर्लिटि सिपस्थलि इटि द्वित्वे उरदत्वे हलादिशेषे गुणे रूपम् । **वरीतेति**– लुट्, तिप्, तास्, तिपः डादेशः, टेर्लोपः, इटि गुणे वरिता इति जाते वृतो वेति इटो दीर्घः । दीर्घाभावे **वरितेति** ।

हिन्दी

७५४. वेद में बभूथ आततन्थ, जगृम्भ और ववर्थ इन रूपों में इट् का अभाव निपातन होता है ।

७५५. वृङ् वृञ् और ॠदन्त धातु से परे लिङ् और सिच् को इट् होता है, तङ् परे, विकल्प से ।

७५६. वृङ् वृञ् और ॠदन्त धातु से परे लिङ् सम्बन्धी इट् को दीर्घ नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७५७. हिनुमीना ८।४।१५॥ उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य एतयोर्नस्य णः । प्रहिणोति ।

७५८. हेरचङि ७।३।५६॥ अभ्यासाद् हिनोतेर्हस्य कुत्वं न तु चङि । जिघाय। आप्लृ व्याप्तौ । आप्नोति । आप्नुतः । आप्नुवन्ति । आप्नुवः । आप्नुहि । लृदित्वादङ् । आपत् । शक्लृ शक्तौ । अशकत् । राधसाध संसिद्धौ । राध्नोति।

७५९. राधो हिंसायाम् ६।४।१२३॥ एत्वाभ्यासलोपौ स्तः किति लिटि सेटि थलि च । अपरेधतुः । अपरेधुः । रेधिथ । राद्धा । साध्नोति ।ससाध । साद्धा। असात्सीत् । असाद्धाम् । ञिधृषा प्रागल्भ्ये । धृष्णोति दधर्ष । धर्षिता । दम्भु दम्भने । अनिदितामिति नलोपः । दभ्नोति । ददम्भ ।

मध्यमनोरमा

सिचो लोपस्य त्रैपादिकत्वेनासिद्धत्वात् सिचि परतः सार्वधातुकेति गुणे प्राप्ते उश्चेति सूत्रदृष्ट्यापि लोपस्यासिद्धत्वेन झलादिसिचः सत्त्वात् तस्य उश्चेति कित्त्वम् । तेन क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **हिनुमीना**– एतयोर्नस्येति, हिधातोः श्नुप्रत्ययान्तस्य हिनु इत्यस्य श्नाप्रत्ययान्तस्य मीधातोः मीना इत्यस्य च यो नकारस्तस्येत्यर्थः । **प्रहिणोति, प्रमीणाति । जिघायेति–** हि इत्यस्य द्वित्वे कुहोश्चुरित्यभ्यासहकारस्य झकारे अभ्यासे चर्चेति तस्य जकारः, अनभ्यास हकारस्य हेरचङि इति कुत्वेन घकारः, वृद्धिः । **आप्नुवन्ति इति**— श्नुप्रत्ययान्तत्वादुवङ् । **आप्नुहीति**-संयोगपूर्वकत्वादुतश्च प्रत्ययेति न हेर्लुक् । **लृदित्वादिति**- पुषादिद्युताद्यलृदितः इति सूत्रेणेति शेषः । आपदिति । **अशकदिति**- पुषादीत्यङ् । **अपरेधतुरिति**- अपपूर्वको राध् धातुः। हिंसार्थकः । अत इति तपरकरणादत एकेत्यस्याप्राप्तौ वचनम् । **साध्नोतीति**—षोपदेशोऽयं, धात्वादेरिति षस्य सः । **साद्धेति**– झषस्तथोरिति तासस्तकारस्य धकारः, जश्त्वेन पूर्वधकारस्य दकारः । **असात्सीदिति**– खरि चेति धस्य तः । **असाद्धामिति**- तसस्तामादेशः, झलो झलीति सिचो लोपः, जश्त्वम् । **धृष्णोतीति**- आकार इत् । रषाभ्यामिति णत्वम् । **दधर्षेति**– णल्, द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, अभ्यासे चर्चेति धस्य दः । पुगन्तेति गुणः । **धर्षिता**– आर्धधातुकस्येतीट्, गुणः । **दभ्नोति इति**- श्नुप्रत्ययस्य ङित्त्वात्तस्मिन् परतोऽनिदितामिति नलोपः। **ददम्भेति**– तिप्स्थानिकस्य णलः पित्त्वेनासंयोगाल्लिट् इति कित्त्वाभावात्तस्मिन्

मध्यमनोरमापूरणी

प्रहिणोति इति—प्रपूर्वक हिधातोर्लटि तिपि श्नुप्रत्यये गुणे च कृते प्रहिनोति इति, हिनुमीनेति नस्य णत्वम् । **आपदिति**—आप् धातोर्लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, पुषादिद्युताद्यलृदित इति च्लेरङ्, आट्, आटश्चेति वृद्धिः । **रेधिथेति**– लिट्, सिपस्थल्, आर्धधातुकत्वादिट्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, थलि चेत्यस्याप्राप्तौ राधो हिंसायामिति एत्वाभ्यासलोपौ । **असात्सीदिति**– लुङ्, तिप्, इतश्च, सिच्, अस्ति सिच इति ईट्, अट्, धस्य खरि चेति चर्त्वम् ।

हिन्दी

७५७. उपसर्ग में स्थित निमित्त से परे हिनु और मीना के न को णत्व होता है ।

७५८. अभ्यास से परे हि धातु के ह को कुत्व होता है, चङ् परे रहते कुत्व नहीं होता है ।

७५९. राध धातु को हिंसा अर्थ में एत्व और अभ्यास लोप होता है, कित् लिट् और सेट् थल् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. श्रन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनां लिटः कित्त्वं वा ।। कित्त्वपक्षे नलोपः । तस्याभीयत्वादसिद्धत्वेनेत्वाभ्यासलोपयोरप्राप्तौ वा. दम्भेश्च एत्वाभ्यासलोपौ वक्तव्यौ । देभतुः । ददम्भतुः । दम्भिता । दभ्यात् । तृप प्रीणने ।

७६०. क्षुभ्नादिषु च ८।४।३९। न णत्वम् । तृप्नोति । ततर्प । अशू व्याप्तौ संघाते च । अश्नुते ।

७६१. अश्नोतेश्च ७।४।७२।। दीर्घादभ्यासादवर्णात् परस्य नुट् । आनशे । अशिता, अष्टा । अशिष्यते, अक्ष्यते । अश्नुवीत । अक्षीष्ट, अशिषीष्ट । आशिष्ट, आष्ट । आक्षाताम् । इति स्वादिः ।

मध्यमनोरमा

परतो लोपो न । **कित्त्वं वेति**—अपितो लिडादेशस्याभीयत्वाद् एत्वाभ्यासलोपयोराभीययोः कर्तव्ययोः मकारस्य संयुक्तहल्मध्यस्थत्वेन अत एकेत्यस्याप्राप्तौ दम्भेश्चेति वार्तिकेन एत्वमभ्यासलोपश्च । कित्त्वाभावे **ददम्भतुरिति** । **दभ्यादिति-** किदाशिषीति यासुटः कित्त्वाद-निदितामिति नलोपः । **तृप्नोतीति-** क्षुभ्नादिगणे तृप्नोति इत्यस्य पाठात् ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यमिति प्राप्तं न भवति । **आनशे इति-** अश् धातुरनुदात्तेत् । अतोऽयमात्मनेपदी । अस्य लिटि द्वित्वे हलादिशेषे अत आदेरित्यभ्यासाकारस्य दीर्घे आ अश् इति जाते द्विहल्त्वाभावात्त-स्मान्नुड्द्विहल इति नुटोऽप्राप्तौ अश्नोतेश्चेति नुट् । **अशितेति-** ऊदित्त्वात् पक्षे स्वरतिसूतीति सूत्रेण इट् । तदभावे **अष्टेति-** व्रश्चेति शस्य षत्वं, ष्टुत्वम् । **अशिष्यते इति-** स्वरतीति इट् पक्षे । तदभावे **अक्ष्यते इति-** व्रश्चेति षत्वं, षढोः कः सि, आदेशप्रत्यययोः । **अश्नुवीतेति-** विधि लिङ्, सीयुट्, श्नु- प्रत्ययः, सलोपः, सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाद्गुणनिषेधे अचिश्नु इत्युवङ् । **अशिषीष्टेति-** स्वरति इति आशीर्लिङि इड्विकल्पः । इडभावे **अक्षीष्टेति-** व्रश्चेति षः, ष्टुत्वं, सस्य षः । **आशिष्टेति-** लुङ्, च्लेः सिच्, तस्य स्वरतीति इड्विकल्पः । इडभावे **आष्टेति-** व्रश्चेति षः, झलो झलीति सिचो लोपः, सकारस्य षत्वम् । **आक्षातामिति-** व्रश्चेति षः, षढोः कः सि, षत्वम् ।

।। इति स्वादिप्रकरणम् ।।

हिन्दी

वा. श्रन्थ ग्रन्थ दम्भ और स्वञ्ज् से परे लिट् कित् होता है विकल्प से ।

व. दम्भ धातु को एत्व और अभ्यास लोप कहना चाहिये ।

७६०. क्षुभ्नादिगण में पठित शब्द के नकार को णत्व नहीं होता है ।

७६१. अभ्याससम्बन्धी दीर्घ अकार से पर को नुट् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ तुदादिप्रकरणम्

तुद व्यथने । ७६२. तुदादिभ्यः शः ३।१।७७।। शपोऽपवादः । तुदति । तुदते। तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत् । अतुत्त । णुद् प्रेरणे । नुदति, नुदते। नुनोद । नुनुदे । नोत्ता । भ्रस्ज पाके । ग्रहिज्यावयीति सम्प्रसारणम् । सस्य श्चुत्वम्। तस्य जश्त्वम् । भृज्जति, भृज्जते ।

७६३. भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम् ६।४।४७।। भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वार्धधातुके । मित्त्वादन्त्यादचः परः । स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः। बभर्ज । बभ्रज्ज । बभर्जतुः । बभ्रज्जतुः ।

बभर्जिथ, बभर्ष्ठ । बभ्रज्जिथ । स्कोरिति सलोपः, व्रश्चेति षः । बभ्रष्ठ । बभर्जे । बभ्रज्जे । भर्ष्टा, भ्रष्टा । भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति । वा. क्ङिति रमागमं बाधित्वा सम्प्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन । भृज्ज्यात् । भृज्ज्यास्ताम् । भृज्ज्यासुः । भर्क्षीष्ट, भ्रक्षीष्ट । अभार्क्षीत्, अभ्राक्षीत् । अभर्ष्ट, अभ्रष्ट ।

मध्यमनोरमा

तुद व्यथने— स्वरितेत्, शप् विषये शः, शकार इत्, सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वात् शकारे परतः पुगन्तेति गुणो न । **तुतोदेति**— तिप्स्थानिकस्य णलः पित्त्वेनाकित्त्वात् तत्र गुणः । तुतोदिथेति-क्रादिनियमादिट् । **तोत्तेति**- अनुदात्तत्वादिण्निषेधः । **अतौत्सीदिति**- वदव्रजेति वृद्धिः । **अतुत्तेति**- लुङ्, आत्मनेपदपक्षे झलो झलीति सलोपः । **भृज्जतीति**- भ्रस्जो रेफस्य ग्रहिज्येति ऋकारे सम्प्रसाणाच्चेति पूर्वरूपे भृस्ज् इति जाते सकारस्य स्तोः श्चुनेति शकारः, तस्य झलां जश् झशीति जकारः । **मित्त्वादिति**– रमो मकारेत्संज्ञकत्वान्मिदचोऽन्त्यात् पर इति सूत्रेण अकारात् परो रम् आगतः । रोपधयोरिति स्थानषष्ठीनिर्देशाद् रेफस्य सकारस्य च निवृत्तिं कृत्वा अकारात् परो रम् इत्यर्थः सम्पद्यते, नतु रोपधयोरम् आदेशः, मित्त्वस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । स्थानषष्ठी निर्देशस्य रोपधयोर्निवर्तकत्वेनाप्युपपत्तेः । **बभर्जेति**- भ्रस्ज् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषादिना बभ्रस्ज् इति जाते रेफसकारनिवृत्तौ अकारात् परो रेफ आगमः, बभर्ज इति सिद्धम् । **बभर्जिथेति**— भारद्वाजमते इट् । भारद्वाजभिन्नमते **बभर्ष्ठेति**- भ्रस्ज् इत्यस्य द्वित्वादिना बभ्रस्ज् इति जाते रेफसकारयोः निवृत्तौ रमागमे बभर्ज् इति जाते व्रश्चेति षकारे बभर्ष इति, ष्टुना ष्टुरिति ष्टुत्वेन थस्य ठः ।

मध्यमनोरमापूरणी

बभर्जतुरिति— लिटि तसोऽतुसि भ्रस्जो रोपधयोरिति रेफसकारयोः स्थाने रम्- आगमे मित्वादकारात् परे च कृते भर्ज् अतुस् इति, द्वित्वे अभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे, अभ्यासे चर्चेति बः, सस्य रुत्वविसर्गौ । **भृज्ज्यादिति**— आशीर्लिङि तिपि इतश्च, यासुट्, किदाशिषि, भ्रस्ज् यास् त् इति, क्ङिति रमागममितिवार्तिकेन रमागमं बाधित्वा पूर्वं ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे

हिन्दी

७६२. तुदादि गण पठित धातुओं से श प्रत्यय होता है, कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते ।
७६३. भ्रस्ज् धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् आगम हो, आर्धधातुक परे रहते।
वा. कित् ङित् परे रहते रमागम को बाध कर पूर्व विप्रतिषेध से सम्प्रसारण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

कृष विलेखने । कृषति, कृषते । चकर्ष, चकृषे । क्रष्टा, कर्ष्टा । कृक्षीष्ट । अक्राक्षीत्, अकार्क्षीत् । अकृक्षत् । अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षत । स्पृशमृशेति सिज् वा । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त ।

मध्यमनोरमा

बभ्रज्जेति—रमागमाभावपक्षे सकारस्य श्चुत्वेन शकारस्तस्य जश्त्वेन जकारः । **बभ्रज्जिथेति**- रमागमाभावपक्षे भारद्वाजस्य मते इट् । **बभ्रष्ठेति**—रमागमाभावपक्षे भारद्वाजभिन्नमते इडभावे बभ्रस्ज्थ इति स्थिते झलि थकारे परतः संयोगस्यादिभूतस्य सकारस्य लोपे व्रश्चेति जकारस्य षकारे ष्टुत्वेन थस्य ठः । **बभर्जे इति**—रोपधनिवृत्तौ रमागमः । तदभावे **बभ्रज्जे** इति। रमागमपक्षे **भर्ष्टेति**– जस्य षः, ष्टुत्वम् । रमभावे **भ्रष्टेति**- सस्य लोपः, जस्य षत्वं ष्टुत्वम्। रमागमपक्षे **भर्क्ष्यतीति**– जस्य षत्वे षढोरिति कत्वं, सस्य षत्वम् । रमागमाभावे **भ्रक्ष्यतीति**- सलोपे षत्वे कत्वे सस्य षत्वम् । **सम्प्रसाणमिति**- ग्रहिज्येति सूत्रेणेति शेषः । **पूर्वविप्रतिषेधेनेति**- ग्रहिज्येति सूत्रं पूर्वं, भ्रस्ज इति सूत्रं परम्, तत्र क्ङिति सार्वधातुके भृज्जतीत्यादौ सावकाशं ग्रहिज्येति सूत्रं, बभर्जेत्यादावकित्यार्धधातुके सावकाशो रमागमः, इति तुल्यबलयोः क्ङिति आर्धधातु- के विरोधे एकपरिहारेण परस्य प्रवृत्तौ पूर्वं सम्प्रसारणं भवतीति विप्रतिषेधार्थः । **भृज्ज्यादिति**– आशीर्लिङ् परस्मैपदम् । **भर्क्षीष्ट**- आशीर्लिङ आत्मनेपदम्, सीयुट्, सुट्, यलोपः, षत्वं, ष्टुत्वं, रमागमः, जस्य षः, षढोः कः सीति कः, षत्वम् । रमागमाभावे **भ्रक्षीष्टेति**- स्कोरिति सलोपे जस्य षत्वादि । **अभार्क्षीदिति**– रमागमे वदव्रजेति वृद्धिः, जस्य षत्वं, कत्वे सिचः सस्य षत्वम् । **अभ्राक्षीदिति**– सस्य स्कोरिति लोपः, वदव्रजेति वृद्धिः, जस्य षत्वादि । अभर्ष्टेति– आत्मनेपदपक्षे रमागमे झलो झलीति सिचो लोपे जस्य व्रश्चेति षः। **अभ्रष्टेति**—रमागमा भावपक्षे सिचो लोपे स्कोरिति सलोपे व्रश्चेति षत्वम् । **कृष्** विलेखने, लुटि तः, **क्रष्टेति**– अनुदात्तस्य चर्दुपधस्येति अमागमविकल्पः, अमागमश्च मित्त्वादन्त्यादचः परः, ऋकारस्य यणादेशः, अमागमाभावपक्षे ऋकारस्य पुगन्तेति गुणे **कर्ष्टेति** । **कृक्षीष्टेति**– आशीर्लिङ्, अनुदात्तत्वादिण्निषेधः, षढोः कः सि, आदेशप्रत्यययोः, लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विति इक् समीपाद्धलः परस्य लिङः कित्त्वान् न गुणः । **अकार्क्षीदिति**– वदव्रजेति ऋकारस्य वृद्धिः, षढोः कः सि, आदेशप्रत्यययोः । **अकृक्षदिति**– शल इगुपधादिति च्लेः क्सः, लशक्वतद्धिते, षढोः कः सि, आदेशप्रत्यययोः । **अकृष्टेति**– आत्मनेपदपक्षे, झलो झलीति सस्य लोपः, ष्टुत्वम् । **अकृक्षातामिति**– आतां, सिच्, षढोः कः सि इति षस्य कः, सस्य षत्वम् । **अकृक्षतेति**– लुङ् सिच्, आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, षस्य कः, सस्य षः।

मध्यमनोरमापूरणी

सम्प्रसाणाच्चेति पूर्वरूपे भृस्ज् यास् त् इति, स्कोरिति यासुटः सस्य लोपे धातोः सस्य श्चुत्वेन शकारे तस्य जश्त्वेन जकारे भृज्ज्यादिति । **अकृक्षातामिति**—लुङि आत्मनेपदे आताम् इति, च्लिः, शल इगुपधादितिच्लेः क्सः, अट्, अकृष् स आताम् इति, षढोरिति कः, सस्य षत्वम्, **क्सस्याचीति** अलोपे अकृक्षाताम् इति । झ प्रत्यये **अकृक्ष** झ इति जाते झोऽन्तः, क्सस्याचि इति अतो लोपः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मिल संगमने । मिलति, मिलते । मिमेल । मेलिता । अमेलीत् । मुच्लृ मोक्षणे। ७६४. शे मुचादीनाम् ७।१।५९॥ मुच् लुप् लिप् विद् सिप् सिच् कृत् खिद्पिशां नुम् । मुञ्चति, मुञ्चते। मोक्ता । मुच्यात् । लिङ्सिचाविति कित् । मुक्षीष्ट। अमुचत् , अमुक्त । अमुक्षाताम् । लुप्लृ छेदने । लुम्पति, लुम्पते । लोप्ता । अलुपत्, अलुप्त । विद्लृ लाभे । विन्दति, विन्दते । विवेद । व्याघ्रभूतिमते सेट्। वेदिता । भाष्यमतेऽनिट् । परिवेत्ता । षिच् क्षरणे । सिञ्चति, सिञ्चते । असिचत्, असिचत, असिक्त । लिप उपदेहे । लिम्पति, लिम्पते । लेप्ता । लिपि सिचिह्वश्चेत्यङ् । अलिपत्, अलिप्त । कृती छेदने । कृन्तति, चकर्त । कर्तिता। सेऽसिचीति वेट् । कर्तिष्यति, कर्त्स्यति । अकर्तीत् । खिद परिदेवने । खिन्दति। चिखेद । खेत्ता । पिश अवयवे । पिंशति । पेशिता ।

मध्यमनोरमा

मिमेलेति—पुगन्तेति लघूपधगुणः । **मुच्यादिति**- आशीर्लिङ् । **मुक्षीष्टेति**- कुत्वेन चस्य कः, सीयुट्, सस्य षत्वम् । **अमुचदिति**- पुषादीतिच्लेरङ् । आत्मनेपदे **अमुक्तेति**- झलो झलीति सिचो लोपः, चोः कुः । **अमुक्षातामिति**- कुत्वं, सिचः सस्यादेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **अलुपदिति**- पुषादीत्यङ् । **अलुप्तेति**—झलो झलीति सिचो लोपः । **व्याघ्रभूतिमते इति**- विद्-धातुरनिट्कारिकायां पठितः, तत्र विद्य इति श्यन् विकरणः, विनद् इति रुधादि : श्नम्-विकरणोऽपरः । विन्दतिरयं तु तुदादिरपरः । एते त्रयोऽपि महाभाष्यकृता पठिताः । व्याघ्रभूति-नाम्ना केनचिद् आचार्येण तुदादिर्विन्दतिरयम् अनिट्कारिकायां पठितः, तन्मतेऽयं सेडित्यर्थः। भगवतो भाष्यकृतो मतमेवादर्त्तव्यमित्याशयेनाह **परिवेत्तेति** । ज्येष्ठस्य दारपरिग्रहाऽभावेऽपि कनिष्ठो भ्राता दाराग्न्यादिलाभवान् परिवेत्ता । अत्र लाभार्थकस्य विन्देरिटोऽभावः श्रुतिस्मृति-सिद्ध इति । विन्दतिरयं तुदादिरनिडिति भाष्यकृन्मतमिति । **असिचत् इति**-लिपिसिचिह्वश्चेति च्लेरङ् । **असिचतेति**- आत्मनेपदपक्षे आत्मनेपदेष्वन्य तरस्यामिति सूत्रेण लिपिसिचिह्वश्च्लेरङ् विकल्पः । अङोऽभावे **असिक्तेति**- झलो झलीति सिचो लोपः, चोः कुः । **एवमलिपदिति**-अङ् परस्मैपदपक्षे नित्यमेव, आत्मनेपद पक्षे **अलिपत, अलिप्तेति**-आत्मनेपदेष्वन्यतरस्यामिति अङ् विकल्पः । **कर्तिष्यतीति**- सेऽसिचि कृतेति इट् विकल्पः । इडभावे **कर्त्स्यति** इति । **अकर्तीदिति**-—सेऽसिचिकृतेति इट्, नेटीति सूत्रेण वदव्रजेति वृद्धिनिषेधात् पुगन्तेति गुणः।

मध्यमनोरमापूरणी

अमेलीदिति—लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, सिच्, अट्, इट्, अस्तिसिच इतीट्, गुणः, इट ईटि, सवर्णदीर्घः । **मुञ्चति इति**—लृकार इत् । मुच् धातोर्लट्, तिप्, शः, शे मुचादीनामिति नुम्, अनुस्वारपरसवर्णौ ।

हिन्दी

७६४. श प्रत्यय परे मुचादि धातुओं को नुमागम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ओव्रश्चू छेदने । वृश्चति। वव्रश्च । वव्रश्चिथ, वव्रष्ठ । व्रश्चिता, व्रष्टा । व्रश्चिष्यति व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत्, अव्राक्षीत् । व्यच व्याजीकरणे । विचति । विव्याच । विविचतुः । व्यचिता । व्यचिष्यति । विच्यात् । अव्याचीत्, अव्यचीत् । व्यचेः कुटादित्वमनसीति तु नेह प्रवर्त्तते, अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्रविषयत्वात् । उछि 'उञ्छे । ''उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलमिति'' यादवः । उञ्छति । उञ्छाञ्चकार ।

मध्यमनोरमा

वृश्चतीति– ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । **वव्रश्चेति**- व्रश्च् इत्यस्य द्वित्वं, सप्रसारणं तदाश्रयं कार्यं च बलवदिति अभ्यासरेफस्य ऋकारः लिट्यभ्यासस्योभयेषामिति सूत्रेण, ततः परम् उरदित्यभ्यास ऋकारस्य अर्, तदनन्तरं हलादिशेष इति बोध्यम् । अत्र प्रत्यये परे विधीयमान-स्योरदित्यत्वस्य स्थानिवद्भावेन सम्प्रसारणत्वात्तस्मिन् परतो न सम्प्रसारण इति निषेधात् वकार-स्य न पुनः सम्प्रसारणम् । **वव्रश्चियेति**– ऊदित्त्वात् स्वरतीति वेट् । इडभावे **वव्रष्ठेति**– व्रश्चेति चकारस्य षकारे चकारयोगेन स्तोः श्चुना श्चुरिति जातस्य सकारस्थानिकशकारस्य निवृत्तौ वव्रस् ष् थ इति जाते स्कोरिति सलोपे ष्टुत्वेन थस्य ठः । एवं **व्रष्टेति**– चकारस्य व्रश्चेति षः, स्कोरिति सलोपः । षढोः[1] कः सीति कत्वम् । **वृश्च्यादिति**– आशीर्लिङ्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । **अव्रश्चीदिति**-स्वरतीति सिच इटपक्षे । इडभावे-**अव्राक्षीदिति**-वश्चेति षः, स्कोरिति सलोपः, षढोः कः सि, षत्वं, वदव्रजेति वृद्धिः । **विचतीति**—ग्रहिज्येति यकारस्य इकारः । सम्प्रसारणम्, सम्प्रसारणाच्च । **विव्याचेति**– लिट्यभ्यासस्येत्यभ्यासयकारस्य सम्प्रसारणम्, अत उपधायाः। **विविचतुरिति**– ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे द्वित्वं हलादिशेषः । **विच्यादिति**—ग्रहिज्येति सम्प्र-सारणम् । **अव्याचीदिति**- अतो हलादेर्लघोरिति वृद्धिविकल्पः, वृद्ध्यभावे **अव्यचीदिति** । **व्यचेः** कुटादित्वमनसीति वार्त्तिकम्– अस् प्रत्ययभिन्ने कृत् प्रत्ययविषये व्यच् धातोः कुटादित्व प्रयुक्तं कार्यं भवतीति तस्यार्थः । तेन गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् इति सूत्रेण कुटादेः परस्य ञित्‌णित्‌भिन्नप्रत्ययस्य विहितं ङित्त्वं व्यच् धातोः परस्य तिङ्प्रत्यय भिन्नस्य कृत्प्रत्ययस्य भवति । तेन **उद्विचितेत्यादौ** व्यच् धातोः परस्य तृचो ङित्त्वं, ततश्च ग्रहिज्येति व्यचो यकारस्य सम्प्रसारणम् । **अनसीति** पर्युदासेनेति– प्रतिषेधो द्विविधः, पर्य्युदास प्रतिषेधः प्रसज्यप्रतिषेधश्च। तत्र प्रसज्यप्रतिषेधे अनसीत्यस्य अस्प्रत्यये न भवतीत्यर्थस्तदा वाक्यभेदः, व्यचेः कुटादित्वं भवतीत्येकं विधिवाक्यम्।असूप्रत्यये न भवतीति द्वितीयं निषेधवाक्यम्, इत्येवं वाक्यद्वयरूपो वाक्यभेदः, सम्भवति चैकवाक्यत्वे द्विवाक्यत्वमन्याय्यं, तस्मात् अनसीति पर्युदासः । तथा च अस्प्रत्ययभिन्ने परतो व्यचेः कुटादित्वं भवतीत्येकमेव वाक्यं भवति । तत्र पर्य्युदासः सदृश-ग्राहीति अस्प्रत्ययभिन्नोऽस्प्रत्ययः सदृशो ग्राह्यः । तत्र प्रत्ययत्वेन सादृश्यग्रहणादस्प्रत्यय-भिन्ने कृत्प्रत्यये परतो व्यचेः कुटादित्वं भवतीति पर्यवसितोऽर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ओ व्रश्चू इति—ओकारः ऊकारश्चेतौ उपदेशेऽजनुनासिक इत्यनेन । **वृश्चति इति**- लटि तिपि शः, व्रश्च् अति इति, शस्याकारस्य सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वात्तस्मिन् परतो ग्रहिज्येति सम्प्र-सारणे पूर्वरूपम् ।

टिप्पणी:-इयं पङ्क्तिः 'वक्ष्यति' इत्यस्य सन्दर्भे बोध्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । द्विहल्ग्रहणस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट् । आनर्च्छ । आनर्च्छतुः । ऋच्छिता । उज्झ उत्सर्गे । उज्झति । उज्झाञ्चकार । लुभ विमोहने । लुभति । तीषसहलुभेति वेट् । लोभिता, लोब्धा । लोभिष्यति । तृप तृम्फ तृप्तौ । तृपति । ततर्प । तर्पिता। अतर्पीत् । तृम्फति ।

वा.शेतृम्फादीनां नुम् वाच्यः ।। आदिशब्दः प्रकारे । तेन येऽत्र नकाराऽनुषक्तास्ते तृम्फादयः । ततृम्फ । तृफ्यात् । मृड सुखने । पृड च । मृडति । पृडति । शुन गतौ । शुनति । इषु इच्छायाम् । इषुगमीति छः । इच्छति । तीषेति वेट् । एषिता, एष्टा । एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् । कुट कौटिल्ये । गाङ्कुटादीति ङित्त्वम् । चुकुटिथ । चुकोट, चुकुट । कुटिता । पुट संश्लेषणे । पुटति । पुटिता। स्फुट विकसने । स्फुटति । स्फुर स्फुल संचलने । स्फुरति । स्फुलति ।

मध्यमनोरमा

तस्मादस्य वार्तिकस्य कृत्प्रत्ययमात्रविषयत्वात् तिङ्प्रत्ययविषये इदं वार्तिकं न प्रवर्तते इत्यर्थः। तेन व्यचिष्यतीत्यादौ ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं न । **उछि उञ्छे–** क्षेत्रे स्वामिना अन्नादीनाम् उद्वहनसमये भूमौ यदन्नं पतति तस्य कणशः यदादानम्, एकैकस्य यद्ग्रहणं तदुञ्छपदेनोच्यते । **शिलपदेन** स्वामिपरित्यक्तानां कणशादीनां धान्यशीर्षकादीनां कणपर्यन्तानामर्जनं स्वीकरणमुच्यते । तत्र शिलपदार्थः प्रकृताऽनुपयुक्तोऽपि श्लोकार्द्धानुरोधादुक्तः, इति यादवनाम्ना कोषकारः । **द्विहल्ग्रहणस्येति**— तस्मान्नुड्द्विहल इति सूत्रे द्विहल्ग्रहणमनेकहल उपलक्षणम् । तेन एकहलो धातोरत आदेरित्यभ्यासाकारस्य दीर्घे जाते आत आततुरित्यादौ नुट् न भवति। एवं च ऋच्छ्धातोः छे चेति तुकि जाते ऋकारैकदेशस्य रेफस्य हल्त्वेन ग्रहणात् त्रिहल् त्वेऽपि नुडागमो भवतीत्यर्थः । **आनर्च्छेति**— ऋच्छ् इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासऋकारस्य उरदित्यत्वे रपरत्वे हलादिशेषे अत आदेरित्यभ्यासाकारस्य दीर्घे आ ऋच्छ् इति जाते ऋच्छत्यॄतामिति गुणे नुडागमः । **लोभितेति–** तीषसहलुभरुषरिषः इतीड्विकल्पः । **लोभिष्यतीति–** आर्धधातुकस्येतीट् । **प्रकारे इति**— सादृश्ये इत्यर्थः । सादृश्यञ्च नकारानुषक्तत्वेन । **तदेतदाह–** येऽत्र नकारानुषक्ताः इति । अत्र तुदादौ नकारोपधा ये धातवस्ते तृम्फादय इत्यर्थः। **इच्छतीति**— इषुगमियमां छः इति षकारस्य छकारः । **एषितेति–** तीष सहेति वेट् । **इष्यादिति–** आशीर्लिङि । विधिलिङि तु इच्छेदिति बोध्यम् । **ङित्त्वमिति–**तेन चुकुटिथेत्यत्र पुगन्तेति गुणस्य क्ङिति चेति निषेधः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उज्झाञ्चकारेति— लिटि इजादेश्चेत्याम् । **लोब्धेति–** लुटि तीषसहेति इड्विकल्पे गुणे झषस्तथोरिति धः,तस्य झलां जश् झशीति भस्य बः । अतर्पीदिति– लुङ् तिप्, इतश्च, अट्, सिच्, इट्, अस्ति सिच इति ईट्, गुणः, इट ईटि, सवर्णदीर्घः । **तृम्फति–** लटि शः, अनिदितामिति नलोपे शे तृम्फादीनामिति नुम् ! अनुस्वारपरसवर्णौ । **इच्छतीति**— इष्धातोर्लट्, तिप्, तुदादिभ्यः शः, इषुगमियमां छ इति षस्य छः, इ छ ति इति, छे चेति तुक्, तस्य श्चुत्वेन चः। **एषितेति**— लुट्, तिप्, तास्, तिपः डादेशः, तीषसहेति इट्, पुगन्तेति गुणः, डित्त्वसामर्थ्याट्टेर्लोपः । इडभावे ष्टुत्वम् ।

वा. श प्रत्यय परे तृम्फादि धातुओं को नुमागम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७६५. स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः ८।३।७६॥ षत्वं वा । निष्फुरति, निस्फुरति इत्यादि । णू स्तुवने । परिणूत गुणोदयः । नुवति । नुनाव । नुविता । इति कुटादयः । टुमस्जो शुद्धौ । मज्जति । ममज्ज । मस्जिनशोरिति नुम् । वा. मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम् वाच्यः । संयोगादिलोपः । ममङ्क्थ, ममज्जिथ । मङ्क्ता । मङ्क्ष्यिति । अमाङ्क्षीत् । आमाङ्क्षुः । रुजो भङ्गे । अरौक्षीत् । भुजो कौटिल्ये । रुजिवत् । विश प्रवेशने । विशति । मृश आमर्शने । आमर्शनं= स्पर्शः। अम्राक्षीत्, अमार्क्षीत्, अमृक्षत् । स्पृशमृशेति च्लेः सिज् वा । षद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु । विसरणं दुःखम् । सीदतीत्यादि ।

मध्यमनोरमा

परिणूतेति– परिपूर्वकान्नूधातोः क्तप्रत्ययः, उपसर्गादसमास इति णत्वार्थमुदाहृतम् । **नुवतीति–** णो नः, लट्, तिप्, शः, अचिश्न्वित्युवङ् । **मज्जतीति**—झलां जश् झतीति शस्य जः । **ममङ्क्थेति–** द्वित्वादिना ममस्ज् इति जाते जकारात् पूर्वं नुम् । मिदचोऽन्त्यात् पर इति सकारात् पूर्वं यदि नुमागमः स्यात्तर्हि सकारस्य संयोगादित्वाभावात् स्कोरिति लोपो न स्यात् । जकारात् पूर्वं नुमागमे तु स्कोरिति सकारस्य संयोगादित्वेन लोपो भवति । जकारस्य कुत्वेन गकारे खरि चेति तस्य ककारे नश्चापदान्तस्येति अनुस्वारः । परसवर्णे ङकारः । भारद्वाजमते इट् पक्षे **ममज्जिथेति । मङ्क्तेति**—नुमि सलोपे कुत्वे चर्त्वम् । **मङ्क्ष्यतीति-** कुत्वे चर्त्वे आदेशेति सस्य षत्वम् । **अमाङ्क्षीदिति-** वदव्रजेति वृद्धिः । **अमाङ्क्तामिति-** झलो झलीति सिचो लोपः । **अमाङ्क्षुरिति–** सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, जकारस्य कुत्वादि, सिचः सकारस्य षत्वम् । **अरौक्षीदिति**—वदव्रजेति वृद्धिः । **अम्राक्षीदिति–** स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा वाच्यः इति सिचि अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्यामिति अमागमपक्षे ऋकारस्य यण्, वदव्रजेति वृद्धिः । अमागमाभावे **अमार्क्षीदिति–** वदव्रजेति ऋकारस्यार् । **अमृक्षदिति-** सिचोऽभावे शल इगुपधादिति च्लेः क्सादेशः । **सीदतीति–** पाघ्रेति सीदादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

षत्वं वेति- 'सिवादीनां वा' इत्यतो वेत्यनुवर्तते, मूर्धन्य इत्यस्य अधिकारः । तथां च सूत्रार्थः- निस् नि वि इत्येतेभ्य उपसर्गेभ्यः परस्य स्फुरस्फुलधात्वोः सस्य षः भवतीति । **निष्फुरतीति–** नि पूर्वकात् स्फुर् धातोर्लट्, तिप्, शः, स्फुरतिस्फुलत्योरिति षत्वम् । **नुनावेति**—णो नः, लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वम्, अचो ञ्णिती ति वृद्धिः, आवादेशः । **नुवितेति–** लुट्, तिप्, तास्, इट्, तिपो डादेशः, टेर्लोपः, गाङ्कुटादिभ्य इति ङित्त्वान्न गुणः, अचिश्नु इत्युवङ् । **मज्जतीति-** टुमस्जो इत्यत्र आदिर्ञिटुडव इति टु इत्, उपदेशेऽज् इति ओकारश्च । मस्ज् अति इति जाते सस्य श्चुत्वेन शः, तस्य जश्त्वेन जः। **अमृक्षदिति–** च्लेः क्सः, अमृश् स त् इति जाते व्रश्चेति शस्य षः, षढोरिति षस्य कः, आदेशेति षत्वे संयोगे कृते रूपम् ।

हिन्दी

७६५. निर् नि और वि उपसर्ग से परे स्फुर और स्फुल धातु के स को ष होता है ।
वा. मस्ज् धातु के अन्त्यवर्ण से पूर्व में नुम् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शद्लृ शातने । ७६६. शदेः शितः १।३।६०॥ शिद्भाविनोऽस्मात् तङानौ स्तः। शीयते । शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शशाद । शत्ता । शत्स्यति । अशदत् । अशत्स्यत् । कॄ-विक्षेपे ।
७६७. ॠत इद्धातोः ७।१।१००॥ किरति । वा. इत्त्वोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धी विप्रतिषेधेन । चकार । चकरतुः । करिता, करीता । कीर्यात् । अकारीत् ।
७६८. किरतौ लवने ६।१।१४०॥ उपात् किरतेः सुट्, छेदेऽर्थे । उपस्किरति। वा. अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात् पूर्व इति वक्तव्यम् ॥ उपास्किरत् । उपचस्कार।
७६९. हिंसायां प्रतेश्च ६।१।१४१॥ उपात् प्रतेश्च किरतेः सुट् हिंसायाम् । उपस्किरति । प्रतिस्किरति । गॄ निगरणे ।
७७०. अचि विभाषा ८।२।२१॥ गिरते रेफस्य लोऽजादौ प्रत्यये । गिरति, गिलति । गरिता, गरीता । गलिता, गलीता । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । पृच्छति । पप्रच्छतुः । पप्रच्छुः । प्रष्टा । प्रक्ष्यति । अप्राक्षीत् ।

मध्यमनोरमा

शिद्भाविन इति—शित् प्रत्ययः भावी यस्मात्तस्मात् शद् धातोः कर्त्रर्थसार्वधातुके विवक्षिते आत्मनेपदं भवतीत्यर्थः । पाघ्रेति शीयादेशे शीयते-लट् । **शीयतामिति** लोट् । **अशीयतेति** लङ् । शीयेतेति- विधिलिङ् । एतेषु शप्रत्ययविषयत्वा दात्मनेपदम् । शशादेत्यादौ शिद्-भावित्वाभावान्नात्मनेपदम् । **अशददिति**—लुङि लृदित्त्वाच्लेरङ् । **चकारेति**–ॠच्छत्यॄतामिति गुणेऽर्, अत उपधाया इति वृद्धिः । **चकरतुरिति**- ॠच्छेति गुणः । **करिता, करीतेति**– वृतो वेति इटो दीर्घविकल्पः । **कीर्य्यादिति**– ॠत इद्धातोः, हलि चेति दीर्घः । **अकारीदिति**- सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **उपास्किरदिति**– लङि शप्रत्यये ॠत इत्त्वे अडागमे च कृते ककारात् पूर्वं सुट् । **उपचस्कारेत्यत्र** अभ्यासेन व्यवधानेऽपि ककारात् पूर्वं सुट् । **गरीतेति**—वृतो वेति इटो दीर्घः । **पप्रच्छतुरिति**– छे चेति छकारस्य तुगागमे संयोगात् परत्वादतुसः कित्त्वाभावेन तस्य ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं न । **प्रष्टेति**—व्रश्चेति छकारस्य षकारे छकारनिमित्तकस्य तुको निवृत्तौ ष्टुत्वम् । **प्रक्ष्यति इति**- व्रश्चेति षत्वे षढोरिति कत्वे आदेशेति सस्य षः ।

मध्यमनोरमापूरणी

चकारेति—लिट्, तिप्, णल्, द्वित्वमुरत्, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, च कॄ अ इति, इत्त्वोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धी पूर्वविप्रतिषेधेनेति नियमात् इत्त्वं प्रबाध्य वृद्धिः आर् ।

हिन्दी

७६६. शित् होने वाले शद् धातु से तङ् और आन प्रत्यय होते हैं ।
७६७. धातु के ॠ दन्त अङ्ग को इत् होता है ।
वा. इत्त्व और उत्त्व को बाधकर पूर्वविप्रतिषेध से गुण और वृद्धि होते हैं ।
७६८. उप से परे कॄ धातु को सुट् आगम होता है छेदन अर्थ में ।
वा. अट् और अभ्यास के व्यवधान में भी ककार से सुट् होता है ।
७६९. उप और प्रति से परे कॄ धातु को सुट् आगम होता है हिंसा अर्थ में ।
७७०. गॄ धातु के रेफ को ल होता है अजादि प्रत्यय परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृङ् प्राणत्यागे । ७७१. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १।३।६१॥ लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङानौ नान्यत्र । ङित्त्वं स्वरार्थम् । रिङ् । इयङ् । म्रियते । ममार । ममर्थ । मम्रिव । मम्रिम । मर्ता । मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत । पृङ् व्यायामे । प्रायेणायं व्याङ्पूर्वः । व्याप्रियते । व्यापप्रे । व्यापरिष्यते । ह्रस्वादङ्गादिति सिज्लोपः । व्यापृत । व्यापृषाताम् । जुषी प्रीतिसेवनयोः । जुषते । जुजुषे । ओविजी भयसंचलनयोः । प्रायेणायमुत्पूर्वः । उद्विजते । ७७२. विज इट् १।१।२॥ विजेः पर इडादिप्रत्ययो ङिद्वत् । उद्विजिता । उद्विजिष्यते । ओलजी ओलस्जी व्रीडने । लजते । लेजे । लज्जते । ललज्जे।

मध्यमनोरमा

अप्राक्षीदिति—वदव्रजेति वृद्धिः, व्रश्चेति षः, षढोरिति कत्वं, सिचः सस्य षत्वम् । **ङित्त्वं स्वरार्थमिति**—आत्मनेपदव्यवस्था म्रियतेर्लुङलिङोरिति सूत्रेणैव सिद्धा, ङित्त्वं तु ङिदुपदेशाल्ल-सार्वधातुकमनुदात्तमिति ङित परस्य लादेशसार्वधातुकस्य अनुदात्तस्वरार्थम् । **रिङिति-** रिङ्-शयग्लिङ्क्षु इति सूत्रेणेति शेषः । अचिश्नुधातु इति इयङ् । **ममर्थेति-** अचस्तास्वदिति क्रादिनियमा-दिट् । **मरिष्यतीति-** ऋद्धनोः स्ये इति इडागमः । **अमृतेति-** ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः, **व्याप्रियते इति**—रिङ् इयङ् । ह्रस्वादङ्गादिति । सिचो लोपः, व्यापृत । **व्यापृषाताामिति-** आदेशेति सिचः सस्य षत्वम् । **ङिद्वदिति-** ङित् परतो यत् कार्यं तत् ङिद्वत् परतोऽपि भवति, तेन उद्विजितेत्यादौ क्ङिति चेति गुणनिषेधः ।

॥ इति तुदादिः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

गिलतीति—गॄ-धातोर्लट्, तिप्, शः, ॠत इद्धातोः इति ऋकारस्येत्त्वे रपरत्वे च अचि विभाषेति रेफस्य लत्वम् । **गलीतेति-** लुट्, तिप्, तास्, तिपः डादेशः, इट्, गुणः, टेर्लोपः, अचि विभाषेति रेफस्य लः, वॄतो वेति इटो दीर्घः । दीर्घाभावे **गलितेति** । -लत्वाभावे इटो दीर्घे **गरीतेति,** दीर्घाभावे **गरितेति** । **पृच्छतीति**—प्रच्छ्धातोर्लट्, तिप्, शः, सार्वधातुकमपि-दिति ङित्त्वात् ग्रहिज्येति रेफस्य सम्प्रसारणम् ऋकारः, सम्प्रसाणाच्चेति पूर्वरूपम् । **पप्रच्छतुरिति-** लिट्, तसोऽतुस्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, हलादिशेषः, सस्य रुत्वविसर्गौ । असंयोगा-ल्लिट् किदित्यस्य संयोगपरत्वादप्रवृत्तेः सम्प्रसारणं न । **अप्राक्षीदिति-** लुङ्, तिप्, इतश्च, अट्, च्लिः, तस्य सिच्, अस्ति सिच् इति ईट्, वदव्रजेति वृद्धिः, अप्राच्छ्सीत् इति, व्रश्चेति छस्य षत्वे छनिमित्तकस्य चस्य निवृत्तौ षढोः कः सीति षस्य कः, सस्य षत्वे संयोगे च रूपम् । **म्रियते इति**—मृङ्धातोर्लट्, म्रियतेरिति आत्मनेपदसंज्ञा, लटस्तः, टेरेत्वम्, शः, रिङ्शयगिति ऋतः रिङ्, इयङ् । **उद्विजितेति-** लुट्, तः, तास्, डादेशः, टेर्लोपः, इट्, विज इट् इति इडादि-प्रत्ययस्य ङित्त्वात् पुगन्तेति प्राप्तो गुणः क्ङिति चेति निषिद्ध्यते । **लज्जते-** लट्, तः, एत्वं, शः, सस्य श्चुत्वेन शः, शस्य जश्त्वेन जः ।

॥ इति तुदादिप्रकरणम् ॥

हिन्दी

७७१. लुङ् लिङ् परे रहते और शित् प्रत्यय के प्रकृतिभूत मृङ् धातु से आत्मने-पद होता है, अन्यत्र नहीं ।

७७२. विज् धातु से परे इडादि प्रत्यय ङिद्वत् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ रुधादिप्रकरणम्

रुधिर् आवरणे । ७७३. रुधादिभ्यः श्नम् ३।१।७८।। शपोऽपवादः । रुणद्धि। श्नसोरल्लोपः । रुन्धति । रुणत्सि । रुन्द्धः । रुन्द्ध । रुणध्मि । रुन्ध्वः । रुन्ध्मः। रुन्द्धे । रुन्धाते । रुन्त्से । रुन्धाथे । रुन्द्ध्वे । रुन्धे । रुन्ध्वहे । रुन्ध्महे । रुरोध, रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते । रुणद्धु । रुन्द्धात् । रुन्द्धाम् । रुन्धन्तु। रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुणधाम । रुन्द्धाम् । रुन्धाताम् । रुन्धताम् । रुन्त्स्व । रुणधै । रुणधावहै । रुणधामहै । अरुणत् । अरुन्द्धाम् । अरुन्धन् । दश्चेति रुर्वा । अरुणः, अरुणत् । अरुन्धम् । अरुणधम् । अरुन्द्ध । अरुन्द्ध । अरुन्धाताम् । अरुन्द्धत । रुन्ध्यात्, रुन्धीत् । रुध्यात्, रुत्सीष्ट । अरुदत्, अरौत्सीत् । अरुद्ध । अरोत्स्यत्, अरोत्स्यत । भिदिर् विदारणे । छिदिर् द्वैधीकरणे। युजिर् योगे । रिचिर् विरेचने । रिणक्ति, रिङ्क्ते । रिरेच । रेक्ता । अरिणक्। अरिचत्, अरैक्षीत्, अरिक्त । विचिर् पृथग्भावे । विनक्ति, विङ्क्ते ।

मध्यमनोरमा

रुणद्धीति— रुध् धातोः धकारात् पूर्वं श्नमि शकारमकारलोपे नकारस्य णत्वे रुणध् इति जाते झषस्तथोरिति तिपस्तकारस्य धकारे झलां जशिति पूर्वधकारस्य दः । **रुन्धः इति**- रुणध् तस् इति जाते श्नसोरल्लोपे णत्वस्यासिद्धत्वान्नश्चापदान्तस्येति अनुस्वारे परसवर्णः, तसस्तकारस्य धत्वे झरो झरीति पूर्वधकारस्य पाक्षिको लोपः । लोपाभावे झलां जशिति पूर्वधस्य दः । **रुणत्सीति**- खरि चेति धस्य तः । **रुन्ध इति**- थस्, झषस्तथोरिति थस्य धः, श्नसोरल्लोपः, झरो झरि सवर्णे इत्यादि पूर्ववत् । एवं **रुन्धे इति**– स्वरितेत्त्वादात्मनेपदपक्षे तस्य धः, अल्लोप इत्यादि । **रुन्धि इति**—लोटः सेर्हिः, हुझल्भ्य इति हेर्धिः, अलोपः, झरो झरीति पाक्षिको धलोपः । लोपाभावे जश्त्वम् । **रुन्धामिति**– लोट्, आत्मनेपदे आमेतः, धत्वम् अल्लोप इत्यादि। **रुणधै इति**– इट्, एत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्य पिच्च, आटः पित्त्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाभावात् श्नसोरित्यल्लोपो न । **अरुणत् इति**– लङ् तिप्, इतश्च, हल्ङ्याब्भ्यः, झलां जशोऽन्ते इति धस्य दः, वाऽवसाने । **अरुन्धन्निति**- झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्येति तकारलोपः, अरुनधन् इत्यवशिष्यते, श्नसोरल्लोपः, नस्याऽनुस्वारपरसवर्णौ । **अरुणत्– अरुणः इति**—सिप्, इकारस्येतश्चेति लोपे हल्ङ्यादिना सकारलोपे धातोर्धकारस्य झलां जशोऽन्त इति दकारः । दश्चेति दकारस्य रुत्वपक्षे विसर्गः । रुत्वाभावे दकारस्य वाऽवसान इति पाक्षिकं चर्त्वम् । **अरुन्धमिति**– थसस्तमादेशः, धत्वम्, अल्लोपः, झरो झरीति पाक्षिको धलोपः । **अरुणधमिति**—मिपोऽम्। **अरुन्धेति**– लङ्, आत्मनेपदपक्षे झषस्तथोरिति धः, अल्लोपः, झरो झरि सवर्णे इत्यादि । **अरुन्धतेति**- आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात् । **रुन्ध्यादिति**—विधि लिङ्, परस्मैपदम् । **रुन्धीतेति**– विधिलिङ् आत्मनेपदम् । **रुध्यादिति**– आशीर्लिङ् । **रुत्सीष्टेति** आशीर्लिङ्, आत्मनेपदम् । अरुधदिति– इरितो वेति च्लेरङ्पक्षे । अङभावे **अरौत्सीदिति**- वदव्रजेति वृद्धिः । **रिणक्तीति**- चोः कुः । **अरिणक् इति**- लङ्, तिप्, इतश्च, हल्ड्याद्दिलोपः, चोः कुः । **अरिचत् इति**- इरितो वेति पक्षे ऽङ् । अङभावे **अरैक्षीदिति**– च्लेः सिच्, चोः कुरिति चस्य कः,

हिन्दी

७७३. कर्त्रर्थ सार्वधातक परे रहते रुधादि धातुओं से श्नम् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

क्षुदिर् संपेषणे । क्षुणत्ति, क्षुन्ते । क्षोत्ता । अक्षुदत् । अक्षौत्सीत् । अक्षुत्त । उच्छृदिर् दीप्तिवेदनयोः । छृणत्ति । छृन्ते । चच्छर्द । सेऽसिचीति वेट् । चच्छृदिषे, चच्छृत्से। छर्दिता, छर्दिष्यति । छर्त्स्यति । अच्छृदत्, अच्छर्दीत्, अच्छर्दिष्ट । उतृदिर् हिंसानादरयोः । तृणत्ति, तृन्ते । कृती वेष्टने । कृणत्ति । तृह हिसि हिंसायाम्।
७७४. तृणह इम् ७।३।९२।। तृहः श्नमि कृते इम्, हलादौ पिति । तृणेढि । तृण्ढः । ततर्ह । तर्हिता । अतृणेट् ।
७७५. श्नान्नलोपः ६।४।२३।। हिनस्ति । जिहिंस । हिंसिता ।
उन्दी क्लेदने । उनत्ति । उन्त्तः । उन्दन्ति । उन्दाञ्चकार ।

मध्यमनोरमा

सस्य षत्वम्, वदव्रजेति वृद्धिः । आत्मनेपदे च्लेरङोऽभावात् **अरिक्तेति–** सिचो झलो झलीति लोपः । **अक्षुददिति—** इरितो वा । **अक्षुत्तेति–** झलो झलीति सलोपः । **अच्छिददिति–** इरितो वेत्यङ् । इत्युभयपदिनः । **तृणेढीति–** तृह्धातोः तिप्, श्नमागमः, श्नमो मित्त्वादन्त्यादचः परत्वे तृणह इम् इति इम् आगमः अकारात् परः, आद् गुणे तृणेह् इति जाते हो ढः, झषस्तथोरिति तस्य धः, ष्टुत्वं, ढो ढे लोपः । **तृण्ढः इति–** तसि श्नमि तसोऽपित्त्वेन ङित्त्वात् श्नसोरल्लोपः, ढत्वं, धत्वं, ष्टुत्वं, ढो ढे लोपः । **अतृणेट् इति–** लङ् तिप्, इतश्च, हल्ङ्याबिति तिपो लोपः, तृणह् इत्यस्य इमागमे तृणेह इति जाते होढः, ढस्य झलां जशोऽन्त इति डः, तस्य वाऽवसाने इति पक्षे ट : । **हिनस्तीति—** इदितो नुम् धातोरिति नुम्, हिंस् इति जाते तस्मात् तिपि श्नमागमो नकारात् पूर्वम् इकारात् परस्तेन हिनंस् इति स्थिते श्नान्नलोप इति श्नमः परस्य नुम्सन्धिनकारस्य लोपः । **उनत्तीति—** उन्द् इत्येतस्य नकारात् पूर्वं श्नम्, श्नान्नलोपः, खरि चेति दस्य तः । **उन्दाञ्चकारेति—** इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः इति आम्, कृञोऽनुप्रयोगः । **औनदिति—** लङ्, तिप्, इतश्च, उन्द् इत्यस्य नकारात् पूर्वं श्नमि श्नान्नलोपः, आडागमे हल्ङ्यादिलोपे वाऽवसाने इति दस्य तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

रुन्धीतेति— रुध्धातोर्विधिलिङि आत्मनेपदे तः, लिङः सीयुट्, श्नम्, श्नसोरल्लोपः, लिङः सलोप इति सलोपः, लोपो व्योरिति यलोपः । **रुध्यादिति—** आशीर्लिङि तिप्, इतश्च, यासुट्, अनिदितामिति नलोपः, स्कोरिति सलोपः । **रिणक्तीति–** रिच्धातोर्लट्, तिप्, सार्वधातुक संज्ञा, श्नम्, रिनच् ति इति, चोः कुः, अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **विङ्क्ते इति-** विचः लट्, तः, टेरेत्वम्, श्नम्, अल्लोपः, चस्य कुत्वम्, नस्याऽनुस्वारपरसवर्णौ । **तृणह इमिति—** तृणह इति कृतश्नमः तृह्धातोः षष्ठ्यां रूपम् । नाभ्यस्तस्याचीति सूत्रतः पिति इत्यस्य उतो वृद्धिरित्यतः 'हलि'·इत्यस्य चानुवृत्तिः, ततः सूत्रार्थः– तृहः श्नमि कृते इत्यादि । **श्ननान्न लोप इति–** श्नम्प्रत्ययैकदेशस्य श्न इत्यस्य पञ्चम्यां श्नात् इति, नस्य लोपः नलोप इति ।

हिन्दी

७७४. तृह् धातु को श्नम् करने पर इम् आगम होता है, हलादि पित् प्रत्यय परे ।
७७५. श्नम् से परे न् का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः । औनदम् । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । अनक्ति । अङ्क्तः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आनञ्जिथ, आनङ्क्थ । अञ्जिता, अङ्क्ता । अङ्ग्धि । अनजानि । आनक् ।

७७६. अञ्जेः सिचि ७।२।७१।। अञ्जेः सिचो नित्यमिट् । आञ्जीत् । तञ्चू सङ्कोचने । तनक्ति । तङ्क्ता, तञ्चिता । ओविजी भयसंचलनयोः । विनक्ति । विङ्क्तः । विज इडिति ङित्त्वम् । विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् । शिष्लृ विशेषणे । शिनष्टि । शिंष्टः । शिंषन्ति । शिनक्षि । शिशेष । शिशेषिथ । शेष्टा । शेक्ष्यति । हेर्धिः । शिण्ढि । शिनषाणि । अशिनट् । शिंष्यात् । शिष्यात् । अशिषत् । अशेक्ष्यत् । एवं पिष्लृ संचूर्णने । भञ्जो आमर्दने । श्नान्नलोपः । भनक्ति । बभञ्जिथ, बभङ्क्थ । भङ्ग्धि । अभाङ्क्षीत् ।

मध्यमनोरमा

औन्तामिति—तसस्ताम्, श्नान्नलोपः, श्नसोरल्लोपः, झरो झरीति पाक्षिको दलोपः । औन्दन्निति-झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्येति तलोपः, श्नान्नलोपः, श्नसो रल्लोपः । **औन इति-** उन्द धातोः लङः सिपि श्नमागमे उनन्द् इत्यत्र श्नान्नलोप इति नलोपे उनद् इति जाते सिपः पित्त्वेन ङित्त्वाभावात् श्नसोरित्यकारलोपाभावेन सिप इकारलोपे हल्ङ्यादिना लोपे दश्चेति दस्य पक्षे रुत्वम् । तदभावे वाऽवसान इति । अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । व्यक्तिर्विवेचनं, म्रक्षणं, स्निग्धता । **अनक्तीति**—नकारात् पूर्वं श्नम्, श्नान्नलोपः, जस्य कुत्वेन गः, तस्य चर्त्वेन कः । **अङ्क्तः इति-** श्नान्नलोपः, श्नसोरल्लोपः । **आनञ्जेति-** अञ्ज् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे अत आदेरिति दीर्घे आ अञ्ज् इति जाते तस्मान्नुड् द्विहल इति नुट् । **आनञ्जिथेति-** ऊदित्त्वात् स्वरतीति इड्विकल्पः । **अङ्ग्धि इति-** लोटः सेर्हिः, हुझल्भ्यो हेर्धिः, श्नमागमे श्नान्नलोपः, हेरपित्त्वेन ङित्त्वात् श्नसोरित्यल्लोपे चोः कुरिति गकारे नस्याऽनुस्वारे परसवर्णे ङकारः । **अनजानीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट्, श्नान्नलोपः । **आनगिति-** इतश्चेति इकार-लोपे हल्ङ्यादिना अपृक्तलोपः, जस्य कुत्वमाडागमः । **तङ्क्तेति**—ऊदित्त्वादिड् वा ।

मध्यमनोरमापूरणी

अविनगिति—विज्धातोर्लङ्, तिप्, श्नम्, इतश्च, अट्, अविनज्त् इति, तस्य हल्ङ्या-दिलोपः, चोः कुरिति जस्य गः, तस्य वाऽवसान इति कः । **शिंष्ट इति**—लट्, तस्, श्नम्, तसो ङित्त्वात् श्नसोरल्लोप इत्यल्लोपः नस्यानुस्वारः, तस्य ष्टुत्वम्, सस्य रुत्वविसर्गौ । **शिण्ढि इति**—शिष् धातोर्लोटः सेर्हिः, श्नम्, हेर्धिः, श्नसोरल्लोपः, नस्यानुस्वारः । शिंष् धि इति, षस्य जश्त्वेन डः, धस्य ष्टुत्वेन ढः, परसवर्णः, झरो झरीति डलोपे शिण्ढि इति, डलोपाभावे शिण्-ड्ढि इति । **भनक्ति इति-** लट्, तिप्, श्नम्, श्नान्नलोप इति धातोर्नस्य लोपः, जस्य कुत्वेनगः, तस्य चर्त्वम् । **अभाङ्क्षीदिति**—लुङ्, तिप्, सिच्, इतश्च, ईट्, वदव्रजेति वृद्धिः, जस्य कुत्वेन गः, चर्त्वेन कः, षत्वम्, अनुस्वारपरसवर्णौ ।

हिन्दी

७७६. अञ्ज् धातु से परे सिच् को नित्य इट् आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

भुज पालनाभ्यवहारयोः । भुनक्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति । अभुनक् ।

७७७. भुजोऽनवने १।३।६६।। तङानौ स्तः । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम्-महीं भुनक्ति । ञिइन्धी दीप्तौ । इन्धे । इन्धाते । इन्त्से । इन्धाञ्चक्रे । इन्धिता । इन्धाम् । इन्धाताम् । इन्धताम् । इनधै । ऐन्ध । ऐन्धाताम् । ऐन्धत । ऐन्धाः । विद विचारणे । विन्ते । वेत्ता ।

।। इति रुधादिप्रकरणम् ।।

मध्यमनोरमा

विविजिथेति- विज इडिति इटो ङित्त्वात् पुगन्तेति गुणो न । **अविनगिति-** लङ्, तिप्, इतश्च, हल्ङ्यादिलोपः, कुत्वादि । **शिनष्टीति**—श्नमागमः, ष्टुत्वम् । **शिंष्ट इति-श्नसोरल्लोपः।** **शिनक्षीति-** सिपि षढोरिति षस्य कः, षत्वम् । **शिशेषिथेति-** अजन्तत्वस्य अकारवत्वस्य चाभावादचस्तास्वदिति उपदेशेऽत्वत इति सूत्रयोरप्रवृत्त्या क्रादिनियमान्नित्यमिट् । **शिण्ढीति-** लोटः सेर्हिः, तस्य धिः, श्नम्, हेरपित्त्वेन ङित्त्वात् श्नसोरल्लोपः । **शिष्यादिति**-आशीर्लिङ्, शब्विषयाभावान्न श्नम् । **अशिषदिति-** पुषादीति लृदित्त्वादङ् । **अशेक्ष्यदिति**—षढोरिति कत्वं षत्वम् । **बभञ्जिथेति-** भारद्वाजमते इट्, तद्भिन्नमते उपदेशेऽत्वत इति क्रादिनियमप्राप्तस्येटो-निषेधः । **अभुनगिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, हल्ङ्याबिति लोपः, चोः कुः, इति जस्य गः, वाऽवसान इति कः । **भुजोऽनवने**—अवनं रक्षणं तद्भिन्ने भक्षणेऽर्थे भुज्धातोरात्मनेपदं भवतीति सूत्रार्थः । परस्मैपदिनो गताः । **अथात्मने पदिनौ । इन्धे इति-** झषस्तथोरिति धः, श्नान्नलोपः, श्नसोरल्लोपः, झरो झरि सवर्णे इति पाक्षिको धलोपः । **इन्धते इति-** आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात् । **इन्धाञ्चक्रे इति-** इजादेरिति आम्, कृञोऽनुप्रयोगः । **इन्धामिति-** लोट्, तः, एत्वम् आमेतः, श्नान्नलोपः, श्नसोरल्लोपः, झषस्तथोर्धोऽधः, झरो झरीति पक्षे लोपः। **इन्धतामिति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात् । **इनधै इति-** उत्तमपुरुषे इट्, एत्वम्, एत ऐ, आडुत्तमस्येत्याट्, वृद्धिः, श्नान्नलोपः। **ऐन्धेति-** लङ्, तः, श्नम्, श्नान्नलोपः, श्नसोरल्लोपः, झषस्तथोर्धोऽधः, झरो झरीति पाक्षिको धलोपः, आडागमः । **ऐन्धाः इति**—थास्, झषस्तथोरिति थस्य धः, झरो झरीति पूर्वधकारस्य लोपः। लोपाऽभावे धस्य जश्त्वम् । **विन्ते इति**—श्नम्, श्नसोरल्लोपः, दकारस्य झरो झरीति पक्षे लोपः । लोपाभावे खरि चेति दस्य तः ।

।। इति रुधादिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अभुनगिति—लङ् तिप्, श्नम्, इतश्च, कुत्वादि । **अनवने किम् इति-** सूत्रेण रक्षणभिन्ने अर्थे आत्मने पदं भवति, अतः 'महीं भुनक्ति' इत्यत्र पालनेऽर्थे नात्मनेपदम् । **इन्धे इति**—लटि तः, श्नम्, नलोपः, टेरेत्वम्, धत्वं, लोपः । **इन्धाते इति**—लट्, आताम्, श्नम्, टेरेत्वम्, श्नसोरल्लोपः । **वेत्तेति**—लुट्, तः, तास्, डादेशः, आसः लोपः, पुगन्तेति गुणः । दस्य चर्त्वम्।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्याम् रुधादिप्रकरणम् ।।

हिन्दी

७७७. पालन से भिन्न अर्थ में भुज् धातु से तङ और आन प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ तनादिप्रकरणम्

तनु विस्तारे । ७७८. तनादिकृञ्भ्य उः ३।१।७९।। तनोति, तनुते । ततान, तेने । तनिता । तनिष्यति, तनिष्यते । तनोतु, तनुताम् । अतनोत्, अतनुत। तनुयात्, तन्वीत । तन्यात्, तनिषीष्ट । अतनीत्, अतानीत् ।

७७९. तनादिभ्यस्तथासोः २।४।७९।। तनादेः सिचो वा लुक् तथासोः । अनुदात्तोपदेशेति नलोपः । अतत, अतनिष्ट । अतथाः, अतनिष्ठाः । अतनिष्यत्, अतनिष्यत । षणु दाने । सनोति, सनुते । ये विभाषेति आत्वम् । सायात्, सन्यात्।

७८०. जनसनखनां सञ्झलोः ६।४।४२।। एषामाकारोऽन्तादेशः झलादौ सनि झलादौ क्ङिति च । असात्, असनिष्ट । असाथाः, असनिष्ठाः ।

क्षणु हिंसायाम् । क्षणोतु, क्षणुते । ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अक्षणीत् । अक्षत, अक्षणिष्ट । अक्षथाः अक्षणिष्ठाः । क्षिणु च । उप्रत्यये लघूपधगुणो वा । क्षिणोति। अक्षेणोत्। अक्षित, अक्षेणिष्ट । तृणु अदने । तृणोति, तर्णोति । तृणुते, तर्णुते। डुकृञ् करणे । करोति । अत उत् सार्वधातुके । कुरुतः । हलि चेति दीर्घे प्राप्ते।

मध्यमनोरमा

तनोतीति—तनादिकृञ्भ्य उः, उकारस्य सार्वधातुकेति गुणः । स्वरितेत्त्वादात्मनेपदपक्षे तनुते इति । **तेने इति**—अत एकेति एत्त्वाभ्यासलोपौ । **अतनीद् अतानीदिति**– अतो हलादेर्लघोरिति वृद्धिविकल्पः । **अततेति**—तनादिभ्य इति सिचो लुकि अनुदात्तोपदेशवनति तनोत्यादीनामिति अनुनासिकलोपः । सिचो लुगभावपक्षे **अतनिष्टेति**- इट्, षत्वं, ष्टुत्वम्। एवम् **अतथाः इति**- सिचो लुक्पक्षे अनुनासिकलोपः । तदभावे **अतनिष्ठा इति**- इडागमः । **सनोतीति**— धात्वादेरिति सः । **सायादिति**– ये विभाषेति नकारस्याकारः । आत्वाभावे **सन्यादिति । झलादौ सनि**—क्ङिति चेति झलादाविति सनोऽपि विशेषणमित्यर्थः । **असातेति**- तनादिभ्य इति सिचो लुकि जनसनेत्यात्वम् । सिचो लुगभावे **असनिष्टेति** । **अक्षणीदिति**—अतो हलादेरिति प्राप्ताया वृद्धेर्ह्म्यन्तेति निषेधः । **अक्षतेति**- तनादिभ्य इति सिचो लुक्, अनुदात्तोपदेशेति णलोपः । सिचो लुगभावे **अक्षणिष्टेति** । एवम् **अक्षथा** इत्यत्र सिचो लुक् विकल्पः । **अक्षतेति**– सिचो लुक्, अनुनासिकलोपः । लुगभावे **अक्षणिष्टेति । तृणोति, तर्णोतीति**– उप्रत्यये लघूपधगुण विकल्पः । **तृणुते, तर्णुते इति**- उप्रत्यये लघूपधगुणविकल्पः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तनोतु इति—लोट्, तिप्, सार्वधातुकसंज्ञा, तनादिकृञ्भ्य उः इति उः, तस्य गुणः । एरुः। **सायादिति**—सन्धातोराशीर्लिङि तिप् यासुट्, इतश्च, ये विभाषेति नस्य आत्त्वे सवर्णदीर्घे स्कोरिति सलोपः ।

हिन्दी

७७८. तनादि धातुओं एवं कृञ् धातु से उ प्रत्यय होता है, कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते।
७७९. तनादिधातुओं से परे सिच् का लुक् होता है, त व थास् परे विकल्प से ।
७८०. जन् सन् और खन् धातु को आकारान्त आदेश होता है, झलादि सन् परे व झलादि कित् ङित् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७८१. न भकुर्छुराम् ८।१।७९॥ भस्य कुर्छुरोरुपधाया न दीर्घः । कुर्वन्ति ।
७८२. नित्यं करोतेः ६।४।१०८॥ करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो म्वोः परयोः । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । चकार । चकर्थ । चकृव । चक्रे । कर्ता । करिष्यति, करिष्यते । करोतु । कुरुताम् । अकरोत्, अकुरुत ।
७८३. ये च ६।४।१०९॥ कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये । कुर्यात्, कुर्वीत । क्रियात्, कृषीष्ट । अकार्षीत् । अकृत । अकरिष्यत्, अकरिष्यत ।
७८४. सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे ६।१।१३७॥
७८५. समवाये च ६।१।१३८॥ आभ्यां परस्य करोतेः सुट् भूषणे संघाते चार्थे।

मध्यमनोरमा

करोतीति—उप्रत्यये कृ इत्यस्य सार्वधातुकेति गुणः, तेनैव उप्रत्ययस्यापि गुणः । **कुरुत इति-** कृ इत्यस्य गुणे कर् इति जाते अकारस्य उकारः । **कुर्वन्तीति**—अत उत्सार्वधातुके इत्यकारस्य उत्वे हलि चेत्युकारस्य दीर्घे प्राप्ते न भकुर्छुरामिति निषेधः । **चकर्थेति**– कृसृसूत्रेण इण्निषेधः। **चकर्थेति**—कृ सृ सूत्रेण इण्निषेधः । **करिष्यतीति**-ऋद्धनोः स्ये इतीट् । **अकरोदिति**- लङ्, उ- प्रत्ययः । **अकुरुतेति**– लङि आत्मनेपदे । **कुर्वीतेति**– आत्मनेपदं, सीयुट्, सलोपादि, उकारस्य यण् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अक्षणीदिति—लुङ्, तिप्, इतश्च, अट्, सिच्, इट्, अस्ति सिच इतीट्, वदव्रजेति प्राप्ताया वृद्धेः ह्यन्तक्षण इति निषेधः, इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः । **उप्रत्यये इति**—क्षिणोति इत्यत्र क्षिण् उ ति इति दशायां पुगन्तेति उप्रत्ययनिमित्तकः लघूपधगुणो न भवति, संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः इति परिभाषणात् । अयं चापि गुणः लघूपधसंज्ञापूर्वकः । अतः गुणः विकल्पेन। **कुर्वः, कुर्मः इति**- कृधातोर्लट्, वस्, मस्, उप्रत्ययः, कृ इत्यस्य गुणः, करुवस्, करुमस् इति, नित्यं करोतेरिति उकारलोपे सस्य रुत्वविसर्गौ । **अकरोदिति**—कृञः लङ्, तिप्, उः, इतश्च, धातोर्गुणः, उप्रत्ययस्यापि गुणः । **कुर्यादिति**—विधिलिङ्, तिप्, यासुट्, उप्रत्ययः, धातोर्गुणः, रपरत्वम्, अत उत्सार्वधातुके, कुर् उयास् ति इति, ये चेति उलोपः, लिङः सलोपः, इतश्च। **कृषीष्टेति**—आत्मनेपदे आशीर्लिङि तः, सीयुट्, सुट्, लोपो व्योरिति यलोपः, उश्चेति कित्त्वान्न गुणः, द्वयोः सकारयोः षत्वम्, ष्टुत्वम् । **संस्करोति**- सम्पूर्वक कृञः लट्, तिप्, उः, गुणः, ऋकारस्य उकारस्य च । संपरिभ्यामिति सुट्, मस्यानुस्वारः ।

हिन्दी

७८१. भसंज्ञक कुर् और छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है ।
७८२. कृ धातु के प्रत्यय सम्बन्धी उकार का नित्य लोप होता है वकार मकार परे ।
७८३. कृञ् से परे उ प्रत्यय का लोप होता है, यादि प्रत्यय परे रहते ।
७८४. ७८५. सम् और परि उपसर्ग से परे कृ धातु को सुट् आगम होता है, भूषण अर्थ में और संघात अर्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

संस्करोति- अलङ्करोतीत्यर्थः । संस्कुर्वन्ति- संघीभवन्तीत्यर्थः । संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्, संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात् ।

७८६. उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु ६।१।१३९॥ कृञः सुट् । चात् प्रागुक्तयोरर्थयोः । प्रतियत्नो गुणाधानम् । विकृतमेव वैकृतं विकारः । वाक्याध्याहारः आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणाः। एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं भुङ्क्ते । उपस्कृतं ब्रूते । वनु याचने । वनुते। ववने । मनु अवबोधने । मनुते । मेने । मनिता । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट।

॥ इति तनादिप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमा

क्रियादिति—आशीर्लिङ्, रिङ्शयगिति रिङादेशः । **अकार्षीदिति**– सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अकृतेति**—ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः । **अकरिष्यदिति**—ऋद्धनोः स्ये इतीट् । **अभूषणेऽपि इति**– भूषणसमवायाभ्यामन्यस्मिन्नर्थेऽपीत्यर्थः । तेन संस्कृता वाणी संस्कृतो देशः । इत्यादौ अभूषणाद्यर्थेऽपि सुट् । तत्र ज्ञापकं संस्कृतं भक्षा इति सूत्रे परिष्कारार्थस्य करोतेः ससुट्कोच्चारणमिति बोध्यम् । **उपस्कृता कन्या**- विभूषिता इत्यर्थः । **ववने इति**- न शसददवादिगुणानामिति सूत्रेण अत एकेति **प्राप्तस्य**[1] एत्वाभ्यासलोपयोः निषेधः। **मेने इति**—अत एकेति एत्वाभ्यासलोपौ ।

॥ इति तनादिप्रक्रिया ॥

मध्यमनोरमापूरणी

उपादिति—उप इत्यस्मात् परस्य करोतेः सुट् भवति, प्रतियत्ने वैकृते वाक्याध्याहारे चार्थे, चकारात् भूषणे संघाते चार्थेऽपि । **ववने इति**– वन् धातोर्लिट्, आत्मनेपदे तः, लिटस्तझयोरित्येश्, द्वित्वमभ्यास संज्ञा, हलादिशेषः, अत एकेति प्राप्तयोरेत्वाभ्यासलोपयोः न शसददवादिगुणानामिति निषेधः । **मेने इति**—लिट्, तः, एश्, द्वित्वम्, अत एकेति एत्त्वाभ्यासलोपौ। **मन्वीतेति**—विधिलिङ्, तः, सीयुट्, सुट्, उ-प्रत्ययः, लिङः सलोप इति सकारद्वयस्यापि लोपः । मन् उ इय् त इति, लोपो व्योर्वलीति यलोपे यणि रूपम् । **मनिषीष्टेति**- आशीर्लिङि तः, सीयुट्, सुट्, आर्धधातुकत्वादिट्, यलोपः, सकारद्वयस्य षत्वं, ष्टुत्वम् । इति मध्यमनोरमापूरण्याम् अर्कनाथ चौधरीत्यनेन कृतायां तनादिप्रकरणम् ।

हिन्दी

७८६. उप से परे कृ धातु को सुट् होता है, प्रतियत्न, वैकृत, वाक्याध्याहार, भूषण एवं संघात अर्थ में ।

टिप्पणी:-प्राप्तस्येत्यस्य स्थाने 'प्राप्तयोरेत्वाभ्यासलोपयोः' इति पठितव्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ क्र्यादिप्रकरणम्

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।

७८७. क्र्यादिभ्यः श्ना-३।१।८१॥ शपोऽपवादः । क्रीणाति । 'ईहल्यघोः', क्रीणीतः । श्नाभ्यस्तयोरातः । क्रीणन्ति । क्रीणासि । क्रीणीथः । क्रीणीथ । क्रीणामि । क्रीणीवः । क्रीणीमः । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । क्रीणीषे । क्रीणाथे क्रीणीध्वे । क्रीणे । क्रीणीवहे । क्रीणीमहे । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रियुः । चिक्रयिथ, चिक्रेथ । क्रेता । क्रेष्यति, क्रेष्यते । क्रीणातु, क्रीणीतात् । क्रीणीताम् । क्रीणाताम् । क्रीणताम् । अक्रीणात्, अक्रीणीत । क्रीणीयात्, क्रीणीत । क्रीयात्, क्रेषीष्ट । अक्रैषीत्, अक्रेष्ट । अक्रेष्यत्, अक्रेष्यत । प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च । प्रीणाति, प्रीणीते । श्रीञ् पाके । श्रीणाति, श्रीणीते । मीञ् हिंसायाम् । प्रमीणाति । हिनुमीना इति णत्वम् । प्रमीणीते । मीनातीत्यात्वम् । ममौ । मिम्यतुः । ममिथ, ममाथ।मिम्ये ।

मध्यमनोरमा

क्रीणातीति—अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **क्रीणन्ति इति**—झोऽन्तः, आलोपः । **ञित्त्वादात्मनेपदपक्षे क्रीणीते इति**—ई हल्यघोः । **क्रीणाते इति**—श्नाभ्यस्तयोरित्यालोपः । **क्रीणते इति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, आलोपः । **चिक्रायेति**—अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **चिक्रियतुरिति**-अचिश्नु इतीयङ् । **चिक्रेथ, चिक्रयिथेति**—ऋतो भारद्वाजस्य नियमात् इट । **भारद्वाजभिन्नमते अचस्तास्वदिति क्रादिनियमप्राप्तस्येटो निषेधः** । **चिक्रिये इति**-लिट्यात्मनेपदे इयङ् । **क्रीणतामिति**-आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, श्नाभ्यस्तयोरात इत्यालोपः । **क्रीणीतेति**—विधिलिङ्, आत्मनेपदम्, श्नाप्रत्ययः, सीयुट्, सीयुटः सलोपः, यलोपः, श्नाभ्यस्तयोरित्याकारलोपः । **अक्रैषीदिति**—सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **प्रमीणातीति**- हिनुमीनेत्युपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य मीनेति नकारस्य णत्वम् । **ममाविति**—मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि चेत्यात्वं, ततो द्वित्वं, ह्रस्वः, आत औ णलः, वृद्धिरेचि । **मिम्यतुरिति**—गुणविषये अशित्यात्वविधानादतुसादावात्वाभावः । मी शब्दस्य द्वित्वं, ह्रस्वः, एरनेकाच् इति यण् । **ममिथेति**—भारद्वाजमते इट्, आत्वं, द्वित्वादि, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । भारद्वाजान्यमते **ममाथेति** । **मिम्ये इति**-लिटस्तस्य एश्, एरनेकाच् इति यण् ।

मध्यमनोरमापूरणी

क्रीणीतः इति—क्रीधातोर्लट्, तस्, सार्वधातुकसंज्ञा, शपं प्रबाध्य क्र्यादिभ्यः श्ना, लशक्वेति शकारः इत् । क्रीना तस्, इति, ई हल्यघोरिति आकारस्य ईत्वम्, नस्य अट्कुप्वाङिति णत्वम्, सस्य रुत्वविसर्गौ । **क्रीणे इति**—आत्मनेपदे इट्, श्ना, इकारस्य एत्वम्, श्नाभ्यस्तयोरित्यालोपः, णत्वम् । **क्रीणाताम् इति**—लोट्, आताम्, श्ना, टेरेत्वम्, आमेतः, आलोपः । **अक्रेष्ट**-लुङ्यात्मनेपदे तः, सिच्, अट्, गुणः, षत्वं ष्टुत्वम् । **अक्रेष्यदिति**-लिङ्निमित्ते इति लृङ्, तिप्, इतश्च, स्यः, गुणः, षत्वम् ।

हिन्दी

७८७. क्र्यादिधातुओं से श्ना प्रत्यय होता है कर्त्रर्थ सार्वधातुक परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । षिञ् बन्धने । सिनाति, सिनीते । सिषाय, सिष्ये । सेता । स्कुञ् आप्रवणे ।

७८८. स्तन्भु-स्तुन्भु-स्कन्भु-स्कुन्भु-स्कुञ्भ्यः श्नुश्च-३।१।८२।। चात् श्ना । स्कुनोति, स्कुनुते । स्कुनाति, स्कुनीते । चुस्काव, चुस्कुवे । स्कोता । अस्कौषीत्, अस्कौष्ट । स्तम्भाश्चत्वारः सौत्राः । सर्वे रोचनार्थाः परस्मैपदिनः ।

७८९. हलः श्नः शानज्झौ-३।१।८३।। स्तभान ।

७९०. जॄस्तम्भु म्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च-३।१।५८।। च्लेरङ् वा । व्यष्टभत् । अस्तम्भीत् । युञ् बन्धने । युनाति, युनीते । योता । क्नूञ् शब्दे । क्नूनाति । क्नूनीते । क्नविता । दॄञ् हिंसायाम्-दृणाति । दृणीते । दॄञ् हिंसायाम् । द्रूणाति, द्रूणीते । पूञ् पवने ।

मध्यमनोरमा

मीयादित्याशीर्लिङ् । मासीष्टेति—तत्रात्मनेपदम् । **अमासीदिति**—मीनातीत्यात्वं, यमरमेति इट्सकौ, अस्तिसिच इति ईट्, इट ईटि इति सिचो लोपः । **सिषायेति**—सि इत्यस्य द्वित्वे अनभ्याससकारस्य इणः परत्वादादेशेति षः ।

मध्यमनोरमापूरणी

मातेति- मीधातोर्लुट्, मीनातिमिनोतीत्यात्वम्, तः, तास्, लुटः प्रथमस्येति तस्य डा, डित्त्व-सामर्थ्याट्टिरासो लोपः । **अमासिष्टाम् इति**—लुङ्, मीनातीत्यात्वे तस्, तस्थस्थेति तामादेशः, च्लिः, सिच्, अट्, यमरमनमातामिति सक् इट् च । अमासिस्ताम् इति, षत्वं, ष्टुत्वम् । **स्कुनोति इति**—स्तन्भु इत्यादिना श्नुः, श्नोर्गुणः, पक्षे श्ना, स्कुनातीति । **हलः श्नः इति**—श्नः इति श्नाशब्दस्य षष्ठ्येकवचने रूपम् । **सूत्रार्थः**—हलः परस्य श्ना इत्यस्य शानच् भवति हि प्रत्यये परे इति । **स्तभानेति**—सौत्रात् स्तम्भ्धातोर्लोटि सिपि सेर्ह्यपिच्चेति हिः, श्नाप्रत्ययः, अनिदितामिति नलोपः, हलः श्नः इति श्ना स्थाने शानच् । स्तभ् आन हि इति, अतो हेरिति हेर्लुक् । **व्यष्टभदिति**—विपूर्वकस्तम्भ् धातोर्लुङ्, तिप्, इतश्च, अट्, च्लिः, जॄस्तम्भु इत्यादिना च्लेरङ्, नलोपः, प्राक्सितादड्व्यवायेऽपीति षत्वम्, यण् । अङोऽभावे च्लेः सिच्, इट्, ईट्, इट ईटि, दीर्घः, अस्तम्भीदिति । **क्नवितेति**—क्नूधातुः, लुट्, तिप्, तास्, इट्, गुणः, अव्, डादेशः, टेर्लोपः । **दृणीते**—श्ना, ईहल्यघोः, टेरेत्वम्, ऋवर्णान्नस्येति णत्वम् ।

हिन्दी

७८८. स्तन्भु स्तुन्भु स्कन्भु स्कुन्भु और स्कुञ् धातुओं से परे कर्त्रर्थसार्वधातुक रहने पर श्नु और श्ना प्रत्यय होते हैं ।

७८९. हल् से परे श्ना को शानच् होता है, हि प्रत्यय परे रहते ।

७९०. जॄ स्तम्भु इत्यादि धातुओं से परे च्लि को अङ् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७९१. प्वादीनां ह्रस्वः-६।३।८०॥ पूञ् लूञ् स्तॄञ् कॄञ् वॄञ् धूञ् शॄ पॄ वॄ भॄ मॄ दॄ जॄ झॄ धॄ नॄ कॄ ॠ गॄ ज्यारी ली ब्ली प्ली एषां चतुर्विंशतेर्ह्रस्वः शिति । पुनाति, पुनीते । पविता । लूञ् छेदने । लुनाति, लुनीते । स्तॄञ् आच्छादने । स्तृणाति, स्तृणीते । तस्तार । तस्तरतुः । तस्तरे । स्तरिता, स्तरीता । स्तृणीयात्, स्तृणीत। ॠत इद्धातोः । स्तीर्यात् । स्तरिषीष्ट । लिङ्सिचोरिति वेट् । स्तीर्षीष्ट । सिचि च परस्मैपदेषु । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषुः । अस्तरिष्ट, अस्तीर्ष्ट । कॄञ् हिंसायाम् । कृणाति, कृणीते । चकार । चकरे । वॄञ् वरणे । वृणाति, वृणीते । ववार, ववरे । वरिता । उदोष्ठ्येत्युत्वम् । वूर्यात्, वरिषीष्ट, वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट, अवरीष्ट, अवूर्ष्ट ।

मध्यमनोरमा

स्तीर्य्यादिति—आर्शीर्लिङ् परस्मैपदम्, ॠतइद्धातोरिति ॠकारस्येकारः, उरण् रपरः, हलि चेति दीर्घः । **स्तरिषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, आत्मनेपदम्, सीयुट्, लिङ्सिचोरात्मनेपदेष्विति इड्-विकल्पः, न लिङि इति सूत्रेण वृतो वेति प्राप्तस्येटो दीर्घनिषेधः । **इटोऽभावे स्तीर्षीष्टेति**—उश्चेति झलादेर्लिङः कित्त्वाद् गुणनिषेधः । ॠत इद्धातोरितीत्वं,हलि चेति दीर्घः । **अस्तारीदिति**-सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अस्तारिष्टामिति**—वृतो वेति प्राप्तस्य दीर्घत्वस्य सिचि च परस्मैपदेषु इति निषेधः । **अस्तारिषुरिति**—सिजभ्यस्तेति झेर्जुस् । **अस्तरिष्ट, अस्तरीष्टेति**—लुङ्यात्मनेपदे सिच्, तस्य लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विति इड्विकल्पः । इट्पक्षे वृतो वेति दीर्घः । **इडभावे अस्तीर्ष्टेति**—उश्चेति झलादिसिचः कित्त्वाद् गुणनिषेधे ॠत इद्धातोरिति इत्वं, हलि चेति दीर्घः । **उदोष्ठ्येत्युत्वमिति**—दन्त्योष्ठ्यवकारस्याप्योष्ठ्यग्रहणेन ग्रहणात् इत्यर्थः । **वूर्य्यादिति**—हलि चेति दीर्घः । **वरिषीष्टेति**—लिङ्सिचावात्मनेपदेष्विति इड्विकल्पः । इट्पक्षे सार्वधातु-केति गुणः । न लिङीति इटो दीर्घत्वनिषेधः । **इडभावे वूर्षीष्टेति**- उश्चेति लिङः कित्त्वाद्-गुणनिषेधः, उदोष्ठ्येति उत्वं, हलि चेति दीर्घः । **अवारीदिति**—आर्धधातुकस्येति सिच इट्, इट ईटीत्यादि, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अवरीष्टेति**—आत्मनेपदे सिच्, लिङ्सिचोरितीड्-विकल्पः, तस्य वृतो वेति दीर्घः । दीर्घाभावे **अवरिष्टेति** । **इडभावे अवूर्ष्टेति**—उश्चेति सिचः कित्त्वाद् गुणनिषेधः, उदोष्ठ्येति उत्वे हलि चेति दीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पुनातीति—पूञ्धातोर्लट्, तिप्, श्ना, प्वादीनामिति ह्रस्वः । **तस्तरतुरिति**—स्तॄधातोर्लिट्, तस्, तसोऽतुस्, द्वित्वेऽभ्यासत्वे उरदिति अत्वे रपरत्वे शर्पूर्वाः खयः इति, तस्तॄ अतुस् इति, ॠच्छत्यॄतामिति गुणः । **स्तृणीतेति**—विधिलिङि तः, सीयुट्, श्ना, प्वादीनामिति ह्रस्वः, सलोपः, श्नाभ्यस्तयोरिति आलोपः, लोपो व्योरिति यलोपः ।

हिन्दी

७९१. प्वादि धातुओं को ह्रस्व होता है शित् प्रत्यय परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धूञ् कम्पने । धुनाति, धुनीते । दुधविथ, दुधोथ । दुधुविव । धोता । धविता । स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु । अधावीत् । अधविष्ट । ग्रह उपादाने । गृह्णाति, गृह्णीते । जग्राह, जगृहे ।

७९२. ग्रहोऽलिटि दीर्घः-७।२।३७।। एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि। ग्रहीता । गृह्णातु । गृहाण । गृह्यात् । ग्रहिषीष्ट । ह्म्यन्तेति न वृद्धिः । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् । अग्रहीषाताम् । कुष निष्कर्षे । कुष्णाति । कोषिता ।

७९३. निरः कुषः-७।२।४६।। वलादेरार्धधातुकस्येड् वा । निष्कोषिता, निष्कोष्टा । निरकोषीत् । इगुगपधादिति क्सः । निरकुक्षत् । अश भोजने । अश्नाति । आश । अशिता । अश्नातु । अशान । ज्ञा अवबोधने ।

मध्यमनोरमा

दुधविथेति—स्वरिसूतीति वेट्, सार्वधातुकेति गुणः । एवं **दुधुविव दुधूवेति**—असंयोगाल्लिट् कित् इति कित्त्वान्न गुणः । इट्पक्षे अचिश्नुधातुभ्रुवाम् इत्युवङ् । **अधावीदिति**—स्वरतीति इड्विकल्पं बाधित्वा स्तुसुधूञ्भ्यः इति नित्यमिट्, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **अधविष्टेति**—आत्मनेपदे स्वरतीति वेट्, सार्वधातुकेति गुणः । **गृह्णातीति**—ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, सम्प्रसारणाच्च, ऋवर्णान्नस्य णत्वम् । **गृह्णीते इति**—ई हल्यघोरितीत्वम् । **जग्राहेति**—लिटि द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, अत उपधायाः । **जगृहे इति**—ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, सम्प्रसारणाच्च । **एकाच इति**—तेन जाग्रहितेति यङ्लुकि न दीर्घः । **गृहाणेति**—लोटः सेर्हिः, हलः श्नः शानज्झौ इति श्नः शानच्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, अतो हेः । **गृह्णीयादिति**—ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । **ग्रहीषीष्टेति**—आर्धधातुकस्येतीट्,ग्रहोऽलिटीति दीर्घः । **अग्रहीदिति**- अतो हलादेरिति प्राप्ताया वृद्धेर्ह्म्यन्तेति निषेधः । **अग्रहीष्टामिति**—तसस्तामादेशः, आर्धधातुकस्येतीट्, ग्रहोऽलिटि दीर्घः । इत्युभयपदिनः । अथ परस्मैपदिनः । **कुष्णातीति**—रषाभ्यामिति नस्य णः। **कोषितेति**—आर्धधातुकस्येतीट्, पुगन्तेति गुणः । **निष्कोषितेति**— इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्येति निरो विसर्गस्य षः । इटोऽभावे **निष्कोष्टेति । निरकोषीदिति**—लुङि सिच्, इड्विकल्पः । **इडभावे निरकुक्षदिति**—शल इगुपधादिति अनिटः च्लेः क्सः, षढोरिति कः, षत्वं, क्सस्य कित्त्वाल्लघूपधगुणो न । **आशेति**—लिटि द्वित्वं हलादिशेषः, अत आदेः, सवर्णदीर्घः । **अशानेति**—लोटः सेर्हिः, हलः श्नः इति शानच्, अतो हेः ।

मध्यमनोरमापूरणी

धुनाति इति—धूञः लट्, तिप्, श्ना, प्वादीनामिति ह्रस्वः । **अग्रहीषातामिति**—लुङ्यात्मनेपदे आताम्, सिच्, इट्, ग्रहोऽलिटीति इटो दीर्घः, अट्, षत्वम् । **निष्कोष्टेति**—निर्पूर्वककुषः लुटि इडभावे निर् कोष्टा इति जाते रेफस्य विसर्गे तस्य इदुदुपधस्येति षः ।

हिन्दी

७९२. एकाच् ग्रह् धातु से विहित इट् को दीर्घ होता है, लिट् लकार में दीर्घ नहीं होता।

७९३. निर् पूर्वक कुष धातु से परे वलादि आर्धधातुक को इट् हो, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ज्ञाजनोर्जेति जादेशः । जानाति । जज्ञौ । पॄ पालनपूरणयोः । पृणाति । शॄ हिंसायाम् । शृणाति । शॄदॄप्रांह्रस्वो वेति पक्षे यण् । शश्रतुः । शशरतुः । दॄ विदारणे। दृणाति । दद्रतुः, ददरतुः । जॄ वयोहानौ । जृणाति । मुष स्तेये । मुष्णाति । मोषिता । पुष पुष्टौ । पुष्णाति । पोषिता । बन्ध बन्धने । बध्नाति । बबन्ध। बबन्धिथ । बन्धा । भन्त्स्यति । अभान्त्सीत् । अबान्धाम् । अभान्त्सुः । क्लिशू विबाधने । क्लिश्नाति । क्लेशिता, क्लेष्टा । अक्लेशीत्, अक्लिक्षत् । वृङ् संभक्तौ । वृणीते । वव्रे । ववृषे । ववृढ्वे । वरिता, वरीता । अवरिष्ट, अवरीष्ट। अवृत । ।। इति क्र्यादिप्रकरणम् ।।

मध्यमनोरमा

जानातीति—ज्ञाजनोर्जा । **जज्ञाविति**—लिटि ज्ञा इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वे आतऔ णलः, वृद्धिरेचीति वृद्धिः । **पृणातीति**—प्वादीनामिति ह्रस्वः, ऋवर्णादिति णत्वम् । **शृणातीति**-प्वादित्वाद्ध्रस्वः । ह्रस्वपक्षे यणिति-ऋच्छत्यृतामिति दीर्घ ॠकारान्तस्य गुणविधानात् ह्रस्वपक्षे गुणाप्रवृत्तेरिको यणचीति यणादेशः । **ह्रस्वाभावे शशरतुरिति-ऋच्छत्यॄतामिति गुणः ।** **दृणातीति**—प्वादीति ह्रस्वः । **ददरतुरिति**—शॄदॄप्रामिति ह्रस्वाभावे ऋच्छेति गुणः । ह्रस्वपक्षे यण् । **जृणातीति**—प्वादित्वाद्ध्रस्वः । **मुष्णातीति**—रषाभ्यामिति णत्वम् । **बबन्धिथेति**—भारद्वाजमते इट् । **भारद्वाजभिन्नमते बबन्धेति**—उपदेशेऽत्वत इति क्रादिनियमप्राप्तस्येटो निषेधः । झषस्तथोरिति थस्य धः, झरो झरि सवर्णे इति नकारात् परस्य धात्वन्तधकारस्य पाक्षिको लोपः । लोपाभावे झलां जश् झशीति पूर्वधकारस्य दकारः, **बबन्द्धेति** रूपं बोध्यम् । **बन्धेति**—लुट्, तास्, झषस्तथोरिति धः, झरो झरीति धलोपः । लोपाभावे जश्त्वेन रूपान्तरं बोध्यम् । **भन्त्स्यतीति**—एकाचो बश इति बस्य भः, खरि चेति धस्य तः । **क्लेशितेति**-स्वरतीति वेट् । **इडभावे क्लेष्टेति**—व्रश्चेति शस्य षः, ष्टुत्वं लघूपधगुणः । **अक्लेशीदिति**—स्वरतीति इड्विकल्पः । **इडभावे अक्लिक्षदिति**—शल इगुपधादिति च्लेः क्सः । परस्मैपदिनो गताः । **ववृषे इति**—क्रादिसूत्रेण इटो निषेधः । **ववृढ्वे इति**—इणः षीध्वमिति धस्य ढः, क्रादित्वादिण्न । **वरितेति**—आर्धधातुकस्येतीट्, वृतोवेति दीर्घपक्षे वरीतेति । **अवरिष्टेति-अवरीष्टेति**—लिङ्सिचोरात्मनेपदेष्विति सिचः इड्वा, वृतो वेति दीर्घ विकल्पः । **इडोऽभावे अवृतेति**—ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः ।

।। इति क्र्यादिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

दद्रतुरिति—दॄधातोर्लिटस्तसोऽतुस्, द्वित्वमुरदिति अत्वेमुरपरत्वे हलादिशेषे शॄदॄप्रामिति ह्रस्वे यण्, सस्य रुत्वाविसर्गौ । ह्रस्वाभावे ददॄ अतुस् इति जाते ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । **अभान्त्सीदिति**—बन्ध्धातोर्लुङ्, तिप्, इतश्च, अट्, च्लिः, सिच्, अस्तिसिचोऽपृक्ते इति ईट्, वदव्रजेति वृद्धिः, एकाचो बशो भष् इति बस्य भः, खरि चेति दस्य तः । **अबान्धामिति**-लुङ्, अट्, तस्, तसस्ताम्, च्लेः सिच्, झलो झलीति सिचो लोपः । वदव्रजेति वृद्धिः भष्भावः, झषस्तथोरिति तस्य धः, झरो झरीति पूर्वधस्य लोपः । **वृणीते इति**—लट् तः, इत्वम्, श्ना, ई हल्यघोरितीत्वम्, ऋवर्णान्नस्येति णत्वम् ।

।। इति क्र्यादि प्रकरणम् ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चुरादिप्रकरणम्

चुर स्तेये ।

७९४. सत्यापपाशवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्म - वर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्-३।१।२५॥ चूर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । चुरादिभ्यस्तु स्वार्थे इति । पुगन्तेति गुणः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वम् । तिप्शबादि । गुणायादेशौ । चोरयति ।

७९५. णिचश्च-१।३।७४॥ णिजन्तादात्मनेपदं कर्त्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । णिश्रीति चङ् । णौ चङीति ह्रस्वः । चङीति द्वित्वम् । हलादिःशेषः । दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः । अचूचुरत् । चिति स्मृत्याम् । चिन्तयति । अचिचिन्तत् ।

मध्यमनोरमा

चोरयामासेति—चुर्धातोर्णिच्, उकारस्य पुगन्तेति गुणः । चोरीत्यस्य धातुत्वं, तस्माल्लिट्, कास्यनेकाच इत्याम्, आम इति लिटो लुक्, णिच इकारस्य आमि परतः सार्वधातुकेति गुणः, अयादेशः, चोरयामिति जाते कृञ्चानुप्रयुज्यते इति असोऽनुप्रयोगः, तस्मात् परो लिट्, तिप्, णल्, अस् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, अत आदेः, सवर्णदीर्घः । **चोरयितेति**— आर्धधातुकस्येतीट्, णिचः इकारस्य सार्वधातुकेति गुणे अयादेशः । **चोर्य्यादिति**—आर्शीर्लिङ्, णेरनिटीति णिचो लोपः । **चोरयिषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, आत्मनेपदं, सीयुट्, सुट्, आर्धधातुकस्येतीट् । **अचूचुरदिति**—लुङ् तिबादि, अडागमः, णिश्रीति च्लेश्चङ्, ङकारस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञा, चकारस्य चुटू इति, अचोरि अत् इति जाते णेरनिटीति णिलोपे, णौ चङ्युपधाया इति ओकारस्य ह्रस्वत्वेन उकारः, चङि इति चुर् इत्येकाचो द्वित्वं, हलादिशेषः, अचुचुरदिति जाते णिलोपस्य स्थानिवद्भावाच्चङ परे णौ अचुचुर् इत्यङ्गं, तस्याभ्यासस्य चु इत्यस्य द्वितीयचुशब्दे लघुनि परतो सन्वद्भावविषयत्वाद् दीर्घो लघोरिति दीर्घः । आत्मनेपदे अचूचुरतेति । **चिन्तयतीति**-इदित्त्वान्नुम्, चुरादित्वाण्णिच्, लडादि, शप्, गुणायादेशौ ।**अचिचिन्तदिति**— च्लेरङ्, चिन्त् इत्येकाचो द्वित्वे हलादिशेषे अचिचिन्त् इत्यस्य चङ्परे णौ परतोऽङ्गस्याभ्यासः चि इति, तस्य नकारसंयोगे गुरौ इकारे परतो दीर्घो लघोरिति न दीर्घः । इकारस्य लघुपरत्वाभावात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

चोरयतीति—चुर्धातोः सत्यापपाशेति णिच्, णिच आर्धधातुकत्वात् पुगन्तेति गुणे चोरि इत्यस्य सनाद्यन्ता धातवः इति धातुसंज्ञायां लटि तिपि सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, सार्वधातुकेति णिचः इकारस्य गुणेऽयादेशः । **णिचश्चेति**—अनुदात्तङित इत्यत आत्मनेपदम् इत्यस्य स्वरित ञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले इत्यस्य चानुवृत्तिः आयाति, णिच्प्रत्ययात् तदन्तविधौ सति उक्तसूत्रार्थः। **चोरयते इति**—णिचश्च इत्यात्मनेपदम् ।

हिन्दी

७९४. सत्याप पाश आदि शब्दों से तथा चुरादिगणपठितधातुओं से स्वार्थ में णिच् होता है ।

७९५. णिजन्त से आत्मनेपद होता है, कर्त्तृगामी क्रियाफल होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

चिन्तेति पठितव्ये इदित्करणं णिचः पाक्षिकत्वे लिङ्गम् । तेन चिन्त्यादित्यादौ न लोपो न । चिन्तति । चिन्तेदित्यादि । यत्रि संकोचे । यन्त्रयति । यन्त्रेति पठितुं शक्यम् । यत्तु इदित्करणात् यन्त्रतीति माधवेनोक्तं तच्चिन्त्यम् । एवं कुद्रि अनृतभाषणे । मत्रि कुटुम्बधारणे । तत्रि गुप्तपरिभाषणे । तन्त्रयते । मन्त्रयते । एतौ आत्मनेपदिनौ । स्फुडि परिहासे । स्फुण्डयति । पीड अवगाहे ।

७९६. भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम्-७।४।३।। एषामुपधाया ह्रस्वो वा चङ्परे णौ । अपीपिडत् । अपिपीडत् ।

मध्यमनोरमा

चिन्तेति पठितव्य इति—धातूनामिदित्करणं क्ङिति नलोपाभावार्थम् । नलोपविधायकशास्त्रे अनिदितामिति पर्य्युदासात् अस्य चितेरिदित्करणं व्यर्थम्, क्ङिति प्रत्यये नलोपविधानात्, अस्य णिचो व्यवधायकत्वेन क्ङित्परत्वाभावात् लोपस्याप्रसक्तेस्तस्माच्चिन्तेति नकारोपध एव पठितव्यः । एवं प्रक्रियालाघवार्थमर्धमात्रालाघवञ्च भवतीति इदित्करणं व्यर्थं सत् **ज्ञापयति-** चित्धातोर्णिच् वैकल्पिक इति । तेन णिचोऽभावपक्षे व्यवधायकाभावात् कित् परत्वेन नलोप-प्राप्तेः, तद्वारणार्थमिदित्करणमिति सिद्धम् । **तेनेति**— इदित्करणेनेत्यर्थः । **चिन्त्यादिति-** चिन्त्धातोराशीर्लिङ्, यासुटि कृते किदाशिषीति तस्य कित्त्वात् तस्मिन् परतोऽनिदितां हल उपधाया क्ङिति इति सूत्रे अनिदितामिति निषेधात् नलोपो न । इत्यादावित्यादि क्तप्रत्यये नलोपो नेत्यपि बोध्यम् । **चिन्ततीति**—णिजभावे तिप्, शप् । **चिन्तेदिति**—विधि लिङ्, शप्, या-सुट्, इत्यादि । **यन्त्रेति पठितुं शक्यमिति**— नकारस्योपधाभूतत्वाभावेन नलोपस्य प्राप्त्यभावा-दित्यर्थः । **माधवेनोक्तमिति**— चित्धातोरिदित्करणेन णिचः पाक्षिकत्वं यथा ज्ञाप्यते तथा यत्रिधातोरिदित्करणमपि णिचः पाक्षिकत्वे लिङ्गम् । तेन यन्त्रतीति पक्षे णिज्नेति माधवेनोक्त-मित्यर्थः । **तच्चिन्त्यमिति**—यत्रीत्यस्य इदित्करणेन णिचः पाक्षिकत्वं तदा ज्ञाप्येत यदा णिज-भावे इदित्करणमस्य सफलं भवेत् । णिजभावे ज्ञापिते क्ङित्प्रत्ययपरत्वं यत्रिधातोर्भवति, नहि तावता नकारस्योपधात्वमप्यानेयमिति, हि येन णिजभावेन नकारलोपवारणेन इदित्करणस्य साफल्यं स्यात् । तदेव हि ज्ञापितं येन ज्ञापितेन स्वस्य वैयर्थ्यं परिहृतं स्यात् । चित्धातौ तु पाक्षिके णिजभावे ज्ञापिते णिचोऽभावपक्षे क्ङिति परतो धातो रुपधाभूतस्य नस्य लोपं वार-यितुमिदित्करणमिति इदित्करणवैयर्थ्यं परिहृतं भवति । यत्रिधातोर्णिजभावेऽपि इदित्करणं व्यर्थमेवेति न णिजभावज्ञापकमिति चिन्ताबीजम् । **एतावात्मनेपदिनाविति**—तत्रिमत्र्योः आकुस्मीयत्वादाकुस्मादात्मनेपदिनः इति वचनेन । अकर्तृगेऽपि फले आत्मनेपदविधाना-दित्यर्थः । **अपीपिडदिति**—लुङि-चङि द्वित्वेऽभ्यासस्य ह्रस्वे पिपीड् इति जाते भ्राजभासेत्यु-पधाह्रस्वे चङ्परे णौ अङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य लघुपरत्वेन सन्वद्भावविषयत्वाद् दीर्घो लघोरिति दीर्घः । उपधाह्रस्वत्वाऽभावेऽ लघुपरत्वान्नाभ्यासदीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

एषामुपधाह्रस्वो वेति—णौ चङ्युपधाया ह्रस्व इति सूत्रमनुवर्तते । **तदाह**—एषामुपधाया ह्रस्वो वा चङ्परे णाविति ।

हिन्दी

७९६. भ्राजभास् आदि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है चङ्परक णि परे रहते, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथ प्रख्याने । प्राथयति ।

७९७. अत् स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम्-७।४।९५॥ एषामभ्यासस्याकारश्चङ्परे णौ । इत्वापवादः । अपप्रथत् । पृथ प्रक्षेपे । पर्थयति ।

७९८. उर्ऋत्-७।४।७॥ उपधाया ऋवर्णस्य ऋद्वा चङ्परे णौ । इररारामपवादः । अपीपृथत्, अपपर्थत् । लुठ स्तेये । लुण्ठयति । अलुलुण्ठत् । तड आघाते । ताडयति । अतीतडत् । मडि भूषायां हर्षे च । मण्डयति । अममण्डत् । भडि कल्याणे । भण्डयति । अबभण्डत् । छर्द वमने । छर्दयति । अचच्छर्दत् । चुद संचोदने । चोदयति । अचूचुदत् ।

मध्यमनोरमा

तेन अपिपीडदिति । **अपप्रथदिति**—प्राथीति णिजन्तात् लुङ्, चङ्, प्राथ् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वे पप्राथ् इति जाते णौ चङीत्युपधाह्रस्वे पप्रथ् इति जाते सन्वल्लघुनीति सन्वद्भावात् सन्यत इति अभ्यासस्य इत्वे प्राप्ते 'अत्स्मृ' इति अकारः । **पर्थयतीति**— पुगन्तेति ऋकारस्य गुणः । **इररारामिति**—ॠकारोपधस्य कॄत् इत्यस्य धातोः अचीकृतदित्यादौ उपधायाश्चेति इर् प्राप्तः । ऋकारोपधात् अपीपृथदित्यादौ अर् प्राप्तः, मृज् धातोः अमीमृजदित्यत्र मृजेर्वृद्धिरित्यार् प्राप्तः, सर्वान् बाधित्वा ॠकारस्य दीर्घस्य ह्रस्वस्य च ऋकारस्य ऋत् इत्यर्थः । **अपीपृथदिति**—पृथ् इत्यस्य ऋकारस्य ऋकारे द्वित्वे उरदत्वे हलादिशेषे पपृथ् इति जाते सन्वदिति सन्वद्भावे सन्यत इतीत्वे दीर्घो लघोरिति दीर्घः । ऋकारस्य ऋकाराभावे **अपपर्थदिति**-लघूपधगुणः, रेफसकारसंयोगे परे पर्थेत्यकारस्य गुरुत्वेऽभ्यासस्य लघुपरत्वाभावान्न सन्वद्भावः । **अलुलुण्ठदिति**— अभ्यासस्य लघुपरत्वाभावान्न दीर्घः । **अतीतडदिति**— सन्वद्भावः, सन्यत इतीत्वं, दीर्घः । **अममण्डदिति**-लघुपरत्वाभावान्न सन्वद्भावः । **अबमण्डदिति**—अभ्यासे चर्चेति भस्य बः । **अचच्छर्ददिति**- अभ्यासे चर्चेति छस्य चः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्राथयति इति—प्रथ् धातोर्णिचि अत उपधायाः, प्राथीत्यस्य धातुत्वाल्लट्, तिप्, शप्, गुणः, अयादेशः । अस्य घटादिकत्त्वेन मित्त्वाद् मितां ह्रस्व इति ह्रस्वो नान्ये मितोऽहेतौ इति निषेधान्न भवति । अयं ज्ञंपा–दिपञ्चकव्यतिरिक्तचुरादिः । शुद्धस्य घटादिकस्य तु प्रथयतीत्येव रूपं बोध्यम् ।

हिन्दी

७९७. स्मृ दृ त्वर प्रथ म्रद स्तृ स्पश् इन धातुओं के अभ्यास को अत् होता है चङ्परक णि परे ।

७९८. उपधा के ऋवर्ण को ऋत् होता है विकल्प से चङ्परक णि परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पाल रक्षणे । पालयति । अपीपलत् । पूज् पूजायाम् । पूजयति । अपूपुजत् । कृत संशब्दने ।

७९९. उपधायाश्च-७।१।१०१॥ धातोर्ऋृत इत् । रपरत्वम् । उपधायाञ्चेति दीर्घः । कीर्तयति । अचीकृतत् । अचिकीर्तत् । म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि । म्लेच्छयति । अमिम्लेच्छत् । ईड स्तुतौ । ईडयति । ऐडिडत् । पिडि संघाते । पिण्डयति । रुष रोषे । रोषयति । अरूरुषत् । तुल उन्माने । तोलयति । अतूतुलत् । शुल्ब माने । शुल्बयति । अशुशुल्बत् । घुषिर् विशब्दने । घोषयति । अजूघुषत् । पट पुट लुट तुजि मिजि पिजि लुजिभजि लघि त्रसि पिसि कुसि दसि कुशि घट घटि वृहि बर्ह वल्ह गुप धूप विच्छ चीव पुथ लोकृ लोचृ णद कृप् तर्क वृतु वृधु भाषार्थाः । पाटयति । पोटयति । लोटयति । तुञ्जयति । एवं परेषाम् । घाटयति । घण्टयति ।

८००. नाग्लोपिशास्वृदिताम्-७।४।२॥ णिच्यग्लोपिनः शास्तेर्ऋदितां चोपधाया ह्रस्वो न, चङ्परे णौ । अलुलोकत् । अलुलोचत् । वर्तयति । वर्धयति ।

मध्यमनोरमा

अपीपलदिति—णौ चङीत्युपधाह्रस्वः, सन्वद्भावादि । **अपूपुजदिति**—णौ चङीति ह्रस्वे दीर्घो लघोरिति दीर्घः । **धातोर्ऋृत इति**—धातोरुपधाभूतस्य ऋृकारस्य इकार इत्यर्थः । **अचीकृतदिति**-उर्ऋत् इत्युपधाभूतस्य ऋृकारस्य ऋकारः, सन्वल्लघुनीति सन्वद्भावे सन्यत इतीत्वे दीर्घो लघोरिति दीर्घः । **अचिकीर्तदिति**—उर्ऋत् इति ऋकाराऽभावे उपधायाश्चेति इत्वे रपरत्वे उपधायाञ्चेति दीर्घः । **अमम्लेच्छदिति**—दीर्घादिति छकारे परे तुगागमः, स्तोः श्चुना श्चुरिति, तस्य चः । एकारस्य उपधाभूतत्वाभावात् णौ चङीति न ह्रस्वः । **ऐडिडदिति**—ईड्धातोर्णिच्, ईडि इति जाते लुङि च्लेश्चङ्पक्षे अजादेर्द्वितीयस्येति डिशब्दस्य द्वित्वम्, द्वितीयस्य इकारस्य णेरनिटीति लोपः, आट, वृद्धिः । **अशुशुल्बत् इति**—लघुपरत्वाभावान्न अभ्या दीर्घः । [1]**अलूलवदिति**—लघुपरत्वेन सन्वद्भावविषयत्वात् दीर्घो लघोरिति दीर्घः । **अलुलोकदिति**-लोक्धातोः ऋकारेत्संकत्वात् नाग्लोपीत्युपधाह्रस्वनिषेधः । लघुपरत्वाभावान्नाभ्यासदीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नाग्लोपीति—'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' इति सूत्रस्यानुवृत्तिरत्र, णौ इतिपदम् आवर्तते । एकं 'णौ' इतिपदमग्लोपिना अन्वेति, अपरं निषेधे निमित्तं भवति । अग्लोपी च शासुः च ऋदिच्चेति द्वन्द्वे, अग्लोपिशास्वृदित इति, न अग्लोपिशास्वृदितः, तेषाम् इति पदकृत्यम् । **तथा च सूत्रार्थः**-णिच्यग्लोपिनः शास्तेरित्यादि ।

हिन्दी

७९९. धातु के उपधाभूत ऋृकार को इकार होता है ।

८००. णिच् परे अग्लोपी धातु, शास् धातु व ऋदित् धातु की उपधा को ह्रस्व नहीं होता है । चङ्परक णि पर में रहते ।

टिप्पणी:-एतद् रूपं लूञ् धातोः भवितुमर्हति, परन्तु चुरादौ स धातुः नास्ति । लोवृ अथवा लुव् धातोरभावादपि एतद् रूपं न सम्भाव्यते । अतः पाठोऽयं चिन्त्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आधृषाद्वा । इत ऊर्ध्वं विभाषितणिचो धृषधातुमभिव्याप्य । योजयति । योजति । अयौक्षीत् । पर्चयति । पर्चति । पर्चिता । अपर्चीत् । अर्च पूजायाम् । षह मर्षणे । साहयति । 'स एवायं नागः सहति कलमेभ्यः परिभवम्' । वृञ् वरणे । वारयति । वरति । वरते । जॄ वयोहानौ । जारयति । जरति । शिष असर्वोपयोगे । शेषयति । शेषति । शेष्टा । अशिक्षत् । तप दाहे । तापयति । तपति । तप्ता । तृप तृप्तौ । तर्पयति । तर्पति । हिसि हिंसायाम् । हिंसयति । हिंसति । अर्ह पूजायाम् । छद अपवारणे। स्वरितेत् । छादयति । छदति । छदते । धूञ् कम्पने ।

वा. धूञ्प्रीञोर्नुग् वक्तव्यः । णौ । धूनयति । धवति, धवते । प्रीञ् तर्पणे । प्रीणयति प्रयति, प्रयते । वच् परिभाषणे । वाचयति । वचति । वक्ता । अवाक्षीत् । मान पूजायाम् । मानयति । मानति । मानिता । भू प्राप्तौ । आत्मनेपदी । भावयते, भवते । णिच्सन्नियोगेनैवात्मनेपदमित्येके । भवति । मार्ग अन्वेषणे । धृष प्रहसने । धर्षयति । धर्षति।

मध्यमनोरमा

अलुलोचदिति—लोच् धातोः ऋदित्त्वात् णौ चङीत्युपधाह्रस्वस्य नाग्लोपीति निषेधः । **अयौक्षीदिति**- युज्धातोर्णिजभावपक्षे लुङि च्लेः सिच् । अनुदात्तेषु युज्ग्रहणेनास्यापि ग्रहणम्। आधृषाद्वेति णिचोऽभावे इण्निषेधार्थमिति । जस्य कुत्वेन गः, खरि चेति कः, सस्य षत्वं, वदव्रजेति वृद्धिः । **अपर्चीदिति**—अस्यानुदात्तेष्वपाठात् सिच इट्, लघूपधगुणः । **साहयतीति**- धात्वादेरिति षस्य सः । **स एवायमिति**—आधृषाद्वेति णिचो विकल्पादणि जन्तस्योदाहरणम्। **वारयतीति**—णिचि अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **वरते इति**—णिजभावे ञित्त्वात् कर्तृगामिनि क्रियाफले आत्मनेपदम् । **जारयतीति**—अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **जरतीति**—सार्वधातुकेति गुणः । **अशिक्षदिति**—शल इगुपधादिति च्लेः क्सः, पढोरिति कः, षत्वम् । **धवति-धवते इति**- ञित्त्वात् पदद्वयम् । **प्रयतीति**—इकारस्य गुणेऽयादेशः । **अवाक्षीदिति**— णिजभावपक्षेऽनुदात्त-त्वादिण्निषेधे कुत्वे षत्वे च वदव्रजेति वृद्धिः । **मानितेति**-णिजभावे आर्धधातुकस्येतीट् । **णिच्सन्नियोगेनेति**—णिच्सन्निधाने इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

आधृषाद्वेति—गणसूत्र मिदम् । **इत ऊर्ध्वमिति**—युजधातोरूर्ध्वं धृष्धातुं यावत् णिच् विकल्पेन भवति, अतः विल्पित णिच्काः धातवः ज्ञेयाः । **शेषयति इति**—शिष्धातोर्णिच्, पुगन्तेति गुणः, शेषि इत्यस्य सनाद्यन्ता इति धातुसंज्ञा, लट्, तिप्, शप्, गुणः, अयादेशः । णिजभावे-शेषतीति । **धूनयति इति**—धूञः णिचि धूञ्प्रीञोर्नुग् वक्तव्य इति नुक्, धूनि इत्यस्य धातुत्वाल्लटि तिपि गुणेऽयादेशे रूपम् । णिचोऽभावे नुग्नेति शपि गुणे **धवति** इति । **वाचयति**—वचः णिचि अत उपधायाः, लडादि । **अवाक्षीदिति**—णिचोऽभावे लुङि तिपि इतश्च, अट्, च्लेः सिच्, अस्ति सिच इतीट् । वदव्रजेति उपधावृद्धिः, चोः कुः, षत्वे संयोगे रूपम् । **भावयते इति**—भू इत्यस्मात् णिच्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आवादेशः, लट्, तिप्, शप्, गुणायादेशौ । णिच् सन्नियोगाभावान्नात्मनेपदम् । **भवतीति**—णिचोऽभावे ।

हिन्दी

वा. धूञ् और प्रीञ् धातु को नुक्-आगम होता है णिच् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथादन्ताः । कथ वाक्यप्रबन्धे ।

८०१. अचः परस्मिन्पूर्वविधौ-१।५।५७।। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्यात्, स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौकर्त्तव्ये । इति स्थानिवत्त्वान्नोपधाया वृद्धिः। कथयति । अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न । अचकथत् । गण संख्याने । गणयति।

मध्यमनोरमा

तेन णिजभावपक्षे शेषादिति परस्मैपदं प्राप्नोतीत्यर्थः । **परनिमित्त इति**—परं निमित्तं यस्य सः परनिमित्तः । अचः आदेशः अजादेशः, अच् स्थानिक आदेशः स्थानिवत् । **स्थानिवत्**-स्थानिनि सति यत्कार्यं भवति, तत्कार्यं करोतीत्यर्थः । तेन कथयतीत्यत्र अकारलोपे कृते थकारात् पूर्वस्य अकारस्य अत उपधाया इति न वृद्धिः । **स्थानिभूतादिति**—यथा कथयतीत्यत्र अतो लोपस्य स्थानिभूतोऽच् अकारः, तस्मात् पूर्वत्वेन दृष्टस्थकारपूर्वाकारस्तस्य उपधासंज्ञा, तत्प्रयुक्तवृद्धिरूपे विधौ कर्त्तव्ये अतो लोपः स्थानिवत् । तेन लोपस्य वर्णाभावरूपत्वेऽपि स्थानि-वत्त्वेन अन्त्यवर्णतया स्थानिवद्भावेन तस्यादेशस्य लोपस्याप्यन्तवर्णत्वात् पूर्वस्य थकार-स्यैवोपधात्वं, न तु तत्पूर्वस्याकारस्येति, तस्योपधावृद्धिर्न । ननु पूर्वस्य विधौ कर्त्तव्ये एता-वताऽपि प्रकृतार्थसिद्धौ पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधाविति शिरोवेष्टनेन नासास्पर्शनन्यायः किमर्थं वर्तते इति **चेत् श्रूयताम्** -पूर्वशब्दः सापेक्षः, कस्मात् पूर्व इत्याकाङ्क्षायां प्रकृते उपस्थिताः त्रयो निमित्तम् आदेशः स्थानिवत्, तत्र निमित्तादेशा... वा पूर्वस्य इत्युक्ते वैयाकरण इत्यादि न सिद्ध्येत् । तथाहि विआङ् पूर्वात् कृधातोर्ल्युटि व्याकरणशब्दो निष्पन्नस्तस्मादणि न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैजिति सूत्रेण यकारात् पूर्वमैकारागमे कृते इकारस्थाने यणादेशेन अस्य यकारस्य स्थानिवद्भावेनाच्त्वात् तस्मिन् परतः ऐकारस्य आयादेशः स्यात् । निमित्तादा-कारात् ऐकारो न पूर्वः । इकारावस्थायामैकारस्यासत्त्वात् । यकारादेशे कृते यकारात् पूर्वमेव ऐच् विधानादिति वैयाकरण इत्यादि सिद्ध्यति । एतच्चानुपपन्नम्, आदेशेन स्थानिनोऽपहारात्। स्थानिवद्भावसमये स्थानिनोऽविद्यमानत्वेन स्थानिपूर्वत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । अत उक्तं पूर्व-त्वेन दृष्टस्येति । तेन आदेशे कृते स्थानिपूर्वस्यासत्त्वे यदा स्थानी स्थितस्तदा यः पूर्वत्वेन दृष्टस्तस्य विधौ कर्त्तव्ये स्थानिवद्भाव इति सर्वं समञ्जसम् । **अग्लोपित्वादिति**—सन्वल्लघुनीति सूत्रेण अग्लोपेऽसतीत्युक्तत्वात् प्रकृते णौ परतोऽकारस्य लोपादित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

कथयतीति—कथ धातोर्णिच्, अतो लोप इति धातोरन्त्याकारस्य लोपः । अत उपधाया इति प्राप्ता वृद्धिः अचः परस्मिन्निति अल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न भवति, अकारस्योपधाभावात् । लट्, तिप्, शप्, गुणोऽयादेशः । **अचकथदिति**—कथि इत्यस्माल्लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, तस्य चिण् द्वित्वादि, अचकथ् इअत, इति, णेरनिटि, सन्वल्लघुनीति सन्वद्भावाभावात् इत्वं दीर्घश्च न भवतः ।

हिन्दी

८०१. परनिमित अजादेश स्थानिवत् होता है, स्थानिभूत अच् से पूर्व में देखे गये वर्ण को कार्य कर्त्तव्य होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८०२. ई च गणः-७।४।९७।। गणेरभ्यासस्य ईत् स्यात् चादत् चङ् परे णौ । अजीगणत्, अजगणत् । रच प्रतियत्ने । रचयति । अररचत् । कल गतौ संख्याने च । कलयति । अचकलत् । मह पूजायाम् । महयति । सूच पैशुन्ये । सूचयति। अषोपदेशत्वान्न षः । असुसूचत् । कुमार क्रीडायाम् । कुमारयति । अचुकुमारत्। ऊन परिहाणे । ऊनयति । ओः पुयण्जीति सूत्रे पययोरिति वक्तव्ये वर्गप्रत्याहारजग्रहो लिङ्गम् । 'णिच्यच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये' इति । यत्र द्विरुक्तावभ्यासोत्तरखण्डस्याद्योऽच् प्रक्रियायां परिनिष्ठितरूपे वाऽवर्णो लभ्यते तत्रैवायं निषेध । ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात् । तेनाचिकीर्तदित्यादि सिद्धम् । प्रकृते तु न शब्दस्य द्वित्वम् । तत उत्तरखण्डे अल्लोपः । औननत् ।

मध्यमनोरमा

अभ्यासस्येति—गणधातोरभ्यासस्य ईकारः स्यात्, ई चेति चकारात् पक्षेऽत् इत्यर्थः । **अजीगणदिति**—लुङि च्लेश्चङ्, द्वित्वादि, अभ्यासस्य पक्षे इकारः । **ईकाराभावे अजगणदिति**-अकारस्य अकारः । **अनेकाच्त्वेनाषोपदेशत्वादिति**— षोपदेशत्वबोधकारिकायामेकाचः षोपदेशाः स्युरित्युक्तत्वात् सूच् धातोः णिनाऽनेकाच्त्वा न्न षोपदेशत्वम्। अतोऽसुसूचदित्यत्र सकारस्यादेश-रूपत्वाभावेनादेशप्रत्यययोरिति अभ्यासादुत्तरस्य सकारस्य न षः । **ओः पुयण्जीति सूत्रे इति**-ओः पुयण्ज्यपरे इति सूत्रं वक्ष्यते, तस्यायमर्थः—सनि परे यदङ्गं तदवयवस्य अभ्यासोकारस्य इकारः स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परत इति । तेन अबीभवदित्यत्र भूधातोर्णिचि ततो लुङि चङि च कृते भू इति प्रथमैकाचो द्वित्वम्, ह्रस्वे अभ्यासे चर्चेति जश्त्वे अबु भू इ अत् इति जाते अचो ञ्णितीति णिचि परत ऊकारस्य वृद्धिः, अवर्णपरे पवर्गे भकारे परत इकारः। अत्र सन्वद्भावादङ्गस्य सन्परत्वं बोध्यम् । एवं युधातोर्णिजन्ताल्लुङि **अयीयवत्** । अत्र युधातोः द्वित्वे अभ्यासादुत्तरस्य युधातोः वृद्ध्यावादेशौ, अभ्यासोकारस्य अवर्णपरयणि यकारे परत इत्वम् । एवं रुधातोर्णिजन्ताल्लुङि अरीवत् । अत्र अवर्णपरयणि रेफे परत इत्वम् । **एवमलीलवत्** । अत्र लूधातोर्द्वित्वादौ अवर्णपरलकारे इत्वम् । **तथा अजीजवदिति**- जुधातोर-वर्णपरजकारे परत इत्वम् । नन्वेतान्युदाहरणानि ओः पुयण्जीति सूत्राऽभावेऽपि सिद्ध्यन्ति । तथा हि भूधातोर्णिचि द्वित्वात् परत्वात् अन्तरङ्गत्वाच्च वृद्धौ आवादेशे णौ चङीत्युपधाह्रस्वे भव् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे अभ्यासे चर्चेति जश्त्वे च सन्वद्भावाद् सन्यतः इतीत्त्वे दीर्घे च अबीभवदिति रूपसिद्धिः । एवम् अयीयवदित्यादौ सर्वत्र द्वित्वात् पूर्वमेव वृद्ध्यावादेशे

मध्यमनोरमापूरणी

अजीगणदिति—गणि इत्यस्यस्माल्लुङ्, तिप्, च्लेश्चङ्, द्वित्वादि, अजगण् इ अत् इति जाते अभ्यासाकारस्येत्वम्, णेर्लोपः । अत् पक्षे अजगणदिति ।

हिन्दी

८०२. गण् धातु के अभ्यास को ईत्व होता है और अत् भी होता है, चङ् परक णि परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमा

उपधाह्रस्वे पश्चाद् द्वित्वम् । ततश्च अभ्यासेऽवर्णस्य लाभात् तस्य सन्यत इतीत्वे सकलप्रयोग-सिद्धिः । एवमरीरवदित्यादौ सर्वत्र । अस्तु तर्हि सन्नन्ते अस्य सूत्रस्य प्रयोजनम् । तद्यथा **पिपविषतीत्यत्र** पूधातोः सनि स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि इति इटि द्विर्वचनेऽचीति द्वित्वे कर्त्तव्ये अजादेशनिषेधात् वृद्ध्यावादेशयोरप्रवृत्तौ पू इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासे अकाराभावात् सन्यत इत्यस्याप्रवृत्त्या ओः पुयण्जीति उवर्णस्येत्वं सिद्ध्यति । एवं यियविषतीत्यत्र युधातोः सनि सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णूभरज्ञपिसनाम् इति सूत्रेण इटि कृते द्विर्वचनेऽचीति द्वित्वे कर्त्तव्ये अजादेशनिषेधात् वृद्ध्यादेः पूर्वमेव युधातोः द्वित्वं, ततश्चाभ्यासोकारस्य ओः पुयण्जीति इत्वं सिद्ध्यति । सत्यम् । तर्हि अवर्णपरे यकारे पकारे च परत इत्वं विधीयताम्, पवर्गयण्प्रत्याहारस्य जकारस्य च सूत्रे ग्रहणं व्यर्थमेव । बुभूषति मुमूषति रुरूषति लुलूषति युयूषति जूजूषतीत्यत्र सनिग्रहगुहोश्चेति इटो निषेधादभ्यासस्य अवर्णपरपवर्गादिपरत्वाभावादस्य सूत्रस्याप्रवृत्तेः । अबीभवदित्यादौ तु द्वित्वात् पूर्वमेव वृद्ध्यावादेशयोः कृतयोः पश्चात् द्वित्वमिति अभ्यासेऽवर्णलाभात् सन्यत इत्येनेनैवेत्त्वं सिद्ध्यति । न चाबीभवदित्यादावपि द्विर्वचनेऽचीति वृद्ध्यावादेश योर्निषेधः, णिचो द्वित्व निमित्ताभावात् । तस्मात् पिपविषति यियविषति इति प्रयोगयोः सिद्धये पययोरिति वक्तव्ये पवर्गग्रहणं यण्प्रत्याहारग्रहणं च लिङ्गं ज्ञापकम्, द्वित्वे कर्तव्ये णिचि परतोऽच आदेशो न भवति इति ज्ञापनीयस्वरूपम् । तेन अबीभवदित्यादौ भू इत्यादेरेव द्वित्वम् । ततश्च उकारस्येत्वार्थं सम्पूर्णसूत्रमावश्यकमेव । नन्वेवम् अचिकीर्तदित्यादौ कॄत्धातोर्णिजन्ताल्लुङि चङि द्वित्वे कर्त्तव्ये णिचि अच आदेशनिषेधज्ञापनात् ॠत इद्धातोरिति इत्त्वात् पूर्वमेव द्वित्वे उरदत्त्वादौ अचकीर्तदिति स्यात् । अभ्यासस्य लघु[illegible]त्वाभावात् सन्वद्भावेन सन्यत इत्यस्याप्रवृत्तेः । इष्पते तु अचिकीर्तदिति । तत्र प्रथमं [illegible] दीर्घत्वे च कीर्त् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वादौ अभ्यासे इकारो लभ्यते । अत्र यदि द्वित्त्वे कर्तव्ये ॠकारस्य इत्वं निषिध्यते तदाभ्यास इकारो न लभ्येत इत्यत **आह**-यत्र द्विरु क्ताविति-यथा अबीभवदित्यत्र भू इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासादुत्तरस्य भू इत्यस्य वृद्ध्यावादेशह्रस्वेषु कृतेषु भव् इत्यभ्यासोत्तरमवर्णो लभ्यते, अतोऽबीभवदित्यादाविव द्वित्वे कर्त्तव्ये णिचि अजादेशो नेति न निषेधः । अचिकीर्तदित्यादौ तु कृत्धातोः द्वित्वेऽभ्यासोत्तरखण्डे ॠवर्णो लभ्येत । अतोऽचिकीर्तदित्यादौ द्वित्वे कर्तव्ये णिचि अजादेशे कृते द्वित्वम् इत्यचिकीर्तदिति सिद्ध्यति । प्रकृते औननदित्यत्र तु ऊन धातोर्णिचि अतो लोप इत्यकारलोपे ऊनि इति जाते चङि अजादेर्द्वितीयस्येति नि शब्दस्य द्वित्वे औनिनदिति रूपं स्यात् । तस्मात् द्वित्वे कर्तव्ये णिचि अच आदेशो नेति ज्ञापिते अतो लोपात् पूर्वं न शब्दस्य द्वित्वं, ततोऽभ्यासोत्तरखण्डे नकारे अतो लोप इत्यल्लोपः । तेन औननदिति सिद्धं भवति । अत्र न शब्दस्य द्वित्त्वेऽभ्यासोत्तरखण्डे अवर्णस्य अतो लोप इति लोपेऽपि प्रक्रियावाक्ये साधनिकादशायां सवर्णस्तत्रावर्णपरः । **अबीभवदित्यादौ** तु भू शब्दस्य द्वित्वे प्रक्रियादशायामभ्यासोत्तरखण्डे अवर्णो न लभ्यते, तथापि परिनिष्ठिते प्रयोगे अबीभवदिति सिद्धरूपे तु अभ्यासोत्तरखण्डे अवर्णो लभ्यते एव । प्रक्रियायां परिनिष्ठितरूपे इत्यत्र वाकारोऽनास्थायाम् । **आद्योऽच् इति-** स्पष्टार्थम् एव । एकाचो द्वित्वविधानादभ्यासोत्तरखण्डे द्वितीयस्याचोऽसम्भवात् । **आद्यपदव्यावर्त्याभावात् तत्रैवायं निषेधः इति**—अभ्यासोत्तरखण्डे अवर्णवति द्वित्वे कर्त्तव्य एव णिचि अच आदेशो नेत्ययं निषेधः इत्यर्थः । **णिचि** अच

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ध्वन शब्दे । ध्वनयति । अदध्वनत् । सूत्र वेष्टने । सूत्रयति । मूत्र प्रस्रवणे । मूत्रयति । अदन्तत्वसामर्थ्याण्णिज्विकल्पः । मूत्रति । आगर्वादात्मनेपदिनः । पद गतौ । पदयते । अपपदत । गृह ग्रहणे । मृग अन्वेषणे । मृगयते । शूर वीर विक्रान्तौ । शूरयते । वीरयते । गर्व माने । गर्वयते ।

॥ इति चुरादिप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमा

आदेशो नेति ज्ञापितनिषेधस्य विशेषविषयत्वे **बीजमाह**—ज्ञापकस्येति, पवर्गयण्जकारग्रहणस्य पूर्वोक्तार्थज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात् । सजातीयं स्वविषयतुल्यविषयः अभ्यासोत्तरखण्डे अकारलाभरूपः, तदपेक्षत्वात्, तादृशविषयमपेक्ष्यैव प्रवृत्तेः । **अयमर्थः**—अवर्णपरेषु पवर्गादिषु अभ्यासोवर्णस्य इत्वविधानात् अभ्यासोत्तरखण्डेऽवर्णोपस्थम् एव ओः पुयण्जीति सूत्रविषये लभ्यते । अतस्तेन सूत्रेण ज्ञापिते णिचि अच आदेशनिषेधोऽपि तत्रैव प्रवर्तते यत्राभ्यासोत्तरखण्डे अवर्णो लभ्यते इति । तेन अचिकीर्तदित्यत्र अभ्यासोत्तरखण्डे प्रक्रियादशायां परिनिष्ठिते रूपे तु इवर्णः, इति क्वापि दशायामवर्णाभावे णिच्यच आदेशो नेति निषेधस्याप्रवृत्तौ इत्वे कृते द्वित्वमिति **अचिकीर्तदिति** सिद्धमित्यर्थः । **प्रकृते त्विति**- औननदित्यत्र तु द्वित्वात् पूर्वमतो लोपो न भवति, किन्तु अतो लोपात् पूर्वमतो न शब्दस्य द्वित्वम्, ततस्तदनन्तरमभ्यासोत्तरखण्डे द्वितीये न शब्दे अतो लोप इति सूत्रेण अकारलोप इत्यर्थः । **औननदिति**—ऊनधातोः णिच्, लुङ्, च्लेश्चङ्, न इत्यस्य द्वित्वम्, अतो लोपः, णिलोपः, आडागमः । **अदध्वनदिति**- अग्लोपित्वेनासन्वद्भावात् सन्यत इतीत्त्वं न । **अदन्तत्वसामर्थ्यादिति**— कथादीनामुपधावृद्धिदीर्घसन्वद्भाववारणाय गृहमृगादीनां लघूपधगुणादिवारणाय, शूरवीरादीनां णौ चङीत्युपधाह्रस्ववारणाय चादन्तत्वं सफलम् । सूत्रादीनां तत्तत्कार्यस्याप्रसङ्गाददन्तत्वं व्यर्थं सत् णिचः पाक्षिकत्वं ज्ञापयति । णिजभावे अदन्तत्वं सफलं भवति । **सूत्राम्बकारेत्यादौ** अनेकाच्त्वात् कास्यनेकाच इत्यामः सफलत्वात् । अतः स्वसाफल्याददन्तत्त्वं पाक्षिकणिजभावज्ञापकमित्यर्थः।

॥ इति चुरादयः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

औननदिति—ऊनधातोर्णिच्, धातुसंज्ञा, लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लिः, णिश्रीति च्लेश्चङ्, ऊनइ अत् इति जाते अतो लोप इति नकाराकारलोपे प्राप्ते चङीति च द्वित्वे प्राप्ते द्विर्वचनेऽचीति निर्देशात् नस्य द्वित्वे ततोऽल्लोपे णेरनिटीति णिलोपे ऊननत् इति जाते आडागमे आटश्चेति वृद्धिः । **ध्वनयतीति**—ध्वनधातोर्णिच्, अतोलोपः, ध्वनि इत्यस्माद्धातोर्लट्, तिप्, शप्, गुणायादेशौ । **अपपदतेति**—पदधातोर्णिचि द्वित्वादौ अल्लोपः, अग्लोपित्वान्न सन्वद्भावदीर्घौ । **गृह ग्रहणे इत्यस्य**—गृहयते इति, अल्लोपस्य स्थानिवद्भावात् न पुगन्तेति लघूपधगुणः । लङि अजगृहत इति रूपम् । मृग इत्यस्य लुङि अममृगतेति । शूरवीरयोः अशुशूरत अविवीरतेति । गर्व इत्यस्य अजगर्वत इति ।

॥ इति चुरादिप्रकरणम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

॥ अथ णिजन्तप्रकरणम् ॥

८०३. स्वतन्त्रः कर्ता-१।४।५४॥ क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् ।

८०४. तत्प्रयोजको हेतुश्च-१।४।५५॥ कर्तृप्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात् ।

८०५. हेतुमति च-३।१।२६॥ प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् । भवन्तं प्रेरयति भावयति ।

मध्यमनोरमा

स्वतन्त्रः कर्ता—धातूपात्तव्यापाराश्रयत्वं स्वातन्त्र्यम् । यदा देवदत्तः पचतीत्यत्र धातूपात्तस्य विक्लित्त्यनुकूलव्यापारस्य यत्नरूपास्याश्रयो देवदत्त इति, तस्य स्वतन्त्रत्वात् कर्तृत्वं विवक्षितमिति धातूपात्तव्यापाराश्रयत्वविवक्षा कर्तृसंज्ञाप्रयोजिका, तेन स्थाली पचतीत्यादौ स्थाल्याः सौकर्य्यातिशयं बोधयितुं यदा पच् धातुना देवदत्तादिप्रयत्ननिरपेक्षेण स्थालीकर्तृक पाक एव विवक्षितः, तदा धातूपात्तव्यापाराश्रयत्वरूपकार्य्यमपि स्थाल्यादीनामस्त्येवेति कर्तृसंज्ञा भवति । **कर्तृप्रयोजक इति**—कर्तुः प्रयोजकः प्रवर्तकः कर्त्ता, व्यापारफलकव्यापारवानित्यर्थः । **कर्तृसंज्ञेति**—हेतुश्चेति चकारेण कर्तृसंज्ञा समुच्चीयते । अन्यथा आकडारादेका संज्ञेति एकसंज्ञाधिकारात् हेतुसंज्ञया कर्तृसंज्ञाबाधः स्यात्, ततश्च लः कर्मणि चेति सूत्रेण प्रयोजके वाच्ये लकारो न स्यात् । तदा देवदत्तः पाचयति त्वं पाचयसि अहं पाचयामीत्यादौ सामानाधिकरण्यं न स्यात् । अतः प्रयोजकस्य कर्तृसंज्ञाऽपि विधीयते । तेन देवदत्तः पाचयतीत्यादौ प्रयोजके कर्तरि लकाराः सिद्ध्यन्तीति बोध्यम् । **हेतुमति च**—हेतुः प्रयोजकः, स विद्यते यस्य स हेतुमान्, हेतुसम्बन्धी स चार्थो व्यापार एव । प्रयोजक-सम्बन्धी यो व्यापारः, प्रयोजकनिष्ठव्यापार इति यावत् । **तदेतदाह**—प्रयोजकव्यापार इति । **प्रयोजकव्यापारश्च प्रेरणादिरित्याह**—प्रेरणादौ वाच्ये इति । भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तना प्रेषण-मित्यर्थः प्रेषणादौ इत्यादिपदेन अध्येषणानुमत्युपदेशादीनां ग्रहणम् । तदाश्रयसमानस्याधिकस्य वा ऋत्विगाचार्य्यादेः प्रवर्तनाध्येषणं प्रार्थनेत्यर्थः । अनुमतिः संमतिः, यथा राजादिसम्मत्या यागादिक्रियाप्रयोजकत्वम् । उपदेशो ज्ञापनम्, यथा ज्वरितः कषायं पिबेत् इत्युपदेशः, इत्युप-देशमात्रेण वैद्यादिः प्रयोजकः । अनुग्रह उपकारः । यथा केनचिद्धन्तुमिष्टं पलायमानं यो नि-रुणद्धि सोऽपि हन्तुरनुग्राहकत्वेन प्रयोजकः । सर्वेऽप्येते विशेषाः प्रवर्तकत्वेन सर्वानुगतधर्मेण णिचाऽभिधीयन्ते । **अत आह**—भवन्तं प्रेरयति प्रवर्तयतीत्यर्थः ।

हिन्दी

८०३. क्रिया में स्वतन्त्ररूप से विवक्षित अर्थ को कर्तृसंज्ञा होती है ।

८०४. कर्ता के प्रयोजक को कर्तृसंज्ञा और हेतु संज्ञा होती है ।

८०५. प्रयोजक के व्यापार प्रेषण आदि वाच्य होने पर धातु से णिच् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८०६. ओः पुयण्ज्यपरे-७।४।८०।। सनि परे यदङ्गं तदवयवो योऽभ्यासस्तस्योत इत् स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः । अबीभवत् । अपीपवत् । मूङ् बन्धने । अमीमवत् । अयीयवत् । रु शब्दे । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत्। पुयण्जीति किम्-नुनावयिषति । अपरे किम् ? बुभूषति ।

८०७. स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा-७।४।८१।। एषामभ्यासोकारस्येत्त्वं वा सनि अवर्णपरे धात्वक्षरे परे । असिस्रवत् इत्यादि । अवर्णपरे किम् ? शुश्रूषते । णिजन्ताण्णिच् । परत्वाद् वृद्धौ प्राप्तायाम् ।

मध्यमनोरमा

अबीभवदिति—भूधातोर्णिच्, लुङ्, तिप्, च्लेश्चङ्, चङीति भू इत्यस्य द्वित्वम्, अभ्यासोत्तरखण्डस्य वृद्धिः, आवादेशः, णौ चङीति ह्रस्वः, सन्वद्भावः, ओः पुयण्जीत्यभ्यासोकारस्य इकारः, दीर्घो लघोरिति दीर्घः, अभ्यासे चर्च, णेरनिटीति णिचो लोपः, अडागमः, इतश्चेतीकारलोपः। **अपीपवदिति**—पूङ् पवने इत्यस्मात् णिजन्ताल्लुङ् । **अमीमवदिति**—मूङ् बन्धने । **अयीयवदिति**—यु मिश्रणामिश्रणयोः । **अरीरवदिति**—रु शब्दे । **अलीलवदिति**—लूञ्, छेदने । **अजीजवदिति**—जु गतौ । सौत्रोऽयं धातुः, जुचङ्क्रम्येति सूत्रे निर्दिष्टः । **नुनावयिषतीति**—नु स्तुतौ, अस्माण्णिच्, ततः सन्, ततः तिप्, सन्यङोरिति नु शब्दस्य द्वित्वम्, अभ्यासोत्तरखण्डे उकारस्य वृद्ध्यावादेशौ, सन इट्, णेः, सार्वधातुकेति गुणः, अयादेशः । अभ्यासोकारस्य ओरिति इत्त्वं न भवति, अभ्यासस्य नकारपरत्वेन पवर्गादिपरत्वाभावात् । पुयण्जिग्रहणाभावे तु इत्त्वं स्यादित्यर्थः । **बुभूषतीति**- भूधातोः सन्, अत्र इत्त्वन्न, अभ्यासोकारस्य पवर्गपरत्वेऽपि पवर्गस्यावर्णपरत्वाभावात् । **असिस्रवदिति**—स्रु गतौ, लुङ्, च्लेश्चङ्, स्रु इत्यस्य द्वित्वम्, अनभ्यासस्य वृद्ध्यावादेशौ, ह्रस्वः, स्रवतीत्यभ्यासोकारस्य इत्त्वम्, अवर्णपरधात्वक्षरे अशब्दे परतः । अक्षरशब्दोऽत्र वर्णपरः । **शुश्रूषते इति**—श्रु श्रवणे, सन्, द्वित्वादि, अज्झनगमां सनीति दीर्घः । अत्र उकारपरं धात्वक्षरं श्रू इति न अवर्णपर इति नेत्त्वम्।

मध्यमनोरमापूरणी

भावयतीति—भवन्तं प्रेरयतीति विग्रहे भूधातोः हेतुमति चेति णिच्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आवादेशः, धातुसंज्ञा, लट्, तिप्, शप्, गुणायादेशौ । **अपीपवदिति**—पूधातोर्णिच्, लुङ्, तिप्, इतश्च, च्लेश्चङ्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, ह्रस्वः उत्तरखण्डस्य वृद्धिः, आवादेशः, ह्रस्वः, णिलोपः, ओः पुयणिति इत्वम् । दीर्घो लघोः । **स्रवतीत्यादि**—अत्र सूत्रे सन्यत इति सनि इत्यस्य अत्र लोपोऽभ्यासस्येत्यत अभ्यासस्येत्यस्य भृञामिदिति इत् इत्यस्य चानुवृत्तयः आयान्ति, ओः पुयण्ज्यपरे इत्यतः ओः इति अपरे इति चानुवर्तेते । पवर्गयण्जकाराः नानुवर्तन्ते, असम्भवादव्यभिचाराच्च । **तदाह**—एषामभ्यास इति ।

हिन्दी

८०६. सन् परे यो अङ्ग, उसका अवयव जो अभ्यास, उस अभ्यास के उ को इत् होता है अवर्णपरक पवर्गयण् व जकार परे रहते ।

८०७. स्रु श्रृ द्रु प्रु प्लु और च्यु धातु के अभ्यास उकार को इत् होता है विकल्प से, सन् परे, अवर्णपरकधात्वक्षर परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. ण्यल्लोपावियङ् यण्वृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन । णिलोपः । चोरयति । णौ चङीति ह्रस्वः । दीर्घो लघोरिति दीर्घः । न चाग्लोपित्वाद् द्वयोरप्यसम्भवः, ण्याकृतिनिर्देशात् । अचूचुरत् । टु ओश्वि गतिवृद्ध्योः ।

८०८. णौ च संश्चङोः-६।१।३१।। सन्परे चङ्परे च णौ श्वयतेः सम्प्रसारणं वा स्यात् ।

वा. सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवत् ।। इति वचनात् सम्प्रसारणम् । अशूशवत् । अलघुत्वान्न दीर्घः । अशिश्वयत् ।

८०९. स्तम्भुसिवुसहां चङि-८।३।११६।। उपसर्गादेषां सस्य षो न स्याच्चङि । अवातस्तम्भत् । पर्यसीषिवत् । न्यसीषहत् ।

मध्यमनोरमा

चोरयतीति—चोरि इति णिजन्तात् णिच्, तिप्, शप्, अनिडादावार्धधातुके द्वितीये णिचि परतः प्रथमणिचो णेरनिटीति लोपः । तत्र णिलोपात् परत्वात् अचो ञ्णितीति वृद्धिः प्राप्ता, ण्यल्लोपावितिवार्तिकेन पूर्वस्यापि णिलोपस्य वृद्धिबाधत्वं विधीयते, ततो गुणः, अयादेशः । **णौ चङीति ह्रस्वः इत्यादि**—चुर्धातोर्णिजन्ताण्णिचि लुङि चङि चुर इ इ अत् इति जाते चुर् इत्यस्य लघूपधगुणे णौ चङीति ह्रस्वे द्वित्वादौ दीर्घो लघोरिति दीर्घः । **नचेति**—प्रथमणिच्स्वरूपस्याचो णेरनिटीति णौ परतो लोपात् द्वयोरपि ह्रस्वदीर्घयोरसम्भवः इत्यर्थः । तत्र णौ चङीति ह्रस्वस्य नाग्लोपिशास्वृदितामिति निषेधादसम्भवः । दीर्घो लघोरिति दीर्घस्य सन्वद्भावविषयविधानात्, सन्वद्भावस्य तु णौ अग्लोपेऽसतीति निषेधादसम्भवो बोध्यः । **समाधत्ते ण्याकृतीति**, णित्त्वजातिनिर्देशादित्यर्थः । तथा च नाग्लोपीति सूत्रे णिचि अग्लोपिन इति व्याख्यानात् । सन्वदिति सूत्रेऽपि अग्लोपेऽसतीत्युक्ते णित्त्वजात्याक्रान्तं णिज्द्वयमपि, तत्र णिज्द्वये परतो नाग्लोपः, किन्तु द्वितीये णिचि प्रथमणिचो लोपस्ततो णिजन्तात्तिपि अग्लोपित्वं नास्तीति भावः । **अशूशवदिति**—श्विधातोर्णिचि लुङि चङि द्वित्त्वात् पूर्वं चङ् परे णौ सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्यं बलवदिति परिभाषया सम्प्रसारणस्य तदाश्रितकार्यस्य सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपस्य च द्वित्त्वापेक्षया बलवत्त्वविधानात्, ततः शु शब्दस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, अनभ्यासोकारस्य वृद्ध्यावादेशौ, णौ चङीति ह्रस्वः । **अवातस्तम्भत्**—अवपूर्वकस्तम्भधातुः, तस्माण्णिच्, लुङि चङ्, स्तम्भ इत्यस्य द्वित्वं, शर्पूवाः खयः, णिलोपः, अडागमः, अवाच्चालम्बनाविदूर्य्ययोरिति अवादुत्तरस्य स्तम्भेः षत्वस्य प्राक्सितादड्व्यवायेऽपीति अडागमव्यवधानेऽपि विधानात् प्राप्तं षत्वं स्तम्भुसिवुसहामिति सूत्रेण निषिध्यते । **पर्य्यसीषिवत् इति**-परिपूर्वात् सिवुधातोः णिचि लघूपधगुणः, लुङ्, चङ्, सेव् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः,

मध्यमनोरमापूरणी

अशिश्वयदिति—सम्प्रसारणाभावे द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे अभ्यासोत्तरखण्डस्य वृद्धौ आयादेशे उपधाह्रस्वे णेर्लोपे रूपम् ।

हिन्दी

वा. इयङ् यण् वृद्धि व दीर्घ को पूर्वविप्रतिषेध से बाधकर णिलोप व अलोप होता है ।

८०८. सन्परे व चङ्परक णि परे रहते श्वि धातु को सम्प्रसारण हो विकल्प से ।

वा. सम्प्रसारण व सम्प्रसारणश्रय कार्य बलवान् होता है ।

८०९. उपसर्गस्थनिमित्त से परे स्तम्भ् सिव् व सह् के स् को षत्व नहीं होता है, चङ् परे।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८१०. स्वापेश्चङि-६।१।१८।। ण्यन्तस्य स्वापेश्चङि सम्प्रसारणम् । असूषुपत् ।

८११. हनस्तोऽचिण्णलोः-७।३।३२।। चिण्णल्वर्जे ञिति णिति । घातयति ।

८१२. अर्तिह्रीब्लीरीक्नूयी क्ष्माय्यातां पुग् णौ-७।३।३६।। स्थापयति ।

८१३. तिष्ठतेरित्-७।४।५।। उपधायाश्चङ्परे णौ इदादेशः स्यात् । अतिष्ठिपत् ।

८१४. जिघ्रतेर्वा-७।४।६।। उपधाया इत्त्वं वा चङ्परे । घ्रापयति । अजिघ्रपत्, अजिघ्रिपत् ।

मध्यमनोरमा

णौ चङीति ह्रस्वः, दीर्घो लघोरिति अभ्यासस्य दीर्घः, अडागमः, प्राक्सितादिति प्राप्तस्य षत्वस्य निषेधः, अभ्यासात् परस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वं भवत्येव । उपसर्गनिमित्तस्य षत्वस्यैव निषेधात् । **न्यसीषहत् इति**—सह्धातोर्णिच्, उपधा- वृद्धिः, लुङ्, चङ्, चङीति सह् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, सन्यतः इति इत्वं, दीर्घो लघोः, परिनिविभ्यः इति षत्वस्याड्व्यवायेऽपि विधानात् प्राप्तं षत्वं निषिध्यते । अभ्यासात् परस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **असूषुपदिति**-स्वप्धातोर्णिच्, लुङ्, चङ्, स्वापेश्चङि इति सम्प्रसारणं पूर्वरूपं, ततो द्वित्वं, दीर्घो लघोरिति दीर्घः, णिलोपादि, अभ्यासात् परस्य सस्यादेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **घातयतीति**—हन् धातोर्णिच्, अत उपधायाः, हो हन्तेरिति हस्य घः, हनस्त इति नस्य तः, शप्, सार्वधातुकगुणः, अयादेशः । **अर्तिह्रीब्लीति-ऋधातोः** अर्पयतीति, ह्रीप् धातोः **ह्रेपयतीति** । ब्लीधातोः **ब्लेपयतीति** । रीङ् श्रवणे, क्नूयी शब्दे उन्दे **च-क्नोपयति** । क्ष्मायी विधूनने **क्ष्मापयतीति** । **स्थापयतीति**—अत्र स्थाधातोरादन्तात् पुक्, णिचो गुणायादेशौ । **अतिष्ठिपदिति**—स्थाधातोर्णिच्, अर्त्तिह्रीब्लीत्यादिना पुक्, स्थापीत्यस्मात्, लुङ्, चङ्, स्थाप् इत्यस्य द्वित्वं, शर्पूर्वाः खयः इति थकारशेषे सकारपकारलोपः । ह्रस्वः, अभ्यासे चर्चेति थस्य तः, तिष्ठतेरित्युपधाया इत्वं, सन्वद्भावः, सन्यत इति अभ्यासस्येत्त्वम्, अभ्यासादुत्तरस्य षः, ष्टुत्वम् । **घ्रापयतीति**—आकारान्तत्वादर्त्तीत्यादिना पुक् । **अजिघ्रिपदिति**—घ्रापीति णिजन्तात् लुङ्, चङ्, घ्राप् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुरिति घस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, जिघ्रतेर्वेति उपधाया इत्वम्, सन्वद्भावः, सन्यत इत्यभ्यासाकारस्य इत्वम् । इत्त्वाभावे घ्राप् इत्यस्य द्वित्वं, ह्रस्व इत्यभ्यासह्रस्वः, णौ चङीत्युपधाह्रस्वः, सन्वद्भावः, सन्यत इत्यभ्यासस्येत्त्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

८१०. ण्यन्त स्वप् धातु को सम्प्रसारण होता है चङ् परे ।

८११. चिण् व णल्भिन्न ञित् णित् प्रत्यय परे हन् के न् को त् होता है ।

८१२. ऋ ह्री ब्ली री क्नूयी क्ष्मायी व आदन्त धातुओं को णि परे रहते पुगागम होता है।

८१३. स्थाधातु की उपधा को इत् होता है चङ्परक णि परे रहते ।

८१४. घ्राधातु की उपधा को इत्त्व हो विकल्प से, चङ्परक णि परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८१५. शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक्-७।३।३७।। णौ परे । शाययति । अशीशयत् । ह्वाययति ।

८१६. ह्वः सम्प्रसारणम्-६।१।३२।। सन्परे चङ्परे च णौ ह्वः संप्रसारणं स्यात्। वा. काण्यादीनां वा । चङ् परे णौ उपधाया ह्रस्वो वा । ण्यन्ताः-कण रण भण श्रण लुप हेठाः षड्भाष्ये । ह्वायि वाणि लोटि लोपयश्चत्वारोऽधिका न्यासे । चाणिलोठी अप्यन्यत्र । इत्थं काण्यादयो द्वादश । अजूहवत्, अजुहावत् । पाययति।

८१७. लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य-७।४।४।। पिबतेरुपधायाः लोपः स्यादभ्यासस्य ईदन्तादेशश्च चङ्परे णौ । अपीप्यत् ।

मध्यमनोरमा

शाच्छासेति—पुकं बाधित्वा युगागम एषां भवति । शो तनूकरणे, छो छेदने षोऽन्तकर्मणि, ह्वेञ् स्पर्धायां, वेञ् संवरणे, वेञ् तन्तुसन्ताने पा पाने । लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग् विकरणस्य ग्रहणमिति परिभाषया पा रक्षणे इत्यस्य न ग्रहणम् । पातेर्लुक्, पालयतीति लुगागमं वक्ष्यति । **शाययतीति**—शाधातोर्णिचि युक्, शप्, णेर्गुणः अयादेशः । **अशीशयदिति**—शायीति णिजन्ताल्लुङि चङि द्वित्वे हलादिशेषेऽभ्यासह्रस्वे उपधाह्रस्वे सन्वद्भावे सन्यत इतीत्त्वे दीर्घो लघोरिति दीर्घः । **ह्वाययतीति**—ह्वेञ्धातोर्णिचि आदेच उपदेशेऽशितीति एकारस्य आत्वे युक्, णिचो गुणादि । **काण्यादीनामिति**—कण निमीलने रण शब्दे भण शब्दे श्रण दाने लुप्लृ छेदने, हेठ विवाधायाम् एते षड्धातवो भाष्ये उक्ताः । ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च वण शब्दे लुठ प्रतीघाते, लुप्लृ छेदने एते चत्वारोऽधिकाः न्यासे, न्यासनामके काशिकाव्याख्याने उक्ताः । ह्वायादीति णिजन्तनिर्देशः । चण दाने लुठस्तेये भ्वादिः, भाषार्थकश्चुरादिः । चाणीत्यादि णिचा निर्देशः । एतावपि धातू अन्यत्र ग्रन्थ उक्तौ । **अजूहवदिति**—ह्वेञ्धातोर्णिच्, सम्प्रसारणं वकारस्य उकारः, सम्प्रसारणाच्च, हुशब्दस्य द्वित्वम्, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति झस्य जः, अनभ्यासोकारस्य वृद्धिः, आवादेशः, काण्यादीनामिति उपधाह्रस्वविकल्पः । ह्रस्वपक्षेऽभ्यासस्य लघुपरत्वात् सन्वद्भावविषयतया दीर्घो लघोरिति दीर्घः । उपधाह्रस्वाऽभावे अजुहावदिति । लघुपरत्वाभावे सन्वद्भाव विषयत्वाभावान्नाभ्यासदीर्घः । **पाययतीति**—शाच्छेतियुक् ।

हिन्दी

८१५. शा, छा, सा ह्वा, व्या, व वा, धातु को युक्-आगम होता है, णि परे ।

८१६. सन् परक और चङ्परक णि परे रहते ह्वेञ् धातु को सम्प्रसारण होता है ।

वा. काण्यादि धातु की उपधा को ह्रस्व होता है विकल्प से, चङ्परक णि परे रहते ।

८१७. चङ्परक णि परे रहते पाधातु की उपधाका लोप होता है व अभ्यास को ईत् आदेश होता है ।

टिप्पणी- लोपि इत्यनेन लुप् इति गृह्यते, परन्तु बालमनोरमायां लापीति पाठः, तेन लप्धातुः ग्रहीतव्यः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः । पुकोऽपवादः । पालयति ।

८१८. वो विधूनने जुक्-७।३।३८।। णौ । वाजयति । विधूनने किम्-केशान् वापयति ।

८१९. शदेरगतौ तः-७।३।४२।। णौ । शातयति । गतौ तु गाः शादयति गोविन्दः । गमयतीत्यर्थः ।

८२०. रुहः पोऽन्यतरस्याम्-७।३।४३।। णौ । रोपयति, रोहयति ।

८२१. दोषो णौ-६।४।९०।। दुष्यतेरुपधाया ऊत् स्याण्णौ । दूषयति ।

८२२. वा चित्तविरागे-६।४।९१।। विरागोऽप्रीतता । चित्तं दूषयति दोषयति वा कामः ।

८२३. उभौ साभ्यासस्य-८।४।२१।। साभ्यासस्यानितेरुभौ नकारौ णत्वं प्राप्नुतो निमित्ते सति । प्राणिणत् ।

मध्यमनोरमा

अपीप्यदिति—पायीति णिजन्ताल्लुङ्, चङ्, लोपः पिबतेरित्युपधाभूतस्याकारस्य लोपे तेनैवाभ्यासस्सय इत्वे णिचो लोपः । **पालयतीति**—पातेर्णिजन्ताल्लुगागमः । **वाजयतीति**—विधूनयतीत्यर्थः । अविधूनने केशान् वापयतीति । **शातयतीति**—शदो दकारस्य तः, उपधा-वृद्धिः । **प्राणिणदिति**—प्रपूर्वकोऽन्धातुः, तस्मात् णिच्, लुङ्, चङ्, द्वित्वम्, अजादित्वात् द्वितीयस्यैकाचो निशब्दस्य द्वित्वम्, आडागमः, वृद्धिः, उभौ साभ्यासस्येति णत्वं, णिलोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

रोपयतीति-रुहः णिचि रुहः पोऽन्यतरस्यामिति हस्य पकारे उपधागुणे रोपि इति, लट्, तिप्, शप्, गुणः अयादेशः । पकाराभावे रोहयतीति । **दुष्यतेरिति**—ऊदुपधाया गोह इत्यत ऊदुप-धाया इत्यनुवर्तते । सूत्रे दैवादिकस्य दुष् वैकृत्ये इत्यस्य निर्देशः । **तथा च सूत्रार्थः**—दुषधातोरुपधाया ऊत् स्याण्णौ । लघूपधगुणस्यापवादः ऊत् । **दूषयति इति**—दुष्धातोः णिचि दोषो णाविति उकारस्य ऊत्त्वे लटि तिपि शपि गुणायादेशौ ।

हिन्दी

वा. पा धातु को लुक्-आगम होता है, णि परे रहते ।

८१८. वा धातु को जुक् आगम होता है णि-परे, विधूनन अर्थ में ।

८१९. गतिभिन्न अर्थ में शद् के द् को त् होता है णि परे रहते ।

८२०. रुह् के ह् को प् आदेश होता है णि परे, विकल्प से ।

८२१. दुष् धातु की उपधा को ऊत् आदेश होता है, णि-परे रहते ।

८२२. चित्त विराग अर्थ में दुष् की उपधा को ऊत् होता है विकल्प से, णि परे ।

८२३. अभ्याससहित अन्धातु के दोनों न को णत्व हो निमित रहने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८२४. णौ गमिरबोधने-२।४।४६।। इणः । गमयति । बोधने तु प्रत्याययति। घट चेष्टायाम् । घटादयो मितः । जनीजॄष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च मितः । 'ज्वल ह्वल ह्मलनमामनुपसर्गाद् वा' एषां मित्त्वं वा । 'ग्लास्नावनुवमां च' अनुपसर्गादेषां मित्त्वं वा । 'न कम्यमिचमाम्' अमन्तत्वात्, प्राप्तं मित्त्वमेषां न । 'यमोऽपरिवेषणे' मित्त्वं न । 'स्खदिरवपरिभ्यां च' मिन्न ।

८२५. मितां ह्रस्वः-६।४।९२।। ज्ञपादीनां घटादीनां च णावुपधायाः ह्रस्वः । घटयति । अजीघटत् । ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञपयति । अजिज्ञपत् ।

मध्यमनोरमा

गमयतीति—इणो गमिरादेशः, अत उपधाया इति वृद्धिः, जनी-जॄष-क्नसु-रञ्जोऽमन्ताश्चेति अमन्तत्वान्मित्त्वं, मितां ह्रस्व इति ह्रस्वः । घटादयो मितः । घटादयस्तु घट चेष्टायां, व्यथ भयचलनयोः, प्रथ प्रख्याने प्रस विस्तारे म्रद मर्दने, स्खद स्खदने, क्षजि गतिदानयोः गद्लृ [1]गतिदानयोः, दक्ष गतिहिंसनयोः, क्रप कृपायां गतौ च, कदि क्रदि क्लदि वैकल्ये, ञित्वरा सम्भ्रमे, ज्वर रोगे, गड सेचने, हेड वेष्टने, वटभट परिभाषणे, णट नृतौ ष्टक प्रतीघाते, चक तृप्तौ, कखे हसने रगे शङ्कायाम् लगे सङ्गे, ह्रगे ह्लगे षगे ष्टगे संवरणे, कगे क्रियासामान्ये, अक अग कुटिलायां गतौ, कण रण गतौ, चण श्रण शण दाने च, श्रथ क्रथ क्लथ हिंसार्थाः, वन हिंसायां, वनु क्रियासामान्ये ज्वल दीप्तौ ह्वल ह्मल चलने, स्मृ आध्याने, दॄ भये नॄ नये श्रा पाके ज्ञा मारण तोषणनिशामनेषु, चल कम्पने छदि वलप्राणनयोः, लडि जिह्वोन्मथने, मदी हर्षग्लेपनयोः, ध्वन शब्दे, दल विदारणे, वल संवरणे, स्खल संचलने, त्रपूष् लज्जायां, क्षै क्षये, स्वन अवतंसने इति, एतेषां घटादीनां मित्त्वं भवति । मकारेत्संज्ञकप्रयुक्तं मितां ह्रस्व इति ह्रस्वत्वं भवतीत्यर्थः । **ज्ञपादय इति**—ज्ञप ज्ञापने ज्ञाने च, यम परिवेषणे चह परिकल्कने, चप इत्येके, रह त्यागे इत्येके, बल प्राणने, चिञ् चयने, एते ज्ञपादयश्चुराद्यन्तर्गताः । **घटयतीति**-घटादित्वान्मित्त्वं, मित्त्वाद्घ्रस्वः । **ज्ञपयतीति**—ज्ञपादित्वात् मित्त्वम् । **अजीघटदिति**—घट-धातोर्णिजन्तात् लुङ् चङ्, द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, अत उपधाया वृद्धिः, मितां ह्रस्वः, सन्वद्भावः, सन्यतः, दीर्घो लघोः । **अजिज्ञपदिति**—ज्ञपधातोर्ण्यन्ताल्लुङि चङि द्वित्वे हलादि-शेषे उपधावृद्धौ ह्रस्वत्वे सन्वद्भावे सन्यत इतीत्त्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

बोधने तु इति—णौ गमिरबोधने इत्यस्य बोधनेऽर्थे अप्रवृत्तौ प्रतिपूर्वकाद् इण् धातोर्णिचि धातोर्वृद्धौ आयादेशे यणि प्रत्यायि इति, तस्माल्लट्, तिप्, शप्, गुणायादेशौ,

हिन्दी

८२४. बोधन भिन्न अर्थ में इण्धातु को गम् आदेश होता है णि परे रहते । घटादि मित् होते हैं । जनी जॄष आदि एवं अमन्तधातु मित् होते हैं । उपसर्गभिन्न ज्वलादिधातु विकल्प से मित् होते हैं । उपसर्ग भिन्न से परे ग्ला आदि धातु भी विकल्प से मित् हैं । कम अम चम आदि मित् नहीं होते हैं । यम् धातु अपरिवेषण अर्थ में मित् नहीं होता है । अव व परि उपसर्ग से परे स्खद धातु मित् नहीं होता है ।

८२५. ज्ञपादि और घटादि धातुओं की उपधा को ह्रस्व होता है णि परे ।

टिप्पणी- गद्लृ गतिदानयोः इति धातुः उक्तेऽर्थे धातुपाठे नास्ति । गद-गदी इति धातू वर्तेते धातुपाठे । मध्यमनोरमोक्तिः अन्वेषणीया ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८२६. रभेरशब्लिटोः-७।१।६३।। नुमचि ।

८२७. लभेश्च-७।१।६४।। अररम्भत् । अललम्भत् । ईर्ष्ययति

वा. ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम् । तृतीयव्यञ्जनस्य तृतीयैकाच इति वार्थः । आद्ये षस्य द्वित्वं वारयितुमिदम् । द्वितीये त्वजादेर्द्वितीयस्येत्यस्यापवादतया सन्नन्ते प्रवर्तते । ऐर्ष्यियत् । द्वितीयव्याख्यायां णिजन्ताच्चङि ष इवाभ्यासे श्रूयते। हलादिःशेषात् । द्वित्वं तु द्वितीयस्यैव । तृतीयाभावेन प्रकृतवार्तिकाप्रवृत्तेः । ऐर्षिष्यत् ।

।। इति णिजन्तप्रकरणम् ।।

मध्यमनोरमा

आररम्भदिति—रभ्धातोर्णिच्, नुमागमः, रम्भ इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः । एवम् **अललम्भदिति** । **ईर्ष्ययतीति**—ईर्ष्य ईर्ष्यायाम्, ततो णिच्, तिप्, शप्, गुणादि । **ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति**—ईर्ष्यधातोर्व्यञ्जनत्रयम्, रेफः षकारो यकारश्च । तत्र रेफस्य नन्द्रा इत्यनेन द्वित्वनिषेधात् षकारस्य द्वित्वमनेन वार्तिकेन वार्य्यते । **तृतीयैकाच इति**—अस्मिन् पक्षे णिजन्ते ईर्ष्यधातोः ईर्ष्यि इत्यत्र तृतीयैकाचोऽभावात् वार्तिकमिदं न प्रवर्तते । वस्तुतस्तु अजादेर्द्वितीयस्येति द्वितीयस्यैकाचो द्वित्वं, तत्र रेफस्य नन्द्राः इति द्वित्वनिषेधः, ष्यि शब्दस्य द्वित्वं द्वितीयस्यैकाचः । प्रस्तुतवार्तिकप्रयोजनं सन्नन्ते बोध्यम् । तत्र ईर्ष्यधातोः सनि इटि षत्वे ईर्ष्यिष इति सन्नन्तं, तत्र तृतीय एकाच ष शब्दस्तस्य द्वित्वं, तेन **ईर्ष्यिषिषतीति** । इति मध्यसिद्धान्तकौमुदीव्याख्यायां मध्यमनोरमायां णिजन्तं व्याख्यातम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रत्याययतीति । **रभेरशबिति**—इदितो नुम्धातोरितिसूत्रात् नुम् इति, रधिजभोरचीत्यत अचीति चानुवर्तेते । **तथा च सूत्रार्थः**—रभ्धातोर्नुम् स्यादचि न तु शपि लिटि च । **लभेश्चेति**-लभ्धातोर्नुम् स्यादचि नतु शब्लिटोः । **अललम्भदिति**—लभ्धातोर्णिचि लभेश्चेति नुमि मस्यानुस्वारपरसवर्णौ, लम्भिधातोर्लुङ्, तिप्, इतश्च, णिश्रीति च्लेश्चङ्, चङीति द्वित्वे हलादिशेषे णेर्लोपे अटि अललम्भदिति । **ऐर्ष्यियदिति**—ईर्ष्यि अत् इति दशायाम् ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वार्तिकेन तृतीयव्यञ्जनस्य णिच्सहितस्य यि इत्यस्य द्वित्वे इर्ष्यि यि अत् इति जाते णिलोपे आटि आटश्चेति वृद्धौ रूपम् । तृतीयव्यञ्जनमात्रस्य द्वित्वपक्षे ईर्ष्य् इ अत् इति जाते यकारस्य द्वित्वे ईर्ष्य् य् इ अत् इति, णिलोपे आटि वृद्धौ **ऐर्ष्य्यदिति** रूपम् । तृतीयस्यैकाचः द्वित्वमिति पक्षे ईर्ष्यि अ त् इत्यत्र णिजन्ते तृतीयैकाचोऽभावात् अजादेर्द्वितीयस्येति नियमेन ष्यि इत्यस्य द्रित्वे हलादिशेषे णिलोपे आटि वृद्धौ ऐर्षिष्यदिति रूपम् ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यां णिजन्तप्रकरणम् ।।

हिन्दी

८२६. रभ्धातु को अच् परे नुम् होता है । शप् व लिट् परे नहीं ।

८२७. लभ् धातु को अच् परे नुम् होता है शप् व लिट् परे नहीं ।

वा. ईर्ष्यधातु के तृतीय व्यञ्जन या तृतीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ सन्नन्तप्रकरणम्

८२८. धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७।। इषिकर्मणोधातोरिषिणैककर्तृकात् सन्वेच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि । इट् ।

८२९. सन्यङोः-६।१।९।। सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । सन्यतः । पठितुमिच्छति पिपठिषति । कर्मणः किम् ? गमनेनेच्छतीति करणान्मा भूत् । समानकर्तृकात् किम् ? शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः ।

वाग्रहणाद् वाक्यमपि ।

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः ।
सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ।।

तेन पिपठिषितुमिच्छतीति वाक्यमेव । लुङ्सनोर्घस्लृ ।

मध्यमनोरमा

पठितुमिच्छतीति—स्वकर्तृकमेव पाठमिच्छतीति, यः पाठकर्त्ता स एव इच्छाकर्त्तेति इषिणा इष्धातुना एककर्त्तृकः, एकः कर्त्ता यस्य स एककर्त्तृकः, तादृशः पठ्धातुः इषेः इष्धातोः कर्म । पठितुमित्यनेन पठ्धात्वर्थस्य कर्मत्वप्रतीतेरित्यर्थः । पठ्धातोः सनि धातुसंज्ञा, आर्धधातुकेति सन इट्, पठिस् इति जाते सन्यङोरिति पठ् इति प्रथमैकाचो द्वित्वं, हलादिशेषः, सन्यतः इत्यभ्यासाकारस्येत्वं, पिपठिष इत्यस्मात्तिप्, शप्, अतो गुणे । **गमनेनेच्छतीति**—अत्र गमनं करणं न तु कर्म, अतो गम्धातोः सन् न । **शिष्याः पठन्तु इति**—पाठकर्तृत्वं शिष्याणाम्, इच्छाकर्त्तृत्वं गुरोरिति न समानकर्त्तृत्वमिषिकर्मण इति बोध्यम् । **शैषिकादिति**-भाष्यकृतो वचनमिदम् । शेषे शेषाधिकारे भवः, शैषिकः, अध्यात्मादित्वाट्ठञ् । मत्वर्थे भवः मत्वर्थीयः, ग्रहदित्वाच्छः । मतुबर्थोऽस्यास्तीति मतुबर्थिकः, अत इनठनौ इति ठन् । **अस्योदाहरणानि**—शालायां भवः शालीयः, शैषिकश्छः, शालीये भवः इत्यत्र पुनः छप्रत्ययो न । धनमस्यास्तीति धनवान्, मतुप्, धनवानस्यास्तीति अत्र मतुबन्तान्मतुब्न । एवं सन्नन्ताद् पुनः सन् न । पिपठिषितुमिच्छतीति वाक्यमेव । सरूपः समानरूपः, तेन अहिच्छत्रे भवः आहिच्छत्रः, शैषिकोऽण् । आहिच्छत्रे भवः आहिच्छत्रीयः, अणन्ताद् विरूपश्छप्रत्ययो भवत्येव।

मध्यमनोरमापूरणी

पिपठिषतीति—पठधातोः धातोः कर्मण इति सनि सनः आर्धधातुकत्वादिट्, सनाद्यन्ता धातव इति धातुसंज्ञा, पठ् इष इत्यत्र प्रथमस्यैकाचः पठ इत्यस्य सन्यङोरिति द्वित्वम्, अभ्याससंज्ञा हलादिशेषः, सन्यत इतीत्त्वम्, षत्वम्, लट्, तिप्, शप्, अतो गुणे । **सन्यङोरिति**—सन् च यङ् च, तयोरिति अवयवषष्ठी, न तु सप्तमी । प्रत्ययग्रहणे इति तदन्तग्रहणम् । 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' इति 'अजादेर्द्वितीयस्य' इत्यस्य चाधिकारः । **तदा च सूत्रार्थः**—सन्ननस्य यङन्तस्येत्यादि ।

हिन्दी

८२८. इच्छाकर्मक एवं इच्छा का एककर्ता वाला जो धातु उससे इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है, विकल्प से ।

८२९. सन्नन्त एवं यङन्तधातुओं के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है, अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८३०. सः स्यार्धधातुके-७।४।४९॥ सस्य तः स्यात् सादावार्धधातुके । अत्तुमिच्छति जिघत्सति । एकाच इति नेट् ।

८३१. अज्झनगमां सनि-६।४।१६॥ अजन्तानां हन्तेरजादेशगमेश्च दीर्घो झलादौ सनि ।

८३२. इको झल्-१।२।९॥ इगन्ताज्झलादिः सन् कित् । कर्तुमिच्छति चिकीर्षति । जिघांसति ।**

८३३. सनि च-२।४।४७॥ इणो गमिः स्यात् सनि न तु बोधने । जिगमिषति। बोधने तु प्रतीषिषति ।

मध्यमनोरमा

एवं दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी, मत्वर्थीयः इन् । दण्डी विद्यते यस्मिन् इत्यत्र विरूपो मतुप् भवत्येव। सनस्तु सादृश्यमर्थद्वारा, तेन इच्छासन्नन्तादिच्छार्थकः सन् न । स्वार्थसन्नन्तादिच्छा सन् भवत्येव । जुगुप्सिषते, मीमांसिषते इति । **जिघत्सतीति**—अद्धातोः सन्, घस् आदेशः, सस्य तः, घत्स इत्येतस्य प्रथमैकाचो द्वित्वं, हलादिशेषः, कुहोश्चुरिति घस्य झः, अभ्यासे चर्चेति झस्य जः, सन्यत इतीत्त्वम् । **एकाच इति**—एकाच उपदेशेऽनुदात्तादिति निषेधादिण्न भवति। **चिकीर्षतीति**—कृधातोः सन्, इको झल् इति सनः कित्त्वाद् गुणनिषेधः । ॠत इद्धातोः, हलि चेति दीर्घः, कीर् इत्येकाचो द्वित्वं हलादिशेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः, तिप्, शप्, अतो गुणे। **जिघांसतीति**—हनः सन्, अज्झनगमां सनि इति दीर्घः, हान् इत्येकाचो द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्च, सन्यतः, अभ्यासाच्चेति कुत्वेन हस्य घः, नश्चापदान्तस्येत्यनुस्वारः । **जिगमिषतीति**—इण्धातोः सन्, इणो गमिः, तिप्, शप्, गमेरिट् परस्मैपदेष्विति इट्, गम् इत्यस्य द्वित्वादि । **प्रतीषिषतीति**-इणः सन्, अजादेर्द्वितीयस्येति सकारस्य द्वित्वम्, अभ्यासाकारस्य द्वितीये सकारे सनि परतः सन्यतः इति इत्वं, द्वयोः सयोः षत्वम्, उपसर्गेण सह सवर्णदीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

इगन्तादिति—रुदविद इत्यतः सन् इत्यनुवर्तते, सना आक्षिप्तः धातुः इक्पदेन विशेष्यते, विशेषणेन तदन्तविधिः भवति । तदाह इगन्तादिति । **इणो गमिरिति**—इणो गा लुङि इत्यतः इण इति, णौ गमिरबोधने इत्यतश्च गमिरबोधने इत्यनुवर्तते । **तदाह**—इणो गमिः स्यादिति।

हिन्दी

८३०. स को त होता है, सादि आर्धधातुक परे रहते ।

८३१. अजन्तधातु हन्धातु व अजादेश गम्धातु को दीर्घ होता है, झलादि सन् परे रहते ।

८३२. इगन्तधातु से परे झलादि सन् कित् होता है ।

८३३. इण् धातु को गम् आदेश होता है सन् परे, बोधन अर्थ में नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८३४. इङश्च-२।४।४८।। इङो गमिः स्यात् सनि । अधिजिगांसते ।
८३५. रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च-१।२।८।। एभ्यः सन् क्त्वा च कितौ स्तः । रुरुदिषति । विविदिषति ।
८३६. सनिग्रहगुहोश्च-७।२।१२।। ग्रहगुहेरुगन्ताच्च सन इण्न । जिघृक्षति ।
८३७. हलन्ताच्च-१।२।१०।। इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित् । गुहू संवरणे । जुघुक्षति । सुषुप्सति ।
८३८. किरश्च पञ्चभ्यः-७।२।७५।। कृ गॄ दृङ् धृङ् प्रच्छ एभ्यः सन इट् । पिपृच्छिषति । चिकरिषति । जिगरिषति । जिगलिषति ।
वा. अत्रेटो दीर्घो नेष्टः ।

मध्यमनोरमा

अधिजिगांसते इति—इङ्धातोरात्मनेपदित्वात् तदादेशस्य गमेरपि आत्मनेपदित्वं, तेन पूर्ववत्सनः इति सन्नन्तादप्यात्मनेपदम्, अज्झनेति दीर्घः, गाम् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वादि, मोऽनुस्वारः । परस्मैपदत्वाभावाद् गमेरिट् न । **रुरुदिषतीति**—सनः कित्त्वाल्लघूपध-गुणनिषेधः । **जिघृक्षतीति**—ग्रह्धातोः सन्, सनिग्रहगुहोरिति इटो निषेधात् रुदविदेति सनः कित्त्वम् । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं, गृह् इत्यस्य द्वित्वम्, उरदत्त्वादि, जगृह् स इति स्थिते हो ढः, एकाचो बश इति भष्भावेन गस्य घः, षढोः कः सि, षत्वम् । **जुघुक्षतीति**—गुह्धातोरू-दित्वात् इड्विकल्पे प्राप्ते सनि ग्रहेति इटो निषेधः, हलन्ताच्चेति सनः कित्त्वेन लघूपधगुणो न । गुह् स इत्यस्य प्रथमैकाचो द्वित्वे हलादिशेषादि, जुगुह् स इति जाते हो ढः, भष्भावः, कत्वं, षत्वम् । **सुषुप्सतीति**—स्वप्धातोः सन्, रुदविदेति सनः कित्त्वम्, वचिस्वपीति सम्प्र-सारणम्, सुप् इत्यस्य द्वित्वं, सुषुप्स इति जाते तिप्, शप्, अतो गुणे । **पिपृच्छिषतीति**-प्रच्छधातोः सन्, किरश्चेति सन् इट्, रुदविदेति सनः कित्त्वं, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं, पृच्छिष् इति जाते पृच्छ् इत्यस्य द्वित्वे उरदत्त्वे हलादिशेषः, सन्यतः । **चिकरिषतीति**—कृधातोस्सनि ग्रहगुहोरिति इटो निषेधे प्राप्ते किरश्चेत्यनेन इट् । एवं गृधातोः । दृङ् धृङोस्तु अनुदात्तत्वादिण्-निषेधे प्राप्ते किरश्चेतीट् इति बोध्यम् । अत्रेटो दीर्घो नेष्टः इति कॄधातोः गॄधातोश्च सनि वॄतो वेति प्राप्त इटो दीर्घः भाष्यकारस्य नेष्टः इत्यर्थः । अनया भाष्यकारेष्ट्या इटो दीर्घनिषेधात्।

मध्यमनोरमापूरणी

सनिग्रहेति—सूत्रे चकारात् श्र्युकः किति इत्यत उक् इत्यनुकृष्यते, नेड्वशि इत्यतो नेडिति चानुवर्तते । **तदाह**—ग्रहगुहेरित्यादि ।

हिन्दी

८३४. इङ्धातु को गम् आदेश होता है, सन् परे रहते ।
८३५. रुद् विद् मुष् ग्रह स्वप् और प्रच्छ धातु से परे सन् और क्त्वा कित् होते हैं ।
८३६. ग्रह् गुह् और उगन्तधातुओं से परे सन् को इट् नहीं होता है ।
८३७. इक् समीप हल् से परे झलादि सन् कित् होता है ।
८३८. कृ गॄ दृङ् धृङ् व प्रच्छ धातु से परे सन् को इट् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८३९. पूर्ववत्सनः-१।३।६२॥ सनः पूर्वो योधातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । दिदरिषते । दिधरिषते । बूभूषति ।

८४०. सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्-७।२।४९॥ इवन्तेभ्य ऋधादिभ्यश्च सन इड् वा ।

८४१. च्छ्वोः शूडनुनासिके च-६।४।१९॥ सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् एतावादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च । यण् । द्वित्वम् । दुद्यूषति । दिदेविषति ।

८४२. स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्-८।३।६१॥ अभ्यासेणः परस्य स्तौतिण्यन्तयोरेव सस्य षः षभूते सनि नान्यस्य । तुष्टूषति । सिसाधयिषति । स्तौतिण्योः किम्-सुस्यूषति, सिसेविषति ।

मध्यमनोरमा

पूर्ववत्सनः—सनः पूर्व इति, सनः प्रकृतिभूतो यो धातुस्तत्तुल्यमात्मनेपदं सन्नन्ताद् भवति । सन्प्रकृतेः यादृशमात्मनेपदं तादृशमात्मनेपदं सन्नन्ताद् भवति इत्यर्थः । तेन कृञ्धातोः सनि अकर्तृगे फले चिकीर्षति, कर्त्तृगे फले चिकीर्षते इति । **दिदरिषते इति**—अत्र दृङ्धातोः ङित्त्वादात्मनेपदं नित्यमेवेति सन्नन्तादपि आत्मनेपदम् । **सनिग्रहगुहोश्चेति सूत्रे उगन्ताद्धातोः सन इण्निषेधमुदाहरति**—बुभूषति इति । इको झलीति सनः कित्त्वाद् न गुणः । **दुद्यूषतीति**—दिव्धातोः सन्, हलन्ताच्चेति सनः कित्त्वाद् च्छ्वोरिति वस्य ऊठ्, यण्, द्यू इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वे दुद्युस इति जाते षत्वं, तिबादि । **इडभावपक्षमुदाहृत्य सनीवन्तर्धेति - इट्पक्षमुदाहरति-दिदेविषतीति**—अत्र सनि झलादित्वाभावात् कित्त्वन्न । **तुष्टूषतीति**—स्तुधातोः सन्, स्तु इत्यस्य द्वित्वे शर्पूर्वाः खयः, तुस्तुस् इति जाते सनः सस्य षत्वम्, स्तौतिण्योरिति अभ्यासात् परस्य षत्वं ष्टुत्वम्, अज्झनेति दीर्घः । **सिसाधयिषतीति**-साधीति णिजन्तात् सन्, सनः इट्, णिचो गुणः, अयादेशः, साधयिष इति सन्नन्तस्य प्रथमैकाचो द्वित्वं, द्वित्वे साध् साधयिष इति, हलादिशेषे ह्रस्वे सन्यतः, सिसाधयिष इति जाते स्तौतिण्योरिति ण्यन्तत्वादभ्यासात् परस्य सस्य षत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

इक्समीपादिति—इको झल् इत्यनुवर्तते, रुदविदेत्यतः सनि इति, असंयोगाल्लिट् इत्यत किदिति चानुवर्तते । अन्तशब्दः समीपवाचकः, तदाह-इक्समीपादित्यादि । दृङ्धातोः **दिदरिषते** इति, धृङ् धातोः दिधरिषते इति ।

हिन्दी

८३९. सन् के प्रकृतिभूतधातु के तुल्य सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है ।

८४०. इवन्त व ऋधादि धातुओं से परे सन् को इट् होता है विकल्प से ।

८४१. तुक्सहित छ् तथा व् को श् एवं ऊठ् आदेश होते हैं, अनुनासिक परे क्विप् परे व झलादि कित् ङित् परे ।

८४२. अभ्यास सम्बन्धी इण् से परे स्तु और ण्यन्तधातुओं के स को ही ष होता है, अन्य को षत्व नहीं होता है । षरूप सन् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८४३. आप्ज्ञप्यृधामीत्-७।४।५५।। एषामच ईत् स्यात्सादौ सनि ।

८४४. अत्र लोपोऽभ्यासस्य-७।४।५८।। सनिमीमेत्यारभ्य यदुक्तं तत्राभ्यासस्य लोपः । आप्तुमिच्छति-ईप्सति । अर्धितुमिच्छति ईर्त्सति । अर्दिधिषति । बिभ्रज्जिषति । बिभर्जिषति, बिभ्रक्षति, बिभर्क्षति ।

८४५. दम्भ इच्च-७।४।५६।। दम्भेरच इत्स्यादीच्च सादौ सनि । हलन्तादित्यत्र हल्ग्रहणं जातिपरम्, तेन सनः कित्वान्नलोपः । धिप्सति, धीप्सति, दिदम्भिषति ।

मध्यमनोरमा

सुस्यूषतीति—सिव्धातोः सन्, सनीवन्तेति इडभावपक्षे हलन्ताच्चेति कित्त्वाच्छ्वोरिति वस्य ऊठ्, यणादेशः, स्यू इत्यस्य द्वित्वं, सुस्यूस इति जाते सनः षत्वे अभ्यासात् परस्य सकारस्य षोपदेशत्वेनादेशरूपत्वादादेशप्रत्यययोरिति षत्वे प्राप्ते षभूते सनि स्तौतिण्योरेव षत्वमिति नियमादस्य न षत्वम् । इट्पक्षे सिसेविषतीति । **सनिमीमेत्यारभ्येति**—अष्टाध्याय्यां सनिमीमेति सूत्रमारभ्य अत्र लोप इति सूत्रपर्यन्तं यानि कार्याणि तेषु कृतेषु अभ्यासलोप इत्यर्थः । **ईप्सतीति**-आप्धातोः सन्, आप्ज्ञपीति आकारस्य ईत्वे अजादेर्द्वितीयस्येति प्स इत्यस्य द्वित्वम्, अभ्यास-लोपे ईप्सति इति सिद्धम् । **ईर्त्सतीति**—ऋध्धातोः सन्, ऋकारस्य आप्ज्ञपीति ईर्, अजादित्वात् धस् इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासलोपः, धस्य खरि चेति तः । सनीवन्तर्धेति इट्पक्षे लघूपधगुणे अर्धिष इति जाते नन्द्रा इति रेफस्य द्वित्वनिषेधे धि इत्यस्य द्वित्वे अभ्यासे चर्च । **बिभ्रज्जिषतीति**—भ्रस्ज्धातोः सन्, सनीवन्तर्धेति इट्पक्षे सकारस्य जश्त्वेन भ्रज्ज् इस इति जाते द्वित्वादि । सन्यत इतीत्वम् । **बिभर्जिषतीति**—भ्रस्जो रोपधयोरिति भ्रशब्दादुत्तरं रमागमः, भ्रशब्दस्य रेफ[1]सकारयोश्च लोपः । **बिभ्रक्षतीति**—इड्भावे रमभावे च स्कोरिति सलोपः, व्रश्चेति जस्य षः, षढोरिति कः, षत्वम् । रमागमपक्षे बिभर्क्षति । **धीप्सतीति**—दम्भ्-धातोः सन्, दम्भ इत्यस्य द्वित्वे ददम्भेति जाते दम्भ इच्चेति ईत्वपक्षे अभ्यासलोपे दीम्भ् स इति जाते हलन्ताच्चेति सनः कित्त्वम्, अत्र यद्यपि इक्समीपो हल् नकारः, तस्मात् परत्वं सनो नास्ति भकारेण व्यवधानात्, तथापि हलन्ताच्चेति सूत्रे हल् इत्यस्य जातिग्रहणात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

दम्भेरच इति—सनि मीमेति सूत्रात् सनि इति अच् इति चानुवर्तेते । इच्चेति चकारात् आप्ज्ञपि इति सूत्रस्य ईत् इति गृह्यते । सः सीति सूत्रात् सि इत्यनुवृत्तं सनो विशेषणं भवति, तदा च सूत्रार्थः- दम्भेरच इत् स्यादीच्च सादौ सनि इति ।

हिन्दी

८४३. आप् ज्ञप् और ऋध् धातु के अच् को ईत् होता है, सादि सन् परे रहते ।

८४४. 'सनि मीमा' सूत्र से लेकर 'अत्र लोपः' सूत्र तक जितने कार्य कहे गए हैं, उनके करने पर अभ्यास का लोप होता है ।

८४५. दम्भ के अच् को इत् और ईत् होता है, सादि सन् परे रहते ।

टिप्पणीः- रेफसकारयोश्च लोपः इति न युक्तम्, अपि तु रेफसकारयोश्च स्थाने रम् इति बोध्यम्।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शिश्रीषति, शिश्रियिषति । उदोष्ठ्येत्युत्वम् । सुस्वूर्षति, सिस्वरिषति । युयूषति, यियविषति । विभाषोर्णोः इति ङित् । ऊर्णुनुविषति, ऊर्णुनविषति, ऊर्णुनूषति । बिभरिषति, बुभूर्षति । ज्ञीप्सति, जिज्ञपयिषति । सिषासति, सिसनिषति ।
वा. आशङ्कायां सन् वक्तव्यः । श्वा मुमूर्षति ।
वा. तनिपतिदरिद्रातिभ्य सनो वेड् वाच्यः । तितनिषति ।

मध्यमनोरमा

तेन इक्समीपो हल् नकारभकारोभयरूपस्ततः परस्य सनः कित्त्वम् । अनिदितामिति नकारलोपः । एकाचो बशो भष् इति भष्भावेन दस्य धः । झलां जशिति भस्य बः, तस्य खरि चेति पः । दम्भ इच्चेति इत्वपक्षे **धिप्सतीति** । सनीवन्तेति इट्पक्षे दिदम्भिषतीति । **सुस्वूर्षतीति-** स्वृधातोः सन्, सनीवन्तेति इडभावे उदोष्ठ्यपूर्वस्येति ॠत उत्वे द्वि त्वादि, हलि-चेति दीर्घः। इट्पक्षे **सिस्वरिषतीति-** स्वृ इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषः, सस्वृ इति जाते सन्यत इति इत्वे सार्वधातुकेति गुणः । **इडभावे युयूषतीति**—अज्झनेति दीर्घः। **यियविषतीति-**युधातोः द्वित्वेऽभ्यासोत्तरखण्डस्य गुणावादेशयोः ओः पुयण्जीत्यभ्यासोकारस्य इत्त्वम् । **ऊर्णुनूषति इति-** अजादेर्द्वितीयस्येति द्वितीयैकाचो द्वित्वं, तत्र रेफस्य नन्द्रा इति निषेधात् नु शब्दस्य द्वित्वम्, अज्झनेति दीर्घः । इट्पक्षे विभाषोर्णोः इति सनो ङित्त्वपक्षे **ऊर्णुनुविषतीति-**अचिश्नु इत्युवङ्। ङित्त्वाभावे गुणः, ऊर्णुनविषतीति । **बुभूर्षतीति**—भृञः सन्, इडभावे इको झलिति कित्त्वाद् गुणाभावे उदोष्ठ्येति उत्वे रपरत्वे तस्य द्वित्वे हलादिशेषे हलि चेति दीर्घे षत्वम् । **इट्पक्षे बिभरिषतीति**—भृ इत्यस्य द्वित्वे उरदत्त्वे हलादिशेषे सन्यत इतीत्वे सनो झलादित्वाभावात् कित्त्वाभावेन गुणः । **ज्ञीप्सतीति**—ज्ञप्धातोः णिजन्तात् सन्, इडभावे ज्ञप् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे जज्ञपिस इति जाते णेरनिटीति णिलोपे आबिति ईत्वे अभ्यास लोपः । **इट्पक्षे जिज्ञपयिषतीति**—ज्ञपीति णिजन्तात् सनि द्वित्वादौ जिज्ञपिस इति जाते ज्ञप मिच्चेति मित्त्वादुपधावृद्धौ ह्रस्वः, सनः इडादित्वात् णेर्लोपो न, किन्तु गुणः, अय् । **सिषासतीति**—सन्-धातोः सन्, सन् इत्यस्य द्वित्वादौ सन्यत इतीत्त्वे जनसनेत्वात्त्वम् । इट्पक्षे सिसनिषतीति । **आशंकायामिति**—आशङ्का शङ्का । **श्वा मुमूर्षतीति-** मरणशङ्काविषयः श्वेत्यर्थः । आसन्नमृत्युर्जन्तुमरणशङ्काविषयो भवति ।

मध्यमनोरमापूरणी

शिश्रीषतीति—सनि इडभावे इको झलिति कित्त्वेऽज्झनेति दीर्घे द्वित्वादौ रूपम् । **सुस्वूर्षतीति-** सनि कित्त्वेऽज्झनेति दीर्घे उत्वे द्वित्वादौ रूपम् ।

हिन्दी

वा. आशङ्का विषयक क्रिया में विद्यमान धातु से सन् होता है ।
वा. तन् पत् और दरिद्रा धातु से सन् को इट् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८४६. तनोतेर्विभाषा-६।४।१७।। उपधाया दीर्घो वा झलादौ सनि । तितांसति, तितंसति । कूलं पिपतिषति ।

८४७. सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्-७।४।५४।। एषामच इस् स्यात् सादौ सनि । अभ्यास लोपः । पित्सति । दिदरिद्रिषति, दिदरिद्रासति ।

८४८. मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा-७।४।५७।। सादौ सनि । अभ्यासलोपः । मोक्षते, मुमुक्षते वा वत्सः स्वयमेव । अकर्मकस्य किम्-मुमुक्षति मुमुक्षते वा वत्सं कृष्णः ।

मध्यमनोरमा

तितांसतीति—तनुधातोः सन्, इडभावे द्वित्वादि, सन्यतः, तनोतेर्विभाषेत्युपधा-दीर्घविकल्पः । दीर्घाभावे तितंसतीति । इट्पक्षे तितनिषतीति । **कूलं पिपतिषति**—पतनशङ्काविषयः कूलमित्यर्थः । अतिजीर्णस्य कूलस्य विदीर्णतादशायां पतनशङ्का भवतीत्येवं प्रयोगः । आशंसायां सनि तनिपति इति पक्षे इट् । **इडभावे पित्सतीति**—पत् स इति स्थिते पत् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे पपत्स इति जाते सनि मीमेति अभ्यासात् परस्याकारस्य इस्, अभ्यासलोपः । पिस् त् स इति जाते स्कोरिति सकारतकारसंयोगादिभूतस्य लोपः । **सनिमीमेत्यस्योदाहरणमुच्यते**-मीञ्, मित्सति—अभ्यासलोपः, ईकारस्य इस्, सस्यार्धधातुके इति सस्य तः । मा माने, मित्सति । घुसंज्ञकः, दा, धा, दित्सति, धित्सति । **रभ्**—रिप्सते । **लभ्**—लिप्सते । अभ्यासस्य इस्, अभ्यासलोपः, स्कोरिति इसः सलोपः, भस्य जश्त्वेन बः, तस्य चर्त्वेन पः । **शक्-शिक्षति**—अकारस्य इस्, अभ्यासलोपः, शिस्क् इति जाते स्कोरिति सलोपे षत्वम् । पत्धातोः पित्सतीति मूल एवोदाहृतम् । पदोऽपि पित्सतीति । **दिदरिद्रषतीति**-तनिपतीति पक्षे इट् । **तदभावे दिदरिद्रासतीति**—सन्यत इति इत्त्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

तनोतेरिति—नोपधाया इति सूत्रात् उपधाया इति, ढ्रलोपे इत्यतश्च दीर्घ इति अनुवर्तते । अज्झनेत्यतः सनि इति, भाष्यवचनात् झला सन् विशेष्यते । **तदाह**—उपधाया दीर्घो वेति। **दिदरिद्रिषति**—सनि 'तनिपति' इति इटि प्रथमैकाचो द्वित्वेऽभ्यासत्वे सन्यत इति, आलोपः, षत्वम् । **गुणो वेति**—सः सीति सूत्रात् सि इति सनि मीमेत्यत सनि इति चानुवर्तते । तदा च सूत्रार्थः- सादौ सनि अकर्मकस्य मुचो गुणो भवति । **मोक्षते इति**—मुचः सनि गुणे मोच् स इति, द्वित्वे अत्र लोपोऽभ्यासस्येति अभ्यासलोपे चोः कुः, षत्वं, लट्, तः, शप्, पररूपं टेरेत्वम् ।

हिन्दी

८४६. तन् धातु की उपधा को वृद्धि होती है झलादि सन् परे रहते ।
८४७. सादि सन् परे रहते मी मा आदि धातुओं के अच् को इस् होता है ।
८४८. अकर्मक मुच् धातु को सादि सन् परे रहते गुण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८४९. इट् सनि वा-७।२।४१।। वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च सन इड् वा । विवरिषते, विवरीषते, वुवूर्षते । विवरिषति, विवरीषति, वुवूर्षति । तितरिषति, तितरीषति, तितीर्षति ।

८५०. स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि-७।२।७४।। स्मिङ्, पूङ् ऋ अञ्जू अश् एभ्यः सन् इट् । सिस्मयिषते । पिपविषते । अरिरिषति । अञ्जिजिषति । अशिशिषते ।

मध्यमनोरमा

मोक्षते मुमुक्षते वेति—अनुदात्तत्वादनिट्, मुच् इत्यस्य द्वित्वादि, गुणपक्षेऽभ्यासलोपः, चोः कुः, षत्वम् । **स्वयमेवेति**—बन्धनरज्जोः सकाशात् स्वयमेव मुक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः । अत्र मोचन-रूपस्य धात्वर्थस्याविवक्षायां मुक्तिमात्रं धात्वर्थस्तेन अकर्मकत्वं, कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रिय इति कर्मकर्तरि आत्मनेपदम् । **मोचनार्थस्यतु सकर्मकत्वमुदाहरति-मुमुक्षति** वत्समिति, वत्सं मोचयितुमिच्छतीत्यर्थः । **विवरिषते इति**—वृङ्धातोः सन्, इट्, वृ इत्यस्य द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, सन्यतः, सार्वधातुकेति गुणः । वॄतोवेति दीर्घत्वे विवरीषते इति । **इडभावे वुवूर्षते इति**—उदोष्ठ्यपूर्वस्येति उत्त्वं ततो द्वित्वं हलि चेति दीर्घः । वृङ्धातोरात्मनेपदित्वात् सन्नन्तादप्यात्मनेपदम् । एवंवृञ्धातोरुभयपदित्वात् ततः सनि पद-द्वयम् । तत्रात्मनेपदे वृङा तुल्यं रूपत्रयम् । परस्मैपदे विवरिषति, विवरीषति वुवूर्षतीति रूपत्रयमधिकम् । एवं तॄधातोः ॠकारान्तात् इट् पक्षे वॄतो वेति विकल्पे **तितरिषति, तितरीषति** इति । **तितीर्षतीति**—ओष्ठ्यपूर्वत्वाभावात् उत्वाप्राप्तेः, ॠत इद्धातोरिति इत्वं, हलि चेति दीर्घः । **सिस्मयिषते इति**—स्मिङ्धातोः सनि स्मिपूङ इति इटि स्मि इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे अनभ्यासेकारस्य गुणेऽयादेशे स्मिङो ङित्त्वात् सन्नन्तादप्यात्मनेपदम् । स्तौतिण्यो-रिति नियमादभ्यासात् परस्य सस्य न षः । **पिपविषते इति**—पूङ्धातोः सन्, पू इत्यस्य द्वि-त्वम्, अनभ्यासस्य गुणावौ, ओः पुयण्जीत्यभ्यासोकारस्य इकारः । **अरिरिषतीति**—ऋधातोः सन्, स्मिपूङिति इट्, सार्वधातुकेति गुणेन ऋकारस्य अर्, अरिस इति सन्नन्तस्य सन्यङोरिति अजादित्वात् द्वितीयस्यैकाचो रि-शब्दस्य द्वित्वं न, द्विर्वचनेऽचीति निषेधात् प्रथमं गुणो न भविष्यति, किन्तु ऋ इस इति स्थिते इस शब्दस्य द्वित्वं वाच्यम्, कार्यमनुभवतः कार्यिणो निमित्तत्वेनाग्रहणात् । अत्र रिस् शब्दस्य द्वित्वेन सनः कार्यितया निमित्तत्वाभावेन द्विर्वचनेऽचीत्यस्य विषयाभावात्, द्वित्वनिमित्तेऽचि अजादेशस्य तेन निषेधात् । **अञ्जिजिषतीति**-अञ्जू धातोरुदित्त्वात् इड्विकल्पे प्राप्ते स्मिपूङिति नित्यमिट्, अजादित्वात् द्वितीयैकाचो द्वित्वं, तत्र नन्द्रा इति नकारस्य द्वित्वनिषेधात् जिस् शब्दस्य द्वित्वम् । **अशिशिषते इति**—शिस् इत्यस्य द्वित्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

इट् सनिवेति-वृतो वेत्यनुवर्तते ।

हिन्दी

८४९. वृङ् वृञ् और ॠकारान्त धातुओं से परे सन् को विकल्प से इट् होता है ।
८५०. स्मिङ् पूङ् ऋ अञ्जू और अश् धातुओं से परे सन् को इट् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८५१. गुप्तिज्किद्भ्यः सन्-३।१।५॥

८५२. मानबधदानशान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य-३।१।६॥ सूत्रद्वयोक्तेभ्यः सन् मानादीनाभ्यासस्येकारस्य दीर्घश्च ।

वा. गुपेर्निन्दायाम् ।

वा. तिजेः क्षमायाम् । वा. कितेर्व्याधिप्रतीकारे निग्रहे अपनयने नाशने संशये च । वा. मानेर्जिज्ञासायाम् ।

वा. बधेश्चित्तविकारे । वा. दानेरार्जवे ।

वा. शानेर्निशाने । गुप्प्रभृतयः किद्भिन्ना निन्दाद्यर्थका एवानुदात्तेतः, दानशानौ तु स्वरितेतौ । एष्वर्थेष्वेते नित्यसन्नन्ताः । अर्थान्तरे त्वननुबन्धकाश्चुरादयः । अनुबन्धस्य केवलेऽचरितार्थत्वात्सन्नन्तात् पदव्यवस्था । धातोरित्यविहितत्वात् सनोऽत्र नार्धधातुकत्वम् । तेनेड्गुणौ न । जुगुप्सते । तितिक्षते । चिकित्सति । मीमांसते। बीभत्सते । दीदांसति, दीदांसते । शीशांसति, शीशांसते । णिचि तु गोपयति, गोपयते । इति सन्नन्तप्रकरणम् ।

मध्यमनोरमा

केवलेऽचरितार्थत्वादिति—सन् शून्यस्य केवलस्य गुपादेरनुबन्धासंगाभावात्, सनः सन्नियोगेनैव अनुबन्धासञ्जनात् केवलस्य गुपादेः प्रयोगाभावाच्च केवलेऽनुबन्धकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् सन्नन्तादनुदात्तेत्त्वमात्मनेपदं स्वरितेत्त्वफलमुभयपदमपीत्यर्थः । **धातोरित्यविहितत्वादिति**—धातोर्ग्रहणं कृत्वा गुप्तिजेति सन् न विहितः । किन्तु गुप्तिजादयो धातवो भवन्तीति तेभ्यो विहितत्वाद् धातोर्विहितत्वमस्ति, तावन्मात्रेणार्धधातुकसंज्ञा न भवतीत्यर्थः । **तितिक्षते इति**—तिज्धातोः सन्, चोः कुरिति जस्य गः, खरि चेति कः, षत्वम्। **चिकित्सतीति**—कित्धातोरनुबन्धसंज्ञकाभावात् परस्मैपदम् । **मीमांसते इति**—मान् धातोः सन्, मान्स् इति प्रथमैकाचौ द्वित्वं हलादिशेषः, ह्रस्वे ममान्स इति, सन्यतः इतीत्वं, तस्य मान्बधेति दीर्घः । **बीभत्सते इति**—बध् धातोः सन्, द्वित्वं, बबध् स इति जाते सन्यत इतीत्त्वं, तस्य दीर्घः, भष्भावः, धस्य चर्त्वेन तः । **दीदांसते इति**—दान्धातोः सन्, दान्स् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, सन्यतः, मान्बधेति दीर्घः । अस्य स्वरितेत्वादुभयपदम् । एवं शान्-धातोः स्वरितेत्त्वविधानादुभयपदम् । शीशांसति, शीशांसते इति ।

हिन्दी

८५१. गुप् तिज् और कित् धातुओं से सन् होता है ।

८५२. मान् बध दान और शान् धातुओं से सन् होता है तथा इनके अभ्यास इकार को दीर्घ भी होता है ।

वा. गुप् धातु से निन्दा अर्थ में सन् होता है । वा. तिज् धातु से क्षमा अर्थ में सन् होता है । वा. कित् धातु से व्याधि के प्रतीकार निग्रह अपनयन नाश तथा संशय अर्थ में सन् होता है । वा. मान् धातु से जिज्ञासा अर्थ में सन् होता है । वा. बध् धातु से चित्त विकार अर्थ में सन् होता है । वा. दान् धातु से आर्जव अर्थ में सन् होता है । वा. शान् धातु से निशान (तीक्ष्णीकरण) अर्थ में सन् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमा

णिचि त्विति—णिजाद्यर्थे विशेष एव सन् विधाय अर्थान्तरे चुरादित्वात्तिपि गोपयति, गोपयते इति । णिचश्चेति कर्तृगामिनि फले आत्मनेपदम्, परगामिनि शेषादिति परस्मैपदम् ।

॥ इति सन्प्रक्रिया ॥

मध्यमनोरमापूरणी

जुगुप्सते इति—गुप्धातोः गुपेर्निन्दायामिति वार्तिकसहकारेण गुप्तिज्किद्भ्यः सन् इति सन्, गुप् स इति, अनुदात्तत्वादिण्निषेधे हलन्ताच्चेति सनः कित्त्वेन न गुणः । गुप्स् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे कुहोश्चुरिति गस्य जः, जुगुप्स इत्यस्य धातुसंज्ञा, लट् तः, शप्, टेरेत्वम्, पररूपम् । **तितिक्षते इति**—तिज्धातोः क्षमायामर्थे सन्, कित्त्वान्न गुणः, द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे तितिज् स इति, चोः कुरिति जस्य गः, खरि चेति कः, सस्य आदेशेति षत्वे तितिक्ष इति, धातुसंज्ञा, लट्, तः, शप्, पररूपम्, टेरेत्वम् । **शीशांसति इति**—शान् धातोः निशानेऽर्थे सन्, द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे ह्रस्वे श शान् स इति, सन्यत इतीत्वे मान्बधदानशान्भ्यः इति अभ्यासेकारस्य दीर्घे नस्याऽनुस्वारे शीशांस इति, धातुसंज्ञा, स्वरितेत्त्वात् उभयपदित्वमस्ति अतः परस्मैपदे लटस्तिप्, शप् पररूपम् । आत्मनेपदे तः, एत्वम् एति ।

॥ इति सन्नन्तप्रकरणम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ यङन्तप्रकरणम्

८५३. धातोरेकाचोहलादेः क्रियासमभिहारे यङ्-३।१।२२॥ पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् ।

८५४. गुणो यङ्लुकोः-७।४।८२॥ अभ्यासस्य । ङिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति-बोभूयते । बोभूयाञ्चक्रे । अबोभूयिष्ट । धातोः किम्-आर्धधातुकत्वं यथा स्यात् । ब्रुवो वचिरित्यादि । एकाचः किम्-पुनः पुनर्जागर्ति। हलादेः किम्-भृशमीक्षते ।

८५५. नित्यंकौटिल्ये गतौ-३।१।२३॥ गत्यार्थात् कौटिल्य एव यङ्, नतु क्रियासमभिहारे ।

८५६. दीर्घोऽकितः-७।४।८३॥ अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्यङ्लुकोः । कुटिलं व्रजति-वाव्रज्यते ।

मध्यमनोरमा

गुणोयङ्लुकोः—अभ्यासस्येको गुणो भवतीति सूत्रार्थः । **बोभूयते इति**—भूधातोर्यङ्, सन्यङोरिति भूय् इत्यस्य द्वित्वम्, अभ्यासस्य गुणो यङ्लुकोरिति गुणः । बोभूयेति यङन्तात् लट्, तः, शप्, अतो गुणे । **बोभूयाञ्चक्रे इति**—कास्यनेकाच इति यङन्तादाम् । अतो लोप इति यङोऽलोपः, आमन्तात् कृञोऽनुप्रयोगः । **अबोभूयिष्टेति**—यङन्तात् लुङ्, तः, सिच्, इट्, ष्टुत्वमडागमः । धातोः **किम् इति**—क्रियासमभिव्याहार इत्युक्तत्वात् धातोरेव यङ् भविष्यति न तु प्रातिपदिकात्, अतो धातुग्रहणं किमर्थमित्यर्थः । **आर्धधातुकत्वं यथा स्यादिति**—धातोरित्युच्चार्य विहितस्य तिङ्शिद्भिन्नप्रत्ययस्य आर्धधातुकसंज्ञाविधानादित्यर्थः । तेन ब्रूञो यङि ब्रुवो वचिरिति आर्धधातुके वचिरादेशः । वावच्यते । एवं चक्षिङः ख्याञ्, चख्यायते इति। **पुनः पुनः जागर्तीति**—जागृधातोरनेकाच्त्वात् यङ् न, किन्तु पुनः पुनः जागर्तीति वाक्यमेव। न तु ईक्षधातोर्यङ्, हलादित्वाभावात् । **कौटिल्य एवेति**—सूत्रे नित्यशब्द एवकारार्थक इति भावः। **वाव्रज्यते इति**—व्रज्धातोर्यङ्, व्रज्य् इत्यस्य द्वित्वादि, दीर्घोऽकित इत्यभ्यासदीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पौनः पुन्ये इति—सूत्रे क्रियासमभिहारपदस्यार्थः पौनः पुन्यं भृशञ्च, तस्मिन् द्योत्ये यङ् न तु वाच्ये । वाच्यत्वे प्रत्ययवाच्यस्य प्रधानता स्यात्, तथा सति सन्नन्ते इच्छाया इव तस्य विशेष्यत्वं भवेत् । **गुणोयङ्लुकोः**—'अत्र लोपो' इत्यत अभ्यासस्य इत्यनुवर्तते । गुणपदेन इक इत्युपतिष्ठते । यङ् च लुक् च तयोः यङ्लुकोरिति, लुक्पदेनात्र यङ एव ग्रहणं भवति । **तदा च सूत्रार्थः**—अभ्यासस्येको गुणो भवति यङि यङ्लुकि च । **वाव्रज्यते इति**—व्रज्धातोर्नित्यं कौटिल्ये गतौ इति यङ् । व्रज्य इत्यस्य प्रथमैकाचो व्रज् इत्यस्य अथवा व्रज्य् इत्यस्य सन्यङोरिति द्वित्वेऽभ्याससंज्ञायां हलादिशेषे व व्रज्य इति जाते दीर्घोऽकित इति

हिन्दी

८५३. पौनः पुन्य व भृश अर्थ द्योतित होने पर हलादि एकाच् धातु से यङ् प्रत्यय होता है ।

८५४. यङ् और यङ्लुक् में अभ्यास के इक् को गुण होता है ।

८५५. गत्यर्थक धातु से कौटिल्य अर्थ में ही यङ् होता है क्रियासमभिहार में नहीं ।

८५६. अकित् के अभ्यास को दीर्घ होता है यङ् परे और यङ्लुक् में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८५७. यस्य हलः-६।४।४९।। हलः परस्य लोपः स्यादार्धधातुके । आदेः परस्य, अतो लोपः । वाव्रजाञ्चक्रे । वाव्रजिता ।

८५८. रीङ् ऋतः-७।४।२७।। अकृद्यकारे असार्वधातुकयकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः । डुकृञ् करणे । चेक्रीयते ।

८५९. रीगृदुपधस्य च-७।४।९०।। ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्-यङ्लुकोः । वरीवृत्यते । वरीवृताञ्चक्रे । वरीवृतिता । क्षुभ्नादिषु च । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते ।

वा. रीगृत्वत इति वाच्यम् । वरीवृश्च्यते । परीपृच्छ्यते ।

मध्यमनोरमा

वाव्रजाञ्चक्रे इति—वाव्रज्येति यङन्तात् आम्, यस्य हल इति यकारमात्रस्य लोपः, यकाराकारस्य अतो लोपः, कृञोऽनुप्रयोगः । **वाव्रजितेति**—यङन्ताल्लुट्, तास्, इट्, यस्य हल इति यलोपः, अलोपः । **अकृद्यकारे असार्वधातुके यकारे इति-** कृत्सार्वधातुकसम्बन्धिभिन्ने यकारे परतः इत्यर्थः । **च्वौ चेति**—मात्रीकरोतीत्यादौ च्विप्रत्यये रीङादेशो बोध्यः । **चेक्रीयते इति**—कृधातोर्यङ्, रीङ् ऋत इति रीङ्, क्री इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासकार्ये गुणः । **वरीवृत्यते इति-** वरीवृत्य इति यङन्ताल्लट्, तः, शप्, अतो गुणे । **वरीवृताञ्चक्रे इति**—वरीवृत्येति यङन्तादाम्, यस्य हल इति यलोपः, अतो लोप इत्यलोपः । **नरीनृत्यते इति**—नृत्धातोर्यङ्, नृत् इत्यस्य द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, अभ्यासस्य रीक्, रेफात् परस्य अनभ्यासनकारस्य अट्कुप्वाङिति णत्वे प्राप्ते क्षुभ्नादिषु चेति निषेधः । **जरीगृह्यते इति**—ग्रह्धातोर्यङ्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च, गृह्य इत्यस्य द्वित्वम्, उरदत्वं, हलादिशेषः, रीगागमः । **रीगृत्वत इति**—ऋगृदुपधेति सूत्रे ऋदुपधस्येत्यादाय ऋत्वत इति वक्तव्यम् इत्यर्थः । तेनोपधायामनुपधायाम्वा यस्य अपि धातोः ऋत्, तस्याभ्यासस्य रीगिति सिद्धम् तेन व्रश्च्धातोर्यङि ग्रहिज्येति सम्प्रसारणे ऋकारवत्त्वात् रीक् । ऋदुपधस्येत्युक्तौ तु न स्यात्।

मध्यमनोरमापूरणी

अभ्यासाकारस्य दीर्घे वाव्रज्य इति, धातुसंज्ञा, लट्, तः, शप्, अतो गुणे, टेरेत्वम् । **वाव्रजाञ्चक्रे इति**—वाव्रज्य धातोः लिट्, कास्यनेकाच इत्याम्, यस्य हल इति यकारस्य लोपः, अतो लोप इति शिष्टस्य अकारस्य लोपः, आम इति लिटो लुक्, कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि, द्वित्वादि । **वाव्रजितेति**—वाव्रज्य धातोः लुटि तः, तास्, आर्धधातुकस्येड्वलादेः, यस्य हलः, अतो लोपः, तस्य डादेशः, टेरासो लोपः । **वरीवृतितेति**—वृत्धातोर्यङ्, द्वित्वादि, रीगृदुपधस्येति रीगागमः । वरीवृत्य इत्यस्माल्लुट्, तः, तास्, इट्, यस्य हलः इति यलोपः, अतो लोपः । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्नोपधागुणः । डादेशः, तासः टेर्लोपः । **नरीनृत्यते** इत्यत्र क्षुभ्नादिषु चेति णत्वनिषेधः ।

हिन्दी

८५७. हल् से परे य् का लोप होता है, आर्धधातुक परे रहते ।

८५८. कृत् व सार्वधातुकभिन्न यकार परे व च्वि-प्रत्यय परे ऋदन्त अङ्ग को रीङ् आदेश होता है ।

८५९. ऋदुपध धातु के अभ्यास को रीक्-आगम होता है, यङ् और यङ्लुक् परे ।

वा. ऋकारवान् धातु के अभ्यास को रीक् हो, ऐसा कहना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८६०. लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम्-३।१।२४।। एभ्यो धात्वर्थगर्हायामेव यङ् । गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते । सासद्यते ।
८६१. चरफलोश्च ७।४।८७।। अनयोरभ्यासस्यातो नुक् यङ्यङ्लुकोः । नुगित्यनेनानुस्वारो लक्ष्यते । स च पदान्तवद्वाच्यः । वा पदान्तस्येति तथा स्यात्।
८६२. उत्परस्यातः ७।४।८८।। चरफलोरभ्यासात् परस्यात उत् स्याद्यङ्यङ्लुकोः । हलि चेति दीर्घः । चञ्चूर्यते, चंचूर्यते । पम्फुल्यते, पंफुल्यते।
८६३. जपजभदहदशभञ्जपशां च-७।४।८६।। एषामभ्यासस्य नुक्, यङ्यङ्लुकोः । गर्हितं जपति-जञ्जप्यते इत्यादि ।
८६४. ग्रो यङि ८।२।२०।। गिरते रेफस्य लत्वं यङि । गर्हि वं गिलति-जेगिल्यते। वा. सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् वाच्यः । सोसूच्यते । अट् पट् गतौ । अटाट्यते ।

मध्यमनोरमा

लोलुप्यते इति—गुणो यङ्लुकोरिति गुणः । **सासद्यते इति**—दीर्घोऽकित इति दीर्घः । **चञ्चूर्यते इति**—चर्धातोर्यङ्, चर् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे चचर्य इति जातेऽभ्यासस्य चरफलोरिति नुक्, अभ्यासात् परस्याकारस्य उत्परस्येति वा उत्त्वं, दीर्घः । नुकः पदान्तवद्भावान्मोऽनुस्वारस्तस्य वा पदान्तस्येति परसवर्णविकल्पः । परसवर्णाभावे **चंचूर्य्यते इति । जेगिल्यते इति**-गॄधातोः लुपसदेति यङ्, ॠत इद्धातोः, गिर् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषेऽभ्यासस्य गुणः, रेफस्य लत्वम् । **सोसूच्यते इति**—गुणो यङ्लुकोरिति गुणः । एवं **सोसूत्र्यते, मोमूत्र्यते** इति । अट्-धातोर्हलादित्वाभावात् सूत्रेणाप्राप्तो यङ् विधीयते । अजादेर्द्वितीयस्येति ट्यशब्दस्य द्वित्वं, हलादिशेषेण यलोपे दीर्घोऽकितः इति दीर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

सासद्यते इति—गर्हितं सीदतीत्यर्थे सद्धातोर्यङ्, लुपसदेति सूत्रेण । द्वित्वं, हलादिशेषः, दीर्घोऽकित इत्यभ्यासदीर्घः, लट् तः । **जञ्जप्यते इति**—गर्हितं जपतीत्यर्थे जप् धातोः लुपसदचरजपेत्यादिसूत्रेण यङ्, द्वित्वमभ्याससंज्ञा, हलादिशेषः, जजप्य इति जाते जपजभदहेत्यादिना अभ्यासस्य नुक्, अनुबन्धलोपः, अनुस्वारपरसवर्णयोः कृतयोः जञ्जप्य इति, धातुसंज्ञा, लट्, तः, शप्, पररूपम्, टेरेत्वम् । **गिरतेरिति**—ग्रः इति गॄ-शब्दस्य षष्ठ्या एकवचनम् । कृपो रो लः इत्यतो रो लः इत्यनुवर्तते । **तदाह**—गिरते रेफस्य लत्वमित्यादि । **सूचिसूत्रीति**-सूत्रसूचमूत्रधातवः चुरादौ अदन्ताः, अनेकाचश्च । अटि अर्ति (ऋ) अशू ऊर्णु इत्यजादयस्तेभ्यो धातोरेकाच इत्यादिना अप्राप्ते यङि इदं वचनम् । **सोसूच्यते इति**- सूचि धातोर्यङि णेर्लोपे द्वित्वादौ अभ्यासस्य गुणे लटि तः, शप् एत्वम् । अनेकाच्त्वेन षोपदेशत्वाभावान्न अभ्यासात् परस्य सस्य षत्वम् ।

हिन्दी

८६०. धात्वर्थ निन्दा होने पर लुप सद आदि धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है ।
८६१. चर् और फल् धातु के अभ्याससम्बन्धी अत् को नुक् होता है, यङ् और यङ् लुक् में ।
८६२. चर् व फल् धातु के अभ्यास से पर अकार को उत् होता है यङ् व यङ् लुक् में ।
८६३. जप जभ दह आदि के अभ्यास को नुक् होता है यङ् और यङ्लुक् परे ।
८६४. गॄधातु के रेफ को ल् होता है यङ् परे ।
वा. सूचि सूत्रि मूत्रि अट् अश् और ऊर्णु धातुओं से यङ् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८६५. यङि च-७।४।३०।। अर्तेः संयोगादेश्च ऋदन्ताङ्गस्य गुणो यङि । यकारपररेफस्य न द्वित्वनिषेधः । अरार्यते इति भाष्योदाहरणात् । अरारिता । अशाश्यते । ऊर्णोनूयते ।

८६६. सिचो यङि-८।३।११२।। सस्य षो न । निसेसिच्यते ।

८६७. न कवतेर्यङि-७।४।६३।। अभ्यासस्य चुत्वं न । कोकूयते । कौतिकुवत्योस्तु-चोकूयते ।

वा. हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वाच्यः । जेघ्नीयते । हिंसायां किम्-

मध्यमनोरमा

अरार्यते इति—ऋधातोः सूचीत्यादिवार्तिकेन यङ्, यङि चेति गुणे अर्य इति जाते र्य इति द्वितीयैकाचो द्वित्वे हलादिशेषेण यकारलोपे रमात्रशेषे अरर्य्येति जाते दीर्घोऽकित इति दीर्घः । तत्र नन्द्रा इति रेफस्य द्वित्वनिषेधे प्राप्ते यकारपररेफस्य न द्वित्वनिषेधः । तत्र प्रमाणम् अरार्य्यते इति भाष्यप्रयोग एव । एवमरारिता इत्यत्र ऋधातोर्यङ्, गुणः, र्य इत्यस्य द्वित्वं, 'र' इत्यस्य शेषः, दीर्घः । अरार्य इत्यस्माल्लुट्, तास्, इट्, यस्य हल इति यलोपः । **अशाश्यते इति** — अश् धातोः सूचीत्यादिना यङ्, श्य-शब्दस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, दीर्घोऽकितः । **ऊर्णोनूयत इति**—ऊर्णुधातोर्यङ्, रेफस्य नन्द्रा इति द्वित्वनिषेधात् **नु**[1] इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे अभ्यासगुणे अनभ्यासस्याकृत्सार्वेति दीर्घः । **निसेसिच्यते इति**—निपूर्वः सिच्धातुः, तस्माद्यङ्, द्वित्वं गुणः । अत्राभ्यासस्कारस्योपसर्गात् सुनोतीति षत्वे प्राप्ते अभ्यासादुत्तरस्य तु स्थादिष्वभ्यासेनेति षत्वे प्राप्ते सिचो यङीति निषेधः । **कोकूयते इति**—अत्राभ्यासस्य कुहोश्चुरिति चुत्वं प्राप्तं न कवतेरित्यनेन निषिद्धम् । **कवतिकुवत्योरिति**—कवतेरिति शपानिर्देशात् लुग्विकरणस्य न ग्रहणमित्यर्थः । **जेघ्नीयते इति**—घ्नीय् इत्यस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुरिति घस्य झः, अभ्यासे चर्चेति झस्य जः, गुणो यङ्लुकोरिति गुणः।

मध्यमनोरमापूरणी

जेघ्नीयते इति—हन् धातोर्यङि हन्तेर्हिंसायामिति घ्नी आदेशः, द्वित्वमभ्या संज्ञा, हलादिशेषः, कुहोश्चुरिति अभ्यासघस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, गुणो यङ् लुकोरिति गुणः, जेघ्नीय इति, लट्, तः, शप्, एत्वम् ।

हिन्दी

८६५. ऋ धातु और संयोगादि ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है यङ् परे ।

८६६. सिच् धातु के स को षत्व नहीं होता है, यङ् परे रहते ।

८६७. कु धातु के अभ्यास को कुत्व नहीं हो ।

वा. हिंसा अर्थ में यङ् परे हन् को घ्नी आदेश होता है ।

---

1. नु इत्यस्य द्वित्वं मध्यमनोरमायां कृतम्, पुनश्च हलादिशेषः कृतः, तन्न युज्यते । अतः नुय् इत्यस्य द्वित्वं बोध्यम् । द्वितीयैकाचः नुय् इत्यस्य द्वित्वे कृते हलादिशेषोऽपि सङ्गच्छते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८६८. नुगतोऽनुनासिकान्तस्य-७।४।८५।। अदन्ताभ्यासस्य नुक्, यङ्यङ्लुकोः। जंघन्यते ।

८६९. अयङ् यि क्ङिति-७।४।२२।। शीङोऽयङादेशःस्याद् यादौ क्ङिति । शाशय्यते ।

८७०. स्वपिस्यमिव्येञां यङि-६।१।१९।। एषां सम्प्रसारणं स्याद् यङि । सोषुप्यते। सेसिम्यते । वेवीयते ।

८७१. न वशः-६।१।२०।। वशो न सम्प्रसारणम् । वावश्यते ।

८७२. चायः की-६।१।२१।। यङि । चेकीयते ।

८७३. ई घ्राध्मोः-७।४।३१।। जेघ्रीयते । देध्मीयते ।

मध्यमनोरमा

हिंसाभिन्नेऽर्थे गमने जङ्घन्यते इति—अभ्यासाच्चेति हस्य घः, अभ्यासस्य नुगागमः, नुगागमस्य कित्त्वाद् दीर्घोऽकित इति न दीर्घः ।**अयङ् यि क्ङिति**—यादौ किति ङिति च शीङोऽयङादेशः स्यादिति सूत्रार्थः । **शाशय्यते इति**—शीङोऽयङ् । **सोषुप्यते इति**—स्वप् इत्यस्य [1]वचिस्वपीति सम्प्रसारणे पूर्वरूपे सुप् इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे अभ्यासात् परस्य सस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम् । **सेसिम्यते इति**—स्यम्-धातोर्यङ्, सम्प्रसारणेन यस्य इकारः, सम्प्रसारणाच्च, सिम् इत्यस्य द्वित्वम् अभ्याससगुणः, अस्य दन्त्याजन्तसादित्वाभावेनाषोपदेशत्वान्न षत्वम् । **वेवीयते इति**—व्येञो यङ्, यस्य सम्प्रसारणम्, एकारस्य पूर्वरूपम् **वीय्**[2] इत्यस्य द्वित्वमभ्यासगुणः, अकृत्सार्वेति दीर्घः । **न वशः**- वशो यङि सम्प्रसारणं नेति सूत्रार्थः । **वावश्यते इति**—ग्रहिज्येति सम्प्रसारणस्य न वश इत्यनेन निषेधः । **चायः की**—अत्रापि यङीति सम्बद्ध्यते । एवम् ई घ्राध्मोरिति, अत्रापि यङीत्येव । **चेकीयते इति**—चाय् धातोर्यङ्, की आदेशः, द्वित्वं गुणः । **जेघ्रीयते इति**—घ्राधातोर्यङि ईत्वम्, घ्री इत्यस्य द्वित्वे हलादिशेषे ह्रस्वः, कुहोश्चुरिति घस्य झः, अभ्यासे चर्चेति झस्य जकारः, अभ्यासगुणः । **देध्मीयते इति**—ध्माधातोरीत्वे द्वित्वे गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

शाशय्यते इति—शीङः यङ्, अयङ् यि इति ईकारस्य अयङ्, शय् य इति, शयो द्वित्वं, हलादिशेषः, अभ्यासदीर्घः, शाशय्य इति, लट्, तः, शप्, पररूपम्, टेरेत्वम् ।

हिन्दी

८६८. अनुनासिकान्त धातु के अदन्त अभ्यास को नुक् होता है ।

८६९. शीङ् धातु को अयङ् आदेश होता है, यादि कित् ङित् परे रहते ।

८७०. स्वप् स्यम् व व्येञ् धातु को सम्प्रसारण होता है, यङ् परे रहते ।

८७१. वश् धातु को सम्प्रसारण नहीं हो ।

८७२. चाय् धातु को यङ् परे रहते 'की' आदेश होता है ।

८७३. घ्रा और ध्मा धातु को ई आदेश होता है, यङ् परे रहते ।

---

1. मध्यमनोरमायां वचिस्वपीति सम्प्रसारणं विहितम्, तन्न युक्तं, तस्य किति परे विहितत्वात् अतोऽत्र स्वपिस्यमीति सम्प्रसारणं कर्तव्यम् ।
2. वीय् इति मध्यमनोरमा न युक्ता । विय् इति बोध्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८७४. नीग् वञ्चु-स्रंसु-ध्वंसु-भ्रंसुकस-पत-स्कन्दाम्-७।४।८४।। एषामभ्यासस्य नीग्, यङ्यङ्लुकोः । अकित इत्युक्तेर्न दीर्घः । वनीवच्यते । सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते । चनीकस्यते । पनीपत्यते । पनीपद्यते । चनीस्कद्यते।

।। इति यङन्त-प्रकरणम् ।।

मध्यमनोरमा

वनीवच्यते इति—वञ्च् धातोर्यङ्, अनिदितामिति नलोपः, द्वित्वमभ्यासस्य नीगागमः । दीर्घोऽकित इति सूत्रेऽकित इत्युक्तेरत्राभ्यासस्य नीगागमेन कित्त्वान्न दीर्घः । **चनीस्कद्यते इति**-स्कन्द्धातोः यङ, नलोपः, स्कद् इत्यस्य द्वित्वं, शर्पूर्वाः खयः इति ककारशेषः, सकारदकारयोर्लोपः, कुहोश्चुरिति कस्य चः, नीगागमः ।

।। इति यङन्त-प्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमापूरणी

सनिस्रस्येति—स्रंस्धातोर्यङ्, अनिदितामिति नलोपः, स्रस्य् इत्यस्य द्वित्वेऽभ्यासत्वे हलादिशेषे स. स्रस्य इति, नीग् वञ्चु इत्यादिना अभ्यासस्य नीक्, ककार इत् । सनीस्रस्य इति, धातुत्वाल्लट्, तः, शप्, पररूपम्, एत्वम् । **दनीध्वस्यते इति**—ध्वंस्धातोर्यङ, नलोपः, ध्वस्य इति, द्वित्वेऽभ्याससंज्ञा, हलादिशेषः, ध ध्वस्य इति, अभ्यासे चर्चेति धस्य दः, 'नीग् वञ्चु' इति नीक्, लडादयः । **बनीभ्रस्यते इति**—भ्रंस्-धातोर्यङ्, अनिदितामिति अनुस्वार (नलोपः) लोपः । द्वित्वे हलादिशेषे भभ्रस्य इति, अभ्यासे चर्चेति भस्य बः । नीगागमः, धातुत्वाल्लडादयः । इति अर्कनाथ चौधरी इत्याख्येन कृतायां मध्यमनोरमापूरण्यां **यङन्त-प्रकरणम्** ।

हिन्दी

८७४. वञ्च् स्रंस् ध्वंस् भ्रंस् कस पत पद और स्कन्द् धातु के अभ्यास को नीक्-आगम होता है, यङ् परे व यङ्लुक् में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ यङ्लुगन्त प्रकरणम्

८७५. यङोऽचि च-२।४।७४।। यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनापि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्, धातुत्वाल्लडादयः। शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम्। चर्करीतं चेति पाठाच्छपो लुक्।

८७६. यङो वा-७।३।९४।। यङन्तात् परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईड् वा स्यात्। भूसुवोरिति निषेधो यङ्लुकि भाषायां न। 'बोभूतु तेतिक्ते' इति छन्दसि निपातनात्। बोभवीति, बोभोति। बोभूतः। बोभुवति। बोभवीषि, बोभोषि, बोभूथः। बोभूथ। बोभवीमि, बोभोमि। बोभूवः, बोभूमः। बोभवाञ्चकार। बोभवाम्बभूव। बोभवामास। बोभविता। बोभविष्यति। बोभवीतु, बोभोतु, बोभूतात्। बोभूताम्। बोभविष्यति। बोभूहि। बोभवानि। अबोभवीत्, अबोभोत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयुः। बोभूयात्। बोभूयास्ताम्।

मध्यमनोरमा

छन्दसि निपातनादिति—बोभूतु इति छन्दसि गुणाभावनिपातनेनेदं ज्ञायते भूसुवोस्तिङीति निषेधो यङ्लुकि न प्रवर्तते। यङ्लुकि भूसुवोरित्यस्य प्रवृत्तौ बोभूत्विति गुणाभावनिपातनं व्यर्थं स्यादित्यर्थः। **बोभवीति इति**—भूधातोः यङ्लुकि ततो भू इत्यस्य द्वित्वं, गुणो यङ्लुकोरित्यभ्यासस्य गुणः, अभ्यासे चर्च, यङो वेति ईट्, सार्वधातुकगुणः, अवादेशः। ईडभावे बोभोतीति। **बोभुवतीति**—अदभ्यस्तादिति झस्यात्, अचि श्नुधातुभ्रुवामिति उवङ्। **यङो वेति ईट्-पक्षे बोभवीषि इति। ईडभावे बोभोषीति। बोभवाञ्चकारेति**—कास्यनेकाच इत्याम्। **बोभुवत्विति**—अदभ्यस्तादिति झस्यात्, उवङ्। **बोभूहीति**—सेर्ह्यपिच्चेति हेरपित्वात् सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाद् गुणाभावः। **बोभवानीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्य पिच्च। **अबोभवीदिति**—लङ्, तिप्, इतश्च, यङो वेति ईट्, गुणः। अडागमः। ईडभावे अबोभोदिति। **अबोभूतामिति**—तसस्तामादेशः। **अबोभवुरिति**—अदभ्यस्तेति झेर्जुस्, जुसि चेति गुणः। **बोभूयादिति**—आशीर्लिङ्, स्कोरिति सलोपः। **बोभूयास्तामिति**—सार्वधातुकलिङोऽभावात् सलोपो न।

मध्यमनोरमापूरणी

यङो वेति—उतो वृद्धिरिति सूत्रात् हलि इत्यस्य नाभ्यस्तस्याचीतिसूत्रात् 'पिति सार्वधातुके' इत्यस्य ब्रुव ईडित्यतश्च ईट् इत्यनुवर्तन्ते। तेन सूत्रार्थो भवति यङन्तात् परस्येत्यादिः। **बोभूतः इति**—भूधातोर्यङि यङोऽचि चेति यङो लुक्, सन्यङोरिति द्वित्वेऽभ्यासत्वेऽभ्यासे चर्चेति भस्य बः। गुणो यङ्लुकोरिति अभ्यासोकारस्य गुणः। बोभू इत्यस्माल्लटि तः, सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, यङ्लुगन्तस्यादादित्वाच्छपो लुक्, ङित्वात् गुणाभावः, सस्य रुत्वविसर्गौ।

हिन्दी

८७५. अच् परे यङ का लुक् होता है। कहीं अच् पर में नहीं रहने पर भी यङ का लुक् होता है।

८७६. यङन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक को इट् होता है, विकल्प से।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

गातिस्थेति सिचो लुक् । यङो वेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्यत्वाद् वुक् । अबोभूवीत्, अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभूवुः । अबोभविष्यत् । जङ्गमीति, जङ्गन्ति । अनुदात्तेत्यनुनासिकलोपः । जङ्गतः । जङ्गमति । म्वोश्च जङ्गन्वः ।

श्तिपा शपानुबन्धेन निर्दिष्टं यद् गणेन च ।
यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि ।।

इति वचनान्न इण्निषेधः । जङ्गमिता । अनुनासिकलोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वान्न हेर्लुक् । जङ्गहि । मो नो धातोः । अजङ्गन्, अजङ्गमीत् । अनुबन्धनिर्देशान्न च्लेरङ् । अजङ्गमीत् ।

मध्यमनोरमा

नित्यत्वाद् वुगिति-कृताकृतप्रसङ्गित्वेन वुको नित्यत्वम्, गुणे कृतेऽपि वुकः प्रसङ्गः, अकृतेऽपि। गुणस्य तु वुकि प्रसङ्गाभावादनित्यत्वमिति गुणं बाधित्वा वुगित्यर्थः । **अबोभोदिति**— ईटोऽभावेऽच्परत्वाभावान्न वुक् । **अबोभूवुरिति**—सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, वुगागमः । **जङ्गमीति**-नुगतोऽनुनासिकान्तस्येति अभ्यासस्य नुक्, यङो वेति ईट् । ईडभावे जङ्गन्तीति । **जङ्ग् मतीति**-अदभ्यस्तादिति अत्, गमहनेत्युपधालोपः । **जङ्गन्वः इति**— म्वोश्चेति मस्य नः । **श्तिपा शपेति**-श्तिपा निर्देशो यथा-नेर्गदेति सूत्रे स्यति हन्तीत्यादि । तेन प्रन्यजङ्घनीदित्यादौ नेर्णत्वं न। शपा सनीवन्तर्द्धेति सूत्रे भरेति, भर्भरीति यङ्लुगन्तात् भरधातोः, सनीवन्तर्द्धेति बरिभरिषतीत्यत्र न इड्विकल्पः । अनुबन्धेन निर्देशो यथा शीङः सार्वधातुके गुणः, शेशीतः। तथा अनुदात्तङित इत्यात्मनेपदं स्पर्धशीङादिभ्यो न । **गणेन यथा-बेभिदीति**—रुधादिभ्यः श्नम् न । **एकाज्ग्रहणम्**—एकाच उपदेशेऽनुदात्तादित्यत्र, तेन यङ्लुकि इटोऽनेन निषेधो न भवति । **जङ्गहीति**—अत्राऽनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपस्याभीयस्य अतो हेरित्याभीये कर्त्तव्ये असिद्धत्वादकारात् परत्वाभावेन अतो हेरिति हेर्लोपो न । **अजङ्गन्, इति**—लङि ईडभावे हल्ङ्यादिना अपृक्तस्य तस्य लोपः, ततो मोनो धातोरिति मस्य नः । **अनुबन्धनिर्देशादिति**— पुषादीति सूत्रेण लृदिदनुबन्धनिर्देशेन च्लेरङो विधानाद् यङ्लुकि अङ् नेत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अबोभूवीदिति—यङ्लुगन्तात् बोभूधातोर्लुङ्, तिप् इतश्च, सिच्, गातिस्थेति सिचो लुक्, यङो वेति ईट्, नित्यत्वाद् गुणं बाधित्वा वुक् । **जङ्गन्तीति**—गम्धातोर्यङ्, तस्य लुक्, द्वित्वादि-कार्यम्, ज गम् इति, नुगतोऽनुनासिकान्तस्येति अभ्यासस्य नुक्, तस्यानुस्वारपरसवर्णौ, जङ्गम् इत्यस्मात् तिपि इटोऽभावे मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । **जङ्गमितेति**- यङ्लुगन्तात् जङ्गम्-धातोर्लुटि तिपि, तास्, ननु प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तस्यापि ग्रहणमित्यस्मात् एकाच उपदेश इति इटो निषेधः स्यादिति चेन्न । श्तिपा शपेति परिभाषया तस्यात्राप्रवृत्तेः आर्धधातुकस्येडिति इट्, तेर्डादेशः। डित्त्वसामर्थ्यात् आसो लोपः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८७७. रुग्रिकौ च लुकि-७।४।९१॥ ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रुक् रिक् रीक् एते स्युर्यङ्लुकि ।

८७८. ऋतश्च-७।४।९२॥ ऋदन्तधातोरपि तथा । वर्वृतीति, वरिवृतीति, वरीवृतीति, वर्वर्त्ति, वरिवर्त्ति, वरीवर्ति । वर्वृत्तः, वरिवृत्तः, वरीवृत्तः । वर्वृतति, वरिवृतति, वरीवृतति । वर्वर्तामास ३। वर्वर्तिता ३। गणनिर्दिष्टत्वान्न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः इति न । वर्वर्तिष्यति । अवर्वृतीत् । अवर्वर्त् । सिपि दश्चेति रुत्वपक्षे रोरि । अवर्वाः । गणनिर्दिष्टत्वादङ् न । अवर्वर्तीत् ३। चर्करीति, चरिकरीति, चरीकरीति । चर्कर्ति, चरिकर्ति, चरीकर्ति । चर्कृतः ३। चर्क्रति ३। चर्कराञ्चकार ३। चर्करिता ३। अचर्करीत् ३। अचर्कः ३। चर्कृयात् । आशिषि रिङ् । चर्क्रियात् ३। अचर्कारीत् ३॥

मध्यमनोरमा

अजङ्गमीदिति—लुङि च्लेः सिच्, अत्र यङो वेति तिपः सार्वधातुकस्येड्विधानादस्य नेट्, तिपो यङन्तात् परत्वाभावात्, मध्ये सिचा व्यवधानात् । किन्तु अस्ति सिच इतीट्, सिचः आर्धधातुकस्येतीट्, इट ईटीति सिचो लोपः, अतो हलादेरिति प्राप्तायाः वृद्धेर्ह्म्यन्तेति निषेधः। **वर्वृतीति**—वृत्धातोर्यङि लुकि वृत्य[1] इत्यस्य द्वित्वे उरत्, हलादिशेषः, रुगागमः, नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके इति लघूपधगुणनिषेधः । अभ्यासस्य रिगागमे वरिवृतीति, रीगागमे वरीवृतीति । ईडभावे अभ्यासस्य रिगागमेऽनभ्यासस्य लघूपधगुणः, झरो झरि सवर्णे इति पाक्षिको रेफात् परस्य तकारस्य लोपः । ईडभावे रुक् रीक् पक्षे वर्वर्ति, वरीवर्ति इति । एवं सर्वत्र इट्विषये इट्पक्षे रुक्-रिक्-रीगिति आगमभेदेन रुपत्रयम् । ईडभावपक्षेऽपि रुगादिभेदेन रूपत्रयमिति षड्रूपाणि । इटो विषये रूपत्रयमिति बोध्यम् । **वर्वृतति इति** — अदभ्यस्तादिति झस्यात्, सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वाद् गुणाभावः । **गणनिर्दिष्टत्वादिति**—न वृद्भ्य इत्यनेन वृतादिनिर्देशाद् गणनिर्दिष्टस्य कार्यस्य यङ्लुकि श्तिपा शपेत्यादिना निषेधादित्यर्थः । **इण्निषेधो नेति**—वर्वर्तिष्यतीत्यत्र इट् निषेधो नेत्यर्थः । **अवर्वृतीदिति** — लङ्, तिप्, इतश्च । इट्पक्षे रुगादिना रुपत्रयम् । **ईडभावे**—अवर्वर्त्, इति—हल्ङ्यादिना तिपो लोपः । अत्रापि पक्षे रुगादिना रुपत्रयम् । सिपि ईट्पक्षे अवर्वृतीः इत्यादिरूपत्रयम् । ईडभावे अवर्वर्त् इति रूपत्रयम्। तकारस्य झलां जशोऽन्ते इति दकारे दश्चेति दकारस्य रुत्वपक्षे-अवर्वर्द् इति जाते दकारस्य रेफे रोरीति तस्य लोपे ढ्रलोपे इति दीर्घे रेफस्य विसर्गे अवर्वाः, अवरिवाः, अवरीवाः इति रूपत्रयम्। **अवर्वर्तीदिति**—लुङि च्लिः, पुषादिद्युतादीति गणनिर्देशात् च्लेरङ् न, किन्तु च्लेः सिच्, तस्य इडागमः, अस्तिसिच इति तिपो नित्यमीट्, इट ईटीति सिचो लोपः, पुगन्तेति गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वर्वर्तामासेति—यङ्लुगन्तात् वर्वत् धातोः लिटि कास्यनेकाच इति आम्, लघूपधगुणः, आमः इति लिटो लुक्, वर्वर्ताम् इत्यस्मात् लिट्परकस्य अस्धातोरनुप्रयोगः, तिप्, णल्, द्वित्वम्,

हिन्दी

८७७. ऋदुपधधातु के अभ्यास को रुक् रिक् व रीक् आगम होते हैं ।

८७८. ऋदन्तधातु के अभ्यास को रुक् रिक् व रीक् आगम होते हैं ।

---

1. वृत्य इत्यपपाठः, वृत् इत्यस्य द्वित्वं बोध्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ऋतश्चेति तपरत्वान्नेह-चाकर्ति, चाकरीति । चाकीर्तः । चाकीर्हि । चाकराणि । अचाकरीत्, अचारुः । अचाकीर्ताम् । अचाकरुः । अचाकारीत् । अचाकारिष्टाम्। तातरीति, तातर्तीत्यादि ।

॥ इति यङ्लुगन्तप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमा

चर्करीति इति—कृधातोर्यङ्लुक्, द्वित्वे उरदत्वादौ अभ्यासस्य रुगागमः, यङो वेति पक्षे ईट्, सार्वधातुकेति गुणः । रीक्पक्षे चरीकरीति एवमीड—भावेऽपि रूपत्रयम् । **चर्कृत इति**— तसि रुगादिना रूपत्रयम् । **एवं चर्क्रतीति** — अदभ्यस्तादिति झस्यात्, इको यणचीति यणादेशः। रुगादिना रूपत्रयम् । **चर्करितेति**— एकाच उपदेशेऽनुदात्तादिति सूत्रे एकाज्ग्रहणात् यङ्लुकि तस्य सूत्रस्याप्रवृत्तेरार्धधातुकस्येति इट् । **अचर्करीदिति**-लङि ईट्पक्षे रुगादिना रूपत्रयम् । **ईडभावे अचर्क इति**—कृ इत्यस्य सार्वधातुक गुणे हल्ङ्यादिना तिलोपे रेफस्य विसर्गः, रुगादिना रूपत्रयम् । **चर्कृयादिति**— विधिलिङ्, यासुटो ङित्वान्न गुणः । **चर्क्रियादिति**-आशीर्लिङि रिङ्शयगिति रिङादेशः । **अचर्कारीदिति**—लुङ्, च्लेः सिच्, इट्, ईटि, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः। **चाकर्तीति**—कॄ धातोर्यङ्लुक्, द्वित्वम्, उरत्, हलादिशेषः, कुहोश्चुः, दीर्घोऽकित इति अभ्यासदीर्घः, अनभ्यासस्य सार्वेति गुणः । अस्य दीर्घान्तत्वाद् ऋतश्चेति रुगादयो न । ईट्पक्षे **चाकरीति** इति । **चाकीर्त इति**—तसि ॠत इद्धातोरिति इत्वं, रपरत्वं, हलिचेति दीर्घः । **चाकिरतीति**- अदभ्यस्तादिति झस्यात्, ॠत इद्धातोरिति इर्, हल्परत्वाभावाद्धलि चेति दीर्घो न । **चाकीर्हि इति**—लोटः सेर्हिः, तस्य आपित्त्वात् ईट् विकल्पो न । अपित्त्वेनैव ङित्वाद् गुणो न । ॠत इद्धातोः, हलि चेति दीर्घः । **चाकराणीति**—मेर्निः, आडुत्तमस्येत्याट्, तस्य पित्त्वेऽपि हलादित्वाभावादीण्, सार्वधातुकेति गुणः । **अचाकरीदिति**—लङि यङो वेति ईट् । **ईडभावे अचाकः इति**—सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति अर्, हल्ङ्यादिना तिलोपः, रेफस्य विसर्गः । **अचाकरुरिति**—सिजभ्यस्तेति झेर्जुस्, जुसि चेति गुणः । **अचाकारीदिति**—लुङ्, च्लेः सिच्, तस्यार्धधातुकस्येतीट्, अस्तिसिचोऽपृक्ते इति ईडागमे इट ईटीति सिचो लोपः, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । **तातर्तीति**—तॄधातोर्यङ्लुक्, तॄ इत्यस्य द्वित्वमुरत्, हलादिशेषः, दीर्घोऽकितः, सार्वधातुकेति गुणः । यङो वेति ईट्पक्षे तातरीति इति ।

॥ इति यङ्लुगन्ताः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

हलादिशेषः, अभ्यासस्याकारस्य दीर्घः, सवर्णदीर्घः । **वर्वर्तिता इति**—वर्वृत् इति धातोर्लुट्, तिप, तास्, आर्धधातुकस्येडिति इट्, पुगन्तेति गुणः, वर्वर्तितास् ति इति, तिपो डादेशः, टेर्लोपः । रिक् पक्षे **वरिवर्तिता** इति, रीक्-पक्षे **वरीवर्तितेति** । **अचर्कारीदिति**—यङ्लुगन्तात् चर्कृ इत्यस्मात् लुङि तिपि, सिच्, इतश्चेति इलोपः । श्तिपा शपेति नियमात् एकाच उपदेशेऽनुदात्तादिति निषेधाप्रवृत्तेः आर्धधातुकस्येड् वलादेरिति इटि अस्तिसिच इति ईटि, अडागमः अचर्कृ इ स् ई त् इति, सिचि वृद्धिरिति ऋकारस्य वृद्धिः, रपरत्वम्, इट ईटीति सिचो लोपः, सवर्णदीर्घः । अचाकारिष्टामिति- कॄ धातोर्यङि तस्य लुकि, सन्यङोरिति द्वित्वे अभ्याससंज्ञा, उरदिति अभ्यास ॠकारस्यात्वे रपत्वे हलादिशेषः, कुहोश्चुरिति कस्य चः, दीर्घोऽकित इति दीर्घः । चाकॄ इति धातोः लुङ्, तस्, तसस्ताम्, च्लेः सिच्, आर्धधातुकस्येति इट्, अडागमः, अचा कॄ इस् ताम् इति, सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः, रपरत्वम्, आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम्, ष्टुत्वम् ।

॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां यङ्लुगन्त-प्रकरणम् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नामधातु-प्रकरणम्

८७९. सुप आत्मनः क्यच्-३।१।८॥ इषिकर्मण एषितुरात्मसम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यज् वा ।

८८०. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः-२।४।७१॥ एतयोरवयवस्य सुपो लुक् स्यात् ।

८८१. क्यचि च-७।४।३३॥ अवर्णस्य ईत् स्यात् । आत्मनः पुत्रम् इच्छति-पुत्रीयति ।

वा. मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न । किमिच्छति । इदमिच्छति । स्वरिच्छति ।

८८२. अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु-७।४।३४॥

मध्यमनोरमा

सुप आत्मनः क्यच्-इषिकर्मणः इति—इषेः इष्धात्वर्थेच्छायाः कर्मणः । **यथा**—पुत्रमिच्छतीत्यत्र पुत्रेच्छाकर्मणः अर्थद्वारा पुत्रशब्दोऽपि इच्छाकर्म । अतस्तस्मात् क्यच् । **पुत्रीयतीति । एषितुरिति**—एषिता इच्छाकर्ता, तस्य आत्मसम्बन्धि यत् इषिकर्म, तस्मात् । तेन इच्छाकर्ता आत्मनः पुत्रमिच्छति तदैव पुत्रीयति । परस्य पुत्रमिच्छति इत्यत्र न क्यच् । **पुत्रीयतीति**—पुत्र अम् इति द्वितीयान्तात् क्यच्, पुत्र अम् य इति जाते सनाद्यन्ता इति धातुसंज्ञायां सुपो धात्विति अमो लुक्, क्यचि चेतीत्वं, पुत्रीय इति क्यजन्तधातोर्लडादयः; तिप् शप्, अतो गुणे । **मान्तप्रकृतिकादिति**—मान्ता प्रकृतिर्यस्य स तु मान्तप्रकृतिकः । किमित्यादि सुबन्तं तस्मात् स्वरित्याद्यव्ययाच्च न क्यजित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

इषिकर्मण इति—धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा इत्यतः कर्मणः इच्छायां वा इत्यनुवर्तते । प्रत्ययग्रहणपरिभाषया सुप इत्यस्य सुबन्तादित्यर्थः, कर्मणः इत्यस्य कर्मकारकादित्यर्थः । आत्मशब्दः स्वपर्यायः, स्वश्च इच्छायाः सन्निधापितत्वाद् एषिता एव गृह्यते । अत एवोक्तं मूले-इषिकर्मणः एषितुरात्मसम्बन्धिनः सुबन्तादिच्छायामित्यादि । **अवर्णस्येति**—अस्य च्वौ इत्यतः अस्येति ई घ्राध्मोरित्यतश्च ई इत्यनुवर्तते । **तदाह**—क्यचि परे अस्य ईत् भवतीति । **किमिच्छतीति**—किम्-शब्दात् सुप आत्मन इति प्राप्तः क्यच् मान्तप्रकृतिकादित्यनेन निषिध्यते ।

हिन्दी

८७९. इष् के कर्म और इच्छाकर्ता सम्बन्धी के वाचक सुबन्त से क्यच् होता है इच्छा अर्थ में ।

८८०. धातु व प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लुक् होता है ।

८८१. क्यच् परे अ को ई होता है ।

वा. मान्त-प्रकृतिक सुबन्त व अव्यय से क्यच् नहीं होता है ।

८८२. बुभुक्षा पिपासा व अभिकाङ्क्षा अर्थ में अशनाय उदन्य व धनाय ये क्यजन्त निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एते क्यजन्ता निपात्यन्ते । अशनायति । उदन्यति । धनायति । बुभुक्षादौ किम्-?-अशनीयति । उदकीयति । धनीयति ।

८८३. अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि-७।१।५१।। एषां क्यचि असुगागमः स्यात् ।

वा. अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ।। अश्वस्यति वडवा । वृषस्यति गौः ।

वा. क्षीरलवणयोर्लालसायाम् । क्षीरस्यति बालः । लवणस्यति उष्ट्रः ।

वा. सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुगौ । दधिस्येति, दध्यस्येति।

मध्यमनोरमा

क्यजन्ता निपात्यन्ते इति—अशनशब्दात् बुभुक्षायां क्यच्, ईत्वं बाधित्वा निपातनादेवात्वम् । सः सद्यः एव अशनं भोक्तुमिच्छतीति तदोदाहरणम् । सद्यो बुभुक्षाभावेन कालान्तरोपयोगार्थमशनमिच्छति तत्र प्रत्युदाहरणम्-**अशनीयतीति** । एवमुदकशब्दात् पिपासायां क्यच्, उदकात् क्यच् उदनादेशश्च निपात्यते । य इदानीमेव पातुमुदकमिच्छति, तदोदाहरणम् । यस्तु स्नानाद्यर्थमुदकमिच्छति तदा उदकीयति इति । एवं धनशब्दात् गर्धे अभिकाङ्क्षायां, सत्यपि धने, धनेच्छायामिति यावत्, क्यच् आत्वञ्च निपात्यते । यस्तु दरिद्रो धनमिच्छति तदा प्रत्युदाहरणम्-**धनीयतीति** । **अश्वस्यतीति**—अश्वशब्दात् क्यच्, अश्व शब्दस्य अन्ते सुगागमः । मैथुनार्थमश्वमिच्छतीत्यर्थः । **वृषस्यतीति**—मैथुनार्थं वृषमिच्छ तीत्यर्थः । **लालसायामिति**—अत्युत्कटेच्छायामित्यर्थः । **क्षीरस्यति इति**—क्षीर विषयोत्कटेच्छायामित्यर्थः । एवं लवणस्यतीति । **लालसायां सुगसुकाविति**—एते बुभुक्षादयो लालसान्ता इच्छाभेदा एवेति सुप आत्मनः क्यच् इत्येव क्यच्, तत्सन्नियोगेन सुगादिकं विधीयते । ततः सुकि दधिस्यतीति ।

मध्यमनोरमापूरणी

अशनायति इति-अशनं भवति—अश्यते यद् तदन्नम् । अशनमिच्छतीत्यत्र अशनायेति क्यचि ईत्वाभावो निपात्यते । धातुसंज्ञा, सुपो लुक्, अकृत्सार्वेति दीर्घः, अशनाय इति, लट्, तिप्, शप् । **उदन्यतीति**—उदकं पातुमिच्छतीत्यर्थे क्यच् उदन्यादेशश्च निपात्यते । **अश्वक्षीरेति**—सूत्रेऽस्मिन् आज्जसेरसुगिति सूत्रात् असुक् इत्यनुवर्तते । **वृषस्यतीति**—वृषं मैथुनार्थमिच्छतीत्यर्थे सुप आत्मनः क्यजिति क्यच्, धातुसंज्ञा, अम् इत्यस्य लुक्, अश्ववृषयोरिति वार्तिकेनासुक्, वृष अस्य इति, पररूपम्, वृषस्य इति, लट्, तिप्, शप्, पररूपम् ।

हिन्दी

८८३. अश्व क्षीर लवण और वृष शब्द से आत्मप्रीति अर्थ प्रतीत होने पर क्यच् परे रहते असुक्-आगम होता है ।

वा. अश्व और वृष शब्द से मैथुनेच्छा अर्थ में असुक् होता है ।

वा. क्षीर और लवण शब्द से लालसा अर्थ में असुक् होता है ।

वा. लालसा अर्थ में सभी प्रातिपदिकों को सुक् व असुक् आगम होता है क्यच् प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८८४. नः क्ये-१।४।१५।। क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं नान्यत् । नलोपः । राजीयति । नान्तमेवेति किम् ? वाच्यति । हलि च । गीर्यति । पूर्यति । धातोरित्येव । तेनेह न-दिवमिच्छति दिव्यति ।

८८५. क्यस्य विभाषा-६।४।५०।। हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वाऽर्धधातुके । आदेः परस्य, अतो लोपः । तस्य स्थानिवद्भावान्नोपधागुणः । समिधिता, समिध्यिता ।

मध्यमनोरमा

राजीयतीति—राजानम् आत्मनः इच्छति, द्वितीयान्तराजन्शब्दात् क्यच्, राजन् अम् य इति स्थिते सुपो धात्विति अमो लुकि प्रत्ययलोपे प्रत्ययक्षणमिति राजन् शब्दस्य सुबन्तत्वात् सुप्तिङन्तमिति पदसंज्ञायां प्राप्तायां नः क्ये इति नियम्यते-**नान्तमेव पदमिति** । राजन् शब्दश्च नान्त इति भवति, पदसंज्ञायां नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः । **वाच्यतीति**—इदं वाचमात्मन इच्छतीति विग्रहे वाच्शब्दात् द्वितीयान्तात् क्यच्, सुपो लुक्, प्रत्ययलोप इति सुबन्तत्वात् सुप्तिङन्तमिति वाच्शब्दस्य पदसंज्ञायां प्राप्तायां नः क्ये इति नान्तस्यैव पदसंज्ञानियमात् वाच्शब्दस्य नान्तत्वाभावेन न पदसंज्ञा, ततश्चोः कुः इति कुत्वं न । **गीर्यतीति**-गिरमात्मनः इच्छति, गिर् शब्दात् क्यच्, हलि चेति दीर्घः । गॄधातोः क्विप्, ॠत इद्धातोरिति इत्वे गिर्शब्दो निष्पन्नः । **पूर्य्यतीति**—पुरमात्मनः इच्छति, पुर्शब्दात् क्यच्, पॄ पालनपूरणयोरित्यस्मात् क्विप्, उदोष्ठ्यपूर्वस्येति उत्वम्, क्यचि हलि चेति दीर्घः । **धातोरित्येवेति**—हलि चेति सूत्रे धातोरित्यनुवृत्तेः रेफवान्तस्य धातोरेव दीर्घः । तेन दिव्यतीत्यत्र दिव्शब्दस्य वान्तत्वेऽपि न दीर्घः । दिव्-इत्यस्य धातुत्वाभावात् । द्यु अभिगमे इत्यस्य दिव् इति व्युत्पादनात् । दिव्धातोः क्विपि छ्वोरित्यूठि द्यूरिति स्यात् । दिव्धातोर्विचि गुणे वकारलोपे देरिति स्यात् । तस्मात् दिव्शब्दो दिव्-धातोर्न भवतीति बोध्यम् । **समिधितेति**-समिधमात्मनः इच्छति इति विग्रहे समिध्शब्दात् क्यचि समिध्य इति क्यजन्तो धातुः, तस्माल्लुटि तासि इट्, क्यस्य विभाषेति यलोपः, अतो लोप इत्यकारलोपः । अल्लोपस्य स्थानिवद्भावेन उपधायामिकाराभावान्न लघूपध गुणः, यकारलोपाभावपक्षे समिध्यितेति-अतो लोप इत्यकारलोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दध्यस्यतीति—दधि भोक्तुमिच्छतीत्यर्थे दधि अम् इत्यस्मात् क्यच्, सर्वप्रातिपदिकानामिति असुगागमः । धातुत्वात्सुपो लुक्, इकारस्य यण् । दध्यस्य इति, लट्, तिप्, शप्, पररूपम् । सुकि दधिस्यतीति । **हलः परयोरिति**—यस्य हलः इति सूत्रात् हलः इत्यनुवर्तते, आर्धधातुके इत्यस्याधिकारः, क्यस्येति क्यच्क्यङोर्ग्रहणं न तु क्यषः । एवञ्च सूत्रार्थो भवति-हलः परयोः क्यच्क्यङोरित्यादि ।

हिन्दी

८८४. क्यच् और क्यङ परे नान्त ही पद होता है, अन्य नहीं ।

८८५. हल से परे क्यच् और क्यङ का लोप होता है विकल्प से आर्धधातुक परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८८६. काम्यच्च-३।१।९॥ उक्तविषये काम्यच् । पुत्रमात्मन इच्छति पुत्रकाम्यति । पुत्रकाम्यिता ।
८८७. उपमानादाचारे-३।१।१०॥ उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् । विष्णूयति द्विजम् ।
वा. सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः । अतो गुणे। कृष्ण इवाचरति कृष्णति । स्व इवाचरति स्वति । सस्वौ ।
८८८. अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति-६।४।१५॥ अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः क्वौ झलादौ क्ङिति च । इदमिवाचरति-इदमति । राजानति । पन्था इवाचरति-पथीनति । मथीनति । इन्हन्निति नोपधादीर्घः, इत्यपरे । पथेनति। मथेनति ।

मध्यमनोरमा

पुत्रकाम्यतीति—पुत्रशब्दात् काम्यच्, पुत्रकाम्य इत्यस्य धातुत्वाल्लडादयः, उच्चारण-सामर्थ्यात् ककारस्य लशक्वेति न लोपः । **पुत्रकाम्यितेति**—अतो लोप इत्यलोपः । **पुत्रीयति छात्रमिति**—क्यचि चेतीत्वम् । **विष्णूयति इति**—अकृत्सार्वेति दीर्घः । **कृष्णतीति**—कृष्णशब्दात् क्विप्, पकारस्य हलन्त्यमिति इकारस्य उपदेशे इति, ककारस्य लशक्वतद्धित इति इत्संज्ञा, तस्य लोपः, वेरपृक्तस्येति व-लोपः । सनाद्यन्ता इति धातुत्वाल्लट्, तिप्, शप्, शपोऽकारेण कृष्णेत्यकारस्य अतो गुण इति पररूपम् । प्रातिपदिकादेव क्विब्विधानादकारस्या-पदान्तत्वात् । **सस्वाविति**—स्वशब्दात् क्विप्, क्विबन्तत्वाद्धातुत्वम्, धातुत्वाल्लिट्, तिप्, णल्, स्वशब्दस्य अनेकाच्त्वाभावादाम्न । स्वशब्दस्य द्वित्वं, हलादिशेषः, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आत औ णलः, वृद्धिरेचि । **इदामतीति**—शप्, उपधादीर्घः । **पथेननति, पथीनतीति**-पथिन् शब्दात् क्विबन्तात् तिप्, शप्, शपि परतो लघूपधगुणः । इन्हन्निति शावेव उपधादीर्घः इति नियमादत्र शिपरत्वाभावात् अनुनासिकस्येति अनेन उपधादीर्घो भवति । तदा पथीनति ।

मध्यमनोरमापूरणी

उपमानादिति—सुप आत्मनः इत्यतः सुप् इत्यनुवर्तते, धातोः कर्मणः इत्यतश्च कर्मण इत्यनुवर्तते । **तदाह**—उपमानात् कर्मणः सुबन्तादित्यादि । **पथीनति-पथेनतीति**—क्विबन्ताद् पथिन्-शब्दात् लटि तिपि शपि अन्तरङ्गत्वात् अनुनासिकस्येति उपधादीर्घे पथीनति । अपरे इन्हन्निति सूत्रेण शावेवोपधाया दीर्घः इति नियमात् नात्र दीर्घः, अपि तु पुगन्तलघूपधेति गुणो भवतीत्याहुः, तदा **पथेनति** इति, **मथिन्** शब्दात् मथेनति इति रूपं ज्ञेयम् ।

हिन्दी

८८५. हल् से परे क्यच् और क्यङ् का लोप होता है विकल्प से आर्धधातुक परे ।
८८६. इष् के कर्म और कर्ता सम्बन्धी के वाचक सुबन्त से इच्छा अर्थ में काम्यच् प्रत्यय होता है ।
८८७. उपमानवाची सुबन्त कर्म से आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होता है ।
वा. प्रातिपदिक मात्र से आचारार्थक क्विप् होता है विकल्प से ।
८८८. अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ होता है क्विप् व झलादि कित् ङित् परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८८९. कर्तुः क्यङ्सलोपश्च-३।१।११॥ उपमानात् कर्तुः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यङ् वा, सान्तस्य कर्तृवाचकस्य लोपो वा । क्यङ् वेत्युक्तेः पक्षे वाक्यम् ।

प. "सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः", इति क्यङ्सलोपयोः सहैव प्रवृत्तिः लोपश्च व्यवस्थितः ।

वा. ओजसोऽप्सरसोः नित्यमितरेषां विभाषया । कृष्ण इवाचरति कृष्णायते । ओजायते । अप्सरायते । यशायते, यशस्यते । विद्वायते, विद्वस्यते ।

वा. आचारेऽवगल्भ-क्लीब-होडेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः । वा ग्रहणाद् वाक्यमपि । अवगल्भादयः पचाद्यजन्ता । क्विप्सन्नियोगेनानुदात्तत्वमनुनाकित्वं चाच्-प्रत्ययस्य प्रतिज्ञायते । तेन तङ् । अवगल्भते । क्लीबते । होडते । भूतपूर्वादप्यनेकाच आम्, एतद्वार्तिकारम्भसामर्थ्यात् । अवगल्भाञ्चक्रे । क्लीबाञ्चक्रे । होडाञ्चक्रे ।

मध्यमनोरमा

सन्नियोगशिष्टानामिति—सन्नियोगः साहित्यं तेन शिष्टानामित्यर्थः । लोपश्च व्यवस्थितः इति क्वचिन्नित्यमेव, बहुषु विकल्प इत्येवंरूपा व्यवस्था, तामाह-ओजस इत्यादि । **कृष्णायते**—क्यङो ङित्त्वात् आत्मनेपदम्, अकृत्सार्वेति दीर्घः । **ओजायते इति**—ओजस् शब्दस्य सलोपः, दीर्घः । **यशायते यशस्यते इति**—सकारस्य पाथिको लोपः । **अनुदात्तत्वमनुनासिकञ्चेति**—अनुनासिकत्वेन इत्संज्ञा, तस्याकारस्यानुदात्तत्वेन तदन्तादनुदात्तङित इत्यात्मनेपदम् । क्विप्-सन्नियोगेनैवानुदात्तत्वानुनासिकत्वयोः प्रतिज्ञानात् । क्विपोऽभावे क्यङ् । पक्षेऽकारस्या-नुनासिकत्वाभावेनेत्संज्ञायाः अभावात्तस्य दीर्घः । अवगल्भायते इत्यादिप्रयोग इति भावः ।**तेन तङिति**—आत्मनेपदमित्यर्थः । **एतद्वार्तिकारम्भसामर्थ्यादिति**—अवगल्भ इवाचरति अवगल्भते इति प्रयोग एतद्वार्तिकफलम् । अन्यथा सर्वप्रातिपदिकेभ्य इति क्विपि अवगल्भतीति स्यात् । अनेन वार्तिकेन क्विप्सन्नियोगेन अनुदात्तत्वप्रतिज्ञानादात्मनेपदं भवति । इदञ्च प्रयोजनमन्यथासिद्धं, तथाहि-गल्भ धार्ष्ट्ये , क्लीबृ अधार्ष्ट्ये, होड़ अनादरे, एते त्रयोऽपि अनुदात्तेतः । अतोऽवगल्भते होडते क्लीबते इत्यादिप्रयोगाः सिद्ध्यन्ति, तेषामेव

मध्यमनोरमापूरणी

अप्सरायते इति—अप्सराः इवाचरति इति विग्रहे अप्सरस् शब्दात् ओजसोऽप्सरसोः नित्यमिति वार्तिकेन नित्यं सकारलोपो भवति, कर्तुः क्यङिति क्यङो विधानात् परम् । अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घः, अप्सराय इति, लट्, तङ्, शप्, एत्वम् । **विद्वायते इति**—विद्वान् इवाचरति, क्यङ् सलोपश्चः, दीर्घः, लट्, तङ्, शप्, एत्वम् । सलोपाभावे न दीर्घः, विद्वस्यते इति ।

हिन्दी

८८९. उपमानवाची कर्ता सुबन्त से अचार अर्थ में क्यङ् हो विकल्प से, सान्त कर्तृवाचक के स का लोप भी हो विकल्प से ।

प. सूत्र में साथ साथ उच्चारित कार्यों की प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ होती है ।

वा. ओजस् और अप्सरस् के स् का नित्य लोप होता है, अन्य के स् का विकल्प से लोप होता है ।

वा. आचार अर्थ में अवगल्भ क्लीब और होड शब्द से क्विप् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उपसर्गसमानाकारपूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते, तेन गल्भशब्दात् प्रागट् । अवागल्भत । अवागल्भिष्ट ।

८९०. लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्-३।१।१३॥

८९१. वा क्यषः-१।३।९०॥ क्यषन्तात् परस्मैपदं वा । अलोहितो लोहितो भवति, लोहितायति, लोहितायते । ननूच्चारणसामर्थ्यात् काम्यच इव क्यषोऽपि ककारः कुतो न श्रूयते, तस्य भाष्ये प्रत्याख्यानात् । पटपटायति, पटपटायते ।

मध्यमनोरमा

च प्रगल्भ इवाचरतीति इत्यादयोऽर्थाः सम्भवन्ति, धातूनामनेकार्थत्वात् । न च सर्वप्रातिपदिकेभ्य इति वाग्रहणेन व्यवस्थितविभाषाश्रयणात् अवगल्भक्लीबहोडेभ्यः क्विपोऽभावस्य साधयितुं शक्यत्वात्तस्मादवगल्भते इत्यादि प्रयोगसिद्धौ अवगल्भतीत्यादिवारणसम्भवे प्रकृतवार्तिकं व्यर्थं सत् ज्ञापयति-भूतपूर्वादप्यनेकाच आम् इति । तेन गल्भशब्दः पूर्वमनेकाच् स्थितः, तस्मात् क्विपि अकारस्यानुनासिकत्वप्रतिज्ञया लोपे सति सम्प्रति अनेकाच्त्वाभावे सत्यपि तत् स्यात् । कास्यनेकाच इति आम् भवतीति । ननु अवगल्भशब्दस्याकारलोपेऽप्यनेकाच्त्वमस्त्येवेति **चेदत्राह-उपसर्गसमानाकारमिति**-क्रियायोगाभावेनोपसर्गसंज्ञाया अभावादुपसर्ग समानाकारत्वमुक्तम् । तथा च क्विपि कर्त्तव्ये अवेत्येतत् पृथक्कृत्य गल्भशब्दात् क्विप्, तस्यैव धातुत्वम् । अनेकाचो धातोर्हि आम् विधीयते । गल्भेति नानेकाच्, अवगल्भेत्यनेकाच्, नासौ धातुरित्यामोऽप्राप्तेः, भूतपूर्वगतेराश्रयणं सफलमेव । **उपसर्गस्य पृथक्करणप्रयोजनमाह**— गल्भशब्दात् प्रागडिति । लुङादिषु परेषु धातोरड्विधानादवगल्भेत्यस्यैव धातुत्त्वात्ततः प्रागडागम इत्यर्थः । **अवागल्भिष्टेति**—सिच् तस्य इडागमः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **लोहितादिडाज्भ्य इति**—अत्र अच्वेरित्यनुवर्तते । अच्वेरिति पर्युदासः, तेन च्विप्रत्ययात् तद्भिन्नात् च्विप्रत्ययान्तसदृशात् लोहितशब्दात् क्यष् । च्विप्रत्ययान्तसादृश्यञ्च अभूततद्भावरूपस्य च्विप्रत्ययार्थस्य बोधकत्वं, तेन अभूततद्भावे क्यषमुदाहरति-अलोहितमित्यादि । क्यषन्ताद् वा क्यष इति परस्मैपदविकल्पः । **प्रत्याख्यानादिति**—तथा च यष्-प्रत्यय एव भाष्यकृता स्वीकृत इति, सूत्रकारमतेऽपि ककारस्येत्संज्ञैव भवति इति भावः । **पटपटायतीति**— अव्यक्तानुकरणाद्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच् इति सूत्रेण पटत् शब्दात् कृभ्वस्तियोगे डाच्, पटपटाकरोतीत्यादि । अत्र डाचि बहुलमिति द्वित्वे पटत् पटत् आ इति स्थिते डाचो डित्वाट्टेर्लोपे पूर्वस्य तकारस्य नित्यमाम्रेडिते डाचि इति पररूपत्वे पटपटा इति डाजन्तः, तस्मात् क्यष् । डाजन्तात् क्यष्विधानसामर्थ्यात् करोतियोगं विनापि डाच् ।

मध्यमनोरमापूरणी

लोहितायति इति—अलोहितो लोहितो भवतीति विग्रहे लोहित सु इत्यस्मात् लोहितादि इति क्यष्, धातुसंज्ञा, सुपो लुक् । अकृत्सार्वेति दीर्घः, लोहिताय इति, लट्, वा क्यषः इति परस्मैपदसंज्ञा, तिप्, शप्, पररूपम् । परस्मैपदाभावे तङ्, एत्वम्, लोहितायते ।

हिन्दी

८९०. लोहितादि एवं डाजन्त शब्दों से 'भवति' अर्थ में क्यष् होता है ।

८९१. क्यषन्त शब्द से विकल्प से परस्मैपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८९२. कष्टाय क्रमणे-३।१।१४।। चतुर्थ्यन्तात् कष्टशब्दादुत्साहेऽर्थे क्यङ् । कष्टाय क्रमते-कष्टायते । पापं कर्तुमुत्सहते इत्यर्थः ।

वा. सत्रकक्षकष्टकृच्छ्रगहनेभ्यः कण्वचिकीर्षायाम् । कण्वं पापं चिकीर्षति । सत्रायते । कक्षायते ।

८९३. कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः-३।१।१५।। कर्मीभूताभ्यां रोमन्थतपोभ्यां क्रमणे वर्तनायां चरणे चार्थे क्यङ् स्यात् । रोमन्थं वर्तयति-रोमन्थायते ।

वा. हनुचलने इति वाच्यम् । चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणे इत्यर्थः । नेह- कीटो रोमन्थं वर्तयति ।

वा. तपसः परस्मैपदञ्च । तपश्चरति-तपस्यति ।

८९४. वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने-३।१।१६।। वाष्पमुद्वमति-वाष्पायते । ऊष्मायते ।

वा. फेनाच्चेति वक्तव्यम् । फेनायते ।

मध्यमनोरमा

कष्टायते इति—कष्टं दुःखं, तस्मै उत्साहो न सम्भवतीति, अतः कष्टमिह दुःखसाधनं पापमुच्यते, तत्कर्त्तमुत्साहो रागिणाम् । कष्टायेत्यत्र क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी । क्रमते इत्यस्य उत्सहते इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

सत्रायते इति—सत्रं = पापं, चिकीर्षति इति अस्वपदविग्रहः, सत्र अम् इति द्वितीयान्ताद् सत्रकक्षेति क्यङ्, अनुबन्धलोपः, धातुसंज्ञा, सुपो लुक्, ङित्त्वादात्मनेपदम्, लट्, तः, शप्, एत्वम् । एवं **कक्षायते** इति । **रोमन्थायते इति**—रोमन्थ अम् इत्यस्मात् क्यङ्, धातुसंज्ञा, सुपो लुक्, अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः, ङित्त्वाल्लटि तङ्, शप्, पररूपमेत्त्वम् । **हनुचलने इति**- हनु तालुवाचि, तालुचलने एव अर्थे अर्थात् उदरगतं भक्षितं द्रव्यं पुनः पुनराकृष्य तालुचालनेन पुनः पुनः अश्यते तदा रोमन्थशब्दात् क्यङ् भवति । **नेह कीटो रोमन्थं वर्तयतीति**—अत्र रोमन्थशब्दार्थः-अपानप्रदेशात् निःसृतं द्रव्यमस्ति, तदश्नातीति कैयटः । वर्तुलं करोतीत्यर्थः, इति न्यासकारहरदत्तौ । **तपसः इति**—कर्मीभूतात् तपश्शब्दात् चरणेऽर्थे क्यङ् परस्मैपदञ्च भवति । **तपस्यतीति**—तपसः इति क्यङ्, ङित्त्वे सत्यपि विशेषकथनात् परस्मैपदम् । **ऊष्मायते इति**—ऊष्माणमुद्वमतीत्यर्थे वाष्पोष्मभ्यामिति क्यङ्, सुपो लुक् । नः क्य इति पदत्वान्नलोपः, ऊष्म य इति, अकृत् इति दीर्घः, लट्, तङ्, शप्, एत्वम् । **फेनाच्चेति**—उद्वमनेऽर्थे फेनशब्दात् क्यङ् भवति । फेनमुद्वमति इत्यर्थे क्यङ् ।

हिन्दी

८९२. चतुर्थ्यन्त कष्टशब्द से उत्साह अर्थ में क्यङ् होता है ।

वा. सत्र कक्ष कष्ट कृच्छ्र व गहन शब्द से-कण्वचिकीर्षा = 'पाप करने की इच्छा' अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ।

८९३. कर्मीभूत रोमन्थ और तपस् शब्द से वर्तना और चरण अर्थ में क्यङ् होता है ।

वा. जुगाली करने के अर्थ में ही रोमन्थ से क्यङ् होता है ।

वा. तपस् शब्द से चरण अर्थ में क्यङ् एवं परस्मैपद होता है ।

८९४. वाष्प और ऊष्मा से उद्वमन अर्थ में क्यङ् होता है ।

वा. फेन से उद्वमन अर्थ में क्यङ् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८९५. शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे-३।१।१७॥ एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् । शब्दं करोति शब्दायते ।

वा. सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्च । सुदिनायते । दुर्दिनायते । नीहारायते ।

ग. प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च । प्रादिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात्, इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुम्भाव-रभाव-टिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोप-प्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्युः । पटुमाचष्टे पटयति । परत्वाद्वृद्धौ सत्यां टिलोपः । अपीपटत् । णौचङीत्यत्र भाष्ये तु वृद्धेर्लोपो बलीयानिति स्थितम् । अपपटत् ।

मध्यमनोरमा

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इति, पुम्वद्भावरभावटिलोपादि इति—अतिशयेन पट्वी पटिष्ठेत्यत्र भस्याढ इति पुम्वद्भावः । **रभावः**—क्रशिष्ठः, द्रढिष्ठः इत्यत्र र ऋतो हलादेरिति सूत्रेण । अतिशयेन स्रग्वी **स्रजिष्ठ** इत्यत्र विन्मतोर्लुगिति विनो लुक् । अतिशयेन गोमान् गविष्ठ इत्यादौमतुपो लोपः, **स्थविष्ठ** इत्यादौ स्थूलदूरेत्यादिना यणादिलोपः । **प्रेष्ठ** इत्यादौ प्रियस्थिरेत्यादिना प्रस्थस्फाद्यादेशाः । एवमेवात्रोदाहरणानि । **पुम्वद्भावस्योदाहरणम्**—एणीमाचष्टे एतयति । द्रढयतीत्यादौ रभावः । **साधुमाचष्टे साधयति**—अत्र टिलोपः । **स्रग्विनमाचष्टे स्रजयति**—अत्र विनो लुक् । गोमन्तमाचष्टे **गवयतीत्यत्र** मतुपो लुक् । स्थूलमाचष्टे **स्थवयति**, दूरमाचष्टे दवयतीत्यादौ यणादिलोपः । प्रियमाचष्टे **प्रापयतीत्यत्र** प्रादेशः। स्थिरमाचष्टे **स्थापयति**, स्थादेशः । स्फिरमाचष्टे **स्फापयति**, स्फादेशः । **वृद्धौ सत्यां टिलोपः इति**-पटुशब्दस्योकारस्य वृद्ध्या औकारे जाते टेरिति इष्ठेमेयः- सु टिलोपविधानात् **इष्ठवद्भावेन** टेरिति औकारस्य लोपे अग्लोपित्वाभावात् सन्वद्भावः । **सन्यतः** इतीत्वं, **दीर्घो लघोः** **अपीपटत्** । वृद्धेः पूर्वमेव टिलोप इति मते तु उकारस्य लोपे अग्लोपित्वाद् सन्वद्भावो न, तेन **अपपटदिति** ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुदिनायते इति—सुदिनं करोतीत्यर्थे सुदिनदुर्दिनेति क्यङ् । **पटयति इति**—पटुमाचष्टे इति विग्रहे प्रातिपदिकादिति णिचि इष्ठवद्भावे च कृते, टिलोपः, धातुत्वात् सुपो लुक्, पटि इति, लट्, तिप्, शप्, गुणायौ ।

हिन्दी

८९५. शब्द वैर कलह अभ्र आदि से करण अर्थ में क्यङ् होता है ।

वा. सुदिन दुर्दिन व नीहार से करोति अर्थ में क्यङ् होता है ।

वा. प्रातिपदिक से धातु के अर्थ में णिच् होता है व इष्ठवद्भाव होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८९६. पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ्-३।१।२०॥
वा. पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च । विविधं विरुद्धं चोत्क्षेपणं = व्यसनम् । उत्पुच्छयते । परिपुच्छयते ।
वा. भाण्डात् समाचयने । सम्भाण्डयते । समबभाण्डत् । वा. चीवरादर्जने परिधाने च । संचीवरयते भिक्षुः ।
८९७. मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच्-३।१।२१॥
कृञर्थे । मुण्डं करोति-मुण्डयति ।
वा. व्रताद्भोजनतन्निवृत्त्योः । पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति ।
वा. वस्त्रात् समाच्छादने । संवस्त्रयति ।
वा. हल्यादिभ्यो ग्रहणे । हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते । हलिं कलिं वा गृह्णाति-हलयति, कलयति । महद्धलं हलिः । कृतं गृह्णाति कृतयति । तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति । तूस्तं केशा इत्येके, जटीभूताः केशा इत्यन्ये । पापमित्यपरे ।

मध्यमनोरमा

उदसने इति—ऊर्ध्वक्षेपणे इत्यर्थः । पर्यसनं परितः क्षेपणम् । **समबभाण्डत् इति**—णिङि कर्त्तव्ये समःपृथक्करणात् भाण्डशब्दात् णिङ्, अतो भाण्ड इत्यस्यैव धातुत्वम्, अतोऽडागमोऽपि तस्यैवेति बोध्यम् । **व्रतयति इति**—पयो व्रतयतीत्यत्र भुङ्क्ते इत्यर्थः । शूद्रान्नं व्रतयतीत्यत्र न भुङ्क्ते इत्यर्थः । **अदन्तत्वञ्चेति**—मुण्डमिश्रेत्यादिसूत्रे हलकलेति हलिकलिशब्दयोरिकारस्याकारं कृत्वा निर्देशः । **हलयतीति**—अतो लोप इत्यकारलोपः ।

॥ इति नामधातुप्रक्रिया ॥

मध्यमनोरमापूरणी

समबभाण्डदिति—संभाण्डशब्दात् णिङि धातुसंज्ञा, सुपो लुक् । लुङ्, तङ्, च्लिः, णिश्रीति चङ्, उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते इति नियमात् समः परं भाण्डस्याट् । सम् अ भाण्ड इ अत् इति, द्वित्वं, हलादिशेषः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्त्व, अतो लोपः, णिलोपः । **संवस्त्रयतीति**—वस्त्रेण समाच्छादयतीति अर्थे वस्त्रात् इति णिच्, धातुसंज्ञा, सुपो लुक्, णेरार्धधातुकत्वादतो लोप इत्यकारलोपः, संवस्त्र् इ इति, तिप्, शप्, गुणः अयादेशः ।

हिन्दी

८९६. पुच्छ भाण्ड और चीवर से णिङ् प्रत्यय होता है ।
वा. पुच्छ शब्द से उत्क्षेपण व व्यसन व पर्यसन अर्थ में णिङ् होता है ।
वा. भाण्ड से समाचयन (राशीकरण) अर्थ में णिङ् हो ।
वा. चीवर से अर्जन व परिधान अर्थ में णिङ् होता है ।
८८७. मुण्ड मिश्र श्लक्ष्ण लवण व्रतादि शब्दों से 'करोति' इस अर्थ में णिङ् होता है ।
वा. व्रत शब्द से भोजन व भोजन-निवृत्ति अर्थ में णिच् होता है ।
वा. वस्त्र से समाच्छादन अर्थ में णिच् होता है ।
वा. हलि कलि कृत आदि से ग्रहण अर्थ में णिच् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. सत्यार्थवेदानामापुग्वक्तव्यः । सत्यापयति । अर्थापयति । वेदापयति । पाशं विमुञ्चति विपाशयति । रूपं पश्यति रूपयति । वीणया उपगायति उपवीणयति । तूलेनानुकूष्णाति अनुतूलयति । तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः । श्लोकैरुपस्तौति-उपश्लोकयति । सेनयाभियाति-अभिषेणयति । लोमान्यनुमार्ष्टि-अनुलोमयति । त्वच संवरणे । पचाद्यच् । त्वचं गृह्णाति त्वचयति । वर्मणा संनह्यति संवर्मयति । वर्णं गृह्णाति-वर्णयति । चूर्णैः अवध्वंसते अवचूर्णयति।

॥ इति नामधातुप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमापूरणी

सत्यापयतीति—सत्यं करोति आचष्टे वेति अर्थे प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इति णिच्, सत्यार्थवेदानामिति आपुक्, धातुसंज्ञा, सुपो लुक्, आपुग्विधानसामर्थ्यान्न टिलोपः । सवर्णदीर्घः, सत्यापि इति, लट्, तिप्, शप्, णेर्गुणः, अय् । एवमेव वेदमाचष्टे वेदापयति, अर्थं करोति आचष्टे वा **अर्थापयति** इति । पाशं विमुञ्चतीत्यत्र प्रातिपदिकाद् इति णिच् । रूपं पश्यतीत्यर्थे णिच्, धातुसंज्ञा, सुपो लुक्, टिलोपः, लट् तिप्, शप्, गुणायौ । **उपवीणयति इति**—उप वीणा इत्यस्मात् प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे इति णिच्, टेराकारस्य लोपः । **अभिषेणयति इति**—अभिसेना इत्यस्मात् णिच्, टिलोपः, धातुत्वाल्लट्, तिप्, शप्, णेर्गुणः अय्, उपसर्गात् सुनोतीति षत्वम् । **त्वचयति इति**—त्वचं गृह्णातीत्यर्थे पचाद्यजन्तात् अकारान्त-त्वच-शब्दात् प्रातिपदिकादिति णिच्, टेर्लोपः, धातुत्वाल्लडादि । **संवर्मयति-** संवर्मन्-शब्दात् णिच्, टेरनो लोपः ।

॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां नामधातुप्रकरणम् ॥

हिन्दी

वा. सत्य अर्थ व वेद से णि परे रहते आपुक् होता है ।

॥ इति **नामधातुप्रकरणम्** ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ कण्ड्वादिप्रकरणम्

८९८. **कण्ड्वादिभ्यो यक्-३।१।२७।।** एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे । कण्डूञ् गात्रविधर्षणे । कण्डूयति, कण्डूयते इत्यादि ।

अथ आत्मनेपदप्रकरणम्

८९९. **कर्तरि कर्मव्यतिहारे-१।३।१४।।** क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तर्यात्मनेपदं स्यात् । व्यतिलुनीते = अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः ।

९००. **न गतिहिंसार्थेभ्यः-१।३।१५।।** व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ।

वा. **हरतेरप्रतिषेधः ।** सम्प्रहरन्ते राजानः ।

९०१. **इतरेतरान्योपपदाच्च-१।३।१६।।**

वा. **परस्परोपपदाच्चेति वक्तव्यम् ।।** इतरेतरस्याऽन्यस्य परस्परस्य वा व्यतिलुनन्ति ।

मध्यमनोरमा

हरतेरप्रतिषेध इति—हिंसार्थत्वान्न गतिहिंसार्थेभ्य इत्यात्मनेपदनिषेधस्यापि निषेधः । तथा च कर्तरि कर्मव्यतिहारे इत्यनेनात्मनेपदं भवत्येवेत्यर्थः । **सम्प्रहरन्ते राजान इति**—परस्परं हिंसयन्तीत्यर्थः । **इतरेतरान्योऽन्योपपदाच्च**—इतरेतराद्युपपदात् कर्मव्यतिहारे प्राप्तमात्मनेपदं नेत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नित्यं यगिति—धातोरेकाच इत्यतः धातोरित्यनुवर्तते । वा इति निवर्तते । तदाह कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् इति । **कण्डूयति कण्डूयते इति**—ञित्वादुभयपदम् । लटि तिपि, तङि वा यक् । **क्रियाविनिमये इति**—सूत्रे कर्मशब्दः क्रियापरः, व्यतिहारः विनिमयपरः । **व्यतिलुनीते इति**—वि अतिपूर्वात् लूञ्धातोरनेनात्मनेपदे कृते लटि तङ्, श्ना, यण्, अन्यस्य = शूद्रादेः योग्यं सस्यस्य लवनं ब्राह्मणः करोतीत्यर्थः । न गतीति-गत्यर्थेभ्यः हिंसार्थेभ्यश्च धातुभ्यः क्रियाविनिमयेऽर्थे द्योत्ये नात्मनेपदमित्यर्थः । तेन व्यतिगच्छन्तीत्यादौ कर्तरि कर्मेति प्राप्तमात्मनेपदं निषिध्यते । **सम्प्रहरन्ते इति**—न गतिहिंसार्थेभ्य इत्यस्य हरतेरिति निषेधः, कर्मव्यतिहारे एवार्थे । **व्युतिलुनन्ति इति**—अत्र इतरेतरोपपदात् लूधातोर्लटि कर्तरि कर्मव्यतिहारे इति प्राप्तमात्मनेपदमितरेतरान्योऽन्योपपदाच्चेति वार्य्यते । झिः, झोऽन्तः, श्ना, श्नसोरल्लोपः ।

हिन्दी

८९८. कण्ड्वादिगण पठित से यक् होता है ।८९९. क्रिया विनिमय अर्थ द्योत्य होने पर कर्त्ता अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

९००. गत्यर्थक व हिंसार्थक धातुओं से आत्मनेपद नहीं होता है ।

वा. हृधातु के आत्मनेपद का निषेध नहीं होता है, क्रिया विनिमय अर्थ द्योत्य होने पर ।

९०१. इतरेतर अन्योऽन्य व परस्पर उपपद होने पर कर्मव्यतिहारे अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९०२. नेर्विशः-२।३।१७।। निविशते ।

९०३. परिव्यवेभ्यः क्रियः-१।३।१८।। परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ।

९०४. विपराभ्यां जेः-१।३।१९।। विजयते । पराजयते ।

९०५. क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च-१।३।२१।। चादाङः । अनुक्रीडते । संक्रीडते । आक्रीडते ।

वा. समोऽकूजने । संक्रीडते । कूजने तु संक्रीडति चक्रम् ।

वा. आगमेः क्षमायाम् । ण्यन्तस्येदं ग्रहणम् । आगमयस्व तावत्, मा त्वरिष्ठाः इत्यर्थः ।

वा. शिक्षेर्जिज्ञासायाम् । धनुषि शिक्षते, धनुर्विषयज्ञाने शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः ।

९०६. वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः-१।३।३८।। वृत्तिरप्रतिबन्धः । ऋचि क्रमते बुद्धिः। सर्गः = उत्साहः । अध्ययनाय क्रमते । तायनं वृद्धिः । क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि. स्फीतानि भवन्तीत्यर्थः ।

मध्यमनोरमा

नेर्विशः—निपूर्वात् विश्धातोरात्मनेपदं भवतीति सूत्रार्थः । **संक्रीडति चक्रमिति**—रथचक्रं कूजतीत्यर्थः । **धनुषि शिक्षते इति**—अत्र धनुः पदेन धनुर्विद्या लक्ष्यते । **ऋचि क्रमते बुद्धिरिति**—ऋचिबुद्धिरप्रतिहता भवतीत्यर्थः । **अध्ययनाय क्रमते इति**—अध्ययनं कर्त्तुमुत्सहते इत्यर्थः । तायनं स्फीतता, तदेतदाह-स्फीतानि भवन्तीति । शास्त्राणां स्फीतता वृद्धिः । तथा च प्रवर्धते इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

परिव्यवेभ्यः—परि वि अव इत्येतेभ्यः परस्मात् क्रीञः आत्मनेपदं भवतीति सूत्रार्थः । स्वरितञित इति ञित्त्वादेवात्मनेपदं प्राप्तं, किमर्थं सूत्रमिति चेत्, अकर्त्रभिप्रायार्थमिति गृहाण । **क्रीडोऽनुसमिति**—अनु सम् परि आङ् इत्येतेभ्यः परस्मात् क्रीञः आत्मनेपदं भवति । अनुक्रीडते संक्रीडते इत्यादौ अनेनात्मनेपदम् । कर्मप्रवचनीयसंज्ञकात् अनोः परस्मात् क्रीञः अनोः कर्मप्रवचनीयान्नेति वार्तिकेन निषेधात् नात्मनेपदम् । तेन माणवकमनुक्रीडति इति रूपम् । **ण्यन्तस्येदमिति**—आगमेरिति वार्तिके ण्यन्तो गम्धातुरुपदिष्टः, भाष्ये तथैवोदाहरणात् । एवञ्च ण्यन्तात् आङ्पूर्वकगम्धातोरात्मनेपदं भवति क्षमायामर्थे ।

हिन्दी

९०२. नि पूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद होता है ।

९०३. परि वि अव उपसर्गों से परे क्रीडधातु से आत्मनेपद होता है ।

९०४. वि व परा उपसर्ग से परे जि धातु से आत्मनेपद होता है ।

९०५. अनु सम् परि व आङ् उपसर्ग से परे क्रीड् धातु से आत्मनेपद होता है ।

वा. सम्पूर्वक क्रीड् धातु से अकूजन अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

वा. क्षमा-सहन अर्थ में आङ् पूर्वक ण्यन्त गम्धातु से आत्मनेपद हो ।

वा. सन्नन्त शिक्ष से (शक्) जिज्ञासा अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

९०६. अप्रतिबन्ध उत्साह और वृद्धि अर्थ में क्रम् धातु से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९०७. आङ उद्गमने-१।३।४०।। आक्रमते सूर्यः ।

वा. ज्योतिरुद्गमने इति वाच्यम् । नेह, आक्रामति धूमो हर्म्यतलात् ।

९०८. वेः पादविहरणे-१।३।४१।। साधु विक्रमते वाजी ।

९०९. प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्-१।३।४२।। प्रारम्भेऽनयोस्तुल्यतार्थता । प्रक्रमते । उपक्रमते । समर्थाभ्यां किम् ? प्रक्रामति = गच्छतीत्यर्थः । उपक्रामति = आगच्छतीत्यर्थः ।

९१०. अनुपसर्गाद् वा-१।३।४३।। क्रामति, क्रमते ।

९११. अपह्नवे ज्ञः-१।३।४४।। शतमपजानीते = अपलपतीत्यर्थः ।

९१२. अकर्मकाच्च-१।३।५४।। सर्पिषो जानीते = सर्पिषोपायेन प्रवर्तते इत्यर्थः।

९१३. समवप्रविभ्यः स्थः-१।३।२२।। संतिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ।

वा. आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानाम् । शब्दं नित्यमातिष्ठते ।

मध्यमनोरमा

ज्योतिरुद्गमने इति—ज्योतिषां चन्द्रसूर्य्याग्न्यादीनामूर्द्ध्वगमने आङ्पूर्वात् क्रम्धातोरात्मनेपदमित्यर्थः । तेन आक्रामति धूम इत्यत्र नात्मनेपदम् । **शब्दमातिष्ठते इति**—नित्यत्वेन प्रतिजानीते इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

आक्रमते सूर्यः—आङ् उद्गमने इत्यात्मनेपदम् । उदयते इत्यर्थः । **पादविहरणे इति**—पादविहरणं पादविक्षेपः, तस्मिन्नर्थे आत्मनेपदम् । **समर्थाभ्यामिति**—समः अर्थः ययोः, तौ समर्थौ, शकन्ध्वादित्त्वात् पररूपम् । अनयोः 'प्रारम्भः' अर्थः तुल्य । तेन प्रारम्भकार्थाभ्यां प्रोपाभ्यां परतः क्रम्धातोरात्मनेपदमित्यर्थः । **प्रतिज्ञायामिति**—आङ्पूर्वकात् स्थाधातोरात्मनेपदं प्रतिज्ञायामर्थे । तेन शब्दं नित्यम् आतिष्ठते इत्यत्रात्मनेपदम् । स्थाधातोः शपि परतः पाघ्रेति तिष्ठादेशः ।

हिन्दी

९०७. आङ् से परे क्रम् धातु से उद्गमन अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

वा. प्रकाश के उद्गमन में आत्मनेपद हो, ऐसा कहना चाहिये ।

९०८. वि उपसर्ग से परे क्रम् धातु से पादविक्षेप अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

९०९. प्रारम्भार्थक प्र उप-पूर्वक क्रम् धातु से आत्मनेपद होता है ।

९१०. उपसर्गरहित क्रम् धातु से विकल्प से आत्मनेपद होता है ।

९११. अपलाप करने के अर्थ में ज्ञा से आत्मनेपद होता है ।

९१२. अकर्मक ज्ञा धातु से भी आत्मनेपद होता है ।

९१३. सम् अव प्र औ वि उपसर्ग से परे स्था धातु से आत्मनेपद होता है ।

वा. आङ्पूर्वक स्था से प्रतिज्ञा अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९१४. प्रकाशन-स्थेयाख्ययोश्च-१।३।२३।। गोपी कृष्णाय तिष्ठते । आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः । 'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः', कर्णादीन्निर्णेतृत्वेनाश्रयतीत्यर्थः ।

९१५. उदोऽनूर्ध्वकर्मणि-१।३।२४।। मुक्तावुत्तिष्ठते । अनूर्ध्वेति किम् ? पीठादुत्तिष्ठति ।

९१६. उपान्मन्त्रकरणे-१।३।२५।। आग्नेय्यामाग्नीध्रमुपतिष्ठते । मन्त्रकरणे किम् ? भर्तारमुपतिष्ठति यौवनेन ।

वा. उपाद्देवपूजासङ्गतिकरण-मित्रकरण-पथिष्विति वाच्यम् । आदित्यमुपतिष्ठते। गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते । रथिकानुपतिष्ठते, मित्रीकरोतीत्यर्थः । पन्थाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते, प्राप्नोतीत्यर्थः ।

वा. वा लिप्सायाम् । भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठति, उपतिष्ठते वा ।

मध्यमनोरमा

स्थेयाख्ययोरिति—स्थेयो विवादपदनिर्णेता, तस्य आख्या, कथनं, तत्रात्मनेपदम् । तेनात्रात्मनेपदम् । स्थेयो विवादस्थानं तस्य निर्णेतरि, पुरोहित इति मेदिनी । **मुक्तावुत्तिष्ठते इति**-मुक्त्यनुकूलश्रवणादिषु नियमेन स्थित इत्यर्थः । **उपान्मन्त्रकरणे**—मन्त्रः करणं यत्र तन्मन्त्रकरणं स्तोत्रं, तत्र वर्तमानादुपपूर्वात्तिष्ठतेरात्मनेपदम् । **आग्नेय्येति**—अग्निदेवता ऋक् आग्नेयी, तया आग्नीध्रम् अग्निविशेषं स्तौतीत्यर्थः । **भर्तारमुपतिष्ठतीति**—अत्र न मन्त्रकरणं, किन्तु यौवनं, तेनात्मनेपदं नेत्यर्थः । **आदित्यमुपतिष्ठते इति**—आदित्यस्य सूर्यस्य पूजाऽत्र प्रतीयते । पूजा च स्तुतिरूपैव । तथा चादित्यं स्मर्तुमुन्मुखो भवतीत्यर्थः । **गङ्गेति**-गङ्गा यमुनया सह सङ्गता भवतीत्यर्थः । **वा लिप्सायामिति**—लब्धुमिच्छा लिप्सा । **प्रभुमुपतिष्ठतीत्यादि**—लब्धुमिच्छया प्रभुमुपगच्छतीत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अनूर्ध्वेति—सूत्रे अनूर्ध्व इत्यस्याऽभावे पीठादुत्तिष्ठतीत्यत्रापि आत्मनेपदं स्यात्, यतो हि पीठादुत्थानमूर्ध्वकर्म एव । **उपादिति**—केचित् अमन्त्रकरणकत्वार्थमेतद् । तेन श्लोकैरुपतिष्ठते इत्यत्रात्मनेपदम् ।

हिन्दी

९१४. स्वाभिप्राय के प्रकाशन एवं विवादस्थान के निर्णेता अर्थ होने पर स्था धातु से आत्मनेपद होता है ।

९१५. उत् पूर्वक स्था धातु से ऊर्ध्व कर्म से (ऊपर उठना) भिन्न अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

९१६. उपपूर्वक स्था धातु से आत्मनेपद होता है । मन्त्रकरण अर्थ में ।

वा. उपपूर्वक स्था से देवपूजा सङ्गतिकरण मित्रकरण व मार्ग अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

वा. लिप्सा अर्थ में उपपूर्वक स्था-धातु से विकल्प से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९१७. उद्विभ्यां तपः-१।३।२७।। अकर्मकादित्येव । उत्तपते । वितपते=दीप्यते इत्यर्थः ।

वा. स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् । उत्तपते वितपते पाणिम् । नेह सुवर्णमुत्तपति।

९१८. आङो यमहनः-१।३।२८।। आयच्छते । आहते । अकर्मकात् स्वाङ्गकर्मकादित्येव । नेह परस्य शिरआहन्ति ।

९१९. आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्-२।४।४४।। हनो वधादेशो वा लुङि । आवधिष्ट । आवधिषाताम् । आवधिषत ।

९२०. हनः सिच्-१।२।१४।। कित् । अनुनासिकलोपः । आहत । आहसाताम् । आहसत ।

९२१. यमो गन्धने-१।२।२५।। सिच् कित् । गन्धनं सूचनं, परदोषाविष्करणम् । उदायत । गन्धने किम्-उदायंस्त पादम्, आकृष्टवानित्यर्थः।

९२२. समो गम्यृच्छिभ्याम्-१।३।२९।। अकर्मकाभ्यामित्येव । सङ्गच्छते ।

मध्यमनोरमा

आहते इति—अनुदात्तोपदेशेति अनुनासिकलोपः । **आवधिष्टेति**—अत्र वधधातोरदन्तत्वादुपदेशे अनेकाच्त्वम्, अतो नेण्निषेधः । **आहत इति**—सिचः कित्त्वादनुदात्तोपदेशेति नकारलोपः, ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्वाङ्गकर्मकादिति—स्वम् अङ्गं स्वाङ्गमिति विग्रहः । उद्विभ्यां परस्मात् अकर्मकात् स्वाङ्गकर्मकाच्च तपः आत्मनेपदमित्यर्थः । **उत्तपते** पाणिमिति स्वाङ्गपाणिकर्मकः तप्धातुः, तस्मात् लस्य आत्मनेपदं तः, शप्, टेरेत्वम् । **सुवर्णमुत्तपतीति**—नात्र सुवर्णं स्वाङ्गं । तस्मान्नात्मनेपदम् । **परस्य शिर आहन्ति**—अत्र शिर इति न स्वाङ्गमपि तु पराङ्गम्, अतः आपूर्वकहन्धातोः आङो यमहन इति नात्मनेपदम् । **आवधिष्टेति**—आपूर्वकहन् धातुः, लुङ्, आङो यमहन इत्यात्मनेपदम् । आत्मनेपदेष्वन्येति वधादेशः, सिच्, इट्, अतो लोपः, अट्, दीर्घः, षत्वम्, ष्टुत्वम् । **उदायतेति**—उद् आङ्पूर्वकात् यम्धातोर्लुङ्, आङो यम हनः इति आत्मनेपदं, तः, सिच्, यमो गन्धने इति सिचः कित्त्वम्, अनुदात्तोपदेश इति मलोपः, ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः ।

हिन्दी

९१७. अकर्मक उद् और वि-पूर्वक तप् धातु से आत्मनेपद होता है ।

वा. अकर्मक और स्वाङ्गकर्मक तप् से आत्मनेपद कहना चाहिये ।

९१८. आङ्पूर्वक यम् और हन् धातु से आत्मनेपद होता है ।

९१९. हन् को वध आदेश होता है लुङ्- आत्मनेपद में, विकल्प से ।

९२०. हन् से परे सिच् कित् होता है ।

९२१. गन्धन अर्थ में यम् से परे सिच् कित् होता है ।

९२२. सम्पूर्वक अकर्मक गम् और ऋच्छ् धातु से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९२३. वा गमः-१।२।१३।। गमः परौ झलादी लिङ्सिचौ वा कितौ स्तः । सङ्सीष्ट । सङ्गंसीष्ट । समगत । समगंस्त । समृच्छते । अकर्मकाभ्यां किम्-ग्रामं संगच्छति ।

वा. विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् । वेत्तेरेव ग्रहणम् । संविते । संविदाते ।

९२४. वेत्तेर्विभाषा-७।१।७।। वेत्तेः परस्य झादेशस्यातो रुडागमो वा । संविद्रते, संविदते । संपृच्छते । संस्वरते ।

वा. अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । मा समृत । मा समृषाताम् । अथास्मिन्नकर्मकाधिकारे हनिगम्यादीनां कथमकर्मकतेति चेत्, शृणु ।

धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात् ।
प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ।।

वहति भारम्, । नदी वहति = स्यन्दते इत्यर्थः । जीवति । नृत्यति । प्रसिद्धेर्यथा-मेघो वर्षति । कर्मणोऽविवक्षातो यथा-"हितान्न यः संभृणुते स किं प्रभुः" ।

मध्यमनोरमा

कित्त्वपक्षे सङ्सीष्टेति—अनुनासिकलोपः । तदभावे सङ्गंसीष्टेति । **समगतेति**—लुङि सिच्, कित्त्वपक्षे अनुनासिकलोपे सिचो लोपः । **संविद्रते इति**—आत्मनेपदेष्वनत इति झस्यात्, तस्य रुडागमः । **संस्वरते इति**—सम्पूर्वस्य स्वृधातोरिदं रूपम् । **मा समृतेति**—सम्पूर्वकात् ऋधातोर्लुङ्, आत्मनेपदं, च्लेः सिच्, उश्चेति सिचः कित्त्वम्, अतो न गुणः । ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः, न माङ्योगे इत्यडागमाभावः ! **धातोरर्थान्तरे वृत्तेः** क्रियायाः अकर्मकतेति । **एतदुदाहरति**—वहति भारम्, अत्र प्रापणार्थस्य वह्धातोर्यदा स्यन्दनार्थत्वं तदा अकर्मकत्वं भवति । नदी वहति इति । एवं धात्वर्थेन कर्मणः संग्रहादकर्मकत्वम् । यथा जीवतीति, प्राणान् धारयतीत्यर्थः । अत्र प्राणान् इति कर्म धात्वर्थान्तर्भूतम् इत्यकर्मकत्वम् । **नृत्यतीति**—गात्रविक्षेपं करोतीत्यर्थः । अत्र गात्रविक्षेपमिति कर्म धात्वर्थान्तर्भूतमित्यस्याकर्मकत्वम् । **कर्मणः प्रसिद्धेरकर्मकत्वम्-क्रियालभ्येऽर्थे यथा-मेघो वर्षतीति**—अत्र जलमिति कर्म प्रसिद्धिवशाद् यदास्य नोपात्तं तदाकर्मकत्वं बोध्यम् । कर्मणोऽविवक्षातोऽकर्मकत्वम् । **यथा**—हितात् पुरुषात् यः संभृणुते इत्यत्र वाक्यरूपस्य कर्मणो विवक्षाभावेन अकर्मकत्त्वम्, तेनात्मनेपदम्।

मध्यमनोरमापूरणी

विदिप्रच्छीति—सम्पूर्वकेभ्यः विद् - प्रच्छादिभ्यः आत्मनेपदम् । **वेत्तेरेवेति**—आदादिकस्यैवेत्यर्थः । **वेत्तेरेति**—झोऽन्त इत्यतः झ इत्यनुवर्तते, अदभ्यस्तादिति सूत्रात् अत् इत्यनुवृत्तं षष्ठ्या विपरिणम्यते । शीङो रुट् इत्यतो रुट् इति चानुवर्तते । **तदाह**—वेत्तेः परस्य झादेशस्य अतो रुडागमो वेति ।

हिन्दी

९२३. गम् से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं, विकल्प से ।

वा. सम्पूर्वक विद् प्रच्छ, और स्वृ-धातु से आत्मनेपद होता है ।

९२४. विद्धातु से परे झ् के स्थान में आदेश अत् को रुट्-आगम हो विकल्प से ।

वा. सम्पूर्वक ऋ श्रु और दृश् से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९२५. संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नयः-१।३।३६।। शास्त्रे नयते । दण्डमुन्नयते, उत्क्षिपतीत्यर्थः । माणवकमुपनयते । तत्त्वं नयते । कर्मकरानुपनयते । करं विनयते, राज्ञे देयं भागं परिशोधयतीत्यर्थः । शतं विनयते, धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः ।

वा. उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वेति वाच्यम् । बन्धान् निरस्यति, निरस्यते । समूहति, समूहते ।

९२६. उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः-७।४।२३।। यादौ किति । ब्रह्म समुह्यात् । अग्निं समुह्य ।

९२७. निसमुपविभ्यो ह्वः-१।३।३०।। निह्वयते ।

९२८. स्पर्धायामाङः-१।३।३१।। कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । स्पर्धायां किम् ? पुत्रमाह्वयति ।

९२९. उदश्चरः सकर्मकात्-१।३।५३।। धर्ममुच्चरते, उल्लङ्घ्य गच्छतीत्यर्थः ।

९३०. समस्तृतीयायुक्तात्-१।३।५४।। रथेन संचरते ।

मध्यमनोरमा

ब्रह्म समुह्यात् इति—ऊह्धातोराशीर्लिङ् । **अग्निं समुह्येति**—समासेऽनञ्पूर्वको ल्यप् ।

मध्यमनोरमापूरणी

संमाननेति—सम्माननादिष्वर्थेषु नियः = णीञ् प्रापणे इत्यस्मात् धातोरात्मनेपदं भवति । परगामिन्यपि फलेऽनेन आत्मनेपदं विधीयते । **शास्त्रे नयते इति**—नीधातोर्लट्, संमाननेति आत्मनेपदं, तः, शप्, गुणः, अयादेशः, टेरेत्वम् । अत्र शास्त्रस्थं सिद्धान्तं शिष्येभ्यः प्रापयतीत्यर्थः नयते इत्यस्यास्ति । संमाननमर्थः । **माणवकमुपनयते इति**—आचार्यकरणेऽर्थे उपपूर्वकात् नियः आत्मनेपदम् । **कर्मकरानुपनयते**—भृतिदानेन स्वसमीपं प्रापयतीत्यर्थः, तत्रात्मनेपदम् । **उपसर्गादिति**—अस्यतेः ऊहश्चात्मनेपदं विकल्पेन । **निह्वयते इति**—निपूर्वक ह्वेञ्धातोर्लट्, निसमुपविभ्यो ह्वः इत्यात्मनेपदं, तः, शप्, अय्, एत्वम् । **आह्वयते इति**—आङ्पूर्वो ह्वेञ्-धातुः । **पुत्रमाह्वयतीति**—स्पर्धाया अभावे नात्मनेपदम् । **समस्तृतीयेति**—संपूर्वकात् चर्धातोः तृतीयान्तयुक्तात् आत्मनेपदमित्यर्थः ।

हिन्दी

९२५. संमानन उत्सञ्जन आचार्यकरण ज्ञान भृति विगणन और व्यय इन अर्थों में नी धातु से आत्मनेपद होता है ।

वा. उपसर्ग से परे अस् और ऊह् धातु से आत्मनेपद हो, विकल्प से ।

९२६. उपसर्ग से परे ऊह् धातु को ह्रस्व हो, यादि कित् परे रहते ।

९२७. नि सम् उप और वि उपसर्गपूर्वक ह्वेञ् से आत्मनेपद होता है ।

९२८. स्पर्धा अर्थ में आङ्पूर्वक ह्वेञ् धातु से **आत्मने पद होता है** ।

९२९. सकर्मक उद्पूर्वक चर्धातु से आत्मनेपद होता है ।

९३०. तृतीयान्त-युक्त सम्पूर्वक चर्धातु से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९३१. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे-१।३।५५।। समो दाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या संयच्छते कामी ।

९३२. उपाद्यमः स्वकरणे-१।३।५६।। स्वकरणं स्वीकारः । भार्यामुपयच्छते ।

९३३. विभाषोपयमने-१।२।२६।। यमः सिच् किद्वा विवाहेऽर्थे । रामः सीतामुपायत उपायंस्त वा । उदवोढेत्यर्थः ।

९३४. ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः-१।३।५७।। सन्नन्तानामेषां प्राग्वत् । धर्मं जिज्ञासते । शुश्रूषते । सुस्मूर्षते । दिदृक्षते ।

९३५. नाऽनोर्ज्ञः-१।३।५८।। पुत्रमनुजिज्ञासति ।

९३६. प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु-१।३।६४।। प्रयुङ्क्ते । उपयुङ्क्ते । वा. स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वाच्यम् । उद्युङ्क्ते । नियुङ्क्ते । अयज्ञपात्रेषु किम्-द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुनक्ति ।

मध्यमनोरमा

दास्या संयच्छते इति—अशिष्टव्यवहारे इति चतुर्थ्यर्थे तृतीया । **सीतामुपायतेति**—सिचः कित्त्वपक्षे अनुदात्तोपदेशेति अनुनासिकलोपे ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लोपः । **कित्त्वाभावे उपायंस्तेति**—नश्चापदान्तस्येति मस्यानुस्वारः । **स्वराद्यन्तेति**—स्वराद्याः स्वरान्ताश्च ये उपसर्गास्तेभ्यः परस्मात् युजेरात्मनेपदमित्यर्थः । तत्र स्वरादयः उप उत् प्रभृतयः, स्वरान्ताः प्रति प्रभृतयः । **तत्र स्वरादिमुदाहरति**—उद्युङ्क्ते इति । **स्वरान्तमुदाहरति**—नियुङ्क्ते इति ।

मध्यमनोरमापूरणी

तेन रथेन संचरते इति आत्मनेपदम् । **संयच्छते इति**—दाणश्चेति आत्मनेपदं सम्पूर्वकात् दाधातोः । लटि तः, शप्, पाघ्रेति यच्छादेशः । **सीतामुपायतेति**—लुङ् आत्मनेपदम् । **प्राग्वदिति**-आत्मनेपदमित्यर्थः । **शुश्रूषते इति**—सन्नन्तशुश्रूषधातोरात्मनेपदमित्यर्थः । **नाऽनोर्ज्ञः**—अनुपूर्वकात् सन्नन्ताद् ज्ञाधातोरात्मनेपदं नेत्यर्थः । **प्रोपाभ्यामिति**—अयज्ञपात्र-विषयकाद् प्रोपपूर्वकाद् युजेरात्मनेपदम् । **प्रयुङ्क्ते इति**—लट्, तः, श्नम्, अल्लोपः, अनुस्वारपरसवर्णौ ।

हिन्दी

९३१. तृतीयान्त युक्त सम्पूर्वक दाण् से आत्मनेपद होता है, यदि चतुर्थी के अर्थ में तृतीया हो तो ।

९३२. उपपूर्वक यम् धातु से स्वीकार करने के अर्थ में आत्मनेपद होता है ।

९३३. विवाह अर्थ में उपपूर्वक यम् धातु से परे सिच् कित् होता है, विकल्प से ।

९३४. सन्नन्त ज्ञा श्रु स्मृ और दृश् से आत्मनेपद होता है ।

९३५. अनुपूर्वक सन्नन्त ज्ञा धातु से आत्मनेपद नहीं होता है ।

वा. स्वरादि और स्वरान्त उपसर्ग के पूर्व में रहने पर युज् से आत्मनेपद होता है, यह कहना चाहिये ।

९३६. यज्ञपात्र-भिन्न विषय में प्र व उप पूर्वक युज् से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९३७. समः क्ष्णुवः-१।३।६५।। संक्ष्णुते शस्त्रम् ।

९३८. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः-१।३।३२।। गन्धनं हिंसा । उत्कुरुते सूचयतीत्यर्थः । अवक्षेपणं-भर्त्सनम् । श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते भर्त्सयते इत्यर्थः । हरिमुपकुरुते-सेवते । परदारान् प्रकुरुते, तेषु सहसा प्रवर्तते । एधोदकस्योपस्कुरुते, गुणमाधते । कथाः प्रकुरुते, प्रकथयतीत्यर्थः । शतं प्रकुरुते, धर्मार्थं विनियुङ्क्ते । एषु किम्-कटं करोति ।

।। इत्यात्मनेपद प्रकरणम् ।।

मध्यमनोरमा

उत्कुरुते—सूचयतीत्यर्थः । सूचनं हि प्राणवियोगा नुकूलत्वाद्धिंसैवेति भवत्युदाहरणम् ।

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ।

मध्यमनोरमापूरणी

गन्धनमिति—गन्ध अर्दने, अर्द हिंसायामित्युक्तत्वाद् गन्धनं हिंसा । **साहसिक्येति**—सहसा वर्तते इत्यर्थे ओजस्सहोऽम्भसेति ठक्, ठस्येकः । तस्य साहसिकस्य कर्म साहसिक्यम् अविचार्यकरणम् । इत्यात्मनेपदम् ।

हिन्दी

९३७. सम्पूर्वक क्ष्णु धातु से आत्मनेपद होता है ।

९३८. हिंसा भर्त्सन सेवन साहस प्रतियत्न = गुणाधान, और उपयोग अर्थ में कृञ् धातु से आत्मनेपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ परस्मैपदप्रक्रिया

शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् । श्वि-श्वयति ।

९३९. विभाषा श्वेः-६।१।३०॥ सम्प्रसारणं वा लिटि यङि च । शुशाव । शुशुवतुः ।

वा. श्वयतेर्लिट्यभ्यासलक्षणप्रतिषेधः । शिश्वाय । शिश्वियतुः । शिश्वियुः । शूयात् । जॄस्तन्भु इत्यङ् वा ।

९४०. श्वयतेरः-७।४।१८॥ अङि । अश्वत् । अश्वन् । विभाषेति चङ् । अशिश्वियत् । अश्वयीत् ।

९४१. अनुपराभ्यां कृञः-१।३।७९॥ कर्तृगेऽपि फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ।

मध्यमनोरमा

श्वयतीति—टुओश्वि गतिवृद्ध्योः । अस्यात्मनेपदनिमित्तानामनुदात्तङित्त्वादीनामभावाच्छेषत्वम् । कर्तरि शप् । पूर्वं भ्वादौ परस्मैपदप्रक्रियायां वा लिटि प्रतिषेधोऽस्य विशेषस्तदपि प्राप्नोति । **शुशावेति**—विभाषा श्वेरिति सम्प्रसारणे शुशब्दस्य द्वित्वम्, अनभ्यासस्य वृद्धिः । **शुशुवतुरिति**—शु शब्दस्य द्वित्वम्, अनभ्यासोकारस्य उवङ् । श्विधातुः भ्वादिगणेऽस्ति । अतः किति लिटि वचिस्वपीति नित्ये सम्प्रसारणे प्राप्तेऽनेन विकल्पः । अकिति णलादौ तु पूर्वं सम्प्रसारणप्राप्तिरेव नास्ति, अनेन तु द्वित्वात् पूर्वमेव सम्प्रसारणे तदन्तरं द्वित्वम् । तदन्तरं लिट्यभ्यासेत्यस्य प्राप्तिरेव नास्ति । अनेन सम्प्रसारणाभावपक्षे श्वि इत्यस्यैव द्वित्वे लिट्यभ्यासस्येत्यभ्याससम्प्रसारणं प्राप्नोति, तद्वारणाय वार्तिकं श्वयतेरिति । **लिट्यभ्यासलक्षणस्येति**—लिट्यभ्यासस्योभयेषामिति सम्प्रसारणस्येत्यर्थः । **शूयादिति**—आशीर्लिङि वचिस्वपीति सम्प्रसारणम्, अकृत्सार्वधातुकेति दीर्घः । **अश्वदिति**—श्विधातोश्च्लेरङ्, श्वीति इकारस्य अकारः, अङोऽकारेण सह पररूपम् । **अश्वन्**—इत्यत्रापि च्लेरङ्, इकारस्याकारः, अतो गुणे । सिपि इकारस्य इतश्चेति लोपे विसर्गः । **अशिश्वियदिति**—पक्षे चङीति श्विशब्दस्य द्वित्वम्, हलादिशेषः, अचिश्नुिति इयङ् । **अङश्चङश्चाभावे अश्वयीदिति**—च्लेः सिच्, इट्, अस्तिसिच इतीट्, इट ईटीति सलोपः । सिचि वृद्धिरिति प्राप्ताया वृद्धेः ह्म्यन्तेति निषेधः । **कर्तृगे फले इति**—स्वरितञित इत्यात्मनेपदं बाधित्वा परस्मैपदमेव भवतीत्यर्थः । **गन्धनादौ**—गन्धनावक्षेपणेति प्राप्तमात्मनेपदमनुपराभ्यां न भवति इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अनुकरोतीति—स्वरितञित इत्यात्मनेपदं प्रबाध्य अनुपराभ्यामिति परस्मैपदम्, लट्, तिप्, उः, ऋकारस्य उकारस्य च गुणः ।

हिन्दी

९३९. श्विधातु को सम्प्रसारण होता है लिट् और यङ् परे विकल्प से ।

वा. श्वि धातु को लिट् परे अभ्यास को होने वाला सम्प्रसारण नहीं होता है ।

९४०. श्वि धातु के इ को 'अ' होता है, अङ् परे रहते ।

९४१. अनु और परा उपसर्ग से परे कृ धातु से कर्तृगामी क्रियाफल रहने पर भी और गन्धनादि अर्थ में परस्मैपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९४२. **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः-१।३।८०॥ क्षिप प्रेरणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ।**

९४३. **प्राद्वहः-१।३।८१॥ प्रवहति ।**

९४४. **परेर्मृषः-१।३।८२॥ परिमृष्यति ।**

९४५. **व्याङ्परिभ्यो रमः-१।३।८३॥ विरमति । आरमति ।**

९४६. **उपाच्च-१।३।८४॥ यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् ।**

९४७. **विभाषाऽकर्मकात्-१।३।८५॥ उपाद् रमेः परस्मैपदं स्यात् । उपरमति, उपरमते । निवर्तते इत्यर्थः ।**

९४८. **बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः-१।३।८६॥ एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं स्यात् । णिचश्चेत्यस्यापवादः । बोधयति पदम् । योधयति काष्ठानि । नाशयति दुःखम् । जनयति सुखम् । प्रावयति, प्रापयतीत्यर्थः । द्रावयति । स्रावयति ।**

९४९. **क्रीङ्जीनां णौ-६।१।४८॥ आत्वं स्यात् । अध्यापयति ।**

मध्यमनोरमा

स्वरितेदिति—स्वरितेत्त्वात् कर्तृगे फले प्राप्तमात्मनेपदम् एभ्यः उपसर्गेभ्यः परात् क्षिपो न भवतीत्यर्थः । **अन्तर्भावितण्यर्थ इति**—सकर्मकत्वात् ण्यर्थान्तर्भावः । तेन उपरमयति निवर्तयतीत्यर्थः । निवर्तते इत्यर्थे त्वकर्मकत्वं, तत्र विभाषाकर्मकादिति विकल्पान्वेषणम् । **अध्यापयतीति**—अधिपूर्वक इङ्धातुः, क्रीङ्जीनामिति आत्वम् । अर्तिह्रीति पुगागमः । अधीत्यस्य यण् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अभिक्षिपतीति—स्वरितञित इति कर्तृगामिनि क्रियाफले प्राप्तमात्मनेपदमनेन बाध्यते । **परिमृष्यतीति**—परेर्मृष इति परस्मैपदम्, दैवादिकः श्यन् । **विरमतीति**—विरतो भवतीत्यर्थः। अत्र अनुदात्तङित इति प्राप्तमात्मनेपदं व्याङ्परिभ्य इति निषिध्यते । **बोधयतीति**— विकासयतीत्यर्थः, ण्यन्तात् बोधि इत्यस्माल्लट्, बुधयुधेति परस्मैपदम्, तिप्, शप्, गुणायादेशौ । द्रु इत्यस्मात् णिचि वृद्धौ आवादेशे लटि परस्मैपदमनेन क्रियते । **अध्यापयतीति**—अध्यापि इत्यतो लटि परस्मैपदं, तिप्, शप्, गुणायौ ।

हिन्दी

९४२. अभि प्रति और अति उपसर्ग से परे क्षिप् से परस्मैपद होता है ।

८४३. प्रपूर्वक वह्धातु से परस्मैपद होता है ।

८४४. परि से परे मृष् धातु से परस्मैपद होता है ।

८४५. वि आङ् और परि उपसर्ग से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है ।

९४६. उप से परे रम् धातु से परस्मैपद होता है ।

९४७. अकर्मक उप पूर्वक रम् धातु से विकल्प से परस्मैपद होता है ।

९४८. ण्यन्त बुध् युध् नश् जन ईङ् प्रु द्रु और स्रु धातुओं से परस्मैपद होता है ।

९४९. क्री इङ् और जि धातु को णिच् परे रहते आत्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९५०. णौ च संश्चङोः-२।४।५१।। सन्परे चङ्परे च णौ इङो गाङ् वा । अध्यजीगपत् । अध्यापिपत् । क्रापयति । जापयति ।

९५१. निगरणचलनार्थेभ्यश्च-१।३।८७।। निगारयति । चलयति ।

वा. अदेः प्रतिषेधः । आदयते देवदत्तेन । गतिबुद्धीति कर्मत्वम् आदिखाद्योर्नेति प्रतिषिद्धम् ।

९५२. अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्-१।३।८८।। ण्यन्तात् परस्मैपदम् । रोते कृष्णस्तं गोपी शाययति ।

मध्यमनोरमा

अध्यजीगपदिति—इङो गाङ्, अर्ति इति पुक्, गापि इत्यस्मात् तङ्, च्लेश्चङ्, चङीति गाप् इत्यस्य द्वित्वं, ह्रस्वः इति ह्रस्वः, णौ चङीति उपधाह्रस्वः, णिलोपः । **क्रापयतीति**—क्रीधातोर्णिच्, क्रीङ्जीनामीति आत्वम्, अर्तिह्रीति पुक् । **जापयतीति**—जीत्यस्माण्णिच्, क्रीङ्-जीनामित्यात्वं, पुक् । **निगरणचलनार्थेभ्यश्च**—णेरित्येव । निगरणं भक्षणम् । **निगारयतीति**-गॄधातोर्णिच्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **कम्पने चलिरिति**—चलयतीति, मितां ह्रस्वः इत्युपधा-ह्रस्वः । **आदयते इति**—निगरणार्थत्वात् परस्मैपदं प्राप्तं तस्य प्रतिषेधः, ततश्च णिचश्चेति कर्मगे फले आत्मनेपदं भवति । **आदिखाद्योर्नेति**—अण्यन्तावस्थायां कर्तुर्देवदत्तस्य ण्यन्ता-वस्थायां गतिबुद्धीति प्राप्तायाः कर्मसंज्ञाया निषेधः । **शाययतीति**—शीङ्धातुरण्यन्तावस्थायाम-कर्मकः, तस्य ण्यन्तावस्थायां चित्तवत्कर्मकत्वात् परस्मैपदम् । चित्तवती प्रकृते गोपी ।

मध्यमनोरमापूरणी

णौ चेति—इङश्चेति इङ्, गाङ् लिटीति गाङ्, विभाषा लुङ्लृङोरिति विभाषा इति चानुवर्तन्ते। **अध्यापिपत्**—गाङादेशाभावे अध्यापि अत् इति जाते द्वित्वादौ णेर्लोपः । **निगरणचलनार्थे-भ्यश्चेति**—निगरणं भक्षणम्, चलनं कम्पनमिति गृह्यते । तदर्थकेभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं भवतीति सूत्रार्थः । तेन निगारयतीत्यत्र णिचश्चेति प्राप्तमात्मनेपदं न भवति ।

हिन्दी

९५०. सन्परक व चङ्परक णि के पर में रहने पर इङ् का गाङ् आदेश होता है विकल्प से ।

९५१. ण्यन्त निगरण अर्थवाले व चलनार्थक धातुओं से परस्मैपद होता है ।

वा. निगरणार्थक अद्धातु से (ण्यन्त से) परस्मैपद नहीं होता है ।

९५२. अण्यन्त अवस्था में अकर्मक रहे धातुओं से तथा चित्तवान् कर्तृकधातुओं से ण्यन्तावस्था में परस्मैपद होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९५३. न पा-दम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः-१।३।८९।। एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न । पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्तयते । वादयते । वासयते ।

वा. घेट उपसंख्यानम् । धापयते । अकर्त्रभिप्राये शेषादिति परस्मैपदं स्यादेव । वत्सान् पाययति पयः ।

।। इति परस्मैपदप्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमा

पाययते इति—शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् इति युक् । **दमयते इति**—जनीजॄषक्नसुरञ्जोऽमन्ताश्चेति मित्वान् मितां ह्रस्वः । **आयामयते इति**—यमोऽपरिवेषणे इति भोजनादन्यत्र मितो निषेधादमन्तत्वेऽपि न ह्रस्वः । **धापयते इति**—आदेच. इत्यात्वम्, अर्तिह्रीति पुक् । **शेषादिति परस्मैपदं स्यादेवेति**—न पादम्याङित्यनेन पाधातोर्निगरणार्थत्वात् निगरणचलनार्थेभ्यश्चेति कर्मगामिन्यपि क्रियाफले प्राप्तं परस्मैपदं निषिध्यते । दमादीनान्तु णावकर्मकादिति कर्मगामिनि क्रियाफले प्राप्तं परस्मैपदं निषिध्यते । तस्मादकर्मगे फले शेषादिति परस्मैपदं भवत्येव । अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधोवेति न्यायेन [1]शेषादिति प्राप्तस्य परस्मैपदस्य निषेधादिति भावः ।

।। इति परस्मैपदव्यवस्था ।।

मध्यमनोरमापूरणी

न पादम्याङिति—पा दमि आङ्यम् आङ्यस् परिमुह् रुचि नृति वद् वस् इत्येतेषां समाहारद्वन्द्वः। पञ्चम्या एकवचने रूपम् । एभ्यो धातुभ्यः ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न भवति । निगरणार्थत्वात् पाधातोः चलनार्थत्वाच्च नृत्धातोः प्राप्तं परस्मैपदं निषिध्यते । अन्येभ्यः चित्तवत्कर्तृकेभ्योऽकर्मकेभ्यः अणावकर्मकादिति प्राप्तं परस्मैपदमनेन निषिध्यते । तेन पाययते दमयते इत्यादौ आत्मनेपदमेव । **पाययते इति**—शाच्छासाह्वाव्यावेपां युगिति युक् पुकोऽपवादः। **दमयते इति**—णिचि उपधावृद्धौ जनीजॄषक्नसु इति मित्त्वाद् ह्रस्वः । **आयामयते इति**—आङ्यम् इत्यस्मात् णिचि उपधावृद्धौ यमोऽपरिवेषणे इति मित्त्वनिषेधान्न ह्रस्वः । लटि अणाविति प्राप्तं परस्मैपदमनेन निषिध्यते ।

।। इति परस्मैपदप्रक्रिया ।।

हिन्दी

९५३. ण्यन्त पा दम आङ्पूर्वक यम् आङ्यस् परिमुह् रुच् नृत् वद् व वस् धातुओं से परगामी क्रियाफल होने पर भी परस्मैपद नहीं होता है ।

वा. ण्यन्त घेट् धातु से भी परस्मैपद नहीं होता है ।

टिप्पणीः-निगरणचलनार्थेभ्यश्च अणावकर्मकादिति प्राप्तस्यैव परस्मैपदस्य निषेधादिति पाठः समीचीनः । मध्यमनोरमापाठोऽसमीचीनोऽस्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ भावकर्मप्रक्रिया

९५४. भावकर्मणोः-१।३।१३॥ लस्य तङानौ स्तः ।

९५५. सार्वधातुके यक्-३।१।६७॥ भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके धातोर्यक् स्यात् । भावः क्रिया । सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमः पुरुषः । तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादिकम्, किन्तु एकवचनमेवोत्सर्गतः । त्वया मया अन्यैश्च भूयते । बभूवे ।

मध्यमनोरमा

अनूद्यते इति—क्रियाधातोरेवार्थः, लकारेण द्योत्यते इत्यर्थः । **सामानाधिकरण्याभावादिति**—कर्तरि कर्मणि च यदा लकारस्तदा युष्मदस्मदोः कर्तृत्वेन तिङ्वाच्यकारकवाचिरूपं सामानाधिकरण्यं सम्भवति तदा त्वं पचसि, अहं पचामि, त्वं दृश्यसे अहं दृश्ये इत्यादौ कर्मणि युष्मदस्मदोः लकारस्य च सामानाधिकरण्यमिति । त्वयाभूयते इति भावार्थक लकारे तु लकारेण स्वस्याभिधानात् युष्मदस्मदर्थस्यानभिधानान्न सामानाधिकरण्यमिति भावः । **प्रथमपुरुष इति**—प्रथमपुरुषस्य मध्यमोत्तमयोरविषये सामान्यतो विधानात् इत्यर्थः । **अद्रव्यरूपत्वेनेति**—लिङ्गसंख्यान्वितं हि द्रव्यम् । तिङन्तधातुना क्रियाऽभिधीयते, तस्यां लिङ्गसंख्यान्वयो नास्ति। पचतीत्यादौ एककर्तृका पचिक्रिया बुध्यते । न तु क्रियायां लिङ्गसंख्यान्वयः । पाक इत्यादौ कृदभिहितक्रियायां तु लिङ्गसंख्यान्वयो भवत्येव । शब्दस्य तादृशस्वभावकल्पनादिति बोध्यम्। **एकवचनमेवोत्सर्गत इति**-द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने बहुषु बहुवचनम् इति सूत्रद्वयं भङ्क्त्वा भाष्यकारेणोक्तम्-द्विबहोर्द्विवचनबहुवचने । एकवचनं तूत्सर्गतः करिष्यते इति । **अस्यार्थः**—द्वित्वे द्विवचनम्, बहुत्वे बहुवचनम्, द्विबहुत्वयोरभावे एकवचनम् एकत्वाऽभावेऽपि भवति। तेन भावार्थकलकारस्य संख्यार्थत्वाभावेऽपि उत्सर्गतो विहितमेकवचनं तस्य स्थाने भवतीति सिद्धम् । **त्वया मयाऽन्यैश्च भूयते इति**—त्वया भूयते इत्यत्र युष्मच्छब्दस्य कर्तृत्वेऽपि लकारस्य भावार्थकत्वेन कर्तुरनभिधानात्तृतीया, अत एव मध्यमपुरुषोऽपि न, त्वयेति कर्तुस्तिङ्वाच्यत्वाभावात् । एवं **मया भूयते** इत्यत्र नोत्तमपुरुषः, मयेति तिङ्वाच्यत्वाभावात् । **अन्यैर्भूयते** इत्यत्र अन्यैरिति कर्तुरनभिहितत्वमपि तिङि सामानाधिकरण्याभावादेवोपपद्यते । **बभूवे इति**—भावस्य कारकसंख्याद्यनन्वयेऽपि वर्तमानभूतभविष्यत्कालसम्बन्धोऽस्त्येवेति लट् लिङादयो भवन्त्येवेति भावः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भावकर्मणोरिति—अनुदात्तङित इत्यत आत्मनेपदमित्यनुवर्तते । भावः भावना क्रिया इत्यर्थकः । कर्मशब्दः कर्मकारकपरः । भावे कर्मणि च यो लकारस्तस्यात्मनेपदमित्यर्थः । **यगिति**—धातोरेकाच इत्यतः धातोरिति, चिण् भावकर्मणोरित्यतो भावकर्मणोरिति चानुवर्तते। **तथा च सूत्रार्थः**—धातोर्यक् स्यात् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके परे ।

हिन्दी

९५४. भाव और कर्म में लकार के स्थान में आत्मनेपद होता है ।

९५५. भावकर्मवाची सार्वधातुक परे रहते धातु से यक् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९५६. स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च-६।४।६२।। उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च । चिण्वद्भाव —पक्षे अयमिट्, चिण्वद्भावात् वृद्धिः । भाविता, भविता । भाविष्यते, भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भूयते । भाविषीष्ट, भविषीष्ट ।

९५७. चिण् भावकर्मणोः-३।१।६६।। च्लेश्चिण् स्यात् भावकर्मवाचिनि त-शब्दे परे । अभावि । अभाविष्यत, अभविष्यत । अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात् सकर्मकः । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविषाताम्, अन्वभविषाताम् ।

मध्यमनोरमा

भावितेति—स्यसिजित्यादिना इटि चिण्वद्भावेऽचो ञ्णितीति वृद्धिः । अनेन चिण्वदिटोऽभाव-पक्षे आर्धधातुकस्येतीट्, गुणः, भवितेति । **भूयतामिति**—लोटि यक् । **अभूयतेति**—लङ् । **भूयेतेति**—विधिलिङ् तः, सीयुट्, यक् । सकारयकारपोर्लोपः, आद्गुणः । **भाविषीष्टेति**—आशीर्लिङ्, सीयुट्, चिण्वदिट् वृद्धिः । चिण्वदिटोऽभावे भविषीष्टेति । **अभावीति**—च्लेश्चिण्, चिणो लुक् इति तशब्दस्य लुक् । **उपसर्गवशादिति**-उपसर्गवशेन धातोरर्थान्तरे वृत्तेः सकर्मकत्व-मित्यर्थः । **अनुभूयते आनन्द इति**—सत्ताद्यर्थकस्य भूधातोरकर्मकत्वेऽपि अनुभवार्थकत्वे तु सकर्मकत्वम् । अनुभवतीत्युक्ते किमनुभवतीति कर्माकाङ्क्षोदयात् अत्र आनन्दः कर्म । तस्य तिङाऽभिधानात् द्वितीया न भवति । किन्तु प्रथमैव । **त्वमनुभूयसे इति**—अत्र युष्मच्छब्दार्थ-स्यैव कर्मत्वात्तिङ्वाच्यकर्मवाचित्वं युष्मच्छब्दस्येति मध्यमपुरुषः । **अहमनुभूये इति**—अत्र अस्मदर्थस्य कर्मत्वमिति उत्तमपुरुषः । **अन्वभावीति**—लुङि च्लेश्चिण्, चिणो लुक्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । **अन्वभाविषातामिति**—चिण्वदिट्पक्षे वृद्धिः । तदभावे आर्धधातुकस्येतीट्, गुणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भावितेति—अकर्मकाद् भूधातोर्भावे लुटि, भावकर्मणोरिति आत्मनेपदे लुटस्तादेशः, तासिः, आर्धधातुकत्वम्, स्यसिच् इत्यादिना चिण्वद्भावः इट् च । णित्वात् अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आवादेशः, लुटः प्रथमस्येति तस्य डादेशः, डित्त्वाट्टेर्लोपः, भाविता इति । चिण्वद्विकल्पे न वृद्धिः, **भवितेति । चिण्भावेति**—च्लेः सिजित्यतः च्लेः इत्यस्य चिण् ते पदः इत्यतः ते इत्य-स्य चानुवृत्तिरायाति-तदा सूत्रार्थः-च्लेश्चिण् भवति त-शब्दे परे भावकर्मणोरिति । **अभा-विष्यतेति**—लृङ्, तः, स्यः, चिण्वदिट्, वृद्धिरावादेशः षत्वम् ।

हिन्दी

९५६. उपदेश में अजन्त व हन्-आदि धातु को स्य सिच् सीयुट् और तास् परे चिण्वद्भाव होता है व इट् का आगम होता है, भाव व कर्म की गम्यमानता रहने पर ।

९५७. च्लि को चिण् होता है भावकर्मवाची त-शब्द परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

णिलोपः, भाव्यते । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे । भावयामासे । चिण्वदिट्, आभीयत्वेनासिद्धत्वात् णिलोपः । भाविता । पक्षे भावयिता । भाविष्यते, भावयिष्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत । भावयिषीष्ट । भाविषीष्ट । अभावि । अभाविषाताम् । अभावयिषाताम् । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता। बुभूषिष्यते । बोभूयते । अकृत्सार्वधातुकेति दीर्घः । स्तूयते विष्णुः । स्ताविता, स्तोता । स्ताविष्यते, स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम्, अस्तोषाताम् । गुणोऽर्ति इति गुणः । अर्यते । स्मर्यते । ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । आरे । सस्मरे। उपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट् । आरिता, अर्ता । स्मारिता, स्मर्ता । नलोपः । स्रस्यते। सस्रंसे । इदितस्तु नन्यते । इज्यते ।

मध्यमनोरमा

भाव्यते इति—णिजन्तात् कर्मणि लकारः, यक्, णेरनिटीति णिलोपः ।**भावयाञ्चक्रे इति**—भावीति णिजन्तात् कास्यनेकाच इत्याम्, कृञोऽनुप्रयोगादि । असिद्धत्वादिति इटोऽसिद्धत्वादनिडाद्यार्धधातुकपरत्वामित्यर्थः । **चिण्वदिटोऽभावे-भावयितेति**— आर्धधातुकस्येतीट्, आभीयत्वाभावेन तस्यासिद्धत्वाभावादनिडाद्यार्धधातुकपरत्वाभावात् णेरनिटीति लोपो न, णेर्गुणः, अयादेशः । **भाविष्यते इति**—चिण्वदिट्पक्षे इटोऽसिद्धत्वात् णिलोपः । चिण्वदिडभावपक्षे णिलोपो न । **बुभूष्यते इति**—बुभूषेति सन्नन्तात् भावे लकारः, यक्, अतो लोपः । यङ्लुङन्ताद् बोभूयते इति । **स्तूयते इति**—यक्प्रत्ययस्यार्धधातुकं शेष इति आर्धधातुकत्वाद् अकृत्सार्वेति सूत्रेण यकि परतो दीर्घः । **स्तावितेति**—चिण्वदिट्, वृद्धिः । **स्तोतेति**—चिण्वद्भावाभावपक्षे स्तुधातोरनुदात्तत्वादिटोऽभावः । **अर्य्यते इति**—ऋधातोर्भावकर्मणोः लकारे यक्, गुणः । **आरे इति**—लिटस्तस्य एश्, ऋच्छत्यॄतामिति गुणः । **सस्मरे इति**—स्मृधातोर्भावादौ लिट्, तस्य एश्, गुणः । **आरितेति**—ऋधातोर्गुणे रपरत्वे कृते अजन्तत्वाऽभावेऽपि उपदेशेऽजन्तत्वादजन्तत्वप्रयुक्तश्चिण्वदिट्, अत उपधाया इति वृद्धिः । चिण्वदिटोऽभावे **अर्त्तेति**—अनुदात्तत्वादार्धधातुकस्येति इट् न । **एवं स्मारितेति**— सार्वधातुकेति गुणे जाते रपरत्वे उपदेशेऽजन्तत्वाच्चिण्वदिट् । **स्रस्यते इति**—अनिदितामिति नलोपः । **इदितस्तु नेति**—अनिदितामिति इदितः पर्य्युदासादित्यर्थः । **इज्यते इति**—यज्धातोः वचिस्वपीति सम्प्रसारणम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भावितेति—णिजन्तभावि धातोर्भावे लुटि, तः, तास, चिण्वद्भाव इट्, भावि इ तास् त इति, चिण्वदिट आभीयत्वेनासिद्धत्वात् णेरनिटीति णेर्लोपः, तस्य डादेशः, टेर्लोपः । चिण्वदिटोऽभावे वलादिलक्षण इट्, तस्य अनाभीयत्वेन न असिद्धिः, णेर्गुणः, अयादेशः, भावयितेति । एवमेव लृडादौ रूपद्वयं बोध्यम् । **अभाविषातामिति**—लुङि आताम्, च्लेः सिच्, चिण्वद्भाव इट्, अभाविइषातामिति जाते आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णेर्लोपः । चिण्वद्भावाभावे वलादिलक्षण इट्, गुणः, अय् । ऋ धातोर्लटि आत्मनेपदं तः, सार्वधातुके यक् इति यक्, गुणोऽर्तीति गुणः, **अर्यते इति । इज्यते इति**—यज्धातोः कर्मणि लटि तः, यक्, वचिस्वपीति यकारस्य सम्प्रसारणे पूवरूपे च टेरेत्वे रूपम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९५८. तनोतेर्यकि-६।४।४४।। आदन्तादेशो वा स्यात् । तायते । तन्यते ।
९५९. तपोऽनुतापे च-३।१।६५।। च्लेश्चिण् न, कर्मकर्तरि अनुतापे च । अन्वतप्त पापेन घुमास्थेतीत्त्वम् । दीयते । धीयते । ददे । दधे ।
९६०. आतो युक् चिण् कृतोः-७।३।३३।। आदन्तानां युगागमश्चिणि ञ्णिति कृति च । दायिता, दाता । दायिषीष्ट, दासीष्ट । अदायि । अदायिषाताम् । शम्यते मोहो मुकुन्देन ।
९६१. चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम्-६।४।९३।। चिण्परे णमुल्परे च णौ मितामुपधाया दीर्घो वा । शामिता, शमिता । शमयिता । शामिष्यते, शमिष्यते, शमयिष्यते । ण्यन्तत्वाभावे शम्यते मुनिना ।

मध्यमनोरमा

तायते इति—तनोतेर्यकि इति नकारस्याकारः । अकाराभावे तन्यते इति । **अन्वतप्तेति**—पापेन देवदत्तः अन्वतप्यत इति, अभ्याहत इत्यर्थः । कर्मणि लकारः, अत्र अनुतापेऽर्थे विद्यमानात्तपः परस्य च्लेश्चिण् निषिध्यते । यदा तु ललाटं तपति सूर्यः इत्यत्र ललाटं स्वयमेव तप्यते इति कर्मकर्त्तरि प्रयोगस्तदानुतापार्थत्वाभावेऽपि कर्मकर्तरि चिणो निषेधो बोध्यः । **शामितेति**—शम्-धातोर्णिजन्तात् लुट्, तास्, स्यसिजिति चिण्वदिट्, अत उपधाया इति वृद्धौ शमोऽदर्शन इति मित्त्वान्मितां ह्रस्व इति ह्रस्वे चिण्णमुलोरिति उपधाया दीर्घः, इट्, आभीयत्वेनासिद्धत्वात् णेरनिटीति लोपः । दीर्घाभावे **शमितेति** । चिण्वदिटोऽभावे शमयितेति ।

मध्यमनोरमापूरणी

आदन्तादेश इति—विड्वनोरित्यत 'आत्' इति, ये विभाषेति सूत्रात् 'विभाषा' इत्यनुवर्तते । **तदाह**—तन्धातोः आकारोऽन्तादेशो वा स्यात् । **च्लेश्चिण् नेति**—चकारेण अचः कर्मकर्तरि इत्यतः 'कर्मकर्तरि' इति अनुकृष्यते । च्लेः सिजित्यतः 'च्लेः' इति, चिण्ते पदः इत्यतः चिण् इति, 'न रुधः' इत्यतो 'न' इति चानुवर्तते । **तदाह**—तप्धातोः च्लेश्चिण् न भवति कर्मकर्तरि अनुतापे च । **अन्वतप्तेति**—अनुपूर्वकतपः कर्मणि लुङ्, तः, च्लिः, चिण् भावकर्मणोरिति प्राप्तश्चिणादेशः तपोऽनुतापे चेति निषिध्यते । च्लेः सिच्, अट्, यण्, झलो झलोति सिचो लोपः। **दीयते इति**—दाधातोःकर्मणि लट्, तः, सार्वधातुके यगिति यक्, घुमास्थागापेति धातोरा कारस्येत्त्वम्, टेरेत्वम् । **दायितेति**—कर्मणि लुट्, तः, तास्, चिण्वदिट् आतो युक् इति युक्, डादेशः, टेरासो लोपः । चिण्वदिटोऽभावे **दातेति । अदायि**—लुङ्, तः, च्लेश्चिण्, युक्, चिणो लुक् इति तस्य लुक् ।

हिन्दी

९५८. तन् धातु को आकार अन्त में आदेश होता है, यक् परे रहते ।
९५९. तप् धातु से परे च्लि को चिण् नहीं होता है, कर्मकर्ता में व अनुताप अर्थ में ।
९६०. आदन्तधातुओं को युक्-आगम होता है, चिण् व ञित् णित्-कृत् प्रत्यय परे रहते ।
९६१. चिण्परक व णमुल्परक णि के परे रहते मित् धातुओं की उपधा को दीर्घ होता है, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९६२. नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः-७।३।३४।। उपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । अशमि । अदमि । उदात्तोपदेशस्येति किम् ? अगामि । मान्तस्येति किम् ? अवादि । अनाचमेरिति किम् ? आचामि ।
वा. अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् । अकामि । अवामि ।
९६३. भञ्जेश्च चिणि-६।४।३३।। नलोपो वा । भज्यते । अभाजि । अभञ्जि । लभ्यते ।
९६४. विभाषा चिण्णमुलोः-७।१।६९।। लभेर्नुम् वा । अलम्भि, अलाभि ।

।। इति भावकर्मप्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमा

भज्यते इति—अनिदितामिति नलोपः । **लभ्यते इति**—लभ्धातोर्यक् । **अलाभीति**—नुमभावे अत उपधाया इति वृद्धिः । **इति भावकर्मप्रक्रिया ।**

मध्यमनोरमापूरणी

चिण्णमुलोरिति—'दोषो णौ' इत्यस्मात् 'णौ' इति, ऊदुपधाया गोह इत्यस्मात् उपधाया इति, मितां ह्रस्व इत्यस्मात् 'मिताम्' इति च अनुवर्तते । **तदाह**—चिण्णपरे इत्यादि । **शम्यते मुनिनेति**—ण्यन्तत्वाभावेन अकर्मकत्वाद् भावे लः । **नोदात्तोपदेशस्येति**—मृजेर्वृद्धिरित्यस्मात् 'वृद्धिः' इति, अत उपधाया इत्यत उपधाया इति, अचो ञ्णिति इत्यस्मात् ञ्णिति इति, आतो युक् इत्यस्मात् 'चिण्कृतोः' इति च अनुवर्तते । अत्र ञ्णिति इति कृत एव विशेषणम् अस्ति, न तु चिणः, अव्यभिचारात् । **अत उक्तं मूले**—उपधायावृद्धिर्नेत्यादि । **अशमि इति**—शम्-धातोर्लुङि तः, च्लेश्चिण्, अत उपधाया इति प्राप्ता वृद्धिर्नोदात्तोपदेशस्येत्यनेन निषिध्यते । अट्, चिणो लुगिति तस्य लुक् । **उदात्तोपदेशस्येति किम्**—सूत्रेऽस्याभावे अगामि इत्यत्रापि अनुदात्तोपदेशस्य वृद्धिनिषेधः स्यात् । मान्तस्येत्य स्याभावे दान्तस्य वद्धातोः 'अवादि' इत्यत्र वृद्धिनिषेधः स्यात् । **अनाचमीति**—आचम्- कम् वम्-भिन्नानां मान्तानामुपधाया न दीर्घः, इति वक्तव्यमित्यर्थः । **अकामि इति**—लुङि च्लेश्चिणि उपधावृद्धिः । अत्र नोदात्तोपदेशस्येति प्राप्तो वृद्धिनिषेधो वार्तिकेन वार्य्यते । **नलोपो वेति**—श्नान्नलोप इत्यतः न इति लोप इति चानुवर्तते । **अभाजि इति**—भञ्ज्धातोर्लुङ्, तः, च्लेश्चिण्, भञ्जेश्च चिणीति नलोपे उपधा-वृद्धिः, तस्य लुक् । **लभेर्नुम् वेति**—लभेश्चेति लभेरिति, इदितो नुम्धातोरित्यतो 'नुम्' इति चानुवर्तते । **अलम्भि इति**—लभ्धातोर्लुङि तः, च्लेश्चिणि नुमागमः । नुमभावे उपधावृद्धिः, अलाभि इति ।

।। इति भावकर्मप्रक्रिया ।।

हिन्दी

९६२. मान्त उदात्तोपदेशधातु की उपधा को वृद्धि नहीं होती है, चिण् और ञित् णित् कृत् प्रत्यय परे रहते, आङ्पूर्वक चम् धातु को छोड़कर ।
वा. आङ्पूर्वक चम्, कम् व वम् धातुओं को छोड़कर उदात्तोपदेश मान्त की उपधा को दीर्घ नहीं हो ऐसा कहना चाहिये ।
९६३. चिण् परे रहते भञ्ज् के न् का लोप होता है विकल्प से ।
९६४. लभ्धातु को नुम् होता है, चिण् व णमुल् परे रहते, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया

यदा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामपि अकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च लकारः ।

९६५. कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः-३।१।८७।। कार्यातिदेशोऽयम् । कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्ता कर्मवत् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः । पच्यते फलम् । भिद्यते काष्ठम् । अपाचि । अभेदि । भावे तु भिद्यते काष्ठेन ।

वा. [1]भूषावाचिनां किरादीनां सन्नन्तानाञ्च यक्चिणौ चिण्वदिट् च नेति वक्तव्यम् ।। अलङ्कुरुते कन्या । अलमकृत । अवकिरते हस्ती । अवाकीर्ष्ट । गिरते । अगीर्ष्ट । आद्रियते । आदृत । किरादिस्तुदाद्यन्तर्गणः । चिकीर्षते कटः। अचिकीर्षिष्ट ।

मध्यमनोरमा

भावकर्मणोर्लकारं प्रदर्श्य कर्मकर्तरि लकारं प्रदर्शयति-**यदा कर्मैवेति** । यदा सौकर्य्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृनिष्ठो व्यापारो धात्वर्थत्वे न विवक्षितः किन्तु कर्मादिनिष्ठ एव व्यापारो धातुनाभिधीयते तदा स्वव्यापारे कर्मादीनां स्वातन्त्र्यात् कर्तृसंज्ञा भवतीत्यर्थः । **पच्यते फलमिति**—फलं पचति इत्यत्र फलस्य कर्मत्वं, देवदत्तादेः कर्त्तृत्वं, यदा तु फलस्यातिकोमलतया देवदत्तव्यापारं विनापि फलव्यापारमादायैव पच्धातुप्रयोगस्तदा फलस्यैव कर्त्तृत्वं, तस्मिन् वाच्ये लकारः । अत्र कर्मण एककर्तृत्वात् कर्मकर्तरि लकार इत्युच्यते । अत्र कर्मण एककर्तृत्वात् या क्रिया कर्मस्था सैव कर्तृस्थेति कर्मणा तुल्यक्रियत्वं कर्तुरिति कर्मवद्भावः । **कार्यातिदेशोऽयम्** इत्युक्तौ कर्मणि विहितस्य कार्यस्य यगादेरतिदेश इति लब्धम् । नन्वेवं कर्त्तुः फलस्यात्र कर्मवद्भावे कर्मणि द्वितीया स्यादिति चेन्न, लकारवाच्यस्यैव कर्त्तुः कर्मवद्भावविधानात् । पच्यते फलमित्यत्र फलस्य तु कर्त्तृत्वमेव, तस्य कर्मवद्भावे न द्वितीया स्यात्, किन्तु पच्यत इति लकारवाच्य एव कर्त्ता कर्मवत् । तेन कर्मार्थके च लकारे यदात्मनेपदादिकार्यं तदेव भवति । नहि कर्मणि द्वितीयेति लकारार्थस्य कर्मणो द्वितीया विधीयते इति द्वितीयाया अतिदेश इति भावः । **भिद्यते काष्ठम् इति**—काष्ठं भिनत्तीति कर्त्तरि काष्ठानां कर्मत्वं स्थितम् । तत्र काष्ठानां कर्मत्वातिदेशवशाद् देवदत्तादिव्यापारं विनैव छेदनं भवतीत्यर्थविवक्षायां देवदत्तादिव्यापारो यदा न विवक्ष्यते किन्तु काष्ठव्यापारो द्विधाभवनरूपः धात्वर्थतया विवक्ष्यते तदा काष्ठस्यैव कर्त्तृत्वं, कर्मवद्भावाद् यगात्मनेपदम् । **अपाचि अभेदीत्यत्र** कर्मवद्भावात् च्लेश्चिण् । **भिद्यते काष्ठेनेति**—कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायाम् अकर्मकत्वाद् भावे लकार इत्यर्थः । भावकर्मणोरित्यात्मनेपदम्, सार्वधातुके यक् ।

मध्यमनोरमापूरणी

यक्चिणौ नेति—भूषावाचिनां किरादीनां सन्नन्तानाञ्च कर्मवद्भावात् प्राप्तं यक्चिणादिकार्यं न भवतीत्यर्थः । **अवकिरते हस्तीति**—हस्तिनमवकिरति इति कर्त्तरि लकारः, तत्र हस्ती कर्म

हिन्दी

९६५. कर्मस्थ क्रिया के तुल्यक्रिया वाला कर्ता कर्मवत् होता है ।

वा. भूषावाची, कृ आदिधातु, व सन्नन्तों से यक् चिण् व चिण्वद्भाव इट् नहीं होता है।

---

1. 'भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात्' इति वार्तिकस्वरूपमन्यत्रास्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९६६. तपस्तपःकर्मकस्यैव-३।१।८८।। कर्ता कर्मवत् । तप्यते तपस्तापसः । अर्जयतीत्यर्थः । अतप्त । तपःकर्मकस्यैवेति किम् ? उत्तपत्ति सुवर्णं सुवर्णकारः
वा. सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः । अजा ग्रामं नयति ।
वा. दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम् ।
९६७. न दुहस्नुनमां यक्चिणौ-३।१।८९।। एषां कर्मकर्तरि यक्चिणौ न । शप्, तस्य लुक् । गौः पयो दुग्धे ।

मध्यमनोरमा

अलङ्कुरुते कन्येति—कन्यामलङ्करोतीति कर्त्तृलकारः । कन्यां स्वयमेव अलङ्कृता भवतीति कर्मण एककर्त्तृत्वम् । यक्चिण्वदिटो निषेधात् भावकर्मणो विहितमात्मनेपदं भवत्येव । **अलमकृतेति**- लुङ्, च्लेः न चिण्वद्भावः, किन्तु सिच्, तस्य ह्रस्वादङ्गादिति लोपः । **अवाकीर्ष्टेति**- कृधातोर्लुङ्, सिच्, ॠत इद्धातोः, हलि चेति । **आद्रियते इति**—रिङ् शयगिति रिङ् । **आदृतेति**—ह्रस्वादङ्गाद् इति सिचो लोपः । **चिकीर्षते कट इति**—कटं चिकीर्षते इति कर्तरि प्रयोगः । यदा तु स्वयमेव कटः चिकीर्षाविषयो भवतीत्यर्थो विवक्षितस्तदा कटस्यैव कर्मत्वात् कर्मणि लकारः । यगादीनां निषेधात् आत्मनेपदमात्रं भवति । **अचिकीर्षिष्टेति**—अत्र चिण्, चिण्वदिट् च न । **तप्यते तपस्तापस** इति कर्तरि लकारः, कर्त्तुः कर्मवद्भावाद् यक् । **अतप्तेति**- अत्र लकारस्य कर्त्तुः कर्मवद्भावेन एकस्य कर्तृत्वकर्मत्वोभयरूपत्वात् कर्मकर्त्तृत्वं बोध्यम् । अतः कर्मकर्तरि तपोऽनुतापे चेति चिणो निषेधः । झलो झलीति लोपः । **उत्तपति सुवर्णमिति**- अत्र सुवर्णं कर्म, न तपः, अतः कर्त्तुः न कर्मवद्भावः । तेन यगादिकं नेत्यर्थः । **सकर्मकाणादिति**—द्विकर्मकाणामेकस्य कर्मणः कर्त्तृत्वविवक्षायामपि द्वितीयं कर्मादाय सकर्मकाणां कर्मवत् कर्मणेति प्राप्तस्य कर्मवद्भावस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इत्यर्थः । **अजा ग्रामं नयतीति**- अत्र नीञ् धातुः प्राप्त्यर्थकः । प्रापणार्थत्वे अजां ग्रामं नयतीति द्विकर्मकत्वम् । तत्र अजा स्वयमेव प्राप्नोतीत्यर्थे अजायाः कर्मणः कर्तृत्वात् कर्मवत्कर्मणेति कर्मवद्भावः प्राप्नोतीति तस्यानेन निषेधः । **दुहिपच्योरिति**— सकर्मकाणां प्रतिषेध इति, कर्मवद्भावनिषेधे प्राप्ते कर्मवद्भावविकल्पोऽनेन विधीयते । **गौः पयो दुग्धे इति**—गां पयो दोग्धीति कर्तरि लकारः । गां पयस्त्याजयतीत्यर्थः । अकथितञ्चेति गोरपादानत्वाविवक्षायां कर्मत्वं, तत्र गोः कर्तृत्वविवक्षायां गौः स्वयमेव पयस्त्यजतीत्यर्थः, अत्र यको 'न दुहे' त्यादिना निषेधे, कर्मवद्भावात् आत्मनेपदम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भवति, तस्य कर्त्तृत्वविवक्षायां स्वयमेव हस्ती पुष्पादिभिः अवकीर्णवानित्यर्थे कर्मकर्तरि लट्, तः, शः, अवकृ अ त इति, सार्वधातुके यगिति भूषावाचिनामित्यनेन निषिध्यते । ॠत इद्धातोः, रपरत्वम्, एत्वम् । **तपः इति**—कर्तरि शप् इत्यतः कर्तरि इति अनुवर्तते तच्च प्रथमायां विपरिणमते । कर्मवत् इति सूत्रात् कर्मवदित्यनुवर्तते, तदाह-कर्ता कर्मवत् स्यात्।

हिन्दी

९६६. तपःकर्मक तप् धातु का कर्ता ही कर्मवत् होता है ।
वा. सकर्मक धातुओं को कर्मवद्भाव का निषेध होता है ।
वा. सकर्मक दुह् व पच् धातु को विकल्प से कर्मवद् भाव होता है ।
९६७. दुह स्नु व नम् धातुओं से यक् व चिण् नहीं होता है, कर्म कर्ता में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९६८. अचः कर्मकर्तरि -३।१।६२।। अजन्ताच्च्लेश्चिण् वा कर्मकर्तरि त-शब्दे परे । अकारि । अकृत ।

९६९. दुहश्च-३।१।६३।। तथा । अदोहि, अदुग्ध । लुग्वेति क्सस्य पक्षे लुक् । अधुक्षत । उदुम्बरः फलं पच्यते ।

९७०. कुषिरजोः प्राचां श्यन्परस्मैपदञ्च-३।१।९०।। अनयोः कर्मकर्तरि न यक् किन्तु श्यन् परस्मैपदञ्च । आत्मनेपदापवादः । कुष्यति, कुष्यते वा पादः । रज्यति रज्यते वा वस्त्रम् । यगविषये तु नास्य प्रवृत्तिः । कोषिषीष्ट । रंक्षीष्ट।

।। इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमा

अकारीति—देवदत्तो घटमकार्षीदिति कर्त्तरि प्रयोगः । घटकर्मककृतिमान् इति हि तस्यार्थः । तत्र यदा घटस्यैव कर्त्तृत्वं विवक्षितं तदा घटः स्वयमेव कृतिविषयोऽभूदित्यर्थः । अत्र चिण्-विकल्पः । **चिणोऽभावे अकृतेति**—ह्रस्वादङ्गादिति सिचो लुक् ।**दुहश्च**—तथेति । दुहः परस्य च्लेश्चिण् वेत्यर्थः । **अदोहीति**—च्लेश्चिण्, लघूपधगुणः, चिणो लुक् ।अदुग्धेति-चिणोऽभावपक्षे शल इगुपधादिति क्सः । तस्य लुग्वेति पक्षे लुक्, दादेरिति हस्य घः, झषस्तथोरिति घः, झलां जशिति घस्य गः । **अधुक्षतेति**—क्सस्य लुगभावे दादेरिति हस्य घत्वे एकाचो बशः इति भष्भावे खरि चेति घस्य कत्वे सस्य षत्वम् । **उदुम्बर फलं पच्यते इति**—उदुम्बरो वृक्षविशेषः, तेन करणभूतेन फलं तदीयमेव पचति । उदुम्बराभावे तत्फलपचनासम्भवादुदुम्बरस्य करण-त्वम् । तत्र उदुम्बरस्य करणत्वाविवक्षायामकथितञ्चेति कर्मसंज्ञायामुदुम्बरं फलं पचतीति कर्त्तरि प्रयोगः । तत्र कर्मणः कर्त्तृत्वविवक्षायामुदुम्बर एव फलं पच्यते इति कर्मकर्तरि लकारः । अत्र दुहिपच्योरिति कर्मवद्भावपक्षे यगात्मनेपदम् । **आत्मनेपदापवाद इति**—कर्मवद्भावाद् भाव-कर्मणोरिति प्राप्तस्यात्मनेपदस्यापवाद इत्यर्थः । प्राचामित्युक्तत्वादर्वाचां मते भावकर्मणोरिति आत्मनेपदं भवत्येवेत्याह-कुष्यते वा पादः । **यगविषय इति**—यङ्निषेधसन्नियोगशिष्टं परस्मै-पदम् । यकोऽविषये आर्धधातुके न प्रवर्तते इत्यर्थः । **रज्यतीति**—सार्वधातुकमपिदिति श्यनो ङित्त्वादनिदितामिति रञ्जेर्नलोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अजन्तादिति—चिण् ते पदः इत्यतः चिण् ते इत्येते पदेऽनुवर्तेते । दीपजन इति सूत्रादन्यत-स्यामिति, च्लेः सिच् इत्यतः च्लेरिति चानुवर्तते, अचः इति धातोर्विशेषणात्तदन्तविधिः, तदाह-**अजन्तादिति** । **दुहश्चेति**—त-शब्दे परे दुहः च्लेश्चिण् वा भवति कर्मकर्तरि इत्यर्थः । **अनयोरिति**—कुष निष्कर्षे, रञ्ज रागे इत्यनयोरित्यर्थः ।

हिन्दी

९६८. अजन्तधातु से परे च्लि को चिण् हो विकल्प से, तशब्द परे, कर्मकर्ता में ।

९६९. दुह् से परे च्लि को चिण् हो त शब्द परे, विकल्प से, कर्मकर्ता में ।

९७०. कुष् और रञ्ज् धातुओं में कर्मकर्ता में यक् नहीं होता है किन्तु श्यन् और परस्मैपद होता है ।

।। इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमा

अर्वाचीनमते रज्यते इति—यक्, आत्मनेपदम्, यकः कित्त्वात् रञ्जेर्नलोपः । **कोषिषीष्टेति**-कुष्धातोः आशीर्लिङ्, सीयुट्, इडागमः, लघूपधगुणः, षत्वं, ष्टुत्वम् । **रङ्क्षीष्टेति**—रञ्ज्धातोराशीर्लिङ्, सीयुट्, सुट्, अनुदात्तत्वादिण्न । क्ङित्परत्वाभावात् नलोपो न । चोः कुरिति जस्य गः, खरि चेति गस्य कः, सस्य षत्वं, कषसंयोगे क्षः । इति कर्मकर्तृप्रक्रिया।

मध्यमनोरमापूरणी

मण्डूकप्लुत्या अचः कर्मकर्तरि इत्यतः कर्मकर्तरि इत्यनुवर्तते । न दुहस्नुनमां यक् इत्यतः यक् इति, न इति च अनुवर्तते । **अत उक्तम्**—न यक् इति । **कुष्यति कुष्यते वा पादः इति**—कुष्णाति पादं रामः इति मुख्यकर्तृलकारे पादः कर्म । तस्य कर्तृत्वविवक्षायां कर्मवद्-भावे भावकर्मणोरिति आत्मनेपदं प्राप्तम्, अनेन अपवादत्वात् परस्मैपदं श्यन् च भवति । कुष्यति इति । अर्वाचीनमते नास्य प्रवृत्तिः, कुष्यते इति ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यां कर्मकर्तृप्रकरणम् ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ लकारार्थप्रकरणम्

९७१. अभिज्ञावचने लृट्-३।२।११२॥ स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट् । लङोऽपवादः । स्मरसि कृष्ण ! गोकुले वत्स्यामः । एवं बुध्यसे चेतयसे इत्यादि प्रयोगेऽपि ।

९७२. न यदि-३।२।११३॥ यद्योगे उक्तं न । अभिजानासि यद् वने अभुञ्जमहि ।

९७३. विभाषा साकाङ्क्षे-३।२।११४॥ उक्तविषये लृड् वा, लक्ष्यलक्षणभावेन साकाङ्क्षश्चेद्धात्वर्थः । स्मरसि कृष्ण ! वने वत्स्यामस्त त्रगाश्चारयिष्यामः । वासो लक्षणं चारणं लक्ष्यम् । पक्षे लङ् । परोक्षे लिट् । चकार । उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम् । सुप्तोऽहं किल विललाप ।

वा. अत्यन्तापह्नवे लिड् वक्तव्यः । कलिङ्गेष्ववात्सीः ? नाहं कलिङ्गान् जगाम ।

९७४. प्रश्ने चासन्नकाले-३।२।११७॥ प्रष्टव्यः प्रश्नः । आसन्नकाले पृच्छ्यमानेऽर्थे लिड् विषये लङ्लिटौ स्तः । अगच्छत् किम् ? जगाम किम् ?

मध्यमनोरमा

स्मरसीति—स्मृतिवाचकमुपपदम् । **वत्स्याम इति**—वस् धातोर्लृट्, सस्यार्धधातुक इति सस्य तः । **अभिजानासीति**—स्मृतिवाचकमुपपदम् । **अभुञ्जमहीति**—भुज्धातोर्लङ्, रुधादित्वात् श्नम्, श्नसोरल्लोपः । अत्र यच्छब्दप्रयोगात् लृट् न । **उक्तविषये इति**—स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने इत्यर्थः । **चित्तविक्षेपादिनेति**-आदिपदात् स्वापविधानादितरत्र च, स्वापात् पारोक्ष्यमुदाहरति—**सुप्तोऽहमिति** । चित्तविक्षेपात् पारोक्ष्यं तु "बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्" इत्युदाहार्य्यम् । अत्यन्तापह्नवे इति—वासस्य का वार्ता, तत्र मम गमनमेव नास्तीति अत्यन्तमपह्नवः, तेनापह्नवमात्रेणाहमवात्समित्यत्र न लिट् । **लिड्विषये इति**—भूतानद्यतनपरोक्षे इत्यर्थः । **आसन्नकाल इति**—अतिचिरन्तनभिन्ने इत्यर्थः । तेन भूतानद्यतनस्य आसन्नकालत्वाभावेऽपि न क्षतिः । तेन कंसं जघान किम् ? इत्यत्र न लङ्।

मध्यमनोरमापूरणी

अभिज्ञावचने इति—अभिज्ञा=स्मृतिः, उच्यतेऽनेनेत्यभिज्ञावचनम् = स्मृतिबोधकम्, तस्मिन् पदे उच्चारिते सति भूतानद्यतने धातोर्लृट् भवति । **अगच्छत् किम् इति**—पञ्चवर्षातीतकालः अनासन्नकालः इति वृत्तौ उक्तम् । तत्र भूतानद्यतनपरोक्षे प्रश्ने चासन्नकाले इति लङ् । तेन अगच्छत् इति प्रयोगः । अनेनैव सूत्रेण लिटि च कृते जगाम किम् इति भवति ।

हिन्दी

९७१. स्मृतिबोधक उपपद रहने पर भूत अनद्यतन अर्थ में धातु से लृट् होता है ।

९७२. स्मृतिबोधक उपपद में यद् का योग होने पर लृट् नहीं होता है ।

९७३. स्मृतिवाचक उपपद होने पर यदि धात्वर्थ लक्ष्यलक्षणभाव से साकाङ्क्ष हो तब लृट् होता है विकल्प से ।

वार्तिक- अत्यन्त अपह्नव अर्थ में (अपराक्ष में भी) लिट् होता है ।

९७४. आसन्नकाल में पृच्छ्यमान अर्थ में लिट् के विषय में लङ् और लिट् होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९७५. लट् स्मे-३।२।११८।। लिटोऽपवादः । यजतिस्म युधिष्ठिरः ।

९७६. अपरोक्षे च-३।२।११९।। भूतानद्यतने लट् स्यात् स्मयोगे । एवं स्म पिता ब्रवीति ।

९७७. ननौ पृष्टप्रतिवचने-३।२।१२०।। भूते लट् । अकार्षीः किम् ? ननु करोमि भोः ।

९७८. नन्वोर्विभाषा-३।२।१२१।। अकार्षीः किम् ? न करोमि, नाकार्षम् । अहं नु करोमि, अहं न्वकार्षम् ।

९७९. पुरि लुङ् चास्मे-३।२।११२।। पुरायोगे भूतानद्यतने वा लुङ् चाल्लट् न तु स्मे योगे । पक्षे यथाप्राप्तम् । वसन्तीह पुरा छात्राः । अवात्सुः । अवसन् । ऊषुर्वा । अस्मे इति किम् ? यजति स्म पुरा । भविष्यतीत्यनुवर्तमाने-

९८०. यावत्पुरानिपातनयोर्लट्-३।३।४।। यावद्भुङ्क्ते । निपातयोः किम्-यावद्दास्यते तावद्भोक्ष्यते । करणभूतया पुरा यास्यति ।

मध्यमनोरमा

लिटोऽपवाद इति—तेन भूतानद्यतनपरोक्षे स्मयोगे लट् इत्यर्थः । **ननु करोमि इति**—भूते लट् । **नन्वोर्विभाषेति**—पृष्टप्रतिवचने इति अत्राप्यनुवर्तते । तदेतदाह **अकार्षीः किम् ?** अयं प्रश्नः, **न करोमीत्यादि** प्रतिवचनम् । अहं नु करोमीत्यत्रापि अकार्षीः किमिति प्रश्नो योजनीयः। **अवात्सुरिति**—वस्धातोर्लुङ्, सिच्, वदव्रजेति वृद्धिः, सस्यार्धधातुके इति सस्य तः । **अवसन्निति**-लङ्, झिः, झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तलोप इत्यादि । **ऊषुरिति**—लिट्, झिः; उस्, वचिस्वपीति यजादित्वात् सम्प्रसारणं, सम्प्रसारणाच्च, उस् उस् इति द्वित्वे हलादिशेषे सवर्ण-दीर्घः । षत्वं, रुत्वविसर्गौ । **यावद् भुङ्क्ते इति**—साकल्येन भुङ्क्ते इत्यर्थः । **यावद्दास्यते तावदिति**—यच्छात् परिमाणे वतुपि यावदिति, प्रथमैकवचने, नपुंसकत्वम् । यत्परिमाणकं दास्यते तत्परिमाणकं भोक्ष्यते इत्यर्थः । **करणभूतयेति**—पुरा इत्यस्य तृतीयाबहुवचनान्तत्वं स्फोरयितुं करणभूतयेत्युक्तम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

लट् स्मे इति—स्मे इति अव्ययं भूतकालद्योतकमस्ति । तद्योगे लिटः विषये लट् भवतीत्यर्थः । तेन यजति स्म युधिष्ठिरः इत्यत्र यज्धातोर्लिङ्विषये लट् भवति । **ननौ इति**-पृष्टस्य प्रतिवचनम्, पृष्टप्रतिवचनम्, तस्मिन्निति । पृष्टस्य प्रतिवचने = प्रत्युत्तरे सति ननु योगे भूते लट् भवति । **ननु करोमि भोः इति**—अकार्षीः किम् इति प्रश्नः, ननु करोमि भोः इत्युत्तरम् । अर्थात् करोमि इति अकार्षम् इत्यस्यार्थे वर्तते । तत्र ननौ पृष्टप्रतिवचने इति लट् भवति । **नन्वोरिति**—न नु इत्यनयोर्द्वन्द्वः, न शब्दे नु शब्दे च उपपदे लट् वा भवति।

हिन्दी

९७५. स्म के योग में लिट् के विषय में लट् होता है ।

९७६. स्म के योग में भूत अनद्यतन अर्थ में लट् होता है ।

९७७. ननु के योग में प्रश्न के प्रत्युत्तर देने पर भूतअर्थ में लट् होता है ।

९७८. न और नु के योग में पृष्टप्रतिवचन में भूत अर्थ में लट् होता है ।

९७९. भूतअनद्यतन अर्थ में पुरा के योग में लुङ् और लट् होता है विकल्प से, स्मके योग में नहीं होता ।

९८०. यावत् और पुरा निपातन के योग में लट् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९८१. विभाषा कदा कर्ह्योः-३।३।५।। लट् वा स्यात् । कदा कर्हि वा भुङ्क्ते। भोक्ष्यते भोक्ता वा ।

९८२. वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद् वा-३।३।१३१।। वर्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वा स्युः । कदा आगतोऽसि, अयमागच्छामि, आगमं वा । कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि, एष गमिष्यामि वा ।

९८३. आशंसायां भूतंवच्च-३।३।१३२।। भविष्यत्काले भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्यया वा स्युराशंसायाम् । देवश्चेदवर्षीद् वर्षति वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामः, वप्स्यामो वा ।

९८४. क्षिप्रवचने लृट्-३।३।१३३।। क्षिप्रपर्याये उपपदे पूर्वविषये लृट् । वृष्टिश्चेत् क्षिप्रमाशु त्वरितं वा आयास्यति शीघ्रं वप्स्यामः ।

९८५. आशंसावचने लिङ्-३।३।१३४।। आशंसावाचिन्युपपदे भविष्यति लिङ् स्यात्, न भूतवत् । गुरुश्चेदुपेयादाशंसे अधीयीय ।

मध्यमनोरमा

आशंसावाचकमुपपदमेतन् । उपेयादित्यत्र अधीयीयेत्यत्र च लिङ् । उपेष्यति अध्येष्ये इत्युभयोः क्रमेणार्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

कदा कर्हि वा भुङ्क्ते इति—कदा योगे कर्हि इत्यस्य वा योगे भुज्धातोः भविष्यति अर्थे लट्, श्नम्, श्नसोरल्लोपः, अनुस्वारपरसवर्णौ । पक्षे लृट्लुटौ अपि भवतः । **वर्तमान सामीप्येति**- समीमेव सामीप्यम्, स्वार्थे ष्यन् । तृतीयाध्यायस्य द्वितीयपादे 'वर्तमाने लट्' इत्यारभ्य उणादयो बहुलमिति सूत्रात् प्राक् वर्तमानेप्रत्ययाः कृताः ते सर्वे तेनैव विशेषणेन ताभ्यः प्रकृतिभ्यश्च वर्तमान समीपे भूते भविष्यति च वा भवन्तीत्यर्थः सिद्ध्यति । भूतभविष्यतोः वर्तमान-सामीप्यात् अत्र ग्रहणं भवति । अतः कदा आगतोऽसि इति आगतं प्रति प्रश्ने अयमागच्छामि इत्युत्तरं वर्तमाने दत्तम् । अर्थात् अव्यवहितपूर्वकाले आगतः आगच्छामि इति वक्ति, तत्र वर्तमानसमीपकाले भूते लट् भवति । वर्तमानाऽभावे आगमम् इति लुङि भवति । एवमेव कदा गमिष्यसीति प्रश्ने गच्छामि इत्युत्तरम् । अर्थात् अव्यवहितोत्तरकाले गमिष्यामि इति अर्थः। अत्र वर्तमानकालसमीपे भविष्यति लट् भवति । विकल्पे लृट् । **आशंसायामिति**— अप्राप्तविषयस्य प्राप्तेरिच्छाऽऽशंसा, सा च भविष्यत्कालिकैव । अतः भविष्यत्काले भूतवद् वर्तमानवच्च प्रत्ययाः वा स्युरित्यर्थो भवति ।

हिन्दी

९८१. कदा और कर्हि के योग में लट् होता है भविष्य अर्थ में विकल्प से ।

९८२. वर्तमानकाल में होने वाले प्रत्यय वर्तमान के समीप भूत और भविष्यत् अर्थ में भी होते हैं विकल्प से ।

९८३. आशंसा अर्थ में भविष्यत् काल में भूतवत् व वर्तमानवत् प्रत्यय होते हैं ।

९८४. क्षिप्रवाचक उपपद रहने पर आशंसा अर्थ में लृट् लकार होता है ।

९८५. आशंसावाची उपपद रहने पर भविष्यत् अर्थ में लिङ् होता है । भूतवत् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९८६. हेतुहेतुमतोर्लिङ्-३।३।१५६॥ वा स्यात् । कृष्णं नमेच्चेत् सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति ।

वा. भविष्यत्येवेष्यते ॥ नेह हन्तीति पलायते ।

९८७. इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ-३।३।१५७॥ इच्छामि भुञ्जीत भुङ्क्तां वा भवान्। एवं कामये प्रार्थये ।

वा. कामप्रवेदने इति वक्तव्यम् । नेह-इच्छन् करोति ।

९८८. लिङ् च-३।३।१५९॥ समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु लिङ् । भुञ्जीयेतीच्छति। विधिनिमन्त्रणेति लिङ् । विधिः प्रेरणम्, भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् । यजेत । निमन्त्रणं नियोगकरणम्, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनम् । इह भुञ्जीत । आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा । इह आसीत ।

मध्यमनोरमा

इच्छामीति—इच्छार्थकमुपपदम्, भुञ्जीतेति लिङ्, भुङ्क्तामिति लोट् । **कामप्रवेदने इति**—कामस्य इच्छाया वेदने अनुभवे, उत्तमपुरुषे इच्छामीत्यादौ कामप्रवेदनमस्ति । इच्छन् करोतीत्यादौ परकार्येच्छायाः अवेदनात् कामप्रवेदनं नास्तीति न लिङ् । क्रियादिना इच्छामनुमाय इच्छन् कुरुते इति प्रयुक्त इति भावः । **भुञ्जीयेतीच्छति इति**—अत्र य एक इच्छाकर्त्ता स एव भोजनकर्तेति इच्छार्थकतुल्यकर्तृकात् भुज्धातोर्लिङ् । **यजेतेति** वाक्यं **यजेतेति** पदम् । ईश्वरापेक्षया सर्वस्य निकृष्टत्वान्निकृष्टप्रवर्तनम्, इदं विधिपदेनोच्यते । **तेन लोटानुकर्षणमिति**-विधिकामचारानुज्ञयोर्लोटः सिद्धत्वात् प्राप्तकाले पूर्वसूत्रे लोटोऽसिद्धेरस्मिन् सूत्रे लोटोऽनुवृत्तिः प्राप्तकालार्थेत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हेतुहेतुमतोरिति—हेतुभूते हेतुमति वाऽर्थे वर्तमानाद्धातोर्लिङ् भवति भविष्यति अर्थे । **कृष्णं** नमेच्चेत् सुखं यायात् इत्यत्र कृष्णस्य नमनं सुखे हेतुः । तत्रानेन विधिलिङ् । पक्षे लृडेव । **हन्तीति पलायते इति**—हेतुहेतुमतोर्लिङ् भविष्यति एवार्थे इष्यते इति वार्तिकाशयात् अत्रोदाहरणे न भवति लिङ् । यतो हि इतिशब्दः हेतौ, वर्तमानकालिकहननाद्धेतोः इत्यर्थः स्वीक्रियते, भविष्यदर्थाभावान्न लिङ् । **लिङ् चेति**—समानकर्तृकेषु इति, इच्छार्थेषु इति च अनुवर्तते । **तदाह**—समानकर्तृकेषु इत्यादि । समानकर्तृकेषु तुमुन् इत्यनेन इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ इत्यस्य बाधे प्राप्तेऽनेन लिङ् विधीयते । तेन **भुञ्जीय इतीच्छतीत्यत्र** भुज्धातोः इष्धातोश्च समानकर्तृकत्वाद् लिङेव ।

हिन्दी

९८६. हेतु व हेतुमद्भाव में धातु से लिङ् होता है, विकल्प से ।

वा. भविष्यत् अर्थ में ही हेतु व हेतुमद्भाव रहने पर लिङ् होता है ।

९८७. इच्छार्थक शब्दों के उपपद रहने पर लिङ् व लोट् होता है ।

वा. कामप्रवेदन = अन्य के प्रति स्वाभिप्राय प्रकाशन, में ही लिङ्, लोट् होते हैं ।

९८८. समानकर्तृक इच्छार्थक उपपद होने पर लिङ् लकार होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः । पुत्रमध्यापयेत् । संप्रश्नः संप्रधारणम् । किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् । प्रार्थनं याच्ञा । भो भोजनं लभेय । एवं लोट् ।

९८९. प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च-३।३।१६३।। प्रैषः विधिः । अतिसर्गः कामचारानुज्ञा । भवता यष्टव्यम् । चाल्लोटोऽनुकर्षणं प्राप्तकालार्थम् । भवान् यजताम् ।

९९०. अर्हे कृत्यतृचश्च-३।३।।१६९।। चाल्लिङ् । त्वं कन्यां वहेः ।

९९१. शकि लिङ् च-३।३।१७२।। शक्तौ लिङ् स्याच्चात्कृत्याः । त्वं भारं वहेः ।

९९२. धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः-३।४।१।। धात्वर्थानां सम्बन्धे यत्र काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि स्युः । तिङन्तवाच्यक्रियायाः प्राधान्यात्तदनुरोधेन गुणभूत-क्रियावाचिभ्यः प्रत्ययाः । वसन्ददर्श । भूते लट् । अतीतवासकर्तृकं दर्शनमित्यर्थः । सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता, सोमेन यक्ष्यमाणो यः पुत्रस्तत्कर्तृकं भवनम् ।

मध्यमनोरमा

भवान् यजताम् इति—अत्र कालः प्राप्तः इत्यर्थो लिङा द्योत्यते । **त्वं भारं वहेरिति**—भारं बोढुं शक्त इत्यर्थः । **वसन् ददर्शेति**—तिङन्तक्रियानुरोधेन वसन् इत्यत्र गुणीभूता या वास-क्रिया तद्वाचिनो वस्धातोरपि भूतार्थे लट्, लटः शत्रादेशः । **सोमयाजीति**—सोमशब्दे उपपदे यज्धातोर्भूतार्थे करणे यज इति णिनिर्विहितः । **भवितेति**—तिङन्तवाच्य-भविष्यत्-क्रिया-नुरोधेन भविष्यदर्थे भवति, अत यक्ष्यमाण इति लृडादेशः शानच् कृतः ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृत्याश्चेति—प्रैषादिषु लोट्, कृत्यप्रत्ययाश्च भवन्ति । **भवता यष्टव्यमिति**—भावे तव्यप्रत्ययः प्राप्तकाले भवति । **अर्हे कृत्येति**—अर्हे = योग्ये, कर्तरि गम्यमाने कृत्यप्रत्ययाः तृचश्चेति चकारात् लिङ् च भवन्ति । **त्वं कन्यां वहेरिति**—त्वं कन्यामुद्वोढुं योग्यः इत्यर्थः । तत्र वह्धातोः लिङ् भवति । कृत्यप्रत्यये सति त्वया कन्या वहनीया, वोढव्या इत्यपि भवति । तृचि त्वं कन्यां वोढा इत्यपि च । **सोमयाज्यस्येति**—अस्य सोमयाजी पुत्रो भविता इत्यत्र सोमयाजीति भूते विहितः, सः भविता इति भविष्यत्क्रियासम्बन्धेन अनद्यनभविष्यति अर्थे एव ज्ञेयः ।

हिन्दी

९८९. प्रैष = विधि, अतिसर्ग = कामचारानुज्ञा तथा प्राप्तकाल अर्थ में कृत्य प्रत्यय होते हैं व लोट्लकार भी होता है ।

९९०. योग्य कर्ता के गम्यमान होने पर कृत्य-प्रत्यय, तृच्-प्रत्यय, और लिङ् होता है ।

९९१. शक्य अर्थ में कृत्य-प्रत्यय व लिङ् लकार होते हैं ।

९९२. धात्वर्थों के सम्बन्ध गम्यमान होने पर जिस काल में जो प्रत्यय विधान किये गये हैं, वे उससे भिन्नकाल में भी हो सकते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९९३. क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा तध्वमोः-३।४।२।। पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोर्लोट् तस्य हिस्वौ स्तः । तिङामपवादः । तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञौ स्तस्तिङ्संज्ञौ च । तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा स्तः। पुरुषैकवचनसंज्ञे नानयोरतिदिश्येते, हिस्वविधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुषवचन-विषये परस्मैपदिभ्यो हिः कर्तरि । आत्मनेपदिभ्यः स्वो भावकर्मकर्तृषु ।

९९४. समुच्चयेऽन्यतरस्याम्-३।४।३।। अनेकक्रियासमुच्चये द्योत्ये प्रागुक्तं वा स्यात् ।

९९५. यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्-३।४।४।। आद्ये लोड्विधाने लोट्प्रकृतिभूत एव धातुरनुप्रयोज्यः ।

९९६. समुच्चये सामान्यवचनस्य-३।४।५।। समुच्चये लोड्विधौ सामान्यार्थस्य धातोरनुप्रयोगः स्यात् ।

मध्यमनोरमा

परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञाविति—तेन परस्मैपदिभ्यो धातुभ्यो हिः, आत्मनेपदिभ्यः स्व इत्यर्थः । **पुरुषैकवचनसंज्ञे इति**—सिप्थासोरादेशयोर्हिस्वयोर्मध्यमपुरुषैकवचनसंज्ञावत् अनयोरपि हिस्वयोः परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञावत् पुरुषवचनसंज्ञा न भवति । मध्यमपुरुषैकवचने हिस्वयोः सिद्धत्वादेव तत्र हिस्वविधानं व्यर्थं स्यादिति भावः । **अतिदिश्येते इति**—अत्र सूत्रे हिस्वयोः लोडादेशधर्मातिदेशो व्याख्यायते । तेन लोडादेशधर्मयोः परस्मैपदात्मनेपदयोरतिदेशो भवत्येव, न तु पुरुषवचनसंज्ञयोर्लोडादेशधर्मातिदेश इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अनेक क्रियासमुच्चये इति—समुच्चये इति समुत्पूर्वात् चिनोतेर्भावे अच् । क्रियासमभिहारे इति सूत्रात् समभिहारपदवर्जं 'क्रिया लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोरिति सर्वमनुवर्तते । क्रिया इति लुप्तषष्ठीबहुवचनान्तं पदं समुच्चय इत्यनेनान्वेति । **तदा च सूत्रार्थः**—धातोर्लोट्, तस्य हिस्वौ तध्वमोर्विषये वा इति भवति । **आद्ये इति**—क्रियासमभिहारे लोट् इति सूत्रोक्तं 'पूर्वस्मिन्' इति पदेनात्र गृह्यते । अतः कृत्तौ आद्ये इति पदं लिखितम् । **यथाविधीति**—विधिमनतिक्रम्य यथाविधि । यस्याः प्रकृतेः लोटो विधानं तस्या अनुप्रयोगो भवतीति सूत्रार्थः। **सामान्यार्थस्येति**—उच्यते अनेनेति वचनः । एवं सामान्यवचनस्येत्यस्य 'समुच्चीयमानक्रिया-सामान्यवाचिनः' इत्यर्थो भवति ।

हिन्दी

९९३. पौनः पुन्य व भृश अर्थ में धातु से लोट् होता है । लोट् के स्थान में हि और स्व होते हैं । हि और स्व की परस्मैपद व आत्मनेपद संज्ञा तथा तिङ् संज्ञा होती है । त और ध्वम् के विषय में हि और स्व विकल्प से होते हैं ।

९९४. धातु से लोट्, लोट् को हि और स्व होते हैं, त ध्वम् के विषय में हि और स्व विकल्प से होते हैं (अन्य अर्थ पूर्व सूत्र की तरह) ।

९९५. 'क्रियाससमभिहार' सूत्र से लोट् विधान होने पर लोट् प्रकृतिभूत धातु का ही अनुप्रयोग हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अनुप्रयोगाद्यथायथं लडादयस्तिबादयश्च । ततः संख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः ।

वा. क्रियासमभि हारे द्वे वाच्ये । याहि याहीति याति । पुनः पुनः अतिशयेन वा यानं ह्यन्तस्यार्थः, एककर्तृकं वर्तमानं यानं यातीत्यस्य । इति-शब्दस्तु अभेदान्वये तात्पर्यं ग्राहयति । एवं यातः । यान्ति । याथः । याथ । यात यातेति यूयं यात । याहि याहीत्ययासीत्, यास्यति वा । अधीष्वाधीष्वेत्यधीते । ध्वं विषये तु पक्षे अधीध्वमधीध्वमिति यूयम् अधीध्वम् । समुच्चये-सक्तून् पिब, धानाः खादेत्यभ्यवहरति । अन्नं भुङ्क्ष्व, दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते । तध्वमोस्तु पिबत खादतेत्यभ्यवहरत । भुङ्ग्ध्वम् आस्वादयध्वम् इत्यभ्यवहरध्वम् । पक्षे हिस्वौ । अत्र समुच्चीयमानविशेषाणामनुप्रयोगार्थेन सामान्येनाभेदान्वयः । पक्षे सक्तून् पिबति । धानाः खादति । अन्नं भुङ्क्ते । दाधिकमास्वादयते ।

मध्यमनोरमा

अभेदान्वये इति—याहि याहि इत्यनेन यदुक्तं पुनः पुनरतिशयेन वा यानं, तस्य यातीत्येनोक्तं यदेककर्तृकं यानं तस्य च परस्परमभेदान्वयः । एवं याहि याहीति यात इत्यत्र द्विकर्तृकवर्तमानगमनाभिन्नं पुनः पुनरतिशयेन वा यानमित्यर्थः । एवं याहि याहीति यान्ति इति-बहुत्वकर्तृकं वर्तमानं यद्गतमभिन्नं पौनःपुन्येनातिशयेन वा यानमित्यर्थः । **यात यातेति-** तध्वमोर्विषये विकल्पविधानादत्र पक्षे तस्थेति तादेशः । **याहि याहीत्ययासीदिति**—एककर्तृकभूतं यद्गमनं तदभिन्नं पौनः पुन्यादिना गमनमित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । **सक्तून् पिबेति-** एककर्तृकं वर्तमानभोजनं सक्तुपानभक्षणोभयाभिन्नमित्यर्थः । **समुच्चीयमानविशेषाणामिति** सक्तुपानधानखादनादीनामित्यर्थः । **अनुप्रयोगार्थेनेति**—अभ्यवहरतीत्यनुप्रयोगस्यार्थो भोजन-सामान्येनेत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तस्येति—याहि याहीत्यस्यार्थः पुनः पुनरतिशयेन वा यानमिति । **याहि याहीत्ययासीत् इति-** यथाविध्यनुप्रयोग इति याधातोरेव लुङि प्रयोगः । तिप्, इट्सकौ । **अधीध्वमधीध्वमिति**—ध्वंविषये क्रियासमभिहारे इति विकल्पेन स्वादेशो विधीयते । स्वादेशाभावे लोटः मध्यमपुरुष-बहुवचने अधीध्वमिति । **सक्तून् पिब धानाः खादेत्यभ्यवहरति इति**—अत्र समुच्चये सामान्य-वचनस्येति सूत्रेण भक्षणसामान्यार्थकस्य अभ्यवपूर्वकस्य हृधातोरनुप्रयोगः । तस्माल्लट्, तिप्, शप्, गुणः, रपरत्वम् । दन्तसम्मर्दनं विना द्रवद्रव्यभक्षणं पानम् इत्युच्यते। कठिनस्य द्रव्यस्य चर्वणं खादनमित्युच्यते । तयोः सामान्यरूपम् अभ्यवहारः । **तध्वमोस्तु इति-** तध्वमोर्विषये हिस्वविकल्पात् अभ्यवहरत इत्येव । पक्षे कदाचित् हिस्वौ अपि भवतः । **पक्षे इति**—समुच्चये लोटः अभावपक्षे सामान्यवचनस्य अनुप्रयोगोऽपि न भवति ।

हिन्दी

९९६. समुच्चयेऽन्यतरस्याम् से लोट् का विधान होने पर सामान्यार्थवाची धातु का अनुप्रयोग हो । अनुप्रयुज्यमान से यथाप्राप्त लट् तिबादि भी हों ।

वा. क्रियासमभिहार में लोडन्त को द्वित्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

एतेन-

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा वली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥

इति व्याख्यातम् । अवस्कन्दनलवनादिरूपा भूतानद्यतनपरोक्षा एककर्तृका अस्वास्थ्यक्रियेत्यर्थात् । इह पुनः पुनश्चस्कन्देत्यादिरर्थ इति तु व्याख्यानं भ्रममूलकमेव । द्वितीयसूत्रे क्रियासमभिहारे इत्यस्याननुवृत्तेः लोडन्तस्य द्वित्वापत्तेश्च । पुरीमवस्कन्देत्यादि मध्यमपुरुषैकवचनमित्यपि केषाञ्चित् भ्रम एव। पुरुषवचनसंज्ञे इह नेत्युक्तत्वात् । इति लकारार्थप्रकरणम् ।

मध्यमनोरमा

पुरीमवस्कन्देति—यः बली रावणः नमुचिद्विषा इन्द्रेण विगृह्य विग्रहं कृत्वा इत्थममुना प्रकारेण अहर्दिवं दिने दिने दिवः स्वर्गस्य अस्वास्थ्यं चक्रे । **इदम नेनोक्तमस्वास्थ्यविशेषमाह- पुरीमवस्कन्देति-**पुरीममरावतीं चस्कन्द, नन्दनं लुलाव, रत्नानि मुषाण, अमराङ्गनाः जहार, अस्वास्थ्यं चकार, अत्र अवस्कन्दा दीनामस्वास्थ्यक्रियाविशेषणत्वम्, अस्वाथ्यं चक्रे इत्यनेनोपात्तभूतानद्यतनपरोक्षे रावणकर्तृके अस्वास्थ्यकरणसामान्ये अभेदेनान्वय इति इत्थं शब्देन बोध्यते । अत एवाह अवस्कन्दनलवनादि रूपेति । **द्वित्वापत्तेश्चेति**—क्रियासमभिव्याहारे द्वे वाच्ये इत्यनेनेत्यर्थः । **भ्रम एवेति**—युष्मत्सामानाधिकरण्ये मध्यमपुरुषविधानात्, अत्र तथाभावादित्यर्थः। इति लकारार्थप्रक्रिया । इति शिवानन्द भट्टानामाज्ञया रामशर्मणा व्याख्यातं मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः टीकायाः मध्यमनोरमायाः सुप्तिङन्तं समाप्तम् ।

कण्ठे विद्यानिवासस्य स्थिता मध्यमनोरमा ।
गोस्वामिश्रीशिवानन्दमुदं वितनुतां सदा ॥

तिङन्तसंख्या-३९०० । संवत् १८५० ॥

मध्यमनोरमापूरणी

एतेनेति—समुच्चयेऽन्यतरस्याम् इत्यनेन समुच्चये सामान्यवचनस्येत्यनेन च सूत्रेण माघकाव्यस्थं पुरीमवस्कन्देत्यादि श्लोकरूपं वाक्यं व्याख्यातम् । श्लोकस्थानि अवस्कन्दादिपदानि सूत्रयोरुदाहरणत्वेन प्रदर्शितानीत्यर्थः । **पुरीमवस्कन्देति**—यः बली रावणः नमुचिद्विषा शक्रेण विगृह्य विरोधं प्राप्य पुरीमवस्कन्द = पुर्याः अमरावत्याः पीडनम् कृतवान्, नन्दनं लुनीहि = नन्दनवनं लुलाव, रत्नानि मुषाण = रत्नानि चोरयामास, अमराङ्गनाः हर= देवाङ्गनाः जहार, इत्थम् = एवंप्रकारेण अहर्दिवं दिने दिने दिवः-स्वर्गस्य अस्वास्थ्यम्-अनारोग्यं चक्रे कृतवानिति समुदयार्थः । **अत्र इत्थम् इति शब्दः इति** पर्यायः अवस्कन्दादिविशेषक्रियाणाम् अस्वास्थ्यक्रियासामान्ये अभेदं बोधयति । एतदेव मूले अवस्कन्दनलवनादिरूपेत्यादिनोच्यते । **भ्रममूलकमेवेति-** अवस्कन्द इत्यस्यार्थः पुनः पुनश्चस्कन्देति भ्रममूलक एव । **तदेवोपपादयति**—द्वितीयसूत्रे इत्यादिना । समुच्चयेऽन्यतरस्यामिति सूत्रे क्रियासमभिहारे इत्यस्यानुवृत्तिः नायाति । अन्यथा लोडन्तानामवस्कन्दादिक्रियाणां क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये इत्यनेन द्वित्वं प्रसज्येत । इति मधुबनी-मण्डलान्तर्गत-रुद्रपुरग्रामवास्तव्येन न्यायव्याकरणवेदान्तसाहित्याचार्योपाधिभाजाम् उमेश **चौधरी** शर्मणामात्मजेन अर्कनाथ **चौधरी** इत्याख्यमैथिलेन कृतायां **मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः** व्याख्यायां. मध्यमनोरमापूरण्यां. सुप्तिङन्तप्रकरणं समाप्तम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ कृदन्तप्रकरणम् (कृत्यप्रक्रिया)

९९७. धातोः ३।१।९१॥ आतृतीयाध्यायान्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङिति कृत्संज्ञा।

९९८. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्-३।१।९४॥ अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादः प्रत्ययः उत्सर्गस्य वा बाधकः स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

मध्यमनोरमा

ओं श्रीगणेशाय नमः।

ओं पाणिन्यादिमुनीन् नत्वा गुरुं गणपतिं शिवम्।
बालव्युत्पादनायाथ कृतां व्याख्यां समारभे ॥१॥
पुनरुक्तिर्नवोद्भाव्या ग्रन्थेऽस्मिन् सूरिभिः क्वचित्।
पौनःपुन्येन बालानां व्युत्पत्तिर्जायते यतः ॥२॥

अथ परमकारुणिको बालव्युत्पादनेच्छुः श्रीवरदराजः कृदतिङिति तिङ्भिन्नप्रत्ययस्य कृत्संज्ञाकरणात् कृतां तिङ्ज्ञानाधीनत्वात् तिङ्निरूपणानन्तरमेव कृतां निरूपणमुचितमिति तिङो निरूप्य कृतो निरूपयितुं सकलकृद्विषयमधिकारसूत्रमादत्ते-**धातोरिति**। ननु तिङ्निरूपणात् प्रागपि स्पृशोऽनुदके क्विन्, ऋत्विग्दधृगित्यादिना क्विनादिनिरूपणं कृतमिति कथमिदं भवदुक्तं संगतिं संगच्छते इति चेन्न, क्विन्नादिनिरूपणस्य तत्र प्रासङ्गिकत्वात्। प्राधान्येन च कृतामत्रैव निरूपणान्नोक्तशङ्कावकाश इति। यद्यपि धातोरेकाचो हलादेरिति सूत्राद् धातोरित्यनुवर्तते एव तथाप्यार्धधातुकसंज्ञाया आश्रितशब्दव्यापारत्वलाभाय पुनर्धातोरिति ग्रहणं कृतम्। अन्यथा आर्धधातुकं शेष इत्यनेन तिङ्शिद्भिन्नस्य धातोर्विहितस्य प्रत्ययमात्रस्यार्द्धधातुकसंज्ञायां पूभ्यां लूभ्यामित्यादौ इङ्गुणौ स्याताम्, धातोर्विहितत्वेन भ्यामादेरार्धधातुकत्वात्, पुनर्धातुग्रहणे कृते तु तव्यदादयः इव धातोरित्येवमविधानात् भ्यामादेर्नार्धधातुकत्वमिति दिक्। प्राग्लादेशाद् धात्वधिकार इति पक्षोऽयुक्त इत्याशयेनावधिं सूचयन् वक्ष्यमाणविधिभिः सहास्यैकवाक्यतां वक्ष्यमाणामत्रैवाह- आ तृतीयेति। प्राग्लादेशादिति पक्षे तु तिङ्शित्सार्वधातुकम् इत्यत्र धातोरित्यधिकाराभावाच्छित्प्रत्ययमात्रस्य सार्वधातुकत्वे सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वे च हरीनित्यादौ घेर्ङितीति गुणः स्यादिति ज्ञेयम्। वक्ष्यमाणप्रत्ययानां व्यापकसंज्ञाप्रसङ्गात् पूर्वार्द्धोक्त सूत्रेणाह-**कृदतिङ् इति कृत्संज्ञेति**। **वासरूपोऽस्त्रियाम्-** परिभाषेयं कृन्मात्रविषया, तक्रकौण्डिन्यन्यायेनान्यत्रेव कृत्स्वप्यपवादेनोत्सर्गस्य नित्यं बाधे प्राप्ते क्वचिदपवादविषये

मध्यमनोरमापूरणी

आतृतीयेति—प्रत्ययः परश्चेति तृतीयाधिकारात् प्रारभ्य कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् इति यावच्च सूत्रैः केचित् प्रत्ययाः विहिताः, अधुना तदुत्तरसूत्रैः कृतान् प्रत्ययान् निरूपयितुकामः **कथयति**-धातोरिति। तृतीयाध्यायं यावत् ये प्रत्यया उक्तास्ते धातोः स्युः।

हिन्दी

९९७. तृतीयाध्यांय के समाप्तिपर्यन्त जो प्रत्यय कहे गए हैं वे धातु से होते हैं।

९९८. इस धातु के अधिकार में असरूप अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग के बाधक होते हैं विकल्प से, 'स्त्रियाम्' अधिकार को छोड़कर।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९९९. कृत्याः-३।१।९५।। ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः ।

मध्यमनोरमा

उत्सर्गस्य प्रवृत्त्यर्था, तेनाचो यत् ऋहलोर्ण्यदित्यपवादविषये तव्यदादयः औत्सर्गिका अपि प्रयुज्यन्ते । भव्यं भवितव्यम्, कार्यं कर्तव्यम्, वाच्यं वक्तव्यं वचनीयमित्यादि । वासरूप इत्यत्रासरूप इतिच्छेदः । अन्यथा लाघवे विशेषाभावेनासन्देहाय सरूपो वेति ब्रूयादित्याशयेनाह- **असरूप इति-** नोत्सर्गप्रत्ययेन समानं रूपं यस्य सोऽपवादप्रत्ययोऽसरूपः विभिन्नरूप इति यावत् । असरूप इति किम् ? कर्मण्यण्[1] इत्युत्सर्गः, सामान्यतो विहितत्वात् । आतोऽनुपसर्गे क इत्यपवादः, विशेषविहितत्वात् । स उत्सर्गस्य नित्यमेव बाधको यथा स्यात् । गोदः कम्बलदः । न च कृतेऽप्यसरूपग्रहणे अण्कयोरप्यसरूपत्वात् नेष्टसिद्धिरिति वाच्यम् । नानुबन्धकृतमसारूप्यमिति सिद्धान्तात् । सूत्रेऽस्त्रियामित्यत्र स्त्रीशब्दोऽधिकारपर इत्याशयेनाह- **स्त्र्यधिकारोक्तमिति** । तेन स्त्रियां क्तिन्नित्युत्सर्गक्तिनमप्रत्ययादित्यपवादोऽकारप्रत्ययो नित्यं बाधते । चिकीर्षा जिहीर्षा, नात्र क्तिन् । ननु स्त्रियामभिधेयायां स्त्रियामित्येवमुच्चार्य विहितो वाऽसरूपविधिर्नेति व्याख्यायतां, किमित्यधिकारपरत्वा[2]श्रयणमिति चेत्, अत्राह- स्त्रियां वाच्यायामिति पक्षे लव्या लतिव्येति यतो विषये तव्यो न स्यात्, द्वयोरपीह स्त्रीवाचकत्वात् । स्त्रियामिति शब्दोच्चारणपक्षे तु व्याक्रोशी व्यावक्रुष्टिरिति कर्मव्यतिहारे णचो विषये क्तिन्न स्यात्। द्वयोरपि स्त्रियामित्युच्चार्य विधानात् । ततश्च स्त्र्यधिकारोक्त विनेति व्याख्यैव ज्यायसीति दिक्। कृतामेव सतां कृत्येति विशेषसंज्ञा **कार्यविशेषविधानार्थेत्यधिकारान्तरमाह**—कृत्या इति,

मध्यमनोरमापूरणी

कृत्संज्ञेति—धात्वधिकारे तिङ्वर्जितस्य प्रत्ययस्य कृत् इति संज्ञा भवति । **वासरूपेति**—वा असरूपः अस्त्रियाम् इतिच्छेदः । समानं रूपं यस्य स सरूपः, न सरूपः असरूपः । अपवादसूत्रेण उत्सर्गस्य नित्यं बाधो भवति तत्र क्वचित् उत्सर्गसूत्रमपि प्रवर्तेत तदर्थमिदं सूत्रम् । अस्मिन् धात्वधिकारे असरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको भवति विकल्पेन, स्त्रियां क्तिन् इति स्त्र्यधिकारस्थमपवादं परित्यज्य । **उदाहरणम्**—ण्वुल्तृचौ इति उत्सर्गौ, तस्य इगुपधज्ञाप्रीकिरः क इत्यपवादः असरूपः, अतः क-विषये ण्वुल्तृचावपि भवतः । तेन रूपत्रयं भवति । यथा- विक्षिपः विक्षेपकः, विक्षेप्ता इति । यस्तु सरूप अपवादः स उत्सर्गं नित्यमेव बाधते । यथा कर्मण्यण् इति विहितम् अण्प्रत्ययं नित्यमेव आतोऽनुपसर्गे कः इति बाधते । तेन गां ददातीति गोदः इत्येकमेव रूपं भवति । यदि सूत्रेऽस्त्रियामिति नोच्येत तदा स्त्रियां क्तिन् इत्युसर्गमपि अप्रत्ययात् इति अपवादः विकल्पेन बाधेत । अतः अस्त्रियामिति । तेन चिकीर्षा जिहीर्षा इत्यादौ क्तिनं नित्यं प्रबाध्य अप्रत्यय एव भवति ।

हिन्दी

९९९. ण्वुल्तृचौ से पूर्व विहित प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती है ।

---

1. "कर्मण्यण् उत्सर्गकः" इति मूलपाठः ।
2. "आश्रयणेति" इति मूलपाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०००. कर्त्तरि कृत्-३।४।६७।। कृत्प्रत्ययः कर्त्तरि स्यात् । इति प्राप्ते-

१००१. तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः-३।१।९६।। एते भावकर्मणोरेव स्युः ।

१००२. तव्यत्तव्यानीयरः-३।४।७०। धातोरेते स्युः । एधितव्यम्, एधनीयं त्वया । भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वञ्च । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया।

वा. केलिमर उपसंख्यानम् । पचेलिमा माषाः । पक्तव्या इत्यर्थः । भिदेलिमाः सरलाः । भेत्तव्या इत्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययः ।

वा. वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्च । वसतीति वास्तव्यः ।

मध्यमनोरमा

सावधिकनिरवधिकभेदेनाधिकारस्य द्वैविध्यादस्य सावधिकत्वमाह- **ण्वुल्तृचाविति** । ण्वुल्तृजवधिकप्रत्ययानां कृद्व्याप्यकृत्यसंज्ञायाः फलमाशङ्क्य प्रदर्शयति,—कर्त्तरि कृदित्यादिना कृत्संज्ञकः प्रत्ययः कर्त्तरि स्यादिति सूत्रार्थः । कृत्यानामपि कृत्संज्ञाव्याप्तत्वेन कर्त्तरि प्राप्ते इत्याशङ्क्य सङ्गच्छते। **सूत्रेण समाधत्ते-तयोरेवेति**—तच्छब्देन भावकर्मणी परामृश्येते । **एवकारस्तु कर्तृयोगव्यवच्छेदार्थस्तदाह**—भावकर्मणोरेवेति । तक्रकौण्डिन्यन्यायेन कर्तृव्यवच्छेदे सिद्धे तन्न्यायस्यानित्यत्वज्ञापनार्थ इति भावः । **एते इति**— कृत्यसंज्ञकाः, क्तप्रत्ययः, खल्प्रत्ययार्थाश्चेत्यर्थः । तत्रापि सकर्मकेभ्यः कर्मणि अकर्मकेभ्यो भावे इति विभागः। **एधितव्यमिति**—एधवृद्धावित्यस्य फलसमानाधिकरणव्यापारवाचकत्वेनाकर्मकत्वाद् भावे तव्यत्तव्यौ । तव्यत्तव्ययोरार्धधातुकं शेष इत्यार्धधातुकत्वादार्धधातुकस्येतीटि रूपम् । नन्वन्यन्तरेणेष्टसिद्धेरुभयविधानं व्यर्थमिति चेन्न, तव्यदन्त्यस्य तित्स्वरितमिति स्वरितान्तत्वं, तव्यान्तस्य प्रत्ययस्येत्याद्युदात्तत्वमिति स्वरभेदात् । **एधनीयमिति**— अत्राप्येधवृद्धावित्यस्मादनीयर् । रेफस्योपोत्तमं रितीति स्वरार्थं क्रियमाणत्वेन हलन्त्यमित्यनेनेत्संज्ञात्वात् लोपः, वलादित्वाभावान्नेट् । त्वयेति कर्त्तरि तृतीया, भावार्थकप्रत्ययेन कर्तुरनभिहितत्वात् । तथा च युष्मदेककर्तृकवर्धनानुकूलो व्यापार इति क्रियाविशेष्यकः शाब्दबोधः । नन्वत्र कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते इति सिद्धान्ताल्लिङ्गसंख्यान्वययोग्यत्वात् द्विवचनादयः पुंस्त्वादयश्च स्युरित्याशङ्क्याह- **औत्सर्गिकमिति** । उत्सर्गः स्वभावस्तत्कृतं शब्दशक्तिस्वभावप्रयोज्यमिति यावत् । वस्तूनां स्वभावस्यापर्यनुयोज्यत्वात् । अत एव भाष्य एकवचनमुत्सर्गतः करिष्यत इत्युक्तम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृत्याः—कृत्याः इत्यस्य अधिकारोऽस्ति ण्वुल्तृचौ इत्यतः प्राक् । अर्थात् ण्वुल्तृचौ इत्यतः प्राक् विधीयमानाः प्रत्ययाः कृत्यसंज्ञकाः सन्ति । अवधौ प्रमाणन्तु अर्हे कृत्य तृचश्च इति सूत्रे कृत्यात् पृथक् तृचः पाठ एव ।

हिन्दी

१०००. कृत्प्रत्यय कर्ता में होता है ।

१००१. कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं ।

१००२. तव्यत् तव्य और अनीयर् प्रत्यय धातु से हों ।

वा. धातु से केलिमर् प्रत्यय होता है ।

वा. वस् धातु से कर्ता में तव्यत् प्रत्यय हो और वह णिद्वत् हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१००३. कृत्यचः-८।।४।२९।। उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्याच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नस्य णत्वं स्यात् । प्रयाणीयम् । अचः किम् ? प्रमग्नः ।
वा. निर्विण्णस्योपसंख्यानम् ।

मध्यमनोरमा

चेतव्य इति—चि चयन इत्यस्य राशीभवनस्य धर्मनिष्ठत्वाद् राशीकरणस्य युष्मदर्थकर्तृनिष्ठत्वात् फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वेन सकर्मकत्वाद् धर्मादिकर्मणि कृतयोस्त-व्यत्तव्ययोरार्धधातुकत्वेऽप्यूदृदन्तैरित्युक्तलक्षणवत्त्वेनानुदात्तत्वादेकाच उपदेशे इति नेट् । **चयनीय इति**—चिनोतेरनीयर्, रेफस्य पूर्ववद् व्यवस्था । अस्यार्धधातुकं शेष इत्यार्धधातु-कत्वात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अयादेशः, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकात् स्वादयः । कर्मणि प्रत्यये च यथाकर्म लिङ्गवचनादिव्यवस्था, प्रकृते च कर्मणो धर्मस्य पुंस्त्वात् पुंस्त्वम्। एवं चेतव्यौ धर्मौ । चेतव्या धर्मा इति द्विवचनाद्यूहनीयम् । शाब्दबोधश्च युष्मदर्थैक-कर्तृकचयनकर्मीभूतो धर्म इत्येवं कर्मविशेष्यक एव बोध्यः । एवमन्यत्रापि । **पचेलिमा इति**—डुपचष् पाक इत्यस्य सकर्मकत्वात् कर्मणि केलिमर्, कस्य लशक्वतद्धित इतीत्संज्ञकत्वात् रेफस्य च हलन्त्यमितीत्संज्ञत्वात्तयोर्लोपः । **भिदेलिमा इति**—भिदिर् विदारणे इत्यस्यापि सकर्म-कत्वात् कर्मणि केलिमर्, पूर्ववद् रेफलकारयोर्निवृत्तिः । कित्त्वेन क्ङिति इति निषेधान्न लघू-पधगुणः । एतदर्थमेव कानुबन्धकरणम् । सरला वृक्षविशेषाः, कर्मणि [1]प्रत्यय इति, न तु कर्म-कर्तरि । अयं भावः तयोरेव कृत्यक्तखलर्था इत्यत्र कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः इति कर्त्तुः कर्मवद्-भावेनातिदेशकर्मणोऽपि ग्रहणात् कर्म्मकर्त्तर्य्यपि कृत् प्रत्यय इति वृत्तिकृत्, तन्न, भाष्ये कर्मवत्-कर्मणोऽन्यत्र व्यत्ययो बहुलँल्लिङ्याशिष्यङ्ङिति संहितया पाठे अनुस्वारस्य परसवर्णेन जाते लकारे तस्योपरि लकारान्तरं प्रश्लिष्टमत्रानुवर्त्त्य च लकारवाच्यस्याभावादिति कर्त्तुः कर्मवद्भावो भवति, न कृत्यप्रक्रियायां, तत्र कर्मणः कर्त्तृत्वविवक्षायामपि तादृशस्य कर्त्तुर्लकारस्य वाच्यत्वा-भावादिति । तव्यतः कृत्यत्वात्तयोरेवेति भावे प्राप्नोति, कर्तरि विधानार्थं वार्तिकं दर्शयति-**वसेस्तव्यदिति**, वस् धातोः कर्तरि तव्यत् स्यात्, स च णिद्वदित्यर्थः । तद्भाववति प्रयुज्यमान-स्तच्छब्दो विनाऽपि ्वतिं वत्यर्थं गमयतीति न्यायात् । **वास्तव्य इति-** वस् निवासे, अस्मात् तव्यतो णिद्वद्भावात् अत उपधाया इति वृद्धिः; इट् तु न, वसतेरनिट्कत्वात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अचः किम् ? **प्रमग्न इति**—सूत्रेऽचोऽभावे प्रमग्न इत्यत्र गकारात् परस्यापि क्तस्थानापन्नस्य= नस्य णत्वं प्रसज्येत । **निर्विण्ण इति**—निर्विद् त इति जाते रदाभ्यामिति तस्य दस्य च नत्वम् । अचः परत्वाऽभावात् कृत्यचः इत्यनेन अप्राप्तं णत्वमनेन निर्विण्णस्येत्यनेन विधीयते । पूर्वनस्य ष्टुत्वेन णः ।

हिन्दी

१००३. उपसर्गस्थ निमित्त से परे अच् के आगे कृत्प्रत्ययस्थ न को णत्व होता है ।
वा. निर् पूर्वक विद् के प्रत्ययसम्बन्धी न को णत्व होता है ।

1. 'प्रत्यया' इति मूलपाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१००४. णेर्विभाषा-८।४।३०॥ प्राग्वत् । प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम् ।
१००५. हलश्चेजुपधात्-८।४।३१॥ हलादेरिजुपधाद्धातोः परस्य कृन्नस्याचः परस्य णो वा । प्रकोपणीयम् । प्रकोपनीयम् । हलः किम् ? प्रोहणीयम् । इजुपधात् किम् ? प्रवपणीयम् ।
१००६. इजादेः सनुमः-८-४-३२॥ सनुमश्चेद्भवति इजादेर्हलन्ताद् विहितो यः कृत्तत्स्थस्यैव । इखि गतौ । प्रेङ्खणीयम् । इजादेः किम् ? मगि सर्पणे । प्रमङ्गनीयम् ।

मध्यमनोरमा

अधुना कृत्यच इत्यारभ्य वा निंसनिंक्षनिन्दामित्यन्तमवान्तरं णत्वप्रकरणं दर्शयति, **कृत्यच इति**—उपसर्गादसमास इत्यत उपसर्गाद्, रषाभ्यामित्यतो रषाभ्यामिति चानुवर्त्त्य तत्र तात्स्थ्यात्ताच्छब्द्यमित्याह-**उपसर्गस्थान्निमित्तादिति । प्रयाणीयमिति**-या प्रापणे इत्यस्मात्तव्यत्तव्यानीयर इत्यनीयर्, सवर्णदीर्घः, प्रकर्षविवक्षायां ते प्राग्धातोरिति प्रेत्यस्य प्राग्प्रयोगः, उपसर्गाः क्रियायोगे इत्युपसर्गसंज्ञायामनेन णत्वम् । अनीयरः कृदतिङिति कृत्त्वेन तत्स्थत्वात् । **प्रमग्न इति**—टुमस्जो शुद्धावित्यस्माद् वक्ष्यमाणो भूते क्तः, आदितश्चेति तकारस्य नत्वम्, तस्यासिद्धत्वात् स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः, चोः कुरिति कुत्त्वेन गः । गतिसमासः । अत्र नकारस्य कृत्स्थत्वेऽपि अचः परत्वाभावान्न णः । प्रमग्न इवाचः परत्वाभावादप्राप्ते निर्विण्णस्येति वार्तिकारम्भः । निपूर्वाद् विद् ज्ञाने इत्यस्मात् कृतो निष्ठातस्य रदाभ्यां निष्ठातो न इति वक्ष्यमाणेन नत्वं, पूर्वस्य धातोर्दस्य च । ततोऽनेन निष्ठानस्य णत्वं पूर्वस्य धातुनकारस्य च ष्टुत्वेन णः। **णेर्विभाषा**—पूर्वेण नित्ये प्राप्ते वचनम् । **प्रयापणीयम्, प्रयापनीयमिति**—या प्रापणे, तस्मात् प्रयोजकणिचि अर्तिह्रीब्लीति पुकि यापीति ण्यन्तादनीयर्, णेरनिटीति णिलोपः, ततो गतिसमासः, ततो णत्वविकल्पः । इजुपधस्य हलन्तत्वाव्यभिचाराद्धल इत्यनेन तदादित्वं लक्ष्यत इत्याह- **हलादेरिति । प्रकोपणीयमिति**-कुप् क्रोधे, प्रपूर्वादस्मादनीयर्, लघूपधगुणः, पूर्ववत् समासः, णत्वविकल्पः । **प्रोहणीयमिति**—ऊह् वितर्के, प्रपूर्वादनीयर्, लघूपधत्वाभावान्न गुणः, अत्र कृत्यचः इति नित्यमेव णत्वम् । **प्रवपणीयमिति**—टुवप् बीजसन्ताने, अनीयर्, अत्रापि कृत्यच इति नित्यं णत्वम् । कृत्यच इत्येव सिद्धे नियमार्थमिदमित्याह- **सनुमश्चेत्यादि,** इह हल इत्यनुवृत्तं तदन्तपरं न तु तदादिपरम्, इजादेर्हलादित्त्वासम्भवात्तदाह-हलन्ताद् विहित

मध्यमनोरमापूरणी

णेर्विभाषेति—अत्र कृत्यचः इति सूत्रमनुवर्तते, रषाभ्यां नो णः इत्यपि चानुवर्तते, णेरिति कृतो विहितविशेषणम् । **तदा चार्थः**-उपसर्गस्थात् रेफषकारात् परस्य ण्यन्ताद् विहितस्य कृत्स्थनस्य णो वेति ।

हिन्दी

१००४. उपसर्गस्थ रेफषकार से परे ण्यन्त से विहित कृत् प्रत्यय के न को ण होता है, विकल्प से ।

१००५. हलादि इजुपध धातु से परे अच् के पर नकार को णत्व होता है विकल्प से ।

१००६. नुम् सहित से परे यदि णत्व हो तो इजादि हलन्त धातु से विहित कृत् प्रत्ययस्थ न को ही हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy; Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१००७. वा निंसनिक्षनिन्दाम्-८।४।३३।। एषां नस्य णो वा कृति । प्रणिंसितव्यम् । प्रनिंसितव्यम् ।

१००८. न-भा-भू-पू-कमि-गमि-प्यायी-वेपाम्-८।४।३४।। एभ्यः कृन्नस्य णो न । प्रभानीयम् । प्रभवनीयम् ।

वा. ण्यन्तभादीनामुपसंख्यानम् । प्रभापनीयम् ।

१००९. कृत्यल्युटो बहुलम्-३।३।११३।।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ।।

स्नान्त्यनेन स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ।

मध्यमनोरमा

इति । यदि तु विहितविशेषणं न व्याख्यायेत तर्हि नियमार्थता न लभ्येत, णिजन्ताद् विहितस्यापि कृत्स्थस्य नकारस्य णिलोपे कृते हलन्तात् परत्वेन णेर्विभाषेति विकल्पं बाधितुं विधेः सम्भवात् । इष्टापत्तौ त्वणिजन्तप्रकृतिकानीयर्प्रत्ययान्तं प्रेङ्खणीयमित्याद्युदाहरणं न स्यात्, किन्तु णिजन्तप्रकृतिकमेवोदाहरणं स्यात् । किञ्चास्य सूत्रस्य नियमार्थत्वाभावात् प्रमङ्गनीयमित्यत्र कृत्यच इत्यनेन णत्वं स्यादतो विहितविशेषणमवश्यं स्वीकार्यम् । नन्वेमपि नियमार्थता न प्रयुज्यते, प्रपूर्वादिवि[1] प्रीणने इत्यस्माल्ल्युटि प्रेन्वनमित्यत्र विध्यर्थत्वसम्भवात्, इदित्त्वनिमित्तकनुमो नकारस्य झल्परत्वाभावात् अननुस्वारे तेन व्यवधानात् कृत्यच इत्यस्याप्राप्तेरिति चेन्न, नुम्ग्रहणस्याट्कुप्वाङित्यत्रेवानुस्वारोपलक्षणार्थत्वात् । **प्रेङ्खणीयमिति-** इख इखि वख वखि इति दण्डके पठितो गत्यर्थः, इदित्त्वान्नुम्, अनुस्वारपरसवर्णौ, अनीयर्, कृत्यच इति णत्वम् । नियमफलमाह-**प्रमङ्गनीयमिति-** इदित्त्वान्नुम्, अनीयर्, अत्र कृत्यच इति न णः । **वा निंस इति-** कृत्यच इत्यतः कृतीत्यनुवर्तनादाह-कृति पर इति । **प्रणिंसितव्यमिति-** निसि चुम्बने, तव्यत्, आर्धधातुकस्येडितीट्, उपसर्गादसमासेऽपि इति नित्ये प्राप्तेऽनेन विकल्पः । एवं निति चुम्बने निदि कुत्सायामित्यनयोरपि तव्यदादौ प्रणिंतितव्यं प्रनिन्तितव्यं प्रणिन्दितव्यं प्रनिन्दितव्यमित्युदाहार्यम् । **न भेति- प्रभानीयम् इति-** भादीप्तौ, अनीयर्, धातुस्थाकारेण सवर्णदीर्घः; कृत्यच इति प्राप्तणत्वस्यानेन निषेधः ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्नानीयमिति—स्नाधातोरकर्मकत्वाद् भावे प्राप्तः अनीयर् कृत्यल्युट इत्यनेन करणे विधीयते। स्ना अनीय इति जाते सवर्णदीर्घः । **दानीय इति**—दा धातोः कृत्यल्युट इति सम्प्रदानेऽनीयर्, सवर्णदीर्घः, स्वादिकार्यम् ।

हिन्दी

१००७. उपसर्गस्थ निमित्त से परे निंस निंक्ष व निन्द धातुओं के न को णत्व होता है । कृत् परे विकल्प से ।

१००८. भाभू आदि से परे कृत् के न को णत्व नहीं होता है ।

वा. ण्यन्त भादि धातुओं से परे भी न को ण नहीं होता है ।

१००९. कृत्य प्रत्यय और ल्युट प्रत्यय बहुल प्रकार से होते हैं ।

---

1. 'इवि धातुः व्याप्तौ अस्ति, न तु प्रीणने । केचित् हिवि प्रीणने इत्यस्य हकारमपहाय इवि प्रीणने इति पठन्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०१०. ऋदुपधाच्चाक्लृपि चृतेः-३।१।११०॥ क्यप् स्यात् । वृत्-वृत्यम् । वृध् वृद्ध्यम् । क्लृपिचृत्योस्तु-कल्प्यम्, चर्त्यम् ।

मध्यमनोरमा

प्रभवनीयमिति—भू सत्तायाम्, अनीयर्, आर्धधातुकनिमित्तो गुणोऽवादेशः, ततो णत्वनिषेधः। एवं पूञ् पवने कमु कान्तौ गम्लृ गतौ ओप्यायी वृद्धौ वेञ् तन्तुसन्ताने पा पाने इत्येतेषां प्रपवनीयम्, प्रकमनीयम्, प्रप्यायनीयं प्रपानीयमित्याद्यूह्यानि, परन्तु प्रकमनीयमित्यत्रायादय आर्धधातुके वेति णिङो वैकल्पिकत्वात्तदभावः । प्रवानीयमित्यत्रादेच उपदेशेऽशितीत्यात्वञ्च विशेषः । **ण्यन्त भादीनामिति**—ण्यन्तस्य प्रकृत्यन्तरत्वादप्राप्ते निषेधार्थं वार्तिकारम्भः । **प्रभापनीयमिति**—भादीप्तौ, हेतुमति चेति णिच्, अर्तिह्रीति पुक्, भापीति, अतोऽनीयर्, णेरनिटीति णिलोपः, प्रेण गतिसमासः, ततोऽनेन णत्वनिषेधः । एवं प्रभावनीयं प्रपावनीयम्, अत्रोभयत्र णिज्निमित्तका वृद्धिः । प्रकमनीयं प्रगमनीयमुभयत्रामन्तत्वेन मित्त्वान्मितां ह्रस्व इति ह्रस्वः । प्रप्यायनीयं प्रवापनीयम्, अत्रादेच इत्यात्वे कृते पुक् । **प्रपायनीयम्**—अत्र तु शाच्छासेति पुकोऽपवादो युगित्याद्युदाहार्यम् । **कृत्यल्युटो बहुलम्**—कृत्याश्च ल्युट् च, इतरेतरयोगे द्वन्द्वः । तथा च कृत्याः ल्युट् च धातोर्विहिता बहुलं स्युरित्यर्थः सम्पन्नः । बहूनर्थान् लाति ददाति इति योगलभ्यार्थे विद्वदनुभवेन दर्शयति-**क्वचित् प्रवृत्तिरिति**—द्वितीयपादान्तस्यैवकारस्य पूर्वोत्तरार्धयोः सर्वत्रान्वयः । क्वचिद् बहुलघटितविधेः प्रवृत्तिरेव, क्वचिदप्रवृत्तिरेव, क्वचिद् विभाषैव, क्वचिदन्यथैवेत्येवं बाहुलकं, बहुलमेव बाहुलकमिति स्वार्थिककप्रत्ययान्तात्तस्मात् तत आगत इत्यागतार्थेऽण्, तल्लब्धमर्थं चतुर्विधमेव वदन्ति वृद्धाः । अत्र प्रमाणजिज्ञासायां सर्वतो ज्येष्ठं दर्शनमाह- **विधेर्विधानमिति**- विधेर्विधानं प्रवर्तनमुक्तानेकप्रकारकं समीक्ष्यैवेत्यन्वयः, बहुललब्धमन्त्यमर्थं सूचयन् प्रकृते सूत्रोपन्यासस्य फलं स्फोरयति-**स्नात्यनेनेति**—अनीयरः कृत्यसंज्ञत्वात्तयोरेवेति स्नातेरकर्मकाद् भावे प्राप्तावनेन करणे विधिः । **दानीयो** विप्रः इत्यत्र सम्प्रदाने । चूर्णं पिष्टागुर्वाद्योषधविशेषः, स्नानकरणीभूतं चूर्णमिति करणविशेष्यको बोधः । दानसम्प्रदानीभूतो विप्र इति सम्प्रदानविशेष्यको बोधः । **ऋदुपधाच्च**—ह्रस्व ऋकारोपधाद् धातोः क्यप् स्यात् न तु क्लृपिचृतिभ्याम् । हलन्तलक्षणण्यतोऽपवादः । वृदिति वर्तते इति शेषः, **वृत्यमिति**—अकर्मकत्वाद्भावे क्यप्, लपावितौ, कित्त्वाल्लघूपधगुणाभावः । **वृध्यमिति**—वृध वृद्धौ, अस्मादुक्तार्थे क्यप् । वाऽसरूपन्यायेन पक्षे ण्यत्तु न, समानरूपत्वात् । **क्लृपिचृत्योस्तु इति**—ऋलृवर्णयोस्सावर्ण्यविधानाद् ऋदुपधत्वम् । **कल्प्यमिति**- कृपू सामर्थ्ये, कृतलादेशनिर्दिष्टः, तस्माद् हलन्तलक्षणो ण्यदेव, तस्मिन् परे लघूपधगुणः, कृपो रो लः इति रस्य लः । **चर्त्यमिति**- चृति हिंसाग्रन्थनयोः, अत्रापि ण्यति लघूपधगुणः ।

हिन्दी

कारिकार्थ—सूत्र का कहीं प्रवृत्त होना, कहीं प्रवृत्त नहीं होना, कहीं पर विकल्प से प्रवृत्त होना तथा कहीं पर अर्थादि के व्यत्यय में भी प्रवृत्त होना, इस प्रकार विधि के विधान को अनेक प्रकार का देखकर विद्वानों ने बाहुलक (बहुल) को चार प्रकार का माना है ।

१०१०. ऋदुपध धातु से क्यप् प्रत्यय होता है, क्लृप् और चृत् को छोड़कर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०११. अचो यत्-३।१।९७॥ अजन्ताद् धातोर्यत् । चेयम् । जेयम् ।
१०१२. ईद्यति-६।४।६५॥ यति परे आत ईत् स्यात् । गुणः । देयम् । ग्लेयम्।
१०१३. पोरदुपधात्-३।१।९८॥ पवर्गान्ताददुपधात् यत् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् ।
१०१४. आङो यि-७।१।६५॥ आङः परस्य लभेर्नुम् यादौ प्रत्यये विवक्षिते । आलम्भ्यो गौः ।

मध्यमनोरमा

अचो यत्—धातोरित्यनुवर्तते, तस्याजितिविशेषणात् तदन्तविधिः, तथा चाजन्ताद् धातोर्यत् स्यादित्यर्थः । **चेयमिति**—चिञ् चयने, सकर्मकत्वात् कर्मणि यत्, इगन्तलक्षणो गुणः, कर्मणो नपुंसकत्वात् नपुंसकता, अथवाऽत्र सर्वत्र सामान्ये नपुंसकमिति सामान्ये नपुंसकताऽभिधानात्, निर्विशेषं न सामान्यमिति न्यायेन सामान्ये विशेषाणामन्तर्भावात् तद्विवक्षाया बाहुल्येन नपुंसकनिर्देशः । विशेषविवक्षायां तु तेऽपि भवन्त्येवेति ध्येयम् । **जेयमिति**—जि जये, यत्, गुणः, **देयमिति**—डुदाञ् दाने, अचो यत्, तस्मिन् परे ईद्यति इति ईदन्तादेशः, ततः सार्वधातुकेति गुणः । **ग्लेयमिति**—ग्लै म्लै हर्षक्षये, आदेच इत्यात्वं, ततो यत्, ईत्वं, गुणः । **पोरदुपधात्**—पोः किम् ? डुपचष् पाके, पाक्यम् । अदुपधात् किम् ? कुप् क्रोधे, कोप्यम् । तपरकरणं किम् ? आप्लृ व्याप्तौ, आप्यम्, अत्र सर्वत्र ण्यदेव । **शप्यमिति**—शप् आक्रोशे । **लभ्यमिति**—डुलभष् प्राप्तौ । **आङो यीति विषयसप्तमी त्याह**—विवक्षिते इति। परसप्तम्यान्तु हलन्तलक्षणं ण्यतं बाधित्वा पोरदुपधादिति यत् स्यात् । तथा च ण्यति तित्स्वरितमिति स्वरिते सत्यालम्भ्य इत्यत्र समासान्तोदात्तत्वं बाधित्वा कृदुत्तरपदं कृत्स्वरेण स्वरितान्तमिष्टं सिद्ध्यति । यति तु यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वेनोत्तरपदाद्युदात्तत्वं प्रसज्यते, तच्चानिष्टमिति भावः । **आलम्भ्यो गौरिति**—आलब्धुं योग्यः शक्यो वेति विवक्षायाम् आङ्पूर्वाल्लभेर्नुम्, इत्यदुपधत्वाभावान्न यत्, किन्तु वक्ष्यमाणो ण्यदेव ।

मध्यमनोरमापूरणी

आत ईत् स्यादिति—आतो लोप इटि चेति सूत्रात् आत इत्यनुवर्तते । **ग्लेयमिति**—ग्लैधातोरैकारस्य आदेच उपदेशेऽशितीति आत्वे अचो यत् इति यत्, ग्लाय इति, ईद्यति इति आकारस्य ईत्वम्, यत आर्धधातुकत्वात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः । कृत्तद्धितेति प्रादिकत्वात् सौ अमादेशे पूर्वरूपम् । **पवर्गान्तादिति**—पोरित्यस्य धातोर्वि शेषणात् तदन्तविधिः। ण्यतोऽपवादोऽयम् । ननु यत्ण्यतोरसरूपत्वात् वासरूपन्यायेन ण्यदपि स्यादिति चेन्न, नानुबन्धकृतमसारूप्यात् । **आङो यीति**—इदितो नुम्धातोरिति सूत्रात् नुम् इत्यस्य लभेश्चेत्यतः लभेरित्यस्य चानुवृत्तिरायाति । अतः लभेर्नुम् स्यादित्याद्यर्थः सङ्गच्छते ।

हिन्दी

१०११. अजन्त धातु से यत् होता है ।

१०१२. यत् परे आत् को ईत्व होता है ।

१०१३. पवर्गान्त अदुपध धातु से यत् प्रत्यय होता है ।

१०१४. आङ् से परे लभ् धातु को नुम् होता है, यादि प्रत्यय की विवक्षा में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०१५. उपात् प्रशंसायाम्-७।१।६६।। उपलम्भ्यः साधुः । स्तुतौ किम् ? उपलब्धुं शक्यः उपलभ्यः ।
१०१६. शकिसहोश्च-३।१।९९।। शक्यम् । सह्यम् ।
१०१७. गदमदचरयमश्चानुपसर्गे-३।१।१०० ।। गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् ।
वा. चरेराङि चागुरौ । आचर्यो देशः । अगुरौ किम् ? आचार्यः = गुरुः । यम्यम्।
१०१८. अवद्यपण्यवर्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु-३।१।१०१।। अवद्यं पापम् । पण्यं विक्रेयम् । शतेन वर्या कन्या ।

मध्यमनोरमा

उपात् प्रशंसायाम्—यादौ प्रत्यये विवक्षिते लभेर्नुम् स्यात् प्रशंसायाम्, सा चेह गम्यमानतया विशेषणं, धात्वर्थस्तु प्राप्तिरेव । तेन यस्य प्राप्तिर्यस्माद् वा प्राप्तिः प्रशंसाहेतुर्भवति, तदिहोदाहरणम् । विपरीतं प्रत्युदाहरणम् । **उपलम्भ्य इति**—उपलब्धुं स्तोतुं योग्य इत्यर्थः । अत्रापि पूर्ववत् ण्यत् । शक्य इत्युपलक्षणं योग्यताया अपि, शकि लिङ् च, अर्हे कृत्यतृचश्च शास्त्रात्, **उपलभ्य इति** । अत्र पोरदुपधादिति यत् । शकिसहोश्च—व्यत्ययेन पञ्चम्यर्थे षष्ठी । आभ्यां यत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः । **शक्यमिति**—शक्लृ शक्तौ, यत् । **सह्यमिति**—षह् मर्षणे, धात्वादेः षः सः इति, यत् । **गदमदचरयमश्चानुपसर्ग इति**—व्यत्ययेन पञ्चम्यर्थे सप्तमी, एभ्यः अनुपसर्गेभ्यः यत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः । **गद्यमिति**—गद् व्यक्तायां वाचि, गदितुं योग्यं शक्यं वेति विग्रहे यत् । **मद्यमिति**—मदी हर्षग्लेपनयोः । **चर्य्यमिति**—चर गतिभक्षणयोः । **चरेराङि च**—अनुपसर्ग इति प्रतिषेधाच्चरतेराङ्पूर्वादप्राप्तेऽर्थविशेषे तत्पूर्वाच्चरेर्यतो विधानार्थम्वार्तिकम् । आङ्युपपदे तु चरतेर्यत् स्यात्, गुरुभिन्ने चार्थे इति वार्तिकार्थः । **आचर्य्यो देशः इति**—आचरितुं विहर्त्तुं योग्य इत्यर्थः । कृत्यल्युडिति बाहुलकात् आचर्यते भक्ष्यतेऽस्मिन्नित्यधिकरणे वा आचर्य्य इति । यदा आचरितुं प्राप्य सेवितुं योग्य इत्यर्थः, तदा ण्यदेव, **आचार्य इति** । यमधातो रूपं निर्दिशति, **यम्यमिति**—यन्तुं योग्यमित्यर्थः । यम उपरमे । अनुपसर्गे किम् ? निगाद्यम् । **अवद्यपण्य**—गर्ह्याद्यर्थेषु क्रमादवद्यादयो यत्प्रययान्ता निपात्यन्ते । **अवद्यमिति**—नञ् पूर्वाद् वद् व्यक्तायां वाचि इत्यस्मात् कुत्सितेऽर्थे गम्ये वदः सुपि क्यप् चेति क्यपोऽपवादो यत्, नञ्समासः, नलोपो नञ इति नञो नस्य लोपः ।

मध्यमनोरमापूरणी

आचर्यो देश इति—आपूर्वाद् चर्धातोः चरेराङि चागुरौ इति यति अनुबन्धलोपे, गतिसमासे प्रातिपदिपदिकत्वात्स्वादिकार्ये आचर्यः इति । गुरौ अर्थे तु ऋहलोर्ण्यदिति ण्यत्, उपधावृद्धिः, आचार्यः इति । **अवद्येति**—गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु अर्थेषु क्रमषः अवद्यम् पण्यं वर्येति यत् प्रत्ययान्ताः निपात्यन्ते ।

हिन्दी

१०१५. उप से परे लभ् को नुम् होता है, यादि प्रत्यय परे, प्रशंसा अर्थ में ।
१०१६. शक् और सह् धातु से यत् प्रत्यय होता है ।
१०१७. उपसर्गरहित गद् मद् चर् और यम् धातुओं से यत् प्रत्यय होता है ।
वा. आङ्पूर्वक चर् धातु से गुरुभिन्न अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।
१०१८. गर्ह्य, पणितव्य = व्यवहर्तव्य, अनिरोध इन अर्थों में क्रमशः अवद्य पण्य और वर्या इन यत्प्रत्ययान्तों का निपातन है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०१९. वह्यं करणम्-३।२।१०२।। वहन्त्यनेनेति वह्यं शकटम् । वाह्यमन्यत् ।
१०२०. अर्यः स्वामिवैश्ययोः-३।१।१०३।। अनयोः किम् ? आर्यो ब्राह्मणः ।

मध्यमनोरमा

न वदितुं योग्यमिति विग्रहः, **पापमिति-** गर्ह्यत्वपरिस्फुटकरणाय विशेषोपन्यासः, पापस्य वचनानर्हत्वात् । गर्ह्य इति किम् ? **अनुद्यं गुरोर्नाम,** तद्धि न गर्ह्यं वचनानर्हञ्च । **यथाह—** "आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च, श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोरिति"। अत्र क्यपः कित्त्वाद् वचिस्वपियजादीनां किति इति यजादित्वात् सम्प्रसारणे पूर्वरूपे च उद्येति जाते नञा सह समासः । नञो नस्य लोपः, तस्मान्नुडचि इति नञोऽकारात् परस्य नुट् । **पण्यमिति—**व्यवहर्तव्येऽर्थे, पण व्यवहारे स्तुतौ चेत्यतो ण्यतोऽपवादो यत् । गुपूधूपेत्यायप्रत्ययस्तु न, **यतिसाहचर्यात् । पणेरपि स्तुतावेवायप्रत्यय इति सिद्धान्तात् । यद्यपि पणितव्य इति** शब्दोऽर्थद्वयसाधारणस्तथापि निपातनस्येह रूढ्यर्थत्वात् व्यवहर्तव्य एवायं निपात्यते । उक्तञ्च हरिणा-

धातुसाधनकालानां प्राप्त्यर्थं नियमस्य च ।
अनुबन्धविकाराणां रूढ्यर्थञ्च निपातनम् ।।

इति अनुबन्धविकाराणां नियमस्य च प्राप्त्यर्थमिति पूर्वेणान्वयः । पणितव्येति किम् ? पाण्यं स्तुत्यर्हमित्यर्थः **शतेनेति—**शतशब्दोऽनियतपरः, कन्यायाः वरणे [1]**वरयितॄणां** नियमो नास्तीत्यर्थः । **वर्य्येति—**अनिरोधोऽप्रतिबन्धस्तस्मिन् विषये ण्यतोऽपवादो यत्, इगन्तलक्षणो गुणः, अस्मिन् सूत्रे टाबन्तस्यैव निर्देशात् स्त्रियामेवेदं निपातनं, तेन पुंसि वार्य्या ऋत्विज इत्यत्र ण्यदेव, पाणिग्रहणादिना निरुद्धा इत्यर्थः । अनिरोधे किम् ? वृत्या । अत्रैतिस्तुशास्वृ इति वृतः क्यप् । ह्रस्वस्य पितीति तुक् । **वह्यमिति—**वह् प्रापणे इत्यस्य ण्यतोऽपवादे यति वह्यमिति निपात्यते । करणकारकं यत्प्रत्ययार्थ इति योजना । **वाह्यमिति—**वोढव्यमित्यर्थः, अत्र कर्मणि ण्यदेव । **अर्यः स्वामिवैश्ययोः—**अर्यः इति निपात्यते । अर्यः स्वामी वैश्यो वा। ऋ गतावित्यतो ण्यतोऽपवादो यत्, गुणः । गुरोः परमार्थे वैश्यस्य च व्यवहारार्थे प्राप्तव्यत्वादिति भावः । **आर्य्य इति—**अस्मात् ण्यदेव ।

मध्यमनोरमापूरणी

अनयोःकिमिति—स्वामिवैश्ययोरर्थयोरभावे ऋ गतौ इत्यस्मात् ण्यत्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, रपत्वम्, आर्य इति, प्राप्तव्य इत्यर्थः । **अजर्यमिति—**नञ्पूर्वात् जॄ वयोहानौ इत्यस्मात् अजर्यं सङ्गतमिति कर्तरि यत् निपात्यते । ऋकारस्य गुणः, नञ्समासे कृते नलोपो नञ इति नलोपः, स्वादिकार्यम् ।

हिन्दी

१०१९. करण अर्थ में वह्य निपातन होता है । (वह् से यत् होता है ।)

१९२०. स्वामी और वैश्य अर्थ में ऋ धातु से यत् प्रत्यय निपातनात् होता है ।

---

1. वरितॄणामिति मूलपाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०२१. उपसर्या काल्या प्रजने-३।१।१०४।। गर्भग्रहणे प्राप्तकाला चेदित्यर्थः । उपसर्या गौः । गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्येत्यर्थः । प्रजने काल्येति किम् ? उपसार्या काशी । प्राप्तव्या इत्यर्थः ।

१०२२. अजर्यं संगतम्-३।१।१०५।। विशेष्यं चेत् । न जीर्यतीत्यजर्यम्, सतां संगतम् ।

१०२३. वदः सुपि क्यप् च-३।१।१०६।। चाद्यत् । ब्रह्मोद्यम् । ब्रह्मवद्यम् ।

१०२४. भुवो भावे-३।१।१०७।। क्यप् । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । सुपीत्येव, भव्यम् । अनुपसर्गे इत्येव, प्रभव्यम् ।

मध्यमनोरमा

उपसर्य्या—उपपूर्वात् सरतेर्ण्यतोऽपवादो यत् स्यात् प्रजने गर्भग्रहणे, काल्या प्राप्तकाला चेदित्यर्थः । **सूत्रे काल्येति**—प्राप्तः कालोऽस्या इति, तदस्य प्राप्तमिति वर्तमाने कालाद्यदिति यदन्तम् । प्रजनं गर्भग्रहणम् । **तदेतत् सर्वमभिप्रेत्याह**—गर्भग्रहण इति । **उपसर्य्येति**—सृ गतौ, यत् । **उपसार्या इति**—तस्मादेव कर्मणि ण्यत् । **अजर्यं संगतम्**—नञ्पूर्वकाज्जीर्यतेः तयोरेवेति भावे प्राप्ते कर्तरि ण्यतोऽपवादो यन्निपात्यते, सङ्गतं चेद्विशेष्यम् । **अजर्य्यमिति**—जॄष् वयोहानौ, यत्, गुणः, नञ्समासः, नञो नस्य लोपः, सतां सत्पुरुषाणां सङ्गतं सङ्गः, भावे गमेर्नपुंसके भावे क्तः इति क्तः । **वदः सुपीति**—अनुपसर्गे सुप्युपपदे वदेः भावे क्यप् स्याच्चाद्यत् । ण्यतोऽपवादः । इहोत्तरसूत्राद् भाव इत्यपकृष्यते । वदेस्सकर्मकत्वाद् भावे कृत्यप्रत्ययो दुर्लभः । लः कर्मणीति सूत्र इव तयोरेवेत्यत्रापि सकर्मकेभ्यो कर्मण्येवेति सिद्धान्ताद् भावेऽप्राप्तेः । **ब्रह्मोद्यमिति**—ब्रह्मोपपदात् वद् व्यक्तायां वाचीत्यतः क्यप्, [illegible]ति, वचिस्वपीति यजादित्वात् सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, ब्रह्मशब्देन उपपदसमासः । ब्रह्मणो वदनमित्यस्वपदविग्रहः । ब्रह्मवद्यमित्यत्र यत्, समासादि पूर्ववत् । **भुवो भावे**—अनुपसर्गे सुप्युपपदे भुवो भावे क्यप् स्यात् । अजन्तलक्षणयतोऽपवादः । ब्रह्मणः इति कर्तरि षष्ठी । **ब्रह्मभूयमिति**—भू सत्तायाम्, क्यप्, कित्त्वाद्, गुणाभावः, उपपदसमासः । सुपि किम-भव्यम् । अनुपसर्गे

मध्यमनोरमापूरणी

वदः सुपीति—वदः सुपि अनुपसर्गग्रहणमिति भाष्यात् अनुपसर्गे इति अत्रानुवर्तते । भुवो भावे इत्यतः भावे इत्याकृष्यते, चकारात् यदित्यनुगृह्यते, तथा च अनुपसर्गे सुपि उपपदे भावे वद्धातोः क्यप् स्याद् यत् च । क्यपि ब्रह्मोद्यम् इति, यति ब्रह्मवद्यमिति । **भुवो भावे इति**-अत्र सुपि इति अनुपसर्गे इति चानुवर्तेते । अनुपसर्गकस्य भूधातोरकर्मकत्वाद् तयोरेवेति भावे एव क्यप् सिद्धौ भावग्रहणमुत्तरार्थं ज्ञेयमिति भाष्यम् । तन्मते वदः सुपीति क्यप्यतौ कर्मणि एव । ब्रह्मोपपदात् भूधातोः भुवो भावेइति क्यप्, कित्त्वान्न गुणः, उपपदसमासः ।

हिन्दी

१०२१. गर्भ ग्रहण योग्य काल प्राप्त होने के अर्थ में यत् प्रत्ययान्त उपसर्य्या शब्द का निपातन होता है ।

१०२२. सङ्गत अर्थ के विशेषित रहने पर नञ्पूर्वक जॄ धातु से यत्प्रत्यय निपातन होता है।

१०२३. उपसर्गभिन्न सुबन्त उपपद होने पर वद् धातु से भाव में क्यप् और यत् प्रत्यय होते हैं ।

१०२४. उपसर्गभिन्न सुबन्त उपपद होने पर भू धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०२५. हनस्त च-३।१।१०८॥ चात् क्यप् । ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या ।
१०२६. एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्-३।१।१०९॥
१०२७. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्-६।१।७१॥ इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । वृ इति वृञो ग्रहणं न तु वृङः । वृत्यः । वृङस्तु वार्या ऋत्विजः । आदृत्यः । जुष्यः। पुनः क्यबुक्तिः परस्यापि ण्यतो बाधनार्था । अवश्यस्तुत्यः ।
१०२८. मृजेर्विभाषा-३।१।११३॥ मृजेः क्यब्वा । मृज्यः ।

मध्यमनोरमा

किम् ? प्रभव्यम् । अत्र भुवोऽकर्मकत्वाद् भाव एव प्रत्ययसिद्धेः, भावग्रहणमुत्तरार्थमिति ध्येयम्। **हनस्त च**—हन इति तादेशोपात्ततया स्थानषष्ठी । हनस्तो तादेशस्स्याच्चाद् भावे क्यप्, अनुपसर्गे सुप्युपपदे । ब्रह्मण इति कर्मणि षष्ठी । ब्रह्मणो ब्राह्मणजातेरित्यर्थः । **ब्रह्महत्येति**—हन् हिंसागत्योः, क्यप्, नस्थाने तेनैव तः, उपपदसमासस्ततष्टाप् । भावप्रत्ययान्तस्यापि स्त्रीत्वं लोकादेव । सुपि किम् ? घातः । अनुपसर्गे किम् ? प्रघातः, भावे घञ्। **एतिस्तुशास्वृ**—अत्र सुप्यनुपसर्गे भावे इति निवृत्तम् । **ह्रस्वस्य पिति**—ह्रस्वस्य तुक् स्यात् पिति कृतीत्यर्थः । **इत्यः इति**—एतुं योग्य इत्यर्थः । इण् गतौ, क्यपः कित्त्वाद् गुणाभावः, ह्रस्वात् क्यपि पिति कृति तुक् । अत्रैति इति निर्देशादिङ्किोर्न ग्रहणं, तयोरधिपूर्वत्वेऽव्यभिचारादिति ध्येयम् । तथा च भाष्ये रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणमिति, अजन्तलक्षणयदत्र प्रयुक्तः, परन्त्विण्वदिक इति वक्तव्यमिति वचनादिकोऽपि भवतीत्यन्ये उदाहरन्ति । **स्तुत्य इति**—ष्टुञ् स्तुतौ, धात्वादेः षः सः इति, निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपाय इति टस्य तत्वेन परावृत्तिः, क्यप्, कित्त्वाद् गुणाभावे तुक् । **शिष्य इति**—शासितुं योग्य इत्यर्थः । शासु अनुशिष्टौ, क्यप्, शास इदङ्हलोरिति शास्तेरुपधाकारस्येत्, शासिवसीति सस्य षः । **न वृङ इति**—ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः इति ज्ञापकात् । तत्र हि ईडवन्दिभ्यां साहचर्य्यादात्मनेपदिनो वृङ एव ग्रहणमिति भावः । **वार्या इति**—वरितुं योग्या इत्यर्थः । अत्र ऋदन्तलक्षणो ण्यत् । **आदृत्य इति**—दृङ् आदरे, आङ्पूर्वादस्मात् क्यप् । **जुष्य इति**—तुदादिः जुषी प्रीतिसेवनयोः, क्यप्, कित्त्वाल्लघूपधगुणाभावः । **वदः सुपि क्यप् चेत्यतः क्यपो लाभे सिद्धेऽत्र क्यबुक्तिः बाधनार्थेत्याह**—पुनः क्यबुक्तिरिति । परस्यापि ओरावश्यके इति प्राप्तस्य ण्यतोऽवकाशोऽवश्य-

मध्यमनोरमापूरणी

एतिस्तु इति—सूत्रेऽस्मिन् सुपि अनुपसर्गे भावे इति च नानुवर्तन्ते । एतिस्तु शास् वृ दृ जुष् एत्येतेषां समाहारद्वन्द्वः, समस्तात् पञ्चम्येकवचनम् । **शिष्य इति**—शास् धातोः एतिस्तु इति क्यप्, कपौ इतौ । शास इदङ्हलोरिति आकारस्य इत्वम्, शासवसिघसीनाञ्चेति सस्य षत्वम्, प्रातिपदिकत्वात् सौ रुत्वे विसर्गे च शिष्यः इति । **मृजेरिति**—एतिस्तु इत्यादिसूत्रात् क्यबनुवर्तते । ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः इति ऋदुपधात्वात् नित्यं क्यप् प्राप्तोऽनेन विकल्प्यते । **मृज्य इति**—मृज् धातोः मृजेर्विभाषेति क्यपि कित्त्वान्न गुणः । पक्षे ण्यति मार्ग्य इति ।

हिन्दी

१०२४. उपसर्गभिन्न सुबन्त उपपद होने पर भू धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ।

१०२५. उपसर्गभिन्न सुबन्त उपपद होने पर हन् से क्यप् होता है और न् को त् होता है ।

१०२६. इण् स्तु शास् वृ दृ और जुष् धातु से क्यप् होता है ।

१०२७. ह्रस्व को पित् कृत् प्रत्यय-परे रहते तुक् होता है ।

१०२८. मृज् धातु से क्यप् होता है, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०२९. ऋहलोर्ण्यत्-३।१।१२४॥ ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च ण्यत् । कार्यम् । धार्यम् । वर्ष्यम् ।

१०३०. चजोः कुघिण्ण्यतोः-७।३।५२॥ चजोः कुत्वं घिति ण्यति च । वा. निष्ठायामनिट् इति वक्तव्यम् । तेनेह न, गर्ज्यम् । मार्ग्यः ।

१०३१. ओरावश्यके-३।१।१२५॥ ण्यत् । लाव्यम् । याव्यम् ।

मध्यमनोरमा

लाव्यमिति, आवश्यकाविवक्षायां स्तुत्य इत्यादौ क्यपोऽवकाशः, अवश्यस्तुत्य इत्यादौ उभयप्राप्तौ विप्रतिषेध इति ण्यत् स्यात्, तन्माभूदिति पुनः क्यबुक्तिरिति भावः । **अवश्यस्तुत्य इति**-लुम्पेदवश्यमः कृत्ये इति वक्ष्यमाणवार्तिकेनावश्यमो मस्य लोपः । **मृजेर्विभाषा**—ऋदुपधत्वान्नित्यं क्यपि प्राप्तेऽयमारम्भः । **मृज्य इति**—मृजूष् शुद्धौ, क्यपः कित्त्वाद् गुणाभावः । **क्यपोऽभावपक्षे ण्यदित्यभिप्रेत्य सूत्रमुपन्यस्यति**—ऋहलोरिति, ऋ इति ऋधातोः न ग्रहणपरं, **कार्य्यमिति निर्देशादित्यभिप्रेत्याह**—ऋवर्णान्तादिति, वर्णग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्तविधिः । **कार्यमिति**—डुकृञ् करणे, ण्यत्, तत्र णित्त्वादचो ञ्णितीति वृद्धिः । **धार्यमिति**-धृञ् धारणे, साधुत्वं पूर्ववत् । एवं धृङोऽपि । **वर्ष्यमिति**—वृषु सेचने, ण्यत्, लघूपधगुणः। **चजोः कु**—घ इत् यस्य स च ण्यत् चेति बहुव्रीहिगर्भ इतरेतरयोगद्वन्द्वः । यथासंख्यं नेह विवक्षितं, तेन रक्तं रागात् इति कैयटादिभिरुक्तं **तदालोच्याह**-चस्य जस्य चेत्यादि, घिति ण्यति चजोः कुत्वमिति विवेकः । सूत्रस्यातिव्याप्तिं परिहरति निवृत्तिवार्तिकेन । **निष्ठायां** क्तक्तवतोरनिटो धातोश्चजोः कुत्वं वाच्यमित्यर्थः । **गर्ज्यमिति**—गर्ज शब्दे, ऋहलोर्ण्यत्, अस्य च न कुत्वम्, निष्ठायां सेट्त्वात् । [1]**मार्ग्यः इति**-मृजूष् शुद्धौ, ण्यत्, मृजेर्वृद्धिरिति वृद्धिः, चजोरिति कुत्वम्, अस्य निष्ठायामनिट्त्वात्, ऊदित्त्वाल्लुडादौ स्वरतिसूतीति वेट्कत्वेन निष्ठायां यस्य विभाषेति इण्निषेधात् । **ओरावश्यके**-अवश्यं भाव आवश्यकं, मनोज्ञादित्वाद् वुञ्, । उवर्णान्ताद् धातोर्ण्यत् स्यादवश्यंभावे द्योत्ये । यतोऽपवादः । **लाव्यमिति**—अवश्यं लवितुं योग्यमित्यर्थः । लूञ् छेदने, ण्यतो णित्त्वादचो ञ्णितीति वृद्धिः, धातोस्तन्निमित्तस्यैवेत्यावादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ऋहलोरिति—धातोरित्यनुवर्तते, तेन विशेषणत्वात्तदन्तविधौ सति ऋ इत्यस्य ऋवर्णान्तात् इति हल् इत्यस्य हलन्तादित्यर्थः । पञ्चम्यर्थेऽत्र षष्ठी । **निष्ठायामनिट इति**—निष्ठायां क्तक्तवत्वोः अनिट् यो धातुस्तस्य चजोः कुत्वं भवति इति वक्तव्यमिति अर्थः । **गर्ज्यमिति**-गर्ज्धातोः ऋहलोरिति ण्यत्, तस्मिन् परे चजोरिति कुत्वम् अनेन वार्तिकेन परिह्रियते । यतो हि निष्ठायां गर्जितमिति रूपं भवति ।

हिन्दी

१०२९. ऋवर्णान्त एवं हलन्तधातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है ।

१०३०. च व ज को कुत्व होता है, घित् और ण्यत् परे रहते ।

वा. निष्ठा में अनिट् धातुओं के च और ज को कुत्व होता है ।

१०३१. उवर्णान्त धातु से आवश्यक अर्थ में ण्यत् होता है ।

---

1. मार्ग्यमिति पाठः आसीत् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि ।
समो वा हिततयोर्मांसस्य पचियुड्घञोः ॥

अवश्यलाव्यम् ।

१०३२. भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा-३।४।६८।। एते कृत्यान्ताः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते । भवतीति भव्यः । भव्यमनेन वा ।

मध्यमनोरमा

[2]**याव्यमिति**—यु मिश्रणामिश्रणयोः, पूर्ववत् सर्वम् । अवश्यलाव्यमित्यनुपदं वक्ष्यमाणे लक्ष्य-संस्काराय श्लोकवार्तिकमुपन्यस्यति-**लुम्पेदिति,** कृत्यप्रत्ययान्ते उत्तरपदेऽवश्यमोऽन्त्यं लुम्पेत्, अवश्यमोऽन्त्यलोप इति यावत् । तुम्प्रत्ययान्तं लुम्पेत् । एवं समोऽन्त्यं लुम्पेद्धिततततयोः परतः, युट् च घञ् चेत्येतत्परके पचिधातौ मांसस्यान्त्यं लुम्पेदिति वार्तिकपदयोजना । **यथाक्रम-मुदाहरति**—अवश्यलाव्यमित्यादि—अवश्यं लवितुं योग्यमित्यर्थः । क्वचित्तु लाघवं प्रत्यनादराद् व्यतिसे इत्यादौ व्यतिशब्दवत् प्रत्ययावद्योतितार्थस्याप्यवश्यंशब्दस्य प्रयोगः, मयूर-व्यंसकादित्वात् समासः, ततो लाव्यमिति कृत्यप्रत्ययान्तोत्तरपदेऽवश्यमो मस्य लोपः । **गन्तुकाम इति**—गमेः समानकर्तृकेषु तुमुन्निति तुमुन्, उनावितौ, गमेरनुदात्तत्वादिडभावः । मस्य नश्चेत्यनुस्वारः । कामनं कामः । भावे घञ्, ततो गन्तुं कामोऽस्येति बहुव्रीहौ तुमोऽन्त्यलोपः। **गन्तुमना इति**—गन्तुं मनोऽस्येति बहुव्रीहौ तुमोऽ न्त्यलोपः । **मांस्पाक इति**—पचनं पाकः, भावे घञ्, चजोरिति कुत्वं, ततोऽस्य कर्तृकर्मणोरिति कर्मषष्ठ्यन्तेन मांसशब्देन समासः, ततो मांसस्यान्त्यलोपः । **मांस्पचनमिति**- मांसस्य पचनमित्यर्थः । पच्यतेऽस्मिन्नित्यधिकरणे करणा-धिकरणयोरिति ल्युट् । लटावितौ, योरनादेशस्ततो मांसान्त्यलोपः । **भव्यगेयेति**—तयोरेवेति नियमात् कर्त्तर्यप्राप्ते वचनं, पक्षे तयोरेवेति सकर्मकात् कर्मणि अकर्मकाद् भावे इति ध्येयम्।

मध्यमनोरमापूरणी

अवश्यलाव्यमिति—अवश्यं लवितुं योग्यमित्यर्थे अवश्यम् उपपदात् लूञ् धातोः ओरावश्यके इति ण्यत्, णित्वाद् वृद्धिः औकारः, धातोस्तन्निमित्तस्यैवेति आवादेशे, लुम्पेदवश्यमः कृत्ये इति वचनात् अवश्यम् इत्यस्य मस्य लोपः । प्रातिपदिकत्वात्सौ अमादेशे पूर्वरूपम् । **उपस्थानीय इति**—उपतिष्ठतेऽसौ इति उपस्थानीयः गुरोः शिष्यः, उपपूर्वकस्थाधातोः कर्त्तरि अनीयर् निपात्यते भव्यगेयेत्यनेन ।

हिन्दी

कारिकार्थः—अवश्यम् के म् का कृत्य प्रत्यय परे लोप होता है । तुम् के म् का काम और मनस् शब्द परे रहते लोप होता है । सम् के म् का हित और तत शब्द परे लोप होता है । युडन्त तथा घञन्त पच् धातु के परे (अर्थात् पाक और पचन शब्द के परे) रहते मांस शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप होता है ।

१०३२. भव्य गेय प्रवचनीय आदि कृत्य प्रत्ययान्त निपातन हैं, कर्ता अर्थ में विकल्प से ।

2. उपलब्धपुस्तकेषु पाव्यम् इति पाठो विद्यते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०३३. भोज्यं भक्ष्ये-७।३।६९।। भोग्यमन्यत् ।

१०३४. वचोऽशब्दसंज्ञायाम्-७।३।६७।। न कुत्वम् । वाच्यम् । वाक्यमन्यत् ।

१०३५. राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याऽव्यथ्याः-३।१।११४।।

मध्यमनोरमा

भव्यगेयेति—तयोरेवेति नियमात् कर्त्तर्यप्राप्ते वचनं, पक्षे तयोरेवेति सकर्मकात् कर्मणि अकर्मकाद् भावे इति ध्येयम् । **भव्य इति**—भू सत्तायां, यत्, गुणः, वान्तोयीत्यव्[1] । **अनेनेति** कर्तरि तृतीया, भावप्रत्यये कर्त्तुरनुक्तत्वात् । एवं गायतीति **गेयः** साम्नाम् । गै शब्दे, यत्, आदेच इत्यात्वम्, ईद्यतीति ईत्वं, ततो गुणः । पक्षे गेयं सामानेन वा, गायतेस्सकर्मकत्वात् सामकर्मणि प्रत्ययः, कर्मणः उक्तत्वात् प्रथमा । प्रवक्तीति **प्रवचनीयः**, वच् परिभाषणे, अनीयर्, ततः समासः । पक्षे प्रवचनीयं सामानेन वा । जायते इति जन्यः, जनीप्रादुर्भावे, ण्यत्, जनिवध्योश्चेति वृद्धिनिषेधः । पक्षे जन्यमनेनेति भावे । [2]आप्लावते **इत्याप्लाव्यः**, आङ्पूर्वात् प्लु गतावित्यतो ण्यन्निपात्यते, वृद्धिः आव् । पक्षे आप्लाव्यो ऽनेनेति कर्मणि । आपततीति **आपात्यः**, आङ्पूर्वात् पत्लृ पतने इत्यतो ण्यत्, अत उपधाया इति वृद्धिः, पक्षे आपात्यमनेनेति भावे, इत्यादि ध्येयम् । **भोज्यम्**—भुजपालनाभ्यवहारयोरित्यतो ण्यति कुत्वाभावो निपात्यते । भक्ष्यमिहाभ्यवहार्यमात्रं विवक्षितं, न तु खरविशदमभ्यवहार्यम्, तेन भोज्या यवागूरित्यपि भवतीति बोध्यम् । भोज्या यवा इत्युदाहार्य्यम् । **भोग्यमिति**—भुजेः ण्यति चजोरिति कुत्वम्, **अन्यदिति**—भक्ष्यादिति विशेषः, पालनीयमुपभोग्यं वेत्यर्थः । **राजसूयेति**—लतात्मकः सोमो राजा, स सूयते कण्ड्यतेऽत्रेत्यधिकरणे यतामपवादः सुनोतेः क्यप्, निपातनाद्दीर्घः । राजसूयं, राजसूयः, अर्धर्चादिः । षू प्रेरणे, तुदादिः । सुवति=कर्मणि लोकं प्रेरयति इति क्यप् निपातनात्, क्यपो रुडागमः । मृषोपपदात् वादेः कर्मणि नित्यं क्यप्, वचिस्वपीति सम्प्रसारणम्, उपपदसमासे **मृषोद्यम्**, मिथ्या वदितुं योग्यमित्यर्थः । रोच्यते इति रुच्यः, कर्तरि क्यप् निपातनात्, कित्त्वाद् गुणाभावः । गुपू रक्षणे, **गुप गोपने**—आभ्यां क्यप्, अनयोरादेः कत्वञ्च, संज्ञायां, गोप्तुं योग्यं **कुप्यम्**, सुवर्णरजतभिन्नं धनम् । **गोप्यमन्यत्** ।

मध्यमनोरमापूरणी

भोज्यमिति—भक्ष्येऽर्थे गम्ये ण्यति प्रत्यये परे भुजो जस्य कुत्वाभावो निपात्यते । भुज् धातोः ऋहलोर्ण्यत् इति ण्यति पुगन्तेति गुणे चजोरिति जस्य कुत्वेप्राप्ते भोज्यं भक्ष्येति तस्याभावो निपात्यते । **वाच्यमिति**—वच् धातोर्ण्यति अशब्दसंज्ञायां वचोऽशब्देति चस्य कुत्वाभावः, अत उपधायाः । **शब्दसंज्ञायान्तु वाक्यमिति**—तत्र चजोरिति चस्य कुत्वम् । एक तिङ्वाक्यमित्यनेन वाक्यमिति संज्ञा ।

हिन्दी

१०३३. भक्ष्य अर्थ में भुज् धातु से परे ण्यत् रहने पर धातु के ज् को कुत्व का अभाव निपातन होता है ।

१०३४. वच् को कुत्व का अभाव निपातन होता है, ण्यत् परे, शब्दसंज्ञा को छोड़कर ।

१०३५. राजसूय सूर्य मृषोद्य रुच्य कुप्य कृष्ट पच्य और अव्यत्थ्य ये सात क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

---

1. धातोस्तन्निमित्तस्यैव इत्यनेन अवादेशो भविष्यति, मूलं न समीचीनम् ।
2. आप्लवते इति साधु ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०३६. भिद्योद्ध्यौ नदे-३।१।११५।। नदे किम् ? भेत्ता । उज्झिता ।

१०३७. पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे-३।१।११६।। अधिकरणे क्यब् निपात्यते । पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः पुष्यः । सिद्ध्यन्त्यस्मिन् सिध्यः ।

१०३८. विपूयविनीयजित्यामुञ्जकल्कहलिषु-३।१।११७।। विपूयो मुञ्जः । विनीयः कल्कः । जित्यो हलिः ।

१०३९. प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः-३।१।११८।। वा. छन्दसीति वक्तव्यम् । प्रतिगृह्यम् । अपिगृह्यम् । लोके तु प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् ।

मध्यमनोरमा

अत्र हलन्तलक्षणो ण्यत् । कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते इति **कृष्टपच्याः**, कर्मकर्तरि ण्यतोऽपवादः क्यप् । शुद्धे तु कर्मणि **कृष्टपाक्याः**, ण्यत्, चजोरिति कुत्वम् । न व्यथते **इत्यव्यत्थ्यः**, व्यथ् भयसंचलनयोः, नञ्पूर्वादस्मात् कर्मणि क्यप् । **भिद्यो इति**—भिदेरुज्झेश्च क्यप् कर्तरि निपात्यते नदे वाच्ये इत्यर्थः । **भिद्य इति**—भिदिर् विदारणे, क्यप्, कित्त्वाद् गुणाभावः । **उद्ध्यः इति**—उज्झ् उत्सर्गे, अस्य क्यप् सन्नियोगेन धत्वम् । **भेतेति**—ण्वुल्-तृचाविति कर्तरि तृजेव । अनुदात्तत्वादिडभावः । **पुष्यसिध्यौ इति**—पुष् पुष्टौ षिधु संराद्धौ, आभ्यामधिकरणे क्यप् निपात्यते नक्षत्रे वाच्ये । पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः, **पुष्यः** । सिद्ध्यन्ति अस्मिन्निति सिद्ध्यः । नक्षत्रे किम् ? पोषणम्, सेधनम् । अधिकरणे ल्युडेव । **विपूय इति**-विपूर्वात् पूञो विपूर्वान्नयतेःजयतेश्च क्यप्, क्रमादेष्वर्थेषु । **विपूय इति**—विपवितुं शोधयितुं योग्य इत्यर्थः । अत्राजन्तलक्षणयतोऽपवादः क्यप्, मुञ्ज इति—मुञ्जेत्येवं प्रसिद्धः पाश्चात्यानाम् । **विनीय इति**—विनेतुं प्रापयितुं योग्य इत्यर्थः, विपूर्वात् नीञ् प्रापणे इत्यतः क्यप् । कल्क इति क्वाथभेदः । **जित्य इति**—जि जये, क्यपि ह्रस्वस्येति तुक् । **हलिरिति**—सुहागेति प्रसिद्धः । [1]**तेषामेव प्रतिगृह्यमिति**—प्रतिग्रहीतुं योग्यमित्यर्थः, ग्रह् उपादाने, क्यपि ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

नदे किम् ? भेत्ता, कर्तरि तृच्, नदभिन्नेऽर्थे । **उज्झितेति**—तृजेव । **पुष्य इति**—पुष् धातोरधिकरणे क्यप्, कित्त्वान्न गुणः, पुष्यः नक्षत्रविशेषः । **विनीयः कल्कः इति**—विपूर्वात् नीधातोरनेन क्यप् । कल्कः शोधकद्रव्यम् । शोधनीये पापेऽपि कल्कशब्दस्य प्रयोगः । **अपिगृह्यमिति**—अपिपूर्वाद् ग्रहेः प्रत्यपिभ्यां ग्रहेरिति छन्दसि क्यप्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं, पूर्व-रूपम् । लोके तु ण्यदेव, उपधावृद्धिः, **प्रतिग्राह्यम् अपिग्राह्यमिति** ।

हिन्दी

१०३६. नद अर्थ में भिद्य और उद्ध्य निपातन होता है ।

१०३७. नक्षत्र अर्थ में पुष्य और सिध्य निपातन हैं ।

१०३८. मुञ्ज कल्क और हलि अर्थ में विपूय विनीय एवं जित्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

१०३९. प्रति और अपि से परे ग्रह धातु से छन्द में क्यप् होता है निपातनात् ।

---

1. तेषामिति अनावश्यकम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०४०. पदास्वैरिवाह्यापक्ष्येषु च-३।१।११९॥ अवगृह्यम् । प्रगृह्यं पदम् । अस्वैरी परतन्त्रः । गृह्यकाः शुकाः । ग्रामगृह्या सेना । आर्यैर्गृह्यते आर्यगृह्यः । तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः ।

१०४१. विभाषा कृवृषोः-३।१।१२०॥ कृत्यम् । वृष्यम् । कार्यम् । वर्ष्यम् ।

१०४२. युग्यं च पत्रे-३।१।१२१॥ पत्रं वाहनम् । योग्यमन्यत् ।

मध्यमनोरमा

पदास्वैरीति—पदञ्च अस्वैरी च बाह्या च पक्ष्यश्चेत्येतेष्वर्थेषु ग्रहेः क्यप् स्यात् । **अवगृह्यमिति**-अवग्रहीतुं विभक्तुं योग्यमित्यर्थः । अवग्रहो विच्छेदः, अवान्तरपदसंज्ञां सूचयितुं पदपाठकाले किञ्चित्कालमवसानम् । [1]**प्रगृह्यमिति**—[2]प्रग्रहीतुं योग्यमित्यर्थः । प्रग्रहस्तु प्रकृतिभावाद् यणाद्यभावे परस्परमचोरसन्निकर्षः । स्वेनेरितुं शीलमस्येति स्वैरी स्वतन्त्रः, स्वादीरेरिणोरिति वृद्धिः, नञ्समासे सति लब्धमर्थमाह—अस्वैरीति । **गृह्यका इति**—पञ्जरादिबन्धनेन परतन्त्रीकृता इत्यर्थः । गृह्यशब्दात् पुनरनुकम्पायां कन् बोध्यः । **ग्रामगृह्येति**—ग्रामं गृह्णाति इत्यर्थः, ग्रहेः कर्तरि क्यप् निपातनात्, ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम्, प्रत्ययार्थस्य स्त्रीत्वादाप्, ततो ग्रामशब्देन समासः । अत्र ग्रामान्तर्भूतस्य ग्रामग्रहीतृत्वायोगात् सेनायाः ग्रामान्तर्भूतत्वासम्भवाच्च बाह्यत्वं बोध्यम् । पक्षे भवः **पक्ष्यः**, दिगादिभ्यो यदिति यत् । **तत्रार्थे उदाहरणमाह**—आर्यैर्गृह्यते इति, तत्पक्षेत्यत्र तदोऽर्थः आर्याः । **विभाषाकृवृषोः**—करोतेर्ऋवर्णान्तत्वात् [2]क्यप्प्राप्ते वृषेस्तु ऋदुपधत्वादृदुपधाच्चेति नित्यं प्राप्तेऽयमारम्भः । **कृत्यमिति**—कर्तुं योग्यमित्यर्थः, करोतेः क्यपि तुक् । **वृष्यमिति**—वृषु सेचने, क्यपि गुणाभावः । पक्षे ण्य[3]दित्यत्र, ऋहलोरिति [3]ऋदुपधाच्चेति आभ्यामिति शेषः । **युग्यं च**—युजिर् योगे इत्यस्य युग्यमिति, क्यप्, जस्य कुत्वं च निपात्यते पत्रे वाच्ये । पत्रं वाहनमिति । पतन्त्यनेनेत्यर्थे दाम्नीशसेति करणे ष्ट्रन्विधानात् । युज्यते सम्बद्ध्यते वाहनादौ इति युग्यो गौरित्युदाहार्यम् । **योग्यमिति**-युज्यते हरिकीर्तनादावित्यर्थः । अत्र ण्यत्,चजोरिति कुत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रगृह्यमिति—प्रपूर्वाद् ग्रहेः पदेऽर्थे क्यप्, सम्प्रसारणम् । "अप्रावेत्यादिपदमिति शिरस्कं प्रग्रहः", प्रातिशाख्ये प्रसिद्धः । पाणिनेरियं संज्ञा, तेन सन्ध्यादिकार्यं न भवति । **पक्ष्य इति**—पक्षे भवः पक्ष्यः, दिगादित्वाद्यत् । **आर्यगृह्य इति**—आर्यैर्गृह्यते इत्यर्थे क्यप्, सम्प्रसारणम् ।

हिन्दी

१०४०. पद अस्वैरी बाह्या और पक्ष्य इन अर्थों में ग्रह् धातु से क्यप् होता है ।

१०४१. कृ और वृष् धातु से विकल्प से क्यप् निपातन होता है ।

१०४२. वाहन अर्थ में युज् धातु से क्यप् और ज् को कुत्व निपातन से होता है ।

---

1. प्रतिगृह्यमिति प्रतिग्रहीतुमिति च आसीत् मूले पाठः ।
2. 'ण्यति प्राप्ते' इति साधु ।
3. पक्षे ण्यदिति-ऋहलोरित्यनेन उभयत्र ण्यत् । मूले "ऋदुपधाच्चेति" पाठोऽशुद्धः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०४३. अमावस्यदन्यतरस्याम्-३।१।१२२॥ अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कौ इति अमावास्या, अमावस्या वा ।

१०४४. अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः-३।१।१३१॥ [1]अग्निधारणार्थे स्थलविशेषे एते साधवः । अन्यत्र तु परिचेयम्, उपचेयम्, संवाह्यम् ।

१०४५. क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ-३।१।१३०॥

१०४६. चित्याग्निचित्ये च-३।१।१३२॥ चित्योऽग्निः । अग्नेश्चयनमग्निचित्या।

॥ इति कृत्यप्रक्रिया ॥

मध्यमनोरमा

अमावस्यद्—अधिकरणे इति, निपातनबलात् इति ण्यदिति न तु यत्, तेन अमावास्याया वेति विहितस्तद्धितो ह्रस्वपक्षेऽपि सिद्ध्यति, एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् । अमेत्यस्य महेत्यर्थो बोध्यः । **अमावस्येति**—वस् निवासे, ण्यत्, अत उपधाया इति वृद्धिः, पाक्षिको ह्रस्वः, तत उभयत्र टाप् । **अग्निधारणार्थे इति**—सूत्रेऽग्निशब्दो न ज्वलनपरः, किन्तु तद्धारणार्थमिष्टकाचयनेन निर्मितस्थलविशेषे लाक्षणिक इति भावः । **एते साधव इति**—पर्य्युपाभ्यां चिनोतेर्ण्यदायादेशश्च निपात्यते । परिचीयत इति **परिचाय्यः**, उपचीयते **इत्युपचाय्यः** । उभयत्र ण्यति वृद्धौ सत्याम् आय् । सम्पूर्वस्य वहो ण्यति वस्य सम्प्रसारणं दीर्घश्च निपात्यते । समुह्यत इति **समूह्यम्** । **अन्यत्रेति**—उक्तस्थलविशेषादन्यस्मिन्नभिधेये । कुण्डशब्दे तृतीयान्त उपपदे पिबतेरधिकरणे ण्यत्, युगागमश्च, संपूर्वात् चिनोतेः कर्मणि ण्यद् आयादेशश्च निपात्यते क्रतावभिधेये । कुण्डेन पीयते सोमोऽस्मिन्, **कुण्डपाय्यः** क्रतुः । संचीयते सोमोऽत्र **सञ्चाय्यः** । अन्यत्र कुण्डपेयम्, संचेयम् ।**चित्याग्नि**—अत्राग्नावित्यनुवर्तते, तच्च चित्यशब्दस्य विशेषणं न तु द्वितीयस्य, तस्य भावार्थकत्वेनाग्निवाचकत्वासम्भवादिति सूचयन्नुदाहरति—**चित्योऽग्निरिति।** चिञ् चयने, निपातनात् कर्मणि क्यप्, तुगागमः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अमावस्यदिति—अमोपपदादधिकरणे वसेः ण्यत्, पाक्षिको ह्रस्वश्च निपात्यते । **अमावस्या**—अमा वस्, ण्यत्, उपधावृद्धिः, पाक्षिको ह्रस्वः, टाप् । **अग्नौ परिचाय्येति**—अग्निधारणेऽर्थे

हिन्दी

१०४३. अमा उपपद रहते वस् से ण्यत् होता है, व वृद्धि होने पर उपधा को ह्रस्व होता है, निपातन से ।

१०४४. अग्निधारणार्थक स्थलविशेष में परिचाय्य और उपचाय्य निपातन होते हैं ।

१०४५. क्रतु अर्थ में कुण्डपाय्य और संचाय्य निपातन होते हैं ।

१०४६. अग्नि अर्थ में चित्य और अग्निचयन अर्थ में अग्निचित्य निपातन हैं ।

---

1. मनोरमाऽनुरोधेन मूले इयं पक्तिः लिखिता । उपलब्धसंस्करणेषु "अग्नावेते साधवः" इत्येव पाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमा

अग्नेरन्यत्र चेयमित्येव । **अग्निचित्येति**—अत्र निपातनाद् भावे [2]यकारप्रत्ययस्तस्य तुक्, न तु क्यप् । एतेन प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वं सिद्ध्यति ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्थलविशेषे परि उप इत्येताभ्यां परस्मात्चिनोतेः ण्यत्, आयादेशश्च निपात्यते, तथा सम्पूर्वात् वहेः ण्यत् सम्प्रसारणञ्च निपात्यते । अन्यत्र यति परिचेयमुपचेयमिति, संवहेर्ण्यति संवाह्यमिति ।

॥ इति कृत्यप्रक्रिया ॥

---

2. चित्ये बालमनोरमाकारः ण्यत्, तुगागमं च शास्ति । अग्निचित्येत्यत्र बालमनोरमाकारः ण्यत् प्रत्ययं करोति, तत्त्वबोधिनीकारः क्यप्प्रत्ययं लिखति । मध्यमनोरमाकारस्तु शब्दकौस्तुभमतं प्रदर्शयति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पूर्वकृदन्तम्

१०४७. ण्वुल्तृचौ-३।१।१३३॥ धातोरेतौ स्तः । कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे ।

१०४८. युवोरनाकौ-७।१।१॥ यु वु एतयोरनुनासिकयोरेतौ स्तः । कारकः । कर्ता।

१०४८. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः-३।१।१३४॥ नन्द्यादेर्ल्युर्ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति नन्दनः । जनार्दनः । लवणः । गणे निपातनाण्णत्वम् । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । पचः । आकृतिगणोऽयम् ।

मध्यमनोरमा

क्यपि कृते क्यपः पित्त्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरेण चित्य इवाद्युदात्तत्वं स्यादिति स्थितम् । इति तपस्विराजदासान्तरामशब्दाभिधेयशिष्यब्रह्मप्रकाश कृतायां कृन्मध्यमनोरमायां कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ।

पूर्व कृदन्तम्

ण्वुल्तृचौ—णकारो वृद्ध्यर्थः, लकारो लितीति लित्स्वरार्थः । तृचश्चकारस्तुरिष्ठेमेयस्सु, तुश्छन्दसीत्यादौ सामान्यग्रहणविघातार्थः । अन्यथा निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणमिति परिभाषया तेष्वस्यैव ग्रहणं स्यान्नतूभयोस्तृन्तृचोः । कृते तु चकारे उभयोरपि सानुबन्धकत्वात् प्रकृतपरिभाषाया अप्रवृतावुत्सुष्टानुबन्धग्रहणे सामान्यग्रहणमिति न्यायेन सामान्यतो ग्रहणं सिद्धम् । चित इत्यन्तोदात्तार्थस्तु न, आद्युदात्तश्चेत्यनेनैव सिद्धेः । **कर्त्रर्थे इति**—कर्तृत्वञ्च प्रकृतधात्वर्थव्यापाराश्रयत्वम्, तस्मिन्नित्यर्थः । **युवोरनाकौ**—अत्र स्थानान्यादेशयोः समसंख्यत्वाद् यथासंख्यं तयोरनोऽकश्चादेशो ज्ञेयः । अनुनासिकयोरिति किम् ? अहंयुः, कंवुः। **कारक इति**—ण्वुल्तृचाविति ण्वुल्, णस्य चुट्विति लस्य च हलन्त्यमिति इत्संज्ञकत्वाल्लोपः, वोरकादेशः, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, उरण् रपरः, कृदतिङिन्त्यकस्य कृतत्वात्

मध्यमनोरमापूरणी

धातोरेतौ स्त इति—कर्तरि कृत् इति निर्देशात् ण्वुल्तृचौ धातोः भवतः कर्तरि अर्थे इति सूत्रार्थः । **अनुनासिकयोरिति**—यु वु इत्येतयोः अनुनासिकयणोः प्रत्यययोर्ग्रहणम्, तयोः क्रमशः अन अक इत्येतौ आदेशौ भवतः । अनुनासिक इत्यनेन प्रतिज्ञानुनासिक्या पाणिनीया इति बोध्यम् । तेन अनुनासिकत्वमप्रतिज्ञातस्य यु इत्यस्य वु इत्यस्य च उर्णायुः कंवुरित्यादौ न अनः अकश्चादेशो भवतीति ज्ञेयम् । **कारकः इति**—कृधातोर्ण्वुल्, अनुबन्धलोपः, युवोरिति अकादेशः, अचोञ्णितीति धातोः ऋकार स्य वृद्धिः, रपरत्वम्, प्रातिपदिकत्वात् स्यादिकार्यम्। **कर्ता इति**—कृ धातोस्तृचि, आर्धधातुकत्वात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणे रपरत्वे कर्तृ इति, तस्मात् सौ ऋदुशनस् इति ऋकारस्यानङ्, अप्तृन्निति उपधादीर्घः, सुलोपः, नलोपः। **नन्दन इति**—ण्यन्तात् नन्दिधातोर्नन्दिग्रहेति ल्युः, अनादेशः, णेरनिटीति णिलोपः, **जनार्दन इति**—जनम् अर्दयति इति विग्रहे अर्दिधातोर्ल्युः, योरनः, उपपदसमासः, दीर्घः ।

हिन्दी

१०४७. धातु से कर्ता अर्थ में ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होते हैं ।

१०४८. यु और वु को अन और अक आदेश होते हैं ।

१०४९. नन्द्यादि धातु से ल्यु प्रत्यय ग्रह्यादि से णिनि प्रत्यय और पचादि धातु से अच् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०५०. इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः-३।१।१३५।। एभ्यः कः स्यात् । क्षिपः । बुधः। कृशः । ज्ञः । प्रियः । किरः ।

मध्यमनोरमा

कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात् स्वादयः । अत्र प्रायः सर्वत्र विशेष्यनिघ्नताऽनुसन्धेया । शाब्दो बोधश्चोत्पत्त्यनुकूलव्यापाराश्रयाभिन्न इत्येवंरूपः । क्रियाप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानीति यास्कोक्तिः, प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतस्तयोः प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यमिति न्यायाच्च । **कर्ता इति-** कृञोऽनुदात्तत्वादकाच इति तृचो नेट्, धातोर्गुणः, रपरः । **नन्दिग्रहीति**—नन्दिश्च ग्रहिश्च पच्चेति इतरेतरयोगे द्वन्द्वं कृत्वा ते आदयो येषाम् इत्यादिशब्देन बहुव्रीहिरत एव द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते इति न्यायेन प्रत्येकमादिशब्दसम्बन्धादुद्देशगणत्रयलाभः, ततश्चोद्दिष्टविधेयानां समसंख्यत्वाद् यथासंख्यमित्यभिप्रेत्य व्याचष्टे-नन्द्यादेः ल्युरित्यादिना । **नन्दन इति**—टुनदि समृद्धौ, हेतुमण्ण्यन्ताल्युः, लस्येत्, युवोरनाकाविति योरनादेशः, णेरनिटीति णिलोपः । **जनार्दन इति**—जनानर्दयति फलप्रदातृत्वादध ऊर्ध्वं गमयति, स्वस्मात् इष्टं याचयति वेत्यर्थः । अर्द गतौ याचने च, नन्द्यादिगणे हेतुमण्णिरन्तरा निर्दिष्टः, कर्मण्यण् इत्यण् प्राप्तः, साधुत्वं पूर्ववत् । जनशब्देन समासोऽत्र विशेषः । **लवण इति**— लूनातीत्यर्थनिपातनादिति रषाभ्यां परत्वाभावादप्राप्तेरिति भावः । **नन्द्यादिमुदाहृत्य ग्रहादिमुदाहरति, ग्राहीति**—गृह्णातीत्यर्थः । ग्रह् उपादाने, णिनिः, णस्य चुटू इति, अन्त्येकारस्य चोपदेशेऽजनुनासिक इतीत्संज्ञकत्वाल्लोपः । णिनो णित्त्वादुपधावृद्धिः; कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात् सुः, सौ चेति दीर्घः, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः, शेषं दण्डिवत् । एवमग्रेऽपि। **स्थायीति**—तिष्ठतीत्यर्थः, ष्ठा गतिनिवृत्तौ, धात्वादेः षः सः, निमित्तापाये नैमित्तिकस्यापि निवृत्तिरिति न्यायेन ठस्य थः, ततो णिनिः,तस्मादातो युक् चिण्कृतोरिति स्थो युगागमः । **मन्त्रीति**—मन्त्रयतीत्यर्थः । मत्रि गुप्तपरिभाषणे इति चुरादिः, इदित्त्वान्नुम्, स्वार्थिकाण्ण्यन्तात् णिनिः, णेरनिटीति लोपः । **पचादिमुदाहरति**—पच इति, पचतीत्यर्थः । डुपचष् पाके, अच्, अस्येत्संज्ञा । ननु पच इत्येकोदाहरणदानाद् गणाश्रयणं व्यर्थमित्याशङ्क्याह- **आकृतीति**-आकृत्याजन्तस्वरूपेण गण्यते, न तु ज्ञायते, न नियतसंख्यात्वेन पठ्यत इत्यर्थः । अत्र बीजं च यङोऽचि चेत्यचि यङो लुग्विधानम् । अन्यथा यङन्तानाम् अनियतत्वात् सामान्यतो यङ्लुग्विधानं व्यर्थं भवेदिति भावः । तेन पचाद्यजिति यत्र कुत्रापि उल्लेखनं ग्रन्थकाराणां संगच्छते । ननु पचादेराकृतिगणत्वाभ्युपगमे तत्र देवादीनां ग्रहणं व्यर्थम्, अन्यत्रेवाकृतिगणत्वादेव सिद्धेरिति चेच्छृणु, देवादीनां केषांचिद् ग्रहणमनुबन्धासञ्जनार्थम् । अत इव देवट् चोरट् नदडित्येवमचष्टित्वेन निर्देशः कृतः, टित्त्वान्ङीप् । दीव्यतीति **देवी**, चोरयतीति **चोरी**, नदतीति **नदीति** । **इगुपध**—इगुपधाद् जानातेः, प्रीणातेः किरतेश्च कस्यात्, कर्तरि । **क्षिप इति**—क्षिप् प्रेरणे, इगुपधाद् कः ।

मध्यमनोरमापूरणी

लवणः इति—लूञ् धातोः नन्दिग्रहीति ल्युः, युवोरनाकौ, सार्वधातुकगुणः, अवादेशः, निपातनाण्णत्वम् । **स्थायीति**—स्थाधातोः नन्दिग्रहीति णिनिः, णकारेकारौ इतौ । णित्त्वात् आतो युगिति युक्, स्थायिन् इति, सुः, सौ चेति उपधादीर्घः, सुलोपः, नलोप इति नलोपः । एवमेव **ग्राहीति-** अत उपधाया इति वृद्धिः, सौ चेति दीर्घः । **पच इति**—पच्धातोरच् । **इगुपधेति**—इक् उपधा यस्येति इगुपधः, कृधातोः इत्त्वे रपरत्वे च किर् इति

हिन्दी

१०५०. इगुपध ज्ञा प्री और कृ धातु से कर्ता में क प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०५१. आतश्चोपसर्गे-३।१।१३६।। प्रज्ञः । सुग्लः ।

१०५२. पाघ्राध्माधेट् दृशः शः-३।१।१३७।। पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । पश्यः ।

१०५३. अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेति सातिसाहिभ्यश्च-३।१।१३८।। विन्दः । धारयः । पारयः । वेदयः । उदेजयः । चेतयः । सातयः । साहयः । अनुपसर्गात् किम्-प्रलिपः ।

मध्यमनोरमा

कित्त्वाल्लघूपधगुणाभावः । **बुध इति**—बुध् अवगमने, कः । **कृशः इति**—कृश् तनूकरणे, कः । **इगुपधमुदाहृत्य ज्ञादीनुदाहरति । ज्ञः इति**—जानातीत्यर्थः । ज्ञा अवबोधने, कः, तस्मिन्नातो लोप इटि चेत्यालोपः । **प्रिय इति**—प्रीणातीत्यर्थः । प्री तर्पणे, कः, कित्त्वाद्गुणाभावेऽचिश्नुधात्वितीयङ् । **किर इति**—कॄ विक्षेपे, कः, कित्त्वाद्गुणाभावे ॠत इद्धातोरितीकारः, उरण् रपरः । **आतश्चोपसर्गे इति**—आदन्ताद्धातोः कः स्यादुपसर्गे उपपदे । श्याद्व्यधेति णस्यापवादः। **प्रज्ञ इति**—प्रपूर्वाज्जानातेः कः, आतो लोपः । **सुग्ल इति**—सुग्लायतीत्यर्थः । ग्लै हर्षक्षये, आदेच इत्यात्वे कृते आदन्तात् कः । **पाघ्राध्मा इति**—एभ्यः शः स्यात् । आदन्तलक्षणस्यावादः । **पिब इति**—पा पाने, पारक्षणे इत्ययं तु न गृह्यते, लुगलुग्- विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणमिति परिभाषणात् । ततः शः, शस्य लशक्वतीत्संज्ञा, शित्त्वात्तिङ्शित् इति सार्वधातुकत्वेन कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थत्वेन च तस्मिन् कर्त्तरि शबिति शपि पाघ्राध्मेति पिबादेशः। शपोऽकारस्यातो गुणे इति पररूपत्वम् । **जिघ्रः**—घ्रा गन्धोपादाने, शः , शप्, पाघ्रेति जिघ्रादेशः, पररूपम् । **धय इति**—धेट् पाने, टस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञा, शः, शप्, आदेच अपदेशेऽशितीति निषेधादात्वाभावेऽयादेशः, पररूपम् । **पश्य इति**—दृशिर् प्रेक्षणे, शः, शप्, पाघ्रेति पश्यादेशः, पररूपम् । **अनुपसर्गाल्लिम्प इति**—अनुपसर्गेभ्यः एभ्यः शः स्यात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

रेफान्तप्रयोगः, इगुपध ज्ञा प्री किर् इत्येतेषां द्वन्द्वसमासः, तस्मात् पञ्चमी । कर्तरि कृदिति उपतिष्ठते । तथा च इगुपधेभ्यो ज्ञाप्रीकॄ इत्येभ्यो धातुभ्यः कर्तरि कः भवतीत्यर्थः । **क्षिप इति**—क्षिप् इति इगुपधधातोः कः, ककारः इत्, कित्त्वान्न सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, प्रातिपदिकत्वात् सुः । **ज्ञः इति**—ज्ञा धातोरनेन कः, आतो लोप इति आकारलोपः । **प्रिय इति**—प्रीधातोः कः, अचिश्नुधातु इति इयङ् । **किर इति**—कॄधातोः कः, ॠत इद्धातोरिति ॠकारस्येत्, रपरत्वम् । **आतश्चेति**—आत इति धातोर्विशेषणत्वात्तदन्तविधिः, आदन्ताद् धातोः कः स्यादुपसर्गे उपपदे । **सुग्ल इति**—सुपूर्वाद् ग्लै धातोः आदेच इत्यात्वम्, कः, ककार इत्, आतो लोप इत्यालोपः, प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्यम् । **जिघ्र इति**—घ्राधातोः पाघ्रेति शः, सार्वधातुकत्वात् शप्, पाघ्राध्मेति जिघ्रादेशः, जिघ्र अ अ इति, अतो गुणे इति वारद्वयं पररूपम् । एवमेव दृशः शः, शप्, पश्यादेशे पररूपे **पश्यः इति** । **विन्द इति**—विद्लृ लाभे इति धातोः अनुपसर्गात् इति शः, तुदादिभ्यः इति शः, शे मुचादीनामिति नुमि विन्द् अ अ इति,

हिन्दी

१०५१. उपसर्ग उपपद होने पर आदन्त धातु से क प्रत्यय होता है ।

१०५२. पाघ्राध्मा धेट् और दृश् धातु से श प्रत्यय होता है ।

१०५३. उपसर्ग रहित लिम्प विन्द धारि पारि आदि धातुओं से श-प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् । गोविन्दः । अरविन्दम् ।
१०५४. ददातिदधात्योर्विभाषा-३।१।१३९।। ददः । दधः । पक्षे वक्ष्यमाणो णः ।

मध्यमनोरमा

इह लिम्पविन्देति भाविना नुमा सनुम्कौ निर्दिष्टौ, तेन लाभार्थस्यैव विन्देर्ग्रहणं नतु सत्ताद्यर्थकस्य । **लिम्प इति**—लिप उपदेहे, इगुपधेति काऽपवादः शः, तुदादिभ्यः शः, तस्मिन् शे मुचादीनामिति धातोर्नुम्, नस्यानुस्वारपरसवर्णौ, पररूपम् । **विन्द इति**—विद्लृ लाभे, लिपिवत् साधुत्वम् । **धारय इति**—धृञ् धारणे, धृङ् अवस्थाने इति द्वाभ्यामेव हेतुमण्ण्यन्ताभ्यां शः, शप्, शपः सार्वधातुकत्वात्तस्मिन् गुणोऽयादेशः, पररूपम् । **पारय इति**-पॄ पालनपूरणयोः, ण्यन्ताच्छः, शप्, गुणायादेशौ, पररूपम् । **वेदय इति**—वेदीति ज्ञानाद्यर्थानामन्यतमस्य ग्रहणम्। **उदेजय इति**—उत्पूर्वस्य ध्रेजृ कम्पन इति ण्यन्तस्य । **चेतय इति**— चित् संचेतने इति ण्यन्तस्य । **सातय इति**—सातिः सुखार्थः, सौत्रो धातुस्तस्य हेतुमण्ण्यन्तस्य। **साहय इति**-षह मर्षणे, हेतुमण्ण्यन्तस्य । एषु सर्वत्र साधुत्वं धारय इतिवद् बोध्यम् । **प्रलिप इति**—प्रलिम्पतीत्यर्थः, अत्रेगुपधलक्षण क एव । **गवादिषु**—गवादिषूपपदेषु विन्दतेः शस्स्यात्, संज्ञायामिति समुदायोपाधिः । कर्मण्यणोऽपवादः । **गोविन्द इति**—गाः, 'गौर्नादित्ये बलीवर्दे' इति कोशोक्तानेकपदार्थान् विन्दति, [1]तत्तदात्मनेपदमित्यर्थः । साधुत्वं पूर्ववत् । **अरविन्दम् इति**—चक्रस्य नाभिनेम्योरन्तरा स्थितानि काष्ठान्यरास्तदाकाराणि दलानि, तत्सादृश्यात् अरास्तान् विन्दति लभत इत्यर्थः । **ददातिदधात्योः**—पञ्चम्यर्थे षष्ठी, आभ्यां शस्स्यात् । **दद इति**—ददातीत्यर्थः, डुदाञ् दाने, शः, तस्मिन् परे कृतस्य शपो जुहोत्यादित्वाच्छ्लुः, श्लाविति धातोः द्वित्वम्, अभ्यासकार्यम्, उभे अभ्यस्तमित्यभ्यस्तसंज्ञायां शप्रत्ययस्य सार्वधातुकमपिदिति ङित्त्वात् श्नाभ्यस्तयोरित्यालोपः । एवं दध इत्यत्रापि । **पक्षे वक्ष्यमाण इति**—श्याद्व्यधेत्यनेनेति शेषः, तस्मिन् परे आतो युगिति युक् । दायः । धायः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पररूपम्, स्वादिकार्यम् । **चेतय इति**—चिती संज्ञाने, ण्यन्ताच्छः अनुपसर्गादित्यनेन, शप्, चेति अ अ इति, गुणः अयादेशः, पररूपम् । **गोविन्द इति**—गाः विन्दतीति विग्रहे गवादिषु इति शः, तुदादिभ्यः इति शः, उपपदसमासः, शे मुचादीनामिति नुम्, पररूपम् । **ददाति इति**-दाधातोः धाधातोश्च शः स्यात् विभाषया । **ददः, दधः इति**—दाधातोः, धाधातोश्च ददातिदधात्योरिति शः, सार्वधातुकत्वात् शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुरिति शपः श्लुः, श्लौ इति द्वित्वम्, अभ्याससंज्ञा, ह्रस्वोऽभ्यासस्य, अभ्यासधकारस्य अभ्यासे चर्चेति दत्वम्, ददा अ, दधा अ इति, श्नाभ्यस्तयोरति आलोपः, सोरुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

वा. गो आदि उपपद रहने पर विन्द् धातु से श प्रत्यय होता है ।
१०५४. दा और धा धातु से श प्रत्यय होता है कर्ता में, विकल्प से ।

---

1. अनावश्यकमसङ्गतञ्च ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०५५. ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः-३।१।१४०॥ ज्वालः, ज्वलः । चालः ,चलः ।
१०५६. श्याद्व्यधास्रुसंस्रवतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च-३।१।१४१॥ अवश्यायः । आत्-दायः । धायः । व्याधः । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ।

मध्यमनोरमा

ज्वलिति—अत्रेतिशब्दो निपातानामनेकार्थत्वादाद्यर्थकः, ज्वलधातुरादिर्येषाम्, कस् धातुरन्ते येषामिति बहुव्रीहिद्वयं कृत्वा ज्वलितयश्च ते कसन्ताश्चेति कर्मधारयः, तथा च ज्वलादिभ्यः कस्धातुपर्यन्तेभ्यो वा णः स्यादिति फलितोऽर्थः । पक्षे पचादेराकृतिगणत्वादच् । **ज्वाल इति-** ज्वलयतीत्यर्थः, ज्वल् दीप्तौ, ण प्रत्ययस्य [1]चुटू इति णित्त्वात् तस्मिन् परे अत उपधाया इति वृद्धिः । **चाल इति**—चल संचलने, प्राग्वदुपधावृद्धिः । ज्वलादिः भ्वाद्यन्तर्गणः । **श्याद्व्यधा**—श्याश्चाच्च व्यधश्चास्रुश्चसंस्रुश्च अतीण् चावसाश्चावहा च लिट् च श्लिट् च श्वश्चेति समाहारे द्वन्द्वः । श्यैङोऽवस्यतेश्चादन्तत्वात् सिद्धे पृथग्ग्रहणम् उपसर्गे कं बाधितुम् । अन्यथातश्चोपसर्गे इति विशेषविहितः कः सामान्यविहितस्य णस्य बाधकस्स्यात् । **अवश्याय इति**—अव विपरीतं श्यायते इत्यर्थः, श्यैङ् गतौ, आदेच इत्यात्त्वे कृते णप्रत्ययस्य णित्त्वात् तस्मिन् परे आतो युगिति युक् । **आदिति**—आदन्तस्योदाहरणमित्यर्थः । **धाय इति**—दधातेर्णः, तस्मिन् परे युगागमः । **व्याध इति**—विध्यतीत्यर्थः । व्यध् ताडने, उपधावृद्धिः। **आस्राव इति**—स्रु गतावाङ्पूर्वस्तस्य णप्रत्ययेऽजन्तलक्षणा वृद्धिः, आवादेशः । संस्राव इत्यत्राप्येवम् । **अत्याय इति**—अत्येतीत्यर्थः, इण् गतावतिपूर्वः, णस्य हलन्त्यमितीत्संज्ञायां प्राग्वद् वृद्धिरायादेशः । **अवसाय इति**—अवस्यतीत्यर्थः, षोऽन्तकर्मणि, आत्वे कृते, णिन्निमित्तको युगागमः । **अवहार इति**—हृञ् हरणे अवपूर्वः, णप्रत्यये वृद्धिः, उरण् रपरः । **ले इति**, लेढीत्यर्थः । लिह् आस्वादने, इगुपधलक्षणकापवादो णः, लघूपधगुणः । **श्लेष इति**—श्लिष्यतीत्यर्थः, श्लिष् आलिङ्गने, प्राग्वत् णः, लघूपधगुणः । **श्वास इति**—श्वसिति इत्यर्थः। श्वस् प्राणने, णः, उपधावृद्धिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ज्वलतीति—अत्रापि 'वा' इत्यनुवर्तते । ण-पक्षे अत उपधाया इति वृद्धिः, ज्वालः चालः इति। **श्याद्व्यधेति**—श्यैङ्व्यध् आस्रु संस्रु अतीण् अवषो अवहृ लिह् श्लिष् श्वस् इत्येतेभ्यो णः स्यात् कर्तरि । **अत्याय इति**—अति पूर्वात् इणः णप्रत्यये अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आयादेशः, अति आय् अ इति, यण्, स्वादिकार्यम् । **अवसाय इति**—अवपूर्वकः षोऽन्तकर्मणि इति, धात्वादेरिति षस्य सः, आदेच इति ओकारस्यात्त्वम्, अव सा इति जाते श्याद्व्यधेति णः, णित्त्वात् आतो युगिति युक्, स्वादिकार्यम्, अवसाय इति ।

हिन्दी

१०५५. ज्वलादि से कस पर्यन्त धातुओं से ण होता है, कर्ता में विकल्प से ।

१०५६. श्यैङ् व्यध् आस्रु संस्रु अतीण् अवषो, अवहृ, लिह् श्लिष् और श्वस् धातुओं से कर्ता अर्थ में ण प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०५७. विभाषा ग्रहः-३।१।१४३।। व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन जलचरे ग्राहः।

१०५८. गेहे कः-३।१।१४४।। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम् ।

१०५९. शिल्पिनि ष्वुन्-३।१।१४५।। क्रियाकौशलं शिल्पम् । तद्वति कर्तरि ष्वुन् स्यात् ।

१०६०. षः प्रत्ययस्य-१।३।६।। आदिरित् ।

वा. नृतिखनिरञ्जिभ्य एव । नर्तकः । खनकः ।

वा. असि अके अने च रञ्जेर्नलोपो वाच्यः । रजकः ।

मध्यमनोरमा

विभाषा ग्रहः—गृह्णातेर्णः स्याद् वा । विविधा अवस्था व्यवस्था संजाता अस्या इति तारकादित्वादितच्, सा चासौ विभाषा चेति[1] कर्मधारयः । बाहुल्यवदस्याप्यनेकार्थत्वस्वीकारो निपातत्वादिति भावः । जलचरे **नक्रः ग्राहः**—गृह्णाति तन्तून् इत्यर्थः, अत्र नित्यं णः, उपधावृद्धिः । ज्योतिषि सूर्यचन्द्रादौ ग्रह इति, अत्र पचाद्यच् । **गेहे कः**—गेहे कर्तरि गृह्णातेः कस्स्यात् न तु गेहे उपपदे, लक्ष्यविसंवादात् । **गृहमिति**—ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । **शिल्पिनि ष्वुन्**—पूर्वेण साहचर्यात् शिल्पिनि इत्यपि प्रत्ययार्थस्य विशेषणं न तूपपदमित्याह-तद्वति कर्तरीति । **आदिरिति**—प्रत्ययादिः षः इदित्यर्थः । **नर्तक इति**—नृत्यतीत्यर्थः । नृती गात्रविक्षेपे, ष्वुन्, षनावितौ, वु इत्यस्याकादेशः, लघूपधगुणः । **खनक इति**—खनु अवदारणे । असि असन् प्रत्यये, अके वुस्थानिके, अने युस्थानिके परे इति शेषः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तेन जलचरे ग्राह इति—विभाषा ग्रह इत्यस्य व्यवस्थितविभाषात्वात् जलचरे मत्स्यादौ अर्थे णप्रत्यये सति उपधावृद्धिः, ग्राहः इति भवति । अन्यत्र ज्योतिषि अर्थे अच्प्रत्ययेन ग्रहः इत्येव भवति । **गेहे कः इति**—गेह इति पदं प्रत्ययार्थस्य कर्तुः विशेषणं न तु उपपदमस्ति, अतः गेहे कर्तरि गृहेः कः स्यादित्यर्थो भवति । **गृहम् इति**—गृह्णाति धान्यादिकमित्यर्थे ग्रह् धातोः कः, ग्रहिज्येति रेफस्य सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, गृह इति, सोरमादेशः । **नृतिखनीति**—शिल्पिनि ष्वुन् इति विधीयमानः ष्वुन् नृत्खन्रञ्ज्-धातुभ्य एव विधीयते ।

हिन्दी

१०५७. ग्रह् धातु से कर्ता अर्थ में ण प्रत्यय होता है, विकल्प से ।

१०५८. गेह के कर्ता होने पर ग्रह् धातु से क प्रत्यय होता है ।

१०५९. शिल्पवान् के कर्ता होने पर धातु से ष्वुन् प्रत्यय होता है ।

१०६०. प्रत्यय के आदि ष की इत्संज्ञा होती है ।

वा. नृत खन् व रञ्ज् धातु से ही ष्वुन् प्रत्यय होता है ।

वा. अस् अक और अन परे रहते रञ्ज के न का लोप होता है ।

---

1. वेति मूलपाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०६१. गस्थकन्-३।१।१४६॥ गायतेस्थकन् । गाथकः ।
१०६२. ण्युट् च-३।१।१४७॥ गायनः ।
१०६३. प्रुसृल्वः समभिहारे वुन्-३।१।१४९॥ समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लक्ष्यते । प्रवकः । सरकः । लवकः ।
१०६४. आशिषि च-३।१।१५०॥ वुन् स्यात् । जीवतात्-जीवकः ।

मध्यमनोरमा

रजक इति—रज्यतीत्यर्थः, रञ्ज रागे । **गाथक इति**—गायतीत्यर्थः, गै शब्दे, आदेच इत्यात्वम्, हलन्त्यमिति थकनो नस्येत्संज्ञा । **ण्युट् च**—गायतेर्ण्युट् स्यात् । **गायन इति**—आदेच इत्यात्वं, णस्येत्वं, योरनादेशः, आतो युगिति युगागमः । **लक्ष्यते इति**—भूयः सहचारात् यो हि यां क्रियां पुनः पुनरनुभवति स तत्र प्रायेण कौशलं लभते, तेन सकृदपि यः सुष्ठु करोति तत्र वुन् भवत्येव । यस्तु बहुशोऽपि दुष्टं करोति तत्र नेति भावः । **प्रवकः इति**—साधु प्रवर्तत इत्यर्थः । प्रुङ्गतौ, वोरके परे इगन्तलक्षणो गुणः । **सरक इति**—साधु धावतीत्यर्थः । **सृ गतौ**—इगन्तलक्षणो गुणः, रपरः । **लवकः इति**—साधु लूनातीत्यर्थः, लूञ् छेदने, प्राग्वद् गुणः । **आशिषि चेति**—धातोर्वुन् स्यादाशिषि गंस्यमानायाम् । अप्राप्तप्रार्थनमाशीः, सा च प्रयोक्तुः पित्रादेर्धर्मो न प्रत्ययार्थः, 'कर्तरि कृदिति कर्तरि विधानात्' इत्यभिप्रेत्य विगृह्णाति-**जीवतादिति**-जीव् प्राणधारणे, वोरकादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

रजक इति—रञ्ज्धातोः नृतिखनि इति नियमनात् शिल्पिनि ष्वुन् इति ष्वुन् । षकारस्य षः प्रत्ययस्येति इत्संज्ञा, नस्य हलन्त्यमिति, युवोरनाकौ इति वोरकादेशः, असि अके इत्यादिना धातोनस्य लोपः, सोरुत्वविसर्गौ, । **गस्थकन्निति**—गैधातोः कृतात्वास्य गः इति पञ्चम्यां रूपम्। गैधातोः थकन् भवति शिल्पिनि कर्तरि इत्यर्थः । **गाथक इति**- गैधातोरात्वम्, अनेन थकन् प्रत्ययः, नस्येत्संज्ञा । **ण्युट् च**—गायतेः ण्युट् स्यात् शिल्पिनि कर्तरि वाच्ये थकन् चेत्यर्थः। **गायनः इति**—ण्युट्, णटौ इतौ । योरनादेशः। गा अन इति, युगागमः, प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्यम् । **प्रुसृ इति**—प्रु सृ लू इत्येषां समाहारद्वन्द्वः, तस्मात् पञ्चमी । समभिहारेऽर्थे एभ्यो धातुभ्यः वुन् स्यात् । प्रु सृ लू इत्येभ्यो वुन्, वोरकादेशः, सर्वत्र सार्वधा तुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अवादेशः, सर्तेः रपरत्वम् । **जीवक इति**—जीवधातोराशिष्यर्थे वुन्, वोरकादेशः ।

हिन्दी

१०६१. गै धातु से थकन् प्रत्यय होता है, शिल्पी कर्ता होने पर ।
१०६२. गै धातु से ण्युट् और थकन् प्रत्यय भी होते हैं, उक्त अर्थ में ।
१०६३. प्रु सृ और लू धातु से "अच्छा करना" इस अर्थ में वुन् होता है ।
१०६४. आशीर्वाद अर्थ में धातु से वुन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०६५. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्-३।१।९२।। सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत् कुम्भादि, तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ।

१०६६. कर्मण्यण् ३।२।१।। कर्मण्युपपदे धातोरण् । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।

१०६७. आतोऽनुपसर्गे कः-३।२।३।। कर्मण्युपपदे आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कः स्यात् । अणोऽपवादः । गोदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम् ? गोसंदायः ।

मध्यमनोरमा

तत्रोपपदमिति—सप्तमीस्थमित्येतद् व्याचष्टे-सप्तम्यन्त इत्यादिना । सप्तमीति प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणमिति परिभाषया संज्ञाविधावपि उपपदेति महती संज्ञाकरणसामर्थ्यात्तदन्तं पदं गृह्यते, तस्मिन् सप्तम्यन्ते पदे इत्यर्थः । किं तदित्याकाङ्क्षायामभिनयति, **कर्मणीत्यादाविति**—आदिपदात् सुपि स्थः अधिकरणे शेते गृह्यते । भूतलाद्याधारकाणां कुम्भादीनां कर्मणीत्यादिशब्दरूपेऽवस्थानासम्भवादाह—वाच्यत्वेनेति, आधेयतानियामकसम्बन्धेन तेषां तत्रोपलब्धेः स्थित्युपचारः, **तद्वाचकमिति**-सप्तमीस्थपदस्य तद्वाचके लाक्षणिकत्वात्, तद्बीजं **चोपपदमिति**-उपसमीपमुच्चारितं पदमुपपदमिति महतीसंज्ञाकरणमेव, तत्रेति पदमधिकारपरत्वेन व्याख्येयम् । तस्मिन्नुपपदे सत्येव वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः। **कुम्भकार इति**- करोतेः णित्वाद् वृद्धिः, रपरत्वम्, कुम्भ अस्कार इत्यवस्थायामुपपदसमासः, एतदुपपदसंज्ञायाः फलम् । एतच्चोपपदसमासे स्फुटीभविष्यति । **आतोऽनुपसर्गे इति**—आदन्तादनुपसर्गे सुप्युपपदे कस्स्यात् । **गोद इति**- गां ददातीत्यर्थः । के पर आतो लोप इत्यालोपः । **कम्बलद इति**- कम्बलं ददातीत्यर्थः, प्राग्वत् प्रक्रिया । **गोसन्दाय इति**- गां सम्यक् ददातीत्यर्थः । अत्र कर्मण्यण् इत्यण्, आतो युगिति युक् ।

मध्यमनोरमापूरणी

कुम्भकार इति—कुम्भं करोतीत्यर्थे कुम्भ अम् इत्यस्य उपपदसंज्ञा, कर्मण्यण् इति अण्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, रपरत्वम्, कर्तृकर्मणोः कृति इति कुम्भ शब्दात् षष्ठी, कुम्भ अस् कार इति जाते उपपदमतिङ् इति समासे कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपोधातु इति षष्ठ्याः लुक्, एकदेशविकृतमनन्यवदिति, सुः, रुत्वविसर्गौ । **गोद इति**—गां ददातीत्यर्थे गो अम् दा इत्यस्मात् कर्मण्यणं बाधित्वा आतोऽनुपसर्गे क इति कः, ककार इत्, आतो लोप इत्यालोपः, कर्मणः षष्ठी, उपपदसमासः । **कम्बलदः**—कम्बलं ददातीति विग्रहः, कम्बल अम् दा इत्यस्मात् अनेन कः ।

हिन्दी

१०६५. सप्तम्यन्त पद 'कर्मणि' इत्यादि में वाच्य रूप से स्थित जो कुम्भादि, तद्वाचक शब्द को उपपद संज्ञा होती है ।

१०६६. कर्म उपपद रहने पर धातु से अण् प्रत्यय होता है ।

१०६७. कर्म उपपद होने पर आदन्त धातु से क प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. मूलविभुजादिभ्यः कः । मूलानि विभुजति इति मूलविभुजो रथः । आकृति गणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः ।

१०६८. सुपि स्थः-३।२।४।। कः स्यात् । समस्थः । विषमस्थः । सुपीति योगविभागादन्यस्मादपि । द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः ।

१०६९. अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जि-परमे-बर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः-८।३।९७।। एभ्यः स्थस्य सस्य षः स्यात् । द्विष्ठः । त्रिष्ठः ।

मध्यमनोरमा

मूलविभुजादिभ्यः—तादर्थ्ये एषा चतुर्थी न तु पञ्चमी, तत्र सिद्धरूपाणां निदर्शनादिति भावः। मूलविभुजादिसिद्ध्यर्थं कस्स्यात् इत्यर्थः । **मूलविभुज इति**—मूलोपपदात् विपूर्वाद् भुजो कौटिल्ये इत्येतस्मादणोऽपवादः कः, कित्त्वाद् गुणाभावः । **आकृतिगणस्वीकारफलमाह-** महीध्र इत्यादि । महीं धरतीत्यर्थः, धृञ् धारणे, कर्मण्ययोऽपवादः कः, कित्त्वाद् गुणाभावे सति यण्। **कुध्र इति**—कुं पृथिवीं धरति इत्यर्थः, प्राग्वत् कः, यण् । **सुपिस्थः**-सुबन्त उपपदे तिष्ठतेः कस्स्यात् । **समस्थः**—समे तिष्ठतीत्यर्थः, समोपपदात् ष्ठा गतिनिवृत्तावित्यतः कः, आतो लोप इति चेत्यालोपः । **विषमस्थः इति**—विषमे तिष्ठतीत्यर्थः, प्राग्वत् प्रक्रिया । **योगविभागादिति**—योगस्य सूत्रस्य विभागः, वाक्यद्वयकरणं, तस्मादित्यर्थः । स चेत्थं, सुपीति स्थ इति। तत्राद्ये आतोऽनुपसर्गे क इत्यत आत इत्यनुवर्त्त्य सुप्युपपद आदन्तात् कः स्यादित्यर्थः । कर्मण्यणोऽपवादः । **तदुदाहरति**—द्विपः इति । पा पाने, कः, आतो लोपः; **द्विशब्देन** उपपद-समासः । द्वितीयस्य स्थ इत्यस्य तु सुपीत्यनुवर्त्त्य सुप्युपपदे तिष्ठतेः कः स्याद् भावे इत्यर्थः। कर्तरि पूर्वेण सिद्धत्वादिह कर्तरीति न सम्बद्ध्यते, किन्तु अनिर्दिष्टार्थत्वन्यायात् स्वार्थे धातोर्भाव एव । अस्योदाहरणन्तु **आखूत्थ** इति बोध्यम् । आखूनामुत्थानमित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

मूलविभुज इति—मूलानि विभुजति विमर्दयतीत्यर्थः, उपसर्गबलात् भुजो कौटिल्ये इत्यस्य मर्दनमित्यर्थः । कः, कित्त्वान्न गुणः । **सुपि स्थ इति**—सुपीति योग विभागः, केवले उपसर्गे आतश्चोपसर्गे इत्यस्य प्रवृत्तिः, कर्मण्युपपदे आतोऽनुपसर्गे कः इत्यस्य प्रवृत्तिः, अतः द्वाभ्यां पिबतीति अस्योदाहरणम् । **अम्बाम्बेति**—अम्बे तिष्ठतीति विग्रहे अम्बङि उपपदात् स्था धातोरनेन कः, अनेनैव स्थाधातोः सकारस्य षत्वं, ष्टुत्वम् । आकारलोपः, उपपदसमासश्च गोद इतिवत् । ब्राह्मणपितुः वैश्यकन्यायां जातः अम्बष्ठः। अस्योदाहरणेषु कुत्रचित् इण्कुभ्यां परत्वाभावाद् क्वचिच्च सात्पदाद्योरिति निषेधात् अप्राप्तं षत्वमनेन निपात्यते । सव्येष्ठ इत्यत्र सप्तम्या अलुक् ।

हिन्दी

वा. मूलविभुजादि शब्दों से क प्रत्यय होता है ।

१०६८. सुबन्त उपपद होने पर प्रत्यय होता है, और सुबन्त उपपद रहते स्था धातु से क प्रत्यय होता है ।

१०६९. अम्बष्ठ आम्बष्ठ गोष्ठ भूमिष्ठ सव्येष्ठ अपष्ठ द्विष्ठ त्रिष्ठ आदि क प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०७०. तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः-३।२।५।। तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोराभ्यां कः ।

वा. आलस्यसुखाहरणयोरिति वक्तव्यम् । तुन्दपरिमृजोऽलसः । शोकापनुदः = सुखस्याहर्ता ।

मध्यमनोरमा

उत्पूर्वात् तिष्ठतेर्भावे कः, आतो लोपः, उदस्थास्तम्भोरिति पूर्वसवर्णः, आखुशब्देनोत्थस्योपपदसमासः । मूले एतत्सूत्रोक्तोदाहरणन्तु यथाश्रुताभिप्रायेण, न तु वस्तुगत्या इतिध्येयम् । **अम्बाम्बगो इति**—कप्रत्ययान्तानुकरणं, षष्ठ्यर्थे प्रथमा । अम्बे तिष्ठति अम्बष्ठः, आम्बे तिष्ठत्याम्बष्ठः । गवि तिष्ठतीति गोष्ठः । भूमौ तिष्ठतीति भूमिष्ठः। सत्ये तिष्ठतीति सत्येष्ठः । अपतिष्ठतीति अपष्ठः, अपेत्युपसर्गः, कौ तिष्ठतीति कुष्ठः, कुशे तिष्ठतीति कुशेष्ठः, शङ्कौ तिष्ठतीति शङ्कुष्ठः, अङ्गौ तिष्ठतीति अङ्गुष्ठः । मञ्जौ तिष्ठतीति मञ्जिष्ठः । पुञ्जौ तिष्ठतीति पुञ्जिष्ठः, परमे तिष्ठतीति परमेष्ठः, अत्र सप्तम्या अलुक् । बर्हिषि तिष्ठतीति बर्हिष्ठः, दिवि तिष्ठतीति दिविष्ठः, सप्तम्याः अलुक् । अग्नौ तिष्ठत्यग्निष्ठः । एषु सर्वत्र पूर्वोक्तव्युत्पत्तिमात्रं न तु अवयवार्थानुगमे आग्रहः कार्य्यः । तत्र तत्र समुदायरूपार्थस्य प्रतीयमानत्वात् । **व्युत्पादनप्रकारस्त्वित्थम्-** तिष्ठतेः कः, आतो लोपः, उपपदसमासः, सात्पदाद्योरिति निषेधाद् गोष्ठादिष्वपि अप्राप्तेऽनेनाविशेषेण षः, इत्येतस्य सर्वस्योपलक्षणतया मूले प्रदर्शनं करोति द्विष्ठ इत्यादि । द्वाभ्यां द्वयोः वा तिष्ठतीत्यर्थः । सुपीति तिष्ठतेः कः, आतो लोपः, उपपदसमासः, ततोऽनेन षः । त्रिष्ठः इत्यत्रापि । **तुन्दशोकयोः**—आभ्यामिति, परिमृजापनुदोरित्यत्र पञ्चम्यर्थे षष्ठीति भावः । अलसस्य भाव आलस्यं, सुखस्य आहरणम्, तयोः प्रत्ययार्थविशेषणतया गम्यमानयोरेवेति वार्तिकार्थः । **तुन्दपरिमृज[1] इति**—तुन्दमुदरं केवलं परिमार्ष्टि, न तु कार्ये प्रसज्यते इत्यर्थः, मृजूष् शुद्धौ, कः, कित्त्वाद् वृद्ध्यभावः । **शोकापनुद इति**—शोकमपनुदति, शोकापनोदनपूर्वकं सुखं प्रापयतीत्यर्थः । नुद् प्रेरणे, कः, कित्त्वाद् गुणाभावः । यस्तु केवलं संसारासारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति स शोकापनोद इत्येव, अत्र कर्मण्यण् इत्यणेव । यद्यपि शोकापनोदने सुखाहरणमर्थतः सिद्धन्तथापीह न विवक्षितम्। सुखाहरणेति विशेषणसामर्थ्यादिति ।

मध्यमनोरमापूरणी

तत्त्वबोधिनीकारस्तु सव्यष्ठ इति लिखति । अपष्ठमिति करिणोऽङ्कुशस्याग्रम् । **तुन्दशोकयोरिति-** तुन्दशोकयोरुपपदयोः परिपूर्वकमृज्धातोः अपपूर्वकनुद्धातोश्च कः भवति ।

हिन्दी

१०७०. तुन्द और शोक उपपद होने पर परिमृज् अपनुद् से क होता है ।

वा. यह क प्रत्यय आलस्य और सुखाहरण अर्थ में होता है ऐसा कहना चाहिये ।

---

1. परिभृज इत्यत्र "मृजेरजादौ" इति पाक्षिकवृद्धिर्न भवति, व्यवस्थितविभाषायाः आश्रयणात् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०७१. प्रेदाज्ञः-३।२।६।। कः स्यात् । सर्वप्रदः पथिप्रज्ञः ।
१०७२. समि ख्यः-३।२।७।। गोसंख्यः ।
१०७३. गापोष्टक्-३।२।८।। कर्मण्युपपदे । सामगः ।
वा. पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम् । सुरापी । शीधुपी । अन्यत्र क्षीरपा ब्राह्मणी।
१०७४. हरतेरनुद्यमनेऽच्-३।२।९।। अंशहरः । अनुद्यमने किम् ? भारहारः ।
वा. शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटीधनुष्षु ग्रहः । शक्तिग्रहः ।

मध्यमनोरमा

प्रेदाज्ञः—प्रोपसृष्टाभ्यां कर्मण्युपपदे कः स्यात् । **सर्वप्रदः इति**—सर्वं प्रददातीत्यर्थः । ददातेः कः, आतो लोपः, उपपदसमासः । **पथिप्रज्ञ इति**—पन्थानं प्रजानातीत्यर्थः । प्रे किं, गोसन्दायः, अत्रकर्मण्यणेव । **समि ख्यः**—समुपसृष्टाच्चक्षिङः कर्मण्युपपदे कः स्यात् । **गोसंख्यः इति**—गाः संचष्टे इत्यर्थः । चक्षिङः ख्यावादेशः, ख्याप्रकथने इत्यस्य तु सार्वधातुकमात्रविषयत्वात्वादप्रयोगः । **गापोष्टक्**—कर्मण्युपपदे गापाभ्यां टक् स्यात् । **सामगः इति**—साम गायतीत्यर्थः। शब्दे, आदेच इत्यात्वं, ततष्टक्, टस्य चुटू इतीत्संज्ञा, कस्य हलन्त्यमिति, कित्त्वात्तस्मिन् परे आतो लोपः । टानुबन्धस्य फलमाह—सामगीति, साम गायति या इत्यर्थः । टिड्ढाणञ्द्वयसजिति ङीप् । उपसर्गे तु सामसङ्गायः । पाधातोरुपपद विशेषनियमपरं वार्तिकवचनं प्रदर्शयति पिबतेरिति । **सुरापी**—सुरां पिबतीत्यर्थः, पा पाने, टक्; टकावितौ, आतो लोपः, टिड्ढेति ङीप् । **शीधुपीति**—शीधुं मद्यं पिबतीत्यर्थः । **अन्यत्रेति**-अन्यस्मिन्नुपपदे सति इत्यर्थः । **क्षीरपा इति**—आतोऽनुपसर्गे कः, आतो लोपः, अजन्तत्वादजाद्यत इति टाप् । अयमेव कटकोर्विशेष इति बोधनायोदाहरणप्रत्युदाहरणयोः लिङ्गप्रदर्शनम् । **अंशहर इति**—अंशं भागं हरति स्वीकरोतीत्यर्थः, हञ् हरणे, हरणं प्रायेण स्वीकारः, स्तेयं नाशनञ्च, अच्, गुणः, रपरः । **शक्तिग्रह इति**-शक्तिं गृह्णातीत्यर्थः, ग्रह् उपादाने, अच्, चस्य हलन्त्यमितीत्वम् । एवं लाङ्गलं गृह्णातीति विग्रहे लाङ्गलग्रहः, अङ्कुशग्रहः, तोमरग्रहः, तोमरः शस्त्रविशेषः, यष्टिग्रहः, घटग्रहः, घटीग्रहः,

मध्यमनोरमापूरणी

प्रेदाज्ञ इति—प्रे इति पञ्चम्या अर्थे सप्तमी । दाज्ञा **इत्यनयोर्द्वन्द्वे** पञ्चम्या एकवचनम् । **पथिप्रज्ञ इति**—पथिन् अम् उपपदात् प्रपूर्वकज्ञाधातोः कः, आतो लोपः, कर्मणि षष्ठी, उपपदसमासः, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातु इति, नस्यान्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य लोपः । **सामगः इति**—साम गायतीत्यर्थे गै धातोरात्वे कृते गापोष्टक्, आलोपः, उपपदसमासः । **हरतेरिति**-कर्मण्युपपदे अनुद्यमने = उद्ग्रहणभिन्नेऽर्थे हृधातोरच् भवति इत्यर्थः । **भारहारः**-भारं हरतीति उद्यमनम् अतः अणेव ।

हिन्दी

१०७१. प्र उपसर्गपूर्वक दा और ज्ञा धातु से कर्म उपपद रहने पर क प्रत्यय होता है ।
१०७२. कर्म उपपद रहने पर सम्पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय होता है ।
१०७३. कर्म उपपद रहने पर गा और पा धातु से टक् प्रत्यय होता है ।
वा. सुरा और शीधु उपपद रहने पर पा धातु से टक् प्रत्यय होता है ।
१०७४. अनुद्यमन अर्थ में कर्म उपपद रहने पर हृधातु से अच् होता है ।
वा. शक्ति लाङ्गल आदि उपपद रहने पर ग्रह धातु से अच होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०७५. वयसि च-३।२।१०॥ उद्यमनार्थं सूत्रम् । कवचहरः कुमारः ।
१०७६. आङि ताच्छील्ये-३।२।११॥ पुष्पाणि आहरति तच्छीलः, पुष्पाहरः ।
१०७७. अर्हः-३।१।१२॥ अर्हतेरच् स्यात् कर्मण्युपपदे । पूजार्हा ब्राह्मणी ।
१०७८. स्तम्बकर्णयो रमिजपोः-३।१।१३॥
वा. हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् ॥ स्तम्बेरमः हस्ती । कर्णेजपः सूचकः ।

मध्यमनोरमा

नन्वत्र प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणमिति परिभाषया घटग्रहणेनैव सिद्धे पृथक् घटीग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न, लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वज्ञापनार्थत्वात् । तेन मद्रराज्ञीत्यत्र राजाहः सखिभ्यष्टजिति टज् न, द्विषतीताप इत्यत्र द्विषत्परयोस्तापेरिति खच्च न । धनुर्ग्रह इत्युदाहरणीयानि । **वयसि च**—हरतेः कर्मण्युपपदेऽच् स्याद् वयोविशेषगम्ये । कालकृतावस्थाविशेषो वयः । **ननु हरतेरनुद्यमने इत्यनेनैव सिद्धे इदं वचनं व्यर्थमित्याशङ्क्याह**—उद्यमनार्थं सूत्रमिति । **कवचहर इति**—कवचं हरतीति विग्रहेऽच्, गुणः, रपरत्वम् । कवचोद्यमनं क्रियमाणं सम्भाव्यमानं वा वयोविशेषं गमयति । यतो बालवार्द्धक्ययोः तदुद्यमनासम्भवात्, तेनासत्यपि कवचग्रहणे कवचग्रह इति भवत्येव । **आङि ताच्छील्ये** — आङ्पूर्वाद्धरतेरच् स्यात् कर्मण्युपपदे ताच्छील्ये गम्ये । तच्छब्देन प्रकृत्यर्थः सूच्यते । तस्मिन् शीलं यस्य, तस्य भावस्तस्मिन्नित्यर्थः । **पूजार्हेति**—पूजामर्हति, योग्यतया गृह्णातीति विग्रहे अर्हतेरच्, टाप् । अणि सति ङीप् स्यादिति विशेषद्योतनाय स्त्रीलिङ्गनिर्देशः । वृद्ध्यभावफलन्तु नादुपधत्वाभावात् । **स्तम्बकर्णयोः**—अनयोरुपपदयोराभ्यामच् स्यात् । **स्तम्बे रमते इति**—रम् क्रीडायाम्, अच्, उपपदसमासे हलदन्तादिति सप्तम्या अलुक् । **एवमुत्तरत्रापि** । **कर्णेजप इति**—जप जल्प

मध्यमनोरमापूरणी

वयसि च—वयसि गम्ये कर्मोपपदे हृधातोरच् भवति । हरतेरित्यनेनैव सिद्धे किमर्थमिति चेत् ? उद्यमनार्थम् इति गृहाण । **कवचहर इति**—कवचं हरति इति विग्रहे अच, धातोर्गुणः, **रपरत्वम्, उपपदसमासः** । अत्र **कवचस्य अर्थः कवचधारणयोग्यावस्था =कुमारावस्था इति** भवति । **आङि ताच्छील्ये इति**—कर्मण्यण् इत्यत कर्मणि इति अनुवर्तते । तच्छीलः तत्स्वभावः, तस्य भावः, ताच्छील्यम्, तस्मिन्निति । तत्पदेनात्र प्रकृतिभूतधातोरर्थः गृह्यते, सः प्रकृत्यर्थः शीलं यस्येति विग्रहः, तस्य भावः । कर्मण्युपपदे आङ्पूर्वाद्धरतेरच् स्यात् ताच्छील्येऽर्थे गम्ये इति सूत्रार्थः । **पुष्पाहर इति**—पुष्प शस्, आङ्पूर्वको हृधातुस्तस्मात् अच्। सार्वधातुकेति ऋकारस्य गुणः, रपरत्वम्, उपपदसमासः, सो रुत्वमिसर्गौ । **पूजार्हा इति**-पूजामर्हति या इति विग्रहे पूजा अम् इत्युपपदात् अर्हधातोरच्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, सवर्णदीर्घः, स्त्रीत्वविवक्षायामजाद्यत इति टाप्, टपावितौ, सवर्णदीर्घः, सोर्लोपः । **स्तम्बकर्णयोरिति**-रमिजपोरकर्मकत्वात् कर्मणि उपपदे इति अर्थः न सम्भवति । अतः स्तम्बकर्ण इत्येतयोः सुबन्तयोरुपपदयोः रम्जप्धातुभ्यामच् स्यादित्यर्थः । दर्भादितृणसमूहः स्तम्बः, तस्मिन् रमते इति **स्तम्बेरमः** हस्ती । अच्, उपपदसमासः, सप्तम्या अलुक् ।

हिन्दी

१०७५. अवस्था अर्थ गम्य होने पर कर्म उपपद होने पर हृ धातु से अच् होता है ।
१०७६. कर्म उपपद होने पर आङ् पूर्वक हृधातु से अच् होता है, ताच्छील्य अर्थ में ।
१०७७. कर्म उपपद होने पर अर्ह् धातु से अच् प्रत्यय होता है ।
१०७८. स्तम्ब और कर्ण उपपद रहने पर रम् और जप् धातु से 'अच्' होता है ।
वा. हस्ती और सूचक (पिशुन) अर्थ में अच् होता है, यह कहना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०७९. अधिकरणे शेतेः-३।२।१५।। खे शेते खशयः ।
वा. पार्श्वादिषूपसंख्यानम् । पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरशयः ।
१०८०. चेरष्टः-३।२।१६।। अधिकरणे उपपदे । कुरुचरः ।
१०८१. भिक्षासेनादायेषु च-३।२।१७।। भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः ।
१०८२. कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु-३।२।२०।। एषु द्योत्येषु ।
१०८३. अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य-८।।३।४६।। अत उत्तरस्यानव्ययविसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः, करोत्यादिषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ।

मध्यमनोरमा

व्यक्तायां वाचि, सूचकः परद्रोही, चुगल इति प्रसिद्धः । अन्यत्र तु स्तम्बेरन्ता कर्णेजपिता इत्येव । **अधिकरणे**—अधिकरणे उपपदे शेतेरच् स्यात् । **खशयः इति**—शीङ् स्वप्ने, अच्, गुणायादेशौ । अनधिकरणार्थं वार्तिकम् । **पृष्ठशय इति**—पृष्ठेन शेते इत्यर्थः । **उदरेशय इति**—उदरेण शेते इत्यर्थः[1] ।

मध्यमनोरमापूरणी

अधिकरणे इति—सुपीति युज्यते, तेन सुबन्ते अधिकरणे उपपदे शीङ्धातोरच् भवतीत्यर्थः । पार्श्वभ्याम् उपपदात् शीङोऽच्, गुणः, अय्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, पार्श्वशय **इति भवति।** **कुरुचर इति**—कुरुषु चरतीति विग्रहे कुरु सुप् उपपदात् चर्धातोष्टः, चुटू इति टस्येत्संज्ञा। सार्वधातुकेति गुणः, रपरत्वम्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, स्वादिकार्यम् । **भिक्षासेना इति**—एषूपपदेषु चर्धातोष्टः स्यादित्यर्थः । अनधिकरणार्थं सूत्रम् । चरधातुरत्र चरणपूर्वकेऽर्जने विद्यते । **भिक्षांचर इति**—भिक्षांचरतीत्यर्थे भिक्षाअम् इत्युपदात् चरेष्टः भवति । चरणेन भिक्षामर्जयतीत्यर्थः । सेनां चरति इति **सेनाचरः**, सेनां प्रविशतीत्यर्थः । **आदायचरः इति**—आद्राय = प्राप्तं द्रव्यं गृहीत्वा, चरतीत्यर्थः । भिक्षासेनेति टः । **कृञोहेतु इति**—कर्मण्युपपदे हेतौ ताच्छील्ये आनुलोम्ये चाऽर्थे कृञष्टो भवति । हेतुरिह कारणम् । ताच्छील्यं तत्स्वभाववता। आनुलोम्यम् आनुकूल्यम् । **यशस्करी इति**—यशः करोतीत्यर्थे कृञोहेतु इति टः, धातोर्गुणः, उपपदसमासः, सुपो लुक्, यशस् कर इति, सस्य रुत्वविसर्गयोः कृतयोः अतः कृकमीति विसर्गस्य सत्वम् । टिड्ढाणञ् इति ङीप् । भत्वादल्लोपः ।

हिन्दी

१०७९. अधिकरण सुबन्त उपपद होने पर शीङ् धातु से अच् होता है ।
वा. पार्श्व आदि के उपपद होने पर शीङ् धातु से अच् होता है ।
१०८०. अधिकरण उपपद होने पर कृ धातु से ट प्रत्यय होता है ।
१०८१. भिक्षा सेना और आदाय उपपद होने पर चर् धातु से ट प्रत्यय होता है ।
१०८२. हेतु ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ गम्य होने पर कृ धातु से ट होता है कर्म उपपद रहने पर ।
१०८३. अत् से परे अव्ययभिन्न विसर्ग को स होता है कृ कम् इत्यादि के परे रहते समास में।

1. "इतः परं विभक्त्यर्थं यावत्" मध्यमनोरमा टीका नोपलभ्यते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०८४. दिवा-विभा-निशा-प्रभा-भास्करान्तानन्तादि-बहुनान्दी-किंलिपि लिबि-बलिभक्ति-कर्तृ-चित्र-क्षेत्र-संख्या-जङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु-३।२।२१॥ सः-भास्करः । बहुकरः । एककरः । द्विकरः । अहस्करः । धनुष्करः । अरुष्करः।

१०८५. न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु-३।२।२३॥ एषु कृञष्टो न । शब्दकारः ।

१०८६. स्तम्बशकृतोरिन्-३।२।२४॥

वा. ब्रीहिवत्सयोरिति वाच्यम् ॥ स्तम्बकरिर्ब्रीहिः । शकृत्करिः वत्सः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विद्या अत्र यशोहेतुः । **श्राद्धकर इति**—श्राद्धं करोतीत्यर्थे टः । श्राद्धक्रियाशीलः इति । **वचनकर इति**—वचनं करोति इति अनुकूलता । **दिवेति**—अत्र कर्मणि, सुपि इति चानुवर्तेते। तत्र यथायोगं सम्बन्धः । अहेत्वाद्यर्थ आरम्भः । दिवादिषु उपपदेषु कृञष्टः स्यात् । **दिवाकर इति**-दिवा, दिवसं करोतीति विग्रहेऽनेन टः, टकार इत्, सार्वधातुकेति गुणः, रपरत्वम् । विभां करोतीति विभाकरः । निशां करोतीति **निशाकरः** । प्रभां करोतीति **प्रभाकरः** । भासः करोतीति विग्रहे टः, उपपदसमासः । भासः सस्य रुत्वविसर्गौ । कुप्वोरिति विसर्गस्य विसर्गे प्राप्ते निपातनादेव स्कादिषु चेति सः, **भास्करः इति** । **कारकर इति**—कर एव कारः, प्रज्ञादित्वादण्, कारं करोति इति कारकरः । अन्तं करोतीति अन्तकरः । अनन्तं करोतीति अनन्तकरः । एवमेव आदिकरः । **बहुकर इति**—बहुशब्दस्य वैपुल्यवाचित्वान्न संख्याग्रहणेन ग्रहणम् । **नान्दीकरः**-नान्दीं करोतीत्यर्थः । किङ्करः लिपिकरः लिबिकरः बलिकरः भक्तिकरः, कर्त्तृकरः चित्रकरः, क्षेत्रकरः, इत्यादि ऊह्यम् । **एककरः**—एकं करोतीत्यर्थः । एकशब्दोऽत्र संख्यावाची । द्विकरः, जङ्घाकरः, बाहुकरः, इत्यपि बोध्यम् । **अहस्कर इति**—अहः करोतीति विग्रहे टः, गुणः, अहन्निति नस्य रुत्वं, विसर्गः, कस्कादिषु चेति विसर्गः । यत्तत् इत्येतयोः यत्करः तत्करः इति अचि कृते बोध्यम् । **धनुष्कर इति**—धनुः करोति इति, षस्य रुत्वविसर्गौ, नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्येति षत्वम् । एवमेव अरुः करोतीति अरुष्कर इति बोध्यम् । **न शब्देति**-शब्दश्च श्लोकश्च कलहश्च गाथा च वैरञ्च चाटुश्च सूत्रञ्च मन्त्रश्च पदञ्चेति विग्रहे द्वन्द्वसमासः, एषु उपपदेषु कृञ्धातोष्टो न भवति । कृञो हेतुताच्छील्येति प्राप्तष्टः अनेन निषिध्यते । **शब्दकार इति**—शब्दं करोतीत्यर्थे कृञो हेतु इति प्राप्तष्टोऽनेन निषिद्धः, कर्मण्यण् इति अण्, कृञो वृद्धिः, रपरत्वम्, उपपदसमासः, प्रातिपदिकसंज्ञा सुपो लुक् । सोरुत्वविसर्गौ। **स्तम्ब इति**—स्तम्बे शकृति च कर्मण्युपपदे कृधातोरिन् स्यात् । ब्रीहि इति—ब्रीहौ वत्से च कर्तरि उक्तः इन् प्रत्ययो भवेदिति वक्तव्यम् । **स्तम्बकरिः इति**—स्तम्बं तृणनिचयं करोतीति विग्रहे स्तम्बशकृतोरिति इति इन्, नकार इत्, आर्धधातुकत्वात् गुणः रपरत्वम्, उपपदसमासः, सुपो लुक्। **शकृत्करिः इति**—शकृत्= मलं करोति इति विग्रहे इन्, गुणः, रपरत्वम् ।

हिन्दी

१०८४. दिवा विभा निशा आदि सुबन्त कर्म उपपद होने पर कृ धातु से ट प्रत्यय होता है।
१०८५. शब्द श्लोक कलह इत्यादि उपपद रहने पर कृञ् धातु से ट-प्रत्यय नहीं होता है।
१०८६. स्तम्ब और शककृत् कर्म उपपद होने पर कृ धातु से इन् प्रत्यय होता है ।
वा. ब्रीहि और वत्स के कर्ता होने पर इन् प्रत्यय हो, यह कहना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०८७. हरतेर्दृतिनाथयोः-३।२।२५।। दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरतीति नाथहरिः= पशुः ।

१०८८. फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च-३।२।२६।। एतौ निपात्येते । चात् कुक्षिम्भरिः । चान्द्रास्तु आत्मोदरकुक्षिष्विति पेठुः । 'ज्योत्स्नाकरम्भमुदरम्भरयश्चकोराः' इति मुरारिः ।

१०८९. एजेः खश्-३।२।२८।। ण्यन्तात् ।

१०९०. अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्-६।३।६७।। अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च मुम् खिदन्ते नत्वव्ययस्य । शित्वाच्छबादि । जनमेजयतीति जनमेयजयः ।

वा. वातशुनीतिलशर्द्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्यः खश् । वातमजा मृगाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वत्से कर्तरि अयं प्रयोगः । **हरतेरिति**—दृति नाथ इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः हृधातोरिन् स्यात् पशौ कर्तरि । **दृतिहरिः इति**—दृतिं = चर्मभस्त्रिकां हरति इत्यर्थे हरतेर्दृति इति इन्, हृधातोर्गुणः, रपरत्वम् । उपपदसमासः । **नाथहरिः इति**—नाथः नासारज्जुः तं हरति इत्यर्थे इन् । गुणः, रपरत्वमुपपदसमासः, सो रुत्वविसर्गौ । नासिकाप्रोतरज्जुकः पशुरित्यर्थः । **फलेग्रहिरिति**—फलोपपदस्य एकारान्तत्वं ग्रहेरिन्-प्रत्ययः, आत्मन्नित्युपपदस्य **मुमागमः** भृञश्च इन्-प्रत्ययो निपात्यते इति सूत्रार्थः । **फलेग्रहिरिति**—फलानि गृह्णातीत्यर्थे इन् प्रत्ययः फलस्यैत्वं च निपात्यते । **आत्मम्भरिरिति**—आत्मानं बिभर्तीत्यर्थे आत्मन् अम् इत्युपपदात् भृधातोरनेन इन्, आत्मनो मुमागमश्च भवति, उपपदसमासः, सुपो लुक्, नलोप इति नलोपः, गुणः ऋकारस्य, रपरत्वञ्च । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः सूत्रे । तेन कुक्षिम्भरिः उदरम्भरिः इत्यादावपि मुमागमः, इन् प्रत्ययश्च निपात्येते । **एजेरिति**—ण्यन्तस्य एजृ कम्पने इत्यस्य एजेः इति रूपम्, न तु इका निर्दिष्टस्य । तेन, कर्मण्युपपदे ण्यन्तात् एजिधातोः खश् प्रत्ययो भवतीति सूत्रार्थः सिद्ध्यति । अरुर्द्विषदिति—अरुश्च द्विषच्च अजन्तश्चेत्येषां समाहार द्वन्द्वः, समस्तात् षष्ठी । अधिकारात् उत्तरपदे इति प्राप्यते, खित्यनव्ययस्येत्यतः खिति इत्यनुवर्तते, तस्मात्तदन्तविधिर्भवति प्रत्ययत्वात् । **तदाह**-अरुषो द्विषत इत्यादि । **जनमेजय इति**-जनम् एजयतीति विग्रहे,जन अम् उपपदात् एजिधातोः एजेरिति खश्, लशक्वतद्धिते इति खकार इत्, शकारः हलन्त्यमित्यनेनेत् । शित्त्वात्सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, णेर्गुणः, अयादेशः, अतो गुणे इति पररूपम् । उपपदसमासः, सुपो लुक्, जन एजय इति, अरुर्द्विषदिति मुमागमः। सोः रुत्वविसर्गौ । **वातशुनी इति**—वातोपपदादजः शुनीत्युपपदात् धेटः, तिलोपपदात् तुदः शर्धोपपदाच्च हाधातोः खश् भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

१०८७. दृति और नाथ उपपद होने पर हृ धातु से इन् प्रत्यय होता है ।

१०८८. फलेग्रहि और आत्मम्भरि ये निपातन हैं ।

१०८९. कर्म उपपद होने पर ण्यन्त एज् धातु से खश् होता है ।

१०९०. अरुष् द्विषत् एवम् अजन्त को मुम्-आगम होता है खिदन्त उत्तरपद परे रहते, अव्यय को नहीं होता है ।

वा. वात शुनी आदि उपपद होने पर अज धेट् तुद् और हा से खश् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०९१. खित्यनव्ययस्य-६।३।६६।। ह्रस्वः । शुनिन्धयः । तिलन्तुदः । शर्धञ्जहा माषाः ।

१०९२. नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः-३।२।२९।।

वा. स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वक्तव्यम् । स्तनन्धयः । धेटः टित्त्वात्-स्तनन्धयी । नासिकन्धमः । नासिकन्धयः ।

१०९३. नाडीमुष्ट्योश्च-३।२।३०।। ध्माधेटोः खश् । नाडिन्धमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः ।

१०९४. उदिकूले रुजिवहोः-३।२।३१।। कूलमुद्रुजः । कूलमुद्वहः ।

१०९५. वहाभ्रे लिहः-३।२।३२।। वहः स्कन्धः तं लेढीति वहंलिहो गौ । अभ्रंलिहो वायुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वातमजाः इति—वातम् अजन्ति = क्षिपन्तीति विग्रहे खश्, उपपदसमासः, सुपो लुक् अरुर्द्विषदिति मुम्, वातमज इति, जसि वातमजा इति । एवमेव शुनिन्धय इति, खित्यनव्ययस्येति शुनीत्यस्य ह्रस्वः, मुम्, धेटोऽय् । **शर्धञ्जहा इति**—शर्धम्= अपानवायुं हापयन्ति, इति अन्तर्भावितण्यर्थः हाधातुः, तस्मात् खश्, शप्, जुहोत्यादित्वाच्छपो श्लुः, श्लौ इति द्वित्वमभ्याससंज्ञा, कुहोश्चुरिति हस्य झः, अभ्यासे चर्चेति जः, श्नाभ्यस्तयोरित्यालोपः, जसि रूपम् । **नासिकेति**—एतयोरुपपदयोः, ध्माधेटोः खश् स्यादित्यर्थः । **स्तनन्धय इति**—स्तनं धयतीत्यर्थे खश्, शप्, अय्, पररूपम्, उपपदसमासः, अरुर्द्विषदिति मुम्, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ। **स्तनन्धयीति**—टित्त्वात् धेटः, टिड्ढेति ङीप् स्त्रियाम् । **नासिकन्धम इति**—नासिकां धमति इत्यर्थे खश्, खित्यनव्ययस्येति नासिकायाः ह्रस्वः, मुम्, ध्मेत्यस्य पाघ्रेति धमादेशः । **नाडिन्धम इति**—खश्, उपपदसमासः, नाडीत्यस्य ह्रस्वः, मुम् । **उदिकूले इति**—रुजिवहोरिति पञ्चम्यर्थे षष्ठी, उदि इति पञ्चम्या अर्थे सप्तमी, तस्मान्नेदमुपपदमपि तु कूले इत्युपपदम् । रुजो भङ्गे वह प्रापणे इत्याभ्यामुत्पूर्वाभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् स्यादित्यर्थः । **कूलमुद्रुज इति**—कूलम् उद्रुजति=भिनत्तीत्यर्थे खश्, तुदादिभ्यः शः, शितो ङित्त्वान्न गुणः, उपपदसमासः, मुम्। **कूलमुद्वह इति**—कूलमुद्वहतीति विग्रहे खश्, शप्, मुम् । **वहाभ्रे इति**—वह अभ्र इत्यनयोः कर्मोपपदयोः लिह्धातोः खश् स्यात् । **वहंलिह इति**—वह अम् उपपदात् लिहः खश्, शप्, अदादित्वाच्छपो लुक्, खशः शित्त्वप्रयुक्तङित्वान्न लघूपधगुणः, उपपदसमासः, मुम्, मोऽनुस्वारः इति मस्यानुस्वारः । एवमेव अभ्रं लेढीति अभ्रंलिहो वायुरिति ज्ञेयम् ।

हिन्दी

१०९१. खिदन्त के परे रहते पूर्वपद को ह्रस्व होता है ।

१०९२. नासिका और स्तन उपपद होने पर ध्मा और धेट् से खश् होता है ।

वा. स्तन उपपद होने पर धेट से और नासिका उपपद होने पर ध्मा और धेट् से खश् कहना चाहिये ।

१०९३. नाडी और मुष्टि उपपद होने पर ध्मा और धेट् से खश् प्रत्यय होता है ।

१०९४. उद्पूर्वक रुज् और वह् धातु से कूल उपपद होने पर खश् होता है ।

१०९५. वह और अभ्र उपपद होने पर लिह् धातु से खश् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०९६. परिमाणे पचः-३।२।३३।। प्रस्थम्पचा स्थाली । खारिम्पचः कटाहः ।
१०९७. मितनखे च-३।२।३४।। मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागूः ।
१०९८. विध्वरुषोस्तुदः-३।२।३५।। विधुन्तुदः । अरुन्तुदः ।
१०९९. असूर्यललाटयोः दृशितपोः ३।२।३६।। असूर्यमित्यसमर्थसमासः । दृशिना नञः सम्बन्धात् । असूर्यम्पश्या राजदाराः । ललाटन्तपः सूर्यः ।
११००. प्रियवशे वदः खच्-३।२।३८।। प्रियंवदः । वशंवदः ।
वा. गमेः सुपि वाच्यः । मितङ्गमो हस्ती ।
वा. विहायसो विह च ।
वा. खच्च डिद्वा वाच्यः । विहङ्गमः, विहङ्गः । भुजङ्गमः । भुजङ्गः ।

मध्यमनोरमापूरणी

परिमाणे इति—परिमाणे कर्मण्युपपदे पचः खश् स्यात् । **प्रस्थम्पचा इति**—प्रस्थं पचतीति विग्रहे खश्, शप्, पररूपम्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, मुम्, स्त्रीत्वविवक्षायां प्रस्थम्पच इत्यतष्टाप् । **खारिम्पच इति**—खारीं पचतीति, खश्, शप्, पररूपम्, खित्यनव्ययस्येति खारी इत्यस्य ह्रस्वः, मुम्, प्रस्थखारीत्यादि तु परिमाणवचनम् । **मितनखे चेति**—मिते नखे च कर्मण्युपपदे खश् स्यात् । **मितंपचा इति**—मितं पचतीति, खश्, स्त्रीत्वाट्टाप् । नखम्पचतीति नखम्पचा। नखानां पाकोऽसम्भवः, अतः पच् धातुरत्र तापवाची । **विध्वरुषो इति**—विधु अरुस् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः तुदः खश् । **विधुन्तुद इति**—विधुं तुदति-व्यथयति इति विग्रहः, खश्, शः, मुम् । राहुरित्यर्थः । **अरुन्तुद इति**—अरुर्मर्म तत्तुदतीति विग्रहे खश्, शः, पररूपमुपपदसमासः, अरुर्द्विषदिति अरुस उकारात् परं मुम्, अरुन्स् तुद इति, सस्य संयोगान्तलोपः । **असूर्येति**—असूर्ये ललाटे चोपपदे दृशेस्तपेश्च खश् स्यात् । **असमर्थ इति**—सौत्रत्वात्, यतो हि दृशिना नञः सम्बन्धः न सूर्येण । **असूर्यम्पश्या**—असूर्य अम् इत्युपपदात् दृशः खश्, शप्, पाघ्रेति पश्यादेशः, पररूपम्, मुम् । राजदाराः सूर्यमपि न पश्यन्ति इति गुप्तिपरं वाक्यम् । **ललाटन्तप इति**—ललाटं तपतीति विग्रहः, सूर्यं पश्यतो ललाटस्य तापनमवश्यं भवत्येव । **प्रियवशे इति**-अनयोरुपपदयोः वदः खच् स्यात् । उत्तरसूत्रेऽनुवृत्त्यर्थं खच् इति । **प्रियं वद इति**—प्रियंवदतीत्यर्थः, खच्, उपपदसमासः, मुम् । **गमेरिति**—सुबन्तोपपदात् गमेः खच् स्यात् । मितं गच्छतीति विग्रहः, खच्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, मुम्, मस्यानुस्वारपरसवर्णयोः कृतयोः **मितङ्गमः इति** । **विहायस इति**—विहायसो विहादेशः खच्च स्यात् । **विहङ्ग**

हिन्दी

१०९६. परिमाणवाचकपद के उपपद होने पर पच् धातु के खश् होता है ।
१०९७. मित और नख उपपद होने पर पच् से खश् प्रत्यय होता है ।
१०९८. विधु और अरुस् उपपद होने पर तुद् से खश् प्रत्यय होता है ।
१०९९. असूर्य व ललाट उपपद होने पर दृश्धातु से व तप् से खश् प्रत्यय होता है ।
११००. प्रिय और वश कर्म उपपद होने पर वद् से खच् प्रत्यय होता है ।
वा. सुबन्त उपपद होने पर गम् से खच् प्रत्यय होता है ।
वा. विहायस उपपद होने पर गम् से खच् प्रत्यय होता है व विहायस को विह आदेश होता है।
वा. गमेः सुपि वार्तिक से विहित खच् डित् होता है, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११०१. द्विषत्परयोस्तापे-३।२।३९।। खच् ।

११०२. खचि ह्रस्वः-६।४।९४।। खचि परे णौ उपधाया ह्रस्वः । द्विषन्तं तापयति-द्विषन्तपः । परं तापयति परन्तपः ।

११०३. वाचि यमो व्रते-३।२।४०।। खच् ।

११०४. वाचंयमपुरन्दरौ च-६।३।६९।। वाक्पुरोरमन्तत्वं निपात्यते । वाचंयमो मौनव्रती । व्रते किम् ? अशक्त्यादिना वाचं यच्छतीति वाग्यामः ।

११०५. पूःसर्वयोर्दारिसहोः-३।२।४१।। खच् । पुरं दारयतीति पुरन्दरः । सर्वसहः । कथं तर्हि भगं दारयति इति भगन्दरः ? बाहुलकात् ।

११०६. सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः-३।२।४२।। सर्वङ्कषः खलः । कूलङ्कषा नदी । अभ्रङ्कषो वायुः । करीषङ्कषा वात्या ।

मध्यमनोरमापूरणी

इति—विहायसा गच्छतीति विग्रहे विहायस् टा गम् इत्यस्मात् विहायसो विह चेति खच्, विहादेशश्च । विह गम् अ इति स्थिते खच्च डिद्वेति डिद्वद्भावे डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपे मुमि अनुस्वारपरसवर्णौ । डित्त्वाभावे **विहङ्गम इति** । एवमेव भुजैः गच्छतीत्यर्थे गमेः सुपीति खच्, डिद्वद्भावः, टेर्लोपः, भुजङ्गः इति,डित्त्वाभावे **भुजङ्गम इति** । **तापेरिति**—तप् दाहे, तप् सन्तापे इत्यनयोः चौरादिकभौवादिकयोः ण्यन्तयोर्ग्रहणम् । **खचिह्रस्व इति**—दोषो णौ इत्यतः 'णौ' इति ऊदुपधाया गोह इत्यह उपधाया इति चानुवर्तेते । **अत आह**—खचि परे णौ उपधाया ह्रस्व इति । **द्विषन्तप इति**—द्विषत् अम् उपपदात् तापिधातोर्द्विषत्परयोरिति खच्,खचि ह्रस्व इति उपधा ह्रस्वः, णेरनिटीति णिलोपः, उपपदसमासः, सुपो लुक्, अरुर्द्विषदिति मुम्, द्विषन्त् तप इति, संयोगान्तस्य तस्य लोपः । परं = शत्रुं तापयतीति **परन्तप इति** । **वाचंयम इति**—वाचं यच्छतीति विग्रहे वाचि यमो व्रते इति खच्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, वाच् यम इति, व्रतेऽर्थे एव वाचंयम इति वाचोऽमन्तत्वं निपात्यते । मस्यानुस्वारः । एवमेव पुरं दारयतीति विग्रहे पूःसर्वयोरिति खच्, खचि ह्रस्वः, णिलोपः, पुर् दर इति, वाचंयम इति अमन्तनिपातनं पुर् शब्दस्य । **वाग्याम इति**—यत्र न व्रत अपि तु अशक्त्यादिना वाचं नियन्त्रयति तत्र कर्मण्यण् इति अण्, उपधावृद्धिः, चो कुरिति गः । **पूरिति**—दारिसहोरिति पञ्चम्यर्थे षष्ठी । पुर्सर्वशब्दयोः उपपदयोः सतोः दारिसहिभ्यां खच् भवतीत्यर्थः । पुरन्दर इत्युक्तम् । **कथं तर्हीति**—ननु भगं दारयतीति विग्रहे पुर्सर्वशब्दयोः उपपदत्वाभावात् कथं खच् इति चेदुच्यते-**बाहुलकात्** अत्र खच् प्रत्ययो बोध्यः । **बाहुलकलब्धं वार्तिकमाह काशिकायाम्**—भगे च दारेरिति वक्तव्यमिति । **सर्वकूलेति**—इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कष्धातोः खच् भवति इत्यर्थः । **सर्वङ्कष इति**—सर्वं कषतीति विग्रहः, खच्, उपपदसमासः, सुपो लुक्, मुम्, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ, स्वादिकार्यम् । **कूलङ्कषा इति**—स्त्रीत्वाट्टाप् ।

हिन्दी

११०१. द्विषत् और पर कर्मसंज्ञक के उपपद होने पर ण्यन्त तापि से खच् प्रत्यय होता है ।

११०२. खच् परक णि परे उपधा को ह्रस्व होता है ।

११०३. वाच् शब्द के उपपद होने पर यम् धातु से खच् होता है, व्रत अर्थ गम्यमान होने पर।

११०४. वाच् और पुर् शब्द को अमन्त निपातन होता है यम और दर परे रहते ।

११०५. पुर् और सर्व उपपद रहने पर दारि और सह से खच् प्रत्यय होता है ।

११०६. सर्वकूल आदि उपपद होने पर कष् से खच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११०७. मेघर्तिभयेषु कृञः-३।२।४३।। मेघङ्करः । ऋतिङ्करः । भयङ्करः । भयशब्देन तदन्तविधिः । अभयङ्करः ।

११०८. क्षेमप्रियमद्रेऽण् च-३।२।४४।। एषु कृञोऽण् चात् खच् । क्षेमङ्करः, क्षेमकारः । प्रियङ्करः, प्रियकारः । मद्रङ्करः, मद्रकारः । कथं तर्हि 'अल्पारम्भः क्षेमकरः' इति ? कर्मणः शेषत्वविवक्षायां पचाद्यच् । एवं गङ्गाधर भूधरादयः ।

११०९. आशिते भुवः करणभावयोः-३।२।४५।। खच् । आशितो भवत्यनेन आशितम्भवओदनः । आशितस्य भवनम् आशितम्भवः ।

१११०. संज्ञायां भृ तॄ-वृजिधारि-सहि-तपि-दमः-३।२।४६।। खच् । विश्वं बिभर्ति इति विश्वम्भरः । रथन्तरं साम । शत्रुञ्जयः हस्ती । युगन्धरः पर्वतः। शत्रुंसहः । शत्रुन्तपः । अरिन्दमः।

मध्यमनोरमापूरणी

मेघर्ति इति—मेघ ऋति भय इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञः खच् भवति इति । **मेघङ्कर इति**-मेघं करोतीति विग्रहेऽनेन खच्, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, रपरत्वम्, उपपदसमासे सुपो लुक् । मुम् । अनुस्वारपरसवर्णौ । ऋतिर्गमनं तत्करोतीति **ऋतिङ्कर इति** । **भयशब्देनेति**-समासप्रत्ययविधौ इति तदन्तविधिप्रतिषेधादत्र अप्राप्तस्तदन्तविधिः येन विधिरिति भाष्यानुरोधेन वाचनिको ज्ञेयः । अतः उपपदविधौ भयादिग्रहणं तदन्तविधिं प्रयोजयतीति काशिकायामुक्तम् । तेन अभयं करोतीति विग्रहे भयशब्दान्तोपपदात् खच् अनेन भवति । **क्षेमप्रिये इति**-क्षेम प्रिय मद्र इत्येषु उपपदेषु कृधातोरण् चात् खच् च स्यादित्यर्थः ।**क्षेमङ्कर इति**—क्षेमं करोतीति विग्रहे क्षेम अम् कृ इत्यस्मात् खच्, गुणः रपरत्वम्, मुम्, अनुस्वारपरसवर्णौ । अण्-पक्षे तु अचो ञ्णितीति वृद्धिः, खिदन्तोत्तरपदाभावात्र मुम्, क्षेमकार इति । **ननु क्षेमप्रियमद्रे वेति सूत्रेण खचि तदभावे कर्मण्यण् इत्यणि क्षेमङ्कर क्षेमकारादि सिद्धिः, अण्ग्रहणं किमर्थमिति चेदुच्यते**—कृञो हेतु इति ट-बाधनार्थमत्राण् निर्देशः । **कथं तर्हि इति**—ननु कृञो हेतु इति ट-प्रत्ययस्य क्षेमप्रियेति बाधात् अल्पारम्भः 'क्षेमकरः' इति न स्यादिति चेन्न, कर्मणः शेषत्वविवक्षायां षष्ठ्यां सत्यां कर्मोपपदाभावात् नाण्, अपि तु पचाद्यच् इति अचि रूपं बोध्यम् । **आशिते इति**—अत्र सुपि इत्युपतिष्ठते । तेन आशित इति सुबन्तोपपदे भूधातोर्खच् स्यात् करणे भावे चेत्यर्थः । **करणे तावत्**—आशितो भवति अनेनेति विग्रहे आशित सु इत्युपपदात् भूधातोः खच्, गुणोऽवादेशः, मुम्, अनुस्वारपरसवर्णौ । **भावे तु**—आशितस्य भवनमिति विग्रहः, खच्, गुणः, अव्, मुम्, अनुस्वारपरसवर्णौ । वासरूपविधिना ल्युडपि भवति, तेन आशितभवनमित्यपि । यावता भोजने अतिथ्यादिः भोजितो भवति स आशितम्भव इत्युच्यते। **संज्ञायामिति** —अत्र कर्मणीति सुपीति चानुवर्तेते यथायथं सम्बध्येते च । **विश्वम्भर इति**—

हिन्दी

११०७. मेघ ऋति और भय उपपद होने पर कृ से खच् प्रत्यय होता है ।

११०८. क्षेम प्रिय और मद्र उपपद होने पर कृञ् धातु से अण् और खच् प्रत्यय होता है ।

११०९. आशित उपपद होने पर भू धातु से करण और भाव में खच् प्रत्यय होते हैं ।

१११०. सुबन्त और कर्म उपपद होने पर भृ आदि धातुओं से खच् होता है, संज्ञा गें ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१११९. गमश्च-३।२।४७।। सुतङ्गमः ।

१११२. अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः-३।२।४८।। गमेः । अन्तगः ।

वा. सर्वत्रपन्नयोरिति वाच्यम् । सर्वत्रगः । पन्नं पतितं गच्छति इति पन्नगः ।

वा. उरसो लोपश्च । उरसा गच्छतीति उरगः ।

वा. सुदुरोरधिकरणे । सुखेन गच्छत्यत्र-सुगः । दुर्गः ।

वा. अन्यत्राऽपि दृश्यते इति वाच्यम् । ग्रामगः ।

वा. डे च विहायसो विहादेशो वाच्यः । विहगः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विश्वं बिभर्तीति विग्रहे विश्व अम् इत्युपपदात् भृधातोः खच्, गुणः, रपरत्वम्, उपपदसमासः, मुम् । विष्णोरियं संज्ञा । **रथन्तरं साम**—रथेन तरतीति विग्रहः, तृधातोरत्र खच् । रथेन तरतीति व्युत्पत्तिमात्रम् न तु अवयवार्थानुगमः । वृधातोः पतिम्वरा कन्येति ज्ञेयम् । शत्रुं जयतीति शत्रुञ्जयो हस्ती । **युगन्धर इति**—युगं धारयति इति विग्रहः, खच्, खचि ह्रस्व इति उपधा-ह्रस्वः णेर्लोपः । शत्रून् सहते इति शत्रुंसहः । शत्रून् तपतीति शत्रुन्तपः । **अरिन्दम इति**—दम्धातुरत्र शमनायामर्थे । तेन अरिषु निग्रहविषये शमयतीत्यर्थः । **गमश्चेति**—संज्ञायां गमेः खच् सुप्युपपदे इत्यर्थः । **अन्तात्यन्तेति**—एषु कर्मसूपपदेषु गमेर्डः । **अन्तग इति**—अन्तं गच्छतीति वग्रहे अन्तम् इत्युपपदात् गमेः डः, डकार इत् । डित्वादभस्यापि टेर्लोपः, उपपद-समासः, सुपो लुक् । **सर्वत्रपन्नयोरिति**—अनयोरुप पदयोः गमेर्डः स्यात् । **उरसो लोप इति**-उरस् इत्युपपदात् गमेर्डः, उरसः सस्य च लोपः इत्यर्थः । **उरग इति**—उरसा गच्छति इति विग्रहे डः, सस्य लोपः, टिलोपः । **सुदुरोः इति**—सुदुर् इत्यनयोरुपपदयोर्गमेर्डः भवति अधि-करणेऽर्थे । **सुग इति**—सुखेन गच्छति अत्रेति विग्रहे सुपूर्वकगम्धातोर्डः, डित्त्वाट्टिलोपः । दुःखेन गच्छतीति **दुर्गः** । **अन्यत्राऽपि**—अन्येषु अपि उपपदेषु गम्भिन्नेभ्योऽपि धातुभ्यो डो दृश्यते इत्यर्थः । **ग्रामग इति**—ग्रामं गच्छतीति विग्रहः, डः, डित्त्वाट्टेरमो लोपः । **डे चेति**—विहायसो विहादेशो भवति ड प्रत्यये परे । विहायसो विह चेत्यस्य खज्विषयत्वादियं पृथ-गुक्तिः । **विहग इति**—विहायसा गच्छतीति विग्रहे अन्यत्राऽपीति डः, डे चेति विहायसो विहादेशः, टिलोपः ।

हिन्दी

१११९. सुबन्त उपपद होने पर गम् से खच् होता है, संज्ञा में ।

१११२. अन्त अत्यन्त अध्व दूर पार सर्व और अनन्त उपपद होने पर गम् धातु से ड प्रत्यय होता है ।

वा. सर्वत्र और पन्न उपपद होने पर गम् से ड प्रत्यय होता है ।

वा. उरस् उपपद होने पर गम् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है तथा उरस् के अन्त्य का लोप होता है ।

वा. सु और दुर् उपपद होने पर गम् से ड प्रत्यय होता है, अधिकरण अर्थ में ।

वा. सुबन्त उपपद होने पर अन्य धातु से भी ड प्रत्यय होता है ।

वा. ड-प्रत्यय परे विहायस् को विह आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१११३. आशिषि हनः-३।२।४९।। शत्रुं वध्यात्-शत्रुहः । आशिषि किम्-शत्रुघातः ।

वा. दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ।। दारुशब्दे उपपदे आङ्पूर्वाद्धन्तेरण् टकारश्चान्तादेशो वक्तव्य इत्यर्थः । दार्वाघाटः ।

वा. चारौ वा । चार्वाघाटः । चार्वाघातः ।

१११४. अपे क्लेशतमसोः-३।२।५०।। अपपूर्वाद्धन्तेर्डः । अनाशीरर्थमिदम् । क्लेशापहः पुत्रः । तमोऽपहः सूर्यः ।

१११५. कुमारशीर्षयोर्णिनिः-३।२।५१।। कुमारघाती । शिरसः शीर्षभावो निपात्यते । शीर्षघाती ।

मध्यमनोरमापूरणी

आशिषि इति—ड इत्यनुवर्तते, कर्मण्युपपदे इति च सम्बद्ध्यते । कर्मण्युपपदे हनः डो भवति आशिष्यर्थे । **शत्रुहः**—शत्रुं वध्यात् इति आशीर्वादः श्रेष्ठस्य, अस्मिन्नर्थे डः, शत्रु हन् अ इति, डित्त्वाट्टेरनो लोपः । **शत्रुघात इति**—आशिषोऽभावे कर्मण्यण्, हनस्त इति नस्य तः, उपधावृद्धिः, होहन्तेरिति हस्य कुत्वेन घः । **दारावाहन इति**—दारुशब्दे उपपदे अणन्तस्य आहनः टकारान्तादेशो भवति इत्यर्थः । अलोऽन्त्यस्येत्यनेनैव सिद्धे अन्तग्रहणं स्पष्टार्थम् । **दार्वाघाट इति**—दारु आहन्ति इति विग्रहे दारु अम् आहन् इत्यस्मात् कर्मण्यण् इत्यण्, दारावाहन इति नस्य टः, उपधावृद्धिः, हो हन्तेरिति कुत्वम्, उपपदसमासः, सुपो लुक् । दारु आघाट इति, यण् । **चारौ वा**—चारुशब्दे उपपदे अणन्तस्य आहनःटकारान्तादेशो विकल्पेन इत्यर्थः । **चार्वाघाट इति**—चारु आहन्ति इत्यर्थे चारुअम् आहनः अण्, चारौ वेति नस्य टः, उपधावृद्धिः, कुत्वमुपपदसमासः, यण् । टकाराभावे, हनस्त इति नस्य तः । **अपे इति**— क्लेशतमसोरुपपदयोरपपूर्वाद् हन्तेर्डः स्यादित्यर्थः । **क्लेशापह इति**—क्लेशम् अपहन्ति इति विग्रहे डः, डित्त्वसामर्थ्याट्टेर्लोपः । उपपदसमासः, सवर्णदीर्घः । **तमोऽपह इति**—तमः अपहन्तीति विग्रहे तमस् अम् अपहन् इत्यस्माड्डः, टेर्लोपः । उपपदसमासे सुपो लुक् । सस्य रुत्वम्, अतो रोरिति उत्वं, गुणः, एङः पदान्तादति । **णिनिरिति**—हन इत्यनुवर्तते । कुमार शीर्ष इत्युभयोरुपपदयोर्हन्तेर्णिनिः इति । **कुमारघाती**—कुमारं हन्तीति विग्रहः, णिनिः, णः इश्च इत् । कुमार हन् इन्, उपधावृद्धिः, हनस्त इति तः, कुत्वम्, सौ रूपम् । **शीर्षघाती**—शिरसः शीर्ष इति निपात्यते, शेषं पूर्ववत् । सुप्यजातौ इत्यादिभिः सिद्धे ताच्छील्याद्यभावेऽपि णिन्यर्थं शीर्षनिपातनार्थञ्च सूत्रम् ।

हिन्दी

१११३. आर्शीवाद अर्थ में सुबन्त उपपद होने पर हन् धातु से ड-प्रत्यय होता है ।

वा. दारु शब्द के उपपद होने पर अणन्त हन् के न् को ट् होता है ।

वा. चारु शब्द के उपपद होने पर अणन्त हन् के न् को ट् होता है विकल्प से ।

१११४. क्लेश और तमस् उपपद रहते अपपूर्वक हन् से ड प्रत्यय होता है ।

१११५. कुमार और शिरस् उपपद होने पर हन् से णिनि तथा शिरस् कोशीर्ष निपातन होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१११६. लक्षणे जायापत्योष्टक्-३।२।५२॥ हन्तेष्टक् लक्षणवति कर्तरि । जायाघ्नो ना । पतिघ्नी स्त्री ।

१११७. अमनुष्यकर्तृके च-३।२।५३॥ जायाघ्नस्तिलकालकः । पतिघ्नी पाणिरेखा । पित्तघ्नं घृतम् । अमनुष्येति किम् ? आखुघातः शूद्रः । अथ कथं "बलभद्रः प्रलम्बघ्नः" कृतघ्न इत्यादि ? मूलविभुजादित्वात् सिद्धम् । चोरघातो नगरघातो हस्तीति तु बाहुलकादण् ।

१११८. शक्तौ हस्तिकपाटयोः-३।२।५४॥ हन्तेष्टक् । मनुष्यकर्तृकार्थमिदम् । हस्तिघ्नो ना । कपाटघ्नः चोरः । कवाटेति पाठान्तरम् ।

१११९. पाणिघ-ताडघौ शिल्पिनि-३।२।५५॥ शिल्पिनि किम् ? पाणिघातः ।

मध्यमनोरमापूरणी

लक्षणे इति—लक्षणशब्दः अर्श आद्यजन्त, तेन लक्षणवति कर्तरीत्यर्थः, हनः टक् भवति। **जायाघ्नो ना**—जायां हन्ति इति विग्रहे टक्, टकावितौ, कित्त्वाद् गमहनेति हनः उपधालोपः, हस्य कुत्वमुपपदसमासः । जायाहननसूचकलक्षणवान् ना इत्यर्थः । **पतिघ्नी स्त्री**—पतिं हन्तीति विग्रहः, पति अम् हन् इत्यस्माट्टक्, गमहनेत्युपधालोपः, हो हन्तेरिति कुत्वम्, पतिघ्न इत्यस्य टित्वात् टिड्ढाणञ् इति ङीप् । **अमनुष्य इति**—अमनुष्यकर्तृके विद्यमानाद् हन्तेः कर्मण्युपपदे टक् प्रत्ययो भवति । **जायाघ्न इति**—जायां हन्तीति विग्रहः, टक्, उपधालोपः, कुत्वमुपपदसमासः । तिलकालक इति तिलाकृतिः कृष्णबिन्दुः । **पतिघ्नी पाणिरेखा**—पतिं हन्तीति विग्रहः, टक्, टित्त्वान्ङीप् । **आखुघात इति**—शूद्र इत्यस्य मनुष्यकर्तृकत्वाद् न टक्, कर्मण्यण् इत्यण्, हनस्त इति, उपधावृद्धिः, कुत्वम् । ननु प्रलम्बं हन्तीति प्रलम्बघ्नः, कृतं हन्ति इति कृतघ्न इत्यादौ हन्धातोः मनुष्यकर्तृकत्वाद् टकोऽसंभवात् कथं तादृशं रूपमिति चेत् ? **उच्यते**—मूलविभुजादिगणे पाठात् क-प्रत्ययः, कस्य कित्त्वाद् उपधालोपः, कुत्वञ्चेति बोध्यम् । ननु चोरं हन्तीति विग्रहे नगरं हन्तीति विग्रहे **चोरघातः नगरघातः** हस्ती इति भवति, तत्र हस्तिनो मनुष्यभिन्नत्वाद् टक्प्रत्ययेन भाव्यम्, न तु अणा भाव्यमिति चेद् ? बाहुलकादत्र कर्मण्यण् भवति इति गृह्यताम् । **शक्तौ इति**—हस्तिकपाटयोः कर्मणोरुपपदयोः हन्तेष्टक् स्यात् शक्तौ गम्यमानायाम् इत्यर्थः । **हस्तिघ्न इति**—हस्तिनं हन्तुं समर्थ इत्यर्थः, हस्तिन् अम् हन् इत्यस्माट्टक्, अलोपः, कुत्वमुपपदसमासः सुपो लुक्, नस्य लोपः । **कपाटघ्नः इति**—कपाटं हन्तुं त्रोटयितुं शक्तः । टक्, उपधालोपः, कुत्वम् । कंशिरं पाटयति इति कपाटम्। पाठान्तरे कुपूर्वकाद् अटतेः अच्, कवं चोष्णे इति कवादेशः । **पाणिघ इति**—पाणिघ ताडघ इत्येतौ शिल्पिनि कर्तरि निपात्येते । तत्र पाणि ताड इत्येतयोरुपपदयोः हन् धातोः कः प्रत्ययो भवति, के परे च हन्तेष्टिलोपः घत्वञ्च निपात्येते । पाणिघः, ताडघ इति भवति । पाणिना हन्तीत्यर्थः, ताडेन = ताडनेन हन्तीत्यर्थश्च क्रमशो बोध्यः । **शिल्पिभिन्नेऽर्थे कर्मण्यण्—**

हिन्दी

१११६. लक्षणवान् कर्ता अर्थ में जाया और पति शब्द उपपद होने पर हन् धातु से टक् प्रत्यय होता है ।

१११७. अमनुष्य कर्तृक अर्थ में विद्यमान हन् से कर्म उपपद रहने पर टक् होता है ।

१११८. शक्ति अर्थ गम्यमान होने पर हस्ती और कपाट उपपद होने पर हन् धातु से टक् प्रत्यय होता है ।

१११९. शिल्पी अर्थ में पाणिघ और ताडघ ये क-प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. राजघ उपसंख्यानम् । राजानं हन्ति-राजघः ।

११२०. आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्-३।२।५६।। एषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु कर्मसूपपदेषु कृञः ख्युन् । अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्त्यनया-आढ्यङ्करणी । अच्वौ किम्-आढ्यीकुर्वन्त्यनेन ।

११२१. कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ-३।२।५७।। आढ्यादिषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेरेतौस्तः । अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यम्भविष्णुः । आढ्यम्भावुकः ।

११२२. सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्- ३।२।६१।। एभ्यः क्विप् स्यात् उपसर्गे सत्यसति च सुप्युपपदे । द्युसत् । सदिरप्रतेरिति षः । उपनिषत् । अण्डसूः । प्रसूः । मित्रद्विट् । प्रद्विट् । मित्रध्रुट् । प्रध्रुट् । गोधुक् । प्रधुक् । अश्वयुक् । प्रयुक् । वेदवित् । निवित् ।

मध्यमनोरमापूरणी

पाणिघात इति, हनस्तः, उपधावृद्धिः, कुत्वम् । **राजघ इति**—राजानं हन्तीति विग्रहे राजघ इति वार्तिकेन हनः कः, के परे टेर्लोपः, हस्य घत्वञ्च निपातितम् । **आढ्येति**—करणाधिकरणयोश्च इति ल्युटोऽपवादोऽयम् । आढ्य सुभग स्थूल पतितनग्न-अन्ध प्रिय इत्येतेषु च्व्यन्तभिन्नेषु किन्तु च्व्यर्थेषु कर्मसूपपदेषु कृञ्धातोः करणे ख्युन् भवति इत्यर्थः । **च्विप्रत्ययो विकल्पेन विधीयते । तेन च्व्यर्थाः द्विविधाः**—च्व्यन्ताः, अच्व्यन्ताश्चेति । तत्र च्व्यन्तपर्युदासः गृह्यते । **आढ्यङ्करणी इति**—अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्ति अनया इति विग्रहे आढ्यअम् इत्युपपदात् कृधातोरनेन ख्युन्, खनौ इतौ । युवोरनाक इति योरनः, गुणः, रपरत्वम्, उपपदसमासः, खिदन्ते उत्तरपदे अरुर्द्विषदिति मुम्, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ, नस्य णत्वम् । आढ्यङ्करण इत्यस्मात् नञ्स्नञीकक्ख्युन् इत्यादिना ङीप् । आढ्यीकुर्वन्त्यनेनेत्यत्र च्व्यन्तत्वान्न ख्युन् । **कर्तरि इति**—आढ्यसुभगेति सूत्रं च्व्यर्थेष्वच्वौ इति यावदनुवर्तते । सुपि इति सम्बद्ध्यते, तेन आढ्यादिषु सुबन्तोपपदेषु भवतेः खिष्णुच्खुकञौ भवतः कर्तरि कारके च्व्यर्थेषु अच्व्यन्तेषु इत्यर्थः। खिष्णुच् इत्यत्र खचौ इतौ, इष्णु इत्यवशिष्यते । खुकञ् इत्यत्र उक इति शिष्यते । **आढ्यम्भविष्णुः इति**—आढ्य सु भू इत्यस्मात् खिष्णुच्, भुवो गुणः, अवादेशः, उपपदसमासः, सुपो लुक् । **आढ्यम्भावुक इति**—खुकञ्, ञित्वादचो ञ्णितीति वृद्धिः, आवादेशः । **सत्सू इत्यादि-** सुबन्तोपपदे सदादिभ्यः क्विप् उपसर्गेऽपि अनुपसर्गेऽपि इत्यर्थः । अनुपसर्गे इत्यस्यैव निवृत्त्यैव सिद्धे उपसर्गेऽपि इति पदम् अन्यत्र सुब्ग्रहणे उपसर्गग्रहणं न भवति इति ज्ञापयति । तेन वदः सुपि क्यप् चेत्यादिविधिः उपसर्गेन प्रवर्तते । **द्युसत्**—दिवि सीदतीति विग्रहे क्विप्, ककारो लशक्वतद्धित इतीत्, पकारः, हलन्त्यमिति, इकारः उपदेशे इति वकारः वेरपृक्तस्येति इत् भवति । उपपदसमासे दिव् उत् इति वस्य उः, यण्, द्युसद् इति, वाऽवसाने इति चर्त्वम्,

हिन्दी

वा. राजघ का भी निपातन कहना चाहिये ।

११२०. आढ्य् सुभग स्थूल इत्यादि च्व्यर्थ में वर्तमान किन्तु च्विप्रत्ययरहित कर्म के उपपद रहने पर कृधातु से करण अर्थ में ख्युन् प्रत्यय होता है ।

११२१. आढ्यादि उपपद होने पर कर्ता में भू धातु से खिष्णुच् और खुकञ् प्रत्यय होते हैं, च्व्यन्तभिन्न च्व्यर्थ में ।

११२२. सद् सू द्विष् इत्यादि धातुओं से सुबन्त उपपद रहने पर क्विप् होता है, उपसर्गपूर्व में हो या नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः । अग्रणीः । ग्रामणीः ।

११२३. भजो ण्विः-३।२।६२।। अंशभाक् । प्रभाक् ।

११२४. अदोऽनन्ने-३।२।६८।। विट् स्यात् । आमतीत्यामात् । सस्यात् । अनन्ने किम्-अन्नादः ।

११२५. क्रव्ये च-३।२।६९।। अदेर्विट् । पूर्वेण सिद्धे वचनं वासरूपेति प्राप्ताण् बाधनार्थम् । क्रव्यात्-आममांसभक्षकः ।

११२६. दुहः कप् घश्च-३।२।७०।। कामदुघा ।

मध्यमनोरमापूरणी

सात्पदाद्योरिति न षत्वम् । **उपनिषद् इति**—उपनिपूर्वात्सदेः क्विप्, क्विपःसर्वापहारलोपः सदिरप्रतेरिति षत्वम् । **मित्रद्विट्**—मित्रं द्वेष्टि इत्यर्थे क्विप्, उपपदसमासः, झलां जशोऽन्ते इति षस्य डः, वावसाने इति । **मित्रध्रुट्**—मित्राय द्रुह्यतीति विग्रहे क्विप्, उपपदसमासः । मित्रद्रुह् इति, हो ढ इति हस्य ढः, एकाच इति दस्य भष्भावेन धकारः । वा द्रुहमुहेति हस्य घत्वपक्षे भष्भावे च मित्रध्रुक् इति भवति । **प्रध्रुट्**—प्रद्रुह्यतीति विग्रहः । **गोधुक्**—गां दोग्धीति विग्रहे क्विप्, उपपदसमासे सुपो लुक्, गोदुह् इति, दादेरिति हस्य घः, भष्भावेन दस्य धः, वावसाने इति । **अश्वयुक् इति**—अश्वं युनक्तीति विग्रहे क्विप्, चोः कुरिति जस्य गः, वाऽवसाने । **वेदवित् इति**—वेदं वेत्तीति विग्रहे क्विप्, दस्य चर्त्वम् । **अग्रणीः इति**—अग्रे नयति इति, क्विप्, अग्रग्रामाभ्यामिति धातोर्नस्य णः, सो रुत्वविसर्गौ । **ग्रामणीः इति**—ग्रामं नयतीति विग्रहः । **भजो ण्विः**—सुपि, उपसर्गे इत्यनुवर्तते । तेन सुपि उपसर्गेऽनुपसर्गे चोपपदे भज्धातोः ण्विः स्यादित्यर्थः । ण्विः इत्यत्र णकारः चुटू इत्यनेन इकारः उपदेशे इत्यनेन वकारश्च वेरपृक्तस्येत्यनेन इत्संज्ञको भवति । न किमपि शिष्यते । **अंशभाक् इति**—अंशं भजते = प्राप्नोति इति विग्रहे ण्विः, सर्वापहारलोपः, प्रत्ययलक्षणेन णित्त्वादुपधावृद्धिः, चोः कुः, वाऽवसाने । **उपसर्गे**—प्रभाक् इति । **अदोऽनन्ने**—सुप्युपपदेऽनन्ने अदः विट् स्यात् । **आमात् इति**—आमम् अद् इत्यस्मात् विट्, सर्वापहारलोपः, सवर्णदीर्घः, सोर्लोपः, वाऽवसाने इति दस्य चर्त्वम् । **सस्यात्**—सस्यम् अत्तीति विग्रहः, विट्, सस्य अद् इति, सवर्णदीर्घः, चर्त्वम्। **पूर्वेणेति**—ननु अदोऽनन्ने इत्येव विट् सिद्धः, किमर्थमिदमिति चेत्-वासरूपोऽस्त्रियामिति न्यायात्, पक्षेऽण् प्राप्नोति, तद्बाधनार्थमेतद् सूत्रम् । **क्रव्यात् इति**—क्रव्यम् अत्तीति विग्रहे विट्, सर्वापहारलोपः, सवर्णदीर्घः, चर्त्वम् । **दुहः इति**— सुपीत्युपतिष्ठते। सुप्युपपदे दुहः कप् प्रत्ययो भवति हस्य घश्चादेशः इत्यर्थः । **कामदुघा इति**—कामम्=इष्टं दुग्धे या, कामम् दुह् इत्यस्मात् 'दुहः कप्' इति कप्, हस्य घश्च, कपावितौ, कामदुघ इत्यस्माट्टाप् ।

हिन्दी

वा. अग्र और ग्राम से परे नी के न को ण कहना चाहिये ।

११२४. अन्नभिन्न सुबन्त उपपद होने पर अद् धातु से विट् प्रत्यय होता है ।

११२५. क्रव्यउपपद होने पर अद् धातु से विट् प्रत्यय होता है ।

११२६. दुह् धातु से कप् होता है और ह को घ होता है सुबन्त उपपद रहने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११२७. अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते-३।२।७५।। मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः ।

११२८. नेड्वशि कृति-७।२।८।। वशादेः कृत इण्न । सुशर्मा । प्रातरित्वा ।

११२९. विड्वनोरनुनासिकस्यात्-६।४।४१।। विजायत इति विजावा । ओणृ अपनयने । अवावा । रोट् । रेट् । सुगण् ।

११३०. क्विप् च-३।२।७३।। अयमपि दृश्यते । उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ।

११३१. अन्तः-८।४।२०।। पदान्तस्यानितेर्नस्य णत्वं स्यादुपसर्गस्थान्निमित्तात् परश्चेत् । हे प्राण् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्येभ्योऽपि—आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्चेत्यतो मनिनादयोऽनुवर्तन्ते । अन्येभ्यः=आकारान्त-भिन्नेभ्यः अपि धातुभ्यः मनिन् क्वनप् वनिप् विच् इत्येते प्रत्ययाः भवन्तीत्यर्थः। मनिन् इत्यत्र नकारः इत्, इकारः उच्चारणार्थः, मन् इत्यवशिष्यते । क्वनिप् वनिप् इत्येतयोः पकारः इत्, इकार उच्चारणाय । वन् इत्यवशिष्यते । **नेड्वशि इति**—यस्मिन्विधिरिति तदादिग्रहणम्, वशि कृति इति षष्ठ्या अर्थे सप्तम्यौ । वशादेः कृतः इण्नेत्यर्थः । **सुशर्मा इति**—शोभनं शृणातीति विग्रहे सुपूर्वकशृधातोर्मनिन्, आर्धधातुकत्वाद् ऋतो गुणः, रपरत्वम्, गतिसमासः, सौ उपधा-दीर्घः, सुलोपः, नलोपः । **प्रातरित्वा**—प्रातर्पूर्वकात् इण् धातोः क्वनिप्, प्रातरि वन् इति, ह्रस्वस्येति तुक्, सौ दीर्घः, सुलोपनलोपौ । **विड्वनोरिति**—एतयोः परतः अनुनासिकस्य आत् स्यादित्यर्थः । **विजावा इति**—विपूर्वकजन्धातोः वनिप् । विड्वनोरिति धातोर्नस्यात्वम्, दीर्घः, विजावन् इति प्राप्तः इट् नेड्वशि इति निषिध्यते । सौ उपधादीर्घः, सुलोपनलोपौ। **अवावा इति**—ओण् धातोर्वनिप्, णस्यात्वम्, ओरवादेशः, सौ रूपम् । **रोट् रेट् इति**—रुष् रिष्धातुभ्यां विच्, सर्वापहारलोपः, लघूपधगुणः, षस्यजश्त्वेन डः, तस्य चर्त्वेन टः । **सुगण् इति**—सु गणयतीति ण्यन्तात् विच्, णेर्लोपः । **क्विप् चेति**—चकारात् सर्वे धातवः सोपपदा निरुपपदाश्च गृह्यन्ते । तेन सर्वधातुभ्यः सोपपदेभ्यो निरुपपदेभ्यश्च छन्दसि भाषायां च क्विप् प्रत्ययो भवति । **उखास्रत् इति**—उखायाः स्रंसते इति विग्रहे उखा ङसि स्रंस् इत्यस्मात् क्विप्, सर्वाप-हारलोपः, अनिदितामिति धातोर्नस्य लोपः, उपपदसमासः, उखास्रस् इति, सौ वसु-स्रंसु इत्यादिना सस्य दत्वम्, चर्त्वम् । **पर्णध्वत्**—पर्णाद् ध्वंसते इति, क्विप्, नलोपः, दत्वम् । **वाहभ्रट् इति**—वाहात् भ्रश्यति, क्विप्, भ्रंशो नलोपः । व्रश्चभ्रस्ज इत्यादिना शस्य षत्वम्, षस्य जश्त्वेन डः, चर्त्वम् ।

हिन्दी

११२७. अन्य धातुओं से भी मनिन् क्वनिप् वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं ।

११२८. वशादि कृत को इट् नहीं होता है ।

११२९. विट् और वन् प्रत्यय परे अनुनासिक को आत्व होता है ।

११३०. सभी धातुओं से उपपद हो या न हो तो भी क्विप् प्रत्यय होता है ।

११३१. अन् के पदान्त न को ण होता है, उपसर्गस्थ निमित्त से परे रहने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. आशासः क्वावुपधाया इत्वं वाच्यम् । आशीः ॥ इत्वोत्वे । गीः । पूः । मो नो धातोः । प्रतान् । प्रशान् ।

११३२. गमः क्वौ-६।४।४०॥ अनुनासिक लोपः । अङ्गगत् ।

वा. गमादीनामिति वक्तव्यम् । पुरीतत् । संयत् ।

वा. ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यम्, लोपश्च । गूः । भ्रूः ।

११३३. स्थः क च-३।२।७७॥ चात् क्विप् । शंस्थः । शंस्थाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तः इति—अनितेः रषाभ्यां नो णः इति सूत्रद्वयमनुवर्तते । उपसर्गादसमासेऽपि इत्यतः उपसर्गादित्यनुवर्तते । अन्तः इति षष्ठ्यर्थे प्रथमा, अन्तशब्दः पदान्तवाचकः, तथा च पदान्तस्यानितेर्नस्य इत्याद्यर्थः सिद्ध्यति । **हे प्राण् इति**—प्रपूर्वाद् अनः क्विप्, सर्वापहारलोपः, दीर्घः, प्रान् इति, सम्बोधनैकवचने सोर्लोपः, अन्तः इति नस्य णत्वम् । **आशास इति**—क्विपि परे आङ्पूर्वकशासेरुपधायाः इत्वं भवति । **आशीः इति**—आशास् इत्यस्मात् क्विप्, शास इदङ् इत्यस्य परस्मैपदे एव प्रवृत्तिः, आशासः आत्मनेपदित्वात् अनेन वार्तिकेन इत्वम्, सोर्लोपः, सस्य रुत्वम्, र्वोरुपधाया इति इकारस्य दीर्घः, रेफस्य विसर्गः । गॄ धातोः क्विप्, ॠत इत् इति इत्वे रपरत्वम्, सोर्लोपे र्वोरुपधाया इति दीर्घः, रेफस्य विसर्गः । **गीः इति** । पॄधातोः **पूः इति,** उदोष्ठ्यपूर्वस्येति उत्वम् । **प्रतान्**—प्रताम्यतीति विग्रहे प्रतम् इत्यस्मात् क्विप्,शमामष्टानामित्युपधादीर्घः, मोनो धातोरिति मस्य नः । **एवमेव**—प्रशाम्यतीति विग्रहे शम्धातोः क्विप्, उपधादीर्घः, सोर्लोपः, मोनो धातोरिति नः । **अनुनासिकलोपः इति**—अनुदात्तोपदेश इत्यतः एतद् अनुवर्तते । क्विपि परे गमः अनुनासिकलोप इत्यर्थः । **अङ्गगत् इति**—अङ्गं= देशं, गच्छतीति विग्रहे क्विप् चेति क्विप् । गमः क्वाविति मलोपः, ह्रस्वस्य पिति कृतीति तुक् । **गमादीनामिति**—क्वौ अनुनासिक लोपः इति पूरणीयम् । **पुरीतत् इति**—पुरिम् = हृदयकमलम्, तनोति-आच्छादयतीत्यर्थे पुरिअम् इत्युपपदात् तनोतेः क्विप्, गमादीनामिति नलोपः, तुक्, पुरि तत् इति, नहिवृतिवृषि व्यधिरुचि इत्यादिना पूर्वपदस्य दीर्घः । **संयत् इति-** संयच्छतीति विग्रहे क्विप्, यमोमस्य लोपः, तुक् । **गूः इति**—गच्छतीति अर्थे क्विप्, ऊङ् च गमादीनामिति मलोपः, गकाराकारस्य ऊङ् आदेशश्च, सो रुत्वविसर्गौ । **भ्रूः इति**—भ्रम् धातोः क्विपि मलोपः, अकारस्य ऊङादेशः । **स्थः क चेति**—सुपि उपसर्गेऽपि इत्यनुवर्तते । सुबन्ते उपपदे उपसर्गे अनुपसर्गे च, स्थाधातोः कः चात् क्विप् प्रत्ययश्च भवति । **शंस्थ इति**—शं = सुखं स्थापयतीत्यर्थे शम्पूर्वकस्थाधातोः कः, आतो लोपः, मस्यानुस्वारः । क्विपि **शंस्थाः इति,** पृषोदरादित्वात् घुमास्थेतीत्वं न ।

हिन्दी

वा. आङ्पूर्वक शास् धातु की उपधा को इत्व होता है, क्विप् परे रहते ।

११३२. क्विप् प्रत्यय परे रहते गम् के म का लोप होता है ।

वा. क्विप् प्रत्यय परे गमादिधातुओं के अनुनासिक का लोप कहना चाहिये ।

वा. गमादि धातुओं की उपधा को ऊङ् होता है व 'म' का लोप होता है, क्विप् परे रहते ।

११३३. उपसर्ग रहित सुबन्त उपपद होने पर या उपसर्ग उपपद होने पर स्था धातु से क और क्विप् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११३४. सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये-३।२।७८॥ अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी । शीतभोजी ।

११३५. मनः-३।२।८२॥ सुपि मन्यतेर्णिनिः । दर्शनीयमानी ।

११३६. आत्ममाने खश् च-३।२।८३॥ स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश्, चाण्णिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितम्मन्यः । पण्डितमानी ।

११३७. इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च-६।३।६८॥ इजन्तादेकाचोऽम् स्यात् स च स्वाद्यम्वत् खिदन्ते परे । औतोम्शसोः । गाम्मन्यः । वाम्शसोः । स्त्रियम्मन्यः । स्त्रीम्मन्यः । नृ-नरम्मन्यः । भुवम्मन्यः । श्रियमात्मानं मन्यते श्रिमन्यं कुलम् । भाष्यकारप्रयोगाच्छ्रीशब्दस्य ह्रस्वो मुममोरभावश्च ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुप्यजातौ इति—सुपिस्थः इत्यतः सुपि इत्यनुवृत्तौ पुनः सुब्ग्रहणमुपसर्गेऽपि प्रवृत्त्यर्थमस्ति । अन्यथा अनुपसर्गे इत्यनुवर्तेत । काशिकादिषु 'सुपीत्यनुवर्तमाने पुनः सुब्ग्रहणमुपसर्गनिवृत्त्यर्थम्' इत्युक्तम्, अथ 'उत्प्रतिभ्यामाङि सर्त्तेरुपसंख्यानमि'त्युक्तम् । दीक्षितस्तु 'स बभूवोपजीविनाम्' 'अनुयायिवर्गः' इत्यादिषु उपसर्गोपपदेष्वपि णिनिदर्शनात् 'सुब्ग्रहणमुपसर्गेऽपि प्रवृत्त्यर्थ मि'त्यवोचत् । **उष्णभोजी इति**—उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः इत्यर्थे उष्ण अम् इत्युपपदात् भुजः णिनिः, णकारः इकारश्चेतौ । उपधाया गुणः, उपपदसमासः, उष्णभोजिन् इति, सौ चेति दीर्घः, सुलोपः, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः । **शीतभोजी**—शीतं भुङ्क्ते तच्छीलः, णिनिः, गुणः, उपधादीर्घः, सुलोपनलोपौ । **मनः इति**—दैवादिकस्यैव ग्रहणम् । सुपीत्यनुवर्तते । सुबन्ते उपपदे मन्यतेः णिनिः स्यादित्यर्थः । **दर्शनीयमानी इति**—दर्शनीयं मन्यते इति विग्रहे दर्शनीय अम् इत्युपपदात् मन् धातोर्णिनिः, णित्त्वादुपधावृद्धिः । **आत्ममाने इति**—आत्मनः मननम् मानः, आत्ममाने = स्वकर्मकमनने वर्तमानात् मन्यतेः सुप्युपपदे खश् भवति, चात् णिनिश्च । **पण्डितम्मन्यः इति**—पण्डित अम् इत्युपपदात् मन्धातोः आत्ममाने इति खश्, शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञा, श्यन्, अतो गुणे, उपपदसमासः, सुपो लुक्, पण्डित मन्य इति, अरुर्द्विषदिति मुम् । **पण्डितमानी इति**—पण्डितम् आत्मानं मन्यते इति विग्रहे पण्डित अम् इत्युपपदात् मनः खशोऽभावे णिनिः, णित्त्वादत उपधायाः इति उपधाकारस्य वृद्धिः, उपपदमतिङ् इति समासः, सुपो लुक्, पण्डितमानिन् इति, सुप्रत्ययः, सौ चेति उपधादीर्घः, हल्ङ्याब्भ्यः इति सुलोपः, नलोपः । **इच एकाच इति**—इचः एकाचः अम् इतिच्छेदः । अम्

हिन्दी

११३४. अजातिवाचक सुबन्त उपपद होने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है, ताच्छील्य अर्थ में ।

११३५. सुबन्त उपपद होने पर मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ।

११३६. स्वकर्मक मनन में विद्यमान मन् धातु से सुबन्त उपपद रहने पर खश् और णिनि प्रत्यय होते हैं ।

११३७. इजन्त एकाच् से अम् प्रत्यय होता है खिदन्त परे रहते, और वह अम् स्वादि अम् की तरह माना जाता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११३८. भूते-३।२।८४॥ अधिकारोऽयं वर्तमाने लडिति यावत् ।

११३९. करणे यजः-३।२।८५॥ करणे उपपदे भूतार्थाद् यजेर्णिनिः कर्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी ।

११४०. कर्मणि हनः-३।२।८६॥ पितृव्यघाती ।

११४१. ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्-३।२।८७॥ ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा । क्विप् चेत्येव सिद्धे ब्रह्मादिष्वेव क्विबेवेति द्विविधनियमार्थमिदम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

इहावर्तते । एकेन अम् विधीयते, द्वितीयम् अम्पदं प्रत्ययवद् इत्येकदेशेन प्रत्ययेन सम्बद्ध्यते। अम् च स्वादिष्वन्तर्भूतं द्वितीयैकवचनं गृह्यते, व्याख्यानात् । खित्यनव्ययस्येत्यतः खितीत्यनुवर्तते, तस्मात्तदन्तविधिः, इचोऽपि विशेषणात्तदन्तविधिः । **अत उक्तम्**—इजन्तादेकाचोऽम् इत्यादि । **गाम्मन्य इति**—गाम् आत्मानं मन्यते इति विग्रहे मनः इति खश्, श्यन्, उपपदसमासः, गो मन्य इति, इच एकाचोऽम् इति गोशब्दात् अम्, औतोम्शसोरिति आकारैकादेशः। **स्त्रियम्मन्य इति**— स्त्रियमात्मानं मन्यते इत्यर्थे खश्, श्यन्, समासे सुपो लुक् । स्त्रीशब्दादम्। वाम्शसोरिति इयङ् विकल्पेन भवति । पक्षे अमि पूर्वः, स्त्रीम्मन्य इति । **नरम्मन्य इति**- नरमात्मानं मन्यते इत्यर्थः । खश्, श्यन्, नृशब्दादम्,ऋतो ङिसर्वनामेति गुणः नृशब्दान्त्यस्य, रपरत्वम् । **भुवम्मन्य इति**—भूशब्दादम्, अचिश्नु इत्युवङ्, भुवमात्मानं मन्यते इत्यर्थः । **श्रिमन्यं कुलम्**-श्रियं स्वं मन्यते इत्यर्थे खश्, श्यन्, लक्षणया कुले वृत्तेर्नित्यस्त्रीलिङ्गस्यश्रीशब्दस्य नपुंसकत्वस्वीकारात् ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः, तस्मादम्, अमः स्वमोर्नपुंसकादिति लुक् । **सोमयाजी**—सोमेन = लताविशेषेण इष्टवान् इति विग्रहे सोमटा यज् इत्यस्मात् करणे यज इति णिनिः, णकारेकारौ इतौ, णित्त्वाद् अत उपधाया इति वृद्धिः, उपपदसमासः, सुपो लुक्, सोमयाजिन् इत्यस्मात् सुः, सौ चेति दीर्घः, सुलोपनलो पौ । **कर्मणि इति**—भूते इत्यस्याधिकारः, सुप्यजातावित्यतः णिनिः इत्यनुवर्तते । कर्मणि उपपदे हनः णिनिर्भवति भूते । **पितृव्यघाती इति**—पितृव्यं हतवान् इत्यर्थे पितृव्योपपदात् हनः णिनिः, अत उपधायाः, हनस्त इति नस्य तः, हो हन्तेरिति कुत्वम्, पितृव्यघातिन् इति, सौ दीर्घे सुलोपे नलोपे च रूपम् । **ब्रह्मभ्रूण इति**—एषु कर्मसूपपदेषु हन्तेः क्विप् भवति भूते इत्यर्थः । **ब्रह्महा**—ब्रह्माणं हतवान् इत्यर्थे क्विप्, सर्वापहारलोपः, उपपदसमासः, सौ नान्तस्योपधाया दीर्घः, सुलोपः, नलोपः । **भ्रूणहा इति**—भ्रूणं हतवानित्यर्थः । **वृत्रहा**—वृत्रं हतवानित्यर्थः । **क्विप् चेत्येव क्विप्सिद्धे किमर्थमिदं सूत्रमिति चेत् उच्यते**—नियमार्थमिदम् । स च नियमः काशिकायां चतुर्विधः प्रतिपादितः । **यथा**—ब्रह्मादिषु उपपदेषु एव हन्तेः क्विप्, तेन पुरुषं हतवान् इत्यत्र न क्विप् । ब्रह्मादिषूपपदेषु हन्तेरेव क्विप्, इति द्वितीयः, तेन ब्रह्म अधीतवान् इत्यत्र न क्विप् । ब्रह्मादिषु हन्तेर्भूतकाले क्विबेव, नान्यः, इति तृतीयः, तेन ब्रह्माणं

हिन्दी

११३८. भूते का अधिकार है, वर्तमाने लट् तक ।

११३९. करण उपपद होने पर भूतार्थ में यज् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ।

११४०. कर्म उपपद होने पर भूत अर्थ में हन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ।

११४१. ब्रह्म भ्रूण और वृत्र उपपद होने पर हन् से क्विप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११४२. सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु क्विप्-३।२।८९।। सुकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् ।
११४३. सोमे सुञः-३।२।९०।। सोमसुत् ।
११४४. अग्नौ चेः-३।२।९१।। अग्निचित् ।
११४५. कर्मण्यग्न्याख्यायाम्-३।२।९२।। कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके चिनोतेः क्विप्, अग्न्याधारस्थलविशेषस्याख्यायाम् । श्येन इव चितः श्येनचित् ।
११४६. कर्मणीनि विक्रियः-३।२।९३।। कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीणातेरिनिः । वा. कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम् । सोमविक्रयी । घृतविक्रयी ।

मध्यमनोरमापूरणी

हन्ति इत्यत्रन । भूतकाले एव नान्यस्मिन् इति चतुर्थः, तेन ब्रह्म हनिष्यति इत्यत्र न क्विप्। **द्विविध इति**—भाष्ये तु ब्रह्मादिषु एव, क्विबेव इति द्विविध एव नियमो भवतीत्युक्तम् । **सुकर्म इति**—कर्मणीति अनुवर्तते तत् सुशब्दं वर्जयित्वा अन्येषां विशेषणं भवति । सौ कर्मादिषूपपदेषु कृञो भूते क्विप् इत्यर्थः । **सुकृत् इति**—शोभनं कृतवानित्यर्थे क्विप्, सर्व-लोपः, ह्रस्वस्येति तुक् । कर्म कृतवान् इति कर्मकृत् । पापं कृतवानिति पापकृत् । **सोमे सुञः**-भूते क्विप् इत्यर्थः । **सोमसुत् इति**—सोमं सुतवानिति, क्विप्, तुक् । **अग्नौ चेरिति**—अग्नौ कर्मण्युपपदे चिनोतेः क्विप् स्यात् भूते । **अग्निचित् इति**—अग्निम् = अग्न्याख्यं स्थलविशेषम् (इष्टकाभिः) चितवानित्यर्थे क्विप्, ह्रस्वस्येति तुगागमः, सोर्लोपः । **अग्न्याख्यायाम् इति**—कर्मणि इत्यनुवृत्तमुपपदेन युङ्क्ते । सूत्रे कर्मणीति कारकबोधकम्, अग्नेः आख्या, तस्याम् अग्नाख्यायामिति । अत आह-कर्मण्युपपदे इत्यादि । **श्येनचित् इति**—श्येन इव चितः इति विग्रहे श्येनः कर्मोपपदम्, कर्मण उक्तत्वादत्र प्रथमेति बोध्यम् । कर्मण्यग्न्याख्यायामिति क्विप्, उपपदसमासः, तुक् । श्येनशब्दः इह श्येनसदृशे, श्येनाकृतौ लाक्षणिकः । **कर्मणीनि इति**—इनि इति अविभक्तिको निर्देशः । अत्र कर्मणि इत्यनुवृत्तौ एव सिद्धे पुनः कर्मग्रहणं कर्त्तुः कुत्सानिमित्ते कर्मणि प्रत्ययो भवेत् न कर्ममात्रे इत्येतदर्थमस्ति । अस्यैव फलितार्थः कुत्सित-ग्रहणमिति वार्तिकम् । तेन कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीञ्धातोः कुत्सायां इनि प्रत्ययो भव तीत्यर्थः । **सोमविक्रयी घृतविक्रयी इति**—सोमं विक्रीतवान् घृतं विक्रीतवानित्यर्थः, अनेन इनिः, क्रीधातोर्गुणः, अयादेशः, उपपदसमासः, सौ उपधादीर्घः, सुलोपः, नलोपः, । सोम-घृतयोः विक्रयणं धर्मशास्त्रे प्रतिषिद्धम् अतः कुत्सात्र विक्रेतुर्भवति ।

हिन्दी

११४२. सु कर्म पाप मन्त्र और पुण्य उपपद रहने पर कृ धातु से भूत अर्थ में क्विप् होता है ।

११४३. सोम उपपद होने पर सुञ् धातु से भूतार्थ में क्विप् प्रत्यय होता है ।

११४४. अग्नि कर्म उपपद होने पर चिधातु से क्विप् प्रत्यय होता है ।

११४५. कर्म उपपद होने पर कर्मकारक में ही चि से क्विप् होता है अग्नि आधारस्थल विशेष के अर्थ में ।

११४६. कर्म उपपद होने पर क्रीधातु से इनि प्रत्यय होता है ।

वा. कुत्सा अर्थ गम्य होने पर इनि होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११४७. दृशेः क्वनिप्-३।२।९४॥ कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान्-पारदृश्वा ।
११४८. राजनि युधि कृञः-३।२।९५॥ क्वनिप् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान्-राजयुध्वा । राजकृत्वा ।
११४९. सहे च-३।२।९६॥ सहयुध्वा । सहकृत्वा ।
११५०. सप्तम्यां जनेर्डः-३।२।९७॥
११५१. तत्पुरुषे कृति बहुलम्-६।३।१४॥ ङेरलुक् । सरसिजम् । सरोजम् ।
११५२. उपसर्गे च संज्ञायाम्-३।२।९९॥ प्रजाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पारदृश्वेति—पारं दृष्टवानित्यर्थः, पारअम् दृश् इत्यस्मात् क्वनिप्, ककारः पकारः इकारश्चेतः। उपपदसमासः, सुपो लुक्, पार दृश्वन् इति, सौ उपधादीर्घः, सुलोपनलोपौ । **राजनि इति**—युधिकृञोः समाहारद्वन्द्वः, युधिकृञः इति पञ्चमी । कर्मणीत्यनुवर्तते । तेन राजनि कर्मणि उपपदे भूते युध्यतेः करोतेश्च क्वनिप् स्यादित्यर्थः । युध्धातोरकर्मकत्वात् कर्मोपपदमसम्भवमिति चेत्-युध्धातुरत्र अन्तर्भावितण्यर्थो गृह्यते, तेन सकर्मको भवति । **राजयुध्वा इति**—राजानं योधितवानितिविग्रहः, क्वनिप्, उपपदसमासः । राजन् युध्वन् इति, अन्तवर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वात् राजन् इत्यस्य नस्य लोपः, सौ उपधादीर्घः, सुलोपनलोपौ । **राजकृत्वा इति**-राजानं कृतवानिति विग्रहे कृधातोः क्वनिप्, ह्रस्वस्येति पिति कृति तुक् । **सहे चेति**—सह शब्दे चोपपदे युधिकृञ्भ्यां क्वनिप् भवतीत्यर्थः । **सहयुध्वा**—सह योधितवानिति विग्रहः । **सप्तम्यामिति**—भूते इति सम्बद्ध्यते । सप्तम्यन्ते उपपदे जनेर्डो भवति भूते । **तत्पुरुषे इति**-प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्या इति कृति इत्यस्य कृदन्ते इत्यर्थः । तत्पुरुषसमासे कृदन्ते च परे सप्तम्या अलुक् भवति बहुलप्रकारेण । **सरसिजम्-सरोजम् इति**—सरसि जातमिति विग्रहे सरस् ङि जन् इत्यस्मात् 'सप्तम्यां जनेर्डः' इति डः । डकार इत् । डित्त्वाट्टेः अभस्यापि लोपः, उपपदसमासः, सुपो लुक् प्राप्तः, तत्पुरुषे कृति इति अलुक् भवति, नपुंसकत्वात् सोरम्, पूर्वरूपम् । ङिलुक्पक्षे सरस् ज इति जाते ससजुषो रुः, हशि चेति रोः उः, आद्गुणः इति गुणे सरोज इति जाते सोरम्, अमि पूर्वः । **उपसर्गेचेति**—चकाराद् जनेर्डः इत्यनुवर्तते । उपसर्गे चोपपदे जनेर्डो भवति संज्ञायाम् । **प्रजाः इति**—प्रोपपदाद् जन्धातोरुपसर्गे चेति डः, चुटू इति डकार इत्, डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि जनः टेर्लोपः, स्त्रीत्वविवक्षायां टाप् । बहुवचने रूपम् ।

हिन्दी

११४७. कर्म उपपद होने पर दृश् से क्वनिप् होता है भूतार्थ में ।
११४८. राजन् उपपद होने पर युध् और कृ से क्वनिप् प्रत्यय होता है ।
११४९. सह उपपद होने पर युध् और कृ से क्वनिप् प्रत्यय होता है ।
११५०. सप्तम्यन्त उपपद होने पर जन् धातु से भूतार्थ में ड प्रत्यय होता है ।
११५१. तत्पुरुष समास में और कृदन्त उत्तरपद परे रहते ङि का अलुक् होता है, बहुल प्रकार से ।
११५२. उपसर्ग उपपद होने पर जन् धातु से ड प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११५३. अनौ कर्मणि ३।२।१००। अनुपूर्वाज्जनेः कर्मण्युपपदे डः । पुमांसमनुरुध्य जाता पुमनुजा ।

११५४. अन्येष्वपि दृश्यते-३।२।१०१।। अजः । द्विजः । ब्राह्मणजः । अपिशब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः । तेन धात्वन्तरादपि कारकान्तरेष्वपि क्वचित् । परितः खाता परिखा ।

११५५. पञ्चम्यामजातौ-३।२।९८।। जातिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्ते उपपदे जनेर्डः । संस्कारजः । अदृष्टजः ।

११५६. क्तक्तवतु निष्ठा-१।१।२६।। एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ।

११५७. निष्ठा-३।२।१०२।। भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात् । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विष्णुः विश्वं कृतवान् ।

मध्यमनोरमापूरणी

पुमनुजा इति—पुमांसमनुरुद्ध्य जाता इत्यर्थे पुंस् अम् जन् इत्यस्मात् अनौ कर्मणि इति डः, डित्त्वाट्टेर्लोपः, पुंस् इति सकारस्य संयोगान्तस्येति लोपः, पुमनुज इति जाते स्त्रीत्वाट्टाप् । जन्धातोरकर्मकत्वात् तत्र कर्मण्युपपदे इत्यस्य अन्वयार्थम् अनुरुध्यजननम् इति धात्वर्थः स्वीक्रियते । **अन्येष्वपीति**—सप्तम्यां जनेर्ड इत्युक्तत्वाद् अन्यपदेन सप्तम्युपपदभिन्नोपपदेष्वपि जनेर्डः इत्यर्थोऽङ्गी क्रियते । **अजः इति**—न जातः इति विग्रहे नञुपपदात् जनेर्डः, डित्त्वाट्टिलोपः, नञ्समासः, नलोपो नञ इति नलोपः । **द्विजः इति**—द्विर्जायते द्विर्जातो वेति विग्रहे डः, उपपदसमासः, सुपोलुक् । **ब्राह्मणजः**-ब्राह्मणाज्जातः इत्यर्थः । **अपिशब्दः इति**—अन्येष्वपि इत्यत्र पठितः अपि शब्दः, **सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः इति**-व्यभिचारः अतिक्रमः । **अयमाशयः**—डविधायकेषु सूत्रेषु यानि विशेषणानि उपात्तानि प्रकृतिविशेषरूपाणि भूते कर्तरि इति च प्रत्ययार्थविशेषणं, तेषामतिक्रमार्थः इति । अतः कारकान्तरेषु उपपदेषु जन्भिन्नधातुभ्योऽपि क्वचित् डो भवति । अतः इको गुणवृद्धीति सूत्रे 'गमेरप्ययं डो वक्तव्यः' इति भाष्यकारेण सूचितम् । अतः परिखा इत्यत्र परिपूर्वक खन् धातोः डप्रत्यये टेर्लोपे च टाप् भवति । **संस्कारजः**—संस्कारात् जातः इत्यर्थे पञ्चम्यामजातौ इति डः, डित्त्वाट्टेर्लोपः, उपपदसमासादि । अदृष्टाज्जातः इत्यर्थे डः, **अदृष्टज** इति । **निष्ठेति**—भूतेइत्यस्याधिकारः । निष्ठासंज्ञकौ क्तक्तवतू च भूते भवतः । तयोरेव कृत्यक्त खलर्थाः इत्यनेन भावकर्मणोः क्तविधानम् । तत्रैव लः कर्मणीत्यस्यानुवृत्त्या अकर्मकेभ्यो भावे क्तः, सकर्मकेभ्यः कर्मणि इति विज्ञेयम् । क्तवतुप्रत्ययश्च कर्तरि कृदिति व्यवस्थया कर्तरि भवति। ननु निष्ठायामितरेतराश्रयो भवति, तेनाप्रसिद्धिः स्यात्, यतो हि संज्ञया क्तक्तवतू इति क्रियेते, क्तक्तवत्वोश्च जातयोः संज्ञया भवितव्यमिति चेन्न दोषः । भाविनी संज्ञाऽत्र विज्ञास्यते ।

हिन्दी

११५३. अनुपूर्वक जन् धातु से कर्म उपपद होने पर ड प्रत्यय होता है ।

११५४. सप्तमी आदि से भिन्न उपपद होने पर जन् धातु तथा अन्य धातुओं से भी ड प्रत्यय देखा जाता है ।

११५५. जातिशब्दभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद होने पर जन् से ड प्रत्यय होता है ।

११५६. क्त और क्तवतु को निष्ठा संज्ञा होती है ।

११५७. निष्ठासंज्ञक क्त और क्तवतु भूत काल में होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११५८. अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति-२।४।३६।। ल्यपि तादौ किति च । इकार उच्चारणार्थः । जग्धम् ।

११५९. निष्ठायामण्यदर्थे-६।४।६०।। ण्यदर्थो भावकर्मणी, ततोऽन्यत्र निष्ठायां क्षियो दीर्घः स्यात् ।

११६०. क्षियो दीर्घात्-८।२।।४६।। निष्ठातस्य नः । क्षीणवान् । भावकर्मणोस्तु क्षितः कामो मया ।

वा. ऊर्णोतेर्नुवद्भावो वाच्यः । तेन एकाच्त्वान्नेट् । ऊर्णुतः ।

११६१. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः-८।२।४२।। रदाभ्यां परस्य निष्ठा तस्य नो निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च । शॄ-शीर्णः । भिन्नः । छिन्नः ।

मध्यमनोरमापूरणी

यस्मिन्भूते निष्ठा इत्येषा संज्ञा भवति स निष्ठासंज्ञकः प्रत्ययो भवति इत्यवगमः । **स्नातं मयेति**-ष्णा शौचे, धात्वादेरिति सः, निमित्तापाये नैमित्तकस्याप्यपाय इति णस्य नः । भावे क्तः, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वाद् सुः, भावे नपुंसकमौत्सर्गिकमेकवचनञ्चेति नियमाद् सोरम् । कर्त्तुरनुक्तत्वाद् तृतीया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । स्तुधातोः सकर्मकत्वाद् कर्मणि क्तः, कर्मणो विष्णोरुक्त्वात् प्रथमा, तदनुरोधेन स्तुतशब्दात् प्रथमैकवचनं सुः । कर्त्तु स्तृतीया इति बोध्यम्। **कृतवान् इति**—कृधातोः कर्तरि क्तवतुः, ककारः उकारश्चेतौ, कित्त्वान्न गुणः, क्ङिति चेति निषेधात् । कृतवत् इति प्रातिपदिकात् सौ उगिदचामिति नुम्, अत्वसन्तस्येति दीर्घः, हल्ङ्याबिति सुलोपः, तस्य संयोगान्तलोपः । **अदो जग्धिरिति**—अदो जग्धिः आदेशो भवति ल्यपि तादौ किति च । इकारउच्चारणार्थः, तेन इदितो नुम् इति नुम्न भवति । **जग्धम् इति**-अद्धातोः निष्ठेति क्तः, ककारः लशक्वेति इत् । अदो जग्धादेशः, जग्ध्त इति, झषस्तथोरिति तस्य धः, झरो झरीति पूर्वधस्य लोपः । सोरम्, पूर्वरूपम् । **अण्यदर्थे इति**—ण्यतः अर्थः, ण्यदर्थः, न ण्यदर्थः अण्यदर्थः, तस्मिन्निति । ऋहलोर्ण्यदिति भावकर्मणोः ण्यत् विधीयते, ततो भिन्ने कर्तरि इत्यर्थः, अर्थात् क्तवतौ परे क्षियो दीर्घो भवतीत्यर्थः । **क्षियो दीर्घादिति**-रदाभ्यामित्यतो निष्ठातो नः, इत्यनुवर्तते । **क्षीणवान् इति**—क्षिक्षये धातोः कर्तरि क्तवतुः, निष्ठायामिति क्षियो दीर्घः, क्षियो दीर्घादिति तस्य नः, रषाभ्यामिति णः, क्षीणवत् इति, सौ नुम्, अत्वेति दीर्घः, सुलोपः, संयोगान्तस्येति तलोपः । **भावकर्मणोस्तु**—क्तप्रत्यये सति न दीर्घः, दीर्घाभावात् नत्वंन । **ऊर्णुतः इति**—ऊर्णुञ् आच्छादने, तस्मात् क्तः, ऊर्णु तइति, ऊर्णोतेर्नुवद्भावो वाच्य इति नुवद्भावे सति एकाच् अयं धातुः, तस्मात् श्र्युकः कितीति इण्-निषेधो भवति । सौ रूपम् । **निष्ठातः इति**—निष्ठायाः त्, निष्ठात्, तस्य इति विग्रहः।

हिन्दी

११५८. अद् को जग्धि आदेश होता है ल्यप् और तादि कित् प्रत्यय परे ।

११५९. ण्यदर्थ से भिन्न अर्थ में निष्ठा होने पर क्षिधातु को दीर्घ होता है ।

११६०. दीर्घान्त क्षि धातु से परे निष्ठा के त को न होता है ।

वा. ऊर्णु धातु को नुवद् भाव होता है ।

११६१. रेफदकार से परे निष्ठा के त्को न होता है और निष्ठा से पूर्व धातु के द् को भी न् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११६२. संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः-८।२।४३॥ यण्वत्संयोगादेरादन्तान्निष्ठा तस्य नः। द्राणः। ग्लानः।

११६३. ल्वादिभ्यः-८।२।४४॥ एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या, ग्रहिज्या।

११६४. हलः-६।४।२॥ अङ्गावयवाद्धलः परं यत् सम्प्रसारणं तदन्तस्याङ्गस्य दीर्घः। जीनः।

वा. दुग्वोर्दीर्घश्च। दु गतौ-दूनः। गु पुरीषोत्सर्गे-गूनः।

वा. पूञो विनाशे। पूना यवाः। विनष्टा इत्यर्थः। पूतमन्यत्।

वा. सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य। सिनो ग्रासः। ग्रासेति किम्-सिता पाशेन सूकरी।

मध्यमनोरमापूरणी

रदाभ्यामित्यत्र अकार उच्चारणार्थः। **शीर्ण इति**—शॄधातोः क्तः, ॠत इद्धातोरिति इत्वम्, रपरत्वं, हलि चेति दीर्घः, शीर्त इति जाते रदाभ्यामिति रेफात् परस्य तस्य नः, रषाभ्यामिति णत्वे स्वादिकार्यम्। **भिन्नः इति**—भिद् धातोः क्तः, रदाभ्यामिति तस्य, तपूर्वस्य धातोर्दस्य च नः। **छिन्न इति**— छिद्+क्तः, तकारदकारयोर्नः। उभयत्र कित्त्वान्न लघूपधगुणः। **यण्वत इति**—यण् अस्ति अस्येति यण्वान्, तस्य यण्वतः इत्यर्थः। **द्राणः इति**—द्रा इति धातोः क्तः, ककार इत्। द्राधातुः आकारान्तः संयोगादिः यणवान् च, तस्मात् परस्य तस्य संयोगादेरिति नत्वं, णत्वञ्च। **ग्लान इति**—ग्लै हर्षक्षये, आदेच इत्यात्वम्, क्तः, संयोगादेरिति नत्वम्। **ल्वादिभ्यः इति**—क्र्यादिषु पूञ् धातोरारभ्य द्वाविंशतिः धातवः प्वादिगणे पठिताः, तत्र पूञ्धातुं परित्यज्य एकविंशतिधातवः लूञ आरभ्य ल्वादयः उच्यन्ते, तेभ्यः परस्य निष्ठा तस्य नोभवति। **लून इति**—लूञ् छेदने, क्तः, तस्य नः। **हलः इति**—सम्प्रसारणस्येति सूत्रमनुवर्तते, अङ्गस्येत्यधिकारः अनुवृत्तस्सन् आवर्त्यते। ढ्रलोप इत्यतः दीर्घ इत्यनुवर्तते, हलः इति दिग्योगपञ्चमी, अतः परस्येत्यर्थो लभ्यते। **अत आह मूले**—अङ्गावयवात् इत्यादि। **जीन इति**—ज्याधातोःक्तः, संयोगादेरिति सूत्रस्यासिद्धत्वात् पूर्वं ग्रहिज्येति सम्प्रसारणेन यकारस्येकारः, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम्, हलः इति दीर्घः, ल्वादिभ्य इति तस्यनः, सोरुत्वविसर्गौ। **दुग्वोरिति**—दुगुधातुभ्यांपरस्य निष्ठातस्य नः, पकृतेर्दीर्घश्च भवति इत्यर्थः। **दून इति**—दुधातोःक्तः, तस्य नः, धातोरुकारस्य दीर्घः। **पूञो विनाशे इति**-विनाशार्थात् पूञः पुरस्य निष्ठातस्यनः इत्यर्थः। पूञ् पवने इति प्रसिद्धिः, धातूनामनेकार्थत्व-स्वीकारात् विनाशोऽप्यर्थः सम्भवति। **पूतमन्यत्**—पवित्रेऽर्थे तस्य नो न भवति। **कर्मकर्तृकस्येति**—कर्मैव कर्ता, कर्मकर्ता, ग्रासः कर्मकर्ता यस्य सः, तस्मात् षिञ् इतिधातोः परस्य निष्ठातस्य नः इत्यर्थः। **सिनो ग्रास इति**—षिञ् धातुः, धात्वादेरिति षः, क्तः, वार्तिकेन नत्वम्। दध्यादिद्वारा बन्धनानुकूलो भवति ग्रासः, तदा कर्मण एव कर्तृत्वं भवति। **सिता इति**—बद्धा इत्यर्थः, तेन नत्वं न।

हिन्दी

११६२. यण्वान् संयोगादि आदन्त धातु से परे निष्ठा-त् को न् होता है।

११६३. ल्वादि धातुओं से परे निष्ठा त् को न् होता है।

११६४. अङ्गावयव हल् से परे जो सम्प्रसारण तदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

वा. दु और गुधातुओं से परे निष्ठा त को न होता है व धातु को दीर्घ होता है।

वा. पूञ् धातु से परे निष्ठा त को न होता है, विनाश अर्थ में।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११६५. ओदितश्च-८।२।४५।। प्राग्वत् । भुजो भुग्नः । टुओश्वि-शूनः ।

११६६. द्रवमूर्तिस्पर्शयोः-६।१।२४।। द्रवस्य मूर्तौ=काठिन्ये स्पर्शे श्यः सम्प्रसारणं स्यान्निष्ठायाम् ।

११६७. श्योऽस्पर्शे-८।२।४७।। श्यैङो निष्ठातस्य नः स्यादस्पर्शेऽर्थे । शीनं घृतम् । अस्पर्शे किम् ? शीतं जलम् । द्रवमूर्तिस्पर्शयोरिति किम् ? संश्यानो वृश्चिकः । शीतात् संकुचित इत्यर्थः ।

११६८. प्रतेश्च-६।१।२५।। सम्प्रसारणं निष्ठायाम् । प्रतिशीनः ।

११६९. विभाषाभ्यवपूर्वस्य-६।१।२६।। तथा । अभिशीनम्, अभिश्यानं घृतम् । अवश्यानः,अवशीनो वृश्चिकः । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनेह न- समवश्यानः।

मध्यमनोरमापूरणी

ओदितश्च—ओदित्धातोः परस्य निष्ठातस्य नत्वमित्यर्थः । **भुग्न इति**—भुजो धातुः, ओकार इत्, क्तः, ओदितश्चेति नत्वम्, चोः कुरिति नत्वस्यासिद्धत्वात् कुत्वम् । **शून इति**— श्विधातोः क्तः, वचिस्वपीति सम्प्रसारणं वकारस्य उः, सम्प्रसारणाच्च, 'हलः' इति दीर्घः, ओदितश्चेति तस्य नः । **द्रवमूर्ति इति**—श्यः इति श्यैङ्धातोः कृतात्वस्य षष्ठ्यां रूपम् । ष्यङः सम्प्रसारणमित्यतः सम्प्रसारणमित्यनुवर्तते । **शीनं घृतम् इति**—घृतं घनीभूतमित्यर्थः । श्यैङ् धातोः आत्वं, क्तः, द्रवमूर्ति इति सम्प्रसारणम्, पूर्वरूपम्, हलः इति दीर्घः, शीत इति जाते श्योऽस्पर्शे इति नत्वम् । सोरमादेशः, पूर्वरूपम् । **अस्पर्शे किमिति**—सूत्रे यदि एतत्पदं नोच्येत-तदा शीतं जलम्= शीतस्पर्शवद् जलमित्यर्थे ऽपि नत्वं स्यात् । सम्प्रसारणमत्र द्रवमूर्तिस्पर्शयोरित्यनेन स्पर्शेऽर्थे भवति । **संश्यान इति**—अत्र स्पर्शस्य अप्रतीतिः अतः सम्प्रसारणं न, संश्यात इति जाते श्योऽस्पर्शे इति नत्वम् । **प्रतेश्चेति**—प्रतिपूर्वकस्य श्यैङः सम्प्रसारणं भवति निष्ठायां, द्रवमूर्तिस्पर्शाभ्यां भिन्नेऽप्यर्थे इति । **प्रतिशीनः इति**— प्रतिपूर्वकश्यैङ्धातोरादेच उपदेशेऽशिति इत्यात्वम्, क्तः, प्रतेश्चेति धातोर्यकारस्य सम्प्रसारणम्, पूर्वरूपम्,हल इति दीर्घः, श्योऽस्पर्शे इति नत्वम् । **विभाषेति**—श्यैङः अभि-अवपूर्वस्य सम्प्रसारणं भवति विकल्पेन । तत्र द्रवमूर्तिस्पर्शयोः नित्यं प्राप्तं सम्प्रसारणम् अन्यत्र चार्थेऽप्राप्तं सम्प्रसारणमनेन विकल्प्यते इति बोध्यम् । **अभिश्यानमिति**—अभिपूर्वस्य श्यैङः आत्वम्, क्तः, द्रवमूर्ति इति प्राप्तं सम्प्रसारणमनेन विकल्पितं, तेन नात्र सम्प्रसारणम् । श्यैङोऽस्पर्शेऽर्थे नत्वम् । पक्षे सम्प्रसारणे हलः इति दीर्घः, नत्वम् । **अवश्यान इति**—अवपूर्वात् श्यैधातोः क्तः, नत्वम् । सम्प्रसारणपक्षे अवशीन इति । नात्र द्रवमूर्तिस्पर्शाऽर्थः । **व्यवस्थितेति**—अभि-अवपूर्वस्यैवानेन सम्प्रसारणविकल्पः इति व्यवस्था, तस्मात् समवश्यान इत्यत्र न भवति सम्प्रसारणम्, अभिसंशीनमभिसंश्यानमित्यत्र तु भवत्येव विभाषा । **अञ्चोऽनपादाने इति**—निष्ठातो नः इत्यनुवर्तते । अञ्चुधातोः

हिन्दी

वा. ग्रास के कर्म कर्ता होने पर षिञ् धातु से परे निष्ठा त को न होता है ।

११६५. ओदित् धातु से परे निष्ठा त को न होता है ।

११६६. द्रव पदार्थ के काठिन्य और स्पर्श अर्थ में श्यैङ् धातु को सम्प्रसारण होता है ।

११६७. श्यैङ् धातु से परे निष्ठा त को न होता है अस्पर्श अर्थ में ।

११६८. प्रतिपूर्वक शीङ् धातु को सम्प्रसारण होता है निष्ठा प्रत्यय परे रहते ।

११६९. अभि और अवपूर्वक श्यैङ् धातु को सम्प्रसारण होता है विकल्प से, द्रवमूर्ति स्पर्श और तद्भिन्न अर्थ में भी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११७०. अञ्चोऽनपादाने-८।२।४८।। निष्ठातस्य नः ।

११७१. यस्य विभाषा-७।२।१५।। यस्य क्वचिद् विभाषया इड्विहितस्ततो निष्ठायामिण्न । उदितो वेति क्त्वायां वेट्त्वादिह नेट् । समक्नः । अनपादाने किम्-उदक्तमुदकं कूपात् ।

११७२. दिवोऽविजिगीषायाम्-८।२।४९।। द्यूनः विजिगीषायां तु-द्यूतम् ।

११७३. निर्वाणोऽवाते-८।२।५०।। अवाते इति च्छेदः । निःपूर्वाद्वातेर्निष्ठातस्य नत्वं स्याद् वातश्चेत् कर्ता न । निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा । वाते तु निर्वातो वातः ।

११७४. शुषः कः-८।२।५१।। निष्ठातस्य कः । शुष्कः ।

११७५. पचो वः-८।२।५२।। पक्वः ।

११७६. क्षायो मः-८।२।५३।। क्षामः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विहितस्य निष्ठातस्य नः भवति अपादानसमभिव्याहारे असति । **यस्येति**-श्वीदितो निष्ठायामित्यतो निष्ठायामित्यनुवर्तते, षष्ठ्यन्तत्वेनविपरिणमते च । नइवशि इत्यतो 'नेट्' इत्यनुवर्तते । यस्य इति आर्धधातुकापेक्षया षष्ठी । वस्तुतः यस्मादित्यर्थः । तेन यस्मात् धातोः परस्य आर्धधातुकस्य क्वचिद् विभाषा इडुक्तः तस्मात् परस्य निष्ठाया इण्न भवतीत्यर्थः । **उदितो वेति** अञ्चुधातोः नित्यं सेट्कत्वात्कथं समक्नः इत्यत्र निषेध **इटो भवेदिति चेदुच्यते**—उदितो वेति अञ्चुधातोः परस्य क्त्वः इड्विकल्पो भवति । अतः अत्र नेट् स्यात् । **समक्न इति**—सम्पूर्वादञ्च्-धातोः क्तः, आर्धधातुकस्येडिति इट् प्राप्तो यस्य विभाषया निषिध्यते, अनिदितां हल उपधाया इति नलोपः, चोः कुरिति चस्य कः, अञ्चोऽनपादाने इति तस्य नः । **उदक्तमिति**—उद्धृतमित्यर्थः । उदञ्च्धातोः क्तः, नलोपः, कुत्वम् । कूपादिति अपादानसमभिव्याहारात् न नत्वम् । **दिवोऽविजिगीषायामिति**-दिव् धातोः परस्य निष्ठातस्य नः स्याद् अविजिगीषायाम्। **द्यूनः**-दिव्धातोः क्तः, ककार इत् । च्छ्वोः शूडिति वस्य ऊठ्, यण्, दिवोऽविजिगीषायाम् इति तस्य नः । क्षीणः, स्तुतो वेत्यर्थः । विजिगीषायां तु न भवति नत्वम्, अतः तत्र द्यूतम् इत्येव । विजिगीषया एव द्यूते अक्षाः पात्यन्ते । **निर्वाणोऽवाते इति**- वातभिन्ने कर्तरि निःपूर्वाद् वा धातोः तस्य नः स्यादित्यर्थः । **निर्वाण इति**—निर्वा इत्यस्मात् क्तः, अनेन नत्वम्, णत्वम् । निर्पूर्वो वाधातुः विनाशे उपरमे चास्ति । निर्वातो वातः नितरां चलित इत्यर्थः । **शुष्क इति**—शुष्धातोः क्तः, शुषः क इति तस्य कः । **पचो वः**- पच्धातोः परस्य निष्ठातस्य वः स्यादित्यर्थः । **पक्वः इति**—पच्धातोः क्तः, तस्य वः । **क्षायो म इति**, क्षैधातोः निष्ठातस्य मः इत्यर्थः । **क्षाम इति**—क्षैधातुः, आदेच इत्यात्वम्, क्तः, तस्य मः । क्षीण इत्यर्थः।

हिन्दी

११७०. अञ्च् धातु से परे निष्ठा त को न होता है, अपादान **समभिव्याहार के बिना ।**

११७१. जिसको कहीं पर भी विकल्प से इड् विधान होता है उसे निष्ठा में इट् नहीं होता है ।

११७२. दिव् से परे क्त को न होता है, अविजिगीषा अर्थ में ।

११७३. वातभिन्नकर्ता होने पर **निर्पूर्वक वा धातु से परे निष्ठा त को न होता है ।**

११७४. शुष् धातु से परे निष्ठा त को क होता है ।

११७५. पच् धातु से परे निष्ठा के त को व होता है ।

११७६. क्षै धातु से परे निष्ठा के त को म होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११७७. स्त्यः प्रपूर्वस्य-६।१।२३।। प्रात् स्त्यः सम्प्रसारणं निष्ठायाम् ।
११७८. प्रस्त्योऽन्यतरस्याम्-८।२।५४।। निष्ठातस्य मो वा । प्रस्तीमः । प्रस्तीतः । प्रात् किम्-स्त्यानः ।
११७९. अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः-८।२।५५।। एते निपात्यन्ते । ञिफला-फुल्लः । निष्ठातस्य लत्वं निपात्यते । क्तवत्वेकदेशस्यापीदं निपातनमिष्यते । फुल्लवान् । अनुपसर्गात् किम्-
११८०. आदितश्च-७।२।१६।। आकारेतो निष्ठाया इण्न ।
११८१. ति च-७।४।८९।। चरफलोरत उत् तादौ किति । प्रफुल्तः । प्रक्षीबितः । प्रकृशितः । प्रोल्लाघितः ।
वा. उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्त्यः इति—स्त्यै इत्यस्य कृतात्वस्य षष्ठ्यां निर्देशः । ष्यङः इत्यतः सम्प्रसारणमिति स्फायः स्फी इत्यतः निष्ठायामित्यनुवर्तते च । प्रस्त्य इति-प्रपूर्वकस्य स्त्यै इत्यस्य कृतात्वस्य पञ्चम्यां निर्देशः । **प्रस्तीम इति**—प्रस्त्यै इत्यस्यात्वम् । क्तः, स्त्यः प्रपूर्वस्येति यस्य सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, हलः इति दीर्घः, प्रस्त्योऽन्येति तस्य मः । मत्वाभावे प्रस्तीतः इति । **स्त्यान इति**—प्रपूर्वाभावान्न सम्प्रसारणम्, संयोगादेरिति नत्वम् । **अनुपसर्गादिति**—उपसर्गात् परा न चेत् तदा फुल्लक्षीबादयः निपात्यन्ते । **फुल्ल इति**—ञिफला धातुः, आदिर्ञिटुडवः, उपदेशेऽजनुनासिक इत् इति । फल् इत्यस्मात् क्तः, अनेन तस्य लत्वं निपात्यते । ति चेति धातोरुपधाकारस्योत्वम् । आदितश्चेतीण्निषेधः । **क्षीब इति**—क्षीब्-धातोः क्तः, अनुपसर्गादिति तलोपः इडभावश्च निपात्येते । **कृशः इति**—कृश्धातोः क्तः, तलोपेड्भावौ निपात्येते । **उल्लाघ इति**—उद्पूर्वात् लाघ्धातोः क्तः, तलोपः इडभावश्च निपातितः, तोर्लि इति दस्य लः । नीरोग इत्यर्थः । **आदितश्चेति**—श्वीदितो निष्ठायामित्यतो निष्ठायामिति, नेड्वशीत्यतश्च नेड् इत्यनुवर्तते, तदाह-आकारेत इत्यादि । **ति चेति**—चरफलोश्च इत्यनुवर्तते, उत्परस्यातः इत्यतः अतः उत् इति चानुवर्तते । दीर्घ इणः कितीत्यतः कितीत्यनुवर्तते । **अत आह**—चरफलोरत इत्यादि । **अनुपसर्गात् किम्**-अस्य प्रत्युदाहरणं **प्रफुल्त इति**—प्रपूर्वक फल्धातोः क्तः, उपसर्गपरत्वान्न तस्य लः । आदितश्चेतीण्निषेधः, ति चेति अकारस्य उत्वम् । **प्रक्षीबित इति**—क्षीबृ मदे इत्यस्मात् प्रपूर्वात् क्तः, आर्धधातुकत्वादिड् । **प्रकृशितः**—कृश तनुत्वे, क्तः, इट् । प्र+उद्पूर्वक लाघृशक्तौ इत्यतः क्तः, इट्, दस्य तोर्लि इति लः, गुणः । **उत्फुल्लेति**—उद्पूर्वात् संपूर्वात् च फल्धातोः परस्य निष्ठा तस्य लत्वं वक्तव्यम् इत्यर्थः । उद्फल् संफल् इत्यस्मात् क्तः, लत्वम्, ति चेत्युत्वम् । उत्फुल्लः संफुल्लः इति ।

हिन्दी

११७७. प्रपूर्वक स्त्यैधातु को सम्प्रसारण होता है, निष्ठा परे रहते ।
११७८. प्रपूर्वक स्त्यैधातु से परे निष्ठा के त को म होता है, विकल्प से ।
११७९. फुल्ल क्षीब कृश और उल्लाघ ये क्तप्रत्ययान्त निपातन होते हैं, उपसर्ग पूर्व में नहीं रहने पर ।
११८०. आकारेत्संज्ञक धातु से परे निष्ठा को इट् नहीं होता है ।
११८१. चर और फल धातु के अ को उ होता है, तादि कित् परे रहते ।
वा. उत्फुल्ल संफुल्ल ये क्तप्रत्ययान्त निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११८२. नुदविदोन्दात्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्-८।२।५६।। निष्ठातस्य नो वा स्यात् । नुन्नः । नुत्तः । विन्नः । वित्तः । उन्दी-

११८३. श्वीदितो निष्ठायाम्-७।२।१४।। श्वयतेरीदितश्च निष्ठायामिण् न । उन्नः । उत्तः । इत्यादि ।

११८४. न ध्याख्यापॄमूर्छिमदाम्-८।२।५७।। एभ्यो निष्ठातस्य नो न । ध्यातः । ख्यातः । पूर्तः ।

११८५. राल्लोपः-६।४।२१।। राच्छ्वोर्लोपः स्यात्क्वौ झलादौ क्ङिति च परतः। मूर्तः । मत्तः ।

११८६. वित्तो भोग प्रत्यययोः-८।२।५८।। विन्दतेर्निष्ठान्तस्य निपातोऽयं भोग्ये प्रतीते चार्थे । वित्तः पुरुषः । अनयोः किम्-विन्नः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नुदविन्दोन्देति—निष्ठातस्य नः विकल्पेनेत्यर्थः । तत्र ह्रीधातोः अप्राप्ते अन्येभ्यो रदाभ्यामित्यनेन संयोगादेरित्यनेन च नित्ये प्राप्तेऽनेन नत्वविकल्पो भवति इत्युभयत्र विभाषा-सूत्रः । **नुन्नः इति**—नुद्धातोः क्तः, रदाभ्यामिति प्रबाध्यानेन तस्य नः । कित्त्वान्न गुणः। पक्षे नुत्त इति, पक्षे नुत्त इति, दस्य चर्त्वम् । **विन्न इति**—विद् विचारणे इत्यस्य रौधादिकस्य रूपम्, न तु विद् ज्ञाने इत्यस्य, उन्दिना साहचर्यात । **श्वीदित इति**—नेड्वशि इत्यतो नेड् इत्यनुवर्तते । श्विश्च ईदित् चेत्यनयोः समाहारद्वन्द्वः। **अत आह**—श्विधातोः ईदितश्च निष्ठायाम् इण्नेति । **उन्नः इति**—उन्दीधातुः, ईकार इत्, क्तः, अनिदितामिति नलोपः, प्राप्तः इट् श्वीदितो निष्ठायामित्यनेन निषिध्यते, नुदविन्देति तस्य नः । **पक्षे उत्त इति**—दस्य चर्त्वेन तः । **नध्याख्येति**—पञ्चम्यर्थे षष्ठी । अत उक्तम् एभ्य इत्यादि । **ध्यात इति**—ध्यै धातुः, आदेच इत्यात्वम्, क्तः, संयोगादेरिति प्राप्तं नत्वं 'नध्याख्या' इत्यनेन निषिध्यते । **पूर्तः इति**-पॄधातोः क्तः, उदोष्ठ्येति ॠकारस्य उत्वम्, रपरत्वम्, हलि चेति दीर्घः । रदाभ्यामिति प्राप्तं नत्वं 'नध्येति' निषिध्यते । अत्र इडपि प्राप्त आसीत्, श्र्युकः कितीति प्रतिषिद्धयः । **राल्लोप इति**—छ्वोः शूडित्यतः छ्वोरिति 'अनुनाकिस्येत्यत 'क्विझलोः क्ङिति' इति चानुवर्तते । **अत आह**—रात् छ्वोरिति । **मूर्तः**—मूर्छा धातुः, आलोपः, क्तः, राल्लोप इति छलोपः, मुर् त इति, आदितश्चेति प्राप्तस्येटो निषेधः । रदाभ्यामिति नत्वं प्राप्तं 'न ध्याख्यापॄ' इत्यादिना निषिद्धम् । हलि चेति उपधादीर्घः । **मत्तः**—मद्धातोः क्तः, इट् प्राप्तः, मदी इत्यस्य ईदित्वात् श्वीदितोनिष्ठायामिति इण्निषेधः । रदाभ्यां निष्ठेति प्राप्तं नत्वं निषिध्यते । **भोग्ये प्रीतीते चार्थे इति**—भुज्यते इति भोगः भोग्यम् । प्रतीयते इति प्रत्ययः प्रसिद्धः । **वित्त इति**—विद्लृधातोः

हिन्दी

११८२. नुद्‌विद् उन्द् आदि धातु से परे निष्ठा त को न होता है, विकल्प से ।

११८३. श्विधातु और ईदित् दातु से परे निष्ठा को इट् नहीं होता है ।

११८४. ध्या ख्या पॄ आदि से परे निष्ठा त को न नहीं होता है ।

११८५. र से परे छ् और व् का लोप होता है, क्विप् और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते ।

११८६. भोग और प्रसिद्ध अर्थ में विद्‌धातु से निष्ठा त को नत्व का अभाव निपातन होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११८७. भित्तं शकलम्-८।२।५९।। भिन्नमन्यत् ।

११८८. ऋणमाधमर्ण्ये-८।२।६०।। ऋतमन्यत्र ।

११८९. स्फायः स्फी निष्ठायाम्-६।१।२२।। स्फीतः ।

११९०. इण्निष्ठायाम्-७।२।४७।। निरः कुषो निष्ठाया इट् । यस्य विभाषेति निषेधे प्राप्ते पुनर्विधिः । निष्कुषितः ।

११९१. वसतिक्षुधोरिट्-७।२।५२।। आभ्यां क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् । उषितः । क्षुधितः ।

११९२. अञ्चेः पूजायाम्-७।२।५३।। क्त्वानिष्ठयोरिट् । अञ्चितः । गतौ तु अक्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

क्तः, नुदविदोन्द इति वैकल्पिक नस्य 'वित्तो भोगप्रत्यययोः' इति अभावो निपात्यते, दस्य चर्त्वम् । **विन्नः इति**— भोगप्रत्यययोरर्थयोरभावे रदाभ्यामिति तदोर्नः । यस्य विभाषेति इण्निषेधः, क्वसौ अस्य वेट्कत्वात् । भित्तमिति भिद्धातोः शकले वाच्ये नत्वाभावो निपात्यते। अत्र रदाभ्यामिति प्राप्तस्य निषेधः । **भिन्नमन्यत्**—विदीर्णमित्यर्थः । अत्र रदाभ्यामिति तदोर्नः । **ऋणमाधमर्ण्ये इति**—अधमम् ऋणमस्य सोऽधमर्णः, तस्य कर्म आधमर्ण्यम्, तस्मिन् वाच्ये ऋधातोः निष्ठातस्य नत्वं निपात्यते । ऋवर्णान्नस्येति णत्वम् । सत्येऽर्थे ऋतमित्येव, नात्र नत्वम् । **इण्निष्ठायामिति**—अत्र निरः कुष इति सूत्रमनुवर्तते । **यस्य विभाषेति**—निर्पूर्वक कुष्धातोः तृजादौ निरः कुषः इति विकल्पेन इड् भवति, अतः निष्ठायांम् आर्धधातुकस्येति प्राप्तस्येटो यस्य विभाषेति निषेधः प्राप्त आसीत्, तद्बाधनार्थम् इण्निष्ठायामित्यनेन पुनरिड्विधानं क्रियते इति भावः । **निष्कुषित इति**—निर्पूर्वककुष्धातोः क्तः, इण्निष्ठायामिति इट्, रेफस्य विसर्गः, इदुदुपधस्येति विसर्गस्य षत्वम्, सोरुत्वविसर्गौ । **वसतिक्षुधोरिति**—पञ्चम्यर्थे षष्ठी । **अत आह**—आभ्यामित्यादि । **उषित इति**—वस्धातोः क्तः, एकाच उपदेश इति इण्निषेधं प्रबाध्य वसतिक्षुधोरितीट् । वचिस्वपीति वस्य सम्प्रसारणम् उः, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम् । शासिवसिघसीनाञ्चेति सस्य षत्वम् । **अञ्चित इति**—अञ्चु पूजायामिति धातुः, उदित् । क्तः, उदितो वेति क्त्वायां विकल्पेन इड्विधानादत्र यस्य विभाषेति निषेधे प्राप्ते अञ्चेरिति इड् विधीयते । नाञ्चेः पूजायामिति नलोपनिषेधः । **अक्त इति**—अञ्चु गतौ इत्यस्मात् क्तः, पूजार्थाभावात् नात्र इट्, अनिदितामिति नलोपः, चोः कुरिति चस्य कः।

हिन्दी

११८७. शकल अर्थ में भिद से परे निष्ठा त को नत्वाभाव निपातन होता है ।

११८८. आधमर्ण्य अर्थ में ऋ धातु से परे निष्ठा त को नत्व निपातन होता है ।

११८९. निष्ठा में स्फाय को स्फी आदेश होता है ।

११९०. निर् पूर्वक कुष् धातु से परे निष्ठा को इट् होता है ।

१९९१. वस् और क्षुध् से परे क्त्वा और निष्ठा को नित्य इट् होता है ।

११९२. अञ्च् से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११९३. लुभो विमोहने-७।२।५४।। क्त्वानिष्ठयोरिट्, न तु गार्ध्ये । लुभितः । गार्ध्ये तु लुब्धः ।

११९४. क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः-७।२।५०।। इड् वा । क्लिशितः । क्लिष्टः ।

११९५. पूङश्च-७।२।५१।। क्त्वानिष्ठ्योरिड्वा ।

११९६. पूङः क्त्वा च-१।२।२२।। निष्ठा सेट् किन्न स्यात् । पवितः, पूतः । क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थम् । नोपधात् इत्यत्र हि क्त्वैव सम्बद्ध्यते ।

११९७. निष्ठाशीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः-१।२।१९।। सेट् किन्न । शयितः ।

वा. आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ।।

११९८. आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च-३।४।७१।। चाद् भावकर्मणोः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विमोहने इति—लुभ विमोहने इति तौदादिकस्य ग्रहणम्, न तु लुभ गार्ध्ये इति दैवादिकस्य, अत आह वृत्तौ न तु गार्ध्ये इति । **लुभित इति**—क्तः, तीषसहेति क्त्वायां विकल्पेन इड्-विधानात् निष्ठायां यस्य विभाषेति निषेधे प्राप्तेऽनेन इट् । **लुब्ध इति**—लुभः क्तः, मति-बुद्धीत्यादिना । झषस्तथोर्धोऽधः इति तस्य धः, भस्य जश्त्वेन बः । **क्लिशः इति**—इण्निष्ठाया-मित्यत इट् इति, स्वरतिसूतीत्यतः वेति चानुवर्तते । **क्लिशित इति**—क्लिशू विबाधने, क्तः, ऊदित्वात् क्त्वायां विकल्पेन इड्विधानात् यस्येति निषेधे प्राप्तेऽनेन विकल्पेन इट् । पक्षे व्रश्चेति षः, ष्टुत्वम् । **पूङश्चेति**-'क्लिशः क्त्वा' इति सूत्रात् क्त्वानिष्ठयोरिति, स्वरतिसूतीत्यतो 'वा' इति, इण् निष्ठायामित्यतश्चेट् इति अनुवर्तते । **पूङः क्त्वा चेति**—न क्त्वा सेट् इत्यतो 'न सेट्' इति, असंयोगाल्लिट् कित् इत्यतः कित् इति, निष्ठा शीङ् इत्यतश्च निष्ठा इत्य-नुवर्तते । तेन पूङः सेट् क्त्वा निष्ठा च किन्न भवतीत्यर्थः संपद्यते । **पवितः इति**—पूङः-धातोःङकार इत्, क्तः, पूङश्चेति इट्, पूङः क्त्वा चेति सेटःक्तस्य कित्त्वनिषेधात् सार्वधातुकेति धातोर्गुणः, अवादेशः, विभक्तिकार्यम् । इडभावे कित्त्वनिषेधाभावात् न गुणः, पूत इत्येव । **क्त्वाग्रहणमिति**—न क्त्वा सेट् इत्यतः क्त्वाग्रहणानुवृत्त्या एवात्र कार्ये सिद्धे पुनः क्त्वा ग्रहणं किमर्थमिति जिज्ञासायामुच्यते,-उत्तरार्थमिति । अर्थात् अस्मात् परस्मिन् सूत्रे नोपधात्थफान्ताद्वेत्यत्र अनुवृत्त्यर्थमेतद् अस्ति । तत्रैव क्त्वैव सम्बद्ध्यते न तु निष्ठेति । क्त्वाग्रहणेऽकृते तु तत्र निष्ठा शीङः इत्यतो निष्ठा इत्येव अनुवर्तेत इति भावः । **शयित इति**-शीङ्धातोः क्तः, इट्, निष्ठा शीङ्स्विदि इत्यादिना कित्त्वाभावात् धातोर्गुणः, अयादेशः । **आदिकर्मणि इति**—कटाद्युत्पादनक्रिया दीर्घकालव्यापिनी, तत्र आरम्भकालविशिष्टः अंशः आदिकर्म भवति । आदिक्रियाक्षणं तु भूतं भवति किन्तु सर्वाःक्रियाः भूताः न भवन्ति, अतः तत्र भूते विहिता निष्ठा न प्राप्नोति, तदर्थमिदम् । **चाद्भावकर्मणोरिति**—तयोरेव

हिन्दी

११९३. लुभ् से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् होता है, गार्ध्य अर्थ में नहीं ।

११९४. क्लिश् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को विकल्प से इट् होता है ।

११९५. पूङ् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् विकल्प से होता है ।

११९६. पूङ् से परे सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है ।

११९७. शीङ् स्विद् मिद् आदि से परे सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है ।

वा. आदिकर्म (आरम्भकालिक क्रिया में) में धातु से निष्ठा होती है ।

११९८. आदि कर्म में विद्यमान धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय होता है और भावकर्म में भी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११९९. विभाषा भावादिकर्मणोः-७।२।१६॥ आदितो निष्ठाया इड् वा । प्रस्वेदितश्चैत्रः । प्रस्वेदितं तेन । ञिष्विदेतिभ्वादिरत्र गृह्यते, ञीद्भिः साहचर्यात् । स्विद्यतेस्तु-स्विदित इत्येव । ञिमिदा ञिक्ष्विदा दिवादी भ्वादी च । प्रमेदितः । प्रक्ष्वेदितः । प्रधर्षितः । धर्षितं तेन । सेट् किम् ? प्रस्विन्नः । प्रस्विन्नं तेनेत्यादि ।

१२००. मृषस्तितिक्षायाम्-१।२।२०॥ सेण्निष्ठा किन्न । मर्षितः । तितिक्षायां किम् ? अपमृषितं वाक्यम् । अविस्पष्टमित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृत्यक्तखलर्था इत्यतः तयोरनुवृत्तिः । एवं चादिकर्मणि यः क्तो भवति स कर्तरि भावकर्मणोश्च भवतीत्यर्थः । **विभाषा इति**—आदितश्च इत्यत आदित इति, श्वीदितो निष्ठायामित्यतो निष्ठेति, नेड्वशीत्यतो न इति चानुवर्तते । निषेधस्य वैकल्पिकत्वात् पक्षे इट् विज्ञायते । **अत आह**—आदितो निष्ठाया इड् वा इति । **प्रस्वेदित इति**—ञिष्विदाधातुः प्रपूर्वः । आदिर्ञिटुडवः, उपदेशेऽजनुनासिक इति, धात्वादेरिति सः, आदिकर्मणि क्तः इति क्तः, प्रस्विद् त इति, विभाषाभावादि इति इट्, निष्ठाशीङ् स्विद् इति कित्त्वनिषेधः, पुगन्तेति गुणः, सोरुत्वविसर्गौ । 'चैत्रकर्तृका आरभ्यमाणप्रस्वेद क्रिया' इत्यर्थः । प्रस्वेदितमिति भावे क्तः । **ञीद्भिरिति**—ञिः इत् येषां ते ञीतः । निष्ठेति सूत्रे ञिमिदा इत्यादि ञीत्साहचर्यात् ञिष्विदा स्नेहमोचनयोरित्यस्य ग्रहणं भवति, नतु ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे इत्यस्य । अस्य तु स्विदित इत्येव, नात्र कित्वनिषेधः । तेन न गुणः । **प्रमेदितः-प्रक्ष्वेदित इति**—ञिमिदा ञिक्ष्विदा इति प्रपूर्वौ धातू, ताभ्यां क्तः, इट् विकल्पेन, निष्ठाशीङ्स्विद् इति कित्त्वनिषेधात् पुगन्तेति गुणः । **प्रधर्षित इति**—ञिधृषा प्रागल्भ्ये धातुः प्रपूर्वः, क्तः, इट्, कित्त्वनिषेधः, गुणः । **धर्षितं तेनेति**-भावे क्तः । **प्रस्विन्न इति**—प्रपूर्वकःस्विद् धातु क्तः, विभाषा इति इडभावे सेट्त्वाभावात् अत्र न कित्त्वनिषेधः, कित्त्वाद् गुणो न । रदाभ्यामिति तदोर्नः । भावे प्रस्विन्नं तेनेति बोध्यम्। **मृष इति**—न क्त्वा सेट् इत्यतः न, सेट् इति असंयोगाल्लिट् कित् इत्यतः कित् इति चानुवर्तते । तितिक्षा क्षमा भवति । मृष्धातोः सेट्-निष्ठा किन्न भवति क्षमायाम् इत्यर्थः । **मर्षित इति**—मृष्धातोः क्तः, आर्धधातुक इट्, अनेन कित्त्वाभावात् लघूपधगुणः । रपरत्वम्। **अपमृषितमिति**— धातूनामनेकार्थत्वात् नात्र तितिक्षा अर्थः । कित्त्वस्य अनिषेधान्न गुणः ।

हिन्दी

११९९. आदित् धातु से परे निष्ठा को इट् होता है (भाव और आदि कर्म में विहित निष्ठा को) विकल्प से ।

१२००. मृष् धातु से क्षमा अर्थ में सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२०१. उदुपधाद् भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम्-१।२।२१॥ उदुपधात् परा भावादिकर्मणोः सेण्निष्ठा वा किन्न । द्युतितम् । द्योतितम् । मुदितम् । मोदितं साधुना । प्रद्योतितः । प्रद्युतितः । प्रमुदितः, प्रमोदितः साधुः । उदुपधात् किम् ? विदितम् । भावेत्यादि किम्-रुचितं कार्षाणम् । सेट् किम्-क्रुष्टम् । वा. शब्विकरणेभ्यः एवेष्यते । नेह-गुध्यतेर्गुधितम् ।

१२०२. निष्ठायां सेटि-६।४।५२॥ णेर्लोपः । भावितः । भावितवान् ।

१२०३. दृढः स्थूलबलयोः-७।२।२०॥ स्थूले बलवति च निपात्यते ।

१२०४. दधातेर्हिः-७।४।४२॥ तादौ किति । हितम् ।

१२०५. दो दद्घोः-७।४।४६॥ घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उदुपधादिति—'निष्ठाशीङ्' इत्यतो निष्ठेत्यनुवर्तते । **द्योतितमिति**—द्युत्धातोः क्तो भावे, इट्, वा कित्त्वनिषेधात् गुणः । पक्षे न गुणः, **द्युतितमिति** । एवमेव मुद्धातोः भावे क्तप्रत्यये कित्त्वनिषेधे **मोदितम्,** कित्त्वपक्षे **मुदितमिति** भवति । **प्रद्योतितः इति**—आदिकर्मणि क्तः, कित्त्वाभावात् गुणः । पक्षे प्रद्युतित इति । **भावेत्यादि इति**—रुचितं कार्षापणमित्यत्र रुच दीप्तौ इत्यस्मात् गत्यर्थाकर्मकश्लिष इत्यादिना कर्तरि क्तः, तेन नात्र कित्त्वाभावः । **क्रुष्टमिति**—क्रुश् आह्वाने इति अनिट्को धातुः, नात्र कित्त्वाभावः । व्रश्चेति षत्वे ष्टुत्वम् । **शब्विकरणेभ्य इति**—कित्त्वाभाव इति ज्ञेयम् । दैवादिकस्य गुध् धातोः परिवेष्टनेऽर्थे क्तः, इट्, शब्विकरणाभावान्न कित्त्वनिषेधः, अतः लघूपधगुणो न भवति । **सेटीति**—णेरनिटीत्यतः णेरिति आतो लोप इटि चेत्यत लोप इति च अनुवर्तते । **सूत्रार्थः**—सेटि निष्ठायां सत्यां टेर्लोपो भवति। णेरनिटीति अप्राप्तणिलोपोऽनेन विधीयते । **भावित इति**—भूधातोर्णिच् । वृद्धिः, आव्, भावि इत्यस्मात् क्तः, इट्, निष्ठायामिति णिलोपः । कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात् विभक्तिकार्यम्। **भावितवान् इति**— ण्यन्तभादिधातोः कर्तरि क्तवतुः, ककारोकारौ इतौ । इट्, णेर्लोपः, भावितवत् इति, सौ नुम्, अत्वसन्तेति दीर्घः, सुलोपः, तस्य संयोगान्तलोपः । **दृढः स्थूलबलयोरिति**—बलमस्यास्तीति बलः, अर्श आद्यच् । बलवत् इत्यर्थः । स्थूले बलवति चार्थे दृंह्धातोः क्तप्रत्यये इडभावः, तस्य ढत्वं होपश्च निपात्यते । दृह्धातोस्तु नलोपवर्जम् सर्वं निपात्यते । होढ इत्यनेन ढत्वे झषस्तथोरिति धत्वे ष्टुत्वे ढो ढे लोप इति ढलोपेनापि इष्टं सिद्ध्यति किमर्थं निपातनमिति चेत् द्रढिमेत्यादौ ढलोपस्यासिद्धत्वव्यावृत्तये निपातनम् । **हितमिति-धातोः क्तः, दधातेर्हिः । दत्तः इति**—दाधातोः क्तः, दाधाध्वदाप्, दो दद्घोरिति

हिन्दी

१२०१. उदुपध धातु से भाव और आदि कर्म में विहित सेट निष्ठा कित् नहीं होता है, विकल्प से ।

वा. शप् विकरण वाले उदुपध धातुओं से परे ही सेट् निष्ठा कित् नहीं होता है ।

१२०२. सेट् निष्ठा परे णिलोप होता है ।

१२०३. बलवान् और स्थूल अर्थ में दृढ निपातन होता है ।

१२०४. तादि कित् प्रत्यय परेधा-धातु को हि आदेश होता है ।

१२०५. घुसंज्ञक दा धातु को दथ् आदेश होता है, तादि कित् परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२०६. गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतीभ्यश्च-३।४।७२॥ एभ्यः कर्तरि क्तः स्याद्भावकर्मणोश्च ॥ गङ्गां प्राप्तः । ग्लानः । लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः। शेषमधिशयितः ।

१२०७. द्यतिस्यतिमास्थामिति किति-७।४।४०॥ एषामित् स्यात्तादौ किति । वैकुण्ठमधिष्ठितः । शिवमुपासितः । हरिदिनम् उपोषितः । राममनुजातः । गरुडम् आरूढः । विश्वमनुजीर्णः । पक्षे प्राप्ता गङ्गा तेनेत्यादि ।

१२०८. क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः-३।४।७६॥ एभ्योऽधिकरणे क्तः, चाद्यथाप्राप्तम् ।

मुकुन्दस्यासितमिदमिदं यातं रमापतेः ।
भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः ॥

पक्षे आसेरकर्मकत्वात् कर्तरि भावे च । आसितो मुकुन्दः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दा इत्यस्य दथ्, खरि चेति थस्य तः । **गत्यर्थाकर्मकेति**—लः कर्मणि च भावे इति सूत्राद् भावे, कर्मणि इति, आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च इत्यतः क्तः कर्तरि चेति अनुवर्तन्ते । अत आह एभ्यः कर्तरीत्यादि । **गङ्गां प्राप्त इति**—प्रपूर्वाद् आप्लृ व्याप्तौ इत्यस्मात् कर्तरि गत्यर्थाकर्मकेत्यादिना क्तः । सवर्णदीर्घः, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्यम् । प्रपूर्वोऽयं धातुः गतौ अर्थेऽस्ति । **ग्लान इति**—ग्लै हर्षक्षये, अकर्मकोऽयं धातुः । आदेच इत्यात्वम् । क्तः, संयोगादेरात इति तस्य नः । **आश्लिष्ट इति**—आङ्पूर्वात् श्लिषः क्तः, ष्टुत्वेन तस्य टः । लक्ष्मीमालिङ्गितवान् इत्यर्थः । शीङादीनामकर्मकत्वेऽपि अधिपूर्वस्य शीङः अधिशीङ्स्थासां कर्मेति कर्मसंज्ञा । अतः अकर्मकत्वात् पृथगुक्तिः । **अधिशयित इति**— अधिपूर्वात् शीङः क्तः, आर्धधातुक इट्, निष्ठा शीङ्स्विदि इति सेट्निष्ठायाः कित्त्वनिषेधात् सार्वधातुकेति गुणः, अयादेशः । **द्यतिस्यतीति**—दो अवखण्डने षोऽन्त कर्मणि इत्यनयोः द्यतिस्यति इत्याभ्यां निर्देशः, मा इति माङ्मेङोर्ग्रहणम् । स्था इति, एतेषां द्वन्द्वे सति षष्ठी । इत् ति किति इतिच्छेदः । एषामङ्गनामिकारोऽन्तादेशः स्यात् तादौ कितीत्यर्थः । **अधिष्ठित इति**—अधिपूर्वात् स्थाधातोः क्तः, घुमास्था इति सूत्रं प्रबाध्य द्यतिस्यतीति आकारस्येत्वम्, उपसर्गात् सुनोतीत्यादिना स्थाधातोः सस्य षत्वम्, थस्य ष्टुत्वम् । **उपासित इति**—उप+आङ् पूर्वस्य षो इति षस्य सः, आदेच इत्यात्वं, क्तः, आकारस्येत् । **उपोषित इति**—उपपूर्वात् वसः गत्यर्थाकर्मकेति क्तः, वसतिक्षुधोरिट्, यजादित्वात् वस्य सम्प्रसारणम्, पूर्वरूपम्, शासिवसीति षत्वम्, आद्गुणः । उपोषित इत्यस्य उपवासं कृतवानित्यर्थः । **अनुजात इति**—अनुपूर्वाज्जनेः गत्यर्थेति क्तः, जनसनखनां सञ्झलोरिति जनः नस्यात्वम् । **आरूढ इति**—आङ्पूर्वात् रुह्धातोः क्तः, हो ढः, झषस्तथोरिति तस्य धः, ष्टुत्वम्, ढो ढे लोपः इति पूर्वढस्य लोपः, ढ्रलोप

हिन्दी

१२०६. गत्यर्थक अकर्मक श्लिष शीङ् स्था आस् वस् जन रुह और जॄ धातु से परे कर्ता और भावकर्म में भी क्त प्रत्यय होता है ।

१२०७. दो षो मा और स्था धातु को इकारान्त आदेश होता है, तादि कित् परे रहते ।

१२०८. ध्रौव्यार्थक गत्यर्थक तथा प्रत्यवसानार्थक = भोजनार्थक, धातुओं से अधिकरण अर्थ में क्त होता है. तथा यथाप्राप्त क्त भी होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आसितं तेन । गत्यर्थेभ्यः कर्तरि कर्मणि च । रमापतिः इदं यातः । तेनेदं यातम्। भुजेः कर्मणि-अनन्तेनेदं भुक्तम् । वर्तमाने इत्यधि कृत्य-

१२०९. ञीतः क्तः-३।२।१८७॥ क्ष्विण्णः ।

१२१०. मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च-३।२।१८८॥ राज्ञां मतः । इष्टः । बुद्धः । विदितः । अर्चितः । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । "शीलितः रक्षितः क्षान्तः आक्रुष्टः जुष्ट इत्यपि" इत्यादि ।

मध्यमनोरमापूरणी

इति रुहः उकारस्य दीर्घः । **अनुजीर्ण इति**—अनुपूर्वात् जृधातोः क्तः, ॠत इत्, रपरत्वम्, रदाभ्यामिति तस्य नः, हलि चेति दीर्घः, रषाभ्यामिति णत्वम् । **पक्षे इति**—कर्त्रर्थे प्रत्ययाऽभावे इत्यर्थः । **ध्रौव्यगतीत्यादि**—ध्रौव्यं च गतिश्च प्रत्यवसानञ्चेति द्वन्द्वः, तेषामर्थशब्देन बहुव्रीहिः, अर्थशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धः । ध्रौव्यं स्थैर्यम् । ध्रौव्यार्थाः अकर्मकाः, तेभ्यः गत्यर्थेभ्यः च प्रत्यवसानार्थेभ्यः=भोजनार्थेभ्यः अधिकरणे भावकर्मणोश्च क्तो भवतीत्यर्थः। **मुकुन्दस्यासितम् इति**—अस्यते अस्मिन्नित्यर्थे आस्धातोः क्तः, इट् । आसन मित्यर्थः । **यातम् इति**—यायते अस्मिन्निति विग्रहः, क्तः, मार्ग इत्यर्थः । **भुक्तमिति**—भुज्यतेऽस्मिन्निति, क्तः । भोजनस्थलमित्यर्थः । कृष्णं द्रष्टुम् इच्छन्त्यः गोप्यः इत्थमुक्तवत्यः इत्यर्थः । पक्षे अकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि चक्त : । आसितः, आसितमिति अकर्मकस्योदाहरणम्। गत्यर्थेभ्यः पक्षे कर्तरि कर्मणि च क्तो भवति । मूले उदाहरणं द्रष्टव्यम् । **ञीत इति**—वर्तमाने लट् इत्यतः मण्डूकप्लुत्या वर्तमाने इत्यनुवर्तते । ञिः इत् यस्मिन्, तस्मात् धातोः वर्तमाने क्तो भवतीत्यर्थः । **क्ष्विण्ण इति**—ञिक्ष्विदा धातुः, आदिर्ञिटुडवः, उपदेशेऽजनुनासिक इति आकार इत्, क्तः, क्ष्विद् तः, आदितश्चेति इण्निषेधः, रदाभ्यामिति तस्य दस्य च नः, अट्-कुप्वाङिति णत्वं, परस्य ष्टुत्वम् । मतिबुद्धीति-मतिः इह इच्छा, बुद्धेः पृथग्ग्रहणात् । मतिः बुद्धिः पूजा च अर्थः येषामिति विग्रहः । एतदर्थेभ्यो वर्तमाने क्तः स्यादित्यर्थः । **राज्ञां मत इति**—मन्धातोः क्तः, अनुदात्तोपदेश इति नलोपः, क्तस्य च वर्तमाने इति राजन् शब्दात् षष्ठी । **इष्ट इति**—इषः क्तः, तीषसहेति वेट्कत्वात् यस्य विभाषेति निषेधः । ष्टुत्वम् । **बुद्धः इति**—झषस्तथोरिति तस्य धः, धातोर्धस्य जश्त्वम् । **शीलित इत्यादि**—भाष्ये पठितः श्लोकः। शील् समाधौ रक्ष पालने क्षमूष् सहने क्रुश आह्वाने जुषी प्रीति सेवनयोः इत्येषां चकारेण ग्रहणम्, अनेनैव क्तः ।

हिन्दी

१२०९. ञीत् धातु से वर्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है ।

१२१०. मत्यर्थक बुद्ध्यर्थक एवं पूजार्थक धातुओं से वर्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२११. नपुंसके भावे क्तः-३।३।११४।। क्लीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तः स्यात् । जल्पितम् । हसितम् ।

१२१२. सुयजोर्ङ्वनिप्-३।२।१०३।। भूते । सुत्वा । यज्वा ।

१२१३. जीर्यतेरतृन्-३।२।१०४।। जरन् ।। जरन्तौ । वासरूपन्यायेन निष्ठाऽपि । जीर्णः । जीर्णवान् ।

१२१४. छन्दसि लिट्-३।२।१०५।।

१२१५. लिटः कानज्वा-३।२।१०६।।

१२१६. क्वसुश्च-३।२।१०७।। भूतसामान्ये छन्दसि लिट् । तस्य कानच्क्वसू वा स्तः । तङानावात्मनेपदम् । चक्राणः । म्वोश्च । जगन्वान् । कवयस्तु बाहुलकाल्लोकेऽपि प्रयुञ्जते । 'तं तस्थिवान्सं नगरोपकण्ठे' । श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते' इत्यादि ।

मध्यमनोरमापूरणी

कालसामान्ये इति—वर्तमानाद्यधिकारेष्वनन्तर्भावादेवमर्थः । **सुत्वेति**—षुञ् अभिषवे, धात्वादेः सः, सुयजोरिति ङ्वनिप् ङकारपकारेकाराः इतः, सु वन् इति, ह्रस्वस्येति तुक, सौ सर्वनामस्थाने इति दीर्घः, सुलोपनलोपौ । **अतृन्निति**—भूते इत्यनुवर्तते । जॄधातोः भूते अतृन् भवतीत्यर्थः । **जरन् इति**—जॄ धातोः अतृन्, ॠकारनकारौ इतौ । सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, रपरत्वम्, जरत् सु इति जाते उगिदचामिति नुम्, सुलोपतलोपौ । **वासरूपेति**—क्तक्तवत्वोरसरूपत्वादिति अर्थः । **जीर्णः-जीर्णवान् इति**—क्तः, क्तवतुश्च, ॠत इद्धातोः, रपरत्वम्, रदाभ्यामिति नत्वं, हलि चेति दीर्घः, णत्वम्, विभक्तिकार्यम् । **छन्दसीति**—छन्दसि लिट्, लिटः कानज्वा, क्वसुश्चेति त्रीणि सूत्राणि । प्रथमसूत्रे 'भूत' इत्यनुवर्तते । अन्ययोः "भूते छन्दसीति" चानुवर्तते । अतः छन्दसि भूते लिटः कानच् क्वसुश्च भवतः इत्यर्थो भवति । **चक्राणः इति**—कृधातोः छन्दसि लिट्, लिटः कानच्, ककारचकारौ इतौ, धातोर्द्वित्वम्, अभ्यासकार्यमुरदत्वादि, कुहोश्चुः, चकृआन इति, यण्, णत्वं, स्वादिकार्यम् । **जगन्वान् इति**—गमेर्लिट्, द्वित्वादि, म्वोश्चेति धातोर्मस्य नः, जगन्वस् इति, उगित्वान्नुम्, अत्वसन्तस्य इति दीर्घः, संयोगान्तलोपः । **मुनयस्तु इति**—तेन लोकेऽपि क्वचित् कानच्क्वसू भवतः । **यथा तस्थिवान्सम् इति**—स्थाधातोः क्वसुः, द्वित्वादि, शर्पूर्वा खयः, तस्थिवस् अम् इति, नुम्, अत्वसन्तस्येति दीर्घः । **अधिजग्मुषः इति**—अधिपूर्वाद् गम्धातोर्लिट्, लिटः स्थाने क्वसुः, गमः द्वित्वमभ्यासादिकार्यम्, अधिजगम्वस् इति । गमहनेत्युपधालोपः । शसि विभक्तौ भसंज्ञा, वसोः सम्प्रसारणमिति वस्य उः, पूर्वरूपम्, षत्वम्, सस्य रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

१२११. नपुंसकत्वविशिष्ट भाव में क्त होता है, काल सामान्य अर्थ में ।

१२१२. सु और यज् धातु से भूत काल में ङ्वनिप् प्रत्यय होता है ।

१२१३. जॄ धातु से भूत अर्थ में अतृन् प्रत्यय होता है ।

१२१४. छन्द में लिट् होता है भूत में ।

१२१५. छन्द में भूत अर्थ में लिट् के स्थान में कानच् होता है ।

१२१६. छन्द में भूतसामान्य अर्थ में लिट् को क्वसु आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२१७. वस्वेकाजाद्घसाम्-७।२।६७।। कृतद्विर्वचनानामेकाचामादन्तानां घसेश्च वसोरिट् स्यान्नान्येषाम् । आदिवान् । आरिवान् । जक्षिवान् । एषां किम्-बभूवान्।

१२१८. भाषायां सदवसश्रुवः-३।२।१०८।। सदादिभ्यो भूतसामान्ये भाषायां लिड् वा स्यात् तस्य च नित्यं क्वसुः । 'निषेदुषीमासनबन्धधीरः' । अध्यूषुषस्तामभवज्जनस्य । शुश्रुवान् ।

१२१९. उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च-३।२।१०९।। एते निपात्यन्ते । उपादिणो लिड् वा, तस्य क्वसुः । इट् । उपेयिवान् । नात्रोपसर्गस्तन्त्रम् । ईयिवान् । नञोऽश्नातेः क्वसोरिडभावश्च । अनाश्वान् । अनोर्वचेः कर्तरि कानच् । वेदस्यानुवचनं कृतवान्-अनूचानः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वस्वेकाजिति—वसु इति विभक्तिरहितो निर्देशः । वसोः इत्यर्थः करिष्यते । **कृतद्विर्वचनानामिति**—द्वित्वादौ कृतेऽपि यः धातुः एकाच् एव अवशिष्यते तेषामिट् इत्यर्थः । नेड्वशि कृति इति निषेधं बाधित्वा क्रादिनियमात् सर्वत्र प्राप्तस्य इटोऽनेन नियमनं क्रियते। आद्ग्रहणमत्र अनेकाजर्थम् बोध्यम् । **आदिवान्**—अद् भक्षणे, लिटः क्वसुः । द्वित्वाभ्यास-हलादिशेषाभ्यासदीर्घसवर्णदीर्घेषु कृतेषु आद् वस् इति एकाजेव, वस्वेकाजिति इट्, सौ नुम्, अत्वेति दीर्घः, सुलोपः, संयोगान्तलोपः । **आरिवान् इति**— ऋ गतौ, लिटः क्वसुः ऋच्छत्यृतामिति गुणे द्वित्वादौ कृतेऽनेन इट्, शेषं पूर्ववत् । **जक्षिवानिति**—अदः क्वसौ लिट्यन्यतरस्यामिति घस्लादेशः । द्वित्वादौ जघस् वस् इति, गमहनेत्युपधालोपः, घस्य चर्त्वम्, षत्वम्, ततः इट् । **बभूवानिति**—कृतद्विर्वचनेऽनेकाच् अयम् । **भाषायामिति**—लिटः कानज्वे त्यतः लिटः इति, क्वसुश्चेत्यतः क्वसुरिति चानुवर्तते । **सूत्रे पुंस्त्वमेकवचनं चार्षम् । निषेदुषीम् इति**—निपूर्वकसद्धातोः लिट्, तस्यस्थानेऽनेनैव क्वसुः । द्वित्वम्, अत एकहल्-मध्ये इति एत्वाभ्यासलोपौ, सदिरप्रतेरिति षत्वम्, स्त्रियां ङीप्, भत्वात् वसोरिति सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, निषेदुसी इति, प्रातिपदिकत्वात् अम्, पूर्वरूपम्, आदेशेति षत्वम् । पुंल्लिङ्गे तु निषेदिवान् इति रूपम् । **अध्यूषुष इति**—अधिपूर्वकवस्धातोः लिटः स्थाने क्वसुः, अधिवस् वस् इति, कित्त्वात् वचिस्वपीति धातोर्वस्य सम्प्रसारणमुः, पूर्वरूपम् । द्वित्वादौ कृते यणि अध्यूष्वस् इति, शसि भत्वात् वसोः सम्प्रसारणम्, सम्प्रसारणाच्च, आदेशेति षत्वम्, सस्य रुत्वविसर्गौ । शुश्रुवान् इति-श्रुधातोर्लिटः क्वसुः, द्वित्वादि, सौ रूपम् । **उपेयिवान् इति**—उपपूर्वादिणः लिटः क्वसुः, द्वित्वादौ च कृते उपइ वस् इति जाते धातोरनेकाच्त्वात् वस्वेकाजिति इट् न प्राप्तः अनेन स इट् निपात्यते, अभ्यासस्य दीर्घ इणः कितीति दीर्घः, तत्सामर्थ्यान्नात्र सवर्णदीर्घः, इणो यण्, आद्गुणः, सौ उगित्त्वान्नुम्, अत्वेति दीर्घः,

हिन्दी

१२१७. कृतद्वित्व एकाच् धातु आदन्त व घस् से परे वसु को इट् होता है अन्य को नहीं।

१२१८. सद वस और श्रुधातु से भूत सामान्य में लिट् होता है विकल्प से, और उसको नित्य क्वसु आदेश होता है, भाषा में ।

१२१९. उपेयिवान् अनाश्वान् और अनूचान ये सब निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२२०. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे-३।२।२४।। अप्रथमान्तेन सामानाधिकरण्ये लट एतौ वा स्तः ।। शबादि । पचन्तं चैत्रं पश्य ।।

१२२१. आने मुक्-७।२।८२।। अङ्गस्यातः । पचमानं चैत्रं पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विजः।

१२२२. ईदासः-७।२।८३।। आनस्य । आदेः परस्य । आसीनः ।

१२२३. विदेःशतुर्वसुः-७।१।३६।। वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विद्वान् । विदन् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुलोपः, संयोगान्त लोपः । **नात्रोपसर्गस्तन्त्रमिति**—नात्रोपसर्गः विवक्षितः । अतः अन्योपसर्गपूर्वात् निरुपसर्गादपि इड् भवत्येव । **ईयिवान् इति**—इणः 'उपेयिवान्' इति लिट्, क्वसुः, इट् च निपात्यते । सर्वं पूर्ववत् । **अनाश्वान् इति**—नञ्पूर्वात् अश् भोजने इत्यतः उपेयिवान् इति लिटः क्वसुः, द्वित्वादि, अत आदेरिति दीर्घः, सवर्णदीर्घः, न आश् वस् इति, इडभावोऽपि निपात्यते । नञा उपपदसमासः, नलोपो नञः, तस्मान्नुडचि इति नुट्, सौ उगित्त्वान्नुम्, अत्वेति दीर्घः । **अनूचान इति**—अनुपूर्वात् वचः लिटः कर्तरि कानच्, यजादित्वात् सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, द्वित्वादि, सवर्णदीर्घः, अनूचान इति सौ रूपम् । **लटः शतृशानचाविति**—आदेशरहितस्य लटः, प्रयोगाभावात् सामानाधिकरण्यं न सम्भवति, किन्तु शतृशानचोः तद्दृष्ट्वा स्थानिनि अपि सामानाधिकरण्यस्य कल्पना । **पचन्तमिति**—पच्धातोर्लट्, तस्य लटः शतृशानचाविति शतृप्रत्ययः । शकार ऋकारश्च इतौ । शतुः शित्त्वात् तिङ्शित् इति सार्वधातुकसंज्ञा । कर्तरि शप् इति शप्, पच् अ अत् इति, अतो गुणे, उगित्त्वान्नुम् अमि परतः। पाकानुकूलव्यापाराश्रयं चैत्रं पश्येत्यर्थः । **आने मुगिति**—अङ्गस्येत्यधिकारः । अतो येय इत्यतः अत इत्यनुवर्तते, तच्च षष्ठ्यांविपरिणमतेऽङ्गस्येत्यनेन सम्बद्ध्यते च।तदन्तविधिः । अतः अदन्तस्याङ्गस्य मुक् स्यादाने परे इत्यर्थो भवति । **पचमानमिति**-पच् धातोर्लटः शानच्, शचौ इतौ । सार्वधातुकत्वाच्छप् । पच आन इति, आने मुगिति मुक्, अमि रूपम् । **लडिति**—वर्तमाने लट् इत्यतो लडित्यनुवृत्त्यैव सिद्धे सूत्रे पुनर्लड्ग्रहणम् अधिक विधानार्थमस्ति । तेन प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि सन् द्विजः विद्यमानो ब्राह्मण इत्यादौ भवतः शतृशानचौ लटः स्थाने। **सन् इति**—अस्धातोर्लटः शतृप्रत्ययः, शप्, अदादित्वाच्छपो लुक् । अपिच्छतुः ङित्त्वात् श्नसोरिति अलोपः । सौ उगित्वान्नुम्, सन्त् स् इति, सुलोपतलोपौ । अस्ति द्विज इत्यर्थः। **ईदास इति**—आने मुक् इत्यत आने इत्यनुवर्तते । आसः परस्य आनस्य मुक् इत्यर्थः । **आसीन इति**—आस् धातोर्लटः शानच्, शप्, अदादित्वाच्छपो लुक्, आदेः परस्येति सहकारेण ईदास इति आन आकारस्य ईत्वम् । **वेत्तेरिति**—विद् ज्ञाने इत्यादादिकस्य ग्रहणम्, शतुः परस्मैपदित्वात् । **विद्वान् इति**—विद्धातोर्लट्, तस्य शत्रादेशः, शपो लुक्, विदेःशतुरिति

हिन्दी

१२२०. अप्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण्य रहने पर लट् को शतृ और शानच् होते हैं।

१२२१. अदन्त अङ्ग को मुक् होता है, आन परे रहते ।

१२२२. आस् धातु से परे आन को ईत् होता है ।

१२२३. विद् धातु से परे शतृ प्रत्यय को वसु आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२२४. तौ सत्-३।२।१२७।। तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ।

१२२५. लृटः सद्वा-३।३।१४।। करिष्यन्तं करिष्यमाणं वा पश्य ।

१२२६. ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्-३।२।१२९।। अग्नौ जुह्वानः । कवचं बिभ्राणः । शत्रुं निघ्नानः ।

१२२७. आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु-३।२।१३४।। क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ।

१२२८. तृन्-३।२।१३५।। कर्ता कटान् ।

१२२९. स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्-३।२।१५८।। आद्यास्त्रयश्चुरादावदन्ताः । स्पृहयालुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वसुरादेशः, विद्वस् इति, सौ उगिदचामिति नुम्, सान्तेति दीर्घः, सुलोपः, सस्य संयोगान्तलोपः । पक्षे विदन् इति—उगित्त्वान्नुम्, तस्य संयोगान्तलोपः । **तौ सदिति**—लटः 'शतृशानचौ' इति सूत्रोक्तौ शतृशानचौ सत्संज्ञां लभेते । **करिष्यन्तमिति**—कृ-धातोर्लृट्, लृटः सद्वा इति शतृप्रत्ययः, शपं प्रबाध्य स्यतासी लृलुटोरिति स्यः, आर्धधातुकत्वादिट्, सार्वधातुकेति गुणः, रपरत्वं, षत्वम्, करिष्यत् इति, अमि उगित्त्वान्नुम् । **करिष्यमाणम् इति**—कृञ उभयपदित्वात् लृटः स्थाने शानच्, स्यः, इट्, गुणः, आने मुक् । षत्वं, णत्वम्, अमि रूपम् । **ताच्छील्येति**—एतेष्वर्थेषु कर्तरि चानश् प्रत्ययो भवति । अयं चानश् ण्वुल्वत् स्वतन्त्रो न तु लादेशः । लादेशत्वाभावे कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी स्यादिति चेत् उच्यते न लोकाव्यय इत्यत्र तृन् इति प्रत्याहारनिर्देशात् चानशोऽपि तत्र ग्रहणात् न लोकेति द्वितीयैव कवचं बिभ्राण इत्यादौ । **जुह्वान इति**—हुधातोः ताच्छील्येति चानश्, चकारशकारौ इतौ । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः, श्लौ इति द्वित्वमभ्यासे चर्च, कुहोश्चुः, जु हु आन इति, यण् । **बिभ्राण इति**—भृधातोः चानश्, शपः श्लुः, श्लौ, भृञामित्, हलादिशेषः, अभ्यासे चर्च, बिभृआन इति, यण्, णत्वम् । यौवनबलात् कवचं बिभ्राण इत्यर्थः । **निघ्नान इति**—निपूर्वात् हन्धातोः चानश् शपो लुक्, गमहनेत्युपधालोपः, हो हन्तेरिति कुत्वम् । निहन्तुं समर्थ इत्यर्थः । **आक्वेरिति**—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् इति सूत्रं यावत् ये प्रत्ययाः वक्ष्यन्ते ते तच्छीले तद्धर्मे तत्साधुकारिणि वाऽर्थे स्युः इति भावः । **तृन् इति**—तच्छीलादिष्वर्थेषु धातोस्तृन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **तच्छीले तावत्-कर्ता कटान् इति**—कटकरणक्रियाशीलेऽर्थे कृधातोः तृन्, आर्धधातुकत्वात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, रपरत्वम् । सौ ऋदुशनसेति ऋकारस्यानङ्, अप्तृन्निति दीर्घे सुलोपनलोपौ । कट शब्दात् न लोकाव्ययेति द्वितीया षष्ठीं प्रबाध्य भवति । **आलुच् इति**—एभ्यः धातुभ्यः तच्छीलाद्यर्थेषु आलुच् भवतीत्यर्थः । **स्पृहयालुः इति**—स्पृह-धातोर्णिच्, धातोरस्यातो लोप इति लोपः, स्पृहि

हिन्दी

१२२४. शतृ-शानच् को सत् संज्ञा होती है ।

१२२५. लृट् के स्थान में शतृ और शानच् होते हैं, विकल्प से ।

१२२६. ताच्छील्य वयोवाची और शक्ति अर्थ में धातु से कर्ता में चानश् होता है ।

१२२७. क्विप् पर्यन्त वक्ष्यमाण प्रत्यय तच्छीलादि कर्ता में होते हैं ।

१२२८. तच्छीलादि अर्थ में धातु से कर्ता में तृन् प्रत्यय होता है ।

१२२९. तच्छीलादि अर्थ मे स्पृहि आदि धातुओं से कर्ता में आलुच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. शीङो वाच्यः । शयालुः ।

१२३०. अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच्-३।२।१३६।। अलङ्करिष्णुः ।

१२३१. ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः-३।२।१३९।। गिदयं न तु कित् । तेन स्थ ईत्वं न। ग्लास्नुः । गित्त्वान्न गुणः । जिष्णुः । स्थास्नुः । चाद् भुवः । श्र्युकः कितीत्यत्र गकारप्रश्लेषान्नेट् । भूष्णुः ।

१२३२. त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः-३।२।१४०।। त्रस्नुः। गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ।

१२३३. शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्-३।२।१४१।। उकार उच्चारणार्थ इति काशिका। अनुबन्ध इति भाष्यम् । तेन शमिनितरा शमिनीतरेत्यत्र उगितश्चेति ह्रस्वविकल्पः। नचैवं शमी शमिनावित्यादौ नुम्प्रसङ्गः । झल्ग्रहणमपकृष्य झलन्तानामेव तद्विधानात् । नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिनिषेधः । शमी । तमीत्यादि ।

मध्यमनोरमापूरणी

धातोः आलुच्, णिलोपं प्रबाध्य अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु 'इति णेरय्, सोरुत्वविसर्गौ, अल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न गुणः । एवमेव गृहयालुः पतयालुः इति । अत्र नोपधावृद्धिः, अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वात् । दयालुः निद्रालुः तन्द्रालुः श्रद्धालुः इत्यपि क्रमशः बोध्यम् । **शीङो वाच्य इति**—आलुच् इत्यर्थः । **शयालुः इति**—शीङ्धातोरालुच्, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अयादेशः, स्वादिकार्यम् । **अलंकृञेति**—अलंकृञ्, निराकृञ् प्रजन् उत्पच् उत्पच् उन्मद् रुचि अपत्रप वृतु वृधु सहचर इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु इष्णुच् प्रत्ययो भवति। **अलङ्करिष्णुरिति**—अलंपूर्वात् कृञः इष्णुच्, चकार इत् । सार्वधातुकेति गुणः, रपरत्वम् । मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । **ग्लाजिस्थश्चेति**—ग्लै जि स्था इत्येषां द्वन्द्वः, तस्मात् पञ्चमी । एभ्यः तल्छीलादिषु ग्स्नुः भवति । **ईत्वं नेति**—ग्स्नोः गित्त्वात् स्थास्नुः इत्यत्र घुमास्थेति ईत्वं न भवति, ईत्वस्य किति ङिति च विधानात् । **ग्लास्नुरिति**—ग्लैधातोरात्वम्, ग्स्नुः, लशक्वेति गकार इत् । **जिष्णुः इति**—जिधातोः ग्स्नुः, क्ङिति चेत्यत्र गकारस्यापि निर्देशात् गुणनिषेधः। षत्वं, णत्वम् । **भूष्णुरिति**—भूधातोः, ग्लाजिस्थश्चेति चकारनिर्देशात् ग्स्नुः । श्र्युकः कितीति इण्निषेधः, गित्त्वान्न गुणः, षत्वं, णत्वम् । **क्नुरिति**—एभ्यः तच्छीलादिषु कर्तृषु क्नुः स्यात्। **त्रस्नुरिति**—त्रसः क्नुः, ककार इत्, इट् प्राप्तः, नेड्वशीति निषिध्यते । गृध्नुः धृष्णुः क्षिप्नुः इत्यादौ क्नुः, कित्त्वात् पुगन्तेति प्राप्तः गुणो न भवति । धृष्णुरित्यत्र णत्वं रषाभ्यामिति विशेषः। **शमित्यष्टाभ्य इति**—इतिशब्द आद्यर्थकः । दिवादौ शमादयः पठिताः, तेच शम्

हिन्दी

वा शीङ् धातु से भी उक्तार्थ में आलुच् होता है ।

१२३०. अलंकृञ् निराकृञ् प्रजन् उत्पच् उत्पत् उन्मद रुचि अपत्रप वृत् वृध् सह एवं चर् धातु से तच्छीलादि अर्थ में इष्णुच् प्रत्यय होता है ।

१२३१. ग्ला जि एवं स्था धातु में तच्छीलादि कर्ता से ग्स्नु प्रत्यय होता है और चकारात् भू से भी ।

१२३२. त्रस् गृध आदि से तच्छीलादि अर्थ में क्नु प्रत्यय होता है ।

१२३३. शम् इत्यादि आठ धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता में घिनुण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२३४. संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुह - दुष - द्विषद्रुहयुजाक्रीडविविचत्यजरज भजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च-३।२।१४२।। घिनुण् स्यात् । सम्पर्कीत्यादि ।

१२३५. वौ कषलसकत्थस्रम्भः-३।२।१४३।। विकाषी ।

१२३६. अपे च लषः-३।२।१४४।। चाद्वौ । अपलाषी । विलाषी ।

मध्यमनोरमापूरणी

तम् दम् श्रम् भ्रम् कम् भद इति । एतेभ्यः तच्छीलादिषु कर्तृषु घिनुण् भवतीत्यर्थः । घिनुण् इत्यत्र घकारः, णः उकारश्चेतः । **काशिकाकारस्तु उकारमुच्चारणार्थं स्वीकरोति ।** भाष्ये उकारः अनुबन्धः=इत्यसंज्ञकः स्वीकृतः । तेन घिनुणन्तात् शमिन् शब्दात् ऋन्नेभ्य इति ङीप्, शमिनी इत्यस्मात् तरप्, शमिनी तरा इति जाते भाष्यमते उगित्त्वाद् उगितश्चेति ङीपो ह्रस्वः, **शमिनितरा इति**, ह्रस्वाभावेशमिनीतरा इति च भवति इति बोध्यम् । काशिकामते तु उगित्त्वाभावान्न ह्रस्वः, शमिनीतरा इत्येकमेव रूपम् । **नचैवमिति**—भाष्यमते घिनुण उगित्त्वस्वीकारात् शमी शमिनौ इत्यादौ उगिदचामिति नुम् प्राप्नोति, तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते । **झल्ग्रहणमिति**-नपुंसकस्य झलचः इति उत्तरसूत्रात् उगिदचामिति सूत्रे झल्ग्रहणमपकृष्यते, तेन उगितः झलन्तस्य नुम् भवतीत्यर्थस्वीकारात् शमी इन् शमिनौ इत्यादौ न नुम् । **शमीति**-शम् धातोः शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् । अनुबन्धलोपः, शम् इन् इति जाते घिनुणः णित्वादत उपधाया इति वृद्धिः प्राप्ता, नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेरिति वृद्धिनिषेधः । सौ सौ चेति दीर्घे सुलोपनलोपौ । **तमीति**—तम्धातोः घिनुण् । शेषं पूर्ववत्। दमेः दमी श्रमेः श्रमी, भ्रमेः भ्रमी, क्षमेः क्षमी, कमेः कमी, प्रमदेः प्रमादीति बोध्यम् । मदेः मान्तत्वाभावात् नोपधावृद्धिनिषेधः । **संपृचेति**—घिनुणनुवर्तते । संपृच अनुरुध आङ्यम आङ्यस परिसृ संसृज परिदेवि संज्वर परिक्षिप परिरट परिवद परिदह परिमुह इत्येतेभ्यः सोपसर्गेभ्यः, दुष द्विष द्रुह दुह युज् आक्रीड विविच त्यज रज भज अतिचर अपचर आमुष अभ्याहन् इत्येतेभ्यश्च तच्छीलादिषु घिनुण् भवतीत्यर्थः । **सम्पर्कीति**-सम्पूर्वकात् पृची सम्पर्के इत्यस्मात् घिनुण् । अनुबन्धलोपः, लघूपधगुणः, चजोः कुरिति कुत्वम्, सौ रूपम् । पृची सम्पर्के इति रुधादिर्गृह्यते नत्वदादिः, लुग्विकरणत्वात् । **वौ कषेति**—कष हिंसार्थः, लस श्लेषणक्रीडनयोः, कत्थ श्लाघायाम्, स्रम्भु विश्वासे इत्येतेभ्यः वि इत्युपपदे घिनुण् भवतीत्यर्थः । **विकाषीति**—विपूर्वात् कषेः घिनुण्, णित्त्वादुपधाकारस्यात उपधाया इति वृद्धिः, विकाषिन् इति, सौ दीर्घे सुलोपनलोपयोः रूपम् । **अपे चेति**—अपपूर्वात् लषधातोः चाद् विपूर्वाच्च घिनुण् भवतीत्यर्थः । **अपलाषीति**—अपपूर्वात् लष कान्तौ इत्यस्मात् घिनुण्, उपधावृद्धिः ।

हिन्दी

१२३४. संपृच अनुरुध आदि धातुओं से तच्छीलादि अर्थ में घिनुण् प्रत्यय होता है ।

१२३५. वि उपसर्गपूर्वक कष लस कत्थ और स्रम्भधातुओं से तच्छीलादि अर्थ में घिनुण् होता है ।

१२३६. अप और विपूर्वक लष से घिनुण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२३७. चलनशब्दार्थादकर्मकाद् युच्-३।२।१४८।। चलनार्थाच्छब्दार्थाच्च युच् स्यात् । चलनः । चोपनः । कम्पनः । शब्दनः । रवणः । अकर्मकात् किम् ? पठिता विद्याम् ।

१२३८. अनुदात्तेतश्च हलादेः-३।२।१४९।। अकर्मकाद् युच् । वर्तनः । वर्धनः। अनुदात्तेतः किम् ? भविता । हलादेः किम् ? एधिता । अकर्मकात् किम् ? वसिता वस्त्रम् ।

१२३९. निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरट – परिवादव्याभाषासूयो वुञ्-३।२।१४६।। एभ्यो वुञ् । निन्दकः । हिंसकः ।

१२४०. देविक्रुशोश्चोपसर्गे-३।२।१४७।। आदेवकः । आक्रोशकः । उपसर्गे किम्। देवयिता । क्रोष्टा ।

१२४१. लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगम– शॄभ्य उकञ्-३।२।१५४।। लाषुकः । पातुकः।

मध्यमनोरमापूरणी

चलनेति—अत्रापि तच्छीलादिषु कर्तृषु इत्यनुवर्तते । **कम्पन इति**— कपि चलने, इदितो नुम्धातोरिति नुम्, कम्पेः युच्, युवोरनाकौ इति अनादेशः । चुप मन्दायां गतौ इत्यतः युचि अनादेशे गुणे चोपनः इति । शब्दार्थकेभ्यः **रवण इति**—रु शब्दे, युच्, अनादेशः, सार्वधातुकेति गुणः, अवादेशः,, अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **पठिता विद्यामिति**—पठ्धातोः सकर्मकत्वात् न युच्, अपि तु तृन् भवति । **अनुदात्तेतश्चेति**— चाद् अकर्मकादि गृह्यते । तच्छीलादिष्वर्थेषु कर्तृषु हलादेः अकर्मकाद् अनुदात्तेतः धातोः युच् स्यादित्यर्थः । **वर्तन इति**—वृतु धातोः युच्, युवोरनाकौ । पुगन्तेति गुणः, रपरत्वम् । वृधु धातोः **वर्धनः** इति । **भविता इति**— अनुदात्तत्वाभावात् तृनेव । **वसितेति**—वस्धातोः सकर्मकत्वादत्र तृन्, न युच् । **निन्देति**—पञ्चम्यर्थे प्रथमा । एभ्यो धातुभ्यः तच्छीलादिषु कर्तृषु वुञ् प्रत्ययो भवति । **निन्दकः इति**—णिदि कुत्सायां धातुः, णो नः, इदित्त्वान्नुम् । वुञ्, ञकार इत् । युवोरनाकौ इति वोरकादेशः । **हिंसक इति**—हिसि हिंसायाम्, इदित्, इदितो नुम्धातोः, निन्दहिंसेति वुञ्। अकादेशः । **देवि इति**-दिवु क्रीडा इत्यस्य चुरादिण्यन्तस्य देवि इति ग्रहणम् । उपसर्गे उपपदे देविक्रुशधातुभ्यां तच्छीलादिषु वुञ् भवतीत्यर्थः । **आदेवकः इति**—आङ्पूर्वात् ण्यन्तात् देविधातोः देविक्रुशोरिति वुञ् । युवोरनाकौ, णेरनिटीति णिलोपः । आङ्पूर्वात् क्रुश्धातोः वुञ्, अकादेशः, पुगन्तेति गुणः । **देवयिता इति**—सूत्रे उपसर्गसत्त्वात् नात्र वुञ् । तृन् इति तृन्, इट्, णेर्गुणः, अयादेशः ।

हिन्दी

१२३७. चलनार्थक एवं शब्दार्थक अकर्मकधातुओं से तच्छीलादि कर्ता में युच् प्रत्यय होता है ।

१२३८. हलादि अनुदात्तेत् अकर्मक धातु से तच्छीलादि अर्थ में युच् प्रत्यय होता है ।

१२३९. निन्द हिंस आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्ता में वुञ् प्रत्यय होता है ।

१२४०. उपसर्ग उपपद होने पर देवि और क्रुश्धातु से वुञ् प्रत्यय होता है ।

१२४१. लष पत आदि धातुओं से उकञ् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२४२. जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्-३।२।१५५।। जल्पाकः ।

१२४३. सनाऽऽशंसभिक्ष उः-३।२।१६८।। चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ।

१२४४. स्थेशभासपिसकसो वरच्-३।२।१७५।। स्थावरः । ईश्वरः । भास्वर इत्यादि ।

१२४५. यश्च यङः-३।२।१७६।। यातेर्यङन्ताद् वरच् । अतो लोपः । तस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावे प्राप्ते-

१२४६. न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वार दीर्घजश्चर्विधिषु-१।१।५८।। पदस्य चरमावयवे द्विर्वचनादौ च कर्तव्ये परनिमित्ताऽजादेशो न स्थानिवत् । इति यलोपविधिं प्रति स्थानिवत्त्वनिषेधाल्लोपो व्योर्वलीति यलोपः । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वमाश्रित्याऽऽलोपे प्राप्ते-

मध्यमनोरमापूरणी

लषपत इति—एभ्यः तच्छीलादिष्वर्थेषु उकञ् भवति । **लाषुक इति**—लष्धातोरुकञ्, ञित्वादत उपधाया इति वृद्धिः । पतेः उकञ्, पातुकः इति । पदेः पादुकः । स्थाधातोरुकञ्, युक्, स्थायुकः इति । भूधातोर्भावुकः, वृषेः वर्षुकः । **हनः घातुकः इति**—उपधावृद्धिः, हो हन्तेरिति कुत्वम्, हनस्त इति तः । कमेः कामुकः । गमेः गामुकः । शृधातोः शारुक इति । **जल्पेति**-एभ्यः तच्छीलादिषु षाकन् स्यात् । **जल्पाक इति**—जल्पेः षाकन्, षः प्रत्ययस्य, हलन्त्यमिति षनौ इतौ । भिक्षाकः, कुट्टाकः, लुण्टाकः, वराकः इति क्रमशः बोध्यम् । स्त्रियां तु षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् भवति-**जल्पाकीत्यादि** । **सनाशंसेति**—सन् इति प्रत्ययग्रहणं तस्मात् तदन्तविधिः । षणु दाने षण संभक्तौ इत्यनयोस्तु न ग्रहणम्, गर्गादिषु विजिगीषु-शब्दपाठात् । सन्नन्ताद् आशंसेः भिक्षेश्च तच्छीलादिष्वर्थेषु उः स्यादित्यर्थः । **चिकीर्षुरिति**—सन्नन्ताद् चिकीर्षधातोः, उः, अतो लोपः । **वरच् इति**—ष्ठा गतिनिवृत्तौ ईश ऐश्वर्ये भासृ दीप्तौ पिसृ पेसृ गतौ कस गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वरच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । पिसृ पेसृ इति धातुभ्यां वरचि पेस्वर इति भवति । कसः कस्वर इति । **यश्चेति**—या प्रापणे इत्यस्य पञ्चम्यर्थे यः इति षष्ठ्यां रूपम् । यङ इति प्रत्ययात् तदन्तग्रहणम् । यङन्ताद् याधातोर्वरच् भवति तच्छीलादि कर्तृषु इत्यर्थः । **न स्थानिवदिति-** अचः परस्मिन्निति प्राप्तः स्थाानिवद्भावः एतेषु विधिषु निषिद्ध्यते । पदस्य चरमावयवे न स्थानिवत्-इत्यस्य कौ स्तः कानि सन्तीत्याद्युदाहरणम् । द्विर्वचनं प्रति न स्थानिवत् इत्यस्य दध्यत्र मध्वत्रेत्युदाहरणम् । स्थानिवद्भावे सति अत्र अनचि चेति द्वित्वं न स्यात्, तन्निषिध्यते ।

हिन्दी

१२४२. जल्प भिक्ष आदि धातुओं से षाकन् प्रत्यय होता है ।

१२४३. सन्नन्त आङ्पूर्वक शंस् और भिक्ष धातु से उ प्रत्यय होता है ।

१२४४. तच्छीलादि कर्ता अर्थ में स्था ईश आदि धातुओं से वरच् प्रत्यय होता है ।

१२४५. यङन्त या धातु से तच्छीलादि अर्थ में वरच् होता है ।

१२४६. पदान्त विधि द्विर्वचन वरेयलोप स्वर सवर्ण अनुस्वार दीर्घ जश् और चर्त्वविधि के प्रति परनिमित्त अजादेश का स्थानिवद्भाव नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. वरे लुप्तं न स्थानिवत् । यायावरः ।
१२४७. भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिजपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्-३।२।१७७।। विभ्राट् । भाः । धूः । विद्युत् । ऊर्क् । पूः । दृशिग्रहणस्यापकर्षणाज्जवतेर्दीर्घः । जूः ग्रावस्तुत् ।
वा. क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च । वक्तीति वाक् । पृच्छतीति प्राट्। आयतं स्तौति इति आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जुरुक्तः। श्रयति हरिं श्रीः ।
वा. ध्यायतेः सम्प्रसारणं च ।। धीः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वरेयलोप इत्यस्योदाहरणं तु-यायावर इति—यङन्ताद् यायायधातोः यश्च यङ इति वरच्, आर्धधातुकसंज्ञा, अतो लोपः इति यङोऽकारलोपः, अत्र अचः परस्मिन्निति अल्लोपस्य स्थानिवद्भावे सति वरचि परे यलोपो न स्यात्, अतः न पदान्तेति स्थानिवद्भावो निषिद्ध्यते। लोपो व्योर्वलीति यलोपे, पुनः अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वमादाय आतो लोप इति आलोपे प्राप्ते वरे लुप्तमिति निषेधो भवति । स्वादिकार्यम् । **भ्राजभासेति**—भ्राज्‌भास् धुर्वि द्युत ऊर्जि पॄ जु ग्रावस्तु इत्येतेभ्यः तच्छीलादिषु कर्तृषु क्विप् स्यादित्यर्थः । **विभ्राडिति**—विपूर्वात् भ्राजः क्विप्, सर्वापहारलोपः । व्रश्चेति षत्वं जश्त्वचर्त्वे । **भाः इति**—भासः क्विप्, सस्य रुत्वविसर्गौ । **धूरिति**—धुर्विधातोःक्विप्, राल्लोप इति वलोपः, धुर् इति जाते सौ सोर्लोपे र्वोरुपधाया इति दीर्घः, रेफस्य विसर्गः । विशेषेण द्योतते तच्छीला इति विद्युत् । **ऊर्क् इति**-क्विप्, जस्य चोः कुरिति गः,चर्त्वम् । **पूरिति**—पॄधातोः क्विप्, उदोष्ठ्येति उत्वे रपरत्वम्। सोर्लोपे पुर् इत्यस्य र्वोरुपधाया इति दीर्घः, विसर्गो रेफस्य । **दृशिग्रहणस्येति**—अन्येभ्योऽपि इति सूत्रे दृशिग्रहणं दीर्घादिकार्यान्तिरस्यापि संग्रहार्थमिति व्याख्यातं तस्यात्रापकर्षात् जुधातोः क्विप्, दीर्घश्च निपात्यते, तेन जूरिति रूपम् । **ग्रावस्तुत्**—ग्रावपूर्वात् स्तुधातोः क्विप्, लोपः, प्रत्ययलक्षणात् तुक् । ग्रावशब्दस्य स्तुधातुना सह समासः सूत्रे एव निपात्यते । **क्विब्वचीति**-एतेभ्यः क्विप्, दीर्घः यथाप्राप्तं सम्प्रसारणञ्च निषिध्यते । **वाक् इति**—वच् धातोः क्विब्वचि इति क्विप्, दीर्घः, वचिस्वपीति प्राप्तस्य सम्प्रसारणस्याभावश्च क्रियते । चोः कुरिति कुत्वम्। **प्राट् इति**—प्रच्छेः क्विप्; दीर्घः, ग्रहिज्येति प्राप्तं सम्प्रसारणञ्चानेन वचनेनैव न । व्रश्चेति षत्वे जश्त्वं चर्त्वञ्च । **आयतस्तूः, कटप्रूः** इत्यादौ क्विप् दीर्घश्च भवति । **श्रीरिति**—श्रिधातोः क्विपि दीर्घश्च । **ध्यायतेरिति**—ध्यैधातोः क्विप् सम्प्रसारणञ्च भवतः इत्यर्थः । **धीरिति**—ध्यैधातोरात्वे सति ध्यायतेरिति क्विप्, सम्प्रसारणं, पूर्वरूपम्, हलः इति दीर्घः, सोरुत्वविसर्गौ।

हिन्दी

वा. वरच् प्रत्यय परे हुए लोप का स्थानिवद्भाव नहीं होता है ।
१२४७. तच्छीलादि कर्ता में भ्राज भास आदि से क्विप् प्रत्यय होता है ।
वा. वचि प्रच्छि आदि धातुओं से क्विप् होता है, दीर्घ होता है और यथा प्राप्त सम्प्रसारणाभाव भी होता है ।
वा. ध्यै धातु से क्विप् और सम्प्रसारण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२४८. दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे-३।२।१८२॥ दाबादेः ष्ट्रन् करणेऽर्थे । दान्त्यनेन दात्रम् । नेत्रम् ।

१२४९. तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च-७।२।९॥ एषां दशानां कृत्प्रत्ययानामिण्न । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्त्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्त्रम् । दंष्ट्रा । नद्ध्री ।

१२५०. हलसूकरयोः पुवः-३।२।१८३॥ पूङ्पूञोः करणे ष्ट्रन् । तच्चेत् करणं हलसूकरयोरवयवः । हलस्य सूकरस्य वा पोत्रं मुखमित्यर्थः ।

१२५१. अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः-३।२।१८४॥ अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

दाम्नीति—दाप्लवने णीञ् प्रापणे शसु हिंसायां यु मिश्रणे इत्यादिधातुभ्यः करणे कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **दात्रम् इति**—दाधातोः ष्ट्रन्, षकारः षः प्रत्ययस्येतीत्, निमित्तापाये टकारोऽपि निवृत्तः, नकारः हलन्त्यमितीत्, दात्र इति जाते सोरम्, अमि पूर्वः । **नेत्रम् इति**-णीधातुः, णो नः, ष्ट्रन्, सार्वधातुकेति गुणः । **तितुत्रेति**—एतेषां प्रत्ययानामिट् न भवति। **शस्त्रमिति**—शस् धातोः ष्ट्रन्ः, आर्धधातुकस्येडिति प्राप्तः इट् तितुत्रेति निषिध्यते । **योत्रम् इति**—ष्ट्रन्, गुणः । **योक्त्रम् इति**—युजिर् योगे, ष्ट्रन्, पुगन्तेति गुणः, कुत्वम् । **स्तोत्रम् इति**—ष्टुञ् स्तुतौ, ष्ट्रन्, गुणः । तुदः तोत्त्रम् । षिञ् बन्धने, धात्वादेरिति सः, ष्ट्रन्, गुणः, **सेत्रमिति** । षिचिर् इत्यतः ष्ट्रन्, गुणः, कुत्वम्, **सेक्त्रमिति** । **मेढ्रमिति**—मिह सेचने, ष्ट्रन्, गुणः, हो ढः, झषस्तथोरिति धः, ष्टुत्वम्, ढो ढे लोपः । **दंष्ट्रा इति**—दंश् धातोः ष्ट्रन्, व्रश्चेति शस्य षः, ष्टुत्वं, टाप् । **नद्ध्री इति**—नह्धातोः दाम्नीति ष्ट्रन्, षनावितौ । नहो धः इति हस्य धः, झषस्तथोरिति त्रघटकतकारस्य धः, पूर्वधस्य जश्त्वेन दः, षित्वात् षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष्, भत्वात् यस्येति चेत्यकारलोपः । **हलसूकरयोरिति**—पूधातोः पुवः इति पञ्चम्येकवचनम् । तच्च पूञ्पूङोस्सामान्येन ग्राहकम्। हल–सूकरयोरवयव इत्यनेन अभिधेयत्वमुपपदत्वञ्च निरस्तम् । **पोत्रमिति**—पूञः पूङो वा ष्ट्रन् । आर्धधातुकस्येडिति इट् प्राप्तः, तितुत्रतथेति निषिध्यते । सार्वधातुकेति गुणः । **अर्तीति**-ऋ गतौ, लूञ्, धू विधूनने, षू प्रेरणे खनु अवदारणे षह्मर्षणे चर इत्येतेभ्यो धातुभ्यः करणे इत्र प्रत्ययो भवति इत्यर्थः । **अरित्रम् इति**—ऋधातोः इत्रः, सार्वधातुकेति गुणः, रपरत्वम् । सोरम् । **लवित्रमिति**—इत्रः, गुणोऽवादेशः । **सवित्रमिमि**—षू धातुः, धात्वादेरिति षः, गुणः, अव् । सहित्रमत्रापि धात्वादेरिति षः ।

हिन्दी

१२४८. दाप् नी शस् इत्यादि धातुओं से करण अर्थ में ष्ट्रन् होता है ।

१२४९. ति तु त्र त थ आदि प्रत्ययों को इट् नहीं होता है ।

१२५०. पूङ् और पूञ् धातु से करण में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है, यदि करण हल और सूकर का अवयव हो ।

१२५१. ऋ लू धू आदि धातुओं से करण अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२५२. पुवः संज्ञायाम्-३।२।१८५॥ पवित्रम् । इति पूर्वकृदन्तप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमापूरणी

पुव इति—पूङ्पूञोः इत्र प्रत्ययो भवति करणे कारके, संज्ञा चेत् गम्यते समुदायेन इत्यर्थः। **पवित्रमिति**—पूञ् धातोः इत्रः, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अव्, सोरम्, अमिपूर्वः ।

इति मध्यमनोरमापूरण्यां पूर्वकृदन्तप्रकरणं समाप्तम् ।

हिन्दी

१२५२. पूङ् और पूञ् धातु से इत्र प्रत्यय होता है, समुदाय से यदि संज्ञा अर्थ प्रतीत हो रहा हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथोणादयः

१. कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥ करोतीति कारुः । वायुः । पायुर्गुदम् । जायुरौषधम् । मायुः पित्तम् । स्वादुः । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । अश्नुते आशु = शीघ्रम् ।

२. हरिमितयोर्द्रुवः ॥ द्रु गतौ इत्यस्मात् हरिमितयोरुपपदयोः कुः स च डित् । हरिभिर्द्रूयते हरिद्रुर्वृक्षः । मितं द्रवतीति मितद्रुः समुद्रः । ॥३॥ शते च ॥ शतधा द्रवतीति शतद्रुर्नदीभेदः । ॥४॥ अन्दूदृम्भूजम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः ॥ एते कू-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

५. शमेर्ढः ॥ बाहुलकात् इत्संज्ञा, ढस्य एयादेश इट् च न भवति । शण्ढः स्यात् पुंसि गोपतौ ।

६. 'कमेरठः ॥ कमठः कच्छपे पुंसि भाण्डभेदे नपुंसकम्,' इति मेदिनी ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृवापीति—इत आरभ्य उक्तानि सूत्राणि उणादिसूत्राणि उच्यन्ते । नह्येतानि पाणिनिकृतानि, अपि तु शाकटायनमुनिप्रणीतानि सन्ति । पाणिनिमते उणादिप्रत्ययान्ताः शब्दाः अव्युत्पन्नाः मन्यन्ते । कृ वा पा जि मिञ् स्वद् साध् अशू इत्येतेभ्यः धातुभ्यः कर्तरि अर्थे उण् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **कारुरिति**—कृधातोरुण्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः । वा गतिगन्धनयोरित्यतः उण्, आतो युगिति युक् । **पायुरिति**—पाधातोरुण्, युक् च । **जायुरिति**—जिधातोरुण् वृद्धिः, आय्। जयति रोगान् इति जायुः औषधम् । **मायुरिति**—मिधातोरुण्, मीनाति मिनोतीत्यात्वम्, आतो युगिति युक् । **स्वादुरिति**—स्वद्धातोरुण्, उपधावृद्धिः । **आशु इति**—अश्धातोः उण्, अत उपधायाः । विलम्बाभावमात्रपरत्वे नपुंसकमेतत् । **हरिद्रुरिति**— हरिभिस् उपपदात् द्रुधातोः हरिमितयोरिति कुः, डिच्च, ककार इत् । डित्त्वात् धातोरुकारस्य लोपः । एवमेव मितद्रुरिति । **शतद्रुरिति**—शतोपपदाद् द्रुधातोः कुः, स च डित् भवति, डित्त्वाट्टेर्लोपः । **अन्दूदृम्भू इति**—अदि धातोः इदितो नुमिति नुम् कू प्रत्ययश्च, दृभी धातोः निपातनात् नुम् कू प्रत्ययश्च, जन्धातोः कू प्रत्ययः, तत्सन्नियोगेन च जनेर्बुगागमः । नस्यानुस्वारपरसवर्णौ। **कफेलूरिति**—कफं लातीत्यर्थः, कू-प्रत्ययः कफस्य एदन्तत्वं च निपात्यते । आलोपः । **कर्कन्धूरिति**—कर्कं दधातीत्यर्थे कूप्रत्ययः धाधातोः भवति, निपातनान्नुम् च । आलोपः । **दिधिषूरिति**—दिधिं धैर्यं स्यति = त्यजतीत्यर्थे षोऽन्तकर्मणीति कृतात्वात् साधातोः कूप्रत्ययः, आलोपः, षत्वम् । **शमेर्ढ इति**—बाहुलकात् ढ प्रत्ययस्य ढस्य चुटू इतीत्संज्ञा, आयनेयीति एयादेशः, वलाद्यार्धधातुकत्वादिट् च न भवति ।

हिन्दी

१. कृ वा पा जि मि स्वद् साध् और अश् धातु से उण् प्रत्यय होता है ।

२. हरि और मित उपपद होने पर द्रुधातु से कु प्रत्यय होता है और वह डित् होता है ।

३. शतोपपद पूर्वक द्रु धातु से कु प्रत्यय होता है और वह डित् होता है ।

४. अन्दू आदि कू प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

५. शम् धातु से ढ प्रत्यय होता है, तथा बाहुलकात् ढ की इत्संज्ञा एय आदेश और इट् नहीं होता है ।

६. कम् धातु से अठ प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७. रमेर्वृद्धिः ॥ रामठं = हिङ्गु ।

८. शमे खः ॥ शङ्खः ।

९. कणेष्ठः ॥ कण्ठः ।

१०. ञमन्ताड्डः ॥ ञमिति प्रत्याहारः । "दण्डोऽस्त्री लगुडेऽपि स्यात्" इत्यमरः। "रण्डा मूषिकपर्ण्यां च विधवायाञ्च योषिति" इति मेदिनी । "खण्डोऽस्त्री शकले वेक्षुविकारमणिभेदयोः" इति मेदिनी । मन ज्ञाने । "मण्डः पञ्चाङ्गुले शंकुभेदे क्लीबं तु वस्तुनि" । इति मेदिनी ।

११. पतिचण्डिभ्यामालञ् ॥ "पातालं नागलोके स्याद्विवरे वडवानले" इति मेदिनी । चण्डालो मातङ्गः । प्रज्ञादित्वादणि चाण्डालोपीत्युज्ज्वलदत्तः, तन्न । "कुलालवरुडकर्मारनिषादचण्डालमित्राऽमित्रेभ्यश्छन्दसि" इति चण्डालशब्दात् स्वार्थे णं विदधता वार्तिकेन तद्भाष्येण च सह विरोधात् ।

१२. गन् गम्यद्योः॥गङ्गा । अद्गः पुरोडाशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भवति । **शण्ढः इति**—शम् धातोर्ढः, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । शण्ढः नपुसक इत्युच्यते । **कमठ इति**—कमु धातोः कमेरठ इति अठ-प्रत्ययः । **रमेर्वृद्धिरिति**—रमुधातोः अठ-प्रत्ययः उपधावृद्धिश्च भवति । **रामठमिति**—अठप्रत्यय उपधावृद्धिश्च । **शमे खः इति**—शम् उपशमे इत्यस्मात् खप्रत्ययः, बाहुलकात् आयनेयीति ईनादेशाभावश्च भवतीत्यर्थः । **शङ्ख इति**—शम्धातोः खः, ईनादेशाभावश्च, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । "शङ्खो निधौ ललाटास्थ्नि" इत्यमरकोशः । **कणेष्ठ इति**—कण निमीलने धातोः ठप्रत्ययो भवतीत्यर्थः, बाहुलकात् इकादेशाभावश्च । **कण्ठ इति**—कण्-धातोः ठप्रत्ययः, इकादेशाभावश्च । **ञमिति**—ञमङणनमिति प्रत्याहारः, ञमन्ताद् धातोः डःस्यादित्यर्थः । **दण्ड इति**—दमु उपशमे इत्यस्मात् ड-प्रत्ययः, बाहुलकात् न डस्येत्संज्ञा । मस्याऽनुस्वारपरसवर्णौ । स्त्रीत्वाट्टाप्, दीर्घः । **खण्ड इति**—खनु अवदारणे इत्यस्मात् डः, नस्याऽनुस्वारपरसवर्णौ । **मण्ड इति**—मनु अवबोधने इत्यस्माद् डः, । **पतिचण्डिभ्यामिति**—पत्धातोः चडि कोपे इत्यस्माच्च धातोः आलञ् प्रत्ययो भवति इत्यर्थः । **पातालम् इति**—पत्धातोः आलञ्, ञित् । ञित्वादुपधावृद्धिः, सोरम्, पूर्वरुपम् । **चण्डाल इति**—चडि कोपे, इदितो नुम्धातोः । चण्ड इत्यस्मात् आलञ् । **गम्यद्योरिति**—गम् अद्धातुभ्यां गन् प्रत्ययो भवति इत्यर्थः । **गङ्गा इति**-गच्छतीति गङ्गा, गम्लृ गतौ इत्यस्मात् गन्, नकार इत् । मस्याऽनुस्वारपरसवर्णौ, स्त्रीत्वाट्टाप्। **अद्ग इति**—अद्धातोः गन् ।

हिन्दी

७. रम् धातु से अठ प्रत्यय एवं उपधावृद्धि होती है ।

८. शम् धातु से ख प्रत्यय होता है तथा ख को बाहुलकात् ईन आदेश का अभाव होता है ।

९. कण् धातु से ठ प्रत्यय होता है व बाहुलकात् ठ को इक नहीं होता है ।

१०. ञमन्त धातुओं से ड प्रत्यय होता है ।

११. पत् और चण्ड् धातुओं से आलञ् प्रत्यय होता है ।

१२. गम् और अद् धातुओं से गन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३. भृञः किन्नुट् च ॥ भृञो गन् कित् स्यात्तस्य नुट् च । "भृङ्गाः षिड्गालिधूम्याटाः" इति विश्वः ।
१४. शृणातेर्ह्रस्वश्च ॥ शृङ्गम् ।
१५. अर्ति स्तु सु हु सृ धृ क्षिक्षुभा यावा पदि यक्षिनीभ्यो मन् ॥ एभ्यश्चतुर्दशभ्यो मन् । अर्मश्चक्षूरोगः । स्तोमः । सोमः । होमः । सर्मो गमनम् । धर्मः । क्षेमं कुशलम् क्षौमम् । भामः आदित्य । यामः । वामः शोभनदुष्टयोः । पद्मम् । यक्ष्मो रोगराजः । नेमः ।
१६. अवतेष्टिलोपश्च । मन्प्रत्ययस्यायं टिलोपो न तु प्रकृतेः । अन्यथा डिदित्येव ब्रूयात् ।
१७. ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ॥ एषामुपधावकारयोरूठ् क्वौ झलादावनुनासिकादौ च प्रत्यये । अत्र क्ङितीति नानुवर्तते । अवतेस्तुनि कृते ओतुः इति दर्शनात् । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । अवतीति ओम् ।
१८. ग्रसेरा च ॥ ग्रामः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भृञः इति—भृञ्धातोः गन्प्रत्ययो भवति स च कित्, नुडागमश्च भवतीत्यर्थः । **भृङ्ग इति**-भृधातोः गन्-प्रत्ययः नुडागमः, कित्वञ्च भवति, कित्त्वाद् गुणाभावः, नस्यानुस्वारपरसवर्णौ। **ह्रस्वश्चेति**—शॄधातोः गन्-प्रत्ययो नुडागमः धातोः ह्रस्वत्वं भवति, प्रत्ययस्य कित्वञ्चेत्यर्थः। **शृङ्गम्**—शॄधातोः गन्, नुडागमः, धातो ह्रस्वत्वं, प्रत्ययस्य कित्वञ्च भवति । नस्यानुस्वारपरसवर्णौ । **अर्मः**—ऋ गतौ, अस्मात् मन्प्रत्ययः सार्वधातुकेति गुणः । **सोमः इति**—षुञ् अभिषवे इति धातोः मन् । **धर्मः इति**—धृधातोर्मन्, धातोर्गुणः । **टिलोपश्चेति**—अव्धातोर्मन्प्रत्ययः, प्रत्ययस्य टिलोपश्च भवति । अनेन प्रकृतेः टिलोपो न विधीयते, अन्यथा डिदित्येन ब्रूयात्, तेन टेरिति टिलोपः स्यादेव । **ओमिति**—अवतीत्यर्थे अव्-धातोरवते ष्टिलोपश्चेति मन्, मनः टेर्लोपः, ज्वरत्वरेति धातोर्वस्य ऊठ, अ ऊ म् इति जाते आद्गुणः, प्रातिपदिकत्वात् सुः, स्वरादिनिपातमव्ययमिति अव्ययसंज्ञा, अव्ययादाप्सुप इति सुपो लुक् । **ग्रसेरा चेति**— ग्रसुं धातोर्मन् प्रत्ययः धातोः सस्य आकारादेशश्चेत्यर्थः । **ग्राम इति**—ग्रसेः मन्, आकारोऽन्तादेशः, दीर्घः । **अविसिवीति**—एभ्यो मन्, स च किद्भवतीत्यर्थः । **ऊममिति**—अवेर्मन्, कित्त्वात् ज्वरत्वेरति ऊठ् । **स्यूम इति**—सिवे च्छ्वोः शूड् इति वस्य ऊठ् । यण् । **धर्म इति**—घृधातोः मन्, निपातनाद्गुणश्च भवति ।

हिन्दी

१३. भृञ् धातु से गन् प्रत्यय होता है और वह कित् होता है, तथा धातु को नुट् भी होता है ।
१४. शॄ धातु से गन् प्रत्यय होता है और धातु को ह्रस्व होता है, व नुट् आगम होता है ।
१५. ऋस्तु आदि धातुओं से मन् प्रत्यय होता है ।
१६. अव्धातु से मन् होता है तथा मन् की टि का लोप होता है ।
१७. ज्वरादि धातुओं के उपधा और व् को "ऊठ्" होता है क्विप् तथा झलादि अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहने पर ।
१८. ग्रस् धातु से मन् प्रत्यय होता है तथा ग्रस् के स् को आकार होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९. अविसिविशुषिभ्यः कित् ॥ एभ्यो मन् । ऊमं नगरम् । स्यूमो रश्मिः । सिमः सर्वः । 'शुष्ममग्निसमीरयोः ॥

२०. घर्मः ॥ घृधातोर्निपातोऽयम् ।

२१. ग्रीष्मः ॥ ग्रसतेर्निपातोऽयम् ।

२२. अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन् ॥ अश्वः । प्रुष्वः स्याद्दृतुसूर्ययोः । लट्वा पक्षिभेदः फलं च । कण्वं पापम् । खट्वा । विश्वा ।

२३. कनिन्युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः ॥ यौति इति युवा । वृषा इन्द्रः । तक्षा । राजा । धन्वा मरुः । धन्व शरासनम् । द्युवा सूर्यः । प्रतिदीव्यत्यस्मिन् प्रतिदिवा = दिवसः ।

२४. उषिकुषिगर्तिभ्यस्थन् ॥ ओष्ठः । कोष्ठः । गाथा । अर्थः ।

२५. पातॄतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् ॥ पीथो रविर्घृतं पीथम् । तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्याय मन्त्रिषु । 'अवतारर्षिजुष्टाम्भः स्त्री रजःसु च विश्रुतम्' इति विश्वः । तुत्थोऽग्निः । उक्थं सामभेदः । रिक्थम् । बाहुलकादृचेरपि । ऋक्थम्। रिक्थमृक्थं धनं वसु । सिक्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ग्रीष्म इति—ग्रस् धातोर्मन्, उपधाया ईत्वं च निपात्यते, षत्वे कृते ग्रीष्म इति । अश्वः घोटकः। अशू व्याप्तौ धातोः क्वन्, वकारः शिष्यते । **युवेति**—यु मिश्रणे इत्यस्मात् कनिन्, अनुबन्ध लोपः, यु अन् इति, अचि श्नुधातुभ्रुवामित्युवङि युवन् इति, सौ युवा इति।**वृषा इति**—वर्षतीतिअर्थे कनिन्, वृषन् इत्यस्य वृषेति । **राजा इति**—राजते इत्यर्थे कनिन्, राजन् इत्यस्मात् राजेति । **द्युवा इति**—द्युधातोः कनिन्, उवङ् च । **उषिकुषीति**—उष दाहे कुष निष्कर्षे गै शब्दे ऋ गतौ इत्येतेभ्यः धातुभ्यः थन् प्रत्ययो भवति इत्यर्थः। **ओष्ठ इति**—उष् धातोः थन्, लघूपधगुणः, ष्टुना ष्टुरिति थस्य ठः । **कोष्ठः**—कुषः थन् । **गाथा इति**—गै धातोस्थन् आदेच इत्यात्वे स्त्रीत्वाट्टाप् । "गाथा श्लोके संस्कृतान्यभाषायां शेषवृत्तयोः" इति मेदिनी । ऋधातोः थन् गुणः, अर्थ इतिः । "अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु" इत्यमरः । **पीथ इति**-पा पाने धातोः थक्, कित्त्वात् घुमास्थेतीत्वम् । पीथं घृतं भवति । **तीर्थम् इति**—तॄ प्लवनतरणयोः इत्यस्मात् थक्, ॠत इद्धातोरितीत्वे, रपरत्वे हलि चेति दीर्घः । **तुत्य इति**—तुदति दाहेन इति, तुद् धातोः थक्, दस्य चर्त्वम् । तुत्था तु रञ्जनी श्रीफली द्रोणा दोला नीलिनी इत्याद्यर्थेष्वस्ति । **उक्थम् इति**—वच परिभाषणे इत्यतः थक्, वचिस्वपीति सम्प्रसारणं, पूर्वरूपं, चोः कुः । **रिक्थम् इति**—रिचिर् विरेचने, थक्, कुत्वम् । बाहुलकाद ऋच्धातोस्थकि ऋक्थम् इति । षिचिर् धातोः सिक्थ इति ।

हिन्दी

१९. अव् सिवादि धातुओं से मन् प्रत्यय होता है और वह कित् होता है ।

२०. घृ धातु से मन् और गुण निपातनात् होते हैं ।

२१. ग्रस् धातु से मन् प्रत्यय एवं ईत्व का निपातन होता है ।

२२. अश् आदि धातुओं से क्वन् प्रत्यय होता है ।

२३. यु वृष आदि धातुओं से कनिन् प्रत्यय होता है ।

२४. उस कुषादि धातुओं से थन् प्रत्यय होता है ।

२५. पा तॄ आदि धातुओं से थक् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२६. ग्लानुदिभ्यां डौः ॥ ग्लौः । नौः ।
२७. च्विरव्ययम् ॥ डौरित्येव । ग्लौकरोति । 'कृन्मेजन्तः' इति सिद्धे नियमार्थमिदम् । उणादिप्रत्ययान्तच्व्यन्त एवेति ।
२८. गमेर्डोः ॥ गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः । स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि ॥ नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु । बाहुलकाद् द्युतेरपि 'द्यौः' स्त्रीस्वर्गान्तरिक्षयोः ।
२९. रातेर्डैः ॥ राः ।
३०. भ्रमेश्च डूः । भ्रूः । चाद्गमेः । अग्रेगूः ।
३१. उन्देर्नलोपश्च ॥ चाद् युच् । ओदनः ।
३२. गमेर्गश्च ॥ चाद्युच् । गगनम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

ग्लौरिति—ग्लै हर्षक्षये, डौ-प्रत्ययः, डकार इत्, डित्त्वाट्टेर्लोपः । चन्द्रः इत्यर्थः । नुद्धातोः डौ- प्रत्यये टिलोपे नौरिति । नौकेत्यर्थः । **च्वि रव्ययमिति**—डौरित्यनुवर्तते, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् । डौ-प्रत्ययान्तं शब्दस्वरूपं च्व्यन्तं चेदव्ययसंज्ञकं भवतीत्यर्थः । **ग्लौ ग्लौः करोतीति**—अग्लौः, ग्लौः सम्पद्यते इति ग्लौ शब्दादभूततद्भावे च्विः, सर्वापहारलोपः, अव्ययत्वात्सुपो लुक् । **नियमार्थमिदमिति**—एजन्तत्वाद् ग्लौशब्दस्य कृन्मेजन्त इत्येव अव्ययत्वे सिद्धे एतद् नियमयति यत् च्व्यन्त एव उणादिप्रत्ययान्तः अव्ययं भवतीति । तेन केवलयोः ग्लौ नौ शब्दयोः एजन्तत्वेऽपि नाव्ययत्वं भवति । **गौरिति**—गम्लृ गतौ, गच्छतीति गौः, डोप्रत्ययः, डित्त्वात् टेरमो लोपः । गो इति, तस्य प्रथमैकवचने रूपम् । **द्यौरिति**—द्युत् धातोः बाहुलकाद् डो-प्रत्ययः, टेर्लोपः । **राः इति**—रै दाने, राति ददातीत्यर्थे रातेर्डैरिति डैप्रत्ययः, डित्वादैकारलोपः । रै इति, तस्य प्रथमैकवचने रूपम् । **भ्रूरिति**—भ्रम्धातोः डू-प्रत्ययः, टेर्लोपः । **अग्रेगूरिति**—अग्रे गच्छतीत्यर्थे गम्- धातोः भ्रमेश्च डूरिति चकाराद् डूप्रत्ययः, टेर्लोपः, सप्तम्या अलुक् । सेवकः इत्यर्थः । **उन्देरिति**—उन्दीधातोः युच्प्रत्ययो भवति धातोर्नलोपश्चेत्यर्थः । **ओदन इति**—उन्द् धातोः युच्, नलोपः, युवोरनाकौ, लघूपधगुणः । **गमेरिति**—गम्लृ धातोर्युच् भवति मस्य नश्चेत्यर्थः । **गगनमिति**—गम्धातोः युच्, मस्य गादेशः, योरन् । **किरण इति**—कृविक्षेपे इत्यस्मात् क्युः । युवोरनाकौ, ॠत इद्धातोरिति इत्, रपरत्वम् । **पुरणः**-पॄ पालनपूरणयोः, क्युः, ककार इत्, योरनः, उदोष्ठ्येति उत्वे रपरत्वम्।

हिन्दी

२६. ग्लै और नुद धातुओं से डौ प्रत्यय होता है ।
२७. डौ प्रत्ययान्त यदि च्व्यन्त हो तो अव्यय संज्ञा होती है ।
२८. गम् धातु से डो प्रत्यय होता है ।
२९. रा धातु से डै प्रत्यय होता है ।
३०. भ्रम् धातु से और गम् धातु से डू प्रत्यय होता है ।
३१. उन्दी धातु से युच् प्रत्यय होता है एवं धातु के न् का लोप होता है ।
३२. गम् धातु से युच् प्रत्यय होता है तथा धातु के म को ग आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३३. **कृ पॄ वृजिमन्दिनिधाञः क्युः ॥ किरणः । पुरणः समुद्रः । वृजनमन्तरिक्षम्। मन्दनं स्तोत्रम् । निधनं कुलनाशयोः ।**

३४. **धृषेर्धिष् च संज्ञायाम् । धिषणो गुरुः । धिषणा धीः ।**

३५. **तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ ॥ शंसेः क्षदादिभ्यश्च क्रमात्तृन्-तृचौ स्तस्तौ चानिटौ । शंस्ता, शंस्तरौ, शंस्तरः । क्षदिः सौत्रो धातुः ।' क्षत्ता स्यात् सारथौ द्वा स्थे वैश्यायामपि शूद्रजे" ।**

३६. **बहुलमन्यत्रापि ॥ मन्-मन्ता । हन्-हन्ता । इत्यादि ।**

३७. **नप्तृनेष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृपितृदुहितृ ॥ एते तृजन्ता निपात्यन्ते । नप्ता इत्यादि ।**

३८. **सावसेर्ऋन् ॥ स्वसा ।**

३९. **यतेर्वृद्धिश्च ॥ "भार्यास्तु भ्रातृवर्गस्य यातरः स्युः परस्परम्" ।**

मध्यमनोरमापूरणी

वृजनम् इति—वृजी वर्जने, क्युः, कित्त्वान्न गुणः । मन्देः क्युः, **मन्दनमिति । निधनमिति-**निपूर्वाद्धाधातोः, क्युः, योरनः, आतो लोप इटि चेत्यालोपः । **धिषेर्धिष् चेति**—ञिधृषा प्रागल्भ्ये इत्यस्मात् धातोः क्युः स्यात् धातोश्च धिषादेशः इत्यर्थः । **धिषण इति**—धृषा धातोः क्युः, धिषादेशश्च, योरनादेशः, णत्वम् । धिषणा इत्यत्र स्त्रीत्वाट्टाप्, 'बुद्धिर्मनीषा धिषणा' इत्यमरः । **शंस्ता इति**—शंस् धातोः तृन्, इडभावश्च । सौ ऋदुशनस् इति अनङ्, उपधादीर्घः, सुलोपनलोपौ । **शंस्तरौ इति**-अप्तृन्निति सूत्रे नप्त्रादिग्रहणं नियमार्थम्—औणादिकानां तृन्तृजन्तानां यद्युपधादीर्घस्तर्हि नप्त्रादीनामेवेति । अतः अत्र न दीर्घः । **क्षत्ता इति**—क्षद् धातुः सौत्रः,तस्मात् तृन् । **अन्यत्रापि**-अन्यत्रापि धातोः बहुलं तृन्तृचौ भवतः । प्रपञ्चार्थमिदं सूत्रम् । यतो हि पूर्वसूत्रस्थादिग्रहणेनैव मन्तेत्यादीनां सिद्धिः स्यात् । **नप्ता इति**—न पतन्त्यनेन पितरो नरके इत्यर्थः, नञुपपदात् पत्धातोः तृच्, नञ् इत्यस्य प्रकृतिभावश्च । सौ अनङि अप्तृन्निति दीर्घे रूपम् । **नेष्टा इति**—नीधातोः षुक्, गुणः, तृच्, नेष्टृ इति । सौ नेष्टा इति । **त्वष्टा इति**—त्विष् दीप्तौ इत्यस्मात् तृच्, त्विषेरिकारस्य अत्वम् । **होता इति**—हु दानादनयोः, तृच्, गुणः । **पोता इति**—पूञ् पवने, तृच्, गुणः । ऋत्विग्भेदः । **भ्राता इति**—भ्राजृ दीप्तौ, तृच्, जलोपश्च निपातनात् । भ्रातृ इति । सौ रूपम् । **जामाता इति**—जायां माति इत्यर्थे मान् पूजायामित्यस्मात् तृच्, नलोपश्च । **माता इति**—मान् धातोः तृच्, नलोपः । **पिता इति**—पातीत्यर्थे पा धातोस्तृच्, आकारस्य इत्वम् । **दुहिता इति**—दुह्धातोस्तृच् इड् गुणाभावश्च निपात्यन्ते । **सावसेर्ऋन्निति**—सौ उपपदे असु धातोः ऋन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **स्वसा इति**—सु पूर्वकात् असु क्षेपणे इत्यस्मात् ऋन् । यण्, स्वसृ इति, सौ अनङ्, अप्तृन्निति दीर्घः । **यतेरिति**-यत् धातोर्ऋन् प्रत्ययः धातोर्वृद्धिश्च स्यादित्यर्थः । **यातर इति**—यत् धातोः ऋन् उपधावृद्धिश्च, यातृ इति, जसि गुणे कृते रूपम्।

हिन्दी

३३. कॄ पॄ धातु से युच् प्रत्यय होता है तथा धातु के म को ग आदेश होता है ।

३४. धृष् धातु से क्यु प्रत्यय होता है व धातु को धिष् आदेश होता है, संज्ञा में ।

३५. शंस् और क्षदादि धातुओं से अनिट् तृन् और तृच् प्रत्यय होते हैं ।

३६. अन्यत्र भी धातु से तृन् और तृच् होते हैं ।

३७. नप्तृनेष्टृ इत्यादि तृजन्त निपातन किए जाते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४०. नञि च नन्देः ॥ न नन्दतीति ननान्दा । इह वृद्धिर्नानुवर्तते इत्येके । "ननान्दा तु स्वसा पत्युर्ननन्दा नन्दिनी च सा" इति शब्दार्णवः ।

४१. दिवेर्ऋः ॥ देवा = देवरः ।

४२. नयतेर्डिच्च ॥ ना । नरौ ।

४३. अर्चि शुचि हु सृपि छादि छर्दिभ्य इसिः ॥ अर्चिः शोचिरुभे क्लीबे प्रकाशो द्योत आतपः । हविः । सर्पिः । १२५३-इस्मन्त्रन् क्विषु च-३।४।९७॥ छदिः पटलम् । छर्दिः ।

४४. बृंहेर्नलोपश्च ॥ बर्हिर्ना कुशशुष्मणोः ।

४५. द्युतेरिसिन्नादेश्च जः ॥ ज्योतिः ।

४६. जनेरुसिः ॥ जनुर्जननजन्मानि ।

मध्यमनोरमापूरणी

नञि चेति—नञुपपदात् नन्द्धातोः ऋन्, धातोर्वृद्धिश्चेत्यर्थः । **ननान्दा इति**—न नन्दतीति अर्थे-नञ्पूर्वात् नन्दधातोः ऋन्, उपधावृद्धिश्च । सेवायां कृतायामपि न प्रसीदतीत्यर्थः । इह वृद्धिर्नानुवर्तते, तदा ननन्दा इति बोध्यम् । **देवा इति**—दिवु धातोर्ऋन्, गुणः, । **नयतेरिति-** णीञ् प्रापणे इत्यस्मात् ऋन् भवति स च 'डित्' इत्यर्थः । **ना इति**—णीञ् प्रापणे, णो नः, नयतेर्डिच्चेति ऋन्, स च डिद्वत् । टेः ईकारस्य लोपः, नृ इत्यस्य सौ रूपम् । **अर्चिरिति-** अर्च पूजायाम्, तस्मादर्चिशुचीति इसिः, अर्चिस् इति सान्तस्य सौ नपुंसके रूपम् । **हविरिति-** हु दानादनयोरित्यस्मात् इसिः, गुणः, अव्, हविस् इति । सौ रूपम् । **सर्पिरिति**—सृप्लृ गतौ इत्यस्मात् इसिः । **इस्मन् इति**—इस् मन् त्रन् क्विप् प्रत्ययेषु परेषु छादेरुपधायाः ह्रस्वः स्यादित्यर्थः । **छदिरिति**—ण्यन्तात् छादि धातोरिसिः, णेरनिटि, इस्मन्निति उपधाह्रस्वः । छर्द वमने इत्यस्मात् इसि प्रत्यये छर्दिरिति । **बृंहेरिति**—बृहि वृद्धौ इत्यस्मात् इसिप्रत्ययः नलोपश्च भवतीत्यर्थः । **बर्हिरिति**—बृंहधातोरिसिः, नलोपः, उपधागुणः । **द्युतेरिति**—द्युतधातोः इसिन् प्रत्ययो भवति धातोराद्यवर्णस्य च जः इत्यर्थः । **ज्योतिरिति**—द्योतते इत्यर्थे द्युतेरिसिन्, दस्य च जः । **जनुरिति**—जनी प्रादुर्भावे इत्यस्मात् उस् प्रत्ययः ।

हिन्दी

४०. नञ् उपपद पूर्वक नन्द धातु से ऋन् प्रत्यय होता है और उपधा को वृद्धि होती है।

४१. दिव धातु से ऋन् प्रत्यय होता है ।

४२. नी धातु से ऋन् प्रत्यय होता है, और वह डित् होता है ।

४३. अर्च शुच् इत्यादि धातुओं से इसि प्रत्यय होता है । १२५३-इस्मन् त्रन् एवं क्विप् प्रत्यय परे छादि धातु की उपधा को ह्रस्व होता है ।

४४. बृंह धातु से इसि प्रत्यय होता है एवं धातु के न का लोप होता है ।

४५. द्युत धातु से इसिन् प्रत्यय होता है तथा द को ज होता है ।

४६. जन धातु से उसि प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४७. अर्ति पृ वपियजितनिधनितपिभ्यो नित् ॥ अरुः । परुर्ग्रन्थिः । यजुः । वपुः । तनुः । तनुषी । तनूंषि । धनुः अस्त्रियाम् । तपुः सूर्याग्निशत्रुषु ।

४८. एतेर्णिच्च ॥ आयुः । आयुषी ॥

४९. चक्षेः शिच्च ॥ चक्षुः ।

५०. मुहेः किच्च ॥ मुहुरव्ययम् ।

५१. पानीविषिभ्यः पः ॥ पाति रक्षत्यस्मादात्मानमिति पापम् । तद्योगात् पापः। नेपः पुरोहितः। वेष्पः पानीयम् ।

५२. स्तुवो दीर्घश्च ॥ स्तूपः समुच्छ्रायः ।

५३. सुशृ भ्यां निच्च ॥ चात् कित् । सूपः । बाहुलकादुत्वम् । शूर्पः ।

५४. कुयुभ्यां च ॥ कुवन्ति मण्डूका अस्मिन्निति कूपः । युवन्ति बध्नन्ति अस्मिन्निति यूपः।

मध्यमनोरमापूरणी

अरुः परुः इति—ऋ पृ धातुभ्याम् 'अर्तिपृ' इति उसि- प्रत्ययः, गुणः, रपरत्वम् । अरुः मर्मस्थलम् अर्कपादपश्च । यज देवपूजायामित्यस्मात् उसि यजुः । डुवप् बीजसन्ताने इत्यस्मात् वपुरिति । तनु विस्तारे धनधान्ये तप् सन्तापे इत्येतेभ्यः उसि प्रत्यये तनुः धनुः तपुरिति बोध्यानि । **एतेर्णिच्चेति**—इण् धातोः श्तिपा निर्देशात् एतेरिति । तस्मात् उस्प्रत्ययो भवति, स च णित् । **एति गच्छतीत्यायुः इति**—इण्धातोः उसिः, णित्त्वं, णित्त्वादचो ञ्णितीति वृद्धिः, आय् । **चक्षेरिति**—चक्षिङ् धातोः उसिप्रत्ययः, सः शित् च भवति इत्यर्थः । शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञा, अतो न ख्यादेशः । **मुहुरिति**—मुह्धातोः मुहः किच्चेति उसिः, कित्वम्, नोपधागुणः । **पापमिति**—पाधातोः प-प्रत्ययः । पापः अस्ति अस्येति तद्योगे अर्श आदिभ्य अच्, पाप इति । **नेप इति**—णीञ् प्रापणे, तस्मात् पः, गुणः । **वेष्प इति**—विष्लृ व्याप्तौ, तस्मात् पः, लघूपधगुणः । **स्तुवो इति**—स्तुधातोः प-प्रत्ययः धातोर्दीर्घश्च भवतीत्यर्थः । तेन स्तूप इति । **सुशृभ्यामिति**—षुञ् शृञ्धातूभ्यां प-प्रत्ययो भवति स च नित्कितौ, धातोर्दीर्घश्च। **सूप इति**- षु धातुः, धात्वादेरिति सः, पः, दीर्घः, कित्त्वान्न गुणः । **शूर्प इति**-शृधातोः पः, कित्त्वम्, बाहुलकाद् ऋकारस्योत्वं, रपरत्वम्, हलि चेति दीर्घः । **कूप इति**-कु शब्दे इत्यस्मात् पः धातोर्दीर्घश्च । **यूप इति**—यु मिश्रणे इत्यस्मात् पः, धातोर्दीर्घश्च ।

हिन्दी

४७. ऋ पृ आदि धातुओं से उस् प्रत्यय होता है और वह नित् होता है ।

४८. इण् धातु से उसि प्रत्यय होता है और वह णित् होता है ।

४९. चक्षिङ् धातु से उस् प्रत्यय होता है और वह शित् होता है ।

५०. मुह धातु से उस् प्रत्यय हो और वह कित् होवे ।

५१. पा नी और विष धातु से प प्रत्यय होता है ।

५२. स्तु धातु से प प्रत्यय होता है और धातु को दीर्घ भी ।

५३. सु और शृ धातुओं से प-प्रत्यय होता है, और वह नित् कित् होता है तथा धातु को दीर्घ भी होता है ।

५४. कु और यु धातु से प प्रत्यय होता है और धातु को दीर्घ भी होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५५. खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः ।। सप्तैते पप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।
५६. स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच् ।। अयामन्तेति णेरय् । स्तनयित्नुः=मेघः । हर्षयित्नुः पोषयित्नुः । गदयित्नुः । मदयित्नुः=मदिरा ।
५७. अशेः सरः । अक्षरम् ।
५८. वसेश्च ।। वत्सरः ।।
५९. सपूर्वाच्च ।। संवत्सरः । परिवत्सरः
६०. कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच् ।। करभः ! शरभः । शलभः । कलभः= करिशावकः । गर्दभः ।
६१. ऋषिवृषिभ्यां कित् ।। ऋषभः । वृषभः ।
६२. रासिवल्लिभ्याञ्च ।। रासभः । वल्लभः ।

मध्यमनोरमापूरणी

खष्पेति—एते इत्थमेव निपात्यन्ते । **खष्प इति**—खन् धातोः पः, नस्य षत्वम् । क्रोधः बलात्कारश्चार्थः । **शिल्पम् इति**—शील समाधौ इत्यस्मात् पः, धातोरीकारस्य ह्रस्वश्च । कौशलमित्यर्थः । शसु हिंसायामित्यस्य सस्य षत्वं निपात्यते, शष्प इति । **बाष्प इति**—बाध धातोः पः धस्य षत्वञ्च । **रूपमिति**—रु शब्दे, पप्रत्ययः, दीर्घश्च । स्वभावः सौन्दर्यमित्यर्थः। **पर्पमिति**—पृ धातोः पः, गुणश्च । **तल्पमिति**—तल प्रतिष्ठाकरणे इति ण्यन्तात् पः णिलोपश्च। **स्तनि इति**—स्तन देवशब्दे, हृष तुष्टौ, पुष पुष्टौ, गदी देवशब्दे मदी हर्षग्लेपनयोः, इत्येतेभ्यो ण्यन्तेभ्यः इत्नुच् प्रत्ययो भवति । स्तनयित्नु इत्यादौ इत्नुचि कृते अयामन्ताल्वाय्येत्विष्णिषु इति णेरयादेशो बोध्यः । **अक्षरमिति**—अशू व्याप्तौ इत्यस्मात् सरप्रत्ययः अशेः सर इत्यनेन। व्रश्चभ्रस्जेति शस्य षत्वम्, षढोः कः सि, षत्वम् । **वसेश्च**-वस् धातोः सरप्रत्ययो भवतीत्यर्थः। वसेः सर-प्रत्ययः, सस्यार्धधातुके इति सस्य तः । सं परिपूर्वात् वस निवासे इत्यस्मात् सर-प्रत्ययः, धातोः सस्य तः । कृ शृ इति-कृ विक्षेपे, शृ हिंसायाम्, शल गतौ, कल शब्दे विलेखने च, गर्द शब्दे इत्येतेभ्यः अभच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । कृ धातोरभच्, गुणः, करभ इति । एवमेव शृ धातोरभच्, शरभ इति । **ऋषिवृषीति**—ऋषी गतौ वृषु सेचने इत्येताभ्यामभच् प्रत्ययो भवति स च कित् इत्यर्थः । ऋष्धातोरभच्, कित्त्वान्न गुणः । वृषभः श्रेष्ठवृषयोः। **रासि इति**—रासृ शब्दे वल्ल संवरणे इत्येताभ्याम् अभच् प्रत्ययो भवति । शस् धातोरभच्, **रासभः=गर्दभः** ।'बल्लभोऽध्यक्षे दयिते सुलक्षणतुरङ्गमे' इति मेदिनी ।

हिन्दी

५५. खष्प शिल्प शष्प वाष्पादि प्रत्ययान्त निपातन हैं ।
५६. स्तन हृष पुषादि ण्यन्त धातुओं से इत्नुच् प्रत्यय होता है ।
५७. अश धातु से सर पत्यय होता है ।
५८. वस धातु से सर प्रत्यय होता है ।
५९. पूर्व सहित वस धातु से भी रार प्रत्यय होता है और वह चित् होता है ।
६०. कृ शृ इत्यादि धातुओं से अभच् प्रत्यय होता है ।
६१. ऋष और वृष धातुओं से अभच् प्रत्यय होता है, और वह कित् होता है ।
६२. रास् और वल्ल धातुओं से अभच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६३. नियो मिः ॥ नेमिः ।

६४. अर्तेरूच्च ॥ ऊर्मिः ।

६५. भुवः कित् ॥ भूमिः ।

६६. अग्नेर्निर्नलोपश्च ॥ अग्निः ।

६७. वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् ॥ वह्निः । श्रेणिः । श्रोणिः । योनिः । द्रोणिः । ग्लानिः । हानिः । तूर्णिः ।

६८. पातेर्डतिः ॥ पतिः ।

६९. सूङः क्रिः ॥ सूरिः ।

७०. अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् ॥ अद्रिः । शद्रिः शर्करा । भूरि-प्रचुरम् । शुभ्रिः-ब्रह्मा ।

मध्यमनोरमापूरणी

नियो मिः इति—णीञ् प्रापणे इत्यस्मात् मिप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **नेमिरिति**—णी धातुः, णो नः, मि प्रत्यये सार्वधातुकेति गुणः । चक्रं रथाङ्गं च नेमिः । **अर्तेरिति**—ऋ गतौ इत्यस्मात् मि-प्रत्ययो भवति धातोरूकारश्चादेश इत्यर्थः । **ऊर्मिः इति**—ऋ-धातोर्मिः, ऊश्चादेशः । रपरत्वम् । ऊर्मिः वीचिः प्रकाशः वेगः भङ्गो वा । **भुव इति**—भूधातोर्मि प्रत्ययः स च कित् इत्यर्थः । कित्त्वान्न गुणः, भूमिः इति । **अग्नेरिति**—अगि गतौ इत्यस्मात् निप्रत्ययो भवति, धातोर्नलोपश्चेत्यर्थः । अगि धातुः, इदित्त्वान्नुम्, अंग इति, निः प्रत्ययो धातोर्नलोपः। **वहिश्रीति**—वहादिभ्यो धातुभ्यः निप्रत्ययो भवति स च नित् इत्यर्थः । **वह्निः इति**—वह प्रापणे इत्यस्मात् निप्रत्ययः । श्रेणिः इति—श्रिञ् सेवायाम्, निः, गुणः, । णत्वम् । श्रेणिः पङ्क्तिः । **श्रोणिः** कटिप्रदेशः । श्रु श्रवणे, निप्रत्ययो गुणश्च । **योनिरिति**—यु मिश्रणे, निः, गुणः । भगमित्यर्थः । **द्रोणी**—द्रु गतौ, निः, गुणः । द्रोणिः सेचनी । कृदिकारादितिङीषि द्रोणी इति । **ग्लानिरिति**—ग्लै हर्षक्षये, आत्वं, नि-प्रत्ययः । **हानिः**—ओहाक् त्यागे । **तूर्णिरिति**—ञित्वरा सम्भ्रमे । निप्रत्ययः, ज्वरत्वरेति उपधावकारयोरूठ्, णत्वम् । **पातेर्डतिः इति**—पाधातोः डति प्रत्ययो भवति । डित्वात् टिलोपे पतिरिति भवति । **सूरिरिति**—षूङ् प्राणिप्रसवे, धात्वादेरिति सः, क्रि प्रत्ययः । धीमान् कृती विचक्षण इत्यर्थः । **अद्रिरिति**—अद् भक्षणे, इत्यस्मात् अदिशदीति क्रिः । द्रुमः शैलः अर्कश्चार्थः । शद्लृ शातने इत्यस्मात् शद्रिः । भूधातोः क्रिन्ः, भूरि नपुंसके, बोध्यम् । शुभ् शोभार्थे, इत्यस्मात् क्रिन्, **शुभ्रिरिति।**

हिन्दी

६३. नीधातु से मि प्रत्यय होता है ।

६४. ऋ धातु से मि प्रत्यय होता है और धातु को ऊ आदेश होता है ।

६५. भू धातु से मि प्रत्यय होता है, और वह कित् होता है ।

६६. अंग् धातु से नि-प्रत्यय होता है और धातु के न् का लोप भी होता है ।

६७. वह श्रि आदि धातुओं से नि प्रत्यय होता है और वह नित् होता है ।

६८. पा धातु से डति प्रत्यय होता है ।

६९. षूङ् धातु से क्रि प्रत्यय होता है ।

७०. अद शद आदि धातुओं से क्रिन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७१. वलिमलितनिभ्यः कयन् ॥ वलयः । मलयः । तनयः ।
७२. माछाससिभ्यो यः ॥ माया । छाया । सस्यम् । बाहुलकात् सव्यं दक्षिणवामयोः ।
७३. जनेर्यक् । ये विभाषा । जन्यं युद्धम् । जाया ।
७४. सर्वधातुभ्य इन् । पचिरग्निः । तुडिः । तुण्डिः । वलिः । वटिः । यजिः। काशते इति काशिः । यतिः । मल्लिः । केलिः । 'मसी परिणामे'-मसिः । बोधिः। नन्दिः । कलिः । हरिः ।
७५. इगुपधात् कित् ॥ ऋषिः । शुचिः ।
७६. मनेरुच्च ॥ मुनिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वलिमलीति—वल संवरणे संचरणे च, मल धारणे तनु विस्तारे इत्येतेभ्यः कयन्-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । ककारनकारौ इतौ । वलयः कण्ठरोगे ना कङ्कणे पुंनपुंसकम् इति मेदिनी । मलयः पर्वतान्तरे, शैलांशे देशे आरामे योषिति च । तनयः आत्मजः पुत्रः । स्वस्यैव विस्तारात् तनय इति । **माछेति**—मा माने छो छेदने षस् स्वप्ने इत्येतेभ्यः य-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **माया इति**—माधातोर्य-प्रत्ययः, स्त्रीत्वाट्टाप् । **छायेति**—छो इत्यस्यात्वे य-प्रत्यये टापि रूपम् । आतपाभावः सूर्यपत्नी चार्थः । वृक्षादीनां फलं सस्यम् । **सव्यमिति**—षुञ् अभिषवे इत्यस्मात् बाहुलकात् य-प्रत्यये गुणे वान्तोयि इत्यव् । वामः प्रतीपं च । **जायेति**—जनयति इति जाया। अन्तर्भावितण्यर्थः । जनप्रादुर्भावे इत्यस्मात् यक्, कित्वाद् ये विभाषेति नस्यात्वे दीर्घे टापि च रूपम् । **सर्वधातुभ्य इन्**—सर्वेभ्योऽपि धातुभ्य इन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । नकार इत्। पच् तुड तोडने तुडि च, वल संवरणे वट वेष्टने यज देवपूजादौ काशृ दीप्तौ यती प्रयत्ने मल मल्लधारणे केलृ चलने बुध अवबोधने नदि समृद्धौ, कल इत्यादिभ्य इन् प्रत्यये सति मूलोक्तं रूपं बोध्यम् । **हरिः इति**—हृञ् हरणे इत्यस्मात् इन्, गुणः रपरत्वम् । हरिर्विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ । चन्द्रे कीले प्लवङ्गे च यमे वाते च कीर्तितः । **इगुपधादिति**— इगुपधधातुभ्य इन् प्रत्ययो भवति स किच्चेत्यर्थः । **ऋषिः इति**—ऋषी गतौ इत्यस्मात् इन्, तस्य कित्त्वम् । कित्त्वान्नोपधागुणः । **शुचिः इति**—शुच शोके, इन्, कित्त्वम् । कित्त्वान्नोपधागुणः । एवमेव कृष विलेखने इत्यस्मात् कृषिः इति बोध्यम् । **मनेरुच्चेति**— मनधातोः इन्प्रत्ययो भवति स च कित्, धातोरकारस्य उकारादेशश्चेत्यर्थः । मन्यते जानातीति मुनिः । इन्, अस्य उः, कित्त्वान्नोपधागुणः ।

हिन्दी

७१. वल मल और तन धातु से कयन् प्रत्यय होता है ।
७२. मा छा व सस् धातुओं से य प्रत्यय होता है ।
७३. जनधातु से यक् प्रत्यय होता है ।
७४. सभी धातुओं से इन् प्रत्यय होता है ।
७५. इगुपध धातुओं से इन् प्रत्यय होता है और वह कित् होता है ।
७६. मन् धातु से इन् प्रत्यय होता है, और वह कित् होता है तथा धातु के अ को उ होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७७. जनिघसिभ्यामिण् ॥ जनिः जननम् । घासिर्भक्ष्यमग्निश्च ।
७८. अच इः ॥ रविः । तरिः । पविः । कविः । अरिः ।
७९. कुण्डिकम्प्योर्नलोपश्च ॥ कुडिः । कपिः ।
८०. इषेः क्सुः ॥ इक्षुः ।
८१. कृषेर्वर्णे ॥ नक् स्यात् । कृष्णः !
८२. दाभाभ्यां नुः ॥ दानुः । भानुः ।
८३. विषेः किच्च ॥ विष्णुः ।
८४. सि तनि जनि गमि मसि सच्यविधाञ् क्रुशिभ्यस्तुन् ॥ सेतुः । तन्तुः । जन्तुः । गन्तुः । मस्तु दधिमण्डम् । सक्तुः । ओतुः । धातुः । क्रोष्टा ।

मध्यमनोरमापूरणी

जनिघसीति—जनी प्रादुर्भावे घस्लृ भक्षणे इत्येताभ्यामिण् भवतीत्यर्थः । **जनिः इति**—जन् धातोरिण्, णित्त्वादुपधावृद्धिः प्राप्ता सा जनिवध्योश्चेति निषिध्यते । घासिः इत्यत्र अत उपधाया इति वृद्धिः । **अच इः इति**—अच इति धातोर्विशेषणन्तस्मात्तदन्तविधिः । अजन्ताद्धातोः इ-प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **रु शब्दे** तॄ प्लवनतरणयोः पूङ् पदने कुशब्दे ऋ गतौ इत्येतेभ्यः इ-प्रत्यये गुणेऽवादेशे ऋकारस्य गुणे रपरत्वे च कृते रविः तरिः पविः कविः अरिः इत्यादि सिद्ध्यति । **कुण्डिकम्प्योरिति**—कुडि दाहे कपि चलने, इदित्त्वान्नुमि कुण्डकम्प इति, ताभ्याम् इप्रत्ययः स च कित्, धातोः नलोपश्च भवतीत्यर्थः । कुण्डधातोरिः, नलोपः कुडिरिति, कम्पेः कपिरिति। इदित्त्वात् अनिदितामिति अप्राप्तो नलोपोऽनेन विधीयते । **इक्षुरिति**—इष् इच्छायामित्यस्मात् इषेः क्सुः इति क्सुः । ककार इत् । षढोरिति षस्य कः, सस्य षत्वम्, इक्षुरिति ! **कृषेरिति**—कृष विलेखने इति धातोः वर्णे वाच्ये नक् प्रत्ययो भवति इत्यर्थः । कृष्न इति जाते णत्वम्। **दानुरिति**—डुदाञ् दाने इत्यस्मात् नुः । दातेत्यर्थः। **भानुः इति**—भादीप्तौ इत्यस्मात् नुः । भाति इति भानुः, सूर्यः इत्यर्थः । **विषेः किच्चेति**—विष्लृ व्याप्तौ इत्यस्मात् धातोः णुः प्रत्ययो भवति स च कित्, इत्यर्थः । **विष्णुरिति**—वेवेष्टि-व्याप्नोति सर्वमिति विष्णुः । णुः, कित्त्वात्र लघूपधगुणः । **सितनीति**—एभ्यो धातुभ्यस्तुन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः ! **सेतुरिति**—षिञ् बन्धने, सिनोतीति अर्थः । धात्वादेरिति षस्य सः, तुन् प्रत्ययः, सार्वधातुकगुणः, तितुत्रेति इण्निषेधः । तन् जन् गम् धातुभ्यः तुनि तन्तुः जन्तुः गन्तुरिति भवति । सच्-धातोस्तुनि चस्य कुत्वे सक्तुरिति। **ओतुः इति**—अव रक्षणे इत्यस्मात् तुन्, ज्वरत्वरस्रिव्यवीति अवयोरूठि ऊ तु इति जाते सार्वधातुकेति गुणः । बिडाल इत्यर्थः । **क्रोष्टेति**—क्रुश आक्रोशे, इत्यस्मात् तुन्, उपधागुणः, शस्य षत्वे ष्टुत्वे क्रोष्टु इति, सौ

हिन्दी

७७. जन और घस् धातु से इण् प्रत्यय होता है ।
७८. अजन्त धातु से इ प्रत्यय होता है ।
७९. कुण्ड और कम्प धातु से इ प्रत्यय होता है, और वह कित् होता है, तथा धातु के न का लोप होता है ।
८०. इष् धातु से क्सु प्रत्यय होता है ।
८१. कृष् धातु से वर्ण अर्थ में नक् प्रत्यय होता है ।
८२. दा और भा धातु से नु प्रत्यय होता है ।
८३. विष धातु से णु प्रत्यय होता है, और वह कित् होता है ।
८४. सि तन जन आदि धातुओं से तुन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८५. अवि-तृ-स्तृतन्त्रिभ्य ईः ॥ 'अवीर्नारी रजस्वला' । तरीः । स्तरीः । तन्त्रीः।
८६. यापोः किद्द्वे च ॥ ययीः । पपीः स्यात् सोमसूर्ययोः ।
८७. वातप्रमीः ॥ निपातोऽयम् ।
८८. लक्षेर्मुट् च ॥ लक्ष्मीः ।
८९. सर्वधातुभ्यो मनिन् ॥ कर्म । चर्म । भस्म । जन्म । शर्म । स्थाम ।
९०. बृंहेर्नोऽच्च ॥ नकारस्य अकारः । 'ब्रह्म तत्त्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः'।
९१. नामन् सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन् पाप्मन् धामन् ॥ सप्तैते निपात्यन्ते।

मध्यमनोरमापूरणी

तृज्वद्भावेऽनङि दीर्घे च रूपम् । **अवीः इति**—अव रक्षणादौ, तस्मात् "अवितृ" इति ई-प्रत्ययः । **तरीः स्तरीः इति**—तॄ प्लवन तरणयोः स्तॄञ् आच्छादने इत्येताभ्याम् ई प्रत्ययः, सार्वधातुकगुणः, रपरत्वम् । तरीः नौका भवति । **तन्त्रीः इति**—तत्रि कुटुम्बधारणे, इदितो नुम्धातोः, तन्त् इति, ई प्रत्ययः । **यापोरीति**—या प्रापणे पा पाने इत्युभाभ्याम् ई प्रत्ययः स्यात् स च कित्, धातोः द्वित्वञ्चेत्यर्थः । **ययीः पपीरिति**—या पा इत्युभाभ्याम् ई-प्रत्ययः, द्वित्वञ्च, अभ्याससंज्ञा, अभ्यासस्य ह्रस्वः, यया ई इति, कित्त्वाद् आतो लोप इटि चेत्यालोपः। ययीः=मार्गः । **वातप्रमीः इति**—वातोपपदात् प्रपूर्वकात् मा माने धातोः ई प्रत्ययः स च किन्निपात्यते, कित्त्वादातो लोपः । **लक्षेर्मुडिति**—लक्षदर्शनाङ्कनयोरित्यस्मात् चुरादिण्यन्तात् ई प्रत्ययो भवति, स च कित्, तस्य मुडागमश्चेत्यर्थः । **लक्ष्मीः इति**—लक्षिधातोः ई प्रत्ययः मुडागमः कित्त्वञ्च, णेरनिटीति णेर्लोपः । लक्ष्मीः पद्मा विभूतिश्च, लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोरस्ति। ऋद्धिः औषधञ्चाप्यस्ति । **कर्मेति**—क्रियते इति कर्म, कृधातोर्मनिन्, गुणः, रपरत्वम् । नपुसकोऽयं मनिन् प्रत्ययान्तः । चर् गतौ इत्यस्मात् चर्मेति । भस भर्त्सनदीप्त्योरस्मात् मनिनि भस्मेति । **जन्मेति**—जनी प्रादुर्भावे इत्यतो बोध्यम् । शॄ हिंसायामित्यस्मात् मनिनि गुणे रपरत्वे शर्मेति । सुखेऽर्थे विद्यतेऽयं शब्दः । ष्ठागतिनिवृत्तौ इत्यस्मात् स्थाम इति । **बृंहेरिति**-बृहि वृद्धौ, इदित्त्वान्नुम्, बृंह् इत्यस्मात् मनिन् भवति नुमो नस्य अकारश्चेत्यर्थः । **ब्रह्म, ब्रह्मेति**-बृंह् धातोर्मनिनिनस्याकारे तस्मिन्नकारे परे ऋकारस्य यणि ब्रह्मन् इति, तस्य नपुंसके पुँल्लिङ्गे रूपम् । **नामन्नित्यादि**—म्नायतेऽनेन इत्यर्थे म्नाधातोर्मनिन्, धातोर्नाभावः । सीमन्निति-षिञ् बन्धने, मनिन्, धातोर्दीर्घश्च । **व्योमन्निति**—व्येञः मनिन्, अन्त्यस्य उत्वम्, गुणः । **रोमन् इति**-रु शब्दे इत्यतः मनिनि गुणे भवति । **लोमन्निति**—लूञ् छेदने इत्यस्मान्मनिनि, गुणो रूपम् । **पाप्मेति**—पा पाने इत्यस्मात् मनिन्, युगागमश्च । **धामन्निति-ध्यै** ध्याने इत्यस्मात् मनिन्, ऐकारस्यात्वे रूपम् । एवम् एते सप्त मनिन्-प्रत्ययान्ताः निपात्यन्ते ।

हिन्दी

८५. अव तॄ स्तॄ व तन्त्र धातु से ई प्रत्यय होता है ।

८६. या और पा धातु से ई प्रत्यय होता है और वह कित् होता है तथा धातु को द्वित्व होता है ।

८७. वातप्रमीः यह ई प्रत्ययान्त निपातन है ।

८८. ण्यन्तलक्ष धातु से ई प्रत्यय और मुडागम होता है, और वह कित् होता है ।

८९. सभी धातुओं से मनिन् प्रत्यय होता है ।

९०. बृंह धातु से मनिन् प्रत्यय होता है तथा न को अ आदेश होता है ।

९१. नामन् सीमन् इत्यादि सात मनिन् प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९२. साऽतिभ्यां मनिन्मनिणौ ॥ साम । आत्मा ।
९३. हनिमशिभ्यां सिकन् ॥ 'हंसिका हंसयोषिति' । मक्षिका ।
९४. गिर उडच् ॥ गरुडः ।
९५. शॄदॄभसोऽदिः ॥ शरत् । 'दरद् हृदयशूलयोः' । भसज्जघनम् ।
९६. त्यजितनियजिभ्यो डित् ॥ त्यद् । तद् । यद् ।
९७. एतेस्तुट् च ॥ एतत् ।
९८. युष्यसिभ्यां मदिक् । त्वम् । अहम् ।
९९. इन्देः कमिर्नलोपश्च ॥ इदम् ।
१००. कायतेर्डिमिः ॥ किम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

साऽतिभ्यामिति—षोऽन्तकर्मणि इत्यस्यात्वे सत्वे च सा इति, तस्मात्, अत सातत्यगमने इत्यस्माच्च मनिन् मनिण् एतौ प्रत्ययौ भवतः । **सामेति**—मनिन्, आदेच इत्यात्वम् । **आत्मा इति**—अतः मनिण्, णित्वादुपधावृद्धिः । **हंसिका इति**—हन् हिंसागत्योरित्यस्मात् सिकन्, नस्यानुस्वारः, स्त्रीत्वाट्टाप्, दीर्घः । **मक्षिका इति**—मश शब्दे रोषकृते च, तस्मात् सिकन्, व्रश्चभ्रस्जेति शस्य षः, षढोरिति षस्य कः, षत्वम्, मक्षिक इति, टापि मक्षिकेति । **गिर इति**-गॄ निगरणे इत्यस्मात् उडच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । उडचि परे धातोर्गुणः, रपरत्वं **गरुड इति**। **शरत् इति**—शॄधातोः 'शॄदॄ' इति अदि प्रत्ययः, इकार उच्चारणार्थः, शॄकारस्य गुणे रपरत्वे शरद् इति । दॄधातोः अदिप्रत्यये गुणे रपरत्वे च दरद् इति । भसतेः भसत् इति । **त्यजिति**-त्यज् हानौ तनु विस्तारे यज देवपूजादौ इत्येतेभ्यः अदिप्रत्ययो डित् भवति । ङित्त्वात् टेर्लोपः सर्वत्र त्यजादौ । **एतेस्तुडिति**—इण् गतौ इत्यस्मात् अदिप्रत्ययः तुडागमश्चेत्यर्थः । **एतदिति**-इण् इत्यस्मात् अदिः, तुडागमश्च, धातोर्गुणः, एतत् इति । **युष्यसीति**—युषइति सौत्रो धातुः, धातुपाठेऽस्यादर्शनात् । असु क्षेपणे इत्यस्माच्च मदिक् प्रत्ययो भवति । मद् इत्यवशिष्यते, युष्मद् अस्मद् इति भवति, एतयोः सौ त्वाहौ आदेशौ भवतः । **इन्देरिति**—इदि परमैश्वर्ये इत्यस्मात् कमिः प्रत्ययो भवति धातोर्नस्य लोपश्चेत्यर्थः । ककारेकारौ इतौ । इन्द् अम्, नलोपे इदम् इति, नपुंसके प्रथमैकवचने रूपम् । **किमिति**—कै शब्दे, अस्मात् डिमि प्रत्ययः, डकारेकारौ इतौ । डित्त्वात् टेः ऐकारस्य लोपः । सर्वादिशब्दोऽयम् ।

हिन्दी

९२. षो और अत् धातु से मनिन् प्रत्यय होते हैं
९३. हन् और मश् धातु से सिकन् प्रत्यय होता है ।
९४. गॄ धातु से उडच् प्रत्यय होता है ।
९५. शॄ दॄ व भस धातु से अदि प्रत्यय होता है ।
९६. त्यज तन व यज धातु से अद् प्रत्यय होता है व वह डित होता है ।
९७. इण् धातु से अदि प्रत्यय होता है और तुट् का आगम होता है ।
९८. युष और अस् धातु से मदिक् प्रत्यय होता है ।
९९. इन्द धातु से कमि प्रत्यय और धातु के न का लोप होता है ।
१००. कै धातु से डिमि प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०१. सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् ॥ वस्त्रम् । अस्त्रम् । शास्त्रम् ।

१०२. अमिचिमिदिशसिभ्यः क्त्रः ॥ आन्त्रम् । चित्रम् । मित्रम् । शस्त्रम् ।

१०३. पुवो ह्रस्वश्च ॥ पुत्रः ।

१०४. स्त्यायतेर्ड्रट् ॥ स्त्री ॥

१०५. सूचेः स्मन् ॥ सूक्ष्मम् ।

१०६. पातेर्डुम्सुन् ॥ पुमान् ।

१०७. वसेस्तिः ॥ "वस्तिर्नाभेरधो द्वयोः" ।

१०८. सावसेः ॥ स्वस्ति ।

१०९. वौ तसेः ॥ 'वितस्तिर्द्वादशाङ्गुला' इत्यमरः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ष्ट्रन् इति—षनौ इतौ । षकारनिमित्ताऽपगमे टकारोऽपि निवर्तते । त्र इति शिष्यते । तेन वस् आच्छादने असु क्षेपणे शासु अनुशिष्टौ इत्येतेभ्यः **वस्त्रम् अस्त्रम् शास्त्रम्** इति रूपाणि भवन्ति। **अमिचि इत्यादि**—अम् गत्यादिषु चिञ् चयने ञिमिदा स्नेहने शसु हिंसायामित्येतेभ्यः क्त्र-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । ककार इत् । **आन्त्रमिति**—अम्धातोः क्त्रः, कित्त्वात् अनुनासिकस्य क्वीति उपधादीर्घः, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । चित्रमित्रयोः कित्त्वान्न गुणः । **पुवो ह्रस्वश्चेति**-पुत्रः। क्त्रः, धातोर्ह्रस्वः । **स्त्यायतेरिति**—स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोरित्यस्मात् ड्रट् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **स्त्रीति**—स्त्यैधातोर्ड्रट्, डकारटकारौ इतौ, डित्त्वादैलोपः, टिड्ढाणञ् इति ङीप् । **सूचेरिति**—सूच पैशुन्ये इति चुरादिण्यन्तात् स्मन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **सूक्ष्मम् इति**—सूचि धातोः स्मन्, णेरनिटि, चोः कुरिति चस्य कः, स्मनः सस्य षत्वम् । सूक्ष्मं कण्टकेऽध्यात्मे अल्पे चार्थेऽस्ति। **पुमान् इति**—पाति रक्षतीति पुमान्, पा रक्षणे इत्यस्मात् डुम्सुन्, डकारोकारनकारा इतः, पां उम्स् इति, डित्त्वाट्टेराकारस्य लोपः, पुम्स् इति, सौ पुमान् इति । **वसेस्तिरिति**—वस निवासे इत्यस्मात् तिप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **सावसेरिति**—सौ उपपदे अस् भुवि इत्यस्माद्धातोः ति-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **स्वस्ति इति**—सु+अस् इति धातोः ति प्रत्ययः, उकारस्य यण्, स्वरादि-पाठादव्ययसंज्ञा, सोर्लुक् । **वौ तसेरिति**—विपूर्वकात् तस् धातोः तिप्रत्ययः भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

१०१. सभी धातुओं से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है ।

१०२. अम् चि मिद और शसु धातु से क्त्र प्रत्यय होता है ।

१०३. पूञ् धातु से क्त्र प्रत्यय और धातु को ह्रस्व होता है ।

१०४. स्त्यै धातु से ड्रट् प्रत्यय होता है ।

१०५. सूचि धातु से स्मन् प्रत्यय होता है ।

१०६. पा धातु से डुम्सुन् प्रत्यय होता है ।

१०७. वस् धातु से तिप्रत्यय होता है ।

१०८. सु उपपद पूर्वक अस् धातु से ति प्रत्यय होता है ।

१०९. विपूर्वक तस् धातु से ति प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११०. सर्वधातुभ्योऽसुन् ॥ चेतः । सरः । पयः । सदः इत्यादि ।
१११. अशेर्देवने युट् च ॥ देवने=स्तुतौ । यशः ।
११२. उब्जेर्बले बलोपश्च ॥ ओजः ।
११३. श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च ॥ श्रयतेः शिर आदेशोऽसुन् किच्च । शिरः।
११४. अर्तेरुच्च ॥ उरः ।
११५. भूरञ्जिभ्यां कित् ॥ भुवः । रजः ।
११६. वसेर्णित् ॥ वासो वस्त्रम् ।
११७. चन्देरादेश्च छः ॥ छन्दः ।

मध्यमनोरमापूरणी

सर्वधातुभ्यः इति—सर्वेभ्यो धातुभ्यः असुन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । उकारनकारौ इतौ भवतः। **चेतः इति**—चिती संज्ञाने इत्यस्मात् असुन्, लघूपधगुणः । चेतस् इति, नपुंसके सौ रूपम्। **सर इति**—सृ गतौ, असुन् प्रत्ययः, धातोः ऋकारस्य गुणः, रपरत्वम् । सरसी तु महासरः, महान्ति सरांसि सरस्य इति भाष्यवचनम् । **पय इति**—पय गतौ अथवा पीङ् पाने इति धातुः। असुन् प्रत्ययः, ईकारस्य गुणः, अय् । **सद इति** षद्लृ धातोर्भवति । **अशेरिति**-अशू व्याप्तौ इत्यस्मात् असुन् प्रत्ययो भवति धातोश्च युडागमः इत्यर्थः । **यश इति**-अश्धातोरसुन्, धातोरादौ युडागमः, यशस् इति । प्रथमैकवचने यशः इति । **उब्जेरिति**-उब्ज् आर्जवे इत्यस्मात् बलेऽर्थेऽसुन् प्रत्ययो भवति धातोर्बस्य लोपश्चेत्यर्थः । **ओजः इति**-उब्ज् धातोः असुन्, बलोपश्च, उपधागुणः । **श्रयतेरिति**—श्रिञ् सेवायामित्यस्मात् असुन् प्रत्ययो भवति स च कित्, धातोः शिर् आदेशश्च स्वाङ्गेऽर्थे । **शिरः इति**—श्रिञः असुन्, शिर् आदेशः, कित्त्वान्न गुणः । **अर्तेरिति**—ऋधातोरसुन् प्रत्ययो भवति धातोः उदादेशश्चेत्यर्थः । **उरः इति**—ऋ धातोः असुन्, धातोरुत्, रपरत्वम् । **भूरञ्जिभ्यामिति**—भू सत्तायां रञ्ज रागे इत्याभ्यामसुन् कित् भवति । **भुवः इति**—असुनः कित्त्वान्न गुणः, अचिश्नु इति उवङ् । **रजः इति**—असुनः कित्त्वात् रञ्जेर्नलोपः । **वसेर्णिदिति**—वस् धातोः असुन्, स च णित् भवतीत्यर्थः । णित्त्वात् वस् आच्छादने इत्यस्य उपधायाः वृद्धिः । वस्त्रमाच्छादनं वार्थः । **चन्देरिति**—चदि आह्लादने इत्यस्मादसुन्, धातोरादेश्च छः इत्यर्थः । **छन्द इति**—चदिधातुः, इदित्वान्नुम्, असुन्, चस्य च छः । पद्यभेदे स्वैराचारे अभिलाषे चायं शब्दः ।

हिन्दी

११०. सभी धातुओं से असुन् प्रत्यय होता है ।
१११. अश् धातु से असुन् प्रत्यय होता है एवं धातु को युडागम होता है ।
११२. बल अर्थ में उब्ज धातु से असुन् होता है व ब का लोप होता है ।
११३. श्रि धातु से असुन् प्रत्यय कित् होता है व धातु को शिर् आदेश होता है, स्वाङ्ग अर्थ में ।
११४. ऋ धातु से असुन् प्रत्यय होता है व धातु को उत् आदेश होता है ।
११५. भू और रञ्ज धातु से असुन् प्रत्यय कित् होता है ।
११६. वस् धातु से असुन् प्रत्यय णित् होता है ।
११७. चन्द धातु से असुन् प्रत्यय होता है और च को छ आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

११८. पाचेवचिभ्यां सुट् च ॥ "पक्षसी तु स्मृतौ पक्षौ" । वक्षः ।
११९. नञि हन एह च ॥ अनेहा । अनेहसौ ।
१२०. विधाञो वेध च ॥ वेधाः ।
१२१. चन्द्रेमो डित् ॥ चन्द्रोपपदात् माङः असिः, स च डित् । चन्द्रमाः ।
१२२. उषः कित् ॥ उषः ।
१२३. सर्तेरप्पूर्वादसिः ॥ अप्सराः । प्रायेणायं भूम्नि । अप्सरसः ।
१२४. वशेः कनसिः ॥ उशना ।

मध्यमनोरमापूरणी

पचिवचिभ्यामिति—आभ्यामसुन्, सुडागमश्च भवतीत्यर्थः । **पक्षसी इति**—पचेरसुन्, सुट् च। पच् सस् इति । चोः कुः, सस्य षः । नपुंसके द्विवचने रूपम् । वच्धातोरसुंनि सुटि कुत्वे षत्वे वक्षः इति । **नञि हन इति**—नञुपपदात् हनः असिः प्रत्ययो भवति हनः एहादेशश्चेत्यर्थः । **अनेहा इति**—नञ्पूर्वात् हनः असिप्रत्ययः, धातोरेहादेशश्च । नलोपो नञ इति, अ एहस् इति, तस्मान्नुडचि इति नुट् । अनेहस् इति, सौ रूपम् । **विधाञो इति**-विपूर्वाद् डुधाञ् धारणपोषणयोः इत्यस्मात् असिर्भवति, वेधादेशश्चेत्यर्थः । **वेधा इति**—विधा इत्यस्मात् असिः, सोपसर्गस्य वेधादेशः । विष्णुः बुधः परमेष्ठी चार्थः । **चन्द्रमाः इति**— चन्द्रोपपदात् माङ् माने इत्यस्मात् असिः, **स च डिद्भवति**—डित्त्वाद् धातोराकारस्य लोपः, चन्द्रमस् इत्यस्य प्रथमैकवचने रूपम् । **उष इति**—उष दाहे इत्यस्मात् असिः स च कित् । कित्त्वान्न गुणः । **सर्तेरपिति**—अप्पूर्वात् सृगतौ इत्यस्मात् असि प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **अप्सराः इति-** अप्+सृ इत्यस्मात् असिः, गुणः, रपरत्वम् । स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्यादेकत्वेऽप्सरा अपि इति शब्दार्णवः । **वशेः इति**—वश् कान्तौ इत्यस्मात् कनसि प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । ककारेकारौ इतौ । **उशना इति**—वश् धातोः कनसिः । वश् अनस् इति, कित्त्वात् वस्य सम्प्रसारणे पूर्वरूपे उशनस् इति । सौ उशना इति । भार्गवः कविर्वा ।

हिन्दी

११८. पच् और वच् धातु से असुन् प्रत्यय होता है तथा असुन् को सुट्-आगम होता है ।

११९. नञ् उपपद रहते हन् धातु से असि प्रत्यय होता है तथा धातु को एह् आदेश होता है ।

१२०. विपूर्वक धाञ् धातु से 'असि' प्रत्यय एवं उपसर्ग सहित धातु को 'वेध' आदेश होता है ।

१२१. चन्द्र उपपद रहते माङ् धातु से 'असि' प्रत्यय होता है व वह डित् होता है ।

१२२. उष धातु से 'असि' प्रत्यय होता है और वह कित् होता है ।

१२३. अप्पूर्वक सृ धातु से 'असि' प्रत्यय होता है ।

१२४. वस धातु से 'कनसि' प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२५. **अदिभुवो डुतच् । अद्भुतम् ।**
१२६. **गुधेरूमः ॥ गोधूमः ।**
१२७. **तृहेः क्नो हलोपश्च ॥ तृणम् ।**
१२८. **उदि चेर्डैसिः ॥ उच्चैः ।**
१२९. **नौ दीर्घश्च ॥ नीचैः ।**
१३०. **पूञो यण्णुग्घ्रस्वश्च ॥ यत्प्रत्ययः । पुण्यम् ।**
१३१. **उदि दृणातेरजलौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च ॥ उदरम् ।**
१३२. **डित्खनेर्मुट् चोदात्तः ॥ अजल् च डिद्धातोर्मुट् । मुखम् ।**
१३३. **अमेः सन् ॥ अंसः ।**

मध्यमनोरमापूरणी

अदि भुवो इति—अत् इत्याकस्मिकार्थकाव्ययपूर्वकात् भुवो डुतच् भवति इत्यर्थः । डित्त्वाद् ऊकारलोपः, **अद्भुतमिति** । **गोधूम इति**—गुध परिवेष्टने इत्यस्मात् ऊम्प्रत्ययः, उपधागुणः। **तृहेरिति**—तृहधातोः क्नः प्रत्ययो भवति धातोर्हस्य लोपश्चेत्यर्थः । **तृणमिति**-तृह हिंसायाम्, क्न्ः, ककार इत्, हलोपः, नस्य णत्वम् । **उदिचेरिति**—उद्पूर्वात् चिञ् धातोः डैसि प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **उच्चैरिति**—उद्+चि इत्यस्मात् डैसिः प्रत्ययः, डकारेकारौ इतौ । डित्त्वाद्धातोः टिलोपः, दस्य श्चुत्वेन जः, तस्य चर्त्वेन चः, उच्चैस् इति, स्वरादिपाठादव्ययसंज्ञा, सोर्लुक्। **नौ दीर्घश्चेति**—नावुपपदे चिञ् धातोर्डैसिप्रत्ययो भवति, उपसर्गस्थस्येकारस्य दीर्घश्चेत्यर्थः। **नीचैरिति**—नि+चि इत्यस्माड्डैसिः, उपसर्गस्य दीर्घः, डित्त्वाट्टिलोपः । स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। **पूञो यणिति**—पूञ् पवने इति धातोः यत्प्रत्ययः, णुगागमः, धातोर्ह्रस्वश्च भवतीत्यर्थः । **पुण्यमिति**—पूञ् धातोः यत्, णुगागमः, ह्रस्वश्च । **उदि दृणातेरिति**-उदि उपपदे दॄधातोः अच् अल् इति प्रत्ययौ भवतः उदो दकारस्य लोपश्चेत्यर्थः । **उदरमिति**-उद्पूर्वाद् दॄ विदारणे धातुः, अच् प्रत्ययः, दकारलोपश्च, ॠकारस्य गुणः, रपरत्वम् । **डित् खनेरिति**—खन् धातोः अजलौ प्रत्ययौ डितौ च भवतः, मुडागमश्च इत्यर्थः । **मुखमिति**—खनु अवदारणे, अच्, स च डित्, धातोरादौ मुट्, मु खन् अ इति, डित्त्वादनो लोपे मुखमिति सौ रूपम् । **अमेरिति**-अभगत्यादिषु इत्यस्मात् सन् प्रत्ययो भवति । **अंस इति**—अमेः सन्,

हिन्दी

१२५. अद्पूर्वक भू धातु से 'डुतच्' प्रत्यय होता है ।
१२६. गुध धातु से 'ऊम' प्रत्यय होता है ।
१२७. तृह धातु से क्न प्रत्यय होता है तथा धातु के ह का लोप होता है ।
१२८. उद् उपपद रहते चि धातु से डैसि प्रत्यय होता है ।
१२९. नी उपपद रहते चि धातु से डैसि प्रत्यय होता है व नि के इ को दीर्घ होता है ।
१३०. पूञ् धातु से यत् प्रत्यय णुक् का आगम व धातु को ह्रस्व होता है ।
१३१. उद् उपपद रहते दॄ धातु से अच् और अल् प्रत्यय होते हैं तथा पूर्व पद के द् का लोप होता है ।
१३२. खन् धातु से अच् व अल् प्रत्यय होते हैं, और वे डित् होते हैं, तथा धातु को मुट् आगम होता है ।
१३३. अम् धातु से सन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३४. मुहेः खो मूर्च ।। मूर्खः ।

१३५. नहेर्हलोपश्च ।। नखः ।

१३६. शीङो ह्रस्वश्च ।। शिखा ।

१३७. माङ ऊखो मय् च ।। मयूखः ।

१३८. जनेष्टन्नलोपश्च ।। जटा ।

१३९. क्लिशेरन् लो लोपश्च ।। केशः ।

१४०. फलेरितजादेश्च पः ।। पलितम् ।

१४१. कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन् ।। करकः । कटकः । नरकः । "नरको नारकोऽपि च" इति द्विरूपकोशः ।

१४२. चीकयतेराद्यन्त विपर्ययश्च ।। कीचको वंशभेदः ।

मध्यमनोरमापूरणी

मस्यानुस्वारः । स्कन्ध इत्यर्थः । **मुहेः खो इति**—मुह वैचित्ये इत्यस्मात् धातोः खप्रत्ययो भवति धातोश्च मूरादेशः । मुह्यतीति **मूर्खः** । **नहेरिति**—णह बन्धने इत्यस्मात् खः, हस्य लोपश्चेत्यर्थः । णो न इति णस्य नः, हलोपे ख-प्रत्यये नख इति कररुहे षण्ढेऽर्थे च वर्तते। **शीङो ह्रस्वश्चेति**—शीङ् स्वप्ने इत्यस्मात् ख-प्रत्ययः धातोः ह्रस्वश्च भवतीत्यर्थः । **शिखा इति**-माङ् माने इति धातोः माङ ऊखो मय् चेति ऊखप्रत्ययः धातोर्मयादेशश्च । **जटा इति**—जनी प्रादुर्भावे इत्यस्मात् जनेष्टन् इति टन् प्रत्ययः, नस्य लोपश्च भवति, जट इति, स्त्रीत्वाट्टाप्। "जटा लग्नकचे मूले मांस्यां प्लक्षे पुनर्जटी" इति मेदिनी । **क्लिशेरिति**—क्लिश् विबाधने इत्यस्मात् अन् प्रत्ययो भवति धातोर्लस्य लोपश्चेत्यर्थः । **केश इति**—क्लिश् धातोः अन् प्रत्ययः लस्य लोपश्च, किश् अ इति, पुगन्तेति गुणः । केशः वरुणे ह्रीबेरे कुण्डलेऽर्थेप्यस्ति। **फलेरितच् इति**—फल निष्पत्तौ इत्यस्मात् इतच् प्रत्ययः फस्य पश्चादेश इत्यर्थः । **पलितमिति**-फल्धातोरितच्, फस्य पश्च । "पलितं जरसा शौक्ल्यम्" इत्यमरः । **करक इति**—डुकृञ् करणे, वुन् प्रत्ययः, युवोरनाकौ इति वोरकादेशः, धातोर्गुणः, रपरत्वम् । कमण्डलुः करक इत्युच्यते। **कटक इति**—कटे वर्षावरणयोः, वुन्, अकादेशः । भूभृन्नितम्बवलयचक्रेषु कटकोऽस्त्रियामिति अमरः । नॄ नये इत्यस्मात् वुन्, अकादेशः, गुणः, **नरक इति** । **चीकयतेरिति**—चीक आमन्त्रणे, चीक च चुरादौ, तस्मात् वुन् भवति, धातो राद्यन्तयोर्विपर्यय श्चेत्यर्थः । **कीचक इति**— चीक्धातोर्वुन्, ककारचकारयोर्विपर्ययः, वोरकादेशः ।

हिन्दी

१३४. मुह् धातु से ख प्रत्यय व धातु को मूर् आदेश होता है ।

१३५. नह धातु से खप्रत्यय होता है व धातु के ह का लोप होता है ।

१३६. शीङ् धातु से ख प्रत्यय होता है व धातु को ह्रस्व होता है ।

१३७. माङ् धातु से ऊख प्रत्यय एवं धातु को मय् आदेश होता है ।

१३८. जन् धातु से टन् प्रत्यय एवं धातु को मय् आदेश होता है ।

१३९. क्लिश् धातु से अन् प्रत्यय व धातु के ल का लोप होता है ।

१४०. फल धातु से इतच् प्रत्यय होता है तथा धातु के फ को प होता है ।

१४१. कृञ् आदि धातुओं से संज्ञा अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है ।

१४२. चीक धातु से वुन् प्रत्यय होता है तथा आद्यन्त वर्ण का विपर्यास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४३. जनेररष्ठ च ॥ जठरम् ।
१४४. हर्यतेः कन्यन् हिरच् ॥ हिरण्यम् ।
१४५. कृञः पासः ॥ कर्पासः । बिल्वादित्वात् कार्पासं वस्त्रम् ।
१४६. ऊर्णोतेर्डः ॥ ऊर्णा ।
१४७. दधातेर्यन् नुट् च ॥ धान्यम् ।
१४८. चतेरुरन् ॥ चत्वारः ।
१४९. प्राततेररन् ॥ प्रातः ।
१५०. अमेस्तुट् च ॥ अन्तः ।
१५१. दहेर्गो लोपो दश्च नः ॥ दहेर्गप्रत्ययो धातोरन्तस्य लोपो दस्य नः । नगः ।

मध्यमनोरमापूरणी

जनेररष्ठेति—जनी प्रादुर्भावे इत्यस्मात् अर प्रत्ययो भवति नस्य ठादेशश्चेत्यर्थः । **जठर इति**-जनेरर प्रत्ययः, नस्य ठः । जठरः कुक्षौ वृद्धे कर्कटे चास्ति । **हर्यतेरिति**—हर्य गतिकान्त्योः इत्यस्मात् कन्यन् प्रत्ययो भवति धातोश्च हिरच् आदेशः इत्यर्थः । चकारः इत्, अकारः उच्चारणार्थश्च अस्ति हिरचि । **हिरण्यमिति**—हर्यधातोः कन्यन्, धातोः हिरजादेशः, ककार इत्, हिरन्य इति, नस्य अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **कर्पास इति**—कृञ् धातोः कृञः पास इति पास-प्रत्ययः, धातोर्गुणः । बिल्वादित्वादणि आदिवृद्धौ तु कार्पासं भवति । **ऊर्णा इति**—ऊर्णुञ् आच्छादने इत्यस्मात् ऊर्णोतेर्डःइति ड-प्रत्ययः । डकार इत्, डित्वाट्टेः उकारस्य लोपः । टाप् । ऊर्णा मेषादिलोम्नि प्रसिद्धा । **दधातेरिति**—डुधाञ् धारणपोषणयोः इत्यस्मात् य प्रत्ययः तस्य नुडागमश्चेत्यर्थः । **धान्यम्**—धाधातोर्य प्रत्ययः, नुट् । **चत्वार इति**—चते याचने इत्यस्मात् चतेरुरन् इति उरन् प्रत्ययः, उरनि अकार उच्चारणार्थः, नकार इत् । चतुर् इति, जसि चतुरनडुहोरिति आम् । **प्रातः इति**—प्रपूर्वात् अत् सातत्यगमने इत्यस्मात् अरन् प्रत्ययः । प्रातर् इति, स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । **अमेस्तुट् इति**—अम् गत्यादिषु इत्यस्मात् अरन् प्रत्ययः, तुडागमश्चेत्यर्थः । **अन्तः इति**—अम्धातोररन् तुट् च । मस्यानुस्वारः, स्वरादिपाठा दव्ययम् मध्यमित्यर्थः । **नग इति**—दह भस्मीकरणे इत्यस्मात् ग प्रत्ययः, हस्य लोपः, धातोर्दस्य च नः ।

हिन्दी

१४३. जन धातु से अर प्रत्यय होता है तथा धातु के न् को 'ठ्' आदेश होता है ।
१४४. हर्यधातु से कन्यन् प्रत्यय एवं धातु को हिरच् आदेश होता है ।
१४५. कृञ् धातु से पास प्रत्यय होता है ।
१४६. ऊर्णुञ् धातु से डप्रत्यय होता है ।
१४७. धा धातु से य प्रत्यय होता है तथा प्रत्यय को नुट् का आगम होता है ।
१४८. चत धातु से उरन् प्रत्यय होता है ।
१४९. प्रपूर्वक अत धातु से अरन् प्रत्यय होता है ।
१५०. अम् धातु से अरन् प्रत्यय होता है व तुट् का आगम होता है ।
१५१. दह धातु से ग-प्रत्यय एवं धातु के ह का लोप होता है, तथा द को न होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५२. हन्तेरच् घुर च ॥ घोरम् ।

१५३. तरतेर्ड्रिः ॥ त्रयः ।

१५४. ग्रहेरनिः ॥ ग्रहणिः ।

१५५. प्रथेरमच् ॥ प्रथमः ।

१५६. चरेश्च ॥चरमः ।

१५७. मङ्गेरलच् ॥ मङ्गलम् ।

॥ इत्युणादिप्रकरणम् ॥

मध्यमनोरमापूरणी

हन्तेरच् इति—हन् हिंसागत्योः इत्यस्मात् अच् प्रत्ययः धातोश्च घुर् इत्यादेशो भवतीत्यर्थः। **घोरम् इति**—हन्तेरच्, घुरादेशः, पुगन्तेति गुणः । भीमे हरे चार्थे घोरशब्दः । **त्रयः**—तॄ प्लवनतरणयोरित्यस्मात् ड्रि प्रत्ययो भवति । डित्त्वात् ऋकार लोपः, त्रि इत्यस्य प्रथमाबहुवचने रूपम् । **ग्रहेरिति**—ग्रह् उपादाने इत्यस्माद् अनि प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । नस्य णत्वे **ग्रहणिरिति** । ङीषि तु **ग्रहणी** रुक् प्रवाहिका वा इति अमरः । **प्रथमः इति**—प्रथ प्रख्याने इत्यस्मात् अमच् । **चरेश्चेति**—चर गति भक्षणयोरित्यस्माद् धातोः अमच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **चरम इति**—चर्धातोरमच्, चकार इत् । प्रथिचरिभ्यामित्येव सुवचं स्यादेकसूत्रम् । योगविभागश्चिन्त्यः । **मङ्गेरिति**—मगिः गत्यर्थको धातुः, तस्माद् अलच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **मङ्गलमिति**—मगि धातुः, इदित्त्वादिदितो नुम् धातोरिति नुम्, अलच् प्रत्ययः, नस्यानुस्वार-परसवर्णौ । "श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्" इत्यमरः । मङ्गलो ग्रहभेदेऽप्यस्ति। मङ्गलाशब्दः सितदूर्वायामुमायामस्ति ।

पादोत्तर-शतम् उणादिप्रत्ययाः सन्ति । किन्तु मध्यसिद्धान्तकौमुद्यां केषाञ्चन एव प्रत्ययानां चर्चा कृता । डा. अर्कनाथ चौधरी इति नामकेन उणादिप्रकरणस्य व्याख्या मध्यमनोरमापूरणी व्याख्याता ॥ **इति शुभम्** ॥

हिन्दी

१५२. हन् धातु से अच् प्रत्यय हो तथा धातु को घुर आदेश होता है ।

१५३. तॄ धातु से ड्रि प्रत्यय होता है ।

१५४. ग्रह धातु से अनि प्रत्यय होता है ।

१५५. प्रथ धातु से अमच् प्रत्यय होता है ।

१५६. चर् धातु से अमच्-प्रत्यय होता है ।

१५७. मगि धातु से अलच्-प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथोत्तरकृदन्तप्रकरणम्

१२५३. उणादयो बहुलम्-३।३।१॥

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

१२५४. दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने-३।४।७३॥ एतौ निपात्येते । दशन्ति अस्मै दाशः। गां हन्ति अस्मै गोघ्नः अतिथिः ।

१२५५. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् । ३।३।१०॥ क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थे धातोरेतौ स्तः । मान्तत्वादव्ययत्वम् । कृष्णं द्रष्टुं याति । कृष्णं दर्शको याति।

मध्यमनोरमापूरणी

उणादयः इति—वर्तमाने, लट् इत्यतो वर्तमान इति, पुवः संज्ञायामित्यतश्च संज्ञायामित्यनुवर्तते । ततश्च 'धातोः' 'प्रत्ययः' कृदतिङिति चानुर्वतन्ते । **सूत्रार्थो भवति**—वर्तमाने संज्ञायाञ्च धातोः बहुलं प्रत्ययाः भवन्ति । ते च कृदन्ताः इत्यपि बोध्यम् । अत एव अष्टाध्यायीबहिर्भूतानामुणादीनां प्रत्ययसंज्ञा, कृदन्तत्वाच्च प्रातिपदिकसंज्ञा सिद्ध्यति । उणादिप्रत्ययाः कर्तरि कृत् इति नियमात् कर्त्रर्थे भवन्ति । बहुलग्रहणाद् केचिदविहिता अपि ग्राह्याः, इति दर्शयितुं कारिका 'संज्ञासु' इत्याद्यस्ति । तथाहिसंज्ञासु=यदृच्छाशब्देषु डित्थादिषु, धातुरूपाणि = सम्भवन्तः धातवः ऊह्याः, ततः परे=धातोः परे प्रत्ययाश्चोहनीयाः । कार्यात्= गुण वृद्ध्यादि विधाननिषेधरूपकार्यात् अनूबन्धं डकारककारादिकं, विद्यात् = ज्ञेयम् । उणादिषु एतत् पूर्वप्रतिपादितं शास्त्रं, शासितव्यमित्यर्थः । उणादिप्रत्ययाः शाकटायनप्रणीताः, बहुलग्रहणेन पाणिनिना अपि सङ्गृहीताः इति बोध्यम् । **दाशगोघ्नौ इति**—दाशगोघ्न-शब्दौ कप्रत्ययान्तौ निपात्येते सम्प्रदानेऽर्थे इत्यर्थः । **दाशः इति**—दाशृ दाने इत्यस्मात् क प्रत्ययः। **गोघ्नः इति**—गो अम् उपपदात् हन्धातोः क-प्रत्ययः, ककार इत्, गमहनेत्युपधालोपः, हो हन्तेरिति कुत्वम्, उपपदसमासः । गां स्वागतरूपां वाचं हन्ति = उच्चारयति अस्मै इति गोघ्नोऽतिथिः । **क्रियार्थायामिति**—क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था, तस्यामुपपदे अर्थात् क्रियोद्देशभूतक्रियावृत्तौ उपपदे इत्यर्थः । भविष्यति इत्यनुवर्तते । तुमुनि नकार इत्, उकार उच्चारणार्थः । ण्वुलि णलौ इतौ । **अत्रायं विशेषः**—'अव्ययकृतो भावे' इति वचनाद् भावे तुमुन् । ण्वुल् च कर्तरि एव । क्रियायामिति सप्तमीनिर्देशाद् तद्वाचकस्य यातिक्रियादेः तत्रोपपदं सप्तमीस्थमिति उपपदसंज्ञा । **मान्तत्वादिति**—कृन्मेजन्त इत्यनेन तुमन्तस्याव्ययसंज्ञा । कृष्णं **द्रष्टुमिति**—दृश् धातोस्तुमुन्, सृजिदृशोरिति अम्, दृअश् तुम् इति, यण्, शस्य व्रश्चेति षः, ष्टुत्वम् । प्रातिपदिकत्वात् सुः, अव्ययत्वात्सोर्लुक् । कर्तृकर्मणोरिति कृष्णशब्दात् प्राप्ता षष्ठी न लोकाव्ययेति निषिध्यते । कृष्णकर्मकभविष्यद्दर्शनार्थं यानमित्यर्थः । **कृष्णं दर्शको याति इति**—दृशेः ण्वुल्, वोरकादेशः, पुगन्तेति गुणः । न लोकाव्ययेति षष्ठ्याः निषेधः ।

हिन्दी

१२५३. उणादि प्रत्यय वर्तमान काल में संज्ञा में बहुलता से होते हैं । बहुलता को स्पष्ट करते हुए भाष्य में कहा गया है कि संज्ञाशब्दों में यथासम्भव धातु और प्रत्यय की कल्पना की जावे। कार्यानुसार प्रत्ययों में अनुबन्धों की कल्पना करें, यही उणादि में विधान है ।

१२५४. दाश और गोघ्न ये कप्रत्ययान्त निपातन हैं, सम्प्रदान अर्थ में ।

१२५५. क्रियार्थक क्रिया के उपपद होने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२५६. कालसमयवेलासु तुमुन्-३।३।१६७॥ कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।
१२५७. भावे-३।३।१८॥ सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् । पाकः ।
१२५८. अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्-३।३।१९॥ कर्तृभिन्ने कारके घञ् ।
१२५९. घञि च भावकरणयोः-६।४।२७॥ रञ्जेर्नलोपः । रागः । अनयोः किम्-रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः ।
१२६०. निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः-३।३।४१॥ एषु चिनोतेर्घञ्आदेश्च कः । उपसमाधानं राशीकरणम् । निकायः । आकायः । कायः। गोमयनिकायः ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृष्णकर्मकभविष्यद्दर्शनकर्तृकर्तृकं दर्शनप्रयोजनकं यानमित्यर्थः । अत्रेदमवधेयं यत् भावार्थकतुमुनो विषये ण्वुल् अपि विधीयते । तत्र ण्वुल्-विषये कर्तरि तृजादयो न भवन्ति, क्रियार्थक्रियोपपदे विषये पुनर्ण्वुल्विधानसामर्थ्यात् वाऽसरूपन्यायेन तृजादीनां निषेधात् । **कालसमयेति**—अक्रियोपपदेऽपि प्रवृत्त्यर्थमिदम् । एतेषु कालार्थेषूपपदेषु धातोः तुमुन् भवतीत्यर्थः । **भोक्तुमिति**—भुज् धातोस्तुमुन्, पुगन्तेति गुणः, चोः कुः, गस्य चर्त्वेन कः। मान्तत्वादव्ययसंज्ञा कृन्मेजन्त इत्यनेन, अव्ययत्वादव्ययादाप्सुप इति सुपो लुक् । **भावे इति**-भावो भावना क्रिया, सा च धातुत्वेन सकलधातुवाच्या भवति । क्रियासामान्यं सर्वधातुवाच्यं तद्विशेषः पाकादिः धातुविशेषः वाच्यः । इयं क्रिया भावशब्दवाच्या साध्यावस्थापन्ना सिद्धावस्थापन्ना च भवति । लिङ्गसंख्यान्वयायोग्यं साध्यावस्थापन्नं, लिङ्गसंख्यान्वययोग्यञ्च सिद्धावस्थापन्नम् इत्युच्यते । "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते" इति भाष्यवचनात् कृत्प्रत्ययाः धात्वर्थे सिद्धावस्थापन्ने जायन्ते इति संक्षेपः । तस्मिन्वाच्ये घञ् स्यादित्यर्थः । **पाक इति**—पच्-धातोर्घञ्, घञौ इतौ, उपधावृद्धिः, चजोः कुरिति चस्य कः, रुत्वविसर्गौ । **अकर्तरि इति**—कारके इति प्रत्ययार्थनिर्देशः, न तूपपदम् । **घञि चेति**— अनिदितामित्यतो नलोप इति रञ्जेश्चेत्यतो रञ्जेरिति चानुवर्तते । तदाह रञ्जेर्नलोपः इति । **राग इति**—रञ्ज् धातोरकर्तरि इति घञ्, चजोः कुरिति जस्य गः, घञि चेति नलोपः, उपधावृद्धिः । रञ्जनद्रव्यस्य संज्ञा अयं रागः । **रङ्ग इति**—भावकरणाभ्यां भिन्नेऽर्थे नलोपाभावः। **निवासचितीत्यादि**—अकर्तरि च कारके इति भावे इति चाप्यनुवर्तते । निवासादिष्वर्थेषु चिञ् धातोः घञ् । धातोश्चस्य च को भवतीत्यर्थः । **निवासे-निकाय इति**-निचीयतेऽत्रेति अधिकरणे घञ्, चस्य कः, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, आय् । **आकायः**—आचीयते इति कर्मणि घञ्, चितावर्थेऽयं प्रयोगः । **शरीरे**—कायः इति । उपसमाधाने **गोमयनिकाय इति**—गोमयानां राशिः इत्यर्थः ।

हिन्दी

१२५६. काल समय एवं वेला तथा इनके अर्थ वाले शब्दों के उपपद होने पर तुमुन् प्रत्यय होता है ।

१२५७. सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ वाच्य होने पर धातु से घञ् प्रत्यय होता है ।

१२५८. कर्तृभिन्न कारक अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है, संज्ञा गम्य होने पर ।

१२५९. घञ् परे भाव और करण अर्थ में रञ्ज् के न का लोप होता है ।

१२६०. निवास चिति शरीर और राशीकरण अर्थ में चिञ् धातु से घञ् होता है । तथा धातु के आदि वर्ण को क होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२६१. एरच्-३।३।५६॥ इवर्णान्तादच् । चयः । जयः ।

१२६२. ॠदोरप्-३।३।५७॥ ॠवर्णान्तादुवर्णान्तादप् । करः । गरः । शरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ।

वा. घञर्थे क-विधानम् । प्रस्थः । विघ्नः ।

१२६३. ड्वितः क्त्रिः-३।३।८८॥ भावे स्वभावात् ।

१२६४. क्त्रेर्मम्नित्यम्-४।४।२०॥ क्त्रिप्रत्ययान्तान्मम् निर्वृत्तेऽर्थे । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप्-उप्त्रिमम् ।

१२६५. ट्वितोऽथुच्-३।३।८९॥ अयमपि भावे । टुवेपृ कम्पने । वेपथुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

इवर्णान्तादिति—इशब्दस्य पञ्चम्येकवचने रूपम् एः इति, तच्च धातोर्विशेषणम्, विशेषणात्तदन्तविधिः । इवर्णान्ताद्धातोरच्प्रत्ययः स्याद् भावेऽकर्तरि च कारके इत्यर्थः । **चयः जयः इति**-चि-जिधातूभ्यामचि गुणेऽयादेशः । **ॠदोरिति**—ॠच्च उच्च तयोः समाहारः, सौत्रं पुस्त्वम्। पञ्चम्यर्थेऽत्र षष्ठी । ॠवर्णान्तादुवर्णान्ताच्च अप् स्यात् भावे अकर्तरि च कारके इत्यर्थः । **करः इति**—कृधातोरप्, गुणः, रपरत्वम् । गृधातोः शृधातोश्च गरः शरः इति । **यव इति**—युधातोरप्, गुणः, अव् । लूञ् स्तु पूङ् धातुभ्यः लवः स्तवः पवः इति । **प्रस्थ इति**-प्रतिष्ठन्तेऽस्मिन् धान्यानि इति प्रस्थः । प्रस्था इत्यस्मात् घञर्थे कः, आतो लोप इत्यालोपः। **विघ्न इति**—विहन्ति अस्मिन् मनांसीति अर्थे विपूर्वाद्हन् धातोः कः, गमहनेत्युपधालोपः। हो हन्तेरिति हस्य घः । **ड्वितः क्त्रिरिति**—डुः इत् यस्य, सः, तस्मात् क्त्रिः भवति, ककार इत् । **भावे स्वभावादिति**—अत्र भावे इत्येवानुवर्तते । यतो हि पक्त्रिममित्यादौ क्त्रिप्रत्ययान्तानां पाकादिष्वेव लोके प्रयोगो दृश्यते । **निर्वृत्तेऽर्थे इति**-निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः इत्यतो निर्वृत्ते इत्यनुवर्ततेऽत्र सूत्रे । **पक्त्रिमम् इति**—पाकेन निर्वृत्तमित्यर्थे भावे ड्वित इति, डुपचष् पाके इत्यस्मात् क्त्रिः, चोः कुः, क्त्रेर्मम् नित्यमिति मप्, सोरम्, पूर्वरूपम् । **उप्त्रिमम् इति**—वप् धातोः क्त्रिः, कित्त्वाद् वचिस्वपीति वस्य सम्प्रसारणम् उः, पूर्वरूपम्, मप्, सोरम् । **ट्वित इति**—टु इत् यस्य, सः, तस्मात् अथुच् भवति भावे इत्यर्थः ।

हिन्दी

१२६१. इवर्णान्तधातु से अच् प्रत्यय होता है ।

१२६२. ॠवर्णान्त एवं उवर्णान्तधातु से अप् प्रत्यय होता है । **वार्तिकः**—घञ् प्रत्यय के अर्थ में क प्रत्यय होता है ।

१२६३. ड्वित् (डु+इत्) धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है भाव में ।

१२६४. क्त्रिप्रत्ययान्त से मप् प्रत्यय होता है निर्वृत्त अर्थ में ।

१२६५. ट्वित् धातु से अथुच् प्रत्यय होता है भाव में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२६६. यजयाचविच्छप्रच्छरक्षो नङ्-३।३।९०॥ यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । रक्ष्णः ।

१२६७. स्वपो नन्-३।३।९१॥ स्वप्नः ।

१२६८. उपसर्गे घोः किः-३।३।९२॥ प्रधिः । उपधिः ।

१२६९. स्त्रियां क्तिन्-३।३।९४॥ स्त्रीलिङ्गे भावादौ क्तिन् । घञोऽपवादः । कृतिः । स्तुतिः ।

वा. ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः । तेन नत्वम् । कीर्णिः । गीर्णिः । धूनिः। लूनिः । पूनिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

यजयाच् इति—भावे इति, अकर्तरि च कारके इत्यनुवर्तते च । एभ्यो भावे कर्तृभिन्ने कारके च नङ् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **यज्ञ इति**—यज् धातोर्नङ्, स्तोः श्चुनेति नस्य ञः, जञोर्ज्ञः। **याच्ञा**—नङ्, श्चुत्वम्, टाप्, दीर्घः । **विश्नः प्रश्न इति**—विच्छ् धातोः प्रच्छधातोश्च नङि च्छ्वोः शूडनुनासिके चेति च्छोः शः । शात् इति श्चुत्वनिषेधः । प्रश्न इत्यत्र ग्रहिज्येति प्राप्तं सम्प्रसारणं 'प्रश्ने चासन्न' इति सूत्रज्ञापकान्न भवति । **रक्ष्ण इति**—नङि रषाभ्यामिति णत्वम्। **उपसर्गे घोः किरिति**—उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकाद् धातोः भावे अकर्तरि च कारके कि-प्रत्ययो भवति । ककार इत् । **प्रधिः इति**—प्रपूर्वाद् धाञ् धातोः किः, आतो लोप इत्यालोपे स्वादिकार्ये प्रधिः इति । उपपूर्वाद् धाञः **उपधिः** इति । एवमेव **आधिः व्याधिः अन्तर्धिः** इत्यादि रूपाणि भवन्ति । **स्त्रियामिति**—स्त्रीत्वविशिष्टे भावे अकर्तरि च कारके धातुमात्राद् क्तिन् भवतीत्यर्थः। **यत्तु प्रक्रियाग्रन्थव्यख्यातारः आहुः**—भाष्ये त्वधिकः कारोऽधिकार इति घञपि उदाहृत इति, तन्न, नहि तत्र स्त्रीत्वविशिष्टो भावोऽर्थः किन्तु पुंस्त्वविशिष्ट एवेति बोध्यम् । **घञोऽपवाद इति**—हलश्चेति वक्ष्यमाणघञोऽपवादः । वाऽसरूप इति, अत्र न प्रवर्ततेऽस्त्रियामित्युक्तत्वात्। **कृतिः स्तुतिरिति**—कृधातोः स्तुधातोश्च क्तिन्, कनौ इतौ । कित्त्वान्न गुणः । स्वादिकार्यम्। **ॠल्वादिभ्यः इति**—ॠकारान्ताद् ल्वादिभ्यश्च परे क्तिन् निष्ठावद् भवतीत्यर्थः । तेन रदाभ्या-मित्यादिना नत्वादिकं भवति । **कीर्णिः गीर्णिः इति**-कृ विक्षेपे गॄ निगरणे इत्याभ्यां स्त्रियां क्तिन्निति क्तिन्, ॠत इद्धातोः, रपरत्वम्, हलि चेति दीर्घः, निष्ठावद्भावे कृते रदाभ्यामिति तस्य नत्वे णत्वम् । धूञ् लूञ् पूञ् धातुभ्यः क्तिनि निष्ठावद्भावे च कृते ल्वादिभ्य इति तस्य नत्वे **धूनिः लूनिः पूनिः** इति ।

हिन्दी

१२६६. यज याच आदि धातुओं से कर्तृभिन्न कारक में और भाव में नङ् प्रत्यय होता है ।

१२६७. स्वप् धातु से भाव में नन् प्रत्यय होता है ।

१२६८. उपसर्गपूर्वक घुसंज्ञक धातु से भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में कि प्रत्यय होता है ।

१२६९. स्त्रीत्वविशिष्ट भाव एवं कर्तृभिन्न कारक में धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है ।

वा. ॠकारान्त एवं ल्वादि धातुओं से परे क्तिन् निष्ठावत् होता है । **वार्तिकः**—सम्पदादि से क्विप् प्रत्यय जानना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. सम्पदादिभ्यः क्विप् । सम्पत् । विपत् । आपत् । क्तिन्नपीष्यते । सम्पत्तिः। विपत्तिः । आपत्तिः ।

१२७०. ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च-३।३।९७।। एते निपात्याः ।

१२७१. कृञः श च-३।३।१००।। 'कृञः' इतियोगविभागः । कृञः क्यप् स्यात् शः च, चात् क्तिन् अपि भवति । कृत्या । प्रक्रिया । कृतिः ।

१२७२. इच्छा-३।३।१०१।। इषेर्निपातोऽयम् ।

१२७३. अप्रत्ययात्-३।३।१०२।। प्रत्ययान्तेभ्यः स्त्रियामकारप्रत्ययः स्यात् चिकीर्षा । पुत्रकाम्या ।

१२७४. गुरोश्च हलः-३।३।१०३।। गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामप्रत्ययः । ईहा । ऊहा ।

मध्यमनोरमापूरणी

सम्पदादिभ्यः क्विप्—भावे अकर्तरि च कारके इति योज्यम् । **सम्पत् इति**—सम्पूर्वाद् पद्-धातोः क्विप्, क्विपः सर्वापहारलोपः । सोर्लोपः, वाऽवसाने इति दस्य तः । **क्तिन्नपीष्यते इति**-अस्त्रियामिति प्रतिषेधेन स्त्रियां वासरूपविधेः अबाधात् इयमुक्तिः । बहुलग्रहणेनापि सिद्धमेतत् । **सम्पत्तिः इति**—क्तिनि दस्य चर्त्वे रूपम् । **ऊतियूतीति**—एते स्त्रियां क्तिन्नन्ताः निपात्यन्ते इत्यर्थः । **ऊतिरिति**—अव्धातोः क्तिन्, ज्वरत्वरेति अवयोरूठ् । **यूतिरिति**—युधातोः क्तिन्, धातोर्दीर्घश्च । जुधातोः जूतिरिति । **सातिरिति**—कृतात्वस्य षोऽन्तकर्मणी-त्यस्य क्तिनि द्यतिस्यतीति प्राप्तमित्वं निषिध्यते । हन्तेः हिनोतेर्वा **हेतिरिति** । नकारस्य इत्वे आद्गुणः । हिनोतेः क्क्ङति चेति गुणनिषेधाभावो निपातनाद् भवति । **कीर्तिरिति**—कीर्तिः इति-ण्यन्ताद् कॄत्धातोः ण्यासश्रन्थो युजिति बाधित्वा क्तिन् भवति निपातनात् । **कृत्येति**—कृधातोः क्यप्, ह्रस्वस्य पितीति तुक्, टाप् । **प्रक्रिया इति**—प्रपूर्वात् कृञः शः, रिङ् शयगिति रिङादेशः, इयङ्, प्रक्रिय इति । टापि प्रक्रियेति । **कृतिः इति**—कृञः इति योगविभागात् क्तिन् । **इच्छा इति**—इष्धातोः शः प्रत्ययो यगभावश्च निपात्यते । इषुगमीति षस्य छः, छे चेति तुक्, जश्त्वश्चुत्वचर्त्वानि, टाप्, दीर्घः । **अप्रत्ययात् इति**-अ इति लुप्तप्रथमाकम् । स्त्रियां भावे अकर्तरि च कारके प्रत्ययान्तेभ्यः अप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **चिकीर्षा इति**—सन्नन्त चिकीर्षधातोरप्रत्ययः, स्त्रीत्वाट्टाप । पुत्रकाम्य शब्दात् अप्रत्यये टापि पुत्रकाम्या इति । **गुरोश्चेति**-क्तिनोऽपवादोऽयम् । हलः इति धातोर्विशेषणम्, तदन्तविधिः । हलन्तधातोः गुरुत्वाभावात् गुरुमान् इति मत्वर्थो लक्ष्यते । अत उक्तं मूले 'गुरुमतो' इत्यादि ।

हिन्दी

वा. समादियुक्त पद से क्तिन् भी होता है ।

१२७०. ऊति यूति इत्यादि क्तिन्नन्त निपातन हैं ।

१२७१. कृञ् धातु से क्यप् प्रत्यय श प्रत्यय एवं कृञः इस योग विभाग से क्तिन् भी होते हैं स्त्रीत्वार्थ में ।

१२७२. इष् धातु से शप्रत्यान्त इच्छा निपातन होता है ।

१२७३. भाव और कर्तृभिन्न कारक में प्रत्ययान्त धातुओं से 'अ' प्रत्यय होता है ।

१२७४. गुरुमान् हलन्त धातु से स्त्रीत्वार्थ में 'अ' प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२७५. षिद्भिदादिभ्योऽङ्-३।३।१०४॥ जॄष् जरा । 'ऋदृशोऽङि गुणः' । त्रपूष्-त्रपा । भिदा । विदारणे एवायम् । भित्तिरन्या । छिदा । मृजा ।
ग. सू. क्रपेः सम्प्रसारणञ्च । कृपा ।
१२७६. आतश्चोपसर्गे-३।३।१०६॥ अङ् स्यात् । उपदा । अन्तर्धा ।
१२७७. ण्यासश्रन्थो युच्-३।३।१०७॥ अकारस्यापवादः । कारणा ।
१२७८. रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम्-३।३।१०८॥ प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका । क्वचिन्न । शिरोऽर्त्तिः ।
वा. धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः । आसिका ।

मध्यमनोरमापूरणी

षिद्भिदादिभ्य इति—भावेऽकर्तरि च कारके इति योज्यम् । **जरा इति**—जॄष् धातुः षित्, अङ्-प्रत्ययः, ऋदृशोऽङीति गुणः, रपरत्वम्, टाप्, दीर्घः । **भिदा इति**—विदारणे एवायमिति वार्तिकम् । विदारणमूर्ध्वविदलनम् । **छिदा इति**—छिदिर् द्वैधीकरणे इत्यस्मादङि रूपम् । **मृजा इति**—मृज् धातोः अङि टापि दीर्घे च रूपम् । **क्रपेरिति**—क्रप्धातोः अङ् प्रत्ययः प्रकृतेः सम्प्रसारणञ्चेत्यर्थः । गणसूत्रमिदं भाष्ये दृष्टम् । **कृपा इति**—क्रप् धातोः क्रपेः सम्प्रसारणमिति अङ् प्रत्ययः, धातो रेफस्य सम्प्रसारणम् ऋकारः, सम्प्रसारणाच्च, स्त्रीत्वाट्टाप्, सवर्णदीर्घः, सोः हल्ङ्यादिना लोपः । **आतश्चोपसर्गे इति**—उपसर्गे उपपदे आदन्ताद् धातोरङ् स्यात् स्त्रियां भावे अकर्तरि च कारके इत्यर्थः । **उपदा इति**—उपपूर्वाद्दा-धातोरङ्, आतो लोप इटि चेत्या-लोपः, टाप् । **अन्तर्धा इति**—अन्तःपूर्वको धाधातुः । अन्तरित्यस्योपसर्गत्वाभावात् श्रदन्तरो-रुपसर्गवद्वृत्तिरिति उपसर्गत्वाद् अङ् । **ण्यासेति**—ण्यन्तेभ्य आसश्रन्थधातूभ्याञ्च युच् स्यात् स्त्रियां भावादिषु इत्यर्थः । **कारणा इति**—ण्यन्तकारि धातोर्युच्, युवोरनाकौ इत्यनादेशः, णेरनिटीति णिलोपः, टाप्, णत्वम् । आसः **आसना** श्रन्थेः **श्रन्थनेति** बोध्यम् । **रोगाख्यायामिति-**स्त्रियां धातोर्बहुलं ण्वुल् स्यात्, प्रत्ययान्तं चेद्रोगस्य संज्ञा इत्यर्थः । **प्रच्छर्दिका-**प्रपूर्वात् छर्द वमने इत्यस्मात् ण्वुल्, वोरकादेशः, टाप्, अत इत्वम् । वमिः इत्यर्थः । **प्रवाहिका-**अतिसारः। प्रवाहयतेः ण्वुल् । **विचर्चिका=**पामा रोगः । **क्वचिन्नेति**—शिरोऽर्त्तिः, बहुलग्रहणात् न ण्वुल्। अपि तु अर्देः क्तिन्, **अर्त्तिरिति** । शिरो वेदनेत्यर्थः । **धात्वर्थेति-**धात्वर्थे निर्देष्टव्ये धातोः स्वार्थे ण्वुल् स्त्रियामेवेत्यर्थः । आसिका=शयनम्, आस् धातोर्ण्वुल्, वोरकादेशः, टाप्, अत इत्वम्।

हिन्दी

१२७५. षित् और भिदादि धातुओं से अङ् प्रत्यय होता है ।
ग. सू. क्रप् धातु से अङ् प्रत्यय होता है तथा धातु को सम्प्रसारण होता है ।
१२७६. उपसर्ग उपपद होने पर आदन्त धातु से अङ् प्रत्यय होता है ।
१२७७. ण्यन्त आस एवं श्रन्थ धातु से स्त्रीत्वार्थ में युच् प्रत्यय होता है ।
१२७८. धातु से ण्वुल् होता है बहुल प्रकार से, रोग अर्थ गम्य होने पर ।
वा. धात्वर्थ निर्देश करना हो तो स्वार्थ में ण्वुल् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे ॥ पचिः । पचतिः ।
वा. वर्णात्कारः ॥ निर्देश इत्येव ।
अकारः । ककारः ।
वा. रादिफः ॥ रेफः ।
१२७९. नपुंसके भावे क्तः-३।३।१४४॥
१२८०. ल्युट् च-३।३।१२५॥ हसितम् । हसनम् ।
१२८१. करणाधिकरणयोश्च-३।३।११७॥ ल्युट् । अनुमानः । अनुमानी ।
१२८२. पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण-३।३।११८॥
१२८३. छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य-६।४।९६॥ द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे । दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मिन् इत्याकरः ।

मध्यमनोरमापूरणी

इक्श्तिपाविति—धात्वर्थे निर्देष्टव्ये धातोः इक्श्तिपौ प्रत्ययौ भवतः । **पचतिरिति**—पच्धातोः श्तिप्, श॒ पावितौ । सार्वधातुकत्वाच्छप् । **रादिति**—रवर्णे वक्तव्ये रात् इफ प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । वाऽसरूपन्यायात् कारप्रत्ययोऽपि भवति । **रेफ इति**—रात् इफः, आद्गुणः । **हसितमिति**—हस्धातोः भावे क्तः, इट् । नपुंसके सोरम् । **करणाधिकरणयोश्चेति**—अर्थनिर्देशः, न तूपपदम् । ल्युट् भवतीत्यर्थः । अनुपूर्वात् माधातोः 'अनुमीयतेऽनेन अग्न्यादिः' इति करणे ल्युट् । योरनादेशः । अनुमानः इति । स्त्रियां ल्युटः टित्त्वान्ङीप्, अनुमानी इति । **पुंसि संज्ञायामिति**—करणाधिकरणयोः इत्यनुवर्तते । पूर्वसूत्राऽपवादोऽयम् । पुँल्लिङ्गयोः करणाधिकरणयोरर्थयोः धातोर्घः स्यात्, प्रत्ययान्तेन चेत् संज्ञा बोध्यते, इत्यर्थः । **छादेर्घे इति**-'अद्व्युपसर्गस्य' इतिच्छेदः । खचि ह्रस्वः इत्यतः ह्रस्व इति 'ऊदुपधायाः' इत्यतश्च उपधायाः इत्यनुवर्तते । **तथाहि**—द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेरुपधायाः ह्रस्वो भवति घे परे इत्यर्थः सम्पद्यते । **दन्तच्छद इति**—दन्ताश्छाद्यन्ते अनेन इत्यर्थे घः, णेर्लोपः, छादेर्घे इत्युपधाह्रस्वः। गतिकारकोपदानामिति समासः, सुपो लुक् । दन्तछद इति, छे चेति तुक्, जश्त्वश्चुत्वचर्त्वानि। दन्तच्छदः ओष्ठ इत्युच्यते । **आकर इति**—आङ्पूर्वात् कृञः घञ्, गुणः, रपरत्वम् । आकर उत्पत्तिस्थानं खनिर्वा ।

हिन्दी

वा. धातुस्वरूप निर्देश करना हो तो धातु से इक् और श्तिप् प्रत्यय होते हैं ।
वा. वर्ण निर्देश करना हो तो वर्ण से कार प्रत्यय होता है ।
वा. र वर्ण से परे इफ प्रत्यय होता है ।
१२७९. नपुंसक में भाव अर्थ में धातु से क्त प्रत्यय होता है ।
१२८०. नपुंसक लिङ्ग में भाव अर्थ में धातु से ल्युट् भी होता है ।
१२८१. करण और अधिकरण अर्थ में धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है ।
१२८२. करणाधिकरणार्थक पुँल्लिङ्ग में धातु से घ प्रत्यय होता है, संज्ञा बोध्य होने पर ।
१२८३. द्विप्रभृति उपसर्गरहित छादि धातु की उपधा को ह्रस्व होता है । 'घ' प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२८४. अवे तृस्त्रोर्घञ्-३।३।१२०॥ अवतारः । अवस्तारो जवनिका ।
१२८५. हलश्च-३।३।१२१॥ हलन्ताद् घञ् । घाऽपवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिकमित्यपामार्गः ।
१२८६. ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्-३।३।१२६॥ एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् । तयोरेवेति भावे कर्मणि च । कृच्छ्रे-दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे-ईषत्करः । सुकरः ।
१२८७. आतो युच्-३।३।१२८॥ खलोऽपवादः । ईषत्पानो सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ।
१२८८. आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः-३।३।१७०॥ अवश्यङ्कारी । शतंदायी ।

मध्यमनोरमापूरणी

तृस्त्रोर्घञिति—तृस्तॄ इत्याभ्यां घञ् स्यात् पुंसि संज्ञायां प्रायेण, अव इत्युपपदे सति इत्यर्थः। **अवतार इति**—अवपूर्वात् तृधातोः घञ्, घञौ इतौ । ञित्त्वात् अचो ञ्णितीति वृद्धिः, रपरत्वम् । **अवस्तार इति**— अवपूर्वात् स्तॄ धातोर्घञ्, ॠकारस्य वृद्धिः, रपरत्वम् । कथमवतारो नद्याम् इति चेत् प्रायग्रहणेन क्वचिदसंज्ञायामपि भवति । **घापवाद इति**—रम् धातोः अधिकरणे घञ्, अत उपधाया इत्युपधावृद्धिः । **अपामार्ग इति**—अपपूर्वान्मृज्-धातोः करणे हलश्चेति घञ्, मृजेर्वृद्धिः इति धातोर्ऋकारस्य वृद्धिः, 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् इति उपसर्गाकारस्य दीर्घः, अपामार्ज् अ इति, चजोः कुरिति कुत्वेन जस्य गः । **ईषद्दुः सु इति**—करणाधिकरणयोरिति निवर्तते । अत्र सूत्रे कृच्छ्रं=दुःखं दुरो विशेषणम् । अकृच्छ्रं= सुखम्, तद् इतरयोः ईषत् सु इत्यनयोः विशेषणम् । एवञ्च दुःखसुखार्थेषु ईषत् दुःसु इत्येतेषूपपदेषु धातोः खल् स्यादित्यर्थः । खलौ इतौ । अकारः शिष्यते । **दुष्करः कटो भवतेति**- दुर्पूर्वात् कृञः खल्, गुणो रपरत्वम्, रस्य विसर्गे इदुदुपधस्येति षत्वम् । न लोकाव्ययेति षष्ठीनिषेधात् कर्तरि भवतस्तृतीया । **ईषत्कर इति**—सुखेन कर्तुंशक्य इति । **सुकर इति**- सुपूर्वात् कृञः खल्-प्रत्ययः, सार्वधातुकेत्यादिना गुणः, रपरत्वं, सोरुत्वविसर्गौ । **आतो युजिति**- ईषदादयोऽनुवर्तन्ते । 'कर्तृकर्मणोः' इति नानुवर्तते अस्वरितत्वात् । कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषदादिषूपपदेषु आदन्ताद्धातोः युच् भवतीत्यर्थः । खलोऽपवादोऽयम् । अत्र "क्तल्युट् तुमुन्खलर्थेषु वाऽसरूपविधिर्न" इत्युक्तत्वाद् वाऽसरूपविधिर्न भवति । **ईषत्पान इति**— ईषदुपपदात् पाधातोर्युच्, योरनादेशः । **दुष्पान इति**—दुस्पूर्वात् पातेर्युच् । सस्य रुत्वविसर्गयोः कृतयोः इदुदुपधस्येति षः । **आवश्यकेति**—अवश्यं भाव आवश्यकम्, अधमर्णस्य भाव आधमर्ण्यमिति । कर्तरि कृत् इत्यनुवर्तते । अवश्यंभावविशिष्टे अधमर्णभावविशिष्टे च कर्तरि वाच्ये धातोर्णिनिः भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

१२८४. अवपूर्वक तॄ और स्तॄ धातु से पुँल्लिङ्ग एवं संज्ञा में 'घञ्' होता है ।
१२८५. करणाधिकरण में हलन्त धातु से घञ् होता है, संज्ञा गम्य होने पर ।
१२८६. दुःखसुखार्थक ईषत् दुस् व सु उपपद होने पर धातु से 'खल्' प्रत्यय होता है ।
१२८७. कृच्छ्राकृच्छ्रार्थक ईषत् आदि उपपद होने पर आदन्त धातु से युच् प्रत्यय होता है ।
१२८८. आवश्यक एवं आधमर्ण्य विशिष्ट कर्ता के वाच्य होने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२८९. कृत्याश्च-३।३।१७१।। तथा धातोः । अवश्यं सेव्यो हरिः । शतं देयम्।
१२९०. क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्-३।३।१७४।। आशिषि । वातिः=वायुः । शिवो देयादेनं शिवदत्तः ।
१२९१. अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा-३।४।१८।। प्राचामिति पूजार्थम् । प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा । दो दद्घोः । अलं दत्त्वा । घुमास्थेतीत्वम्। पीत्वा खलु । अलंखल्वोः किम्-मा कार्षीः । प्रतिषेधार्थयोः किम्-अलङ्कारः ।
१२९२. समानकर्तृकयोः पूर्वकाले-३।४।२१।। समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा । 'अव्ययकृतो भावे' । भुक्त्वा व्रजति ।

मध्यमनोरमापूरणी

अवश्यङ्कारी—अवश्यमुपपदात् कृञ् धातोर्णिनिः, णित्त्वादचो ञ्णितीति वृद्धिः, रपरत्वम् । अवश्यम्कारिन् इति, सौ सौ चेति दीर्घः, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । मयूरव्यंसकादित्वात् समासोऽवश्यंशब्दस्य । **शतंदायीति**—शतं ददातीत्यर्थे णिनिः, आतो युगिति युक् । **कृत्याश्चेति**-आवश्यकाधमर्ण्ययोरित्यनुवर्तते । कृत्याः प्रत्ययाः एतयोरुपाधिभूतयोर्धातोः भवन्तीत्यर्थः । **शतंदेयमिति**—दाधातोः यत् प्रत्ययः । ईद्यतीति आत ईत् । सार्वधातुकेति गुणः । **क्तिच्क्ताविति**—आशिषि लिङ्लोटौ इत्यत आशिषि इत्यनुवर्तते । धातोः आशिषि अर्थे क्तिच्क्तप्रत्ययौ भवतः, प्रत्ययान्तेन संज्ञा चेद्गम्यते इत्यर्थः । वातिः=वायुरिति । वाधातोः क्तिच् । **शिवदत्तः इति**—शिवो देयादेनमित्यर्थे शिवोपपदात् दाधातोः क्तः, दो दद्घोः, दस्य चर्त्वम् । **प्राचामिति**—पूजार्थम् आचार्याणां प्राचीनानाम् । 'अव्ययकृतो भावे' इति वचनात् क्त्वाप्रत्ययो भावे भवति । **अलं दत्त्वा इति**—अलमुपपदात् दाधातोः क्त्वा, ककार इत् । दो दद्घोरिति ददादेशः, दस्य चर्त्वम् । अलमित्यनेन न उपपदसमासः, ल्यपः प्रसङ्गात् । **पीत्वा खलु**—पाधातोः क्त्वा, घुमास्थागापेति आकारस्येत्वम्, क्त्वातोसुन्निति अव्ययसंज्ञा, सोरव्ययादाप्सुप इति लुक् । **मा कार्षीरिति**—मा इत्यस्य प्रतिषेधार्थकत्वात् क्त्वा प्रसज्येत यदि अलं खल्वोरिति नोच्येत । **प्रतिषेधार्थयोरिति किम्-अलङ्कार इति**—अत्रालंपदं न प्रतिषेधार्थकमतो न क्त्वा । **समानकर्तृकयोरिति**—समानः कर्ता ययोः धात्वर्थयोः, तत्र पूर्वकाले धात्वर्थे वर्तमानाद्धातोः क्त्वाप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । अत्र समानकर्तृकयोरिति निर्धारणे षष्ठी । अव्ययकृतो भावे इति वचनात् अयमपि भावे भवति । **भुक्त्वा व्रजति**—भोजनक्रियायाः व्रजनक्रियायाश्चैकः कर्ता । तत्र पूर्वकालिकाद् भोजनादुत्तरकालिकं व्रजनमित्यर्थः प्रतीयते, अतः भुजः क्त्वा । कित्त्वान्न गुणः । चोः कुरिति जस्य गः, गस्य चर्त्वम् । अव्ययत्वात्सुपो लुक् ।

हिन्दी

१२८९. उक्त अर्थ में कृत्य प्रत्यय भी होते हैं ।
१२९०. संज्ञा वाच्य होने पर आशिष् अर्थ में धातु से क्तिच् और क्तप्रत्यय होते हैं ।
१२९१. प्रतिषेधार्थक अलं तथा खलु उपपद होने पर क्त्वा प्रत्यय होता है ।
१२९२. समानकर्तृकधात्वर्थ में पूर्वकालिक क्रियावाची धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्वित्वमतन्त्रम् । स्नात्वा पीत्वा व्रजति ।

१२९३. न क्त्वा सेट्-१।२।१८।। सेट् क्त्वा किन्न् । शयित्वा । सेट् किम्-कृत्वा।

१२९४. रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च-१।२।२६।। इवर्णोवर्णोपधाद्धलादेरलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः । द्युतित्वा, द्योतित्वा । लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात् किम्-वर्तित्वा । रलः किम्-सेवित्वा । हलादेः किम्-एषित्वा । सेट् किम्-भुक्त्वा ।

१२९५. उदितो वा-७।२।५६।। उदितः परस्य क्त्व इड्वा । शमित्वा, शान्त्वा । देवित्वा । च्छ्वोः शूडनुनासिके चेति ऊठ् । द्यूत्वा । दधातेर्हिः । हित्वा ।

१२९६. जहातेश्च क्त्वि-७।४।४३।। हित्वा । हाङस्तु-हात्वा ।

मध्यमनोरमापूरणी

द्वित्वमतन्त्रमिति—सूत्रे समानकर्तृकयोरिति द्विवचनं न विवक्षितम् । अतः अधिकयोगेऽपि पूर्वकाले विद्यमानधातुभ्यः क्त्वा भवति । स्नात्वा पीत्वा दत्त्वा व्रजतीत्यत्र त्रिभ्यः धातुभ्यः क्त्वा भवति । **न क्त्वा इति**—असंयोगाल्लिट् किदित्यतः कित् इत्यनुवर्तते । **शयित्वा इति**-शीङ्धातोः क्त्वा, आर्धधातुकत्वादिट्, न क्त्वा सेडिति कित्त्वनिषेधात् सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, अय् । **कृत्वेति**—सेट्त्वाभावात् न कित्त्वनिषेधः, तेन क्ङिति चेति गुणनिषेधः । **रलो व्युपधादिति**—न क्त्वा सेडित्यतः सेडिति, नोपधात् इति 'वा' इत्यनुवर्तते। उश्च इश्च वी, वी उपधे यस्य, तस्मात् रलन्तात् धातोः हलादेश्च परौ सेटौ क्त्वासनौ वा कितौ स्तः । **द्युतित्वा, द्योतित्वा इति**—द्युतेः क्त्वा, इट्, वा कित्त्वं, कित्त्वपक्षे क्ङिति चेति गुणनिषेधः । कित्त्वाभावे पुगन्तेति गुणः । **वर्तित्वा इति**—व्युपधत्वाभावात् नास्य प्रवृत्तिः । न क्त्वा सेडिति कित्त्वाभावात् गुणो भवति । **सेवित्वा इति**—रलन्तत्वाभावात् नास्य प्रवृत्तिः। **एषित्वेति**—इषः क्त्वा, इट्, हलादित्वाभावात् नास्य प्रवृत्तिः । न क्त्वेत्यस्य प्रवृत्त्या पुगन्तेति गुणः । **भुक्त्वा इति**—सेट्त्वाभावात् न रलो व्युपधादिति न च 'न क्त्वा सेडिति' प्रवर्तते । कित्त्वान्न गुणः । **शमित्वेति**—शमुधातोः क्त्वा, उदितो वेति इट् । पक्षे शम् त्वा इति जाते अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङितीति उपधादीर्घः, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । दिवुधातोरिट्पक्षे **देवित्वेति** । न क्त्वेति कित्त्वनिषेधात् गुणः । इडभावे दिव् त्वा इति जाते च्छ्वोः शूड् इति वस्य ऊठ्, यण्, द्यूत्वा इति । **हित्वा इति**—धाधातोः क्त्वा, दधातेर्हिः इति धातोः हिः आदेशः। **जहातेश्चेति**—दधातेर्हिः इत्यतः 'हिः' इत्यनुवर्तते । ओहाक् त्यागे इत्यस्य क्त्वाप्रत्ये परे हिः आदेशो भवतीत्यर्थः । **हित्वा इति**— ओहाक् त्यागे, क्त्वाप्रत्ययः, हि इत्यादेशः । ओहाङ् इत्यस्य जिहातेरिति भवति, सूत्रे तस्य निर्देशाभावात् न हिः आदेशः ।

हिन्दी

१२९३. सेट् क्त्वा कित् नहीं होता है ।

१२९४. उकार इकारोपध रलन्त तथा हलादि धातु से परे सेट् क्त्वा कित् होता है विकल्प से ।

१२९५. उदित् धातु से परे क्त्वा प्रत्यय को इट् होता है विकल्प से ।

१२९६. ओहाक् धातु को क्त्वा प्रत्यय परे 'हि' आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१२९७. समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्-७।१।३७॥ अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः । तुक् । प्रकृत्य । अनञ् किम्-अकृत्वा । अव्ययपूर्वपदात् किम्-परमकृत्वा ।

१२९८. वा ल्यपि-६।४।३८॥ अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपः । स च व्यवस्थितः । मान्तानिटां वा । नान्तानिटां नित्यम् । आगम्य । आगत्य । प्रहत्य । अदो जग्धिः । प्रजग्ध्य ।

१२९९. न ल्यपि-६।४।६९॥ घुमास्थेतीत्वम् । प्रदाय । प्रमायेत्यादि ।

१३००. आभीक्ष्ण्ये णमुल् च-३।४।२२॥ पौनः पुन्ये द्योत्ये क्त्वाविषये णमुल् क्त्वा च ।

मध्यमनोरमापूरणी

समासेऽनञ्पूर्वे इति—अनञ्पूर्व इति पर्युदासः, तेन नञ्भिन्नं नञ्सदृशमव्ययं गृह्यते । अतः वृत्तौ अव्ययपूर्वपदे इति निर्दिष्टम् । **प्रकृत्य इति**—प्रपूर्वात् कृधातोः क्त्वाप्रत्ययः । कुगतिप्रादयः इति प्र इत्यस्य कृत्वा इत्यनेन समासः । समासेऽनञ्पूर्वे इति क्त्वो ल्यप्, लपौ इतौ । ह्रस्वस्येति तुक् । अव्ययत्वात्सुपो लुक् । **अकृत्वा इति**—नञ्समासत्वात् न ल्यप् । **परमकृत्वेति**—समासेऽपि अव्ययपूर्वपदत्वाभावान्न ल्यप् । **वा ल्यपीति**—अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनुनासिकस्य लोपो ल्यपि वा इत्यर्थः । व्यस्थितविभाषा इयम् । तेन मान्तानाम् अनिटामनुनासिकलोपो विकल्पेन भवति । नान्तानाञ्च नलोपो नित्यंभवतीति बोध्यम् । **आगम्य इति**—आपूर्वात् गमेः क्त्वा, गतिसमासः, क्त्वो ल्यप्, मलोपो न । मलोपपक्षे ह्रस्वस्येति तुक् । **प्रहत्येति**—प्रपूर्वाद् हन्धातोः क्त्वा, गतिसमासे क्त्वो ल्यप्, वा ल्यपीति व्यवस्थितविभाषात्वाद् नलोपो नित्यम्, ह्रस्वस्येति तुक् । **प्रजग्ध्येति**—प्रपूर्वाददधातोः क्त्वा, ल्यप्, अदो जग्धिरिति जग्धिः अदेः । **न ल्यपीति**—'घुमास्थागापाजहातिसाम्' इत्यनुवर्तते । ल्यपि परे घुमास्थादीनामीत्त्वं न भवतीत्यर्थः । **प्रदायेति**—प्रपूर्वाद् दाधातोः क्त्वाप्रत्यये गतिसमासे समासेऽनञ्पूर्वे इति क्त्वो ल्यपि घुमास्था इति प्राप्तमीत्त्वं न ल्यपीति निषिध्यते । **प्रमायेति**—प्रपूर्वात् मीञः मिञो वा मीनातिमिनोतीति ल्यप्विषये आत्वम् । प्रमा इत्यस्मात् क्त्वा, क्त्वो ल्यप्, गतिमासः, घुमास्थेति प्राप्तम् ईत्त्वं न ल्यपीति निषिद्ध्यते । **आभीक्ष्ण्ये णमुल् चेति**—समानकर्तृकयोः इत्युत्तरसूत्रमिदम्, अतः क्त्वा-विषये इत्युक्तम् । आभीक्ष्ण्यं पौनः पुन्यं, तद्विशिष्टेऽर्थे वर्तमानाद्धातोः णमुल् क्त्वा-प्रत्ययश्च भवतः इत्यर्थः ।

हिन्दी

१२९७. नञ्भिन्न अव्ययपूर्वपद रहने पर समास में क्त्वा को ल्यप् होता है ।

१२९८. अनुदात्तोपदेश यमरमादि धातु एवं वन, तनोत्यादि धातुओं के अनुनासिक का लोप होता है विकल्प से ल्यप् परे रहते ।

१२९९. ल्यप् परे घुमास्था इत्यादि सूत्र से प्राप्त ईत्त्व नहीं होता है ।

१३००. पौनः पुन्य द्योतित होने पर क्त्वा के विषय में णमुल् और क्त्वा दोनों होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३०१. नित्यवीप्सयोः-८।१।४।। आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात् । आभीक्ष्ण्ये=तिङन्तेषु अव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च । पचति-पचति । स्मारं स्मारं नमति गुरुम् । स्मृत्वा स्मृत्वा । पायं पायम् । भोजं भोजम् । श्रावं श्रावम्।
१३०२. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्-३।४।२७।। एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्यैवंभूतश्चेत् कृञ् । व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्हम् इत्यर्थः । अन्यथाकारम् । एवङ्कारम् । कथङ्कारम् । इत्थङ्कारं भुङ्क्ते । इत्थं भुङ्क्ते इत्यर्थः। सिद्धेति किम्-शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ।
१३०३. यावति विन्दजीवोः-३।४।३०।। यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते ।
१३०४. निमूलसमूलयोः कषः-३।४।३४।। कर्मण्युपपदे ।

मध्यमनोरमापूरणी

नित्यवीप्सयोरिति—इह नित्यता आभीक्ष्ण्यमस्ति । आभीक्ष्ण्यञ्च क्रियाधर्मः । यां क्रियां कर्ता प्राधान्येन अनुपरमन् करोति तन्नित्यम् । अत उक्तं वृत्तौ आभीक्ष्ण्ये वीप्सायाञ्चेत्यादि । **पचति**-पचति इति तिङन्तेषु आभीक्ष्ण्यम्, तस्मिन् द्योत्ये द्वित्वं भवति । **स्मारम् स्मारमिति**-स्मृधातोः आभीक्ष्ण्ये ण्मुल् चेति णमुल्, णकारोकारलकाराः इतः । णित्त्वाद् अचो ञ्णितीति वृद्धिः आकारः, रपरत्वम्, स्मारम् इति मान्तम्, कृन्मेजन्त इति अव्ययत्वात् सुपो लुक् । नित्यवीप्सयोरिति स्मारम् इत्यस्य द्वित्वम् । क्त्वापक्षे स्मृत्वा इत्यस्य द्वित्वम् । **पायं पायमिति**—पाधातोर्णमुल्, आतो युगिति युक् । पायम् इत्यस्य नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वम् । भुज्धातोर्णमुलि, लघूपधगुणे द्वित्वे **भोजं भोजमिति** । **श्रावं श्रावमिति**—श्रु धातोर्णमुल्, अचो ञ्णिति, आवादेशः, श्रावम् इत्यस्य द्वित्वम् । **अन्यथैवमित्यादि**— अन्यथादिषूपपदेषु कृञः णमुल् प्रत्ययो भवति, सिद्धाप्रयोगश्चेत्,=सिद्धः अप्रयोगः=प्रयोगाभावः यस्य कृञः सः इत्यर्थः । ननु कृञः अप्रयोगे कथं तस्यार्थस्य बोधः इति चेत्-व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्हः इति ज्ञेयम् । अर्थात् अर्थस्य अविवक्षितत्वेऽपि णमुल् प्रत्ययसाधुत्वाय धातोः प्रयोगो भवति । **अन्यथाकारम्**—अन्यथोपपदात् कृञः णमुल्, अचो ञ्णितीति वृद्धिः, रपरत्वम्, मान्तत्वादव्ययसंज्ञा, सुपो लुक्। **सिद्धेति किम्**-सिद्धा प्रयोगश्चेदिति किमर्थमिति भावः । **यावति इति**—यावच्छब्दे उपपदे विन्दजीव धातुभ्यां णमुल् स्यादित्यर्थः । विन्द इति विदेर्लाभार्थकस्यानुकरणम्, शे मुचादीनामिति नुमि विन्दतीति तस्य भवति । **यावद्वेदम् इति**-विद्धातोर्णमुल्, पुगन्तेति गुणः । यावज्जीवमधीते=यावद् जीवति तावद् अधीते इत्यर्थः । **निमूलसमूलेति**-कर्मणोः निमूलसमूलयोरुपपदयोः कषेर्णमुलित्यर्थः । अत्र पूर्वकाल इति न सम्बद्ध्यते ।

हिन्दी

१३०१. आभीक्ष्ण्य और वीप्सा अर्थ द्योत्य होने पर पद को द्वित्व होता है ।

१२०२. अन्यथा एवम् आदि उपपद होने पर पूर्व क्रियावाचक कृ धातु से णमुल् होता है, यदि कृञ् का प्रयोग अन्यथा सिद्ध हो ।

१२०३. यावत् उपपद रहने पर विद् एवं जीव् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।

१३०४. निमूल और समूल कर्मत्वविशिष्ट के उपपद होने पर कष धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३०५. कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः-३।४।४६।। यस्माण्णमुलुक्तः स एवानुप्रयोक्तव्यः । निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति । निमूलंसमूलं कषतीत्यर्थः ।

१३०६. शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः-३।४।३५।। एषु कर्मसु पिषेर्णमुल् । शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः । चूर्णपेषम् । रूक्षपेषम् ।

१३०७. समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः-३।४।३६।। कर्मणीत्येव । समूलघातं हन्ति । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं गृह्णाति । जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः ।

१३०८. करणे हनः-३।४।३७।। पादघातं हन्ति । पादेन हन्तीत्यर्थः ।

१३०९. स्नेहने पिषः-३।४।३८।। स्निह्यते येन तस्मिन् करणे पिषेर्णमुल् । उदपेषं पिनष्टि । उदकेन पिनष्टीत्यर्थः ।

१३१०. हस्ते वर्तिग्रहोः-३।४।३९।। हस्तार्थे करणे। हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्तम् । हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्राहम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

निमूलकाषं कषति—निमूल अम् उपपदात् कष्धातोर्णमुल्, अत उपधायाः । उपपदसमासः, सुपो लुक् । **शुष्कचूर्णेति**—शुष्कचूर्णरूक्ष इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु पिषेर्णमुल् स्यादित्यर्थः । **शुष्कपेषं पिनष्टि इति**—शुष्क अम् इत्युपपदात् पिष् धातोर्णमुल्, पुगन्तेति गुणः, उपपदसमासः । **समूलाकृतेति**—समूल अकृत जीव इत्येषु कर्मसूपपदेषु यथासंख्यं हन्कृञ्ग्रहधातुभ्यः णमुल् स्यादित्यर्थः । **समूलघातं हन्ति इति**—समूलं हन्तीत्यर्थे समूलोपपदात् हनः णमुल्, अत उपधायाः, 'हनस्तो चिण्' इति नस्य तः, हो हन्तेरिति हस्य घः । **जीवग्राहमिति**—ग्रहेर्णमुल्, अत उपधाया इति वृद्धिः । अत्र जीवशब्दः न भावघञन्तः, अपि तु जीवति इति जीवः इति कर्तरि क-प्रत्ययान्तः । अत एव जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः संगच्छते । भावघञन्तत्वे तु प्राणधारणं गृह्णातीत्यर्थः स्यात् । **करणे हनः इति**—करणे उपपदे हन्तेर्णमुल् स्यात् इत्यर्थः। अहिंसार्थानां च समानकर्मकाणामिंति णमुलं वक्ष्यति । **पादघातम् इति**—पाद टा उपपदात् हन्तेः णमुल्, नस्य तः, कुत्वमुपधावृद्धिः । **स्नेहने इति**—स्नेहनवाचिनि करणे उपपदे पिष-धातोर्णमुल् स्यादित्यर्थः । **उदपेषम् इति**—उदकेन पिनष्टीत्यर्थे उदक टा उपपदात् पिषः णमुल् । लघूपधगुणः, उपपदसमासः, पेषंवासवाहनधिषु चेति उदकस्य उदादेशः । **हस्ते वर्ति-ग्रहोरिति**—हस्त इत्यर्थस्य ग्रहणम्, वर्तिग्रहोरिति पञ्चम्यर्थे षष्ठी । वर्तिरिति ण्यन्तग्रहणम्। हस्तार्थके करण उपपदे वर्तयतेर्ग्रहेश्च णमुल् स्यादित्यर्थः । **हस्तवर्तमिति**—हस्तेन वर्तयतीत्यर्थे णमुल्, उपपदसमासः । णेरनिटीति णिलोपः । **हस्तग्राहमिति**—हस्तेन गृह्णातीति विग्रहे णमुल् । उपपदसमासः । उपधावृद्धिः ।

हिन्दी

१३०५. कषादि में जिन धातुओं से णमुल् कहा गया है उन धातुओं का ही अनुप्रयोग करना चाहिये।

१३०६. शुष्क चूर्ण रुक्ष कर्म उपपद होने पर पिष् धातु से णमुल् होता है ।

१३०७. समूलादि कर्म के उपपद रहने पर हन कृञ् और ग्रह से क्रमशः णमुल् होता है ।

१३०८. करण कारक के उपपद रहने पर हन् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।

१३०९. स्नेहनार्थक करण उपपद होने पर पिष् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।

१३१०. हस्तार्थक करण उपपद होने पर ण्यन्त वृत् तथा ग्रह से णमुल् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३११. स्वे पुषः-३।४।४०।। करणे इत्येव । स्व इत्यर्थग्रहणम् । तेन स्वरूपे पर्याये विशेषेषु च णमुल् । स्वपोषं पुष्णाति । धनपोषम् । गोपोषम् ।

१३१२. समासत्तौ-३।४।५०।। तृतीयासप्तम्योर्णमुल् सन्निकर्षे । केशग्राहं युध्यन्ते। हस्तग्राहं युद्ध्यन्ते ।

१३१३. स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः-३।४।६१।। क्त्वाणमुलौ स्तः । मुखतः कृत्य। मुखतः कृत्वा । मुखतः कारम् । मुखतोभूय । मुखतोभूत्वा । मुखतो भावम् ।

।। इति कृदन्तप्रकरणं समाप्तम् ।।

मध्यमनोरमापूरणी

स्वे पुष इति—करणे इत्यनुवर्तते । स्व इति पर्यायवाचकस्यापिग्रहणम् । स्व इत्यर्थके करणे उपपदे पुषः णमुलित्यर्थः । आत्मात्मीयज्ञातिधनवचनस्य स्वस्य प्रयोगः अत्र भवति । **स्वपोषमिति**स्वेन पुष्णातीत्यर्थे णमुल् । लघूपधगुणः । धनेन पुष्णातीत्यर्थे धनपोषम् इति, गवा पुष्णातीत्यर्थे गोपोषमिति । **समासत्तौ इति**—समासत्तिः सन्निकर्षः । सन्निकर्षे गम्यमाने तृतीयासप्तम्यो रुपपदयोर्धातोर्णमुल् स्यादित्यर्थः । **केशग्राहम् इति**—केशेषु गृहीत्वा केशैः गृहीत्वा इत्यर्थे वा णमुल् । युद्धसंरम्भात् अत्यन्तं सन्निकर्षः द्यो त्यते । हस्तेन गृहीत्वा इति **हस्तग्राहम्** । **स्वाङ्गे तस्प्रत्यये इति**—तस् प्रत्ययो यस्मात्, तस्मिन् । तस्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गे उपपदे कृभूधातुभ्यां क्त्वाणमुलौ भवत इत्यर्थः । **मुखतः कृत्येति**—मुखतः इत्युपपदात् कृञः क्त्वा, क्त्वो ल्यप्, तुक् । क्त्वा चेति समासाभावे न ल्यप् । चौधर्युपाह्वेन अर्कनाथेन कृतायां मध्यमनोरमापूरण्याम् इत्युत्तरकृदन्तम् ।

हिन्दी

१३११. स्वार्थक करण उपपद रहने पर पुष् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।

१३१२. सन्निकर्ष गम्यमान होने पर तृतीयान्तवसप्तम्यन्त उपपद होने पर धातु से णमुल् होता है ।

१३१३. तस्प्रत्ययान्त स्वाङ्ग उपपद रहने पर कृ और भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होता है ।

।। उत्तरकृदन्त समाप्त ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ विभक्त्यर्थाः

१३१४. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा-२।३।४६।। नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः । मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः । प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राधिक्ये संख्यामात्रे च प्रथमा । प्रातिपदिकार्थमात्रे-उच्चैः । नीचैः । कृष्णः। श्रीः । ज्ञानम् । लिङ्गमात्रे-तटः । तटी । तटम् । परिमाणमात्रे-द्रोणो व्रीहिः । वचनं=संख्या । एकः द्वौ बहवः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अथ विभक्त्यर्था इति—ङ्याप्प्रातिपदिकादित्यधिकृत्य स्वौजसमौट् इत्यादिसूत्रेण ङ्यन्तेभ्यः आबन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च स्वादिप्रत्ययाः (प्रथमाविभक्तेरारभ्य सप्तमीं यावत्) पूर्वमुक्ताः। तासां विभक्तीनामर्थं निरूपयितुमिदं विभक्त्यर्थप्रकरणं प्रारभ्यते । कारकाधिकारात् इदमेव कारकप्रकरणमप्युच्यते । **प्रातिपदिकार्थेत्यादि**—प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गं च परिमाणञ्च वचनञ्चेति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि, तान्येव इत्यवधारणार्थको मात्रशब्दः । "द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते" इति न्यायेन मात्रशब्दस्य प्रातिपदिकार्थादिषु प्रत्येकमभिसम्बन्धः । तेन वृत्तौ प्रातिपदिकार्थमात्रे इत्यादि निर्दिष्टम् । कस्तावत्प्रातिपदिकार्थः इति जिज्ञासायां प्रातिपदिकार्थः 'सत्ता' इति प्राञ्चः । प्रवृत्तिनिमित्तं व्यक्तिः लिङ्गं संख्या कारकञ्चेति पञ्चकं प्रातिपदिकार्थः । तत्र "एकं द्विकं त्रिकं चाथ चतुष्कं पञ्चकं तथा" इत्यपि पक्षः प्रातिपदिकार्थविषये स्वीकृतः । प्रवृत्तिनिमित्तं व्यक्तिः लिङ्गमिति त्रिकं प्रातिपदिकार्थः इति पक्षे सूत्रे लिङ्गग्रहणं व्यर्थमत उक्तं मूले-नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः इति । नियता उपस्थितिर्यस्येति विग्रहः । अर्थात् यस्मिन् प्रातिपदिके उच्चारिते यस्यार्थस्य नियमेन उपस्थितिर्भवति स प्रातिपदिकार्थ इत्यर्थः । एवञ्च अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्चास्योदाहरणानि भवन्ति । तटः तटी तटम् इत्यादिषु कस्यापि लिङ्गस्य नियमेन उपस्थित्यभावात् प्रातिपदिकार्थग्रहणेनाग्रहणाच्च लिङ्गग्रहणं सार्थकम् । उच्चैः नीचैः कृष्णः श्रीः ज्ञानमित्यादि प्रातिपदिकार्थमात्रस्योदाहरणम् । प्रातिपदिकार्थं विना लिङ्गादीनां केवलानां क्वापि उपस्थितेरभावात् 'अधिकः' इत्यर्थोऽपि विवक्षितः । तेन लिङ्गमात्राधिक्ये परिमाणमात्राधिक्ये चेत्यर्थः ज्ञेयः । अनियतलिङ्गाः तटः तटी तटम् इत्यादयः लिङ्गमात्राधिक्यस्योदाहरणानि सन्ति । **परिमाणमात्रे**—द्रोणो ब्रीहिरिति-एकस्या ब्रीहिव्यक्तेः द्रोणपरिमाणं न सम्भवति । अतः जातौ 'जात्याख्यायामितिवचनात् एकवचनम् । ननु द्रोणो ब्रीहिरित्यत्र प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमास्तु इति चेन्न । द्रोणरूपब्रीहिरूपस्य च प्रातिपदिकार्थत्वे= नामार्थत्वे 'नामार्थयोरभेदेनान्वयः' इति नियमेन द्रोणाभिन्नो ब्रीहिरित्यनिष्टार्थलाभः स्यात् । अतः परिमाणार्थे पृथक् प्रथमा विधीयते । तेन प्रत्ययार्थे परिमाणसामान्ये द्रोणप्रकृत्यर्थः विशेषपरिमाणम् अभेदेन सम्बन्धेन विशेषणं भवति । द्रोणाभिन्नं यत्परिमाणमित्यर्थश्चास्ति । तथा च द्रोणरूपं यत् परिमाणं तत्परिच्छिन्नो ब्रीहिरित्यर्थः । **वचनमात्रे**—एकः द्वौ बहवः इत्याद्युदाहरणानि । अत्र एकत्वद्वित्वबहुत्वानां नियमेन उपस्थित्या प्रातिपदिकार्थमात्रे एव प्रथमा सिद्ध्येत्, सूत्रे वचनग्रहणं न कर्तव्यमिति चेदुच्यते-एकादिना अर्थस्योक्तत्वाद् 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इति न्यायेन एकादिषु प्रथमाविभक्तिः न प्राप्नोति केवलायाश्च प्रकृतेः प्रयोगो न सम्भवति तदर्थं सूत्रे वचनग्रहणं कर्तव्यमिति ।

हिन्दी

१३१४. **प्रातिपदिकार्थमात्र** लिङ्गमात्र की अधिकता, परिमाणमात्र एवं वचनमात्र अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३१५. सम्बोधने च-२।३।४७॥ प्रथमा स्यात् । हे राम ।
१३१६. कर्तुरीप्सिततमं कर्म-१।४।४९॥ कर्तुः क्रियया ऽऽप्तुमिष्टतमं कारकं कर्म-संज्ञं स्यात् ।
१३१७. कर्मणि द्वितीया-२।३।२॥ अनुक्ते । हरिं भजति । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमैव । अभिधानञ्च प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः । हरिः सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितो हरिः । शतेन क्रीतः शत्यः अश्वः । प्राप्तानन्दश्चैत्रः । क्वचिन्निपातेनाभिधानम् । यथा-"क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः" ।
१३१८. अकथितञ्च-१।४।५१॥ अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सम्बोधने च—सम्बोधनम्-अभिमुखीकृत्य ज्ञापनम् । सम्बोधनेऽधिके गम्ये प्रथमा स्यादित्यर्थः। हे राम इत्युदाहरणम् । **कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति**—कारके इत्यधिकारात् लभ्यते । क्रियाजनकत्वं क्रियान्वयित्वं वा कारकमुच्यते । आप्तुमिष्यमाणम् ईप्सितम् इति, वर्तमाने क्तः मतिबुद्धिसूत्रेण । मतिरिह इच्छा । क्तस्य च वर्तमाने इति कर्तृपदात् षष्ठी । अतिशयेन ईप्सितम्-ईप्सिततमम् । धातूपात्तङ्व्यापाराश्रयः कर्ता । केनाप्तुमित्याकाङ्क्षायां कर्तृविशेषणीभूत-व्यापारेण=क्रियया इत्यर्थात् लभ्यते । अतः उक्तं वृत्तौ-कर्तुः क्रिययेत्यादि । **कर्मणि द्वितीयेति-** अनुक्ते इत्यनुवर्तते । द्वितीया इत्यादयः शब्दाः पूर्वाचार्यैः कृताः संज्ञाः सुपां त्रिकेषु स्मर्यन्ते। तैरेवअत्र व्यवहारः । कर्मणि कारके या संख्या तत्र द्वितीया विभक्तिर्भवतीत्यर्थः। **हरिं भजतीति-** पूजादिद्वारेण हरिं सन्तोषयतीत्यर्थः । कर्तृनिष्ठ पूजनादिव्यापारप्रयोज्यतुष्टिरूपफलाश्रयत्वाद् हरिः कर्तुरीप्सिततमं कर्मेत्यनेन कर्मसंज्ञको भवति, कर्तरि व्यापाराश्रयस्य कर्तुः मुख्यता, फला-श्रयस्य कर्मणः अनुक्तिः । अतः अत्र कर्मणि द्वितीयेति द्वितीया भवति । **अभिहिते तु**—'अभिहिते प्रथमा' इति वार्तिकात् अभिहिते कर्मादौ अपि प्रथमा विभक्तिरेव जायते । अभिधानञ्च तिङ्कृत्तद्धितसमासैः भवति । तिङन्तेन अभिहितत्वात्=उक्तत्वात् न द्वितीया, अपि तु प्रथमैव भवति । **लक्ष्म्या सेवितो हरिरिति-** अत्र कर्मणि भूते क्तः । क्तप्रत्ययेन हरेरुक्तत्वात् प्रथमा । कर्तुरनुक्तत्वात् तृतीया । **तद्धितैः अभिधानं यथा**—शतेन क्रीतः शत्य इति । अत्र अश्वादिः कर्म तद्धितेनोक्तः अतः न द्वितीया । **प्राप्तानन्द इति**—प्राप्तः आनन्दः येन सः चैत्रः । अन्यपदार्थस्य कर्मणो बहुव्रीहिसमासेनाभिहितत्वान्न द्वितीया । आनन्दकर्तृ-प्राप्तिकर्मीभूत इत्यर्थः । **क्वचिन्निपातेनेति-**'क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः" इत्यत्र इति निपातेन नारदनिष्ठं कर्म उक्तमतः नात्र द्वितीया, अपि तु प्रथमैव । **अकथितञ्चेति**—केनेति जिज्ञासायाम् अपादान-सम्प्रदानाधिकरणादिकारकं यदा अपादानसम्प्रदानत्वादि-विशेषरूपेण न विवक्षितं भवति किन्तु सम्बन्धसामान्यात्मनैव विवक्ष्यते तदा तत्कारकं कर्मसंज्ञकं भवती-त्यर्थः । ननु नटस्य शृणोति इत्यत्र नटसम्बन्धिश्रवणम् इत्यर्थके वाक्ये नटस्यापि कर्मत्वं

हिन्दी

१३१५. सम्बोधन अर्थ के अधिक प्रतीत होने पर प्रथमा होती है ।
१३१६. कर्ता का क्रिया के द्वारा प्राप्त करने के लिए इष्टतम कारक कर्मसंज्ञक होता है ।
१३१७. अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है ।
१३१८. अपादानादि विशेष कारकों से अविवक्षित कारक को कर्म संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

का. दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् ।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्" ।।

गां दोग्धि पयः । वलिं याचते वसुधाम् । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गान् शतं दण्डयति । व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । वृक्षमवचिनोति फलानि । माणकवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्यात्, तस्य क्रियान्वयित्वेन कारकत्वात्, वस्तुतः अपादानस्य सम्बन्धित्वेन विवक्षितत्त्वाच्च इत्याशङ्क्य परिगणनं करोति कारिकायाम्-**दुह्याच् इति** । दुह् प्रपूरणे याच् याच्ञायां डुपचष् पाके दण्ड दण्डनिपातने रुधिर् आवरणे प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् चिञ् चयने ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि शासु अनुशिष्टौ जि अभिभवे मन्थ विलोडने मुष स्तेये इति द्वादशानां तथा णीञ् प्रापणे हृञ् हरणे कृष विलेखने वह प्रापणे इति चतुर्णां मुख्यकर्मणा यद् अपादानादि युज्यते तद् अकथितं कर्म भवतीति कारिकार्थः । अतः एते धातवः द्विकर्मका अपि उच्यन्ते । **गां दोग्धि पय इति**-पयः दोहनक्रियायां मुख्यं कर्म । गौस्तु दोहने अपादानम्, तस्य अविवक्षायां गोशब्दस्य अकथितञ्चेति कर्मसंज्ञा, कर्मणि द्वितीयेति द्वितीया । **बलिं याचते वसुधाम्**—याच्धातोः मुख्यं कर्म वसुधा अस्ति । याचने बलिः अवधिः=अपादानम् । तस्याविवक्षायां बलेः कर्मसंज्ञा । **तण्डुलानोदनं पचति**— विक्लित्यनुकूलव्यापारार्थकस्य पचेः मुख्यं कर्म ओदनम् । तण्डुलैः प्रकृतिभूतैः ओदनं करोतीत्यर्थो वाक्यस्य । तत्र करणत्वस्याविवक्षायां द्वितीया । **गर्गान् शतं दण्डयति**—दण्ड्धातुः ग्रहणानुकूलव्यापारवाची । गर्गेभ्यः सुवर्णशतं गृह्णातीत्यर्थः । शतमत्र प्रधानं कर्म । गर्गाणामवधित्वं सुवर्णग्रहणेऽतः अपादानत्वम् । तस्याविवक्षायां कर्मसंज्ञा गर्गशब्दस्य । **व्रजमवरुणद्धि गाम्**—अत्र गोः अवरोधः, अतः मुख्यं कर्म गाम् इति । अवरोधक्रियायाः आधारः व्रजः अधिकरणसंज्ञकोऽस्ति । अधिकरणस्य अविवक्षायां व्रजशब्दस्य कर्मसंज्ञा अकथितञ्चेत्यनेन । **माणवकं पन्थानं पृच्छति**—पन्थाः अत्र मुख्यं कर्म । पृच्छिक्रियायाः साधकतमः माणवकः करणमस्ति । करणत्वस्याविवक्षायां कर्मसंज्ञा भवति । माणवकेन पन्थानं ज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः । **वृक्षमवचिनोति फलानि**—अवचयने फलानि मुख्यं कर्म । वृक्षात् प्रच्याव्य फलानि अवचिनोतीत्यर्थः । अत्र वृक्षः अपादानम्, तस्याविवक्षायां वृक्षशब्दस्य कर्मसंज्ञा । **माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति वा**—बोधनानुकूलो व्यापारः ब्रूधातोरर्थः, तस्य मुख्यं कर्म धर्मम् इति । बोधविषयेण कर्मणा अभिप्रेयमाणत्वात् माणवकः सम्प्रदानं, तस्याविवक्षायां कर्मसंज्ञा। माणवकाय धर्मं बोधयतीत्यर्थः । **शतं जयति देवदत्तम्**— ग्रहणानुकूलताडनादिव्यापारो जिधातोरर्थः । जयतेः शतम् इति मुख्यं कर्म । देवदत्तः अपादानं, तस्याविवक्षायां कर्मसंज्ञा।

हिन्दी

कारिकार्थः- दुह याच पच दण्ड रुध प्रच्छ चि ब्रू शास जि मथ मुष और नी हृ कृष वह इन धातुओं के मुख्य कर्म के साथ जुड़ने वाले अपादानआदि कारकों को अकथित कर्म कहते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति । ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा । अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा । बलिं भिक्षते वसुधाम् । माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि ।

वा. अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् ।। कुरून् स्वपिति । मासमास्ते । गोदोहमास्ते । क्रोशमास्ते ।

१३१९. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ-१।४।५२।।

गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मकाणामकर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीरनिधेः सकाशात् मन्थनदण्डभ्रमेण सुधाम् उत्पादयतीत्यर्थः । सुधामिति मुख्यं कर्म । क्षीरनिधि शब्दस्य कर्मसंज्ञा भवति अपादानत्वाविवक्षायाम् । **देवदत्तं शतं मुष्णाति**—अपनीयादानानुकूलव्यापारो मुषेरर्थः । अपनयनेऽवधित्वाद् देवदत्तः अपादानम् । तस्याविवक्षायां कर्मसंज्ञा । **ग्राममजां हरति नयति कर्षति वहति वा**—ग्रामे अजां प्रापयतीत्यर्थः । अजामिति मुख्यं कर्म । अजाया आधारः ग्राम इति । अधिकरणत्वस्याविवक्षायां कर्मसंज्ञा अजा शब्दस्य । **अर्थनिबन्धनेयमिति**— दुहयाचादिधातूनामर्थे ये धातवः तेषां योगेऽपि अकथितकर्मत्वं भवति । अत एव बलिं भिक्षते माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते इत्यादावपि अकथितकर्मत्वम् । **अकर्मकधातुभिर्योगे इत्यादि**-कुरून् स्वपिति मासमास्ते इत्यादौ कुर्वादिः अनुद्देश्यत्वात् कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति कर्मत्वं न भवितुमर्हति, कतुरिव स्वापासनादिक्रियाश्रयत्वाद् तथायुक्तमित्यनेनापि कर्मत्वं न सम्भवति अतः उक्तं वार्तिकम्-अकर्मकधातुभिरिति । **कुरून् स्वपिति इति**—अकर्मकस्य स्वप्धातोः योगे देशवाचकस्य कुरु इत्यस्य कर्मसंज्ञा । **मासमास्ते**—आस्धातोः योगे कालवाचकस्य मासस्य कर्मसंज्ञा । **गोदोहमास्ते**—गोदोहनम् एव गोदोहः । भावे घञ् । अत्र भावो धात्वर्थः । गोदोहनकालोऽत्र विवक्षितः । तस्मात् कालवाचकस्य कर्मत्वम् । नचात्र कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे इत्यनेन कर्मत्वं स्यादिति वाच्यम् । लोके कालत्वेन अहोरात्रसमूहस्य मासादेरेव तत्र ग्रहणात् । **क्रोशमास्ते**—गन्तव्याध्वा क्रोशमिति, तस्य कर्मत्वम् । **गतिबुद्धीति**—अर्थशब्दः प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते । गतिश्च बुद्धिश्च प्रत्यवसानञ्चेति द्वन्द्वः । तानि अर्थो येषामिति बहुव्रीहिः । प्रत्यवसानम्=भक्षणम् । गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थाश्च शब्दकर्माणश्च अकर्मकाश्च, तेषामिति द्वन्द्वसमासः । अणौ कर्ता अणिकर्ता इति । यच्छब्दोऽध्याह्रियते । तदा च गत्यर्थकानां बुद्ध्यर्थकानां प्रत्यवसानार्थकानां शब्दकर्मकाणाम् अकर्मकाणाम् अण्यन्तानां धातूनां यः कर्ता स ण्यन्तानां कर्मसंज्ञो भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

वा. अकर्मकधातुओं के योग में देश काल भाव व गन्तव्यमार्ग की कर्मसंज्ञा होती है ।

१३१९. गत्यर्थक बुद्ध्यर्थक प्रत्यवसानार्थक शब्दकर्मक एवं अकर्मक धातुओं के अण्यन्त अवस्था के कर्ता को ण्यन्त अवस्था में कर्मसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शत्रूनगमयत् स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत् ।
आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम् ।
आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्री हरिर्गतिः ।

वा. नीवह्योर्न । नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन ।

वा. नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः । वाहयति रथं वाहान् सूतः ।

वा. आदिखाद्योर्न । आदयति खादयति वाऽन्नं बटुना ।

वा. भक्षेरहिंसार्थस्य न । भक्षयत्यन्नं बटुना । अहिंसार्थस्य किम्-भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

शत्रूनगमयदिति—शत्रवः स्वर्गमगच्छन्, तान् हरिः शस्त्रघातेन स्वर्गगमयत् इति । अत्र अण्यन्तावस्थायाः कर्तुः शत्रोः कर्मसंज्ञा भवति । **वेदार्थं स्वानवेदयत् इति**— बुद्ध्यर्थस्योदाहरणमिदम् । स्वे=विधिप्रमुखाः वेदार्थमविदुः, हरिः तान् वेदार्थम् अवेदयत् इत्यर्थः । अत्र प्रयोज्यकर्तॄणां स्वेषां कर्मसंज्ञा भवति । **आशयच्चेति**—देवाः अमृतम् आश्नन्, तान् हरिः अमृतमाशयदित्यर्थः । अत्र देवशब्दस्य कर्मसंज्ञा । **प्रत्यवसानार्थकस्येदमुदाहरणम्** । **वेदमध्यापयदिति**—विधिः वेदम् अध्यैत हरिः तम् अध्यापयदित्यर्थः । अत्र विधिशब्दस्य कर्मत्वम् । शब्दकर्मकस्येदमुदाहरणम् । **आसयत् सलिले इति**—पृथिवी सलिले आस्त, हरिः ताम् सलिले आसयत्=उपावेशयदित्यर्थः, अत्र पृथिवी शब्दस्य कर्मसंज्ञा । अकर्मकस्येदमुदाहरणम्। यः एतादृशः हरिः विष्णुः सः मे=मम गतिः इति प्रत्येकस्मिन् वाक्येऽन्वयो विधेयः । **नीवह्योर्नेति**—नी वह इत्येतयोः ण्यन्तयोः प्रयोज्यकर्त्तुः गतिबुद्धीत्यादिना प्राप्तं कर्मत्वं न भवतीत्यर्थः । **नाययति वा हयतीति**—अत्र भृत्यशब्दस्य प्राप्ता कर्मसंज्ञा वार्तिकेन निषिध्यते। अप्रधाने कर्तरि तृतीया भवति । **नियन्तृकर्तृकस्येति**- नियन्तृकर्तृकस्य वहेः ण्यन्तस्य प्रयोज्यकर्त्तुःकर्मत्वनिषेधो नेत्यर्थः। **तेन वाहयति** रथं वाहान् सूतः इत्यत्र वाहनशब्दस्य गतिबुद्धीति कर्मत्वम् । **आदिखाद्योर्नेति**—आदिखाद्योर्ण्यन्तयोः प्रयोज्यकर्त्तुः कर्मसंज्ञा न भवति इत्यर्थः। **आदयति खादयति वान्नं बटुना**-बटुः अन्नं खादति अत्ति वा, तं प्रेरयतीत्यर्थे णिच् । गतिबुद्धीति प्रत्यवसानार्थे कर्मसंज्ञा प्राप्ता सा आदिखाद्योरिति निषिध्यते । अनुक्तकर्तरि तृतीया। **भक्षेरहिंसार्थेति**—अहिंसार्थस्य भक्षधातोः प्रयोज्यकर्त्तुः कर्मत्वं नेत्यर्थः । **भक्षयत्यन्नं बटुना**-भक्षयति अन्नं बटुः, तं प्रेरयति इति हेतुमण्ण्यन्तस्य कर्मत्वनिषेधः । **भक्षयति वलीवर्दानिति**—सस्य भक्षणं हिंसा । अतः वार्तिकेन कर्मत्वनिषेधो न ।

हिन्दी

वा. नी और वह धातु के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा नहीं होती है ।

वा. नियन्तृ कर्तृक वह का यह निषेध नहीं होता है ।

वा. आदि और खादि के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्म संज्ञा नहीं होती है ।

वा. अहिंसार्थक भक्ष् के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा नहीं होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् । जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः ।
वा. दृशेश्च । दर्शयति हरिं भक्तान् ।
वा. शब्दायतेर्न । शब्दाययति देवदत्तेन ।
१३२०. हृक्रोरन्यतरस्याम्-१।४।५३।। हृक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्म स्यात्। हारयति कारयति वा भृत्येन भृत्यं वा कटम् ।
वा. अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् । अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तेन भक्तं वा ।
१३२१. अधिशीङ्स्थासां कर्म-१।४।४६।। अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात् । अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

जल्पतिप्रभृतीनामिति—एतेषामणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यादित्यर्थः । **जल्पयति भाषयतीति**-पुत्रः जल्पति भाषते, तं प्रेरयतीत्यर्थे णिच् । पुत्रस्य कर्म संज्ञा च । **दृशेश्चेति**—दृशेरणौ यः कर्ता सः णौ कर्म भवतीत्यर्थः । **दर्शयति हरिं भक्तान्**—भक्ताः हरिं पश्यन्ति, तान् प्रेरयति गुरुः । अत्र भक्तस्य कर्मसंज्ञा । **शब्दायतेर्नेति**—शब्दायेति क्यङन्तधातोः अणौ यः कर्ता स णौ कर्मसंज्ञको नेत्यर्थः । **शब्दाययति देवदत्तेन**—देवदत्तः शब्दायते, तान् प्रेरयतीत्यर्थः । अत्र कर्मसंज्ञानिषेधात् प्रयोज्यकर्तृत्वमादाय देवदत्तात् तृतीया । **हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्** । भृत्यः कटं हरति करोति वा, तं प्रेरयतीत्यर्थः । प्रयोज्यकर्तुः भृत्यस्य हृक्रोरिति विकल्पेन कर्मसंज्ञा । कर्मसंज्ञाभावेऽनुक्तत्वात् प्रयोज्यकर्तुः तृतीया । भृत्येनेति भवति । **अभिवादिदृशोरिति**—ण्यन्तस्य अभिपूर्वकवद्धातोः दृश्धातोश्च आत्मनेपदिनः अण्यन्तावस्थायां यः कर्ता सः ण्यन्तावस्थायां कर्मसंज्ञको भवति विकल्पेन । **अभिवादयते दर्शयते इति**—अभिवदति पश्यति वा देवं भक्तः । तं गुरुः प्रेरयतीत्यर्थे णिच् । कर्तृगामिनि क्रियाफले णिचश्चेत्यात्मनेपदं भवति । प्रयोज्यकर्त्तुः भक्तस्य अभिवादीति कर्मसंज्ञा, कर्मणि द्वितीया । पक्षेऽनुक्तत्वात् प्रयोज्यकर्तुस्तृतीया, भक्तेनेत्यपि । **अधिशीङ् इति**—आधारोऽधिकरणमित्यतः आधार इत्यनुवर्तते, कारकस्याधिकारः । अधिपूर्वाणां शीङ् स्वप्ने स्थागतिनिवृत्तौ आस उपवेशने इत्येतेषाम् आधारः यः तत्कारकं कर्मसंज्ञं स्यादित्यर्थः । **अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः इति**—वैकुण्ठं हरिः इत्यनयोः प्रतिक्रियमन्वयः । आधारस्य वैकुण्ठस्य कर्मसंज्ञाऽनेन भवति ।

हिन्दी

वा. जल्पादि धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है ।
वा. दृश् के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है ।
वा. क्यङन्त शब्दाय का पूर्वकर्ता ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञक नहीं होता है ।
१३२०. हृ औ कृ धातु के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्ययन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है। विकल्प से ।
वा. आत्मनेपदी ण्यन्त अभिवादि एवं दृश् के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्नसंज्ञा होती है विकल्प से ।
१३२१. अधिपूर्वक शीङ् स्था एवं आस् धातु के आधार को कर्मसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३२२. अभिनिविशश्च-१।४।४७।। अभिनीत्येतत्संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात् । अभिनिविशते सन्मार्गम् । क्वचिन्न । पापेऽभिनिवेशः ।

१३२३. उपान्वध्याङ्वसः-१।४।४८।। उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात् । उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः ।

वा. अभुक्त्यर्थस्य न । वने उपवसति ।

का. उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अभिनिविशते सन्मार्गमिति—अत्र अभिनिविशते इत्यस्याः क्रियाया आधारः सन्मार्गः, तस्य कर्मसंज्ञा । **क्वचिन्न, पापेऽभिनिवेश इति**—परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्यामिति सूत्रात् अत्र अन्यतरस्यामिति पदमनुवर्त्त्य व्यवस्थितविभाषा स्वीक्रियते । अतः क्वचिन्नेत्युक्तम्, तेन पापेऽभिनिवेश इत्यत्र न कर्मसंज्ञा । ननु अन्यतरस्यामित्यनुवृत्तौ सत्याम् अभिनिविशते सन्मार्गमित्यत्र विकल्पः स्यादिति चेन्न । व्यवस्थितविभाषात्वादेव तत्र न विकल्पः । अभिनिविशश्चेत्यत्र अन्यतरस्यामिति मण्डूकप्लुत्याऽनुवर्तते, तत्र किं मानमिति चेत् "एष्वर्थेष्वभिनिविष्टानाम्" इति समर्थसूत्रस्थभाष्यप्रयोगो मानम् । मण्डूकाः यथा उत्प्लुत्य गच्छन्ति मध्ये मध्ये स्थानं परित्यजन्ति तद्वदेव कानिचन सूत्राणि परित्यज्य अग्रिमसूत्रेऽनुवृत्तिः मण्डूकप्लुत्यनुवृत्तिरुच्यते । **उपान्वध्याङिति**—उप अनु अधि आङ् इत्येतत्पूर्वस्य वसतेराधारः कर्मसंज्ञो भवतीत्यर्थः । **उपवसति अनुवसति इति**—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा, इत्यत्र उपादिपूर्वस्य वस्धातोराधारः वैकुण्ठ इति अस्ति, तस्य कर्मसंज्ञा भवति। अधिकरणस्य बाधिकेयम् । **अभुक्त्यर्थस्य नेति**—उपपूर्वस्य भोजनाभावार्थकस्य वसतेः कर्मसंज्ञा नेत्यर्थः । मूलं त्वस्य वसेरश्यर्थस्य प्रतिषेधो वक्तव्य इति वार्तिकम् । अश्यर्थस्येत्यत्र अर्थशब्दः निवृत्तिवाचकः । भोजनस्य अर्थः=निवृत्तिः यत्र प्रतीयते सोऽश्यर्थः । तन्मूलकमेव अभुक्त्यर्थस्य नेतिवार्तिकम् । **वने उपवसति इति**-वने भोजनात् निवर्तते इत्यर्थः । उपान्वध्याङिति वनस्य प्राप्तं कर्मत्वं न । आधारोऽधिकरणमिति अधिकरणसंज्ञा, तस्मात् सप्तमी । **उभसर्वतसोरिति**—उपपदविभक्तिं संगृह्णाति अनेन श्लोकेन । तसन्तयोः उभ-सर्वशब्दयोः प्रयोगे द्वितीया कार्या । **उदाहरणम्**—उभयतः कृष्णं गोपाः, सर्वतः कृष्णं गोपाः इति । कृष्णस्य उभयपार्श्वे, कृष्णस्य सर्वेषु पार्श्वेषु गोपाः इत्यर्थः । उभयत्र कृष्णशब्दात् द्वितीया भवति । धिक् शब्दप्रयोगे द्वितीया कार्या । आम्रेडितान्तेषु उपरि उपरि अधि अधि अधः अधः इत्यादि प्रयोगेष्वपि द्वितीया विधेया । **यथा**—उपरि उपरि लोकम्, अध्यधि लोकम्, अधोऽधो लोकमित्यादिषु लोकशब्दात् द्वितीया । **ततोऽन्यत्रेति**—उक्तप्रयोगेभ्यः अन्यत्रापि द्वितीया दृश्यते इत्यर्थः ।

हिन्दी

१३२२. अभि तथा नि से युक्त विश् धातु के आधार को कर्म संज्ञा होती है ।

१३२३. उप अनु अधि तथा आङ् पूर्वक वस् धातु के आधार को कर्म संज्ञा होती है ।

वा. भोजनाभावार्थक वस् धातु के आधार को कर्म संज्ञा नहीं होती है ।

का. तस्प्रत्ययान्त उभ और सर्व के योग में, धिक् के योग में, आम्रेडितान्त उपरि उपरि अधि अधि अधः अधः के योग में तथा अन्यत्र ऋते इत्यादि के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

उभयतः कृष्णं गोपाः । सर्वतः कृष्णम् । धिक् कृष्णाभक्तम् । उपर्युपरि लोकं हरिः । अध्यधि लोकम् । अधोऽधो लोकम् । ऋते कृष्णम् ।

वा. अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि ।। अभितः कृष्णम् । परितः कृष्णम् । ग्रामं समया । निकषा लङ्काम् । हा कृष्णाभक्तम् । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् ।

१३२४. अन्तराऽन्तरेण युक्ते-२।३।४।। द्वितीया । अन्तरा त्वां मां हरिः । अन्तरेण हरिं न सुखम् ।

१३२५. कर्मप्रवचनीयाः १।४।८३।। इत्यधिकृत्य ।

१३२६. अनुर्लक्षणे-१।४।८४।। लक्षणे द्योत्ये अनुः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा स्यात् । गत्युपसर्गसंज्ञापवादः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उदाहरणम्-ऋते कृष्णम् इति—अत्र ऋते इत्यस्य योगे अन्यारादितरर्ते इति पञ्चम्यपि प्राप्ता, किन्तु एतद्वचनेन द्वितीया भवति । **अभितः परितः इति**—ततोऽन्यत्रापि दृश्यते इत्यनेन यदुक्तं तत्वार्तिकेऽस्मिन् परिगण्यते । अभितः परितः इत्यादीनां योगेऽपि द्वितीया भवतीत्यर्थः। **अभितः कृष्णम्**—कृष्णात् द्वितीया । 'कृष्णस्य भागद्वये' इत्यर्थः । **परितः कृष्णम्**—कृष्णस्य सर्वेषु भागेषु इत्यर्थः । कृष्णात् द्वितीया विभक्तिः । **ग्रामं** समया, निकषा **लङ्कामिति**-समया निकषेति समीपवाचिनौ शब्दौ । आकारान्तमव्ययञ्च । तयोर्योगे ग्रामलङ्काशब्दाभ्यां द्वितीया। **हा कृष्णाभक्तम्**—हा इति अव्ययं खेदे वर्तते । तद्योगे द्वितीया । कृष्णाभक्तः शोचनीय इत्यर्थः । **बुभुक्षितं नेति**—भा दीप्तौ धातुः, प्रत्युपसर्गयोगात् स्फुरणमर्थः । प्रतिभाति योगे द्वितीया बुभुक्षितशब्दाद् भवति । **क्षुधापीडितस्य किञ्चिदपि न स्फुरतीत्यर्थः** । **अन्तराऽन्तरेणेति**—षष्ठ्या अपवादः । अन्तरा इत्याकारान्तमव्ययम्, मध्ये इत्यर्थकम् । अन्तरेण इति अव्ययम्, विनार्थकञ्च । आभ्यां योगे द्वितीयाविभक्तिर्भवति इति सूत्रार्थः । **अन्तरा त्वां मां हरिः इति**—त्वां माम् इत्यत्र अन्तरायोगे द्वितीया, तव मम च मध्ये हरिः, इत्यर्थः । **अन्तरेण हरिं न सुखमिति**—हरि शब्दात् द्वितीया । हरिं विना हरेर्वर्जने वा सुखं नास्तीत्यर्थः । **कर्मप्रवचनीया इति**—अधिकारसूत्रमिदम् । प्रागीश्वरान्निपाता इति यावदधिकारः । कर्म क्रियां प्रोक्तवन्त इति कर्मप्रवचनीयाः । अस्य देशाः कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया इत्येवमादयः। **अनुर्लक्षणे इति**—लक्ष्यते ज्ञायतेऽनेनेति लक्षणं हेतुभूतमत्र विवक्षितम्। **गत्युपसर्गसंज्ञापवाद इति**—क्रियायोगे एव कर्मप्रवचनीयसंज्ञा गत्युपसर्गसंज्ञे भवतः । महासंज्ञाकरणात् इयं गत्युपसर्गसंज्ञयोः बाधिका । वस्तुतः भूते कर्तरि अनीयर् भवति प्रपूर्वाद् वचेः। अतः न केवलं क्रियां द्योतयन्ति कर्मप्रवचनीयाः, अपि तु क्रियानिरूपितसम्बन्धविशेषमपि द्योतयन्ति ।

हिन्दी

वा. अभितः परितः इत्यादि के योग में द्वितीया विभक्ति होती है ।

१३२४. अन्तरा और अन्तरेण के योग में द्वितीया विभक्ति आती है ।

१३२५. कर्मप्रवचनीयाः यह अधिकार है, 'प्रागीश्वरान्निपाताः' तक ।

१३२६. लक्षण द्योत्य होने पर अनु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३२७. कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया-२।३।८॥ जपमनु प्रावर्षत् । हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः ।

१३२८. तृतीयार्थे-१।४।८५॥ अनुरुक्तसंज्ञः । नदीमन्ववसिता सेना । नद्या सह सम्बद्धेत्यर्थः ।

१३२९. हीने-१।४।८६॥ अनुरुक्तसंज्ञः । अनु हरिं सुराः । हरेर्हीना इत्यर्थः ।

१३३०. उपोऽधिके च-१।४।८७॥ अधिके हीने च उपेत्यव्ययं प्राग्वत् । अधिके सप्तमी वक्ष्यते । हीने-उपहरि सुराः ।

१३३१. लक्षणेत्थं भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः-१।४।९०॥ उक्तसंज्ञाः

मध्यमनोरमापूरणी

कर्मप्रवचनीयेति—युक्तेति भावे क्तः । एतेन योगे द्वितीया स्यादित्यर्थः । **जपमनु प्रावर्षत्**—कदा मेघः अवर्षत् इति प्रश्ने उत्तरमिदम् । हेतु भूतजपोऽत्र लक्षणम् । तस्मिन् द्योत्ये अनुर्लक्षणे इति अनोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, कर्मप्रवचनीयेति जपशब्दात् द्वितीया । **तृतीयार्थे इति**—अनुः कर्मप्रवचनीयो भवति इत्यर्थः । सूत्रे तृतीयार्थः साहित्यम् । अतः सहयुक्तेऽप्रधाने इत्यर्थे साहित्ये या तृतीया तत्रेदं प्रवर्तते । न तु कर्तृकरणे, उपपदविभक्तेर्बलीयसीत्वात्। नापि येनाङ्गविकार इति तृतीयार्थो विवक्षितः । अनन्तरस्येति न्यायेन 'सहयुक्ते' इत्यस्यैव बाधकत्वात् । **नदीमन्वसिता सेना**—अन्ववसिता=सम्बद्धा, अनु+अवपूर्वात् षिञ् बन्धने धातोः क्तः, टाप् । अनु इत्यस्य तृतीयार्थेति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे नदीशब्दात् द्वितीया । **हीने इति**—ओहाक् त्यागे, क्तः, निष्ठानत्वम् । अनुः कर्मप्रवचनीयसंज्ञः हीनेऽर्थे द्योत्ये इत्यर्थः। अनु हरिं सुराः । अनु इत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे हरेः द्वितीया । **उपोऽधिके चेति**—उपेत्यस्याव्ययस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा स्यात् अधिके हीने च द्योत्ये । **अधिके सप्तमी वक्ष्यते**—यस्मादधिकं यस्य चेश्वचनं तत्र सप्तमी इत्येनन अधिकेऽर्थे द्योत्ये उपेत्यस्य योगे सप्तमी विधीयते इति भावः । **उप हरिं सुराः**—सुराः हरेर्हीना इत्यर्थः । उपेत्यस्य उपोऽधिके चेति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे हरेः द्वितीया । **लक्षणेत्थमित्यादि**—लक्षणं-ज्ञापकम्, अयं प्रकारः इत्थं, तं प्राप्तः इत्थम्भूतः, तस्याख्यानम् उपपादकम् इत्थम्भूताख्यानम् । भागः स्वीकार्योंऽशः तत्स्वामी च उच्यते । व्याप्तुं समग्रतया सम्बन्धुमिच्छा वीप्सा । एतेषां द्वन्द्वसमासः, समस्ताद् विषयसप्तमी । तथा च लक्षणादिषु अर्थेषु विषयभूतेषु प्रति परि अनु इत्येते कर्मप्रवचनीयाः भवन्ति इत्यर्थः ।

हिन्दी

१३२७. कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया होती है ।

१३२८. तृतीया के अर्थ में अनु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३२९. हीनता अर्थ के द्योतित होने पर अनु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३३०. अधिक और हीन अर्थ द्योत्य होने पर उप-अव्यय को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३३१. लक्षण इत्थंभूताख्यान भाग और वीप्सा अर्थ के द्योतित होने पर प्रति परि और अनु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्युः । लक्षणे-वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युत्। इत्थंभूताख्याने-भक्तो विष्णुं प्रति परि अनु वा । भागे-लक्ष्मीः हरिं प्रति परि अनु वा । हरेर्भाग इत्यर्थः । वीप्सायाम्-वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति । एषु किं-परिषिञ्चति ।

१३३२. अभिरभागे-१।४।९१।। भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्तसंज्ञः स्यात् । हरिमभिवर्तते । भक्तो हरिमभि । देवं देवमभिसिञ्चति । अभागे किम्-यदत्र ममाभिष्यात्तद्दीयताम् ।

१३३३. सुः पूजायाम्-१।४।९४।। सुसिक्तम् । सुस्तुतम् । अनुपसर्गत्वान्न-षः पूजायां किम्-सुषिक्तं किं तवात्र। क्षेपोऽयम् ।

१३३४. अतिरतिक्रमणे च-१।४।९५।। चात् पूजायामतिरुक्तसंज्ञः । अति देवान् कृष्णः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वृक्षं प्रति परि अनु वेति—प्रति परि अनु इत्येतेषां लक्षणेऽर्थे कर्मप्रवचनीय-संज्ञा । तद्योगे वृक्षात् द्वितीया । **अत्र द्वितीयार्थः लक्ष्यलक्षण**—भावसम्बन्धः । वृक्षेण लक्ष्यमाणा विद्युत् विद्योतते इत्यर्थः । अथ प्रकाशितेन वृक्षेण विद्युतः ज्ञानात् वृक्षो लक्षणं भवति । **भक्तो विष्णुं प्रतीत्यादि**—अत्र प्रति परि अनु इत्येषामित्थंभूताख्याने कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे विष्णोः कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया इति द्वितीया । अत्र भक्तिः अस्ति अस्येति अर्श आद्यजन्तः भक्त-शब्दः । प्रत्ययादिद्योत्यः विषयतासम्बन्धः द्वितीयार्थः भक्तौ एकदेशेऽन्वितः । अतः विष्णु-विषयकभक्तिमान् इत्यर्थः जायते । भक्तः भक्तिरुपं प्रकारविशेषं प्राप्तः इत्थं भूतोऽस्ति । **लक्ष्मीः हरिं प्रति परि अनु वेति**—प्रत्यादीनां कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे हरेः द्वितीया । स्वामित्वमत्र द्वितीयार्थः । अतः हरेर्भाग इत्युक्तं मूले । **वृक्षं वृक्षं प्रतीति**-नित्यवीप्सयोरिति द्विर्वचनम्, द्विर्वचनेन वीप्सा द्योत्यते । **सर्वं वृक्षं सिञ्चतीत्यर्थः । परिषिञ्चतीति**—अत्र परि इत्यस्य कर्मप्रवचनीयत्वाभावे उपसर्गसंज्ञा, उपसर्गात् सुनोतीति सस्य षत्वम् । **लक्षणादाविति**-आदिपदात् इत्थंभूताख्यानवीप्सयोः ग्रहणम् । **हरिमभिवर्तते इति**—लक्षणे उदाहरणमिदम् । विजयः कुत्रेति प्रश्ने उत्तरमिदम् । अभि इत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । हरिलक्ष्यो जय इत्यर्थः। इत्थंभूताख्याने-**भक्तो हरिमभि इति** । हरिविषयकभक्तिमान् इत्यर्थः । **वीप्सायाम्**—देवं देवमभि सिञ्चतीति-वीप्सायामभेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे द्वितीया । अथ षत्वमपि न, उपसर्गत्वाभावात् । सर्वं देवमभिसिञ्चतीत्यर्थः । **ममाभिष्यादिति**—अत्राभिः भागद्योतकः । अतः न कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । उपसर्गत्वादभेः उपसर्गप्रादुर्भ्यामिति षत्वम् । अभिष्यादिति अस्तेर्लिङि रूपम् । यदत्र मम भागः तद्दीयतामित्यर्थः । **सुषिक्तं किं तवात्रेति**—त्वया सम्यक् सिक्तं तथापि तव किं, न किञ्चिदपि । इत्यस्मिन् निन्दा गम्यते न तु पूजा । अतः न कर्म-प्रवचनीयत्वम् । उपसर्गात् सुनोतीति षत्वम् । **अतिदेवान् कृष्णः**—देवनामपि पूज्यः इति

हिन्दी

१३३२. भाग अर्थ को छोड़कर लक्षणादि अर्थों के द्योतित होने पर अभि को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३३३. पूजा अर्थ में सु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३३४. अतिक्रमण एवं पूजा अर्थ द्योतित होने पर अति को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३३५. कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे-२।३।५।। इह द्वितीया स्यात् । मासं कल्याणी। मासमधीते । मासं गुडधानाः । क्रोशं कुटिला नदी । क्रोशमधीते । क्रोशं गिरिः। अत्यन्तसंयोगे किम्-मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः । स्वतन्त्रः कर्तेति कर्तृसंज्ञा ।

१३३६. साधकतमं करणम्-१।४।४२।। क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात् ।

१३३७. कर्तृकरणयोस्तृतीया-२।३।१८।। अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात् । रामेण बाणेन हतो वाली ।

मध्यमनोरमापूरणी

इति पूजा, संसाररक्षणे देवेभ्यः अधिक इति अतिक्रमणम् । अति इत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे द्वितीया । **कालाध्वनोरिति**—अत्यन्तश्चासौ संयोगः, निरन्तरसंयोगे इत्यर्थः । क्रिया-द्रव्यगुणैः साकल्येन कालाध्वनोः सम्बन्धः अत्यन्तसंयोगः । अत्यन्तसंयोगे गम्ये कालवाचिनः अध्ववाचिनश्च द्वितीया स्यादित्यर्थः । **मासं कल्याणी**-मासेऽविच्छिन्नमङ्गलवतीत्यर्थः गम्यते । अतः मासशब्दात् कालाध्वनोरिति द्वितीया । गुणात्यन्तसंयोगस्येदमुदाहरणम् । **क्रियात्यन्तसंयोगे**—मासमधीते इति । मासे प्रतिदिनं निरन्तरमधीते इत्यर्थः । मासशब्दात् द्वितीया । **मासं गुडधाना इति**—द्रव्यात्यन्तसंयोगस्येदमुदाहरणम् । मासे निरन्तरं गुडधानाः सन्तीत्यर्थः । अध्ववाचिन उदाहरणं प्रस्तूयतेऽधुना । **क्रोशं कुटिला नदी**-क्रोशं यावत् अविच्छिन्न-रूपेण कुटिला=वक्रा । अध्ववाचिनः क्रोशशब्दात् कालाध्वनोरिति द्वितीया । इत्थमेव **क्रोशमधीते क्रोशं गिरिः** इत्यत्र अध्ययनस्य गिरिसत्तायाश्च नैरन्तर्यं गम्यते । **स्वतन्त्रः कर्तेति**-रामेण वाणेन हतो वालीत्यत्र रामशब्दस्य कर्तृसंज्ञा भवतीति भावः । **साधकतममिति**—यस्य व्यापारस्य अनन्तरं क्रियानिष्पत्तिः तत्प्रकृष्टोपकारकम्, अथवा कर्त्रा क्रियायां जनयितव्यायां यद् उपकारकम्, इति व्याख्यानलभ्योऽर्थः साधकतममित्यस्य भवति । साधकशब्दात् अति-शायने तमप् । अतिशयितं साधकं साधकतमं भवति । कारकाधिकाराच्च क्रियासिद्धौ इत्यर्थो लभ्यते । **अत उक्तं मूले**—क्रियासिद्धौ इत्यादि । **कर्तृकरणयोस्तृतीयेति**—अनभिहिते इत्य-स्याधिकारः । कर्ता च करणं च कर्तृकरणे, तयोरनभिहितयोस्तृतीयेत्यर्थः । सूत्रे तमब्ग्रहणं कारकप्रकरणे 'गौणमुख्यन्यायः' एतस्मात् सूत्रादन्यत्र न प्रवर्तते इति ज्ञापनार्थमस्ति इति भाष्ये स्पष्टम् । **रामेण बाणेन हतो वाली**-वालिनः हननक्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकस्य बाणस्यसाधकतम-मिति करणसंज्ञा, स्वतन्त्रः कर्तेति रामस्य कर्तृसंज्ञा । अनुक्तकर्तुः, बाणाच्च कर्तृकरणयोस्तृती-येति तृतीया भवति ।

हिन्दी

१३३५. अत्यन्तसंयोग की प्रतीति होने पर कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३३६. क्रियासिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक को करण संज्ञा होती है ।

१३३७. अनुक्त कर्ता एवं करण में तृतीया विभक्ति होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् । प्रकृत्या चारुः । प्रायेण याज्ञिकः । गोत्रेण गार्ग्यः। समेनैति । विषमेणैति । द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति । पञ्चकेन पशून् गृह्णाति । सुखेन दुःखेन वा याति ।

१३३८. दिवः कर्म च-१।४।४३।। दिवः साधकतमं कर्मसंज्ञं स्याच्चात् करणसंज्ञं च । अक्षैरक्षान् वा दीव्यति ।

१३३९. सहयुक्तेऽप्रधाने-२।३।१९।। सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया । पुत्रेण सहागतः पिता । एवं साकं सार्धं समं योगेऽपि । विनापि तद्योगं तृतीया । वृद्धो यूनेति निर्देशात् ।

१३४०. येनाङ्गविकारः-२।३।२०।। येनाङ्गेन विकृतेन अङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया । अक्ष्णा काणः । अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रकृत्यादिभ्य इति—प्रकृत्यादिगणपठितेभ्यस्तृतीया वाच्या इत्यर्थः । उपपदविभक्तिरियम् । यथायोगं सर्वविभक्त्यपवादः । **प्रकृत्या चारुः**—प्रकृत्यादिभ्य इति तृतीया । तृतीयार्थोऽत्र सम्बन्धः । प्रकृतिः स्वभाव । स्वभावसम्बन्धिचारुत्ववानित्यर्थः । **प्रायेण याज्ञिकः**—तृतीया प्रायशब्दात् । प्राय शब्दो बहुलवाची । अतः बहुलाचारसम्बन्धियाज्ञिकत्ववानित्यर्थः । **गोत्रेण गार्ग्य इति**—गोत्रमस्य गार्ग्य इत्यर्थः । गोत्रशब्दात् प्राप्तायाः प्रथमायाः प्रकृत्यादिभ्य इति बाधात् तृतीया । **समेनैति-विषमेणैति**—समविषमशब्दौ क्रियाविशेषणे स्तः । एति गमनं करोतीत्यर्थकः । कर्मणि द्वितीया प्राप्ता, तां प्रबाध्यानेन तृतीया । **द्विद्रोणेन धान्यमिति**-द्वयोर्द्रोणयोः समाहारः द्विद्रोणसम्बन्धि धान्यमित्यर्थे प्राप्तां षष्ठीं प्रबाध्य तृतीया । **सुखेन दुःखेन वा याति**—सुखदुःखशब्दयोः क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया प्राप्ता । तां प्रबाध्य प्रकृत्यादिभ्य इति तृतीया । **दिवः कर्म चेति**—साधकतममित्यनुवर्तते । दिवः साधकतमं यत् कारकं तत्कर्मसंज्ञकं भवति चात् करणसंज्ञमपि इत्यर्थः । **साधकतममित्यस्य बाधकमेतत् । अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति**—दिवु धात्वर्थः अत्र क्रीडा, तस्याः साधकतमा अक्षाः, अतः कर्म संज्ञा, पक्षे करणसंज्ञा च । **सहयुक्तेऽप्रधाने**—युक्तग्रहणं सहार्थकशब्दानां साकमित्यादीनां ग्रहणार्थम् । **पुत्रेण सहागतः पिता**—पितुः आगमनक्रियासम्बन्धः शाब्दः, अतः तस्य प्राधान्यम् । पुत्रस्य तु आगमनक्रियासम्बन्ध आर्थः, अतः तस्य अप्राधान्यम् । तस्मात् पुत्रशब्दात् सहयुक्ते इति तृतीया । **विनापि तद्योगं तृतीयेति**—पुत्रेणागतः पिता इत्यादौ सहादिशब्दानां प्रयोगाभावेऽपि सहादीनामर्थावगमे तृतीया भवतीत्यर्थः । **वृद्धो यूना इति** पाणिनिनिर्देशस्तत्र मानम् । **येनाङ्गेनेति**—अङ्गानि सन्ति अस्येति अङ्गम् अर्श आद्यजन्तम्, अत्र अङ्गसमुदाये शरीरे वर्तते। अङ्गस्य विकारः अङ्गविकारः । येन इत्यनेन शरीरावयवः=अङ्गं परामृश्यते । अविकृतेन अङ्गेन अङ्गिनो विकारो न लक्ष्यते । अतः वृत्तौ येनाङ्गेन विकृतेनेत्यादि लिखितम् । **अक्ष्णा काणः**—येनाङ्गविकार इति अक्षिशब्दात् तृतीया । काणशब्दः काणत्ववति अस्ति । सम्बन्धस्तृतीयार्थः। अतः अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्टः इत्यर्थ उक्तः ।

हिन्दी

वा. प्रकृत्यादिगणपठित शब्दों से तृतीया होती है ।

१३३८. दिव् धातु के साधकतम कारक को कर्मसंज्ञा और करण संज्ञा भी होती है ।

१३३९. सह के अर्थ से युक्त अप्रधान शब्दों से तृतीया होती है ।

१३४०. जिस अङ्ग के विकृत होने से अङ्गी का विकार लक्षित हो उससे तृतीया होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३४१. अपवर्गे तृतीया-२।३।६।। अपवर्गः फलप्राप्तिः, तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात् । अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः । अपवर्गे किं-मासमधीतो नायातः ।

१३४२. हेतौ-२।३।२३।। तृतीया । दण्डेन घटः ।

१३४३. इत्थम्भूतलक्षणे-२।३।२१।। तृतीया । जटाभिस्तापसः । जटाज्ञाप्य तापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः ।

१३४४. संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि-२।३।२२।। सम्पूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा । पित्रा पितरं वा संजानीते ।

१३४५. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्-१।४।३२।। दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अपवर्गे तृतीयेति—कालाध्वनोरत्यन्तेति सूत्रमनुवर्तते । तेन विधीयमानाया द्वितीयाया अयमपवादः । **अह्ना क्रोशेन वा अनुवाऽकोऽधीतः इति**—अहनि क्रोशे वा निरन्तराध्ययनेनानुवाको गृहीत इत्यर्थः । अहन् शब्दात् क्रोशशब्दाच्च अपवर्गे तृतीयेति तृतीया भवति । **मासमधीतो नायातः**—मासे निरन्तरमधीत्यापि न गृहीतवानर्थम् इत्यर्थः । फलप्राप्त्यभावात् नास्य प्रवृत्तिः । कालाध्वनोरिति द्वितीया मासशब्दात् । **हेतौ**—फलसाधकः पदार्थः हेतुः । तद्-वाचकात् तृतीयेत्यर्थः । **दण्डेन घटः**—घटसाधको दण्डः, हेतौ इति तृतीया । दण्डे व्यापार-सत्त्वेऽपि क्रियाजनकत्वाभावान्न करणसंज्ञा दण्डस्य भवति इति ज्ञेयम् । **इत्थम्भूतेति**—कञ्चित् प्रकारं प्राप्तः इत्थम्भूतः । भू प्राप्तौ इति चौरादिकात् णिचोऽभावे गत्यर्थाकर्मकेति कर्तरि क्तप्रत्ये भूत इति प्राप्त इत्यर्थकः । इत्थम्भूतस्य लक्षणं=ज्ञापकम्, तस्मिन् इति । प्रकारविशेषं प्राप्तस्य ज्ञापके तृतीया स्यादित्यर्थः । **जटाभिस्तापसः**—तपोऽस्यास्तीतिमत्वर्थीयः अण्प्रत्ययान्तः तापसशब्दः तापसत्ववति वर्तते । ज्ञापकात् जटा-शब्दात् तृतीया भवति । **संज्ञोऽन्यतरस्यामिति**—सम्पूर्वात् ज्ञाधातोः संज्ञ इति षष्ठ्येकवचने रूपम् । द्वितीयापवादोऽयं विकल्पः । **पित्रा पितरं वा सञ्जानीते**—सम्यक् जानीते इत्यर्थः । पितृशब्दात् संज्ञोऽन्यतर-स्यामिति तृतीया । विकल्पे तु कर्मणि द्वितीया एव । **कर्मणा यमभिप्रैति इति**-सम्प्रदानमिति अन्वर्थसंज्ञा । सम्यक् प्रदीयतेऽस्मै इति सम्प्रदानम् । कर्मणा यमभिप्रैति सम्बद्धुमिच्छति कर्ता स सम्प्रदानमित्यर्थः । कस्याः क्रियायाः कर्मणा इति जिज्ञासायां सम्प्रदानशब्दगतदानक्रिया-कर्मणा कर्ता यमभिप्रैति इति लभ्यते । तदेवोक्तं मूले । दानञ्च स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं पर-स्वत्वोत्पत्तिः । अतः रजकस्य वस्त्रं ददाति इत्यत्र न सम्प्रदानसंज्ञा । भाष्यमते तु शिष्याय चपेटां ददातीति दर्शनेन चतुर्थी भवत्येव ।

हिन्दी

१३४१. फलप्राप्ति द्योतित होने पर अत्यन्त संयोग में काल और मार्गवाची से तृतीया होती है ।

१३४२. हेतु अर्थ में तृतीया होती है ।

१३४३. इत्थंभूतलक्षण से तृतीया होती है ।

१३४४. सम्पूर्वक ज्ञाधातु के कर्म में तृतीया विभक्ति होती है विकल्प से ।

१३४५. कर्ता दानक्रिया के कर्म के द्वारा जिससे सम्बन्ध स्थापित करेगा उस कारक को सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३४६. चतुर्थी सम्प्रदाने-२।३।१३।। अनुक्ते । विप्राय गां ददाति ।

वा. क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् ।। पत्ये शेते ।

१३४७. परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्-१।४।४४।। नियतकालं भृत्यास्वीकरणं=परिक्रयणं, तस्मिन् साधकतमं कारकं सम्प्रदानं वा स्यात् । शतेन शताय वा परिक्रीतः ।

वा. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या ।। मुक्तये हरिं भजति ।

वा. उत्पातेन ज्ञापिते च ।। वाताय कपिला विद्युत् ।

१३४८. नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलंवषड्योगाच्च-२।३।१६।। एभिर्योगे चतुर्थी स्यात् । हरये नमः । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा ।

वा. अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि ।

मध्यमनोरमापूरणी

विप्राय गां ददाति इति—दानक्रियायाः गोरूपकर्मणा विप्रस्य सम्बन्धः, अतः कर्मणा यमभिप्रैतीति विप्रस्य संप्रदानसंज्ञा, चतुर्थी सम्प्रदाने इति चतुर्थी । **क्रिययेति**—कर्ताक्रिया द्वारा यमिच्छति तस्य सम्प्रदानसंज्ञेत्यर्थः । **पत्ये शेते**—अत्र शयनक्रियया पतिं वाञ्छति स्त्री, अतः पत्युः सम्प्रदानसंज्ञा, तस्माच्चतुर्थी । मम शयनं दृष्ट्वा पतिरपि शयीतेति इच्छया शेते स्त्री इति भावः । **परिक्रयणे इति**—साधकतमम् इत्यनुवर्तते । साधकतमं करणमित्यस्य बाधकमेतद् । **परिक्रयणे**=नियतकालं वेतनादिना स्वीकरणे साधकतमं कारकं सम्प्रदानं स्यात् विकल्पेनेत्यर्थः । **शतेन शताय वेति**—परिक्रयणे साधकतमस्य शतस्य सम्प्रदानसंज्ञा, चतुर्थी सम्प्रदाने । पक्षे शतेन इति करणमेव । **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या**—तस्मै इदं तदर्थं, तस्य भावः तादर्थ्यम् । तेनोपकार्य्योपकारकभावसम्बन्धः सिद्धः । तत्रोपकार्य्यादेव चतुर्थी भवति । **मुक्तये हरिं भजतीति**—मुक्त्यर्थमित्यर्थः । यूपाय दारु इत्याद्यपि उदाहरणमस्य । **उत्पातेनेति**—उत्पातः अशुभसूचकः भूतविकारः, तेन ज्ञापिते=सूचितेऽर्थे विद्यमानात् चतुर्थी भवतीत्यर्थः । **वाताय कपिला विद्युत्**—उत्पातेनेति वातशब्दाच्चतुर्थी । महावातस्य सूचिका इत्यर्थः । **नमः स्वस्ति इति**—युज्यते इति योगः, कर्मणि घञ् । नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा इत्यादिभिर्युक्तात् चतुर्थी भवतीत्यर्थः । **हरये नमः**—नमः स्वस्तीति हरिशब्दाच्चतुर्थी । **अलमिति**-अलम् इत्यनेन पर्याप्त्यर्थकशब्दानामपि ग्रहणं भवतीति भावः । अतः दैत्येभ्यो हरिः अलम्, प्रभुः, समर्थो वेति एकस्यापि प्रयोगे दैत्यशब्दात् नमः स्वस्तीत्यादिना चतुर्थी भवति ।

हिन्दी

१३४६. सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

वा. कर्ता क्रिया द्वारा जिससे सम्बन्ध रखे उसे भी सम्प्रदानसंज्ञा होती है ।

१३४७. वेतनादि द्वारा नियतकालिक स्वीकार में साधकतम कारक को विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है ।

वा. तादर्थ्य में चतुर्थी होती है ।

वा. उत्पात से ज्ञापित अर्थ में चतुर्थी होती है ।

१३४८. नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा अलं और वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है ।

वा. 'अलम्' यह पर्याप्ति अर्थ वाले शब्दों का भी ग्रहण करता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३४९. ध्रुवमपायेऽपादानम्-१।४।२४।। अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतमपादानम् ।

१३५०. अपादाने पञ्चमी-२।३।२८।। ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात् पतति इत्यादि ।

१३५१. जनिकर्तुः प्रकृतिः-१।४।२५।। जायमानस्य हेतुरपादानं स्यात् । ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते ।

वा. ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च ।। प्रासादात् प्रेक्षते । आसनात् प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य, आसने उपविश्य प्रेक्षते इत्यर्थः ।

१३५२. विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्-२।३।२५।। गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा स्यात् । जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः । गुणे किम्-धनेन कुलम् । अस्त्रियां किम्-बुद्ध्या मुक्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ध्रुवमपाये इति—अपायः विश्लेषः विभागः वियोगो वा उच्यते । ध्रुवशब्दस्यार्थोऽत्र अवधिभूत इति गृह्यते । न तु स्थिरत्वम् । स्थिरार्थत्वे सति धावतोऽश्वात् पततीत्यत्रापादानत्वं न स्यात् । अत उक्तं मूले अपायो विश्लेष इत्यादि । **ग्रामादायाति**—कस्मादागच्छतीति प्रश्ने ग्रामशब्दः अवधिः तस्य ध्रुवमपायेऽपादानमिति आपादानसंज्ञा । अपादाने पञ्चमीति पञ्चमी । **धावतोऽश्वात् पतति**—पतनक्रियां प्रति अश्वस्य चलनाश्रयत्वेऽपि कस्मादिति आकाङ्क्षाविषयत्वात् अवधित्वं भवति, अतः अपादानसंज्ञा, अपादाने पञ्चमीति पञ्चमी । **जनिकर्तुः प्रकृतिरिति**—जनिः जन्म उत्पत्तिर्वा । जनेः कर्ता जनिकर्ता, तस्येति विग्रहः । जन्यर्थस्य उत्पत्तेः कर्ता जायमान एव । तस्य जायमानस्य या प्रकृतिः कारणं हेतुर्वा तस्य कारकस्य अपादानसंज्ञा भवति इत्यर्थः । **ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते**—जायमानाः अत्र प्रजाः सन्ति, तासां कारणं ब्रह्म, तस्यापादानसंज्ञा, अपादाने पञ्चमी । **ल्यब्लोपे इत्यादि**—ल्यबिति प्रत्ययात् तदन्तग्रहणम् । ल्यबन्तस्य लोपे सति तदर्थावगमे सति तदर्थं प्रति कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी वाच्येत्यर्थः । **प्रासादात् प्रेक्षते**—प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते इत्यर्थो भवति । तेन ल्यब्लोपे कर्मणि इति प्रासादशब्दात् पञ्चमी । **विभाषा गुणे इति**—हेतौ इत्यनुवर्तते । स्त्रीलिङ्गभिन्ने गुणवाचके हेतुभूते शब्दे विकल्पेन पञ्चमीत्यर्थः । **जाड्यात् जाड्येन वा बद्ध इति**—जडस्य भावो जाड्यम्, गुणः । विभाषा गुणेऽस्त्रियामिति पञ्चमी । पक्षे बन्धने हेतुभूतत्वात् तृतीया, साधकतमत्वाद् वा । **धनेन कुलम् इति**—धनं न गुणः, अतः न पञ्चमी, निमित्तत्वात् तृतीया । **अस्त्रियां किमिति**—बुद्धिः हेतुः मुक्तौ, किन्तु स्त्रीलिङ्गे, अतः न पञ्चमी । यद्येतदस्त्रियामिति पदं नोच्येत तदाऽत्रापि पञ्चमी प्रसज्येतेति भावः ।

हिन्दी

१३४९. विभाग साध्य होने पर अवधिभूतकारक को अपादान संज्ञा होती है ।

१३५०. अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है ।

१३५१. जायमान के कारण को (प्रकृति को) अपादान संज्ञा होती है ।

वा. ल्यबन्त का लोप होने पर ल्यबन्तार्थ के प्रति कर्म अथवा अधिकरण में पञ्चमी होती है ।

१३५२. अस्त्रीलिङ्ग हेतुभूत गुण में पञ्चमी होती है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'विभाषा' इति-योगविभागादगुणे स्त्रियाञ्च क्वचित् । धूमादग्निमान् । नास्ति घटोऽनुपलब्धेः ।

१३५३. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्-२।३।३२।। एभिर्योगे तृतीया स्यात्, पञ्चमीद्वितीये च । पृथग् रामेण रामात् रामं वा । एवं विना नाना ।

१३५४. अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते-२।३।२९।। अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् । आरात् वनात् । ऋते कृष्णात् । पूर्वो ग्रामात् । दिशिदृष्टः शब्दो दिक्शब्दः । तेन सम्प्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति । चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः । प्राक् प्रत्यग् वा ग्रामात्। आच् । दक्षिणा ग्रामात् । आहि-दक्षिणाहि ग्रामात् ।

१३५५. अपपरी वर्जने-२।४।८८।। एतौ वर्जनार्थे कर्मप्रवचनीयसंज्ञौ स्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ननु धूमादग्निमान् इत्यादौ धूमादेः गुणत्वाभावात् कथं पञ्चमीति चेदुच्यते-विभाषा इति योग-विभागात् इत्यादि । अर्थात् विभाषागुणेऽस्त्रियामित्यत्र विभाषा इति योगो विभज्यते, हेतौ, पञ्चमी इति चानुवर्तते । तेन हेतौ पञ्चमी वा भवतीत्यर्थः सम्पद्यते । ततश्च हेतुभूतात् धूमात् पञ्चमी सिद्धा । योगविभाग इष्टसिध्यर्थो भवति, अतः अगुणे स्त्रियामपि क्वचित् सिद्धा। तेन नास्ति घटोऽनुपलब्धेः इत्यत्रानुपलब्धिशब्दस्य स्त्रीत्वे सत्यपि पञ्चमी वा भवति । **पृथग् इति**—आपादाने पञ्चमी एनपा द्वितीया इत्यतश्च पञ्चमी, द्वितीया इत्यनुवर्तते । एभिर्योगे तृतीया पञ्चमी द्वितीया वा भवतीत्यर्थः । **पृथग् रामात् इति**—रामस्य वर्जने सुखं नास्तीत्यर्थः । "पृथग् विनाऽन्तरेणर्ते हिरुङ् नाना च वर्जने" इत्यमरः । **अन्यारादिति**—अन्य आरात् इतर ऋते दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद आच् आहि इत्येतैर्योगे पञ्चमी स्यादित्यर्थः । युक्त इति भावे क्तः, अतः योगे इत्यर्थः । **अन्य इति**—अन्यशब्दः अन्यार्थकस्य भिन्नादिकस्य ग्राहकः। ननु इतरशब्दोऽपि अन्यार्थक एव, कथं पुनः पृथग् ग्रहणमिति चेदुक्तं-प्रपञ्चार्थमिति । **अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्**—कृष्णशब्दात् अन्यारादितरर्ते इति पञ्चमी । **ऋते कृष्णात्**-कृष्णं विनेत्यर्थः । **दिग्योगे पूर्वो ग्रामात् इति**—ग्रामात् पञ्चमी । ग्रामावधिकपूर्वदिग्वर्ती ग्राम इत्यर्थः । **दिक् शब्द इति**—दिशि दृष्टः इति विग्रहः । अत्र शब्दग्रहणं देशकालवृत्तिनाऽपि दिक्-शब्देन योगे यथा स्यात्तदर्थमस्ति । **चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः इति**—अत्र पूर्वशब्दस्य कालवाचकत्वेऽपि तद्योगे चैत्रशब्दात् पञ्चमी । **प्राक् प्रत्यग् वेति** अञ्चूत्तरपदस्य योगे उदाहरणम् । आच् प्रत्ययस्योदाहरणम् **दक्षिणा ग्रामात् इति**—ग्रामावधिकायां दक्षिणस्यां दिशीत्यर्थः । **दक्षिणाहि ग्रामात्**—'आहि च दूरे' इति दक्षिणशब्दात् आहि प्रत्ययः, दूरेऽर्थे । तद्योगे षष्ठीं बाधित्वा पञ्चमी । **अपपरी इति**—कर्मप्रवचनीयाः इत्यधिकारः । वर्जनेऽर्थे अपपरी इत्येतौ कर्मप्रवचनीयौ स्त इत्यर्थः ।

हिन्दी

१३५३. पृथक् विना नाना आदि के योग में तृतीया पञ्चमी एवं द्वितीया होती है विकल्प से ।

१३५४. अन्य आरात् इतर ऋते इत्यादि के योग में पञ्चमी होती है ।

१३५५. वर्जन अर्थ में अप और परि को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३५६. आङ्मर्यादावचने-१।४।८९।। आङ् मर्यादायामुक्तसंज्ञः । वचनग्रहणादभिविधावपि ।

१३५७. पञ्चम्यपाङ्परिभिः-२।३।१०।। एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी । अप हरेः, परि हरेः संसारः। परिरत्रवर्जने, साहचर्यात् । लक्षणादौ तु हरिं परि । आमुक्तेः संसारः । आसकलाद् ब्रह्म ।

१३५८. प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः-१।४।९२।। एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसंज्ञः स्यात् ।

१३५९. प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्-२।३।११।। अत्र कर्मप्रवचनीययोगे पञ्चमी । प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति । तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् ।

१३६०. षष्ठी शेषे-२।३।५०।। कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः शेषस्तत्र षष्ठी । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्र-

मध्यमनोरमापूरणी

वचनग्रहणादिति—आङ्मर्यादायाम् इत्यनेनैव सिद्धे वचनग्रहणं किमर्थमिति चेदुच्यते-वचनग्रहणाद् अभिविधौ अपि आङ् कर्मप्रवचनीयो भवतीति । **एतैरिति**—अप आङ् परि इत्येतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी इत्यर्थः । **अप हरेः, परि हरेः संसार इति**—अप परि इत्यनयोः अपपरी वर्जने इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, ताभ्यां योगे हरेः पञ्चमी । **हरिं वर्जयित्वा संसारः**= संसरणम् इत्यर्थः । अप इत्यस्य वर्जनार्थकस्य साहचर्यात् परिरपि वर्जनार्थ एव गृह्यते । **लक्षणादौ इति**—हरिं परि इत्यत्र लक्षणेत्थमिति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया । **आमुक्तेः संसारः**—आङ्मर्यादावचने, पञ्चम्यपाङ्परिभिः इति पञ्चमी । मुक्तेः प्राक्, मुक्त्या विना वा संसारः । **आसकलाद् ब्रह्मेति**-आ अत्र अभिव्यापकेऽस्ति, कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे पञ्चमी । सकलम् अभिव्याप्य ब्रह्मेत्यर्थः । **प्रतिः प्रतिनिधि इति**—मुख्यसदृशः प्रतिनिधिः, दत्तस्य प्रतिनिर्यातनं प्रतिदानम् । तयोरर्थयोः प्रतिः कर्मप्रवचनीयसंज्ञको भवतीत्यर्थः । **प्रतिनिधिप्रतिदानयोरिति**-सूत्रे यस्मादिति षष्ठ्यर्थे पञ्चमी । अतः यत्सम्बन्धी प्रतिनिधिः, यत्सम्बन्धि च प्रतिदानं तस्मात् कर्मप्रवचनीययुक्तात् पञ्चमी भवतीति अर्थः । **प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति**—प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोरिति कर्मप्रवचननीयसंज्ञा, प्रतियोगे कृष्णशब्दात् पञ्चमी । **कृष्णेन सदृशः प्रद्युम्न इत्यर्थः । तिलेभ्यः प्रतियच्छति मासान्**—प्रतिरत्र प्रतिदानेऽर्थे कर्मप्रवचनीयः । तद्योगे तिलशब्दात् पञ्चमी । तिलस्थाने माषान् प्रत्यर्पयतीत्यर्थः । **अथ षष्ठी विभक्तिः प्रारभ्यते । शेषे इति**—उक्तादन्यः शेषः । इतः पूर्वं कर्मकर्तृकरण-

हिन्दी

१३५६. मर्यादा एवं अभिविधि अर्थ में आङ् को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३५७. अप आङ् और परि इन कर्मप्रवचनीयों के योग में पञ्चमी होती है ।

१३५८. प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में प्रति को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

१३५९. कर्मप्रवचनीययोग में जिस सम्बन्धी प्रतिनिधि और प्रतिदान हो उससे पञ्चमी विभक्ति होती है ।

१३६०. कारक और प्रातिपदिकार्थ भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध रूप शेष में षष्ठी होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

विवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते । मातुः स्मरति । एधोदकस्योपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः । फलानां तृप्तः ।

१३६१. कर्तृकर्मणोः कृति-२।३।६५॥ कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी । कृष्णस्य कृतिः । जगतः कर्ता कृष्णः ।

वा. गुणकर्मणि वेष्यते ॥ नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा । कृति किम्-तद्धिते मा भूत् । कृतपूर्वी कटम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सम्प्रदानापादानाधिकरणानि उक्तानि पाणिनिना । तेषु द्वितीयादिविभक्तयोऽप्युक्ताः । प्रथमाविधाने प्रातिपदिकार्थोऽप्युक्तः । एतेभ्यः उक्तेभ्यः अन्यः शेषः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः इत्युच्यते । तत्र सम्बन्धविवक्षायां षष्ठी भवतीत्यर्थः सूत्रस्य। **राज्ञः पुरुषः इति**—राजसम्बन्धी पुरुषः इत्यर्थः । सम्बन्धः षष्ठ्यर्थः, राजन्शब्दात् षष्ठी सम्बन्धे । पुरुषः विशेष्यम्, सम्बन्धः आधेयतया पुरुषस्य विशेषणम् । आश्रयतया राजा सम्बन्धस्य विशेषणम् । सम्बन्धः आधेयतया राजानं प्रति विशेष्यमस्ति । अतः राजाश्रितस्वामित्वनिरूपितस्वत्वात्मकसम्बन्धाश्रयः पुरुषः इति बोधो भवति । **कर्मादीनामिति**—कर्तृत्वस्याविवक्षायां षष्ठी शेषे इति षष्ठी । कर्तृत्वविवक्षायान्तु सद्भिर्गतमिति स्यात् । **सर्पिषो जानीते**—सर्पिषा उपायेन प्रवर्तते इत्यर्थः । सर्पिषेति करणत्वस्य सम्बन्धत्वविवक्षायां षष्ठी । **मातुः स्मरति**—मातरं स्मरतीत्यर्थः । कर्मत्वस्य सम्बन्धत्वविवक्षायां षष्ठी । मातृसम्बन्धि स्मरणमित्यर्थः । **एधोदकस्योपस्कुरुते**—एधोदकं परिष्कुरुते इत्यर्थः । एधोदकसम्बन्धि उपस्करणमिति कर्मत्वस्य सम्बन्धत्वविवक्षायां षष्ठी । **भजे शम्भोश्चरणयोः**—शम्भुचरणसम्बन्धिभजनमिति सम्बन्धत्वविवक्षायां षष्ठी चरणशब्दात् । शम्भोश्चरणौ भजे इत्यर्थः । **फलानां तृप्तः**—फलैः तृप्त इति करणत्वस्य सम्बन्धत्वविवक्षायां फलशब्दात् षष्ठी । फलसम्बन्धिनी तृप्तिः इत्यर्थः । **कर्तृकर्मणोरिति**—कृति=कृत्प्रत्ययप्रयोगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी भवतीत्यर्थः । **कृष्णस्य कृतिः**—कृतिरिति भावे क्तिन्। कृष्णकर्तृका रचना इत्यर्थः । कर्तृकर्मणोरिति कृष्णात् षष्ठी । **जगतः कर्ता कृष्णः** । कर्ता इति कर्तरि तृच् । जगत् इति कर्म, तस्मात् कर्तृकर्मणोः कृतीति षष्ठी । जगत्कर्मकसृष्ट्यनुकूलव्यापारवान् कृष्ण इत्यर्थः । **गुणकर्मणि इति**—गुणकर्मणि=अप्रधानकर्मणि षष्ठी विकल्पेन भवति । अयं भावः कृदन्तद्विकर्मकधातुयोगे अप्रधाने कर्मणि षष्ठी वा भवति । प्रधाने कर्मणि तु नित्यैव षष्ठी । **नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा**—नेता इति नीधातोः तृच् कर्तरि । अयं द्विकर्मकः । तद्योगे अश्वः प्रधानं कर्म, तस्मात् कर्तृकर्मणोरिति नित्या षष्ठी । स्रुघ्न इति कर्मत्वस्याविवक्षायाम् अकथितञ्चेत्यनेन कर्मसंज्ञकः, गुणकर्मणि वेष्यते इत्यनेन स्रुघ्नात् षष्ठी विकल्पेन भवति । **कृति किम्**—तद्धिते मा भूत् । तद्धितयोगे षष्ठी मा भूत् इति । **कृतपूर्वी कटम् इति**—कटः पूर्वं कृतः अनेनेति विग्रहे सह सुपेति समासे कृतपूर्व इति भवति । कृतपूर्वशब्दात् "सपूर्वाच्चेति" इनि कृतपूर्वी इति भवति । इन्प्रत्ययस्तद्धितः । अत्र करोति क्रियामादाय कटस्य कर्मत्वम्, अतः कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी प्राप्नोति, किन्तु कृतपूर्वीत्यस्य तद्धितान्तत्वात् कृद्योगाभावः, तेन नास्य प्रवृत्तिः । कर्मणि तु कटशब्दात् द्वितीयैव । कृति इत्यस्याभावे षष्ठ्यापत्तिः स्यादेव । अतः कृतीति पदमावश्यकम् ।

हिन्दी

१३६१. कृद् के योग मे कर्ता एवं कर्म से षष्ठी होती है ।

वा. गौण कर्म में षष्ठी होती है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३६२. उभयप्राप्तौ कर्मणि-२।३।६६।। उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन् कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी । आश्चर्यो गवां दोहः अगोपेन ।

१३६३. कृत्यानां कर्तरि वा-२।३।७१।। षष्ठी । मया मम वा सेव्यो हरिः ।

१३६४. क्तस्य च वर्तमाने-२।३।६७।। वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी । न लोकेति वक्ष्यमाणनिषेधस्यापवादः । राज्ञां मतः बुद्धः पूजितो वा ।

१३६५. अधिकरणवाचिनश्च-२।३।६८।। क्तस्य योगे षष्ठी । इदमेषां शयितम् ।

१३६६. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्-२।३।६९।। एषां योगे षष्ठी न । लादेशः-कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः । उः-हरिं दिदृक्षुः । अलङ्करिष्णुर्वा । उक-दैत्यान् घातुको हरिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उभयप्राप्ताविति—कर्तृकर्मणोः कृति इत्यतः कृति इत्यनुवर्तते । अथ कर्तृकर्मणोरित्यनेन प्राप्ता षष्ठी उभयप्राप्तौ इत्यनेन नियम्यते । उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्, इति उभयप्राप्तौ इति । अन्यपदार्थः कृत् इत्यस्ति । कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठीप्रसक्तौ सत्यां कर्मण्येव षष्ठी इत्यर्थः । **आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेनेति**—गोकर्मकः दोहः अगोपकर्तृकः इत्यद्भुतः इत्यर्थः । गोशब्दात् अगोपशब्दाच्च षष्ठी प्राप्ता, उभयप्राप्तौ इति गोकर्मणि एव भवति । कृत्यानां **कर्तरि वेति**—कृत्यप्रत्ययानां योगे कर्तरि षष्ठी वा भवतीत्यर्थः । **मम मया वा सेव्यो हरिः इति-** सेव्य इति योगे अनुक्तकर्तुः अस्मद्शब्दात् कर्तृकर्मणोरिति नित्या षष्ठी प्राप्ताऽनेन विकल्प्यते । मम सेव्य इति । पक्षे मयेति । **क्तस्येति**—कर्तृकर्मणोरित्येव सिद्धे किमर्थमिदमिति चेत्— न लोकाव्ययेति प्राप्तायाः द्वितीयाया बाधकम् इति बोध्यम् । **राज्ञां मतः बुद्धः पूजितो वा**—मनु बुध पूज् धातुभ्यः मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्चेति वर्तमाने क्तप्रत्ययो भवति । राजन् शब्दात् क्तस्येति षष्ठी भवति । राजकर्तृकवर्तमानेच्छाविषयः, वर्तमानज्ञानविषयः, वर्तमानपूजाश्रयश्चेति क्रमशः मतः इत्यादीनामर्थः । अधिकरणवाचिनश्चेति—क्तोऽधिकरणे इति विहितस्य क्तस्य योगे कर्तरि षष्ठी इत्यर्थः । **इदमेषां शयितम्**—शेतेऽस्मिन्निति अधिकरणे क्तः, शयितमिति, एषामिति अनेनैव कर्तरि षष्ठी । **न लोकाव्ययनिष्ठेति**—कर्तृकर्मणोः कृति इति प्राप्ता षष्ठी निषिध्यतेऽनेन। ल उ उक् अव्यय निष्ठा खलर्थ तृन् इत्येषां द्वन्द्वः । एतेषां प्रयोगे षष्ठी न भवति इत्यर्थः । ल इत्यनेन लादेशाः शतृशानच्कानच्क्वसुकिकिनादयः गृह्यन्ते । **कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः**-कृ धातोः लटः स्थाने शतृशानचौ, तद्योगे कर्मणि सृष्टिशब्दात् कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी प्राप्ता, न लोकाव्ययेति निषिध्यते । अतः कर्मणि द्वितीया । **हरिं दिदृक्षुः**—दिदृक्षेति सन्नन्तात् शनाशंस इति उ प्रत्ययः । तद्योगे प्राप्ता षष्ठी निषिध्यतेऽनेन । **अलङ्करिष्णुर्वा**—हरिमिति शेषः । अलंकृञ् इत्यादिना इष्णुच् प्रत्ययः । स उकारान्तः । षष्ठी निषिध्यते । **दैत्यान् घातुको हरिः**-हन्धातोः लषपतेत्यादिना उकञ्, कर्तरि । उपधावृद्धिः । हो हन्तेः इति हस्य घः,

हिन्दी

१३६२. कृत्प्रत्यय के योग में कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त होने पर कर्म में ही षष्ठी होती है ।

१३६३. कृत्य प्रत्ययों के योग में कर्ता में षष्ठी होती है विकल्प से ।

१३६४. वर्तमानार्थक क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है ।

१३६५. अधिकरण में विहित क्तप्रत्ययान्त के योग में षष्ठी होती है ।

१३६६. लादेश उ उक अव्यय निष्ठा खलर्थ-प्रत्यय एवं तृन् के प्रयोग में षष्ठी नहीं होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. कमेरनिषेधः ।। लक्ष्म्याः कामुकः । अव्ययम्-जगत् सृष्ट्वा । निष्ठा-दैत्यान् हतवान् विष्णुः । विष्णुना हता दैत्याः । खलर्थः-ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा । तृन्निति प्रत्याहारः । शतृशानचाविति तृ-शब्दादारभ्य तृनो नकारात् । शानन्-सोमं पवमानः । चानश्-आत्मानं मण्डयमानः । शतृ-वेदमधीयन् । तृन्-कर्ता लोकान् ।

वा. द्विषः शतुर्वा ।। मुरस्य मुरं वा द्विषन् । सर्वोऽयं कारकषष्ठ्याः प्रतिषेधः । शेषे षष्ठी तु स्यादेव । ब्राह्मणस्य कुर्वन् । नरकस्य जिष्णुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

हनस्तोऽचिण्णलोरिति नस्य तः । घातुक इति योगे षष्ठी न । **कमेरनिषेधः इति**— उकान्तकमेर्योगे षष्ठ्या निषेधो न भवतीति वक्तव्यम् । **लक्ष्म्याः कामुकः**—कमेरुकञ् । कामुकयोगे कमेरिति निषेधाभावात् कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी एव लक्ष्मीशब्दात् । **जगत् सृष्ट्वा**- सृजेः क्त्वा, क्त्वान्तमव्ययं, तद्योगे षष्ठीनिषेधः । **दैत्यान् हतवान् विष्णुः**—क्तान्तयोगे षष्ठी न । **हता दैत्या इति**—प्रधाने कर्मणि प्रथमा । **ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा**—ईषद्दुःसुषु इत्यादिना कृधातोर्खल् कर्मणि । हरेः षष्ठीनिषेधात् अनुक्ते कर्तरि तृतीया । खलर्थ इत्यत्र अर्थग्रहणेन आतो युच् इत्यादयोऽपि खलर्थाः गृह्यन्ते । तेन ईषत्पानः सोमो भवतेति भवति। **सोमं पवमानः**—पूङ्यजोरिति पूङः शानन् । तद्योगे षष्ठीनिषेधात् कर्मणि द्वितीया । **आत्मानं मण्डयमानः**—मण्डतेः ताच्छील्यवयोवचनेति चानश् । षष्ठी न । **वेदमधीयन्**—अधि+इङ् इत्यस्मात् इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि इति लटः शतृप्रत्ययः । अधीयन् इति योगे वेदशब्दात् षष्ठी निषिद्धा । **कर्ता लोकान्**—कृधातोस्तृन्निति सूत्रेण तृन् । तद्योगे कर्तृकर्मणोरिति प्राप्ता षष्ठी न लोकेति निषिध्यते । करोति क्रियायाः कर्मणः लोकशब्दात् द्वितीया । **द्विषःशतुर्वेति**—शतृ-प्रत्ययान्तस्य द्विषधातोर्योगे षष्ठी निषेधो भवति विकल्पेन । **मुरस्य मुरं वा द्विषन्**—द्विषन् इति शत्रन्तयोगे न लोकाव्येति नित्यं षष्ठ्याः निषेधः प्राप्तः, सः निषेधः वार्तिकेन विकल्पितः। निषेधपक्षे द्वितीया । मुरमिति । निषेधाभावे कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी, मुरस्येति । **सर्वोऽयमिति**- अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति नियमात् कारकषष्ठ्याः निषेधं करोति न लोका-व्ययेति सूत्रं न तु शेषे षष्ठीति विहितायाः शेषषष्ठ्याः । अतः शेषत्व विवक्षायां षष्ठी ब्राह्मणस्य कुर्वन्नित्यत्र दृश्यते । ब्राह्मणसम्बन्धिसृष्ट्यनुकूलव्यापारवान् इत्यर्थः । एवमेव नरकस्य जिष्णुः इत्यत्र कर्मत्वस्याविवक्षायां शेषत्वे षष्ठी, शेषे षष्ठीत्यनेन । उभयत्र कर्मत्वविवक्षायां ब्राह्मण-नरकशब्दाभ्यां प्राप्ता षष्ठी न लोकाव्ययेत्यनेन निषिध्यते । कर्मणि द्वितीयायां सत्यां ब्राह्मणं कुर्वन् नरकं जिष्णुरित्यपि भवति ।

हिन्दी

वा. उकप्रत्ययान्त कम् धातु के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होता है ।

वा. शतृ प्रत्ययान्त द्विष् धातु के योग में षष्ठी का निषेध होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३६७. अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः-२।३।७०।। भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न । सतः पालकोऽवतरति । व्रजं गामी । शतं दायी। वा. निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् ।। किं निमित्तं वसति । केन निमित्तेन । कस्मै निमित्तायेत्यादि । एवं किं कारणं, को हेतुः, किं प्रयोजनमित्यादि । प्रायग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमा द्वितीये न स्तः । ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः । ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि ।

१३६८. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन-२।३।३०।। ग्रामस्य दक्षिणतः । पुरः पुरस्तात्, उपरि उपरिष्टात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोरिति—न लोकेत्यतः न इत्यनुवर्तते । अकश्च इन् च, तयोः अकेनोरिति । भविष्यच्च आधमर्ण्यञ्च तयोरिति द्वन्द्वः । यथासंख्यं न गृह्यते । आधमर्ण्यम् अकेन नान्वेति, असम्भवात् । इनस्तु उभयोः अन्वयः, सम्भवात् । अत उक्तं भविष्यत्यकस्येत्यादि । **सतः पालकोऽवतरति**—सज्जनाम् पालक इत्यर्थः । पाल्धातोः तुमुन्ण्वुलौ इति भविष्यति ण्वुल् । पालक इत्यस्य योगे प्राप्ता षष्ठी अकेनोरिति निषिध्यते । **व्रजं गामी**—गमेरिनिरिति भविष्यति इनिः, औणादिकः । व्रजं गमिष्यन्नित्यर्थः । कर्तृकर्मणोरिति प्राप्ता षष्ठी न । **शतं दायीति**—ऋणरूपेण गृहीतं शतं प्रत्यर्पयति । आवश्याधमर्ण्ययोरिनिः इति आधमर्ण्ये णिनिः दाधातोः, युक् । षष्ठी प्राप्ता शतशब्दात्, अकेनोरिति निषिद्धा । कर्मणि द्वितीया । **निमित्तपर्यायप्रयोगे इति**—निमित्तस्य निमित्तपर्यायाणाञ्च प्रयोगे तेभ्यः तत्समानाधिकरणेभ्यश्च शब्देभ्यः सर्वासां विभक्तीनां प्रयोगः प्रायेण भवतीत्यर्थः । **किं निमित्तं वसति**—किम् इत्यस्मात् निमित्त इत्यस्मात् च प्रथमा द्वितीया वा विभक्तिर्बोध्या । **इत्यादि इति**—कस्मात् निमित्तात् कस्य निमित्तस्य कस्मिन्निमित्ते इत्याद्यपि भवतीति भावः । निमित्त-पर्यायाणां प्रयोगेऽपि भवति सर्वा विभक्तिः । **यथा**—किं कारणं को हेतुरित्यादि । **प्रायग्रहणादिति**-वार्तिके प्रायग्रहणाद् सर्वनामभिन्नात् निमित्तपर्यायाणां प्रयोगे प्रथमा द्वितीये न भवतः, निमित्तादिभ्योऽपि न भवतः । तेन 'सर्वनाम्नस्तृतीया च' षष्ठी हेतुप्रयोगे इति सूत्रद्वयं न कर्तव्यं भवतीति भावः । अतः ज्ञानेन निमित्तेन ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि भवति । ज्ञानं निमित्तमिति न भवति । **षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेनेति**—षष्ठी अतसर्थप्रत्ययेन इतिच्छेदः । दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् इति विहितस्य अतसुच् प्रत्ययस्य अर्थः दिग्देशकालरूपः । स एव अर्थः यस्य प्रत्ययस्य सः अतसर्थप्रत्यय उच्यते । **तद्योगे षष्ठी भवतीति** सूत्रार्थः । **ग्रामस्य दक्षिणतः**—दक्षिणशब्दात् सप्तम्यन्तपञ्चम्यन्तप्रथमान्तात् स्वार्थे अतसुच् । दक्षिणतः इति । अस्यार्थः दक्षिणस्यां दक्षिणस्याः दक्षिणा वा दिग् इति ।

हिन्दी

१३६७. भविष्यदर्थक अक एवं भविष्यत् तथा आधमर्ण्यार्थक इन् प्रत्यय के योग में षष्ठी नहीं होती है ।

वा. निमित्त और तदर्थक शब्दों के योग में उनसे तथा तत्समानाधिकरण से प्रायः सभी विभक्तियाँ आती हैं ।

१३६८. अतसर्थप्रत्यय के योग में षष्ठी होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३६९. एनपा द्वितीया-२।३।३१।। एनपेति योगविभागात् षष्ठी अपि । दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा । एवमुत्तरेण ।
१३७०. दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्-२।३।३४।। एतैर्योगे षष्ठी पञ्चमी च । दूरं निकटं वा ग्रामस्य, ग्रामाद्वा ।
१३७१. दिवस्तदर्थस्य-२।३।५८।। द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी । शतस्य दीव्यति । तदर्थस्य किम्-ब्राह्मणं दीव्यति । स्तौतीत्यर्थः।
१३७२. विभाषोपसर्गे-२।३।५९।। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति ।

मध्यमनोरमापूरणी

तद्योगे अन्यारादिति दिग्योगे प्राप्तां पञ्चमीं प्रबाध्य ग्रामशब्दात् षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेनेति षष्ठी। देशे कालेऽपि एवमेव बोध्यम् । पुरः पुरस्तात् ग्रामस्य, उपरि उपरिष्टाद् ग्रामस्येत्यत्रापि ग्राम-शब्दात् षष्ठी । पुरः इति पूर्वशब्दात् पूर्वावराधराणामसि इत्यादिना असिप्रत्ययेन पूर्वस्य पुरादेशेन च सिद्धः । ऊर्ध्वशब्दात् रिष्टातिल्प्रत्यये ऊर्ध्वस्य च उपादेशे सति उपरि उपरिष्टात् इति भवति । ऊर्ध्वायां दिशित्यर्थः। **एनपेति**—षष्ठ्यतसर्थेति षष्ठ्यां प्राप्तायामिदं वचनम् । एनप्प्रत्ययान्तयोगे द्वितीया भवति इत्यर्थः । षष्ठी अपि इष्यते, अतः एनपेति योगविभागा-दिति लिखितम् । **दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वेति**—एनपा द्वितीयेति ग्रामशब्दात् द्वितीया । एनपेति योगविगात् षष्ठी, ग्रामस्येत्यपि भवति । **दूरान्तिकार्थैरिति**—पञ्चमीत्यनुवर्तते । दूरार्थकैः अन्तिकार्थकैश्च योगे षष्ठी पञ्चमी वा भवति इत्यर्थः । **दूरं निकटं वा ग्रामस्य ग्रामाद् इति**—ग्राम शब्दात् षष्ठी, पञ्चमी वा भवति । एनपा द्वितीया इति, पृथग्विनानानाभिः इति च द्वितीयातृतीये न गृह्येते, व्याख्यानात् । **द्यूतार्थस्येति**—व्यवहृपणोः समानार्थयोः इत्यस्यात्र तदर्थस्येति पदेन ग्रहणम् । तेन व्यवहृपणोः अर्थ एव अर्थो यस्येति 'तदर्थस्य' इत्यनेन ज्ञायते। दिवः विजिगीषार्थः, अयञ्चार्थो द्यूते । अतः द्यूतार्थस्य दिवः कर्मणि षष्ठी, अथ व्यवहारार्थ-कोऽपि दिव् धातुः, अतः क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी इत्यर्थो भवति। **शतस्य दीव्यतीति**—शतम् अक्षक्रीडया क्रयविक्रयव्यवहारेण वा गृह्णातीत्यर्थः, उभयोरर्थयोः दिवः कर्म शत इति, तस्मात् दिवस्तदर्थस्येति षष्ठी । **तदर्थस्येति किम्**—ब्राह्मणं दीव्यति। अत्र दिवः अर्थः स्तुतिः, अतः न ब्राह्मणात् षष्ठी । **विभाषोपसर्गे**—उपसर्गे सति दिवस्तदर्थस्य कर्मणि षष्ठी भवति विभाषया इत्यर्थः । **शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति**—अक्षक्रीडया शतं प्रति-गृह्णातीत्यर्थः, क्रयविक्रयव्यवहारेण वा प्रतिगृह्णातीत्यर्थः । शतशब्दात् दिवस्तदर्थस्येति नित्या षष्ठी प्राप्ता, तां प्रबाध्य विभाषोपसर्गे इति षष्ठी विकल्पेन भवति । पक्षे शतमिति कर्मणि द्वितीयैव ।

हिन्दी

१३६९. एनबन्त के योग में द्वितीया होती है । 'एनपा' इस योग विभाग से षष्ठी भी होती है ।

१३७०. दूरार्थक और समीपार्थक के योग में षष्ठी और पञ्चमी होती है ।

१३७१. द्यूतार्थक एवं क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थक दिव् धातु के कर्म में षष्ठी होती है ।

१३७२. सोपसर्गक दिव् धात्वर्थ कर्म में षष्ठी होती है, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३७३. आधारोऽधिकरणम्-१।४।४५॥ कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञं स्यात् ।

१३७४. सप्तम्यधिकरणे च-१।३।३६॥ अधिकरणे सप्तमी स्यात्, चाद्दूरान्तिकार्थेभ्यः ।

औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेति आधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मा अस्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा ।

वा. क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् ॥ अधीती व्याकरणे ।

वा. साध्वसाधुप्रयोगे च ॥ साधुः कृष्णो मातरि । असाधुर्मातुले ।

मध्यमनोरमापूरणी

आधारोऽधिकरणम्—आध्रियन्तेऽस्मिन् क्रियागुणा इत्याधारः । कारके इत्यधिकृतं प्रथमान्ततया विपरिणतं सत् आधारस्य विशेषणं भवति । आधारः कारकमधिकरणम् इत्यर्थः। कस्याधार इत्याकाङ्क्षायां क्रियाया आधार इति ज्ञायते । क्रियाया आधारत्वं साक्षात् न भूत्वा कर्तृकर्मद्वारैव भवति । क्रिया च कर्तृकर्मनिष्ठा विवक्षिता । अतः कर्तृकर्मद्वारा कर्तृकर्मनिष्ठायाः क्रियाया आधारभूतं कारकमधिकरणसंज्ञं भवतीत्यर्थः संगच्छते । **सप्तम्यधिकरणे चेति**—दूरान्तिकार्थेभ्यः इति च-ग्रहणादनुवर्तते । **आधारस्त्रिधेति**—औपश्लेषिकः=उप समीपेश्लेषः सम्बन्धः, संयोगादिसम्बन्धः, तत्प्रयोज्य आधारः औपश्लेषिकः । वैषयिकः= विषयतासम्बन्ध-द्वारक आधारः । अभिव्यापकः=सकलावयवव्याप्तिकृत आधारः । **क्रमेणोदाहरणानि यथा-कटे आस्ते इति**—देवदत्तः कटे आस्ते इति ज्ञेयम् । कर्तुः क्रियायाः आधारः कटः, आसनक्रियां प्रति कटस्य संयोगसम्बन्धद्वारकम् आधारत्वमस्ति, आधारोऽधिकरणमित्य धिकरणसंज्ञायां सप्तम्यधिकरणे चेति सप्तमी । **स्थाल्यां पचति**—तण्डुलानिति शेषः । अत्र तण्डुलरूपकर्म द्वारा तद्गतां पाकक्रियां प्रति स्थाल्या आधरत्वमिति कर्मद्वारक औपश्लेषिक आधारः सिद्ध्यति । अधिकरणसंज्ञायां सप्तमी भवति स्थालीशब्दात् । **मोक्षे इच्छास्ति**—अत्र कर्तुः मोक्षविषयिणी इच्छा, इच्छा द्वारा मोक्षस्य आधारत्वमिति वैषयिक आधारः । **सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति**—कर्ता आत्मा, तद् द्वारा सर्वस्य सत्ताया आधारत्वात् अधिकरणसंज्ञा, सप्तमी च सर्वशब्दात् । **वनस्य दूरेऽन्तिके वेति**—सप्तम्यधिकरणे चेति दूरान्तिकशब्दयोः सप्तमी । प्रातिपदिकार्थमात्रेऽयं विधिः। **क्तस्येन्विषयस्येति**—इन्प्रत्ययान्तो यः क्तप्रत्ययान्तस्तस्य कर्मणि सप्तमी भवतीत्यर्थः । **अधीती व्याकरणे**—भावे क्तप्रत्ययान्ताद् अधीत शब्दात् इष्टादिभ्यश्चेति कर्तरि इनिः, अधीतीत्यस्य अधीतवानित्यर्थः । किमधीतीत्यस्य जिज्ञासायां व्याकरणं कर्मत्वेनान्वेति, व्याकरणात् क्तस्येति सप्तमी । **साधुः कृष्णो मातरि, असाधुर्मातुले इति**-कृष्ण उभयत्र कर्ता । शेषषष्ठीं प्रबाध्य साध्वसाधुप्रयोगे चेति मातृशब्दात् मातुलाच्च सप्तमी । साधुः हितकारी, असाधुः अहितकारी इत्यर्थः । साधुनिपुणाभ्याम् अर्चायाम् इत्येव सिद्धेऽनर्चार्थम् इदं सूत्रम्।

हिन्दी

१३७३. कर्ता और कर्म के द्वारा कर्तृकर्मनिष्ठ क्रिया का आधारभूत कारक अधिकरण होता है ।

१३७४. अधिकरण में और दूरार्थक समीपार्थक शब्दों से भी सप्तमी होती है ।

वा. इन्नन्तक्तप्रत्ययान्त के कर्म में सप्तमी होती है ।

वा. साधु और असाधुशब्दों के प्रयोग में सप्तमी होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. निमित्तात् कर्मयोगे ॥

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥

१३७५. यस्य च भावेन भावलक्षणम्-२।३।३७॥ यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी । गोषु दुह्यमानासु गतः ।

१३७६. षष्ठी चानादरे-२।३।३८॥ अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः। रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् । रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य सन्यस्तवानित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

निमितादिति—निमित्तम् इह फलं गृह्यते । कर्मणः योगः कर्मयोगः । योगः संयोग-समवायौ इह गृह्येते । अयुतसिद्धयोः सम्बन्धः समवायः । अन्ययोः संयोगः । एवञ्च कर्मयोगे हेतुवाचकात् शब्दात् सप्तमी भवतीत्यर्थः । **ननु फलं कथं हेतुरिति चेत्**—इष्टसाधनता – ज्ञानस्य प्रवर्तकत्वेन फलस्यापि हेतुत्वं सिद्ध्यति । **चर्मणि द्वीपिनं हन्ति**—चर्मार्थं व्याघ्रं हन्ति इत्यर्थः। द्वीपिकर्मणा चर्मणः समवायसम्बन्धः । चर्मशब्दात् सप्तमी।दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्-दन्तार्थं गजं हन्ति इत्यर्थः । समवायसम्बन्ध एवात्र । दन्तशब्दात् सप्तमी । **केशेषु चमरीं हन्ति**—चमरी नामकं मृगं केशरूपफललाभाय हन्ति इत्यर्थः । सप्तमी केशशब्दात् । **सीम्नि पुष्कलको हतः**-अण्डकोश-लाभाय पुष्कलकः गन्धमृगः मारित इत्यर्थः । सीमन् शब्दात् सप्तमी । **यस्य च भावेनेति**—सप्तमी इत्यनुवर्तते । सूत्रे भावशब्दौ क्रियावाचकौ स्तः । क्रिया च कर्त्राश्रया कर्मा-श्रया भवति । यस्य च भावेन=यस्य च क्रियया भावः क्रिया(अन्या) लक्ष्यते ततः भाववतः सप्तमी भवतीत्यर्थः । **गोषु दुह्यमानासु गतः**—कदा गतः इति प्रश्ने उत्तरमिदम् । गवां दोहनक्रियया गमनक्रिया लक्ष्यते । अतः गोशब्दात् तद्विशेषणात् दुह्यमान शब्दाच्च सप्तमी भवति । गोदोहोत्तरकाले गत इति फलितम् । शेषषष्ठ्यपवादोऽयम् । **षष्ठी चानादरे इति**—चकारात् सप्तमी अनुकृष्यते । यस्य चेति सूत्रमनुवर्तते । अनादराधिक्ये गम्यमाने यस्य क्रियया क्रियान्या लक्ष्यते ततः षष्ठीसप्तम्यौ भवत इत्यर्थः । **रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत्**—कदा संन्यस्तवानिति प्रश्ने उत्तरम् इदम् । धात्वर्थोऽत्र अनादरविशिष्टं प्रव्रजनम् । अनादरश्च लक्षकक्रियाश्रयपुत्रादिविषयकः । अतः रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः सिद्ध्यति। रुदत् शब्दात् षष्ठी चानादरे इति षष्ठी सप्तमी च भवतः, । रुदति रुदतो वेति भवति ।

हिन्दी

वा. कर्म के साथ फल का योग होने पर फलवाचक (निमित्त) से सप्तमी होती है ।

१३७५. जिसकी एक क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित हो उस क्रियावाले से सप्तमी होती है।

१३७६. अनादराधिक्य गम्यमान होने पर जिसकी एक क्रिया से अन्य क्रिया लक्षित हो उस क्रियावान् से षष्ठी और सप्तमी होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३७७. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च-२।३।३९।। एभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः । गवां गोषु वा स्वामी ।

१३७८. आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्-२।३।४०।। आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः । आयुक्तो व्यापारितः । आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य । आसेवायां किम्-आयुक्तो गौः शकटे । ईषद्युक्त इत्यर्थः ।

१३७९. यतश्च निर्धारणम्-२।३।४१।। जातिगुण क्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकस्य पृथक्करणं यतस्ततः षष्ठीसप्तम्यौ स्तः । नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः । गवां गोषु वा कृष्णा गौर्बहुक्षीरा । गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः । छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्वामीश्वराधिपति इति—शेषषष्ठ्यामेव प्राप्तायां सप्तमीं पक्षिकीं विधातुमिदम् । चकारात् षष्ठीसप्तम्यौ अनुकृष्येते । स्वामिन् ईश्वर अधिपति दायाद साक्षिन् प्रतिभू प्रसूत इत्येतैर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ भवतः इत्यर्थः । **गवां गोषु वा स्वामी**—गोसम्बन्धी स्वामी इत्यर्थः । षष्ठ्यां सत्यां गवाम् इति, सप्तम्याञ्च गोषु इति भवति । एवमेव अधिपत्यादिभिर्योगे ज्ञेयम् । **आयुक्तकुशलाभ्यामिति**—आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तः, आसेवायाम् इत्यर्थः । आयुक्तः= व्यापारितः, व्यापृतो वेति, प्रवर्तितः कुशलो निपुणः इत्यपि । आसेवा-शब्दस्यार्थः औत्सुक्यम्, इति । आसेवायाम्=औत्सुक्ये इत्यर्थः । **आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्येति** — हरिपूजनविषये प्रवर्तित इत्यर्थः । अत्र वैषयिकाधिकरणत्वविवक्षायां सप्तमी एव प्राप्ता तथा च सबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी एव प्राप्ता, उभयोः विधानार्थमिदं वचनम् । **आसेवायां किमिति**-आयुक्तो गौरित्यत्र ईषदर्थक आङ्, युजिर्योगेधातुश्च । ईषद्युक्त इत्यर्थः । न तु प्रवर्तितार्थक आयुक्तशब्दः । अतोऽधिकरणत्वविवक्षायां शकटात् सप्तम्येव । **यतश्च निर्धारणम्**—चात्, षष्ठीसप्तम्यौ अनुवर्तेते । जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायात् एकदेशस्य पृथक्करणं 'निर्धारणम्' इत्यस्यार्थः । यतः इति पञ्चम्यर्थे तसिः । यतः=यस्मात् समुदायात् जातिगुणादिभिः एकस्य पृथक्करणं तस्मात् समुदायात् षष्ठीसप्तम्यौ भवत इत्यर्थः । **नृणां नृषु ब्राह्मणः श्रेष्ठः**— ब्राह्मणः जाति, नृशब्दः मनुष्यसमुदायेऽस्ति । समुदायात् ब्राह्मणजातेः एकस्याः पृथक्करणमस्ति। अतः समुदायवाचकात् नृशब्दात् यतश्चेति षष्ठी सप्तम्योः कृतयोः नृणां नृषु इति भवति। **गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा**—गोसमुदायात् कृष्णगुणयुक्ता गौः पृथक्क्रियते, अतः षष्ठी-सप्तम्यौ भवतः । गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः । क्रियया पृथक्करणस्येदमुदाहरणम् । गच्छत्समुदायैकदेशभूतः धावन् इति पृथक् क्रियते । अतः समुदायात् षष्ठीसप्तम्यौ । **छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः**—छात्रसमुदायात् मैत्रः संज्ञया पृथक् क्रियते, अतः यतश्चेत्यनेन षष्ठीसप्तम्यौ छात्रशब्दात् भवतः ।

हिन्दी

१३७७. स्वामी ईश्वर आदि के योग में षष्ठी और सप्तमी होती हैं ।

१३७८. आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी होती हैं आसेवा अर्थ गम्यमान होने पर ।

१३७९. जाति गुण क्रिया व संज्ञा द्वारा पृथक्करण होने पर समुदाय से षष्ठी व सप्तमी होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३८०. पञ्चमीविभक्ते-२।३।४२॥ विभागो विभक्तम् । निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी । माथुराः पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः ।

१३८१. साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः-२।३।४३॥ मातरि साधुर्निपुणो वा । आर्चायां किम्-निपुणो राज्ञो भृत्यः । इह तत्त्वकथने तात्पर्यम् ।

वा. अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥ साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा ।

१३८२. अधिरीश्वरे-१।४।९७॥ स्वस्वामिसम्बन्धेऽपिः कर्मप्रवचनीयः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पञ्चमी विभक्ते—यतश्च निर्धारणमित्यनुवर्तते । षष्ठीसप्तम्योरपवादोऽयं योगः । विभक्ते इति भावे क्तः । विभक्तः विभाग इत्युच्यते । निर्धारणे विशेषात्मना भेदःस्थीयते । अतः विभक्त इत्यनेन भेदार्थो विवक्षितः । यत्र निर्धारणावधेः निर्धार्यमाणस्य च भेदः स्यात्तत्रैवास्य प्रवृत्तिः । **माथुरा पाटलिपुत्रेभ्य आढ्यतराः**—अवधित्वं पञ्चम्या अर्थः । मथुरादेशीयाः पाटलिपुत्रदेशीयापेक्षया अतिशयेनाढ्याः इत्यर्थः । पञ्चमी विभक्ते इत्यनेन पाटलिपुत्रशब्दात् पञ्चमी। **साधुनिपुणाभ्यामिति**—साधुनिपुण इत्येताभ्यां योगे अर्चायां गम्यायां सप्तमी भवति प्रतिः न प्रयुज्यते चेत् इत्यर्थः । शेषषष्ठ्या अपवादोऽयं योगः । **मातरि साधुरिति**—मातुः हितकारी इत्यर्थः । साधुशब्दप्रयोगे मातृशब्दात् सप्तमी । मातरि निपुण इत्यस्य मातुः शुश्रूषायां कुशल इत्यर्थः । साधुनिपुणाभ्यामिति मातृशब्दात् सप्तमी । ननु साध्वसाधुप्रयोगे चेति साधु शब्द-प्रयोगेऽर्चां विनाऽपि सप्तमी स्यादेव, अत्र साधु शब्दपाठो व्यर्थ इति चेन्न । इह साधुशब्द-अर्चायां प्रत्यादियोगे सप्तमीनिवृत्त्यर्थः । **अचार्यां किम्**- निपुणो राज्ञो भृत्यः— अत्र यथार्थ-कथनं क्रियते । न तु पूजा । **अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम्**—प्रति परि अनु एतैर्योगे साधु-निपुणाभ्यां योगेऽपि सप्तमी न भवतीति वाच्यमित्यर्थः । **साधुर्निपुणो वा मातरि प्रति पर्यनु वा**—अत्र अर्चार्थेऽवगतेऽपि प्रति पर्यनु इत्यादियोगात् अप्रत्यादिभिरिति सप्तमीनिषेधः। तेन मातृ-शब्दात् द्वितीयैव । **अधिरीश्वरे इति**—कर्मप्रवचनीयाः इत्यधिकृतम्, एकवचनान्तत्वेन विपरिणम्यते । ईश्वरः स्वामी । स च स्वम् अपेक्षते ।अतः ईश्वरत्वं स्वस्वामिभावसम्बन्धात्मकं विवक्षितम् । तस्मिन् स्वस्वामिभावसम्बन्धे अधिः कर्मप्रवचनीयो भवतीत्यर्थः । एतेन सिद्ध्-यति यत् कदाचित् स्वामिनः कर्मप्रवचनीयविभक्तिः कदाचिच्च स्वात् भवति कर्मप्रवचनीय-विभक्तिः सप्तमी ।

हिन्दी

१३८०. निर्धार्यमाण का जहाँ भेद विवक्षित हो वहाँ पञ्चमी होती है ।

१३८१. साधु और निपुण के योग में अर्चा अर्थ गम्य होने पर सप्तमी होती हैं, यदि प्रति का प्रयोग न हुआ हो ।

वार्तिक. प्रति परि अनु इत्यादि के योग में साधु व निपुण का प्रयोग होने पर भी सप्तमी नहीं होती है ।

१३८२. स्वस्वामिभाव सम्बन्ध में अधि को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३८३. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी-२।३।९।। अत्र कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी । उप परार्धे हरेर्गुणाः । परार्धादधिका इत्यर्थः । ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी । अधिभुवि रामः । अधिरामे भूः ।

।। इति विभक्त्यर्थाः (कारकाणि) ।।

मध्यमनोरमापूरणी

यस्मादधिकमिति—कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया इत्यतः द्वितीयां परिहाय सर्वमनुवर्तते । शेष-षष्ठ्या अपवादोऽयं योगः । यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं=यत्सम्बन्धी ईश्वर उच्यते तत्र कर्म-प्रवचनीययुक्ते सप्तमी विभक्तिर्भवति इत्यर्थः । यत्पदेन स्वम् इत्युच्यते इह । अतः स्व-वाचकात् सप्तमी इत्यर्थोऽपि लभ्यते । ईश्वरशब्दस्य भाववचनत्वात् यस्येश्वरत्वमुच्यते ततः सप्तमीत्यर्थे गृहीते सति स्वामिवाचकात् सप्तमीत्यपि लभ्यते । **अत एव उक्तं मूले-** ऐश्वर्ये तु स्वस्वामिभ्यां पर्यायेण सप्तमी इति । **उप परार्धे हरेर्गुणाः इति**—उपोऽधिके चेति उपेत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे यस्य चेश्वरवचनमिति परार्ध-शब्दात् सप्तमी । यस्मादधिकं संख्यान्तरं नास्ति तत्परार्धमुच्यते । अवधित्वमत्र सप्तम्यर्थः । परार्धादधिकाः हरेर्गुणा इत्यर्थः। **अधि भुवि रामः**—अधिरत्र ईश्वरपर्यायः, अधिरीश्वरे इति तस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । तद्योगे भूशब्दात् सप्तमी यस्य चेश्वरवचनमित्यनेन । भुवः स्वामी राम इत्यर्थः । सम्बन्धः सप्तम्या अर्थः । अत्र स्ववाचकात् सप्तमी । **अधि रामे भूः**—अधिरत्र स्वशब्दपर्यायः । सम्बन्धः सप्तम्या अर्थः । रामस्य स्वभूता भूः इत्यर्थः । रामः स्वामिवाचकः । अधिरीश्वरे इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा। यस्य चेश्वरवचनमित्यादिना रामात् सप्तमी । इति चौधर्युपाह्वेन अर्कनाथेन कृतायां मध्यमनोरमापूरण्यां विभक्त्यर्थाः । 12-5-92. मंगलवासरः ।

हिन्दी

१३८३. कर्मप्रवचनीय युक्त होने पर जिससे अधिक तथा जिसका ईश्वरत्व बतलाया जाये उससे सप्तमी होती है ।

।। विभक्त्यर्थ-समाप्त ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ समासप्रकरणम्

समासः पञ्चधा । तत्र समसनं समासः । स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः । तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः । कर्मधारयभेदो द्विगुः । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः । प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ।

१३८४. समर्थः पदविधिः-२।१।१।। पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ।

मध्यमनोरमा

समासः पञ्चधेति—वक्ष्यमाणभेदेनेति भावः । समसनं समास इति भावे घञ् । अनेकस्य पदस्य एकपदीभवनमित्यर्थः । केचित्तु सुबन्तं समस्यते इत्युत्तरग्रन्थानुरोधात् समास इत्यात्राकर्तरि च कारक इति कर्मणि घञमाहुः । पञ्चधात्वमेवाह—सचेत्यादिना । **केवलसमास इति**-सह सुपेति विहित इति भावः । सूपप्रतीत्यादौ उत्तरपदार्थस्योन्मत्तगङ्गमित्यादावन्यपदार्थस्य च प्राधान्यदर्शनादाह-प्रायेण **पूर्वपदार्थेति** । अतिखट्वादौ पूर्वपदार्थस्य प्राधान्यादाह-प्रायेणोत्तरपदार्थेति । **ननु कर्मधारयद्विग्वादीनामाधिक्यात् पञ्चधात्वमनुपपन्नमत आह**—तत्पुरुषभेद इति । तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः इति सूत्रेण समानाधिकरणतत्पुषस्य कर्मधारयसंज्ञाविधानादिति भावः । कर्मधारयभेदो द्विगुरिति तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः, संख्यापूर्वो द्विगुरिति व्याख्यानादिति भावः । **द्वित्रा इत्यादौ उभयपदार्थ-प्राधान्यादाह**—प्रायेणान्यपदार्थ इति। समाहारद्वन्द्वे दन्तोष्ठमित्यादौ समाहारस्य प्राधान्यादाह-प्रायेणोभयपदार्थ इति । **समर्थः पदविधिः**-पदस्य विधिः पदविधिरिति शेषषष्ठ्याः समासः इत्याह-पदसम्बन्धीति । **समर्थाश्रित इति**—व्याख्यानादत्रैकार्थीभावलक्षणं सामर्थ्यं गृह्यते । तत्त्वं च भिन्नार्थानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वर्तमानत्वम् । राजपुरुष इत्यादिवृत्तौ राजपदस्य पुरुषपदस्य च पृथगर्थो नैवास्ति, किन्तु समुदायस्यैव । राजसम्बन्ध्यभिन्नः पुरुषः इति बोधः ।

मध्यमनोरमापूरणी

समास इति—समस्यते अनेकं पदम्= एकीक्रियते संश्लिष्यते वेति समासः । सम्पूर्वकस्य असु क्षेपणे इत्यस्य एकीकरणात्मकः संश्लेषः अर्थो भवति । अन्वर्थेयं संज्ञा । **प्रायेणेति**—प्रदर्शितलक्षणानामन्यस्मिन्नपि समासे आक्रान्तत्वात् प्रायेणेति पदम् । अर्थात् बहुलेषु लक्ष्येषु उक्तलक्षणं संघटते । केषुचित् अपवादभूतेषु लक्ष्येषु न संघटते इति भावः। **समर्थः पदविधिरिति**—विधीयते इति विधिः कार्यम् । पदस्य विधिः पदविधिः ।

हिन्दी

समास पाँच प्रकार का है । अनेक पदों का एक पद बनना समास है । विशेषनाम से रहित समास केवल-समास है । प्रायः पूर्वपदार्थ की प्रधानता वाला अव्ययीभाव है । प्रायः उत्तरपदार्थप्रधान तत्पुरुष समास है । तत्पुरुष का भेद कर्मधारय है । कर्मधारय का भेद द्विगु है । प्रायः अन्य पदार्थ प्रधान बहुव्रीहि समास है । प्रायः दोनों पदार्थों की प्रधानतावाला समास द्वन्द्व है ।

१३८४. पदसम्बन्धी कार्य समर्थाश्रित होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३८५. प्राक्कडारात् समासः-२।१।३।। कडारा कर्मधारय इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ।

१३८६. सह सुपा-२।१।४।। सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात् प्रातिपदिकत्वे सुपो लुक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्च द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वे चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः।

मध्यमनोरमा

प्राक्कडारात्—इह प्राग्ग्रहणमावर्तते, तेन कडारात् प्राक् प्रथमं समाससंज्ञा भवति, ततः प्राक्-समाससंज्ञकाः सन्तोऽव्ययीभावादिसंज्ञका इत्यर्थः । तेन अव्ययीभावादिभिः समाससंज्ञायाः समावेशसिद्धिः । अन्यथा विधानसामर्थ्यात् पर्यायापत्तिः स्यात् । **सह सुपा**- सुबामन्त्रित इत्यतः सुबित्यनुवर्तते । **तदाह**—सुप्सुपेति । अव्ययं विभक्तीत्यादिना समासाव्ययीभावयोरुभयोर्विधानात् ज्ञापकात् अनित्योऽयं समास इत्याह-वा समस्यते इति । **समासत्वादिति**—कृत्तद्धितेनेति सूत्रेणेति भावः । **सुपो लुगिति**—सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति सूत्रेणेति शेषः । **परार्थाभिधानमिति**—वृत्तिघटकीभूतपदार्थापेक्षयेति भावः । **पञ्चवृत्तय इति**—पाचकः औपगवः रामौ पिपठिषतीत्यादयः । स चेति विग्रहः इत्यर्थः । **लैकिक इति**—तस्य लोके प्रयोगादिति भावः । **अलौकिक इति**—एतस्य लोकेऽप्रयोगादिति भावः । **पूर्वनिपात इति**—भूतशब्दस्यैवेति शेषः, अन्यथा प्रथमानिर्दिष्टत्वाविशेषेऽपि उपसर्जनसंज्ञाया अन्वर्थत्वेन पूर्वशब्दस्यैव पूर्वनिपातः स्यादिति भावः ।

मध्यमनोरमापूरणी

समर्थ शब्दः समर्थाश्रितं लक्षयति । **अत उक्तं**—पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः। समर्थः शक्तोऽपि उच्यते । विग्रहवाक्यानामर्थाभिधाने शक्तः समर्थः ज्ञेयः । अयं समासः समर्थानां पदानां सम्बद्धार्थानां संसृष्टार्थानां वा विधिरस्ति । **सामर्थ्यं द्विविधमुच्यते**- व्यपेक्षारूपम् एकार्थीभावरूपञ्च । एकार्थीभावे एव समासो भवति न व्यपेक्षायाम् । विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा तु वाक्ये एव भवति । यतो हि राज्ञः पुरुषोऽस्ति इत्यादि वाक्ये एकैकस्य शब्दस्य यः यः सन्निहितः योग्यश्च तेन तेन सह अन्वयो भवति । समर्थःसंङ्गतार्थः संसृष्टार्थो वेति व्युत्पत्या एकार्थीभवनरूपसामर्थ्ये एव समासः । यथा राजपुरुष इत्यत्र राज पुरुषपदयोः पृथगर्थो न भासतेऽपि तु राजसम्बन्ध्यभिन्नपुरुषः इत्यर्थो भवति । अयमेव एकार्थीभावः । **सह सुपेति**-सुबनुवृत्त्या सुबन्तं-सुबन्तेन समस्यते इत्यर्थलाभे सिद्धे सहग्रहणमत्र योगविभागार्थम् । तेन सुबन्तं समर्थेन सह समस्यते इत्यर्थोऽपि भवति । अतः अनुव्यचलत् पर्यभूषयत् इत्यादौ अनु परि इत्यादीनां तिङन्तेन समासो भवति । समासान्तोदात्तत्वे शेषनिघातः फलं समासस्य । **भूतपूर्वः इति**—पूर्वं भूतः इति लौकिकविग्रहे पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिक विग्रहे सह सुपेति समासे कृत्तद्धितसमासाश्चेति प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति सुपो लुकि पूर्व

हिन्दी

१३८५. 'कडाराः कर्मधारये' इससे पूर्व तक समास का अधिकार है ।

१३८६. सुबन्त का सुबन्त समर्थ के साथ समास होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च ॥ वागर्थौ इव वागर्थाविव ।

इति केवल-समासः ।

मध्यमनोरमा

इवेनेति—अयमपि समासः योगविभागसिद्धत्वादनित्य एव, सह सुपेति सूत्रे भाष्ये पाठाच्च स्पष्टं चेदं तत्रैव सूत्रे कैयटे। अत एव उद्बाहुरिव वामन इति व्यस्तप्रयोगः सङ्गच्छते, विभक्त्यलोपस्तु अपूर्व एव विधीयते । स च प्रत्यासत्त्या समासावयवस्यैव, तेन समासादुत्पन्नस्याव्ययादाप्सुप इति लुग्भवत्येव । अव्ययसंज्ञायां तदन्तविधिसत्त्वात् । **वागर्थाविवेति**—न चाव्ययं विभक्ति इति सूत्रे यथार्थग्रहणात् सादृश्यग्रहणाच्चात्राव्ययीभावसमासः स्यादिति वाच्यम्, इवेनेत्यनेन बाधात्, तत्र तस्येवेति निर्देशाच्चेति दिक् ।

॥ इति केवलसमासः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

भूत इति जाते भूतपूर्वे 'चरडिति सूत्रनिर्देशात् भूतशब्दस्य पूर्वनिपाते भूतपूर्व इति जाते एकदेशविकृत- मनन्यवदिति परिभाषासहकारेण ङ्याबिति सुप्रत्यये सो रुत्वविसर्गौ । **इवेनेति-** इव इत्यव्ययेन सुबन्तं समस्यते विभक्तेश्च लोपो न भवतीत्यर्थः । ननु इवेत्यव्यस्ययापि सुबन्तत्वाविशेषात् सहसुपेत्यनेनैव समाससिद्धिः स्याद् किमर्थं वार्तिकमिति चेदुच्यते-इव इति प्रथमानिर्दिष्टस्य पूर्वनिपाताभावायेदं वार्तिकम् । अन्यथा इवेत्यस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वादुपसर्जनसंज्ञायां पूर्वनिपातः स्यात् । **वागर्थाविव**—वागर्थौ इवेति, लौकिक विग्रहे इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च इति समासे विभक्तेश्चालोपे कृते वागर्थौ इव' इत्येव तिष्ठति, समासे संहिताया नित्यत्वात् एचोऽयवायाव इत्यावादेशः ।

॥ इति केवलसमासप्रकरणम् ॥

हिन्दी

वा. इव के साथ सुबन्त का समास होता है तथा विभक्ति का लोप नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथाव्ययीभावसमासः

१३८७. अव्ययीभावः-२।१।५।। अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ।

१३८८. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भाव पश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु-२।१।६।। विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन नित्यं समस्यते । प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा । विभक्तौ हरि ङि अधि इति स्थिते-

१३८९. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्-१।२।४३।। समासशास्त्रेषु प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ।

मध्यमनोरमा

प्राक्—प्रतिज्ञाकृतपञ्चधासमासमध्ये प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानं द्वितीयं समासमाह-अव्ययीभावः । अनव्ययमव्ययं भवतीत्यर्थः । एवञ्चान्वर्थत्वेनैवाव्ययसंज्ञायां सिद्धायामव्ययीभावश्चेति अव्ययीभावसंज्ञाविधायकं सूत्रं न कर्तव्यमिति केचित् । महासंज्ञाकरणं प्राचामनुरोधात् । अव्ययीभावश्चेति सूत्रन्तु कर्तव्यमेवेति परे । **अव्ययं विभक्ति इति-** नन्वत्र निपातेनाधिना हरिनिष्ठसप्तम्यर्थस्य द्योतितत्वादुक्तार्थानामप्रयोग इति न्यायेन हरिशब्दात् सप्तमी न स्यादिति चेन्नैवम् । सुपेत्यनुवृत्तिसामर्थ्यात् प्रत्यासत्त्या यद्विभक्त्यर्थद्योतकाव्ययेन सुबन्तस्य समासस्तद्विभक्त्यैव सुबन्तत्वस्य ग्रहणात् । **प्रथमा-निर्दिष्टमिति**—अत्र समासपदं समासविधायकशास्त्रे लाक्षणिकं, व्याख्यानात् । **तदाह**—समासशास्त्रे इति । **उपसर्जनं पूर्वम्-** समास इत्यधिकृतं योग्यताबलेनात्र सप्तम्यां विपरिणमते इत्याह-समासे इति ।

मध्यमनोरमापूरणी

अव्ययीभाव इति—इत ऊर्ध्वमव्ययीभावस्याधिकारः । पूर्वंसमाससंज्ञायां जातायामपि अव्ययीभावसंज्ञया तस्याः न बाधः, अपि तु एकसंज्ञाधिकारे द्वयोः अव्ययीभावादिसंज्ञायाः समाससंज्ञायाश्च समावेशार्थं प्राक् कडाराद् इत्यत्र प्राक् इति पदमावर्तते इत्युक्तत्वात् पूर्वं समाससंज्ञका अपि अव्ययीभावादिसंज्ञाः लभन्ते । **अव्ययमित्यादि**—सुप्सुपेति चानुवर्तते । समर्थ इति पदमनुवृत्तं सत् तृतीयान्ततया विपरिणमते । तेन विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं समर्थेन समस्यते सुबन्तेन चेत्यर्थः । **विभक्तौ इति**—विभक्तिवचने इत्यर्थः । सप्तम्या अर्थे यद् अव्ययं तदत्र विभक्तिवचनम् । यथा हरौ इति लौकिक विग्रहः, हरि ङि अधि इत्यलौकिक विग्रहे अधेः सप्तम्यर्थोऽवलोक्यते । **समासशास्त्रेष्विति**—समासपदं समासशास्त्रोपलक्षकम् । अन्यथा समासे प्रथमानिर्द्दिष्टमिति व्याख्याने सुपो लुका लुप्तत्वात् असम्भवदोषः । समासे चिकीर्षिते इति व्याख्याने तु कृष्णं श्रितः इत्यादौ श्रितशब्दस्यैव उपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोगापत्तिः स्यात् ।

हिन्दी

१३८७. अव्ययीभाव का अधिकार है, तत्पुरुष से पूर्व तक ।

१३८८. विभक्त्यर्थ आदि में वर्तमान अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है ।

१३८९. समासशास्त्र में प्रथमानिर्दिष्ट को उपर्जन संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३९०. उपसर्जनं पूर्वम्-२।२।३०॥ समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपो लुक् । अधिहरि ।

१३९१. अव्ययीभावश्च-२।४।१८॥ नपुंसकं स्यात् । गाः पातीति गोपाः, तस्मिन्नित्यधिगोपम् ।

मध्यमनोरमा

प्राक् प्रयोग इति—हरिशब्दात् इति भावः । **सुपो लुगिति**—कृत्तद्धितेति सूत्रेण समासत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति सूत्रेण ङेर्लुगिति भावः । **प्रातिपदिक संज्ञाया-मिति**—पूर्वं जाता या प्रातिपदिकसंज्ञा सैव ङेर्लुकि सति एकदेशविकृतन्यायेन विशिष्टेऽस्ति इति भावः । **सुपो लुगिति**—अव्ययादाप्सुप इति सूत्रेण विशिष्टाद् विहितस्य सुपो लुगित्यर्थः। **अव्ययीभावश्च**—स नपुंसकमिति सूत्रात् नपुंसकमित्यनुवर्तते । तदाह-नपुंसकं स्यादिति । **गोपा इति**—गाः पातीति विग्रहे आतोऽनुपसर्गे कः इति प्राप्ते वाऽसरूपन्यायेनातो मनिन्क्वनिब्वनिपश्चेति सूत्रेण चकारेण विच् । उपपदमतिङित्यनेन समासत्वात् कृदन्तत्वाद् वा प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो लुकि कृते एकदेशविकृतस्यानन्यत्वेन प्रातिपदिकत्वाद् पुनः समुदायात् सुप् । **अधिगोपमिति**—विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावेऽधिशब्दस्य प्रथमानिर्दिष्टपदवाच्यत्वात् पूर्वनिपाते प्रातिपदिकसंज्ञायां ङेर्लुकि एकदेशविकृतन्यायेन विशिष्टस्य प्रातिपदिकत्वात् ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्येति ह्रस्वः, ततः समुदायात् सुपि अव्ययीभावश्चेत्यनेनाव्ययत्वात् नाव्ययीभावादित्यम्-भावेऽमि पूर्वः इति पूर्वरूपे सिद्धम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अधिहरि इति—हरौ इतीति लौकिकविग्रहे हरि ङिअधि इत्यलौकिकविग्रहेऽव्ययं विभक्तीत्यादिना समासे, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातु इति सुपो ङि इत्यस्य लुकि, प्रथमानिर्दिष्टमिति अधेरुपसर्जनसंज्ञा, उपसर्जनं पूर्वमिति अधेः पूर्वप्रयोगः । एकदेशविकृतन्यायात् अधिहरिप्रातिपदिकात् सुः, अव्ययीभावश्चेत्यव्ययसंज्ञा, अव्ययादाप्सुप इति सुपो लुक् । **अधिगोपमिति**—गोपा ङि अधि इत्यलौकिकविग्रहे विभक्त्यर्थेऽव्ययं विभक्तीत्यादिना समासे कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति सुपो लुक्। प्रथमानिर्दिष्टमिति अधीत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, उपसर्जनं पूर्वमिति पूर्वनिपातः । अव्ययीभावश्चेति नपुंसकसंज्ञा, ह्रस्वो नपुंसक इति ह्रस्वे अधिगोप शब्दात् एकदेशविकृतन्यायात् सुः, अव्ययादाप्सुप इति लुकं बाधित्वा नाव्ययीभावादतोऽम् इति सोरम्, पूर्वरूपम् ।

हिन्दी

१३९०. समास में उपसर्जन का पूर्व प्रयोग होता है ।

१३९१. अव्ययीभाव समास में नपुंसक लिङ्ग होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३९२. नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः-२।४।८३।। अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशः । कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम् ।

१३९३. तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्-२।४।८४।। अदन्तादव्ययीभावात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः । उपकृष्णम्, उपकृष्णेन । बहुलग्रहणात् सुमद्रम् उन्मत्तगङ्गमित्यादौ नित्यमम्भावः । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां

मध्यमनोरमा

नाव्ययीभावादिति—वर्णग्रहणे तदन्तग्रहणमित्याह—अदन्तादिति । **न लुगिति**—सुपो धातु इति प्राप्तो लुक् नेत्यर्थः । **समीपे उदाहरणमाह**—कृष्णस्य समीपमित्यादि । सामीप्यार्थकोपशब्दस्य कृष्णशब्देन नित्यसमासः । अत एवास्वपदविग्रहः । **अतः किम्**—अधिहरि । **अपञ्चम्याः किम्**—उपकृष्णात् । **तृतीयासप्तम्योः**—पूर्वसूत्रादत इति अव्ययीभावादिति चानुवर्तते । **तदाह**—अदन्तादित्यादि । **बहुलग्रहणात् सुमद्रमिति**—मद्राणां समृद्धिरिति विग्रहः, समृद्ध्यर्थेऽव्ययीभावः । समृद्धाः मद्राः इति विग्रहे तु कुगतिप्रादय इति तत्पुरुष एव । **उन्मत्तगङ्गमिति**—अन्यपदार्थे च संज्ञायामिति समासः । **इत्यादाविति**—आदिना एकविंशति भारद्वाजम्, सप्तगङ्गमित्यादि संग्रहः । स्पष्टञ्चेदं भाष्ये । **नित्यमम्भाव इति**—तृतीयासप्तम्योरिति शेषः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नाव्ययीभावादिति—नाव्ययीभावदतः इत्येकं वाक्यम्, अम् तु अपञ्चम्याः इतिच्छेदः । ण्यक्षत्रियार्षेत्यतः 'लुक्' इत्यनुवर्तते । अव्यययादाप्सुप इत्यतः सुप इति चानुवर्तते । अत इत्यनेनाव्ययीभावो विशेष्यते । अत इति विशेषणात् तदन्तविधिः । **अत उक्तम्**- अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक्, पञ्चमीं विना तस्य अम् इत्यादेश इति । **तृतीयासप्तम्योरिति**—पूर्वेण नित्यमम् प्राप्तोऽनेन विकल्प्यते । **उपकृष्णम् इति**—कृष्णस्य समीपमिति विग्रहे कृष्ण ङस् उप इत्यलौकिक- विग्रहेऽव्ययं विभक्तीत्यादिना समासे प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो लुकि, उपेत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोगः, उपकृष्ण इत्यस्मात् सुः, अव्ययादाप्सुप इति लुकं प्रबाध्य नाव्ययीभावादिति सोरम्, पूर्वरूपम् । टा-विभक्तौ तु उपकृष्ण आ इति दशायां तृतीयासप्तम्योरिति विकल्पेन अम् । अमोऽभावे टाङसिङसामिति इन, गुणः । सप्तम्यां तु उपकृष्णम्, उपकृष्णे इति बोध्यम् । **नित्यमम्भाव इति**—तृतीयासप्तम्योरिति सूत्रे बहुलग्रहणात् केषुचित् प्रयोगेषु नित्यमम्भावो भवति । तथाहि वार्तिकं विद्यते "सप्तम्या ऋद्धिनदीसमाससंख्यावयोभ्यो नित्यमिति वक्तव्यम् । सुमगधम् लोहितगङ्गमित्याद्युदाहरणम् । **सुमद्रमिति**- मद्र आम् सु इत्यलौकिकविग्रहे समृद्ध्यर्थेऽव्ययं विभक्तीत्यादिना समासः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुप्, सु इत्यस्योपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोगः, सोरम् तृतीयासप्तम्योरिति नित्यम् ।

हिन्दी

१३९२. अदन्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लुक् नहीं होता है, किन्तु पञ्चमी को छोड़कर सुप् को अमादेश होता है ।

१३९३. अदन्त अव्ययी भाव से परे तृतीया और सप्तमी को अम् होता है, बहुल प्रकार से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्योऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यते अतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाशः इतिहरि । विष्णोः पश्चात् अनुविष्णु । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्ति- सादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्यमनुरूपम् । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

मध्यमनोरमा

दुर्यवनमिति—न चार्थाभावग्रहणेनैव गतार्थमिदमिति वाच्यम्, उत्तरपदार्थाभावे एव तत्प्रवृत्तेः। इह तु ऋद्धेरभावः प्रतीयते, न तु यवनानाम् । **निर्मक्षिकमिति**—अव्ययीभावश्चेति नपुंसकत्वे ह्रस्वो नपुंसक इति ह्रस्वः, नाव्ययीभावाद् इत्यम्भावः । सूत्रेऽभाव इत्येव वक्तव्ये अर्थग्रहणात् संसर्गाभाव एवार्थो नान्योऽन्याभावः । तेन घटः पटो नेत्यादौ न समासः । **हिमस्यात्यय इति**- अत्ययो ध्वंसः । **निद्रा सम्प्रतीति**— सम्प्रतीत्येतदव्ययमधिकरणशक्तिप्रधानम् । अतः क्रिया- पदेनैवान्वयार्हं, कारकाणां क्रियान्वयनियमात् । । **निषेधोऽपि क्रियाया एवोचित इत्याशयेनाह**-न युज्यते इति । **अतिनिद्रमिति**—एकविभक्ति चेत्युपसर्जनत्वे गोस्त्रियोरिति निद्राशब्दस्य ह्रस्वः। **हरिशब्दस्येति**—वृत्तौ हरिशब्दः स्वरूपपर इति भावः । **इतिहरीति**—प्रकाशार्थस्येति शब्दस्य षष्ठ्यन्तेन हरिशब्देन साकं समासः । अव्ययादाप्सुप इति समुदायात् विहितस्य सुपो लुक् । **योग्यतावीप्सेत्यादि**—पदार्थानतिवृत्तिः पदार्थानतिक्रमः । **प्रत्यर्थमिति**—नन्वत्र नित्य- वीप्सयोरिति द्विर्वचनापत्तिरिति चेन्मैवम्, समासेन वीप्सायाः द्योतितत्वात् । लक्षणेत्थम्भूते- त्यादिना वीप्सायां प्रतिशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानेन प्रतिना तस्या उक्तत्वादिति तत्त्वम्। अत एव तद्योगे वृक्षं वृक्षं प्रतीत्यादि द्वितीयागर्भं वाक्यमपि । **शक्तिमनतिक्रम्येति**— परावरयोगे चेति क्त्वा । परावरत्वञ्च बौद्धं द्रष्टव्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

दुर्यवनम्—यवन आम् दुर् इत्यलौकिकविग्रहे व्यृद्ध्यर्थे समासः । **निर्मक्षिकमिति**—मक्षिका आम् निर् इत्यलौकिकविग्रहे समासः । विग्रहे निर्शब्दसमानार्थकमभावपदम् अस्ति । निर्मक्षिका इति जाते एकविभक्तीति मक्षिका इत्यस्य उपसर्जनसंज्ञा, परत्वात् गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः, सोरम्, पूर्वरूपम् । **अतिहिमम्**—हिम ङस् अति इत्यलौकिकविग्रहः । **अतिनिद्रमिति**- असम्प्रति इत्यर्थे सम्प्रति न युज्यते इति विग्रहः । निद्रा सु अति इति विग्रहः । असम्प्रत्यर्थे समासः ! एकविभक्तीत्यादिना निद्राशब्दस्योपसर्जनत्वात् गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । अतिनिद्र इति जाते सोरम् । पूर्वरूपम् । **इतिहरि**—हरि ङस् इति, इति विग्रहे शब्दप्रकाशेऽर्थे इति इत्यस्य हरि ङस् इत्यनेन समासः । समस्तादुत्पन्नायाः विभक्तेरव्ययादाप्सुप इति लुक् । **अनुरूपमिति**- रूपस्य योग्यमिति विग्रहे रूप ङस् अनु इत्यनयोः योग्यतारूपयथार्थत्वे समासः । अनु इति, अत्र योग्यतायामर्थेऽस्ति । **अर्थमर्थम्प्रतीति**—वीप्सायाम् अर्थस्य द्वित्वम् । अर्थ अम् प्रति इति अलौकिके विग्रहे समासः, सुपो लुक् । यण्, प्रत्यर्थ इति जाते सोरम्, अमिपूर्वः । समासेन वीप्सायाः प्रकाशितत्वात् न समासे द्विर्वचनम् । अर्थात् वीप्सायामेव प्रतेः कर्मप्रवचनीय संज्ञा। अतः प्रतिना वीप्सा उक्तैव । **यथाशक्ति**—शक्ति अम् यथा इत्यलौकिकविग्रहे पदार्थानति-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३९४. अव्ययीभावे चाकाले-६।३।८१॥ सहस्य सः स्यात् । अव्ययीभावे न तु काले । हरेः सादृश्यं सहरि । काले तु सहपूर्वाह्णम् । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण अनुज्येष्ठम् । चक्रेण युगपत् सचक्रम् । सदृशः सख्या ससखि । क्षत्राणां सम्पत्तिः सक्षत्रम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति । साकल्येनेत्यर्थः । अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ।

मध्यमनोरमा

अव्ययी भावे चा इति—सहस्य सः संज्ञायामिति सूत्रात् सहस्येति स इति चानुवर्तते, इत्याह-सहस्येत्यादि । **हरेः सादृश्यमिति**—हरि टा सहेत्यलौकिकं विग्रहवाक्यम् । सहपूर्वाह्णमिति साकल्येऽव्ययीभावः । **आनुपूर्व्येणेति**—अनुपूर्वं क्रमः । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । अनुज्येष्ठं प्रणमतीत्युक्ते ज्येष्ठक्रमेणेति प्रतीतेः । **सचक्रमिति**—अव्ययीभावे चाकाले इति सहस्य सादेशः । एवमग्रेऽपि । **सतृणमत्ति**—तृणटा सहेत्यलौकिक विग्रहवाक्यम् । **साग्नीति**—अग्नि टा सहेत्यलौकिकंविग्रहवाक्यम् । नन्वत्राग्निग्रन्थपर्यन्तमधीत इत्यर्थे तदधीते तद्वेदेत्यण् स्यादिति चेन्नैवम्, तस्य वैकल्पिकत्वात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

वृत्तिरूपे यथार्थे समासः । यथा इत्यस्य पदार्थानतिक्रमोऽर्थः । अव्ययादाप्सुप इति समस्तादुत्पन्नस्य सुपो लुक् । सहरि इति-हरि ङस् सह इत्यलौकिकविग्रहः, सह इत्यव्ययमत्र सादृश्येऽस्ति । अव्ययं विभक्तीति समासः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । सहेत्यस्योपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोगः, अव्ययीभावे चाकाले इति सहस्य सः । सहरि इत्यस्मादुत्पन्नाया विभक्तेः अव्ययादाप्सुप इति लुक् । **अनुज्येष्ठमिति**—अत्र अनोः आनुपूर्व्यमर्थः, तस्मिन्नर्थे समासः । अनुज्येष्ठ इत्यस्य अदन्तत्वात् नाव्ययीभावादतोऽम् इति सोरम्, अमिपूर्वः । **चक्रेण युगपत् सचक्रम् इति**—चक्र टा सह इत्यस्य यौगपद्येऽर्थे समासः, सहस्य अव्ययीभावे चाकाले इति सादेशः । युगपत् एव यौगपद्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । **ससखि-** सखि टा सह इत्यलौकिकविग्रहः। सहेत्यव्ययं सदृशार्थकम् । सहस्य सादेशः, सुपो लुक् । **सक्षत्रमिति**—क्षत्र आम् सह इत्यलौकिकविग्रहे समासः । सहेत्यत्र सम्पत्तौ वर्तते । क्षत्रियाणामनुरूपं कार्यमित्यर्थः । **सतृणम्-** तृणमपि अपरित्यज्येति विग्रहः । 'परावरयोगे च' इति क्त्वा । परावरत्वं बौद्धं बोध्यम् । तृण टा सह इत्यलौकिकविग्रहः । सहेत्यस्य अपरित्यज्येत्यर्थः । सर्वमत्तीत्यर्थः । **साग्नि**—अग्नि टा सहेत्यस्य समासः । सहस्य सादेशः । **अन्तस्येदमुदाहरणम् । अन्तेनान्तावयवो गृह्यते । अग्निशब्दः अग्निचयनप्रतिपादकं ग्रन्थं वक्ति । सह इति अत्र अन्तावयवेऽर्थे समस्यते ।**

हिन्दी

१३९४. सह को 'स' आदेश होता है अव्ययीभाव समास में कालवाचक परे रहने पर यह आदेश नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३९५. यथाऽसादृश्ये-२।१।७॥ असादृश्ये एव यथा शब्दः समस्यते । नेह-यथा हरिस्तथा हरः ।

१३९६. यावदवधारणे-२।१।८॥ यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामा इति यावच्छ्लोकम् ।

१३९७. सुप्प्रतिना मात्रार्थे-२।१।९॥ शाकस्य लेशः शाकप्रति ।

१३९८. विभाषा-२।१।११॥ अधिकारोऽयम् ।

मध्यमनोरमा

यथाऽसादृश्ये-असन्देहाय सादृश्ये यथेति वक्तव्ये विपरीतोच्चारणादकारप्रश्लेष इत्याशयेनाह-असादृश्य इति । **यथार्थत्वेनैव सिद्धे नियमार्थमिदमित्याह**—एवेति । उदाहरणन्तु यथाशक्ति यथाबलमित्यादि । **नियमस्य फलमाह**—तेनेति । यावदवधारणं संख्यादिना इयता परिच्छेदः, तद्द्योतकं यावदित्यव्ययं समस्यत इत्यर्थः । **यावच्छ्लोकमिति**— श्लोकपरिमाण-परिच्छिन्नाः प्रणामा इति बोधः । **तावद्भुक्तम् इति**—कियद्भुक्तमिति नावधारयामि इत्यर्थः। **सुप्प्रतिना**—मात्राशब्दोऽल्पपर्यायः । तत्रार्थे वर्तमानेन प्रतिना सुबन्तं समस्यते इत्यर्थः । सुब्-ग्रहणानुवृत्त्यैव सिद्धे पुनः सुब्ग्रहणमव्ययनिवृत्त्यर्थम् । अन्यथा दिवसस्य लेशः दिवाप्रति दोषा-प्रतीत्यत्रैव स्यात् । **तद्ध्वनयन्नुदाहरति**—शाकप्रतीति । **मात्रार्थे किम्**—वृक्षं वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् । लक्षणेत्थम्भूतेति प्रतेः कर्मप्रवचनीयत्वम् । न चात्र कर्मप्रवचनीयसंज्ञा-विधानादेव समासो न स्यादिति वाच्यम्, वृक्षं प्रति सिञ्चतीत्यादौ उपसर्गात् सुनोतीति प्राप्त-षत्वस्य निवृत्त्या कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधानस्य चारितार्थ्यात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

असादृश्ये इति—योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिरूपेऽसादृश्ये यथा इत्यस्य यथार्थत्वेनैव समासे सिद्धे नियमार्थमिदं सूत्रम् । तेन सादृश्ये यथार्थत्वेन प्राप्तो न भवति समासः । **यथा हरिस्तथा हरः**—अत्र यथा इति सादृश्यवाचकमतो न समासः । **यावच्छ्लोकम्**—श्लोक जस् याव-दित्यस्य यावदवधारणे इति समासः । स्तोरिति चुत्वम्, छत्वममीति वाच्यमिति छत्वम् । सोरम् । **शाकप्रति**—शाक ङस् प्रति इत्यलौकिकविग्रहे सुप्प्रतिना मात्रार्थे इति समासः । प्रतीति अव्ययं मात्रार्थेऽत्रास्ति । प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । सुप्प्रतिनेति सूत्रे सुबन्तस्य प्रथमा-निर्दिष्टत्वात् शाक इत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, तस्यैव पूर्वप्रयोगः । सुपोऽव्ययादाप्सुप इति लुक् । **विभाषा**—अधिकारोऽयम् । इतः उत्तरत्र समासविधौ एतदनुवर्तते । ननु सह सुपेत्यतः पूर्वमेव विभाषाधिकारः कुतो न कृत इति चेदुक्तं कौमुद्याम्-एतस्य विभाषाधिकारस्य मध्ये पाठ-सामर्थ्यात् इतः पूर्वं प्राचीनानां नित्यसमासत्वं गम्यते इति । नन्वेवं स्वीकारे सह सुपा इत्यपि नित्यसमासः स्यात्, तेन पूर्वं भूतः इत्यादिवाक्यं न प्रयुज्येत इति चेदाह-अव्ययमित्यादि समासविधानाज्ज्ञापकात् सह सुपेत्यस्यानित्यत्वं सिद्ध्यति । अन्यथा सह सुपेत्यनेनैव सर्वत्र विशेष-विधानं स्यात् ।

हिन्दी

१३९५. असादृश्य अर्थ में ही यथा शब्द का समास होता है ।

१३९६. अवधारण अर्थ मे यावत् इस अव्यय का सुबन्त के साथ समास होता है ।

१३९७. मात्रा अर्थ में विद्यमान प्रति के साथ सुबन्त का समास होता है ।

१३९८. 'विभाषा' यह अधिकार सूत्र है । इसलिए इसके आगे के समास वैकल्पिक होंगे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१३९९. अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या-२।१।१२।। अपविष्णु संसारः । अपविष्णोः। परिविष्णु । परिविष्णोः । बहिर्वनम् । बहिर्वनात् । प्राग्वनम् । प्राग्वनात् ।
१४००. तिष्ठद्गु प्रभृतीनि च-२।१।१७।। एतानि निपात्यन्ते । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले स तिष्ठद्गु दोहनकालः ।
१४०१. पारेमध्ये षष्ठ्या वा-२।१।१८।। पारमध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा

मध्यमनोरमा

अप परिबहिरिति—पञ्चम्यपाङिति सूत्रेणापपरियोगे पञ्चमीविधानादन्यारादिति सूत्रेणाञ्चूत्तर-पदयोगे पञ्चमीविधानाच्च पञ्चम्यन्तेनैव समासे सिद्धे पञ्चमीग्रहणं बहिर्योगे पञ्चमीज्ञाप-नार्थम्, अतस्तद्योगेऽपि पञ्चम्यन्तेनैव समासस्तदाह-बहिर्वनं बहिर्वनादिति । ज्ञापकसिद्ध-स्यासार्वत्रिकत्वात् करस्य करभो बहिरित्यादि सिद्धम् । **तिष्ठद्गु**—चकार एवकारार्थः, तेनैषां वृत्त्यन्तरे प्रवेशो न भवति । अतः परमं तिष्ठद्गु इति वाक्यमेव । **निपात्यन्त इति**—प्रथमासा-मानाधिकरण्यादप्राप्तः शत्रादेशः, अन्यपदार्थेऽव्ययीभावः । पुम्वद्भावविरहः, समासान्तः, सप्तम्यलुगित्यादीनि यथासम्भवमित्यर्थः । **तिष्ठद्गु इति**—गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । सूत्रे प्रभृतिग्रहणात् आयतीगवं खलेयवं खलेबुसमित्यादिसंग्रहः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अपपरिबहिरिति—विभाषाधिकारः । अप परि बहिः अञ्चु इत्येते सुबन्ताः पञ्चम्यन्तेन समस्यन्ते सोऽव्ययीभावः । अपविष्णु संसारः-अप इति वर्जनेऽर्थेऽस्ति । विष्णु ङसि अप इत्यलौकिकविग्रहे समासः । पक्षे अप विष्णोरिति वाक्यम् । तत्र अपेत्यस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा, तद्योगे पञ्चम्यपाङिति पञ्चमी । **परिविष्णु**—विष्णु ङसि परि इत्यलौकिकविग्रहः । परि इति वर्जनेऽत्र । एवमेव बहिर्वनमित्यादि बोध्यम् । **तिष्ठद्गुप्रभृतीनि चेति**—तिष्ठद्गु इत्यादयः समुदाया एव निपात्यन्ते । चकारोऽवधारणार्थः । तेन अपरः समासो एषां न भवति । **तिष्ठद्गु इति**—तिष्ठन्त्यः गावः यस्मिन् काले सः दोहनकालः तिष्ठद्गु भवति । अत्र तिष्ठत् जस् गो जस् इत्यलौकिकविग्रहेऽन्यपदार्थे अव्ययीभावसमासः । गोस्त्रियोरिति गोशब्दस्य ह्रस्वः । अव्ययीभावत्वाद् सुपो लुक् । आयतीगवमित्यादौ पुम्वद्भावाभावः समासान्तष्टच् चापि निपातनादेव भवति । **पारेगङ्गमिति**—गङ्गायाः पारात् इत्यर्थे गङ्गा ङस् पार ङसि इत्यलौकिक विग्रहे पारेमध्ये षष्ठ्या वेति अव्ययीभावसमासः । प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक्, पारशब्दस्य एदन्तत्वं चापि निपात्यते ।

हिन्दी

१३९९. अप परि बहि और अञ्चु इनका पञ्चम्यन्त के साथ अव्ययीभाव समास होता है विकल्प से ।

१४००. तिष्ठद्गु इत्यादि समुदाय अव्ययीभाव समास में निपातन हैं ।

१४०१. पार व मध्य शब्द षष्ठ्यन्त के साथ समस्त होता है, तथा पार व मध्य के अन्त में एत्व का निपातन होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समस्येते । एदन्तत्वं चानयोर्निपात्यते । पारेगङ्गम् । गङ्गापारम् । मध्येगङ्गम् । गङ्गामध्यम् । महाविकल्पेन वाक्यमपि ।

१४०२. संख्या वंश्येन-२।१।१९।। **वंशो द्विधा । विद्यया जन्मना च । तत्रभवो वंश्यः । तद्वाचिना सह संख्या समस्यते । द्वौ मुनी वंश्यौ द्विमुनि । व्याकरणस्य त्रिमुनि । विद्यातद्वतामभेदविवक्षायां तु त्रिमुनि व्याकरणम् । एकविंशति भारद्वाजम् ।**

१४०३. नदीभिश्च-२।१।२०।। **नदीभिः संख्या वा समस्यते ।**

मध्यमनोरमा

पारे मध्ये—निपात्यन्त इति । पारमध्यशब्दयोः षष्ठ्यन्तेन समासे एत्वमिति भावः । षष्ठीति सूत्रेण षष्ठ्यन्तस्य पारमध्यशब्दाभ्यां समासे तु न । **तदाह**—गङ्गापारम् इति । **महाविकल्पेनेति**—विभाषेत्यधिकारसूत्रेणेत्यर्थः । **अयंभावः**—महाविभाषा एकार्थीभावस्य विकल्पबोधिका। वृत्तिश्चैकार्थीभावे नित्या । तत्र येन नाप्राप्तिन्यायेन षष्ठीसमासं बाधित्वाऽनेन नित्यं समासः स्यादतो वा ग्रहणम् । तेन पक्षे षष्ठीसमासोऽपि भवत्येवेति । **संख्यावंश्येन- तत्र**भवो वंश्यः इति दिगादित्वाद् यत् । **विद्ययोदाहरति-द्विमुनीति**—पाणिनिकात्यायनौ । ननुनहि त्रिपुत्रो द्विपुत्रव्यपदेशं लभत इति न्यायेन द्विमुनीत्यसङ्गतमत आह-त्रिमुनीति- पाणिनिकात्यायन-पतञ्जलयः त्रयोमुनयो वंश्या इति विग्रहः । व्याकरणस्येत्यत्र सम्बन्धषष्ठी । नन्वेवं त्रिमुनि व्याकरणमिति सामानाधिकरण्यानुपपत्तिरत आह-विद्येति । तद्वतामिति विद्यावता- मित्यर्थः। त्रिमुनि व्याकरणमिति बहुव्रीहिसमासेनापि सिद्धमित्यन्ये । **जन्मनोदाहरति**—एकविंशति भारद्वाजमिति । एकविंशतिः भरद्वाजाः वंश्याः इति विग्रहः । **नदीभिश्च**—इह संज्ञायाः स्वरूपस्य च न ग्रहणं, बहुवचननिर्देशात्, किन्त्वर्थस्य, तेन च समासो न सम्भवतीति तद्वाचकाः सामान्यशब्दाः विशेषशब्दाश्च गृह्यन्ते, संकोचे प्रमाणाभावात् । तेन पञ्चनदमित्यादि सिद्ध्यति। चकारेण संख्येत्यनुवर्तते । तदाह संख्येति । ननु समाहारे द्विगुः स्यात्, एकनदीत्यादौ पुरस्तादपवादन्यायेन पूर्वकालैकेति समासं बाधित्वा एतस्य चारितार्थ्यादित्याह,

मध्यमनोरमापूरणी

पारेगङ्ग इति । एकविभक्ति इत्युपसर्जनसंज्ञा गङ्गाशब्दस्य, गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । अव्ययीभावश्चेति नपुंसकत्वम् । सोर्नाव्ययीभावादतोऽम् इति अमि पूर्वरूपम् । अव्ययीभावसमासाभावे शेषषष्ठ्या समासः । गङ्गापारमित्येव । एवमेव मध्येगङ्गमिति । **महाविकल्पेनेति**—विभाषा इत्यस्याधिकारसत्त्वेऽपि पुनर्वा ग्रहणान्महाविभाषा इत्यवगम्यते । तेन समासाभावात् गङ्गायाः पारात् इति वाक्यमपि भवति । **द्विमुनि इति**—द्वौ च तौ मुनी चेति विग्रहे द्विऔ मुनि औ इत्यलौकिकविग्रहे विशेषणं विशेष्येण बहुलमिति कर्मधारयं बाधित्वा संख्या वंश्येनेति अव्ययीभावसमासः । सुपो लुक् । सूत्रे संख्यायाः प्रथमानिर्दिष्टत्वात् द्वि इत्यस्योपसर्जनत्वे पूर्वप्रयोगः। समासादुत्पन्नस्य सुपोऽव्ययादाप्सुप इति लुक् । **त्रिमुनि**—त्रयो मुनयः इति विग्रहे समासादिकार्यं पूर्ववत् । **एकविंशति इति**—एकविंशतिश्च ते भरद्वाजाः इति विग्रहे समासः । विग्रहवाक्ये एव विदादित्वादञ्, तेनाद्यचो वृद्धिः । **द्वियमुनमिति**—द्वयोः यमुनयोः समाहारः इति

हिन्दी

१४०२. वंशवाचक के साथ संख्यावाचक का समास होता है और वह अव्ययीभाव है ।

१४०३. नदीवाचक के साथ संख्यावाची का विकल्प से समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. समाहारे चायमिष्यते ।। पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ।

१४०४. अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्-२।१।२१।। अन्यपदार्थे सुबन्तं नदीभिः सह नित्यं समस्यते संज्ञायाम् । विभाषाधिकारेऽपि वाक्येन संज्ञानवगमादिह नित्यसमासः । उन्मत्तगङ्गं नाम देशः । लोहितगङ्गम् ।

१४०५. तद्धिताः-४।१।७६।। आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम् ।

१४०६. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः-५।४।१०७।। शरदादिभ्यष्टच् स्यात्

मध्यमनोरमा

समाहारे चेति—चकार एवकारार्थः । समाहारे एवेत्यर्थः । तथा च द्विगोरपवाद एवायमिति अव्ययीभाव इति फलितम् । पञ्चगङ्गमिति— पञ्चानां गङ्गानां समाहार इति विग्रहः । नपुंसकह्रस्वत्वम् उपसर्जनह्रस्वत्वं वा । एवमन्यत्रापि बोध्यम् । **अन्यपदार्थे**—संख्येति निवृत्तम् । नदीग्रहणमनुवर्तते । **तदाह**- सुबन्तं नदीभिरिति । **संज्ञानवगमादिति**—सम्यक् ज्ञायते इति संज्ञा, आतश्चोपसर्गे इति कर्मण्यङ् । संज्ञिनो देशविशेषस्यानवगमादित्यर्थः । **नित्यसमास इति**-तत्सदृश इत्यर्थः । **अयम्भावः**—यथा नित्यसमासे वाक्यमसाधु एवं संज्ञायां विषयभूतायामिहापि विवक्षितार्थाबोधकत्वाद् वाक्यमसाधु । नतु सर्वथा विग्रहाभावे तात्पर्यम् । विग्रहस्तु भवत्येव । महाविभाषाया असम्बन्धे मानाभावात् । अन्यपदार्थे किम्- कृष्णवेणी । संज्ञायां किम्-शीघ्रगङ्गो देशः । **तद्धिताः**- अधिकारोऽयमिति । तेनोपराजमित्यादौ नस्तद्धित इति टिलोपसिद्धिः । अव्ययीभावेऽसाधारणसमासान्तानाह, **अव्ययीभावे**- राजाहः सखिभ्य इत्यतष्टजनुवर्तते इत्याह-टच् स्यादिति । **समासान्त इति**—समासान्ता इत्यधिकारादिति भावः । **उपशरदमिति**—अव्ययं विभक्तीति सामीप्येऽव्ययीभावः । **प्रतिविपाशमिति**—लक्षणेनाभिप्रतीति समासः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विग्रहे द्वि ओस् यमुना ओस् इत्यलौकिकविग्रहे तद्धितार्थोत्तरपदेति द्विगुं प्रबाध्य नदीभिश्चेति अव्ययीभावः । प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक् । एकविभक्तीति उपसर्जनसंज्ञा, गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः, सोरम्, पूर्वरूपम् । **विभाषाधिकारेऽपि**—अयं समासः संज्ञायामर्थे क्रियते । तत्र च विभाषाधिकारो वर्तते । किन्तु उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन् देशे इति वाक्येन देशविशेषस्य संज्ञायाः अबोधात् इह नित्यसमासो भवतीति भावः । **उन्मत्तगङ्गमिति**—उन्मत्ता सु गङ्गा सु इति विग्रहे बहुव्रीहिं प्रबाध्य अन्यपदार्थे चेति अव्ययीभावः । पुम्वद्भावः, गङ्गायाः उपसर्जनह्रस्वः । **अव्ययीभावे शरदिति**—समासान्ता इत्यधिकृतम् । टजनुवर्तते । **तदाह**—शरदादिभ्यष्टजित्यादि । **उपशरदम्**—शरद् ङस् उप इत्यलौकिकविग्रहे समासः, सुपो लुक् । उपेत्यस्योपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोगः, शरदादिभ्य इति टच् । अकारोऽवशिष्यते । सोरम्, अमिपूर्वः। **प्रतिविपाशम्**—विपाशः अभिमुखमिति विग्रहः । विपाश् ङस् प्रति इत्यस्य लक्षणे नाभिप्रती आभिमुख्ये इत्यव्ययीभावः । अभिमुखेऽर्थे प्रतिःवर्तते । प्रति विपाश् इति जाते टच् ।

हिन्दी

वा. यह समास समाहार में ही इष्ट है ।

१४०४. अन्यपदार्थ में सुबन्त का नदीवाचक के साथ समास होता है, संज्ञा अर्थ गम्य होने पर ।

१४०५. पञ्चमाध्याय तक 'तद्धिताः' का अधिकार है ।

१४०६. शरद् आदि से समासान्त टच् होता है, अव्ययीभाव में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । शरत् विपाश् अनस् मनस् उपानह् दिव् हिमवत् अनडुह् दिश् विश् चेतस् चतुर् त्यद् तद् यद् कियत् । (ग.सू.) जराया जरस् च ॥ उपजरसम् ।

१४०७. अनश्च-५।४।१०८॥ अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् ।

१४०८. नस्तद्धिते-६।४।१४४॥ नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ।

१४०९. नपुंसकादन्यतरस्याम्-५।४।१०९॥ अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । उपचर्मम् । उपचर्म ।

१४१०. झयः-५।४।१११॥ झयन्तादव्ययीभावाट्टच् वा स्यात् । उपसमिधम् । उपसमित् ।

मध्यमनोरमा

जराया जरस् च- शरदाद्यन्त र्गतसूत्रमि दम् । **उपज रसमिति**—जरायाः समीप मिति विग्रहः, जराया जरसन्यतरस्यामित्यनेन तु न सिद्धिः, तत्र विभक्तावित्यनुवृत्तत्वात्, तस्य वैकल्पिकत्वाच्च । **नस्तद्धिते**—भस्येत्यधिकृतं नेत्यनेन विशेष्यते । **विशेषणेन तदन्तविधिरित्याह-नान्तस्य भस्येति** । **उपराजमिति**—राज्ञः समीपमित्यर्थेऽव्ययीभावः । **अध्यात्ममिति**— आत्मनीत्यध्यात्मं, विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । **नपुंसकादन्यतरस्याम्**-नपुंसकग्रहणमन्नन्तस्य विशेषणमित्याहअन्नन्तं यत् क्लीबमिति । अन्नन्तेनाव्ययीभावविशेषणात्तदन्तविधिः **इत्याह-** तदन्तादिति । **उपचर्मम् इति-** टचि कृते टिलोपोऽदन्तत्वादम्भावश्च ।

मध्यमनोरमापूरणी

अनश्चेति—अव्ययीभाव इत्यनुवर्तते, पञ्चम्यां विपरिणमते च । अनः इति तस्य विशेषणमतः तदन्तविधिः । अव्ययीभावे इत्यतष्टजित्यनुवर्तते । **अत उक्तम्-** अन्नन्तादिति । **नस्तद्धिते**— टेरिति सूत्रमनुवर्तते । नः इति षष्ठ्यन्तं पदम् । भस्येत्यधिकारः, न इत्यनेन विशेष्यते, अतः तदन्तविधिः । अल्लोपोऽन इत्यतः लोप इत्यनुवर्तते । **तदाह-** नान्तस्येत्यादि । **उपराजम्-** राजन् ङस् उप इत्यस्य अव्ययमिति समासे प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक्, उपेत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोगः । उपराजन् इति, अनश्चेति टच्, भसंज्ञा । नस्तद्धित इति अनः टेर्लोपः । नाव्ययीभावादिति सोरम् । **अध्यात्मम्**—आत्मन् ङि अधि इत्यलौकिक विग्रहेऽव्ययीभावः, शेषं पूर्ववत् । अध्यात्मन् इत्यस्माट्टच्, टेर्लोपः । **उपचर्मम्**—चर्मणः समीपमिति विग्रहे चर्मन् ङस् उप इत्यनयोः समासः । उपचर्मन् इति जाते नपुंसकादन्येति टच् । भसंज्ञा, नस्तद्धिते इति टेर्लोपः । सोरम् । टजभावे अव्ययादाप्सुप इति सुपो लुक् । नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपे **उपचर्म** इति । **झयः**—अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते । झय इति अव्ययीभावविशेषणम्, विशेषणात्तदन्तविधिः । **अत आह**—झयन्तादिति । **उपसमिधम्**—समिधः समीपमिति विग्रहः।

हिन्दी

ग. सू. जरा को जरस् आदेश होता है, अव्ययीभाव में ।

१४०७. अन्नन्त अव्ययीभाव से टच् प्रत्यय होता है ।

१४०८. नान्तभसंज्ञक के टि का लोप होता है ।

१४०९. अन्नन्तान्त अव्ययीभाव से टच् होता है,. विकल्प से ।

१४१०. झयन्त अव्ययीभाव से टच् होता है, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४११. नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः-५।४।११०॥ वा टच् स्यात् । उपनदम् । यस्येति चेति ईलोपः । उपनदीत्यादि ।

१४१२. गिरेश्च सेनकस्य-५।४।११२॥ टच् वा स्यात् । उपगिरम् । उपगिरि ।

ग. सू. प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः ॥ टच् स्यात् । अक्ष्णोऽभिमुखम्-प्रत्यक्षम् । अक्ष्णः परम्-परोक्षम् । अत एव समासः । परोक्षे लिडिति निपातनात् परस्यौकार इत्यादि ।

॥ इत्यव्ययीभावः ॥

मध्यमनोरमा

नदीपौर्णमास्येति—इह नदीति स्वरूपस्यैव ग्रहणं न संज्ञायाः, पौर्णमास्याग्रहायण्योः पृथग्ग्रहणात् नापि विशेषाणां, शरदादिषु विपाट्शब्दस्य व्यर्थत्वापत्तेः । न चानेन विकल्पे प्राप्ते नित्यार्थं तत्र पाठ इति वाच्यम्, नपुंसकादिति सूत्रेऽन्यतरस्यां ग्रहणस्यास्वरितत्वेन तस्येहाननुवृत्तेः । अत एव गिरेश्च सेनकस्येति सूत्रे सेनकग्रहणं चरितार्थम् । स्पष्टं चेदं भाष्ये मूले । वा टजित्युक्तिस्तु वृत्त्यनुरोधेन । न चाशब्दसंज्ञेति निषेधात् स्वरूपस्यापि ग्रहणं न स्यादिति वाच्यम्, नदीग्रहणसामर्थ्येन लक्ष्यानुसारिव्याख्यानेन चात्र तस्यासम्बन्धात् । **उपनदमिति**— टचि कृते यस्येति चेतीकारलोपः, नाव्ययीभावादित्यम् । एवमुपगिरमित्यत्रापि बोध्यम् ।

॥ इत्यव्ययीभावः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

समासे उपसमिध् इति झयन्ताट्टच् । टचोऽकारेण अकारान्तत्वात्सोरम् । पक्षे सुपो लुक् । धस्य जश्त्वचर्त्वे । **उपनदमिति**—नदी ङस् उप इत्यलौकिकविग्रहेऽव्ययं विभक्तीति समासः । सुपो लुक् । उपनदी इत्यस्मात् नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्य इति टच्, भसंज्ञा, भत्वात् यस्येति चेति इकारलोपः । सोरम्, पूर्वरूपम् । टजभावे उपनदी इत्यस्य नपुंसकत्वात् ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वे सुपो अव्ययादाप् इति लुक् । उपनदि इति भवति । **उपगिरम् इति**—गिरेः समीपमिति विग्रहे समासादिकार्यम् । उपगिरि इत्यस्मात् गिरेश्चेति । टचि अनुबन्धलोपे भत्वात् यस्येति चेतीकारलोपः । सोरम्, अमि पूर्वः । टचोऽभावे न इकारलोपः । सुपो लुक् । उपगिरि इति। **प्रतिपरेति**—प्रतिपरसमनुभ्यः परस्य अक्षिशब्दस्य टच् भवतीत्यर्थः। **प्रत्यक्षमिति**-अक्ष्णोरभिमुखमिति विग्रहे अक्षि ओस् प्रति इत्यस्य लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये इति अव्ययीभावसमासः, प्रतिरत्र अभिमुखार्थेऽस्ति । प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक् । प्रतीत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोगः । इको यणचि । प्रत्यक्षि इति जाते प्रतिपरसमनुभ्य इति टच् । भत्वाद् यस्येति चेति इलोपः । सोरम्, अमिपूर्वः ।

हिन्दी

१४११. नदी पौर्णमासी एवं आग्रहायणी से टच् होता है विकल्प से अव्ययीभाव में ।

१४१२. गिरि अन्त वाले अव्ययीभाव से टच् होता है सेनक आचार्य के मत में ।

ग. सू. प्रति पर सम् व अनु से परे अक्षि शब्द से टच् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ तत्पुरुषसमासप्रकरणम्

१४१३. तत्पुरुषः-२।१।२२।। अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ।

१४१४. द्विगुश्च-२।१।२३।। तत्पुरुषसंज्ञः ।

१४१५. द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः-२।१।२४।। द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते । कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः । इत्यादि।

मध्यमनोरमा

प्राक् प्रतिज्ञाकृतपञ्चधासमासमध्ये प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानं तत्पुरुषसंज्ञकं तृतीयं समासमाह-तत्पुरुषः, अधिकारोऽयमिति । द्विगुश्च—तत्पुरुषसंज्ञः स्यादिति । यद्यपि प्राक्कडारादित्यधिकारात् एकस्यैकैव संज्ञा भवति, तथापि चकारबलेन संज्ञाद्वयसमावेशो भवत्येव । तत्प्रयोजनन्तु पञ्चराजम् । तत्र तत्पुरुषफलं राजाहः सखिभ्य इति टच् । द्विगुफलं स नपुंसकमिति नपुंसकत्वम् । द्वितीयाश्रितेति—प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमित्याशयेनाह-द्वितीयान्तमिति । यद्यपि सम्बोधने स्त्रीलिङ्गप्रथमान्ते च सुबन्तत्वं सम्भवति, तथाप्यन्यत्रापि समासस्येष्टत्वात् श्रितादीनां सुबन्तप्रकृतिके लक्षणेति भावः । कृष्णं श्रित इति—न लोकेति षष्ठीनिषेधः । कृष्णश्रित इति—प्रथमानिर्दिष्ट इति सूत्रेण द्वितीयान्तस्य पूर्वनिपातः । कृष्णकर्मकश्रयणकर्तेति बोधः । इत्यादीति—कूपपतितः, ग्रामगतः, तुहिनात्यस्तः, अत्यासो व्यतिक्रमः ।

मध्यमनोरमापूरणी

परोक्षम् इति—अक्ष्णः परम् इति विग्रहः । परशब्दस्यानव्ययत्वात् समासः अप्राप्तः, किन्तु अव्ययीभावप्रकरणे परपूर्वात् अक्षिशब्दात् टच् विधीयते । अतः टज्विधानसामर्थ्यादिव अक्षि ङस् पर इत्यनयोः अव्ययीभावसमासः । सुपो लुक् । परस्य पूर्वप्रयोगः । प्रतिपरेति टच्, भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपः पर अक्ष इति, परोक्षे लिडिति पाणिनिनिर्देशात् परस्य ओकारान्तादेशः, पूर्वरूपम् । सोरम्, पूर्वरूपम् । तदेव मूले— अत एवेत्यादिना निर्दिष्टम् । परोक्षमस्यास्तीति विग्रहे अर्श आदिभ्य इत्यचि, टापि परोक्षा क्रिया इति रूपं बोध्यम् ।

।। इत्यव्ययीभावसमासः ।।

अथ तत्पुरुषसमासः

द्वितीयाश्रितेति—सुप् सुपा इत्यनुवर्तते, तस्य द्वितीयेति विशेषणम् । तदन्तविधिः । अतः द्वितीयान्तमित्याद्यर्थो भवति । कृष्णश्रित इति—कृष्णं श्रित इति विग्रहे कृष्ण अम् श्रित सु इत्यलौकिकविग्रहे द्वितीयाश्रितेति समासः । प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । सूत्रे द्वितीयेत्यस्य

हिन्दी

१४१३. बहुव्रीहि से पूर्व तक तत्पुरुष का अधिकार है ।

१४१४. द्विगु को भी तत्पुरुष संज्ञा होती है ।

१४१५. द्वितीयान्त का श्रितादि प्रकृतिक सुबन्त के साथ समास होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४१६. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन-२।१।३०।। तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थशब्देन च सह प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थः धान्यार्थः । तत्कृतेति किम्-अक्ष्णा काणः ।

१४१७. पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः-२।१।३१।। तृतीयान्तमेतैः प्राग्वत् । मासपूर्वः । मातृसदृशः । पितृसमः । ऊनार्थे-माषोनं कार्षापणम् । माषविकलम् । अचारनिपुणः । गुडमिश्रः । आचारश्लक्ष्णः ।

मध्यमनोरमा

सुखप्राप्तः दुःखापन्नः एतान्यादिशब्दग्राह्याणि । **तृतीया तत्कृतेति**—सूत्रे तत्कृतेति लुप्ततृतीयाकं सौत्रत्वात् । तथा च तत्कृतेत्यस्य तृतीयान्तार्थकृतेनेत्यर्थः । **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमित्याह**—तृतीयान्तमित्यादि । **अर्थशब्देन चेति**—सोऽपि स्वतन्त्रं निमित्तमिति भावः। **शङ्कुलया खण्ड इति**—करणे तृतीया । शङ्कुलाशब्द आयुधविशेषवाची, खण्डशब्दः गुणवाची, तस्मान् मत्वर्थीयेऽचि सम्भवति द्रव्यवृत्तित्वम् । **शङ्कुलाखण्ड इति**—कृतद्वारकमेवात्र सामर्थ्यं, शङ्कुलाकृतखण्डगुणवानित्यर्थः । **धान्येनेति**—हेतौ तृतीया । **अक्ष्णेति**—नह्यक्ष्णा काणत्वं कृतं किन्तु क्रियादिनैवेति भावः । येनाङ्गविकार इत्यनेनात्र तृतीया । **पूर्वसदृश-अत्र तृतीयेत्यनुवर्तते, तदाह**—तृतीयान्तमिति । **मासपूर्व इति**—मासेन पूर्व इति विग्रहः । **वाक्कलहः**—वाचा कलह इति विग्रहः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रथमानिर्दिष्टत्वात् कृष्ण इत्यस्योपसर्जनत्वे पूर्वप्रयोगः । सो रुत्वविसर्गौ । **तृतीया तत्कृतार्थेनेति**-सुप् सुपेत्यनुवर्तते, तृतीयेति तद्विशेषणम् । तत्कृत इति लुप्ततृतीयाकं गुणवचनेन सहान्वेति । तत्कृतेत्यत्रतच्छब्देन तृतीयान्तार्थो लक्ष्यते । **अत उक्तम्**—तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतेत्यादि । **शङ्कुलाखण्ड इति**—शङ्कुला टा खण्ड सु इत्यलौकिकविग्रहे तृतीया तत्कृतार्थेनेति समासः । सुपो लुक् । एकदेशविकृतन्यायात् सुः । **तत्कृतेति किम्**—अक्ष्णा काणः । यद्येतन्नोच्येत तदा समासः स्यात् । तत्कृतपदसत्त्वे न समासः । यतो हि काणत्वं नाक्ष्णा कृतम् अपि तु रोगादिना कृतम् । **मासपूर्व इति**—मासेन पूर्वः इति विग्रहे मास टा पूर्व सु इत्यलौकिकविग्रहे पूर्वसदृशेति समासः । प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धात्विति सुपो लुक् । विभक्तिकार्यम् । **मातृसदृश इति**—मात्रा सदृशः इति विग्रहः । पित्रा सम इति विग्रहे पितृसमः। **माषोनम्**—माषपरिमाणेन ऊनमिति विग्रहे ऊनार्थे समासः । आद्गुणः । माषेण विकलं माषविकलम् । वाचा कलहः **वाक्कलहः**, चोः कुः इति चस्य कः । आचारेण निपुणः आचारनिपुणः । गुडेन मिश्रः गुडमिश्रः । आचारेण श्लक्ष्णः आचारश्लक्ष्णः । श्लक्ष्णः कुशलत्ववान् इति ।

हिन्दी

१४१६. तृतीयान्त का तृतीयान्तार्थ द्वारा किए गये गुणवचन के साथ एवं अर्थ शब्द के साथ समास होता है ।

१४१७. पूर्वसदृश सम इत्यादि के साथ तृतीयान्त का समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अवरस्योपसंख्यानम् ॥ मासावरः ।

१४१८. अन्नेन व्यञ्जनम्-२।१।३४॥ संस्कारक-द्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेन सह प्राग्वत् । दध्ना उपसिक्तमोदनं दध्योदनम् ।

१४१९. भक्ष्येण मिश्रीकरणम्-२।१।३५॥ गुडेन मिश्रा धाना गुडधानाः।

१४२०. कर्तृकरणे कृता बहुलम्-२।१।३२॥ कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रातो हरित्रातः । नखभिन्नः ।

प. कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् ॥ नखनिर्भिन्नः ।

मध्यमनोरमा

मासावरः इति—ऊनार्थेत्यर्थग्रहणस्य तृतीया तत्कृतेति सूत्रे भाष्ये प्रत्याख्यानान्न तेनास्य सिद्धिः । एतेनोनार्थत्वात् पूर्वसूत्रेणैव सिद्धेऽवरस्येति वार्तिकं न कर्तव्यमित्यपास्तम् । माष-विकलमित्यादौ तु तत्कृतेत्येव समासः । **अन्नेन व्यञ्जनम्**—अत्र तृतीयेत्यनुवर्तते, तच्च व्यञ्जनमित्यनेनान्वेतीत्याह-संस्कारद्रव्यवाचकमित्यादि । भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमो-दनोऽस्त्रीति कोशेऽन्नशब्दस्यौदने रूढेः, योगाच्च रुढेर्बलीयस्त्वादित्याह—दध्योदन इति । उपसेकक्रियाद्वारैवात्र सामर्थ्यम्, तां विना दध्नः संस्कारकत्वासम्भवात् । **गुडधाना इति**—अत्रापि मिश्रणक्रिया द्वारा सामर्थ्यं, तां विना मिश्रीकरणत्वायोगात् । **कर्तृकरणे कृता बहुलम्**-सूत्रे समाहारद्वन्द्वात् सप्तम्येकवचनमित्याह—कर्तरि करणे चेति ।**हरित्रात इति**—हरिणा त्रात इति विग्रहः । नखभिन्न इति—नखैर्भिन्न इति विग्रहः । **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि इति**-अत्र मानं तु गतिरनन्तर इति सूत्रे अनन्तरग्रहणमेव । **तथाहि**—कर्मणि क्तान्ते उत्तरपदे अनन्तरो गतिः प्रकृतिस्वरः इति तस्यार्थः । तत्रानन्तरग्रहणम् अभ्युद्धृतमित्यादौ अभेः स्वरो मा भूदित्येतदर्थम् । प्रत्ययग्रणे यस्मात् स विहितस्तदादेः तदन्तस्य च ग्रहणमिति परिभाष-योद्धृतशब्दस्य क्तान्तत्वाभावादेव अभेः प्रकृतिस्वराप्राप्तौ अनन्तरग्रहणं व्यर्थं सदत्र ज्ञापकं

मध्यमनोरमापूरणी

मासेनावरः—मास टा अवर सु इत्यलौकिकविग्रहे अवरस्योपसंख्यानमिति समासः, सवर्णदीर्घः। मासेन न्यून इत्यर्थः । **अन्नेनेति**—अन्नं संस्कार्यं व्यञ्जनञ्च संस्कारकम्, उपसेकादिसाधनं दध्यादि, तद्वाचकं तृतीयान्तमन्नेन सह वा समस्यते इत्यर्थः । **दध्योदनमिति**—दध्ना उपसिक्तमोदनमिति विग्रहे दधि टा ओदन सु इत्यस्य समासः । यण् । **मिश्रीकरणम्**—मिश्रीक्रियते खाद्यद्रव्यमनेनेति विग्रहः । तच्च गुडादि । **गुडधाना इति**—गुड टा धान जस् इति विग्रहे समासः । गुडेन मिश्रा भृष्टयवा इत्यर्थः । **हरित्रात इति**—हरि टा त्रात सु इत्यलौकिकविग्रहे कर्तृकरणे इति समासः, सुपो लुक् । **नखभिन्न इति**—नखैः भिन्नः इति विग्रहे नखभिस् भिन्न सु इत्यलौकिकविग्रहे समासः । सुपो लुक् । **नखनिर्भिन्न इति**—नखैः

हिन्दी

वा. तृतीयान्त का अवर के साथ समास कहना चाहिये ।

१४१८. संस्कारद्रव्यवाची का अन्न के साथ तृतीयातत्पुरुष होता है ।

१४१९. भक्ष्यद्रव्य के साथ मिश्रीकरणपदार्थ का समास होता है ।

१४२०. कर्ता और करण में तृतीयान्त का कृदन्त के साथ समास होता है ।

प. कृद् के ग्रहण में गतिपूर्वक व कारकपूर्वक का भी ग्रहण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४२१. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः-२।१।३६।। चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वचनार्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं प्राग्वत् । यूपाय दारु यूपदारु । तदर्थेन प्रकृतिविकारभाव एवेष्टः । तेनेह न-रन्धनाय स्थाली । अश्वघासादयस्तु षष्ठीतत्पुरुषाः । वा. अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् । द्विजाय अयं द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूलबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ।

मध्यमनोरमा

बोध्यम् । तेन नखैर्निर्भिन्नो नखनिर्भिन्न इत्यादौ निर्भिन्नशब्देन समासः । **चतुर्थी तदर्थार्थ इति**—तच्छब्देन चतुर्थ्यन्तपरामर्शिना चतुर्थ्यन्तार्थो लक्ष्यते इत्याशयेनाह-चतुर्थ्यन्तार्थायेति । **यूपायेति**—तादर्थ्ये चतुर्थ्येषा प्रकृतिविकारभावे एवेति । अत एव सूत्रे बलिरक्षितग्रहणं चरितार्थम् । तद्योगे हि तादर्थ्ये चतुर्थीविधानात् । **इष्ट इति**—भाष्यकारादीनामिति शेषः । **तेनेति**—प्रकृतिविकारभावग्रहणेनेत्यर्थः । रन्धनाय स्थालीति । नच अत्राश्वघासादिवत् षष्ठीतत्पुरुषः स्यादेवञ्च प्रकृतिविकृतिभाव एवेति निष्फल एवेति वाच्यम्, षष्ठीसमासे सम्बन्धत्वेन भानं, चतुर्थीसमासे तु तादर्थ्यत्वेनेति उक्तनियमस्य साफल्यादिति केचित् । परे तु रन्धनाय स्थालीत्यत्राभिधानस्वाभाव्यात्तादर्थ्येनैव भानं न सम्बन्धत्वेनेति, न तत्र षष्ठीसमासः । चतुर्थीसमासवारणाय तु प्रकृतिविकारभावे एवेत्युक्तम् । अश्वघासादौ तु सम्बन्धत्वेन बोधे षष्ठी समासः । उपकारकत्वेन बोधे वाक्यमेवेति व्यवस्थेत्याहुः । अर्थशब्दस्य नित्यं पुंस्त्वात् परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति पुंस्त्वे प्राप्ते तद्बाधनायाह-विशेष्यलिङ्गता चेति । एतदर्थमेवेदं वार्तिकम् । चतुर्थ्येव तादर्थ्यस्योक्ततया द्विजार्थ इत्यादौ विग्रहेऽर्थशब्दप्रयोगासम्भवेनैव नित्यसमासत्वसिद्धेः । यदा तु गुर्वर्थमित्यादाविव लिङ्गमपि लोकतः सिद्धमित्युच्यते तदेदमपि स्पष्टार्थमेव । **द्विजार्था यवागूरिति**—द्विजायेयमिति विग्रहः ।

मध्यमनोरमापूरणी

निर्भिन्नः इति विग्रहे नख भिस् निर्भिन्न सु इत्यलौकिकविग्रहे कृद्ग्रहणे गतिकारकस्येति परिभाषया निर्भिन्न इत्यस्य कृदन्तत्वाद् ग्रहणे सति कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासः । सुपो लुक् । विभक्तिकार्यम् । **चतुर्थी तदर्थेति**—तस्मै इदं तदर्थम्, तच्छब्देन चतुर्थ्यन्तार्थ इति गृह्यते । **यूपाय दारु इति**- यूप इयस्य निर्माणायैव दारु=काष्ठमतः यूप ङे दारु सु इत्यलौकिकविग्रहे चतुर्थीति तदर्थे समासः । यूपदारु इत्यस्य नपुंसकत्वात् सोः स्वमोर्नपुंसकादिति लुक् । **अर्थेन नित्यसमासः इति**—विभाषाधिकारात् विकल्पः स्यादत इदं वार्तिकम् । अथ विशेष्यस्य यल्लिङ्गं तद् समस्तस्य इत्यपि बोध्यम् । **द्विजार्थः**—द्विजाय अयमिति अस्वपदविग्रहः, अन्यपदार्थस्य पुँल्लिङ्गत्वात् द्विजार्थ इति पुंल्लिगेऽस्ति । **द्विजार्था इति**—द्विजाय इयमिति विग्रहे अर्थेनेति समासः विशेष्यलिङ्गता च भवति । **द्विजार्थमिति**—द्विजाय इदमिति विग्रहः ।

हिन्दी

१४२१. चतुर्थ्यन्त का चतुर्थ्यन्तार्थ के लिए आये शब्द व अर्थ बलि इत्यादि के साथ समास होता है ।

वा. चतुर्थ्यन्त का अर्थशब्द के साथ नित्यसमास होता है तथा विशेष्य का जो लिङ्ग है वही समस्त का होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४२२. पञ्चमी भयेन-२।१।३७॥ चोराद् भयम् चोरभयम् ।

१४२३. स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन-२।१।३९॥

१४२४. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः-६।३।२॥ अलुगुत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः विप्रकृष्टादागतः। कृच्छ्रादागतः ।

१४२५. षष्ठी-२।२।८॥ सुबन्तेन प्राग्वत् । राज्ञःपुरुषः राजपुरुषः ।

मध्यमनोरमा

द्विजार्थं पय इति—द्विजायेदमिति विग्रहः । **पञ्चमी भयेन**—अत्र भयेनेति स्वरूपग्रहणं व्याख्यानात् । तेन वृकात् त्रास इत्यादौ न पञ्चमीसमासः । **स्तोकान्तिकदूरार्थ इति**—अर्थशब्दः प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते, व्याख्यानात् । स्तोकार्थका अन्तिकार्थका दूरार्थकाः पञ्चम्यन्ताः, पञ्चम्यन्तः कृच्छ्रशब्दश्च क्तप्रत्ययान्तेन समस्यते इति सूत्रार्थः । पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः-अलुगुत्तरपदे इति सम्पूर्णसूत्रमनुवर्तते, **इत्याह**-अलुगुत्तरपदे इति । **स्तोकान्मुक्त इत्यादि**—करणे च स्तोकाल्पेति पञ्चमी । दूरादागत इत्यादौ तु दूरान्तिकार्थ इत्यनेन । **राजपुरुष इति**—राजन् अस् पुरुष सु इत्यलौकिकविग्रहे समासे कृते सुपो लुकि सति अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वान्नलोपः । राजसम्बन्ध्यभिन्नः पुरुषः इति बोधः ।

मध्यमनोरमापूरणी

भूतबलिः—भूतेभ्यो बलिः इति विग्रह । गोभ्यो हितम् गोहितमिति । गोभ्यः सुखम् गोसुखमिति च । **चोरभयमिति**—चोर ङसि भय सु इत्यलौकिकविग्रहे पञ्चमी भयेनेति समासः । सुपो लुक् । **स्तोकान्मुक्त इति**—स्तोक ङस् मुक्त सु इत्यलौकिकविग्रहे स्तोकान्तिक इति समासः । प्रातिपदिकसंज्ञा, उभयोः सुपोः लुकि प्राप्ते पञ्चम्याः स्तोकादिभ्य इति पञ्चम्याः अलुक् । स्तोकात्मुक्त इति, यरोऽनुनासिके इति परसवर्णः नकारः । **अभ्याशादागत इति**—समीपपर्यायः अभ्याशशब्दः । **षष्ठी**—सुपेत्यनुवर्तते, प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम् । षष्ठ्यन्तं सुबन्तेन समस्यते स तत्पुरुषः इत्यर्थः । **राजपुरुष इति**—राजन् ङस् पुरुष सु इत्यलौकिकविग्रहे षष्ठीति समासः । सुपो लुक् । राजन् पुरुष इति । अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिं प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमित्यनेनादाय पदत्वात् नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः । ननु अत्र लुका लुप्तत्वात् न लुमतेति प्रत्ययलक्षणनिषेधः स्यादिति चेन्न । अङ्गकार्ये प्रत्ययलक्षणाभावः । नेदं अङ्गकार्यं नलोपरूपम् ।

हिन्दी

१४२२. पञ्चम्यन्त का भय के साथ समास होता है ।

१४२३. स्तोकार्थक अन्तिकार्थक आदि पञ्चम्यन्त का क्तान्त के साथ समास होता है ।

१४२४. स्तोकादि से परे पञ्चमी का लुक् नहीं होता है ।

१४२५. षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४२६. याजकादिभिश्च-२।२।९।। षष्ठ्यन्तं समस्यते । वक्ष्यमाणस्यापवादः । ब्राह्मणयाजकः । देवपूजकः । याजकपूजक परिचायक परिवेषक स्नातक, अध्यापक उत्सादक उद्वर्तक होतृ पोतृ भर्तृ रथगणक पत्तिगणक इति याजकादिः। वा. गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् ।। तरबन्तं यद् गुणवाचि तेन समासः। सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः । सर्वेषांमहत्तरः सर्वमहान् ।

१४२७. न निर्धारणे-२।२।१०।। षष्ठी न समस्यते । नृणां द्विजः श्रेष्ठः ।

मध्यमनोरमा

याजकादिभिश्च—षष्ठीत्यनुवर्तते । प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं, तदाह-षष्ठ्यन्तमिति । **वक्ष्यमाणस्येति**—तृजकाभ्यां कर्तरीति निषेधस्येत्यर्थः । अत्र गणरत्नकृतः क्रियानुगतिमास्थाय लोके ख्यातिमुपागताः येऽकान्ताः पाचकाद्यास्ते द्रष्टव्याः याजकादिषु इति । **गुणात्तरेणेति**-षष्ठीसमास एवानेन जायते न तु कर्मधारयादिः । भाष्ये पूरणगुणेत्यस्यापवादतोक्तेः सर्वशब्दे एव प्रवर्तते । सर्वं गुणकार्त्स्न्ये इति सूत्रात् सर्वपदानुवृत्तेः । एतदर्थमेव सर्वं गुणेति स्वर-विधायके सूत्रे इदं वार्तिकं पठितं भाष्ये । गुणवचनात् विहितो यस्तरप् तदन्तेन सुबन्तस्य सर्वशब्दस्य समास इति वाच्योऽर्थः । **गुणाद्विहित-तरबन्तञ्च गुणवाच्येव भवतीत्याशयेनाह-** तरबन्तं यद् गुणवाचीति । नृणामिति—यतश्च निर्धारणमिति षष्ठी । द्विजादिशब्दे समासप्रसङ्गे निषेधोऽयम् । **पूरणगुण**—अर्थशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धादाह—पूरणाद्यर्थैरिति । आदिना गुणार्थसुहितार्थयोर्ग्रहणम् । **षष्ठ इति**—तस्य पूरणे डट्, षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ।

मध्यमनोरमापूरणी

वक्ष्यमाणस्येति—तृजकाभ्यां कर्तरीत्यनेन षष्ठी समासो निषिध्यते, तस्य निषेधस्यापवादोऽय-मिति भावः । **ब्राह्मणयाजकः**—ब्राह्मणानां याजकः इति विग्रहे षष्ठीति प्राप्तसमासस्य तृज-काभ्यामिति निषेधे प्राप्ते तदपि प्रबाध्यानेन समासः । देवानां पूजको देवपूजक इत्यपि इत्थमेव। **गुणात्तरेणेति**—गुणवाचिना तरबन्तेन षष्ठ्यन्तः सर्वशब्दः समस्यते तरपो लोपश्च भवतीति अर्थः । **सर्वश्वेतः**—सर्वेषां श्वेततरः इति विग्रहे सर्व आम् श्वेततर सु इत्यलौकिके विग्रहे न निर्धारणे इति समासनिषेधः प्राप्तः तत्प्रबाध्य गुणात्तरेणेति समासे तरपो लोपे सुपो लुकि स्वादिकार्यम् । **सर्वमहान् इति**—सर्वआम् महत्तर सु इत्यलौकिकविग्रहे समासः । सौ नुम्, दीर्घश्च । **न निर्धारणे इति**—पूर्वेण समासे प्राप्तेऽनेन निषिध्यते । निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते इत्यर्थः । जातिगुणक्रियाभिः समुदायादेकस्य पृथक्करणं निर्धारणमुच्यते । **नृणां द्विजः श्रेष्ठ इति**—अत्र नृणामिति निर्धारणे षष्ठी । अतः नृ आम् द्विज सु इत्यत्र प्राप्तः समासोऽनेन निषिध्यते । पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तम इत्यत्र कथं समास इति चेत् शेषषष्ठ्याः षष्ठीत्यनेन समासो ज्ञेयः ।

हिन्दी

१४२६. याजकादिगण पठित के साथ षष्ठ्यन्त का समास होता है ।

वा. तरबन्तगुणवाची के साथ षष्ठ्यन्त सर्वशब्द का समास एवं तरप् का लोप होता है ।

१४२७. निर्धारण में जो षष्ठी उसका सुबन्त के साथ समास नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४२८. पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन-२।२।११॥ पूरणाद्यर्थैः सदादिभिश्च षष्ठी न समस्यते । पूरणे सतां षष्ठः । गुणे काकस्य कार्ष्ण्यम् । सुहितार्थास्तृप्त्यर्थाः फलानां सुहितः । सत्-द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा । अव्ययम्-ब्राह्मणस्य कृत्वा । पूर्वोत्तरसाहचर्यात् कृदव्ययमेव गृह्यते । तेन तदुपरीत्यादि सिद्धम् । तव्यः-ब्राह्मणस्य कर्तव्यम् । समानाधिकरणे-तक्षकस्य सर्पस्य ।

१४२९. क्तेन च पूजायाम्-२।२।१२॥ मतिबुद्धीति सूत्रेण विहितो यः क्तस्तदन्तेन षष्ठी न समस्यते । राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ॥

१४३०. अधिकरणवाचिना च-२।२।१३॥ क्तेन षष्ठी न समस्यते । इदमेषामासितं गतं भुक्तं वा ।

मध्यमनोरमा

गुणार्थशब्देन गुणिबोधकप्रकृतिकभावप्रत्ययान्तस्यैव ग्रहणमित्याह-काकस्य कार्ष्ण्यमिति । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । **फलानामिति**—करणस्य शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । सत् शब्देन तौ सदिति सूत्रेण सत्संज्ञकशतृशानचोर्ग्रहणमित्याह-कुर्वन् कुर्वाणो वेति । कुर्वन् इत्यपेक्षया द्विजस्येति न कर्मणि षष्ठी, न लोकेति निषेधात् । किन्तु शेषे षष्ठीत्याह किङ्कर इत्यर्थः इति । **सिद्धमिति-** अत एव सर्वपश्चात् इति भाष्यप्रयोगोऽपि संगच्छते । **ब्राह्मणस्य कर्तव्यमिति**—सूत्रे तव्येति निरनुबन्धकग्रहणात् तद्योगे एवायं निषेधः । सानुबन्धकतव्यत्प्रत्ययेन तु समासो भवत्येव। तेन स्वकर्तव्यमिति सिद्ध्यति । स्वरे भेदः । **क्तेन च पूजायाम्**—पूजाग्रहणं सूत्रोपलक्षणं व्याख्यानात्, इत्याह-मतिबुद्धीति । **राज्ञामिति**—क्तस्य च वर्तमाने इति कर्तरि षष्ठी । **अधिकरणवाचिना च**—क्तेन इत्यनुवर्तते । अधिकरणवाचिना क्तेन षष्ठी न समस्यते इत्यर्थः। **इदमेषाम् आसितमिति**—क्तोऽधिकरणे चेति क्तः, अधिकरणवाचिनश्चेति कर्तरि षष्ठी ।

मध्यमनोरमापूरणी

पूरणेति—पूरणगुण सुहितार्थ सद् अव्यय तव्य समानाधिकरण इत्यैतैः सह षष्ठी न समस्यते इत्यर्थः । अर्थशब्दस्य प्रत्येकं योगात् स्वरूपविधिर्नभवति । गुणेन सह समासनिषेधः अनित्यः। तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् इत्यादिनिर्देशोऽत्र मानम् । संज्ञायाः प्रमाणत्वं संज्ञाप्रमाणत्वमिति गुणेन समासोऽवलोक्यते । अतः अर्थगौरवम् बुद्धिमान्द्यमित्याद्यपि सिद्ध्यति । **राज्ञां मतः पूजितो बुद्धः इति**—अत्र मतिबुद्धीति पूजार्थे क्तः, तद्योगे क्तस्येति राजन् इति कर्तुः षष्ठी। तत्र षष्ठीसमासे प्राप्ते क्तेन चेति निषिध्यते । **अधिकरणवाचिना चेति**—क्तोऽधिकरणे इति अधिकरणे क्तो विधीयते । तद्वाचिना क्तप्रत्ययान्तेन षष्ठी न समस्यते इत्यर्थः । **इदमेषाम् आसितमिति**—अधिकरणवाचिनश्चेति एषामित्यत्र षष्ठी, तस्या न समासः ।

हिन्दी

१४२८. पूरणार्थक गुणार्थक सुहितार्थक आदि के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता है ।

१४२९. पूजार्थक क्तप्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता है ।

१४३०. अधिकरणार्थक क्तप्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४३१. कर्मणि च-२।२।१४।। उभयप्राप्तौ कर्मणीति या षष्ठी सा न समस्यते। आश्चर्यं गवां दोहोऽगोपेन ।

१४३२. तृजकाभ्यां कर्तरि-२।२।१५।। कर्त्रर्थतृजकाभ्यां षष्ठ्या न समासः । अपां स्रष्टा । वज्रस्य भर्ता । ओदनस्य पाचकः ।

१४३३. कर्तरि च-२।२।१६।। कर्तरि षष्ठ्या अकेन न समासः । भवतः शायिका ।

१४३४. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे-२।२।१।। अवयविना सह पूर्वादय समस्यन्ते, एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः । एकदेशिना किम्-पूर्वं नाभेः कायस्य । एकाधिकरणे किम्-पूर्वश्छात्राणाम्।

मध्यमनोरमा

कर्मणि च—गवां दोह इति भावे घञ्, कर्तृकर्मणोः कृति इति प्राप्ते उभयप्राप्तौ कर्मणीति नियमात् कर्मण्येव षष्ठी, तद् ध्वनयन्नाह-**अगोपेनेति** । **तृजकाभ्यां कर्तरि**—कर्तृग्रहणं तृजकयोरेव विशेषणं न तु षष्ठ्याः, श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलीयान् इति न्यायादित्याह-**कर्त्रर्थतृजकाभ्यामिति** । **वज्रस्य भर्तेति**—ण्वुल्तृचाविति कर्तरि तृच् । **पाचक इति**—कर्तरि ण्वुल् । **कर्तरि च**—अत्र द्वयोरप्यश्रुतत्वेऽपि सामर्थ्यात् कर्तरीति षष्ठ्या एव विशेषणमित्याह-कर्तरि षष्ठ्येति । अत्र तृच् नानुवर्तते, तद्योगे कर्तुरुक्तत्वेन कर्तृषष्ठ्या अभावादित्याह-अकेनेति । **शायिकेति**—पर्यायार्हणोत्पत्तिषुिति भावे ण्वुच् । **पूर्वापराधर इति**—एकदेशशब्दोऽवयवे रूढः । तस्मादेकगोपूर्वादिति ठञि प्राप्ते अत एव निर्देशादिनिः, तदेतदाह-अवयविनेति । ननूर्ध्वकाय इतिवत् कर्मधारयेणैव सिद्धे इदं सूत्रं व्यर्थमत आह-**षष्ठीसमासापवाद** इति । तथा कायपूर्व इत्याद्यनिष्टप्रयोगनिवृत्तये इदं सूत्रमिति भावः । **पूर्वं कायस्येति**—यद्यप्यत्रान्यारादिति पञ्चमी प्राप्ता तथापि तस्य परमाम्रेडितमिति निर्देशादवयववाचिदिक्शब्दयोगे षष्ठ्येव भवतीति भावः । **पूर्वश्छात्राणामिति**— उद्भूतावयवभेदसमुदाय-

मध्यमनोरमापूरणी

कर्मणि चेति—क्तेन इति निवृत्तम् । कर्मग्रहणमत्र षष्ठीविशेषणम् । तेन कर्मणि या षष्ठी सा न समस्यते इत्यर्थो भवति । ननु एवं सति अपां स्रष्टा इत्यादावपि निषेधः सिद्धः, तृजकाभ्यामिति व्यर्थं स्यादिति चेन्न । सूत्रे चकारः इति-पर्यायोऽस्ति । अतः कर्मणि इति सप्तम्येकवचनमुच्चार्य या षष्ठी विधीयते तस्याः समासो न भवतीति सिद्ध्यति । तस्यैव फलितम् उभयप्राप्तौ इत्यादि । **अपां स्रष्ट**—अप् आम् स्रष्टृ सु इत्यत्र प्राप्तः षष्ठीति समासः तृजकाभ्यामिति निषिध्यते । **भवतः शायिका**—शयनक्रियाकर्त्तुः भवच्छब्दात् कर्तृकर्मणोरिति षष्ठी । तत्र प्राप्तः समासः कर्तरि चेति निषिध्यते । पूर्वकायः-पूर्व अम् कायङस् इति अलौकिकविग्रहे षष्ठी सूत्रं प्रबाध्य पूर्वापराधरमित्यादिना समासः । तेन पूर्वस्यैव पूर्वनिपातः । **पूर्वं नाभेः कायस्येति**—एकदेशिना इत्यभावे अत्रापि पूर्वेण सह नाभेः समासापत्तिः स्यात् । नाभिः अत्र

हिन्दी

१४३१. उभयप्राप्तौ से विहित षष्ठी का सुबन्त के साथ समास नहीं होता है ।

१४३२. कर्त्रर्थ तृज् और अक्प्रत्ययान्त के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता है ।

१४३३. कर्ता में विहित षष्ठी का अकप्रत्ययान्त के साथ समास नहीं होता है ।

१४३४. एकत्वसंख्याविशिष्ट अवयवी के साथ पूर्व अपर इत्यादि का समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४३५. अर्धं नपुंसकम्-२।२।२॥ समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे स प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली ।

वा. एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम् ॥ इत्युपसर्जनसंज्ञाबाधाद्घ्रस्वो न । क्लीबे किम् ? ग्रामार्धः । द्रव्यैक्य एव । अर्धं पिप्पलीनाम् ।

मध्यमनोरमा

विवक्षयाऽत्र बहुवचनम् । तत्रावयवं प्रति समुदायस्यावयवित्वेऽपि नैकत्वसंख्येति भावः । **अर्धं नपुंसकम्**—अर्धशब्दो द्विविधः, खण्डवाची समांशवाची च । तत्रान्त्यो नित्यनपुंसकः । अर्धमिति नपुंसकनिर्देशेनैव सिद्धे पुनर्नपुंसकग्रहणं नित्यनपुंसकलाभार्थम् । तेनान्त्य एवेह गृह्यत इत्याशयेन व्याचष्टेनित्यं क्लीबे स इति, यो नित्यं नपुंसकलिङ्गे विद्यमानः स इत्यर्थः। **प्राग्वदिति**— एकत्वविशिष्टेनावयविना समस्यत इत्यर्थः । **अर्धपिप्पलीति**—परवल्लिङ्गत्वात् स्त्रीत्वम् । नन्वत्र एकविभक्ति चापूर्वनिपाते इति उपसर्जनत्वात् गोस्त्रियोरिति ह्रस्वत्वापत्तिरित्याह- **अषष्ठ्यन्तवचनमिति ।** अत्रायमाशयः-एकविभक्ति चापूर्वनिपाते इति सूत्रे अषष्ठ्यन्तवचनमिति वक्तव्यम्, तेन प्रकृते षष्ठ्यन्तस्य पिप्पलीशब्दस्यानुपसर्जनत्वाद् ह्रस्वस्य प्राप्तिरेव नेति । नन्वेवं पञ्चानां खट्वानां समाहारः पञ्चखट्वीति न सिद्ध्येत् । अत्राप्युपसर्जनसंज्ञानिषेधे खट्वेत्यत्राकारे ह्रस्वाप्रवृत्त्याऽदन्तत्वाभावेन द्विगोरिति ङीपोऽप्रवृत्त्यापत्तेरिति चेन्न, तस्यैकदेशिसमासविषयत्वात् । **अत्र प्रमाणम्**—अपथं नपुंसकमिति सूत्रे पञ्चखट्वीति भाष्योदाहरणमेव ।

मध्यमनोरमापूरणी

अवधिः नत्ववयवी । **अर्धपिप्पली इति**—अर्ध सु पिप्पली ङस् इत्यलौकिकविग्रहेऽर्धं नपुंसकमिति समासः । षष्ठीसमासे तु पिप्पल्यर्धमिति स्यात् । ननु अर्धं पिप्पल्याः, अर्धेन पिप्पल्या इत्यादौ पिप्पल्याः नियतविभक्तिकतया एकविभक्ति इत्युपसर्जनत्वे गोस्त्रियोरित्युपसर्जनह्रस्वः स्यादिति चेन्न । एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनमित्यनेन षष्ठ्यन्तस्योपसर्जनसंज्ञायाः निषेधाद् ह्रस्वो न । **ग्रामार्ध इति**—ग्रामस्यार्धः इत्यर्थः । अत्र अर्धशब्दोंऽशवाची नतु समांशवाची । अतः नित्यनपुंसकत्वाभावेन नायं समासो भवति । षष्ठीत्यनेनैव समासः । तेन षष्ठ्यन्तस्य पूर्वनिपातः । **अर्धं पिप्पलीनामिति**—पिप्पलीनामित्यस्य एकद्रव्याभावान्नायं समासः ।

हिन्दी

१४३५. समांशवाची नित्यनपुंसक अर्ध शब्द का अवयवी के साथ समास होता है विकल्प से ।

वा. एकविभक्तौ से उपसर्जन संज्ञा अषष्ठ्यन्त वचन को होता है न कि षष्ठ्यन्तवचन को।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४३६. द्वितीय तृतीयचतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्-२।२।३।। एतान्येकदेशिना सह प्राग्वद् वा। द्वितीयं भिक्षायाः द्वितीयभिक्षा। एकदेशिना किम्? द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्य। अन्यतरस्यां ग्रहणसामर्थ्यात् पूरणगुणेति निषेधं बाधित्वा पक्षे षष्ठी-समासः। भिक्षाद्वितीयम्।

१४३७. प्राप्तापन्ने च द्वितीयया-२।२।४।। पक्षे द्वितीयाश्रितेति समासः। प्राप्तो जीवनं प्राप्तजीवनः। जीवनप्राप्तः। आपन्नजीवनः। जीवनापन्नः। इह सूत्रे द्वितीयया अ इति छित्त्वा अकारोऽपि विधीयते। तेन जीविकां प्राप्ता स्त्री प्राप्त-जीविका। आपन्नजीविका।

मध्यमनोरमा

द्वितीयतृतीय इति—एतानीति द्वितीयादीनीत्यर्थः। एकदेशिना अवयविना। ननु द्वितीय-शब्दस्य पूरणप्रत्ययान्तत्वेन पूरणगुणेति निषेधात् कथं पक्षे षष्ठीसमास इत्यत आह-अन्यतरस्या-मित्यादि। **भिक्षाद्वितीयमिति**—भिक्षायाः द्वितीयमिति विग्रहः। **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया**—अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते। **तदाह**—पक्षे द्वितीयेति। **प्राप्तजीवन इति**—न चात्र जीवनशब्दस्य नपुंसकत्वात् परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति नपुंसकत्वं स्यादिति वाच्यम्, द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्व-गतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्य इति निषेधात्। **जीवनप्राप्त इति**—द्वितीयाश्रितेति समासः। तत्र सूत्रे द्वितीयाशब्दस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वादत्र द्वितीयान्तस्य जीवनशब्दस्य पूर्वनिपातः। **एवमग्रेऽपि।** प्राप्तापन्ने चेति सूत्रे चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः, तेनात्र अकारः प्रश्लिष्यते इति भाष्यकारः। **तदेवाह**—सूत्रे द्वितीययेत्यादि। एवञ्च जीविकां प्राप्ता स्त्री प्राप्तजीविका इत्यादौ प्राप्तापन्नशब्दयोरकारादेशः, स च अलोऽन्त्यपरिभाषया अन्त्यस्य जायते। नन्वेवं चकारात् पूर्व-मेव प्रश्लेषः कुतो न क्रियते इति चेन्मैवम्, ईदूदेदिति प्रकृतिभावाभावाय सौत्रत्वाद्याश्रयणीये गौरवं स्यात्। द्वितीयान्तस्य जीविकाशब्दस्य तु अकारादेशो न, अनुक्तसमुच्चयार्थचकारस्य भिन्नक्रमत्वात्। एकादेशस्य पूर्वान्तत्वेन ग्रहणात् प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहण-मिति परिभाषया वा टाबन्तयोरपि प्राप्तापन्नयोः समासः। जीविकाशब्दे गोस्त्रियोरिति ह्रस्वे तदन्तात् पुनष्टाप्।

मध्यमनोरमापूरणी

द्वितीयतृतीयेत्यादि—अत्र एकदेशिना इत्यनुवर्तते। **द्वितीयभिक्षा**—द्वितीयं भिक्षायाः इति विग्रहे द्वितीय सु भिक्षा ङस् इत्यलौकिक विग्रहे द्वितीयतृतीयेति समासः। सुपो लुक्। सूत्रे द्वितीयादीनां प्रथमानिर्दिष्टत्वात्पूर्वप्रयोगः। भिक्षायाः द्वितीयमर्धम् इत्यर्थः। **द्वितीयं भिक्षाया भिक्षुकस्येति**—द्वितीयं प्रति भिक्षुकस्य एकदेशित्वाभावान्न समासः। विभाषा इत्य-स्याधिकारेणैव विकल्पे सिद्धेऽन्यतरस्यां ग्रहणं व्यर्थमिति चेत् उच्यते-अन्यतरस्यांग्रहण-सामर्थ्यादिव अस्य विकल्पे पूरणगुणेति षष्ठीसमासनिषेधः न प्रवर्तते। तेन षष्ठीसमासोऽपि पक्षे भवतीति सिद्ध्यति। **प्राप्तजीवनः इति**—प्राप्तो जीवनमिति विग्रहे प्राप्तापन्ने चेति समासः। पक्षे द्वितीयाश्रितेति समासे द्वितीयान्तस्य जीवनस्योपसर्जनसंज्ञत्वात् पूर्वप्रयोगः। **प्राप्तजीविका**-प्राप्ता जीविकामिति लौकिकविग्रहे प्राप्ता सु जीविका अम् इत्यलौकिक विग्रहे प्राप्तापन्ने चेति

हिन्दी

१४३६. द्वितीय तृतीय इत्यादि एकदेशी के साथ समस्त होते हैं विकल्प से।
१४३७. प्राप्त और आपन्न शब्द का द्वितीयान्त के साथ समास होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४३८. कालाः परिमाणिना-२।२।५।। परिच्छेद्यवाचिना सुबन्तेन सह कालाः समस्यन्ते । मासो जातस्य यस्य स मासजातः ।

१४३९. सप्तमी शौण्डैः-२।१।४०।। सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत् । अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः । शौण्ड धूर्त कितव व्याड प्रवीण संवीत अन्तर अधिप पटु पण्डित कुशल चर्पल निपुण इति शौण्डादिः । द्वितीया तृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि द्वितीयादीनां प्रयोगवशात् समासो ज्ञेयः ।

१४४०. दिक्संख्ये संज्ञायाम्-२।१।५०।। विशेषणं विशेष्येण बहुलमित्येव सिद्धे संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम् । पूर्वेषुकामशमी । सप्तर्षयः । तेनेह न-उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ।

मध्यमनोरमा

कालाः परिमाणिना—परिमीयते परिच्छिद्यते येन तत्परिमाणं परिच्छेदकम् । परिमाणमस्यास्तीति परिमाणी, तच्च परिच्छेद्यमेवेत्याशयेनाह-परिच्छेद्यवाचिनेति । **मासजात इति**—षष्ठी समासे प्राप्ते वचनम् । अत्र जातशब्दः परिच्छेद्यवाची, मासशब्दस्तु कालविशेषवाची परिच्छेदकः । सूत्रे काला इति बहुवचननिर्देशात् कालविशेषवाचकस्यैव ग्रहणात् । ननु मासस्य जात इति विग्रहे षष्ठीसमासेनैव सिद्धाविदं सूत्रं व्यर्थमिति चेन्नैवम्, जातस्य मास इति विग्रहे जातमास इत्यनिष्टवारणाय तस्यावश्यकत्वात् । नन्वेमपि मासो जातो यस्येति बहुव्रीहिसमासेनैव सिद्धेरिदं सूत्रं व्यर्थम् । नच स्वरे विशेषः । जातिकालसुखादिभ्योऽनाच्छादनात् क्तः इति वा जाते इत्यन्तोदात्तत्वात् । न च जातशब्दस्य पूर्वनिपातापत्तिः, जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्येति वचनादिति चेन्न । जातवच्छब्देन समासे मासजातवानित्यादावन्तोदात्तार्थं तस्यावश्यकत्वादिति दिक् । **सप्तमी शौण्डैः**—बहुवचनसामर्थ्याद्गणग्रहणमित्याह-शौण्डादिभिरिति । **अक्षशौण्ड इति**—इह वृत्तावासक्तिक्रियान्तर्भावात् कारकाणां क्रियान्वय इति नियमव्याघातो न । दध्योदनः गुडधानाः इत्यादाविव । शौण्डः कुशलः । **इत्यादीति**—आदिना सप्तमीशौण्डैरिति सूत्रे सप्तमीति बोध्यम् ।**दिक्संख्ये संज्ञायाम्**—दिक् च संख्या च दिक् संख्ये। पूर्वकालैकेति सूत्रात् समानाधिकरणेनेत्यनुवर्तते । तेन दिक्संख्ये समानाधिकरणेन सुबन्तेन संज्ञायामेव समस्येते तत्पुरुषे इति सूत्रार्थः । तेन बहुव्रीहौ पञ्चगुरिति भवत्येव, पञ्चगवमिति च । नन्वेतस्य कथं नियमार्थत्वमित्याशङ्क्याह-विशेषणं विशेष्येणेति । **पूर्वेषुकामशमीति**—पूर्वा चासौ इषुकामशमी चेति विग्रहः । सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंम्वद्भावः । **सप्तर्षय इति**—सप्त च ते ऋषयश्चेति विग्रहः । **उत्तरा वृक्षा इति**—संज्ञात्वाभावाद् वाक्यमेव । एवं पञ्च

मध्यमनोरमापूरणी

समासः, प्राप्ता इत्यस्याकारस्य अकारादेशश्च विधीयते, सुपो लुक् । प्राप्तजीविका इति । एवमेव आपन्ना जीविकामापन्नजीविका इति । **दिक्संख्येति**—पूर्वकालैकसूत्रस्थं 'समानाधिकरणेन' इत्येतत् पदं पादसमाप्तिं यावदनुवर्तते । इदं सूत्रं नियमार्थम् । **तथाहि**—विशेषणं विशेष्येण बहुलमित्येव समानाधिकरणे समासे सिद्धे एतत् सूत्रं व्यर्थं सत् नियमयति यत् विशेषणं

हिन्दी

१४३८. परिच्छेद्यवाची के साथ कालवाची का समास होताहै ।

१४३९. सप्तम्यन्त का शौण्डादि के साथ समास होता है ।

१४४०. दिक् वाचक एवं संख्यावाचक का समानाधिकरण सुबन्त के साथ संज्ञा में ही समास होता है, और वह तत्पुरुष होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४४१. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च-२।१।५१।। तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां शालायां भवाः पूर्वशाला इति समासे जाते । सर्व नाम्नो वृत्तिमात्रे पूर्वं पुम्वत् ।

१४४२. दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः-४।२।१०७।। अस्माद् भवाद्यर्थे ञः स्यात् असंज्ञायाम् ।

१४४३. तद्धितेष्वचामादेः-७।२।११७।। ञिति णिति च तद्धिते अचामादेरचो

मध्यमनोरमा

ब्राह्मणा इत्यत्रापि । **तद्धितार्थोतरपद**—नन्वत्र समाहारे वाच्ये इतिवत् तद्धितार्थे वाच्ये इत्यर्थो यदि स्वीक्रियते तर्हि पौर्वशाल इत्यादौ तद्धितार्थस्य समासेनैवोक्तत्वात् दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः इति ञ-प्रत्ययो न स्यात्, उक्तार्थानामप्रयोग इति न्यायात् । तस्मादेकापि सप्तमी विषय-भेदाद् भिद्यते **इत्याशयेनाह**—तद्धितार्थे विषये इति । वैषयिके आधारे सप्तमी । **समाहारे वाच्ये इति**—समाहारः समूहः, भावे घञ् । दिक्संख्ये संज्ञायामिति सूत्रात् दिक्संख्ये अनुवर्तेते इत्याह-दिक्संख्ये प्राग्वदिति, समस्येते इत्यर्थः । **पूर्वस्यां शालायां भव इति**—पूर्वा ङि शाला ङि इत्यलौकिकं विग्रहवाक्यं, पुम्वद्भावः-पूर्वाशब्दस्येत्यर्थः । **दिक्पूर्वपदाद्**—अस्मादिति, दिक्पूर्वपदादित्यर्थः । ञः स्यादिति, ञकारस्य चुटू इत्यनेनेत्संज्ञायां तस्य लोप इत्यनेन लोपे पूर्वशाला अ इति जातम् । **तद्धितेष्वचाम्**—अचामिति निर्धारणे षष्ठी । **तदाह**—अचामादेरच इति । प्रकृते पकारोत्तरवर्त्यूकारस्येति भावः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विशेष्येण बहुलमिति सूत्रेण यदि दिक्संख्ययोःसमासो भवेत्तर्हि संज्ञायामेव । अत एव पञ्चगुः इत्यत्र बहुव्रीहिः पञ्चगवमित्यत्र च तद्धितार्थ इति समासो भवत्येव । तथैव पूर्वसूत्रं पूर्वमासः इत्यादौ अपि संज्ञात्वाभावात् समासो भवति । कथं त्रिलोकनाथ इति चेत्, त्रिलोकशब्दस्य असंज्ञात्वादेव जानीहि । **सप्तर्षय इति**—सप्त च ते ऋषय इति विग्रहे सप्तन् जस् ऋषि जस् इत्यलौकिकविग्रहे दिक्संख्ये इति समासे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमादाय पदत्वात् सप्तन् इत्यस्य नस्य लोपः । आद्गुणः, रपरत्वम् । जसि रूपम् । **तद्धितार्थोतरपदसमाहारे चेति**—सूत्रे एकैव सप्तमी तद्धितार्थ इत्यत्र वैषयिक आधारोऽस्ति । अतः तद्धितार्थे विषये अर्थात् भविष्यति तद्धिते समासः इत्यर्थो भवति, न तु तद्धितार्थे वाच्ये इत्यर्थो भवति । **पौर्वशालः इति**—पूर्वा ङि शाला ङि इत्यलौकिकविग्रहे तद्धितार्थविषये तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चेति समासः, दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः इति ञप्रत्ययः । कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातु इति सुपो लुक् पूर्वा शाला अ इति जाते सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुम्वद् भाव इति पूर्वा इत्यस्य पुंवद्भावः, तद्धितेष्वचामादेरिति आद्यचो वृद्धौ पौर्वशाला अ इति जाते भसंज्ञायां यस्येति चेति आकारस्य लोपे लोपे स्वादिकार्ये च कृते पौर्वशालः इति ।

हिन्दी

१४४१. तद्धितार्थ के विषय में उत्तरपद परे रहते तथा समाहार अर्थ में दिक् व संख्यावाची का समास होता है ।

१४४२. दिक्पूर्वपद वाले शब्द से भवादि अर्थ में ञ प्रत्यय होता है, असंज्ञा में ।

१४४३. ञित् और णित् तद्धितप्रत्यय परे अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वृद्धिः स्यात् । यस्येति च । पौर्वशालः । पूर्वा शाला प्रिया यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ कृते प्रियाशब्दे उत्तरपदे पूर्वयोस्तत्पुरुषः । तेन शालाशब्दे आकार उदात्तः । पूर्वशालाप्रियः । दिक्षु समाहारो नास्त्यभिधानात् । संख्यायान्तद्धितार्थे-षण्णां मातृणामपत्यं षाण्मातुरः । मातुरुत् संख्यासंभद्रपूर्वायाः इति वक्ष्यमाणोऽण्, प्रकृतेरुकारादेश आदिवृद्धिश्च । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ अवान्तरतत्पुरुषस्य विकल्पे प्राप्ते ।

वा. द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥

१४४४. गोरतद्धित लुकि-५।४।९२॥ गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तः न तद्धितलुकि । पञ्चगवधनः ।

मध्यमनोरमा

यस्येति च—भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः स्यादीकारे तद्धिते च परे इति तदर्थः । अनेन लकारोत्तरवर्त्याकारस्य लोपः । पौर्वशाल इति तद्धितान्तत्वाद् कृत्तद्धितेति सूत्रेण प्रातिपदिकत्वे स्वाद्युत्पत्तिः । **त्रिपदे बहुव्रीहौ कृते इति**—अनेकमन्यपदार्थे इति सूत्रे अनेकग्रहणादिति भावः। **पूर्वयोस्तत्पुरुष इति**—पूर्वाशब्दशालाशब्दयोरित्यर्थः, विशेषणं विशेष्येण बहुलमिति सूत्रेणेति भावः । **आकार उदात्त इति**—सति शिष्टत्वात् समासस्येत्यन्तोदात्तविधायक-सूत्रेणान्तोदात्तो भवति । यदि तु तत्पुरुषो न क्रियते तदा बहुव्रीहौ प्रकृत्यापूर्वपदमिति पूर्वपद-प्रकृतिस्वरविधायक-सूत्रेण पूर्वशब्दस्याद्युदात्तत्वमेव स्यादिति भावः । **पूर्वशालाप्रिय इति**—सर्वनाम्नोवृत्तिमात्रे पुम्वद्भावः इत्यनेन पूर्वाशब्दस्य पुम्वद्भावः, प्रियाशब्दस्य तु गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । **वक्ष्यमाणोऽण् इति**—उपदेशस्याप्युपलक्षणमेतत् । द्विगोर्लुगनपत्ये इत्यण् प्रत्ययस्यं लुक् तु न भवति, अनपत्ये इत्युक्तत्वात् । **विकल्पे प्राप्ते इति**—महाविभाषयेति भावः । **द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति**—वार्तिकमेतत् । उत्तरपदे परतः द्वन्द्वतत्पुरुषयोः नित्यसमासवचनं कर्तव्यमिति तस्यार्थः । **गोरतद्धित लुकि**—तत्पुरुषस्येत्यनुवर्तते, राजाहः सखिभ्यष्टच्जिति सूत्राट्टच्च । **तदाह**— गोऽन्तादित्यादि । न तु तद्धितलुकीति । तेन पञ्चभिः गोभिः क्रीतः

मध्यमनोरमापूरणी

पूर्वशाला प्रिय इति—पूर्वा शाला प्रिया यस्येति विग्रहे पूर्वा सु शाला सु प्रिया सु इत्यलौकिक विग्रहे अनेकमन्यपदार्थे इति त्रयाणां पदानां बहुव्रीहिः, तदनु प्रिया शब्दे परतः तद्धितार्थोत्तर-पदेति पूर्वा शाला इत्यनयोः अवान्तरतत्पुरुषः । सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे इति पूर्वा इत्यस्य पुम्वद्-भावः । पूर्वशालाप्रिया इति; प्रिया इत्यस्य गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येति ह्रस्वः । स्वादिकार्यम् । **आकार उदात्त इति**—ननु बहुव्रीहौ कृते सुपो लुप्तत्वात् पुनः अवान्तरतत्पुरुषस्य किं प्रयोजनमिति चेत् उच्यते-आकार उदात्त इति । अवान्तरत्पुरुषे सति शालाशब्दोत्तराकारस्य उदात्तस्वरो भवति । अवान्तर तत्पुरुषाभावे तु आद्युदात्तत्वं स्यात् । **दिक्षु इति**—समासे दिक् पूर्वपदसमासो न भवति इत्यर्थः । अन्यथा पूर्वेषां पुरुषाणां समाहारः इत्यत्रापि समासस्स्यात्। **षाण्मातुर इति**—षष् आम् मातृ आम् इत्यलौकिकविग्रहे तद्धितार्थ इति समासः, मातुरुत् इति अण्, मातृशब्दस्य-च ऋकारस्योकारः, आदिवृद्धिः, सुपो लुक् ।

हिन्दी

वा. उत्तरपद परे रहते द्वन्द्व व तत्पुरुष समास नित्य होते हैं ।

१४४४. गो शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय होता है, तद्धित लुक् में टच् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४४५. संख्यापूर्वो द्विगुः-२।१।५२।। तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः संख्यापूर्वो द्विगुः ।
१४४६. द्विगुरेकवचनम्-२।४।१।। द्विग्वर्थः समाहार एकवत् स्यात् ।
१४४७. स नपुंसकम्-२।४।१७।। समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् ।

मध्यमनोरमा

पञ्चगुरित्यत्र न । अत्र अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायामिति ठको लुक् । **पञ्चगवधन इति-** अत्र गोशब्दान्ताट्टचि कृते अवादेशः । **संख्या पूर्वो द्विगुः-तद्धितार्थेत्यत्रोक्त इति**—तद्धितार्थेत्यनेन यत्र समासस्तत्रैवेयं संज्ञा न तु दिक्संख्ये संज्ञायामिति सूत्रविषयेऽपि, अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति न्यायादिति भावः । **संख्यापूर्व इति**—त्रिविधो हि संख्यापूर्वः समासः, तद्धितार्थे विषये संख्यापूर्वो यः समासः, उत्तरपदे परतः संख्यापूर्वो यः समासः, समाहारे वाच्ये संख्यापूर्वो यः समासः स द्विगुसंज्ञक इत्यर्थः । **तत्राद्यं यथा**—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः, संस्कृतं भक्षा इत्यनेन विहितस्याणः द्विगोर्लुगनपत्ये इति लुक् । **द्वितीयं यथा**—पञ्चनावप्रियः, अत्र नावो द्विगोरिति समासान्तष्टच् । **तृतीयं यथा**—पञ्चानां मूलानां समहारः पञ्चमूली, द्विगोरिति सूत्रेण ङीप् । **द्विगुरेकवचनम्**—समाहारे यो द्विगुस्तदर्थ एकवत् स्यादित्यर्थः । समाहारे किम्? तद्धितार्थे विषये मा भूत् । पञ्चसु कपालेषु संस्कृताः पञ्चकपालाः पुरोडाशाः । यद्यपि समाहारस्यैकत्वात् एकवचनं सिद्धं, तथाप्यत्र समाहारे उद्भूतावयवभेदत्वविवक्षा न कार्या इत्यनेन सूच्यते । पञ्चमूलीनामित्यादौ एकशेषेण बहुवचनं तु भवत्येवेति स्पष्टं भाष्ये । **स नपुंसकम्**—अत्र द्विगोः समाहारद्वन्द्वस्य च परामर्शः । **तदाह**—समाहार इत्यादि । **पञ्चगवमिति**—गोरद्धितलुकि इति टच्, अवादेशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

षाष्मातुर इति, षस्य जश्त्वेन डः, यरोऽनुनासिक इति डस्य णः । **पञ्चगवधन इति**—पञ्चन् जस् गो जस् धन सु इत्यलौकिकविग्रहे बहुव्रीहिः, सुपो लुक् । द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे इति नित्यं पञ्चन् गो इत्यनयोः तत्पुरुषः । अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमादाय नस्य लोपः । पञ्चगो धन इति । गोरतद्धितलुकि इति गोशब्दात् परं टच् । अवादेशः । स्वादिकार्यम् । **पञ्चगवमिति-** पञ्चानां गवां समाहारः इति विग्रहः । पञ्चन् आम् गो आम् इत्यलौकिकविग्रहे तद्धितार्थेति समासः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य नलोपः । गोरद्धितलुकि इति टच्, अवादेशः । पञ्चगव इत्यस्य द्विगुरेकवचनमित्येकवद्भावः, स नपुंसकमिति नपुंसकसंज्ञा, सारमादशऽाम पूर्व इति पूर्वरूपम् ।

हिन्दी

१४४५. तद्धितार्थ से होने वाला संख्यापूर्वपद वाला समास द्विगु होता है ।
१४४६. द्विगु का अर्थ समाहार होने पर एकवद्भाव होता है ।
१४४७. समाहार में द्विगु और द्वन्द्व नपुंसक होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४४८. विशेषणं विशेष्येण बहुलम्-२।१।५७।। भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत् । नीलमुत्पलम् नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम् । कृष्णसर्पः । क्वचिन्न-रामो जामदग्न्यः ।

वा. अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः ।। अपरश्चासौ अर्धश्च पश्चार्धः ।

१४४९. सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः-२।१।६१।। समानाधिकरणैः सह समस्यन्ते । सद्वैद्यः ।

१४५०. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः-६।३।४६।। महावैयाकरणः ।

मध्यमनोरमा

विशेषणं विशेष्यण बहुलम्—विशेष्यते येन तद्विशेषणम्, कर्त्तुः करणत्वविवक्षायां ल्युट् । **तदाह**—भेदकमिति, व्यावर्तकमित्यर्थः । **नीलोत्पलमिति**—परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति नपुंसकत्वम् । **कृष्णसर्प इति**—कृष्णश्चासौ सर्पश्चेति विग्रहः । **क्वचिन्नेति**—बहुलग्रहणादिति भावः । रामो जामदग्न्य इति । समासे तु जामदग्न्यराम इति स्यादिति भावः । **अपरस्यार्धे इति**—अर्धशब्दे उत्तरपदे परतः । अपरशब्दस्य पश्चादेशो वक्तव्य इत्यर्थः । **सन्महत्**—सहेति। पूज्यमानैः सह सदादयः समस्यन्ते इत्यर्थः । **आन्महतः**—समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीय-देशीययोश्च[1] परतः महत आकारोऽन्तादेशः स्यादित्यर्थः । **महावैयाकरण इति**—महांश्चासौ वैयाकरणश्चेति विग्रहः । सन्महदिति समासे कृते आन्महत इति सूत्रेण महत आकारोऽन्तादेशः।

मध्यमनोरमापूरणी

विशेषणं विशेष्येति—विशिष्यते अनेनेति विशेषणम् इतरस्मात् व्यावृत्तिं=भेदं करोति । व्यावर्त्यं भिन्नत्वेन ज्ञायमानं विशेष्यं भवति, अत उक्तं भेदकमित्यादि । **नीलोत्पलमिति**-नील सु उत्पल सु इत्यलौकिकविग्रहे विशेषणमिति समासः । सुपो लुक् । आद्गुणः । **बहुलग्रहणादिति**—विभाषाधिकारेऽपि बहुलमिति क्रियते, तेन क्वचिन्नित्यः समासः क्वचिच्च सर्वथा समासाभावो भवति इति ज्ञेयम् । **कृष्णसर्पः**—कृष्णश्चासौ सर्पः इति विग्रहे नित्य-समासः । **पश्चार्ध इति**—अपरश्चासौ अर्ध श्चेति विग्रहे समासः । सुपो लुक् । अपर अर्ध इति । अपरस्यार्धे इति अपरस्य पश्चादेशः, सवर्णदीर्घः । **सद्वैद्य इति**—सन् चासौ वैद्य इति, सन्महत् इति समासः, सुपो लुक् । **सद्वैद्यः=चिकित्साशास्त्रपारङ्गतः, तस्मात् पूज्यः । महा-वैयाकरण इति**—महान् सु वैयाकरण सु इत्यलौकिकविग्रहे सन्महदिति समासः, सुपो लुकि महत् वैयाकरण इति, आन्महत इति तस्यात्वे सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

१४४८. विशेषण का विशेष्य समानाधिकरण के साथ बहुल प्रकार से समास होता है ।

वा. अर्ध पर रहते अपर को पश्च आदेश होता है ।

१४४९. सत् महत् परम उत्तम व उत्कृष्ट का पूज्यमान समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास होता है ।

१४५०. महत् शब्द को आकारान्त आदेश होता है समानाधिकरण उत्तरपद परे व जातीय शब्द परे रहते ।

---

1. काशिकायाः सिद्धान्तकौमुद्याश्च वृत्तौ देशीयशब्दो नोल्लिखितः इति विचार्यम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४५१. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः-१।२।४२॥
१४५२. पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु-६।३।४२॥ कर्मधारये जातीयदेशीययोश्च परतो भाषितपुंस्कात् परम् ऊङभावो यस्मिन्तथाभूतं पूर्वं पुम्वत् । पूरण्यां प्रियादिष्वप्राप्तः पुम्वद्भावो विधीयते । महानवमी । कृष्णचतुर्दशी । महाप्रिया । पूज्यमानैः किम्-उत्कृष्टो गौः । पङ्कादुद्धृत इत्यर्थः ।
१४५३. उपमानानि सामान्यवचनैः-२।१।५५॥ घनश्यामः ।

मध्यमनोरमा

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः—समानाधिकरणे यस्तत्पुरुषः सः कर्मधारयसंज्ञको भवतीत्यर्थः । **पुम्वत्कर्मधारयेति**—स्त्रियाः पुंवदिति सूत्रात् स्त्रिया इति भाषितपुंस्कादिति अनूङिति चानुवर्तते । **तदाह**—भाषितपुंस्कादिति । भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः । उरः प्रभृतिभ्य इति कप् । तस्मात् पर ऊङ्प्रत्ययाभावो यत्र तादृशं पूर्वपदं पुम्वत् कर्मधारय-विषये जातीयदेशीययोश्च परतः इत्यर्थः । **अप्राप्त इति**—स्त्रियाः पुम्वदिति सूत्रे अपूरणीप्रिया-दिष्विति निषेधादिति भावः । **विधीयते इति**—'पाचकस्त्री' इत्यादौ न कोपधायाः इति निषेधे प्राप्ते तस्यायं प्रतिप्रसवोऽपि बोध्यः । **महानवमीति**—महती चासौ नवमी चेति विग्रहः । पुम्वत्कर्मधारयेति पुम्वद्भावे कृते आन्महत इति महच्छब्दस्याकारान्तादेशः । **कृष्णचतुर्दशीति**—कृष्णा चासौ चतुर्दशी चेति विग्रहः । **महाप्रियेति**—महती चासौ प्रिया चेति विग्रहः । **पूज्यमानैः किम् इति**—सन्महदिति सूत्रे पूज्यमानग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नः । उद्-धृतार्थक उत्कृष्टशब्दः, तस्य गोशब्देन सह समासो मा भूदित्युत्तरम् । **तदाह**—उत्कृष्ट इत्यादि । **उपमानानि सामान्यवचनैः**—समानो धर्मः सामान्यं, चतुर्वर्णादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् ।

मध्यमनोरमापूरणी

तत्पुरुष समानाधिकरण इति—समानम्=एकम्, अधिकरणं वाच्यं ययोः ते समानाधिकरणे पदे । ते अस्य स्तः इति विग्रहे मत्वर्थीये अर्श आद्यचि कृते समानाधिकरणः इति भवति । समानाधिकरणः तत्पुरुषः कर्मधारयसंज्ञो भवतीत्यर्थः । **पूरण्यामित्यादि**—स्त्रियाः पुम्वद्भाषित इत्यनेन अपूरणीप्रियादिष्वेव पुंम्वद्भावः, न तु पूरणीप्रियादिषु, तत्रापि पुम्वद्भावार्थमिदं सूत्रम् । **महानवमीति**—महती सु नवमी सु इत्यलौकिक विग्रहे सन्महदिति समासे सुपो लुकि महती नवमी इति जाते पुम्वद्कर्मधारयेति महतीशब्दस्य पुम्वद्भावे महत् नवमी इति जाते आन्महत इत्यात्वे सवर्णदीर्घे च रूपम् । एवमेव महाप्रियेति साध्यम् । **कृष्णचतुर्दशी**-कृष्णा सु चतुर्दशी सु इति विग्रहे समासः, पुम्वद्कर्मधारयेति कृष्णेत्यस्य पुम्वद्भावः । नवमीचतुर्दशी-त्यनयोः पूरणप्रत्ययान्तत्वात् स्त्रियाः पुम्वदिति पुम्वद्भावोऽप्राप्तोऽनेन विहितः । **उपमानानि इति**—उपमीयतेऽनेनेत्युपमानम्, उपमानोपमेययोः साधारणधर्मः सामान्यमित्युच्यते । तस्य वचनं सामान्यवचनम् इत्यर्थः । उपमानवाचीनि सामान्यवचनैः सुबन्तैः सह समस्यन्ते इत्यर्थः। **घनश्याम इति**—घन इव श्याम इत्यत्र इव शब्दो घनसदृशं लक्षयति । तस्य श्यामेन सह उपमानानि इति समासः । सुपो लुक् । विशेषणं विशेष्येण इत्येव समासे सिद्धे पूर्वनिपातार्थमिदं

हिन्दी

१४५१. समानाधिकरण पदवाले का तत्पुरुष समास कर्मधारय कहलाता है ।
१४५२. कर्मधारय में, जातीय और देशीय शब्द परे भाषित पुंस्क से परे ऊङ् का अभाव जहाँ हो ऐसे पूर्वपद को पुम्वद्भाव होता है ।
१४५३. उपमान वाचक का समान्यवचन सुबन्त के साथ समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४५४. उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे-२।१।५६।। पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः । सामान्याप्रयोगे किम्-पुरुषो व्याघ्र इव शूरः ।

वा. शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपश्च ।। शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवब्राह्मणः ।

१४५५. कडाराः कर्मधारये-२।२।३८।। कडारादयः शब्दाः कर्मधारये वा पूर्वं प्रयोज्याः । कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः ।

मध्यमनोरमा

उपमानोपमेयसाधारणो यो धर्मः तद्विशिष्टव चनैरुपमानानि समस्यन्त इत्यर्थः । **घनश्याम इति-** घन इव श्यामः इति विग्रहः । अत्र घनपदं तत्सदृशे लाक्षणिकमिति सूचयितुं लौकिकविग्रह-वाक्ये इवशब्द प्रयोगः । मयूरव्यंसकादित्वादेव सिद्धे पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम् । अन्यथाऽनियमः स्यात्, खञ्जकुब्जवदिति बोध्यम् । **शाकपार्थिवादीनामिति; उत्तरपदलोपस्येति-** ननु शाकपार्थिव इत्यादौ उत्तरपदशब्दस्य समासचरमावयवे रूढत्वात् कथं प्रियादिशब्दानां लोपस्तस्य च मध्यमपदत्वादत एव मध्यमपदलोपिसमास इति व्यवहार इति चेन्न, शाकप्रिय इत्यत्र बहुव्रीहिसमासं कृत्वा तस्य पार्थिवशब्देन समासे कृते पूर्वसमासे यदुत्तरपदं प्रिय इति, तस्य लोपो भवतीत्यर्थात् । तथा देवब्राह्मण इत्यत्रापि देवस्य पूजको देवपूजक इति षष्ठीसमासे कृते पश्चाद्देवपूजकश्चासौ ब्राह्मणश्चेति समासे पूर्वत्र षष्ठीसमासे यदुत्तरपदं पूजक इति, तस्य लोप इति बोध्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सूत्रम् । **उपमितमिति**—उपमितशब्दः नित्यमुपमानमाकाङ्क्षते । उपमानव्याघ्रादिभिः सह उपमितं समस्यते सामान्यस्य धर्मस्य अप्रयोगे सति । विशेष्यस्य उपमितस्य पूर्वप्रयोगार्थं सूत्रम्। विशेषणं विशेष्येणेति समासे तु विशेषणभूतस्य उपमानस्यैव पूर्वप्रयोगापत्तिः स्यात् । **पुरुष व्याघ्रः**—पुरुष सु व्या घ्र सु इत्यलौकिकविग्रहे समासः । **शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिव इति**—शाकप्रिय सु पार्थिव सु इत्यलौकिकविग्रहे शाकपार्थिवादीनामिति समासः, पूर्वपदान्तर्गत-प्रिय इत्युत्तरपदस्य च लोपः । सुपो लुकि स्वादिकार्यम् । **देवब्राह्मण इति**—देवपूजको ब्राह्मण इति विग्रहः । शाकपार्थिवादित्वात् समासे पूजकस्य लोपे च कृते रूपम् । **कडार इति**—सर्जनं पूर्वमित्यतः पूर्वमित्यनुवर्तते । **कडारजैमिनिः**—कडारश्चासौ जैमिनिश्चेति विग्रहे विशेषणं विशेष्येणेति समासः । विशेषणस्य समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टत्वात् उपसर्जनसंज्ञा कडार इत्यस्य भवति, तेनास्य उपसर्जनं पूर्वमिति नित्यं पूर्वप्रयोगे प्राप्ते कडारा इति विकल्पेन पूर्वप्रयोगो विधीयते । पक्षे जैमिनिकडार इत्यपि भवति ।

हिन्दी

१४५४. उपमेयवाची का व्याघ्रादि उपमानवाची के साथ समास होता है, सामान्यवाचक पद का यदि प्रयोग न हुआ हो ।

वा. शाकपार्थिव आदि की सिद्धि के लिए उत्तरपद का लोप कहना चाहिये ।

१४५५. कडारादि शब्दों का कर्मधारय में पूर्व प्रयोग होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४५६. मयूरव्यंसकादयश्च-२।१।७२।। एते निपात्यन्ते । मयूरो व्यंसको मयूरव्यंसकः । व्यंसको धूर्तः । उदक् च अवाक् च उच्चावचम् । निश्चितं च प्रचितं च निश्चप्रचम् । नास्ति किञ्चन यस्य सः अकिञ्चनः ।

ग. सू. आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये ।। अश्नीत पिबतेत्येवं यत्राभिधीयते सा अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता । नास्ति कुतो भयं यस्य सः अकुतोभयः । अन्यो राजा राजान्तरम् । चिदेव चिन्मात्रम् ।

मध्यमनोरमा

मयूरव्यंसकादयश्च, उच्चावचमिति—उदग् अवाक्शब्दयोरुच्चावचादेशोऽपि निपात्यते । केचित्तु उच्चनीचमित्यर्थे इदं निपातनमित्याहुः । **निश्चप्रचमिति**—निश्चितप्रचितशब्दयो र्निश्चप्रश्चादेशो निपात्यते । **अकिञ्चन इति**—अस्तिना नञः सम्बन्धात् असामर्थ्येऽपि निपातनात् समासः । **मयूरव्यंसकाद्यन्तर्गणसूत्रमाह**—आख्यातमिति । क्रियाप्रधानमित्यर्थः । आख्यातेन क्रियाप्रधानेन क्रियासातत्ये क्रियायाः नैरन्तर्ये । **अश्नीतपिबतेति**—अत्रान्यपदार्थस्य क्रीडादिरूपत्वेन स्त्रीत्वात् समासत्वेन प्रातिपदिकत्वाट्टाप् । **पचतभृज्जतेति**—पचत भृज्जतेत्येवं सततं यत्राभिधीयते सेत्यर्थः। पूर्ववत् टाप् । **खादतमोदतेति**—खादत मोदन्तामित्येवं सततं यत्राभिधीयते सेत्यर्थः । मोदन्तामित्यस्य स्थाने मोदतेत्यादेशः । **अकुतोभय इति**—अत्र सामर्थ्येऽपि मयूरव्यंसकादिगणे निपातनात् समासः । **राजान्तरमिति**—भिन्नवाचिना अन्तरशब्देन सह नित्यसमासः । अत एवाऽत्र मूलेऽस्वपदविग्रहः प्रदर्शितः । एवं चिन्मात्रमित्यत्रापि एवशब्दार्थकमात्रशब्देन नित्यसमासः, एवशब्देन विग्रहश्च । एतेषां नित्यसमासत्वं तु मयूरव्यंसकादयश्चेति सूत्रे एवकारार्थकेन चकारेण लब्धं, तेन एतेषां समासान्तरे घटकतया प्रवेशो नेति परमो मयूरव्यंसक इत्यादिवाक्यमेव भवति न तु समास इति बोध्यम्। ननु चिन्मात्रमित्यत्र मात्रशब्दस्य प्रत्ययस्याभावेन प्रत्यये भाषायां नित्यमित्यस्याप्राप्त्या यरोऽनुनासिक इति विकल्पेनानुनासिकः स्यादिति चेन्न, मयूरव्यंसकादिगणे निपातनादेव नित्यानुनासिकत्वलाभात् ।

मध्यमनोरमापूरणी

मयूरव्यंसकादयश्चेति—एते समुदाया एव अर्थात् कृतसमासादिकार्या एव निपात्यन्ते इत्यर्थः। **मयूरव्यंसक इति**—व्यंसकश्चासौ मयूरश्चेति विग्रहे समासे व्यंसकस्य गुणवचनस्य पूर्वनिपातस्थाने परनिपातः । **उच्चावचमिति**—उदक् च अवाक् चेति विग्रहे समासे कृते उदक् इत्यस्य उच्चादेशः अवाक् इत्यस्य चावचादेशः, सवर्णदीर्घः, नपुंसकत्वम् । निश्चप्रचम् निश्चितप्रचितयोः मयूरव्यंसकादयश्चेति निश्चप्रचादेशः । **अकिञ्चन इति**—बहुव्रीहिं प्रबाध्य त्रिपदस्तत्पुरुषः, नञो नकारस्य लोपश्च निपात्यते । **आख्यातमिति**—क्रियायाः नैरन्तर्ये गम्ये तिङन्तं तिङन्तेन समस्यते, स तत्पुरुषः इत्यर्थः । **अश्नीतपिबता**—अश्नीत पिबत इत्येवं यत्राभिधीयते सा क्रिया इत्यर्थे आख्यातमित्यादिना समासः । सुबन्तयोः पदयोरभावेऽपि समासः इति विशेषः। अन्यपदार्थस्य क्रिया इत्यस्य प्राधान्यम्, अतः स्त्रीत्वाट्टाप्, सवर्णदीर्घः, सोर्हल्ङ्यादिलोपः ।

हिन्दी

१४५६. मयूरव्यंसक आदि कृतसमासकार्यादि निपातन हैं ।

ग. सू. तिङन्त का तिङन्त के साथ क्रिया की निरन्तरता गम्यमान होने पर तत्पुरुष समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४५७. नञ्-२।२।६॥ सुपा प्राग्वत् ।

१४५८. नलोपो नञः-६।३।७३॥ नञो नस्य लोप उत्तरपदे । अब्राह्मणः ।

१४५९. तस्मान्नुडचि-६।३।७४॥ लुप्तनकारान्नञः उत्तरपदस्याजादेर्नुट् । अनश्वः । नैकधेत्यादौ तु न शब्देन सह सुप् सुपेति समासः ।

१४६०. कुगतिप्रादयः-२।२।१८॥ एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ।

१४६१. ऊर्यादिच्विडाचश्च-१।४।६१॥ ऊर्यादयश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य ।

मध्यमनोरमा

नञ्—सुपा प्राग्वदिति, नञ् सुबन्तेन सह समस्यते इत्यर्थः । **नलोपो नञः**—उत्तरपदेति, अलुगुत्तरपदे इत्यधिकारादुत्तरपदे इति लब्धम् । **अब्राह्मण इति**—नञ्समासे कृते नलोपः । आरोपितो ब्राह्मण इति बोधः । ब्राह्मणभिन्न इति यावत् । **तस्मान्नुडचि**—अत्राचीति षष्ठ्यर्थे सप्तमी व्याख्यानात् । सप्तमीनिर्देशस्तु यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे इति परिभाषाप्रवृत्त्या तदादिविधिलाभार्थ इत्याह-उत्तरपदस्येति, नुट् स्यादिति—टकार इत्संज्ञकः । तेन टित्त्वादुत्तर-पदस्याद्यावयवो भवति । **अनश्व इति**—आरोपितोऽश्व इति बोधः । ननु नञ् इति सूत्रेण समासे नलोपो नञ इति सूत्रेण नलोपे तस्मान्नुडचि इति सूत्रेण नुडागमे च कृते अनेकधेत्येव स्यात्, न तु नैकधेत्यत आह-नैकधेत्यादाविति-न शब्देनेति । अत एव नञ् इति समास-विधायके नलोपो नञ इति लोपविधायके च सूत्रे ञकारोच्चारणं कृतं, तेन ताभ्यां समास-लोपयोरभावोऽत्र बोध्यः । **कुगतिप्रादयः**—कुशब्दः पापार्थकोऽव्ययमेवात्र गृह्यते न तु पृथिवी-वाचकः, गत्यादिसाहचर्यात् । तेन कुपुरुष इत्यादौ अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरः सिद्ध्यति । **तदाह**-कुत्सितः पुरुष इति । ऊर्यादिच्वि-उपसर्गाः क्रियायोगे इति सूत्रात् क्रियायोगे इत्यनुवर्तते इत्याह-क्रियायोगे इति । **ऊरीकृत्येति-ऊरी-उररी**—शब्दौ अङ्गीकारे वर्तेते । तयोरनेन गतिसंज्ञायां कु-गतिप्रादय इत्यनेन समासे कृते सति समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यबिति सूत्रेण क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशः सिद्ध्यति। च्विप्रत्ययान्तस्योदाहरणमाह-**शुक्लीकृत्येति** – कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विरिति सूत्रेण शुक्लशब्दात् च्विप्रत्ययः, चकारस्य

मध्यमनोरमापूरणी

अब्राह्मण इति—न ब्राह्मणः इति विग्रहे न ब्राह्मण सु इत्यलौकिकविग्रहे नञ् इति समासे प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि नलोपो नञ इति नलोपे अब्राह्मण इति जाते स्वादिकार्यम् । **तस्मान्नुडचि**—तस्मात् इत्यनेन नञ् सूत्रगतो लुप्तनकारो नञ् इति पदं गृह्यते । उत्तरपदमित्यनुवृत्तं सत् अचीत्यनेन विशेष्यते । तदादिविधिर्भवति । षष्ठीं प्रकल्पयति च सप्तमी । **अत आह**—लुप्तेत्यादि । **अनश्व इति**—न अश्वः इति विग्रहे समासः । नलोपे सति अ अश्व इति । नुटि अनश्वः ।

हिन्दी

१४५७. नञ् का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है ।

१४५८. नञ् के न् का लोप होता है उत्तरपद परे रहते ।

१४५९. लुप्तनकारवाले नञ् से परे अजादि उत्तरपद को नुडागम होता है ।

१४६०. कु गति संज्ञक और प्रादि का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है ।

१४६१. ऊर्यादिगणपठित च्विप्रत्यान्त और डाजन्त को क्रियायोग में गतिसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम् ॥ कारिका=क्रिया । कारिकाकृत्य ।

१४६२. अनुकरणं चानितिपरम्-२।४।६२॥ खाट्कृत्य । अनितिपरं किम् ? खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् ।

१४६३. आदरानादरयोः सदसती-१।४।६३॥ सत्कृत्य । असत्कृत्य ।

१४६४. भूषणेऽलम्-१।४।६४॥ अलङ्कृत्य । भूषणे किम्-अलङ्कृत्वौदनं गतः । पर्याप्तमित्यर्थः । अनुकरणमित्यादि त्रिसूत्री स्वभावात् कृञ्विषया ।

मध्यमनोरमा

चुट्‌ इत्यनेनेकारस्योपदेशेऽजनुनासिक इदित्यनेनेत्संज्ञायां तस्य लोप इत्यनेन लोपः । शुक्ल व इति जातेऽस्य च्वाविति सूत्रेण शुक्लशब्दाकारस्य ईकारे कृते वेरपृक्तस्येति वकारलोपे कृते शुक्लीशब्दस्य प्रत्ययलक्षणेन च्व्यन्तत्वाद् गतिसंज्ञायां कुगतिप्रादय इति समासे कृते समासेऽनञ्पूर्वे इति सूत्रेण क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशः । **डाजन्तस्योदाहरणम्-** पटपटाकृत्येति, डाचि विवक्षिते द्वे बहुलमिति पटच्छब्दस्य द्वित्वम्, पश्चादव्यक्तानुकरणाद्द्व्य- ज्वरार्द्धादनितौ डाजिति सूत्रेण डाचि कृते डित्त्वाट्टेरिति टिलोपः, नित्यमाम्रेडिते डाचिइति वार्तिकेन तकारपकारयोः स्थाने पकार एकादेशः । **उपसंख्यानमिति**—गतिसंज्ञाया इति शेषः । संख्यायते विधीयते कार्यमनेनेति संख्यानं सूत्रम्, तस्य समीपम् उच्चारितमुपसंख्यानम्, सूत्रस्य समीपे इदमपि पठितव्यमित्यर्थः । पर्यायार्हेणेति भावे ण्वुच्, तदाह-कारिका= क्रियेति । क्रिया- योगे इत्यनुवर्तते । तेन कारिकाशब्दस्य विशेषणाच्छ्लोकवाची कारिकाशब्दो न गृह्यते इति भावः । क्रिया च यत्नरूपेत्याहुः । **कारिकाकृत्येति**—समासे कृते क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशः । **अनुकरणं चानितिपरम्**— इति परो यस्य तदितिपरं, न इति परम् अनितिपरम्, अनितिपरं यदनुकरणं तद्गतिसंज्ञकं भवतीत्यर्थः । **खाट्कृत्येति**—अत्रानिति परमनुकरणं खाट् इत्याकारकं, तस्यानेनगतिसंज्ञायां कुगतिप्रादय इति समासे कृते समासेऽनञ्पूर्वे इति क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशः । **खाडिति कृत्वेति**—सूत्रेऽनितिपरमित्यस्याभावे अत्र गतिसंज्ञायां सत्यामितिखाट्कृत्येत्यनिष्टं रूपं स्यादिति भावः । **आदरानादरयोः सदसती**— आदरार्थे सच्छब्दः अनादरार्थे असच्छब्दश्च गतिसंज्ञां लभते इत्यर्थः । **सत्कृत्येति**—अत्र गति- संज्ञायां समासे च कृते क्त्वो ल्यबादेशः । एवमसत्कृत्येत्रापि बोध्यम् । **भूषणेऽलम्**—भूषणे अलं शब्दः गतिसंज्ञां लभत इत्यर्थः । **अलङ्कृत्येति**—गतिसंज्ञायां कुगतीति समासे क्त्वो ल्यबादेशः । **पर्याप्तमित्यर्थः इति**—अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकमित्यमरात् । **त्रिसूत्रीति**-अनुकरणं चानितिपरम्, आदरानादरयोः सदसती, भूषणेऽलमिति त्रिसूत्रीत्यर्थः । **स्वभावादिति**—शब्दशक्तिस्वभावादित्यर्थः । **कृञ्विषयेति**—कृञ्धातुयोगे एव गतिसंज्ञा भवतीति भावः ।

हिन्दी

वा. क्रियावाचक कारिका शब्द को गतिसंज्ञा होती है ।

१४६२. जिस अनुकरणवाची से पर में 'इति' शब्द न हो उसे क्रियायोग में गतिसंज्ञा होती है ।

१४६३. आदर और अनादर अर्थ में प्रयुज्यमान सत् और असत् शब्दों की गतिसंज्ञा होती है ।

१४६४. भूषण अर्थ में 'अलम्' शब्द की गतिसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४६५. अन्तरपरिग्रहे-१।४।६५।। अन्तर्हत्य । मध्ये हत्वेत्यर्थः । अपरिग्रहे किम्-अन्तर्हत्वा गतः, हतं परिगृह्य गत इत्यर्थः ।

१४६६. कणेमनसी श्रद्धाप्रतीघाते-१।४।६६।। कणेहत्य पिबति । मनोहत्य । कणेशब्दः सप्तमीप्रतिरूपको निपातोऽभिलाषातिशये वर्तते । मनस्शब्दोऽप्यत्रैव ।

१४६७. पुरोऽव्ययम्-१।४।६७।। पुरस्कृत्य ।

१४६८. अस्तं च-१।४।६८।। अस्तमिति मान्तमव्ययं गतिसंज्ञं स्यात् । अस्तंगत्य।

मध्यमनोरमा

अन्तरपरिग्रहे—अन्तर्शब्दो गतिसंज्ञां लभते अपरिग्रहे इत्यर्थः । हत्वा गमनं द्विविधं, हतं त्यक्त्वा गमनं, हतं परिगृह्य गमनञ्च । तत्रापरिग्रह इत्युक्तत्वादाद्यमुदाहरणं, द्वितीयं तु प्रत्युदाहरणम् । **तथैवाह**—अन्तर्हत्येत्यादिना । **कणे मनसी**—श्रद्धायाः प्रतीघातः श्रद्धाप्रतीघातस्तस्मिन् श्रद्धाप्रतीघाते गम्ये कणेशब्दः मनःशब्दश्च गतिसंज्ञां लभते इत्यर्थः । **कणेहत्य पयः पिबतीति**—परावरयोगे चेति सूत्रेण हन्धातोः क्त्वाप्रत्ययः, कणेशब्दस्य गति-संज्ञायां क्त्वाप्रत्ययान्तेन समासे कृते समासेऽनञ्पूर्वे इति क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशः । अत्यन्तमभिलष्य तन्निवृत्तिपर्यन्तं पिबतीत्यर्थः । तथा चाभिलाषानिवृत्तिरेवात्र श्रद्धाप्रतीघात इति बोध्यम् । एवं मनोहत्येत्यत्रापि । **सप्तमीप्रतिरूपक इति**—सप्तम्यन्तसदृश इत्यर्थः । **निपात इति**—तथा चाव्ययसंज्ञायाम् अव्ययादाप्सुप इति सोर्लुगिति भावः । **अत्रैवेति**—अभिलाषातिशये इत्यर्थः । **पुरोऽव्ययम्**—अव्ययसंज्ञकः पुरश्शब्दः गतिसंज्ञो भवतीत्यर्थः । **पुरस्कृत्येति**—नमस्पुरसोर्गत्योरिति विसर्गस्य सः । कृञ्योगे एवेति नियमे मानाभावात् पुरोभूय पुरोगत्येत्यप्युदाहरणं बोध्यम् । **अव्ययं किम्**—पूः पुरौ पुरः कृत्वा गतः । **अस्तञ्च**-पुरोऽव्ययमिति सूत्रादव्ययपदमनुवर्तते इत्याह-मान्तमव्ययमिति । **अव्ययमिति किम्**—काण्डमस्तं कृत्वा गतः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तर्हत्येति—अपरिग्रहे अर्थे अन्तः शब्दस्य अन्तरिति गतिसंज्ञा, अन्तःपूर्वकात् हन्धातोः क्त्वाप्रत्यये कुगतिप्रादय इति समासे समासेऽनञ्पूर्वे इति ल्यपि, अनुदात्तोपदेशेति नलोपे, ह्रस्वस्येति तुक् । अव्ययत्वात् सुपो लुक् । **अस्तंगत्येति**—अस्तम् पूर्वकात् गम्धातोः क्त्वा, अस्तं चेति गतिसंज्ञा, समासे क्त्वो ल्यपि, अनुदात्तेति मलोपे ह्रस्वस्येति तुक्, मोऽनुस्वारः ।

हिन्दी

१४६५. अन्तः शब्द को अपरिग्रह अर्थ में गति संज्ञा होती है ।

१४६६. श्रद्धा के प्रतीघात अर्थ में कणे और मनस् शब्द को गतिसंज्ञा होती है ।

१४६७. अव्ययसंज्ञक पुरस् शब्द को गतिसंज्ञा होती है ।

१४६८. अस्तम् यह मान्त अव्यय गतिसंज्ञक होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४६९. अच्छगत्यर्थवदेषु-१।४।६९॥ अव्ययमित्येव । अच्छगत्य । अच्छोद्य । अभिमुखं गत्वा उक्त्वा चेत्यर्थः । अव्ययं किम्-जलमच्छं गच्छति ।

१४७०. अदोऽनुपदेशे-१।४।७०॥ अदःकृत्य, अदः कृतम् । परं प्रत्युपदेशे प्रत्युदाहरणम् । अदः कृत्वा अदः कुरु ।

१४७१. तिरोऽन्तर्धौ-१।४।७१॥ तिरोभूय ।

१४७२. विभाषा कृञि-१।४।७२॥

१४७३. तिरसोऽन्यतरस्याम्-८।३।४२॥ तिरसः सकारो वा स्यात् कुप्वोः तिरःकृत्य । तिरस्कृत्य । तिरः कृत्वा ।

मध्यमनोरमा

अच्छगत्यर्थवदेषु—गत्यर्थवदेषु योगेषु अव्ययसंज्ञकोऽच्छशब्दः गतिसंज्ञां लभते इत्यर्थः । पुरोऽव्ययमिति सूत्रात् अत्राप्यव्ययमित्यनुवर्तते इत्याह-अव्ययमित्येवेति । **अच्छगत्येति**— गम्लृ गतौ, अस्मात् क्त्वाप्रत्यये कृते अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति इत्यनेन मकारलोपः । अनेनाच्छशब्दस्य गतिसंज्ञायां कुगतिप्रादय इत्यनेन समासे च कृते समासेऽनञ्पूर्वे इत्यनेन क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशः, ह्रस्वस्य पिति कृतीत्यनेन तुक्। **अच्छोद्येति**—वद् व्यक्तायां वाचि, अस्मात् क्त्वाप्रत्यये कृते अच्छशब्दस्य गतिसंज्ञायां समासे च कृते क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यबादेशे वचिस्वपियजादीनां कितीत्यनेन वकारस्य सम्प्रसारणे कृते अच्छ उद्येति जाते आद्गुण इति सूत्रेण पूर्वपरयोः स्थाने गुणादेशः । **जलमच्छं गच्छतीति**—अत्र गतिसंज्ञायां सत्यां प्रागीश्वरान्निपाता इत्यधिकारान्निपातसंज्ञावत्त्वे स्वरादिनिपातमव्ययमित्यव्ययसंज्ञायाम् अव्ययादाप्सुप इति सुप्लुक् स्यादिति भावः । ननु सूत्रे गत्यर्थवदेष्विति संप्तमीनिर्देशात्तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्येति परिभाषोपस्थितौ अव्यवहिते एव सूत्रप्रवृत्त्या जलमच्छमित्यत्रानुस्वारेण व्यवधानात् कथं प्रवृत्तिरिति चेन्मैवम्, उपसर्गाः क्रियायोगे इति सूत्रात् क्रियायोग इत्यनुवृत्त्या तस्मिन्निति परिभाषाया इहानुपस्थानात् । **अदोऽनुपदेशे**—अनुपदेशे अदः गतिसंज्ञां लभत इत्यर्थः । **अदः कृत्येति**—गतिसंज्ञायां समासे क्त्वो ल्यप् । **अदः कृतमिति**—गतिरनन्तर इति पूर्वपदप्रकृतिस्वेणाद्युदात्तत्वम् । **प्रत्युदाहरणमिति**—अदः कृत्वा अदः कुर्वित्यादि इत्यर्थः । **तिरोऽन्तर्द्धौ**—तिरः अन्तर्धानेऽर्थे गतिसंज्ञको भवतीत्यर्थः । **तिरोभूयेति**—क्त्वो ल्यबादेशः । **अन्तर्धौ किम्**—तिरो भूत्वा स्थितः, पार्श्वतो भूत्वेत्यर्थः । **विभाषा कृञि**—तिरोऽन्तर्धावित्यतस्तिर इत्यनुवर्तते, तिरः

मध्यमनोरमापूरणी

तिरस्कृत्येति—तिरस् पूर्वकाद् कृञः क्त्वा, विभाषा कृञीति तिरसो गतिसंज्ञा, समासः, क्त्वो ल्यपि, तुक् । तिरसोऽन्येति सस्य सत्वे रूपम् । पक्षे सस्य रुत्वविसर्गौ, कुप्वोरिति विसर्गस्य विसर्ग एव, तिरः कृत्येति बोध्यम् ।

हिन्दी

१४६९. गत्यर्थ और वद्धातु के योग में अव्ययसंज्ञक अच्छ शब्द को गतिसंज्ञा होती है ।

१४७०. उपदेशभिन्न अर्थ में अदस् की गति संज्ञा होता है ।

१४७१. अन्तर्धि = व्यवहित होने के अर्थ में तिरस् शब्द की गतिसंज्ञा होती है ।

१४७२. कृञ् धातु के परे रहते तिरस् को विकल्प से गतिसंज्ञा होती है ।

१४७३. तिरस् के स् को स् ही होता है पवर्ग व कवर्ग परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४७४. उपाजेऽन्वाजे-१।४।७३।। एतौ कृञि वा गतिसंज्ञौ । उपाजेकृत्य । अन्वाजेकृत्य । उपाजेकृत्वा । अन्वाजे कृत्वा । दुर्बलस्य बलमाधायेत्यर्थः ।

१४७५. साक्षात् प्रभृतीनि च-१।४।७४।। कृञि वा गतिसंज्ञानि स्युः ।

वा. च्व्यर्थ इति वक्तव्यम् ।। साक्षात्कृत्य । साक्षात् कृत्वा । लवणंकृत्य । लवणंकृत्वा । मान्तत्वं निपातनात् ।

१४७६. अनत्याधान उरसिमनसी-१।४।७५।। उरसिकृत्य । उरसिकृत्वा । अभ्युपगम्येत्यर्थः । मनसिकृत्य, मनसिकृत्वा । निश्चित्येत्यर्थः । अत्याधानमुपश्लेषस्तत्र न । उरसि कृत्वा पाणिं शेते ।

मध्यमनोरमा

कृञि विकल्पेन गतिसंज्ञां प्राप्नोतीत्यर्थः । तत्र गतिसंज्ञापक्षे तिरसोऽन्यतरस्यामिति सत्त्वविकल्पाद् रूपद्वयं भवतीत्याह-तिरस्कृत्य, तिरःकृत्येति । **गतिसंज्ञाभावपक्षे आह**—तिरःकृत्वेति । अत्र तिरसोऽन्यतरस्यामिति सत्वविकल्पसतु न भवति, तिरसोऽन्यतरस्यामिति सूत्रे गतिग्रहणानुवृत्तेः । **उपाजेऽन्वाजे-विभाषाकृञीत्यस्माद् विभाषेत्यनुवर्तत इत्याह**—वा गतिसंज्ञाविति । **उपाजेकृत्येति**—गतिसंज्ञायां समासे च कृते क्त्वो ल्यबादेशः, तुक् । गतिसंज्ञाभावपक्षे समासत्वाभावान्न ल्यप्, तदाह-उपाजेकृत्वेति । एवमन्वाजेकृत्येत्यत्रापि बोध्यम्। उपाजेऽन्वाजेशब्दौ एदन्तौ विभक्तिप्रतिरूपकौ निपातौ, दुर्बलस्य बलाधाने वर्तेते । **तदाह**—दुर्बलस्येति । **साक्षात्प्रभृतीनि च**—साक्षात् मिथ्या आम् अद्धा लवणम् उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम् । गतिसंज्ञायोगेन लवणादीनां पञ्चानां मान्तत्वं निपात्यते । प्रादुस् नमस् आविस् इत्यादि, आकृतिगणोऽयम् । **च्व्यर्थ इतीति**—अभूततद्भावे इत्यर्थः । **साक्षात्कृत्येति**—असाक्षाद्भूतं यथा साक्षात् भवति तथा कृत्वेत्यर्थः । च्विप्रत्ययान्तेषु तु पूर्वविप्रतिषेधादूर्यादिच्विडाचश्चेति पूर्वसूत्रेण नित्यैव गतिसंज्ञा । तेन लवणीकृत्येत्यत्र मान्तत्वं न भवति । साक्षात्प्रभृतित्वाद् विकल्पेनात्र गतिसंज्ञा जायते, तत्सन्नियोगेनैव तत्र मान्तत्वनिपातनात् । **अनत्याधान उरसिमनसी**—उरसिमनसीत्येतौ विभक्तिप्रतिरूपकौ निपातौ । एतौ वा गतिसंज्ञौ स्तः । **अनत्याधाने**—उरसिकृत्येति—गतिसंज्ञायां समासे क्त्वो ल्यप् । गतिसंज्ञाभावपक्षे उरसि कृत्वेति । अभ्युपगम्य, स्वीकृत्य ।

मध्यमनोरमापूरणी

च्व्यर्थ इति—अभूततद्भावे गम्ये साक्षात्प्रभृतीनि गतिसंज्ञानि स्युरिति वक्तव्यमित्यर्थः । **साक्षात्कृत्येति**—असाक्षात् साक्षात् कृत्वेत्यर्थः, गतिसंज्ञा, गतिसमासः, क्त्वो ल्यप्, तुक् । **लवणं कृत्येति**—अलवणं लवणं कृत्वेत्यर्थे लवण अम् इत्युपपदात् कृञः क्त्वा, लवण इत्यस्य गतिसंज्ञा, गतिसमासः, निपातनात् मान्तत्वं लवणस्य । क्त्वो ल्यप्, तुक् ।

हिन्दी

१४७४. कृञ् धातु परे उपाजे तथा अन्वाजे को गतिसंज्ञा होती है ।

१४७५. साक्षात् आदि को कृञ् धातु परे गतिसंज्ञा होती है ।

वा. च्विप्रत्यय के अर्थ में गतिसंज्ञा होती है ऐसा कहना चाहिये ।

१४७६. अत्याधानभिन्न अर्थ में कृञ् धातु परे रहते उरसि और मनसि को गति संज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४७७. मध्येपदे निवचने च-१।४।७६।। एते कृञि गतिसंज्ञा वा स्युरनत्याधाने। मध्येकृत्य । मध्ये कृत्वा । पदेकृत्य । पदे कृत्वा । निवचने कृत्य । निवचने कृत्वा । वाचं नियम्येत्यर्थः ।

१४७८. नित्यं हस्ते पाणावुपयमने-१।४।७७।। कृञि । उपयमनं = विवाहः । स्वीकारमात्रमित्यन्ये । हस्तेकृत्य । पाणौकृत्य ।

१४७९. प्राध्वं बन्धने-१।४।७८।। प्राध्वमित्यव्ययम् । प्राध्वंकृत्य । बन्धनेनानुकूलं कृत्वेत्यर्थः । प्रार्थनादिना तु आनुकूल्यकरणे-प्राध्वं कृत्वा ।

१४८०. जीविकोपनिषदावौपम्ये-१।४।७९।। जीविकामिव कृत्वा जीविकाकृत्य। उपनिषदमिव कृत्वा उपनिषत्कृत्य । औपम्ये किम् ? जीविकां कृत्वा । प्रादिग्रहणमगत्यर्थम् । सुपुरुषः ।

मध्यमनोरमा

मध्ये पदे—विभाषा कृञीति अनत्याधान इति चानुवर्तते । एषामनत्याधानरूपार्थविशेषे एदन्तत्वमविशेषेण निपात्यते न तु गतिसंज्ञासंयोगेन । तेन गतित्वाभावेऽप्येदन्तत्वं सिध्यति । अनत्याधाने किम् ? हस्तिनः पदे कृत्वा शिरः शेते । **नित्यं हस्ते**—विभाषा कृञीत्यतः कृञीत्यनुवर्तते, विभाषेति तु नानुवर्तते नित्यग्रहणात्तदाह-कृञीति । सूत्रे हस्ते शब्दस्य एदन्तत्वं, पाणौशब्दस्य औदन्तत्वमपि निपात्यते । हस्तेकृत्य, परिणीयेत्यर्थः, स्वीकृत्येत्यर्थो वा । एवं पाणौकृत्येत्यत्रापि बोध्यम् । **प्राध्वं बन्धने**—विभाषाकृञीत्यतः कृञीत्यनुवर्तते । **प्राध्वमिति**—मान्तमव्ययम् । बन्धनेनानुकूल्ये वर्तते तदाह, बन्धनेनेति । **जीविकोपनिषदौ**—औपम्ये उपमायाम् । **जीविकामिवेति**—जीवनोपायमिवेत्यर्थः । एवं रीत्या कुगतिप्रादय इति सूत्रोपात्तगतिसमाससिद्ध्यर्थं गतिसंज्ञामुक्त्वा तत्सूत्रोपात्तप्रादिसमासान् वक्तुमारभते-प्रादिग्रहणमिति । **अगत्यर्थमिति**—गत्यर्थे तु गतिग्रहणेनैव सिद्धेरिति भावः । **सुपुरुषः इति**—अत्र क्रियायोगाभावादगतित्वम् । अव्यवस्थया समासप्राप्तौ व्यवस्थार्थं वार्तिकानि पठ्यन्ते ।

मध्यमनोरमापूरणी

मध्येकृत्येति—मध्यं कृत्वेति विग्रहे मध्ये पदे निवचने चेति मध्यशब्दस्य गतिसंज्ञा एदन्तत्वं च निपात्यते । गतिसमासः, क्त्वो ल्यप्, तुक् । **नित्यं हस्ते इति**—हस्ते इति पाणौ इति च शब्दौ कृञ्धातौ परे उपयमने=विवाहे गतिसंज्ञौ स्तः इत्यर्थः । हस्तेकृत्य, पाणौकृत्येति-उभयत्र गतिसंज्ञा, एदन्तत्वमौदन्तत्वञ्च निपात्यते । समासे क्त्वो ल्यप् तुक् । **प्राध्वमिति**—बन्धनेऽर्थे द्योत्ये प्राध्वमित्यव्ययं गतिसंज्ञं भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

१४७७. अनुपश्लेषण अर्थ में मध्ये पदे एवं निवचने को गतिसंज्ञा होती है तथा एदन्तत्व निपातन होता है ।

१४७८. उपयमन=विवाह अर्थ में हस्त और पाणि शब्द को गतिसंज्ञा तथा एदन्तत्व व औदन्तत्व निपातन होता है ।

१४७९. बन्धन हेतुक अनुकूलता होने पर कृञ् के परे प्राध्वम् इस अव्यय की संज्ञा होती है ।

१४८०. उपमा अर्थ में कृञ् धातु परे जीविका और उपनिषद् को गतिसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ।। प्रगतः आचार्यः प्राचार्यः ।
वा. अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया । अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे-
१४८१. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते-१।२।४४।। विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनं न तु तस्य पूर्वनिपातः ।
१४८२. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य-१।२।४८।। उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः । अतिमालः ।

मध्यमनोरमा

प्रादय इति—गताद्यर्थे इति । उभयत्रादिशब्दः प्रकारे, तेन दुराचारः पुरुषो दुःपुरुषः इत्यादि सिद्धम् । **प्रगत आचार्य इति**—अनेन गतार्थे वृत्तिम् अस्वपदविग्रहणेन नित्यसमासत्वं च सूचयति । एवं प्रगतः पितामहः प्रतितामह इत्यादिसिद्धम् । **अत्यादय इति**—अत्राप्युभयत्रादि-शब्दः प्रकारे । नेत अनभिगतो मुखमभिमुखः, उद्गतो वेलामुद्वेलः, प्रतिगतोऽक्षं प्रत्यक्ष इत्यादि सिद्धम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

जीविकोपनिषद् इति—कृञि इत्यनुवर्तते । जीविका उपनिषद् इत्येतौ शब्दौ उपमायामर्थे कृञि परे गतिसंज्ञौ भवतः । **जीविका कृत्येति**-जीविकाम् इव कृत्वा इत्यर्थे जीविका इत्यस्य गति-संज्ञा, गतिसमासः, सुपो लुक्, क्त्वो ल्यप्, तुक् । **प्रादिग्रहणमिति**—कुगतिप्रादय इति सूत्रे प्रादिग्रहणं गतिसंज्ञाभावेऽपि समाससिद्ध्यर्थमस्ति । तेन सुपुरुषः-शोभनः पुरुषः इति विग्रहे सु पुरुष सु इत्यस्य समासः । सुपो लुक् । **प्रादयो गताद्यर्थे इति**—सौनागव्याकरणपठितानि पञ्चवार्तिकानि यानि भाष्ये उपनिबद्धानि तान्यत्र पठ्यन्ते । गताद्यर्थे वर्तमानाः प्रादयः प्रथमान्तेन समस्यन्ते इत्यर्थः । अयं नित्यसमासः । **प्राचार्य इति**—प्रगतः आचार्यः इति विग्रहः। प्र इत्यस्यैव विवरणं गत इति अस्ति । तेन गत आचार्यः इत्येव अस्वपदविग्रहो ज्ञेयः, नित्य-समासत्वात् । प्र आचार्य सु इत्यस्य प्रादयो गताद्यर्थे इति समासे सुपो लुकि सवर्णदीर्घः । **अत्यादयः**—अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे समस्यन्ते इत्यर्थः । **एकविभक्ति इति**—एका विभक्तिर्यस्य तदेकविभक्ति । प्रथमानिर्दिष्टमित्यतः समासे इति उपसर्जनमिति चानुवर्तते। समास इति पदं विग्रहवाक्यपरम् । **तेनार्थो भवति**—विग्रहवाक्ये यन्नियतविभक्तिकं तदुप-सर्जनसंज्ञं स्यात्, न तु तस्य पूर्वनिपातकार्ये । **गोस्त्रियोरिति**—ह्रस्वो नपुंसके इत्यतो ह्रस्व इति, प्रातिपदिकस्येति चानुवर्तते । स्त्रीप्रत्ययो गृह्यते स्त्रीशब्देन । उपसर्जनस्येति पदं गोः स्त्रियाश्च विशेषणम् । प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्या इति न्यायात् स्त्री इत्यनेन स्त्रीप्रत्ययान्तो लक्ष्यते । एतदुभयं पुनः प्रातिपदिकस्य विशेषणम् । **इत्थं सूत्रार्थो भवति**—उपर्जनगोशब्दस्य उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययान्तस्य च प्रातिपदिकस्य ह्रस्वो भवति । **अतिमाल इति**—मालामतिक्रान्त इति विग्रहे माला अम् अति इत्यलौकिकविग्रहे अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे इति समासः ।

हिन्दी

वा. प्रादि का गताद्यर्थ में प्रथमान्त के साथ समास होता है ।
वा. क्रान्तादि अर्थ में अति आदि का द्वितीयान्त के साथ समास होता है ।
१८८१. विग्रहवाक्य में जो नियतविभक्ति वाला पद है उसे उपसर्जन संज्ञा होती है, पूर्वनिपातरूप कार्य में नहीं ।
१४८२. उपसर्जन जो गो शब्द और स्त्रीप्रत्ययान्त, तदन्त प्रातिपदिक की ह्रस्वता होती है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ।। अवक्रुष्टः कोकिलया अवकोकिलः ।
वा. पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ।। पर्यग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः ।
वा. निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ।। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः ।
१४८३. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्-३।१।९२।।
१४८४. उपपदमतिङ्-२।२।१९।। उपपदं समर्थेन नित्यं समस्यते । अतिङन्तश्चायं समासः । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ् किम् ? मा भवान् भूत् । माङि लुङीति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् ।

मध्यमनोरमा

एकविभक्ति—प्रथमानिर्दिष्टमिति सूत्रात् समास इत्यनुवर्तते, तदर्थः विग्रहपर इत्याशयेनाह- विग्रहे इति । लौकिके अलौकिके च विग्रहे इत्यर्थः । उपसर्जनसंज्ञायां सत्यामुपसर्जनं पूर्वमिति पूर्वनिपाते प्राप्ते आह, न तु तस्येति । गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । अतीत्यस्योपसर्जनत्वात् पूर्वनिपातः, अतिमाला इति जाते एक- विभक्ति चापूर्वनिपाते इति मालेत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । स्वादिकार्यम् । **अवकोकिलः**—अव कोकिल टा इत्यलौकिके विग्रहे अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे इति समासः । सुपो लुक् । कोकिलेत्यस्य एकविभक्ति इत्युपसर्जनसंज्ञा, गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । **पर्यध्ययनः**—परि अध्ययन ङे इत्यलौकिके विग्रहे पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे इति समासः । यण् । **निष्कौशाम्बिरिति**- निर् कौशाम्बी ङस् इत्यलौकिकविग्रहे निरादयः क्रान्ताद्यर्थे इति समासः । एकविभक्ति चापूर्वनिपाते इति कौशाम्बीत्यस्योपसर्जनसंज्ञा, गोस्त्रियोरिति ह्रस्वे निर् कौशाम्बि इति, रेफस्य विसर्गे इदुदुपधस्येति विसर्गस्य षत्वम् । **तत्रोपपदमिति**—अधिकारसूत्रमिदम् । तत्र इत्यस्यार्थो धातोः इत्यधिकारान्तर्गतसूत्रेषु इति । यथा कर्मण्यण् इत्यादिसूत्रम् । सप्तमीति पदं सप्तम्यन्तवाचकम् । सप्तमीस्थ इत्यत्र स्थग्रहणं सूत्रेषु सप्तमीनिर्देशज्ञानार्थमस्ति । **एवं सूत्रार्थो भवति**—कर्मण्यण् इत्यादि धात्वधिकारान्तर्गतसूत्रे यत् सप्तमीनिर्दिष्टं तदुपपदसंज्ञं भवतीति। **कुम्भकार इति**—कुम्भं करोतीति विग्रहे कुम्भ अम् कृ इत्यत्र कुम्भ इत्यस्य तत्रोपपदमिति उपपदसंज्ञायां कर्मण्यण् इत्यणि वृद्धौ रपरत्वे कर्तृकर्मणोरिति कर्मणः षष्ठ्यां सत्यां कुम्भ अस् कार इति जाते उपपदमतिङिति समासः, प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुक् । **अतिङ् किमिति**-मा भवान् भूत् । अत्र माङि लुङ् इत्यत्र सप्तमी निर्देशात् माङीति उपपदम् । तस्य भूत् इति लुङन्तेन न समासः । अतिङन्तश्चायं समास इत्युक्तत्वात् । **व्याघ्रीति**—व्याजिघ्रतीति विग्रहे वि+आङ्पूर्वात् घ्राधातोः आतश्चोपसर्गे इति कः, आतो लोप इटि चेत्यालोपः ।

हिन्दी

वा. अवादि को क्रुष्टादि अर्थ में तृतीयान्त के साथ समास होता है ।
वा. परि आदि को ग्लानादि अर्थ में चतुर्थ्यन्त के साथ समास होता है ।
वा. निर् आदि का क्रान्त आदि अर्थ में पञ्चम्यन्त के साथ समास होता है ।
१४८३. धात्वधिकारान्तर्गत सूत्रों में सप्तम्यन्तनिर्देश वाले पद को उपपद संज्ञा होती है ।
१४८४. उपपद का समर्थ के साथ नित्यसमास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

परि. गतिकारकोपपदानां कृद्भिः समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ।। व्याघ्री । कच्छपी । अश्वक्रीतीत्यादि ।

१४८५. अमैवाव्ययेन-२।२।२०।। अमैव तुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यते । स्वादुङ्कारम् । स्वादुमि णमुलिति णमुल् । नेह-कालसमयवेलासु तुमुन्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम् । अमैवेति किम् ? अग्रे भोजम् । अग्रे भुक्त्वा। विभाषाग्रे प्रथमपूर्वेष्विति क्त्वाणमुलौ । अमा चान्येन च तुल्यविधानमेतत् ।

१४८६. तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम्-२।२।२१।। उपदंशस्तृतीयायामित्यादीन्युपपदान्यमन्तेनाव्ययेन सह वा समस्यन्ते । मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते-मूलकोपदंशम् । उपदंशस्तृतीयायामिति णमुल् ।

१४८७. क्त्वा च-२।२।२२।। तृतीयाप्रभृतीन्युपपदानि क्त्वान्तेन सह वा समस्यन्ते । उच्चैः कृत्य । उच्चैः कृत्वा ।

मध्यमनोरमापूरणी

आङो घ्र-शब्देन गतिसमासः । पुनः वि इत्यस्य आघ्र इत्यनेन सह गतिकारकोपपदानामिति परिभाषासहकारेण सुबुत्पत्तेः प्रागेव गतिसमासो भवति । जातेरस्त्रीविषयादिति व्याघ्रशब्दात् ङीष् । सुबुत्पत्तौ सत्यां समासे सति जातित्वाभावात् पूर्वं टाप् स्यात् । तेन व्याघ्री इति नोपपद्येत । **कच्छपीति**—कच्छेन कच्छे वा पिबतीति विग्रहे कच्छ टा पा इत्यस्मात् सुपि स्थः इति क-प्रत्ययः, आतो लोपः, गतिकारकोपपदानामिति सहकारेण सुबुत्पत्तेः प्राक् प-शब्देन समासे सुपो लुकि कच्छप इति, जातित्वान्ङीष् । **कारकपूर्वस्योदाहरणम्**— अश्वक्रीतीति । अश्वेन क्रीतेति विग्रहे अश्व टा क्रीत इत्यस्य कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासः। क्रीतात्करणपूर्वादिति ङीष् । सुबत्पत्तेः अनन्तरं समासे सति सुबुत्पत्तेः प्राक् टापि क्रीता इत्यस्य अदन्तत्वाभावात् ङीष् न स्यात् । **अमैवेति**—नियमार्थं सूत्रम् । **स्वादुङ्कारम् इति**—स्वादुम् उपपदात् कृधातोर्णमुल्, वृद्धिः, रपरत्वम्, स्वादुम् कारम् इत्यनयोः अमैवाव्ययेनेति समासः। पूर्वमस्यानुस्वारपरसवर्णौ । कृन्मेजन्तः इति कारम् इत्यस्याव्ययत्वम् । **तृतीयाप्रभृतीनि**—अमैवाव्ययेनेति अनुवर्तते । तृतीयापदेन उपदंशस्तृतीयायामित्यारभ्य अन्वच्यानुलोम्ये इति सूत्रं यावदुपात्तानि पदानि गृह्यन्ते। अतः मूले लिखितम् उपदंशस्तृतीयायामित्यादि । **मूलकोपदंशम् इति**—मूलकेन उपदंशं भुङ्क्ते इत्यर्थे उपपूर्वात् दंश् धातोः णमुल् । मूलक टा उपदंशम् इत्यस्य विकल्पेन समासः । सुपो लुक् । आद्गुणः । अव्ययत्वात्सुपो लुक् । **उच्चैःकृत्य**—उच्चैः कृत्वा इत्यनयोः क्त्वा चेति समासे समासेऽनञ्पूर्वेति क्त्वो ल्यप् । तुक् । पक्षे समासाभावात् क्त्वान्तमेव । **उच्चैः कृत्वा इति** ।

हिन्दी

परि. गतिसंज्ञक कारक एवं उपपद का कृदन्तों के साथ सुबुत्पत्ति से पूर्व ही समास होता है।

१४८५. अव्यय के साथ यदि अतिङन्त का समास हो तो अमन्त अव्यय के साथ ही हो ।

१४८६. उपदंशस्तृतीयायाम् से लेकर अन्वच्यानुलोम्ये तक विवक्षित उपपदों का अमन्त अव्यय के साथ समास होता है विकल्प से ।

१४८७. तृतीया प्रभृति उपपदों का क्त्वाप्रत्ययान्त के साथ समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४८८. अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ-३।४।५९।।
१४८९. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः-५।४।८६।। संख्याव्ययादेः अङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासाऽन्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य-द्व्यङ्गुलम्। निरङ्गुलम्।
१४९०. अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः-५।४।८७।। एभ्यो रात्रेरच्। चात् संख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्।
१४९१. रात्राह्नाहाः पुंसि-२।४।२९।। एते पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रः। सर्वरात्रः। पूर्वरात्रः। संख्यातरात्रः।
वा. संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्।। द्विरात्रम्। अतिरात्रः।
१४९२. राजाहः सखिभ्यष्टच्-५।४।९१।। एतदन्तात् तत्पुरुषात् टच्। परमराजः। कृष्णसखः।

मध्यमनोरमापूरणी

तत्पुरुषस्येति—अचप्रत्यन्व व पूर्वात् इत्यतः 'अच्' इत्यनुवर्तते। समासान्त इत्यस्याधिकारः। अङ्गुलेरिति तत्पुरुषविशेषणम्। **तदाह**—संख्याव्ययादेरित्यादि। **द्व्यङ्गुलम्**—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्येति विग्रहे द्वि औ अङ्गुलि औ इत्यलौकिकविग्रहे तद्धितार्थविषये तद्धितार्थेति समासः, प्रमाणे द्वयसजिति द्वयसच्, प्रमाणे लः इति लुक्। यण्, द्व्यङ्गुलि इति, तत्पुरुषस्याङ्गुलेरिति अच्, भत्वाद् यस्येति चेति इलोपः। सोरमिपूर्वरूपम्। **निरङ्गुलमिति**—निर्गतमङ्गुलिभ्यः इति विग्रहे निर् अङ्गुलि भ्यस् इत्यनयोः निरादयः क्रान्ताद्यर्थे इति समासः। अच्, भत्वाद् इलोपः, सोरम्। **अहस्सर्वैकेति**—अहन् सर्व एकदेश संख्यात पुण्य इत्येतेभ्यः परस्य रात्रिशब्दस्य अच् समासान्तो भवतीत्यर्थः। चात् संख्याव्ययादेरपि अच्। **अहोरात्रः**-अहश्च रात्रिश्चेति विग्रहे अहन् सु रात्रि सु इत्यनयोः चार्थे द्वन्द्वः इति समासः। सुपो लुक्। अहन् रात्रि इति, अहस्सर्वैकेति अच्, इलोपः, अहन् इति नस्य रुः, हशि चेति उत्वमाद्गुणः, अहरोत्र इति, जातिरप्राणिनामिति एकवद्भावः। रात्राह्नाहाः पुंसीति पुंस्त्वम्, सोरुत्वविसर्गौ। **सर्वरात्रः इति**—सर्वा रात्रिः इति विग्रहे पूर्वकालैकसर्वजरत् इत्यादिना समासः, सुपो लुक्। 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुम्वद्भावः' इति सर्वा इत्यस्य पुंवद्भावः। अच्, इकारलोपः। **पूर्वरात्रः**-पूर्व रात्रेरिति विग्रहे पूर्व अम् रात्रि ङस् इत्यलौकिकविग्रहे पूर्वापराधरोत्तरम् इत्यादिना समासः। अहस्सर्वैकदेशेत्यच्, इलोपः। रात्राह्नाहाः पुंसीति पुंस्त्वम्। संख्याता रात्रिरिति विग्रहे कर्मधारयः। पुम्वत्कर्मधारयेति पुंवद्भावः। अच्, इलोपः। संख्यातरात्रमिति। **द्विरात्रमिति**-द्वयोः रात्र्योः समाहारः इति विग्रहे तद्धितार्थोत्तरपदेति समासः।

हिन्दी

१४८८. अव्यय पूर्वपद रहने पर कृञ् धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं अयथार्थाभिप्रेताख्यान में।

१४८९. संख्या और अव्यय आदि में रहने पर अङ्गुल्यन्त तत्पुरुष से समासान्त अच् प्रत्यय होता है।

१४९०. अहनादि एवं संरव्याव्ययादि पूर्वपद रहने पर रात्रि से 'अच्' होता है।

१४९१. कृतसमासान्त रात्र अह्न और अह पुँलिङ्ग में होते हैं।

वा. संख्या पूर्वक रात्र शब्द नपुंसक होता है।

१४९२. राजन् अहन् व सखि शब्दान्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१४९३. अह्नष्टखोरेव-६।४।१४५।। टिलोपः । परमाहः ।

१४९४. अह्नोऽह्न एतेभ्यः-५।४।८८।। सर्वादिभ्योऽहन्शब्दस्याह्नादेशः समासान्ते परे ।

१४९५. अह्नोऽदन्तात्-८।४।७।। अदन्तपूर्वपदस्थान्निमित्तादह्नो नस्य णः । सर्वाह्णः ।

१४९६. न संख्यादेः समाहारे-५।४।८९।। अह्नोऽह्नादेशो न । द्व्यहः ।

१४९७. उत्तमैकाभ्याञ्च-५।४।९०।। उत्तमशब्दोऽन्त्यार्थः । पुण्यशब्दमाह ।

मध्यमनोरमापूरणी

अच्, इलोपः । रात्राह्नाहाः पुंसीति प्रबाध्य संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबमिति नपुंसकत्वम्, अतिक्रान्तो रात्रिम् इति विग्रहे अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे इति समासः । अहस्सर्वैकदेशेति अच्, इलोपः, रात्राह्नाहाः इति पुंस्त्वम् । स्वादिकार्येऽतिरात्रः इति । **राजाहःसखि इति**—तत्पुरुषस्याङ्गुलेः इत्यतः तत्पुरुषस्येति पदमनुवर्तते, तच्च पञ्चम्यन्ततया विपरिणमते, राजाहः सखिभ्यः इति तस्य विशेषणम् । तदन्तविधिः । **तदाह**—एतदन्तादिति । **परमराजः इति**—परमश्चासौ राजा इति विग्रहे परम सु राजन् सु इत्यनयोः कर्मधारयसमासः, सुपो लुक् । परमराजन् इति समासान्तात् राजाहस्सखिभ्यष्टच् इति टच्, अनुबन्धलोपः, भत्वाट्टेरनो लोपः । कृष्णश्चासौ सखा इति विग्रहे समासः, टच्, भत्वात् सखिशब्दान्त्यस्य इकारस्य लोपः । कृष्णसख इति । **अह्नष्टखोरिति**-टेः इत्यनुवर्तते, अल्लोपोऽनः इत्यतः लोप इति च । अहन् शब्दस्य टेः लोपः स्यात् टखोः परयोः । परमाहः-परमश्च पदहश्चेति विशेषणं विशेष्येणेति कर्मधारयः। राजाहस्सखिभ्यष्टच्। अह्नष्टखोरेवेति टेरनो लोपः । रात्राह्नाहाः पुंसीति पुंस्त्वम् । **अह्नोऽह्न एतेभ्यः**—एतच्छब्देन अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्य इति गृह्यते अहः शब्दं परित्यज्य । सर्वादिभ्यः परस्य अहन् इत्यस्याह्नादेश इत्यर्थः । **सर्वाह्णः इति**—सर्वमहः इति विग्रहे सर्व सु अहन् सु इत्यनयोः पूर्वकालैकदेशेति समासः, राजाहः इति टच्, अह्नोऽह्न एतेभ्य इति अह्नादेशः, रात्राह्नाहाः पुंसीति पुंस्त्वम्, सवर्णदीर्घः । सर्वाह्ण इति, अह्नोऽदन्तादिति णत्वम् । **न संख्यादेरिति**—अह्नोऽह्न इत्यनुवर्तते। सख्यादेः अह्नः अह्नादेशो न समाहारे इत्यर्थः । **द्व्यहः इति**—द्वयोः अह्नोः समाहारः, द्वि ओस् अहन् ओस् इत्यनयोः तद्धितार्थेति समासः । प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुक् । यण्, । द्व्यहन् इति, राजाहस्सखिभ्यष्टच् । अह्नोऽह्न इति अह्नादेशे प्राप्ते न संख्यादेः समाहारे इति निषेधः । नस्तद्धिते इति टेर्लोपः । **उत्तमैकाभ्याञ्चेति**—अह्नोऽह्न इत्यनुवर्तते । न संख्यादेरित्यतो नेति च । **अत आह**—उत्तमैकाभ्यां परस्य अह्नः अह्नादेशो न समासान्ते परे । **उत्तमशब्दोऽन्त्यार्थ इति**—अहस्सर्वैकदेशेति सूत्रेऽन्ते पठितः पुण्यशब्दद्योतकः उत्तमशब्दः इत्याशयः । **पुण्याहम्**—पुण्यं च तदहश्चेति विग्रहे विशेषणसमासः । सवर्णदीर्घः । पुण्याहन् इति, टच्, टिलोपः, रात्राह्नाहाः इति प्रबाध्य पुण्यसुदिनाभ्यामिति नपुंसकत्वम् । उत्तमैकाभ्यामिति अह्नादेशो न ।

हिन्दी

१४९३. अहन् की टि का लोप होता है ट व ख प्रत्यय परे रहते ही ।

१४९४. सर्व एकदेश इत्यादि से परे अहन् को अह्न आदेश होता है, समासान्त प्रत्यय परे रहते।

१४९५. अदन्त पूर्वपदस्थ निमित्त से परे अह्न के न को ण होता है ।

१४९६. संख्यापूर्वक अहन् को अह्न आदेश नहीं हो समाहार अर्थ में ।

१४९७. उत्तम एवं एक शब्द से परे अहन् को अह्नादेश नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्टा । पुण्याहम् । सुदिनाहम् । एकाहः ।

१४९८. अग्राख्यायामुरसः-५।४।९३॥ टच् । अश्वानामुर इव अश्वोरसम् । मुख्योऽश्व इत्यर्थः ।

१४९९. ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः-५।४।९५॥ ग्रामतक्षः । कौटतक्षः ।

१५००. अतेः शुनः-५।४।९६॥ अतिश्वो वराहः ।

१५०१. उपमानादप्राणिषु-५।४।९७॥ अप्राणिविषयोपमानवाचिनः शुनष्टच् । आकर्षः श्वेव आकर्षश्वः ।

१५०२. उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः-५।४।९८॥ चादुपमानात् । उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सुदिनञ्च तदहः इति **सुदिनाहम्** । **एकाहः**—एकमहरिति विग्रहः, एक सु अहन् सु इत्यलौकिक-विग्रहे पूर्वकालैकसर्वेत्यादिना समासः । टच्, नस्तद्धिते, उत्तमैकाभ्यामिति अह्नादेशनिषेधः । **अग्राख्यायामुरसः**—अग्राख्यायामिति पञ्चम्यर्थे सप्तमी । अग्रं प्रधानं, तस्य आख्या कथनम्। प्रधानवाची यः उरस्‌शब्दस्तदन्ततत्पुरुषात् टच् इत्यर्थः । **अश्वोरसम्**—अश्वानाम् उरः इवेति लौकिकविग्रहः । अश्व आम् उरस् सु इत्यलौकिकविग्रहे षष्ठीसमासः, टच्, गुणः, परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति नपुंसकत्वम् । **ग्रामकौटाभ्यामिति**—ग्रामकौटाभ्यां परो यः तक्षन्‌शब्दः तदन्तात्तत्पुरुषात् टच् इत्यर्थः । **ग्रामतक्षः**—ग्रामस्य तक्षा इति विग्रहे षष्ठीसमासः । ग्राम तक्षन् इति जाते टच्, टेर्लोपः । कौटतक्षः=कुट्यां भवः कौटः, स्वतन्त्रः । कौटश्चासौ तक्षा चेति विग्रहे विशेषणं विशेष्येणेति समासः । ग्रामकौटाभ्यामिति टच्, भत्वाट्टेर्लोपः । **अतेरिति**-अति इत्यस्मात् परः यः श्वन् शब्दः तदन्तात्तत्पुरुषाट्टज् इत्यर्थः । **अतिश्वः**—श्वानमतिक्रान्त इति विग्रहे अतिश्वन् अम् इत्यलौकिकविग्रहे अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे इति समासः, टच्, टेर्लोपः । **उपमानादिति**—टज् इत्यनुवर्तते । अप्राणिषु विद्यमानात् उपमान-वाचकात् श्वन्-शब्दात् टच् इत्यर्थः । **आकर्षश्वः**—आकर्षः श्वा इवेति विग्रहे उपमितं व्याघ्रादिभिः इति समासः । टच्, टेरनो लोपः । आकृष्यते अनेन कुसूलादिगतं धान्यमिति आकर्षः पञ्चाङ्गुलो दारुविशेषः । **उत्तरमृगेति**—चकारात् उपमानात् इत्यनुवर्तते । उत्तर मृग पूर्व इत्येतेभ्यः परः उपमानाच्च परो यः सक्थिशब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् स्यादित्यर्थः । **उत्तरसक्थम्**—उत्तरं सक्थि इति विग्रहे समासः । टच्, भत्वात् इकारस्य लोपः । **पूर्वसक्थः**-पूर्वं सक्थि इति विग्रहे पूर्वकालैकसर्वजरत् इत्यादिना समासः, टच्, इकारलोपः । फलकमिव

हिन्दी

वा. पुण्य और सुदिन से परे अहन् को नपुंसक लिंग होता है ।

१४९८. प्रधानवाची उरस् शब्द जिसके अन्त में हो, तदन्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है।

१४९९. ग्राम एवं कौट से परे तक्षन् शब्दान्त तत्पुरुष से टच् होता है ।

१५००. अति शब्द से परे श्वन् शब्दान्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है ।

१५०१. अप्राणी अर्थ में विद्यमान उपमानवाची श्वन् शब्द से 'टच्' होता है ।

१५०२. उत्तर मृग पूर्व एवं उपमानवाची से परे जो सक्थि शब्द तदन्त तत्पुरुष से टच् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५०३. नावो द्विगोः-५।४।९९।। द्विनावम् । त्रिनावम् ।

१५०४. अर्धाच्च-५।४।१००।। अर्धनावम् ।

१५०५. खार्याः प्राचाम्-५।४।१०१।। द्विगोरर्धाच्च खार्याष्टज् वा । द्विखारम्, द्विखारि । अर्धखारम्, अर्धखारि ।

१५०६. द्वित्रिभ्यामञ्जलेः-५।४।१०२।। द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि ।

१५०७. ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्-५।४।१०४।। ब्रह्मान्तात्तत्पुरुषाट्टच् । सुराष्ट्रे ब्रह्मा सुराष्ट्रब्रह्मः ।

१५०८. कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्-५।४।१०५।। कुब्रह्मः, कुब्रह्मा । महाब्रह्मः, महाब्रह्मा।

मध्यमनोरमापूरणी

मयूरव्यंसकादिभ्यश्चेति समासः । टच् । इलोपः । फलकसक्थम् । **नावो द्विगोरिति**—गोरतद्धितलुकि इत्यतः अतद्धितलुकीत्यनुवर्तते मण्डूकप्लुत्या । नौशब्दान्ताद् द्विगोष्टच् प्रत्ययो भवत्यतद्धितलुकि इत्यर्थः । **द्विनावम्**—द्वयोः नावोः समाहारः इति विग्रहे द्वि ओस् नौ ओस् इत्यलौकिकविग्रहे तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चेति समासः । प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुक् । नावो द्विगोरिति टच्, आवादेशः, स नपुंसकमिति नपुंसकत्वम् । तिसृणां नावां समाहारः इति विग्रहे **त्रिनावम्** । **अर्धाच्चेति**—अर्धशब्दात् परो यो नौशब्दः तदन्तात् तत्पुरुषात् टच् इत्यर्थः । **अर्धनावम् इति**-नावः अर्धमिति विग्रहे नौ ङस् अर्ध सु इत्यनयोः अर्धं नपुंसकमिति समासः, अर्धेरुपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोगः । अर्धाच्चेति टच्, आवादेशः, नपुंसकत्वं लोकव्यवहारात् । **खार्याः प्राचाम्**- द्विगोरर्धाच्च इति द्वयमनुवर्तते । **द्विखारम्**—द्वयोः खार्योः समाहारः इति विग्रहे तद्धितार्थेति समासः, खार्या इति टच्, भत्वाद् ईकारलोपः । पक्षे ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः, सोर्लुक् । **अर्धखारम्**-अर्धं खार्याः इति विग्रहः, अर्ध सु खारी ङस् इत्यनयोः षष्ठीसमासः, खार्या इति टच्, टिलोपः । लोकात् नपुंसकत्वम् । टजभावे ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः । **द्वित्रिभ्यामिति**—टज्वा इत्यर्थः । **द्व्यञ्जलम् इति**—द्वयोः अञ्जल्योः समाहारः इति विग्रहे तद्धितार्थेति समासः। टच्, इलोपः, स नपुंसकम् । सोरम् । पक्षे नपुंसकत्वात् सोर्लुक् । **ब्रह्मणो जानपदेति**—जनपदे भवः जानपदः । तस्य आख्या समासेन भवति । ब्रह्मन्शब्दान्तात् तत्पुरुषात् टच्, समासेन ब्रह्मणो जानपदत्वमाख्यायते चेदित्यर्थः । **सुराष्ट्रब्रह्मः**—सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा = विप्रः । सप्तमीयोगविभागात् समासः, ब्रह्मणो जानपदेति टच्, भसंज्ञा, नस्तद्धिते इति अनो लोपः । परवल्लिङ्गमिति पुंस्त्वम् । **कुमहद्भ्याम्**—ब्रह्मण इत्यत ब्रह्मण इत्यनुवर्तते। कुमहद्भ्यां परो यो ब्रह्मन् शब्दस्तदन्तात्तत्पुरुषात् टज् वा इत्यर्थः । **कुब्रह्मः**—कुत्सितो ब्रह्मेति विग्रहे कुगतिप्रादय इति समासः । टच्, टेर्लोपः । पक्षे कुब्रह्मा । **महाब्रह्मः इति**—महान् चासौ ब्रह्मेति विग्रहे सन्महत्परमेत्यादिना समासः । आन्महत इत्यात्वे सवर्णदीर्घः । टच्, टिलोपः।

हिन्दी

१५०३. नौ शब्दान्त द्विगु से टच् प्रत्यय होता है ।

१५०४. अर्ध से परे नौशब्दान्त तत्पुरुष से 'टच्,' प्रत्यय होता है ।

१५०५. खारीशब्दान्त द्विगु एवं अर्धपूर्वक खारी से टच् प्रत्यय होता है ।

१५०६. द्वि त्रिपूर्वक अञ्जल्यन्त तत्पुरुष से टच् होता है ।

१५०७. ब्रह्मान्त तत्पुरुष से टच् प्रत्यय होता है, समास से जनपदत्व की प्रतीति होने पर।

१५०८. कु और महद्पूर्वक ब्रह्मान्त तत्पुरुष से टच् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५०९. द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः-६।३।४७।। आत् स्यात् । द्वादश । अष्टादश । अबहुव्रीह्यशीत्योः किम् ? द्वित्राः । द्व्यशीतिः ।

वा. प्राक्शताद् वक्तव्यम् । नेह-द्विशतम् ।

१५१०. त्रेस्त्रयः-६।३।४८।। त्रिशब्दस्य त्रयसादेशः स्यात् पूर्वविषये । त्रयोदश । त्रयोविंशतिः ।

१५११. विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्-६।३।४९।। द्व्यष्टनस्त्रेश्च प्रागुक्तं वा चत्वारिंशदादौ परे । द्विचत्वारिंशत्- द्वाचत्वारिंशत् । अष्टचत्वारिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशत्, त्रयश्चत्वरिंशत् । एवं पञ्चाशत् । षष्ठि-सप्ततिनवतिषु ।

१५१२. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः-२।४।२६।। कुक्कुटमयूर्यौ इमे । मयूरीकुक्कुटौ इमौ । अर्धपिप्पली ।

मध्यमनोरमापूरणी

द्व्यष्टन इति—द्विशब्दस्य अष्टन् शब्दस्य च आत् भवति संख्यावाचके उत्तरपदे परे न तु बहुव्रीहौ अशीतौ वा परे । द्वादश—द्वौ च दश चेति विग्रहे चार्थे द्वन्द्व इति समासः । द्वि दशन् इति, द्व्यष्टनः संख्यायामिति द्विशब्देकारस्यात्वम् । जस् विभक्तौ षट्संज्ञकत्वात् जसो लुकि नलोपे च द्वादशेति रुपम् । अष्टादश—अष्टौ च दश चेति समासः । अष्टनो नस्यात्वे सवर्णदीर्घः । शेषं पूर्ववत् । द्वित्रा इति—द्वौ वा त्रयो वेति विग्रहे संख्याव्ययासन्नादूराधिकसंख्येये इति बहुव्रीहिसमासः, तस्मान्नात्वम्, बहुव्रीहिभिन्ने आत्वविधानात् । द्व्यशीतिः—द्वौ च अशीतिश्चेति द्वन्द्वः । यण् । अशीत्युत्तरपदत्वान्नात्वम् । द्विशतम् इति—द्वौ च शतं चेति समाहारद्वन्द्वे प्राक्शतादिति नियमनाद् द्विशब्दस्य न आत्वम् । त्रयोदश-त्रयश्च दश चेति द्वन्द्व-समासः, सुपो लुक्, त्रिदशन् इति, त्रेस्त्रयः इति त्रयसादेशे, सस्य रुत्वोत्वे गुणः । षड्भ्यो लुक् इति जसो लुक्, नलोपः । त्रयोविंशतिः-त्रयश्च विंशतिश्चेति विग्रहः, त्रयसादेशः । द्वाचत्वारिंशत्—द्वौ च चत्वारिंशच्चेति विग्रहः । विभाषा चत्वारिंशदित्यात्वविकल्पः । परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः- परस्य इव लिङ्गमित्यर्थः । द्वन्द्वशब्दोऽत्र इतरेतरयोगस्यैव वाचकः, समाहारद्वन्द्वे स नपुंसकमिति नपुंसकविधानात् । कुक्कुटमयूर्यौ—कुक्कुटश्च मयूरी चेति द्वन्द्वः। मयूरीशब्दस्यैव लिङ्गं भवति । मयूरीकुक्कुटौ—अत्र कुक्कुटस्य परत्वात् तल्लिङ्गं भवति । अर्धपिप्पली—अर्धं पिप्पल्याः इति विग्रहे अर्धं नपुंसकमिति समासः । अयमेकदेशिसमासः पूर्व-पदार्थप्रधानः, तस्मात् पूर्वपदस्य लिङ्गे प्राप्ते परवल्लिङ्गं भवति ।

हिन्दी

१५०९. द्वि और अष्टन् शब्द को संख्यावाची उत्तरपद परे रहते आत्व होता है । बहुव्रीहि समास में और अशीति शब्द परे नहीं ।

१५१०. त्रि को त्रयस् होता है अशीतिभिन्न उत्तरपद परे व बहुव्रीहिभिन्न समास में ।

१५११. चत्वारिंशत्प्रभृति उत्तरपद रहने पर द्वि अष्टन् व त्रि को आत्व तथा त्रि को त्रयस् आदेश विकल्प से होते हैं ।

१५१२. द्वन्द्व और तत्पुरुष में पर शब्द के समान लिङ्ग होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु न ।। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः । प्राप्तोजीविकां प्राप्त जीविकः । आपन्नजीविकः । अलंकुमारिः । अत एव ज्ञापकात् समासः । निष्कौशाम्बिः ।

१५१३. पूर्ववदश्ववडवौ-२।४।२७।। द्वित्वमतन्त्रम् । अश्ववडवौ । अश्ववडवान् ।

१५१४. अपथं नपुंसकम्-२।४।३०।। तत्पुरुष इत्येव । अन्यत्र तु अपथो देशः। कृतसमासान्तग्रहणान्नेह-अपन्थाः ।।

वा. अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः । पञ्चमूली ।

वा. आबन्तो वा ।। पञ्चखट्वम्, पञ्चखट्वी ।

वा. पात्राद्यन्तस्य न ।। पञ्चपात्रम् । त्रिभुवनम् । चतुर्युगम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

द्विगुप्राप्तेति—द्विगु प्राप्त आपन्न अलम्पूर्व गतिसमास इत्येतेषु परवल्लिङ्गस्य प्रतिषेधो भवतीत्यर्थः । **पञ्चकपालः**—पञ्चन् सुप् कपाल सुप् इत्यनयोः तद्धितार्थेति समासः । कपाल-शब्दस्य परस्य नपुंसकता प्राप्ता वार्तिकेन निषिध्यते । विशेष्यस्यैव लिङ्गं भवति । **प्राप्तजीविकः**- द्वितीया श्रितातीतेति समासः । जीविकाशब्दस्य लिङ्गं प्राप्तं द्विगु प्राप्तापन्नेति निषिध्यते । **अलंकुमारिः**—अलं कुमार्यै इति विग्रहे अलम्पूर्वेति निषेधाज् ज्ञापकात् एव चतुर्थी-समासः । नात्र कुमारीशब्दस्य लिङ्गं भवति । एकविभक्ति इति उपसर्जनत्वे गोस्त्रियोरिति कुमारीत्यस्य ह्रस्वः । **निष्कौशाम्बिः**—कौशाम्बीशब्दस्य लिङ्गं समासस्य न भवति, गतिसमासस्य निषेधात् । **पूर्ववदिति**—अश्ववडवा-शब्दयोः विभाषया एकवद्भाव उक्तः, तत्र एकवद्भावादन्यत्र परवल्लिङ्गतायां प्राप्तायामिदम् आरभ्यते । अश्ववडवयोः परवल्लिङ्गं बाधित्वा अनेन पूर्ववल्लिङ्गं भवति । अश्वश्च वडवा चेति द्वन्द्वः । पूर्वस्य लिङ्गे सति अश्ववडवौ इति । अर्थातिदेशोऽयम्, न निपातनम् । तत्र द्विवचनमतन्त्रम् अस्ति-अविवक्षितमस्तीत्यर्थः। वचनान्तरेऽपि पूर्ववल्लिङ्गताविधानात् । यथा अश्ववडवान्, अश्ववडवैरिति । **अपथमिति**—न पन्थाः इति विग्रहे नञ्समासे नलोपे ऋक्पूरब्धूपथाम् इति अ-प्रत्यये भत्वाट्टेर्लोपे अपथ इति, अपथं नपुंसकमिति तत्पुरुषे नपुंसकता । परवल्लिङ्गमित्यस्यापवादः । **अन्यत्र**—बहुव्रीहौ अपथः इति । अविद्यमानः पन्थाः यस्मिन्निति विग्रहः । **अपन्थाः**—पथो विभाषा इति समासान्तविकल्पे नास्य प्रवृत्तिः, अपथमिति समासान्तनिर्देशात् । **अकारान्तोत्तरेति**—स नपुंसकमित्यस्यापवादः । **पञ्चमूली**—पञ्चानां मूलानां समाहारः, तद्धितार्थेति समासः । पञ्चमूल इति, अकारान्तोत्तरपद इति स्त्रीत्वात् द्विगोरिति ङीप्, भत्वादकारलोपः । **आबन्तो वेति**—आबन्तो द्विगुः स्त्रियां विकल्पेनेष्ट इत्यर्थः । **पञ्चखट्वम्**—पञ्चानां खट्वानां समाहार इति समाहारद्विगुः, नपुंसकत्वाद् ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वे सोरम् । आबन्तो वेति वैकल्पिकस्त्रीत्वे

हिन्दी

वा. द्विगु समास प्राप्त आपन्न अलम्पूर्व व गति समास, इन सब में परवत् लिङ्ग नहीं होता है।

१५१३. अश्व और वडवा शब्द के द्वन्द्वसमास में पूर्ववत् लिङ्ग होता है ।

१५१४. अपथ शब्द तत्पुरुष समास में नपुंसक होता है ।

वा. अकारान्त उत्तरपद वाला द्विगु स्त्रीलिङ्ग होता है ।

वा. आबन्तोत्तरपदद्विगु विकल्प से स्त्रीलिङ्ग में होता है ।

वा. पात्रादिगण पठित शब्द अन्त में हो तो स्त्रीलिङ्ग नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५१५. छाया बाहुल्ये-२।४।२२।। छायान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् पूर्वपदार्थबाहुल्ये । इक्षूणां छाया इक्षुच्छायम् ।

१५१६. सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा-२।४।२३।। राजपर्यायपूर्वोऽमनुष्यपूर्वश्च सभान्तस्तत्पुरुषो नपुंसकं स्यात् । इनसभम् । ईश्वरसभम् । अमनुष्यशब्दो रूढ्या रक्षःपिशाचादीनाह । रक्षःसभम्, पिशाचसभम् ।

१५१७. विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्-२।४।२५।। एतदन्तः तत्पुरुषः क्लीबं वा । ब्राह्मणसेनम्, ब्राह्मणसेना इत्यादि ।

१५१८. अशाला च-२।४।२४।। सङ्घातार्था या सभा तदन्तस्तत्पुरुषः क्लीबं स्यात् । स्त्रीसभम् । स्त्रीसंघात इत्यर्थः । अशाला किम् ? धर्मसभा धर्मशालेत्यर्थः।

१५१९. अर्धर्चाः पुंसि च-२।४।३१।। अर्धर्चादयः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः। अर्धर्चम् । एवं ध्वजतीर्थशरीरमण्डपयूपदेहाङ्कुशकलशसूत्रपात्रादयः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उपसर्जनह्रस्वे कृते द्विगोरिति ङीप् । **पञ्चपात्रम्**-पञ्चानां पात्राणां समाहारः इति द्विगुः। पात्राद्यन्तस्य नेति स्त्रीत्वनिषेधात् स नपुंसकमिति नपुंसकत्वम् । **छाया बाहुल्ये**— तत्पुरुषविशेषणं छाया इति अस्ति, तस्मात् तदन्तविधिः । बाहुल्यं पूर्वपदार्थधर्मः । **अत उक्तम्**-छायान्त इत्यादि । **इक्षुच्छायम्**—इक्षूणां छाया इति विग्रहः, षष्ठी समासः, सुपो लुक्, छाया-बाहुल्ये इति नपुंसकसंज्ञा, इक्षुछाया इत्यस्य नपुंसकह्रस्वता, सोरम् । छे चेति तुक्, श्चुत्वम्। **सभा राजेति**—राजा च अमनुष्यश्चेति राजाऽमनुष्यौ, तौ पूर्वौ यस्याः सा राजाऽमनुष्यपूर्वा इति व्युत्पत्तिः । राजशब्देन राजपर्यायः गृह्यते । अत उक्तं राजपर्यायेत्यादि । **इनसभम्**—इनस्य सभेति विग्रहे षष्ठीतत्पुरुषः, इनसभा इत्यस्य सभाराजेति नपुंसकत्वम्, ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः । ईश्वरस्य सभा ईश्वरसभम् इति पूर्ववदेव । इनेश्वरशब्दौ राजपर्यायौ स्तः । रक्षसां सभा रक्षःसभम्, पिशाचानां सभा पिशाचसभम् इत्युभयत्र अमनुष्यपूर्वकत्वात् नपुंसकत्वं, ह्रस्वश्चेति बोध्यम् । **विभाषेति**—सेना सुरा छाया शाला निशा इत्येवमन्तः तत्पुरुषः नपुंसको भवति विकल्पेनेत्यर्थः । **ब्रह्मणसेनेति**-ब्राह्मणानां सेनेति विग्रहः । नपुंसकत्वं ह्रस्वश्च । **अशाला चेति**-सभा इत्यनुवर्तते । सभाशब्दः अत्र संघातवाची अस्ति । शालाभिन्नार्थकः सभाशब्दान्तः नपुंसके भवति इत्यर्थः । **स्त्रीसभम्**-स्त्रीणां सभा=संघात इत्यर्थः । षष्ठीसमासः, नपुंसकत्वे नपुंसकह्रस्वता । **धर्मसभा**—अत्र सभाशब्दः शालायामर्थेऽस्ति, अतः नात्र नपुंसकत्वं न च ह्रस्वः । **अर्धर्चाः इति**—चकारात् अपथं नपुंसकमित्यतो 'नपुंसकम्' इत्यनुवर्तते । अर्धर्चाः इति बहुवचननिर्देशात् तदादीनां ग्रहणं भवति । तेन अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि नपुंसके च भवन्तीत्यर्थो भवति । **अर्धर्चः, अर्धर्चम् इति**—ऋचः अर्धम् इति विग्रहे ऋच् ङस् अर्ध सु

हिन्दी

१५१५. पूर्वपदार्थ की बहुलता होने पर छायान्त तत्पुरुष नपुंसक होता है ।

१५१६. राजपर्यायपूर्वक एवं अमनुष्यपूर्वक सभाशब्दान्त तत्पुरुष को नपुंसकसंज्ञा होती है ।

१५१७. सेना सुरादि अन्त वाले तत्पुरुष को नपुंसक संज्ञा होती है ।

१५१८. संघातार्थक सभाशब्द है अन्त में जिस तत्पुरुष के, उसे नपुंसक संज्ञा होती है ।

१५१९. अर्धर्चादि शब्द पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक दोनों होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ।

॥ इति तत्पुरुषः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

इत्यलौकिकविग्रहे अर्धं नपुंसकमिति समासे प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुकि, अर्ध इत्यस्य प्रथमानिर्दिष्टत्वादुपसर्जनत्वात् उपसर्जनं पूर्वमिति पूर्वप्रयोगः । अर्ध ऋच् इति, ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षेः इति अप्रत्ययः, आद्गुणः, रपरत्वम् । अर्धर्च इति, तस्य अर्धर्चाः इति पुंस्त्वे अर्धर्चः, नपुंसकत्वे च **अर्धर्चम्** इति । अनेन विधीयमाना द्विलिङ्गता शब्दरूपाश्रया क्वचिदर्थ-भेदेनापि भवति । यथा पद्मशङ्खशब्दौ निधिवाचकौ पुँल्लिङ्गौ, कमले उभयलिङ्गौ । भूतशब्दः पिशाचे उभयलिङ्गः । **सामान्ये इति-** समानस्य भावः सामान्यं तस्मिन् सामान्ये इति, यत्र पुँल्लिङ्गस्त्रीलिङ्गयोः न विशेषेण निर्देशः, तत् सामान्यं, तस्मिन् नपुंसकलिङ्गो भवति ।

॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां तत्पुरुषसमासः ॥

हिन्दी

वा. सामान्य में नपुंसक लिङ्ग होता है ।

॥ इति तत्पुरुषसमास ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ बहुव्रीहि-समासः

१५२०. शेषो बहुव्रीहिः-२।२।२३॥ अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात् ।

१५२१. अनेकमन्यपदार्थे-२।२।२४॥ अनेकं प्रथमान्तमन्यपदार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स बहुव्रीहिः ।

१५२२. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ-२।२।३५॥ सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्।

१५२३. हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्-६।३।९॥ हलन्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलुक् । कण्ठेकालः । अत एव ज्ञापकाद् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः । ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्रः । उद्धृतौदना

मध्यमनोरमापूरणी

शेषः इति—उक्तादन्यः शेषः । तत्पुरुषे द्वितीयाश्रितेत्यादिना यस्य समासो विहितस्तस्मादन्य इति भावः । यत्रान्यः समासो नोक्तः स प्रथमान्तः शेषः, बहुव्रीहिसंज्ञको भवतीत्यर्थः । अधिकारसूत्रमिदम् । द्वन्द्वं यावत् । ननु द्वितीयादिषष्ठ्यन्तानां समासः उक्तः, विशेषणं विशेष्येणेति प्रथमान्तस्यापि समास उक्तः । **अतः शेषविभक्तिर्दुर्लभेति चेदुच्यते**—प्रथमान्तस्य विशेषणसमासे उक्तेऽपि विशिष्य प्रथमाविभक्तिमुच्चार्य विधानाभावात् अत्र प्रथमान्त इति गृह्यते । **अनेकमन्येति**—शेषग्रहणानुवृत्त्या प्रथमान्तमिति लभ्यते । अन्यपदार्थे इत्यनेन प्रथमार्थमेकं वर्जयित्वा सर्वेषु विभक्त्यर्थेषु बहुव्रीहिर्भवतीति लभ्यते । अत आह अनेकं प्रथमान्तमित्यादि। **सप्तमीविशेषणे इति**—बहुव्रीहौ समस्तानां पदानामुपसर्जनत्वात् अनियमे प्राप्ते नियमार्थमिदम्। सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं प्रयोक्तव्यमित्यर्थः । **हलदन्तादिति**-अलुगुत्तरपदे इत्यनुवर्तते । हलन्तात् अदन्ताच्च परस्याः सप्तम्या अलुग् भवति संज्ञायामित्यर्थः । **कण्ठेकालः**-कण्ठे कालः यस्येति विग्रहे कण्ठङि काल सु इत्यलौकिके विग्रहेऽनेकमन्यपदार्थे इति समासः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो धातु इति लुकि प्राप्ते हलदन्तादिति सप्तम्याः अलुक् । सोर्लुक् । सप्तमीविशेषणे इति कण्ठे इत्यस्य पूर्वप्रयोगः । एकदेशविकृतमनन्यवदिति न्यायात् सौ रुत्वे विसर्गे च रूपम् । **अत एव ज्ञापकाद्**— अनेकमन्यपदार्थे इत्यनेन प्रथमान्तानामेव बहुव्रीहिर्विधीयते, अतः बहुव्रीहौ सप्तम्यन्तपदस्यैव अभावात् सप्तमीविशेषणे इति सप्तम्यन्तस्य पूर्वं प्रयोगः व्यर्थः, **स एव व्यर्थीभूय ज्ञापयति**— व्यधिकरणपदबहुव्रीहिरपि भवति क्वचित् । **यथा**—कण्ठेकालः, चक्रपाणिरित्यादि । **प्राप्तोदक इति**—प्राप्त सु उदक सु इत्यनयोः ग्राम इत्यन्यपदार्थे समासः, सुपो लुक्, आद्गुणः । **ऊढरथः**—ऊढः रथः येनेति विग्रहे तृतीयान्तान्यपदार्थे समासः । **उपहृतपशुः**—उपहृतः पशुर्यस्मै इति विग्रहे उपहृत सु पशु सु इत्यनयोरनेकमन्यपदार्थे इति समासः । **उद्धृतौना इति**—उद्धृत ओदनः यस्याः, सा, उद्धृत सु ओदन सु इत्यनयोः समासः । वृद्धिरेचि, उद्धृतौदन इत्यस्य स्त्रीत्वात् टाप्, सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

१५२०. चार्थे द्वन्द्वः तक बहुव्रीहि का अधिकार है ।

१५२१. अन्यपद के अर्थ में विद्यमान अनेकों प्रथमान्त का समास होता है विकल्प से और वह बहुव्रीहि कहलाता है ।

१५२२. बहुव्रीहि समास में विशेषण एवं सप्तम्यन्त का पूर्व प्रयोग होता है ।

१५२३. हलन्त एवं अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

स्थाली । पीताम्बरो हरिः । वीरपुरुषको ग्रामः ॥

वा. प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः ॥ प्रपतितपर्णः प्रपर्णः ।

वा. नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः । अविद्यमानः पुत्रः अपुत्रः ।

१५२४. स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु- ६।३।३४॥ उक्तपुंस्कात् पर ऊङभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकस्य पुंवाचकस्येव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे न तु पूरण्यां प्रियादौ च परतः । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । चित्रगुः । रूपवद्भार्यः । अनूङ् किम् ? वामोरूभार्यः । पूरण्यां तु-

मध्यमनोरमापूरणी

पीतम् अम्बरं यस्य स **पीताम्बरः**, पीत सु अम्बर सु इत्यलौकिकविग्रहे समासः । सवर्णदीर्घः। **वीरपुरुषकः**—वीराः पुरुषाः यस्मिन् ग्रामे स इति विग्रहः । शेषाद् विभाषेति कप् । **प्रादिभ्य इति**—प्रादिभ्यः परस्य धातोरुत्पन्नस्य प्रथमान्तस्य प्रथमान्तेन सह समासः, प्रादिभ्यः परस्य वा धातुजस्य च लोपोऽपि भवतीत्यर्थः । प्रपतितः पर्णः यस्यादिति विग्रहे प्रपतित सु पर्ण सु इत्यनयोः प्रादिभ्य इति समासः, पतित इत्यस्य च लोपः, **प्रपर्ण इति** । लोपविकल्पे **प्रपतितपर्ण** इति भवति । प्रकृष्टं पतितं प्रपतितमिति प्रादिसामासः पूर्वं बोध्यः । **नञोस्त्यर्थानामिति**—नञः परेषाम् अस्त्यर्थवाचकानां सुबन्तानां बहुव्रीहिर्भवति, अस्त्यर्थपदानां च लोपो भवति विकल्पेनेत्यर्थः । **अपुत्र इति**—न विद्यमानः, अविद्यमानः, नञ्-समासः । अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः, इति विग्रहे नञोस्त्यर्थानामिति समासः विद्यमानस्य च लोपः । सुपो लुकि अपुत्र इति । स्वादिकार्यम् । **स्त्रियाः पुम्वदिति**—भाषितः पुमान् येन, यः भाषितपुंस्कः, ऊङः अभावः, अनूङ्, भाषितपुंस्कात् अनूङ् यस्मिन् स्त्रीशब्दे सभाषितपुंस्कादनूङ् स्त्रीशब्दः । बहुव्रीहि समासे पञ्चम्या अलुक्, निपातनात् । षष्ठ्याश्च ऊङः परस्या निपातनादेव लुक् । इत्थं भाषितपुस्कादनूङः स्त्रीवाचकस्य पुम्वद्भावो भवति समानाधिकरणे उत्तरपदे स्त्रीलिङ्गे पूरणीप्रियादिभिन्ने च परे इत्यर्थः । **चित्रगुः इति**—चित्राः गावो यस्येति, चित्रा जस् गो जस् इत्यलौकिकविग्रहेऽनेकमन्यपदार्थे इति समासे प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुकि सप्तमीविशेषणे इति चित्रेत्यस्य पूर्वप्रयोगे, चित्रागो इति, स्त्रियाः पुम्वद्भाषितेति चित्रेत्यस्य पुम्वद्भावः । गोस्त्रियोरिति गो इत्यस्य ह्रस्वः । सो रुत्वविसर्गौ । **रूपवद् भार्यः**—रूपवती भार्या यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिः । स्त्रियाः पुंवदिति रूपवतीत्यस्य पुंवद्, गोस्त्रियोरिति भार्येत्यस्य ह्रस्वः । **वामोरूभार्यः**—वामौ ऊरू यस्याः इति बहुव्रीहौ, स्त्रीलिङ्गे ऊङ्प्रत्यये वामोरूः इति । वामोरूः भार्या यस्येति वामोरूभार्यः । अत्र पूर्वपदे ऊङ् अस्ति अतः न भवति पुंवत् ।

हिन्दी

वा. प्रादि से परे धातुजप्रथमान्त का प्रथमान्त के साथ समास होता है, तथा प्रादि से परे धातुज का लोप होता है विकल्प से ।

वा. नञ् से परे अस्त्यर्थक प्रथमान्त का समास होता है तथा अस्त्यर्थक का विकल्प से लोप होता है ।

१५२४. भाषित पुंस्क से परे ऊङ् के अभाव वाले स्त्रीवाचक शब्द के पुंवाचक के समान रूप होते हैं, समानाधिकरण में, स्त्रीलिङ्ग उत्तरपद परे रहते । पूरणी प्रियादि परे नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५२५. अप्पूरणीप्रमाण्योः ५।४।११६।। पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गं तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात् । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । स्त्रीप्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः । पुम्वद्भाव-निषेधोऽप्प्रत्ययश्च प्रधानपूरण्यामेव । रात्री पूरणी वाच्या चेत् युक्तोदाहरणे मुख्या । अन्यत्र तु-

१५२६. नद्यृतश्च-५।४।१५३।। नद्युत्तरपदात् ऋदन्तोत्तरपदाच्च बहुव्रीहेः कप् । पुंवद्भावः ।

१५२७. केऽणः ७।४।१३।। के परेऽणो ह्रस्वः । इति प्राप्ते ।

१५२८. न कपि-७।४।१४।। ह्रस्वः । कल्याणपञ्चमीकः पक्ष । अत्र तिरोहितावयवभेदस्य पक्षस्यान्यपदार्थतया रात्रिरप्रधानम् । बहुकर्तृकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अप्पूरणीति—बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः इति बहुव्रीहौ इत्यनुवर्तते, तद् पूरणीप्रमाणीभ्यां सह विशेष्यते । 'अप्' इति पृथक् पदम् । तदन्तविधिर्भवति । पूरणीति स्त्रीलिङ्ग निर्देशात् पूरण-प्रत्ययान्तस्त्रीलिङ्गमिह गृह्यते । **अत आह**—पूरणार्थप्रत्ययान्तम् इत्यादि । **कल्याणीञ्चमा रात्रयः इति**—कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः, इति । कल्याणी सु पञ्चमी सु इत्यलौकिक-विग्रहे समासः । सुपो लुक् । अप्पूरणीप्रमाण्योरिति अप् प्रत्ययः । भत्वाद् ईकारस्य लोपः । रात्रेः विशेषण त्वात् 'कल्याणीपञ्चम' इत्यस्माट्टाप् । जसि रूपम् । पञ्चमीत्यस्य पूरणप्रत्ययान्त-त्वान्न स्त्रियाः इति पुंवद्भावः । **स्त्रीप्रमाणः**—स्त्री प्रमाणी यस्येति विग्रहे स्त्री सु प्रमाणी सु इत्यलौकिके विग्रहे समासः । स्त्रीशब्दस्य नित्यस्त्रीलिङ्गत्वात् भाषितपुंस्काभावाद् न पुंवद् । अप्, भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपः । **पुंवद्भावनिषेधेति**—स्त्रियाः पुंवद् इति सूत्रेण अप्पूरणीति सूत्रेण च प्रधानपूरण्यामेव पुंवद्भावनिषेधः, अप्प्रत्ययश्च विधीयेते । **रात्री पूरणी वाच्येति**—कल्याणीपञ्चमा रात्रयः इत्युक्तोदाहरणे मुख्या इति शेषः । **अन्यत्रेति**- कल्याण-पञ्चमीकः पक्ष इत्यत्र । कल्याणी पञ्चमी यस्य पक्षस्येति विग्रहे समासः । अत्र पञ्चमी इत्यस्य गौणत्वात् स्त्रियाः पुंवदिति कल्याणीत्यस्य पुंवद्भावः । अत्र रात्रिः अन्यपदार्थं न प्रविशति अतः पूरणीत्यस्य अप्रधानता एव । प्रधानतायाञ्च पुंवद्भाव निषेधो भवति । नद्यृतश्चेति व्यपदेशिवद्भावेन नद्यन्तोत्तरपदबहुव्रीहेः कप् । केऽणः इति ह्रस्वे प्राप्ते न कबिति निषेधः। **अत्रेति**—पञ्चदशाहोरात्रात्मके पक्षे अन्यपदार्थे रात्रेः प्रवेशात् अवयवभेदः तिरोहितः, अतः न रात्रेः प्राधान्यम् । **बहुकर्तृक इति**—बहवः कर्तारो यस्येति विग्रहे समासः । बहुकर्तृ इत्य-स्मात् नद्यृतश्चेति कप् ।

हिन्दी

१५२५. पूरणार्थप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्गान्त एवं प्रमाण्यन्त बहुव्रीहि से अप् प्रत्यय होता है ।

१५२६. नद्यन्त व ऋकारान्त बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय होता है ।

१५२७. क-प्रत्यय परे रहते पूर्व अण् को ह्रस्व होता है ।

१५२८. कप् प्रत्यय परे रहते अण् को ह्रस्व नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अप्रियादिषु किम् ? कल्याणीप्रियः । प्रिया, मनोज्ञा, कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, भक्तिः, सचिवा, स्वसा, कान्ता, क्षान्ता, सभा, चपला, दुहिता, बाला, वामा, अबला तनया, इति प्रियादयः । 'सामान्ये नपुंसकम्' । दृढं भक्तिर्यस्य स दृढभक्तिः।

१५२९. तसिलादिष्वाकृत्वसुचः-६।३।३५।। तसिलादिषु कृत्वसुजन्तेषु स्त्रियाः पुंवत् । परिगणनं कर्तव्यम् । त्रतसौ । तरप्तमपौ । चरट्-जातीयरौ । कल्पब्देशीयरौ । रूपप्पाशपौ । थाल् । तिल्थ्यनौ । एषु परेषु स्त्रियाः पुंवत् । बह्वीषु इति, बहुत्र । बहुत इत्यादि ।

वा. त्वतलोर्गुणवचनस्य ।। शुक्लत्वम् । शुक्लता ।

वा. भस्याढे तद्धिते ।। हस्तिनीनां समूहः हास्तिकम् । अढे किम् ? रौहिणेयः ।

वा. कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु ।। कुक्कुटाण्डम् । मृगपदम् । मृगक्षीरम् । काकशावः।

मध्यमनोरमापूरणी

कल्यणीप्रियः—कल्याणी प्रिया यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिः । प्रियादौ परे कल्याण्याः न पुंवत् । **दृढभक्तिरिति**—भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठात् दृढा भक्तिर्यस्येति विग्रहे समासे कृते स्त्रियाः इति पुंवन्न स्यात्, **तदा कथं दृढ़भक्तिरिति भवतीति प्रश्ने उच्यते**—दृढं भक्तिर्यस्येति विग्रहे समासो भवति । तत्र दृढशब्दस्य नपुंसकत्वं सामान्ये नपुंसकमित्यनेन ज्ञेयम् । अर्थात् पद-संस्कारपक्षे दृढम् इति व्युत्पाद्य पश्चात् भक्त्याऽन्वयः । **तसिलादिषु इति**—स्त्रियाः पुंवत् इत्यनुवर्तते, आकृत्वसुचः इत्यत्र 'आ' इति अभिविधौ वर्तते । कृत्वसुचमभिव्याप्येत्यर्थः । पञ्चम्यास्तसिल् इत्यारभ्य संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् इति पर्यन्तं विहितेषु प्रत्ययेषु स्त्रियाः पुंवदित्यर्थः । **बहुत्र**—बह्वीषु इत्यर्थे सप्तम्यास्त्रल्, तसिलादिष्वेति पुंवत् । **बहुत इति**—बह्व्याः इत्यर्थे तसिल्, पुंवद्भावः । **शुक्लत्वम्, शुक्लता**—शुक्लायाः भावः इत्यर्थे त्वतलौ, त्वतलोर्गुणवचनस्येति शुक्ला इत्यस्य पुंवत् । **भस्याढे**—ढभिन्ने तद्धिते परे भसंज्ञकस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवत् इत्यर्थः । **हास्तिकम्**—हस्तिनीनां समूहः इत्यर्थे अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् इति ठक्, ठस्येकः, हस्ति नी इत्यस्य भस्याढे इति पुंवत्, किति चेति आद्यचो वृद्धिः । भत्वा-ट्टिलोपः । **रौहिणेयः**—रोहिण्याः अपत्यम् इत्यर्थे ढक्, एयादेशः । यदि अढे इति नोच्येत तदाऽत्रापि पुंवत्त्वे रौहितेय इति स्यात् । **कुक्कुटाण्डम्**—कुक्कुट्या अण्डम् इति षष्ठीसमासः, कुक्कुट्यादीनामिति पुंवत्त्वे कुक्कुट अण्ड इति, दीर्घः । मृग्याः क्षीरम् मृगक्षीरम्, मृग्याः पदमिति मृगपदम्, काक्याः शावः काकशाव इत्यादावपि पुंवद्भावः । **क्यङ्मानिनोरिति**-क्यङि मानिनि चोत्तरपदे स्त्रीवाचकस्य पुंवदित्यर्थः ।

हिन्दी

१५२९. तसिल् से लेकर कृत्वसुच् पर्यन्त प्रत्यय परे रहते स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव होता है ।

वा. त्व और तल् प्रत्यय परे गुणवचन स्त्रीवाचक को पुंवद्भाव होता है ।

वा. ढभिन्न तद्धित परे भसंज्ञक स्त्रीवाचक शब्द को पुंवद्भाव होता है ।

वा. अण्डादि उत्तरपद परे रहते कुक्कुटी आदि को पुंवद्भाव होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५३०. क्यङ्मानिनोश्च-६।३।३६।। पुंवत् । एनीवाचरति-एतायते । श्येनीवाचरति-श्येतायते । दर्शनीयां स्वाभिन्नां काञ्चित् मन्यते दर्शनीयमानिनी ।

१५३१. न कोपधायाः-६।३।३७।। स्त्रियाः न पुंवत् । पाचिकाभार्यः । मद्रिकाभार्यः । मद्रिकामानिनी ।

वा. कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्रहणम् ।। नेह- पाकभार्यः ।

१५३२. संज्ञापूरण्योश्च-६।३।३८।। अनयोर्न पुंवत् । दत्ताभार्यः । पञ्चमीभार्यः ।

मध्यमनोरमापूरणी

एतायते इति—एनीव आचरतीति विग्रहे एनी शब्दात् क्यङ्, क्यङ्मानिनोश्चेति पुंवद्भावे एत य इति । अकृत्सार्वेति दीर्घे एताय इति, लटि रूपम् । श्येनीवाचरतीति विग्रहे क्यङ्, श्येनी य इति, क्यङ्मानिनोश्चेति पुंवद्भावः, श्येत य इति, अकृत्सार्वेति दीर्घः लटि श्येतायते इति । श्वेत-पर्यायः श्येतशब्दः । **दर्शनीयमानिनी**—दर्शनीया अम् इत्युपपदात् मन् धातोः मनः इति णिनिः, उपपदसमासः, सुपो लुक्, क्यङ्मानिनोश्चेति दर्शनीया इत्यस्य पुंवद्भावे, दर्शनीयमानिन् इति, ऋन्नेभ्यो ङीप् इति ङीप् । **पाचिकाभार्यः**—पाचिका भार्या यस्येति विग्रहे समासः, स्त्रियाः पुंवदिति पाचिका इत्यस्य प्राप्तः पुंवद्भावः न कोपधाया इति निषिध्यते । न कोपधाया इत्यत्र क्यङ्मानिनोश्चेत्यस्यानुवृत्त्या मद्रिकामानिनी इत्यत्र प्राप्तः पुंवद्भावः निषिध्यते । **कोपधप्रतिषेधे इति**—न कोपधायाः इति पुंवद्भावप्रतिषेधे तद्धितसम्बन्धी वुसम्बन्धी च यः ककारस्तदुपधायाः स्त्रियाः न पुंवत् इत्यर्थः । **पाकभार्यः**—पाका भार्या यस्येति विग्रहे समासः । अत्र पाका इत्यस्य कृत्सम्बन्धिककारत्वान्न न कोपधायाः इति पुंवद्भावप्रतिषेधः । स्त्रियाःपुंवदिति पुंवद्भावः । **दत्ताभार्यः**—दत्ता भार्या यस्येति विग्रहे समासः, दत्ता इति अव्युत्पन्नं नाम, तस्मात् स्त्रियाः पुंवदिति प्राप्तः पुंवद्भावः संज्ञापूरण्यो श्चेत्यनेन प्रतिषिध्यते । **पञ्चमीभार्यः**—पञ्चमी भार्या यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिः । पञ्चमीत्यस्य पूरण-प्रत्ययान्ततया स्त्रियाः इति प्राप्तः पुंवद्भावः संज्ञापूरण्योश्चेति निषिध्यते । गोस्त्रियोरिति भार्येत्यस्य ह्रस्वः ।

हिन्दी

१५३०. क्यङ् और मानिन् परे पूर्वपद को पुंवद्भाव होता है ।

१५३१. क्यङ् मानिन् एवं उत्तरपद परे रहते कोपध स्त्रीवाचक को पुंवद्भाव नहीं होता है ।

वा. कोपध के पुंवद्भाव प्रतिषेध में तद्धित एवं वुसम्बन्धी कोप ध स्त्रीवाचक का प्रतिषेध कहना चाहिये ।

१५३२. संज्ञावाचक एवं पूरणप्रत्ययान्त का पुंवद्भाव नहीं होता है उत्तरपद परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५३३. वृद्धिनिमित्तस्य तद्धितस्यारक्तविकारे-६।३।३९।। वृद्धिशब्देन विहिता या वृद्धिस्तद्धेतुर्यस्तद्धितोऽरक्तविकारार्थस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् । स्रौघ्नीभार्यः । रक्ते तु काषायकन्थः । विकारे तु हैममुद्रिकः ।

१५३४. स्वाङ्गाच्चेतः । ६।३।४०।। स्वाङ्गाद्य ईकारस्तदन्तात् स्त्री न पुंवत् । सुकेशीभार्यः । स्वाङ्गात् किम्-पटुभार्यः । ईतः किम्-अकेशभार्यः ।

वा. अमानिनीति वक्तव्यम् ।। सुकेशमानिनी ।

१५३५. जातेश्च-६।३।४१।। न पुंवत् । ब्राह्मणीभार्यः । शूद्राभार्यः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वृद्धिनिमित्तस्येति—नेत्यनुवर्तते । वृद्धेःनिमित्तं यस्मिन्, स वृद्धिनिमित्तस्तद्धितः, **सः यदि अरक्तविकारेऽर्थे** = रक्तेऽर्थे विकारेऽर्थे च न विहितस्तदा तदन्तस्त्रीवाचकस्य न पुंवदित्यर्थः। **स्रौघ्नीभार्यः** —स्रुघ्ने भवा इत्यर्थे अण्, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेत्यकारलोपे टिड्ढाणञ् इति ङीप् । स्रौघ्नी भार्या यस्येति विग्रहेऽनेकमन्यपदार्थे इति समासः, स्त्रियाः पुंवदिति प्राप्तः पुंवद्भावःवृद्धिनिमित्तस्य तद्धितस्यारक्तविकारे इति प्रतिषिध्यते । **रक्ते तु**—कषायेन रक्ता काषायी, काषायी कन्था यस्येति विग्रहे समासः । रक्तार्थकतद्धितकारणात् न पुंवद्भावनिषेधः। पुंवत्त्वे ङीपो निवृत्तिः । **हैममुद्रिकः**—हैमी मुद्रा यस्येति, हैमीत्यस्य हेम्नो विकारत्वात् न पुंवद्भावनिषेधः । पुंवत्त्वे ङीपो निवृत्तिः । **सुकेशीभार्यः**—सु शोभनाः केशाःयस्या इति सुकेशी, स्वाङ्गाच्चोपर्सनादिति ङीष् । सुकेशी भार्या यस्येति विग्रहः । स्त्रियाः पुंवदित्यस्य स्वाङ्गाच्चेतः इति निषेधः । **स्वाङ्गात् किमिति**—यद्येतन्नोच्येत तदा पट्वी भार्या यस्येति पटुभार्यः इति न स्यात् । अर्थात् अत्रापि पुंवद्भावनिषेधापत्तिः स्यात् । **अकेशभार्यः**:- अविद्यमानाः केशाः यस्याः सा अकेशा, अकेशा भार्या यस्येति समासे पुंवद्भावे अकेशभार्यः इति । स्वाङ्गाच्चेत इति सूत्रे ईत इत्यस्याभावे अत्रापि पुंवद्भावनिषेधे अकेशाभार्य इति अनिष्टरूपापत्तिः स्यात् । **अमानिनीति**—स्वाङ्गाच्चेतः इति पुंवद्भावनिषेधः मानिनिशब्दे परे न भवतीत्यर्थः । **सुकेशमानिनी**—शोभनाःकेशाःयस्याः सा, सुकेशी, स्वां सुकेशीं मन्यते इत्यर्थे णिनिः, उपपद-समासः, उपधावृद्धिः, सुकेशीमानिन् इति जाते क्यङ्मानिनोश्चेत्यस्य स्वाङ्गाच्चेत इति निषेधो न प्रवर्तते, अमानिनीति वक्तव्यमिति वार्तिकेन तन्निषेधात् । **जातेश्चेति**-जातेः परो यः स्त्री-प्रत्ययस्तदन्तो न पुंवत् । **ब्राह्मणीभार्यः**—ब्राह्मणी भार्या यस्येति विग्रहः । स्त्रियाः पुंवदिति प्राप्तः पुंवद्भावः जातेश्चेति निषिध्यते । ब्राह्मणस्य जातित्वात् । **एवमेव**—शूद्रा

हिन्दी

१५३३. रक्तार्थक व विकारार्थकभिन्न वृद्धिनिमित्तक जो तद्धित तदन्त स्त्रीवाचक को पुंवत् नहीं होता है ।

वा. "स्वाङ्गाच्चेतः" यह निषेध मानिनी शब्द परे नहीं होता है ।

१५३४. स्वाङ्गवाची ईकारान्त स्त्रीवाचक को पुंवत नहीं होता है ।

१५३५. जाति वाचक स्त्रीप्रत्ययान्त को पुंवद्भाव नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५३६. संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये-२।२।२५।। संख्येयार्थया संख्ययाऽव्ययादयः समस्यन्ते स बहुव्रीहिः ।

१५३७. बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्-५।४।७३।। संख्येये यो बहुव्रीहिस्तस्माड्डुच् समासान्तः । दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशाः । अबहुगणात् किम्-उपबहवः । उपगणाः ।

१५३८. ति विंशतेर्डिति-६।४।१४२।। विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति । आसन्नविंशाः । विंशतेरासन्ना इत्यर्थः । अदूरत्रिंशाः । अधिकचत्वारिंशाः । द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः ।

१५३९. दिङ्नामान्यन्तराले-२।२।२६।। दिशो नामान्यन्तराले वाच्ये प्राग्वत् । दक्षिणस्याः पूर्वस्याः दिशो यदन्तरालं दक्षिणपूर्वा ।

मध्यमनोरमापूरणी

भार्या यस्येत्यत्र **बोध्यम्** । **संख्ययाऽव्ययेति**—शेष इति अनेकमन्यपदार्थे इति च निवर्तेते । बहुव्रीहिरित्यनुवर्तते, सुप्सुपा इत्यपि । संख्यया परिच्छेद्यं संख्येयमिति संख्यया इत्यनेनान्वेति। संख्याशब्दः एकद्वित्र्यादिपरः । अत आह संख्येयार्थयेत्यादि । **उपदशाः**— दशानां समीपे ये सन्तीत्यर्थे दशन् आम् उप इत्यनयोः संख्ययाऽव्ययासन्नेति बहुव्रीहिः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । उपेत्यस्य पूर्वप्रयोगः, बहुव्रीहौ संख्येये इति डच्, डित्वान्नस्तद्धितेइति टेर्लोपे जसि विभक्तौ रूपम् । **अबहुगणात् किम्**—यद्येतन्नोच्येत तदा बहूनां समीपे ये सन्ति, गणानां समीपे ये सन्ति, उपबहवः, उपगणाः, इत्यत्रापि डच् प्रसज्येत । **आसन्नविंशाःइति**—विंशतेः आसन्ना इति विग्रहे विंशतिङस् आसन्न जस् इत्यलौकिकविग्रहे संख्ययाऽव्ययासन्नेति समासः। आसन्नेत्यस्यात्र प्रथमानिर्दिष्टत्वादुपसर्जनसंज्ञा, पूर्वप्रयोगः । बहुव्रीहौ संख्येये डजिति डच्, अनुबन्धलोपः, आसन्नविंशति अ इति, भसंज्ञा, ति विंशतेर्डिति इति तेर्लोपः । अतो गुणे इति पररूपे स्वादिकार्यम् । **अदूरत्रिंशत् इति**—त्रिंशतः अदूराः इति विग्रहे समासः, अदूरत्रिंशत् इति, डच्, टेर्लोपः । **अधिकचत्वारिंशा इति**—चत्वारिंशतोऽधिकाः इति विग्रहे चत्वारिंशत् ङस् अधिक जस् इत्यनयोः समासः । डच्, टेर्लोपः । **द्वित्राः इति**—द्वौ वा त्रयो वेति विग्रहः, द्विऔ त्रि जस् इत्यलौकिकविग्रहे संख्ययाऽव्ययेति समासः, बहुव्रीहौ संख्येये इति डच् । भत्वात् टिलोपः । जसि द्वित्रा इति । **दिङ्नामानीति**—दिशो नामानि दिङ्नामानि, दिङ्नामानि सुबन्तानि अन्तरालेऽर्थे समस्यन्ते, बहुव्रीहिश्च समास इत्यर्थः । **दक्षिणपूर्वा इति**-दक्षिणस्याः पूर्वस्याः च दिशोऽन्तरालमित्यर्थे दक्षिणा ङस् पूर्वा ङस् इत्यनयोः दिङ्नामानीति समासः । 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इति दक्षिणेत्यस्य पुंवत् ।

हिन्दी

१५३६. संख्येयार्थक संख्यावाची के साथ अव्यय आसन्न अदूर अधिक एवं संख्या का समास होता है ।

१५३७. संख्येय अर्थ में जो बहुव्रीहि उससे समासान्त डच् प्रत्यय होता है ।

१५३८. विंशति के भसंज्ञक ति शब्द का लोप होता है ।

१५३९. दिशानामवाचक का अन्तराल अर्थ में बहुव्रीहि समास होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५४०. तत्र तेनेदमिति सरूपे-२।२।२७ सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपोपपदे तृतीयान्ते च प्रहरणविषये इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते, कर्मव्यतिहारे ।

१५४१. इच् कर्मव्यतिहारे-५।४।१२७॥

१५४२. अन्येषामपि दृश्यते-६।३।१३७॥ दीर्घः । केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं-"केशाकेशि" । दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं-"दण्डादण्डि" । मुष्टीमुष्टि।

१५४३. तेन सहेति तुल्ययोगे-२।२।२८॥ तुल्ययोगे वर्तमानं सहेत्येतत् तृतीयान्तेन प्राग्वत् ।

१५४४. वोपसर्जनस्य-६।३।८२॥ बहुव्रीहेरवयवस्य सहस्य सः स्याद् वा । पुत्रेण सह सपुत्रः सहपुत्रो वागतः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तत्र तेनेदमिति—समास इति, बहुव्रीहिरिति चाधिकृतम् । तत्रेति सप्तम्यन्तं गृह्यते, तेनेति तृतीयान्तं च । सरूपे इति प्रत्येकमभिसंबध्यते । इतिकरणश्चार्थनिर्देशार्थः । ग्रहणविषये इत्यध्याहियते, तत् सप्तम्यन्ते पदे इत्यस्य विशेषणम् । प्रहरणविषये इत्यपि अध्याहियते, तृतीयान्ते पदे इत्यस्य विशेषणं च भवति । युद्धं प्रवृत्तमिति कर्मव्यतिहारे द्योत्ये इत्यपि चाध्याहियेते । **तदाह**—सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये इत्यादि । **कर्मव्यतिहारे इति**—तत्र तेनेदमिति यद् बहुव्रीहिः, तद्विषये कर्मव्यतिहारे इच् प्रत्ययो भवति समासान्तः । **अन्येषामपि इति**—यस्य दीर्घत्वं केनापि न विहितं तस्य दीर्घत्वमनेन शिष्टप्रयोगाज्ज्ञेयः इत्यर्थः । **केशाकेशि**—केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् इत्यर्थे केश सुप् केश सुप् इत्यनयोः तत्र तेनेदमिति सरूपे इति समासः । प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक्, इच् कर्मव्यतिहारे इतीच् प्रत्ययः, अन्येषामपि दृश्यते इति पूर्वपदस्याकारस्य दीर्घः, केशाकेश इ इति, भत्वादलोपः । इच्प्रत्ययस्य पाठः तिष्ठद्गुप्रभृतिषु अस्ति तस्मादव्ययीभावत्वमव्ययीभावश्चेति अव्ययसंज्ञा च भवति, अव्ययादाप्सुप इति सुपो लुक् । **दण्डादण्डि**—दण्ड भिस् दण्ड भिस् इत्यनयोः समासः । पूर्व पदस्य दीर्घः । इच्, अलोपः, अव्ययत्वात्सुपो लुक् । **मुष्टीमुष्टि**—मुष्ट्या मुष्ट्या प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे मुष्टि टा मुष्टि टा इत्यनयोः समासः । पूर्वपदस्येकारस्य दीर्घः । इच् । भत्वादिकार-लोपः, अव्ययादाप्सुपः । **तेनेति**—तेन इत्यनेन तृतीयान्तं गृह्यते । सह इति तृतीयान्तेन समस्यते युगपत्कालिकक्रियायोगे, स बहुव्रीहिरित्यर्थः । **वोपसर्जनस्येति**—सहस्य सः इत्यनुवर्तते । **सपुत्रः**—पुत्रेण सहेति विग्रहे पुत्र टा सह इत्यलौकिकविग्रहे तेन सहेति समासः, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक्, सहेत्यस्योपसर्जनत्वात् पूर्वप्रयोगः, वोपसर्जनस्येति सादेशः । सादेशाऽभावे सहपुत्र इति ।

हिन्दी

१५४०. समानस्वरूपवाले सप्तम्यन्त पदों में और समानस्वरूपवाले तृतीयान्त पदों में ग्रहण विषय और प्रहरण विषय में परस्पर बहुव्रीहि होता है ।

१५४१. कर्मव्यतिहार में समासान्त इच् प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि समास में ।

१५४२. बहुव्रीहि समास में पूर्वपद के अन्त को दीर्घ होता है इच् प्रत्यय परे ।

१५४३. तुल्ययोग में वर्तमान "सह" इस पद का तृतीयान्त के साथ बहुव्रीहि समास होता है ।

१५४४. बहुव्रीहि समास के अवयव सह को 'स' आदेश होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५४५. [1]प्रकृत्याशिषि-६।३।८३।। सह शब्दः । स्वस्ति राज्ञे सहपुत्राय सहामात्याय ।

वा. [1]अगोवत्सहलेष्विति वक्तव्यम् ।। सगवे । सवत्साय । सहलाय ।

१५४६. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्-५।४।११३।। स्वाङ्गवाचिनः सक्थ्यक्ष्यन्तांद् बहुव्रीहेः षच् । दीर्घसक्थः । जलजाक्षी । स्वाङ्गात् किम्-दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । अक्ष्णो ऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच् ।

१५४७. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः-५।४।११५।। आभ्यां मूर्ध्नः षः स्यात्, बहुव्रीहौ । द्विमूर्धः । त्रिमूर्धः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रकृत्येति—सहस्य सः इत्यतः सहस्येत्यनुवर्तते प्रथमायां विपरिणमते च । **अतः सह शब्दः आशिषि प्रकृत्या**=स्वभावेन स्थितो भवेत् इति अर्थो भवति । **सहपुत्रायेति**—पुत्रेण सह, तस्मै, इति विग्रहे पुत्र टा सह इत्यनयोः तेन सहेति समासः । सुपो लुक् । सहस्य पूर्वप्रयोगः, प्रकृत्याशिषीति सह इत्यस्य प्रकृतिभावः । सहपुत्र इत्यस्य चतुर्थ्येकवचने रूपम् । **सहामात्यायेति**—अमात्येन सह राज्ञे स्वस्ति भूयात् इति तुल्ययोगः । अमात्य टा सह इत्यनयोः तेन सहेति समासः, वोपसर्जनस्येति सूत्रं प्रबाध्य प्रकृत्याशिषि इति प्रकृतिभावः। **अगोवत्सेति**—गोवत्सहलशब्देषु परेषु सह इत्यस्य प्रकृतिभावो न भवतीत्यर्थः । **सगवे**—गवा सहितः, तस्मै स्वस्ति भूयादित्यर्थः । [illegible]नेनेदमिति समासः, वोपसर्जनस्येति सादेशः । पक्षे सहगवे इत्यपि भवत्येव । **एवमेव**—सवत्साय सहवत्साय, सहलाय सहहलायेत्यपि बोध्यम् । **बहुव्रीहौ इति**—पञ्चम्यर्थे सप्तमी । **दीर्घसक्थः**—दीर्घे सक्थिनी यस्येति विग्रहे समासः । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरिति षच् । अकारोऽवशिष्यते । भत्वाट्टेरिकारलोपः । **जलजाक्षी**—जलजे इव अक्षिणी यस्याः, जलज औ अक्षि औ इत्यनयोरनेकमन्यपदार्थे इति समासे सुपो लुक्, षच्, भत्वाट्टेर्लोपः, सवर्णदीर्घः । जलजाक्ष इत्यस्मात् षिद्गौरादिभ्य इति ङीष् । यस्येति चेत्यलोपः । **दीर्घसक्थि-शकटम्**—दीर्घे सक्थिनी यस्येति विग्रहः, किन्तु अत्र सक्थिशब्दस्य स्वाङ्गत्वाभावान्न षच् । **स्थूलाक्षा**—वेणुयष्टिः । इदमपि प्रत्युदाहरणमेव । स्थूलानि अक्षीणि=पर्वग्रन्थयः यस्याः इति विग्रहे समासेऽक्ष्णोऽदर्शनांदित्यच् । टेर्लोपे टाप्, दीर्घः। **द्विमूर्धः**—द्वौ मूर्धानौ यस्येति विग्रहे द्वि औ मूर्धन् औ इत्यनयोरनेकमन्येति समासः । द्वित्रिभ्यामिति षः, षकार इत् । भत्वान्नस्तद्धिते इति टेर्लोपः, स्वादिकार्यम् । **त्रिमूर्धः**-त्रयो मूर्धानो यस्येति विग्रहः । समासे सुपो लुक्, षः, टेर्लोपः ।

हिन्दी

१५४५. आशीर्वाद अर्थ में सह शब्द प्रकृतिवत् रहता है, बहुव्रीहि समास में ।

वा. गो वत्स व हल शब्द के परे रहते सह को प्रकृतिभाव नहीं होता है ।

१५४६. स्वाङ्गवाची सक्थि और अक्षि से बहुव्रीहि में षच् प्रत्यय होता है ।

१५४७. द्वि और त्रि से परे मूर्धन् शब्द से ष प्रत्यय होता है बहुव्रीहि में ।

---

1. काशिकायां प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु इति सूत्रमस्ति । वार्तिकमेतन्नास्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५४८. अन्तर्बहिर्भ्यां लोम्नः-५।४।११७।। अप् स्यात् । अन्तर्लोमः । बहिर्लोमः।
१५४९. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः-५।४।१३८।। हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादस्य लोपः । व्याघ्रस्येव पादौ यस्य व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम्-हस्तिनः इव पादौ यस्य, हस्तिपादः । कुसूलपादः ।
१५५०. संख्या सुपूर्वस्य-५।४।१४०।। पादशब्दस्य लोपः । द्विपात् । सुपात् ।
१५५१. उद्विभ्यां काकुदस्य-५।४।१४८।। लोपः । उत्काकुत् । विकाकुत् ।
१५५२. पूर्णाद्विभाषा-५।४।१४९।। पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः ।
१५५३. सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः-५।४।१५०।। सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तर्बहिर्भ्यामिति—अप्पूरणीप्रमाण्योरित्यतः अप् इत्यनुवर्तते । अन्तर् बहिस् इत्याभ्यां परः यः लोमन्शब्दस्तदन्ताद् बहुव्रीहेरप् स्यादित्यर्थः । **अन्तर्लोमः**—अन्तः लोमानि यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिसमासः । अन्तर्बहिर्भ्यामिति अप्, भत्वाट्टेरनो लोपः । बहिः लोमानि यस्येति विग्रहे समासे अपि टिलोपे सस्य रुत्वे बहिर्लोम इति । **पादस्य लोप इति**—उपमानाच्चेत्यत उपमानात् इत्यनुवर्तते । समासान्त इत्यपि बोध्यम् । हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादस्य लोपः समासान्तः बहुव्रीहौ इत्यर्थः । **व्याघ्रपात्**-व्याघ्रपादौ इव पादौ यस्येति विग्रहे सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्चेति समासः उत्तरपदस्य लोपश्च । व्याघ्रपाद इति जाते पादस्य लोप इत्यकारलोपः । **हस्तिपादः**—हस्त्यादिभिन्नात् परस्यैव पादान्त्यस्य लोपो भवति, अतो नात्र लोपः । **द्विपात्**—द्वौ पादौ यस्येति विग्रहे समासः । पादान्त्यस्य लोपः, दस्य वाऽवसाने इति चर्त्वम्। शोभनौ पादौ यस्येति विग्रहे सुपात् इति बोध्यम् । **उद्विभ्याम्**-एताभ्यां परस्य काकुदान्त्यस्य लोपो भवति बहुव्रीहावित्यर्थः । **उत्काकुत्**—उन्नतं काकुदं यस्येति विग्रहे उन्नत सु काकुद सु इत्यनयोः प्रादिभ्यो धातुजस्येति समासः, नतस्य लोपश्च । उद्विभ्यामिति दकाराकारलोपः। चर्त्वम् । विगतं काकुदं यस्येति **विकाकुत्**, पूर्ववत् । **पूर्णाद् इति**—काकुदस्येत्यनुवर्तते । पूर्णात् परस्य काकुदान्त्यस्य लोपो वा इत्यर्थः । **पूर्णकाकुत्**—पूर्णं काकुदं यस्येति विग्रहे समासः। पूर्णाद्विभाषेति अलोपः । चर्त्वम् । सोर्लोपः । पक्षे **पूर्णकाकुदः** । । **सुहृद्दुर्हृदौ इति**- एतौ मित्रे अमित्रे चार्थे निपात्येते, अर्थात् सुदुर्भ्यां परस्य हृदयस्य हृत् इत्यादेशो भवतीत्यर्थः । **सुहृत् इति**—सु-शोभनं हृदयं यस्येति विग्रहः, सुहृदय इति, हृदादेशः । **दुर्हृत्**—दुष्टं हृदयं यस्येति विग्रहः, हृदयस्य हृदादेशो निपात्यते ।

हिन्दी

१५४८. अन्तर् और बहिस् से परे लोमन् शब्द से बहुव्रीहि में अप्-प्रत्यय होता है ।
१५४९. हस्त्यादिभिन्न उपमानवाची से परे पाद शब्दान्त का लोप होता है ।
१५५०. संख्यापूर्वक एवं सुपूर्वक पाद शब्द के अन्त का लोप होता है, बहुव्रीहि समास में ।
१५५१. उद् और वि से परे काकुद के अन्त्य का लोप होता है ।
१५५२. पूर्ण शब्द से परे काकुदान्त्य का लोप होता है बहुव्रीहि समास में ।
१५५३. मित्र और अमित्र अर्थ में सुहृद् और दुर्हृद् निपातन होते हैं, बहुव्रीहि समास में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. नेतुर्नक्षत्रेऽब्वक्तव्यः ।। मृगो नेता यासां रात्रीणां ता मृगनेत्राः रात्रयः ।

१५५४. अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्-५।४।११८।। नासिकान्ताद् बहुव्रीहेरच् नासिका शब्दश्च नसं प्राप्नोति नतु स्थूलपूर्वात् ।

१५५५. पूर्वपदात् संज्ञायामगः-८।४।३।। पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य नस्य णो न तु गकारव्यवधाने । द्रुरिव नासिका यस्य-द्रुणसः ।

वा. खुरखराभ्यां वा नस् ।। खुरणाः । खरणाः । पक्षे अजपीष्यते । खुरणसः । खरणसः ।

१५५६. उपसर्गाच्च-५।४।११९।। उन्नसः ।

वा. वेर्ग्रो वक्तव्यः ।। विगता नासिका अस्य-विग्रः ।

मध्यमनोरमापूरणी

मृगनेत्राः इति—मृगः नेता यासां रात्रीणामिति विग्रहः, मृग सु नेतृ सु इत्यलौकिके विग्रहेऽनेकमन्यपदार्थे इति समासः । सुपो लुक् । नेतुर्नक्षत्रेऽप् इत्यप् समासान्तः । इको यणचि इति ऋकारस्य यण् रेफः, अजाद्यतष्टाप्, जसि रूपम् । **अञ्नासिकाया इति**—अच् नासिकाया इति पदच्छेदः । नासिकाया इति बहुव्रीहेर्विशेषणं, विशेषणात्तदन्तविधिः । अस्थूलादिति नासिकायाः विशेषणम्, स्थूलशब्दात् परा नासिका चेन्न भवतीति लभ्यते । नसमित्यस्मात् परं 'प्राप्नोति' इति अध्याह्रियते । अत आह-नासिकान्ताद् बहुव्रीहेरच् नाकिाशब्दश्च नसं प्राप्नोतीत्यादि । **पूर्वपदादिति**—रषाभ्यां नो ण इत्यनुवर्तते । **पूर्वपदशब्दः**—पूर्वपदस्थं लक्षयति । रेफः षश्च प्रत्येकमन्वेति । अगः इति पञ्चम्यन्तं पदम्, गकारात् परस्प नेत्यर्थः । अग इत्यनेन सिद्ध्यति यत् अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि इत्यनुवर्ततेऽत्र । अन्यथा तस्य वैयर्थ्यं स्यात् । **सूत्रार्थः**-पूर्वपदस्थरेफषकारनिमित्तात्परस्य नस्य णत्वं, न तु गकारव्यवधाने । **द्रुणसः**—द्रुरिव नासिका यस्येति विग्रहे समासः, अञ् नासिकायाः नसं चेति अच्, नासिकायाश्च नसादेशः, द्रुनस इति, पूर्वपदात् संज्ञायामग इति णत्वम् । **खुरखराभ्यामिति**—आभ्यां परस्य नासिकायाः विकल्पेन नसादेशोऽच् प्रत्ययश्च भवतीत्यर्थः । **खुरणाः**—खुरौ इव नासिके यस्येति विग्रहः, समासे सति खुरखराभ्यामिति नसादेशः, खुरनस् इति, सौ अत्वसन्तस्येति दीर्घः, सोर्लोपः, सस्य रुत्वविसर्गौ, पूर्वपदादिति णत्वम् । खररूपा नासिका यस्येति **खरणाः** । पक्षे—अञ्नासिकायाः इति अच्प्रत्ययसहितः नसादेशः, तेन **खुरणसः, खरणसः इति भवति** । **उपसर्गाच्चेति**—प्रादिभ्यो यो नासिकाशब्दः, तदन्ताद् बहुव्रीहेरच् नसादेशश्चेत्यर्थः । **उन्नसः**- उन्नता नासिका यस्येति विग्रहे, प्रादिभ्य इति समासः नतस्य लोपश्च । उपसर्गाच्चेति अच्, नसादेश्च । **वेर्ग्रो वक्तव्यः**—वेः परो नासिका शब्दः ग्रादेशं प्राप्नोति । विगता नासिका यस्येति समासे ग्रादेशः ।

हिन्दी

वा. नेतृ शब्द से नक्षत्र अर्थ में अप् प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में ।

१५५४. नासिकान्त बहुव्रीहि से अच् होता है तथा अस्थूलपूर्वक नासिका शब्द को नसादेश होता है ।

१५५५. पूर्वपदस्थ निमित्त से परे न को ण होता है, गकार व्यवधान में नहीं ।

वा. खुर व खर शब्दों से परे नासिका को नसादेश होता है, बहुव्रीहि में ।

१५५६. उपसर्ग से परे नासिका-शब्द को नसादेश व अच् प्रत्यय होते हैं ।

वा. वि उपसर्ग से परे नासिका को ग्र आदेश होता है बहुव्रीहि समास में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. ख्यश्च ।। विख्यः ।

१५५७. नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्-५।४।१२१।। अच् वा स्यात् । अहलः । अहलिः । असक्थः । असक्थिः । एवं दुःसुभ्याम् । शक्त्योरिति पाठान्तरम् । अशक्तः । अशक्तिः ।

१५५८. नित्यमसिच् प्रजामेधयोः-५।४।१२२।। नञ्दुःसुभ्य एव । अप्रजाः । अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः ।

१५५९. धर्मादनिच् केवलात्-५।४।१२४।। केवलपूर्वपदाद्यो धर्मशब्दस्तदन्ताद् बहुव्रीहेरनिच् । कल्याणधर्मा । केवलात् किम्-परमः स्वो धर्मो यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ माभूत् । परमस्वधर्मः ।

मध्यमनोरमापूरणी

'ख्यश्चेति' ख्यादेशे **विख्य** इति । **नञ्दुःसुभ्यः इति**-नञ्नासिकायाः इत्यतः अच् इत्यनुवर्तते, 'बहुव्रीहि' इत्यस्याधिकारः । **अहलः**—अविद्यमानः हलिः यस्य, नञोऽस्यर्थानामिति समासः, विद्यमानस्य च लोपः । नञ्दुःसुभ्य इत्यच्, भत्वाद् यस्येति चेति इलोपः । पक्षे अहलिः । इत्येव । **असक्थः**—अविद्यमानं सक्थि यस्येति विग्रहः । अच्, इलोपः । पक्षे **असक्थिः** इति । **शक्त्योरिति**—सूत्रे सक्थ्योरित्यस्य स्थाने शक्त्योरिति पाठं केचित् पठन्ति । तन्मते अविद्यमाना शक्तिर्यस्येति विग्रहे समासेऽचि इलोपे अशक्तः इति भवति । **नित्यमसिच्**-नञ्दुःसुभ्यामित्यामित्यनुवर्तते । एतेभ्यः परयोः प्रजामेधयोः समासान्तः असिच् भवति बहुव्रीहावित्यर्थः । **अप्रजाः**—अविद्यमानाः प्रजाः यस्येति विग्रहे नञोऽस्त्यर्थानामिति समासः, विद्यमाना इत्यस्य च लोपः, असिच् । अस् इत्यवशिष्यते । यस्येति चेति प्रजायाः आकारलोपः। अप्रजस् इत्यस्य सौ अत्वसन्तस्येति दीर्घे सुलोपे सस्य रुत्वे विसर्गे च रूपम् । एवमेव अविद्यमाना मेधा यस्येति अमेधाः, असिजादि पूर्ववत् । **धर्मादनिच्**—केवलादित्यस्य संगत्यै पूर्वपदादिति अध्याह्रियते । **अत आह**—पूर्वपदाद्यो इत्यादि । **कल्याणधर्मा**—कल्याणः धर्मो यस्येति विग्रहे समासः, अनिच्, अन् इत्यवशिष्यते । भत्वादकारलोपः । कल्याणधर्मन् इत्यस्य सौ सर्वनामस्थाने इति उपधादीर्घे सुलोपे नलोपे च रूपम् । **केवलात् किमिति**—यद्येतन्नोच्येत तदा परमः स्वो धर्मो यस्येति परमस्वधर्मः इत्यत्र धर्मशब्दस्य केवलपूर्वपदत्वं नास्ति यतो हि धर्मापेक्षया स्वस्य पूर्वपदत्वं, तस्मादपि पूर्वपदत्वं परमशब्देऽस्ति । अतः अनिचः प्रसङ्गापत्तिः स्यात्, तन्निवृत्त्यर्थं केवलादिति पदमस्ति ।

हिन्दी

वा. वि उपसर्ग से परे नासिका को ख्य आदेश होता है, बहुव्रीहि में ।

१५५७. नञ् दुस् तथा सु से परे हलि एवं सक्थि से समासान्त अच् होता है बहुव्रीहि में विकल्प से ।

१५५८. नञ् दुस् एवं सु से परे प्रजा एवं मेधा से असिच् प्रत्यय होता है ।

१५५९. केवल पूर्वपद वाले धर्म शब्द से समासान्त अनिच् प्रत्यय होता है बहुव्रीहि में।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५६०. प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः-५।४।१२९।। प्रज्ञुः । संज्ञुः ।
१५६१. ऊर्ध्वाद्विभाषा-५।४।१३०।। । ऊर्ध्वज्ञुः । ऊर्ध्वजानुः ।
१५६२. ऊधसोऽनङ्-५।४।१३१-कुण्डोध्नी ।
१५६३. धनुषश्च-५।४।१३२।। धनुरन्ताद् बहुव्रीहेरनङादेशः । शार्ङ्गधन्वा ।
१५६४. वा संज्ञायाम्-५।४।१३३।। शतधन्वा, शतधनुः ।
१५६५. जायाया निङ्-५।४।१३४।। जायान्तस्य बहुव्रीहेर्निङादेशः ।
१५६६. लोपो व्योर्वलि-६।१।६६।। युवतिर्जाया यस्य-युवजानिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रसंभ्यामिति—प्र सम् इति द्वित्वनिर्देशात् जानुनोरिति द्विवचननिर्देशः । प्रसंभ्यां परस्य जानु शब्दस्य ज्ञुः आदेशो भवति समासान्तः, बहुव्रीहौ । **प्रज्ञुरिति**—प्रगते जानुनी यस्येति प्रादिभ्यो धातुजस्येति समासः, गत इत्यस्य लोपश्च । सुपो लुकि जानोः ज्ञुरादेशः । **संज्ञुः**—संगते जानुनी यस्येति विग्रहे सर्वं पूर्ववत् । **ऊर्ध्वाद् इति**—जानुनोर्ज्ञुः विकल्पेनेत्यर्थः । **ऊर्ध्वज्ञुः**-ऊर्ध्वे जानुनी यस्येति विग्रहे समासे ज्ञुरादेशः । पक्षे ऊर्ध्व-जानुः । **ऊधसोऽनङ्**—ऊधस्-शब्दान्तस्य बहुव्रीहेरनङ्ङादेशो भवतीत्यर्थः । **कुण्डोध्नी**—कुण्डम् इव ऊधोऽस्याः इति विग्रहे समासे सुपो लुकि ऊधसोऽनङिति ऊधसः सकारस्यानङ्, पररूपम्, कुण्ड ऊधन् इति, आद्गुणः, ऋन्नेभ्यो ङीप् । भत्वात् अल्लोपोऽनः इति अनोऽकारस्य लोपः, सुः, तस्य हल्ङ्यादिलोपः । **धनुषश्च**—अनङ् इत्यनुवर्तते । **शार्ङ्गधन्वा**—शृङ्गस्येदं शार्ङ्गम्, तस्येदमित्यण् । शार्ङ्गं धनुर्यस्येति बहुव्रीहिः, धनुषश्चेत्यनङ् सकारस्य स्थाने । शार्ङ्गधनु अन् इति । इको यणचि, सौ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ इति दीर्घः । सोर्हल्ङ्यादिलोपः, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः । **वा संज्ञायाम्**—धनुषः अनङ्ङादेशः विकल्पेन संज्ञायां बहुव्रीहौ समासे इत्यर्थः । **शतधन्वा**—शतं धनूंषि यस्येति समासः, विकल्पेन अनङ्, शेषं पूर्ववत् । पक्षे शतधनुरिति । **लोपो व्योर्वलि**—भ्वादौ व्याख्यातम् । व्योरिति वकारयकारयोः द्वन्द्वे षष्ठी द्विवचनम्, तयोर्लोपः, वलादौ प्रत्यये परे इत्यर्थः । **युवजानिः इति**—युवतिर्जाया यस्येति विग्रहे युवति सु जाया सु इत्यलौकिकविग्रहे ऽनेकमन्यपदार्थे इति समासः । जायाया निङ् इति निङ् प्रत्ययो यद्यपि परस्तथापि ङित्त्वाद् जाया इत्याकारस्य स्थाने भवति, लोपो व्योर्वलीति यलोपः । स्त्रियाः पुंवद्भाषित इति युवतिइत्यस्य पुंवत्, तेन ति इत्यस्य निवृत्तिः, 'नलोपः' इति नस्य लोपः, सौ रूपम् ।

हिन्दी

१५६०. प्र और सम् से परे ज़ानु को ज्ञु आदेश होता है, बहुव्रीहि समास में ।
१५६१. ऊर्ध्व से परे जानु को ज्ञु होता है विकल्प से, बहुव्रीहि समास में ।
१५६२. ऊधसन्त बहुव्रीहि को अनङ् आदेश होता है ।
१५६३. धनुष् अन्त वाले बहुवीहि को अनङ् होता है ।
१५६४. संज्ञा में धनुरन्त बहुवीहि को अनङ् होता है, विकल्प से ।
१५६५. जाया शब्दान्त बहुवीहि को निङ् आदेश होता है ।
१५६६. वकार यकार का लोप होता है वलादि परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५६७. गन्धस्येदुत्-पूति-सु-सुरभिभ्यः-५।४।१३५॥ उद्गन्धिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः ।

१५६८. उपमानाच्च-५।४।१३७॥ पद्मस्येव गन्धोऽस्य पद्मगन्धिः ।

१५६९. वयसि दन्तस्य दतृ-५।४।१४२॥ संसुपूर्वस्येत्येव । द्विदन् । चतुर्दन् ।

१५७०. अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च-५।४।१४५॥ एभ्यो दन्तस्य दतृ वा । कुड्मलाग्रदन्तः, कुण्ड्मलाग्रदन्, ।

१५७१. उरःप्रभृतिभ्यः कप्-५।४।१५१॥ व्यूढोरस्कः प्रियसर्पिष्कः ।

ग. सू. अर्थान्नञः ॥ अनर्थकम् । नञः किम्-अपार्थम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

गन्धस्येत्—उत् पूति सु सुरभि इत्येतेभ्यः परस्य गन्धशब्दस्य इकारोऽन्तादेशः स्याद् बहुव्रीहौ इत्यर्थः । इत् इत्यत्र तकार उच्चारणार्थः । **उद्गन्धिः**—उद्गतो गन्धो यस्येति विग्रहे प्रादिभ्य इति समासः गतस्य लोपश्च । गन्धस्यान्त्यस्य इत् । सौ रुत्वे विसर्गे च रूपम् । पूतो गन्धो यस्येति पूतिगन्धिः । शोभनो गन्धो यस्येति सुगन्धिः । सुरभिः गन्धो यस्येति सुगन्धिः । सर्वत्र बहुव्रीहौ कृते इत्वम् ! सर्वे शब्दाः वायोः विशेषणानि । **उपमानाच्चेति**—गन्धस्येत् इत्यनुवर्तते। उपमानात् परस्य गन्धस्य इकारोऽन्तादेशः बहुव्रीहावित्यर्थः । पद्मगन्ध इव गन्धो यस्येति विग्रहे सप्तम्युपमानपूर्वदस्येति समासः, गन्धस्य लोपश्च, इत्वम् । मूले पद्मस्येवेत्यादि तु फलितार्थ-कथनं वर्तते । **वयसि इति**—संख्या सुपूर्वस्येत्य नुवर्तते । दन्तस्य दतृ आदेशो भवतीत्यर्थः। ऋकार इत् । **द्विदन्**—द्वौ द्वन्तौ यस्येति समासः, दतृ आदेशः । उगिदचामिति नुम्, द्विदन्त् इति, सौ सोर्लोपे तस्य संयोगान्तलोपे च द्विदन् इति । चत्वारो दन्ताः यस्येति पूर्ववत् समासः, **दतृ**—आदेशः, नुम्, सुलोपः संयोगान्त लोपः । संयोगान्त लोपस्यासिद्धत्वात् दीर्घो न । **अग्रान्तेति**—दन्तस्य दतृ इत्यनुवर्तते । अग्रः अन्ते यस्य सः अग्रान्तः । **कुड्मलाग्रदन्-** कुड्मलानाम्-मुकुलानाम् अग्राणि इव दन्ता यस्येति विग्रहे समासः । दतृ आदेशः, नुम्, सुः, सुलोपसंयोगान्तलोपौ । **व्यूढोरस्कः**—व्यूढम् उरः यस्येति समासः । व्यूढोरस् शब्दात् कः, सस्य रुत्वविसर्गयोः कृतयोः सोऽपदादौ इति सत्वम् । प्रिय सर्पिः यस्येति प्रियसर्पिः, कप्, इणः षः इति विसर्गस्य षत्वम् । **अर्थान्नञ इति**—नञः परो योऽर्थशब्दस्तदन्ताद् बहुव्रीहेः कप् इत्यर्थः। अविद्यमानः अर्थः यस्येति विग्रहे नञोऽस्त्यर्थानामिति समासः विद्यमानस्य च लोपः । नुट्। अर्थान्नञ इति कप् । **अपार्थम् इति**— अपगतः अर्थो यस्मादिति विग्रहः । अत्र अप इत्युपसर्गः, तस्मान्न कप् ।

हिन्दी

१५६७. उत् पूति सु और सुरभि से परे गन्ध को इकारान्त आदेश होता है बहुव्रीहि समास में ।

१५६८. उपमान वाची से परे गन्धान्त बहुव्रीहि को इकारान्त आदेश होता है ।

१५६९. संख्या और सुपूर्वक दन्त को दतृ आदेश होता है अवस्था अर्थ में, बहुव्रीहि समास में ।

१५७०. अग्रान्त शुद्धादि से परे दन्त को दतृ आदेश होता है ।

१५७१. उरः प्रभृति शब्द से बहुव्रीहि में 'कप्' होता है ।

ग.सू. नञ् से परे अर्थान्त बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५७२. इनः स्त्रियाम्-५।४।१५२।। इन्नन्ताद् बहुव्रीहेः कप् । बहुदण्डिका नगरी।
प. अनिनस्मिन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ।। बहुवाग्मिका ।
१५७३. शेषाद् विभाषा-५।४।१५४।। अनुक्तसमासान्ताद् बहुव्रीहेः कप् वा । महायशस्कः । महायशाः । अनुक्तेत्यादि किम्-व्याघ्रपाद् ।
१५७४. आपोऽन्यतरस्याम्-७।४।११५।। कपि ह्रस्वः । बहुमालकः । बहुमालाकः। कबभावे बहुमालः ।
१५७५. न संज्ञायाम्-५।४।१५५।। शेषादिति प्राप्तः कब् न । विश्वेदेवा अस्य-विश्वदेवः ।
१५७६. ईयसश्च-५।४।१५६।। ईयसन्तोत्तरपदान्न कप् । बहवः श्रेयान्सोऽस्य बहुश्रेयान् । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वे प्राप्ते-

मध्यमनोरमापूरणी

बहुदण्डिका—बहवः दण्डिनः यस्यां नगर्यामिति विग्रहे समासः । सुपो लुक् । बहुदण्डिन् इत्यस्मात् इनः स्त्रियामिति कप्, नलोपः । स्त्रीत्वाट्टाप्, दीर्घः । **बहुवाग्मिका**—वाक् अस्यास्तीति अर्थे वाचो ग्मिनिः इति ग्मिनि प्रत्ययः , इकारः उच्चारणाय । नस्येत्संज्ञा । चोः कुरिति चस्य कः, जश्त्वम् । बहवः वाग्मिनः यस्यामिति विग्रहे समासः । बहुवाग्मिन् इत्यत्र इनोऽनर्थकत्वेऽपि अनिनस्मिन् परिभाषया तदन्तविधौ सति इनः स्त्रियामिति कप् । नलोपः, स्त्रीत्वाट्टाप्, दीर्घः । **शेषाद् इति**—अस्मात् पूर्वं येभ्यः समासान्तप्रत्ययाः कृताः तेभ्योऽन्यः शेषः, तस्मात् विकल्पेन कप् इत्यर्थः । **महायशस्कः**—महत् यशः यस्येति विग्रहे समासः । आन्महतः इति तस्यात्वे दीर्घः, कप्, सस्य रुत्वविसर्गयोः कृतयोः सोऽपदादौ इति सत्वम् । कबभावे अत्वसन्तस्येति दीर्घः, सुलोपः, सस्य रुत्वविसर्गौ । **व्याघ्रपाद् इति**—अत्र पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य इति अलोपः, तस्मान्नात्र कब् भवति । शेषपदाभावे कप् प्रसज्येतेति भावः। **आपोऽन्यतरस्यामिति**—न कपि इत्यतः कपीत्यनुवर्तते । प्रत्ययग्रहणे तदन्ताः ग्राह्या इति आपः इत्यस्य आबन्तस्येत्यर्थः । कपि आबन्तस्य ह्रस्वो वेत्यर्थः । **बहुमालकः**—बह्व्यः मालाः यस्येति समासः, पुंवत् । शेषादिति कप्, ह्रस्वः । पक्षे बहुमालाकः । कबभावे गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः, बहुमालः इति । **विश्वदेवः**—विश्वे देवा यस्य, विश्व जस् देवा जस् इत्यलौकिकविग्रहे समासः । सुपो लुक् । शेषाद्विभाषेति प्राप्तः कप् संज्ञायां न संज्ञायामिति निषिद्धः । **ईयसश्च**-बहुव्रीहिणा उत्तरपदादिति आक्षिप्यते, यतो हि बहुश्रेयसी शब्दे श्रेयसीशब्द एव प्रत्ययग्रहण-परिभाषया ईयसन्तः । **अत आह**—ईयसन्तोत्तरपदादित्यादि । **बहुश्रेयान्**—बहवः श्रेयान्सो यस्येति विग्रहे समासः । ईयसश्चेति कपो निषेधः । सौ नुमि सान्तमहतः इति दीर्घः, सुलोपः, सस्य संयोगान्तलोपः ।

हिन्दी

१५७२. इन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में 'कप्' होता है । परि. अन् इन् अस् मन् जहाँ हो वहाँ अर्थवान् या अनर्थक दोनों से तदन्तविधि हो जाती है ।
१५७३. अनुक्त समासान्त बहुव्रीहि से कप् प्रत्यय होता है, विकल्प से ।
१५७४. कप् प्रत्यय परे आबन्त को ह्रस्व होता है, विकल्प से ।
१५७५. शेषाद् विभाषा से प्राप्त कप् प्रत्यय संज्ञा में नहीं होता है ।
१५७६. ईयसन्तोत्तरपद बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. ईयसो बहुव्रीहेर्न ।। बहुश्रेयसी । बहुव्रीहेः किम्-अतिश्रेयसिः ।
१५७७. वन्दिते भ्रातुः-५।४।१५७।। पूजार्थभ्रात्रन्ताद् न कप् । प्रशस्तो भ्राता अस्य प्रशस्तभ्राता । सुभ्राता । वन्दिते किम्- मूर्खभ्रातृकः । नद्यृतश्चेति कप् ।
वा. सर्वनामसंख्ययोर्बहुव्रीहौ पूर्वनिपातः ।। सर्वश्वेतः । द्विशुक्लः ।
वा. संख्यायाः अल्पीयस्याः ।। द्वित्राः । वा. द्वन्द्वेऽपि ।। द्वादश ।
वा. वा प्रियस्य ।। गुडप्रियः, प्रियगुडः ।
वा. गड्वादेः परा सप्तमी।। गडुकण्ठः । क्वचिंन्न-वहेगडुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ईयसो बहुव्रीहेर्नेति—ईयसन्तोत्तरपदस्य बहुव्रीहेः ह्रस्वो न भवतीत्यर्थः । **बहुश्रेयसी**—बह्व्यः श्रेयस्यो यस्येति विग्रहे समासे सुपो लुकि, बह्वीत्यस्य स्त्रियाः पुंवदिति पुंवत्, श्रेयसीत्यस्य गोस्त्रियोरिति ह्रस्वे प्राप्ते ईयसो बहुव्रीहेर्नेति निषिध्यते । **अतिश्रेयसिः**—अतिक्रान्तः श्रेयसीमिति विग्रहे तत्पुरुषः, गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । यदि बहुव्रीहेर्नेति नोच्येत तदाऽत्रापि ह्रस्व-निषेधः स्यादित्याशयः । **वन्दिते इति**—वन्दितः पूजितः स्तुतः इति । वन्दितेऽर्थे यो भ्रातृ-शब्दान्तः बहुव्रीहिः तस्मात् कप् नेत्यर्थः । **प्रशस्तभ्राता**—समासे कृते प्रशस्तभ्रातृ इत्यस्मात् नद्यृतश्चेति कपि प्राप्तेऽनेन निषेधः क्रियते । सौ अनङि दीर्घे सुलोपे नलोपे च रूपम् । **वन्दिते किमिति**—यद्येतन्नोच्येत तदा मूर्खो भ्राता यस्येति मूर्खभ्रातृक इत्यत्रापि कपो निषेधः स्यात्। **सर्वश्वेतः**—सर्वः श्वेतः यस्येति समासः । सर्वश्वेत इत्युभयोरपि गुणवचनत्वात् विशेषणविशेष्यभावे कामचारो भवति, तत्र कस्यापि पूर्वं प्रयोगः कर्तुं शक्यते, किन्तु सर्वनाम-संख्ययोरित्यनेन सर्वनाम्नः सर्वस्य पूर्वं प्रयोगो निर्धारितः । **द्विशुक्लः**—द्वौ शुक्लौ यस्येति विग्रहे समासः । उभयोरपि पूर्वप्रयोगे प्राप्तेऽनेन संख्याशब्दस्य द्वि इत्यस्य पूर्व प्रयोगः । **संख्याया इति**—संख्यावाचकानामेव बहुव्रीहौ अल्पीयस्याः पूर्वं प्रयोगो भवतीत्यर्थः । **द्वित्रा इति**—द्वौ वा त्रयो वेति विग्रहे संख्ययाऽव्ययासन्नेति समासेऽनेन द्विशब्दस्यैव पूर्वप्रयोगः । डच्, इकारलोपः, जसि रूपम् । **द्वन्द्वेऽपि**—अल्पीयस्याः संख्यायाः पूर्वप्रयोगो भवतीत्यर्थः । **द्वादश**—द्वौ च दश चेति विग्रहे चार्थे द्वन्द्व इति समासः । सुपो लुक् । उभयोः कस्यापि पूर्व-प्रयोगे प्राप्तेऽनेन द्विशब्दस्यैव पूर्वप्रयोगः, द्व्यष्टनः इत्यात्वम् । **वा प्रियस्येति**—बहुव्रीहौ प्रियस्य पूर्वं प्रयोगो भवति विकल्पेनेत्यर्थः । गुडप्रियः, **प्रियगुडः इति**-गुडः प्रियो यस्येति विग्रहे समासः । प्रियस्य पूर्वनिपाते प्रियगुडः इति । पक्षे गुडप्रिय इति । **गड्वादेः इति**—बहुव्रीहौ गड्वादेः परा सप्तमी प्रयोक्तव्येत्यर्थः । **गडुकण्ठः**—कण्ठे गडुः यस्येति विग्रहे समासः । गड्वादेरिति कण्ठस्य सप्तम्यन्तस्य परनिपातः । **क्वचिन्नेति**—न प्रवर्तते इत्यर्थः । **तेन वहे**= स्कन्धे गडुः = दुर्मांसगोलः यस्येत्यत्र समासे नेदं प्रवर्तते ।

हिन्दी

वा. ईयसन्तोत्तर पद बहुव्रीहि में स्त्रीप्रत्ययान्त को ह्रस्व नहीं होता है ।
१५७७. पूजार्थक भ्रातृशब्दान्त बहुव्रीहि से कप् नहीं होता है ।
वा. बहुव्रीहि में सर्वनाम एवं संख्यावाचक का पूर्वप्रयोग होता है ।
वा. संख्यावाचकों के बहुव्रीहिसमास में न्यूनसंख्यावाचक का पूर्व प्रयोग होता है ।
वा. द्वन्द्व में भी न्यूनसंख्यावाचक का पूर्व प्रयोग होता है ।
वा. गड्वादि से परे सप्तम्यन्त का प्रयोग होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५७८. निष्ठा-२।२।३६।। निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । कृतकृत्यः ।
वा. जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या ।। सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजाता ।
२५७९. वाहिताग्न्यादिषु-२।२।३७।। आहिताग्निः,अग्न्याहितः । आकृतिगणोऽयम् ।

।। इति बहुव्रीहिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा इति गृह्यते । प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः इति नियमात् निष्ठान्तमित्यर्थः । बहुव्रीहौ पूर्वं प्रयोक्तव्य इति । **कृतकृत्यः**—कृतं कृत्यं येनेति विग्रहे समासः, कृतस्य निष्ठा इत्यनेन पूर्वप्रयोगः । **सारङ्गजग्धी**—सारङ्गः जग्धः ययेति विग्रहे समासः । जातेः परो निष्ठान्तः जातिकालेत्यादिना कृतः । अस्वाङ्गपूर्वेति ङीष् । **कालपरात् यथा**—मासः जातः यस्याः इति मासजाता । स्त्रीत्वाट्टाप् । सुखं जातं यस्याः इति **सुखजाता । वा आहिताग्न्यादिषु**—निष्ठायाः पूर्वं प्रयोगः वा स्यादित्यर्थः । तेन आहितः अग्निः येनेति विग्रहे आहिताग्निः इति, पक्षे अग्न्याहित इति भवति ।

हिन्दी

१५७८. बहुव्रीहि में निष्ठान्त का पूर्व प्रयोग होता है ।
वा. जाति काल एवं सुखादि से परे निष्ठान्त का प्रयोग कहना चाहिये ।
१५७९. आहिताग्नि आदि आकृतिगण हैं, इनमें निष्ठान्त का पूर्व प्रयोग होता है, विकल्प से ।

।। इति बहुव्रीहिसमासः ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्वन्द्वसमासः

१५८०. चार्थे द्वन्द्वः-२।२।२९।। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः । समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । भिक्षामट गां चानयेति अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयोरसामर्थ्यात् समासो न । धवखदिरौ छिन्धि इति मिलितानामन्वयः इतरेतरयोगः । संज्ञापरिभाषमिति समाहारः = समूहः ।

१५८१. राजदन्तादिषु परम्-२।२।३१।। एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः । वा. धर्मादिष्वनियमः ।। अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ । दम्पती । जम्पती। जायापती। जायाशब्दस्य दम्भावो जम्भावश्च वा निपात्यते । आकृतिगणोऽयम्।

मध्यमनोरमापूरणी

चार्थे द्वन्द्व इति—समास इत्यस्य विभाषा इत्यस्य चाधिकारोऽस्ति, अनेकमन्यपदार्थे इत्यतः अनेकमिति 'सुबामन्त्रिते' इत्यतश्च 'सुब्' इन्यनुवर्तते । **अत आह वृत्तौ**—अनेकं सुबन्तमित्यादि । **चार्थे इति**—च इत्यस्य अर्थे समासो भवति द्वन्द्वः, तत्र कश्चार्थ इति जिज्ञासायामुक्तम्-समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः इति । समुच्चयेऽन्वाचये च सामर्थ्याभावान्न समासो भवति । समासश्च सामर्थ्ये एव भवति । अत एव ईश्वरं गुरुं च भजस्वेत्यत्र न समासः । अत्र चार्थः समुच्चयः । **यतो हि**—एकस्मिन् क्रियापदे भजस्वेत्यत्र पूर्वम् ईश्वरमित्यस्यान्वयः, तदनु च गुरुम् इत्यस्यान्वयः । ईश्वरगुरुशब्दौ चात्र परस्परनिरपेक्षौ स्तः । भिक्षामट गां चानयेत्यत्र अन्वाचयेऽपि न समासः । यत्र अन्यतरस्य पदस्य एकस्मिन् क्रियापदे उद्देश्यत्वेनान्वयो भवति तत्र अन्वाचयः चार्थो भवति । एवंविधस्थले सामर्थ्याभावान्न समासः । **धवखदिरौ छिन्धि**—धवश्च खदिरश्चेति विग्रहे चार्थे द्वन्द्व इति समासः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । प्रथमाद्विवचनें रूपम् । द्वन्द्वे उभयोः पदार्थयोः प्राधान्याद् द्विवचनम् । अत्र परस्परापेक्षितानां मिलितानाम् एकस्मिन् क्रियापदेऽन्वयः, अतः इतरेतरयोगः चार्थो भवति । अत्र परस्परं साहित्यसूचकञ्चकारद्वयं प्रयुक्तम् । **समाहारः** समूहः, परस्परसाहित्यं भवति । **यथा**—संज्ञा च परिभाषा च तयोः समूह इति । **राजदन्तादिषु**—राजदन्तादिषु पूर्वप्रयोगार्हमुपसर्जनं परं प्रयोक्तव्यम् इत्यर्थः । न केवलमुसर्जनस्य अपितु अन्यस्यापि यथाशास्त्रं विहितस्य पूर्वनिपातस्य अपवादोऽयं योगः । **राजदन्तादिगणे विष्वक्सेनार्जुनौ**—अक्षिभुवमित्यादि द्वन्द्वस्योदाहरणानि अपि पठितानि, तस्मात् द्वन्द्वे अस्य सूत्रस्योपन्यासः कृतः । **राजदन्तः**—दन्तानां राजेति विग्रहे षष्ठीसमासः, दन्तस्योपसर्जनत्वात् पूर्वनिपाते प्राप्तेऽनेन परनिपातः क्रियते,

हिन्दी

१५८०. च के अर्थ में विद्यमान अनेकों सुबन्तों का विकल्प से समास होता है तथा वह द्वन्द्व कहलाता है । चार्थ चार हैं-समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार । समुच्चय एवं अन्वाचय जब च का अर्थ होता है तब वहाँ सामर्थ्य के नहीं रहने से समास नहीं होता है ।

१५८१, राजदन्तादिगण में पूर्व प्रयोगार्ह का पर प्रयोग होता है ।

वा. धर्मादि में पूर्व पर नियम नहीं है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५८२. द्वन्द्वे घि-२।२।३२॥ द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिहरौ ।
१५८३-अजाद्यदन्तम्-२।२।३३॥ ईशकृष्णौ ।
१५८४. अल्पाच्तरम्-२।२।३४॥ शिवकेशवौ ।
वा. ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण ॥ हेमन्तशिशिरवसन्ताः । कृत्तिकारोहिण्यौ । समाक्षराणां किम्-ग्रीष्मवसन्तौ ।
वा. लघ्वक्षरं पूर्वम् ॥ कुशकाशम् ।
वा. अभ्यर्हितं च ॥ तापसपर्वतौ ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य नलोपः । **धर्मादिष्वनियमः**—धर्मादिषु कस्यापि पूर्वप्रयोगः कर्तुं शक्यः इति भावः । अर्थश्च धर्मश्च इति विग्रहे अर्थ सु धर्म सु इत्यनयोः चार्थे द्वन्द्व इति समासः। धर्मादिष्विति वचनात् अर्थस्य पूर्वप्रयोगे अर्थधर्मौ इति । धर्मस्य पूर्वप्रयोगे सवर्णदीर्घे धर्मार्थौ इति । **दम्पती जम्पती इति**—जाया च पतिश्चेति द्वन्द्वः, जायाशब्दस्य दम्भावे द्विवचने दम्पती इति,जायाशब्दस्य जम्भावे जम्पती इति भवति । अत्र अभ्यर्हितं पूर्वमिति नियमात् पत्युः पूर्वप्रयोगः प्राप्तः, राजदन्तादिषु इति परनिपातः क्रियते । **हरिहरौ**—हरिश्च हरश्चेति विग्रहे चार्थे द्वन्द्वः इति समासः, सुपो लुक् । द्वन्द्वे घि इति हरिशब्दस्य पूर्वप्रयोगः । प्रथमाद्विवचने रूपम्। **अजाद्यदन्तम्**-द्वन्द्वे इत्यनुवर्तते । द्वन्द्वे अजाद्यदन्तं च शब्दरूपं पूर्वं प्रयुज्यते इति भावः । **ईशकृष्णौ**—ईशश्च कृष्णश्चेति समासः । उभयोः पूर्वप्रयोगे प्राप्ते अजाद्यदन्तमिति अजादेरदन्त-स्येशशब्दस्य पूर्वप्रयोगः । **अल्पाच्तरम्**—द्वन्द्वे इत्यनुवर्तते । अल्पः अल्पसंख्यः अच् यस्मिन्, तदल्पाच्, तदेव अल्पाच्तरम् । स्वार्थे, अत एव निपातनात् तरप्, कुत्वस्य च अभावो भवति। अल्पसंख्याच्पदं द्वन्द्वे पूर्वं प्रयोज्यमित्यर्थः । **शिवकेशवौ**—शिव सु केशव सु इत्यनयोः चार्थे द्वन्द्व इति समासः, अल्पाच्तरमिति शिवस्य पूर्वप्रयोगः । द्विवचने प्रथमायाः रूपम् । **ऋतुनक्षत्रेति**- समानाच्संख्यावताम् ऋतूनां नक्षत्राणां च आनुपूर्व्येण पूर्वप्रयोगो भवतीत्यर्थः। **हेमन्तशिशिरवसन्ताः**—हेमन्तश्च शिशिरश्च वसन्तश्चेति विग्रहे द्वन्द्वः । ऋतुनक्षत्राणामिति आनुपूर्व्येण पूर्वप्रयोगः । कृत्तिका च रोहिणी चेति **कृत्तिकारोहिण्यौ । नक्षत्रवाचके एते । ग्रीष्मवसन्तौ**—समाक्षराणामित्येतन्नोच्येत तदा वसन्तस्य पूर्वनिपातः स्यात् । विषमाक्षरत्वान्न वसन्तस्यानेन न्यायेन पूर्वं प्रयोगः कृतः । **लघ्वक्षरम्-लघु अक्षरं**—यस्य, तत् द्वन्द्वे पूर्वं प्रयोज्यमिति । **कुशकाशम्**—कुशः च काशश्चेति तयोः समाहारः । लघ्वक्षरं पूर्वमिति कुशस्य पूर्वप्रयोगः । **अभ्यर्हितञ्च**—अभ्यर्हितः श्रेष्ठः । द्वन्द्वे श्रेष्ठः पूर्वं प्रयोज्यः इत्यर्थः । **तापसपर्वतौ**-तापसश्च पर्वतश्चेति, चार्थे द्वन्द्वः । पर्वतः स्थावरः, तदपेक्षया तापसः श्रेष्ठः, अतः तस्यैव पूर्व-प्रयोगो जातः । मातापितरौ इत्यपि अस्योदाहरणम् । पित्रपेक्षया मातुः श्रेष्ठत्वात् ।

हिन्दी

१५८२. द्वन्द्व में घिसंज्ञक का पूर्वप्रयोग होता है ।
१५८३. द्वन्द्व में अजादि एवं अदन्त का पूर्वप्रयोग होता है ।
१५८४. द्वन्द्व में अल्प अच् वाले का पूर्व प्रयोग होता है ।
वा. समानाक्षर ऋतु व नक्षत्रवाची का क्रम से प्रयोग होता है ।
वा. द्वन्द्व में लघु अक्षर वाले का पूर्व प्रयोग होता है ।
वा. श्रेष्ठवाचक पद का द्वन्द्व में पूर्व प्रयोग होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. वर्णानामानुपूर्व्येण ।। ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः ।
वा. भ्रातुर्ज्यायसः ।। युधिष्ठिरार्जुनौ ।
१५८५. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्-२।४।२।। एषां द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम् । रथिकाश्वारोहम् ।
१५८६. अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम्-२।४।५।। अध्ययनेन प्रत्यासन्ना आख्या येषां तेषां द्वन्द्व एकवत् । पदकक्रमकम् ।
१५८७. जातिरप्राणिनाम्-२।४।६।। प्राणिवर्जजातिवाचिनां द्वन्द्व एकवत् । धानाशष्कुलि । प्राणिनां तु विट्शूद्राः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः—ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च विट् च शूद्रश्चेति विग्रहः, चार्थे द्वन्द्वः । वर्णानां ब्राह्मणादीनां यथाक्रमं पूर्वप्रयोगः । **भ्रातुरिति**—ज्येष्ठस्य पूर्वप्रयोगः । युधिष्ठिरश्च अर्जुनश्चेति विग्रहे समासे युधिष्ठिरस्य पूर्वप्रयोगः । द्वन्द्वे घि अजाद्यदन्तम् इति सूत्रद्वयम् अल्पाच्तरम्, लघ्वक्षरं पूर्वम् इत्यादिभिः परत्वात् बाध्यते । **द्वन्द्वश्चेति**—द्विगुरेकवचनमित्यतः एकवचनमित्यनुवर्तते । प्राणितूर्यसेनानामङ्गानि, तेषामिति । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणस्य अङ्गशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धः । प्राण्यङ्गानां तूर्याङ्गानां सेनाङ्गानाञ्च द्वन्द्व एकवद् भवतीत्यर्थः । **पाणिपादम्**—पाण्योः पादयोः च समाहारः, पाणि ओस् पाद ओस् इत्यनयोः समाहारद्वन्द्वः । सुपो लुक् । द्वन्द्वश्चेति एकवद्भावः, स नपुंसकमिति नपुंसकत्वं, सोरम् अमिपूर्वः । **मार्दङ्गिकवैणविकम्**—मृदङ्गवादकः वेणुवादकश्च मार्दङ्गिकवैणविकमुच्यते । मार्दङ्गिकानां वैणविकानाञ्च समाहारः इति विग्रहे समासादिकं पूर्ववत् । **रथिकाश्वारोहम्**—रथेन चरन्ति इति रथिकाः, रथिकानाम् अश्वारोहाणां च समाहारः, एकवद्भावः, स नपुंसकमित्यादि पूर्ववत्। **अध्ययनतः**—तृतीयार्थे तसिः । अध्ययनेन अविप्रकृष्टानां=प्रत्यासन्नानां द्वन्द्व एकवद् भवतीत्यर्थः । **पदकक्रमकम्**—पदानि अधीयते इति पदकाः, क्रमान् अधीयते इति क्रमकाः, वुन्प्रत्ययान्तौ एतौ । पदकानां क्रमकाणां च समाहारः, इति विग्रहः । अध्ययनत इति एकवत्, स नपुंसकम्, सोरम्, पूर्वरूपम् । **जातिरप्राणिनाम्**—जातिरिति षष्ठीबहुवचन-स्थाने प्रथमा । प्राणिभिन्नजातिवाचिनां द्वन्द्वः एकवत् इत्यर्थः । **धानाशष्कुलि**—धानानां शष्कुलीनाञ्च समाहारः इति विग्रहे धानाआम् शष्कुलिआम् इत्यनयोः चार्थे समाहारद्वन्द्वः, जातिरप्राणिनामिति एकवत्, नपुंसकत्वम्, सुः, तस्य स्वमोरिति लुक् । विशश्च शूद्राश्चेति द्वन्द्वः । प्राणिवाचित्वात् जातिवाचकत्वेऽपि नैकवत् ।

हिन्दी

वा. वर्णवाचकों का क्रमशः पूर्वप्रयोग होता है ।
वा. द्वन्द्व समास में ज्येष्ठ भाई का पूर्वप्रयोग होता है ।
१५८५. प्राण्यङ्गवाची तूर्याङ्गवाची व सेनाङ्गवाची का द्वन्द्व एकवत् होता है ।
१५८६. अध्ययन से समीपस्थ पदार्थों के मध्य होने वाला द्वन्द्व समास एकवत् होता है ।
१५८७. प्राणिभिन्नजातिवाचक शब्दों का द्वन्द्व समास एकवत् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५८८. विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः-२।४।७।। ग्रामवर्जनदीदेशवाचिनां भिन्नलिङ्गानां द्वन्द्व एकवत् । उध्यश्च इरावती च उध्येरावति । गङ्गाशोणम् । कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च कुरुकुरुक्षेत्रम् ।

१५८९. क्षुद्रजन्तवः-२।२।८।। एषां द्वन्द्व एकवत् । यूकालिक्षम् । आनकुलात् क्षुद्रजन्तवः ।

१५९०. येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः-२।४।९।। प्राग्वत् । अहिनकुलम् । गोव्याघ्रम् । काकोलूकमित्यादौ परत्वाद् विभाषावृक्षेति प्राप्तं चकारेण बाध्यते।

१५९१. शूद्राणामनिरवसितानाम्-२।४।१०।। अबहिष्कृतानां शूद्राणां द्वन्द्वः प्राग्वत् । तक्षायस्कारम् । पात्राद् बहिष्कृतानां तु चण्डालमृतपाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विशिष्टलिङ्गेति—एकवचनमित्यनुवर्तते, द्वन्द्व इत्यस्याधिकारः । विशिष्टं (भिन्नं) लिङ्गं येषाम् इति विग्रहः । व्यत्यनेन बहुवचनस्थाने एकवचनम् । **अग्रामाः**—ग्रामवाचकभिन्नाः, भिन्नलिङ्गाः, नदीवाचकाः, देशवाचकाश्च ये सन्ति तेषां द्वन्द्व एकवदित्यर्थः । **उध्येरावति**—ऊध्य सु इरावती सु इत्यनयोः समाहारद्वन्द्वः, सुपो लुक्, विशिष्टलिङ्गेति एकवत्, स नपुंसकम्, ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः, गुणः, उध्येरावति इति, सोर्लुक् । **गङ्गाशोणम्**—गङ्गायाः शोणस्य च समाहारः। एकवत्, नपुंसकत्वम्, सोरम् । **कुरुकुरुक्षेत्रम्**—कुरुजस् कुरुक्षेत्रजस् इत्यनयोः समाहारः, देश वाचिनां समाहार एकवत् । **क्षुद्रजन्तवः**—नकुलमभिव्याप्य क्षुद्रजन्तव उच्यन्ते, तेषां द्वन्द्व एकवत् भवतीत्यर्थः । **यूकालिक्षम्**—यूकाश्च लिक्षाश्च, तेषां समाहारः । सुपो लुक् । यूकालिक्ष इत्यस्य एकवत् । नपुंसकत्वं, सोरम्, अमि पूर्वः । स्वेदजाः यूकाः शिरःप्रदेशे भवन्ति, लिक्षा अपि स्वेदजा एवेति एते क्षुद्रजन्तवः सन्ति । **येषाञ्च विरोधः**—शाश्वतिकः= स्वाभाविकः, शश्वदित्यव्ययात् भवार्थे ठञ् । विरोधः वैरं, येषां प्राणिनां स्वाभाविकं वैरमस्ति, तेषां द्वन्द्व एकवद् भवतीत्यर्थः । **अहिनकुलम्**—अहयश्च नकुलाश्चेति द्वन्द्वः, येषां च विरोध इति एकवद्। उभयोः वैरं स्वाभाविकम् । **गोव्याघ्रम्**—गावश्च व्याघ्राश्चेति विग्रहः । **काकोलूकम्**—काकाश्च उलूकाश्चेति द्वन्द्वः, अत्र विभाषा वृक्षमृगेति विकल्पेन प्राप्तः एकवद्भावः येषां चेति चकारेण बाध्यते इत्यर्थः । **अनिरवसितानाम्**—निरवसिताः बहिष्कृताः, न निरवसिताः, अनिरवसिताः। अनिरवसितानां चाण्डालादिभिन्नानां शूद्राणां द्वन्द्वः एकवत् । **तक्षायस्कारम्**—तक्षाणश्च अयस्काराश्चेति द्वन्द्वः, अनेन एकवत्, सोरम् ।

हिन्दी

१५८८. भिन्न लिङ्ग नदी एवं देशवाचक का द्वन्द्व एकवत् होता है, ग्राम को छोड़कर ।

१५८९. क्षुद्रजन्तुवाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवत् होता है ।

१५९०. जिन प्राणियों में स्वाभाविक विरोध है, तद्वाचक पदों का द्वन्द्व एकवत् होता है ।

१५९१. अबहिष्कृत शूद्रवाचकों का द्वन्द्व एकवत् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५९२. गवाश्वप्रभृतीनि च-२।४।११॥ यथोच्चारितानि तथैव साधूनि । गवाश्वम् । दासीदासम् ।

१५९३. विभाषावृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडव-पूर्वापराधरोत्तराणाम्-२।४।१२॥ वृक्षादीनां सप्तानां द्वन्द्वः, अश्ववडवेत्यादि द्वन्द्वत्रयं च प्राग्वद् वा । वा. वृक्षादौ विशेषाणामेव ग्रहणम् ॥ प्लक्षन्यग्रोधम् । प्लक्षन्यग्रोधाः । रुरुपृषतम्, रुरुपृषताः । कुशकाशम्, कुशकाशाः । व्रीहियवं, व्रीहियवाः । दधिघृतम्, दधिघृते । गोमहिषम् । गोमहिषाः । शुकबकम्, शुकबकाः । अश्ववडवम् , अश्ववडवौ । पूर्वापरम्, पूर्वापरे । अधरोत्तरम्, अधरोत्तरे ।

वा. फलसेनाङ्गवनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवदिति वाच्यम् ॥ बदराणि च आमलकानि च बदरामलकम् । नेह-बदरामलके। रथिकाश्वारोहावित्यादि ।

मध्यमनोरमापूरणी

गवाश्वेति— गवाश्वप्रभृतीनि कृतैकवद्भावानि गणे पठितानि एव साधूनि इत्याशयः । **गवाश्वम्**— गावश्चअश्वाश्चेति द्वन्द्वः । अत्र विभाषा वृक्षेति वा एकवद्भावे प्राप्तेऽनेन नित्यमेकवद्भावः । निपातनादेवावङ्, न तु प्रकृतिभावः, न च पूर्वरूपं भवति । दीर्घः । सोरम् । **दासीदासम्**— दास्यश्च दासाश्चेति द्वन्द्वः । गवाश्वप्रभृतीनि च इति एकवत् । पुमान् स्त्रियाः इत्येकशेषः निपातनादेव न प्रवर्तते । स नपुंसकम् । सोरम्, अमिपूर्वः । **विभाषा वृक्षेत्यादि**— वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुनि इत्येतेषाम् अश्ववडवपूर्वापर अधरोत्तर इत्येतेषां च द्वन्द्वः एकवत् विकल्पेनेत्यर्थः । **वृक्षादाविति**— वृक्षादिविशेषवाचिनामेव द्वन्द्व एकवत् । **प्लक्षन्यग्रोधम्**— प्लक्षाश्च न्यग्रोधाश्चेति विग्रहे द्वन्द्वः । एकवत् । पक्षे **प्लक्षन्यग्रोधाः**। **रुरुपृषतम्**— रुरवश्च पृषताश्चेति विग्रहः । कुशाश्च काशाश्चेति द्वन्द्वः एकवत् । नपुंसकत्वे सोरम्। **व्रीहियवम्**— व्रीहयश्च यवाश्चेति विग्रहः । धान्यस्योदाहरणम् । **दधिघृतम्**— दधि च घृतं चेति विग्रहः । व्यञ्जनस्योदाहरणमिदम् । **पशोर्द्वन्द्वः**— गावश्च महिषाश्चेति गोमहिषम् । **शकुनिद्वन्द्वः**- शुकाश्च बकाश्चेति विग्रहे द्वन्द्वः एकवत् । अश्वाश्च वडवाश्चेति अश्ववडवम् । द्वन्द्वः, विभाषा वृक्षेति एकवत् । पूर्ववदश्ववडवौ इति । पक्षे पूर्वपदस्य लिङ्गम् । **फलसेनाङ्गेति** . द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गनाम् इत्यादिभिस्सूत्रैः एकवद् विधीयमानः द्वन्द्वः फलसेनेत्यादिवार्तिकोक्तानां बहुवचनान्तावयवत्वे एव एकवत् भवति न तु एकद्विवचनान्तावयवत्वे इत्यर्थः । **बदरामलकम्**- बदराणि च आमलकानि चेति विग्रहे चार्थे द्वन्द्वः इति समासः । सुपो लुक् । सवर्णदीर्घः । जातिरप्राणिनाम् इत्येकवद्भावो भवति, नपुंसकत्वे सति सोरम्, अमिपूर्वः । **नेह-बदरामलके**- बदरं च आमलकं चेति विग्रहः । अत्र एकवचनान्तावयवत्वान्न एकवत् । **रथिकाश्वारोहौ**— रथिकश्च अश्वारोहश्चेति विग्रहः । अत्र सेनाङ्गत्वमस्ति तथापि एकवचनान्तावयवप्रकृतेस्सत्त्वान्नैकवद्भावः ।

हिन्दी

१५९२. गवाश्वप्रभृति गण में जैसे पढे गये हैं वैसे ही साधु हैं ।

१५९३. वृक्षविशेष मृगविशेष तृणादिविशेषवाचक पदों का द्वन्द्व विकल्प से एकवत् होता है । वा. फल सेना आदिवाचक बहुवचनान्त प्रकृतिक सुबन्तों का ही द्वन्द्व समास एकवत् होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५९४. न दधिपय आदीनि-२।४।१४॥ न एकवत् स्युः । दधिपयसी । इध्माबर्हिषी, निपातनाद्दीर्घः । ऋक्सामे । वाङ्मनसे ।

१५९५. आनङ् ऋतो द्वन्द्वे-६।३।२५॥ विद्यायोनिसम्बन्धवाचिनाम् ऋदन्तानां द्वन्द्वे आनङ् स्यादुत्तरपदे । होतापोतारौ । मातापितरौ । पुत्रे इत्यनुवृत्तेः-पितापुत्रौ।

१५९६. देवता द्वन्द्वे च-६।३।२६॥ इहोत्तरपदे पूर्वपदस्यानङ् । मित्रावरुणौ । वा. वायोः प्रयोगे प्रतिषेधः ॥ अग्निवायू । वाय्वग्नी ।

१५९७. ईदग्नेः सोमवरुणयोः-६।३।२७॥ देवताद्वन्द्व इत्येव ।

मध्यमनोरमापूरणी

न दधिपय इति—दधिपय आदीनि शब्दरूपाणि न एकवद् भवन्तीत्यर्थः । **दधिपयसी**—दधि च पयश्चेति विग्रहे समासः । जातिरप्राणिनामिति नित्यमेकवद्भावं बाधित्वा विभाषा वृक्षेति विकल्पेन एकवद्भावः प्राप्तः, सोऽपि न दधिपय आदीनि इति निषिध्यते । इध्मञ्च बर्हिश्चेति समासे निपातनादिध्मशब्दस्य दीर्घः । एकवन्निषेधः । ऋक् च साम चेति विग्रहे समासः । अचतुरविचतुर इत्यादिना समासान्तः अच् । **ऋच् सामन् अ इति, भत्वाट्टेर्लोपः, चोः कुरिति चस्य कः । न एकवत् । वाङ्मनसे इति**—वाक् च मनश्चेति विग्रहे समासः, अचतुर इत्यच्। चोःकुः, तस्य परसवर्णः । प्रथमाद्विवचने औ इत्यस्य नपुंसकाच्चेति शी इत्यादेशः, आद्गुणः। **विद्यायोनीति**—ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः इत्यतः विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः इत्यनुवर्तते षष्ठ्यन्ततया च विपरिणम्यते । अतः विद्यासम्बन्धवाचिनां योनिसम्बन्धवाचिनाञ्च ऋकारान्तानां यो द्वन्द्वस्तत्रोत्तरपदे पूर्वपदस्थस्य ऋकारस्यानङ् भवतीत्यर्थो भवति । **होतापोतारौ**-होता च पोता चेति विग्रहे होतृ सु पोतृ सु इत्यनयोर्द्वन्द्वः । होतृ पोतृ इति । आनङ् ऋत इत्यानङ् । होतान् पोतृ सु इति दशायां पूर्वनकारलोपे उत्तर ऋकारस्य अप्तृन्निति अनङ् । उपधादीर्घः, सुलोपनलोपौ । विद्यासम्बन्धवाचिनोरयं द्वन्द्वः । योनिसम्बन्धवाचिनोस्तु मातापितरौ इत्युदाहरणम् । माता च पिता चेति द्वन्द्वः । आनङादिकार्यं पूर्ववत् । पिता च पुत्रश्च पितापुत्रौ । पितुः ऋकारस्य आनङ् । मण्डूकप्लुत्याऽत्र पुत्र इत्यस्यानुवृत्त्या आनङ् । **उत्तरपदे इति**—अलुगुत्तरपदे इत्यनुवर्तते । देवतावाचिनां द्वन्द्वे पूर्वपदस्यानङ् उत्तरपदे परे इत्यर्थः । **मित्रावरुणौ**—मित्रश्च वरुणश्चेति विग्रहे द्वन्द्वः । मित्रवरुण इति, पूर्वपदस्यानङ् । ङकार इत्, अकार उच्चारणार्थः । ङित्त्वादन्त्याकारस्यानङ् । नलोपः । द्विवचने रूपम् । **वायोः प्रयोगे**—देवताद्वन्द्ववाचिनां द्वन्द्वे पूर्वपदस्य आनङ् न भवति वायुशब्दस्य प्रयोगे सतीत्यर्थः। **अग्निवायू**—अग्निश्च वायुश्चेति द्वन्द्वः । देवताद्वन्द्वे चेति प्राप्त आनङ् 'वायोः प्रयोगे' इत्यनेन प्रतिषिध्यते । वायोः, पूर्वप्रयोगे यणि वाय्वग्नी इति । **ईत् इति**—सोमवरुणशब्दे उत्तरपदे अग्नेः ईदादेशो भवति देवताद्वन्द्वे । आनङोऽपवादः ।

हिन्दी

१५९४. दधि पयस् आदि में विहित द्वन्द्व एकवत् नहीं होता है ।

१५९५. विद्यायोनि सम्बन्धवाचक ऋदन्त के द्वन्द्व होने पर पूर्वपद को आनङ् होता है, उत्तर पद परे रहते ।

१५९६. देवतावाचकों का द्वन्द्व होने पर पूर्वपद को आनङ् होता है, उत्तरपद परे ।
वा. वायु का प्रयोग होने पर पूर्वपद को आनङ् नहीं होता है ।

१५९७. अग्नि को ईत् आदेश होता है सोम व वरुण शब्द परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१५९८. अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः-८।३।८२।। अग्नेःपरेषामेषां सस्य षः समासे । अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । अग्नावरुणौ ।

१५९९. इद् वृद्धौ-६।३।२८।। वृद्धिमत्युत्तरपदे अग्नेरिदादेशो देवताद्वन्द्वे । अग्नामरुतौ देवते अस्य आग्निमारुतं कर्म । अग्नीवरुणौ देवते अस्य आग्निवारुणम् । देवता द्वन्द्वे चेत्युभयपदवृद्धिः ।

वा. विष्णौ न ।। आग्नावैष्णवम् ।

१६००. दिवो द्यावा-६।३।२९।। देवताद्वन्द्वे उत्तर पदे । द्यावाभूमी ।

१६०१. मातरपितरावुदीचाम्-६।३।३२।। उदीचां किम्-मातापितरौ ।

मध्यमनोरमापूरणी

अग्नेरिति—सहेः साडः सः इत्यतः स इत्यनुवर्तते । अपदान्तस्य मूर्धन्यः इति चानुवर्तते । तत आह अग्नेः परेषामिति । **अग्निष्टुत्**—यज्ञविशेषः । सस्य षत्वे ष्टुत्वम् । स्तुत् इति क्विप्प्रत्ययान्तः । **अग्निष्टोम इति**—स्तोत्रविशेषस्य संज्ञा । **अग्नीषोमौ**—अग्निश्च सोमश्चेति विग्रहे चार्थे द्वन्द्वः । देवाताद्वन्द्वे चेति सूत्रं प्रबाध्य ईदग्नेरिति ईद् । अलोऽन्त्यस्येति इकारस्य स्थाने ईत् । अग्नेः स्तुत्स्तोमेति षत्वम् । अग्निश्च वरुणश्चेति द्वन्द्वः । ईत् । **इद्वृद्धौ**—अग्नेरिति देवताद्वन्द्वे इति चानुवर्तते । वृद्धिशब्दः वृद्धिमन्तं लक्षयति । **अत आह**—वृद्धिमत्युत्तरपदे इत्यादि । **आग्निमारुतमिति**—अग्निश्च मरुच्चेति द्वन्द्वे देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ् । अग्नामरुत् औ इत्यस्मात् सास्य देवता इत्यण्, सुपो लुक् । देवताद्वन्द्वे चेत्युभयपदवृद्धिः । आग्नामारुत इति । इद् वृद्धौ इत्याकारस्येत्वे सोरम् । **आग्निवारुणमिति**—अग्निश्च वरुणश्चेति द्वन्द्वः । ईदग्नेरितीत्वम् । अग्नीवरुण औ इत्यस्मात् अण् । उभयपदवृद्धिः, इद् वृद्धौ । सुपो लुक् । सोरम् । **आग्नावैष्णवमिति**—अग्निश्च विष्णुश्चेति द्वन्द्वः । आनङ् । अण्, उभयपदवृद्धिः, ओर्गुण इति विष्णोरुकारस्य वृद्धौ आवादेशः । इद् वृद्धौ इति इत्वं प्राप्तं विष्णौ नेति निषिध्यते। **द्यावाभूमी**—द्यौश्च भूमिश्च इति द्वन्द्वः । दिव्भूमि इति । दिवो द्यावा इति द्यावादेशः । द्विवचने रूपम् । **मातरपितराविति**—उदीचामाचार्याणां मतेन द्वन्द्वे मातरपितरौ इति भवति । अर्थात् मातुर्ऋकारस्य अरङादेशो भवतीत्यर्थः । माता च पिता चेति विग्रहः । चार्थे द्वन्द्वः । आनङ् ऋतो द्वन्द्वे इत्यानङं प्रबाध्यानेन अरङ् ।

हिन्दी

१५९८. अग्नि से परे स्तुत् स्तोम एवं सोम के स को ष होता है समास में ।

१५९९. वृद्धिमत् उत्तरपद परे रहते अग्नि को इद् आदेश होता है, देवतावाचकों का द्वन्द्व होने पर ।

वा. विष्णु उत्तरपद परे अग्नि को इत् नहीं होता है ।

१६००. देवताद्वन्द्व में उत्तरपद परे रहते दिव् को द्यावा आदेश होता है ।

१६०१. उदीच्य आचार्यों के मत में मातृ और पितृ शब्दों का द्वन्द्व होने पर मातृ को अरङ् आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६०२. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे-५।४।१०६।। चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् समाहारे । वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम्-प्रावृट्शरदौ ।

।। इति द्वन्द्वसमासः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

द्वन्द्वादिति—चुश्च दश्च षश्च हश्चेति द्वन्द्वः । चुः चवर्गः । चुदषहाः अन्ते यस्य, तस्मात् इति। राजाहस्सखिभ्यष्टच् इत्यतः टच् इत्यनुवर्तते । **तदाह**—चवर्गान्तादित्यादि । **वाक्त्वचम्**—वाक्च त्वक्चेति समाहारद्वन्द्वः । सुपो लुक् । द्वन्द्वादिति टच् । टचोरनुबन्धलोपः । वाच्त्वच इति । चोः कुरिति चस्य कः । स नपुंसकमिति नपुंसकत्वम् । सोरम्, पूर्वरूपम् । **शमीदृषदम्**-शमी च दृषच्चेति समाहारद्वन्द्वः । शमीदृषद् इति दान्ताट्टच् । **वाक्त्विषम्**—वाक् च त्विट् च इत्यनयोः समाहारः । सुपो लुकि वाच्त्विष् इति, द्वन्द्वाच्चुदषेति षान्ताट्टच् । वाचः चस्य चोःकुरिति कुत्वम् । **छत्रोपानहम्**—छत्रं च उपानत् चेति विग्रहे समाहारद्वन्द्वः । टच्, सुपो लुक् । आद्गुणः, सोरम्, अमिपूर्वः । **समाहारे किमिति**-यदि सूत्रे समाहारे इति पदं नोच्येत तदा प्रावृट् च शरत् च इति इतरेतरयोगद्वन्द्वेऽपि दान्तत्वात् टच् प्रवर्तेत । समाहारे इत्युक्तत्वात् नात्र टच् भवति । इति चौधर्युपाह्वार्कनाथकृतायां मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः मध्यमनोरमापूरण्यां **द्वन्द्वसमासः** ।

हिन्दी

१६०२. चवर्गान्त दान्त षान्त व हान्त शब्दों से समाहार द्वन्द्व में टच् प्रत्यय होता है ।

।। इति द्वन्द्वसमासः ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथैकशेषः

वा. विरूपाणामपि समानार्थानाम् ।। वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च, वक्रदण्डौ । कुटिलदण्डौ ।

१६०३. वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः-१।२।६५।। यूनां सहोक्तौ गोत्रं शिष्यते गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत्तयोः कृत्स्नं वैरूप्यं स्यात् । गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ । वृद्धः किम्-गर्ग-गार्ग्यायणौ । यूना किम्-गर्गगार्ग्यौ । कृत्स्नं किम्-गार्ग्यवात्स्यायनौ ।।

१६०४. स्त्री पुंवच्च-१।२।६६।। यूनासहोक्तौ वृद्धा स्त्री शिष्यते, तदर्थश्च पुंवत्। गार्गी च गार्ग्यायणौ च गर्गाः ।

१६०५. पुमान् स्त्रिया-१।२।६७।। स्त्रिया सहोक्तौ पुमान् शिष्यते तल्लक्षण-एव विशेषश्चेत् । हंसी च हंसश्च हंसौ ।

मध्यमनोरमापूरणी

एकशेष इति—द्वन्द्वस्य अपवादोऽयम् । सरूपाणामित्यनेन विभक्त्युत्पत्तेः पूर्वमेकशेषो विहितः। रामौ इत्याद्युदाहरणमपि प्रदर्शितम् । तेन सरूपाणां शब्दानामेकशेष उक्तः । अधुना समानार्थानाम्, अपि विरूपशब्दानामेकशेषः विरूपाणामित्यादिना विधीयते । वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्चेति समानार्थशब्दौ, तयोरेकस्य 'विरूपाणामपि' इति लोपे वक्रदण्डौ इति भवति । वक्रदण्डस्य वा लोपे कुटिलदण्डौ इति भवति । 'यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी' इति न्यायेन एकस्मादेवावशिष्टशब्दात् द्विवचनोत्पत्तिः । **वृद्धो यूनेति**—सरूपाणामित्यतः एकशेष इत्यनुवर्तते । **यूनेति**-युवप्रत्ययान्तेनेत्यर्थकः । वृद्धशब्दः गोत्रस्य वाचकः, प्राचामाचार्याणामनुरोधेन । अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रमित्युच्यते । तदा वृद्धयुवप्रत्ययान्तयोः सहवचने वृद्धः = गोत्रप्रत्ययान्तः शिष्यते। **तल्लक्षण इति**—विशेषः वैलक्षण्यं वैरूप्यं वा । वृद्धयुवनिमित्तकमेव यदि वैरूप्यं भवति तदा वृद्धः शिष्यते युवा च निवर्तते । **गार्ग्यौ इति**- गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः, तस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः, तयोरेकशेषे वृद्धो यूनेति गार्ग्यः शिष्यते । द्विवचने रूपम् । **वृद्धः किमिति**—यद्येतन्नोच्येत तदा गर्गगार्ग्यायणौ इत्यत्र गोत्रप्रत्ययान्ताभावेऽपि एकशेषप्रवृत्तिः स्यात् । **यूनेति किम्**—गर्गगार्ग्यौ, उभयोः गोत्रप्रत्यय मात्रकृतं वैरूप्यम्, अतः न भवत्येकशेषः । यूनेति पदाभावे एकशेषापत्तिस्स्यात् । **कृत्स्नं किमिति**—यद्येतत्पदं नोच्येत तदा गार्ग्यवात्स्यायनौ इत्यत्र प्रकृतिवैरूप्येऽपि एकशेषापत्तिः स्यात् । **स्त्री पुंवच्चेति**—वृद्धो यूना इति सूत्रमनुवर्तते, शेष इति चानुवर्तते । गोत्रप्रत्ययान्तः स्त्रीवाचकः शिष्यते युवप्रत्ययान्तश्च लुप्यते स्त्रीत्वरूपवैरूप्यमात्रं चेत् । अवशिष्टः स्त्रीवाचकः पुंवत् भवति च ।

हिन्दी

वा. समानार्थक विरूपशब्दों में भी एकशेष होता है ।

१६०३. गोत्र प्रत्ययान्त एवं युवप्रत्ययान्त शब्दों में वृद्धप्रत्ययान्त शेष रहता है, यदि दोनों में प्रत्ययकृत वैरूप्यमात्र हो, प्रकृतिवैरूप्य न हो ।

१६०४. गोत्रप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्गशब्द एवं युवप्रत्ययान्त शब्दों के साथ प्रयोग होने पर स्त्रीलिङ्ग, शब्द शेष रहता है, तथा उसे पुंवद्भाव होता है ।

१६०५. स्त्रीवाचक शब्द के साथ उक्त पुरुषवाचक शब्द का शेष होता है, यदि दोनों में स्त्रीत्व एवं पुंस्त्व से भिन्न कोई वैरूप्य न हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६०६. भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम्-१।२।६८।। भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ।

१६०७. नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्-१।२।६९।। अक्लीबेन सहोक्तौ क्लीबं शिष्यते, तच्च वा एकवत् स्यात्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत्। शुक्लः पटः, शुक्ला शाटी, शुक्लं वस्त्रम्, तदिदं शुक्लम्। तानीमानि शुक्लानि।

१६०८. पिता मात्रा-१।२।७०।। मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ, मातापितरौ।

मध्यमनोरमापूरणी

गर्गाः इति—गार्गी च गार्ग्यायणौ चेति विग्रहः, तयोः 'स्त्री पुंवच्चेति' गार्गी शिष्यते पुंवच्चास्याः भवति। बहुवचने गर्गाः इति। अत्र गर्गस्यापत्यं स्त्रीति गार्गी वृद्धप्रत्ययान्ता। गार्ग्यस्य युवापत्यम् इति विग्रहे यञिञोश्चेति फकि गार्ग्यायण इति युवप्रत्ययान्तः। **पुमान् स्त्रिया**—वृद्धो यूनेत्यतः 'तल्लक्षणश्चेदेव विशेष' इत्यनुवर्तते। स्त्रिया सहवचने पुमान् शिष्यते, स्त्री निवर्तते स्त्रीपुंल्लक्षणश्चेदेव विशेषो भवतीत्यर्थः। **हंसौ**—हंसी च हंसश्चेति विग्रहः। हंस हंसी इत्यनयोः पुमान् स्त्रिया इत्यनेन हंस एवावशिष्यते, हंसी च निवर्तते। **भ्रातृपुत्राविति**—स्वसृदुहितृभ्यां सहोक्तौ भ्रातृपुत्रशब्दौ क्रमाद् शिष्येते। अर्थात् स्वस्रा सह उक्तः भ्रातृशब्दः, दुहित्रा सहोक्तः पुत्रशब्दश्च शिष्येते इत्याशयः। **भ्रातरौ**—भ्राता च स्वसा चेति विग्रहे भ्रातृस्वसृ इत्यनयोः भ्रातृपुत्रौ इत्यनेन भ्रातृशब्दः शिष्यते। प्रथमा द्विवचने ऋतोऽङि इति गुणे रपरत्वे रूपम्। **पुत्रौ इति**—पुत्रश्च दुहिता चेति विग्रहे पुत्र दुहि तृ इत्यनयोः पुत्र एवावशिष्यते। 'यः शिष्यते' इति न्यायात् पुत्रशब्दात् प्रथमा द्विवचनम्। **नपुंसकमिति**—'तल्लक्षणश्चेदेव विशेष' इत्यनुवर्तते। अन्यतरस्याम् इति एकवदित्यनेनैवान्वितो भवति, अव्यवहित्वात्, न तु एकशेषेण। **अत आह**—अक्लीबेनेत्यादि। **शुक्लम्**—शुक्लः पटः शुक्ला शाटी शुक्लं वस्त्रमिति एक एव शुक्ल शब्दः विशेष्यभेदात् पुन्नपुंसकस्त्रीलिङ्गे प्रयुक्तः। तेषां शुक्लानां नपुसकमनपुंसकेनैकवदिति सूत्रेण एकशेषः। अर्थात् नपुंसकस्य शेषः, अन्ययोर्निवृत्तिः, एकदत्त्वञ्च विहितम्। अतः इदं शुक्लमिति एकवचनम्। एवमेव इदम् इयम् अयमिति 'इदम्' इति भवति। **पिता मात्रा**-'नपुंसकमनपुंसकेन' इति सूत्रात् अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते, न तु एकवदिति। **अत आह**— मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते इति। **पितरौ**-माता च पिता च इति विग्रहः। मातृपितृ इत्यनयोः 'पिता मात्रा' इत्यनेन पितृ शब्दः शिष्यते। प्रथमा द्विवचने पितरौ इति। एकशेषाभावे द्वन्द्वे आनङि च कृते मातापितरौ इति।

हिन्दी

१६०६. स्वसृ एवं दुहितृ के साथ भ्रातृ एवं पुत्र का सहप्रयोग होने पर भ्रातृ एवं पुत्र शब्द ही शेष रहता है।

१६०७. अनपुंसक के साथ उक्त होने पर नपुंसक का शेष होता है विकल्प से, यदि दोनों में लिङ्गप्रयुक्त वैरूप्य ही हो तो।

१६०८. माता के साथ उक्त होने पर पिता का शेष होता है, विकल्प से।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६०९. श्वशुरः श्वश्र्वा-१।२।७१।। सहोक्तौ वा शिष्यते । श्वशुरौ । श्वश्रूश्वशुरौ।
१६१०. त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्-१।२।७२।। सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि शिष्यन्ते । स च देवदत्तश्च तौ ।
वा. त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत् परं तच्छिष्यते ।। स च यश्च यौ । "पूर्वशेषोऽपि दृश्यते" इति भाष्यम् । स च यश्च तौ ।
वा. त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवचनानि ।। सा च देवदत्तश्च तौ । तच्च देवदत्ता च यज्ञदत्तश्च तानि ।
१६११. ग्राम्यपशुसङ्घेष्वतरुणेषु स्त्री-१।२।७३।। एषु सह विवक्षायां स्त्री शिष्यते गाव इमाः । ग्राम्येति किम्-रुरव इमे । पशुग्रहणं किम्-ब्राह्मणाः । सङ्घेषु किम्-एतौ गावौ । अतरुणेषु किम्-वत्सा इमे ।

मध्यमनोरमापूरणी

श्वशुरः श्वश्र्वा—अत्रापि अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते । **श्वशुरौ**—श्वश्रूश्च श्वशुरश्चेति विग्रहः । श्वश्रू श्वशुर इत्यनयोः श्वशुरस्य शेषः । यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायीति न्यायात् श्वशुरशब्दादेव द्विवचनोत्पत्तिः । एकशेषाभावे इतरेतरद्वन्द्वः । **द्वन्द्वे एकशेषे च विशेषः**—एकशेषः सुबुत्पत्तेः प्राक् भवति, द्वन्द्वश्च सुबन्तानामिति बोध्यम् । **सर्वैरिति**—इतरैः सहोक्तौ त्यदादीनि शिष्यन्ते इत्यर्थः । **तौ इति**—स च देवदत्तश्चेत्यत्र देवदत्तशब्दो निवर्तते तच्छब्दोऽवशिष्यते । **त्यदादीनाम्**-त्यदादिगणे यत् परं पठितं तच्छिष्यते इत्यर्थः । स च यश्चेति विग्रहः । त्यदादिगणे तदपेक्षया यतः परत्वात् स एवावशिष्यते । यौ इति भवति । **पूर्वशेषोऽपीति**—परशब्दस्येष्टवाचित्वात् कुत्रचित् इष्टः पूर्वशब्दोऽपि शिष्यते इति भाष्यम् । तेन स च यश्चेति तौ इत्यपि भवति । **त्यदादित इति**—षष्ठ्यर्थे तसिः । त्यदादीनां स्त्रीशेषेऽपि पुँलिङ्गनपुंसकयोः सहविवक्षितयोः अनुसारं लिङ्गं भवति । सा च देवदत्तश्चेति **तौ**-अत्र सा इति स्त्रीशेषः, तथापि पुंस्त्वम् । तच्च देवदत्ता च यज्ञदत्तश्चेत्यत्र तदित्यवशिष्यते, तत्र नपुंसकत्वम् । **ग्राम्यपशु इति**—पुमान् स्त्रिया इति पुंसः शेषः प्राप्तः, अनेन स्त्रीशेषः क्रियते । **गाव इमा**—गौश्च गौश्च गौश्चेति पुंलिङ्गस्त्री-लिङ्गगोशब्दे अनेन स्त्रीवाचकस्य शेषः । अतः स्त्री लिङ्गे गाव इमा इति भवति । **वत्सा इमे**-वत्साश्च वत्साश्चेत्यत्र तरुणत्वात् न स्त्रीशेषः ।

हिन्दी

१६०९. श्वश्रू के साथ उक्त होने पर श्वशुर का शेष रहता है, विकल्प से ।

१६१०. इतर शब्दों के साथ उक्त त्यदादि का शेष होता है ।

वा. त्यदादियों के सहवचन में जो गण में पर पठित है उसका शेष होता है ।

वा. कहीं कहीं पूर्व का भी शेष होता है ।

वा. त्यदादि में स्त्री का शेष होने पर सहप्रयुक्त पुंलिंग या नपुंसक शब्द के अनुसार लिङ्ग व वचन होते है ।

१६११. तरुणभिन्न ग्राम्य पशुसंघों के सहवचन में स्त्रीवाचक का शेष होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अनेकशफेष्विति वाच्यम् ।। अश्वा इमे ।

।। इत्येकशेषः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अश्वा इमे—अश्वाश्च अश्वाश्चेति पुंलिङ्गस्त्रीवाचकयोर्न स्त्रीवाचकस्य शेषः, एकशफत्वात् अश्वानाम्।

।। इत्येकशेष प्रकरणम् ।।

हिन्दी

वा. पशुसंघों में अनेक शफ वाले पशुओं के सहवचन में ही स्त्रीलिङ्ग वाचक का शेष होता है।

।। एकशेष ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ समासान्ताः

१६१२. **ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे-५।४।७४।। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः, अक्षे या धूस्तदन्तस्य न। अर्धर्चः। वा. अनृचबह्वृचावध्येतर्येव।। नेह-अनृक् साम। बह्वृक् सूक्तम्। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः।**

१६१३. **द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्-६।३।९७।। द्वीपम्। अन्तरीपम्। प्रतीपम्। समीपम्। वा. अवर्णान्ताद् वा।। प्रेपम्, प्रापम्।**

१६१४. **ऊदनोर्देशे-६।३।९८।। अनूपो देशः। राजधुरा। अक्षे तु अक्षधूः। दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः।**

मध्यमनोरमापूरणी

ऋक्पूरिति—ऋक् पूरब्धूः पथाम् अ अनक्षे इतिच्छेदः। अ इति लुप्तप्रथमान्तः। समासान्ता इत्यस्याधिकारः। ऋगादिभिः समासस्य विशेष्यता, तदन्तविधिः। **अतआह**—ऋगाद्यन्तस्येति। **अर्धर्चः**—ऋचः अर्धमिति विग्रहेऽर्धं नपुंसकमिति समासः। अर्धच् इत्यस्मात् ऋक्पूरिति अ प्रत्ययोऽन्ते भवति। अर्धर्चाः पुंसीति पुंस्त्वं विधीयते। **अनृचेति**-अध्येतरि अर्थे एव ऋच्-शब्दात् अप्रत्ययो भवतीत्यर्थः। अविद्यमानाः ऋचः यस्येति बहुव्रीहिः। अ-प्रत्ययः। **अनृचः** केवलयजुरध्येता। बहवः ऋचः यस्येति बह्वृचः ऋक्शाखी। अध्येतरि नियमस्य प्रयोजनमाह-नेहेति। **अनृक् साम**—अविद्यमानाः ऋचः यस्मिन्निति विग्रहः। बहवः ऋचः यस्मिन्निति **बह्वृक्** सूक्तम्। उभयत्रापि न अप्रत्ययः। **विष्णुपुरम्**—विष्णोः पूः इति षष्ठीसमासे ऋक्पूरिति अप्रत्ययः। **विमलापं सरः**—विमला आपः यस्मिन्निति बहुव्रीहौ दीर्घे विमलाप् इत्यस्माद-प्रत्ययः। **द्व्यन्तेति**—अप इति अकारप्रत्ययान्तः। द्वि अन्तर् उपसर्ग इत्येतेभ्यः परस्य अप्रत्य-यान्तस्य अप्शब्दस्य ईत् स्यादित्यर्थः। **द्वीपम्**—द्विगता आपो यस्मिन्निति बहुव्रीहौ अप्रत्ययः ऋक्पूरित्यादिना। द्व्यन्तरुपसर्गेभ्य इत्यनेन आदेः परस्येत्यस्य सहकारेण अपः अकारस्य स्थाने ईत्। द्विईप इति, सवर्णदीर्घः। **अन्तरीपम्**—अन्तर्गताआपो यस्मिन्निति बहुव्रीहिः, अप ईत्। **प्रतीपम्**—प्रतिकूला आपो यस्मिन् इति विग्रहः। उपसर्गात् परस्य अपोऽकारस्येत्वम्, सवर्णदीर्घः। **सपीपम्**-सङ्गताः आपो यस्मिन्निति विग्रहः। **अवर्णान्ताद् वेति**—अवर्णान्तादुपसर्गात्परस्यापो वा ईत्वमित्यर्थः। **प्रेपम्**—प्रगता आपो यस्मिन्निति विग्रहे प्रादिभ्यो धातुजस्येति समासः, गतेत्यस्य लोपश्च। ईत्वे गुणे प्रेपम् इति। विकल्पे सवर्णदीर्घः। **ऊदनोरिति**—ईत्वस्यापवादः। अनोःपरस्यापः ऊत् स्याद्देशे। **अनूपो देशः**—अनुकूला आपो यस्मिन्निति विग्रहः। ऊदनोरिति अपोऽस्य ऊत्वे सवर्णदीर्घः। ऋक्पूरब्धूरिति सर्वत्र समासान्तोऽच् बोध्यः। **राजधुरा**—राज्ञो धूरिति षष्ठी तत्पुरुषः, अप्रत्ययः, परवल्लिङ्गमिति स्त्रीत्वाट्टाप्, सवर्णदीर्घः। **अक्षधूः**—अनक्षे इति प्रतिषेधान्नात्र अप्रत्ययः समासान्तः। **सखिपथः**—सख्युः पन्थाः इति षष्ठीसमासः, अप्रत्ययः, भत्वान्नस्तद्धिते इति टेर्लोपः। **रम्यपथः**—रम्यः पन्थाः यस्मिन्निति, अच्।

हिन्दी

१६१२. ऋच् पुर् अप् धुर् पथिन् एतदन्त समास को समासान्त अ-प्रत्यय होता है, अक्ष अर्थ में विद्यमान धुर् शब्द को छोड़कर।

१६१३. द्वि अन्तर् उपसर्ग इन से परे कृतसमासान्त अपशब्द को ईत् आदेश होता है। वा. अवर्णान्त उपसर्ग से परे अप को ईत् होता है, विकल्प से।

१६१४. अनु से परे अप को ऊत् होता है देश अर्थ में

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६१५. अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः-५।४।७५।। प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अवलोमम् ।

वा. कृष्णोदकपाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते ।। कृष्णभूमः । उदग्भूमः । पाण्डुभूमः । द्विभूमः । त्रिभूमः = प्रासादः ।

वा. संख्याया नदीगोदावरीभ्याञ्च ।। पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । अजिति योगविभागादन्यत्रापि । पद्मनाभः ।

१६१६. अक्ष्णोऽदर्शनात्-५।४।७६।। अचक्षुः पर्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् । गवामक्षीव गवाक्षः ।

१६१७. अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिव सरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः-५।४।७७।। एते पञ्चविंशतिरजन्ताः

मध्यमनोरमापूरणी

प्रतिसामम्—प्रतिगतं सामेति विग्रहः, प्रादयो गताद्यर्थे इति समासः । अच्प्रत्यन्ववेति अच्। भत्वात् सामन् इत्यस्य टेर्लोपः । अनुगतं साम **अनुसामम् इति** । अवगतं सामेति विग्रहे समासे अच्, टिलोपः । प्रतिगतं लोमेति विग्रहः, अच्, लोमन् इत्यस्य टेरनो लोपः । **कृष्णभूमः**—कृष्णा भूमिः यस्येति बहुव्रीहिः । 'कृष्णोदकपाण्डु' इत्यादिना अच्, भत्वाट्टेर्लोपः । उदीची भूमीः यस्येति, पाण्डुः भूमिः यस्येति, द्वे भूमी यस्येति, तिस्रःभूमयो यस्येति च विग्रहे सर्वत्र बहुव्रीहिः। 'कृष्णोदकपाण्डुसंख्यापूर्वाया' इत्यच्, सर्वत्र टेर्लोपः । **संख्याया इति**—संख्यायाः परः यः नदी-शब्दः गोदावरी-शब्दश्च ताभ्यामच् भवति इत्यर्थः । **पञ्चनदम्**—पञ्चानां नदीनाम् समाहारः इति विग्रहे नदीभिश्च इत्यनेनाव्ययीभावः । अच्, भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपः । सोरम् । **सप्तगोदावरम्**—सप्तानां गोदावरीणां समाहारः इति विग्रहेऽव्ययीभावः । अच्, यस्येति चेतीकारलोपः । अव्ययत्वात् नाव्ययीभावादतोऽम् इति सोरम् । **अजिति**—अच् प्रत्यन्ववेति सूत्रेऽच् इति योगविभागः स्वीक्रियते, तेन विहितेभ्यः अन्यत्रापि अच् भवतीति भावः । **उदाहरणं-पद्मनाभः**—पद्मं नाभौ यस्येति बहुव्रीहिः । योगविभागादच् । यस्येति चेति नाभेरिकारलोपः । **अक्ष्णोऽदर्शनादिति**—अदर्शनात् इति पदविभागः । अच् इत्यनुवर्तते । दृश्यतेऽनेनेति दर्शनं चक्षुःपर्यायम् । न दर्शनम्, अदर्शनम् । **दर्शनादन्यत्र**—अचक्षुर्वाचिनः

हिन्दी

१६१५. प्रति अनु एवं अव-पूर्वक सामन् एवं लोमन् से समासान्त अच् होता है ।

वा. कृष्ण उदञ्च् एवं संख्यापूर्वक भूमि शब्द से अच् प्रत्यय होता है ।

वा. संख्या से परे नदी एवं गोदावरी शब्द से अच् प्रत्यय समासान्त होता है ।

१६१६. अचक्षुपर्यायवाची अक्षि से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

१६१७. अचतुर विचतुर सुचतुर स्त्रीपुंस इत्यादि पच्चीस शब्द अच्प्रत्ययान्त निपातन हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः । अविद्यमानानि चत्वार्यस्य-अचतुरः । विगतानि चत्वारि अस्य विचतुरः । सुचतुरः ।

वा. त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते । त्रिचतुराः । चतुर्णां समीपे उपचतुराः । ततः एकादश द्वन्द्वाः । स्त्रीपुंसौ । धेन्वनडुहौ । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । अक्षिणी च भ्रुवौ च अक्षिभ्रुवम् । दाराश्च गावश्च दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम्, निपातनाट्टिलोपः । पदष्ठीवम्, निपातनात् पादशब्दस्य पद्भावः । नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम् । रात्रौ च दिवा च रात्रिन्दिवम् । रात्रेर्मान्तत्वं निपात्यते। अहनि च दिवा च अहर्दिवम् । वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते, अहन्यहनीत्यर्थः । सरजसमिति साकल्येऽव्ययीभावः । बहुव्रीहौ तु सरजः = पङ्कजम् । निश्चितं श्रेयः निःश्रेयसम् । तत्पुरुष एव । नेह-निःश्रेयान् पुरुषः । पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् । ततो द्विगुः । द्व्यायुषम् । त्र्यायुषम् । ततो द्वन्द्वः । ऋग्यजुषम् । ततस्त्रयः कर्मधारयः । जातोक्षः । महोक्षः । वृद्धोक्षः । शुनः समीपम् उपशुनम् । टिलोपाभावः सम्प्रसारणं च निपात्यते । गोष्ठे श्वा-गोष्ठश्वः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अक्षिशब्दात् अच् प्रत्ययो भवति समासान्त इत्यर्थः। **गवाक्षः**—गवामक्षीव इति विग्रहे समासः। अत्र इव शब्दः, 'अक्षिशब्दः तत्सदृशे लाक्षणिकः' इति सूचयितुमस्ति । अक्ष्णोऽदर्शनात् इत्यच्। यस्येति चेतीकारलोपः । पुंस्त्वं लोकाश्रयात् । **एते पञ्चविंशतिः इति-** अचतुरेत्यादि-पञ्चविंशतिरूपाणि अच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः । **यथा अचतुर इति**—अविद्यमानानि चत्वारि अस्येति विग्रहे नञोऽस्त्यर्थानामिति बहुव्रीहिः विद्यमानेत्यस्य च लोपः। अच् । विगतानि चत्वारि यस्येति **विचतुरः** । शोभनानि चत्वारि यस्येति **सुचतुरः** । अत्र न पूजनादिति समासान्तनिषेधः प्राप्तोऽनेन बाध्यते । **त्रिचतुराः**—त्रयो वा चत्वारो वेति विग्रहे संख्ययाव्ययासन्नेति बहुव्रीहिः । बहुव्रीहौ संख्येये इति प्राप्तं डचं बाधित्वा त्र्युपाभ्यामिति अच्। डचि सति टिलोपापत्तिः स्यात् । **उपचतुराः**—संख्ययाव्ययासन्नेति समासः, अच् । त्रयो वा पञ्च वेत्यर्थः । **स्त्रीपुंसौ**—स्त्री च पुंमान् चेति द्वन्द्वः, निपातनादच् । तेन स्त्रीपुमान्सौ इति न भवति । धेनुश्च अनड्वाँश्चेति विग्रहः । अच् । ऋक् च साम चेति विग्रहः । अच्, टिलोपः। अजभावे ऋक्सामनी इत्यापद्येत । **अक्षिभ्रुवम्**—द्वन्द्वश्चेति प्राण्यङ्गत्वादेकवत् । अक्षिभ्रू इत्यस्मादच्, उवङ् । सोरम् । **दारगवम्**-समाहारद्वन्द्वात् अच्, गोरवादेशः । दारगु इति न भवति। **ऊर्वष्ठीवम्**—ऊरू औ अष्ठीवत् औ इत्यनयोः समाहारद्वन्द्वः । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । निपातनादेव अच् प्रत्ययष्टिलोपश्च, ऊरू अष्ठीव इति जाते यण्, स्वादिकार्यम् । **पदष्ठीवम्**—पादौ च अष्ठीवन्तौ चेति समाहारद्वन्द्वः, एकवत् । निपानात् अच्, टेर्लोपः, पादस्य पद्भावश्च। **नक्तंदिवम्**—द्वन्द्वः उभयोरव्यययोः, अच्, आकारस्य लोपः । अव्ययत्वान्नपुंसकत्वम् । **रात्रिन्दिवम्**—निपानादच्, रात्रेः मान्तत्वञ्च । यस्येत्याकारलोपः । **अहर्दिवम्**—द्वन्द्वसमासे सुपो लुकि निपातनादच्, भत्वादाकारलोपः, रोऽसुपि इति अह्नो नस्य रत्वम् । सोरम् । ननु अहन् दिवा इत्युभौ पर्यायौ, कथमनयोर्द्वन्द्व इति चेदुक्तं सुहेवीप्सायामर्थे द्वन्द्वो निपात्यते ।

हिन्दी

वा. त्रि और उप से परे चतुर् शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६१८. ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः-५।४।७८।। अच् । ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिवर्चसम् । वा. पल्यराजभ्याञ्चेति वक्तव्यम् ।। पल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् ।

१६१९. अवसमन्धेभ्यस्तमसः-५।४।७९।। अवतमसम् । सन्तमसम् । अन्धतमसम् ।

१६२०. अन्ववतप्ताद् रहसः-५।४।८१।। अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम्।

१६२१. प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्-५।४।८२।। उरसि इति प्रत्युरसम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सरजसम्—रजः अपि अपरित्यज्येत्यर्थे अव्ययं विभक्तीत्यादिना समासः । अच् । अव्ययीभावे चाकाले इति सहस्य सः । सोरम् । **बहुव्रीहौ तु इति**—अचतुरसूत्रेण सरजसमित्यत्राव्ययीभाव-समासे एवाच् निपात्यते । तेन बहुव्रीहौ रजैः सह वर्तते इति सरजः इत्यत्र नाच् ! **निःश्रेयसम्**-कर्मधारयाद् अच् । तत्पुरुषे एवात्र अच् इति भाष्यम् । तेन निश्चितं श्रेयो यस्येति बहुव्रीहौ नाच् । **पुरुषायुषम्**—षष्ठीसमासादच् । द्विगौ तु द्वयोः आयुषोः त्रयाणाम् आयुषां वा समाहारः इति विग्रहे तद्धितार्थेति द्विगुः, अनेनाच्, **द्व्यायुषम्, त्र्यायुषम् इति** । **ऋग्यजुषम्**—ऋचश्च यजूंषि चेति एषां समाहारः । **जातोक्षः**—जातश्चासौ उक्षा चेति कर्मधारयः । गुणः । जातोक्षन् इत्यस्मादच्, टेर्लोपः । महान् चासौ उक्षा चेति महोक्षः, अच्, अनो लोपः । **उपशुनम्**—अव्ययीभावः, अच्, टिलोपस्याभावः श्वन् इत्यस्य सम्प्रसारणं च निपातितं, सोरम् । **गोष्ठश्वः**-सप्तमीतत्पुरुषादच्, टिलोपः । **ब्रह्मवर्चसम्**—ब्रह्मणः वर्चः इति षष्ठीसमासः, ब्रह्महस्तिभ्यामिति अच् । हस्तिनः वर्चः **हस्तिवर्चसम्** । अच् । **पल्येति**-आभ्यां परस्मादपि वर्चस्शब्दादच् इत्यर्थः। **पल्यवर्चसम्**—पल्यस्य=मांसभोजिनः वर्चः इति षष्ठी समासेऽनेन अच् । राज्ञः वर्चः राज-वर्चसममिति । **अवतमसमित्यादि**—अवहीनं तमः, सन्ततं तमः, इति विग्रहे प्रादि समासे ऽवसमन्धेभ्य इति अच् । **अवरहसम्-अनुरहसम्**—अवहीनं रहः, अनुगतं रहः इति विग्रहः। अच् । **तप्तं रहः** इति विग्रहे कर्मधारयः, सुपो लुक् । अन्ववतप्ताद्रहसः इत्यच् । **प्रतेरुरस इति**—सप्तम्यां तिष्ठतीति सप्तमीस्थं, तस्मात् इति । सप्तम्यर्थद्योतकादित्यर्थः । सप्तम्यर्थ-द्योतकात् प्रतेः परस्मात् उरस् शब्दात् अच् इत्यर्थः । **प्रत्युरसम्**—उरसि इति लौकिकविग्रहः। उरस् ङि अधि इत्यलौकिकविग्रहे अव्ययं विभक्तीति विभक्त्यर्थे समासः । प्रति इत्यस्य प्रथमा-निर्दिष्टत्वात् पूर्वप्रयोगः । यण् । प्रत्युरस् इत्यस्मात् अच् । अव्ययीभावश्चेति नपुंसकता, नाव्ययी-भावादिति सोरम्, अमिपूर्वः ।

हिन्दी

१६१८. ब्रह्म और हस्तिन् से परे वर्चस् शब्द से अच् प्रत्यय समासान्त होता है ।
वा. पल्य एवं राजन् से परे वर्चस् से भी अच् कहना चाहिए ।
१६१९. अव सम् और अन्ध से परे तमस् से अच् होता है ।
१६२०. अनु अव और तप्त से परे रहस् शब्द से अच् होता है ।
१६२१. सप्तम्यर्थ द्योतक प्रति से परे उरसन्त समास से अच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६२२. अनुगवमायामे-५।४।८३।। एतन्निपात्यते दीर्घत्वे । अनुगवम् यानम् । यस्य चायाम इति समासः ।

१६२३. उपसर्गादध्वनः-५।४।८५।। प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ।

१६२४. न पूजनात्-५।४।६९।। पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ताः न स्युः । सुराजा । अतिराजा ।

वा. स्वतिभ्यामेव ।। नेह-परमराजः ।

१६२५. किमः क्षेपे-५।४।७०।। समासान्तो नेत्यर्थः । कुत्सितो राजा किंराजा। किंसखा । किंगौः ।

१६२६. नञस्तत्पुरुषात्-५।४।७१।। अराजा ।। तत्पुरुषात् किम्—अधुरं शकटम्।

मध्यमनोरमापूरणी

अनुगवम् इति—अनुना दीर्घत्वे द्योत्ये अनुगवमित्यच् प्रत्ययान्तो निपात्यते इत्यर्थः । अनु गो इत्यस्य यस्य चायाम इत्यनेन समासः । अनेनाच्, अवादेशः । सोरम्, पूर्वरुपम् । गौदैर्घ्य-सदृशदैर्घ्यकं यानमित्यर्थः । **उपसर्गादिति**—उपसर्गात् परस्मात् अध्वन् शब्दात् समासान्तोऽच् स्यादित्यर्थः । **प्राध्वो रथः**—प्रगतः अध्वानम् इति विग्रहे अत्यादय इति समासः । अच्, भत्वात् नस्तद्धिते इति टेरनोलोपः । सवर्णदीर्घः । प्राध्व इति । **न पूजनात्-** समासान्ताः इति सूत्रमनुवर्तते । परेभ्य इत्यध्याहियते । **अत आह**—पूजनार्थात् परेभ्य इत्यादि । **सुराजा**—शोभनो राजेति लौकिक विग्रहः, प्रादिसमासः, सुपो लोपः, सुराजन् इत्यस्मात् राजाहस्सखि-भ्यष्टजिति प्राप्तष्टच् 'न पूजनादिति' निषिध्यते । सौ उपधादीर्घः,सुलोपनलोपौ । **अतिराजा-** पूज्यो राजेत्यर्थः । राजाहः इति प्राप्तष्टच् न भवति । **स्वतिभ्यामेव**—पूजनार्थात् परेभ्यः यदि टचो निषेधः तर्हि स्वतिभ्यां परस्मात् राजन् शब्दादेव भवतीत्यर्थः । **त्रेन**—परमश्चासौ राजा इत्यत्र न पूजनादिति टचो निषेधो न भवति । राजाहस्सखिभ्यष्टजिति टचि टेर्लोपे परमराजः इति । **किमः क्षेपे**—क्षेपो निन्दा, क्षेपे यः किंशब्दस्तस्मात् परस्य समासान्तो न भवति । **किंराजा**—कुत्सितो राजा इति विग्रहे किं क्षेपे इति समासः । किंराजन् इत्यस्मात् राजाहः इति प्राप्तष्टच् किमः क्षेप इति निषिध्यते । सौ उपधादीर्घे सुलोपनलोपौ । यो न रक्षति सः किंराजा । **किंसखा**—योऽभिद्रुह्यति स निन्दितः सखा इत्यर्थः । पूर्ववदत्रापि समासे कृते प्राप्त-ष्टज् निषिध्यते । **किंगौः**—कुत्सितो गौः, यो न वहति इत्यर्थः । गोरद्धित इति प्राप्तष्टज् न भवति । **नञस्तत्पुरुषात्**—नञः परे ये वक्ष्यमाणाः राजादयः तदन्तात् तत्पुरुषात् समासान्तो नेत्यर्थः । **अराजा**—अविद्यमानः राजा इति नञ्समासः, नलोपो नञः । अराजन् इत्यस्मात् राजाहः इति प्राप्तष्टच् नञस्तत्पुरुषादिति निषिध्यते । **अधुरं शकटम्**—अविद्यमाना धूर्यस्येति

हिन्दी

१६२२. दीर्घत्व अर्थ द्योत्य रहने पर अनुगवम् यह निपातन है ।

१६२३. उपसर्ग से परे अध्वन् शब्दान्त समास से अच् प्रत्यय होता है ।

१६२४. पूजनार्थक से परे समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं ।

वा. सु और अति से परे राजन् शब्द से ही टच् का निषेध होता है ।

१६२५. निन्दार्थक किम् से परे जो शब्द उससे समासान्त नहीं होता है ।

१६२६. नञ्पूर्वक तत्पुरुष समास से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६२७. पथो विभाषा-५।४।७२।। अपथम् । अपन्थाः । तत्पुरुषादित्येव । अपथो देशः । इति समासान्ताः ।

मध्यमनोरमापूरणी

बहुव्रीहिः, अतः ऋक्पूरब्धूः इति अप्रत्ययः समासान्तः भवत्येव । अत्र नञ्पूर्वपदसत्त्वेऽपि तत्पुरुषाभावान्नञस्तत्पुरुषादित्यस्य न प्रवृत्तिः । **पथो विभाषा**—पूर्वसूत्रमनुवर्तते । नञः परो यः पथिन् शब्दस्तदन्तात् तत्पुरुषात् समासान्तो भवति विकल्पेनेत्यर्थः । **अपथम्**—न पन्थाः इति नञ्समासः, नलोपो नञः, ऋक्पूरब्धूरिति प्राप्तः समासान्तः पथो विभाषेति विकल्पेन भवति । भत्वाट्टेरिनो लोपः; पथः संख्याव्ययादेरिति नपुंसकत्वम् । अ-प्रत्ययाभावे अपन्थाः इति सौ रूपम् । **अपथो देशः**—अविद्यमानः पन्थाः यस्येति बहुव्रीहिः, तस्मादत्र ऋक्पूरिति अप्रत्ययस्य पाक्षिकोऽपि न निषेधः । इति मध्यमनोरमापूरण्यां समासान्ताः ।

हिन्दी

१६२७. नञ् से परे जो पथिन् शब्द तदन्त तत्पुरुष से समासान्त नहीं होता है ।

।। इति समासान्ताः ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथालुक्समासः

१६२८. अलुगुत्तरपदे-६।३।१॥ इत्यधिकृत्य ।

१६२९. ओजः सहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः-६।३।३॥ ओजसाकृतमित्यादि ।

वा. अञ्जस उपसंख्यानम् । अञ्जसाकृतम् ।

१६३०. आत्मनश्च पूरणे-६।३।६॥ तृतीयाया अलुक् । आत्मनापञ्चमः ।

१६३१. वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः-६।३।७॥ आत्मन इत्येव । आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा ।

१६३२. परस्य च-६।३।८॥ परस्मैपदम् । परस्मैभाषा । हलदन्तादिति (१५२३) सप्तम्या अलुक् । त्वचिसारः ।

१६३३. गवियुधिभ्यां स्थिरः-८।३।९५॥ आभ्यां स्थितस्य सस्य षः । गविष्ठिरः। गवीति वचनादेवालुक् । युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकाः । संज्ञायामिति सप्तमीसमासः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अलुगुत्तरपदे—अलुक् उत्तरपदे इति च पदद्वयम् अधिकृतमस्ति । इतः उत्तरसूत्रेषु पञ्चम्याः स्तोकादिभ्य इत्यादिषु इदं सूत्रमधिक्रियते । **कुत्र यावदधिकारोऽस्येति उच्यते**—आनङ् ऋतो इत्यतः प्राक् अधिकारः । **ओजः सहोऽम्भः इति**—ओजस् सहस् अम्भस् तमस् इत्येतेभ्यः परस्याः तृतीयायाः अलुग् भवति उत्तरपदे इत्यर्थः । **ओजसा कृतम्**—ओजस् टा कृत सु इत्यलौकिके विग्रहे कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि प्राप्तेऽनेन तृतीयाया अलुग् भवति । **अञ्जस इति**—अञ्जस् शब्दात् परस्याः तृतीयाया अलुग् उत्तरपदे इत्यर्थः । **अञ्जसाकृतम्**—वार्तिकेन तृतीयाया अलुक् । आर्जवेन कृतमित्यर्थः । **आत्मनश्चेति**-आत्मनः उत्तरस्याः तृतीयायाः अलुग् उत्तरपदे पूरणप्रत्ययान्ते परे । **आत्मनापञ्चमः**—तृतीया तत्कृतेति समासः, अत्मनश्चेति तृतीयाया अलुक् । **वैयाकरणाख्यायाम्**—वैयाकरणी आख्या, वैयाकरणाख्या, तस्यां या चतुर्थी तस्याः आत्मन्शब्दात् परस्याः न लुक् इत्यर्थः । **आत्मनेपदम्, आत्मनेभाषा इति**—उभयत्र तादर्थ्ये चतुर्थी, चतुर्थी तदर्थार्थ इति समासः, चतुर्थ्या अलुक्। **परस्मैपदम् परस्मैभाषा**—इत्युभयत्रापि तादर्थ्ये चतुर्थी, चतुर्थीसमासः, परस्य चेति चतुर्थ्याः अलुक् । **त्वचिसारः**—त्वचि सारो यस्येति व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । हलदन्तादिति सप्तम्या अलुक् । **गविष्ठिरः, युधिष्ठिर इति**—स्थाधातोः किरच् औणादिकः, स्थिर इति ।

हिन्दी

१६२८. 'अलुक् उत्तरपदे' यह अधिकार है 'आनङ्ऋतः' सूत्र तक ।

१६२९. ओजस् सहस् इत्यादि से परे तृतीया का अलुक् होता है, उत्तरपद परे रहते ।

वा. अञ्जस् से परे तृतीया का अलुक् हो उत्तरपद परे रहते ।

१६३०. आत्मन् से परे तृतीया का अलुक् होता है, पूरणार्थक उत्तरपद परे रहते ।

१६३१. आत्मन् से परे चतुर्थी का अलुक् होता है उत्तरपद परे; व्याकरण सम्बन्धी संज्ञा का वाचक होने पर ।

१६३२. पर से परे चतुर्थी का अलुक् होता है वैयाकरणी आख्या होने पर, उत्तरपद परे रहते ।

१६३३. गवि और युधि से परे स्थिर के स् को षत्व होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. हृद्युभ्यां च ।। हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् ।
१६३४. मध्याद् गुरौ-६।३।११।। मध्येगुरुः ।
वा. अन्ताच्च ।। अन्तेगुरुः ।
१६३५. अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे-६।३।१२।। कण्ठेकालः । उरसिलोमा । अमूर्धमस्तकात् किम्-मूर्धशिखः । अकामे किम्-मुखे कामोऽस्य मुखकामः ।
१६३६. तत्पुरुषे कृति बहुलम्-६।३।१४।। स्तम्बेरमः । कर्णेजपः ।
१६३७. शयवासवासिष्वकालात्-६।३।१८।। वा लुक् । खेशयः, खशयः ग्रामेवासः, ग्रामवासः । ग्रामेवासी, ग्रामवासी ।

मध्यमनोरमापूरणी

उभयत्रापि सप्तमीतत्पुरुषः । हलदन्तादिति सप्तम्या अलुक्, गवियुधिभ्यामिति षत्वे थस्य ष्टुत्वेन ठः । **गवीति वचनादेव अलुक्**—ननु गविष्ठिर इत्यत्र अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग् बाधते इति न्यायात् अवादेशात् पूर्वमेव सुपो लुकि सति हलन्तत्वाभावात् कथमत्र अलुक् **इति चेदाह**—अत्र गवीति वचनादेवालुक् । **अरण्ये तिलकाः** इत्यत्र संज्ञायामिति सप्तमीसमासे हलदन्तादिति अलुक् सप्तम्याः । **हृद्युभ्याञ्चेति**—हृच्छब्दात् दिव्शब्दाच्च सप्तम्या अलुक् भवतीत्यर्थः । **हृदिस्पृक्**—हृदये स्पृशति इति, ङौ परे हृदयस्य हृदादेशः, उपपदसमासः । हृद्युभ्यामिति सप्तम्या अलुक् । दिवं स्पृशतीति दिविस्पृक् । उभयत्रापि सप्तम्या अलुक्विधानसामर्थ्यादेव कर्मणि सप्तमी भवतीति भाष्यम् । **मध्ये गुरुः**—अत्र सप्तमीसमासे मध्याद् गुरौ इति सप्तम्या अलुक् । **अन्ताच्चेति**—अन्तशब्दात् परस्याः सप्तम्या अलुक् गुरौ परे इत्यर्थः। तेन अन्तेगुरुरित्यत्र सप्तमीसमासे अलुक् सप्तम्याः भवति । **अमूर्धमस्तकादिति**-मूर्धमस्तकभिन्नात् स्वाङ्गवाचिनः सप्तम्या अलुक् स्यान्न तु कामशब्दे परे । **कण्ठेकालः**—अत्र सप्तम्या अलुक् । **उरसिलोमा**—कस्यचिन्नाम । उभयत्र अलुग्विधानात् ज्ञापकात् व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । **मूर्धशिखः**—सूत्रस्याप्रवृत्त्या सप्तम्याः लुक् । **मुखकामः**—अत्र कामशब्दस्योत्तरपदत्वान्नास्य प्रवृत्तिः । यद्यकामे इत्येतन्न उच्येत तदात्रापि अलुक् स्यात् । **तत्पुरुषे इति**—तत्पुरुषे समासे कृदन्ते च उत्तरपदे सप्तम्याः बहुलमलुग् भवतीत्यर्थः । **स्तम्बेरमः**-स्तम्बे = तृणसमूहे रमते इति अर्थः । अत्रोपपदसमासे सप्तम्याः तत्पुरुषे कृतीति अलुक् । **कर्णे जपतीति कर्णेजपः**=पिशुनः । अत्रापि कर्णात् परस्याः सप्तम्याः अलुक् । स्तम्बकर्णयोः रमिजपोरित्यच कृत्प्रत्ययः उभयत्रास्ति । **शयवःसेति**—एषु उत्तरपदेषु कालभिन्नात् उत्तरस्याः सप्तम्याः अलुग् वेत्यर्थः । **खेशयः**—खे शेते इति विग्रहे उपपदसमासः, सप्तम्याः अलुक् । पक्षे लुकि खशय इति । एवमेव ग्रामेवासः ग्रामेवासी इत्युभयत्र बोध्यम् ।

हिन्दी

वा. हृद् और दिव् शब्द से परे सप्तमी का अलुक् होता है ।
१६३४. मध्य से परे सप्तमी का अलुक् होता है, गुरुशब्द परे रहते ।
वा. अन्त से परे भी सप्तमी का अलुक् होता है गुरु शब्द परे रहते ।
१६३५. मूर्धन् और मस्तकवर्जित स्वाङ्गवाची से परे सप्तमी का अलुक् होता है, काम शब्द के उत्तर पद न रहने पर ।
१६३६. तत्पुरुष समास में कृदन्तोत्तर पद परे सप्तमी का बहुलम् अलुक् होता है ।
१६३७. शय वास व वासी उत्तरपद रहते कालभिन्न से परे सप्तमी का विकल्प से लुक् होता है

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६३८. षष्ठ्या आक्रोशे-६।३।२१।। चोरस्य कुलम् । आक्रोशे किम्-ब्राह्मणकुलम्।
वा. वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु ।। वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतो-हरः।
वा. आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति च ।।
वा. देवानां प्रिय इति च मूर्खे ।। अन्यत्र देवप्रियः ।
वा. शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः ।। शुनः शेपः । शुनःपुच्छः । शुनोलाङ्गूलः ।
वा. दिवश्च दासे । दिवोदासः ।
१६३९. ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः-६।३।२३।। होतुरन्तेवासी ।
१६४०. विभाषा स्वसृपत्योः-६।३।२४।। ऋदन्तात् षष्ठ्या वाऽलुग् स्वसृपत्योः परयोः ।

मध्यमनोरमापूरणी

षष्ठ्या आक्रोशे—आक्रोशो निन्दा, तस्मिन् गम्ये उत्तरपदे परे षष्ठ्याः अलुग् भवतीत्यर्थः । **चोरस्य कुलम्**—षष्ठीतत्पुरुषे कृते अनेन षष्ठ्याः अलुक् । **वाग्दिगिति**—एभ्यः षष्ठ्याः अलुक् युक्त्यादिषु परेषु । वाचो युक्तिः, दिशो दण्डः, पश्यतो हरः = पश्यन्तमनादृत्य हरति, षष्ठी चानादरे इति षष्ठी । सर्वत्र वार्तिकेन षष्ठ्याः अलुक् । **आमुष्यायणेत्यादि**—अनेन वार्तिकेन यथोक्तमेव निपात्यते । **देवानां प्रिय इति**—मूर्खेऽर्थे षष्ठ्या अलुक् इत्यर्थः । दिवु क्रीडायाम् इत्यस्मात् देवाः इति, क्रीडासक्ताः इत्यर्थः । क्रीडासक्तानां प्रियोऽपि मूर्ख एव स्यादित्यपि अर्थः युज्यतेऽत्र । **शेपपुच्छेति**—श्वन् शब्दादुत्तरस्याः षष्ठ्याः अलुक् भवति शेपपुच्छलाङ्गूलेषु परेषु । **शुनः शेपः**—शुनः शेप इव शेपो यस्येति विग्रहे बहुव्रीहिः, षष्ठ्याः अलुक् । शुनः पुच्छमिव पुच्छं यस्येति विग्रहः, एवं **शुनोलाङ्गूल** इत्यपि । ऋषिविशेषाणां संज्ञाः एताः । सर्वत्र सप्तम्युपमानपूर्वपदस्येति समासः । **ऋतो विद्येति**—विद्यायोनिसम्बन्धवाचिभ्यः ऋदन्तेभ्यश्च षष्ठ्या अलुक् इत्यर्थः । **होतुरन्तेवासी**—षष्ठीसमासे षष्ठ्या अलुक् । **विभाषेति**-ऋत इत्यनुवर्तते । ऋदन्तात् षष्ठ्याः अलुग् वा स्वसृपत्योः उत्तरपदयोः ।

हिन्दी

१६३८. आक्रोश अर्थ गम्य होने पर षष्ठी का अलुक् होता है ।

वा. वाक् दिक् एवं पश्यत् से परे षष्ठी का अलुक् होता है युक्ति दण्ड एवं हर शब्द परे रहते ।

वा. आमुष्यायण इत्यादि निपातन हैं

वा. मूर्ख अर्थ में देवानां प्रियः यहाँ षष्ठी का अलुक् होता है ।

वा. श्वन् से परे षष्ठी का अलुक् होता है शेप पुच्छ व लाङ्गूल शब्द के परे रहते ।

वा. दिव् से परे षष्ठी का अलुक् होता है दास शब्द परे रहते ।

१६३९. विद्या एवं योनिसम्बन्धवाची ऋदन्त से परे षष्ठी का अलुक् होता है, उत्तरपदे परे ।

१६४०. ऋदन्त से परे षष्ठी का अलुक् होता है विकल्प से, स्वसृ एवं पति शब्द परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६४१. मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम्-८।३।८५।। स्वसुः सस्य षःसमासे । मातुःष्वसा । पितुःष्वसा । मातुः स्वसा । पितुः स्वसा । लुक् पक्षे तु-
१६४२. मातृपितृभ्यां स्वसा-८।३।८४।। स्वसुः सस्य षःसमासे । मातृष्वसा । पितृष्वसा । असमासे तु-मातुः स्वसा । पितुः स्वसा । इत्यलुक् समासः ।

मध्यमनोरमापूरणी

मातुः ष्वसा—षष्ठीसमासः, विभाषा स्वसृपत्योरिति षष्ठ्या अलुक्, मातुः पितुर्भ्यामिति षः । पक्षे मातुः स्वसा । अलुकः विकल्पे तु षष्ठीसमासे सुपो लुकि मातृ स्वसा इति जाते मातृपितृभ्यां स्वसेति षः । मातृष्वसा इतिवत् पितृष्वसा इत्यपि बोध्यम् । षत्वं तु समासे एव भवति तेन समासाभावे वाक्ये मातुः स्वसा पितुः स्वसा इत्यत्र न भवति षत्वम् ।

।। मध्यमनोरमापूरण्याम् इत्यलुक्समासः ।।

हिन्दी

१६४१. मातृ एवं पितृ शब्द से परे स्वसृ के स् को को षत्व होता है विकल्प से ।
१६४२. मातृ एवं पितृ शब्द से परे स्वसृ के स् को षत्व होता है, समास में ।

।। अलुक्समास समाप्त ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ समासाश्रयविधयः

१६४३. घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः-६।३।४३॥ भाषितपुंस्कात् यो ङी तदन्तस्यानेकाचो ह्रस्वः स्यात्, घरूपकल्पप्रत्यये चेलडादिषु चोत्तरपदेषु । ब्राह्मणितरा । ब्राह्मणितमा । ब्राह्मणिरूपा । ब्राह्मणिकल्पा । ब्राह्मणिचेली- ब्राह्मणिब्रुवा । ब्राह्मणिगोत्रेत्यादि । ब्रुवः पचाद्यचि वच्यादेशगुणयोरभावो निपात्यते । ङ्यः किम्-दत्तातरा । भाषितपुंस्कात् किम्-आमलकीतरा । कुवलीतरा ।

१६४४. नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम्-६।३।४४॥ अङ्यन्तनद्याः ङ्यन्तैकाचश्च घादिषु ह्रस्वो वा । ब्रह्मबन्धुतरा, ब्रह्मबन्धूतरा । स्त्रितरा, स्त्रीतरा ।

वा. कृन्नद्या न ॥ लक्ष्मीतरा ।

मध्यमनोरमापूरणी

भाषितपुंस्कादिति— स्त्रियाः पुंवद्भाषित इत्यस्मात् "भाषितपुंस्कात्" इत्यनुवर्तते । ङ्य इति तदन्तस्य ग्रहणम्, केवलस्य तस्य अनेकाच्त्वं न सम्भवति अतः । **अत आह**— भाषितपुंस्कात् यो ङी इत्यादि । **ब्राह्मणितरा, ब्राह्मणितमा इति**— ब्राह्मणी शब्दात् अतिशायनेऽर्थे तरप्तमपौ क्रमशः भवतः । घरूपकल्पचेलड् इत्यादिना ब्राह्मण्या, ह्रस्वः । **ब्राह्मणिरूपा**— प्रशंसायां रूपम्, ब्राह्मण्या ह्रस्वः । **ब्राह्मणिकल्पा**— ईषदसमाप्तौ कल्पप्, ह्रस्वः । **ब्राह्मणिचेली**— चिल् वसने इत्यस्माद्धातोः अचि चेलट् इति पचादौ पठितः । टित्त्वान्ङीप् । चेली शब्दे परे ब्राह्मण्याः ह्रस्वः। **ब्राह्मणिब्रुवा**— ब्रूधातोरच्, अचः आर्धातुकत्वात् ब्रुवो वचिरिति वच्यादेशः प्राप्तः तदभावोऽनेन निपात्यते, अथ सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति प्राप्तस्य गुणस्याभावोऽपि निपात्यते । उवङ्, टाप्, सवर्णदीर्घः, ब्रुवा इति, तस्मिन् परे ब्राह्मण्याः ह्रस्वः । चेलडादीनि उत्तरपदानि कुत्सनवाचकानि अतः कुत्सितानि कुत्सनैरिति कर्मधारयः एषु बोध्यः । **दत्तातरा**- दत्ता इत्यस्य ङ्यन्तत्वाभावान्न ह्रस्वः । ङ्य इति यदि नोच्येत तदाऽत्रापि ह्रस्वः प्रसज्येत । **आमलकीतरा, कुवलीतरा इति**— वृक्षविशेषे नित्यस्त्रीलिङ्गोऽयम्, तस्मान्नैतयोः ह्रस्वः । सभाषितपुंस्कादित्यस्याभावेऽत्रापि ह्रस्वः स्यादिति भावः । **नद्याः शेषस्येति**— उक्तादन्यः शेषः, ङ्यन्तस्य अनेकाचः इति घरूपसूत्रे उक्तम् । तद्भिन्नः अङ्यन्तस्य इति, एकाचः इति च गृह्यते। अत उक्तमङ्यन्तनद्याः इत्यादि । **ब्रह्मबन्धुतरा,**— ब्रह्मबन्धु इत्यस्मात् ऊङ् स्त्रीप्रत्ययान्तः, नदीसंज्ञकश्च, तस्य नद्याः शेषस्येति ह्रस्वः । पक्षे ब्रह्मबन्धूतरा इति । **स्त्रितरा**- स्त्रीशब्दात्तरप्। ह्रस्वः । **कृन्नद्या इति**— कृदन्ता या नदी तस्याः न ह्रस्वः इत्यर्थः । **लक्ष्मीतरा**- लक्ष्धातोरी-प्रत्यये मुडागमे लक्ष्मी इति कृदन्तनदीसंज्ञकः, तस्याः कृन्नद्या नेति ह्रस्वनिषेधः ।

हिन्दी

१६४३. घ रूप कल्प चेलट् ब्रुव गोत्र मत और हत इन उत्तरपदों के परे रहते भाषित पुंस्क से परे जो ङी, तदन्त अनेकाच् को ह्रस्व होता है ।

१६४४. अङ्यन्तनदीसंज्ञक एवं ङ्यन्त एकाच् को घादि प्रत्यय परे ह्रस्व होता है ।

वा. कृदन्त नदी-वाचक को घादि परे ह्रस्व नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६४५. उगितश्च-६।३।४५।। उगितः परा नदी तदन्तस्य घादिषु ह्रस्वो वा स्यात्। विदुषितरा । ह्रस्वाभावपक्षे पुंवत्-विद्वत्तरा ।

१६४६. पादस्य पदाऽऽज्यातिगोपहतेषु-६।३।५२।। एषूत्तरपदेषु पादस्य पद इत्यदन्तादेशः स्यात् । पादाभ्यामजतीति पदाजिः । पदातिः । 'अज्यतीभ्यां पादे च' इतीण् प्रत्ययः । पदगः । पदोपहतः ।

१६४७. पद्यत्यतदर्थे-६।३।५३।। पादस्य पत् स्यात् अतदर्थे यति । पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः । विध्यत्यधनुषेति यत् ।

१६४८. उदकस्योदः संज्ञायाम्-६।३।५७।। उत्तरपदे । उदमेघः ।

वा. उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम् ।। क्षीरोदः ।

१६४९. पेषंवासवाहनधिषु च-६।३।५८।। उदपेषं पिनष्टि । उदवासः । उदवाहनः । उदधिर्घटः ।

मध्यमनोरमापूरणी

विदुषितरा—विद्धातोः शतुर्वसुरादेशे विद्वस् इति, ङीपि सम्प्रसारणे विदुषी इति, तस्याः तरप्-प्रत्यये परे उगितश्चेति ह्रस्वः । **ह्रस्वाभावे विद्वत्तरेति**—तसिलादिष्वाकृत्वसुचः इति पुंवद्भावे ङीपो निवृत्तौ विद्वस् तरा इति, सस्य जश्त्वचर्त्वे । **पादस्येति**—पद इति लुप्तप्रथमाकं पृथक् पदम् । **पदाजिः**—पादाभ्यामजतीति अर्थः, अज् गतिक्षेपणयोरित्यस्मात् अज्यतीभ्यां पादे चेति इण्, उपधावृद्धिः, उपपदसमासे सुपो लुकि पादस्य पदेति पदादेशः, सवर्णदीर्घः । पादाभ्यामततीति पदातिः, पूर्ववत् सर्वम् । पादाभ्यां गच्छतीति विग्रहे धातोर्डः, टेर्लोपः, पदादेशः । पादाभ्यामुपहतः इति तृतीयातत्पुरुषे 'पादस्य पदाज्याति' इति पदादेशः । **पद्यतदर्थे**—पादस्य इत्यनुवर्तते । पत् यति अतदर्थे इतिच्छेदः । पादस्य पदादेशो भवति अतदर्थे परे । **पद्याः**—पाद शब्दाद्यत्, पदादेशः । **पाद्यमिति**—तदर्थेऽत्र यत्, अतो न पदादेशः । अतदर्थे इत्येतत् यदि नोच्येत तदाऽत्रापि यति परे पदादेशापत्तिः स्यात् । **उदकस्येति**—उदकस्योद इत्यादेशो भवति संज्ञायां विषये उत्तरपदे च परे । **उदमेघः**- उदकपूर्णमेघसादृश्यात् कस्यापीयं संज्ञा । उदकस्योदादेशः । **उत्तरपदस्येति**—उत्तरपदस्य उदकस्य उदादेशः संज्ञायाम् । **क्षीरोदः**-क्षीरम् उदकं यस्येति बहुब्रीहिः । उत्तरपदस्येति उदादेशे गुणः । **पेषंवासेति**—उदकस्योदः स्यात् पेषंवासादिषु परेषु । **उदपेषं पिनष्टि**—उदकेन पिनष्टि इत्यर्थः, पिष् धातोः स्नेहने पिषः इति णमुल्, उपपदसमासः, उदकपेषम् इति, उदादेशः । **उदवासः**—उदकस्य वासः इति षष्ठी समासे उदादेशः । **उदवाहनः**—उदकस्य वाहनः = वाहकः इत्यर्थः । उदादेशः । **उदधिः**—उदकं धीयतेऽस्मिन्निति किप्रत्ययो धाधातोः, उपपदसमासे उदादेशः ।

हिन्दी

१६४५. उगित् से परे जो नदी तदन्त का घादि प्रत्यय परे रहते ह्रस्व विकल्प से होता है ।

१६४६. पाद शब्द को 'पद' यह अकारान्त आदेश होता है आजि आति ग एवं उपहत शब्द के उत्तरपद रहने पर ।

१६४७. पाद को पद् आदेश होता है अतदर्थक यत् प्रत्यय परे रहते ।

१६४८. उदक को उद आदेश होता है, उत्तरपद परे व संज्ञा में । **वार्तिक**- उत्तरपदस्थ उदक को उद आदेश होता है ।

१६४९. पेषं वास वाहन एवं धि परे रहते उदक को उद आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६५०. एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम्-६।३।५९॥ उदकुम्भः। उदककुम्भः। एकेति किम्? उदकस्थाली। पूरयितव्येति किम्-उदकपर्वतः।
१६५१. मन्थौदनसक्तुविन्दुवज्रभारहारवीवधगाहेषु च-६।३।६०॥ उदमन्थः। उदकमन्थः। उदौदनः, उदकौदनः।
१६५२. इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य-६।३।६१॥ इगन्तस्याङ्यन्तस्य ह्रस्वो वा उत्तरपदे। ग्रामणिपुत्रः, ग्रामणीपुत्रः। इकः किम्-रमापतिः। अङ्यः किम्-गौरीपतिः।
१६५३. ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे-६।१।६३॥ ष्यङन्तस्य पूर्वपदस्य सम्प्रसारणं स्यात् पुत्रपत्योः परतः। १६५४. सम्प्रसारणस्य-६।३।१३९॥ दीर्घः स्यादुत्तरपदे। कौमुदगन्ध्यायाः पुत्रः कौमुदगन्धीपुत्रः। कौमुदगन्धीपतिः।
१६५५. इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु-६।३।६५॥ इष्टकादीनां तदन्तानां च चितादिषु ह्रस्वः स्यात्। इष्टकचितम्। पक्वेष्टकचितम्। इषीकतूलम्। मुञ्जेषीकतूलम्। मालभारि। उत्पलमालभारि।

मध्यमनोरमापूरणी

एकहलादाविति—उदकस्योद इत्यनुवर्तते। एकहलादौ इत्यनेन असंयुक्तहलादौ इत्यर्थो लभ्यते। असंयुक्तहलादौ पूरयितव्ये उत्तरपदे उदकस्योदः स्याद् वेत्यर्थः। **मन्थौदनेति**—उदकस्य उदादेशो वा मन्थौदनादिषु उत्तरपदेषु परेषु। **उदमन्थः**—उदकमिश्रः मन्थः इति उत्तर-पदलोपिसमासः, उदकस्योदादेशः। वृद्धिश्च। **ग्रामणिपुत्रः**—ग्रामण्याः पुत्रः इति षष्ठीसमासः। इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्येति ह्रस्वः। **पक्षेः**—ग्रामणीपुत्रः। **अङ्यः किमिति**- एतत्पदाभावे ङ्यन्तस्य गौरीशब्दस्यापि ह्रस्वापत्तिः स्यात्। **ष्यङः सम्प्रसारणमिति**—ष्यङ इति प्रत्ययग्रहण-परिभाषया तदन्तस्य बोधकम्। तत्पुरुषे इति पाठात् पूर्वपदस्य सम्प्रसारणमिति लभ्यते। **अत आह**—ष्यङन्तस्य पूर्वपदस्येत्यादि। **संप्रसारणस्य**—ढ्रलोपे पूर्वस्येत्यतः 'दीर्घः' इत्यनुवर्तते, उत्तरपदे इति अधिकारलभ्यः। सम्प्रसारणस्य दीर्घः स्यादुत्तरपदे इत्यर्थः। **कौमुदगन्धीपुत्रः**—कुमुद गन्ध इव गन्धो यस्येति कुमुदगन्धिः, कुमुदगन्धेः अपत्यं स्त्री इत्यर्थे तस्यापत्यमित्यण्। अणः ष्यङादेशः, यस्येति चेति इकारलोपः, आद्यचो वृद्धिः, यङश्चाप्। कौमुदगन्ध्या इति, तस्याः पुत्र इति षष्ठीतत्पुरुषः। सुपो लुक्। ष्यङः सम्प्रसारणमिति यकारस्य सम्प्रसारणे इकारे सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे कौमुदगन्धि पुत्र इति जाते सम्प्रसारणस्येति दीर्घः। कौमुदगन्ध्याः पतिः कौमुदगन्धीपतिः इति सर्वं पूर्ववत्। **इष्टकेति**—उत्तरपदे इत्यस्याधिकारः। तेन पूर्व-पदमपि लभ्यते, पूर्वपदञ्च इष्टकादिभिर्विशिष्यते। येन विधिस्तदन्तस्येति तदन्तविधिः। **अत आह**—इष्टकादीनां तदन्तानाञ्चेत्यादि। **इष्टकचितम्**- इष्टकाभिः चितमिति विग्रहः, कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासः। इष्टका इत्यस्य ह्रस्वः।

हिन्दी

१६५०. असंयुक्त हलादि पूरयितव्यार्थक उत्तरपद रहने पर उदक को उद होता है विकल्प से।
१५५१. मन्थ ओदनादि के परे रहते उदक को उद आदेश होता है विकल्प से।
१६५२. अङ्यन्त इगन्त अङ्ग को ह्रस्व होता है उत्तरपद परे, विकल्प से।
१६५३. ष्यङ्यन्त पूर्वपद को सम्प्रसारण होता है पुत्र एवं पति परे, तत्पुरुष में।
१६५४. सम्प्रसारण को दीर्घ होता है उत्तरपद परे रहते।
१६५५. इष्टकादि एवं तदन्तों को चित तूल एवं भारि शब्द परे रहते ह्रस्व होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६५६. ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनाम गोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु-६।३।८५॥ समानस्य सः । सज्योतिः ।

१६५७. चरणे ब्रह्मचारिणि-६।३।८६॥ ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य सः, चरणे समानत्वेन गम्यमाने । चरणः-शाखा । ब्रह्म वेदः, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म । तच्चरतीति ब्रह्मचारी । समानस्य सः, सब्रह्मचारी ।

१६५८. तीर्थे ये-६।३।८७॥ तीर्थे उत्तरपदे यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य सः स्यात् । सतीर्थ्यः- एकगुरुकः । समानतीर्थे वासीति यत् प्रत्ययः ।

१६५९. विभाषोदरे-६।३।८८॥ सोदर्यः, समानोदर्यः ।

१६६०. दृग्दृशवतुषु-६।३।८९॥ सदृक्-सदृशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तदन्तविधेः प्रयोजनम्—पक्वेष्टकया चितं पक्वेष्टकचितमित्यस्य ह्रस्वः । **ईषीकायास्तूलमीषीकतूलमिति । मालभारि**—मालां बिभर्ति तच्छीलं, सुप्यजातौ इति णिनिः, माला इत्यस्य ह्रस्वः । **ज्योतिर्जनपदेति**—समानस्य छन्दस्येत्यतः समानस्येत्यनुवर्तते, 'सहस्य सः' इत्यतः स इति च । ज्योतिरादिषु परेषु समानस्य सः स्यादित्यर्थः । अच्छन्दोऽर्थं वचनम् । **सज्योतिः**- समानं ज्योतिर्यस्येति बहुव्रीहिः । ज्योतिर्जनपदेत्यादिना समानस्य सादेशः । **चरणे ब्रह्मचारिणि**- 'समानस्येति, स' इति चानुवर्तते, उत्तरपदस्याधिकारः । चरणे इति सप्तमी समानस्येत्यत्रान्वेति । तेन चरणे समानत्वेन गम्यमाने इति फलितार्थो लभ्यते । **अत आह**- ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे इत्यादि । **सब्रह्मचारी**—समानो ब्रह्मचारी इति समासः, समानस्य सादेशः । समानत्वमत्रवेदद्वारा । तथा च समानवेदाध्ययनार्थं व्रतचारी इति फलितार्थः । समाने ब्रह्मणि व्रतचारी इति विग्रहे व्रतस्य लोपः, समानस्य सादेशश्च निपात्यते इति **भाष्यम्** । **तीर्थे ये**- ये इति प्रत्ययविशेषणम्, यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे इति तदादिग्रहणम् । अथवा प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्या इति यप्रत्ययान्ते तीर्थे उत्तरपदे इत्यपि अर्थः कर्तुं शक्यः । **सतीर्थ्यः**—समाने तीर्थे वासीति तीर्थशब्दात् यत्, भत्वादकारस्य लोपः, तीर्थे ये इति समानस्य सः । **विभाषोदरे**- ये इत्यनुवर्तते, समानस्य सः इति च । यप्रत्ययान्ते उदरोत्तरपदे समानस्य सः वेत्यर्थः । **सोदर्यः**- समाने उदरे शयितः इति यत् । समानस्य सादेशे आद्गुणः । सादेशाभावे समानोदर्यः इति । **दृग्दृशेति**—समानस्य सः इति शेषः । **सदृक्—सदृशः**—समानो दृश्यते इत्यर्थे समानान्ययोश्चेति क्रमशः क्विन् कञ् च, दृग्दृशवतुषु इति सादेशः ।

हिन्दी

१६५६. ज्योतिः जनपद इत्यादि उत्तरपद परे रहते समान को स आदेश होता है ।

१६५७. ब्रह्मचारी उत्तरपद परे रहते समान को 'स' आदेश होता है । चरण अर्थ समान रूप से गम्यमान होने पर ।

१६५८. यप्रत्यान्त तीर्थशब्द उत्तरपद रहते समान को स आदेश होता है ।

१६५९. यप्रत्ययान्त उदरशब्द परे रहते समान को स आदेश विकल्प से होता है ।

१६६०. दृग् दृश एवं वतु उत्तरपद परे रहते समान को स आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥ सदृक्षः ।

१६६१. इदंकिमोरीश्की-६।३।९०॥ दृग्दृशवतुषु । ईदृक् । ईदृशः । कीदृक् । कीदृशः ।

वा. दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥ ईदृक्षः । कीदृक्षः ।

१६६२. अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु-६।३।९९॥ अन्यशब्दस्य दुगागमः स्यादाशीरादिषु परेषु । अन्यदाशीः । अन्यदाशा । अन्यदास्था । अन्यदास्थितः । अन्यदुत्सुकः । अन्यदूतिः । अन्यद्रागः। अन्यदीयः । अषष्ठीत्यादि किम्-अन्यस्यान्येन वा आशीः अन्याशीः।

वा. कारके छे च नायं निषेधः ॥ अन्यस्य कारकोऽन्यत्कारकः । अन्यस्यायमन्यदीयः ।

१६६३. अर्थे विभाषा-६।३।१००॥ अन्यदर्थः । अन्यार्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दृक्षे चेति—समानस्य सादेश इति । **सदृक्षः**—समानो दृश्यते इत्यर्थे 'क्सोऽपि वाच्यः' इति क्सः, समानस्य सादेशः । दृशः सस्य षः, षढोः कः सीति कः । क्सः सस्य षत्वे सदृक्षः इति। **इदं किमोरीश्की इति**—दृग्दृश्वतुषु इत्यनुवर्तते । एतेषु परेषु इदम् इत्यस्य ईश्, किम् इत्यस्य च की इत्यादेशो भवतीत्यर्थः । **ईदृक्-ईदृशः**—इदमिव दृश्यते इत्यर्थे इदम् शब्दात् त्यदादिषु दृशेः क्विन्कञौ, इदं किमोरिति ईश् । किमिव दृश्यते इत्यर्थे क्विन्कञौ । किमः की इत्यादेशः, **कीदृक्-कीदृशः इति । ईदृक्षः-कीदृक्षः इति**—क्सोऽपि वाच्यः इति क्सः, दृक्षे चेति ईश् की इत्यादेशः । **अषष्ठ्येति**—अषष्ठ्यां तिष्ठतीति, अतृतीयायां तिष्ठतीति, स्थ इत्यस्य उभयोर्योगः । अषष्ठीस्थस्य अतृतीयास्थस्य च अन्यशब्दस्य दुगागमो भवति आशीः आशा आस्था आस्थित उत्सुक ऊति कारक राग छ इत्येतेषु परेषु इत्यर्थः । दुक् इत्यत्र उकौ इतौ, द्मात्रं शिष्यते । **अन्यदाशीः**—अन्या आशीः इति कर्मधारयः, दुक् । एवमेव अन्यद्रागपर्यन्तं कर्मधारयः, दुगागमश्च । **अन्यदीयः**—अन्यस्मिन् भवः, छः, छस्येयः, दुगागमः । **अन्यस्येति**-अषष्ठ्यतृतीयास्थेति निषेधः कारके छे प्रत्यये परे च न भवतीति वक्तव्यम् । तेन अन्यस्य कारकः इति षष्ठीसमासेऽपि दुकि अन्यत्कारक इति भवति । अन्यस्यायमन्यदीयः इति छ प्रत्यये परेऽपि षष्ठीस्थस्य दुक् । **अर्थे विभाषा**—दुक् वेति । अन्यश्चासावर्थः इति कर्मधारये कृते दुकि अन्यदर्थे इति । पक्षे सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

वा. दृक्ष परे रहते भी समान को स आदेश होते हैं ।

१६६१. दृग् दृश व वतुप्रत्यय परे इदम् एवं किम् को ईश् तथा की आदेश होते हैं ।

वा. दृक्ष शब्द परे रहते भी इदम् व किम् को ईश् व की आदेश होते हैं ।

१६६२. षष्ठ्यन्त-तृतीयान्त भिन्न अन्य शब्द को 'दुक्' आगम होता है, आशीः आदि परे रहते ।

वा. कारक एवं छप्रत्यय परे षष्ठ्यन्त एवं तृतीयान्त अन्य को 'दुक्' का निषेध न हो ।

१६६३. अर्थ शब्द परे रहते अन्य को दुक्-आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६६४. कोः कत्तत्पुरुषेऽचि-६।३।१०१॥ अजादावुत्तरपदे । कुत्सितोऽश्वः कदश्वः । कदन्नम् । तत्पुरुषे किम्-कूष्ट्रो राजा ।
वा. त्रौ च ॥ कत्त्रयः ।
१६६५. रथवदयोश्च-६।३।१०२॥ कद्रथः । कद्वदः ।
१६६६. तृणे च जातौ-६।३।१०३॥ कत्तृणम् ।
१६६७. का पथ्यक्षयोः-६।३।१०४॥ कापथम् । काक्षः ।
१६६८. ईषदर्थे-६।३।१०५॥ ईषज्जलं काजलम् ।
१६६९. विभाषा पुरुषे-६।३।१०६॥ कुपुरुषः,= कापुरुषः ।
१६७०. कवं चोष्णे-६।३।१०७॥ उष्णशब्दे उत्तरपदे कवं का च वा स्यात् । कोष्णम् । कवोष्णम् । कदुष्णम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

कोः कत्तत्पुरुषेऽचि—कु इत्यस्य कत् इत्यादेशस्तत्पुरुषेऽजादावुत्तरपदे इत्यर्थः । **कदश्वः-कदन्नम् इति**—कुत्सितः अश्वः, कुत्सितमन्नम् इत्युभयत्र 'कुगतिप्रादयः' इति समासे कोः कत् इत्यादेशः, तस्य जश्त्वेन दः । **कूष्ट्रो राजा**—कुत्सितः अश्वः यस्येति बहुव्रीहौ न कोः कत्। **त्रौ चेति**—त्रिशब्दे उत्तरपदे कोः कत् इत्यर्थः । कुत्सिताः त्रयः कत्त्रयः । **रथवदयोश्च**-कोः कत्तत्पुरुषे इत्यनुवर्तते । अनयोः परयोः कोः कदादेश इत्यर्थः । **कद्रथः**—कुत्सितो रथः, कुगति प्रादयः इति समासः, रथवदयोरिति कदादेशः । कुत्सितो वदः **कद्वद इति । तृणे चेति**-जातौ वाच्यायां तृणशब्दे उत्तरपदे कोः कत् इत्यर्थः । **कत्तृणम्**—कोः कत् आदेशः । कत्तृणा जातिरस्ति । कुत्सितानि तृणानि इत्यर्थे तु कुतृणानीत्येव । **का पथ्यक्षयोः**- पथिन् अक्षि इत्येतयोः परयोः कु इत्यस्य कादेश इत्यर्थः । **कापथम्**—कुत्सितः पन्थाः इति, कुगतीति समासः, ऋक्पूरिति अः, टेर्लोपः, कोः कादेशः । पथः संख्याव्ययादेरिति नपुंसकता । **काक्षः**—कुत्सिते अक्षिणी यस्येति बहुव्रीहिः, बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरिति षच्, यस्येति चेतीकारलोपः, कोः कादेशे सवर्णदीर्घः । **ईषदर्थे**—ईषदर्थे वर्तमानस्य कु इत्यस्य कादेशः इत्यर्थः । **काजलम्**—कोः कादेशः । **विभाषा पुरुषे**—पुरुषशब्दे परे कोः कादेशोवेत्यर्थः । **कुपुरुषः-कापुरुष इति**—कुत्सितः पुरुषः इति विग्रहे कुगतिप्रादय इति समासे सुपो लुकि अनेक कोः कादेशेकापुरुषः इति, पक्षे कुपुरुष इति । **कवं चोष्णे**—विभाषा इति कोः इति चानुवर्तते । ईषदर्थेत्यत ईषदिति चानुवर्तते । **कोष्णम्- कवोष्णम्-कदुष्णम् इति**-कुत्सितम्=ईषत्, उष्णमिति विग्रहे समासे, कवं चोष्णे इति कोः कादेशे गुणे कोष्णम् इति, कवादेशे च कवोष्णम् इति भवति । पक्षे कोः कत्तत्पुरुषे इति कदादेशे कदुष्णमिति च भवति ।

हिन्दी

१६६४. कु को कत् आदेश होता है तत्पुरुष समास में, अजादि उत्तरपद परे रहते ।
वा. त्रि शब्द परे रहते भी कु को कत्-आदेश होता है ।
१६६५. कु को कत् आदेश होता है रथ एवं वद उत्तरपद परे रहते ।
१६६६. जाति वाच्य होने पर तृण शब्द परे कु को कत् आदेश होता है ।
१६६७. पथिन् एवं अक्षि उत्तरपद परे कु को का आदेश होता है ।
१६६८. ईषत् अर्थ में कु को का आदेश होता है उत्तरपद परे रहते ।
१६६९. पुरुष-उत्तरपद परे रहते कु को का आदेश विकल्प से होता है ।
१६७०. उष्ण शब्द के परे कु को कव एवं का-आदेश होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६७१. पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्-६।३।१०७॥ पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि । पृषत् उदरं पृषोदरम् । तलोपः । वारिवाहको बलाहकः । पूर्वपदस्य बः उत्तरपदादेश्च लत्वम्

भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् ।
गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम् ॥

१६७२. मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्-६।३।११९॥ दीर्घः स्यात् । अमरावती । अनजिरादीनां किम्-अजिरवती । बह्वचः किम्-व्रीहिमती । संज्ञायामित्येव । नेह-वलयवती ।

१६७३. शरादीनाञ्च-६।३।१२०॥ शरावती ।

१६७४. उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्-६।३।१२२॥ परीपाकः, परिपाकः । अमनुष्ये किम्-निषादः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पृषोदरादीनि—पृषोदरादीनि शब्दस्वरूपाणि येषु शास्त्रैः लोपागमवर्णविकारादयः नैव विहिताः, किन्तु तथाभूतानि दृश्यन्ते, तानि यथा उपदिष्टानि तथैव साधूनि मन्यन्ते इत्याशयः । **पृषोदरम्**—पृषत् उदरं यस्येति बहुव्रीहिः, तलोपे गुणः । **बलाहकः**—वारिवाहक इत्यत्र वारिस्थाने बः, वाहक इत्यत्र वा स्थाने लत्वम् । **भवेदिति**—पृषोदरादिपाठे किं किं कार्यं कथं भवतीति कारिकामाध्यमेन उच्यते । **वर्णागमाद् हंस इति**—हस्धातोरचि प्रत्यये अनुस्वार-वर्णस्यागमे हंस इति भवति । **सिंहो वर्णविपर्ययादिति**—हिसि हिंसायाम्, इदित्वान्नुम्, पचाद्यच् । हिंस इति, हकारस्य सकारे सकारस्य च हकारे विपर्ययः । **गूढोत्मा वर्णविकृतेरिति**-गूढ आत्मा यस्येति बहुव्रीहिः । आत्मा इत्यस्याकारस्य उकारः, आद्गुणः । **वर्णनाशात् पृषोदरमिति**—तलोपात् रूपं सिध्यति इति उक्तमेव । **मतौ बह्वच इति**—ढ्रलोपे इत्यतः दीर्घ इत्यनुवर्तते । मतुपि परे अजिरादिभिन्नानां दीर्घो भवति संज्ञायाम् इत्यर्थः । **अमरावती**-इन्द्रनगर्याः संज्ञेयम् । अमराः सन्ति अस्यामिति मतुप्, मादुपधायाश्चेति मस्य वः, उगितश्चेति ङीप्, अमर वती इति, मतौ बह्वच इति दीर्घे अमरावती इति रूपम् । **अजिरवती**—मतुपि परेऽपि न दीर्घः । यद्येतन्नोच्येत तदाऽत्रापि दीर्घापत्तिः स्यात् । **व्रीहिमती**—व्रीहिशब्दस्य बह्वच्त्वा-भावान्नात्र दीर्घः । संज्ञायामेवानेन दीर्घः क्रियते । **तेन वलयवती**—इत्यत्र वलयस्यान-जिरत्वेऽपि न दीर्घः । **शरादीनामिति**—मतौ इति, दीर्घ इति चानुवर्तते । मतौ प्रत्यये परे शरादीनां दीर्घो भवति । बह्वच्कत्वाभावाद् न पूर्वेण प्राप्तिः । **शरावती**—शराः सन्ति अस्यामिति विग्रहे मतुप्, मादुपधायाश्चेति मस्य वः । स्त्रीत्वान्ङीप् । अनेन दीर्घः । **उपसर्गस्येति**—उपसर्गस्य दीर्घो भवति घञन्ते परे न तु मनुष्येऽभिधेये, बहुलमित्यर्थः । **परीपाकः**—परिपूर्वात् पचतेर्घञि, उपधावृद्धिः, चजोरिति कुत्वम्, उपसर्गस्येति दीर्घः । **निषाद इति**—पुलिन्दो नाम मनुष्यजातिविशेषः, तस्मान्नात्र दीर्घः ।

हिन्दी

१६७१. पृषोदरादि शब्द शिष्टों द्वारा जैसे पढे गये हैं वैसे ही साधु हैं ।

१६७२. मतुप् प्रत्यय परे अजिरादि भिन्न बहुत अच् वाले शब्द को दीर्घ होता है ।

१६७३. मतुप् परे शरादि शब्दों को दीर्घ होता है ।

१६७४. घञन्त शब्द परे रहते उपसर्ग को दीर्घ होता है बहुल प्रकार से, मनुष्य अभिधेय हो तो नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६७५. नरे संज्ञायाम्-६।३।१२९।। विश्वानरः ।

१६७६. मित्रे चर्षौ-६।३।१३०।। विश्वामित्रः ।

वा. शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्दवराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः ।। श्वादन्तः ।

१६७७. प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि-८।४।५।। एभ्यः परस्य वनस्य नस्य णत्वम् । प्रवणम् ।

१६७८. विभाषौषधि-वनस्पतिभ्यः-८।४।६।। दूर्वावणम्, दूर्वावनम् । शिरीषवणम्, शिरीषवनम् ।

वा. द्व्यच्त्र्यज्भ्यामेव ।। नेह देववदारुवनम् ।

वा. इरिकादिभ्यो न । इरिकावनम् । गिरिकावनम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

नरे इति—विश्वस्येत्यत विश्वस्येत्यनुवर्तते । नरे परे विश्वस्य दीर्घः संज्ञायामित्यर्थः । **विश्वानरः**—विश्वस्य नरः इति समासः, विश्वस्य दीर्घः । **मित्रे चर्षौ**—विश्वस्येत्युनवर्तते, ऋषौ अभिधेये मित्रे उत्तरपदे विश्वस्य दीर्घ इत्यर्थः । विश्वं मित्रम् यस्येति समासे दीर्घे विश्वामित्र इति । **शुनो दन्तेत्यादि**—श्वन् शब्दस्य दन्तदंष्ट्रादिषु परेषु दीर्घो भवतीत्यर्थः । **श्वादन्तः**—शुनः दन्तः इति षष्ठी समासः, श्वनो नस्य लोपः, श्वदन्त इति, शुनो दंतेत्यादिना दीर्घः । एवमेव **श्वादंष्ट्र**इति बोध्यम् । **श्वाकर्णः श्वाकुन्दः** श्वावराहः इत्याद्यपि भवति ।**प्रनिरन्त इति**—'वनं पुरगामिश्रका' इत्यतः वनमित्यनुवर्तते, षष्ठ्यन्ततया विपरिणमते च । प्र निर् अन्तर् इत्यादिभ्यः परस्य वनस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायाम् असंज्ञायामपि इत्यर्थः । **प्रवणम्**-प्रकृष्टं वनमिति विग्रहे प्रादिसमासः । 'प्रनिरन्तः' इत्यादिना णत्वम् । **विभाषौषधि**-वनमित्यनुवर्तते -औषधिवनस्पतिवाचिपूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य वनस्य नस्य णो वेत्यर्थः । **ओषधिवाचिभ्यस्तु**—दूर्वावणम्-णत्दम् । वनस्पत्तिशब्देन वृक्षसामान्यं गृह्यते-तेन शिरीषवणम् इत्यत्रापि वा णत्वम् । **द्व्यच्त्र्यज्भ्यामेव**—वनस्य णत्वमित्यर्थः । **देववदारुवनम्**- बह्वच्कत्वान्नेह णत्वं प्रवर्तते । **इरिकादिभ्यः**—एभ्यः परस्यवननकारस्य णत्वं नेत्यर्थः । **इरिकावनम्**—द्व्यच्त्र्यज्भ्यामिति प्राप्तं णत्वं निषिध्यते ।

हिन्दी

१६७५. नर शब्द परे रहते विश्व शब्द को दीर्घ होता है ।

१६७६. ऋषि अर्थ वाच्य होने पर मित्रशब्द परे रहते विश्व शब्द को दीर्घ होता है। वार्तिक-श्वन् को दन्तदंष्ट्र आदि परे रहते दीर्घ होता है ।

१६७७. प्र निर् अन्तर् शर इक्षु प्लक्ष आम्र कार्ष्य खदिर पीयूक्षा आदि से परे वन के न को णत्व होता है, संज्ञा या असंज्ञा में भी ।

१६७८. औषधि वनस्पति वाचक पूर्वपदस्थ निमित्त से परे वन के न को ण होता है, विकल्प से ।

वा. औषधि व वनस्पतिवाची में दो अक्षर वाले या तीन अक्षर वाले का ही ग्रहण होता है ।

वा. इरिकादि शब्दों से परे (त्र्यक्षर रहने पर भी) वन के 'न' को 'ण' नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६७९. वाहनमाहितात्-८।४।८।। आरोप्य यदुह्यते तद्वाचिस्थान्निमित्ताद् वाहनस्य नस्य णत्वम् । इक्षुवाहणम् । आहितात् किम्-इन्द्रवाहनम् ।

१६८०. पानं देशे-८।४।९।। पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य पानस्य नस्य णः । क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणाः उशीनराः । सुरापाणाः प्राच्याः ।

१६८१. वा भावकरणयोः-८।४।१०।। क्षीरपानम्, क्षीरपाणम् ।

१६८२. प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च-८।४।११।। पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य एषु स्थितस्य नस्य णो वा । माषवापिणौ । व्रीहिवापाणि । माषवापेण । पक्षे माषवापिनावित्यादि ।

१६८३. कुमति च-८।४।१३।। कवर्गवत्युत्तरपदे प्राग्वत् । हरिकामिणौ । हरिकामाणि । हरिकामेण ।

१६८४. पदव्यवायेऽपि-८।४।३८।। णत्वं न । माषकुम्भवापेन ।

मध्यमनोरमापूरणी

वाहनमाहितात्—यत् वाहने वहनाय आधीयते, न तु स्वयमारोढुं शक्नोति तद् आहितमित्युच्यते । तत्स्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः । **इक्षुवाहणम्**—इक्षवः वाहने आरोप्यन्ते। अतः आहितम् । तस्मात् परस्य वाहनस्य णस्य णः । **इन्द्रवाहनम्**—इन्द्रः स्वं रथमारोढुं समर्थः, अतो न सः आहितपदवाच्यः । तेनात्र णत्वमपि न भवति । **पानं देशे**—पानमिति षष्ठ्यर्थे प्रथमा । **क्षीरपाणाः उशीनराः**—उशीनरो नाम देशविशेषः । क्षीरं पानं येषां ते, क्षीरपाणाः, अत्र णत्वम् । **सुरा पानं येषां ते सुरापाणाः**—देशेऽर्थेऽत्रापि णत्वम् । **भावकरणयोः**—भावे करणे वा यः पानशब्दः तस्य नस्य णत्वं वा पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परश्चेत् इत्यर्थः । **प्रातिपदिकान्तेति**—वा भावकरणयोरित्यतः 'वा' इत्यनुवर्तते । पूर्वपदात् संज्ञायामगः इत्यतः पूर्वपदादित्यनुवर्तते । पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्ते नुमि विभक्तौ च विद्यमानस्य नस्य णत्वं स्यादित्यर्थः । **माषवापिणौ**—माषान् वपते इत्यर्थे णिनिः । माषवापिन् औ इति जाते प्रातिपदिकान्तेति णत्वम् । **कुमति च**—प्रातिपदिकान्तेति सूत्रमनुवर्तते । कुः अस्यास्ति इति कुमान् । तस्मिन्निति । नित्यं णत्वं भवत्यनेन । अनेकाजुत्तरपदार्थमेतत् । **हरिकामिणौ**—हरिं कामयते इत्यर्थे बहुलमाभीक्ष्ण्ये इति णिनिः । हरिकामिनौ इत्यस्य नस्य कुमति चेति णत्वम् । **पदव्यवायेऽपि**—'न भाभूपूकमिगमि' इत्यतो नेत्यनुवर्तते । **पदेन व्यवायः** = व्यवधानम्, पदव्यवायः । पदेन व्यवधानेऽपि नस्य णत्वं नेत्यर्थः । **माषकुम्भवापेन** अत्र निमित्तनिमित्तिनोः षनयोः कुम्भपदव्यवधाने सति न णत्वम् ।

हिन्दी

१६७९. पूर्वपदस्थनिमित्त से परे (वाहन पर लादकर चढाये गये पदार्थ के वाचक से परे) वाहन के न को 'ण' होता है ।

१६८०. पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पान के न को 'ण' होता है ।

१६८१. भाव और करण में निष्पन्न पान के न को पूर्वपदस्थनिमित्त से परे रहने पर ण होता है।

१६८२. पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त, नुम् एवं विभक्तिस्थ 'न' को ण होता है विकल्प से ।

१६८३. पूर्वपदस्थ निमित्त से परे कवर्गवान् उत्तरपद परे रहते न को नित्य ण होता है ।

१६८४. पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पद का व्यवधान होने पर णत्व नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अतद्धितं इति वक्तव्यम् ।। आर्द्रगोमयेण । शुष्कगोमयेण ।

१६८५. पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्-६।१।१५७।। एतानि ससुट्कानि निपात्यन्ते । पारस्करः । किष्किन्धा ।

वा. तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च ।। तात्पूर्वं चर्त्वेन दकारोऽपि बोध्यः, तद्बृहतोर्दकारतकारौ लुप्येते करपत्योस्तु सुट् । चोरदेवतयोरिति समुदायोपाधिः । तस्करः । बृहस्पतिः ।

वा. प्रायस्य चित्तिचित्तयोः । प्रायश्चितिः । प्रायश्चित्तम् । वनस्पतिरित्यादि । आकृतिगणोऽयम् ।

।। इति समासाश्रयविधयः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अतद्धित इति—पदव्यवायेऽपि इति निषेधः अतद्धिते परे यत्पदं, तेन व्यवधाने भवति, न तु तद्धितपरकपदेन इत्यर्थः । **आर्द्रगोमयेण**—गोशब्दान्मयट्, आर्द्रं च गोमयमिति कर्मधारयः, तृतीयैकवचने, मयटि गो इत्यस्य पदत्वेऽपि गोमयेत्यस्य तद्धितान्तत्वात् न निषेधः, प्रातिपदिकान्तेति णत्वम् । **पारस्कर इति**—पारं करोतीति विग्रहे कृञो हेतुताच्छील्येति टः, गुणः, 'पारस्करप्रभृतीनि च' इति पारशब्दात् परस्य करस्य सुट्, टित्त्वादादौ भवति । पारस्कर इति। **किष्किन्धा**—किमपि किमपि वानरसैन्यं धत्ते इत्यर्थे किमुपपदात् धाधातोः आतोऽनुपसर्गे कः इति कः, आलोपः, स्त्रीत्वाट्टाप्, सवर्णदीर्घः, किम् धा इति, निपातनात् किमो द्वित्वं पूर्वमस्यलोपः, सुट्, षत्वं च निपातनात् क्रियन्ते, किष्किम् धा इति, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । कथञ्चिदेते रुढशब्दाः साध्यन्ते । अतः एते अवयवार्थहीनाः भवन्तीति बोध्यम् । तद्बृहतोरिति-**पारस्कारादि** गणसूत्रमिदम् । **तस्करः**—तत्=चौर्यं, करोतीति विग्रहे कृञो हेतुताच्छील्येति टः, गुणः, रपरत्वम्, उपपदसमासे सुपो लुकि, तद्बृहतोरिति दस्य लोपः करस्य सुट् च भवति। **बृहस्पतिः**—बृहती नाम वाक्, तस्याः पतिः इति विग्रहे षष्ठीतत्पुरुषः, सुपो लुक् । कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु इति पुम्वद्भावः । बृहत् पतिरिति, तद्बृहतोरिति तलोपः, पतेस्सुट् च भवति। **प्रायस्येति**—चित्तौ चित्ते च परे प्रायस्य सुट् इत्यर्थः । "प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं यस्य विशोधनम्" इति स्मृतिः । **प्रायश्चित्तिः**—प्रायस्य चित्तिः इति समासः, सुट्, स्तोः श्चुना श्चुरिति सस्य शः । **वनस्पतिः**—वनस्य पतिरिति षष्ठीसमासः, पारस्करेति सुट् । **आकृतिगणोऽयम्**—तेन यत्र यत्र सुट् केनापि लक्षणविशेषेण न विहितस्तत्र तत्रापि अनेन सुट् बोध्यः । परःशतानि च रुपाणि साध्यानि ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यां समासाश्रय-विधयः ।।

हिन्दी

वा. तद्धितभिन्न पद के व्यवधान में यह निषेध होता है, न कि तद्धितान्त पद के व्यवधान में ।

१६८५. संज्ञा में पारस्कर आदि शब्द सुट्सहित निपातित किये जाते हैं ।

वा. तत् और बृहत् के तकार का लोप होता है एवं सुट् होता है, कर और पति उत्तरपद परे, चोर तथा देवता अर्थ में ।

वा. प्राय को सुट् होता चित्त एवं चित्ति शब्द परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ तद्धित प्रकरणम्
(तद्धितेषु अपत्याधिकारः)

१६८६. समर्थानां प्रथमाद् वा-४।१।८२।। इदं पदत्रयमधिक्रियते प्रागदिश इति यावत् ।

१६८७. प्राग्दीव्यतोऽण्-४।१।८३।। तेन दीव्यतीत्यतः प्रागणधिक्रियते ।

१६८८. अश्वपत्यादिभ्यश्च-४।१।८४।। एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अश्वपतेरपत्यादि आश्वपतम् । गाणपतम् ।

१६८९. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः-४।१।८५।। प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । अणोऽपवादः । दितेरपत्यादि दैत्यः । अदितेः आदित्यस्य वा

मध्यमनोरमापूरणी

इदं पदत्रयमिति-समर्थानाम् प्रथमात् वा इति चाधिक्रियते । स्वार्थिक-प्रत्ययावधिश्चायमधिकारः, प्राग्दिशो विभक्तिः इति सूत्रं यावत् । समर्थानाम् इति निर्धारणे षष्ठी । समर्थेषु प्रथमानिर्दिष्टादेव विकल्पेन प्रत्ययोत्पत्तिरित्यर्थः । प्राथम्यञ्चात्र 'तस्यापत्यम्' 'तेन रक्तं रागात्,' 'तत्र भवः', इत्यादिसूत्रेषु प्रथमोच्चारितत्वमस्ति । 'समर्थानां मध्ये प्रथमः प्रत्ययप्रकृतित्वेन निर्धार्यते' इति काशिका । समर्थानामिति बहुवचननिर्देशात् अनेकसमर्थ-समुदाये एवास्य प्रवृत्तिरिति केचित् । ननु सुबन्तात्तद्धितोत्पत्तिर्वक्ष्यमाणा, तेन तद्धितकार्याणां पदविधित्वात् समर्थः पदविधिरिति परिभाषयैव एकार्थीभावरूपसामर्थ्यलाभे सिद्धे इह समर्थ-पदमनावश्यकमिति चेदुच्यते—अत्र सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वं गृह्यते । समर्थः शक्तः पटुः इति पर्यायाः । शब्दस्य च कार्यम् अर्थप्रतिपादनम्, शक्तत्वञ्च कार्योत्पादनयोग्यता । अतः शक्तत्वं कृतसन्धिकार्येषु सम्भवति, तदेव परिनिष्ठितत्वमिति ज्ञेयम् । **अणधिक्रियते इति**—तस्यापत्यमित्यादिषु अर्थनिर्देशपरेषु विधेयस्यानुक्तत्वात् अण् इत्युपतिष्ठते, अधिकारबलात् इति भावः । **अश्वपत्यादिभ्यश्च**—चकारात् प्राग्दीव्यतोऽण् इत्यनुकृष्यते । **अत आह**—एभ्योऽण् स्यादित्यादि । **आश्वपतम्**—अश्वपतेरपत्यादि इति विग्रहे अश्वपतेः इत्यस्मात् अश्व-पत्यादिभ्यश्चेत्यणि, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात्सुपो धातु इति सुपो लुकि, भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपे तद्धितेष्वचामादेरिति आदेः अकारस्य वृद्धौ आश्वपत इति, स्वादिकार्यम् । **गाणपतम्**—गणपतेः अपत्यमित्यर्थेऽण् । भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपः, आदि-वृद्धिः । **दित्यदित्यादित्येति**—प्राग्दीव्यत इत्यनुवर्तते । दिति अदिति आदित्य पत्युत्तरपद इत्येतेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः भवतीत्यर्थः । **दैत्यः**—दितेरपत्यमित्यर्थे दित्यदित्येति ण्यः चुटू इति णस्येत्संज्ञा, तद्धितेष्वचामादेरिति आद्यचो वृद्धौ दैति य इति, भत्वात् यस्येति चेतीकारलोपे स्वादिकार्ये दैत्य इति । अदितेरपत्यम् **आदित्यः**, पूर्ववत् ।

हिन्दी

१६८६. समर्थानाम् प्रथमाद् वा इन तीनों पदों का अधिकार है, प्राग्दिशो विभक्तिः, सूत्र तक ।

१६८७. 'तेन दीव्यतिखनतिजयति' सूत्र से पूर्व तक अण् प्रत्यय का अधिकार है ।

१६८८. अश्वपत्यादिगणपठित से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अण् होता है ।

१६८९. प्राग्दीव्यतीय अर्थों में दिति अदिति आदित्य एवं पत्युत्तरपद वाले से ण्य प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अपत्यम्-आदित्यः । यणो मयो द्वे वाच्ये, मय इति पञ्चमी यण इति षष्ठीति पक्षे यस्य द्वित्वम् ।

१६९०. हलो यमां यमि लोपः-८।४।६४।। वा स्यात् । इत्यसति लोपे द्वित्वे च सति त्रियं रूपम् । असति लोपे द्वित्वलोपयोर्वा द्वियम् । द्वित्वाभावे च लोपे च सति एकयम् । प्राजापत्यः ।

वा. देवाद्यञञौ ।। दैव्यम् । दैवम् ।

वा. बहिषष्टिलोपो यञ् च ।। बाह्यः ।

वा. ईकक् च ।।

१६९१. किति च-७।२।११८।। किति तद्धितेऽचामादेरचो वृद्धिः । बाहीकः ।

वा. गोरजादिप्रसङ्गे यत् ।। गोरपत्यादि गव्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

आदित्य इति—आदित्याज्जात इत्यर्थे ण्यः, भत्वादकारलोपः, आद्यचो वृद्धिः पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिरिति न्यायात् । आदित्‌ य इति, हलो यमां यमीति पूर्वयस्य लोपः । लोपाभावे यणो मय इति पूर्वयस्य द्वित्वे त्रियकारकं रूपं भवति । लोपाभावे द्वित्वस्यापि विकल्पे सति द्वियं रूपम् । द्वित्वमपि न भवेत् लोपोऽपि भवेत् तदा एकयमेव रूपम् । इति मूले **'यणो मयो' इत्यारभ्योक्तम् । प्राजापत्यः**—प्रजापतेः जात इत्यर्थे ण्यः, यस्येति चेतीकारलोपः, आद्यचो वृद्धिः । **देवाद्यञञौ**—प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु देवात् यञ् अञ् च प्रत्ययौ भवतः । **दैव्यम्**-देवाज्जात इत्यर्थे यञ्, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेत्यकारलोपः । अञ्प्रत्यये तु दैवम् इति भवति । **बहिषइति**—बहिस् इत्यव्ययात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु यञ् भवति, प्रकृतेः टिलोपश्चेत्यर्थः । **बाह्य इति**—बहिर्भव इत्यर्थे बहिस्‌शब्दात् बहिषष्टिलोप इति यञ्, टिलोपश्च, तद्धितेष्वचामादेरित्यादिवृद्धौ प्रातिपदिकत्वात् सुः । **ईकक् चेति**—बहिषः ईकक् प्रत्ययः प्रकृतेष्टिलोपश्चेत्यर्थः । **किति चेति**—मृजेर्वृद्धिरित्यतो वृद्धिरिति, तद्धितेष्वचामादेरित्यत 'अचामादेः' इति चानुवर्तते । अत उक्तं किति अचामादेरित्यादि । **बाहीकः**—बहिर्भव इत्यर्थे ईकक् चेति ईकक्, टेरिसो लोपश्च, बह् इक इति, किति चेत्यादिवृद्धौ स्वादिकार्यम् । अव्ययानां भमात्रे टिलोपः इत्यस्यानित्यत्वज्ञापनार्थमुभाभ्यां वार्तिकाभ्यां टेर्लोपः क्रियते । **गोरजादिप्रङ्गे**-गोब्दात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु अन्येषु वा अजादिप्रत्ययप्रसङ्गे यत् प्रत्ययो वक्तव्यः इत्यर्थः । **गव्यम्**—गोरपत्यम्, गोरागतम्, गवि भवम् इति वा अर्थेषु अण्प्रत्ययं प्रबाध्यानेन यत् । वान्तो यीति अव् ।

हिन्दी

१६९०. हल् से परे यम् वर्णों का लोप होता है यम् परे विकल्प से ।

वा. देव शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यञ् एवं अञ् प्रत्यय होते हैं ।

वा. बहिस् से प्राग्दीव्यतीय अर्थो में यञ् प्रत्यय होता है, तथा बहिस् के टि का लोप होता है ।

वा. बहिस् से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ईकक् प्रत्यय होता है तथा टि का लोप होता है ।

१६९१. कित् तद्धितप्रत्यय परे अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है ।

वा. गो शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अजादिप्रत्यय के प्रसङ्ग में यत् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६९२. उत्सादिभ्योऽञ्-४।१।८६।। औत्सः । (इत्यपत्यादि विकारान्तार्थाः प्रत्ययाः ।)

१६९३. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्-४।१।८७।। धान्यानां भवने इत्यतः प्रागर्थेषु आभ्यामेतौ स्तः । स्त्रैणः । पौंस्नः ।

१६९४. तस्यापत्यम्-४।१।९२।। षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ताः वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः ।

१६९५. ओर्गुणः-६।४।१४६।। उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते । ओरोदिति वक्तव्ये गुणोक्तिः 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इति ज्ञापयितुम् । तेन स्वायंभुवमित्यादि सिद्धम् । उपगोरपत्यमौपगवः । आश्वपतः । दैत्यः । औत्सः । पौंस्नः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उत्सादिभ्य इति—प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु उत्सादिभ्यः अञ् इत्यर्थः । अणः तदपवादानां वा बाधकमिदम् । **औत्स इति**—उत्सस्यापत्यमित्यर्थे अञ्, आद्यचो वृद्धिः, भत्वाद् यस्येति चेत्यकारलोपः । **स्त्रीपुंसाभ्यामिति**—'धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्' इति सूत्रं भवनशब्देन गृह्यते। स्त्रीशब्दात् पुंस्शब्दाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु **नञ्स्नञौ** यथाक्रमं भवतःइत्यर्थः । **स्त्रैणः**-स्त्रिया अपत्यमित्यर्थे नञ्, अनुबन्धलोपः, आद्यचो वृद्धिः, णत्वम् । स्त्रीणां समूहः इति वा विग्रहः। **पौंस्न इति**—पुंसोऽपत्यम्, पुंसु भवम्, पुंसां समूहः, पुम्भ्यः आगतः इत्याद्यर्थेषु स्नञ्, आद्यचो वृद्धिः, पौंस्स्न इति, स्वादिषु इति पदत्वात् संयोगादिसलोपः । स्वादि कार्यम् । **षष्ठ्यन्तादिति**-तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वेति सर्वेषामधिकारः । तस्येति सर्वनामरूपं बुद्धिस्थ-परामर्शकम् । तेन उपग्वादेरित्यर्थो लभ्यते । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वं, कृतसन्धिकार्यमिति वा पूर्वमेवोक्तम् । **अत उक्तम्**-षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेरित्यादि । औत्सर्गिकाः प्रत्ययाः प्राग्दीव्यतोऽण् इत्याद्या उक्ता एव, वक्ष्यमाणाः 'अत इञ्' इत्याद्याः अपि वा भवन्तीत्यर्थः । **ओर्गुणः**—शब्दस्य षष्ठ्येकवचनमोः इति, तच्च 'भस्य' इत्यधिकारस्य विशेषणम् । विशेषणात्तदन्तविधिः भवति । नस्तद्धिते इत्यतः तद्धिते इत्यनुवर्तते । **अत उक्तम्**—उवर्णान्तस्येत्यादि । **ओरोदिति**-उकारस्थाने गुणो भवन् ओकार एव भवति, अतः ओर्गुण इत्यस्य स्थाने ओरोदित्यस्य लाघवात् पाठो युक्तः, गुण इति गौरवत्वात् पाठो व्यर्थः इति चेदुच्यते ओरोदिति वक्तव्ये गुणोक्तिः संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः इति ज्ञापयितुं कृता । अनेन ज्ञापनेन अस्यापि संज्ञापूर्वकत्वादनित्यत्वं सिध्यति । **फलतः**- स्वयम्भुवः अपत्यादि इत्यर्थे अणि आदिवृद्धौ ओर्गुण इत्यस्याप्रवृत्त्या उवङ् कृते स्वायम्भुवमित्यादि सिद्ध्यति । अन्यथा स्वायम्भवमित्यापद्येत । **औपगवः**—पगोरपत्यमित्यर्थे तस्यापत्यमित्यण्, आद्यचो वृद्धिः । ओर्गुणः, अवादेशः । आदिवृद्धिः अन्त्योपधावृद्धी बाधते । **आश्वपतः**—अश्वपतेः अपत्यम्=आश्वपतः । दितेरपत्यं **दैत्यः** ।

हिन्दी

१६९२. उत्सादिगणपठित से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है ।

१६९३. धान्यानां भवने से पूर्व के अर्थों में स्त्री एवं पुंस् शब्द से नञ् एवं स्नञ् प्रत्यय होते हैं ।

१६९४. षष्ठ्यन्त कृतसन्धि समर्थ से अपत्य अर्थ में उक्त एवं वक्ष्यमाण प्रत्यय होते हैं, विकल्प से ।

१६९५. उवर्णान्त भसंज्ञक को गुण होता है, तद्धित प्रत्यय परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१६९६. अपत्यं पुत्रप्रभृति गोत्रम्-४।१।१६२।। अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ।

१६९७. एको गोत्रे ४।१।९३।। गोत्रे एक एव अपत्यप्रत्ययः स्यात् । उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः ।

१६९८. गर्गादिभ्यो यञ्-४।१।१०५।। गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः । वात्स्यः ।

१६९९. यञञोश्च-२।४।६४।। गोत्रे यद् यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक्, तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः ।

१७००. गोत्रेऽलुगचि-४।१।८९।। अजादौ प्राग्दीव्यतीये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययस्यालुक् स्यात् । गर्गाणाः छात्राः । वक्ष्यमाणो वृद्धाच्छः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उत्सस्यापत्यम् **औत्सः** । पुंसः भवः **पौंस्नः** इत्यादिषु क्रमशः अण् ण्यः अञ् स्नञ् इति प्रत्ययाः भवन्ति । **अपत्यम् इति**—पौत्रप्रभृति यदपत्यं तत् गोत्रसंज्ञं स्यादित्यर्थः । अपत्यशब्दस्य सन्ततिवाचकत्वात् पुत्रस्यापि ग्रहणं तेन प्रसक्तं, तद्वारणायेदमत्र शास्त्रे । **गोत्र एक एवेति**-अनेन नियम्यते यत् गोत्रे विवक्षिते प्रत्ययोत्पत्तिप्रसङ्गे, एक एव प्रत्ययो भवति । तेन गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः, गार्ग्येरपत्यं गार्ग्यः, गार्ग्यस्य पुत्रोऽपि गार्ग्य एव । अर्थात् गोत्रे गर्गशब्दात् एक एव यञ् प्रत्ययो भवति नान्यः । **औपगवः**—उपगोःगोत्रापत्यमित्यर्थे तस्यापत्यमित्यण्। गुणः, अवादेशः । **गार्ग्य इति**—गर्गस्य गोत्रापत्यमित्यर्थे गर्गादिभ्यो यञ् इति यञ् । आद्यचो वृद्धिः, भत्वादकारलोपः । **वात्स्यः**—वत्सस्य गोत्रापत्यमिति विग्रहे वत्सशब्दात् गर्गादिभ्य इति यञ् । आदिवृद्धिः, यचिभम् इति वत्सस्य भसंज्ञा, यस्येति चेति अकारलोपः । **यञञोश्चेति**-तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् इत्यतः तद्राजस्येत्येतत् विहाय सर्वमनुवर्तते । यस्कादिभ्यो गोत्रे इत्यतः 'गोत्रे' इति चानुवर्तते । गोत्रे यञञ्प्रत्यययोः लुग्भवति बहुषु अर्थेषु विद्यमानस्य अस्त्रीलिङ्गस्येत्यर्थः । **गर्गाः**—गर्गस्य गोत्रापत्यानि इत्यर्थे यञ्, यञञोश्चेति यञो लुक् । बहुवचने प्रथमायाः गर्गा इति । **वत्साः**—वत्स्य गोत्रापत्यानि इत्यर्थे यञ्, यञो लुक् । जसि रूपम् । **गोत्रेऽलुगचि**—गोत्रे अलुक् अचि इति छेदः । प्राग्दीव्यत इत्यनुवर्तते । प्रत्ययाधिकारात् प्राग्दीव्यतीये प्रत्यये इति लभ्यते । अजादौ इति तस्य प्रत्ययस्य विशेषणम्। तदादिविधिः । **अत उक्तम्**—अजादौ इत्यादि । **गर्गाणां छात्राः**- विग्रहप्रदर्शनमेतत् ।

हिन्दी

१६९६. पौत्र से लेकर आगे तक अपत्यत्वेन विवक्षित को गोत्र संज्ञा होती है ।

१६९७. गोत्र अर्थ में एक ही अपत्य प्रत्यय होता है ।

१६९८. गोत्रापत्य अर्थ में गर्गादि शब्दों से यञ् प्रत्यय होता है ।

१६९९. गोत्र अर्थ में यञन्त एवं अञन्त के अवयव यञ् एवं अञ् का लुक् होता है, बहुत्व अर्थ में, किन्तु स्त्रीलिङ्ग में लुक् नहीं होता है ।

१७००. अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय की विवक्षा में गोत्र प्रत्यय का लुक् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७०१. आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति-६।४।१५१॥ हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपस्तद्धिते नत्वाकारे । गार्गीयाः । अनाति किम्-गार्ग्यायणः । प्राग्दीव्यतीये किम्-गर्गेभ्यो हितं गर्गीयम् । अचि किम्-गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम् ।

१७०२. जीवति तु वंश्ये युवा-४।१।१६३॥ वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यान्न तु गोत्रसंज्ञम् ।

१७०३. गोत्राद्यूून्यस्त्रियाम्-४।१।९४॥ यून्यपत्ये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तु न युवसंज्ञा ।

१७०४. यञिञोश्च-४।१।१०१॥ गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् ॥

१७०५. आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्-७।१।२॥ प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय् स्युः । गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । दाक्षायणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

आपत्यस्य चेति—आपत्यस्य च तद्धिते अनाति इति छेदः, ढे लोपोऽकद्र्वाः इत्यतः लोप इति, सूर्यतिष्यागस्त्येत्यत य इति षष्ठ्यन्तम्, हलस्तद्धितस्येत्यत हल इति पञ्चम्यन्तञ्चा-नुवर्तते । न आत्, अनात्, तस्मिन् अनाति इति । **अत आह**—हलः परस्येत्यादि । **गार्गीयाः**-गर्गाणां छात्राः इति विग्रहः । गर्गस्य गोत्रापत्यानीति बहुत्वे यञि यञञोश्चेति यञो लुकि गर्गाः इति भवति । तेषां छात्राः इत्यर्थे गार्ग्य शब्दात् वृद्धाच्छः इति छः, छस्य आयनेयीनीयियः इति ईय आदेशः । भत्वाद् यस्येति चेति गार्ग्य इत्यकारस्य लोपे गार्ग्य् ईय इति जाते आपत्य-स्य चेति यञो लोपः । बहुवचने रूपम् । **गार्ग्यायण इति**—गार्ग्यात् फकि तस्यायनादेशः, आकारे परे न यलोपः । **गार्गीयम्**—गार्ग्यशब्दात् तस्मै हितमिति छः, ईयादेशः । अस्य प्राग्दीव्य-तीयत्वाभावात् तस्मिन् परे यञञोश्चेति यञो लुग् भवत्येव, तेन नाद्यचो वृद्धिः । **अचि किम्**-गर्गेभ्य आगतम् इत्यत्र हेतुमनुष्येभ्यः इति रूपप् । रूपप् इत्यस्याजादित्वाभावान्नास्य प्रवृत्तिः, तेन यञो लुकि नादिवृद्धिः । **वंश्ये इति**—वंशः उत्पादकपित्रादिपरम्परा, तत्र भवो वंश्यः, यत्। पूर्वसूत्रात् पौत्रप्रभृति इत्यनुवर्तते षष्ठ्यां परिणमते च । **अत उक्तम्**—वंश्ये पित्रादाविति । **गोत्राद् इति**—गोत्र प्रत्ययान्तादेवेत्यर्थः । **यञिञोश्चेति**-गोत्रे इत्यधिकृतं यञिञोः विशेषणम्। नडादिभ्यः फक् इत्यतः फक् इत्यनुवर्तते । प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः । गोत्रे विहितात् यञन्ताद् इञन्ताच्च फक् इत्यर्थः । **गार्ग्यायणः**—गार्ग्यस्य अपत्यं युवा इत्यर्थे यञन्तात् यञिञोश्च इति फक्, ककार इत् । आयनेयीनीयिय इति फस्यायन्, गार्ग्य आयन इति, भत्वादलोपे सौ णत्वे

हिन्दी

१७०१. हल् से परे अपत्ययकार का लोप होता है तद्धित परे, न तु आकार परे ।

१७०२. पिता आदि के जीवित रहने पर पौत्रादि का जो अपत्य चतुर्थादि उसको युवसंज्ञा ही होती है, न कि गोत्रसंज्ञा ।

१७०३. युवापत्य अर्थ विवक्षित रहने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है । स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा नहीं होती है ।

१७०४. गोत्र अर्थ में जो यञ् और अञ्, तदन्त शब्द से 'फक्' प्रत्यय होता है ।

१७०५. प्रत्यादि फ ढ ख छ एवं घ को क्रमशः आयन् एय् ईन् ईय् एवं इय् आदेश होते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७०६. अत इञ्-४।१।९५।। अपत्येऽर्थे । दाक्षिः ।

१७०७. बाह्वादिभ्यश्च-४।१।९६।। बाहविः । औडुलोमिः । औडुलोमी ।

वा. लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः ।। बाह्वादेरपवादः । उडुलोमाः । आकृतिगणोऽयम् ।

१७०८. अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्-४।१।१०४।। ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । विदस्य गोत्रं वैदः । वैदौ विदाः । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः, पौत्रौ । यञिञोश्चेति सूत्रे प्रवराध्यायप्रसिद्धं गोत्रम् । तेनेह न-पौत्राः । एवं दौहित्रादयः।

१७०९. शिवादिभ्योऽण्-४।१।११२।। अपत्ये । शैवः । गाङ्गः ।

मध्यमनोरमापूरणी

च रूपम् । **दाक्षायण इति**—दक्षस्य गोत्रापत्यं दाक्षिः, अत इञ् । दाक्षेरपत्यं युवा इत्यर्थे यञिञोश्चेति फक्, आयनादेशः, इलोपः, णत्वम् । **अत इञ्**—प्रातिपदिकात् इत्यधिकारः, अतः इति प्रातिपदिकादित्यस्य विशेषणम् । तदन्तविधिः । तस्यापत्यम्, समर्थानां प्रथमाद् वेत्यपि अनुवर्तते । अदन्ताद् प्रातिपदिकात् अपत्येऽर्थे इञ् स्यादित्यर्थः । **दाक्षिः**—दक्षस्यापत्यम् इति विग्रहे इञ्, भत्वादकारलोपः, आद्यचो वृद्धिः । **बाह्वादिभ्यश्च**—अपत्येऽर्थे इञ् । बाहोः (ऋषेः) अपत्यमित्यर्थे इञ्, ओर्गुणः, अव्, बाहविः इति । **औडुलोमिः**—उडुलोम्नः अपत्यमित्यर्थे इञ्, भत्वाट्टेरनो लोपः, आद्यचो वृद्धिः औकारः । **उडुलोमाः**—उडुलोम्नः अपत्यानीति बहुत्वेऽर्थे इञं प्रबाध्य लोम्नोऽपत्येषु इति अः, टेर्लोपः, जसि रूपम्। **अनृष्येति**—अनृषि आनन्तर्ये इतिच्छेदः । अनृषीति लुप्तसप्तम्येकं रूपम् । विदादिगणे ऋषयः अनृषयश्च पठिताः । तत्र अनृषिभ्यो विदादिभ्यो ऽनन्तरापत्ये अञ्, ऋषिभ्यस्तु गोत्रापत्ये अञ् स्यादित्यर्थः । **वैदः**—विदस्य गोत्रापत्यमित्यर्थेऽञ्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यकारलोपः । **विदाः**—विदस्य गोत्रापत्यानीति विग्रहे अञ्, बहुत्वाद् यञञोश्चेति अञो लुक् । **पौत्राः**—त्रस्यापत्यमित्यर्थेऽञ्, आद्यचो वृद्धिः । जसि रूपम् । **प्रवराध्यायेति**—ननु लोके प्रसिद्धं गोत्रं गृह्यते इति चेदुच्यते इह शास्त्रे प्रवराध्यायप्रसिद्धं गोत्रं गृह्यते । पौत्राः दौहित्राः इत्यादौ तथाविधगोत्राभावात् न यञञोश्चेति अञो लुग् भवति । **शिवादिभ्य इति**—गोत्र इति निवृत्तम्। अत आरभ्य सामान्येन प्रत्ययाः विज्ञायन्ते । **अत उक्तम्**—अपत्ये इति । **शैवः**—शिवस्यापत्यमित्यर्थे अण्, तद्धितेष्वचामादेरिति आदिवृद्धिः, अलोपः । **गाङ्गः**—गङ्गाया अपत्यम् । अण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्याकारलोपः ।

हिन्दी

१७०६. अदन्त प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में इञ् प्रत्यय होता है ।

१७०७. बाह्वादिगण पठित से इञ् प्रत्यय होता है । **वार्तिक**—लोमन् शब्द से अपत्यार्थ के बहुत्व की विवक्षा होने पर अ-प्रत्यय होता है ।

१७०८. ऋषिभिन्न विदादि शब्दों से अपत्य अर्थ में अञ् होता है, ऋषिवाचक विदादि से गोत्रापत्य अर्थ में अञ् होता है ।

१७०९. शिवादिगण पठित शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७१०. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च-४।१।११४॥ ऋषिभ्यः-वाशिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः-श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः-वासुदेवः । कुरुभ्यः-नाकुलः । साहदेवः ।

१७११. मातुरुत् संख्यासंभद्रपूर्वायाः-४।१।११५॥ संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण्प्रत्ययश्च । द्वैमातुरः । षाण्मातुरः । भाद्रमातुरः ।

१७१२. स्त्रीभ्यो ढक्-४।१।१२०॥ स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । वैनतेयः ।

१७१३. कन्यायाः कनीन च-४।१।११६॥ चादण् । कानीनो व्यासः कर्णश्च ।

१७१४. राजश्वशुराद् यत्-४।१।१३७॥

वा. राज्ञो जातावेव ॥

मध्यमनोरमापूरणी

ऋष्यन्धकेति—अपत्येऽर्थे अण् स्यादित्यर्थः । **वाशिष्ठः**—वशिष्ठस्यापत्यमित्यर्थे ऋषिवाचिनोऽण्, आदिवृद्धिः । यस्येति चेत्यकारलोपः । विश्वामित्रस्यापत्यं **वैश्वामित्रः** । अण्, आदिवृद्धिः । श्वफल्कस्यापत्यं **श्वाफल्कः** । वसुदेवस्यापत्यं **वासुदेवः** । **नाकुलः साहदेवः** इति कुरुवंश्येभ्यः उदाहृतः । अत इञ् इत्यस्यापवादः कृतोऽत्र । **द्वैमातुरः**—द्वयोः मात्रोरपत्यमिति तद्धितार्थे द्विगुः, मातृरुत्संख्येति अण्, मातुः उत् इत्यादेशः रपरत्वम्, द्विमातुर इति, आदिवृद्धिः । **षाण्मातुरः**—षण्णां मातॄणामपत्यमित्यर्थेऽण्, ऋकारस्योत्, रपत्वम्, आदिवृद्धिः, षस्य जश्त्वेन डः, यरोऽनुनासिक इति डस्य णः । सम्मातुः अपत्यं साम्मातुर इति सम्पूर्वस्योदाहरणम् । भद्रा चासौ माता भद्रमाता, तस्याः अपत्यं **भाद्रमातुरः** । तस्यापत्यमित्येव सिद्धे उदादेशार्थं सूत्रमिदम् । **वैनतेयः**—विनतायाः अपत्यमित्यर्थे स्त्रीभ्यो ढक् इति ढक्, ढस्य एयादेशः, किति चेत्यादिवृद्धिः, आलोपः यस्येति चेत्यनेन । **कन्यायाः इति**—स्त्रीभ्यो ढक् इत्यस्यापवादः । शिवादिभ्यः इत्यण् चकारादनुकृष्यते । कन्यायाः कनीनादेशः अण् प्रत्ययश्चापत्येऽर्थे इत्यर्थः । **कानीनः**—कन्यायाः अपत्यमित्यर्थे ढकं प्रबाध्य कन्यायाः कनीन चेत्यण् कनीनादेशश्च, आदिवृद्धिः, यस्येत्यकारलोपः । कन्या अनूढा, तस्याः अपत्यमित्यर्थः । **राज्ञो जातावेवेति**—राजन् शब्दात् अपत्येऽर्थे यत् जातौ= समुदायवाच्ये एवेत्यर्थः ।

हिन्दी

१७१०. ऋषि अन्धक वृष्णि एवं कुरुवंश वाची शब्दों से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

१७११. संख्या सम् और भद्रपूर्वक मातृ से अण् प्रत्यय एवं मातृ के ऋ को उत् आदेश होता है ।

१७१२. स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है ।

१७१३. कन्या शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय होता है एवं कन्या को कनीन आदेश होता है ।

१७१४. राजन् और श्वशुर से अपत्यार्थ में यत् होता है ।

वा. राजन् से जाति अर्थ में ही यत् कहना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७१५. ये चाभावकर्मणोः-६।४।१६८।। यादौ तद्धिते अन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः । जातावेवेति किम्-

१७१६. अन्-६।४।१६७।। प्रकृत्याऽणि परे । राजनः ।

१७१७. क्षत्राद्घः-४।१।१३८।। क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षात्रिरन्यः ।

१७१८. रेवत्यादिभ्यष्ठक्-४।१।१४६।।

१७१९. ठस्येकः-७।३।५०।। अङ्गात् परस्य ठस्येकादेशः । रैवतिकः ।

१७२०. गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्-४।१।९८।।

१७२१. व्रातच्फञोरस्त्रियाम्-५।३।११३।। व्रातवाचिभ्यश्च्फञन्तेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यप्रत्ययः स्यात् । कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । बहुत्वे लुग् वक्ष्यते । ब्राध्नायन्यः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ये चाभावकर्मणोरिति—अन् इति सूत्रमनुवर्तते, 'प्रकृत्यैकाच्' इत्यतः प्रकृत्या इत्यनुवर्तते । ये इति प्रत्ययविशेषणम्, यस्मिन् विधिरिति तदादिविधिः, **अत उक्तम्**—यादौ प्रत्यये इत्यादि। **राजन्यः**—राज्ञः = क्षत्रियजातेः (क्षत्रियायाम् उत्पन्नः) अपत्यम् इत्यर्थे राजश्वशुराद्यत् इति यत्, भत्वादनो लोपे प्राप्ते तत्प्रबाध्य ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावः । **श्वशुर्यः इति**—श्वशुरस्यापत्यमित्यर्थे यत् । भत्वाद् यस्येति चेत्यकारलोपः । जातिवाच्यत्वाभावे राजन् शब्दात् राजन इति अणि रूपम् । क्षत्रियात् शूद्रायाम् अन्यस्यां वा अनूढायामुत्पन्नः राजनो भवति । **अन्**—इनण्यनपत्ये इत्यतः अन् इति, प्रकृत्यैकाच् इत्यतः प्रकृत्या इति चानुवर्तते। अन्नन्तम् अणि प्रत्यये प्रकृत्या स्यात् इत्यर्थः । **राजनः**—राज्ञः अपत्यमित्यर्थे तस्यापत्यमित्यण् । अन् इति प्रकृतिभावान्न टेर्लोपः । **क्षत्रियः**—क्षत्रियजातेरपत्यमित्यर्थे घः, 'अयनेयीनीयियं' इति घस्य इय्, अलोपः । **क्षात्रिरन्यः**-इञ् । क्षत्रियात् शूद्रायां जातः । **रेवत्यादिभ्य इति**—रेवती अश्वपाली मणिपाली द्वारपाली वृकवञ्चिन् वृकग्राह कर्णग्राह दण्डग्राह, कुक्कुटाक्ष, इति रेवत्यादिगणः । एभ्यः अपत्येऽर्थे ठक् स्यादिति । **रैवतिकः**—रेवत्याः अपत्यमित्यर्थे ठक्, ककार इत् । ठस्येकः, इतिं ठस्येकादेशः, किति चेत्यादिवृद्धिः। यस्येति चेति ईलोपः । **गोत्रे कुञ्जादिभ्यः**—गोत्रापत्ये कुञ्ज बध्न शङ्ख इत्यादिभ्यः च्फञ् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । चकारः चुटू इतीत्, ञकारः हलन्त्यमितीत् । **कौञ्जायन्यः**—कुञ्जस्य गोत्रापत्यमित्यर्थे गोत्रे कुञ्जादिभ्य इति च्फञ्, आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति फस्यायन्नादेशः, आद्यचो वृद्धिः, भत्वादलोपः, कौञ्जायन इति, व्रातच्फञोरिति स्वार्थे ञ्यः, ञकारः इत्, यस्येति चेति नस्याकारस्य लोपः । स्वादिकार्यम् । **बहुत्वेइति**—ञ्यादयस्तद्राजाः इत्यनेन बहुत्वे च्फञो लुक् वक्ष्यते इति भावः । **ब्राध्नायन्यः**—ब्रध्नस्य गोत्रापत्यमित्यर्थे च्फञ् । शेषं पूर्ववत् ।

हिन्दी

१७१५. यादि तद्धित परे अन् को प्रकृतिभाव होता है, भावकर्म में नहीं ।

१७१६. अन्नन्त शब्द को अण् प्रत्यय परे प्रकृतिभाव होता है ।

१७१७. क्षत्र से जाति अर्थ बोध्य होने पर अपत्यार्थ में 'घ' प्रत्यय होता है ।

१७१८. रेवत्यादिगण पठित से अपत्यार्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१७१९. अङ्ग से परे ठ को इक् आदेश होता है ।

१७२०. गोत्रापत्य अर्थ में कुञ्जादि गण पठित शब्दों से च्फञ् प्रत्यय होता है ।

१७२१. व्रातवाची एवं च्फञन्त शब्द से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७२२. नडादिभ्यः फक्-४।१।९९।। गोत्र इत्येव । नाडायनः । चारायणः । अनन्तरो नाडिः ।

१७२३. अश्वादिभ्यः फञ्-४।१।११०।। गोत्रे । आश्वायनः ।

१७२४. इतश्चानिञः-४।१।१२२।। इकारान्ताद् द्व्यचोऽपत्ये ढक् न तु इञन्तात्। दौलेयः । नैधेयः । आत्रेयौ ।

१७२५. अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोऽभ्यश्च-२।४।६५।। एभ्यो गोत्र-प्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृतबहुत्वे न तु स्त्रियाम् । अत्रयः । भृगवः । कुत्साः। वशिष्ठाः । गोतमाः । अङ्गिरसः ।

१७२६. शुभ्रादिभ्यश्च-४।१।१२३।। शौभ्रेयः ।

१७२७. कल्याण्यादीनामिनङ्-४।१।१२६।। एषामिनङादेशः स्यात् ढक् च । काल्याणिनेयः । बान्धकिनेयः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नडादिभ्य इति—गोत्रे इत्यनुवर्तते । नडादिभ्यः फक् स्यात् गोत्रापत्ये इत्यर्थः । इञोऽपवादोऽयम् । **नाडायनः**—नडस्य गोत्रापत्यमित्यर्थे फक्, फस्यायन्, किति चेति वृद्धिः, यस्येति च । चरस्य गोत्रापत्यं **चारायणः** । नडस्यापत्यमित्यर्थे गोत्रत्वाभावात् फक् न, अत इञ् इति इञ्, नाडिरिति । **आश्वायनः**—अश्वस्य गोत्रापत्यमित्यर्थे अश्वादिभ्यः फञ् इति फञ्, ञकार इत्, फस्यायन् । तद्धितेष्वचामादेरिति वृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः स्वादिकार्यम् । **इतश्चानिञः**—स्त्रीभ्यो ढक् इत्यतः ढक् इत्यनुवर्तते, चकारात् द्व्यचः इति चानुवर्तते । **अत उक्तम्**—इकारान्तादित्यादि । **दौलेयः**—दुलेरपत्यमित्यर्थे ढक्, ढस्य एयादेशः, किति चेति आद्यचो वृद्धिः, दौलि एय इति, यस्येति चेति इलोपः । **नैधेयः**—निधेरपत्यम् । पूर्ववत् । **आत्रेयः**—अत्रेः अपत्यमित्यर्थे परत्वाद् ऋष्यणं बाधित्वा ढक्, एयादेशः, आदिवृद्धिः, इलोपः। **अत्रिभृगु**—यस्कादिभ्यो गोत्रे इत्यतः गोत्रे इति, तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियामित्यतः तद्राज-स्येत्येतत् विहाय सर्वमनुवर्तते । **अत उक्तम्**—एभ्यो गोत्रेत्यादि । **अत्रयः**—अत्रेः अपत्यानि इत्यर्थे इतश्चानिञ इति ढक्, तस्य अत्रिभृगु इति लुक् । भृगुकुत्सादिभ्यः अपत्येऽर्थे ऋष्यण्, तस्यानेन लुक् । **शुभ्रादिभ्यश्च**—ढक् स्यादपत्येऽर्थे । **शौभ्रेयः**—शुभ्रस्यापत्यमित्यर्थे ढक्, एयादेशः, आदिवृद्धिः । अलोपः । **कल्याण्यादीनाम् इति**—ढक् इत्यप्यनुवर्तते । इनङि ङकार इत् । **काल्याणिनेयः**—कल्याण्याः अपत्यमित्यर्थे कल्याणीशब्दात् इनङ्, ढक् च भवति, ङित्वादीकारस्येनङ्, ढस्य एयादेशः, कल्याणिनेय इति, किति चेत्यादिवृद्धिः । **बन्धक्याः** अपत्यं बान्धकिनेय इति ।

हिन्दी

१७२२. नडादिगण पठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होता है ।

१७२३. अश्वादि गण पठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में फञ् प्रत्यय होता है ।

१७२४. इकारान्त दो अच् वाले शब्द से ढक् होता है, इञन्त से नहीं होता है ।

१७२५. अत्रिभृगु इत्यादि से विहित गोत्रप्रत्यय का लुक् होता है, तत्कृत बहुत्व अर्थ में, स्त्रीलिङ्ग में नहीं ।

१७२६. शुभ्रादि गणपठित से ढक् प्रत्यय होता है, अपत्य अर्थ में

१७२७. कल्याणी आदि से इनङ् और ढक् प्रत्यय होते हैं, अपत्य अर्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७२८. कुलटाया वा-४।१।१२७॥ इनङ्मात्रं विकल्प्यते, ढक् तु नित्यः पूर्वेणैव। कौलटेयः । कौलटिनेयः । सती भिक्षुकी अत्र कुलटा ।

१७२९. चटकाया ऐरक्-४।१।१२८॥

वा. चटकादिति वाच्यम् ॥ प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणमिति सिद्ध्यति । चटकस्य चटकाया वा अपत्यं चाटकैरः ।

वा. स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः ॥ तयोरेव स्त्र्यपत्यं चटका ।

१७३०. गोधाया ढ्रक्-४।१।१२९॥ गौधेरः । शुभ्रादित्वात् पक्षे ढक् । गौधेयः।

१७३१. क्षुद्राभ्यो वा-४।१।१३१॥ अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्रास्ताभ्यो ढ्रक् वा। पक्षे ढक् । काणेरः । काणेयः । दासेरः । दासेयः ।

१७३२. पितृष्वसुश्छण्-४।१।१३२॥ अणोऽपवादः । पैतृष्वस्रीयः ।

मध्यमनोरमापूरणी

कुलटाया वा—विकल्पेनानेन इनङ्मात्रं भवति । **कौलटिनेयः**—कुलटायाः अपत्यमित्यर्थे स्त्रीभ्यो ढक् इति ढक्, कुलटाया वेति आकारस्थाने इनङ्, ढस्य एय्, आदिवृद्धिः । **सती भिक्षुकीति**—अत्र कुलटाया वेति सूत्रे भिक्षुकी सच्चरित्रा कुलटा उच्यते । या व्यभिचारार्थं कुलानि अटति तस्याः अपत्यं कौलटेरः इति भवति । **चटकादिति**—चटकाया ऐरक् इति सूत्रे चटकात् ऐरक् इति वक्तव्यमित्यर्थः । **नन्वेवं चटका इत्यस्मात् कथम् ऐरक् स्यादिति उच्यते-** प्रातिपदिकग्रहणे इत्यादि । **चाटकैरः**—चटकायाः चटकस्य वाऽपत्यमित्यर्थे चटकादिति वक्तव्यमिति ऐरक्, ककार इत् । किति चेति आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेति अस्य आकारस्य वा लोपः । **स्त्रियामिति**—ऐरक् इत्यस्य लुग् भवतीत्यर्थः । चटकस्य चटकाया वाऽपत्यं स्त्री इत्यर्थे ऐरक्, तस्य स्त्रियामिति लुकि चटका इत्येव भवति । **गोधायाः ढ्रक्**—अपत्ये इति शेषः । **गौधेरः**—गोधायाः अपत्यमित्यर्थे ढ्रक्, ढस्य एय्, आदिवृद्धिः, गौधा एय्र् अ इति, यस्येति चेति आलोपे लोपो व्योर्वलीति यलोपे स्वादिकार्ये रूपम् । ढक् पक्षे गौधेय इति । **काणेरः**—अङ्गहीनस्योदाहरणम् । काण्याः अपत्यमित्यर्थे ढ्रक्, ढस्य एय्, यस्येति चेतीकारलोपः, लोपो व्योर्वलीति यलोपः । ढकि तु काणेय इति । **दासेरः**—दास्याः अपत्यम् इत्यर्थे ढ्रक्, एय्, लोपो व्योर्वलि, ईलोपः । शीलहीनायाः उदाहरणमेतत् । **पितृश्वसुश्छण्-** पितृष्वसृ-शब्दाभ्याम् अपत्येऽर्थे छण् स्यादित्यर्थः । **पैतृष्वस्रीयः**—पितृष्वसुरपत्यमित्यर्थे तस्यापत्य-मित्यणं प्रबाध्य छण् । णकार इत्, आदिवृद्धिः, छस्येयादेशः, ऋकारस्य यण्, स्वादिकार्यम्।

हिन्दी

१७२८. कुलटा शब्द से इनङ् मात्र होता है विकल्प से ।

१७२९. चटका शब्द से अपत्यार्थ में ऐरक् प्रत्यय होता है ।

वा. चटक से ऐरक् प्रत्यय कहना चाहिये ।

वा. चटक से अपत्य-स्त्री अर्थ में विहित ऐरक् का लुक् होता है ।

१७३०. गोधा से अपत्य-अर्थ में ढ्रक् होता है ।

१७३१. क्षुद्रार्थवाचक शब्द से अपत्य-अर्थ में ढ्रक् होता है विकल्प से ।

१७३२. पितृष्वसृ शब्द से अपत्य-अर्थ में छण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७३३. ढकि लोपः-४।१।१३३॥ पितृष्वसुरन्त्यस्य लोपः स्यात्, ढकि । अत एव ज्ञापकात् ढगपि । पैतृष्वसेयः ।

१७३४. मातृष्वसुश्च-४।१।१३४॥ पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात् । मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ।

१७३५. कुलात् खः-४।१।१३९॥ कुलीनः । तदन्तादपि, उत्तरसूत्रे अपूर्वपदादिति लिङ्गात् । आढ्यकुलीनः।

१७३६. अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ-४।१।१४०॥ कुलादित्येव । पक्षे खः । कुल्यः । कौलेयकः । कुलीनः ।

१७३७. महाकुलादञ्खञौ-४।१।१४१॥ अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते । पक्षे खः । माहाकुलः माहाकुलीनः । महाकुलीनः ।

१७३८. दुष्कुलाड्ढक्-४।१।१४२॥ वा । पक्षे खः । दौष्कुलेयः । दुष्कुलीनः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ढकि लोपः—पितृष्वसुरित्यनुवर्तते । अलोऽन्त्यस्येति ऋकारस्य लोपो भवति । ननु पितृष्वसुश्छण् इत्युक्तत्वात् ढक् एव न स्यात् पुनः ढकि लोपविधानं व्यर्थमिति चेन्न । ढकि लोपविधानसामर्थ्यात् ज्ञापयति यत् पितृष्वसुः ढगपिभवति । **तदेवाह**—अत एव ज्ञापकात् ढगपि इति । **पैतृष्वसेयः**—पितृष्वसृ इत्यस्मात् ढकि ऋकारस्य लोपः, ढस्य एयादेशः । **मातृष्वसुश्चेति**—ढकि लोप इति छण् इति च चकारादनुकृष्यते । **अत आह**—पितृष्वसुर्यदुक्तमिति । **मातृष्वस्रीयः**—मातृष्वसुरपत्यम् । छण्, छस्येय्, ऋकारस्य यण् । ढकि कृते ऋकारस्य लोपः, एयादेशः, मातृष्वसेय इति । **कुलीनः**—कुलस्य अपत्यमित्यर्थे कुलात् खः इति खः, आयनेयीत्यादिना खस्य ईन्, अलोपः । **तदन्तादपि इति**—ननु समास-प्रत्ययविधौ तदन्तविधिप्रतिषेधः इति न्यायात् आढ्यकुलीनः इति न स्यादिति चेन्न । अपूर्वपदादिति सूत्रे अपूर्वपदादिति पाठात् तदन्तविधिर्भवतीति ज्ञाप्यते । आढ्यकुलस्यापत्यम् **आढ्यकुलीनः** । **कुल्यः**—अपत्ये यत् । अलोपः । **कौलेयकः**—ढकञ् प्रत्ययः, ढस्य एय्, आदिवृद्धिः, यस्येति च । खे- **कुलीन** इति । **माहाकुलः**—महाकुलस्यापत्यमित्यर्थे महाकुलादञ्खञौ इति अञ्, आदिवृद्धिः, अलोपः, खञि प्रत्यये खस्येनादेशे माहाकुलीन इति। पक्षे खप्रत्यये खस्येनादेश महाकुलीन इति । खस्य ञित्त्वाभावान्नादिवृद्धिः । **दुष्कुलादिति**—अन्यतरस्यामित्यनुवर्तते । दुष्कुलशब्दादपत्येऽर्थे ढग् भवति विकल्पेन । **दौष्कुलेयः**—दुष्कुलस्यापत्यमित्यर्थे ढक्, एयादेशः । आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । पक्षे कुलात् खः, खस्येनादेशः, दुष्कुलीन इति ।

हिन्दी

१७३३. ढक् प्रत्यय परे पितृष्वसृ के अन्त्य का लोप होता है ।

१७३४. मातृष्वसृ से छण् होता है तथा ढक् परे अन्त्य का लोप भी होता है ।

१७३५. कुल शब्द से अपत्य अर्थ में ख प्रत्यय होता है ।

१७३६. पूर्वपद रहित कुल शब्द से यत् एवं ढकञ् प्रत्यय होते हैं, विकल्प से ।

१७३७. महाकुल शब्द से अञ् एवं खञ् प्रत्यय होते हैं, विकल्प से ।

१७३८. दुष्कुल शब्द से अपत्यार्थ में ढक् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७३९. स्वसुश्छः-४।१।१४३।। स्वस्रीयः ।

१७४०. भ्रातुर्व्यच्च-४।१।१४४।। चाच्छः । भ्रातृव्यः । भ्रात्रीयः ।

१७४१. मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च-४।१।१६१।। समुदायार्थो जातिः । मानुषः। मनुष्यः ।

वा. तक्ष्णोऽणुपसंख्यानम् ।।

१७४२. षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि-६।४।१३५।। षपूर्वो योऽन् तस्य हनादेश्च भस्यातो लोपोऽणि । ताक्ष्णः ।

१७४३. तिकादिभ्यः फिञ्-४।१।१५४।। तैकायनिः ।

१७४४. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्-१।१।७३।। यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात्

मध्यमनोरमापूरणी

स्वस्रीय इति—स्वसुः अपत्यमिति विग्रहे स्वसुश्छः इति छः । आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति छस्य ईयादेशः, ऋकारस्य यण् । **भ्रातुर्व्यच्च**—चकारात् छः इत्यनुवर्तते । **भ्रातृशब्दादपत्येऽर्थे व्यत्**—प्रत्ययः चकाराच्छश्च भवतीत्यर्थः । **भ्रातृव्यः**— भ्रातुरपत्यमित्यर्थे भ्रातृशब्दात् व्यत्, तकार इत् । छ प्रत्यये तु छस्येयादेशे ऋकारस्य यणि **भ्रात्रीय इति । मनोर्जाताविति**—जातिः समुदायस्य वाच्या । अत्र अपत्यग्रहणं न सम्बद्ध्यते । मनुशब्दात् अञ्-यत्प्रत्ययौ भवतः, तत्सन्नियोगेन षुगागमश्च, समुदायेन जातौ वाच्यायाम् । **मानुषः**—मनोर्जातिः इत्यर्थे मनुशब्दात् अञ् प्रत्यये मनुशब्दस्य षुगागमे चानुबन्धलोपे मनुष् अ इति, तद्धितेष्वचामादेरिति वृद्धिः । यति षुगागमे **मनुष्य इति** । मनोरपत्यमित्यर्थे तु मानवी प्रजा इति अण्प्रत्ययान्तरूपम् । **तक्ष्णोऽण् इति**—तक्षन् शब्दात् अण्प्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थे । **ताक्ष्णः इति**—तक्ष्णोऽपत्यमित्यर्थे तक्षन् शब्दात् अण्, भत्वात् टिलोपे प्राप्ने अन् इति प्रकृतिभावः । षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि इति अनोऽकारस्य लोपः । रषाभ्यामिति नस्य णः । **तिकादिभ्यः**—अपत्यऽर्थे फिञ् भवतीति । इञोऽपवादः । **तैकायनिः**—तिकस्यापत्यमिति विग्रहे फिञ्, फस्यायन्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः ।

हिन्दी

१७३९. स्वसृ शब्द से अपत्य अर्थ में छ प्रत्यय होता है ।

१७४०. भ्रातृ शब्द से अपत्य अर्थ में व्यत् और छ प्रत्यय होते हैं ।

१७४१. मनु शब्द से अञ् व यत् प्रत्यय होते हैं तथा षुक् का आगम भी होता है, प्रकृति-प्रत्ययसमुदाय से जाति अर्थ गम्य होने पर ।

वा. तक्षन् से अपत्य अर्थ में अण् होता है ।

१७४२. षपूर्वक अन् के अ तथा हनादि भसंज्ञक के अत् का लोप होता है, अण् परे ।

१७४३. तिकादि शब्दों से अपत्यार्थ में फिञ् प्रत्यय होता है ।

१७४४. जिस समुदाय के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक हो उसे वृद्धसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७४५. उदीचां वृद्धादगोत्रात्-४।१।१५७॥ आम्रगुप्तायनिः । प्राचां तु आम्रगुप्तिः ।

१७४६. प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्-४।१।१६०॥ ग्लुचुकायनिः ।

१७४७. जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्-४।१।१६८॥ जनपदक्षत्रिययोर्वाचकादञ् अपत्ये । पाञ्चालः ।

वा. क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात् तस्य राजन्यपत्यवत् ॥ पाञ्चालानां राजा-पाञ्चालः ।

वा. पूरोरण् वतव्यः ॥ पौरवः ।

१७४८. द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्-४।१।१७०॥ द्व्यच् । आङ्गः । बाङ्गः । मागधः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उदीचां वृद्धात्—वृद्धसंज्ञकात् अगोत्रप्रत्ययान्ताद् अपत्ये फिञ् भवति उदीचामाचार्याणां मतेन। **आम्रगुप्तायनिः**— आम्रगुप्तस्यापत्यमित्यर्थे इञं प्रबाध्य उदीचामिति फिञ्, फस्यायन्, अलोपः। **पक्षे**—अत इञ् इति इञि यस्येति चेति लोपे आम्रगुप्तिः इति । **प्राचामिति**—अवृद्धात् अपत्ये फिन् बहुलं भवति इत्यर्थः । बहुलग्रहणादेव सिद्धे प्राचां ग्रहणमिह पूजार्थम् । **ग्लुचुकायनिः**-ग्लुचुकस्यापत्यमित्यर्थे फिन्, नलोपः । फस्यायन्, अलोपः । ञित्त्वाभावान्नादिवृद्धिः । **जनपदशब्दात्** जनपदो नाम देशः, तद्वाचको जनपदशब्दः, देशवाचको यः क्षत्रियवाचकः शब्दः तस्मात् अपत्ये अञ् भवतीत्यर्थः । **पाञ्चालः**—पञ्चालो देशः राजा च, अतः पञ्चालस्यापत्यमित्यर्थे इञं प्रबाध्य जनपदेति अञ्, आदिवृद्धिः, भत्वादलोपः । **क्षत्रियसमानेति**—क्षत्रियवाचकेन समानो यो जनपदवाचकः शब्दः, तस्मात् षष्ठ्यन्तात् राजनि अर्थे अपत्यवत् प्रत्ययाः भवन्तीत्यर्थः । पाञ्चालानां राजा इत्यर्थे अञि पाञ्चाल इति भवति । **पूरोरण्**—पूरुशब्दः न जनपदवाचकः, अतः प्राग्दीव्यतीयोऽण् प्राप्तः, तद्राजार्थं वचनमिदम् । **पौरव इति**—पूरूणामपत्यं राजा इति विग्रहः, अण्, आदिवृद्धिः, ओर्गुणः इति गुणः, अव् । **द्व्यञ्मगधेति**—'जनपदशब्दात् क्षत्रियात्' इत्यनुवर्तते । अनेनैव प्राप्तस्याञो बाधनार्थमिदम् । द्व्यच् मगध कलिङ्ग सूरमस इत्येतेभ्यः जनपदक्षत्रियवाचिभ्योऽण् स्यादपत्येऽर्थे । अङ्गस्यापत्यमित्यर्थे अण्, आद्यचो वृद्धौ **आङ्ग** इति । बङ्गस्यापत्यं **बाङ्गः** । मगधस्यापत्यं **मागध** इति भवति ।

हिन्दी

१७४५. वृद्धसंज्ञक अगोत्र प्रत्ययान्त से अपत्य अर्थ में फिञ् होता है, उदीच्याचार्यों के मत में ।

१७४६. अवृद्धसंज्ञक से अपत्यार्थ में बहुलं फिन् प्रत्यय होता है ।

१७४७. जनपद एवं क्षत्रियवाची शब्द से अञ् प्रत्यय होता है जनपदार्थ प्रयुज्यमान होने पर ।

वा. क्षत्रियवाचक शब्द के समान जंनपद वाचक शब्द से राजा अर्थ में अपत्यवत् प्रत्यय होता है ।

वा. पूरुशब्द से अपत्यार्थ में अण् कहना चाहिए ।

१७४८. द्व्यच् मगध कलिङ्ग एवं सूरमस क्षत्रियवाचक, शब्दों से जनपद हेतु प्रयुज्यमान होने पर अपत्यार्थ में अण् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. पाण्डोर्ड्यण् ।। पाण्ड्यः ।

१७४९. वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्-४।१।१७१।। वृद्धात्-आम्बष्ठ्यः । इत्-आवन्त्यः । कौसल्यः । अजादस्यापत्यम्-आजाद्यः ।

१७५०. कुरुनादिभ्यो ण्यः-४।१।१७२।। कौरव्यः । नैषध्यः ।

१७५१. ते तद्राजाः-४।१।१७४।। अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ।

१७५२. तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्-२।४।६२।। बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक्, तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । पञ्चाला इत्यादि ।

१७५३. कम्बोजाल्लुक्-४।१।१७५।। तद्राजस्य । कम्बोजः । कम्बोजौ ।

वा. कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ।। चोलः । शकः । केरलः । यवनः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पाण्डोरिति— जनपदक्षत्रियवाचकात् पाण्डोः ड्यण् स्यादित्यर्थः । **पाण्ड्य इति**—पाण्डोरपत्यं पाण्डुदेशस्य राजा वेत्यर्थे ड्यण् । डकारणकारौ इतौ । डित्वाट्टेरुकारस्य लोपः । **वृद्धेत् इति**-जनपदक्षत्रियवाचकात् वृद्धसंज्ञकात् इदन्तात् कोसलात् अजादाच्च ञ्यङ् अपत्ये इत्यर्थः । ञङौ इतौ भवतः । **आम्बष्ठ्य इति**—आम्बष्ठस्यापत्यमित्यर्थे ञ्यङ् । भत्वादलोपः । अवन्त्याः अपत्यं राजा वेत्यर्थे ञ्यङि ईलोपे आदिवृद्धौ **आवन्त्य इति** । कोसलस्यापत्यं राजा वा **कौसल्यः** । अजादस्य अपत्यं, वा अजादानां राजा आजाद्यः । **कौरव्य इति**—कुरोरपत्यं, कुरूणां राजा वा इत्यर्थे कुरुनादिभ्यो ण्यः इति ण्यः, आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, वान्तो यीति अवादेशः । **नैषध्य इति**—निषधस्यापत्यं राजा वेत्यर्थे ण्यः, आद्यचो वृद्धौ यस्येति चेत्यलोपः। **तद्राजस्येति**—ण्यक्षत्रियार्षेत्यतः 'लुक्' इत्यनुवर्तते । **पञ्चालाः**—पञ्चालानाम् अपत्यानि राजानो वेत्यर्थे जनपदशब्दात् क्षत्रियादिति अञ्, तद्राजस्येति अञो लुकि, जसि रूपम् । **कम्बोजादिति-**—तद्राजस्येत्यनुवर्तते । जनपदशब्दात् विहितस्याञो लुगित्यर्थः । **कम्बोजः** कम्बोजस्य अपत्यं कम्बोजानां राजा वेति विग्रहे जनपदशब्दात् इति अञ्, ते तद्राजा इति अञस्तद्राजसंज्ञा, कम्बोजाल्लुक् इति अञो लुक् । **कम्बोजादिभ्य इति**—अञो लुक् । **चोलः**-चोलस्यापत्यं चोलानां राजा वेत्यर्थः । **शकः**—शकानां राजा शकस्यापत्यमित्यर्थे द्व्यञ्मगधेति अण्, अणो लुक् । **केरलः**—केरलस्यापत्यं केरलानां राजा वेत्यर्थे जनपदशब्दादिति अञ्, कम्बोजादिभ्य इति अञो लुक् । **यवनः**—यवनानामपत्यानि, यवनानां राजा वा इत्यर्थे जनपदशब्दादिति अञ् । 'कम्बोजादिभ्यः इति वक्तव्यम्' इत्यनेन अञो लुक् । स्वादिकार्यम्।

हिन्दी

वा. पाण्डु से ड्यण् प्रत्यय होता है, उक्त अर्थ में ।

१७४९. वृद्धसंज्ञक इदन्त कोसल एवं अजाद शब्द से ञ्यङ् प्रत्यय होता है अपत्यार्थ में ।

१७५०. क्षत्रियाभिधायक जनपद में प्रसिद्ध कुरु एवं नकारादि शब्द से अपत्यार्थ में ण्य प्रत्यय होता है ।

१७५१. अञादि प्रत्ययों को तद्राजसंज्ञा होती है ।

१७५२. बहुत्व अर्थ में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है, बहुत्व यदि तत्कृत हो तब, स्त्रीलिङ्ग में लुक् नहीं होता है ।

१७५३. कम्बोज शब्द से तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है ।

वार्ति. कम्बोजादि से तद्राजप्रत्यय का लुक् होता है ऐसा कहना चाहिए ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७५४. अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोःष्यङ् गोत्रे-४।१।७८।। व्यादीनामन्त्यमुत्तमं तस्य समीपमुपोत्तमम्, गोत्रे यावणिञौ विहितौ अनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः । यङश्चाप् । कुमदगन्धेर्गोत्रापत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या । वाराह्या । अनार्षयोः किम्- वाशिष्ठी । गुरूपोत्तमयोः किम्-औपगवी । गोत्रे किम्-अहिच्छत्रे जाता आहिच्छत्री ।

।। इत्यपत्याधिकारः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

व्यादीनामिति—एवमेव भाष्ये पाठात् अत्रोद्धृतम् । ऋषेरविहितौ अनार्षौ, तयोः इति, अणिञोः विशेषणम् । स्त्रियाम् इत्यस्याधिकारः । 'प्रातिपदिकात्' इत्यपि अधिकृतं षष्ठीद्वि वचने विपरिणम्यते । **अत आह**—व्यादीनामित्यादि । **कौमुदगन्ध्या**—कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री इति विग्रहे कुमुदगन्धिशब्दात् तस्यापत्यमिति अण् । यस्येति चेति इकारलोपे कुमुदगन्ध इति, अणिञोरनार्षयोरिति ष्यङ् अनेकाल्त्वात् अणन्तस्य प्राप्नोति किन्तु निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्तीति परिभाषया अणः स्थाने भवति, षङौ इतौ । कुमुदगन्ध् य इति, यङश्चाप् इति चाप्, सवर्णदीर्घः । **वाराह्या**—वराहस्यापत्यं स्त्रीति विग्रहे अत इञ्, आदिवृद्धिः, अलोपः, वाराहि इति, अणिञोरिति इञः स्थाने ष्यङ् । यङश्चाप्, सवर्णदीर्घः । **वाशिष्ठी**—ऋष्यण् विहितस्त-स्मान्नास्य प्रवृत्तिः । **औपगवी**—गकाराकारो न गुरुः, अतो नास्य प्रवृत्तिः ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यामपत्याधिकारः ।।

हिन्दी

१७५४. गोत्र अर्थ में विहित गुरूपोत्तमशब्द के अण् व इञ् के स्थान में ष्यङ् होता है स्त्रीलिङ्ग में ।

।। इति अपत्याधिकार ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ रक्ताद्यर्थकाः

१७५५. तेन रक्तं रागात्-४।२।१। कषायेण रक्तं वस्त्रम्-कषायम् । माञ्जिष्ठम् । रागात् किम्-देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम् ।

१७५६. [1]लाक्षारोचनाट्ठक्-४।२।२।। लाक्षिकः । रौचनिकः ।

वा. शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् ।। शाकलिकः । कार्दमिकः ।

वा. नील्या अन् ।। नील्या रक्तं वस्त्रं नीलम् ।

वा. पीतात् कन् ।। पीतकम् ।

वा. हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ।। हारिद्रम् । माहारजनम् ।

१७५७. नक्षत्रेण युक्तः कालः-४।२।३।।

मध्यमनोरमापूरणी

तेनेति—रज्यतेऽनेनेति रागः । अर्थात् वर्णान्तरप्रापनमत्ररञ्जेरर्थः । रागशब्देन रञ्जनद्रव्यं गृह्यते। तेनेति सामान्यनिर्देशः । तेन रक्तं वर्णान्तरं लब्धमित्यर्थे रागात्=रञ्जनद्रव्यवाचकात् अण् स्यादित्यर्थः । **कषायम्**—कषायेण रक्तमित्यर्थे रञ्जनद्रव्यवाचकात् कषायशब्दात् अण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **माञ्जिष्ठम्**—मञ्जिष्ठया रक्तमित्यर्थे ऽण् । आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यालोपः । **देवदत्तेनेति**—नायं रञ्जनद्रव्यवाचकः । **लाक्षारोचनात्**—तेन रक्तमित्यर्थे लाक्षारोचनाभ्यां ठक् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । अणोऽपवादः । **लाक्षिकः**-लाक्षया रक्तम् इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, यस्येति चेत्यालोपः । **रौचनिकः**—रोचनया रक्तम् इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, आलोपः । **शाकलिकः**—शकलं रागद्रव्यविशेषः, तेन रक्तमित्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः । **कार्दमिकः**—कर्दमेन रक्तमित्यर्थे ठक् । **नील्या अन्**—तेन रक्तमित्यर्थे अन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । अणोऽपवादः । **नीलम्**—नीली औषधिविशेषः, नील्या रक्तमित्यर्थे अन्, अलोपो भत्वात् । **पीतात् कन्**—अणोऽपवादः । **हारिद्रम्**—हरिद्रया रक्तमित्यर्थेऽञ्, आदिवृद्धिः, यस्येति च । महारजनेन रक्तमित्यर्थेऽञि **माहारजनमिति** । **नक्षत्रेणेति**—नक्षत्रेण युक्तः कालः इत्यर्थे नक्षत्रविशेषवाचकात् शब्दात् प्राग्दीव्यतीयाः यथाविहितं प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः ।

हिन्दी

१७५५. राग विशेषवाचक शब्द से 'तेन रक्तम्' इस अर्थ में अण् होता है ।

१७५६. लाक्षा एवं रोचना से तेन रक्तम् अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

वा. शकल एवं कर्दम से 'तेन रक्तम्' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

वा. नीली शब्द से उक्त अर्थ में अन् प्रत्यय होता है ।

दा. पीत से उक्तार्थ में कन् होता है ।

वा. हरिद्रा एवं महारजन से 'तेन रक्तम्' अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ।

१७५७. तृतीयान्त नक्षत्र वाचक शब्द से तद्युक्तकाल अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं ।

---

1. "लाक्षारोचनाशकलकर्दमाट्ठक्" इति काशिकायां सूत्रमस्ति । शकलकर्दमेति वार्तिकपाठो नास्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोपः इति वाच्यम् ।। पुष्येण युक्तं पौषमहः ।
१७५८. लुबविशेषे-४।२।४।। पूर्वेण विहितस्य लुप् । षष्टिदण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ।
१७५९. दृष्टं साम-४।२।७।। तेनेत्येव । वशिष्ठेन दृष्टं-वाशिष्ठं साम ।
१७६०. वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ-४।२।९।। वामदेवेन दृष्टं-वामदेव्यम् ।
१७६१. परिवृतो रथः-४।२।१०।। वस्त्रेण परिवृतो-वास्त्रो रथः ।
१७६२. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः-४।२।१४।। शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः ।
१७६३. संस्कृतं भक्षाः-४।२।१६।। सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भ्राष्ट्राः भक्षाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तिष्यपुष्ययोरिति—नक्षत्रे अण्, नक्षत्राण् तस्मिन् नक्षत्राणि इति । अर्थात् नक्षत्रेण युक्तः कालः, सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् इत्यनेन विहिते नक्षत्रसम्बिन्धिनि अणि परे तिष्यपुष्ययोर्यलोपो वाच्य इत्यर्थः । **पौषम्**—पुष्येण युक्तमिति विग्रहे नक्षत्रेण युक्त इति पुष्यशब्दात् अण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः, तिष्यपुष्ययोरिति यलोपः । नपुंसके पौषम् अहरिति । पुष्ययुक्तचन्द्रेण युक्तमित्यर्थः । **अद्य पुष्यः**—पुष्येण युक्तः काल इत्यर्थे अण्, लुबविशेषे इति अणो लुक् । अद्येत्यव्ययमहोरात्रवाचि । तेन अहर्वा रात्रिर्वेति विशेषो न गम्यते, अतः अणो लुप् अभूत् । **दृष्टं साम**—तेनेत्यनुवर्तते । तेन दृष्टं साम इत्यर्थे तृतीयासमर्थात् अणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **वाशिष्ठं साम**—वशिष्ठेन दृष्टमित्यर्थे अणि कृते आदिवृद्धौ भत्वादलोपे नपुंसके सोरमि पूर्वरूपे च सिद्धं रूपम् । **वामदेवात् इति-दृष्टं साम इत्यनुवर्तते**-तेन दृष्टं साम इत्यर्थे वामदेवात् तृतीयासमर्थात् ड्यत् ड्य इत्येतौ प्रत्ययौ स्त इत्यर्थः । तकारः डकारश्चेत् । तकारः तित्स्वरार्थः । **वामदेव्यम्**—वामदेवेन दृष्टं साम इत्यर्थे ड्यत् अथवा ड्यः, डकार इत् । डित्त्वाट्टेरस्य लोपे सौ रूपम् । **परिवृतो रथ इति**—तेनेत्यनुवर्तते । तेन परिवृतो रथ इत्यर्थे तृतीयान्तात् अणादयो भवन्तीत्यर्थः । **वास्त्रो रथः**—वस्त्रैः परिवृत इत्यर्थे तेन परिवृत इति अण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । पुंसि सुः, । **तत्रोद्धृतम् इति**—तत्रेति सप्तम्यन्तनिर्देशः । अमत्रवाचिनः सप्तम्यन्तात् तत्र उद्धृतमित्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **शारावः**—शरावे उद्धृतः इत्यर्थे अण्, आदिवृद्धिः, अलोपः । उद्धृत्य शरावे निहितः इत्यर्थः। **संस्कृतं भक्षाः**—तत्रेत्यनुवर्तते । अत उक्तं-सप्तम्यन्तादित्यादि । **भ्राष्ट्राः**—भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः इत्यर्थे संस्कृतं भक्षाः इत्यण् । आदिवृद्धिः, यस्येति च । संस्कारो नाम पाकादिना विशेषगुणाधानं ज्ञेयमत्र ।

हिन्दी

वा. नक्षत्र अर्थ में विहित अण् प्रत्यय परे तिष्य एवं पुष्य के य् का लोप होता है ।
१७५८. नक्षत्रेण युक्तः से विहित प्रत्यय का लुप् होता है यदि कालविशेष का कथन न हो ।
१७५९. 'तेन दृष्टं साम' इस अर्थ में तृतीयान्त से अणादि प्रत्यय होते हैं ।
१७६०. 'तेन दृष्टं साम' इस अर्थ में वामदेव शब्द से ड्यत् एवं ड्य प्रत्यय होते हैं ।
१७६१. 'तेन परिवृतो रथः' इस अर्थ में तृतीयान्त से अणादि प्रत्यय होते हैं ।
१७६२. तत्रोद्धृत अर्थ में सप्तम्यन्त पात्रवाचक से अणादि प्रत्यय होते हैं ।
१७६३. सप्तम्यन्त से अण होता है 'तत्र संस्कृतम्' अर्थ में, यदि संस्कृत वस्तु भक्ष होता हो।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७६४. शूलोखाद्यत्-४।२।१७॥ अणोऽपवादः । शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम् । उख्यम् ।

१७६५. दध्नष्ठक्-४।२।१८॥ दध्नि संस्कृतं-दाधिकम् ।

१७६६. [1]सास्मिन् पौर्णमासीति-४।२।२१॥ इति शब्दात् संज्ञायामिति लभ्यते । पौषी पौर्णमासी अस्मिन् पौषो मासः ।

१७६७. सास्य देवता-४।२।२४॥ इन्द्रो देवता अस्य=ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पत्यम् । त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता मन्त्रस्तुत्या च । ऐन्द्रो मन्त्रः ।

१७६८. कस्येत्-४।२।२५॥ कशब्दस्येकारादेशः स्यात् प्रत्ययसन्नियोगेन । यस्येति लोपात्परत्वादादिवृद्धिः । को = ब्रह्मा देवताऽस्य कायं हविः । श्रीः देवताऽस्य श्रायम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

शूलोखाद्यत्—संस्कृतं भक्षाः, तत्रेति चानुवर्तते । सप्तम्यन्ताभ्यां शूल, उखा इत्याभ्यां तत्र संस्कृतम् इत्यर्थे यत् स्यात्, भक्षाश्चेत्ते स्युरित्यर्थः । **शूल्यम्**—शूले संस्कृतमित्यर्थे यत्, भत्वाद-लोपः । उखा इति पात्रविशेषः, उखायां संस्कृतम् इत्यर्थे यत्, भत्वादालोपः । उख्यम् इति। **दध्नष्ठक्**—तत्रेति, संस्कृतं भक्षा इति चानुवर्तते । संस्कृतं भक्षाः इत्यर्थे सप्तम्यन्तात् दधि-शब्दात् ठक् स्यादित्यर्थः, अणोऽपवादौ यट्ठकौ स्तः । **दाधिकम्**—ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति इकारलोपः । **सास्मिन्निति**—संस्कृतं भक्षाः तत्रेति च निवृत्तम् । इतिशब्दात् संज्ञायामिति लभ्यते । सा पौर्णमासी अस्मिन्निति अर्थे प्रथमान्तात् यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः। **पौषो मासः**—पौषी शब्दात् अण्, भत्वादीलोपः । सौ रूपम् । **सास्येति**—सा अस्य देवता इति षष्ठ्यर्थे प्रथमासमर्थात् अणादयो यथाविहितप्रत्ययाः स्युः । **ऐन्द्रम्**—इन्द्रः देवता अस्य इत्यर्थे इन्द्रशब्दादण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । हवेर्विशेषणत्वान्नपुंसकत्वम् । इन्द्रदेवता-सम्बन्धीत्यर्थः । **पाशुपतम्**—पशुपतिर्देवताऽस्येति अर्थे अण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेतीकार-लोपः । **बार्हस्पत्यम्**—बृहस्पतिः देवताऽस्येति अर्थे दित्यदित्यादित्येति ण्यः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेतीकारलोपः । **त्यज्यमानेति**—अत्र सूत्रे देवताशब्देन त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषः देवता इति गृह्यते । तेन पितरो देवताऽस्येति **पित्र्यमिति** सिद्ध्यति । अथ मन्त्रस्तुत्या च देवता गृह्यते । तेन ऐन्द्रो मन्त्रः इत्यत्र इन्द्रस्तुत्यात्मको मन्त्र इत्यर्थेऽण् भवति । **कायम्**—क इति ब्रह्मणो नाम । स देवताऽस्येति विग्रहे सास्य देवतेत्यण् । **कस्येदिति कशब्दान्त्यस्येत्। कि अ इति, भत्वादिलोपः प्राप्तः, तद्धितेष्विति परत्वाद् यस्येति चेति सूत्रं प्रबाध्य आदिवृद्धौ आयादेशे स्वादिकार्ये कायम् इति । श्रीशब्दात् अणि आदिवृद्धौ आयादेशे श्रायम् इति ।**

हिन्दी

१७६४. शूल और उखा इन सप्तम्यन्त से 'संस्कृतं भक्षाः' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

१७६५. सप्तम्यन्त दधि से संस्कृत अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१६६६. 'सा पौर्णमासी अस्मिन्' इस अर्थ में प्रथमान्त से अण् प्रत्यय होता है ।

१७६७. प्रथमा समर्थ से 'साऽअस्य देवता" अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१७६८. क शब्द को देवतार्थक प्रत्यय के सन्नियोग में इकार आदेश होता है ।

---

1. 'सास्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायाम्' इति सूत्रपाठः काशिकायामस्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७६९. शुक्राद्घन्-४।२।२६।। शुक्रियम् ।
१७७०. सोमाट्ट्यण्-४।२।३०।। सौम्यम् ।
१७७१. वाय्वृतुपित्रुषसो यत्-४।२।३१।। वायव्यम् । ऋतव्यम् ।
१७७२. रीङ् ऋतः-७।४।२७।। अकृद्यकारेऽसार्वधातुकयकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः । यस्येति च । पित्र्यम् । उषस्यम् ।
१७७३. द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च-४।२।३२।। चाद् यत् । द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम् । शुनासीरीयम् । शुनासीर्यम् ।
१७७४. महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्-४।२।३५।। माहाराजिकम् । प्रौष्ठपदिकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

शुक्रादिति—सास्य देवतेत्यर्थे शुक्रशब्दात् घन् इत्ययो भवतीत्यर्थः । **शुक्रियम्**—शुक्रो देवताऽस्येति घन् । नलोपः, आयनेयीनीयियि इति घस्येय् । अलोपः । **सौम्यम्**—सोमो देवताऽस्येत्यर्थे सोमाट्ट्यण् इति ट्यण् । टणौ इतौ । आदिवृद्धिः, यस्येति च । **वायव्यम्**—वायुः देवताऽस्येत्यर्थे वाय्वृतुपित्रुषसो यदिति यत् । । ओर्गुणः, वान्तो यीति अवादेशः । **रीङ् ऋत इति**—अङ्गस्येत्यधिकारः, ऋत इति तस्य विशेषणम्, विशेषणात्तदन्तविधिः । अनङ् यि इत्यत "यि" इत्यनुवर्तते । अकृत्सार्वधातुकयोरिति च्वौ चेति सूत्रमनुवर्तते । **तदाह**—अकृद्यकारे इत्यादि । **पित्र्यम्**—पिता देवता अस्येत्यर्थे वाय्वृतु इति यत्, रीङ् ऋत इति ऋकारस्य रीङ्, पित्री य इति, यस्येति चेति ईलोपः । **उषस्यम्**—उषाः देवताऽस्येत्यर्थे यत् । **द्यावापृथिवी**—द्यावापृथिवी शुनासीर मरुत्वत् अग्नीषोम वास्तोष्पति गृहमेध इत्येतेभ्यः साऽस्य देवतेत्यर्थे छप्रत्ययः यच्च भवतीत्यर्थः । अणः पत्युत्तर पदण्यस्य चापवादः । **द्यावापृथिवीयम्**-द्यावापृथिव्यौ देवतेऽस्य इत्यर्थे छः, आयनेयीनीयियः इति छस्य ईय्, भत्वादीकारलोपः । यति ईलोपे द्यावापृथिव्यम् इति । **शुनासीरीयम्**—शुनः वायुः, सीरः आदित्यः, शुनश्च आदित्यश्चेति द्वन्द्वे देवताद्वन्द्वे चेत्यानङि शुनासीर इति । शुनासीरौ देवतेऽस्येत्यर्थे छः, ईय्, अलोपः । यति अलोपे शुनासीर्यम् । **महाराजेति**—साऽस्य देवता इति विषये महाराजप्रोष्ठपद इत्याभ्यां ठञ् स्यात् । ञकार इत् । **माहाराजिकम्**—महाराजो देवताऽस्येति विग्रहे ठञ्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति च । प्रोष्ठपदो देवताऽस्येति **प्रौष्ठपदिकम्** । ठञ्, इकादेशः, आदिवृद्धिः ।

हिन्दी

१७६९. शुक्र शब्द से 'साऽस्य देवता' अर्थ में घन् प्रत्यय होता है ।
१७७०. सोम से "साऽस्य देवता" अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है ।
१७७१. वायु ऋतु पितृ एवं उषस् से "साऽस्य देवता" अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।
१७७२. ऋदन्त अङ्ग को रीङ् आदेश होता है कृत् सार्वधातुकभिन्न यकार व च्वि प्रत्यय परे रहते ।
१७७३. द्यावापृथिवी आदि से साऽस्य देवता अर्थ में छ एवं यत् प्रत्यय होते हैं ।
१७७४. महाराज एवं प्रोष्ठपद शब्द से साऽस्य देवता अर्थ में ठञ् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७७५. देवताद्वन्द्वे च-७।३।२१॥ अत्र पूर्वोत्तरपदयोराद्यचो वृद्धिः किति ञिति णिति च । आग्निमारुतम् ।

१७७६. नेन्द्रस्य परस्य-७।३।२२॥ सौमेन्द्रः । परस्य किम्-ऐन्द्राग्नः ।

१७७७. दीर्घाच्च वरुणस्य-७।३।२३॥ न वृद्धिः । ऐन्द्रावरुणम् । दीर्घात् किम्-आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत ।

१७७८. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः-४।२।३६॥ एते निपात्यन्ते । पितुर्भ्राता-पितृव्यः । मातुर्भ्राता-मातुलः । मातुः पिता-मातामहः । पितुः पिता-पितामहः ।

१७७९. तस्य समूहः-४।२।३७॥ काकानां समूहः काकम् । बकानां समूहः-बाकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

देवताद्वन्द्वे चेति—मृजेर्वृद्धिरित्यतो वृद्धिरिति अचो ञ्णितीत्यत ञिति णिति इति, किति चेत्यतः किति इत्यनुवर्तते च । तद्धितेष्वचामादेरित्यत अचामादेरिति, हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य चेत्यतः पूर्वपदस्येत्यनुवर्तते, 'उत्तरपदस्य च' इति सूत्रमप्यनुवर्तते । **तदाह**—अत्र पूर्वोत्तरपदयोराद्यच इति । **आग्निमारुतम्**—अग्निश्च मरुच्चेति द्वन्द्वे अग्नामरुत् इति । अग्नामरुतौ देवते अस्येत्यर्थे सास्य देवतेत्यण् । देवताद्वन्द्वे चेति पूर्वोत्तरपदयोः आद्यचो वृद्धिः। अलोपः । **नेन्द्रस्य परस्येति-** देवताद्वन्द्वे चेति उभयपदवृद्धिः उत्तरपदस्य इन्द्रस्य न भवति इत्यर्थः। **सौमेन्द्रः**—सोमेन्द्रौ देवतेऽस्येत्यर्थेऽण्, देवताद्वन्द्वे चेति प्राप्ता वृद्धिः नेन्द्रस्य परस्येति निषिध्यते । आद्यचो वृद्धिर्भवति । **परस्येति**—यद्येतन्नोच्येत तदाऽत्र पूर्वपदस्यापि इन्द्रस्य वृद्धिनिषेधः स्यात् । **दीर्घाच्चेति**—दीर्घात् परस्य वरुणस्य देवताद्वन्द्वे चेति वृद्धिर्न भवतीत्यर्थः। **ऐन्द्रावरुणम्**—इन्द्रावरुणौ देवते अस्येति विग्रहे अण्, आदिवृद्धिमात्रं भवति, उत्तरपदस्य दीर्घाच्चेति वृद्धिनिषेधो भवति । **दीर्घात् किमिति**—आग्निवारुणीमित्यत्र ह्रस्वात् परस्य वरुणस्यापि देवताद्वन्द्वे चेति वृद्धिर्भवत्येव । ह्रस्वादित्यस्याभावे वृद्धिर्न स्यात् । **पितृव्येति**—पितुर्भ्राता इत्यर्थे व्यत् प्रत्ययो निपात्यते, तेन पितृव्य इति, मातुर्भ्राता इत्यर्थे डुलच् प्रत्ययो निपात्यते, उल इति शिष्यते, डित्त्वात् ऋकारस्य टेः लोपे मातुल इति, मातुः पिता इत्यर्थे डामहच् प्रत्ययो निपात्यते, आमह इत्यवशिष्यते । डित्वाट्टेर्लोपे मातामह इति, तथा च पितुः पिता इत्यर्थे डामहचि प्रत्यये पितामह इति निपात्यते । **काकम्**—काकानां समूह इत्यर्थे तस्य समूह इत्यणि आदिवृद्धिः, समूहप्रत्ययान्तानां नपुंसकत्वं भवति । बकानां समूहः बाकमिति ।

हिन्दी

१७७५. देवतावाची के द्वन्द्व होने पर पूर्व एवं उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है ञित् णित् व कित् प्रत्यय परे रहते ।

१७७६. इन्द्र शब्द के पर में रहने पर 'देवता द्वन्द्वे च' से उत्तर पद इन्द्र को वृद्धि नहीं होती है ।

१७७७. दीर्घ पूर्वपद से परे वरुण को देवताद्वन्द्वे च से वृद्धि नहीं होती है ।

१७७८. पितृव्य मातुल पितामह एवं मातामह ये निपातन हैं ।

१७७९. उसके समूह अर्थ में षष्ठ्यन्त से अण् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७८०. भिक्षादिभ्योऽण्-४।२।३८।। भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम् । इह भस्याढे इति पुम्वद्भावे कृते-

१७८१. इनण्यनपत्ये-६।४।१६४।। अनपत्यार्थेऽणि इन्प्रकृत्या । तेन नस्तद्धिते इति टिलोपो न । युवतीनां समूहो यौवतम् ।

१७८२. गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्-४।२।३९।। ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम् । औक्षकमित्यादि । आपत्यस्य चेति यलोपे प्राप्ते-

वा. प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः ।। राजन्यकम् । मानुष्यकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भिक्षादिभ्य इति—भिक्षादिगणपठितेभ्यः समूहेऽर्थे अण् भवतीत्यर्थः । **भैक्षम्**—भिक्षाणां समूह इत्यर्थेऽणि आदिवृद्धौ यस्येति येति आलोपः । **गार्भिणम् इति**—गर्भः अस्त्यस्या इत्यर्थे मत्वर्थीयः इन्, ङीप्, णत्वम् । गर्भिणी इति, गर्भिणीनां समूह इत्यर्थे भिक्षादिभ्योऽण् इति अण्, आदिवृद्धिः, भस्याढे तद्धिते इति पुम्वद्भावेन ङीपो निवृत्तौ गार्भिन् अ इति भवति, नस्तद्धिते इति टिलोपः प्राप्तः, इनण्यनपत्ये इति प्रकृतिभावे न टिलोपो भवति, णत्वे च गार्भिणम् इति भवति । **एतदेवाह**—इह भस्याढे इत्यादिना । **इनण्यनपत्ये इति**—इन् अणि अनपत्ये इतिच्छेदः । प्रकृत्यैकाच् इत्यतः "प्रकृत्या" इत्यनुवर्तते । तदाह अनपत्यार्थेऽणि इत्यादि । **यौवतम्**—युवतीनां समूह इत्यर्थे भिक्षादिभ्योऽण् इत्यण्, आदिवृद्धिः, भिक्षादिगणे युवतिशब्दस्य पाठसामर्थ्यात् भस्याढे तद्धिते इति पुम्वद्भावाभावः । भत्वाट्टेर्लोपे यौवतमिति काशिकाकारः । बालमनोरमाकारस्तु पुम्वद्भावं विधाय यौवन् अ इति जाते प्रकृतिभावे सति यौवनमिति रूपं वदति । **गोत्रोक्षेति**—एभ्यः समूहे वुञ् स्यात् इत्यर्थः । गोत्रमिह लौकिकं गृह्यते अपत्यमात्रं, नतु पौत्रप्रभृत्येव । **ग्लौचुकायनमिति**—ग्लुचुकशब्दात् फिन् । फस्यायन्, ङीप्, ग्लुचुकायनी इति, तस्मात् समूहेऽर्थे वुञ्, आदिवृद्धिः, युवोरनाकौ इति वु इत्यस्याकादेशः, यस्येति चेतीकारलोपः । **औक्षकम्**—उक्ष्णां समूहः इत्यर्थः, वुञ् । आदिवृद्धिः, अकादेशः, टिलोपः । उष्ट्राणां समूहः **औष्ट्रकमिति** । उरभ्राणां समूहः औरभ्रकम्, मेषसमूहः इत्यर्थः । राज्ञां समूहः राजकम् । **प्रकृत्याऽके इति**—अके परतः राजन्य मनुष्य युवन् इत्येते प्रकृत्या स्युरित्यर्थः । **राजन्यकमिति**—राजन्यानां समूह इत्यर्थे वुञ्, वोरकादेशः, आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति इति यलोपे प्राप्ते प्रकृत्याऽके राजन्येति प्रकृतिभावः, यस्येति च। मनुष्याणां समूहः इति विग्रहे वुञ् । वोरकादेशः, आदिवृद्धिः, प्रकृतिभावः, ।

हिन्दी

१७८०. भिक्षादिगण पठित शब्द से समूह अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

१७८१. अनपत्यार्थक अण् प्रत्यय परे इन् को प्रकृतिभाव होता है ।

१७८२. गोत्र उक्षन् उष्ट्र उरभ्र राजन् राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्य एवं अज, इन से समूह अर्थ में वुञ् होता है ।

वा. अक प्रत्यय परे राजन्य मनुष्य और युवन् को प्रकृतिभाव होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. वृद्धाच्चेति वक्तव्यम् ।। वार्धकम् ।
१७८३. केदाराद्यञ् च-४।२।४०।। चाद् वुञ् । कैदार्यम्-कैदारकम् ।
वा. गणिकाया यञिति वक्तव्यम् ।। गाणिक्यम् ।
१७८४. ठञ् कवचिनश्च-४।२।४१।। चात् केदारादपि । कवचिनां समूहः कावचिकम् । कैदारिकम् ।
१७८५. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्-४।२।४३।। ग्रामता।जनता । बन्धुता । तलन्तं स्त्रियाम् । वा. गजसहायाभ्याञ्चेति वक्तव्यम् ।। गजता । सहायता । वा. अह्नः खः क्रतौ ।। अहीनः क्रतुः ।
१७८६. अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्-४।२।४७।।
१७८७. इसुसुक्तान्तात् कः-७।३।५१।। इस् उस् उक् त एतदन्तात् परस्य ठस्य कः । साक्तुकम् । हास्तिकम् । धैनुकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

वृद्धाच्चेति—वृद्धशब्दात् समूहेऽर्थे वुञ् स्यादित्यर्थः । **वार्द्धकम्**—वृद्धानां समूह इति विग्रहे वुञ्, वोरकादेशः, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । **कौदार्यम्-कैदारकम्**—केदाराणां समूह इत्यर्थे केदाराद्यञ् चेति यञि आदिवृद्धौ कैदार्यम् इति । वुञि वोरकादेशे तद्धितेष्वचामिति आदिवृद्धिः। **गाणिक्यम्**—गणिकानां समूह इति विग्रहे गणिकाया यञिति वक्तव्यमिति यञ्, आदिवृद्धिः, भत्वादाकारलोपः । **कावचिकम्**—कवचिनां समूह इत्यर्थे ठञ् कवचिनश्चेति ठञ्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, टेरिनो लोपः । केदाराट्ठञि कृते **कैदारिकमिति** । **ग्रामजनेति**—एभ्यस्तल् स्यात् समूहविषये इत्यर्थः । **ग्रामता**—ग्रामाणां समूह इत्यर्थे तल् । तलन्तं स्त्रियामिति नियमात् टाप् । बन्धूनां समूहः **बन्धुता** इत्यपि बोध्यम् । **गजसहायाभ्याम् इति**—आभ्यां समूहेऽर्थे तल् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **अह्नः खः क्रतौ**—क्रतौ विद्यमानात् अहन् शब्दात् समूहेऽर्थे तल् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **अहीनः क्रतुः**—अहःसमूहैः साध्यः इत्यर्थः । अहन् शब्दात् खः, खस्येनादेशः, अह्नष्टखोरेवेति टिलोपः । **अचित्तहस्ति इति**—अचित्ताः प्राणिभिन्नाः, तद्-वाचिभ्यः, हस्तिशब्दात् धेनुशब्दाच्च ठक् प्रत्ययो भवति 'तस्य समूहः' इत्यर्थे । अणञोरपवादोऽयम् । **साक्तुकम्**—सक्तूनां समूह इत्यर्थे सक्तुशब्दात् अचित्तहस्ति इति ठक्, इसुसुक्तान्तात् कः इति ठस्य कः, किति चेत्यादिवृद्धिः, सौ साक्तुकम् । **हास्तिकम्**—हस्तिनां समूहः इत्यर्थे हस्तिन् शब्दात् ठक्, ठस्येकः इति इकः । आदिवृद्धिः, भत्वाट्टिलोपः । **धैनुकम्**-धेनूनां समूह इत्यर्थे ठक् । परत्वात् इसुसुक्तान्तात् कः इति ठस्य कादेशः, आदिवृद्धिः ।

हिन्दी

वा. वृद्धशब्द से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ।
१७८३. केदार शब्द से समूह अर्थ में यञ् और वुञ् प्रत्यय होते हैं ।
वा. गणिका से समूह अर्थ में यञ् प्रत्यय कहना चाहिये ।
१७८४. कवचिन् एवं केदार शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है, समूह अर्थ में ।
१७८५. ग्राम जन एवं बन्धु शब्द से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है ।
वा. गज एवं सहाय शब्दों से समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होता है ।
वा. क्रतु में विद्यमान अहन् शब्द से समूह अर्थ में "ख" प्रत्यय होता है ।
१७८६. अप्राणिवाचक, हस्तिन् एवं धेनु से 'तस्य समूहः' अर्थ में ठक् होता है ।
१७८७. इसन्त उसन्त उगन्त एवं तान्त से परे "ठ" को "क" होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७८८. केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्-४।२।४८॥ पक्षे ठगणौ । कैश्यम्, कैशिकम् । अश्वीयम्, आश्वः ।

१७८९. पाशादिभ्यो यः-४।२।४९॥ पश्या । तृण्या । धूम्या । वन्या । वात्या।

१७९०. खलगोरथात्-४।२।५०॥ खल्या । गव्या । रथ्या ।

१७९१. इनित्रकट्यचश्च-४।२।५१॥ खलादिभ्यः क्रमात् स्युः । खलिनी । गोत्रा। रथकट्या ।

वा. खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः । डाकिनी । कुटुम्बिनी । आकृतिगणोऽयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

केशाश्वाभ्यामिति—समूह इत्यनुवर्तते । केश अश्व इत्याभ्यां क्रमशः यञ् छ इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः तस्य समूहे, विकल्पेनेत्यर्थः । **पक्षे ठगणौ**—अचित्तहस्तीति ठक् । अश्वात् छप्रत्यया-भावे च अण् इत्यर्थः । **कैश्यम्-कैशिकम्**—केशानां समूह इत्यर्थे यञ्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेति अलोपः । पक्षे अचित्तेति ठक्, ठस्येकः, अलोपः । **अश्वीयम्-आश्वः**—अश्वानां समूह इत्यर्थे छः, छस्य आयनेयीनीयिय इति ईय् । अलोपः । पक्षे तस्य समूह इत्यण्, आदिवृद्धिः, आश्व इति । **पाशादिभ्यो यः**—समूहेऽर्थे य-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **पाश्या**-पाशानां समूह इत्यर्थे यः, अलोपः । स्त्रीत्वं लोकात्, तेन टाप् । तृणानां समूहः, धूमानां समूहः, **तृण्या धूम्येति।** **वनानां** = जलानां समूहः वन्या जलप्रवाहः । वातानां समूहः वात्येति । **खलगोरथेति**—एभ्यः समूहेऽर्थे यः स्यात् । खलानां समूहः खल्या । गवां समूहः इत्यर्थे यः, वान्तो यीति अव् । रथानां समूहः रथ्येति । सर्वत्र टाप्, स्त्रीत्वात् । **इनित्रेति**- खलगोरथात् इत्यनुवर्तते । खलगोरथ इत्येतेभ्यः क्रमशः इनि त्र कट्यच् इत्येते प्रत्ययाः स्युः समूहेऽर्थे । **खलिनी**-खलानां समूहः इत्यर्थे इनिः, नकारादिकार इत् । यस्येति च । ऋन्नेभ्यो ङीप् । स्त्रीत्वं लोकादेव। गवां समूहः इत्यर्थे त्रप्रत्यये टापि गोत्रा इति । रथानां समूह इत्यर्थे कट्यच्, चकार इत् । लशक्वतद्धिते इत्यत्र अतद्धिते इत्युक्तत्वान्न कस्येत्त्वम् । टाप् । **डाकिनी**-डाय, भयदानाय अकति व्रजति इति डाकः पिशाचः । डाकानां समूहः इत्यर्थे खलादिभ्य इति इनिः, नान्तत्वात् ङीप् । पिशाचिनीत्यर्थः । कुटुम्बानां समूहः **कुटुम्बिनी इति** ।

हिन्दी

१७८८. केश एवं अश्व शब्द से "तस्य समूहः" अर्थ में क्रमशः यञ् एवं छ प्रत्यय होते हैं विकल्प से ।

१७८९. पाशादिगण पठित से समूह अर्थ में य प्रत्यय होता है ।

१७९०. खल गो एवं रथ से समूह अर्थ में य-प्रत्यय होता है ।

१७९१. खल गो एवं रथ से क्रमशः इनि त्र एवं कट्यच् प्रत्यय होते हैं, समूहार्थ में ।

वा. खलादि शब्दों से इनि प्रत्यय कहना चाहिये, समूहार्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७९२. तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः-४।२।५७।। दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां-दाण्डा । मौष्टा ।

१७९३. घञः सास्यां क्रियेति ञः-४।२।५८।। घञन्तात् क्रियावाचिनः प्रथमान्तादस्यामित्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञप्रत्ययः ।

१७९४. श्येनतिलस्य पाते ञे-६।३।७१।। अनयोर्मुम् स्यात् ञप्रत्यये परे पातशब्दे उत्तरपदे । श्यैनम्पाता मृगया । तैलम्पाता स्वधा । श्येनतिलस्य किम् ? दण्डपातोऽस्यां दाण्डपाता तिथिः ।

१७९५. तदधीते तद्वेद-४।२।५९।।

मध्यमनोरमापूरणी

तदस्याम् इति—अस्यां क्रीडायां प्रहरणम् तद् इत्यर्थे प्रथमासमर्थात् प्रहरणवाचकात् 'ण'-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । प्रह्रियते अनेन इति प्रहरणमत्र आयुधं गृह्यते । **दाण्डा-** दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायामित्यर्थे णः, णकार इत् । आद्यचो वृद्धिः, दाण्ड अ इति, भत्वादकारलोपः, स्त्रीलिङ्गस्य विशेष्यत्वादत्र टाप् । अणि सति टिड्ढेति ङीप् स्यात् । **मौष्टा-** मुष्टिः प्रहरणमस्यां क्रीडायामित्यर्थे मुष्टिपदात् णः, आद्यचो वृद्धिः, इलोपः, टाप् । **घञः सास्यामिति-** सा इति समर्थविभक्तिः, अस्यामिति स्त्रीलिङ्गविशेष्यार्थम्, क्रियेति प्रकृत्यर्थविशेषणम् । घञ इति प्रकृतिनिर्देशः । **अत उक्तम्**—घञन्तात् क्रियावाचिनः इत्यादि । **श्यैनम्पाता मृगया**—पतनं पातः इति भावे घञ् । श्येनपातः अस्यां मृगयायामित्यर्थे श्येनपात शब्दात् घञः सास्यामित्यादिना ञः, चुटू इति ञकार इत् । श्येनतिलस्य पाते ञे इति श्येनस्य मुमागमः, श्येनम्पात अ इति, आद्यचो वृद्धिः, भत्वात्पाताकारलोपः, स्त्रीत्वाट्टाप् । **तैलम्पाता स्वधा**—स्वधाशब्दः स्त्रीलिङ्गः पितृक्रियायां प्रयुज्यते । तैलपातः अस्याम् इत्यर्थे ञः, मुम्, आद्यचो वृद्धिः, अलोपे टाप् । **दण्डपाता इति**—दण्डपातः अस्यां तिथौ इत्यर्थे ञः । नात्र मुम् , श्येनतिलयोरभावात्। **तदधीते इति**—तद् इति द्वितीयान्तं पदम् । द्वितीयान्ताद् तदधीते इत्यर्थे तद्वेद इत्यर्थे च अणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः ।

हिन्दी

१९९२. प्रथमान्त प्रहरणवाचक शब्दों से क्रीडात्मक सप्तम्यर्थ की विवक्षा में "ण" प्रत्यय होता है ।

१७९३. घञन्त क्रियावाचक प्रथमान्त से स्त्रीलिङ्ग सप्तम्यर्थ की वाच्यता होने पर "ञ" प्रत्यय होता है ।

१७९४. श्येन तथा तिल शब्द को "मुम्" आगम होता है, ञ-प्रत्यय परे एवं पात शब्द उत्तरपद परे रहते ।

१७९५. द्वितीयान्त से अधीते, तथा वेद=जानता है, इस अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१७९६. न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्-७।३।३।। पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्याचो न वृद्धिः, किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेत्ति वेति वैयाकरणः।

१७९७. क्रमादिभ्यो वुन्-४।२।६१।। क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः।

१७९८. क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्-४।२।६०।। क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणम्। तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि, तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि। आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थं सामविशेषः, तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो

मध्यमनोरमापूरणी

न य्वाभ्याम् इति—मृजेर्वृद्धिरित्यतो वृद्धिरित्यनुवर्तते। ञिति णिति इति, तद्धितेष्वचामादेरिति सूत्रं चानुवर्तते। यश्च वश्च य्वौ इति। अकार उच्चारणार्थः। पदान्तयकार-वकाराभ्याम् उत्तरस्य अचामादेः अचः स्थाने वृद्धिर्न भवति किन्तु ताभ्यां पूर्वमैजागमो भवति, ञिति णिति किति च तद्धिते परे इत्यर्थः। **वैयाकरणः**—वि आङ्पूर्वात् कृधातोः ल्युटि योरनादेशे गुणे यणि च व्याकरण शब्दः सिध्यति। व्याकरणम् अधीते व्याकरणं वेत्ति वा इत्यर्थे तदधीते तद्वेद इत्यण्, तद्धितेष्वचामिति प्राप्तां वृद्धिं प्रबाध्य न य्वाभ्यामिति यकारात् पूर्वमैच्। यस्येति चेत्यलोपः। **क्रमादिभ्य इति**—तदधीते तद्वेद इत्यर्थे क्रमादिशब्देभ्यः वुन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। अणोऽपवादोऽयम्। **क्रमक इति**—क्रममधीते क्रमं वा वेत्तीत्यर्थे वुन्। युवोरनाकौ इत्यकादेशः। भत्वादलोपः। पदमधीते इति **पदकः**। शिक्षामधीते वेद वेति **शिक्षकः**। मीमांसामधीते वेत्ति वेति **मीमांसकः**। सर्वत्र वुन्, अकादेशः, अवर्णस्य च लोपो भवति। **क्रतूक्थादि**—तदधीते तद्वेद इत्यनुवर्तते। क्रतुः उक्थादिसूत्रान्तः, एभ्यः ठक् स्यात् तदधीते तद्वेद इत्यनयोरर्थयोः। क्रतुशब्देनात्र क्रतुविशेषेषु मुख्यानाम् अग्निष्टोमादीनां ग्रहणं भवति, न तु क्रतुशब्दस्यैव। अन्यथा उक्थादिगणे एव क्रतुशब्दं पठेत्। भवत्यत्र प्रश्नः यत् क्रतुविशेषाणामध्ययनं न सम्भाव्यते, कथं तदधीते इत्यर्थे प्रत्ययः **स्यादिति चेदाह**—तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि ठक् प्रत्ययो भवति, क्रतुप्रतिपादकग्रन्थवाचकेभ्यः अध्येतरि अर्थे ठग् भवति। तत्रायं क्रत्वादिशब्दः क्रतुप्रतिपादकग्रन्थेषु लक्षणया प्रयुज्यते इत्यवधेयम्। **आग्निष्टोमिक इति**—अग्निष्टोमं (क्रतुविशेषं) वेत्ति इत्यर्थे तदधीते तद्वेद इत्यणं प्रबाध्य क्रतूक्थादि इत्यादिना ठक्, ठस्येकः, किति चेति आदिवृद्धिः, यस्येति च। **वाजपेयिक इति**-वाजपेयं वेत्तीत्यर्थे ठक्, इकादेशः, अलोपः। पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिरिति न्यायात् आदिवृद्धिरपि भवत्येव।

हिन्दी

१७९६. पदान्त यकार वकार से उत्तर आदि अच् को वृद्धि नहीं होती है किन्तु उनसे पूर्व ऐच् (ऐ औ) का आगम होता है ञित् णित् व कित् तद्धित परे।

१७९७. क्रमादिगण पठित से 'तदधीते तद्वेद' इस अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है।

१७९८. क्रतुविशेष वाची से वेत्ति अर्थ में तथा ग्रन्थप्रतिपादक गौण से अधीते अर्थ में ठक् होता है। उक्थादि से गौण अर्थ में ठक् होता है, तथा सूत्रशब्दान्त से ठक् प्रत्यय होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लक्षणयोक्तम् । तदधीते वेद वा औक्थिकः । मुख्यार्थात्तूक्तशब्दाट्ठगणौ नेष्येते।। नैयायिकः । वार्तिकः । लौकायतिकः ।

वा. सूत्रान्तात्तु अकल्पादेरेवेष्येते ।। सांग्रहसूत्रिकः । अकल्पादेः किम् ? काल्पसूत्रः।

वा. विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम् ।। वायसविद्यिकः । गौलक्षणिकः । पाराशरकल्पिकः । वा. अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद् विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम् ।। आङ्गविद्यः ।। क्षात्रविद्यः । धार्मविद्यः । त्रिविधा विद्या त्रिविद्या, तामधीते वेत्ति वा त्रैविद्यः ।

।। इति रक्ताद्यर्थकाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

औक्थिकः—उक्थ शब्दः सामसु मुख्यः, सामलक्षणग्रन्थे प्रातिशाख्ये गौणः । तत्र गौणार्थकादेव उक्थशब्दात् तदधीते तद्वेद इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः । मुख्यार्थसामवाचिनः उक्थशब्दात् तु ठक् न भवति तदधीते तद्वेदेत्यणपि न भवति । एतदेव मूले "उक्थं सामविशेष" इत्यारभ्य "नेष्येते" इत्यन्तं यावदुच्यते । उक्थादिगणपठितेभ्योऽन्यशब्देभ्यः ठक्-प्रत्ययं विधत्ते, **तदाह- नैयायिक इति**—न्यायमधीते वेत्ति वेत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यामिति ऐजागमः यकारात् पूर्वम् । यस्येति चेत्यलोपे नैयायिक इति । **वार्तिक इति**—वृत्तिं वेद अधीते वा इत्यर्थे ठक्, इकादेशः, आदिवृद्धौ उरण् रपर इति रपरत्वे यस्येत्यलोपे रूपम् । **लौकायतिकः**- लोकायतमधीते वेत्ति वेत्यर्थे लोकायत-शब्दात् ठक् । ठस्येकः, आदिवृद्धिः, भत्वादलोपः । **सूत्रान्तात्तु**—क्रतूक्थादि-सूत्रेण सूत्रान्ताद् विधीयमानः ठक् अकल्पादिसूत्रान्तादेव वक्तव्य- इत्यर्थः । **सांग्रहसूत्रिकः**—संग्रहनामकं सूत्रं संग्रहसूत्रं, तदधीते वेत्ति वेत्यर्थे ठक् । ठस्येकः, किति चेत्यादिवृद्धिः । यस्येति चेत्यलोपः । **काल्पसूत्रः**-कल्पसूत्रमधीते वेत्ति वेत्यर्थेऽण्, आद्यचो वृद्धिः । यद्यत्र अकल्पादेरिति नोच्येत तदा कल्पसूत्रशब्दस्य कल्पादित्वेऽपि ठक् प्रत्ययापत्तिः स्यात् । **विद्यालक्षणेति**—तदधीते तद्वेद इत्यस्मिन्नर्थे विद्या लक्षण कल्प इत्येतदन्तादपि ठक् स्यादित्यर्थः । **वायसविद्यिकः**—वायसविद्यां वेत्ति अधीते वा इत्यर्थे ठक्, इकादेशः, यस्येति चेत्यालोपः । **गौलक्षणिकः**-गोलक्षणं (गवां लक्षणप्रतिपादकं ग्रन्थम्) अधीते वेत्ति वेत्यर्थे ठक्। इकादेशः, आद्यचो वृद्धिः । अलोपः । **पाराशरकल्पिकः**—पराशरकल्पमधीते वेत्ति वेत्यर्थे ठक्। **अङ्गक्षत्रधर्मेति**—अङ्गपूर्वात् क्षत्रपूर्वात् धर्मपूर्वात् त्रिपूर्वाच्च विद्यान्तशब्दाट्ठक् नेत्यर्थः । ठगभावे तु अणेव भवति इति बोध्यम् । **आङ्गविद्यः**—अङ्गविद्याम् अधीते वेत्ति वेत्यर्थे विद्यालक्षण- कल्पान्तादिति प्राप्तः ठक् अङ्गक्षत्रधर्मेत्यादिना वारितः, ततश्च तदधीते तद्वेद इत्यण्, आद्यचो वृद्धिः, भत्वादाकारलोपः । क्षत्रविद्यामधीते वेति वेत्यर्थेऽण् । **क्षात्रविद्य** इति भवति । **धार्मविद्यः**- धर्मविद्यामधीते वेत्ति वेत्यर्थे ठको निषेधेऽण् भवति । **त्रैविद्यः**—त्रिविधा विद्या इति विग्रहे शाकपार्थिवादित्वात्समासे विधाशब्दस्य लोपे च त्रिविद्या इति, त्रिविद्यामधीते वेत्ति वेत्यर्थेऽण्, आद्यचो वृद्धौ यस्येति चेत्यालोपः । अत्र तिस्रः विद्याः त्रिविद्याः इति न भवति, दिक्संख्ये संज्ञायामिति नियमात् । नापि तद्धितार्थद्विगुर्भवति, "द्विगोर्लुगनपत्ये" इति लुगापत्तिः स्यात्। इति अर्कनाथ चौधरी इत्याख्येन कृतायां मध्यमनोरमापूरण्यां रक्ताद्यर्थकाः ।

हिन्दी

वा. अकल्पादिसूत्रान्त से ही उक्तार्थ में ठक् होता है ।

वा. विद्यान्त लक्षणान्त एवं कल्पान्त से 'तदधीते तद्वेद' इस अर्थ में ठक् होता है ।

वा. अङ्ग क्षत्र धर्म एवं त्रिपूर्वक विद्यान्त शब्द से ठक् नहीं होता है ।

।। इति रक्ताद्यर्थक ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ चातुरर्थिकाः

१७९९. तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि-४।२।६७॥ उदुम्बरा सन्ति अस्मिन् देशे औदुम्बरो देशः ।

१८००. तेन निर्वृत्तम्-४।२।६८॥ कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी ।

१८०१. तस्य निवासः-४।२।६९॥ शिवीनां निवासो देशः शैवः ।

१८०२. अदूभवश्च-४।२।७०॥ विदिशाया अदूभवं वैदिशम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

तदस्मिन्निति—तद् अस्मिन् अस्ति इत्यर्थे प्रथमासमर्थात् अणादयः स्युः, प्रत्ययान्तेन प्रकृति-नामके देशे गम्ये सतीत्यर्थः । **औदुम्बरः**—उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् इत्यर्थे प्रथमान्तात् उदुम्बर-शब्दात् तदस्मिन्नित्यण्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति सुपो लुक्। आद्यचो वृद्धिः, भत्वादकारलोपः । औदुम्बरशब्दो देशवाची अस्ति । इदं सूत्रं मतुपोऽपवादसूत्रम् अस्ति । **तेन निर्वृत्तम्**—'देशे तन्नाम्नि' इति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । तेन निर्वृत्तमित्यर्थे तृतीया-समर्थात् यथाविहितमणादयः स्युस्तन्नाम्नि देशे गम्ये इत्यर्थः । **कौशाम्बी**—कुशाम्बेन निर्वृत्ता इत्यर्थे कुशाम्बात् अण्, आद्यचो वृद्धिः, भत्वादलोपः, कौशाम्ब इत्यस्य अणन्तत्वाद् टिड्ढाणञ् इति ङीप्, भत्वादणोऽकारलोपः । **तस्य निवासः**—अत्रापि तन्नाम्नि देशे इत्यनुवर्तते। तस्य निवास इत्यर्थे षष्ठ्यन्ताद् अणादयः स्युस्तन्नाम्नि देशे गम्ये इत्यर्थः । **शैवः**—शिवीनां निवासो देश इत्यर्थेऽण्, आद्यचो वृद्धौ भत्वादिकारलोपः । **अदूरभवश्च**—तस्य इति, तन्नाम्नि देशे इति चानुवर्तते । चकारात् पूर्वोक्ताः त्रयोऽप्यर्थाः पुनः गृह्यन्ते । तस्य अदूरभवः इत्यर्थे षष्ठ्यन्तात् अणादयः स्युः, तन्नाम्नि देशे इत्यर्थः । चकारात् त्रयाणामर्थानाम् अस्य च सूत्रार्थ-स्य संग्रहात् चत्वारोऽर्थाः भवन्ति, अत अयं चातुरर्थिक उच्यते । **तथाहि**—चतुर्णामर्थानां समाहारः चतुरर्थी, चतुरर्थ्यां भवः इत्यर्थे अध्यात्मादित्वाट्ठक् । अथवा चतुर्णां सूत्राणामर्थाः चतुरर्थाः, तत्रभवाः चातुरर्थिकाः । चतुर्भ्यः सूत्रेभ्यः तेषु तेषु अर्थेषु जायमानाः प्रत्ययाः इत्यर्थः।

हिन्दी

१७९९. "तद् अस्मिन् अस्ति" (वह इसमें है) इस अर्थ में प्रथमान्त से अणादि प्रत्यय होते हैं प्रत्ययान्त से यदि तन्नामक देश गम्य हो ।

१८००. तेन निर्वृत्तम् (उसने बनाया) अर्थ में तृतीयान्त से अणादि से अणादि होते हैं प्रत्ययान्त से देशनाम बोध होने पर ।

१८०१. तस्य निवासः (उसका निवास) अर्थ में षष्ठ्यन्त से अणादि होते हैं, देशनाम गम्य होने पर ।

१८०२. षष्ठ्यन्त से अदूरभव अर्थ में अणादि-प्रत्यय होते हैं, प्रत्ययान्त से देशनाम बोध होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८०३. वुञ्छणकठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहण कृशाश्वर्श्य-कुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः-४।२।८०॥

सप्तदशभ्यः सप्तदश क्रमात् स्युश्चातुरर्थ्याम् । अरीहणादिभ्यो वुञ्-अरीहणेन निर्वृत्तम् आरीहणकम् । कृशाश्वादिभ्यश्छण्-कार्शाश्वीयः । ऋश्यादिभ्यः कः-ऋश्यकम् । कुमुदादिभ्यष्ठच्-कुमुदिकम् । काशादिभ्यः इलः- शिलः । तृणादिभ्यः सः-तृणसम् । प्रेक्षादिभ्य इनिः-प्रेक्षी । अश्मादिभ्यो रः-अश्मरः । सख्यादिभ्यो ढञ्-साखेयम् । संकाशादिभ्यो ण्यः । सांकाश्यम् । बलादिभ्यो यः। बल्यम् । पक्षादिभ्यः फक् । पाक्षायणः ।

ग. सू. पथः पन्थ च ॥ पान्थायनः । कर्णादिभ्यः फिञ् । कार्णायनिः । सुतङ्गमादिभ्यः इञ् । सौतङ्गमिः । प्रगदिनादिभ्यो ञ्यः । प्रागद्यः । वराहादिभ्यः कक्। वाराहकः । कुमुदादिभ्यः ठक् । कौमुदिकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वुञ् छण इत्यादि—वुञ् छण् क ठच् इल स इनि र ढञ् ण्य य फक् इञ् ञ्य कक् ठक् इत्येतेषां द्वन्द्वः, प्रथमाबहुवचने ठकः इति रूपम् । अरीहण कृशाश्व ऋश्य कुमुद काश तृण प्रेक्ष अश्मन् सखि संकाश बल पक्ष कर्ण सुतङ्गम प्रगदिन् वराह कुमुद इत्येतेषां द्वन्द्वः । पुनः एते आदयः येषामिति बहुव्रीहिः, पञ्चम्याः बहुवचनम् । आदिशब्दस्य अरीहणादौ प्रत्येकमन्वयः, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् । सप्तदशप्रत्ययाः चातुरर्थ्यां यथासंख्यं अरीहणादिभ्यो भवन्तीत्यर्थः । यथा-संख्यबोधायैव कुमुदशब्दस्य द्विः पाठः सूत्रे कृतः, न तु एक[illegible] पाठो विहितः । **आरीहणकम्**-अरीहणेन निर्वृत्तम् इत्यर्थे वुञ्, युवोरनाकौ इत्य[illegible]शः आदिवृद्धिः, यस्येति च । **कार्शाश्वीयः**—कृशाश्वस्य निवासः इत्यर्थे छण्, छस्येयादेशः, आदिवृद्धिः, रपरत्वम् । अलोपः। **ऋश्यकम्**—ऋश्येन निर्वृत्तमित्यर्थे कः, तद्धितत्वाद् न ककार इत् । **कुमुदिकम्**-कुमुदैर्निर्वृत्तम् इत्यर्थे ठच्, ठस्येकः । कित्त्वाभावान्नादिवृद्धिः । **काशिलः**—काशैः निर्वृत्तः इत्यर्थे इल प्रत्ययः, यस्येति चेत्यलोपः । **तृणसम्**—तृणेन निर्वृत्तः इत्यर्थे 'स' प्रत्ययः । **प्रेक्षी**-प्रेक्षते इति प्रेक्षः, प्रेक्षा वा । प्रेक्षेण प्रेक्षया वा निर्वृत्तम् इत्यिर्थे इनिः, भत्वादलोपः, सौ, सौ चेति दीर्घः, सुलोपनलोपौ । **अश्मरः**—अश्मभिः निर्वृत्तः इत्यर्थे अश्मन् शब्दात् 'र' प्रत्ययः, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य । **साखेयम्**—सखीनां निवसनम् इत्यर्थे ढञ्, ढस्य एय्, आदिवृद्धिः, यस्येति च। **संकाशादिभ्य इति**—संकाश काम्पिल्य समीर कश्मर शूरसेन इत्यादिभ्यः ण्यो भवति चतुरर्थ्याम्। **साङ्काश्यम्**—सङ्काशात् ण्यः, आदिवृद्धिः । अलोपः । **बल्यम्**—बलेन निर्वृत्तमित्यर्थे य-प्रत्ययः। भत्वादलोपः । **पाक्षायणः**—पक्षशब्दात् फक्, आयनेयीनीयियः इति फस्यायन्नादेशः । किति चेत्यादिवृद्धिः । णत्वम् । **पान्थायनः**—पथः अदूरभवमित्यर्थे पथिन् शब्दात् फक्, फस्यायन्, पथः पन्थ चेति पन्थादेशः ।**कार्णायनिः**—कर्णशब्दात् फिञ्, फस्यायन्, कर्ण आयनि इति, आदिवृद्धिः, अलोपः । सुतङ्गम-शब्दात् इञ्, आदिवृद्धिः । **प्रागद्यः**-प्रगदिन् शब्दात् ञ्यः, ञकार इत्, आदिवृद्धिः, भत्वाट्टेर्लोपः । **वाराहकः**—वाराहंस्य निवासः इत्यर्थे कक्, आदिवृद्धिः । **कौमुदिकः**—कुमुदैर्निर्वृत्तः इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः । आदिवृद्धिः, अलोपः ।

हिन्दी

१८०३. अरीहणादिशब्दों से यथाक्रम चातुरर्थिक वुञ् इत्यादि प्रत्यय होते हैं । अर्थात् प्रथमान्त तृतीयान्त तथा षष्ठ्यन्त से पूर्वोक्त चारों अर्थों में अर्थानुसार प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८०४. जनपदे लुप्-४।२।८१।। जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ।

१८०५. लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने-१।२।५१।। लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः । पञ्चालानां निवासो जनपदः-पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । बङ्गाः । कलिङ्गाः ।

१८०६. वरणादिभ्यश्च-४।२।८२।। अजनपदार्थ आरम्भः । वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः ।

१८०७. शर्कराया वा-४।२।८३।। अस्माच्चातुरर्थिकस्य लुप्स्याद् वा ।

१८०८. ठक्छौ च-४।२।८४।। शर्कराया एतौ स्तः । कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात् पक्षे ठच्-ककौ । वाग्रहणसामर्थ्यात् पक्षे औत्सर्गिकोऽण्, तस्य लुब्विकल्पः । षड् रूपाणि । शर्करा । शार्करिकम् । शार्करम् । शर्करीयम् । शर्करिकम् । शार्करकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

जनपदे लुप्—देशे तन्नाम्नि इति यः चातुरर्थिकः प्रत्ययो भवति तस्य लुप् भवति जनपदेऽभिधेये इत्यर्थः । **लुपि युक्तवत्**—प्रकृतिभूतः शब्दः युक्त इत्युच्यते । **व्यक्तिवचने इति**—व्यक्तिः लिङ्गम्, वचनम्-संख्या च इति ज्ञायते । लुपि सति लिङ्गवचनञ्च प्रकृतिवत् भवति । अर्थात् लुपः प्राक् प्रकृतेः यल्लिङ्गं वचनञ्च ते एव लिङ्गवचने प्रत्यये लुप्तेऽपि भवतः इत्याशयः । पञ्चालाः—पञ्चालानां निवासो जनपदः इत्यर्थे पञ्चाल शब्दात् तस्य निवास इति अण्, जनपदे लुप् इति अणो लुप् । लुपि व्यक्तिवदिति प्रकृतिवत् बहुवचनम् । **एवमेव**-कुरूणाम् अङ्गानां बङ्गानां कलिङ्गानां च निवासो जनपद इत्यर्थे तस्य निवास इत्यणि, अणो लुपि प्रकृतिवद् लिङ्गवचने भवतः । **वरणादिभ्यश्च**—चातुरर्थिकस्य प्रत्यस्य लुप् भवति इत्यर्थः । **पूर्वेणैव सिद्धे किमर्थमिदमिति चेदुच्यते**—अजनपदार्थ आरम्भः इति । पूर्वेण जनपदे लुप् भवति । **वरणाः**—काश्या उत्तरतः वरणा नाम नदी । पूजार्थं बहुवचनम् । वरणानाम् अदूरभवं नगरमित्यर्थे अदूरभवश्च इति अण्, वरणादिभ्यश्चेति अणो लुप् । लुपि प्रकृतिवत् । **ठक्छौ च**—शर्कराया इत्यनुवर्तते । शर्कराशब्दात् ठक्छौ प्रत्ययौ भवतः । **कुमुदादाविति**—शर्करा-शब्दस्य कुमुदादिगणे वराहादिगणे चापि पाठो विद्यते । तत्र पाठसामर्थ्यात् कुमुदादिभ्यष्ठच् वराहादिभ्यः कक् इत्यपि प्रत्ययौ पक्षे भवतः । **वाग्रहणेति**- शर्कराया वा इत्यत्र वाग्रहण-सामर्थ्यादिति । अन्यथा कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात् प्रत्ययस्य पक्षे श्रवणं स्यादेव । एवं तर्हि एतज्ज्ञापयति यत् शर्कराशब्दात् औत्सर्गिकोऽण् भवति, तस्य शर्कराया वेति विकल्पेन लुप् । **शर्करा**—शर्करया निर्वृत्तमित्यर्थेऽण्, तस्य लुप्, लुपि व्यक्तिवदिति प्रकृति-वल्लिङ्गवचने । **शार्करमिति** लुपोऽभावे आदिवृद्धौ बोध्यम् । **शार्करिकम्**—शर्कराशब्दात् ठक्छौ चेति ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, अलोपः । छ-प्रत्यये छस्येयादेशे **शर्करीयम्** इति । कुमुदादौ पाठात् ठच्, ठस्येकः **शर्करिकम्** इति, वराहादौ पाठात् ककि आदि वृद्धौ शार्करकम् इति बोध्यम् ।

हिन्दी

१८०४. जनपद अर्थ होने पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है ।

१८०५. लुप् होने पर प्रकृति के समान लिङ्ग एवं वचन होते हैं ।

१८०६. वरणादि शब्दों से विहित चातुरर्थिक प्रत्ययों का लुप् होता है ।

१८०७. शर्करा से विहित चातुरर्थिक का लुप् होता है, विकल्प से ।

१८०८. शर्करा से चातुरर्थिक ठक् एवं छ प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८०९. नद्यां मतुप्-४।२।८५।। चातुरर्थिकः । इक्षुमती ।

१८१०. कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्-४।२।८७।।

१८११. झयः-८।२।१०।। मतोर्मस्य वः । कुमुद्वान् । नड्वान् ।

१८१२. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः-८।२।९।। मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णाऽवर्णोपधायाश्च यवादिवर्जितात् परस्य मतोर्मस्य वः । वेतस्वान् ।

१८१३. नडशादाड्ड्वलच्-४।२।८८।। नड्वलः । शाद्वलः ।

१८१४. शिखाया वलच्-४।२।८९।। शिखावलः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नद्याम् इति—नद्यां वाच्यायां चातुरर्थिको मतुप् भवतीत्यर्थः । **इक्षुमती**—इक्षवः सन्ति अस्याम् इत्यर्थे मतुप्, उपावितौ । उगित्त्वान्ङीप् । **कुमुदनडेति**—एतेभ्यो ड्मतुप् प्रत्ययो भवति चातुरर्थिकः इत्यर्थः । अयं ड्मतुप् प्रत्ययः मत्वर्थे एव भवतीति न पदान्तसूत्रे भाष्य-कैयटयोरुक्तम् । ड्मतुपि डकारः उपौ च इतः सन्ति । डिदत्र टिलोपार्थम् । **झयः**-प्रातिपदिक विशेषणात्तदन्तविधिः । मादुपधायाश्चेत्यतो "मतोर्वः" इत्यनुवर्तते । झयन्तात् मतोर्मस्य वः इति सूत्रार्थः । **कुमुद्वान्**—कुमुदाः सन्ति अस्मिन्नित्यर्थे ड्मतुप्, अनुबन्धलोपः, डित्त्वाट्टेर-कारस्य लोपे कुमुद्मत् इति, झय इति मस्य वः । सौ उगित्वान्नुमि उपधादीर्घे सुलोपे तस्य संयोगान्तलोपः । **नड्वान्**—नडाः अस्मिन् सन्ति इत्यर्थे ड्मतुप् । डित्वाट्टेर्लोपे झय इति मस्य वत्वे सौ नुमि दीर्घे सुलोपतलोपौ । **मादुपधायाश्चेति**—म् च अश्चेति समाहारद्वन्द्वे पञ्चम्येक-वचनं मात् इति । तद्आवर्तते, उपधायाश्चेत्यनेनान्वेति । मात् इति प्रातिपदिकविशेषणं, तस्मात्तदन्तविधिः, यवादिः आकृतिगणः । न यवादिः अयवादिः, तेभ्य इति । मवर्णान्तात् अवर्णान्तात् मादुपधायाः अवर्णोपधायाश्च परतो मतोर्मस्य वः स्यात् न तु यवादिभ्यः । **वेतस्वान् इति**—वेतसाः सन्ति अस्मिन्नित्यर्थे ड्मतुप्, डित्त्वाट्टेरकारस्य लोपः । मादुपधायाश्चेति मस्य वः, वेतस्वत् इति, सौ वेतस्वानिति । अत्र ससजुषो रुः इति सस्य रुत्वं न भवति, अल्लोपस्य स्थानिवद्भावात् । न पदान्तेति स्थानिवद्भावनिषेधस्तु न शङ्क्यः, पदे अन्तः पदान्त इति विग्रहेण पदे परतः चरमावयवे कर्तव्ये न स्थानिवत् इत्यर्थ स्वीकारात्। **नड्वलः**—नडाः सन्ति अस्मिन् इति ड्वलच् । डित्त्वाट्टेर्लोपः । शादाः सन्ति अस्मिन्निति शाद्वलः इति । **शिखाया वलच्**—शिखाशब्दात् चातुरर्थिकः वलच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । शिखा अस्ति अस्मिन् इत्यर्थे शिखाशब्दात् वलच् । शिखावल इति, मयूरः इत्यर्थः ।

हिन्दी

१८०९. नदी वाच्य होने पर चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय होता है ।

१८१०. कुमुद नड एवं वेतस से चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय होता है ।

१८११. झयन्त से परे मतुप् के म् को व् होता है ।

१८१२. मकारान्त अकारान्त तथा मवर्णोपध व अवर्णोपध से परे मतुप् के म् को व् होता है, यवादि से परे नहीं ।

१८१३. नड एवं शाद से चातुरर्थिक ड्वलच् प्रत्यय होते हैं ।

१८१४. शिखा शब्द से चातुरर्थिक वलच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८१५. उत्करादिभ्यश्च-४।२।९०।। उत्करीयः ।

१८१६. नडादीनां कुक् च-४।२।९१।। नडकीयम् ।

ग. सू. क्रुञ्चा ह्रस्वत्वञ्च ।। क्रुञ्चकीयः ।

ग. सू. तक्षन् नलोपश्च । तक्षकीयः ।

।। इति चातुरर्थिकाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

उत्करादिभ्य इति—उत्करादिगणपठितेभ्यः चातुरर्थिकः छ-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **उत्करीयः**- उत्करीयो देशविशेषः । उत्कराः सन्ति अस्मिन्, उत्करेण निर्वृत्तम्, उत्कराणां निवासः, उत्कराणाम् अदूरभवः इत्येतेषु चतुरर्थेषु छः, छस्येयादेशः, यस्येति चेत्यलोपः । **नडादीनाम्**- नडादिभ्यः चातुरर्थिकः छः प्रकृतेः कुक् इत्यागमश्च भवतीत्यर्थः । **नडकीयम्**—नडाः सन्ति अस्मिन्, नडानां निवासः इत्यादिष्वर्थेषु छः, कुगागमश्च, छस्येय्, नडकीय इति, सौ रूपम् । **क्रुञ्चेति**—क्रुञ्चाशब्दाच्छः, कुगागमः, आकारस्य ह्रस्वत्वं च भवतीत्यर्थः । **क्रुञ्चकीयः इति**- क्रुञ्चाः सन्ति अस्मिन् इत्यर्थे छः, कुक्, आकारस्य ह्रस्वश्च । छस्येयादेशः । **तक्षन्नलोपश्चेति**- तक्षन्शब्दात् छप्रत्ययः कुक् तक्ष्णो नस्य लोपश्च भवतीत्यर्थः । **तक्षकीयः**—तक्ष्णां निवासः, तक्षाणः सन्ति अस्मिन् इत्यर्थे वा छः, कुक्, नलोपः, छस्येय्, तक्षकीय इति, सोरम् ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यां चातुरर्थिकाः ।।

हिन्दी

१८१५. उत्करादिगण पठित से चातुरर्थिक छ प्रत्यय होता है ।

१८१६. नडादिशब्दों से चातुरर्थिक छ प्रत्यय एवं प्रकृति को कुक्-आगम होता है ।

ग. सूत्र. क्रुञ्चा से चातुरर्थिक छप्रत्यय कुक् का आगम एवं आकार को ह्रस्व होता है ।

ग. सूत्र. तक्षन् से चातुरर्थिक छ प्रत्यय कुक् का आगम एवं तक्षन् के न् का लोप होता है।

।। इति चातुरर्थिकाप्रकरण ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ शैषिकाः

१८१७. शेषे-४।२।९२॥ अपत्यादिचातुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते-चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टाः दार्षदाः सक्तवः। उलूखले क्षुण्णः औलूखलो यावकः। अश्वैरुह्यते आश्वो रथः। चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

१८१८. राष्ट्रावारपाराद्घखौ-४।२।९३॥ आभ्यां घ-खौ स्तः। राष्ट्रे जातादि राष्ट्रियः। अवारपारीणः।

वा. अवारपारविगृहीतादपि ॥ अवारीणः। पारीणः।

वा. विपरीताच्चेति वक्तव्यम् ॥ पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युटयुलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते। तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थ-विभक्तयश्च वक्ष्यन्ते।

मध्यमनोरमापूरणी

शेषे—अधिकारोऽयम्। इत ऊर्ध्वं ये प्रत्ययाः वक्ष्यन्ते ते शेषेऽर्थे ज्ञातव्याः। कश्च शेषोऽर्थ इति जिज्ञासायामुक्तम्-**अपत्यादिचातुरर्थ्यन्ताद्** इत्यादि। तस्य विकार इत्यतः प्राक् शेषाधिकारो वर्तते। अथ शेषे इति उत्तरसूत्रेऽनुवृत्त्यर्थमप्यस्ति स्वरितत्वादिति सिद्धान्तकौमुद्यां "शेषे" इति लक्षणं चाधिकारश्च" इत्यनेनोक्तम्। एवञ्च शेषे अणादयः साधारणप्रत्ययाः स्युरित्यर्थः सम्पद्यते। **चाक्षुषम्**—ग्रहणेऽर्थे चक्षुष्शब्दात् अण् आदिवृद्धिः। श्रवणाभ्यां गृह्यते इत्यर्थे श्रवणात् अण्, आदिवृद्धिः। उपनिषद् शब्दादणि **औपनिषदः** इति। **दार्षदाः-दृषदि**=शिलायां, पिष्टाः इत्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः। **औलूखलः-यावकः**—उलूखलात् अण् क्षुण्णेऽर्थे, आदिवृद्धिः। यावकः यवैर्निर्मित आहारः। **आश्वः**—वाहनेऽर्थे अश्वादण्, आदिवृद्धिः। **चातुरम्**—वाहनेऽर्थे एव चतुर्-शब्दादणि आदिवृद्धिः। **चातुर्दशं रक्षः**—दर्शनेऽर्थे चतुर्दशीशब्दात् अण्, आदिवृद्धिः। भत्वादीकारलोपः। "कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ रक्षांसि दृश्यन्ते" इत्यागमवचनम्। **राष्ट्रावारेति**-शेषेऽर्थे=जातः, भवः, इत्याद्यर्थे राष्ट्रशब्दात् अवारपारशब्दाच्च क्रमशः घखौ प्रत्ययौ भवत इत्यर्थः। **राष्ट्रियः**—राष्ट्रे जातः, भवो वेत्याद्यर्थे राष्ट्रावारपाराद् घखौ इति घ-प्रत्ययः, आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति घस्य इय्, भत्वादलोपः। अवारपारे जातः इत्यर्थे खः, आयनेयीति खस्येनादेशः, यस्येति च। अट्कुप्वाङिति णत्वम्। **विगृहीतादपि**—पृथग्भूतात् अवारात् पाराच्च खप्रत्ययो भवतीत्याशयः। अवारे भव इत्यर्थे पारे भव इत्यर्थे च खः, खस्येनादेशः, णत्वम्। **विपरीताच्चेति**—पारावार इत्यस्मादपि खः प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **पारावारीणः**—पारावारे भव इत्यर्थे खः, ईनादेशः। णत्वम्। ननु राष्ट्रावारादिसूत्रेभ्यः शेषे प्रकृतिविशेषोपादानमात्रेण प्रत्यया उच्यन्ते, न तेषां प्रत्ययानामर्थ-विशेषा उच्यन्ते, यथा तस्या-

हिन्दी

१८१७. इससे आगे विधीयमान अणादि प्रत्यय अपत्यादि से चातुरर्थ्यन्तप्रत्ययार्थ से भिन्न अर्थ में विहित हों, और वे शेष हैं ऐसा समझें।

१८१८. राष्ट्र और अवारपार शब्द से शेष अर्थ में क्रमशः घ एवं ख प्रत्यय होते हैं।

वा. पृथग्भूत अवार एवं पार से भी ख प्रत्यय होता है।

वा. विपरीत पारावार से भी ख प्रत्यय होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८१९. ग्रामाद् यखञौ-४।२।९४॥ ग्राम्यः । ग्रामीणः ।
१८२०. नद्यादिभ्यो ढक्-४।२।९७॥ नादेयम् । माहेयम् ।वाराणसेयम् ।
१८२१. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्-४।२।९८॥ दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्यः।
१८२२. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्-४।२।१०१॥ दिव्यम् । प्राच्यम् । अवाच्यम्। उदीच्यम् ।
१८२३. अव्ययात्त्यप्-४।२।१०४॥
वा. अमेहक्वतसित्रेभ्य एव ॥ अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः।
वा. त्यब्नेर्ध्रुव इति वाच्यम् ॥ नित्यः ।

मध्यमनोरमापूरणी

पत्यमित्यादौ निर्दिष्टाः इति प्रश्ने उच्यते—इह प्रकृतिविशेषाद् इत्यादिं । **तेषामिति**—तेषां जातादयः अर्थाः "तत्र जातः" इत्यादिसूत्रेषु वक्ष्यन्ते । **समर्थविभक्तयश्चेति**—समर्थानां प्रथमाद्वेतिसूत्रेण सह तत्र जातः इत्यादीनामेकवाक्यत्वे जाते सति प्रथमोच्चारिततत्तद्-विभक्त्यन्तेभ्यः प्रत्ययाः भवन्तीति ज्ञायते ज्ञास्यते चेति भावः । **ग्रामाद् इति**—शेषेऽर्थे यखञौ भवत इत्यर्थः । **ग्राम्यः**—ग्रामे जातः इत्यर्थे य-प्रत्ययः, यस्येति च । ग्रामीण इत्यत्र खञ्, खस्येनादेशे णत्वं बोध्यम् । **नद्यादिभ्य इति**—जाताद्यर्थे नद्यादिगणपठितेभ्यः ढक् भवतीत्यर्थः। **नादेयम्**—नद्यां जातमित्यर्थे नदीशब्दाड्ढकि ढस्य एय्, आदिवृद्धिः, यस्येति च । **माहेयम्**—मह्यां भवम्-इत्यर्थे ढक्, ढस्य एय्, आदि-वृद्धिः, ईलोपः । **वाराणस्यां** जातमित्यर्थे ढकि वाराणसेयम् इति । **दाक्षिणात्यः**—दक्षिणा इत्यजन्तादव्ययात् तत्र जातः इत्यर्थे दक्षिणा-पश्चात् इति त्यक्, कित्त्वादादिवृद्धिः । **पाश्चात्यः**—पश्चात् भवः, जातो वेत्यर्थे त्यक्, किति चेत्यादिवृद्धिः । पुरः भवो जातो वेत्यर्थे त्यक्, आदिवृद्धौ **पौरस्त्य इति** । **द्युप्रागेति**—दिव् प्राञ्च् उदञ्च् प्रत्यञ्च् इत्येतेभ्यो यत् स्याच्छैषिकः । **दिव्यम्**—दिवि जातमित्यर्थे यत् । **प्राच्यम्**-प्राचि भागे जातमित्यर्थे प्राञ्चि इत्यस्मात् द्युप्रागपागुदक् इति यत्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदि-कत्वात् सुपो लुकि प्रअञ्च् य इति जाते अनिदितां हल उपधाया इति नलोपे अचः इति अकार-लोपः, चौ इति दीर्घः, प्राच्यम् इति । अवाञ्चि जातमित्यर्थे यत्, शेषं पूर्ववत् । **उदीच्यम्**—उदीचि जातादीत्यर्थे यत्, नलोपः, उद ईत् इति अस्येत्त्वम् । **अव्ययात् त्यप्**—अमा इह क्व तसि त्र इत्येभ्यः एव अव्ययेभ्यः शेषे त्यप् भवतीत्यर्थः । **अमात्यः**—अमा समीपेऽथवा तस्यां जात इत्यर्थे त्यप् । **त्यब्नेर्ध्रुव इति**—नि इत्यव्ययात् ध्रुवेऽर्थे त्यप् भवतीत्यर्थः । **नित्यः**—निइत्यव्ययात् त्यप् ।

हिन्दी

१८१९. ग्राम से शेष अर्थ में य एवं खञ् प्रत्यय होता है ।
१८२०. नद्यादिगण पठित से जातादि शेष अर्थ में ढक् होता है ।
१८२१. दक्षिणा पश्चात् एवं पुरस् से जाताद्यर्थ में त्यक् प्रत्यय होता है ।
१८२२. दिव् प्राञ्च् उदञ्च् अपाञ्च् प्रत्यञ्च् इन सबों से यत् होता है ।
१८२३. अव्यय से त्यप् होता है ।
वा. अमा इह तसि एवं त्र इन अव्ययों से ही त्यप् होता है ।
वा. नि-अव्यय से ध्रुव अर्थ में त्यप् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. निसो गते ॥

१८२४. ह्रस्वात्तादौ तद्धिते८।३।१०१॥ ह्रस्वादिणः सस्य षस्तादौ तद्धिते । निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यः निष्ट्यः, चाण्डालादिः ।

वा. अरण्याण्णः ॥ आरण्याः सुमनसः ।

वा. दूरादेत्यः ॥ दूरेत्यः । वा. उत्तरादाहञ् ॥ औत्तराहः ।

१८२५. ऐषमो ह्यः श्वसोऽन्यतरस्याम्-४।२।१०५॥ एभ्यस्त्यब्वा । पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्युट्युलौ । ऐषमस्त्यम् । ऐषमस्तनम् । ह्यस्त्यम् । ह्यस्तनम् । श्वस्तनम्। श्वस्त्यम् । पक्षे शौवस्तिकं वक्ष्यते ।

१८२६. वृद्धाच्छः-४।२।११४॥ शालीयः । मालीयः ।

१८२७. त्यदादीनि च-१।१।७४॥ वृद्धसंज्ञानि स्युः । तदीयः ।

मध्यमनोरमापूरणी

निसो गते—निस् इत्यव्ययात् गतेऽर्थे त्यप् स्यात् । **ह्रस्वात्तादौ**—इण्कोः इत्यतः इण् इत्यनुवर्तते, सहेः साडः सः इत्यतः 'सः' इति, अपदान्तस्य मूर्धन्यः इति चानुवर्तते । **अत आह**-ह्रस्वादिण इत्यादि । **निष्ट्यः**—निर्गतो वर्णाश्रमेभ्य इत्यर्थे निस् शब्दात् त्यप्, ह्रस्वात्तादौ इति षः, ष्टुना ष्टुरिति तस्य टः । **आरण्यः**—अरण्ये भवाः इत्यर्थे अरण्याण्णः इति णः, आदिवृद्धिः, अलोपः । **दूरेत्यः इति**—दूरे भवः दूरात् आगतो वेत्यर्थे दूरादेत्य इति एत्यः, भत्वादलोपः। दूरात् इत्यव्ययात् एत्यप्रत्यये तु अव्ययानां भमात्रे टिलोपः इति आतो लोपोः बोध्यः । **ऐषमो ह्य इति**—ऐषमस् ह्यस् श्वस् इत्येतेभ्यो जाताद्यर्थे त्यप् भवति विकल्पेन । **पक्षे वक्ष्यमाणौ इति**—सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् चेत्यनेनेत्यर्थः । **ऐषमस्त्यम्**—ऐषमस् इति वर्तमानसंवत्सरवाचकमव्ययम्, तत्रभवमित्यर्थे त्यप् । **ऐषमस्तनम्**—पक्षे ट्युः अथवा ट्युल्, टलौ इतौ । योरनादेशः, तुडागमश्च । **ह्यस्त्यम्**—ह्यस् इत्यव्ययं विगते दिने वर्तते । तस्मात् त्यप् । पक्षे ट्युः, तुडागमः, योरनादेशः, ह्यस्तनम् इति । **श्वस्त्यम्-श्वस्तनम्**—श्वस् इत्यव्ययम् आगामिनि दिवसे वर्तते, तस्मात् त्यप्, पक्षे ट्युः, तुडागमः । सर्वत्र 'तत्र भवम्' इत्यर्थो ज्ञेयः । **शौवस्तिकमिति**—श्वसस्तुट् च इति ठञ्, तुडागमः, ठस्येकः, द्वारादीनाञ्चेति वकारात् पूर्वम् ऐच्, शौवस्तिक इति, सोरम् । शालीयः—शालायां जात इत्यर्थे वृद्धाच्छः इति छः, छस्य ईय्, अलोपः । **तदीयः**—तस्माज्जाताद्यर्थे वृद्धाच्छः, त्यदादीनि चेति तद् इत्यस्य वृद्धसंज्ञात्वात् । छस्येय्, अलोपः ।

हिन्दी

वा. निस्-अव्यय से गत अर्थ में त्यप् होता है ।

१८२४. ह्रस्व इण् से परे स् को ष होता है तादि तद्धित परे रहते ।

वा. अरण्य से जातादि अर्थ में ण-प्रत्यय होता है ।

वा. दूर या दूरात् से एत्य प्रत्यय होता है ।

१८२५. ऐषमस् ह्यस् एवं श्वस् से जातादि अर्थ में त्यप् होता है विकल्प से ।

१८२६. वृद्धसंज्ञक से जाताद्यर्थ में छ प्रत्यय होता है ।

१८२७. त्यदादिगण पठित को वृद्धसंज्ञा होतीं है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा ॥ देवदत्तीयः, दैवदत्तः ।

१८२८. भवतष्ठक्छसौ-४।२।११५॥ वृद्धाद् भवत एतौ स्तः । भावत्कः । ॥सिति च ॥ सिति तद्धिते पूर्वं पदं स्यात् । जश्त्वम् । भवदीयः । वृद्धादित्यनुवृत्तेः शत्रन्तादणेव-भावतः ।

१८२९. काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ-४।२।११६॥ इकार उच्चारणार्थः । काशिकी, काशिका । वैदिकी, वैदिका । ग. सू. आपदादिपूर्वपदात् कालान्तात् ॥ आपदादिराकृतिगणः । आपत्कालिकी, आपत्कालिका ।

१८३०. धन्वयोपधाद् वुञ्-४।२।१२१॥ धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ् स्यात् । ऐरावतं धन्व ऐरावतकः । सांकाश्यकाम्पिल्यशब्दौ वुञ्छणादिसूत्रेण ण्यान्तौ । साङ्काश्यकः । काम्पिल्यकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

देवदत्तीयः—वा नामधेयस्येति वृद्धसंज्ञत्वात् छः, छस्येय्, अलोपः । पक्षेऽण्, आदिवृद्धिः, दैवदत्तः । **भवत इति**—वृद्धात् भवच्छब्दात् ठक् छस् च प्रत्ययौ भवतः । छस् इति सित्करणं पदसंज्ञार्थम् । **भावत्कः**—भवतः अयमित्यर्थे ठक्, इसुसुक्तान्तात् कः इति ठस्य कादेशः, आदिवृद्धिः । **भवदीयः**—भवत् इत्यस्मात् छस्, छस्येय्, सिति चेति भवत् इत्यस्य पदत्वम्, झलां जशोऽन्त इति तस्य जश्त्वेन दः । **भावतः**—भूधातोः शतृ प्रत्यये भवत् इति, तस्य वृद्धसंज्ञात्वाभावात् न ठक्छसौ, अपि तु अणेव भवति । **काश्यादिभ्यः इति**—ठञ् ञिठश्च प्रत्ययौ भवतः । ञिठ इत्यस्मिन् इकार उच्चारणार्थः, ञकारः इत्, ञित्स्वरार्थम् । **काशिकी**-काश्यां भवा इत्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, भत्वादीलोपः । ठञन्तात् काशिक इत्यस्मात् टिड्ढाणञ् इति ङीप् । ञिठपक्षे अजाद्यतष्टाप्, काशिका इति । **वैदिकी वैदिकेति**-वेदि शब्दात् ठञि इकादेशे ङीप्, ञिठपक्षे टाप् । उभयत्र आदिवृद्धिः । **आपदादि इति**—आपत् आदिर्यस्येति आपदादिः, तत्पूर्वकात् कालान्तात् ठञ् ञिठौ भवतः इत्यर्थः । **आपत्कालिकी**—आपत्काले जातादिः इत्यर्थेः ठञ्, इकादेशः, ङीप् । **ञिठपक्षे टाप्**—आपत्कालिका इति । **धन्वेति**- धन्व मरुप्रदेशः । "समानौ मरुधन्वानौ" इत्यमरः । **ऐरावतकः**—ऐरावत् नामके मरुप्रदेशे जातः इत्यर्थे वुञ्, वोरकादेशः । **सांकाश्यकः**—सांकाश्ये भवः इत्यर्थे धन्वयोपधादिति वुञ्, युवोरनाकौ । काम्पिल्ये भवः **काम्पिल्यकः** इत्यपि योपधस्योदाहरणम् ।

हिन्दी

वा. नामवाचक को विकल्प से वृद्ध संज्ञा होती है ।

१८२८. वृद्धसंज्ञक भवत् से शेष अर्थ में ठक् व छस् प्रत्यय होते हैं ।

१८२९. काश्यादिगण पठित से जातादि अर्थ में ठञ् एवं ञिठ प्रत्यय होते हैं ।

ग. सू. आपदादिपूर्वपद युक्त कालान्त शब्द से ठञ् एवं ञिठ प्रत्यय होते हैं ।

१८३०. धन्ववाची एवं योपध वृद्धसंज्ञक शब्द से शैषिक "वुञ्" प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८३१. नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः-४।२।१२८।। कुत्सिते प्रावीण्ये च नगरशब्दात् वुञ् स्यात् । नागरकश्चौरः शिल्पी वा । एतयोः किम्-नागरा ब्राह्मणाः।

१८३२. अरण्यान्मनुष्ये-४।२।१२९।। वुञ् स्यात् । औपसंख्यानिकणस्यापवादः । वा. पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम् । आरण्यकः पन्थाः अध्यायो न्यायो विहारो मनुष्यो हस्ती वा ।

१८३३. गर्तोत्तरपदाच्छः-४।२।१३७।। देश इत्येव । वृकगर्तीयम् ।

१८३४. गहादिभ्यश्च-४।२।१३८।। गहीयः ।

१८३५. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च-४।३।१।। चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकं वाऽयं युष्मदीयः । अस्मदीयः ।

१८३६. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ-४।३।२।। युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नगरादिति—वुञ् इत्यनुवर्तते । कुत्सनं निन्दा । प्रावीण्यं नैपुण्यम् । **नागरकः**—नगरे जातः इत्यर्थे कुत्सने गम्ये वुञ्, वोरकादेशः, आद्यचो वृद्धिः, अल्लोपः । चोर इत्यर्थः । प्रावीण्ये नागरकः शिल्पी इति । **एतयोः किम्**—कुत्सनप्रावीण्ययोरभावे **नागराः** इत्यत्र अणेव भवति। **अरण्यान् मनुष्ये-पथ्यध्यायन्यायेति**—अरण्यशब्दात् पथिन् अध्याय न्याय विहार मनुष्य हस्तिन् इत्येतेषु अभिधेयेषु शैषिकः वुञ् भवतीत्यर्थः । **आरण्यकः**—अरण्ये जातः इत्यर्थे वुञ्, युवोरनाकौ, आदिवृद्धिः, अलोपः । मनुष्यादिः अर्थः । **गर्तोत्तरेति**—गर्तोत्तरपदात् देशवाचिनः प्रातिपदिकाच्छः स्यादित्यर्थः । **वृकगर्तीयः**—वृकगर्तो नाम देशः, तत्र जातः इत्यर्थे छः, छस्येयादेशः । **गहादिभ्यश्च**—देशवाचिनः इति योज्यम् । गहो नाम देशः, तत्र भवः इत्यर्थे छः, ईय् । गहीयइति । **युष्मदस्मदोरिति**—देश इति निवृत्तम् । पञ्चम्यर्थे युष्मदस्मदोरित्यत्र षष्ठी । आभ्यां जाताद्यर्थेषु खञ् प्रत्ययो भवति शैषिकः, चात् छ-प्रत्ययश्च विकल्पेन । अन्यतरस्यां ग्रहणात् यथा प्राप्तमण्, इति त्रयो भवन्ति प्रत्ययाः । **युष्मदीयः**—युवयोः युष्माकं वायमित्यर्थे छः, छस्येयादेशः । सुपो लुकि जाते युव इत्यस्य निवृत्तिः जाता । आवयोरस्माकं वा अयम् **अस्मदीयः** इति । **तस्मिन्नणि च**—तस्मिन् इत्यनेन पूर्वशब्दनिर्दिष्टः खञ् गृह्यते। **यौष्माकीणः**—युवयोर्युष्माकं वा अयमित्यर्थे खञि खस्य ईनादेशे तस्मिन्नणि चेति युष्माक आदेशे आदिवृद्धौ अलोपे णत्वम् । अणि तु **यौष्माकः आस्माक इति**-आदिवृद्धिः,अलोपः ।

हिन्दी

१८३१. निन्दा एवं प्रावीण्य अर्थ गम्य होने पर गर शब्द से शैषिक "वुञ्" प्रत्यय होता है ।

१८३२. अरण्य से जाताद्यर्थ में मनुष्य पन्था अध्याय न्याय विहार एवं हस्ती अभिधेय होने पर वुञ् प्रत्यय होता है ।

१८३३. गर्त्तोत्तरपददेशवाची से शैषिक छ प्रत्यय होता है ।

१८३४. गहादिगण पठित देशवाची से शैषिक छ-प्रत्यय होता है ।

१८३५. युष्मद् एवं अस्मद् से जातादि अर्थों में खञ् एवं छ प्रत्यय होते हैं ।

१८३६. खञ् एवं अण् प्रत्यय परे रहते युष्मद् एवं अस्मद् को क्रमशः युष्माक एवं अस्माक आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८३७. तवकममकावेकवचने-४।३।३।।
एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च । तावकीनः । तावकः। मामकीनः । मामकः । छे तु-
१८३८. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च-७।२।९८।। मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये, उत्तरपदे च । त्वदीयः मदीयः । त्वत्पुत्रः । मत्पुत्रः ।
१८३९. मध्यान्मः-४।३।८।। मध्यमः ।
१८४०. असाम्प्रतिके-४।३।९।। मध्यशब्दात् अ-प्रत्ययः साम्प्रतिके अर्थे । उत्कर्षापकर्षहीनो मध्यो वैयाकरणः । मध्यं दारु । नातिह्रस्वं नातिदीर्घमित्यर्थः।
१८४१. द्वीपादनुसमुद्रं यञ्-४।३।१०।। समुद्रसमीपे यो द्वीपस्तद्विषयाद् द्वीपशब्दाद्यञ् स्यात् । द्वैप्यम् । द्वैप्या ।

मध्यमनोरमापूरणी

तवकममकाविति—युष्मदस्मदोरित्यनुवर्तते । एकवचने इति युष्मदस्मदोः प्रकृत्योर्विशेषणम् । **अत उक्तम्**—एकार्थवाचिनोरित्यादि । **तावकीनः-मामकीन इति**—तव मम वा अयमित्यर्थे युष्मदस्मदोरन्यतरस्यामिति खञ्, आयनेयीनीयिय इति खस्य ईनादेशः । युष्मदस्मदोः तवकममकौ क्रमशः भवतः । आदिवृद्धिः, अलोपः । अणि तु **तावकः मामकः** इति । छप्रत्यये कृते तु **प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति**—युष्मदस्मदोरिति तवकममकावित्यत एकवचने इति चानुवर्तते । मपर्यन्तस्येत्यधिकारः । **तदाह**—मपर्यन्तयोरित्यादि । **त्वदीयः-मदीयः**— तव मम वा अयमित्यर्थे छप्रत्यये छस्येयादेशे, प्रातिपदिकत्वात् सुपो धातुरिति सुपो लुकि तवममादेशयोर्निवृत्तौ युष्मद्ईय अस्मद् ईय इति जाते प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति मपर्यन्तस्य त्व म इत्यादेशे पररूपे च कृते सिद्धं रूपम् । तव पुत्रः मम पुत्र इति समासे सति पुत्र शब्दे उत्तरपदे परेऽपि त्वमादेशौ । त्वत्पुत्र मत्पुत्र इति भवति । **मध्यमः**—मध्ये जातः इत्यर्थे मध्यान्म इति मप्रत्ययः । **अ साम्प्रतिके**—मध्यात् इत्यनुवर्तते । अ इति लुप्तप्रथमाकं रूपम्। 'सम्प्रति' इति शब्दः उत्कर्षापकर्षहीनत्वात्मकसाम्येऽस्ति । सम्प्रतिशब्दाट्ठकि साम्प्रतिक इति भवति । **अत उक्तम्**—मध्यशब्दादित्यादि । मध्ये भवः इत्यर्थे अप्रत्यये भत्वादलोपः । दारुविशेषणात् **मध्यमिति** नपुंसकं ज्ञेयम् । अत्र साम्येऽर्थे मध्यः मध्यम् इति वा रूपं विद्यते। **द्वीपादिति**—अनुसमुद्रमित्यत्र सामीप्येऽव्ययीभावसमासोऽस्ति । सप्तम्यन्तं रूपमिदम् । नाव्ययीभावादित्यम् । "विद्यमानात्" इत्यध्याहार्यम् । समुद्रसमीपे विद्यमानात् द्वीपाद् यञ् स्यादित्यर्थः । **द्वैप्यम्**—समुद्रसमीपे द्वीपे जातमित्यर्थे यञ्, आदिवृद्धिः, अलोपः । स्त्रियां टापि कृते द्वैप्या इति ।

हिन्दी

१८३७. एकार्थवाचक युष्मद् व अस्मद् के स्थान पर तवक एवं ममक आदेश होता है खञ् एवं अण् प्रत्यय परे रहते ।
१८३८. एकार्थवाची युष्मद् एवं अस्मद् के मपर्यन्त भाग को त्व एवं म आदेश होता है प्रत्यय परे व उत्तरपद परे ।
१८३९. मध्य शब्द से शैषिक 'म' प्रत्यय होता है ।
१८४०. साम्प्रतिक अर्थ (साम्य) में मध्य शब्द से अ-प्रत्यय होता है ।
१८४१. समुद्र के समीप विद्यमान द्वीप शब्द से जाताद्यर्थ में यञ् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८४२. कालाट्ठञ्-४।३।११॥ कालिकम् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् ।
वा. अव्ययानां भमात्रे टिलोपः ॥ सायंप्रातिकः । पौनःपुनिकः । कथं तर्हि "शार्वरस्य तमसो निषिद्धये" इति कालिदासः । "अनुदितौषसरागः" इति भारविः। समानकालीनं प्राक्कालीनमित्यादि च । अपभ्रंशा एव इति प्रामाणिकाः । तत्र जात इति यावत् कालाधिकारः ।
१८४३. श्राद्धे शरदः-४।३।१२॥ ठञ् स्यात् । ऋत्वणोऽपवादः । शरदि भवं-शारदिकं श्राद्धम् ।
१८४४. विभाषा रोगातपयोः-४।३।१३॥ शारदिकः शारदो वा रोग आतपो वा।
१८४५. निशाप्रदोषाभ्याञ्च-४।३।१४॥ ठञ् वा । नैशिकम्, नैशम् । प्रादोषिकम्, प्रादोषम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

कालाट्ठञ्—कालशब्दोऽत्र कालविशेषवाचकानां ग्राहकः । कालवाचकेभ्यः शैषिकः ठञ् भवतीत्यर्थः । **कालिकम्**—काले भवमित्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः। सम्वत्सरे भवं मासे भवं **साम्वत्सरिकं मासिकमिति** बोध्यम् । **सायंप्रातिकः**—सायंप्रातर्भव इत्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, भत्वाद् 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' इति प्रातर् इत्यस्य टेर्लोपः । पुनः-पुनः भवः इत्यर्थे ठञि ठस्येकः इति इकादेशः, आदिवृद्धौ अव्यानामिति टिलोपः, **पौनःपुनिक** इति भवति । **कथं तर्हि इति**—शर्वरी शब्दस्य कालवाचित्वात् ठञि शार्वरिकम् इति भाव्यमिति प्रश्नः । उषस्-शब्दात् ठञि औषसिक इत्यनेन भाव्यं न तु औषस इत्यणन्तेन भाव्यमिति प्रश्नः । एवमेव समानकालिकं प्राक्कालिकमिति स्यात् इति प्रश्नः । **तत्रोत्तरम्**—अप्रभंशा एवेति प्रामाणिकाः कथयन्ति । **ऋत्वणोऽपवादः इति**—शरच्छब्दस्य कालवाचित्वा-त्कालाट्ठञ् इत्येव सिद्धे किमर्थं श्राद्धे शरदः इति सूत्रमिति चेद् ? **उच्यते**—सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् इत्यस्य बाधनार्थमेतत् । **शारदिकं श्राद्धम्**—शरदि भवं श्राद्धमित्यर्थे श्राद्धे शरदः इति ठञ् । ठस्येकादेशः, आदिवृद्धिः । अत्र कालाट्ठञ् इति सूत्रं प्रबाध्य सन्धिवेलाद्यृतु इत्यनेन अण् प्राप्तः, अणमपि प्रबाध्यानेन ठञ् भवति । **विभाषारोगेति**—'श्राद्धे शरद' इत्यतः शरदः इति कालाट्ठञ् इत्यतश्च ठञिति अनुवर्तते । **शारदिकः शारद इति**—शरदि भवो रोगः आतपो वेत्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, तद्धितेष्वचामादेरित्यादिवृद्धिः । पक्षे शेषेऽण्। **नैशिकम्-नैशमिति**—निशायां जातमित्यर्थे कालाट्ठञ् इति नित्ये ठञि प्राप्ते तद् प्रबाध्य निशा-प्रदोषामिति विकल्पेन ठञि इकादेशे आद्यचो वृद्धौ यस्येति चेत्यालोपः । ठञोऽभावे अणि तु **नैशम्** इति । एवमेव प्रदोषे भवं प्रादोषिकम् इति ठञि कृते रूपम्, अणि तु प्रादोषम् इति।

हिन्दी

१८४२. कालवाची से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है । वा. अव्ययवाचक पदों की टि का भसंज्ञा मात्र होने पर लोप हो जाता है ।

१८४३. श्राद्ध अर्थगम्य होने पर शरद् से जाताद्यर्थ में ठञ् होता है ।

१८४४. शरद् शब्द से रोग एवं आतप अर्थ गम्य होने पर शैषिक ठञ् होता है ।

१८४५. निशा एवं प्रदोष से शैषिक ठञ् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८४६. श्वसस्तुट् च-४।३।१५॥ श्वसष्ठञ् वा तुट् च ।

१८४७. द्वारादीनाञ्च-७।३।४॥ एषां न वृद्धिरैजागमश्च । शौवस्तिकम् ।

१८४८. सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्-४।३।१६॥ सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम् । ग्रैष्मम् । सन्धिवेला । सन्ध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी। पौर्णमासी। प्रतिपद्।

१८४९. प्रावृष एण्यः-४।३।१७॥ प्रावृषेण्यः ।

१८५०. वर्षाभ्यष्ठक्-४।३।१८॥ वर्षासु साधु वार्षिकं वासः ।

१८५१. सर्वत्राण् च तलोपश्च-४।३।२२॥ हेमन्तादण् तलोपश्च वेदलोकयोः । चकारात् पक्षे ऋत्वण् । हेमन्ते भवं हैमनम्, हैमन्तं वा वसनम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

श्वसस्तुट् चेति—विभाषा इति ठञ् इति चानुवर्तते । **द्वारादीनाञ्च**—न य्वाभ्यामिति सूत्रं "पदान्ताभ्यामिति" परित्यज्यानुवर्तते । मृजेर्वृद्धिरित्यतो वृद्धिरिति च । अत उक्तम् एषामिति। **शौवस्तिकम्**—श्वो भवमित्यर्थे श्वस् शब्दात् ठञ्, तुडागमश्च, ठस्येकः, श्वस्त् इक इति, द्वारादीनाञ्चेति ऐजागमे शौवस्तिक इति, सोरम् । **सन्धिवेलाद्यृतु इति**—कालाट्ठञ् इत्यतः 'कालात्' इत्यनुवर्तते । सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः कालवृत्तिभ्यः अण् स्यादित्यर्थः । **सान्धि वेलम्**-सन्धिवेलायां भवमित्यर्थेऽण्, आद्यचो वृद्धिः, भत्वादाकारलोपः । **ग्रैष्मम्**—ग्रीष्मे जातमित्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । संध्यायां भवं सान्ध्याम्, अमावास्यायां भवम् अमावास्यम् त्रायोदशमित्याद्यपि साध्यम् । **प्रावृष एण्यः**-सन्धिवेलाद्यृतु इत्यणोऽपवादः। शैषिक एण्यप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **प्रावृषेण्यः**—प्रावृषि भवः इत्यर्थे एण्य प्रत्ययः । प्रावृष् शब्दो वर्षर्तुवाचकः । **वर्षाभ्यष्ठक्**—वर्षाशब्दात् जाताद्यर्थे ठक् स्यादित्यर्थः । **वार्षिकम्**—वर्षासु साधु इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, आलोपः । तत्र साधु इत्यर्थो यद्यपि शैषिकात् बहिर्भूतस्तथापि कालात् साधुपुष्प्यत् पच्यमानेषु इति अर्थनिर्देशात् साध्वर्थेऽपि ठक् शैषिको भवति । **सर्वत्राण्**—हेमन्ताच्चेत्यत हेमन्ताद् इत्यनुवर्तते । सर्वत्र=वेदे लोके चेति । **अत उक्तम्**—हेमन्तादण् इत्यादि । **हैमनम्**—हेमन्ते भवमित्यर्थे सर्वत्राण् चेति अण्, तकारस्य लोपश्च जातः, हेमन अ इति, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेति अलोपः । ननु हैमन् अ इत्यवस्थायां नस्तद्धिते इति टेर्लोपः स्यादिति चेन्न, यस्येति चेत्यलोपस्य आभीयत्वेनासिद्धत्वात् स्थानिवद्भावाद् वा न टेर्लोपः । ऋत्वणि तु न तलोपः, हैमन्तमिति ।

हिन्दी

१८४६. श्वस् इस अव्यय से भवाद्यर्थ में ठञ् होता है तथा तुट् का आगम होता है ।

१८४७. द्वारादिगणपठित को ञित् णित् एवं कित् प्रत्यय परे वृद्धि नहीं हो किन्तु यकार व वकार से पूर्व ऐच्-आगम हो ।

१८४८. सन्धि वेला ऋतु एवं नक्षत्र शब्दों से अण् होता है, कालार्थ में विद्यमान रहने पर ।

१८४९. प्रावृष् शब्द से शैषिक एण्य प्रत्यय होता है ।

१८५०. वर्षा (ऋतुवाचक) से जाताद्यर्थ में शैषिक ठक् प्रत्यय होता है ।

१८५१. हेमन्त शब्द से लोक व वेद में अण् प्रत्यय होता है, तथा अण् के सन्नियोग से त् का लोप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८५२. सायञ्चिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च-४।३।२३।। सायं भवं सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम्। दोषातनम् । दिवातनम् ।

वा. चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः ।। चिरत्नम् । परुत्नम् । परारित्नम् ।

वा. अग्रादिपश्चाड्डिमच् ।। अग्रिमम् । आदिमम् । पश्चिमम् ।

वा अन्ताच्च ।। अन्तिमम् ।

१८५३. विभाषा पूर्वाह्णपराह्णाभ्याम्-४।३।२४।। आभ्यां ट्यु-ट्युलौ वा स्तस्तयोस्तुट् च । पक्षे ठञ् । पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम् । अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम्।

मध्यमनोरमापूरणी

सायन्तनम्—सायं भवमित्यर्थे सायञ्चिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्य इति ट्युः, तुडागमश्च, सायम्‌त् यु इति, युवोरनाकौ इत्यनादेशः, मस्यानुस्वारपरसवर्णौ । अत्र तुडागमात् प्रागेव योरनादेशः । अन्यथा अङ्गात् परत्वं योः न स्यात् । केचित्तु सायम् शब्दात् 'अव्ययेभ्यः' इति वचसैव प्रत्यये सिद्धे पुनः सायं शब्दः षोऽन्त कर्मणि इति धातोर्घञि साय इत्यस्य वाचकः, दिवसावसाने रूढस्य साय इत्यस्य मान्तत्वमपि निपात्यते इति वदन्ति । **चिरन्तनम् इति**—चिरात् भवमित्यर्थे ट्युः तुड् मान्तत्वं च निपात्यन्ते । योरनादेशः । चिरम् इत्यव्ययस्य पाठोऽत्रा-प्राभाणिकः, अव्ययेभ्यः इति पृथक् निर्देशात् । **प्राह्णेतनम्**—प्राह्णः सोढोऽस्य इति विग्रहे ट्युः, तुट्, प्रकृतेरेदन्तत्वञ्च निपात्यते । **प्रगेतनम्**—प्रगच्छतीति प्रगः, प्रगे जातादि इत्यर्थे ट्युः, तुट्, एदन्तत्वं च निपात्यते । **अव्ययेभ्यस्तु**—दोषातनम्, दिवातनम् इति । दोषा=रात्रौ, भवम्, दिवा=दिने, भवमित्यर्थे च ट्युः तुडागमश्च भवति । **चिरपरुत् इति**—चिर परुत् परारि इत्येतेभ्यः कालवाचकाव्ययेभ्यः शैषिकः त्न-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **चिरत्नम्**—चिरात् भवमित्यर्थे त्नः । परुत् परारि इत्येतौ पूर्वस्मिन् पूर्वतरे च वर्षे वर्तेते । ताभ्यां त्नः । **अग्रादि**-अग्र आदि पश्चात् इत्येभ्यः डिमच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **अग्रिमम्**—अग्रे भवमित्यर्थे डिमच्, डचौ इतौ, अग्र इम इति, डित्वाट्टिलोपः । आदौ भवमित्यर्थे डिमचि कृते डित्त्वादिकारलोपे **आदिमम्** इति । **पश्चिमम्**—पश्चाद् भवमित्यर्थे अग्रादिपश्चाड्डिमच् इति डिमच्, अनुबन्धलोपः। भसंज्ञा, पश्चात् इम इति, 'अव्ययानां भमात्रे टिलोप इति टेः आत्' इत्यस्य लोपे सोरमि रूपम्। **विभाषेति**—सायञ्चिरेत्यतः 'ट्यु-ट्युलौ तुट् च' इत्यंशोऽनुवर्तते । पूर्वाह्णे जातमित्यर्थे ट्युः तुडागमः, घकालतनेषु कालनाम्नः इति सप्तम्या अलुक् । एवमेव अपराह्णेतनमिति ज्ञेयम् । पक्षे कालाट्ठञ् इति ठञि ठस्येकादेशे आदिवृद्धौ यस्येति चेत्यलोपे **पौर्वाह्णिकम् आपराह्णिकमिति** भवति ।

हिन्दी

१८५२. सायं चिरम् प्रगे प्राह्णे इन कालवाची अव्ययों से ट्यु व ट्युल् प्रत्यय होते हैं । तथा तुडागम भी होता है ।

वा. चिर परुत् एवं परारि इन तीनों से 'त्न' प्रत्यय होता है ।

वा. अग्र आदि एवं पश्चात् इन से डिमच् प्रत्यय होता है ।

वा. अन्त शब्द से भी डिमच् प्रत्यय होता है ।

१८५३. पूर्वाह्ण, एवं पराह्ण शब्दों से ट्यु एवं ट्युल् प्रत्यय होते हैं तथा तुडागम भी होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८५४. तत्र जातः-४।३।२५।। सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः । स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः । औत्सः । राष्ट्रियः । अवारपारीणः इत्यादि ।

१८५५. प्रावृषष्ठप्-४।३।२६।। एण्यस्यापवादः । प्रावृषिकः ।

१८५६. प्रायभवः-४।३।३९।। तत्रेत्येव । स्रुघ्ने प्रायेण=बाहुल्येन भवति, स्रौघ्नः।

१८५७. सम्भूते-४।३।४१।। स्रुघ्ने भवति स्रौघ्नः ।

१८५८. कोशाड्ढञ्-४।३।४२।। कौशेयं वस्त्रम् ।

१८५९. तत्र भवः-४।३।५३।। स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः । औत्सः । राष्ट्रियः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तत्र जात इति—राष्ट्रावारपाराद्घखौ इत्यारभ्य विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् इति यावत् राष्ट्रादि-प्रकृतिविशेषेभ्यः घादयः प्रत्ययाः उक्ताः । तेषाम् अतः प्रभृति अर्थाः प्रकृतीनाञ्च विभक्ति-विशेषान् दर्शयति तत्रेत्यादिना । तत्रेति सप्तमीसमर्थस्य ग्रहणम्, सप्तम्यन्तात् 'जातः' इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितमणादयः घादयश्च प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः **स्रौघ्नः**—स्रुघ्ने जात इत्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः । **औत्सः**—उत्से देशविशेषे जातः इत्यर्थेऽण् । राष्ट्रे जातः राष्ट्रियः । घस्येय् । अवारपारे जातः इत्यर्थे खप्रत्ययः, खस्येनादेशः, **अवारपारीण** इति । **प्रावृषष्ठप्**-तत्र जात इत्यर्थे प्रावृष् शब्दात् 'ठप्' प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । ठप् इति पकारं इत्, स्वरार्थम् । प्रावृष एण्य इत्यस्यापवादोऽयम् । **प्रावृषिकः**—प्रावृषि जातः इत्यर्थे ठप् , ठस्येकः, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातु इति सुपो लुक् । **'प्राय भवः'**—सप्तम्यन्तात् तत्र प्रायभव इत्यर्थेऽणादयः घादयश्च प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **स्रौघ्नः**—स्रुघ्ने प्रायेण=बाहुल्येन भवः इत्यर्थेऽण् । **सम्भूते**—तत्र इत्यनुवर्तते । सप्तमीसमर्थात् सम्भूतेऽर्थेऽणादयः घादयश्च प्रत्ययाः स्युः इत्यर्थः । **स्रौघ्नः**—स्रुघ्ने सम्भवति सम्भूतो वेत्यर्थेऽण् । **कोशाड्ढञ्**—तत्र सम्भूते इत्यनुवर्तते । कोशशब्दात् तत्र सम्भूत इत्यर्थेऽणादयः घादयश्च प्रत्ययाः भवन्तीत्यर्थः । **कौशेयम् वस्त्रम्**—कृमिविशेषेण निर्मितः कोशः, तस्य विकारः, कोशे सम्भूतं, सम्भवति वेत्यर्थे ढञ्, ढस्य एय्, आदिवृद्धिः, अलोपः । **तत्र भवः**—'कालात्' इति निवृत्तम् । भव इत्यस्यार्थोऽत्र सत्ता, न तु जन्म इति। 'तत्र जातः' इत्यत्र जन्मनः गतार्थत्वात् । भव इत्यर्थे सप्तम्यन्ताद् यथा विहितं प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । स्रुघ्ने भवः इत्यर्थे तत्र भव इति औत्सर्गिकः अण् । **राष्ट्रियः**—राष्ट्रे भवः इत्यर्थे 'राष्ट्रावार' इति घः, घस्येयादेशः ।

हिन्दी

१८५४. सप्तमी समर्थ से 'जात' इस अर्थ में अणादि एवं घ आदि प्रत्यय होते हैं ।

१८५५. प्रावृष् से 'तत्र जातः' इस अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है ।

१८५६. सप्तम्यन्त से 'प्राय भवः' अर्थ में अणादि एवं घादि प्रत्यय होते हैं ।

१८५७. सप्तम्यन्त से सम्भूत अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१८५८. सप्तमीसमर्थ कोश-शब्द से सम्भूत अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ।

१८५९. सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से 'भव' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८६०. दिगादिभ्यो यत्-४।३।५४।। दिश्यम् । वर्ग्यम् ।

१८६१. शरीरावयवाद्यत्-४।३।५५।। दन्त्यम् । कण्ठ्यम् ।

१८६२. दृतिकुक्षिकलशिबस्त्यस्त्यहेर्ढञ्-४।३।५६।। दार्तेयम् । कलशिर्घटः, तत्र भवं कालशेयम् ।

१८६३. ग्रीवाभ्योऽण्-४।३।५७।। चाड्ढञ् । ग्रैवम्, ग्रैवेयम् ।

१८६४. गम्भीराञ्ञ्यः-४।३।५८।। गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम् ।

१८६५. अव्ययीभावाच्च-४।३।५९।। परिमुखे भवं पारिमुख्यम् ।

वा. परिमुखादिभ्य एवेष्यते ।। नेह-औपकूलः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दिगादिभ्यः—सप्तम्यन्तेभ्यः दिगादिभ्यः भवार्थे यत् स्यादित्यर्थः । अणः छस्य चापवादोऽयम्। **दिश्यम्**—दिशि भवमित्यर्थे यत्, प्रातिपदिकत्वात् सप्तम्याः लुक्, सोरम्, अमि पूर्वः । **वर्ग्यम्**-वर्गे भवमित्यर्थे यत् । **शरीरावयवात्**—सप्तम्यन्तेभ्यः शरीरावयवेभ्यः भवार्थे यत्, स्यात् । अणोऽपवादः । **दन्त्यम्**-दन्ते भवमित्यर्थे यत्, भत्वादलोपः । कण्ठे भवमित्यर्थे यत्, भत्वात् कण्ठान्त्याकारलोपः, कण्ठ्यमिति । **दृतिकुक्षीति**—भव इत्यर्थे दृति कुक्षि कलशि वस्ति अस्ति अहि इत्येभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यो ढञ् स्यादित्यर्थः । **दार्तेयम्**—दृतिःचर्मभस्त्रिका, तत्र भवमित्यर्थे ढञ्, ढस्य एय्, आदिवृद्धिः, रपरत्वम्, भत्वाद् इलोपः । **कालशेयम्**—कलशौ=घटे भवमित्यर्थे ढञ्, एयादिवृद्धीत्यादि । वस्तौ भवं **वास्तेयम्** । वस्तिः नाभेरधोभागः । अस्ति इत्यव्ययम्, तत्र **भवमास्तेयम्** । अहौ भवमाहेयम् इति । **ग्रैवम्**-ग्रीवायां भवमित्यर्थे शरीरावयवाद् यत् इति व्याख्यानेन अण्, आदिवृद्धिः । ढञि कृते तु एयादेशे **ग्रैवेयमिति** । **गाम्भीर्यम्**—गम्भीरे भवमित्यर्थे ञ्यः, आदिवृद्धिः, भत्वादलोपः । सोरम् । **अव्ययीभावाच्चेति**-अव्ययीभावसमासान्तात् तत्र भव इत्यर्थे ञ्यः स्यादित्यर्थः । **पारिमुख्यम्**—परिमुखे भवमित्यर्थे ञ्यः, ञकार इत् । आदिवृद्धिः, यस्येति च । **परिमुखादिभ्य इति**—अव्ययीभावाच्चेति ञ्यः परिमुखादिभ्यः एव भवतीत्यर्थः । **तेन**—उपकूले भवः औपकूलः इत्यत्र अणेव भवति, उपकूल इत्यस्य अव्ययीभावत्वेऽपि परिमुखादिषु अनन्तर्भावात् ।

हिन्दी

१८६०. दिगादिगणपठित सप्तम्यन्त से भवार्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

१८६१. शरीरावयववाची सप्तम्यन्त से भवार्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

१८६२. दृति कुक्षि कलशि वस्ति अस्ति एवं अहि से 'तत्र भवः' अर्थ में ढञ् होता है ।

१८६३. ग्रीवा से 'तत्र भवः' इस अर्थ में अण् एवं ढञ् प्रत्यय होते हैं ।

१८६४. गम्भीर शब्द से 'तत्र भवः' अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ।

१८६५. अव्ययीभावसंज्ञक से 'तत्र भवः' अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ।

वा. ञ्य-प्रत्यय परिमुखादिगणपठित अव्ययीभावसंज्ञक से ही होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८६६. अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्-४।३।६०॥ अव्ययीभावादित्येव । वेश्मनि इति अन्तर्वेश्मम्, तत्र भवम्-आन्तर्वेश्मिकम् । आन्तर्गणिकम् ।
वा. अध्यात्मादेष्ठञिष्यते । अध्यात्मं भवम् आध्यात्मिकम् ।
१८६७. अनुशतिकादीनाञ्च-७।३।२०॥ एषामुभयपदवृद्धिर्ञिति णिति किति च। आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । आकृतिगणोऽयम् ।
१८६८. जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः-४।३।६२॥ जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।
१८६९. वर्गान्ताच्च-४।३।६३॥ कवर्गीयम् ।
१८७०. तत आगतः-४।३।७४॥ स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्तःपूर्वेति—अन्तःपूर्वपदादव्ययीभावात् तत्र भवः इत्यर्थे ठञ् स्यात् । **आन्तर्वेश्मिकम्**—अन्तर्वेश्मं भवमित्यर्थे अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्, ठस्येकः, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । अन्तर्गणे भवमित्यर्थे ठञि इकादेशे आदिवृद्धौ आन्तर्गणिकम् इति । **अध्यात्मादेरिति**—अध्यात्मादि-गणपठितेभ्यः अव्ययीभावेभ्यः तत्र भव इत्यर्थे ठञ् स्यादित्यर्थः । **आध्यात्मिकम्**—आत्मनि इति अध्यात्मम्, तत्र भवमित्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, तद्धितेष्वचामादेः, यस्येति च । **तद्धिते प्रत्यये कृते प्रातिपदिकत्वात् सुब्लुक् सर्वत्र बोध्यमिति विशेषः । अनुशतिकादीनाञ्च**—आदिवृद्धि-प्रकरणे उत्तरपदस्य, पूर्वपदस्य च इत्यधिकारे सूत्रम् । **अत आह**—एषामुभयपदवृद्धिरित्यादि। **आधिदैविकम्**—देवषु इति अधिदेवम्, तत्र भवमित्यर्थे अध्यात्मादेष्ठञ् इति ठञ्, ठस्येकः, अनुशतिकादीनाञ्चेत्युभयपदयोराद्यचो वृद्धिः, अलोपः । अधिभूतशब्दाद् आधिभौतिकमिति । **ऐहलौकिम्**—इह लोके भवमित्यर्थे अध्यात्मादेष्ठञिष्यते इति ठञ्, ठस्येकः । अनुशतिकादी-नाञ्चेति उभयपदयोराद्यचोः वृद्धिः । काशिकायान्तु लोकोत्तरपदाच्चेति वार्तिकम्, तेन ठञ् विधीयते । वस्तुतः अध्यात्मादिगणे एतेषां पाठात् तेनैव ठञ् विधानमुचितम् । तेन पार-लौकिकम् इत्याद्यपि सिध्यति । **जिह्वामूलेति**—जिह्वामूल अङ्गुलि इत्याभ्यां तत्र भव इत्यर्थे छः स्यादित्यर्थः । शरीरावयवाद्यत् इत्यस्यापवादोऽयम् । **जिह्वामूलीयम्**—जिह्वामूले भवमित्यर्थे छः, सुपो लुक् । छस्येयादेशः । अलोपः । अङ्गुलौ भवमित्यर्थे छः, अङ्गुलीयम् इति । **वर्गान्तादिति**—वर्गशब्दान्तात् सप्तमीसमर्थात् भव इत्यर्थे छः स्यादित्यर्थः । **कवर्गीयम्**—कादिः वर्गः कवर्गः, तत्र भवमित्यर्थे छः, छस्येयादेशः । **तत आगत इति**—ततः= पञ्चम्यन्तम् । पञ्चम्यन्तात् प्रातिपदिकात् आगत इत्यर्थे यथाविहितमणादयो भवन्तीत्यर्थः। **स्रौघ्नः**—स्रुघ्नो देशः, तस्मात् आगत इत्यर्थे अण् । सुपो लुक्, तद्धितेष्वचामादेरिति आदि-वृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः ।

हिन्दी

१८६६. अन्तःपूर्वपद वाले अव्ययीभाव से 'तत्र भवः' अर्थ में ठञ् होता है ।
वा. अध्यात्मादिगणपठित से ठञ् प्रत्यय होता है, "तत्र भवः' अर्थ में ।
१८६७. अनुशतिकादि गणपठित के उभय पद के आदि की वृद्धि होती है ञित् णित् व कित् प्रत्यय परे रहते ।
१८६८. जिह्वा और अङ्गुलि से 'भव' अर्थ में छ प्रत्यय होता है ।
१८६९. वर्गान्त शब्द से भी छ प्रत्यय होता है, 'तत्र भवः' अर्थ में ।
१८७०. पञ्चम्यन्त से 'आगतः' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८७१. ठगायस्थानेभ्यः-४।३।७५।। शौल्कशालिकः ।
१८७२. विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्-४।३।७७।। औपाध्यायकः । पैतामहकः ।
१८७३. ऋतष्ठञ्-४।३।७८।। वुञोऽपवादः । हौतृकम् । मातृकम् । भ्रातृकम्।
१८७४. पितुर्यच्च-४।३।७९।। चाट्ठञ् । रीङ् ऋतः । यस्येति लोपः । पित्र्यम्। पैतृकम् ।
१८७५. गोत्रादङ्कवत्-४।३।८०।। विदेभ्य आगतं वैदम् । गार्गम् । दाक्षकम् । औपगवकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

ठगायस्थानेभ्यः—स्वामिना ग्राह्यो भागः आयः, सः यस्मिन् उत्पद्यते तत् आयस्थानमुच्यते। आयस्थानवाचकेभ्यः ठक् स्यात् तत आगत इत्यर्थे इति । **शौल्कशालिकः**- शुल्कशालाया आगत इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, किति चेत्यादिवद्धौ यस्येति चेत्यालोपः । **विद्यायोनि**—विद्यायोनिकृतः सम्बन्धः येषां ते विद्यायोनिसम्बन्धाः, तद्वाचकेभ्यः तत आगत इत्यर्थे वुञ् स्यादित्यर्थः । **औपाध्यापकः**—उपाध्यायादागतः इत्यर्थे वुञ् । युवोरनाकौ इति वु इत्यस्य अकः, आदिवृद्धिः, यस्येति च । पितामहात् आगत इत्यर्थे वुञ् । वोरकादेशः, आदिवृद्धिः, **पैतामहकः** इति । **ऋतष्ठञ्**—विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः इत्यनुवर्तते । ऋदन्ताद् विद्यायोनि-सम्बन्धवाचकात् पञ्चम्यन्तादागत इत्यर्थे ठञ् स्यात् । **हौतृकम्**—होतुः आगतम् इत्यर्थे ठञि सुपो लुकि, होतृ ठ इति, इसुसुक्तान्तात् कः इति ठस्य कादेशः, आद्यचो वृद्धिः । एवमेव मातुरागतं मातृकम्, भ्रातुरागतं भ्रातृकमिति बोध्यम् । **पितुर्यच्च**— पितृशब्दात् पञ्चम्यन्तात् आगत इत्यर्थे यत् स्याट्ठञ् चेत्यर्थः । **पित्र्यम्**—पितुरागतमित्यर्थे यत्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि पितृ य इति, रीङ् ऋत इति ऋकारस्य रीङ्, पित्री य इति, भत्वाद् ईकारलोपः, स्वादि-कार्यम् । ठञि कृते पैतृकम् इति । उकः परत्वात् ठस्य 'क' इत्यादेशः । **गोत्रादिति**—अपत्याधिकारादन्यत्र लौकिकं गोत्रम् अपत्यमात्रं गृह्यते । गोत्रप्रत्ययान्तात् ये अङ्के प्रत्ययाः सन्ति ते तत आगत इत्यर्थेऽपि स्युरित्यर्थः । **वैदम्**—विदेभ्य आगतमित्यर्थे यञिञोश्चेति अण्, आदिवृद्धिः । विग्रहे विदेभ्यः इति गोत्रे विहितस्य अञः बहुत्वेऽर्थे लुकि सति रूपम्। गर्गेभ्य आगतम् इत्यर्थेऽण्, आदि- वृद्धिः । गर्गशब्दोऽत्र यञन्तः । यञिञोश्चेति बहुत्वे यञो लुक् । **दाक्षम्**—दाक्षि इतीञन्ताद् अणि आदिवृद्धिः । **औपगवकम्**—उपगोरपत्यम् औपगवः, तत आगतम् इत्यर्थे गोत्रचरणाद् वुञ् इति वुञ्, वोरकादेशः, अलोपः । औपगवानामङ्कः इत्यर्थेऽपि वुञ् ।

हिन्दी

१८७१. आय स्थान वाचक से 'तत आगतः' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।
१८७२. विद्या एवं योनि सम्बन्ध वाचक पञ्चम्यन्त से 'आगतः' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ।
१८७३. विद्या योनि सम्बन्ध वाचक ऋदन्त से तत आगतः इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।
१८७४. पितृ शब्द से यत् एवं ठञ् प्रत्यय होता है, तत आगत अर्थ में ।
१८७५. गोत्रसंज्ञक शब्दों से अङ्क अर्थ में विहित प्रत्यय तत आगतम् इस अर्थ में भी होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८७६. हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः-४।३।८१।। समादागतं समरूप्यम् । पक्षे गहादित्वाच्छः । समीयम् । देवदत्तीयम् । देवदत्तरूप्यम् ।
१८७७. मयट् च-४।३।८२।। सममयम् ।
१८७८. प्रभवति-४।३।८३।। हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ।
१८७९. विदूराञ्ञ्यः-४।३।८४।। विदूरात् प्रभवति वैदूर्यो मणिः ।
१८८०. तद्गच्छति पथिदूतयोः-४।३।८५।। स्रुघ्नं गच्छति स्रौघ्नः पन्थाः दूतो वा।
१८८१. अभिनिष्क्रामति द्वारम्-४।३।८६।। स्रुघ्नमभिगच्छति स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

हेतुमनुष्येभ्यः—तत आगत इत्यर्थे विकल्पेन रूप्यप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । समादागतमित्यर्थे हेतुवाचकात् समशब्दात् रूप्यः, **समरूप्यमिति** । पक्षे गहादिगणे पाठात् छः, आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति इयः । अलोपः, **समीयम् इति । मनुष्यवाचकात्-देवदत्तरूप्यम्**—देवदत्तात् आगतमित्यर्थे रूप्यप्रत्यये रूपम् । पक्षे छः, देवत्तीयमिति । **मयट् च**—हेतुमनुष्येभ्यः इत्यनुवर्तते, तत आगत इति च । हेतुभ्यः मनुष्येभ्यश्च मयट् प्रत्ययो भवति, तत आगत इत्यर्थे । **सममयम्**—समात् आगतमित्यर्थे मयट् चेति मयट्, सुपो लुक् । मयटि टकार इत् । **प्रभवति**—आगत इति निवृत्तम् । पञ्चम्यन्ताद् 'प्रभवति' इत्यर्थेऽणादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । प्रभव इत्यस्य प्रथमोत्पत्तिरित्यर्थः । **हैमवती**—हिमवतः प्रभवति इत्यर्थे प्रभवतीत्यनेन अण्, सुपो लुक् । आद्यचो वृद्धिः । अणन्ताद् स्त्रियां टिड्ढाणञ् इति ङीप्, यस्येति चेत्यलोपः, हैमवती इति । **विदूराञ्ञ्यः**—प्रभवतीत्यर्थे विदूरात् ञ्यः स्यादित्यर्थः । **वैदूर्यो मणिः**—विदूरात् = देशविशेषात्, प्रभवतीत्यर्थे ञ्यः, चुटू इति ञः इत् । ञित्वादादिवृद्धिः, अलोपः । **तद् गच्छतीति**—तद् इति द्वितीयान्तम् । गच्छति इत्यर्थनिर्देशः । द्वितीयान्ताद् गच्छतीत्यर्थेऽणादयः स्युः, गन्ता चेद् पन्थाः दूतो वा, इत्यर्थः । **स्रौघ्नः**—स्रुघ्नं= देशविशेषं प्रति गच्छति इत्यर्थे तद्गच्छतीत्यादिना अण्, आदिवृद्धिः, अलोपः । **अभिनिष्क्रामति द्वारम्**-तद् इत्यनुवर्तते । द्वितीयान्ताद् अभिनिष्क्रामति इत्यर्थे अणादयो भवन्ति, तच्चेद् द्वारं स्यात् इत्यर्थः । **स्रौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम्**—कान्यकुब्जाख्यस्य द्वारमित्यर्थः ।

हिन्दी

१८७६. हेतुवाची एवं मनुष्यवाची से तत आगतः इस अर्थ में रूप्य प्रत्यय होता है विकल्प से ।

१८७७. हेतु एवं मनुष्यवाची से तत आगतः इस अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है ।

१८७८. पञ्चम्यन्त से 'प्रभवति' अर्थ में अणादि प्रत्यय होता है ।

१८७९. विदूर शब्द से 'ततः प्रभवति' अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है ।

१८८०. द्वितीयान्त से 'गछति' अर्थ में अणादि-प्रत्यय होते हैं, गन्ता यदि मार्ग व दूत हो ।

१८८१. द्वितीयान्त से अभिनिष्क्रामति अर्थ में अणादि-प्रत्यय होते हैं, निष्क्रामक यदि द्वार हो ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८८२. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे-४।३।८७।। शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः । शारीरकं भाष्यमिति त्वभेदोपचारात् ।

१८८३. सोऽस्य निवासः-४।३।८९।। सुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः ।

१८८४. तेन प्रोक्तम्-४।३।१०१।। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् ।

१८८५. पाराशर्य-शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः-४।३।११०।। णिनिः स्यात् । पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः । शैलालिनो नटाः ।

१८८६. कर्मन्दकृशाश्वादिनिः-४।३।१११।। कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः । कृशाश्विनो नटाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अधिकृत्येति—तद् इति द्वितीयान्तमनुवर्तते । अधिकृत्य प्रस्तुत्य, आगूर्येत्यर्थो वा । द्वितीयासमर्थात् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः इत्यर्थे अणादयो भवन्तीत्यर्थः । **शारीरकम्**—शरीरस्यायं शारीरः जीवः, अणन्तात् स्वार्थे कः, शारीरकमिति द्वितीयान्तम्, तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः इत्यर्थे वृद्धाच्छः इति छः, आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति छस्य ईय्, अलोपः, शारीरकीयः इति भवति । ननु शारीरको जीवः इति चेत् कथं शारीरकं भाष्यमिति चेदुच्यते-शारीरकमित्यादि । प्रतिपादके भाष्ये शारीरकस्य जीवस्य प्रतिपाद्यस्य अभेदेन उपचारो भवति इति । **सोऽस्य निवासः**—सः इति प्रथमान्तम् । प्रथमान्ताद् "अस्य निवास" इत्यर्थेऽणादयः स्युरित्यर्थः । स्रुघ्नो निवासोऽस्येत्यर्थेऽणि स्रौघ्न इति । **तेन प्रोक्तम्**—तेनेति तृतीयान्तस्य निर्देशः । तृतीयासमर्थात् प्रोक्तमित्यर्थेऽणादयो भवन्तीत्यर्थः । **पाणिनीयम्**—पाणिनिना प्रोक्तमित्यर्थे वृद्धाच्छः इति छः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक्, छस्येय्, यस्येति चेतीकारलोपः । **पाराशर्येति**—काश्यपकौशिकाभ्यामित्यतः 'णिनिः' इत्यनुवर्तते मण्डूकप्लुत्या । भिक्षुनटसूत्रेति पदं क्रमशः पाराशर्येत्यनेन शिलालि इत्यनेन च सम्बद्ध्यते । पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमित्यर्थे शिलालिना च प्रोक्तं नटसूत्रमित्यर्थे तृतीयान्ताद् णिनिः स्यादित्यर्थः । **पाराशरिणः**—पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमित्यर्थे णिनिः, णकार इकारश्च इतौ । अलोपयलोपौ । ततोऽधीयते इत्यर्थे जातस्याणो लुक् । जसि रूपम् । शिलालिना प्रोक्तमित्यर्थे णिनिः, आदिवृद्धिः, भत्वाट्टेर्लोपः, शैलालिन् इति, तेन प्रोक्तमधीयते इत्यर्थेऽण्, अणो लुक्, जसि शैलालिनः इति भवति। **कर्मन्दकृशाश्वेति**—भिक्षुनटसूत्रयोः कर्मन्दकृशाश्वाभ्याम् इनिः प्रत्ययो भवति तेन प्रोक्तमिति विषये । **कर्मन्दिनो भिक्षवः**—कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमित्यर्थे इनिः, इकार उच्चारणार्थः, भत्वादलोपे, कर्मन्दिन् इति, कर्मन्दिन् शब्दात् तदधीयते 'इत्यर्थे तदधीते तद्वेद' इति अण्, प्रोक्ताल्लुक् इति अणो लुकि जसि कर्मन्दिनः इति । एवमेव कृशाश्वेन प्रोक्तं नटसूत्रमित्यर्थे इनिः, कृशाश्विन् इति, तदधीयते इत्यर्थे अण्, प्रोक्ताल्लुक् इत्यणो लुक्, जसि **कृशाश्विनो** नटाः इति ।

हिन्दी

१८८२. द्वितीयान्त से 'अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१८८३. प्रथमान्त से 'अस्य निवासः' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।

१८८४. तृतीयान्त से 'तेन प्रोक्तम्' इस अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।

१८८५. पाराशर्य एवं शिलालिन् से प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है, भिक्षुसूत्र व नटसूत्र अर्थ वाच्य होने पर ।

१८८६. कर्मन्द एवं कृशाश्व से तेन प्रोक्तम् अर्थ में इनि प्रत्यय होता है भिक्षु व नट सूत्र अभिधेय होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८८७. उपज्ञाते-४।३।११५।। पाणिनिना उपज्ञातं पाणिनीयम् ।
१८८८. तस्येदम्-४।३।१२०।। उपगोरिदमौपगवम् ।
वा. समिधामाधाने षेण्यण् ।। सामिधेन्यो मन्त्रः ।
१८८९. रथाद् यत्-४।३।१२१।। रथ्यं चक्रम् ।
१८९०. पत्रपूर्वादञ्-४।३।१२२।। अश्वरथस्येदम् आश्वरथम् ।
१८९१. हलसीराट्ठक्-४।३।१२४।। हालिकम् । सैरिकम् ।
१८९२. गोत्रचरणाद् वुञ्-४।३।१२६।। औपगवकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

उपज्ञाते—तेन इत्यनुवर्तते । तृतीयान्ताद् उपज्ञातेऽर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **पाणिनीयम्**—पाणिनिना उपज्ञातमित्यर्थे वृद्धाच्छः इति छः, छस्येय्, यस्येति च । उपज्ञातमित्यस्य प्रथमज्ञातमित्यर्थः । **तस्येदम्**—तस्येति षष्ठ्यन्तस्य ग्रहणम् । षष्ठीसमर्थात् इदम् इत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युः । अर्थात् अणादयः पञ्च उत्सर्गाः, विशिष्टविहिताश्च घादयो भवन्ति । **औपगवमिति**—उपगोः इदम् इत्यर्थे अण्, सुपो लुक्, आद्यचो वृद्धिः, औपगु अ इति, ओर्गुणः इति गुणेऽवादेशे रूपम् । **समिधाम्**—आधीयते अनेन इत्याधानो मन्त्रः । आधानो मन्त्रः इत्यर्थे समिध् शब्दात् षेण्यण् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **सामिधेन्यः**—समिधामाधान इत्यर्थे षेण्यण्, षः प्रत्ययस्येति षकार इत्, आदिवृद्धिः, सामिधेन्य इति । षित्वात् स्त्रीलिङ्गे सामिधेनी इति भवति । **रथात् यत्**—तस्य इदम् इत्यर्थे रथशब्दात् यत् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **रथ्यं चक्रम्**—रथस्य इदम् इत्यर्थेऽणं प्रबाध्य यत्, भत्वादकारलोपः । चक्रविशेषणान्नपुंसकत्वम् । **पत्रपूर्वादिति**—पतन्ति येन तत् पत्रं वाहनम् अश्वादि इति । रथात् इत्यनुवर्तते । पत्रपूर्वात् रथशब्दात् तस्येदमित्यर्थेऽञ् भवतीत्यर्थः । **आश्वरथम्**—अश्वः पत्रमत्र । अश्वरथस्येदमित्यर्थे यतं प्रबाध्यानेन अञ्, तद्धितेष्वचामित्यादिवृद्धिः, भत्वादलोपः, स्वादिकार्यम्। **हलसीरात् इति**—तस्येदमित्यर्थे हलसीर इत्याभ्यां ठक् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **हालिकम्-सैरिकमिति**—हलस्येदं सीरस्येदमित्यर्थे च ठक्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातु इति सुपो लुक्, ठस्येकः, किति चेत्यादिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **गोत्रचरणात्**—गोत्रशब्देन गोत्रप्रत्ययान्तः चरणशब्देन च शाखाध्येता इति गृह्यते । गोत्रप्रत्ययान्ताद् शाखाध्येतृवाचिभ्यश्च तस्येदम् इत्यर्थे वुञ् स्यादित्यर्थः । अणोऽपवादोऽयम् । छ-प्रत्ययं तु परत्वाद् बाधते । **गोत्रात् औपगवकम्**—उपगोः गोत्रापत्यमित्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, अव्, औपगव इति, औपगवस्येदमित्यर्थे वुञ्, युवोरनाकौ इति वोरकादेशः । भत्वादलोपः, सोरम् ।

हिन्दी

१८८७. 'तेन उपज्ञातम्' इस अर्थ में तृतीयान्त से यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।
१८८८. षष्ठ्यन्त से 'तस्य इदम्' अर्थ में अणादि प्रत्यय होते हैं ।
वा. 'आधान मन्त्र' अर्थ में समिध् षष्ठ्यन्त से षेण्यण् प्रत्यय होता है ।
१८८९. 'तस्य इदम् 'अर्थ में रथ शब्द से यत् प्रत्यय होता है ।
१८९०. पत्र पूर्वक रथ शब्द से 'तस्य इदम्' अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ।
१८९१. हल एवं सीर शब्द से तस्य इदम् (उसका यह) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।
१८९२. गोत्र प्रत्ययान्त एवं शाखाध्येतृ वाची से 'तस्येदम्' अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. चरणाद् धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम् ॥ काठकम् ।

१८९३. सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्-४।३।१२७॥

वा. घोषग्रहणमपि कर्तव्यम् ॥ अञ् वैदः । संघोऽङ्को घोषो वा । वैदं लक्षणम्। यञ्-गार्गः, गार्गम् । इञ्-दाक्षः, दाक्षम् । परम्परासम्बन्धोऽङ्कः, साक्षात्तु लक्षणम्।

मध्यमनोरमापूरणी

चरणात् इति—चरणात् विहितः वुञ् धर्मे आम्नाये च वाच्ये भवतीति वाच्यमित्यर्थः । **काठकम्**—कठेन प्रोक्तमधीयते इति कठाः, कठानां धर्मः आम्नायो वेत्यर्थे वुञ्, युवोरनाकौ, तद्धितेष्वचामादेः, अलोपः । **संघाङ्केति**—अञ् यञ् इञ् इत्येतेषां द्वन्द्वे षष्ठी बहुवचने अञ्यञिञामिति । प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः । संघः अङ्कः लक्षणं चेति द्वन्द्वे सप्तमीबहुवचने संघाङ्कलक्षणेषु इति । अञन्तात् यञन्तात् इञन्ताच्च संघे अङ्के लक्षणे विवक्षिते तस्येदमित्यर्थे अण् स्यादित्यर्थः । छस्यापवादोऽयम् । **घोषग्रहणमिति**—संघाङ्कलक्षणेष्विति सूत्रे घोषग्रहणमपि कर्तव्यमित्यर्थः । **वैदः**—विदस्यापत्यमित्यर्थेऽञि आदि वृद्धौ वैद इति, वैदस्य संघोऽङ्के लक्षणं वेत्यर्थे अण्, यस्येति चेत्यलोपः । लक्षणे वैदमिति । **गार्गः, गार्गम्**—गार्ग्यस्य संघोऽङ्को वेत्यर्थेअण्, आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति इति यलोपः, भत्वादलोपः, गार्गः इति । लक्षणे नपुंसकत्वम् । गार्गमिति । **दाक्षः**—दक्षस्यापत्यमित्यर्थेऽत इञ् । दाक्षिरिति, दाक्षेः सङ्घोऽङ्को वेत्यर्थेऽण्, भत्वादिकारलोपः । लक्षणे दाक्षम् इति । **परम्परासम्बन्ध इति**—यथा गवादिनिष्ठः तप्तमुद्राविशेषः अङ्कः । तस्य हि गोद्वारा स्वामिसम्बन्धः । **लक्षणं साक्षादिति**—लक्ष्यभूतस्यैव चिह्नभूतं स्वं लक्षणम् । यथा विद्याविदानाम् । विदेषु विद्यायाः साक्षात् विद्यमानत्वात् तस्य लक्षणं भवतीत्यर्थः । इति शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नेन चौधर्युपाह्वेन अर्कनाथेन कृतायां मध्यमनोरमापूरणीव्याख्यायां शैषिकाः ।

हिन्दी

वा. चरणवाची सें धर्म एवं आम्नाय वाच्य रहने पर ही वुञ् होता है ।

१८९३. अञन्त यञन्त एवं इञन्त षष्ठी समर्थ से 'तस्येदम्' अर्थ में संघ अङ्क एवं लक्षण के प्रत्ययार्थविशेषण होने पर अण् प्रत्यय होता है ।

वा. 'संघाङ्क' सूत्र में घोष शब्द का भी पाठ करना चाहिये । अर्थात् घोष के वाच्य रहने पर अण् प्रत्यय होता है ।

॥ इति शैषिक-प्रकरण ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ प्राग्दीव्यतीयाः

१८९४. तस्य विकारः-४।३।१३४॥ वा. अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः ॥
अश्मनो विकारः आश्मः । भास्मनः । मार्त्तिकः ।

१८९५. अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः-४।३।१३५॥ चाद् विकारे । मयूरस्य विकारोऽवयवो वा मायूरः । मौर्वं काण्डम्, भस्म वा । पैप्पलम् ।

१८९६. त्रपुजतुनोः षुक्-४।३।१३८॥ आभ्यामण्, एतयोःषुक् च । त्रापुषम् । जातुषम् ।

१९९७. ओरञ्-४।३।१३९॥ दैवदारवम् ।

१८९८. अनुदात्तादेश्च-४।३।१४०॥ अञ् । कापित्थम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

तस्य विकारः—विक्रियते इति विकारः, कर्मणि घञ् । प्रकृतेरवस्थान्तरप्राप्तिः विकारः । तस्येति षष्ठीसमर्थस्य बोधकम् । षष्ठ्यन्तात् विकारः इत्यर्थेऽणादयः साधारणप्रत्ययाः, वक्ष्यमाणाश्च विशेषप्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **आश्मः**—अश्मनो विकार इत्यर्थेऽण्, षष्ठ्याः सुपो धातु इति लुक्, आद्यचो वृद्धिः, अन् इति प्राप्तं प्रकृतिभावं प्रबाध्य 'अश्मनो विकारे टिलोप' इति टिलोपः । **भास्मनः**—भस्मनो विकार इत्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः, अन् इति प्रकृतिभावः, तेन टिलोपो न । मृत्तिकाया विकारः **मार्त्तिकः**, आद्यचो वृद्धौ रपरत्वम् । **प्राण्योषधि**—चकाराद् विकार इत्यपकृष्यते । प्राणिवाचकेभ्यः ओषधिवृक्षयोश्च वाचकेभ्यः तस्य विकारः अवयवो वेत्यर्थे अण् स्यादित्यर्थः । **मायूरः**—मयूरस्य विकारः, अवयवो वा इत्यर्थे अण्, सुपो लुक्, आदिवृद्धिः, यस्येति च । **मौर्वम्**—मूर्वा ओषधिविशेषः, मूर्वायाः विकार इत्यर्थेऽणि आदिवृद्धौ भत्वादालोपः । पिप्पलस्य = अश्वत्थस्य विकार इत्यर्थेऽण्, आदिवृद्ध्यादिकम् । वृक्षस्योदाहरणमेतत् । **त्रापुषम्**—त्रपुणो विकार इत्यर्थेऽण्, षुगागमश्च, आदिवृद्धिः । रङ्गविशेषस्य विकार इत्यर्थः । जतुनो विकारः **जातुषमिति** । **ओरञ्**—उवर्णान्ताद् प्राण्योषधिवृक्षवाचकात् तस्य विकारः अवयवो वेत्यर्थे अञ् स्यादित्यर्थः । **दैवदारवम्**—देवदारोः विकारोऽवयवो वेत्यर्थे अञ्, आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, अवादेशः । **अनुदात्तादेश्च**—अवयवे विकारे वाऽर्थे षष्ठ्यन्तात् अनुदात्तादेः अञ् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **कापित्थम्**—कपित्थस्यादयवो विकारो वेत्यर्थे अञ्। सुपो लुक्, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः ।

हिन्दी

१८९४. षष्ठ्यन्त से 'तस्य विकारः' अर्थ में अणादि साधारण एवं वक्ष्यमाण विशेष प्रत्यय होते हैं ।

वा. अश्मन् की टि का लोप होता है विकारार्थक प्रत्यय परे ।

१८९५. प्राणी ओषधि एवं वृक्ष वाचक से तस्य विकारः, या 'तस्यावयवः' अर्थ में अण् होता है ।

१८९६. त्रपु एवं जतु से विकार अर्थ गें अण् प्रत्यय होता है व षुक् का आगम भी ।

१८९७. उवर्णान्त प्राणी ओषधि एवं वृक्ष वाचक से विकार एवं अवयव अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ।

१८९८. अनुदात्तादि षष्ठ्यन्त से विकार एवं अवयव अर्थ में 'अञ्' होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१८९९. पलाशादिभ्यो वा-४।३।१४१॥ अञ् । पालाशम् । खादिरम् ।
१९००. शम्याः [1]ष्लञ्-४।३।१४२॥ शामीलम् ।
१९०१. मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः-४।३।१४३॥ प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याद् विकारावयवयोः, अश्ममयम्, आश्मनम् । अभक्षेत्यादि किम्-मौद्गः सूपः । कार्पासमाच्छादनम् ।
१९०२. नित्यं वृद्धशरादिभ्यः-४।३।१४४॥ आम्रमयम् । शरमयम् ।
वा. एकाचो नित्यम् ॥ वाङ्मयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

पलाशादिभ्यः—पलाशखदिर शिंशपा करीर शिरीष स्यन्दन यवास विकङ्कत इति पलाशादिः। एभ्योऽञ् वा स्यात् विकारेऽवयवे चार्थे । **पालाशम्**—पलाशस्य विकारोऽवयवो वेत्यर्थेऽञ्, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । खदिरस्य विकारोऽवयवो वेत्यर्थेऽञ्, **खादिरम् इति** । **शम्याः ष्लञ्**-शमीति षष्ठ्यन्तात् विकारेऽवयवे चार्थे ष्लञ् स्यादित्यर्थः । षः प्रत्ययस्येति षकार इत् । हलन्त्यमिति ञकारश्च । **शामीलम्**—शम्याः विकारोऽवयवो वेत्यर्थे ष्लञ्, सुपो लुकि ञित्त्वादादिवृद्धिः, शामील इति, सोरम् । भस्मेत्यस्य विशेषणम् । **मयड्वैतयोरिरिति**—एतयोः= विकारावयवयोरर्थयोः भक्ष्याच्छादनभिन्नयोः प्रकृतिमात्राद् मयट् वा स्याद् भाषायाम् । विकारावयवयोः अधिकारत्वादेव सिद्धे पुनः एतयोरिति पद **किमर्थमिति चेदुच्यते**—उक्तेषु वक्ष्यमाणेषु चापवादविषयेषु अपि विकल्पेन मयड्विधानार्थमेतयोरिति पदमस्ति । **अश्ममयम्**-अश्मनो विकारोऽवयवो वेत्यर्थे मयट्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि, अश्मन् मय इति, अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वात् नलोपः । स्वादिकार्यम् । पक्षे अश्मनोऽवयवेऽणि, अन् इति प्रकृतिभावे आदिवृद्धौ सोरमि आश्मनम् इति । मुद्गस्य विकारः सूपः **मौद्गः** भक्ष्योऽस्ति, अतो न मयट् । कार्पासस्य विकारोऽवयवो वाऽऽच्छादनमिति अर्थे न मयट्, अपि तु अणेव। **नित्यं वृद्धेति**—अभक्ष्याच्छादनयोरिति भाषायामिति चानुवर्तते । वृद्धेभ्यः शरादिभ्यश्च विकारावयवयोः अभक्ष्याच्छादनयोः भाषायां विषये नित्यं मयट् स्यादित्यर्थः । **आम्रमयम्**—आम्रशब्दो वृद्धः, तस्मात् मयट् । शरस्यावयवो विकारो वा **शरमयम्** । **वाङ्मयम्**—वाचो विकारः अवयवो वेत्यर्थे मयट्, एकाचो नित्यमिति वार्तिकेन । सुपो लुकि चोः कुरिति कुत्वे प्रत्यये भाषायामिति अनुनासिकत्वम् ।

हिन्दी

१८९९. पलाशादिगण-पठित से विकार व अवयवार्थ में विकल्प से अञ् होता है ।
१९००. शमी से उक्तार्थ में ष्लञ् होता है ।
१९०१. प्रकृतिमात्र से भक्ष्य एवं आच्छादनभिन्न विकार एवं अवयवार्थ में मयट् होता है भाषा में विकल्प से ।
१९०२. वृद्धसंज्ञक एवं शरादि से अभक्ष्याच्छादन विकार एवं अवयव अर्थ में भाषा में नित्य मयट् होता है ।
वा. एकाच् से विकारावयवार्थ में नित्य मयट् होता है ।

1. काशिकायां 'शम्याष्टलञ्' इति सूत्रं विद्यते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९०३. गोश्च पुरीषे-४।३।१४५।। गोमयम् ।
१९०४. एण्या ढञ्-४।३।१५९।। एणेयम् । एणस्य तु ऐणम् ।
१९०५. गोपयसोर्यत्-४।३।१६०।। गव्यम् । पयस्यम् ।
१९०६. फले लुक्-४।३।१६३।। विकारावयवप्रत्ययस्य ।
१९०७. लुक् तद्धितलुकि-१।२।४९।। उपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य । आमलक्याः फलम्-आमलकम् ।
१९०८. प्लक्षादिभ्योऽण्४।३।१६४।। विधानसामर्थ्यान्न लुक् । प्लाक्षम् ।
१९०९. न्यग्रोधस्य च केवलस्य-७।३।५।। अस्य न वृद्धिरैजागमश्च । नैयग्रोधम्।

मध्यमनोरमापूरणी

गोश्चेति—पुरीषः न विकारः न चावयवः, अतः तस्येदमित्यर्थे सूत्रेण मयट् विधीयते । **गोमयम्**-गोः पुरीषम् इत्यर्थे मयट्, सुपो लुक्, स्वादिकार्यम् । **एण्याः ढञ्**—विकारावयवोरर्थयोः एणी-शब्दात् ढञ् भवतीत्यर्थः । **एणेयम्**—एण्याः विकारोऽवयवो वेत्यर्थे ढञ्, ढस्य एयादेशः, आदि-वृद्धिः, भत्वात् ईलोपः । एणस्य तु **ऐणम् इति**—सूत्रे स्त्रीलिङ्गनिर्देशः, तेन पुंल्लिङ्गात् एण-शब्दात् न ढञ्, अपि तु अणेव । **गव्यम्**—गोः विकारोऽवयवो वा इत्यर्थे गोपयसोर्यत् इति यत्, वान्तो यीति अवादेशः । **पयसो** विकारः पयस्यम् । मयड्बाधनार्थमिदम् । अन्यथा सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत् इत्येव सिद्ध्येत् । **लुक् तद्धितलुकीति**-गोस्त्रियोरुपसर्जनस्येत्यतः स्त्रीग्रहणम् उपसर्जनस्येति चानुवर्तते । तद्धितलुकि सति स्त्रीप्रत्ययस्य उपसर्जनस्य लुक् भवतीत्यर्थः । **आमलकम्**—आमलक्याः फलमित्यर्थे नित्यं वृद्धशरादिभ्यः इति मयट्, सुपो लुक्, फले लुक् इति मयटो लुकि आमलकीति ङीपो 'लुक् तद्धितलुकि' इति लुक् । ननु फलं कथं विकार इति चेत्-फलितस्य वृक्षस्य फलम् अवयवो विकारश्चैव भवति, यथा पल्लवितस्य पल्लवो भवति । **प्लक्षादिभ्यः**—प्लक्षादिगणे शिग्रुकर्कन्धूशब्दयोः ओरञ् इति प्राप्ते प्लक्षादीनाम् अनुदात्तादेश्चेति अञि प्राप्तेऽनेन अण् विधीयते विकारेऽवयवे च फलत्वेन विवक्षिते सतीत्यर्थः। **प्लाक्षम्**—प्लक्षस्य विकारोऽवयवो वा इत्यर्थे अण्, आदिवृद्धिः । फले लुक् इति लुक् अण्-विधानसामर्थ्यान्न भवति । **न्यग्रोधस्य चेति**—न य्वाभ्यामित्यनुवर्तते । केवलस्येति नियमार्थम्। **नैयग्रोधम्**—न्यक् रोहतीति न्यग्रोधम्, तस्य विकार इत्यर्थेऽणि न्यग्रोधस्य चेत्यादिना न वृद्धिः अपि तु यकारात् पूर्वमैच्, अलोपः ।

हिन्दी

१९०३. गो शब्द से पुरीष अर्थ में मयट् होता है ।
१९०४. एणी शब्द से विकार व अवयव अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है ।
१९०५. गो एवं पयस् से विकार एवं अवयव अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।
१९०६. फल अभिधेय होने पर विकार एवं अवयवार्थक प्रत्यय का लुक् होता है ।
१९०७. तद्धित प्रत्यय के लुक् होने पर उपसर्जन स्त्रीप्रत्यय का लुक् होता है ।
१९०८. प्लक्षादिगण पठित से फलात्मक विकार और फलावयव अर्थ में अण् होता है ।
१९०९. न्यग्रोध शब्द को आदि वृद्धि नहीं होती, किन्तु य से पूर्व ऐचागम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९१०. जम्ब्वा वा-४।३।१६५।। अण् फले । जाम्बवम् । पक्षे ओरञ्, तस्य लुक्, जम्बु ।

१९११. लुप् च-४।३।१६६।। जम्ब्वाः फलप्रत्ययस्य लुब्वा स्यात् । लुपि युक्तवत्-जम्बूः ।

वा. फलपाकशुषामुपसंख्यानम् ।। व्रीहयः । मुद्गाः ।

वा. पुष्पमूलेषु बहुलम् ।। मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका । जात्याः पुष्पं जातिः । विदार्याःमूलं विदारी । बहुलग्रहणान्नेह-पाटलानि पुष्पाणि । साल्वानि मूलानि । बाहुलकात् क्वचिल्लुक्-अशोकम् । करवीरम् ।

१९१२. हरीतक्यादिभ्यश्च-४।३।१६७।। फलप्रत्ययस्य लुप् ।

मध्यमनोरमापूरणी

जम्ब्वा वेति—फलेऽर्थेऽण् । **जाम्बवम्**—जम्ब्वाः फलमित्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, अवादेशः । विधानसामर्थ्यान्नाणो लुक् । पक्षे 'ओरञ्' इति अञ्, अञो 'फले लुक्' इति लुक्। नपुंसकत्वात् जम्बू इत्यस्य ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वः, सार्लुक् । **जम्बूः**—जम्ब्वाः फलमित्यर्थे अण्, लुप् चेति अणो लुप्, लुपः फलन्तु 'लुपि युक्तिवद् व्यक्तिवचने' इति प्रकृतिवद्भावः। तेन नपुंसकह्रस्वत्वं न । पक्षे जाम्बवम् इत्यपि । **फलपाकेति**—फलपाकेन शुष्यन्ति इति फल-पाकशुषः, तद्वाचिभ्यः परस्य फलप्रत्ययस्य लुप् भवतीत्यर्थः । **व्रीहयः**- व्रीहिनामकानाम् ओषधीनां फलानि इत्यर्थे विल्वादिभ्यश्चेत्यण् । तस्य फलपाकशुषामिति लुप् । 'लुपि युक्तिवद् व्यक्तिवचने' इति युक्तवद्भावात् पुंल्लिङ्गता बहुवचनञ्च । **मौद्गाः**- मुद्गाख्यानाम् ओषधीनां फलानि इत्यर्थेऽणादयः । शेषं पूर्ववत् । **पुष्पमूलेषु**— विकारावयवप्रत्ययस्य लुम् स्यात् पुष्पेषु मूलेषु चाभिधेयेषु इत्यर्थः । **मल्लिका**—मल्लिकायाः पुष्पमित्यर्थे अनुदात्तादेश्चेति अञ्, पुष्पमूलेषु बहुलम् इति अञो लुप् । युक्तवद्भावात् स्त्रीत्वम् । **जातिः**- जात्याः पुष्पम् इत्यर्थे जातस्य अञो लुप् । **विदारी**—विदार्या मूलमित्यर्थे अनुदात्तादेश्चेत्यञ्, मूलेऽभिधेये अञो लुप्। युक्तवद्भावः । **पाटलानि**—पाटलायाः पुष्पाणि इत्यर्थे विल्वादिभ्यश्चेति अण्, अत्र अणो लुग्न, पुष्पमूलेषु बहुलमिति बहुलग्रहणसामर्थ्यात् । एवमेव साल्वस्य मूलानि **साल्वानि इति**। बहुलग्रहणात् क्वचित् नित्यं लुक्, न तु लुप् । **अशोकम् करवीरम् इति**—अशोकस्य पुष्पम्, करवीरस्य पुष्पमित्यर्थेऽणो लुक् । लुपि कृते तु युक्तवद्भावात् अशोकः, करवीरः इति स्यात्। अतः लुक् क्रियते ।

हिन्दी

१९१०. जम्बू शब्द से फल अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।

१९११. जम्बू से परे फल प्रत्यय का लुप् होता है विकल्प से ।

वा. फल पाक शुष-ओषधिवाची से विहित फलार्थकप्रत्यय का लुप् होता है ।

वा. पुष्प एवं मूल अर्थ में विकार एवं अवयवार्थक प्रत्यय का लुप् होता है ।

१९१२. हरीतक्यादि गणपठित से विहित फल प्रत्यय का लुप होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. हीरतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत् ।। हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः ।

इति प्राग्दीव्यतीयाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

हरीतक्यादीनाम्—फलप्रत्यये लुप्ते हरीतक्यादीनां प्रकृतिलिङ्गमेव भवति न तु प्रकृतिवचनमपि इत्याशयः । **हरीतक्यः**—हरीतक्या फलानि इत्यर्थे अनुदात्तादेश्च इत्यञ्, फले लुक् इति अञो लुकि प्राप्ते हरीतक्यादिभ्यश्चेति लुपि हरीतक्यादीनामिति प्रकृतिवत् लिङ्गम्, न तु वचनम् । अतः जसि हरीतक्यः इति भवति । इति प्राग्दीव्यतीयाः ।

हिन्दी

वा. हरीतक्यादि से फलार्थक प्रत्यय का लुप् होने पर लिङ्ग ही प्रकृतिवत् होता है, वचन नहीं ।

।। इति प्राग्दीव्यतीय ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ ठगधिकारः (प्राग्वहतीयप्रकरणम्)

१९१३. प्राग्वहतेष्ठक्-४।४।१।। तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ।

वा. तदाहेति माशब्दादिभ्यः उपसंख्यानम् ।। मा शब्दं कार्षीरिति य आह स माशाब्दिकः ।

वा. आहौ प्रभूतादिभ्यः ।। प्रभूतमाह-प्राभूतिकः । पार्याप्तिकः ।

वा. पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ।। सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः । सौखशायनिकः । अनुशतिकादिः ।

वा. गच्छतौ परदारादिभ्यः ।। पारदारिकः । गौरुतल्पिकः ।

१९१४. तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम्-४।४।२।। अक्षैःदीव्यति खनति जयति जितं वा-आक्षिकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्राग्वहतेरिति—तद्वहति रथयुगप्रासङ्गमित्यस्यैकदेशस्य वहतेः ग्रहणमत्रास्ति । तस्मात् सूत्रात् पूर्वं वहतिसंशब्दनाद् येऽर्थाः अनुक्रमिष्यन्ते तेषु ठक् इत्यधिकृतो ज्ञेयः । **तदाहेति**—इतिशब्दः तद्पदात् परं पठितव्यः । 'तद् इत्याह' इत्यर्थे माशब्दादिभ्यः ठक् वक्तव्यः । तद् इत्यनेन वाक्यार्थः इति शब्देन च वाक्यार्थस्य कर्मता गम्यते । **माशाब्दिकः**—'मा शब्दं कार्षीः' इत्याह, इत्यर्थे माशब्दात् ठक्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो धातु इति सुपो लुक्, ठस्येकः, भत्वाद् यस्येति चेत्यलोपः । **आहौ इति**—आह इत्येकदेशस्य इकारान्तत्वेन निर्देशात् आहौ इति । तदिति पूर्ववार्तिकार्थः अनुवर्तते । 'आह' इत्यर्थे द्वितीयान्ताद् प्रभूतादिभ्यष्ठग् भवतीत्यर्थः । **प्राभूतिकः**—प्रभूतम् आह इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । पर्याप्तमाहेत्यर्थे ठकि इकादेश आदिवृद्धौ अलोपे च **पार्याप्तिकः** इति । **पृच्छतौ इति**—तदित्यनुवर्तते । तद् पृच्छति इत्यर्थे द्वितीयान्तेभ्यः सुस्नातादिभ्यः ठग् वाच्य इत्यर्थः । **सौस्नातिकः**—सुस्नातं पृच्छति इत्यर्थे पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः इति ठक्, ठस्येकः, किति च, यस्येति चेत्यलोपः । **सौखशायनिकः**—सुखशयनं पृच्छतीत्यर्थे पृच्छताविति ठक्, ठस्येकः, सुखशयनेत्यस्य अनुशतिकादिगणे पाठात् अनुशतिकादीनाञ्चेति पूर्वोत्तरपदयोराद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **गच्छतौ**—तद् गच्छतीत्यर्थे द्वितीयान्तेभ्यः परदारादिशब्देभ्यः ठक् स्यादित्यर्थः । **पारदारिकः**-परदारान् गच्छतीत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति च । गुरुतल्पं = गुरुस्त्रियम्, गच्छतीत्यर्थे ठकि इकादेशे आदिवृद्धौ, अलोपे च गौरुतल्पिक इति । **तेन दीव्यतीति**—तेनेति तृतीयान्तस्य बोधकम् । तृतीयासमर्थात् 'तेन दीव्यति' इत्याद्यर्थेषु ठक् स्यादित्यर्थः । **आक्षिकः**-अक्षैः दीव्यति इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, किति चेत्यादिवृद्धिः ।

हिन्दी

१९१३. तद् वहति से पूर्व तक 'ठक्' प्रत्यय का अधिकार है ।

वा. 'तदेत्याह' इस अर्थ में द्वितीयान्त माशब्दादि शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है ।

वा. 'तद्-आह' इस अर्थ में प्रभूतादि द्वितीयान्तों से ठक् होता है ।

वा. 'तद्-पृच्छति' इस अर्थ में सुस्नातादि शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है ।

वा. 'गच्छति' अर्थ में परदारादि द्वितीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है ।

१९१४. दीव्यति आदि अर्थों में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९१५. संस्कृतम्-४।४।३।। दध्ना संस्कृतम्-दाधिकम् । मारीचिकम् ।
१९१६. तरति-४।४।५।। उडुपेन तरनि औडुपिकः ।
१९१७. गोपुच्छाट्ठञ्-४।४।६।। गौपुच्छिकः ।
१९१८. नौद्व्यचष्ठन्-४।४।७।। नाविकः । घटिकः ।
१९१९. चरति-४।४।८।। हस्तिना चरति हास्तिकः । शकटेन चरति शाकटिकः। दध्ना चरति दाधिकः ।
१९२०. पर्पादिभ्यःष्ठन्-४।४।१०।। पर्पेण चरति पर्पिकः । येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति स पर्पः । अश्विकः । रथिकः ।
१९२१. श्वगणाट्ठञ् च-४।४।११।। चात् ष्ठन् ।
१९२२. श्वादेरिञि-७।३।८।। ऐच्न । श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः ।

मध्यमनोरमापूरणी

संस्कृतम्—तेन इत्यनुवर्तते । तेन संस्कृतमित्यर्थे तृतीयान्ताद् ठक् स्यादित्यर्थः । **दाधिकम्**-दध्ना संस्कृतमित्यर्थे दधिशब्दात् ठक्, ठस्येकः, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेतीकारलोपः । **मारीचकम्**—मरीचिभिः संस्कृतमित्यर्थे ठक् । **तरति**—तेनेत्येव । **औडुपिकः**—उडुपेन तरतीत्यर्थे तरति इति सूत्रेण ठक्, । ठस्येकः, आद्यचो वृद्धिः । **गोपुच्छात्**—तरतीत्यनुवर्तते, तेनेति च । गोपुच्छेति तृतीयान्तात् तरतीत्यर्थे ठञ् स्यादित्यर्थः । **गौपुच्छिकः**—गोपुच्छेन तरतीत्यर्थे ठञ्, सुपो लुक्, ठस्येकः, तद्धितेष्वचामित्यादिवृद्धिः । **नौद्व्यचः**—नौशब्दात् द्व्यचश्च प्रातिपदिकात् तेन तरतीत्यर्थे ठन् स्यादित्यर्थः । ठकोऽपवादोऽयम् । **नाविकः**—नावा तरतीत्यर्थे ठन्, ठस्येकः, एचोऽयवायावः । घटेन तरतीत्यर्थे ठन्, ठस्येकः, यस्येति चेत्यलोपः, **घटिक** इति । **चरति-तेनेत्यनुवर्तते,** तेन चरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **हास्तिकः**-हस्तिना चरतीत्यर्थे ठक्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक्, ठस्येकः, आद्यचो वृद्धिः, हास्तिन् इक इति । भत्वात् नस्तद्धिते इति टेरिनो लोपः । शकटेन चरति इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, अलोपः । दध्ना चरति इत्यर्थे ठक्, इकादेशः, भत्वादिकारलोपः, आदिवृद्धिः, **दाधिक इति । पर्पादिभ्यः ष्ठन्**—तेन चरति इत्यर्थे ष्ठन् । षकार इत्, ङीषर्थम् । **पर्पिकः**—पर्पेण चरतीत्यर्थे ष्ठन्, ठस्येकः, अलोपः । स्त्रीलिङ्गे, पर्पिकी इति । एवमेव अश्वेन चरति, रथेन चरति इत्यर्थे च ष्ठनि **अश्विकः, रथिक इति । श्वगणात्**—श्वगणशब्दात् तेन चरतीत्यर्थे ठञ् स्यात् चकारात् ष्ठनपि स्यात् इत्यर्थः । **श्वादेरिति**—श्वन् शब्दः आदिर्यस्येति श्वादिः । अङ्गस्येत्यधिकारः । न कर्मव्यतिहारे इत्यतो 'न' इत्यनुवर्तते । ऐच् इत्यनुवर्तते च । श्वन्-पूर्वपदस्याङ्गस्य इञि परे ऐच् न भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

१९१५. 'संस्कृत' अर्थ में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है ।
१९१६. 'तेन तरति' अर्थ में तृतीयान्त से ठक् प्रत्यय होता है ।
१९१७. गोपुच्छ शब्द से 'तेन तरति' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।
१९१८. नौ एवं दो अच् वाले प्रातिपदिक से तरति अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है ।
१९१९. तेन चरति अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।
१९२०. पर्पादिगण पठित से तेन चरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है ।
१९२१. श्वगण से 'तेन चरति' अर्थ में ठञ् एवं ष्ठन् प्रत्यय होता है ।
१९२२. श्वपूर्वपद वाले अङ्ग को इञ् प्रत्यय परे रहते ऐच्-नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. इकारादाविति वाच्यम् ॥ श्वगणेन चरति श्वागणिकः । श्वगणिकः ।

१९२३. वेतनादिभ्यो जीवति-४।४।१२॥ वेतनेन जीवति वैतनिकः । धानुष्कः ।

१९२४. हरत्युत्सङ्गादिभ्यः-४।४।१५॥ उत्सङ्गेन हरति औत्सङ्गिकः ।

१९२५. भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्-४।४।१६॥ भस्त्रया हरति भस्त्रिकः । षित्त्वाद् भस्त्रिकी ।

१९२६. विभाषा [1]विवधात्-४।४।१७॥ ष्ठन् । विवधेन हरति विवधिकः । पक्षे ठक्-वैवधिकः । एकदेशविकृतत्वाद् वीवधादपि । वीवधिकः, वैवधिकः । विवधवीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते ।

मध्यमनोरमापूरणी

श्वाभस्त्रिः—श्वभस्त्रस्यापत्यमित्यर्थे अत इञ् इति इञ्, सुपो लुक्, द्वारादीनाञ्चेति ऐच् प्राप्तः, श्वादेरिञि इति निषिद्धः, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । **इकारादाविति**—श्वादेरिञि इति निषेधः इकारादौ प्रत्ययेऽपि भवतीति वक्तव्यम् । तेन श्वगणेन चरति इत्यर्थे श्वगणाट्ठञ् चेति ठञ्, ठस्येकः, प्राप्तः ऐच् इकारादाविति वाच्यमिति निषिद्धः, आदिवृद्धिः, अलोपः । ष्ठन् पक्षे वृद्धिनिमित्तत्वाभावान्नादिवृद्धिः, श्वगणिकः इति भवति । **वेतनादिभ्यः**—तेनेत्येव । जीवतीत्यर्थे वेतनादितृतीयान्तेभ्यः ठञ् स्यादिति । **वैतनिकः**—वेतनेन जीवतीत्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, ञित्त्वादादिवृद्धिः, अलोपः । धनुषा जीवतीत्यर्थे ठञि, इसुसुक्तान्तात् कः इति उसन्तात् परस्य ठस्य कः, आदिवृद्धिः, धानुस्क इति, सस्य रुत्वे विसर्गे च कृते इणः षः इति षः, **धानुष्क इति । हरति इति**—तेनेत्येव । हरतीत्यर्थे उत्सङ्गादितृतीयान्तेभ्यः ठक् भवतीत्यर्थः । **औत्सङ्गिकः**—उत्सङ्गात् ठक्, आदिवृद्धिः, इकादेशः । **भस्त्रादिभ्यः**—हरति इत्यर्थे भस्त्रादितृतीयान्तेभ्यः ष्ठन् स्यात् । **भस्त्रिकः**—ष्ठन्, ठस्येकः, भत्वाद् आकारलोपः । स्त्रीलिङ्गे ष्ठनः षित्त्वात् षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीषि **भस्त्रिकी** इति । **विभाषाविवधात्**—हरति, तेनेत्येव। **विवधिकः**—विवधेन हरतीत्यर्थे ष्ठन्, ठस्येकः, अलोपः । पक्षे ठक्, किति चेत्यादिवृद्धौ वैवधिक इति । **एकदेशेति**—विवध वीवध शब्दौ समानार्थकौ, सूत्रे विवधेति पाठः । अतः एकदेशविकृतमनन्यवत् इति परिभाषया वीवधशब्दादपि ष्ठनि वीवधिकः इति, ठकि तु वैवधिक इति भवति । काशिकाकारस्तु सूत्रे एव 'विभाषा विवधवीवधात्' इत्यत्र वीवधशब्दमपि पठति । अतः सूत्रभेदोऽपि विचारणीयः ।

हिन्दी

वा. इकारादिप्रत्यय परे श्वपूर्वपदाङ्ग को ऐच् नहीं हो यह कहना चाहिए ।

१९२३. तृतीयान्त वेतनादिशब्द से 'जीवति' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

१९२४. तृतीयान्त उत्सङ्गादि से 'तेन हरति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१९२५. भस्त्रादि तृतीयान्त से 'हरति' अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है ।

१९२६. तृतीयान्त विवध से 'हरति' अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

1. काशिकायाम्-"विभाषा विवधवीवधात्' इति सूत्रम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९२७. निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः-४।४।१९।। अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्-आक्षद्यूतिकं वैरम् ।
१९२८. संसृष्टे-४।४।२२।। दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ।
१९२९. लवणाल्लुक्-४।४।२४।। लवणेन संसृष्टो-लवणः सूपः ।
१९३०. मुद्गादण्-४।४।२५।। मौद्ग ओदनः ।
१९३१. उञ्छति-४।४।३२।। बदराणि उञ्छति बादरिकः ।
१९३२. रक्षति-४।४।३३।। समाजं रक्षति-सामाजिकः ।
१९३३. शब्ददर्दुरं करोति-४।४।३४।। शब्दं करोति शाब्दिकः । दार्दुरिकः ।
१९३४. पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति-४।४।३५।। स्वरूपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणम् । मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव ।

मध्यमनोरमापूरणी

निर्वृत्तेति—तेनेत्यनुवर्तते । निर्वृत्तम् = जातं सम्पन्नं वा । अक्षद्यूतादितृतीयान्तेभ्यः निर्वृत्त इत्यर्थे ठक् भवतीत्यर्थः । **आक्षद्यूतिकम्**—अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमित्यर्थे ठक्, ठस्येकः, किति चेत्यादिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **संसृष्टे**—तृतीयान्ताद् 'संसृष्टः' इत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **संसृष्टम्**=एकीभूतम् अभिन्नं वा । **दाधिकम्**—दध्ना संसृष्टमित्यर्थे ठक्, ठस्येकः, किति च, इलोपः । **लवणात्**—लवणशब्दात् संसृष्ट इत्यर्थे जातस्य ठको लुग् भवतीत्यर्थः। **लवणः सूपः**—लवणेन संसृष्ट इत्यर्थे संसृष्टे इति ठक्, लवणाल्लुगिति ठको लुक् । **मुद्गात्**-मुद्गतृतीयान्ताद् संसृष्ट इत्यर्थे अण् भवति । **मौद्ग ओदनः**—मुद्गेन संसृष्टः इत्यर्थेऽण्, आदिवृद्धिः, यस्येति च । **उञ्छति**—तद् इति द्वितीयान्तमनुवर्तते । द्वितीयान्ताद् उञ्छतीत्यर्थे ठक् भवति । कणशः ग्रहणम् उञ्छः । भूमिपतितस्य कणादेशादानमिति यावत् । **बादरिकः**—बदराणि उञ्छति इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, किति च, अलोपः । **रक्षति**—तद् रक्षति इत्यर्थे द्वितीयान्ताद् ठक् स्यादित्यर्थः । **सामाजिकः**—समाजं रक्षति इत्यर्थे ठक्, सुपो लुक्, ठस्येकः, समाज इक इति, किति चेत्यादिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **शब्ददुरम्**—तदित्यनुवर्तते । शब्ददर्दुर इत्याभ्यां द्वितीयान्ताभ्यां करोति इत्यर्थे ठक् स्यात् । **शाब्दिकः**—शब्दं करोति इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः। दर्दुरं करोतीत्यर्थे ठकि **दार्दुरिकः** । **पक्षिमत्स्येति**—तदित्यनुवर्तते, 'हन्ति' इत्यर्थे द्वितीयान्तेभ्यः पक्षिमत्स्यमृगेभ्यः ठग्भवतीत्यर्थः। **स्वरूपस्येति**—सूत्रपठितैः शब्दैः तत्तत्स्वरूपाणां तत्तत्पर्यायाणां तत्तद्विशेषवाचकानां च

हिन्दी

१९२७. तृतीयान्त अक्षद्यूतादि से 'निर्वृत्त' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।
१९२८. तृतीयान्त से 'संसृष्ट' = एकीभाव अर्थ में ठक् होता है ।
१९२९. लवण से विहित संसृष्टार्थक ठक् का लुक् होता है ।
१९३०. तृतीयान्त मुद्ग से संसृष्ट अर्थ में अण् प्रत्यय होता है ।
१९३१. द्वितीयान्त से 'उञ्छति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।
१९३२. द्वितीयान्त से 'रक्षति' अर्थ में ठक् होता है ।
१९३३. 'करोति' अर्थ में शब्द व दर्दुर द्वितीयान्त से ठक् होता है ।
१९३४. द्वितीयान्त पक्षि मत्स्य व मृग के वाचक से 'हन्ति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पक्षिणो हन्ति-पाक्षिकः । शाकुनिकः । मायूरिकः । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाकुलिकः । मार्गिकः । हारिणिकः । सारङ्गिकः ।

१९३५. धर्मं चरति-४।४।४१।। धार्मिकः ।

वा. अधर्माच्चेति वक्तव्यम् ।। आधर्मिकः ।

१९३६. तदस्य पण्यम्-४।४।५१।। अपूपाः पण्यमस्य आपूपिकाः ।

१९३७. लवणाट्ठञ्-४।४।५२।। लावणिकः ।

१९३८. शिल्पम्-४।४।५५।। मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ।

१९३९. प्रहरणम्-४।४।५७।। असिः प्रहरणमस्य आसिकः । धानुष्कः ।

१९४०. शक्तियष्टयोरीकक्-४।४।५९।। शाक्तीकः । याष्टीकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ग्रहणं भवति । मत्स्यपर्यायेषु मीनशब्दस्यैव ग्रहणं न तु अन्येषामिति स्वं रूपमिति सूत्रे भाष्ये। स्वरूपस्योदाहरणम्-**पाक्षिक इति**—पक्षिणः हन्तीत्यर्थे ठक्, सुपो लुक्, ठस्येकः, पक्षिन् इक इति, आदिवृद्धिः, भत्वाट्टेर्लोपः । **पर्यायस्योदाहरणम्**—शाकुनिक इति—शकुनिं हन्ति इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः इलोपः । मयूरान् हन्तीत्यर्थे ठकि **मायूरिकः** । मत्स्यान् हन्तीत्यर्थे ठकि आदिवृद्धौ इकादेशेऽलोपे मात्स्यिक इति । मीनान् हन्तीत्यर्थे मैनिकः । **मत्स्यविशेषस्य तु-शाकुलिकः**—शाकुलान् हन्तीत्यर्थे ठकि इकादेशेऽलोपे । **मार्गिकः**—मृगान् हन्तीत्यर्थे ठक्, इकादेशः, आदिवृद्धिः, रपरत्वम् । हरिणान् हन्तीति **हारिणिकः** । सारङ्गान् हन्तीति **सारङ्गिकः** । **धार्मिकः**—धर्मं चरतीत्यर्थे 'धर्मं चरतीति' सूत्रेण ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति च । **अधर्माच्चेति**—चरतीत्यर्थे द्वितीयान्ताद् अधर्म शब्दाट्ठग् इति वक्तव्यम् इत्यर्थः। तेन अधर्मं चरतीत्यर्थे ठकि ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः, **आधर्मिक** इति । **तदस्य**-अस्य पण्यमित्यर्थे प्रथमान्तात् ठक् स्यात् । **आपूपिकः**- अपूपशब्दात् ठक्, इकादेशः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **लवणाट्ठञ्**—तदस्य पण्यमित्यर्थे लवणशब्दाट्ठञ् स्यात् । **लावणिकः**—लवणं पण्यमस्येत्यर्थे ठञ् । **शिल्पम्**—तदस्येत्यनुवर्तते । तदस्य शिल्पमित्यर्थे प्रथमान्तात् ठक् इत्यर्थः । **मार्दङ्गिकः**—मृदङ्गशब्दात् ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धौ रपरत्वम् । **प्रहरणम्**—तदस्येत्येव । **आसिकः**—असिः प्रहरणमस्येत्यर्थे ठकि इकादेशे आदिवृद्धौ अलोपे स्वादिकार्यम् । **धानुष्कः**—धनुः प्रहरणमस्येत्यर्थे ठक् । इसुसुक्तान्तात् कः इति ठस्य कादेशः, आदिवृद्धिः, सस्य रुत्वे विसर्गे च कृते धानुः क इति, इणः षः इति विसर्गस्य षत्वम् । **शक्ति-यष्टयोरीकक्**—तदस्य प्रहरणमित्यर्थे शक्तियष्टिप्रथमासमर्थात् ईकक् भवतीत्यर्थः । **शाक्तीकः**—शक्तिः प्रहरणमस्येत्यर्थे ईकक् । सुपो लुक्, आदिवृद्धिः, इलोपः । यष्टिः प्रहरण-मस्येत्यर्थे ईककि आदिवृद्धौ इकारलोपे **याष्टीकः इति** ।

हिन्दी

१९३५. द्वितीयान्त धर्म से 'चरति' अर्थ में ठक् होता है ।

वा. द्वितीयान्त अधर्म से भी 'चरति' अर्थ में ठक् होता है ।

१९३६. 'वह है पण्य इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् प्रत्यय होता है ।

१९३७. 'तदस्य पण्यम्' अर्थ में लवण से ठञ् प्रत्यय होता है ।

१९३८. 'तदस्य शिल्पम्' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् होता है ।

१९३९. 'वह है प्रहरण इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त से ठक् होता है ।

१९४०. शक्ति और यष्टि से 'तदस्य प्रहरणम्' अर्थ में ईकक् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९४१. अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः-४।४।६०।। अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः । नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः । दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः।

१९४२. शीलम्-४।४।६१।। अपूपभक्षणं शीलं यस्य स आपूपिकः ।

१९४३. छत्रादिभ्यो णः-४।४।६२।। गुरोर्दोषाणामावरणं छत्रं, तच्छीलमस्येति छात्रः ।

१९४४. तत्र नियुक्तः-४।४।६९।। आकरे नियुक्तः आकरिकः ।

१९४५.-निकटे वसति-४।४।७३।। नैकटिको भिक्षुः । ।। इति ठगधिकारः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अस्तिनास्ति—तदस्येत्यनुवर्तते । अस्ति नास्ति दिष्ट इत्येतेभ्यः प्रथमासमर्थेभ्यः तदस्येत्यर्थे ठक् स्यादित्यर्थः । **आस्तिकः**—अस्ति इति मतिर्यस्येत्यर्थे ठक्, आदिवृद्धिः, ठस्येकः, इकार-लोपः । **नास्तिकः**—नास्ति शब्दाट्ठक् । शेषं पूर्ववत् । **दैष्टिकः**—दिष्टं=दैवम्, दिष्टम् इति मतिर्यस्येत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः दैष्ट इक इति, यस्येति च । अत्र अस्तिनास्तिशब्दौ 'अस्ति इति मतिः अस्यास्ति', नास्ति इति मतिः यस्यास्ति, दिष्टम् इति मतिः यस्यास्ति, इत्यर्थेषु निपातौ विद्येते । **शीलम्**—तदस्य इत्यनुवर्तते । प्रथमान्तात् शीलमस्येत्यर्थे ठक् भवतीत्यर्थः । **आपूपिकः**-अपूपभक्षणं शीलम् अस्य इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । **छत्रादिभ्यः इति**—तच्छीलमस्येत्यर्थे छत्रशब्दात् प्रथमान्तात् णः प्रत्ययो भवति। छादनाद् आवरणाद् वा छत्रम् । छत्रस्य शीलत्वं नोपपद्यते, अतः छत्रपदं गुरोः दोषावरणे गौणमस्ति । **तदेवाह**—गुरोरिति । **छात्रः**—गुरोः दोषाणामावरणं छत्रम्. छत्रम् = दोषावरणं, शीलमस्येत्यर्थे छत्रादिभ्य इति णः, णकार इत् । णित्त्वात्तद्धितेष्वचामादेरिति। वृद्धिः, अलोपः भत्वात् । **तत्र नियुक्तः**—तत्रेति सप्तम्यन्तग्रहणम् । सप्तम्यन्ताद् 'नियुक्तः' इत्यर्थे ठक् स्यादि-त्यर्थः । **आकरिकः**—आकरो खनिः, तत्र नियुक्तः इत्यर्थे ठक्, इकादेशः । **निकटे वसति**—सप्तम्यन्तात् निकटशब्दात् 'वसति' इत्यर्थे ठक् भवतीत्यर्थः । **नैकटिको भिक्षुः**—'आरण्यको भिक्षुः ग्रामात् क्रोशे वसेत्' इति शास्त्रवचनमुल्लंघ्य निकटे यो वसति भिक्षुः सः **नैकटिकः**। निकटशब्दात् ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, अलोपः ।

।। इति ठगधिकारः (प्राग्वहतीयप्रकरणम्) ।।

हिन्दी

१९४१. प्रथमासमर्थ मतिप्रतिपादक अस्ति नास्ति तथा दिष्ट से षष्ठ्यर्थ में ठक् होता है।

१९४२. प्रथमान्त से 'अस्य शीलम्, (इसका शील) अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१९४३. शील प्रतिपादक छत्रादिगणपठित से 'ण' प्रत्यय होता है ।

१९४४. सप्तम्यन्त से 'नियुक्तः' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१९४५. सप्तम्यन्त निकट शब्द से 'वसति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

।। इति ठगधिकार ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ यदधिकारः (प्राग्घितीयाः)

१९४६. प्राग्घिताद् यत्-४।४।७५।। 'तस्मै हितम्' इत्यतः प्राग् यदधिक्रियते ।

१९४७. तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्-४।४।७६।। रथं वहति रथ्यः । प्रासङ्ग्यः।

१९४८. धुरो यड्ढकौ-४।४।७७।। धुर्यः, धौरेयः ।

१९४९. हलसीराट्ठक्-४।४।८१।। हालिकः । सैरिकः ।

१९५०. विध्यत्यधनुषा-४।४।८३।। द्वितीयान्ताद् विध्यतीत्यर्थे यत्, न चेत्तत्र धनुष्करणम् । पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः ।

१९५१. नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु-४।४।९१।। नावा तार्यं नाव्यम् । वयसा तुल्यो वयस्यः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्राग्घिताद् यत्—प्राग् हिताद् यत् इतिच्छेदः । **हितशब्दः** तद्घटितसूत्रबोधकः । 'तस्मै हितम्' इत्यस्मात् पूर्वं यत्प्रत्ययस्य अधिकारोऽस्ति । **तद्वहतिरथयुगेति**—तदिति द्वितीयान्तपरम् । द्वितीयान्तेभ्यो रथयुगप्रासङ्ग इत्येभ्यो 'वहति' इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **रथ्यः**-रथं वहतीत्यर्थे रथशब्दात् यत्, सुपो लुक्, भत्वादलोपः । **युग्यः**—युगं वहति इत्यर्थे यत्। शकटादिवहनकाले वृषादीनां स्कन्धे तिर्यक् ईषत् प्रोतं यत् काष्ठम् आरोप्यते तद् युगमस्ति। प्रासङ्गं वहतीति प्रासङ्ग्यः । वृषादीनां शकटे योजनं शिक्षयितुं यत् काष्ठमारोप्यते तद् प्रासङ्गम्। **धुरो यदिति**—द्वितीयान्ताद् धुर्‌शब्दात् वहतीत्यर्थे यत् ढक् च प्रत्ययौ भवतः । **धुर्यः**—धुरं वहतीत्यर्थे यत्, हलि चेति प्राप्तो दीर्घः न भकुर्छुराम् इति निषिध्यते । ढकि ढस्य एयादेशे आदिवृद्धौ **धौरेयः** इति । **हलसीरात्**—द्वितीयान्तहलसीराभ्यां वहतीत्यर्थे ठक् स्यात् । **हालिकः**—हलं वहतीत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, अलोपः । सीरं वहतीत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः । **विध्यत्यधनुषा**—तदित्यनुवर्तते । द्वितीयान्ताद् विध्यतीत्यर्थे यत् स्यात्। **अधनुषेति**—धनुषः अभावः अधनुः, धनुषा इति सप्तम्यर्थे तृतीया । अतः धनुषः करणस्याभावे इत्यर्थोऽपि भवति । **पद्याः**— पादौ विध्यन्ति इत्यर्थे यति सुपो लुक्, पद्यत्यतदर्थे इति पादस्य पदादेशे पद्याः इति बहुवचने रूपम् । अधनुषा इति पदाभावे धनुषा चोरं विध्यति इत्यत्र चोरशब्दादपि यत् प्रसज्येत । अतः अधनुषेति पदं सूत्रेऽस्ति । **नौवयोधर्मेति**—नौ वयस् धर्म विष, मूल, मूल, सीता, तुला, इत्येभ्योऽष्टाभ्यः क्रमात् तार्य तुल्य प्राप्य वध्य आनाम्य सम समित सम्मित इत्याद्यर्थेषु यत् प्रत्ययः स्यातित्यर्थः ।

हिन्दी

१९४६. 'तस्मै हितम्' से पूर्व तक यत् प्रत्यय का अधिकार है ।

१९४७. द्वितीयान्त रथ युग व प्रासङ्ग से 'वहति' अर्थ में यत् होता है ।

१९४८. द्वितीयान्त धुर् शब्द से 'तद् वहति' अर्थ में यत् व ढक् होता है ।

१९४९. द्वितीयान्त हल एवं सीर से 'तद्वहति' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है ।

१९५०. द्वितीयान्त से 'विध्यति' अर्थ में यत् होता है, यदि धनुष् वेधन का करण न हो।

१९५१. नौ वयस् इत्यादि आठ से क्रमशः तार्य आदि अर्थों में यत् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यो विष्यः । मूलेन आनाम्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं तुल्यम् ।

१९५२. तत्र साधुः-४।४।९८।। अग्रे साधुः अग्र्यः । सामसु साधुः सामन्यः। कर्मण्यः । शरण्यः ।

१९५३. सभाया यः-४।४।१०५।। सभ्यः ।

।। इति यतोऽवधिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रत्ययार्थद्वारेण तृतीयाविभक्तिर्लभ्यते । **नाव्यम्**—नावा तार्यमित्यर्थे यत्, एचोऽयवायावः, सोरम्, अमि पूर्वः । धर्मेण प्राप्यमित्यर्थे यति अलोपे धर्म्यम् इति । **विष्य** इत्यत्र वध्येऽर्थे यति यस्येति चेत्यलोपः । **मूल्यम्**—मूलेन आनाम्यमित्यर्थे यति अलोपः । आनाम्यं तावत् अभिभवनीयम् । पटादेरुत्पादनार्थं वणिग्भिः विनियुक्तं द्रव्यं मूलम् । तेन सह यदधिकं द्रव्यम् आनम्यते विक्रेतुः सम्मतीकरणेन लभ्यते तन्मूल्यम् । लोकव्यवहारस्तु द्रव्यं मूल्यमिति, तल्लक्षणया ज्ञेया । मूलेन समो मूल्यः । उभयोः मूलशब्दयोः नैकशेषः सूत्रे, यथासंख्यं प्रत्यय-प्रवृत्तये इति ज्ञेयम् । **सीत्यम्**—सीतया सम्मितं=कृष्टमित्यर्थे यति आलोपः । **सीता** लाङ्गलपद्धतिर्भवति । **तुल्यम्**—तुलया संमितं=समानमित्यर्थे यति आलोपः । **तत्र साधुः**-सप्तम्यन्तात् 'साधुः' इत्यर्थे यत् स्यात्। अग्रे साधुरित्यर्थे यति अलोपे अग्र्यः इति । सामसु साधुः=प्रवीणः इत्यर्थे यत्, **सामन्य** इति । अत्र ये चाभावकर्मणोरिति प्रकृतिभावान्न टेर्लोपः । कर्मणि शरणे च साधुः **कर्मण्यः शरण्य** इति । **सभाया यः**—साधौ इत्येव । **सभ्यः**—सभायां साधुरित्यर्थे यः ।

।। इति मध्यमनोरमापूरण्यां यतोऽवधिः (प्राग्घितीयाः) ।।

हिन्दी

१९५२. सम्यन्त से 'साधुः' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

१९५३. सभा से साधु अर्थ में य प्रत्यय होता है ।

।। इति प्राग्घितीय ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ छयतोरधिकारः

१९५४. प्राक् क्रीताच्छः-५।१।१।। तेन क्रीतमित्यतः प्राक् छोऽधिक्रियते ।

१९५५. उगवादिभ्यो यत्-५।१।२।। प्राक् क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । छस्यापवादः ।

ग. सू. नाभि नभञ्च ।। नभ्योऽक्षः । नभ्यमञ्जनम् । रथनाभावेवेदम् ।

ग. सू. शुनः सम्प्रसारणं वा च दीर्घत्वम् ।। शून्यम्, शुन्यम् ।

ग. सू. ऊधसोऽनङ् च ।। ऊधन्यः ।

१९५६. कम्बलाच्च संज्ञायाम्-५।१।३।। यत् । कम्बल्यमूर्णा पलशतम् । संज्ञायां किम्-कम्बलीया ऊर्णा ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्राक्क्रीतात्—तेन क्रीतमिति वक्ष्यते, तस्मात् प्राक् येषु सूत्रेषु अर्थनिर्देशो वर्तते न तु प्रत्यय-निर्देशः, तत्र छप्रत्ययो भवति इति बोध्यम् । **उगवादिभ्यः**—प्राक् क्रीतीयेष्वर्थेषु उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्यात् । **नाभि नभञ्च**—गवादिगणसूत्रमिदम् । नाभिशब्दः यत् प्रत्ययं नभादेशं च प्राप्नोतीत्यर्थः । **नभ्यः अक्षः**—नाभये हितः इत्यर्थे यत्, नाभेः नभादेशश्च, भत्वाद-लोपः । चक्रमध्यगतं छिद्रं नाभिः, यत्र अक्षदण्डः प्रवेश्यते, तस्मै हितोऽक्षदण्डः नभ्यः। शरीरावयवाद् नाभिशब्दात् तु यति नाभये हितमित्यर्थे नाभ्यमिति भवति । **नभ्यमञ्जनम्**-नाभये हितमित्यर्थे एव यत् नभादेशश्च । अञ्जनं = तैलसेकः, नाभेः अञ्जने कृते तत्र प्रोतं चक्रं सुपरिवतर्तितं भवति, अतः नाभये हितमित्यर्थो भवति । **शुनः सम्प्रसारणम्**—गवादि-गणसूत्रमिदम् । श्वन्शब्दात् यत् स्यात्, तस्य सम्प्रसारणं स्यात् सम्प्रसारणस्य च पाक्षिकदीर्घो भवतीत्यर्थः । **शून्यम्-शुन्यम्**—शुने हितमित्यर्थे श्वन् शब्दात् यत्, सम्प्रसारणम्, सम्प्रसारण-स्य च दीर्घः । शूअन् य इति, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम् । दीर्घविकल्पे शुन्यम् । **ऊधसोऽनङ् च**—गणसूत्रम् इदम् । ऊधस् शब्दात् यत् स्यात् प्रकृतेरनङादेशश्चेत्यर्थः । **ऊधन्यः**—ऊधसे हितमित्यर्थे यत्, अनङ् आदेशश्च प्रकृतेरन्त्य वर्णस्य । ऊध अन् य इति, अतो गुणे इति पररूपम्, ऊधन्य इति, प्रकृतिवद्भावात् न टेर्लोपः । **कम्बलात्**—कम्बलात् प्राक्क्रीतीयेषु अर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायामित्यर्थः । **कम्बल्यम्**—कम्बलाय हितमित्यर्थे यत्, भत्वादलोपे सोरम् । **कम्बलीया-ऊर्णा**—कम्बलाय हिता ऊर्णा इत्यत्र संज्ञा गम्यते, अतो न यत्, अपि तु छः एव ।

हिन्दी

१९५४. 'तेन क्रीतम्' से पूर्व तक छ प्रत्यय का अधिकार है ।

१९५५. उवर्णान्त व गवादि चतुर्थ्यन्त से यत् प्रत्यय होता है ।

ग. सू. नाभि शब्द से यत् प्रत्यय एवं नाभि को नभ आदेश होता है ।

ग. सू. श्वन् से 'हितम्' अर्थ में यत् तथा श्वन् को सम्प्रसारण होता है ।

ग. सू. ऊधस् से 'तस्मै हितम्' अर्थ में यत् प्रत्यय व ऊधस् को अनङ् होता है ।

१९५६. कम्बल से प्राक्क्रीतीय अर्थों में यत् प्रत्यय होता है, संज्ञा में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९५७. विभाषा हविरपूपादिभ्यः-५।१।४।। आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम् । पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडाशीयाः । अपूप्यम्-अपूपीयम् ।

१९५८. तस्मै हितम्-५।१।५।। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक् । शङ्कव्यं दारु। गव्यम् । हविष्यम् ।

१९५९. शरीरावयवाद्यत्-५।१।६।। दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । नस्यम् ।

१९६०. अजाविभ्यांथ्यन्-५।१।८।। अजथ्या यूथिः । अविथ्या ।

मध्यमनोरमापूरणी

विभाषेति—हविर्विशेषवाचिभ्यः अपूपादिभ्यश्च प्राक्क्रीतीयेषु अर्थेषु वा यत् स्यादित्यर्थः । आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षायै हितमित्यर्थे यत्, भत्वादालोपः । पक्षे प्राक्क्रीताच्छः । छस्य आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति ईयादेशः, भत्वादाकारलोपः । तप्ते दुग्धे दध्नः निक्षेपे सति यत् घनीभूतमुत्पद्यते सा आमिक्षा इत्युच्यते । भाषायां 'फटन' इति । **पुरोडाश्याः**-पुरोडाशाय हिताः इत्यर्थे विकल्पेन यत्, अलोपः । पक्षे छः, छस्येयादेशे यस्येति चेत्यलोपे जसि **पुरोडाशीयाः** इति । अपूपेभ्यो हितमित्यर्थे यति अलोपे **अपूप्यम्** । छे तु अपूपीयम् । **तस्मै हितम्**—तस्मै इति चतुर्थ्यन्तग्राहकम् । चतुर्थ्यन्ताद् 'हितम्' इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **वत्सीयः**—वत्सेभ्यो हितम् इत्यर्थे वत्सशब्दात् छः, छस्येयादेशः, अलोपः । **शङ्कव्यम्**—शङ्कवे हितमित्यर्थे शङ्कु-शब्दात् उगवादिभ्यो यत्, इति यति, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि, ओर्गुण इति गुणे कृते अवादेशः । गोभ्यो हितम् इत्यर्थे उगवादित्वाद्यत्, अवादेशः, **गव्यम्-तृणादिकम्** । हविषे हितमित्यर्थे उगवादिभ्यो यत् इति यत् । अत्र विभाषा हविरिति न प्रवर्तते, तत्र हविर्विशेषवाचिनामेव ग्रहणात् । **शरीरावयवादिति**—'हितम्' इत्यर्थे चतुर्थ्यन्ताद् शरीरावयववाचकात् यत् स्यादित्यर्थः । **दन्त्यम्**—दन्तेभ्यो हितमित्यर्थे यत्, अलोपः । मञ्जनमित्यर्थः । कण्ठाय हितम् कण्ठ्यम् । **नस्यम्**—नासिकायै हितमित्यर्थे यत्, पद्दन्नोमासहृन्निश इत्यादिसूत्रेण नासिकायाः नसादेशः । भाष्ये तु 'नासिकायाः यत् तस्क्षुद्रेषु नस्', इति पठितम् । **अजाविभ्याम्**—अज अवि इत्याभ्यां तस्मै हितमित्यर्थे थ्यन् स्यात् । छस्यापवादः । **अजथ्या यूथिः**—अजेभ्योऽजाभ्यो वा हिता इत्यर्थे थ्यन् । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया अजाशब्दादपि थ्यन् । तसिलादिष्वाकृत्वसुचः इति अजा इत्यस्य पुंवद्भावः । टाप्, दीर्घः । यूथिः=औषधिभेदः । अविभ्यो हिता अविथ्या इति ।

हिन्दी

१९५७. हविविशेषवाची तथा अपूपादिगण पठित से प्राक्क्रीतीय अर्थ में यत् होता है, विकल्प से ।

१९५८. चतुर्थ्यन्त से 'हितम्' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।

१९५९. शरीरावयववाची चतुर्थ्यन्त से 'हित' अर्थ में यत् होता है ।

१९६०. चतुर्थ्यन्त अज एवं अवि शद से 'हितम्' अर्थ में 'थ्यन्' प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९६१. आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः-५।१।९॥

१९६२. आत्माध्वानौ खे-६।४।१६९॥ प्रकृत्या स्तः । आत्मने हितम् आत्मनीनम् । विश्वजनीनम् । कर्मधारयादेवेष्यते । अन्यत्र विश्वजनीयम् । वा. पञ्चजनादुपसंख्यानम् ॥ पञ्चजनीनम् । कुमति चेति णः-मातृभोगीणः । वा. आचार्यादणत्वञ्च ॥ आचार्यभोगीनः ।

॥ इति छयतोः पूर्णोऽवधिः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

आत्मन् इति—आत्मन् विश्वजन इत्याभ्यां भोगोत्तरपदाच्च तस्मै हितमित्यर्थे खः स्यात्। **आत्माध्वानौ खे**—प्रकृत्यैकाच् इत्यतः प्रकृत्या इत्यनुवर्तते । खे परे आत्मन् अध्वन् इत्येतयोः प्रकृतिभावः इत्यर्थः । **आत्मनीनम्**—आत्मने हितमित्यर्थे खः, खस्येनादेशः, भत्वाट्टिलोपे प्राप्ते तं प्रबाध्य आत्माध्वानौ खे इति प्रकृतिभावः । विश्वजनाय हितमित्यर्थे खः, ईनादेशः, अलोपः । कर्मधारयादेव विश्वजन शब्दात् खः भवतीत्यर्थः, तेन विश्वस्य जनः, विश्वो जनः यस्येत्यादौ षष्ठीतत्पुरुषे बहुव्रीहौ वा कृते न खः, अपि तु छः एव, छस्येयादेशे **विश्वजनीयम्** इति । **पञ्चजनादिति**-खः इति शेषः । मातृभोगाय हितः इत्यर्थे खः, ईनादेशः, णत्वम्, मातृभोगीणः इति । ॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां छयतोः पूर्णोऽवधिः ॥

हिन्दी

१९६१. आत्मन्, विश्वजन, व भोगोत्तरपद से 'तस्मै' हित के अर्थ में ख-प्रत्यय होता है।
१९६२. ख प्रत्यय परे आत्मन् एवं अध्वन् को प्रकृतिभाव होता है ।
वा. पञ्चजन से भी ख-प्रत्यय कहना चाहिये ।
वा. आचार्य से परे भोगीन के न को णत्व नहीं होता है ।

॥ इति छयद्विधि ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ ठञधिकारः (आर्हीयाः)

१९६३. प्राग्वतेष्ठञ्-५।१।१८॥ तेन तुल्यमित्यतः प्राक् ठञधिक्रियते ।

१९६४. आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्-५।१।१९॥ तदर्हतीत्येतदभिव्याप्य ठञधिकारमध्ये ठञोऽपवादष्ठगधिक्रियते गोपुच्छादीन् वर्जयित्वा ।

१९६५. असमासे निष्कादिभ्यः-५।१।२०॥ आर्हादित्येतत्तेन क्रीतमिति यावदनुवर्तते । निष्कादिभ्योऽसमासे ठगार्हीयेष्वर्थेषु । निष्केण क्रीतमिति नैष्किकम् । समासे तु ठञ् ।

१९६६. परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः-७।३।१७॥ उत्तरपदवृद्धिर्ञिदादौ । परमनैष्किकम् ।

१९६७. शताच्च ठन्यतावशते-५।१।२१॥ शतिकम् । शत्यम् । अशते किम्-

मध्यमनोरमापूरणी

प्राग्वतेरिति—वतिशब्दस्य पञ्चम्येकवचने वतेरिति वतिघटितसूत्रपरः । तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः इत्यतः प्राक् सूत्रैः अर्थनिर्देशे क्रियमाणे न तु प्रत्यये निर्दिष्टे सति ठञ् इत्युपस्थितो भवति इति ज्ञेयम् । **आर्हात्**—आ अर्हः आर्हः, अर्हमभिव्याप्येत्यर्थः । तदर्हति सूत्रगतस्य अर्हति इत्येकदेशस्यानुकरणमिदम् । अतः तदर्हति इत्यभिव्याप्य ठञधिकारे तस्यापवादष्ठगपि अधि-क्रियते, गोपुच्छसंख्या परिमाणान् वर्जयित्वा इत्यर्थो भवति । **असमासे**—'आर्हात्' इत्यनु-वर्तते, तत्, तेन क्रीतमिति यावत् सप्तदशसूत्र्यामनुवर्तते । निष्कादिभ्यः असमासे ठग् भवति, आर्हीयेष्वर्थेषु । अर्थात् तदर्हति इत्येतत्पर्यन्तमनुक्रान्तेषु तेन क्रीतमित्याद्यर्थेषु ठक् स्यादित्यर्थः। **नैष्किकम्**—निष्केण क्रीतमित्यर्थेऽसमासे निष्कादिभ्यः इति ठक्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक्, ठस्येकः, किति चेत्यादिवृद्धिः, नैष्क इक इति, यस्येति चेत्यलोपः । **परिमाणान्तस्यासंज्ञा-शाणयोः**—संख्यायाः संवत्सरेत्यतः संख्यायाः इत्यनुवर्तते । आदिवृद्धिप्रकरणे 'उत्तर-पदस्य' इत्यधिकारे सूत्रमिदम् । अतः परिमाणान्तस्याङ्गस्य संख्याया परं यदुत्तरपदं तस्यादेरचो वृद्धिर्भवति ञिति णिति किति च तद्धिते परे न तु संज्ञायां विषये शाणे चोत्तरपदे इत्यर्थः। **परमनैष्किकम्**—परमनिष्केण क्रीतमित्यर्थे प्राग्वतेष्ठञ् इति ठञ्, ठस्येकः, परिमाणान्तस्या-संज्ञाशाणयोरित्युत्तरपदादिवृद्धिः । **परमनिष्क** इत्यस्य समासत्वात् असमासे निष्कादिभ्यः इत्यस्य प्रवृत्तिर्न भवति । **शताच्चेति**—शतशब्दात् आर्हीयेषु अर्थेषु ठन्यतौ भवतः , अशते वाच्ये इत्यर्थः । संख्यायाः इति प्राप्तकनोऽपवादोऽयम् । **शतिकम्**—शतेन क्रीतमित्यर्थे शताच्चेति ठन्, सुपो लुक्, ठस्येकः, यस्येति च, सोरम् । यति तु अलोपे सति शत्यम् इत्येव । **अशते किम्-शतकः सङ्घः**—शतेऽभिधेये संख्याया अतिशदन्तायाः इति कन् प्रत्ययो भवति ।

हिन्दी

१९६३. 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' से पूर्व तक ठञ् का अधिकार है ।

१९६४. 'तदर्हति' पर्यन्त के अर्थों में गेपुच्छ संख्या व परिमाण को छोड़कर अन्य शब्दों से ठक् प्रत्यय का अधिकार समझें ।

१९६५. निष्कादि शब्दों से आर्हीय अर्थ में ठक् होता है, समास में नहीं ।

१९६६. परिमाणान्त अङ्ग एवं संख्या से परे जो उत्तर पद उनके आदि अच् की वृद्धि होती है ञित् णित् एवं कित् प्रत्यय परे रहते ।

१९६७. शत शब्द से आर्हीय अर्थ में ठन् एवं यत होता है । शत अर्थ न होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९६८. संख्याया अतिशदन्तायाः कन्-५।१।२२॥ आर्हीयेऽर्थे । शतं परिमाणमस्य-शतकः सङ्घः । बहुकः ।

१९६९. वतोरिड् वा-५।१।२३॥ वत्वन्तात् कन इड् वा । तावतिकः । तावत्कः।

१९७०. कंसाट्टिठन्-५।१।२५॥ कंसिकः ।

वा. अर्धाच्चेति वक्तव्यम् ॥ अर्धिकः ।

१९७१. अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्-५।१।२८॥ अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च परस्यार्हीयस्य लुक् । अध्यर्धकंसम् । संज्ञायां तु-पाञ्चकलापिकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

ननु अत्र संघः एव प्रत्ययार्थः न तु शतमतः कथमशते इति निषेधः स्यादिति चेदुच्यते-प्रत्ययार्थः संघः प्रकृत्यर्थात् शतात् परिमाणान्न भिद्यते। गुणगुणिनोरभेदात् । **संख्यायाः**—आर्हीयेऽर्थे संख्यायाः कन् स्यात्, न तु त्यन्तायाः शदन्तायाश्च कन् भवति इत्यर्थः। **बहुकः**—बहुभिः क्रीतः, बहु परिमाणमस्येत्यर्थे वा कन् । बहुगणेत्यादिना बहुशब्दः संख्या-संज्ञकः । **वतोरिड्वा**—वतु इति प्रत्ययः, प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः । अत उक्तं वत्वन्तादिति । **तावतिकः, तावत्कः**—तद् शब्दात् यत्तदेतेभ्यः इति वतुप्, तावत् इत्यस्य बहुगणवतुडतिसंख्या इति संख्यासंज्ञा भवति । तावता क्रीतः इत्यर्थे कन्, वतोरिड् वा इति इट् । इडभावे तावत्कः । **कंसात् इति**—आर्हीयेषु कंसात् टिठन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । टः इत्, इकार उच्चारणार्थः, नकार इत्, 'ठ' इत्यवशिष्यते । **कंसिकः**—कंसेन क्रीतः इत्यर्थे टिठन् प्रत्ययः, ठकारस्य इकादेशः । **अर्धाच्चेति**—टिठन् इति शेषः । **अर्धिकः**—अर्धेन क्रीत इत्यर्थे टिठन्। ठस्येकः, अलोपः, स्त्रीलिङ्गे टित्वान्ङीप् । **अध्यर्धपूर्व इति**—अध्यर्धः पूर्वो यस्य सः अध्यर्धपूर्वः, स च द्विगुश्चेति समाहारद्वन्द्वात् पञ्चम्येकवचने अध्यर्धपूर्वद्विगोरिति । सौत्रं पुंस्त्वम्। अन्यथा समाहारे स नपुंसकमिति नपुंसकत्वं स्यात् । **अत आह**—अध्यर्धपूर्वाद् इत्यादि । **अध्यर्धकंसम्**—अध्यारूढम् अर्धं यस्मिन् इति विग्रहे प्रादिभ्यो धातुजस्येति बहुव्रीहिः, आरूढ इत्यस्य लोपश्च, अध्यर्ध इति सार्धमित्यर्थकः शब्दः । अध्यर्धेन कंसेन क्रीतम् इति तद्धितार्थे तद्धितार्थोत्तरपदेति द्विगुः, कंसाट्टिठन् इति टिठन्, तस्य अध्यर्धपूर्वेति लुक्। **संज्ञायान्तु**—लुकोऽप्रवृत्तिरित्यर्थः । **पाञ्चकलापिकम्**—पञ्च कलापाः परिमाणमस्येति तद्धितार्थे द्विगुः । तदस्य परिमाणमिति ठञ्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, सोरम्, अमि पूर्वः ।

हिन्दी

१९६७. शत शब्द से आर्हीय अर्थ में ठन् एवं यत् होता है । शत अर्थ न होने पर ।

१९६८. त्यन्त एवं शदन्त भिन्न संख्यावाचक से आर्हीय अर्थ में कन् प्रत्यय होता है ।

१९६९. वत्वन्त से परे कन् को इट् होता है विकल्प से ।

१९७०. कंस से आर्हीय अर्थ में टिठन् प्रत्यय होता है ।

वा. अर्ध शब्द से भी टिठन् प्रत्यय होता है ।

१९७१. अध्यर्धपूर्वक एवं द्विगुसंज्ञक शब्दों से परे आर्हीय प्रत्यय का लुक् होता है, असंज्ञा में।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९७२. तेन क्रीतम्-५।१।३७।। ठञ् । गोपुच्छेन क्रीतं-गौपुच्छिकम् । साप्ततिकम् । ठक्-नैष्किकम् ।
१९७३.-तस्येश्वरः-५।१।४२।। सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः । अनुशतिकादीनां चेति वृद्धिः । सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पार्थिवः ।
१९७४. तदस्य परिमाणम्-५।१।५७।। प्रस्थः परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः । वा. स्तोमे डविधिः ।। पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य पञ्चदशः । सप्तदशः । सोमयागेषु छन्दोगैः क्रियमाणा पृष्ठ्यादिसंज्ञिका स्तुतिः स्तोमः ।
१९७५. पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवति शतम्-५।१।५९।। एते रूढिशब्दाः निपात्यन्ते ।

मध्यमनोरमापूरणी

तेन क्रीतम्—तेनेति तृतीयान्तस्योपलक्षकम् । तृतीयान्ताद् क्रीतमित्यर्थे ठञादयः स्युः । **गौपुच्छिकम्**—गोपुच्छेन क्रीतम् इत्यर्थे ठञ्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, यस्येति च । सप्तत्या क्रीतमित्यर्थे साप्ततिकम् । प्रस्थेन क्रीतमिति **प्रास्थिकम्** । 'अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्' इति पर्युदासात् ठगोऽभावे तेन क्रीतमिति ठञ् भवतीत्याशयः । निष्केण क्रीतमित्यर्थे तु असमासे निष्कादिभ्यः इति ठगेव, **नैष्किकमिति** । **तस्येश्वरः**—सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ इति सूत्रमनुवर्तते । तस्येश्वरः इत्यर्थे उभाभ्यामणञौ भवतः इत्यर्थः । **सार्वभौमः**—सर्वभूमेरीश्वर इत्यर्थे सर्वभूमिशब्दात् अण्, सुपो लुक्, अनुशतिकादीनाञ्चेति उभयपदयोराद्यचो वृद्धिः, भत्वाद् यस्येति चेत्यलोपः । पृथिव्या ईश्वरः इत्यर्थेऽञ्, आद्यचो वृद्धौ रपरत्वे च यस्येति चे तीकारलोपे **पार्थिव इति** । **तदस्येति**—तदिति प्रथमानिर्देशकम् । अस्य परिमाणम् इत्यर्थे प्रथमान्ताद् यथाविहितं प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **प्रास्थिको राशिः**—प्रस्थः परिमाणमस्येत्यर्थे प्राग्वतीयष्ठञ्, ठस्येकः, आदिवृद्धिः, अलोपः, स्वादिकार्यम् । अत्र प्रस्थस्य संख्यावाचकस्य परिच्छेदकत्वात् परिमाणत्वमस्ति । संख्यावाचकस्य परिमाणत्वादेव षष्टिः परिमाणमस्येति षाष्टिकमिति सिद्ध्यति । **स्तोमे इति**—तदस्य परिमाणम् इत्यर्थे स्तोमेऽभिधेये संख्यावाचकात् ड-प्रत्ययो भवति । **पञ्चदशः**—पञ्चदशमन्त्राः परिमाणमस्येत्यर्थे डः, डकार इत्, डित्त्वात् पञ्चदशन् इत्यस्य टेः लोपः । सामाधारभूताः मन्त्राः स्तोम इत्युच्यते । सप्तदश मन्त्राः परिमाणमस्येत्यर्थे डः, टेर्लोपः। **पङ्क्तिविंशति**—तदस्य परिमाणमित्यर्थे पङ्क्त्यादयः शब्दाः निपात्यन्ते । यत् इह लक्षणेन असिद्धं तत् निपातनेन साध्यम् इत्यर्थः **पङ्क्तिः**—पञ्चपादाः परिमाणमस्येत्यर्थे पञ्चन् शब्दात् ति प्रत्ययः, प्रकृतेष्टिलोपः, चोः कुरिति चस्य कः, नस्यानुस्वारपरसवर्णे । पञ्चाक्षरा पञ्चपदा पङ्क्तिः छन्दोविशेषः । **विंशतिः**—दशानां वर्गः 'दशत्' इति, 'पञ्चद्दशतौ वर्गे वा' इति वक्ष्यते। द्वौ दशतौ परिमाणमस्येत्यर्थे शतिच् प्रत्ययः प्रकृतेर्विन् इत्यादेशः, चकार इत् । नस्यानुस्वारः।

हिन्दी

१९७२. तृतीयान्त से 'क्रीतम्' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।
१९७३. 'तस्य ईश्वरः' अर्थ में सर्वभूमि तथा पृथिवी शब्द से अण् एवं अञ् प्रत्यय होते हैं ।
१९७४. प्रथमान्त से 'अस्य परिमाणम्' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं ।
१९७५. 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में पङ्क्ति इत्यादि रूढ़ि शब्द निपातित होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९७६. तदर्हति-५।१।६३।। श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः ।

१९७७. दण्डादिभ्यो यत्-५।१।६६।। एभ्यो यत् । दण्डमर्हति-दण्ड्यः । अर्घ्यः। वध्यः ।

१९७८. तेन निर्वृत्तम्-५।१।७९।। अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम् ।

।। इति ठञ्ठकोरवधिः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

त्रयो दशतः परिमाणमस्येत्यर्थे शत् प्रत्ययः, प्रकृतेः 'त्रिन्' इत्यादेशः, नस्यानुस्वारे त्रिंशत् इति। **चत्वारिंशत्**—चत्वारो दशतः परिमाणमस्येत्यर्थे शत् प्रत्ययः, प्रकृतेः चत्वारिन् इत्यादेशश्च। **पञ्चाशत्**—पञ्च दशतः परिमाणमस्येत्यर्थे शत्प्रत्ययः प्रकृतेः पञ्चादेशश्च । **षष्टिः**—षड् दशतः परिमाणमस्य संघस्य इत्यर्थे तिप्रत्ययः, प्रकृतेः षष्, जश्त्वाभावः, ष्टुना ष्टुरिति तस्य टः । **सप्ततिः**—सप्त दशतः परिमाणमस्य संघस्येत्यर्थे ति प्रत्ययः, प्रकृतेः सप्त इत्यादेशश्च । **अशीतिः**—अष्टौ दशतः परिमाणमस्य संघस्येत्यर्थे ति प्रत्ययः, प्रकृतेः अशी इत्यादेशश्च । नव दशतः परिमाणमस्य संघस्येत्यर्थे तिप्रत्ययः, प्रकृतेर्नव इत्यादेशश्च । **शतम्**—दश दशतः परिमाणमस्य संघस्येत्यर्थे त-प्रत्ययः, प्रकृतेः 'श' इत्यादेशश्च । संघस्य इति पदं यत्रानुक्तं तत्रापि योज्यमेव । **तदर्हति**—अर्हति इत्यस्य योग्यो भवतीत्यर्थो न, तथा सति तद् इति द्वितीया न स्यात् । अतः लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थः स्वीक्रियते । तेन द्वितीयान्ताद् लब्धुं योग्यं भवतीत्यर्थे ठञादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थो भवति । **श्वैतच्छत्रिकः**—श्वेतच्छत्रमर्हति=योग्यो भवतीत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः । **दण्डादिभ्यो यत्**—तदर्हति इत्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति । **दण्ड्यः**—दण्डमर्हति इत्यर्थे यत्, भत्वादलोपः । अर्घमर्हति **अर्घ्यः** । वधमर्हति **वध्यः** इति । **तेन निर्वृत्तम्**—'कालात्' इति सूत्रमनुवर्तते । तेनेति तृतीयान्तस्य ग्राहकम् । तृतीयान्तात् कालवाचिनः 'निर्वृत्तम्' इत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **आह्निकम्**-अह्ना निर्वृत्तम्' इत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **आह्निकम्**—अह्ना निर्वृत्तमित्यर्थे ठञ्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो लुक्, ठस्येकः, भत्वाट्टिलोपः प्राप्तः, अह्नष्टखोरेवेति नियमान्न टिलोपः, आद्यचो वृद्धिः, भत्वादल्लोपोऽनः इति अनोऽकारस्य लोपः । अर्धमासेन निर्वृत्तम्, वत्सरेण निर्वृत्तमित्यादिषु, आर्धमासिकम्, वात्सरिकमित्यादि रूपम् ऊह्यम् ।

।। इति ठञठकोरवधिः ।।

हिन्दी

१९७६. द्वितीयान्त से 'अर्हति' अर्थ में ठक् ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं ।

१९७७. द्वितीयान्त दण्डादि शब्दों से 'अर्हति' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

१९७८. कालवाची तृतीयान्त से 'निर्वृत्त' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है ।

।। ठञ्ठक्-अवधिपूर्ण ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ भावकर्मार्थाः

१९७९. तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः-५।१।११५॥ ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवत् अधीते । क्रियाचेत् किम्-गुणतुल्ये माभूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ।

१९८०. तत्र तस्येव-५।१।११६॥ मथुरायामिव = मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवत् मैत्रस्य गावः ।

१९८१. तस्य भावस्त्वतलौ-५।१।११९॥ प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः । गोर्भावः गोत्वम्, गोता । त्वान्तं क्लीबम् । तलन्तं स्त्रियाम् ।

१९८२. आ च त्वात्-५।१।१२०॥ 'ब्राह्मणस्त्व' इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। अपवादैः सह समावेशार्थः । स्त्रियाः भावः स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम् । स्त्रीता । पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता ।

मध्यमनोरमापूरणी

तेन तुल्यं क्रियेति—तुल्यमिति क्रिया इत्यस्य विशेषणम् । सामान्याभिप्रायकं नपुंसकं तुल्यमिति पदे द्रष्टव्यम् । तेनेति तृतीयान्तस्य द्योतकम् । तृतीयान्ताद् तुल्यमित्यर्थे 'वति'-प्रत्ययः स्यात्, यत् तुल्यं सा यदि क्रिया भवेत्तदा, इत्यर्थः । **ब्राह्मणवत्**—ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते इत्यर्थे वतिः, इकारः इत् । प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । ब्राह्मणवत् इति वति-प्रत्ययान्तस्य तद्धितश्चासर्वविभक्तिरित्यव्ययसंज्ञा । अव्ययादाप्सुप इति सुपो लुक् । ब्राह्मण-कर्तृकाध्ययनतुल्यम् अन्यकर्तृकमध्ययनमित्यर्थः । **क्रिया चेत् किम्**—यद्येतत्सूत्रे नोच्येत तदा पुत्रेण तुल्यः स्थूलः इत्यत्रापि पुत्रशब्दात् वतिः स्यात् । द्रव्यतुल्ये नायं प्रत्ययो भवति । तेन चैत्रेण तुल्यो धनवान् इत्यत्रापि न भवति । **तत्र तस्येव**—तत्रेति सप्तम्यन्तबोधकम्, तस्येति षष्ठ्यन्तबोधकम् । तत्र इवेति तस्य इवेति चार्थे सप्तम्यन्ताद् षष्ठ्यन्ताच्च वतिः स्यादित्यर्थः। अस्मादेव निर्देशात् इव योगे षष्ठ्यर्थे सप्तमी इति भाष्यम् । **मथुरावत्**— मथुरायामिव इत्यर्थे वतिः, अव्ययत्वात् सुपो लुक् । **तस्य भावः**—षष्ठ्यन्ताद् भाव इत्यर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः। शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं भावशब्देन कथ्यते । **प्रकृतिजन्येति**—त्वतल्प्रत्ययौ यस्मात् उत्पत्स्येते तत्प्रकृतिभूताद् व्यक्तिबोधे जायमाने यत् जात्यादिकं विशेषणतया भासते तद्व्यक्तिविशेषणं भाव इत्याशयः । **यथा-गोत्वम्**—गोः भाव इत्यर्थे त्वप्रत्यये रूपम्, तल् प्रत्यये लकार इत्। तलन्तं स्त्रियामिति लिङ्गानुशासनसूत्रात् स्त्रीलिङ्गे टाप्, **गोता इति** । अत्र गोत्वं गोता इत्यादौ गोशब्दात् व्यक्तिबोधे जायमाने गोत्वं विशेषणतया भासते । तद् गोत्वं भावः, जातिर्वा उच्यते। **आ च त्वात्**—पञ्चमाध्यायस्य प्रथमपादस्यान्ते 'ब्राह्मणस्त्वः' इति यावत् त्वतलौ इत्यधि-क्रियते । अत्र सूत्रे पूर्वसूत्रात् त्वतलौ इत्यनुवर्तेते । अत्र भवति प्रश्नः अनुवृत्त्यैव उत्तरसूत्रेषु त्वतलोः सिद्धिः सम्भवा, कथमनयोरधिकारः ? **इति चेदुच्यते-अपवादैः सहेति**—पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा इत्यादिविहितैःअपवादैः सह समावेशार्थः अधिकारः । अधिकारत्वाभावे उत्तरत्र त्वतलोरुपस्थितिः न स्यात् । अथ गुणवचनादिभ्यः कर्मणि विधानार्थमिदम् । चकारात् स्त्रियाः

हिन्दी

१९७९. 'उसके सदृश क्रिया हो' इस अर्थ में तृतीयान्त से 'वति' प्रत्यय होता है ।

१९८०. सप्तम्यन्त एवं षठ्यन्त से 'इव' अर्थ में 'वति' प्रत्यय होता है ।

१९८१. षठ्यन्त से भाव अर्थ में त्व एवं तल् प्रत्यय होते हैं ।

१९८२. **'ब्राह्मणस्त्वः'** सूत्र तक त्व एवं तल् का अधिकार है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९८३. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा-५।१।१२२।। वा- वचनमणादिसमावेशार्थम् ।
१९८४. रऋतो हलादेर्लघोः६।४।१६१।। इष्ठेमेयस्सु ।
१९८५. टेः-६।४।१४३।। भस्य टेर्लोपः इष्ठेमेयस्सु । पृथु मृदु कृश दृढ वरिवृढानामेव रत्वम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थवम् । म्रदिमा, मार्दवम् ।
१९८६. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च-५।१।१२३।। चादिमनिच् । शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । दार्ढ्यम्, द्रढिमा ।
१९८७. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च-५।१।१२४।। चाद्भावे । जडस्य भावः कर्म वा, जाड्यम् । ब्राह्मण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भावः स्त्रैणः इत्यत्र नञः, पुंसः भावः पौंस्नः इत्यत्र स्नञश्च समावेशः । त्वतलौ अपि भवतः। यथा—स्त्रीत्वम् स्त्रीता इति । पुंसः भावः पुंस्त्वम् पुंस्ता इति । **पृथ्वादिभ्यः**—तस्य भावः इत्यनुवर्तते । पृथ्वादिषष्ठ्यन्तेभ्यः इमनिज्वा भावे इत्यर्थः । **वा वचनमिति**—अणः ष्यञः अञश्च औत्सर्गिकाणां समावेशार्थः इत्यर्थः । **रऋतः**—तुरिष्ठेमेयस्सु इत्यतः 'इष्ठेमेयस्सु' इत्यनुवर्तते । हलादेः लघोः ऋकारस्य रः स्यादिष्ठेमेयस्सु इत्यर्थः। **टेः**— अल्लोपोऽनः इत्यतः लोप इति, 'इष्ठेमेयस्सु' इति चानुवर्तते **प्रथिमा**—पृथोर्भाव इत्यर्थे पृथ्वादिभ्यः इति इमनिच्, इचौ इतौ, भसंज्ञा, रऋतो हलादेरिति ऋकारस्य रः, टेरिति उकारस्य लोपः, प्रथिमन् इत्यस्य सौ उपधादीर्घे सुलोपनलोपौ । पक्षे 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' इत्यण्, आद्यचो वृद्धौ रपरत्वे ओर्गुण इति गुणः, अद्, **पार्थवम् इति । म्रदिमा-मार्दवम् इति**—मृदोः भावः इत्यर्थे इमनिच्, रऋतः इति ऋकारस्य रः, टेलोर्पः, सौ उपधादीर्घे सुलोपनलोपौ । पक्षे इगन्ताच्चेति अण् । शेषं पूर्ववत्। **वर्णदृढादिभ्यः**—षष्ठ्यन्तेभ्यः वर्णवाचिभ्यः दृढादिभ्यश्च भावे ष्यञ् स्यात्, चात् इमनिजपि। इमनिचः समुच्चयार्थं सूत्रम्, अन्यथा गुणवचनत्वादेव ष्यञ् सिद्ध्येत् । **शौक्ल्यम्**—शुक्लस्य भावः इत्यर्थे ष्यञ्, षञौ इतौ । ञित्वादादिवृद्धिः, भत्वादलोपः । इमनिच्प्रत्यये अलोपे शुक्लिमन् इति । तस्य सौ शुक्लिमा इति भवति । **दार्ढ्यम्**—दृढस्य भावः इत्यर्थे वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् चेति ष्यञ् । आदिवृद्धिः, भत्वादलोपः, स्वादिकार्यम् । इमनिच्प्रत्यये सति दृढ इमन् इति जाते रऋतो हलादेर्लघोरिति ऋतः रः, भत्वादलोपे द्रढिमन् इति, सौ **द्रढिमा** इति । **गुणवचनेति**—गुणमुक्तवन्तः गुणवचनाः । षष्ठ्यन्तेभ्यः गुणवचनेभ्यः ब्राह्मणादिभ्यश्च कर्मणि भावे च ष्यञ् स्यादित्यर्थः । **जाड्यम्**—जडस्य भावः कर्म वा इत्यर्थे गुणवचनात् जडशब्दात् ष्यञ्, आदिवृद्धिः, यस्येति च । ब्राह्मणस्य कर्म भावो वा ब्राह्मण्यम् । अत्रापि ष्यञ् । **चतुर्वर्णादीनां**—चतुर्वर्णगण पठितेभ्यः स्वार्थे ष्यञ् वक्तव्यम् इत्यर्थः ।

हिन्दी

१९८३. पृथ्वादि षष्ठ्यन्त से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

१९८४. हलादि लघुसंज्ञक ऋकार को 'र्' आदेश होता है इष्ठन् इमनिच् व ईयसुन् प्रत्यय परे ।

१९८५. भसंज्ञक टि का लोप होता है इष्ठन् इमनिच् व ईयसुन् परे ।

१९८६. षष्ठ्यन्त वर्णवाची एवं दृढादि शब्दों से भाव अर्थ में ष्यञ् एवं इमनिच् प्रत्यय होते हैं ।

१९८७. षष्ठ्यन्त गुणवचन एवं ब्राह्मणादिशब्दों से कर्म एवं भाव अर्थ में ष्यञ् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम् ॥ चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रम्यम् । त्रैवर्ग्यम्। षाड्गुण्यम् । सैन्यम् । सान्निध्यम् । त्रैलोक्यमित्यादि ।

१९८८. स्तेनाद्यन्नलोपश्च-५।१।१२५॥ नेति संघातग्रहणम् । स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम् ।

१९८९. सख्युर्यः-५।१।१२६॥ सख्यम् ।

१९९०. कपिज्ञात्योर्ढक्-५।१।१२७॥ कापेयम् । ज्ञातेयम् ।

१९९१. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्-५।१।१२८॥ सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् । ग. सू. राजाऽसे ॥ राजन् शब्दोऽसमासे यकं लभते इत्यर्थः । राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । आधिराज्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

चातुर्वर्ण्यम्—चत्वार एव वर्णाः इत्यर्थे चतुर्वर्ण शब्दात् ष्यञ्, तद्धितेष्वचामादेः, यस्येति च । चत्वार एव आश्रमाः इति चातुराश्रम्यम् । त्रयो वर्गाः इति **त्रैवर्ग्यम्** । षड्गुणाः इति षाड्गुण्यम् । सेना एवेति **सैन्यम्** । सन्निधिरेव **सान्निध्यम्** । **स्तेनाद्यत्**—भावे कर्मणि च षष्ठ्यन्ताद् स्तेनशब्दात् यत् प्रत्ययः स्तेनस्य नकारलोपश्चेत्यर्थः । **स्तेयम्**—स्तेनस्य कर्म, भावो वा इत्यर्थे स्तेनाद्यन्नलोपश्चेति यत्, नकारस्य च लोपः, स्वादिकार्यम् । **सख्युर्यः**- भावकर्मणोरर्थयोः षष्ठ्यन्तात् सखिशब्दात् य-प्रत्ययः स्यात् । **सख्यम्**—सख्युः भावः कर्म वा इत्यर्थे यत् प्रत्ययः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । भत्वादिलोपः । **कपिज्ञात्योरिति**—पञ्चम्याः अर्थे षष्ठी अत्रास्ति । भावकर्मणोरर्थयोः षष्ठ्यन्तकपिज्ञाति- शब्दाभ्यां ढक् स्यादित्यर्थः । **कापेयम्**—कपेः कर्म भावो वेत्यर्थे ढक्, ढस्यायनेयीनीयियः इत्यादिना एयादेशः, किति चेत्यादिवृद्धिः, भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपः । ज्ञातेः कर्म भावो वेत्यर्थे ढक्, सर्वं पूर्ववत्। **पत्यन्तेति**—भावकर्मणोः षष्ठ्यन्तपत्यन्तशब्दात् पुरोहितादिशब्दाच्च यक् स्यादित्यर्थः । **सैनापत्यम्**—सेनापतेः भावः कर्म वा इत्यर्थे यक् । कित्त्वादादिवृद्धिः । भसंज्ञा, यस्येति च। पुरोहितस्य भावः कर्म वेत्यर्थे यक्, किति च । यस्येति चेत्यलोपः, स्वादिकार्यम्, **पौरोहित्यम्** इति । **राजाऽसे**—स इति समाससंज्ञा प्राचाम् । नः सः असः, तस्मिन्नसे इति । राजन् शब्दात् असमासे यक् स्यात् भावकर्मणोरित्यर्थः । **राज्यम्**—राज्ञः कर्म भावो वेत्यर्थे यक्, भसंज्ञा, नस्तद्धिते इति टेरनोलोपः । ये चाभावकर्मणोरित्यत्र अभावकर्मणोति पर्युदासात् न प्रकृतिभावः। समासे तु अधिराजशब्दात् ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्, **आधिराज्यम्** इति ।

हिन्दी

वा. चतुर्वर्ण गणपठित से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है ।

१९८८. स्तेन शब्द से भाव कर्म अर्थ में यत् प्रत्यय तथा न का लोप होता है ।

१९८९. षष्ठ्यन्त सखि शब्द से भाव कर्म में 'य'-प्रत्यय होता है ।

१९९०. षष्ठ्यन्त कपि, ज्ञाति शब्द से भाव व कर्म अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है ।

१९९१. पत्यन्त एवं पुरोहितादि षष्ठ्यन्त से भाव व कर्म अर्थ में यक् प्रत्यय होता है ।

ग. सू. राजन् से भाव व कर्म अर्थ में यक् होता है, समास में नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९९२. प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्-५।१।१२९॥ प्राणभृज्जातिः। आश्वम्। वयोवचनम्-कौमारम्। औद्गात्रम्। औन्नेत्रम्। सौष्ठवम्।

१९९३. हायनान्तयुवादिभ्योऽण्-५।१।१३०॥ द्वैहायनम्। त्रैहायनम्। यौवनम्। स्थाविरम्।

वा. श्रोत्रियस्य यलोपश्च॥ श्रौत्रम्। कुशल निपुण चपल पिशुनकुतूहलक्षेत्रज्ञाः युवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते। कौशलम्, कौशल्यमित्यादि।

१९९४. इगन्ताच्च लघुपूर्वात्-५।१।१३१॥ शुचेः भावः कर्म वा शौचम्। मौनम्।

मध्यमनोरमापूरणी

प्राणभृज्जातिरिति—प्राणिजातिवाचिभ्यः वयोवचनेभ्यः उद्गात्रादिभ्यश्च षष्ठ्यन्तेभ्यः भावकर्मणोः अञ् प्रत्ययो भवति इत्यर्थः। **आश्वम्**—अश्वस्य भावः कर्म वा इत्यर्थे अञ्, सुपो लुक्, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति च। कुमारस्य भावः कर्म वा इत्यर्थेऽञ्, आदिवृद्धिः, अलोपः। 'उद्गातुर्भावः कर्म वा इत्यर्थे अञ्, आदिवृद्धिः, यण्, **औद्गात्रम् इति**। उन्नेतुः भावः कर्म वा **औन्नेत्रम्**। उन्नेतृ अ इत्यवस्थायामादिवृद्धौ ऋकारस्य यण्। **सौष्ठवम्**—सुष्ठु इत्यस्य भावः-कर्म वा इत्यर्थे 'प्राणभृज्जाति' इत्यादिना अञ्, आद्यचो वृद्धिः, ओर्गुणः, अवादेशः। **हायनान्तेति**—हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च षष्ठ्यन्तेभ्यो भावकर्मणोरण् स्यादित्यर्थः। वयोवचनलक्षणस्याञोऽपवादोऽयम्। **यथा-द्वैहायनमिति**—द्विहायनस्य भावः कर्म वेत्यर्थे अण्, सुपो लुक्। आद्यचो वृद्धिः, अलोपः। त्रिहायनस्य भावः कर्म वा **त्रैहायनम् इति**। **यौवनम्**—यूनो भावः कर्म वेत्यर्थे युवन्शब्दादण्, आद्यचो वृद्धिः, भत्वाट्टिलोपः प्राप्तः, तत्प्रबाध्य अनिति प्रकृतिभावः। स्थविरस्य भावः कर्म वा **स्थाविरम् इति। अण्, आदिवृद्धिः। श्रोत्रियस्येति**—षष्ठ्यन्ताद् श्रोत्रियशब्दादण् यलोपश्च भावकर्मणोरित्यर्थः। **श्रौत्रम्**—छन्दोऽधीते इत्यर्थे छन्दस् शब्दात् घप्रत्ययः, छन्दसः स्थाने श्रोत्रादेशः, घस्येयादेशः, अलोपः, श्रोत्रिय इति, श्रोत्रियस्य भावः कर्म वेत्यर्थेऽण्, यलोपश्च, आद्यचो वृद्धिः, श्रौत्रि अ इति, भत्वादिलोपः, सोरम्। **कौशलम्**—कुशलस्य भावः कर्म वा इत्यर्थे युवादिभ्योऽण्। ब्राह्मणादित्वात् ष्यञि **कौशल्यम् इति** च भवति। युवादिषु ब्राह्मणादिषु च कुशलस्य पाठात् उभयं रूपं बोध्यम्। **लघुपूर्वात्**—लघुः पूर्वो यस्य सः, तस्मात् लघुपूर्वात्। लघुपूर्वशब्देन इगन्तसमुदाय एव गृह्यते। लघुपूर्वात् इगन्तात् प्रातिपदिकात् भावकर्मणोरण् स्यादित्यर्थः। **शौचम्**—शुचेः भावः कर्म वा इत्यर्थेऽण्, सुपो लुक्। तद्धितेष्वचामादेः, यस्येति चेतीकारलोपः। मुनेः कर्म भावो वेत्यर्थेऽणि आदिवृद्धौ इलोपे च **मौनम् इति**।

हिन्दी

१९९२. प्राणिवाचकजाति, अवस्थावाची एवं उद्गातृ आदि से भाव कर्म में अञ् होता है।

१९९३. हायनान्त एवं युवादि षष्ठ्यन्त से भाव कर्म अर्थ में अण् होता है।

वा. श्रोत्रिय से भाव कर्म अर्थ मे अण् एवं श्रोत्रिय के य का लोप होता है।

१९९४. लघुपूर्व इगन्त से भाव-कर्म अर्थ मे अण् प्रत्यय होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१९९५. योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्-५।१।१३२।। रामणीयकम् । आभिधानीयकम् ।

वा. सहायाद् वा ।। साहायकम्, साहाय्यम् ।

१९९६. द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च-५।१।१३३।। शैष्योपाध्यायिका । मानोज्ञकम् ।

।। इति भावकर्मार्थाः ।।

मध्यममनोरमापूरणी

योपधाद्—त्रिप्रभृतीनामन्तस्य यत् समीपं तद् उपोत्तमम् । गुरु उपोत्तमं यस्येति विग्रहे समासः। यकारः उपधायां यस्येति व्यधिकरणपदबहुब्रीहिः । यकारोपधाद् गुरूपोत्तमाद् षष्ठ्यन्तप्रातिपदिकात् भावकर्मणोः वुञ् स्यादित्यर्थः । **रामणीयकम्**—रमणीयस्य भावः कर्म वेत्यर्थे वुञ्, युवोरनाकौ इति वोरकादेशः, आदिवृद्धिः, यस्येति चेत्यलोपः । अभिधानीयस्य भावः कर्म वेत्यर्थे वुञि वोरकादेशे आभिधानीयकमिति पूर्ववत् बोध्यम् । **सहायाद् वा**— भावकर्मणोः वुञ् वा स्यादित्यर्थः । **साहायकम्**—सहायस्य भावः कर्म वा इत्यर्थे वुञ्, वोरकादेशः, अलोपः। पक्षे गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि चेति ष्यञ्, आदिवृद्धिः, अलोपः, साहाय्यम् इति । **द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च**—द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यः मनोज्ञादिभ्यश्च वुञ् भवति भावकर्मणोरित्यर्थः । **शैष्योपाध्यायिका**—शिष्यश्च उपाध्यायश्चेति द्वन्द्वे शिष्योपाध्यायौ इति । तयोः भावः कर्म वेत्यर्थे वुञ्, वोरकादेशः, आदिवृद्धिः, स्त्रीत्वं लोकात् । टापि प्रत्ययस्थात् इति यकाराकास्येत्वम् । इति भावकर्मार्थाः ।

हिन्दी

१९९५. गुरु अन्त्यसमीप वाले योपध षष्ठ्यन्त से भाव-कर्म अर्थ में 'वुञ्' होता है ।
वा. सहाय से भी भाव-कर्म अर्थ में वुञ् होता है विकल्प से ।
१९९६. द्वन्द्वसंज्ञक एवं मनोज्ञादि गणपठित से भाव-कर्म अर्थ में 'वुञ्' प्रत्यय होता है ।

।। इति भावकर्मार्थ ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पाञ्चमिकेषु भवनाद्यर्थकाः

१९९७. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्-५।२।१।। मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम् ।

१९९८. ब्रीहिशाल्योर्ढक्-५।२।२।। ब्रैहेयम् । शालेयम् ।

१९९९. यवयवकषष्टिकाद्यत्-५।२।३।। यव्यम् । यवक्यम् । षष्टिक्यम् ।

२०००. विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः-५।२।४।। यत् । पक्षे खञ् । तिल्यम्, तैलीनम् । माष्यम्, माषीणम् । उम्यम्, औमीनम् । भङ्ग्यम्, भाङ्गीनम् । अणव्यम्। आणवीनम् ।

२००१. तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति-५।२।७।। सर्वादेः पथ्यन्ताद् द्वितीयान्तात् खः । सर्वपथान् व्याप्नोति = सर्वपथीनः । सर्वाङ्गीणः । सर्वकर्मीणः। सर्वपत्रीणः । सर्वपात्रीणः ।

मध्यमनोरमापूरणी

धान्यानामिति—भवन्ति जायन्तेऽस्मिन् इति भवनम्, तस्मिन् इति । उत्पत्तिस्थानं भवनम् । धान्यवाचकेभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यः भवनेऽर्थे खञ् स्यात्, तच्चेत् भवनं क्षेत्रं स्यादित्यर्थः । **मौद्गीनम्**—मुद्गानां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे खञ्, सुपो लुक्, खस्येनादेशः, आदिवृद्धिः, अलोपः, सोरम्, अमि पूर्वः । **ब्रीहिशाल्योर्ढक्**—ब्रीहिशालिशब्दाभ्यां षष्ठ्यन्ताभ्यां भवने क्षेत्रेऽर्थे ढक् स्यादित्यर्थः । खञोऽपवादः । **ब्रैहेयम्**—ब्रीहीणां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे ढक्, आयनेयीनीयियि इत्यादिना ढस्य एयादेशः, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेतीकारलोपः । शालीनां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे **शालेयमिति** पूर्ववत् । **यवयवकेति**—यत् स्यात् भवने क्षेत्रे वाच्ये । खञोऽपवादः । **यव्यम्**—यवानां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे खञं प्रबाध्य यत्, सुपो लुक्, भत्वादलोपः । यवकानां भवनं क्षेत्रं **यवक्यम् इति** । षष्टिकानां भवनं क्षेत्रं षष्टिक्यम् इति । **विभाषेति**—तिल माष उमा भङ्गा अणु इत्येभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यो यत् स्याद् वा भवने क्षेत्रेऽभिधेये इत्यर्थः । धान्यानामित्यनुवृत्तिरप्यत्रास्ति । अतः पक्षे खञ् अपि भवत्येव । **तिल्यम्**—तिलानां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे यत्, भत्वादलोपः । खञि तु खस्येनादेशः, आद्यचो वृद्धिः, अलोपः, **तैलीनमिति** । **अणव्यम्**—अणूनां भवनं क्षेत्रमित्यर्थे यति ओर्गुणः, वान्तो यि-प्रत्यये इत्यव् । खञ्-पक्षे खस्येनादेशे ञित्त्वात्तद्धितेष्वचामादेरिति वृद्धिः, ओर्गुणः, अव्, **आणवीनम्** इति । **तत्सर्वादेरिति**—तद् इति द्वितीयान्तं पदं व्याप्नोतीत्यत्रान्वेति । सर्वादिभ्यः पथिन् अङ्गकर्मन् पत्र पात्र इत्येतेभ्यः द्वितीयान्तेभ्यः तद् व्याप्नोतीत्यर्थे ख-प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **सर्वपथीनः**—सर्वपथान् व्याप्नोतीत्यर्थे खः, आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनामिति खस्य ईनादेशः, भत्वादलोपः । सर्वाङ्गाणि व्याप्नोतीति **सर्वाङ्गीणः**, । णत्वं विशेषः । सर्वकर्माणि व्याप्नोतीत्यर्थे खः, ईनादेशः, सर्वकर्मीणः इत्यादि बोध्यम् ।

हिन्दी

१९९७. धान्यवाचकं षष्ठयन्त से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है ।

१९९८. षष्ठयन्त ब्रीहि एवं शालि से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में 'ढक्' प्रत्यय होता है ।

१९९९. यव यवक एवं षष्टिक से 'भवनं क्षेत्रम्' अर्थ में यत् होता है ।

२०००. तिलमाषादि षष्ठ्यन्तों से उक्तार्थ में 'यत्' होता है, विकल्प से ।

२००१. सर्वादि, पथिन्, अङ्गकर्मन् आदि षष्ठ्यन्त से 'व्याप्नोति' अर्थ में ख-प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२००२. हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्-५।२।२३।। ह्योगोदोहशब्दस्य हियङ्गुरादेशो विकारेऽर्थे खञ् प्रत्ययश्च निपात्यते संज्ञायामित्यर्थः । दुह्यते इति दोहः=क्षीरम्, ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनम् नवनीतम् ।

२००३. तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ-५।२।२४।। पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं कर्णजाहम् ।

२००४. पक्षात्तिः-५।२।२५।। मूले इत्यनुवर्तते । पक्षस्य मूलं पक्षतिः ।

२००५. तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ-५।२।२६।। यकारः प्रत्यययोरादौ लुप्तनिर्दिष्टः, तेन चस्य नेत्त्वम् । विद्यया वित्तो विद्याचुञ्चुः । विद्याचणः ।

२००६. वेः शालच्छङ्कटचौ-५।२।२८।। क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात् । विशालम् = विस्तृतम् । विशङ्कटम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

हैयङ्गवीनम्—ह्यः इति पूर्वदिवसे, तत्रोत्पन्नो गोदोहः= गोपयः ह्योगोदोहः इति । **हैयङ्गवीनम्**- ह्योगोदोहस्य विकारः इत्यर्थे हैयङ्गवीनं संज्ञायामिति ह्योगोदोहस्य स्थाने हियङ्गु इत्यादेशः, खञ् प्रत्ययश्च निपात्यते, खस्येनादेशः, आदिवृद्धिः, ओर्गुणः, अवादेशः, स्वादिकार्यम् । हैयङ्गवीनं नवनीतं घृतञ्चापि भवति । **तस्य पाकमूले**—पाकश्चमूलश्चेति तयोः समाहारः, तस्मिन् पाकमूले इति । पाकः परिमाणः । षष्ठ्यन्तपील्वादिभ्यः पाकेऽर्थे कुणप, कर्णादिभ्यः मूलेऽर्थे जाहच् भवतीत्यर्थः । **पीलुकुणः**—पीलूनां पाक इत्यर्थे कुणप्, पकार इत् । कर्णस्य मूलमित्यर्थे जाहच्, चकार इत्, सुपो लुक्, कर्णजाहम् इति । **पक्षात् तिः**—तस्य पाकमूले इत्यादिसूत्रात् तस्येति अनुवर्तते । मूले इत्यपि च । एकयोगनिर्दिष्टानां क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तते स्वरितत्वप्रतिज्ञानात्' इति मूले इत्यस्यानुवृत्तिः । षष्ठ्यन्तात् पक्षशब्दात् मूलेऽर्थे ति-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **पक्षतिः**—पक्षस्य मूलमित्यर्थे तिप्रत्ययः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । **तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ**—तेनेति तृतीयान्तस्य बोधकम् । तृतीयान्तात् 'वित्त' इत्यर्थे चुञ्चुप्चणपौ प्रत्ययौ भवत इत्यर्थः । **ननु चुञ्चुप्चणपोः प्रत्यययोराद्यचकारस्य चुटू इति इत्संज्ञा स्यादिति चेदुच्यते**—यकारः इत्यादि । तेन चकारस्य प्रत्ययादित्वा भावान्नेत्त्वम् । **विद्याचुञ्चुः**—विद्यया वित्तः इत्यर्थे चुञ्चुप्, पकार इत्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । चणपि तु **विद्याचणः** । **वेः शालच्**—साधनक्रियावचनात् वि इत्युपसर्गात् शालच्-शङ्कटच्-प्रत्ययौ भवतः स्वार्थे इत्यर्थः। **विशालम्**—विगते शृङ्गे विशाले, विशङ्कटे । तद्योगाद् गौरपि विशालः । वस्तुः गुणशब्दाः एते केनापि प्रकारेण व्युत्पाद्यन्ते, नात्र प्रकृति प्रत्ययार्थयोरभिनिवेशः । विशब्दात् शालच् शङ्कटच् च भवतः । चकार उभयत्र इत् ।

हिन्दी

२००२. ह्योगोदोह से विकार अर्थ में खञ् प्रत्यय एवं प्रकृति को हियङ्गु आदेश निपातन है, संज्ञा में ।

२००३. पील्वादि षष्ठ्यन्त से पाक अर्थ में कुणप् प्रत्यय तथा कर्णादि शब्द से मूल अर्थ में जाहच् प्रत्यय होते हैं ।

२००४. षष्ठ्यन्त पक्ष शब्द से मूल अर्थ में 'ति' प्रत्यय होता है ।

२००५. तृतीयान्त से 'वित्तः' अर्थ में चुञ्चुप् एवं चणप् प्रत्यय होते हैं ।

२००६. क्रियाविशिष्ट साधनवाचक वि उपसर्ग से शालच् एवं शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२००७. सम्प्रोदश्च कटच्-५।२।२९।। संकटम् । प्रकटम् । उत्कटम् । चाद् विकटम् ।

वा. अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् ।। अलाबूनां रजोऽलाबूकटम् । तिलकटम्।

वा. गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः ।। गवां स्थानम्-गोगोष्ठम् ।

वा. सङ्घाते कटच् ।। अवीनां संघातः अविकटः ।

वा. विस्तारे पटच् । अविपटः ।

वा. द्वित्वे गोयुगच् ।। द्वावुष्ट्रौ उष्ट्रगोयुगम् ।

वा. षट्त्वे षड्गवच् ।। अश्वषड्गवम् ।

वा. स्नेहे तैलच् ।। तिलतैलम् । सर्षपतैलम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सम्प्रोदश्चेति—क्रियाविशिष्टसाधनवाचकेभ्यः सम् प्र उद् इत्येभ्यः चकाराद् वेश्च स्वार्थे कटच्-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । कटचि चकार इत् । **संकटमिति**-संशब्दात् कटच् । **प्रकटम् इति** प्रशब्दात्। एवमन्यद् रूपम् । **अलाबू इति**—अलाबू तिल उमा भङ्ग इत्येभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यः रजसि वाच्ये कटच् स्यात् इत्यर्थः । **अलाबूकटम्**—अलाबूनां रजः इत्यर्थे कटच् । विकारप्रत्ययानाम-पवादोऽयम् । तिलानां रजः तिलकटमिति । **गोष्ठेति**—पशूनामवाचकेभ्यः स्थानादिषु अर्थेषु गोष्ठज्-आदयः प्रत्ययाः भवन्तीत्यर्थः । गोगोष्ठवम्—गवां स्थानम् इत्यर्थे गोष्ठच् प्रत्ययः, चकार इत् । **संघाते**—समूहेऽर्थे कटच् भवति । **अविकटः**—अवीनां = मेषीणां मेषाणां वा संघातः इत्यर्थे कटच् । **अविपटः**—अवीनां विस्तार इत्यर्थे विस्तारे पटच् इति पटच्, चकार इत् । **द्वित्वे**—प्रकृत्यर्थगतद्वित्वे गोयुगच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **उष्ट्रगोयुगम्**- द्वौ उष्ट्रौ इत्यर्थे गोयुगच् । अत्र उष्ट्रगतद्वित्वमस्ति । एवं द्वौवृषभौ इति वृभषगोयुगम् इत्यादि ज्ञेयम् । **षट्त्वे**-प्रकृत्यर्थगतषट्संख्यावगमे षड्गवच् प्रत्ययो भवति । **अश्वषड्गवम्**—षट् अश्वाः इत्यर्थे षड्-गवच् प्रत्ययः । **तिलतैलम्**—तिलानां स्नेहः इत्यर्थे तैलच् प्रत्ययः ।

हिन्दी

२००७. क्रियाविशिष्टसाधनार्थक सम् प्र उद् एवं वि से स्वार्थ में 'कटच्' होता है ।

वा. अलाबू तिल उमा भङ्ग इन षष्ठ्यन्तों से 'रजस्' अर्थ में कटच् होता है ।

वा. स्थानादि अर्थों में पशुनामवाची से गोष्ठच् आदि प्रत्यय होते हैं ।

वा. संघात अर्थ में कटच् होता है ।

वा. विस्तार अर्थ में 'पटच्' प्रत्यय होता है ।

वा. प्रकृत्यर्थगत द्वित्वसंख्या होने पर 'गोयुगच्' प्रत्यय होता है ।

वा. प्रकृत्यर्थगत छहसंख्या द्योत्य होने पर 'षड्गवच्' प्रत्यय होता है ।

वा. स्नेह अर्थ में तैलच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२००८. अवात् कुटारच्च-५।२।३०।। चात् कटच् । अवकुटारः, अवकटः ।
२००९. नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः-५।२।३१।। अवादित्येव । नतं नमनम् । नासिकाया नतम्-अवटीटम्, अवनाटम्, अवभ्रटम् । तद्योगान्नासिकाऽवटीटा, पुरुषोऽवटीटः ।
२०१०. उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः-५।२।३४।। पर्वतस्यासन्नं स्थलम् उपत्यका । आरूढं स्थलम् अधित्यका ।
२०११. कर्मणि घटोऽठच्-५।२।३५।। कर्मणि घटते कर्मठः ।
२०१२. तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्-५।२।३६।। तारकाः संजाता अस्य तारकितं नभः । पण्डितः । आकृतिगणोऽयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

अवाद् इति—अवशब्दात् कुटारच् कटच् च स्यात् । **अवकुटारः**—अवाचीनेऽर्थे अवशब्दात् कुटारच् । **नते इति**—अवात् इत्यनुवर्तते । नासिकायाः नतम् इत्यर्थे अवात् टीटच् नाटच् भ्रटच् इत्येते प्रत्ययाः स्युः संज्ञायामित्यर्थः । **अवटीटम्**—नासिकायाः नतमित्यर्थे अवशब्दात् टीटच् । नाटचि अवनाटम्, भ्रटचि अवभ्रटम् इति च बोध्यम् । ननु यदि नासिकायाः नमनमवटीटं स्यात्तर्हि अवटीटा नासिका इति कथं स्यादिति प्रश्ने **उक्तम्-** तद्योगात्= नमनयोगात् लक्षणया नासिका अवटीटा, पुरुषः अवटीटो भवतीति ज्ञेयम् । **उपाधिभ्याम्-** संज्ञायाम् इत्यनुवर्तते । आसन्ने आरूढे चार्थे उप अधि इत्याभ्याम् यथासङ्ख्यं स्वार्थे त्यकन्-प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **उपत्यका**—पर्वतस्यासन्नम् इत्यर्थे उपशब्दात् त्यकन्, नकार इत्, उपत्यक इति, स्त्रीत्वाट्टाप्, प्रत्ययस्थादिति प्राप्तमित्त्वं त्यकनश्चेति निषिद्धम् । **अधित्यका**—आरूढं स्थलमित्यर्थे अधिशब्दात् त्यकन्, टाप्, सुलोपः । **कर्मणि**— सप्तम्यन्तात् कर्मन्-शब्दात् घट इत्यर्थे अठच् स्यादित्यर्थः । अठचि-'अठ' इत्यवशिष्यते । सूत्रे घटशब्दः यौगिकः घटमानेऽर्थे विद्यते । **कर्मठः**-—कर्मणि घटते=व्याप्रियते इत्यर्थे अठच्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । कर्मन् अठ इति । भत्वात् नस्तद्धिते इति टेः अनो लोपः । अठचि ठकारः अङ्गात् परो नास्ति, तस्मात् ठस्येकः इति न प्रवर्तते । **तदस्येति**—तदिति प्रथमान्तनिर्देशकम् । संजात-मिति तारकादिप्रकृति विशेषणम् । प्रथमान्तेभ्यस्तारकादिभ्यः अस्य तत्संजातमित्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **तारकितं नभः**—तारकाः संजाताः अस्येत्यर्थे इतच्, सुपो लुक् । भत्वात्तारकाया आकारलोपः, नभसो विशेषणत्वान्नपुंसकता । **पण्डितः-** सद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, पण्डा संजाता अस्येत्यर्थे इतच्, भत्वादाकारलोपः । **आकृतिगणोऽयम्**—तेन कण्टकितं सुखितं दुखितं पुष्पितमित्यादीनां संग्रहो भवति ।

हिन्दी

२००८. क्रियाविशिष्ट साधन वाचक अव से कुटारच् एवं कटच् प्रत्यय होता है ।
२००९. 'नासिका का नमन' अर्थ में अव से टीटच् नाटच् एवं भ्रटच् प्रत्यय होते हैं ।
२०१०. उप एवं अधि शब्द से आसन्न एवं आरूढ़ अर्थ में 'त्यकन्' प्रत्यय होता है ।
२०११. सप्तम्यन्त कर्मन् शब्द से 'घटते' (व्याप्रियते) अर्थ में अठच् होता है ।
२०१२. प्रथमान्त तारकादि गणपठित से तदस्य संजातम् अर्थ में 'इतच्' होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०१३. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः-५।२।३७॥ ऊरू प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्, ऊरुमात्रम् ।

प्रथमश्च द्वितीयश्च ऊर्ध्वमाने मतौ मम ।
उर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः ।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः ॥

२०१४. पुरुषहस्तिभ्यामण् च-५।२।३८॥ पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषम् । पुरुषद्वयसम् । हास्तिनम् । हस्तिद्वयसम् ।

२०१५. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्-५।२।३९॥ यत् परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् ।

२०१६. किमिदिभ्यां वो घः-५।२।४०॥ आभ्यां वतुब्वस्य घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रमाणे द्वयसच्—तदस्येति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । प्रथमान्ताद् अस्य प्रमाणमित्यर्थे द्वयसच् दघ्नच् मात्रच् इत्येते प्रत्ययाः भवन्ति इत्यर्थः । **ऊरुद्वयसम्**—ऊरू प्रमाणमस्येत्यर्थे ऊरुशब्दात् द्वयसच्, सुपो लुक् । मात्रचि **ऊरुमात्रम्** इति । प्रमाणवान् इदमर्थोऽत्र भाष्ये प्रत्ययार्थः इति स्पष्टम् । प्रमाणमिह परिच्छेदकमात्रम्, इति भाष्ये प्रथमश्चेत्यादिकारिकया उक्तम् । प्रथमश्च= द्वयसच् इति द्वितीयश्च=दघ्नच् इति, द्वौ प्रत्ययौ ऊर्ध्वमाने भवतः । **तत्र ऊर्ध्वमानं किमिति उच्यते**—ऊर्ध्वमानं किल उन्मानम्=ऊर्ध्वप्रमाणम् इत्यर्थः । सर्वतो मानं तु परिमाणमित्युच्यते । आयामः=दैर्घ्यं, तु 'प्रमाणम्' इत्युच्यते । संख्या तु सर्वतः=सर्वपरिमाणेभ्यो बाह्या ज्ञेया इत्यर्थः । **पुरुषहस्तीति**—तदस्य इति, प्रमाणे इति चानुवर्तते । प्रथमासमर्थात् पुरुषशब्दात् हस्तिशब्दाच्च 'तदस्य प्रमाणम्' इत्यर्थे अण् स्यात्, चात्, द्वयसच् मात्रजादयोऽपि स्युरित्यर्थः । **पौरुषम्**—पुरुषः प्रमाणमस्येत्यर्थे अण्, आदिवृद्धिः, अलोपः । चकारात् द्वयसचि **पुरुषद्वयसम्** इति । हस्तिन्शब्दात् अणि आदिवृद्धौ **हास्तिनम्** इति । द्वयसचि तु **हस्तिद्वयसम्**, नस्य नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति लोपः । **यत्तद् इति**—तदस्येत्यनुवर्तते । परिमाणवाचिभ्यः यत् तत् एतद् इति प्रथमान्तेभ्यः 'तत् अस्य परिमाणम्' इत्यर्थे वतुप् स्यादित्यर्थः । **यावान्**-यत् परिमाणमस्येत्यर्थे वतुप्, उपौ इतौ । यत् वत् इति, आ सर्वनाम्नः इति यतस्तस्यात्वम्, दीर्घः, सौ अत्वसन्तस्य चाधातोरिति दीर्घः, उगिदचामिति नुम्, हल्ङ्याब्भ्य इति सुलोपः,

हिन्दी

२०१३. प्रथमान्त से 'अस्य प्रमाणम्' अर्थ में द्वयसच् दघ्नच् व मात्रच् प्रत्यय होते हैं । **कारिकार्थः**—द्वयसच् एवं दघ्नच् ऊर्ध्वमान अर्थ में होते हैं । ऊपर के मान को उन्मान कहते हैं । चारों ओर के मान को परिमाण कहते हैं । आयाम को प्रमाण कहते हैं । किन्तु संख्या सभी परिमाणों से बहिर्भूत है ।

२०१४. प्रथमान्त पुरुष एवं हस्ती से 'अस्य प्रमाणम्' अर्थ में अण् एवं द्वयसच् आदि प्रत्यय होते हैं ।

२०१५. यत् तत् व एतद् प्रथमान्त से 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में वतुप् होता है ।

२०१६. किम् एवं इदं प्रथमान्त से 'तदस्य परिमाणम्' अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है व वतुप् के व् को घ् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०१७. इदं किमोरीश्की-६।३।९०॥ दृग्दृशवतुषु । कियान् । इयान् ।
२०१८. किमः संख्यापरिमाणे डति च-५।२।४१॥ चाद् वतुप्, तस्य च घः । का संख्या येषां ते कति, कियन्तः ।
२०१९. संख्याया अवयवे तयप्-५।२।४२॥ पञ्च अवयवा पञ्चतयम् ।
२०२०. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा-५।२।४३॥ द्वयम्, द्वितयम्, त्रयम्, त्रितयम् ।
२०२१. उभादुदात्तो नित्यम्-५।२।४४॥ उभशब्दात्तयपोऽयच् स्यात् स चाद्युदात्तः । उभयम् ॥ इति भवनाद्यर्थकाः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

तस्य संयोगान्तलोपः । एवमेव तत्परिमाणमस्य, एतत्परिमाणमस्येत्यर्थे च वतुप्, तस्यात्वम्, दीर्घः, सौ नुमि अत्वेति दीर्घे सुलोपे संयोगान्तस्येति लोपे **तावान् एतावानिति** ज्ञेयम् । **किमिदिभ्यामिति**—किम्इदम् इति प्रथमान्ताभ्यां तदस्य प्रमाणमित्यर्थे वतुप् स्याद् वस्य च घः इत्यर्थः । घविधानमेव ज्ञापकं किमिदिभ्यां वतुप् भवतीत्यस्य । **इदंकिमोरिति**—इदम् किम् इत्यनयोः ईश् की इत्यादेशौ भवतः क्रमात् दृग्दृशवतुषु । **कियान्**—किम्परिमाणमस्येत्यर्थे किमिदिभ्यां वो घः इति वतुप्, वस्य च घः, इदं किमोरिति की इत्यादेशः, घस्येयादेशः । की इयत् इति, भत्वात् ईकारलोपः, सौ नुमि उपधादीर्घे सुलोपतलोपौ । **इयान् इति**—इदं परिमाणमस्येत्यर्थे किमिदिभ्यां वो घः इति वतुप्, वस्य च घः, घस्येयादेशः, इदं किमोरीश्की इति इदमः स्थाने ईश्, शकार इत् । ई इयत् इति, यस्येति चेतीकारलोपः, इयत् इति प्रत्ययमात्रं शिष्यते । सौ नुमि अत्वसन्तस्येति दीर्घः, सुलोपः, तलोपः । किमः **संख्येति**—तदस्येत्यनुवर्तते । संख्यायाः परिमाणं परिच्छेदः, किम् शब्दः प्रश्ने वर्तते । का संख्या इत्येवं संख्यापरिच्छेदविषयकप्रश्ने विद्यमानात् किम् शब्दात् प्रथमान्तात् डतिप्रत्ययः चाद् वतुप् स्यादित्यर्थः । **कति**—का संख्या येषामित्यर्थे किम्शब्दात् डतिः, चुटू इति डकार इत् । किम् अति इति । डित्त्वाट्टेर्लोपः, कति इति नित्यं बहुवचनान्तः, बहुगणेति संख्यासंज्ञा, षड्भ्यो लुक् इति जश्शसोर्लुक् । डति चेत्यत्र षट्संज्ञात्वाद् लुक् भवति । वतुपि वस्यः घः, इयादेशः, की इत्यादेशः, यस्येति चेतीकारलोपः, कियत् इति, जसि नुमि सस्य रुत्वविसर्गौ । **संख्यायाः इति**-संख्यावाचकात् प्रथमान्तात् अवयवाः अस्येत्यर्थे तयप् स्यादित्यर्थः । **पञ्चतयम्**—पञ्च अवयवाः अस्येत्यर्थे तयप्, नलोपः । **द्वयम् द्वितयमिति**-द्वौ अवयवौ यस्येत्यर्थे तयप्, द्वित्रिभ्यामिति तयपोऽयच्, भत्वादिलोपः, द्वयम् इति । अयचोऽभावे द्वितयम् इति । एवमेव त्रयं त्रितयमिति । **उभादुदात्तः इति**—'तयस्यायच्' इत्यनुवर्तते । **उभयम्**—उभौ अवयवौ अस्येत्यर्थे तयप्, नित्यं तयस्यायच्, भत्वादलोपः, सोरम्, अमिपूर्वः । अत्र अयच् एव विधीयते इति भाष्यम् ।

॥ इति भवनाद्यर्थकाः ॥

हिन्दी

२०१७. दृग् दृश् व वतु परे इदम् को 'ईश्' तथा किम् को 'की' आदेश होता है ।
२०१८. प्रथमान्त किम् से संख्याविषयक प्रश्न में डति एवं वतुप् प्रत्यय होते हैं ।
२०१९. संख्यावाचक से अवयव अर्थ मे तयप् होता है ।
२०२०. द्वि एवं त्रिशब्द से परे तयप् को अयच् होता है विकल्प से ।
२०२१. उभ शब्द से तयप् को नित्य अयच् होता है, और यह उदात्त होता है ।

॥ इति पाञ्चमिकेषु भवनाद्यर्थकाः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ मत्वर्थीयाः

२०२२. तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः-५।२।४५।। एकादश अधिकाः अस्मिन्नेकादशम् ।

वा. शतसहस्रयोरेवेष्यते ।। नेह-एकादशाधिकाः अस्यां विंशतौ ।

वा. प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्व एवेष्यते । नेह । एकादश माषाः अधिकाः अस्मिन् सुवर्णशते ।

२०२३. शदन्तविंशतेश्च-५।२।४६।। डः स्यादुक्तेऽर्थे । त्रिंशदधिकाः अस्मिन् त्रिंशम् । विंशम् ।

२०२४. तस्य पूरणे डट्-५।२।४८।। संख्याया इत्येव । एकादशानां पूरणः एकादशः ।

२०२५. नान्तादसंख्यादेर्मट्-५।२।४९।। डटो मडागमः । पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नान्तात् किम्-विंशः । असंख्यादेः किम्-एकादशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

तदस्मिन्निति—तद् अस्मिन् अधिकम् इत्यर्थे प्रथमान्त-दशन्-शब्दान्ताद् प्रातिपदिकाद् डः भवति इत्यर्थः । दशान्ताद् इत्युक्तेः समासादिति लभ्यते । **शतसहस्रयोरेवेष्यते**—अयं ड-प्रत्ययः शतसहस्रयोः विशेष्ययोरेव दशान्ताद् भवति । **एकादशम्**—एकादश अधिकाः अस्मिन् शते सहस्रे वा इत्यर्थे डः, डित्त्वाट्टिलोपे एकादशम् इति, शतं सहस्रं वा ज्ञायते । अर्थात् एकादशाधिकं शतं वा सहस्रमित्यर्थः । शतसहस्रयोरेवेति नियमात् विंशतौ विशेष्ये एकादशाधिकाः अस्यां विंशतौ इत्यत्र न डः । **प्रकृतिप्रत्ययार्थयोरिति**—प्रत्ययार्थेन समान-जातीये प्रकृत्यर्थे सति एव अयं डप्रत्ययः इष्यते इत्यर्थः । तेन एकादशाः माषाः अधिकाः अस्मिन् सुवर्णशते इत्यत्र न भवति डः । डप्रत्यये सति प्रत्ययार्थेन सुवर्णशत इत्यनेन प्रकृत्यर्थस्य माष इत्यस्य न भवति समानजातीयत्वम् । **शदन्तेति**—तदस्मिन्नधिकमित्यनुवर्तते । शदन्तात् प्रथमान्तात् विंशतिशब्दाच्च तदस्मिन् अधिकमित्यर्थे डः स्यादित्यर्थः । **त्रिंशम्**—त्रिंशत् अधिकाः अस्मिन् इत्यर्थे डः, डित्वाट्टेः अतो लोपः, त्रिंशम् इति । शतं सहस्रं वा । **विंशम्**—विंशतिः अधिकाः अस्मिन् शते सहस्रे वा इत्यर्थे शदन्तविंशतेश्चेति डः, डित्वाद् ति विंशतेर्डिति इति 'ति' इत्यस्य लोपः । **तस्येति**—संख्याया इत्यनुवर्तते । तस्येति षष्ठ्यन्त-ग्राहकम् । षष्ठ्यन्ताद् संख्यावाचिनः पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति । डटौ इतौ । अकारः शिष्यते। **एकादशः**—एकादशानां पूरणः इत्यर्थे डट्, डित्त्वाट्टेर्लोपः । टित्वात् स्त्रीलिङ्गे ङीपि एकादशी इति बोध्यम् । **नान्तादिति**—'डट्' इत्यनुवर्तते, षष्ठ्यन्ततया च विपरिणमते । नान्ताद् संख्या-वाचकात् असंख्यादेः परस्य डटो मडागमो भवति । **पञ्चमः**—पञ्चानां पूरणः इत्यर्थे तस्य

हिन्दी

२०२२. प्रथमान्त समासान्त दशन् से 'अस्मिन् अधिकम्' इस अर्थ में ड प्रत्यय होता है ।
वा. प्रत्ययार्थ यदि शत एवं सहस्र में समायोजित होता हो तभी यह डप्रत्यय होता है ।
वा. प्रकृत्यर्थ एवं प्रत्ययार्थ के समानजातीयत्व में ही डप्रत्यय होता है ।
२०२३. प्रथमान्त शदन्त एवं विंशति से 'अस्मिन्नधिकम्' अर्थ में 'ड' प्रत्यय होता है ।
२०२४. षष्ठ्यन्त संख्यावाचक से 'पूरण' अर्थ में 'डट्' प्रत्यय होता है ।
२०२५. असंख्यादि नान्तसंख्यावाचक से परे डट् को मट्-आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०२६. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्-५।२।५१।। डटि । **षण्णां पूरणः षष्ठः । कतिथः । कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽपि अत एव ज्ञापकाद् डट् । कतिपयथः । चतुर्थः। वा. चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च ।। तुरीयः । तुर्यः ।**

२०२७. बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्-५।२।५२।। डटि । **बहुतिथः ।**

२०२८. वतोरिथुक्-५।२।५३।। डटि । **यावतिथः ।**

२०२९. द्वेस्तीयः-५।२।५४।। डटोऽपवादः । **द्वयोःपूरणो द्वितीयः ।**

२०३०. त्रेः सम्प्रसारणञ्च-५।२।५५।। तृतीयः । **इह हलः इति दीर्घो न । तृतीयेति निर्देशात् ।**

मध्यमनोरमापूरणी

पूरणे इति डट्, नान्तादसंख्यादेरिति मडागमः, अनुबन्ध लोपः, पञ्चन् आम् म्अ इति, सुपो लुक् । नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः । **विंशः**—विंशतिशब्दस्य नान्तत्वाभावात् मडागमो न भवति । विंशतेः पूरणः इत्यर्थे डट्, तिलोपः, भत्वादलोपश्च । **एकादशः**—संख्यादित्वान्न डटो मट् । **षट्कति**—एषां डटि थुगागमो भवतीत्यर्थः । **षष्ठः**—षण्णां पूरणः इत्यर्थे डट्, षट्कतिकतिपयेति थुक्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक्, षष्थ इति, ष्टुत्वेन थस्य ठः । कतीनां पूरणः इत्यर्थे डटि थुगागमे कतिथः इति । **अत एव ज्ञापकाद्**—कतिपय शब्दाद् थुगागमविधानाद् ज्ञापकाद् इति भावः । **चतुर्थः**—चतुर्ण्णां पूरणः इत्यर्थे तस्य पूरणे डट् इति डट्, डटौ इतौ, षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् इति थुगागमः । **चतुरश्छयतौ**—चतुर्शब्दात् पूरणेऽर्थे छयत्-प्रत्ययौ स्तः, चतुरः आद्यक्षरस्य चस्य लोपश्च भवतीत्यर्थः । **तुरीयः**—चुतर्ण्णां पूरणः इत्यर्थे छः, चकारस्य च लोपः, छस्येयादेशः । यति आद्यक्षरलोपे च **तुर्यः** इति । **बहुपूगेति**—एषां डटि परे तिथुक् आगमो भवतीत्यर्थः । **बहुतिथः**—बहूनां पूरणः इत्यर्थे तस्य पूरणे डट् इति डट्, बहुपूगगणेति तिथुगागमः, उकौ इतौ । स्वादिकार्ये बहुतिथः इति । पूगसंघ-शब्दयोः असंख्यात्वात् इदमेव ज्ञापकं डट्-कार्यस्य । तेन **पूगतिथः, गणतिथः, संघतिथः** इति भवति । **वतोरिथुक्**—वतोरिति बतुबन्तस्य बोधकम् । वतुबन्तस्य डटि इथुगागमो भवति। **यावतिथः**—यावत् शब्दः वतुबन्तः । यावतां पूरणः इति विग्रहे डट्, वतोरिथुक् इति इथुक्, अनुबन्धलोपः, संयोगे यावतिथ इति । **द्वेस्तीयः**—षष्ठ्यन्ताद् द्विशब्दात् पूरणेऽर्थे तीयप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **द्वितीयः**—द्वयोः पूरणः इत्यर्थे तीय प्रत्ययः । **त्रेः सम्प्रसारणञ्च**—तीय इत्यनुवर्तते । त्रिशब्दात् षष्ठ्यन्तात् पूरणेऽर्थे तीय-प्रत्ययः स्यात् त्रेः सम्प्रसारणं च स्यादित्यर्थः । **तृतीयः**—त्रयाणां पूरणः इत्यर्थे डटं प्रबाध्य त्रेः सम्प्रसारणञ्चेति तीयप्रत्यये सति तेनैव त्रेः रेफस्य सम्प्रसारणम् ऋकारः, तृइ तीय इति, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपम्, स्वादिकार्यम् । **तृतीयेति निर्देशात्**—विभाषा तृतीयादिष्वचि इत्यत्र दीर्घाभाव निर्देशादित्यर्थः ।

हिन्दी

२०२६. षष् कति कतिपय एवं चतुर् से परे डट् को 'थुक्' आगम होता है ।

वा. चतुर् से पूरण अर्थ में छ एवं यत् होता है तथा चतुर् के च का लोप होता है ।

२०२७. बहुगण आदि से परे डट् रहते तिथुक् आगम होता है ।

२०२८. वतुबन्त को डट् परे इथुक् होता है ।

२०२९. षष्ठ्यन्त द्वि शब्द से पूरण अर्थ में 'तीय' प्रत्यय होता है ।

२०३०. षष्ठ्यन्त त्रिशब्द से पूरणार्थक 'तीय' प्रत्यय होता है, एवं त्रि को सम्प्रसारण होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०३१. विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्-५।२।५६॥ डटः । विंशतितमः । विंशः। एकविंशतितमः । एकविंशः ।

२०३२. नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च-५।२।५७॥ शतस्य पूरणः शततमः । मासादेरत एव ज्ञापकात् डट् । मासतमः ।

२०३३. षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः-५।२।५८॥ षष्टितमः । संख्यादेस्तु विंशत्यादिभ्य इति विकल्प एव । एकषष्टेः एकषष्टितमः ।

२०३४. मतौ छः सूक्तसाम्नोः-५।२।५९॥ मत्वर्थे । अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्ति अच्छावाकीयं सूक्तम् । वारवन्तीयं साम ।

२०३५. श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते-५।२।८४॥ श्रोत्रियः । वेत्यनुवृत्तेः छान्दसः ।

२०३६. श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ-५।२।८५॥ श्राद्धी । श्राद्धिकः ।

मध्यमनोरमापूरणी

वस्तुतः हलः इत्यत्र 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इत्यतः' अणः इत्यनुवृत्तेः नात्र दीर्घः । **विंशत्यादिभ्यः**—विंशत्यादिभ्यः परस्य डटस्तमडागमो भवति वेत्यर्थः । अत्र लोकप्रसिद्धाः विंशत्यादयो गृह्यन्ते न तु पङ्क्तिविंशत्यादिसूत्रपठिताः । तद्ग्रहणे सति एकविंशति प्रभृतिभ्यस्तमडागमो न स्यात् । ग्रहणवता प्रातिपादिकेन तदन्तविधिर्नेति प्रतिषेधात् तदन्तविधिरपि न स्यात् । **विंशतितमः**—विंशतेः पूरणः इत्यर्थे डट्, विंशत्यादिभ्यः इति तमडागमः, टकार इत्, मकारादकार उच्चारणार्थः, स्वादिकार्ये विंशतितम इति । तमडागमाभावे ति विंशतेरिति तिलोपे विंशः इति । **नित्यं शतादिमासेति**—शतादिभ्यो मासात् अर्धमासात् संवत्सराच्च परस्य डटो नित्यं तमट् । **शततमः**—शतस्य पूरणः इत्यर्थे डट्, तमडागमः । **मासादेरिति**—मासादीनां संख्यावाचकत्वाभावाद् डटो न प्राप्तिरत उच्यते-सूत्रे पाठविधानसामर्थ्याज्ज्ञापकादेव डट् । **मासतमः**—मासस्य पूरणः इत्यर्थे डट्, तमडागमश्च । दिवसादिरवयव इत्यर्थः । **षष्ट्यादेरिति**-विंशत्यादिभ्य इति विकल्पेन प्राप्ते नित्यमनेन तमट् । असंख्यादेः षष्ट्यादिशब्दात् डटो नित्यं तमट् । **षष्टितमः**—षष्टेः पूरणः इत्यर्थे डट्, षष्ट्यादेरिति तमडागमः । **मतौ छः इति**—मतुशब्दः मत्वर्थे लाक्षणिकः । मत्वर्थे प्रातिपदिकात् छः प्रत्ययो भवति सूक्ते साम्नि च वाच्ये इत्यर्थः । **अच्छावाकीयम्**—अच्छावाकशब्दः अस्ति अस्मिन्नित्यर्थे मतौ छः इति छः, आयनेयीनीयिय इति छस्य ईयः । अलोपः । **वारवन्तीयं साम**—अश्वं नत्वा वारवन्तम् इत्यस्याम् ऋचि अध्यूढमित्यर्थे छः, छस्येयादेशः । **श्रोत्रिय इति**—छन्दोऽधीते इत्यर्थे छन्दस्शब्दात् घन्, प्रकृतेः श्रोत्रादेशश्च निपात्यते इत्यर्थः । घस्य ईयि श्रोत्राकारस्य च लोपे श्रोत्रिय इति । कथं छान्दसः इति चेदुच्यते-वा इत्यनुवृत्तेरिति । अर्थात् पक्षे अध्येतर्यर्थेऽण् । **श्राद्धमनेनेति**—श्राद्धमिति श्राद्धसाधनद्रव्यवाचकं लक्षणयाऽस्ति । अनेनेति प्रत्ययार्थः,

हिन्दी

२०३१. विंशत्यादि से परे डट् को तमट् आगम होता है, विकल्प से ।

२०३२. शतादि मास अर्धमास व संवत्सर से परे डट् को नित्य तमट्-आगम होता है ।

२०३३. असंख्यादि षष्टि आदि से परे ड्ट् को तमट्-आगम होता है ।

२०३४. मत्वर्थ में प्रातिपदिक से छ प्रत्यय होता है सूक्त एवं साम वाच्य होने पर ।

२०३५. वेदाध्येता अर्थ में छन्दस् से घन् प्रत्यय एवं श्रोत्रादेश निपातन होता है ।

२०३६. 'इसने श्राद्ध 'खाया' इस अर्थ में भुक्तोपाधिक श्राद्ध से इनि एवं ठन् प्रत्यय होते हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०३७. पूर्वादिनिः-५।२।८६।। पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ।
२०३८. सपूर्वाच्च-५।२।८७।। कृतपूर्वी ।
२०३९. इष्टादिभ्यश्च-५।२।८८।। इष्टमनेन इष्टी यज्ञे । अधीती ।
२०४०. अनुपद्यन्वेष्टा-५।१।९०।। अनुपदमन्वेष्टा-अनुपदी गवाम् ।
२०४१. साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्-५।२।९१।। साक्षात् द्रष्टा = साक्षी ।
२०४२. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्-५।२।९४।। गावोऽस्मिन्नस्यां वा सन्ति-गोमान्।
२०४३. तसौ मत्वर्थे-१।४।१९।। तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे । सम्प्रसारणम् । विदुष्मान् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भुक्तमिति श्राद्धमित्यस्य क्रियाविशेषणम् । प्रथमान्तात् श्राद्धप्रकृतिकात् भुक्तमनेनेत्यर्थे इनिः, सुपो लुक्, अलोपः, श्राद्धिन् इत्यस्य सौ रूपम् । ठनि ठस्येकादेशे **श्राद्धिक** इति । **पूर्वादिनिः**-अनेनेति कर्तृतृतीयान्तमनुवर्तते । पूर्वशब्दात् अनेनेत्यर्थे इनिः स्यात् कृतं पीतमित्यादिक्रिया-विशेषणे सति । **पूर्वी**—पूर्वं कृतमनेनेत्यर्थे इनिः, पूर्विन् इति, सौ चेति दीर्घे सुलोपनलोपौ। **सपूर्वाच्च**—विद्यमानं पूर्वं यस्मादिति सपूर्वम्, तस्मात् पूर्वशब्दान्तात् अनेनेत्यर्थे इनिः स्यात्। **कृतपूर्वी**—पूर्वं कृतमनेनेत्यर्थे पूर्वं सुप्सुपेति समासे कृतपूर्व इति जाते ततः सपूर्वाच्चेति इनिः, सौ रूपम् । **इष्टादिभ्यश्च**—इष्टादिभ्य अनेनेत्यर्थे इनिः स्यात् । **इष्टी**—इष्टमनेन इत्यर्थे इनिः, सुपो लुक्, यस्येति च, सौ सौ चेति दीर्घः, सुलोपनलोपौ । **अधीती**—अधीतम् अनेन इत्यर्थे अधीतशब्दादिनिः, सौ रूपम् । **अनुपद्यन्वेष्टा**—अन्वेष्टरि अर्थे अनुपदी इति निपात्यते । अनुपद-शब्दादिनिर्भवतीति ज्ञेयम् । **अनुपदी**—पदस्य पश्चादित्यर्थेऽव्ययीभावे अनुपदम् इति, सप्तम्या अम्भावः । तस्मात् इनिः । **क्षात्**—'साक्षात्' इत्यव्ययात् द्रष्टरि अर्थे इनिः भवति संज्ञायाम्। **साक्षी**—साक्षात्=द्रष्टा इत्यर्थे इनिः, अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' इति आत् इत्यस्य लोपः, साक्षिन् इत्यस्य सौ रूपम्। यस्तु न कर्मणि युज्यते अपि तु क्रियमाणं कर्म पश्यति सः साक्षी । **तदस्यास्ति**—तदिति प्रथमान्तबोधकम् । तदस्यास्ति, तदस्मिन्नस्ति इत्यर्थे प्रथमान्तात् मतुप् स्याद् वा इत्यर्थः । इन्द्रियमिन्द्रेत्यादितः 'वा' इत्यनुवर्तते । **गोमान्**—गावः सन्ति अस्येत्यर्थे मतुप्, सुपो लुक्, गोमत् इति, सौ नुमि, अत्वेति दीर्घे सुलोपः, तस्य संयोगान्तलोपः। **विदुष्मान् इति**—विद्वान्सः सन्ति अस्मिन् इत्यर्थे मतुप्, सुपो लुक् । विद्वस् मत् इति, तसौ मत्वर्थे इति भसंज्ञा, वसोः सम्प्रसारणमिति वस्य उः, पूर्वरूपम्, षत्वम्, सौ रूपम् ।

हिन्दी

२०३७. पूर्व शब्द से तृतीयार्थ में इनि होता है, कृतं पीतम् इत्यादि क्रियाविशेषण के अध्याहार होने पर ।

२०३८. पूर्वशब्दान्त से भी उक्तार्थ में 'इनि' प्रत्यय होता है ।

२०३९. इष्टादि शब्दों से 'अनेन' अर्थ में 'इनि' प्रत्यय होता है ।

२०४०. अन्वेष्टा अर्थ में 'अनुपदी' यह इनि प्रत्ययान्त निपातन है ।

२०४१. द्रष्टा अर्थ में साक्षात् शब्द से इनि प्रत्यय होता है ।

२०४२. तद् अस्य अस्ति, तद् अस्मिन् अस्ति, इन अर्थों में मतुप् होता है ।

२०४३. मत्वर्थ-प्रत्यय परे तान्त एवं सान्त को भसंज्ञा होती है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः ॥ शुक्लो गुणोऽस्यास्ति = शुक्लः पटः कृष्णः।
२०४४. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्-५।२।९६॥ चूडालः, चूडावान् । प्राणिस्थात् किम्-शिखावान् दीपः ।
वा. प्राण्यङ्गादेव ॥ नेह-मेधावान् ।
२०४५. सिध्मादिभ्यश्च-५।२।९७॥ लज्वा । सिध्मलः, सिध्मवान् ।
ग. सू. वातदन्तबलललाटानामूङ् च ॥ वातूलः । दन्तूलः । बलूलः । ललाटूलः।
२०४६. वत्सांसाभ्यां कामबले-५।२।९८॥ लज्वा यथासख्यं कामवति बलवति चार्थे।वत्सलः । अंसलः ।
२०४७. फेनादिलच्-५।२।९९॥ चाल्लच् । अन्यतरस्यांग्रहणं मतुप्-समुच्चयार्थमनुवर्तते । फेनिलः । फेनलः । फेनवान् ।

मध्यमनोरमापूरणी

शुक्लः गुणोऽस्यास्ति इत्यर्थे शुक्लशब्दान्मतुप्, तस्य गुणवचनेभ्य इति लुक् । एवमेव कृष्णः इति बोध्यम् । **प्राणिस्थात्**—प्राणिषु तिष्ठति इति प्राणिस्थः, तस्मात् आदन्तात् मत्वर्थे लज्-वा इत्यर्थः । **चूडालः**—चूडा अस्य अस्ति इत्यर्थे लच् । चकार इत् । पक्षे मतुप्, मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः इति मस्य वः, चूडावान् इति । **शिखावान्**—शिखाः सन्ति अस्मिन् दीपे इति शिखावान् । दीपस्य अप्राणित्वान्नात्र लच् । यदि प्राणिस्थादिति नोच्येत तदात्रापि लच् स्यादिति भावः । **प्राण्यङ्गादेव**—लच् इति । **मेधावान्**—मेधा-शब्दस्य प्राण्यङ्गत्वाभावेन न लच्, अपि तु मतुबेव । **सिध्मादिभ्यश्च**—लजन्यतरस्यामित्यनुवर्तते । मत्वर्थे एव सिध्मादिभ्यः लच् वा इत्यर्थः । अन्यतरस्यांग्रहणेन मतुप् समुच्चीयते, न तु लच् विकल्प्यते। तेन लजभावे मतुबेव न तु इनिठनौ भवतः सिध्माद्यकारान्तेभ्यः । **सिध्मलः**—सिध्मम् अस्ति अस्येत्यर्थे लच् । मतुपि मस्य वः, **सिध्मवान् इति** । कुष्ठरोगयुक्तः इत्यर्थः । **वातदन्तेति**—एभ्यो लच् प्रकृतेरूङ् आदेशश्चेत्यर्थः।**वातूलः**—वाताः सन्ति अस्यास्मिन् वा इत्यर्थे लच्, ऊङ् आदेशश्च । वातूल इति, ऊङ् इति ङित्त्वादन्त्यस्य अकारस्य स्थाने भवति । एवमेव दन्ताः सन्ति अस्येति **दन्तूलः**, बलानि सन्ति अस्मिन् इति **बलूलः** इत्यादि बोध्यम् । **कामबले**—कामबलशब्दौ तद्वति लाक्षणिकौ । कामवति अर्थे वत्सात् बलवति अर्थे अंसात् च लज् वा इत्यर्थः । **वत्सलः**—वत्सः अस्ति अस्येत्यर्थे लच् । वत्सकामः इत्यर्थः । अंसौ स्तः अस्येति **अंसलः** बली । **फेनादिलच्च**—मत्वर्थे इलच् भवति, चाल्लजन्यतरस्यामित्यनुवर्तते ।

हिन्दी

वा. गुणवाचकों से मतुप् प्रत्यय का लुक् होता है ।
२०४४. प्राणिस्थवाचक आकारान्त से मत्वर्थ में लच् होता है विकल्प से ।
वा. प्राण्यङ्गवाची से ही लच् होता है ।
२०४५. सिध्मादिगण पठित से लच् एवं मतुप् होते हैं मत्वर्थ में ।
ग. सू. वात दन्त बल एवं ललाट से मत्वर्थ में लच् होता है, तथा प्रकृति को ऊङ् आदेश होता है ।
२०४६. कामी एवं बलवान् अर्थ में वत्स तथा अंस से क्रमशः मत्वर्थीय लच् होता है।
२०४७. फेन शब्द से मत्वर्थ में इलच् लच् एवं मतुप् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०४८. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः-५।२।१००॥ लोमादिभ्यः शः, लोमशः, लोमवान् । रोमशः-रोमवान् । पामादिभ्यो नः । पामनः ।
ग. सू. अङ्गात् कल्याणे ॥ अङ्गना ।
ग. सू. लक्ष्म्या अच्च ॥ लक्ष्मणः । पिच्छादिभ्यः इलच्-पिच्छिलः, पिच्छवान् । उरसिलः, उरस्वान् ।
२०४९. प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः-५।२।१०१॥ प्राज्ञो व्याकरणम् । प्राज्ञा । श्राद्धः। आर्चः । वा. वृत्तेश्च ॥ वार्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्यतरस्यामित्यव्ययत्वेनानेकार्थकम् । तेन मतुपोऽपि संग्रहो भवति । **फेनिलः**—फेनोऽस्यास्तीत्यर्थे इलच्, भंत्वादलोपः । **पक्षे लच्**—फेनलः इति । मतुपि तु **फेनवान्** इति। **लोमादि इति**—श न इलच् इत्येते त्रिभ्यः क्रमशः भवन्ति । **लोमशः**—लोमानि सन्ति अस्येत्यर्थे शः, नलोपः । मतुपि तु मस्य वः, लोमवान् इति । रोमाणि सन्ति अस्य इति शः, नलोपः, **रोमशः**, मतुपि **रोमवान्** । **पामनः**—पामा अस्ति अस्येत्यर्थे न-प्रत्ययः । पामन् न इति । नलोपे स्वादिकार्यम् । **अङ्गात् कल्याणे**—कल्याणवाचकाद् अङ्गशब्दात् मत्वर्थे न-प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **अङ्गना**—अङ्गानि सन्ति अस्याः इत्यर्थे नः, टाप् । कल्याणाङ्गा इत्यर्थः । **लक्ष्म्या अच्च**—लक्ष्मीशब्दात् मत्वर्थीयः न-प्रत्ययः स्यात् प्रकृतेः अत् चादेशः इत्यर्थः । **लक्ष्मणः**—लक्ष्मीः अस्ति अस्येत्यर्थे न-प्रत्ययः, लक्ष्मीशब्दस्य ईकारस्य च अः, लक्ष्मन इति, नस्य णत्वम्। **पिच्छिलः**—पिच्छानि सन्ति अस्य इत्यर्थे इलच्, भत्वादलोपः । मतुपि मस्य वः, पिच्छवान् इति । **उरसिलः**—उरः अस्ति अस्येत्यर्थे इलच् । मतुपि सुपो लुकि, मादुपधायाश्चेति मस्य वः । मतुपि उरस् इत्यस्य भसंज्ञात्वात्र सस्य रुत्वम् । **प्रज्ञेति**—प्रज्ञा श्रद्धा अर्चा इत्येभ्यो मत्वर्थे णः स्यादित्यर्थः । **प्राज्ञो व्याकरणम्**—प्रज्ञानं प्रज्ञा, स्त्रियामित्यधिकारे आश्चोपसर्गे इति प्रपूर्वात् ज्ञाधातोरङ् भावे । प्रज्ञा अस्यास्तीत्यर्थे णः, तद्धितेष्विति आद्यचो वृद्धौ यस्येति चेत्यालोपः । प्रज्ञानक्रियां प्रति व्याकरणस्य कर्मत्वाद् द्वितीया । कृद्योगे षष्ठी न । कर्तृकर्मणोः कृतीत्यत्र कृद्ग्रहणेन तद्धितयोगे षष्ठ्याः निषेधात् । श्रद्धा अस्ति अस्येत्यर्थे णः, आदिवृद्धिः, आलोपः, **श्राद्ध इति** । अर्चा अस्ति अस्येति णे **आर्च इति** । **वृत्तेश्च**—मत्वर्थे वृत्तिशब्दाण्णः इत्यर्थः । वृत्तिः अस्यास्ति इति **वार्तः** । णः, आदिवृद्धिः, रपरत्वम् ।

हिन्दी

२०४६. कामी एवं बलवान् अर्थ में वत्स तथा अंस से क्रमशः मत्वर्थीय लच् होता है।

२०४७. फेन शब्द से मत्वर्थ में इलच्, लच् एवं मतुप् प्रत्यय होते हैं ।

२०४८. लोमादि से श पामादि से न तथा पिच्छादि से इलच् प्रत्यय होते हैं, मत्यर्थ में ।

ग. सू. कल्याणार्थक अङ्ग शब्द से 'न' प्रत्यय होता है, मत्वर्थ में ।

ग. सू. लक्ष्मी शब्द से मत्वर्थ में न प्रत्यय तथा प्रकृति को अदन्त आदेश होता है ।

२०४९. प्रज्ञा श्रद्धा व अर्चा से मत्वर्थ में ण प्रत्यय होता है ।

वा. वृत्तिशब्द से भी ण प्रत्यय होता है मत्वर्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०५०. तपःसहस्राभ्यां विनीनी-५।२।१०२।। विनीन्योरिकारो नकारपरित्राणार्थः । तपस्वी । सहस्री ।

२०५१. अण् च-५।२।१०३।। तापसः । साहस्रः ।

वा. ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम् ।। ज्यौत्स्नः । तामिस्रः ।

२०५२. सिकताशर्कराभ्याञ्च-५।२।१०४।। सैकतो घटः । शार्करः ।

२०५३. देशे लुबिलचौ च-५।२।१०५।। चादण् मतुप् च । सिकताः सन्ति अस्मिन् देशे सिकताः- सिकतिलः-सिकतावान् । एवं शर्करेत्यादि ।

२०५४. दन्त उन्नत उरच्-५।२।१०६।। उन्नताः दन्ता अस्य सन्ति इति दन्तुरः।

मध्यमनोरमापूरणी

तपःसहस्राभ्याम्—आभ्यां यथासंख्यं विनिः इनिश्च प्रत्ययौ मत्वर्थे भवतः इत्यर्थः । **तपस्वी**-तपः अस्ति अस्येत्यर्थे तपः सहस्राभ्यामिति विनिः, इकार इत् । तसौ मत्वर्थे इति तपस् इत्यस्य भत्वान्न ससजुषो रुः इति रुः । सौ उपधादीर्घे सुलोपनलोपौ । सहस्रमस्ति अस्येत्यर्थे इनिः, **सहस्री इति** । **अण् च**—तपःसहस्राभ्यामण् मत्वर्थे इत्यर्थः । **तापसः**—अणि आदिवृद्धिः। **ज्योत्स्नादिभ्यः**—अण् इति शेषः । **ज्यौत्स्नः**—ज्योत्स्ना अस्ति अस्येत्यर्थे अण्, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेत्यालोपः । शुक्लपक्षः । **तामिस्रः**—कृष्णपक्षः, तमिस्रा अस्ति अस्य इत्यर्थेऽण्, आद्यचो वृद्धिः, आलोपः । **सैकतः**—सिकताः सन्ति अस्येत्यर्थे सिकता-शब्दात् अण्, आद्यचो वृद्धिः, यस्येति चेत्यालोपः । **शार्करः**—शर्कराः सन्ति अस्य इत्यर्थे अण् । **देशे लुबिलचौ च**—सिकता-शर्कराभ्यामित्यनुवर्तते । चात् अण् मतुप् च समुच्चीयते । सिताशर्कराभ्यां इलच् अण् मतुप् च प्रत्ययाः भवन्तीत्यर्थः लुप् च । कस्य लुप् भवति इति चेत् मतुबादीनामन्यतमस्य, विशेषाभावात् । **सिकता**—सिकताः अस्मिन् देशे इत्यर्थे इलच्, अण् मतुब्वा, तस्य लुक् अपि अनेनैव सूत्रेण क्रियते । जसि सिकताः । सिकताशब्दस्य नित्यं बहुवचनान्तता । लुगभावे इलचि सिकतिलः इति, अणि सैकत इति, मतुपि मस्य वः, सिकतावानिति च रूपाणि । एवं शर्कराः शर्करिलः, शार्करः शर्करावान् इति रूपाणि । **दन्त उन्नत उरच्**—दन्त इति सप्तमी पञ्चम्यर्थे । उन्नत इति दन्तविशेषणम् । उन्नतविशेषणकाद् दन्त शब्दात् मत्वर्थे उरच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **दन्तुरः**—उन्नताः दन्ताः सन्ति अस्येत्यर्थे उरच्, अलोपः ।

हिन्दी

२०५०. तपस् एवं सहस्र से क्रमशः विनि एवं इनि प्रत्यय होते हैं मत्वर्थ में ।

२०५१. तपस् एवं सहस्र से मत्वर्थ में अण् भी होता है ।

वा. ज्योत्स्नादि शब्दों से मत्वर्थ में अण् होता है ।

२०५२. सिकता एवं शर्करा शब्द से मत्वर्थ में अण् होता है ।

२०५३. देश अर्थ में सिकता एवं शर्करा से इलच् अण् व मतुप् होते हैं तथा उनका लुप् होता है विकल्प से ।

२०५४. उन्नत विशेषणक दन्त से मत्वर्थ में उरच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०५५. ऊषसुषिमुष्कमधो रः-५।२।१०७॥ ऊषरः । सुषिरः । मुष्कोऽणुः, मुष्करः । मधुरः ।

वा. रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्यः उपसंख्यानम् । खरः । मुखरः । कुञ्जो = हस्तिहनुः, कुञ्जरः ।

वा. नगपांसुपाण्डुभ्यश्च ॥ नगरम् । पांसुरः । पाण्डुरः ।

वा. कच्छ्वा ह्रस्वत्वञ्च ॥ कच्छुरः ।

२०५६. द्युद्रुभ्यां मः-५।२।१०८॥ द्युमः । द्रुमः ।

२०५७. केशाद्वोऽन्यतरस्याम्-५।२।१०९॥ प्रकृतेनान्यतरस्यां ग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणम् इनिठनोः समावेशार्थम् । केशवः, केशी, केशिकः, केशवान् ।

वा. अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ मणिवो नागविशेषः । हिरण्यवो निधिविशेषः ।

मध्यमनोरमापूरणी

ऊषसुषि इति—एभ्यो मत्वर्थे रः स्यादित्यर्थः । **ऊषरः**—ऊषः क्षारमृत्तिका, सोऽस्यास्तीति 'र' प्रत्ययः । **सुषिरः**—सुषिः=बिलम्, अस्यास्तीति विग्रहे रः । एवं मुष्करः । **मधुरः**—मधु अस्यास्ति इत्यर्थे रः । **रप्रकरणे**—ख मुख कुञ्ज इत्येभ्योऽपि मत्वर्थीय-र-प्रत्ययः स्यात् । **खरः**—खम् कण्ठविवरम् अस्ति अस्येत्यर्थे रः, गर्दभ इत्यर्थः । मुखमस्यास्तीति मुखरः । कुञ्जौ अस्य स्तः इति कुञ्जरः । हस्तिनः हनू कुञ्ज इत्युच्यते । **नगपांसुपाण्डुभ्यश्च**—एतेभ्यो मत्वर्थे रप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **नगरम्**—नगाः=प्रासादाः सन्ति अस्मिन् इत्यर्थे र-प्रत्ययः, सुपो लुक्, स्वादिकार्यम् । नगरशब्दस्य जातिविशेषवाचित्वात् ङीषि नगरीति बोध्यम् । पांसुः अस्ति अस्येति पांसुरः । पाण्डुः शुक्लवर्णः, अस्ति अस्येति पाण्डुरः । **कच्छ्वेति**—कच्छू शब्दात् र-प्रत्ययः प्रकृतेः ह्रस्वत्वञ्चेत्यर्थः । **कच्छुरः**—कुक्कुरस्य रोगविशेषः । सा अस्ति अस्येत्यर्थे र-प्रत्ययः ह्रस्वश्चान्तादेशः । **द्युद्रुभ्याम्**—दिव् इति कृतोत्त्वस्य द्यु इति निर्देशः । दिवद्रुशब्दाभ्यां मत्वर्थे 'म'-प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । द्युमः द्रुमः इति रूढशब्दौ । **केशाद् व इति**-मत्वर्थे केशशब्दात् व-प्रत्ययः स्यात् विकल्पेन । ननु प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्यामित्यतः अनुवृत्तेनैव अन्यतरस्यां ग्रहणेन मतुपः सिद्धिः पुनः अत्रान्यतरस्यामिति कथम् इति प्रश्ने उच्यते-पुनर्ग्रहण-मित्यादि । अन्यथा सिध्मादिभ्यश्च इत्यत्रेव मतुबेव समुच्चीयेत नत्विन्ठनौ अपि । **केशवः**—केशाः सन्ति अस्येत्यर्थे **केशाद् वः** इति वः, सुपो लुक् । इनि प्रत्यये सौ उपधादीर्घे केशी इति । ठनि ठस्येकादेशेऽलोपे केशिक इति । मतुपि मस्य वादेशे केशवान् इति च चत्वारि रूपाणि एकस्मिन्नेवार्थे भवन्ति । **मणिवः**—मणिरस्यास्तीत्यर्थे अन्येभ्योऽपि दृश्यते इति व-प्रत्ययः । हिरण्यानि सन्ति अस्येति **हिरण्यवः** ।

हिन्दी

२०५५. ऊष सुषि मुष्क एवं मधु से 'र'-प्रत्यय मत्वर्थ में होता है ।

वा. ख मुख एवं कुञ्ज से भी मत्वर्थीय 'र' प्रत्यय कहना चाहिये ।

वा. नग पांसु एवं पाण्डु से मत्वर्थ में र-प्रत्यय होता है ।

वा. कच्छू से मत्वर्थ में र-प्रत्यय होता है तथा कच्छू को ह्रस्वान्त आदेश भी ।

२०५६. दिव् एवं द्रु से मत्वर्थ में र-प्रत्यय होता है ।

२०५७. केश से मत्वर्थ में व, इन्, ठन् तथा मतुप् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अर्णसो लोपश्च ।। अर्णवः ।
२०५८. गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्-५।२।११०।। ह्रस्वदीर्घयोर्यण् । तन्त्रेण निर्देशः। गाण्डीवम्-अर्जुनस्य धनुः । अजगवं = पिनाकः ।
२०५९. काण्डाण्डादीरन्नीरचौ-५।२।१११।। काण्डीरः । आण्डीरः ।
२०६०. रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्-५।२।११२।। रजस्वला स्त्री । कृषीवलः ।'वले' इति दीर्घः । आसुतीबलः शौण्डिकः । परिषद्वलः । पर्षदिति पाठान्तरम् । पर्षद्वलः।
वा. अन्येभ्योऽपि दृश्यते । भ्रातृवलः । पुत्रवलः । शत्रुवलः ।
२०६१. दन्तशिखात् संज्ञायाम्-५।२।११३।। दन्तावलो-हस्ती । शिखावलः-केकी।

मध्यमनोरमापूरणी

अर्णसः इति—अर्णसः व-प्रत्ययः प्रकृतेः सकारस्य लोपश्चेत्यर्थः । **अर्णवः**—अर्णांसि-जलानि सन्ति अस्मिन् इत्यर्थे व-प्रत्ययः सलोपश्च । **गाण्ड्येति**—गाण्डि गाण्डी इत्यनयोर्यणा निर्देशः, गाण्डी अजग इत्यनयोः समाहारद्वन्द्वः । गाण्डि गाण्डी इत्याभ्याम् अजग इत्यस्माच्च संज्ञायां 'व' प्रत्ययः मत्वर्थीयः स्यादित्यर्थः । **गाण्डीवः**—गाण्डी अस्ति अस्येत्यर्थे वः । गाण्डिशब्दात् गाण्डिवम् इति । अजगवः शिवधनुः । व-प्रत्ययः अजगशब्दाद् भवति । **काण्डाण्डात्**—काण्ड आण्ड इत्याभ्याम् ईरन् ईरच् इत्येतौ मत्वर्थे प्रत्ययौ स्तः इत्यर्थः । **काण्डीरः**—काण्डः अस्ति अस्येत्यर्थे ईरच्, भत्वादलोपः । धनुर्धारी, तिरस्कारसूचको वा । आण्डमस्ति अस्येत्यर्थे ईरन्, **आण्डीरः**-पक्षिसमूहः । **रजः कृष्येति**—रजस् कृषि आसुति परिषद् इत्येभ्यो मत्वर्थे वलच् । रजस्वला-रजः अस्ति अस्याः इत्यर्थे वल् । भत्वान्न सस्य रुत्वम् । स्त्रीत्वाट्टाप्, सवर्णदीर्घः । **कृषीवलः**—कृषिः अस्यास्ति इत्यर्थे वलच्, वले इत्यनेन कृषि इतीकारस्य दीर्घः । **पर्षद्वलः**—पर्षद् इति पाठान्तरं मत्वा पर्षद् शब्दात् वलचि रूपम् । **अन्येभ्योऽपि दृश्यते**—रजःकृष्यासुति इति सूत्रोक्तादन्येभ्योऽपि वलच् भवतीत्यर्थः । **भ्रातृवलः**—भ्राता अस्ति अस्येत्यर्थे वलच्, वले इति अणो दीर्घः, ऋकारस्याण्त्वाभावान्न दीर्घः । पुत्रवलः इत्यत्र वले इति न दीर्घः, तत्र 'संज्ञायाम्' इत्यनुवृत्तेः । **शत्रुवलः**—शत्रुः अस्ति अस्येत्यर्थे वलच् । **दन्तशिखादिति**—दन्तश्च शिखा चेति समाहारद्वन्द्वः, दन्तात् शिखाशब्दाच्च मत्वर्थे वलच् भवति संज्ञायाम् । **दन्तावलः**—दन्तौ अस्य स्तः इत्यर्थे वलच् । प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक्, वले इति दन्ताकारस्य दीर्घः । शिखाः सन्ति अस्येत्यर्थे वलच् ।

हिन्दी

वा. मत्वर्थ में अन्य प्रातिपदिक से भी व प्रत्यय होता है ।
वा. अर्णस् शब्द से मत्वर्थीय व प्रत्यय होता है तथा स् का लोप होता है ।
२०५८. गाण्डि या गाण्डी तथा अजग से मत्वर्थ में व प्रत्यय होता है, संज्ञा में ।
२०५९. काण्ड एवम् आण्ड से ईरन् तथा ईरच् प्रत्यय होते हैं मत्वर्थ में ।
२०६०. रजस् कृषि आसुति परिषद् या पर्षद् से मत्वर्थ में 'वलच्' प्रत्यय होता है ।
वा. रजस् व कृषि से भिन्न से भी वलच् प्रत्यय होता है ।
२०६१. दन्त एवं शिखा शब्द से मत्वर्थ में वलच् होता है, संज्ञा के विषय में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०६२. अत इनिठनौ-५।२।११५॥ दण्डी, दण्डिकः ।

२०६३. व्रीह्यादिभ्यश्च-५।२।११६॥ व्रीही, व्रीहिकः ।

२०६४. तुन्दादिभ्य इलच्च-५।२।११७॥ चादिनिठनौ मतुप् च । तुन्दिलः, तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दवान् । उदर, पिण्ड, यव, व्रीहि, इति तुन्दादिः ।

२०६५. रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्-५।२।१२०॥ आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः ।

वा. अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ हिम्याः पर्वताः । गुण्याः ब्राह्मणाः ।

२०६६. अस्मायामेधास्रजो विनिः-५।२।१२१॥ यशस्वी, यशस्वान् । मायावी, मायावान् । व्रीह्यादिपाठान्मायी, मायिकः । स्रग्वी ।

मध्यमनोरमापूरणी

अत इनिठनौ—अदन्तात् मत्वर्थे इनिठनौ स्तः। अन्यतरस्यां ग्रहणानुवृत्तेः मतुबपि समुच्चीयते। **दण्डी**—दण्डः अस्ति अस्येत्यर्थे इनिः, अलोपः, दण्डिन् इत्यस्य सौ उपधादीर्घे सुलोपनलोपौ भवतः । ठनि ठस्येकादेशे अलोपे च **दण्डिकः** इति । **व्रीह्यादिभ्यश्च**—इनिठनौ भवतः मत्वर्थे इति । व्रीहिः अस्ति अस्येति इनिः, यस्येति चेतीकारलोपः । ठनि व्रीहिकः । **तुन्दादिभ्य इलच्च**-इलच्, चात् मतुप् इनिठनौ इति च समुच्चीयन्ते । **तुन्दिलः**- तुन्दम् अस्ति अस्येत्यर्थे इलच्, भत्वादलोपः । दीर्घोदर इत्यर्थः । इनि तुन्दी इति, ठनि ठस्येकादेशे तुन्दिक इति, मतुपि च तुन्दवान् इति भवति । सर्वेषामर्थः समानः । **रूपादिति**-आहतप्रशंसा इति रूपस्य विशेषणम्। आहतविशेषणकाद् प्रशंसाविशेषणकाच्च रूपशब्दात् मत्वर्थे यप् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **रूप्यः कार्षापणः**—आहतं रूपम् अस्ति अस्येत्यर्थे रूपशब्दात् यप्, सुपो लुक् । भत्वादलोपः, रूप्यः इति सौ रूपम् । **अन्येभ्योऽपि**— रूपादन्येभ्योऽपि शब्देभ्यः यप् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । भूम्नि अर्थे अयं यप् । **हिम्याः**—प्रभूतं हिममस्मिन् अस्ति इत्यर्थे यप्, अलोपः । **गुण्याः**—प्रशस्ताः गुणाः सन्ति अस्मिन्निति अर्थे यप्, अलोपः । **अस्माया मेधा**—अस् इत्यनेन असन्तं गृह्यते। असन्ताद् माया मेधा स्रज् इत्येभ्यश्च शब्देभ्यः विनिः स्यान्मत्वर्थे । **यशस्वी**—यशः अस्यास्ति इत्यर्थे विनिः, यशस्विन् इति, तसौ मत्वर्थे इति भसंज्ञा, तेन पदान्तत्वाभावात् सस्य रुत्वं न । सौ उपधादीर्घे सुलोपनलोपौ । मतुप् अपि समुच्चीयते, अतः मतुपि यशस्वान् इति । माया अस्यास्ति इति मायावी । विनिप्रत्ययः । **मायी**—व्रीह्यादौ माया इत्यस्य ग्रहणात् इनिरपि भवति, भत्वादालोपः, सौ उपधादीर्घः । ठनि तु ठस्येकादेशे आलोपे च **मायिक** इति । **स्रग्वी**-स्रजः सन्ति अस्येत्यर्थे दिनिः, स्रज् विन् इति, स्रज् इत्यस्य क्विन्नन्तत्वाद् क्विन्प्रत्ययस्येति जस्य कुत्वेन गः, सौ उपधादीर्घः ।

हिन्दी

२०६२. अदन्त प्रातिपदिक से इनि एवं ठन् प्रत्यय होते हैं मत्वर्थ में ।

२०६३. व्रीह्यादि शब्दों से इनि एवं ठन् तथा मतुप् होते हैं ।

२०६४. तुन्दादिगण पठित से इनि ठन् एवं मतुप् प्रत्यय होते हैं ।

२०६५. आहत एवं प्रशंसाविशेषणक रूप शब्द से मत्वर्थ में यप् प्रत्यय होता है ।

वा. रूप से अन्य शब्द से भी यप् प्रत्यय होता है ।

२०६६. असन्त माया स्रज् एवं मेधा शब्द से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥ शृङ्गारकः । वृन्दारकः ।

वा. फलबर्हाभ्यामिनच् ॥ फलिनः । बर्हिणः ।

वा. हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥ हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान् ।

वा. शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने ॥ शीतं न सहते शीतालुः । उष्णालुः । तृप्रः-पुरोडाशः, तं न सहते तृप्रालुः ।

वा. तप्पर्वमरुद्भ्याम् ॥ पर्वतः । मरुत्तः ।

२०६७. ऊर्णाया युस्-५।२।१२३॥ ऊर्णायुः ।

२०६८. वाचो ग्मिनिः-५।२।१२४॥ वाग्मी ।

२०६९. आलजाटचौ बहुभाषिणि-५।२।१२५॥

मध्यमनोरमापूरणी

शृङ्गारकः—शृङ्गमस्यास्ति इत्यर्थे शृङ्गवृन्दाभ्यामिति आरकन्, नकार इत् । भत्वादलोपः । **फलिनः**—फलानि सन्ति अस्येत्यर्थे फलबर्हाभ्यामिति इनच्, अलोपः । **हृदयाच्चालुरिति**-हृदयात् मत्वर्थे आलुः, पक्षे मतुप्, चात् इनिठनौ च भवन्ति इत्यर्थः । **हृदयालुः**- हृदयमस्यास्ति इत्यर्थे आलुः । इनि हृदयी । ठनि हृदयिकः । मतुपि हृदयवान् इति भवति । **शीतोष्णतृप्रेभ्यः**—एतेभ्यः असहने = न सहते इत्यर्थे आलु-प्रत्ययः स्यात् । **शीतालुः**-शीतं न सहते इत्यर्थे आलुः, अलोपः । उष्णं न सहते इति **उष्णालुः** । **तप्पर्वमरुद्भ्यः**-आभ्यां तप् स्यान्मत्वर्थे इत्यर्थः । **पर्वतः**—पर्वाणि सन्ति अस्येत्यर्थे तप्, पकार इत्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । **मरुत्तः**—मरुतः सन्ति अस्य आराध्याः इति तप्, मरुत्तो नाम नृपः । **युस् इति**-मत्वर्थे भवतीति शेषः । **ऊर्णायुः**—ऊर्णा अस्ति अस्येत्यर्थे ऊर्णाया युस् इति युस्, सकार इत् । उर्णा यु इति दशायां यस्येति चेति आलोपो न, सित्त्वात् सिति चेति ऊर्णा इत्यस्य पदत्वात् । सौ रूपम् । **वाचो ग्मिनिः**—वाच् शब्दात् मत्वर्थे ग्मिनिः स्यात् । ग्मिनि इत्यस्यान्त्य इकार उच्चारणार्थः । अतद्धित इति पर्युदासात् लशक्वेति गस्य नेत्संज्ञा । **वाग्मी**—वाचः सन्ति अस्येत्यर्थे ग्मिनिः, चस्य कुत्वेन कः, तस्य जश्त्वेन गः, वाग्ग्मिन् इति, सौ उपाधादीर्घः । **आलजाटचौ**—बहु भाषते तच्छीलः, बहुभाषी, तस्मिन् वाच् शब्दात् आलच् आटच् इत्येतौ भवतः । एतौ कुत्सितभाषणे भवतः इति वक्तव्यम् ।

हिन्दी

वा. शृङ्ग और वृन्द से मत्वर्थ में आटच् प्रत्यय होता है ।

वा. फल एवं बर्ह से मत्वर्थ में इनच् प्रत्यय होता है ।

वा. हृदय शब्द से आलु-प्रत्यय मतुप्, इनि एवं ठन् प्रत्यय होते हैं ।

वा. शीत उष्ण एवं तृप्र से 'न सहते' इस अर्थ में आलु-प्रत्यय होता है ।

वा. पर्व एवं मरुत् से मत्वर्थ में तप् प्रत्यय होता है ।

२०६७. ऊर्णा से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है ।

२०६८. वाच् शब्द से मत्वर्थ में ग्मिनि प्रत्यय होता है ।

२०६९. 'बहु भाषते' अर्थ में वाच् शब्द से आलच् एवं आटच् प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. कुत्सित इति वक्तव्यम् । कुत्सितं बहुभाषते-वाचालः, वाचाटः । यस्तु सम्यग्बहु वदति तत्र वाग्मीत्येव ।

२०७०. स्वामिन्नैश्वर्ये-५।२।१२६।। ऐश्वर्यवाचकात् स्वशब्दात् मत्वर्थे आमिनच् । स्वामी ।

२०७१. अर्श आदिभ्योऽच्-५।२।१२७।। अर्शांसि अस्य विद्यन्ते अर्शसः । आकृतिगणोऽयम् ।

२०७२. वातातीसाराभ्यां कुक् च-५।२।१२९।। चादिनिः । वातकी । अतिसारकी ।

वा. पिशाचाच्च । पिशाचकी ।

२०७३. हस्ताज्जातौ-५।२।१३३।। हस्ती ।

२०७४. वर्णाद् ब्रह्मचारिणि-५।२।१३४।। वर्णी ।

मध्यमनोरमापूरणी

वाचालः—कुत्सितं बहु भाषते इत्यर्थे वाचः आलच् । आटचि तु **वाचाटः इति** । ग्मिनोऽपवादौ इमौ प्रत्ययौ । सम्यग् भाषणे **वाग्मीत्येव । ऐश्वर्ये**—ऐश्वर्येऽर्थे स्वामिन् इति निपात्यते । स्वः ऐश्वर्यम्, तद्वान् स्वामी इति । स्वशब्दाद् आमिनच् भवति इति वृत्तिः अत एव । **अर्श आदिभ्यः**—अर्शः गुदरोगविशेषः । अर्शस्-शब्दः आदिर्येषाम्, तेभ्यः मत्वर्थे अच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । आकृतिगणोऽयं विद्यते । यत्र शब्देन अभिन्नरूपेण तद्वतः कथनं स्यात् तत्सर्वम् अर्श आदिगणे द्रष्टव्यम् । अर्शस् उरस् तुन्द चतुरादिशब्दाः अत्र द्रष्टव्याः । **अर्शसः**-अर्शांसि अस्य सन्ति इत्यर्थे अच्, प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुक्, अर्शस इत्यकारान्तः, सौ रूपम्। **वातातीसाराभ्याम्**—द्वन्द्वोपताप इत्यादिना इनि प्रत्यये सिद्धे कुग्विधानार्थमेतत् । चकारात् इनिः इत्यनुवर्तते । वात-अतीसार-शब्दाभ्यां मत्वर्थे इनिः, तत्संनियोगेन च कुगागमः । कुकि उकौ इतौ । कित्त्वादन्त्यावयवः । **वातकी**—वातः = व्याधिविशेषः, अस्ति अस्येत्यर्थे इनिः कुगागमश्च । अतिसारः अस्ति अस्येत्यर्थे इनिः कुगागमश्च, **अतिसारकी इति । पिशाचाच्चेति**-इनिः कुक् चेति शेषः । **हस्तादिति**—जातौ गम्ये इनिः । हस्तः अस्ति अस्येत्यर्थे इनिः । **वर्णात्**-वर्णशब्दात् इनिः स्यात् समुदायेन ब्रह्मचारिणि अर्थे गम्ये । **वर्णी**-वर्णाः = ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णाः, सन्ति अस्येत्यर्थे इनिः । सर्वत्र सौ चेत्युपधादीर्घः।

हिन्दी

वा. कुत्सित भाषण में आलच् एवं आटच्, ये दोनों प्रत्यय होते हैं ।

२०७०. ऐश्वर्य अर्थ में स्व शब्द से आमिनच् प्रत्यय होता है ।

२०७१. अर्श आदिगण पठित शब्दों से मत्वर्थ में 'अच्' प्रत्यय होता है ।

२०७२. वात और अतीसार शब्द से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है व प्रकृति को कुक् आगम होता है ।

वा. पिशाच से मत्वर्थ में इनि व प्रकृति को कुगागम होता है ।

२०७३. हस्त शब्द से मत्वर्थ में इनि प्रत्यय होता है, समुदाय से जाति अर्थ गम्य होने पर ।

२०७४. वर्ण शब्द से इनि प्रत्यय होता है, समुदाय से ब्रह्मचारी अर्थ बोध्य होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०७५. कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः-५।२।१३८॥ कमित्युदकसुखयोः । शमिति सुखे । आभ्यां सप्त प्रत्ययाः स्युः । युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः । कम्बः, कम्भः, कंयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कंयुः । एवं शम्ब इत्यादि ।

२०७६. तुन्दिबलिवटेर्भः-५।२।१३९॥ तुन्दिभः । बलिभः । वटिभः ।

२०७७. अहं शुभमोर्युस्-५।२।१४०॥ अहंयुः=अहङ्कारवान् । शुभंयुः=शुभान्वितः।

॥ इति मत्वर्थीयाः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

बभयुस्तितुतयसः—बभयुस् ति तु त यस् इति एषां सप्तानां द्वन्द्वः । कं शम् इत्याभ्यां मत्वर्थे एते सप्त प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **कम्बः**—कं सुखम् उदकं वा अस्यास्ति इत्यर्थे ब-प्रत्ययः। **कंयुः**—युस्प्रत्यये सति कम् इत्यस्य पदत्वात् मस्यानुस्वारो भवति । यद्यत्र सकार इत् न स्यात्तदा यु प्रत्यये परे भत्वात् अनुस्वारो न स्यात् । अत आह-युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः इति । सिति चेत्यनेन पदत्वं भवति । एवमेव शम् सुखमस्ति अस्येत्यर्थे बः,**शम्बः** इति । शम्भः शंयुरित्याद्यपि ज्ञेयम् । **तुन्दिबलिवटेरिति**—तुन्दिबलिवटि इत्येतेभ्यो मत्वर्थे 'भ'-प्रत्ययः स्यादित्यर्थः । तुन्दिः वृद्धा नाभिः इत्युच्यते । तुन्दिः अस्ति अस्येत्यर्थे भः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । एकदेशविकृतमनन्यवदिति पुनः सौ रुत्वे विसर्गे च रूपम् । बलिरस्यास्तीति बलिभः। वटिः=वेष्टनम्, सा अस्यास्तीति भः, **वटिभः** इति । **अहंशुभमोर्युस्**- अहम् इति मान्तमव्ययम-हङ्कारेऽर्थेऽस्ति । शुभम् इत्यव्ययं शुभेऽर्थेऽस्ति, ताभ्यां मत्वर्थे युस् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **अहंयुः**- अहम् अस्ति अस्येत्यर्थे युस्, सकार इत्, सिति चेति पदसंज्ञा, मोऽनुस्वारः, स्वादिकार्यम् । शुभमस्ति अस्येत्यर्थे युसि कृते शुभंयुरिति । मस्यानुस्वारः ।

॥ इति मत्वर्थीयाः ॥

हिन्दी

२०७५. कम् और शम् शब्द से मत्वर्थ में ब भ युस् ति तु त एवं यस् प्रत्यय होते हैं ।

२०७६. तुन्दि बलि व वटि शब्द से मत्वर्थ में 'भ'-प्रत्यय होता है ।

२०७७. अहम् एवं शुभम् इन अव्ययों से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है ।

॥ इति मत्वर्थीयाः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ प्राग्दिशीयाः

२०७८. प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१।। दिक्शब्देभ्यः इत्यतः प्राग् वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः स्युः । अथ स्वार्थिकाः ।

२०७९. किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः-५।३।२।। किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ।

२०८०. पञ्चम्यास्तसिल्-५।३।७।। पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा ।

२०८१. कु तिहोः-७।२।१०४।। किमः कुस्तादौ हादौ च विभक्तौ । कुतः, कस्मात्।

२०८२. इदम् इश्-५।३।३।। प्राग्दिशीये । इतः ।

२०८३. एतदोऽन्[1]-५।३।५।। एतदः प्राग्दिशीये । अनेकाल्त्वात् सर्वदिशः । अतः । अमुतः । यतः । ततः । बहुतः । द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्राग्दिशः—"दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेष्वस्तातिः" इति सूत्रात् प्राक् ये प्रत्ययाः कथयिष्यन्ते ते विभक्तिसंज्ञाः स्युरित्यर्थः । **किमस्याः संज्ञायाः प्रयोजनमिति चेच्छृणु-** न विभक्तौ तुस्माः इति इत्संज्ञानिषेधः, त्यदादीनामः इत्यत्वम्, इदमो विभक्तिस्वरः इत्यादि ज्ञेयम् । अथ स्वार्थिकाः प्रत्ययाः उच्यन्ते, तेषु समर्थानां प्रथमात् इति पदद्वयं नानुवर्तते । वा इत्यनुवर्तते एव, तेन विकल्पेन तसिलादिप्रत्ययाः भवन्ति । **किंसर्वनामेति-** द्व्यादिभिन्नेभ्यः सर्वनामभ्यः किंशब्दात् बहुशब्दाच्च प्राग्दिशीयाः प्रत्ययाः भवन्तीति अधिकारः ज्ञेयः । **पञ्चम्यास्तसिल्**—किम्-सर्वनाम-बहुभ्यः पञ्चम्यन्तेभ्यो वा तसिल् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **कुतिहोः**—किमः कः इत्यतः किमः इत्यनुवर्तते । कु इति लुप्त- प्रथमाकं पदम् । अष्टन आ विभक्तौ इत्यतः 'विभक्तौ' इत्यनुवर्तते । तिश्च हश्चेति द्वन्द्वः । तदादिविधिः। तदाह-किमः कुस्तादौ इत्यादि । **कुतः**—पञ्चम्यन्तात् किम्-शब्दात् पञ्चम्यास्तसिल् इति तसिल्, प्रातिपदिकत्वात् पञ्चम्याः लुक्, किमः कु इत्यादेशः, तद्धितश्चासर्वविभक्तिरित्यव्ययत्वम् । सस्य रुत्वविसर्गौ । पक्षे कस्मादिति । **इदमः इति**-प्रकरणात् प्राग्दिशीये परे इति लभ्यते। इदमः स्थाने इश् आदेशो भवति प्राग्दिशीये परे इत्यर्थः । इश् इत्यत्र शकार इत् । शित्त्वात् अयम् सम्पूर्णस्य इदमः स्थाने भवति । **एतदोऽन्-** एतद् इत्यस्य अन् इत्यादेशो भवति प्राग्दिशीये परे इत्यर्थः । वस्तुतः नकारस्येत्संज्ञायामनेकाल्त्वाभावान्न सर्वदिशः प्राप्नोति । अतः 'एतदोऽश्' इति काशिकापाठः समीचीनः प्रतीयते । नकारं प्रपठ्य तस्य नलोपः प्रातिपदि-

हिन्दी

२०७८. 'दिक् शब्देभ्यः' से पूर्व तक कहे जाने वाले प्रत्यय को विभक्ति संज्ञा होती है ।

२०७९. किम् सर्वनाम एवं बहु से प्राग्दिशीय प्रत्यय होते हैं, द्व्यादि को छोड़कर ।

२०८०. पञ्चम्यन्त किमादि से तसिल् प्रत्यय होता है ।

२०८१. किम् को 'कु' आदेश होता है, तादि एवं हादि विभक्ति परे रहते ।

२०८२. इदम् को इश् आदेश होता है, प्राग्दिशीय विभक्ति परे ।

२०८३. एतद् को अन् आदेश होता है प्राग्दिशीय परे ।

---

1. 'एतदोऽश्' इति काशिकापाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०८४. पर्यभिभ्याञ्च-५।३।९।। तसिल् । वा. सर्वोभयार्थाभ्यामेव ।। परितः = सर्वत इत्यर्थः । अभितः = उभयत इत्यर्थः ।
२०८५. सप्तम्यास्त्रल्-५।३।१०।। कुत्र । यत्र । तत्र । बहुत्र ।
२०८६. इदमो हः-५।३।११।। त्रलोऽपवादः । इह ।
२०८७. किमोऽत्-५।३।१२।। वा स्यात् ।
२०८८. क्वाति-७।२।१०५।। किमः । क्व । कुत्र ।
२०८९. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते-५।३।१४।। पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते ।

मध्यमनोरमापूरणी

कान्तस्येति लोपः इति बालमनोरमा भाष्यव्याख्यानमनुरुद्ध्य प्रतीयते । **अतः**—अस्मात् इति पञ्चम्यन्तात् पञ्चम्यास्तसिल्, कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकसंज्ञा, सुपो धातुप्रातिपदिकयोरिति पञ्चम्या लुक् । इदम् तस् इति, त्यदादीनामः इत्यत्वे पररूपे च कृते इदम इश् इति इश्, शित्त्वात् अनेकाल् शित्सर्वस्येति सर्वस्यादेशो भवति । इतस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । **अमुतः**-अमुष्मात् इत्यतः तसिल्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । अदस् तस् इति, त्यदादीनामः, पर-रूपम्, अदसो सेरिति दस्य उत्वमत्वे । सस्य रुत्वविसर्गौ । यस्मात् इत्यतः तसिल्, सुब्लुगादि पूर्ववत् । **यतः इति** ।तस्मादित्यतः **ततः इति** । **बहुतः** इति बहुशब्दात् बोध्यम् । किं सर्वनामे-त्यत्र अद्व्यादेरिति पर्युदासात् द्विशब्दात् तसिल् न भवति । तेन द्वाभ्यामित्येव । **पर्यभिभ्याम्**-सर्व उभय इत्यर्थाभ्यामेव परि अभि इत्याभ्यां तसिल् स्यादित्यर्थः । **परितः**—परिशब्दात् तसिल् । **अभितः**-अभिशब्दात् तसिल् । **सप्तम्यास्त्रल्**—अद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहु इत्येतेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः त्रल् स्यादित्यर्थः । **कुत्र**—कस्मिन् इत्यस्मात् त्रल्, लकार इत्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । किम् त्र इति, कु तिहोरिति कु इत्यादेशः । यस्मिन् इत्यस्मात् त्रल्, सुपो लुक्, यत् त्र इति, त्यदादीनामः, पररूपम्, **यत्रेति** । **तत्रेति**—तस्मिन् इत्यतः त्रल्, सुपो लुक्, अत्वपररूपे । बहुषु इत्यस्मात् त्रल्, सुपो लुक्, **बहुत्रेति** । सर्वत्र तद्धितश्चेति अव्ययत्वात् सुपो लुक् भवतीति ज्ञेयम् । **इदमो हः**—सप्तम्या इत्यनुवर्तते । सप्तम्यन्ताद् इदम्शब्दात् 'ह-' प्रत्ययो भवति । **इह**—अस्मिन् इत्यस्मात् त्रलं प्रबाध्य हः, सुपो लुक् । इदम् इश् । **किमोऽत्**—अत्र वाग्रहणं वा ह च च्छन्दसीत्यतोऽपकृष्यते । सप्तम्यन्तात् किम् शब्दात् अत् स्याद् वेत्यर्थः । **क्वाति**—अति परे किमः क्व इत्यादेशः स्यात् । **क्व**-कस्मिन् इत्यतः अत्, सुपो लुक्, किमः क्वादेशः । अतो गुणे इति परपररूपम् । पक्षे त्रल्-कुत्र इति । **इतराभ्योऽपि**-किमादिभ्यः पञ्चम्यन्तसप्तम्यन्तभिन्नाभ्यः इति शेषः ।

हिन्दी

२०८४. परि एवं अभि से तसिल् होता है ।
वा. सर्व एवं उभय इस अर्थ में ही उक्त दोनों से तसिल् हो ।
२०८५. सप्तम्यन्त से त्रल् होता है ।
२०८६. सप्तम्यन्त इदम् से 'ह' प्रत्यय होता है ।
२०८७. सप्तम्यन्त किम् से 'अत्' प्रत्यय होता है ।
२०८८. किम् को क्व आदेश होता है, अत् परे रहते ।
२०८९. किम् सर्वनाम तथा बहु से पञ्चमी-सप्तमी से भिन्न विभक्ति के अन्त में रहने पर भी तसिल् आदि प्रत्यय होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. दृशिग्रहणाद् भवदादियोग एव ।। स भवान्, तत्र भवान् । ततो भवान् । तं भवन्तम्, ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम् । एवं दीर्घायुः । देवानां प्रियः । आयुष्मान् ।

२०९०. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा-५।३।१५।। सप्तम्यन्तेभ्यः एभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात् ।

२०९१. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि-५।३।६।। दादौ प्राग्दिशीये सर्वस्य सो वा । सर्वस्मिन् काले-सदा । सर्वदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काले किम्-सर्वत्र देशे ।

२०९२. इदमोर्हिल्-५।३।१६।। सप्तम्यन्तात् ।

२०९३. एतेतौ रथोः-५।३।४।। इदम एत-इत एतौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे । अस्मिन् काले-एतर्हि । काले किम्- इह देशे ।

२०९४. अधुना-५।३।१७।। इदमो निपातोऽयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भवान्—अत्र प्रथमान्ताद् त्रल् भवति, तत इत्यत्र तसिल् भवति प्रथमान्ताद् । ततो भवन्तम् इत्यत्र द्वितीयान्तात् तसिल्, तत्र भवन्तमित्यत्र त्रल् च । एवमेव दीर्घायुः देवानां प्रियः आयुष्मान् इत्यादिभिर्योगे किमादिभ्यः पञ्चम्यन्तसप्तम्यन्तभिन्नाभ्योऽपि तसिलादयो भवन्तीति बोध्यम् । यथा ततो दीर्घायुः, तत्र दीर्घायुः, ततो देवानां प्रियः, तत्र देवानां प्रियः, स दीर्घायुः, स देवानां प्रियः, तत आयुष्मान् तत्र आयुष्मान् इति । **सर्वैकान्येति**—सप्तम्या इत्यनुवर्तते। सर्व एक अन्य किम् यत् तद् इति सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः दा-प्रत्ययो भवति । **सदा**—सर्वस्मिन् काले इत्यर्थे दा-प्रत्ययः । सप्तम्याः लुक्, सर्व दा इति, सर्वस्य सोऽन्यतरस्यामिति सादेशः । पक्षे सर्वदा इति । एवमेव एकस्मिन् अन्यस्मिन् कस्मिन् इत्यादिभ्यः दा-प्रत्ययः कालेऽर्थे ज्ञेयः । **सर्वत्र देशे**—कालार्थाभावात् त्रलेव । **इदमोर्हिल्**—सप्तम्या इति काले इति चानुवर्तते । सप्तम्यन्ताद् इदम्शब्दात् कालेऽर्थे र्हिल् स्यादित्यर्थः । लकार इत् । **एतेतौ**—इदम इश् इत्यतः इदमः इत्यनुवर्तते । इदमः एत इत इत्येतौ आदेशौ भवतः रादौ थादौ च प्राग्दिशीये प्रत्यये परे इत्यर्थः । **एतर्हि**—अस्मिन् काले इति अर्थे अस्मिन् इत्यस्मात् इदमोर्हिल् इति र्हिल्, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । इदम् र्हि इति, एतेतौ रथोरिति एत आदेशः । "तद्धितश्चासर्वविभक्तिः" इति एतर्हि इत्यस्य अव्ययत्वम्, तेन सुपो लुक् । **इह देशे**—कालार्थाभावात् ह प्रत्यय एव । **अधुना**—इदमः अश्भावः, अधुना प्रत्ययश्च निपात्यते इति काशिका।

हिन्दी

वा. ये प्रत्यय दृश्ग्रहण-सामर्थ्य से भवत् आदि के योग में ही होते हैं ।

२०९०. सर्व एक अन्य किम् यत् एवं तद् सप्तम्यन्त से काल अर्थ में दा प्रत्यय होता है ।

२०९१. सर्व को 'स' आदेश होता है विकल्प से, दादि प्रत्यय परे ।

२०९२. सप्तम्यन्त इदम् से र्हिल् प्रत्यय होता है काल अर्थ में ।

२०९३. इदम् को एत व इत आदेश होते हैं, रादि एवं थादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे ।

२०९४. सप्तम्यन्त इदम् शब्द से 'अधुना' निपातन किया जाता है, काल अर्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२०९५. दानीं च-५।३।१८।। इदमो दानीं प्रत्ययः काले । इदानीम् ।

२०९६. तदो दा च-५।३।१९।। तदा, तदानीम् ।

२०९७. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्-५।३।२१।। कर्हि, कदा । यर्हि, यदा । तर्हि, तदा । एतस्मिन् काले-एतर्हि ।

२०९८. सद्यःपरुत्परार्यैषमः परेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधारेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः-५।३।२२।। एते निपात्यन्ते ।

मध्यमनोरमापूरणी

वस्तुतः इदमः इत्यस्य, सप्तम्या इत्यस्य, काले इत्यस्य चानुवर्तनेन सप्तम्यन्तात् इदम्शब्दात् कालेऽर्थे अधुना प्रत्ययो भवतीत्यर्थः युज्यते । तेन अस्मिन् काले इत्यर्थे अधुना प्रत्यये कृते सुपो लुकि इदम् इश् इति इशादेशे इ अधुना इति जाते भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपे अधुना इति सिद्ध्यति । इदमोऽशादेशे चापि भत्वादलोपः । प्रत्ययमात्रमवशिष्यतेऽत्र । **इदानीम्**— अस्मिन् काले इत्यर्थे सप्तम्यन्तात् अस्मिन् इत्यस्मात् दानीं चेति दानीं प्रत्ययः, सुपो लुक्, इश्, इदानीम् इति । **तदो दा चेति-** चात् दानीमिति गृह्यते । सप्तम्यन्तात् तच्छब्दात् कालेऽर्थे 'दा'-प्रत्ययः दानीं प्रत्ययश्च भवतः । **तदा**—तस्मिन् काले इत्यर्थे दा प्रत्यये सुपो लुकि, त्यदादीनामः इत्यत्वे पररूपे च तदेति रूपम् । दानीं प्रत्यये सति तदानीम् इति । **अनद्यतने-** किंसर्वनामबहुभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः अनद्यतनकालेऽर्थे र्हिल् भवति विकल्पेन । **कर्हि**—कस्मिन् काले इत्यर्थे र्हिल्, सुपो लुक्, किमः कः इति कादेशः । पक्षे सर्वैकान्यकिंयत्तदः इति दाप्रत्ययः। तस्मिन् काले इत्यर्थे तर्हि, तदा इति । **एतर्हि**—एतस्मिन् काले इत्यर्थे र्हिल्, सुपो लुक् । एतदोऽन् इत्यत्र एतद् इति योगविगाद् रादौ प्रत्यये परे एतद् इत्यस्य एत आदेशो भवति। यदि योगविभागो न स्वीक्रियेत तदा एतदोऽन् इति अनादेश एव स्यात् । **सद्यः परुत् इति-** सप्तम्याः इति काले इति चानुवर्तते । सप्तम्यन्तात् कालेऽर्थे सद्यः प्रभृतयः शब्दाः निपात्यन्ते। **सद्यः इति**—समाने अहनि इत्यर्थे समानस्य सभावः द्यस् प्रत्ययश्च निपात्यते । **परुत्**— पूर्वस्मिन् संवत्सरे इत्यर्थे पूर्वशब्दस्य परभावः उत्प्रत्ययश्च निपात्यते । **परारी**—पूर्वतरे संवत्सरे इत्यर्थे आरी-प्रत्ययः, पूर्वतरस्य परादेशश्च । 'पूर्वपूर्वतरयोः परादेशः उदारी च संवत्सरे' इति भाष्यवचनम् । **ऐषमः**-अस्मिन् संवत्सरे इत्यर्थे इदमः इश्, समसण् प्रत्ययश्च, आद्यचो वृद्धौ षत्वे ऐषमस् इति । सस्य रुत्वविसर्गौ । परस्मिन्नहनि इत्यर्थे परस्मात् एद्यविः, **परेद्यवि** इति। अस्मिन्नहनि इत्यर्थे इदमः अश्, द्य-प्रत्ययश्च, अद्येति, । **पूर्वेद्युः**—'पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्यः एद्युस् च' इत्यनेन अहनि वाच्ये एद्युस् प्रत्ययो निपात्यते । भत्वादलोपः, सस्य रुत्वविसर्गौ, पूर्वेद्युरिति । एवमेव अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः इत्यादि ज्ञेयम् ।

हिन्दी

२०९५. काल अर्थ में इदम् से दानीम् प्रत्यय होता है ।

२०९६. काल अर्थ में सप्तम्यन्त तद् से 'दा'-प्रत्यय एवं 'दानीम्' प्रत्यय होते हैं ।

२०९७. अनद्यतन काल विशेष अर्थ में किम् सर्वनाम एवं बहु से र्हिल् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

२०९८. सप्तम्यन्त से काल अर्थ में सद्यः परुत् परारी ऐषमः परेद्यवि अद्य पूर्वेद्युः अन्येद्युः, 'अन्यतरेद्युः इतरेद्युः अपरेद्युः अधरेद्युः उभयेद्युः तथा उत्तरेद्युः ये निपातन होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. द्युश्चोभयाद् वक्तव्यः ।। उभयद्युः ।

२०९९. प्रकारवचने थाल्-५।३।२३।। प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् । तेन प्रकारेण-तथा । यथा ।

२१००. इदमस्थमुः-५।३।२४।। थालोऽपवादः ।

वा. एतदोऽपि वाच्यः ।। अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम् ।

२१०१. किमश्च-५।३।२५।। केन प्रकारेण-कथम् ।

।। इति प्राग्दिशीयाः ।।

मध्यमनोरमापूरणी

द्युश्चोभयाद् इति—उभयशब्दादहनि वाच्ये द्युस् भवति इत्यर्थः । **उभयद्युः** । **प्रकारवचने थाल्**-सामान्यविशेषो भेदकः प्रकारः, प्रकारं वक्तीति प्रकारवचनः तस्मिन् किंसर्वनामादिभ्यः थाल् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **तथा**—तेन प्रकारेण-इत्यर्थे थाल्, सुपो लुक्, त्यदाद्यत्वे पररूपम् । **यथा**—येन प्रकारेण इत्यर्थे थाल्, यद् इत्यस्य दस्य अत्वे पररूपत्वे यथा इति अव्ययम् । **इदमस्थमुः**—प्रकारवचने इत्यनुवर्तते । इदंशब्दात् प्रकारवचने थमुप्रत्ययो भवतीत्यर्थः । थमुः इत्यत्र उकार इत् । मकारस्य उपदेशावस्थायामन्त्यत्वाभावान्नेत्त्वम् । यद्यपि प्राग्दिशीयानां विभक्तित्वान्न विभक्तौ इत्यनेनापि इत्संज्ञा वारितुं शक्या, तथापि न विभक्तावित्यस्यापवादोऽयम् । **एतदोऽपि** —प्रकारवचने थमुः-इति शेषः । अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्यर्थे इदम् शब्दात् एतद्-शब्दाद् वा थमुः, उकार इत् । सुपो लुक् । एतेतौ रथोः इति 'इत्' आदेशे इत्थम् इति सिद्ध्यति । **किमश्च**—किंशब्दात् प्रकारवचने थमुः भवतीत्यर्थः । थालोऽपवादः। **कथम्**—केन प्रकारेण इत्यर्थे प्रकारवचने थाल् इत्येतत् सूत्रं प्रबाध्य किमश्चेति थमुः, किमः कः इति कादेशः ।

।। इति मध्यमनोरमायां प्राग्दिशीयाः ।।

हिन्दी

वा. उभय शब्द से काल अर्थ में द्युस् प्रत्यय भी कहना चाहिये ।

२०९९. किं एवं सर्वनामादि (द्व्यादिभिन्न) से बहु से प्रकार अर्थ में थाल् प्रत्यय होंता है।

२१००. प्रकारवचन में इदम् से थमु-प्रत्यय होता है ।

वा. एतद् से भी प्रकार अर्थ में थमु-कहना चाहिये ।

२१०१. किम् शब्द से प्रकार अर्थ में थमु-प्रत्यय होता है ।

।। इति प्राग्दिशीयः ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ प्रागिवीयाः

२१०२. दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः-५। ३।२७।। सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशि रूढेभ्यो दिग्देशकालवृत्तिभ्यः स्वार्थे अस्तातिः ।

२१०३. पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्-५।३।३९।। एभ्योऽस्तात्यर्थेऽसिस्त-द्योगे चैषां पुर् अध् अव् इत्यादेशाः स्युः ।

२१०४. अस्ताति च-५।३।४०।। पूर्वादीनां पुरादयः स्युः । पूर्वास्याम् पूर्वस्याः पूर्वा वा दिक्, पुरः, पुरस्तात् । अधः, अधस्तात् । अवः ।

२१०५. विभाषाऽवरस्य-५।३।४१।। अस्तातौ अव् वा स्यात् । अवस्तात् । अवरस्तात् । एवं देशे काले च । दिशि रूढेभ्यः किम्-ऐन्द्र्यां वसति ।

मध्यमनोरमापूरणी

दिक्शब्देभ्यः—दिशां शब्दाः दिक्शब्दाः । तेभ्यः दिग्देशकालेषु अर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तम्यन्त-पञ्चम्यन्तप्रथमान्तेभ्यः अस्ताति-प्रत्ययः स्यात् स्वार्थे । अत्र यथासंख्यं नेष्यते । **पूर्वाधरेति**—असि इति लुप्तप्रथमाकम् । पूर्व, अधर, अवर, इत्येतेभ्यः अस्तातेरर्थे= दिग्देशकालेष्वर्थेषु, असिप्रत्ययो भवति अथ एषां स्थाने पुर् अध् अव् इत्यादेशाः भवन्तीत्यर्थः । **अस्ताति च**—अस्ताति इति लुप्तसप्तमीकं पदम् । अथवा अस्तात् इत्यस्य सप्तम्येकवचनम् । असिवर्जं पूर्वावराधराणामिति सूत्रमनुवर्तते । अस्ताति-प्रत्यये परे पूर्वादीनां परादय आदेशा भवन्तीत्यर्थः। **पुरः, पुरस्तादिति**—पूर्वस्यां दिशि, पूर्वस्याः दिशः, पूर्वा वा दिक् इत्येतासु कस्यामपि एकस्यां विभक्तौ 'दिक्शब्देभ्यः' इति अस्तातिः, इकार इत्, अस्ताति चेति पूर्वस्य स्थाने पुर्-आदेशे पुरस्तात् इति । पूर्वाधरावराणामसि इत्यादिना असिप्रत्यये पूर्वस्य परादेशे च परस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । देशेऽर्थे अधर शब्दात् असि, अस्ताति इत्यनयोः कृतयोः अधरस्य अधादेशे च **अधः अधस्तात्** इति । अवरस्य अवादेशेऽसि प्रत्यये च **अवः** इति । अस्ताति च इत्यादेश-विधानमेव ज्ञापकम् यत् असिना अस्तातिः न बाध्यते इति । **विभाषाऽवरस्येति**—पूर्वाधरेति नित्ये प्राप्तेऽनेन विकल्प्यते । 'अस्ताति च' इति अनुवर्तते । अवरस्य अव् वा स्यात् अस्तातौ परे इत्यर्थः । **अवस्तात्**—अवरशब्दात् 'दिक्शब्देभ्यः' इति अस्तातिः, विभाषाऽवरस्येति अवादेशः । **एवं देशेकाले चेति**—पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्वो वा देशः कालो वा पुरः पुरस्तादित्यादि भवतीत्यर्थः । **दिशि रूढेभ्यः किमिति**—यद्येष अर्थो न क्रियेत तदा दिशि इन्द्रदेवताके च पदार्थे प्रसिद्धात् ऐन्द्रीशब्दादपि प्रत्ययः स्यात् ।

हिन्दी

२१०२. दिग्वाचक सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त प्रथमान्त शब्दों से दिक् देश तथा काल अर्थ में 'अस्ताति' प्रत्यय होता है स्वार्थ में ।

२१०३. पूर्व अधर तथा अवर को पुर् अध् तथा अव् आदेश होते हैं व इनसे असि प्रत्यय भी होता है ।

२१०४. पूर्व अधर तथा अवर को अस्ताति प्रत्यय परे पुर् अध् व अव् आदेश होते हैं ।

२१०५. अस्ताति प्रत्यय परे अवर को अव् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सप्तम्याद्यन्तेभ्यः किम्-पूर्वं ग्रामं गतः । दिगादिवृत्तिभ्यः किम्-पूर्वस्मिन् गुरौ वसति । अस्ताति चेति ज्ञापकाद् असिः अस्तातिं न बाधते ।

२१०६. दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्-५।३।२८॥ अस्तातेरपवादः । दक्षिणतः।उत्तरतः।

२१०७. विभाषा परावराभ्याम्-५।३।२९॥ परतः, परस्तात् । अवरतः, अवरस्तात्।

२१०८. अञ्चेर्लुक्-५।३।३०॥ अञ्चत्यन्ताद्दिक्शब्दात् अस्तातेर्लुक् स्यात् । प्राक्। उदक् ।

२१०९. उपर्युपरिष्टात्-५।३।३१॥ निपातौ एतौ ।

मध्यमनोरमापूरणी

पूर्वं ग्रामं गतः—अत्र सप्तमी पञ्चमी प्रथमा वा नास्ति, तस्मान्नस्तातिः असिर्वा । **पूर्वस्मिन् गुरौ वसति**—पूर्वकालिकाध्यापनकर्तरि वसति इत्यर्थः । यदि दिगादिवृत्तिभ्यः दिक्शब्देभ्यः प्रत्ययः स्यात् इत्यर्थो न क्रियेत तदात्रापि प्रत्ययापत्तिः । **अस्ताति चेति**—ननु दिक्शब्देभ्यः इत्यनेन सामान्येन विहितस्य परादिशब्देषु सावकाशस्य अस्तातेः पूर्वाधरावरशब्देषु विशेष-विहितेन असिप्रत्ययेन बाधः स्यादिति चेन्न । अस्ताति चेत्यनेन अस्तातौ परे यद् पुराद्यादेशाः विधीयन्ते तेन ज्ञापयति आचार्यः 'असिः अस्तातिं न बाधते इति । **दक्षिणोत्तरेति** — दिग्देशकालेषु विद्यमानाभ्यां दक्षिणोत्तराभ्यां सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां स्वार्थेऽतसुच् भवती-त्यर्थः । अतसुचि अतस् इत्यवशिष्यते । अस्तातेरपवादोऽयम् । **दक्षिणतः**—दक्षिणस्यां दक्षिणस्याः दक्षिणा वा इत्यर्थे अतसुच्, भत्वादलोपः । उत्तरस्यामित्यर्थे **उत्तरतः** । **परतः**—परस्यामित्यर्थेऽतसुच्, आलोपे सस्य रुत्वविसर्गौ । पक्षे दिक्शब्देभ्यः इति अस्तातिः, **परस्तादिति** । अवरस्मिन् काले इत्यर्थेऽतसुच्, अवरतः इति । पक्षेऽस्तातौ च कृते **अवरस्तात्** इति । **अञ्चेर्लुक्**—दिक्शब्देभ्यः इत्यनुवर्तते, तस्याञ्चेरिति विशेषणम्, तस्मात्तदन्तविधिः । अञ्चत्यन्तेभ्यः दिक्शब्देभ्यः परस्य अस्तातेर्लुक् भवतीत्यर्थः । **प्राक्**—प्राच्यां प्राच्याः, प्राची वा इत्यर्थे दिक्शब्देभ्यः इति अस्तातिः, अञ्चेर्लुक् इति तस्य लुक् । प्राची इति, लुक् तद्धित-लुकि इति ङीपो लुक्, सौ कुत्वे सुलोपे च प्राक् इति । एवमेव उदीच्यां उदीच्याः उदीची वा इत्यर्थे उदक् । ङीपो निवृत्तौ तन्निमित्तस्य उद ईत् इति ईत्वस्यापि निवृत्तिः । **निपातौ एतौ**—अस्तातेरर्थे ऊर्ध्वशब्दात् रिल्रिष्टातिलौ प्रत्ययौ भवतः प्रकृतेश्च उपादेशः इत्यर्थः । ऊर्ध्वायां दिशि वसति इत्यर्थे रिल्, उपरि इति । रिष्टातिलि च उपरिष्टात् इति ।

हिन्दी

२१०६. दिग्देशकालवृत्ति सप्तम्यन्त पञ्चम्यन्त व प्रथमान्त दक्षिण व उत्तर से अतसुच् होता है स्वार्थ में ।

२१०७. पर एवं अवर से विकल्प से 'अतसुच्' होता है ।

२१०८. अञ्चन्त दिग्वाचक से परे अस्ताति प्रत्यय का लुक् होता है ।

२१०९. अस्ताति के अर्थ में ऊर्ध्व से रिल् तथा रिष्टातिल् होते हैं, तथा प्रकृति को उप आदेश होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२११०. पश्चात्-५।३।३२॥ तथा ।

२१११. उत्तराधरदक्षिणादातिः-५।३।३४॥ उत्तरात् । अधरात् । दक्षिणात् ।

२११२. एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः-५।३।३५॥ उत्तरादिभ्य एनब्वा स्यादवध्यवधिमतोः सामीप्ये, पञ्चम्यन्तात्तु न । उत्तरेण । अधरेण । दक्षिणेन । पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः । इह केचिद्दिक्शब्दमात्राद् एनपमाहुः । पूर्वेण ग्रामम् ।

२११३. दक्षिणादाच्-५।३।३६॥ अस्तातेर्विषये । दक्षिणा वसति । अपञ्चम्या इत्येव । दक्षिणादागतः ।

२११४. आहि च दूरे-५।३।३७॥ चादाच् । दक्षिणाहि, दक्षिणा ।

२११५. उत्तराच्च-५।३।३८॥ उत्तराहि, उत्तरा ।

मध्यमनोरमापूरणी

पश्चात्—अस्तातेरर्थे निपात्यते । अपरस्य पश्चभावः आति प्रत्ययश्च भवतीति भावः **उत्तराधरेति**—अस्तातेरर्थे आतिः भवति । आतौ इकार इत् । अस्तातेरपवादः । **एनबन्यतरस्याम्**—'उत्तराधरदक्षिणात्' इत्यनुवर्तते । अदूरे इत्यस्यार्थः अवध्यवधिमतोः सामीप्ये इति । **अत उक्तम्**—उत्तरादिभ्य इत्यादि । **उत्तरेण**—उत्तरस्याम् उत्तरा वा इत्यर्थे 'एनप्' । पकार इत् । भत्वादालोपः, णत्वम् । एवमेव अधरशब्दात् दक्षिणाशब्दाच्च एनपि कृते भत्वादवर्णलोपे णत्वे च कृते अधरेण दक्षिणेन इति सिद्ध्यति । **पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः**-एनपः अभावे अस्तातिः असिः आतिश्च प्रत्ययाः भवन्ति । इह **केचिदिति**—एनबन्यतरस्यामिति सूत्रे उत्तरादिग्रहणं नानुवर्तयन्ति । दिक्शब्दमात्रात् एनप् भवति इति मन्यन्ते । तन्मते पूर्वेण ग्रामम् अपरेण ग्रामसमित्यादि सिद्ध्यति । **दक्षिणादाच्**—अदूरे इति नानुवर्तते । केवलम् 'अपञ्चम्या' इत्यनुवर्तते । दक्षिणशब्दादाच् प्रत्ययो भवति अस्तात्यर्थे, पञ्चम्यन्तात्तु न भवति । **दक्षिणा वसति**—दक्षिणस्यां वसति इत्यर्थे प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्ग-विशिष्टस्यापि ग्रहणमिति न्यायात् दक्षिणाशब्दात् आच्, भत्वादालोपः । अपञ्चम्या इति पर्युदासात् दक्षिणात् आगतः इत्यत्र आच् न । **आहि चेति**—दक्षिणशब्दात् अस्तातेरर्थे आहि प्रत्ययो भवति आच् च दूरेऽर्थे गम्ये । **दक्षिणाहि**—दक्षिणस्यां दिशि दूरे इत्यर्थे आहि प्रत्ययः, भत्वादालोपः । अव्ययत्वान्न विभिक्तिरन्ते श्रूयते । पक्षे आच्, दक्षिणा इति । **उत्तराच्च**—उत्तरशब्दात् आहि आच् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः अस्तातेरर्थे दूरे गम्ये इत्यर्थः । **उत्तराहि**—उत्तरस्यां दिशि दूरे इत्यर्थः आहिः । आचि तु उत्तरा इति ।

हिन्दी

२११०. अस्ताति के अर्थ मे अवर से आति प्रत्यय तथा अवर को पश्च आदेश निपातनात् होते हैं ।

२१११. अस्ताति-अर्थ में उत्तर अधर एवं दक्षिण से आति प्रत्यय होता है ।

२११२. उत्तरादि से एनप् होता है अवधि एवं अवधिमान् में सामीप्य होने पर, पञ्चम्यन्त से एनप् नहीं होता है ।

२११३. दक्षिण से अस्ताति के अर्थ में आच् प्रत्यय होता है, पञ्चम्यन्त से नहीं होता है ।

२११४ दक्षिण से अस्तात्यर्थ में दूरार्थ गम्य होने पर आहि एवं आच् प्रत्यय होते हैं ।

२११५. उत्तर से भी उक्तार्थ में आहि एवं आच् होते हैं । पञ्चम्यन्त से नहीं होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२११६. संख्याया विधार्थे धा-५।३।४२।। क्रियाप्रकारे वर्तमानात् संख्याशब्दात् स्वार्थे धा स्यात् । चतुर्धा ।

२११७. एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्-५।३।४४।। ऐकध्यम् । एकधा ।

२११८. द्वित्र्योश्च धमुञ्-५।३।४५।। आभ्यां धा इत्यस्य धमुञ् वा । द्वैधम् । द्विधा । त्रैधम् । त्रिधा ।

२११९. एधाच्च-५।३।४६।। द्वेधा । त्रेधा ।

२१२०. याप्ये पाशप्-५।३।४७।। कुत्सितो भिषक्-भिषक्पाशः ।

वा. तीयादीकक् स्वार्थे वाच्यः ।। द्वैतीयीकः, द्वितीयः । तार्तीयीकः, तृतीयः ।

वा. न विद्यायाः ।। द्वितीया विद्येत्येव ।

मध्यमनोरमापूरणी

संख्याया विधार्थे-विधा प्रकारः, तस्या अर्थः विधार्थः । सामान्यस्य भेदको विशेषः प्रकारः । प्रकारः सर्वक्रियाविषये एव गृह्यते । **अत आह**—क्रिया प्रकारे इत्यादि । **चतुर्धा**—गच्छतीत्यादि क्रियाऽध्याहार्या । चतुष्प्रकारा गमनादिक्रिया इत्यर्थः । धा प्रत्ययः । **एकाद्धः**—एकात् धः इतिच्छेदः । धा इत्यस्य षष्ठ्येकवचने धः इति । एकात् परस्य धा इत्यस्य ध्यमुञ् आदेशो भवति विकल्पेन । **ऐकध्यम्**—एकेन प्रकारेण भवति इत्यर्थे संख्याया विधार्थे धा इति धा, एक धा इति जाते 'एकाद्ध' इति धा इस्यस्य ध्यमुञ्, उञौ इतौ । ञित्वात्त-द्धितेष्वचामादेरित्यादिवृद्धिः । पक्षे एकधा इत्यपि । **द्वित्र्योश्चेति**—अन्यतरस्याम्, धः इति च अयनुवर्तेते। पञ्चम्यर्थे षष्ठी । द्वित्रिभ्यां विहितस्य धा इत्यस्य स्थाने धमुञ् वा स्यात् इत्यर्थः । **द्वैधम्**—द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां विद्यते इत्यर्थे धा-प्रत्यये द्विधा इति, धा-स्थाने धमुञ्, उञौ इतौ । आदिवृद्धिः । पक्षे द्विधेतिं । एवमेव त्रिशब्दात् धा, तस्य धमुञ्, उञौ इतौ । आदिवृद्धिः । **त्रैधम्** इति । पक्षे त्रिधा इति । **एधाच्च**-द्वित्र्योश्चेति, धः इति, अन्यतरस्यामिति चानुवर्तते । द्वित्रिभ्यां विहितस्य धाप्रत्ययस्य एधाच्-आदेशो भवति विकल्पेनेत्यर्थः । **द्वेधा**- द्विधा इत्यत्र धा स्थाने एधाच्, चकारः इत्, भत्वाद् इलोपः । त्रिधा शब्दात् परस्य धा इत्यस्य एधाच्; इलोपः, **त्रेधा** इति । **याप्ये पाशप्**—याप्यः कुत्सितः । तस्मिन् विद्यमानात् स्वार्थे पाशप् भवतीत्यर्थः । पाशपि पकार इत् । **तीयादीकक्**—तीयप्रत्ययान्ताद् ईकक् स्वार्थे इत्यर्थः । **द्वैतीयकः**—द्वितीय एव इत्यर्थे ईकक्, अलोपः । आदिवृद्धिः । **तार्तीयीकः**—किति चेत्यादिवृद्धौ रपत्वम् । **न विद्यायाः**-विद्यावृत्तेः तीयप्रत्ययान्तादीकक् नेत्यर्थः ।

हिन्दी

२११६. क्रियाविषयक प्रकार अर्थ में विद्यमान संख्यावाचक से स्वार्थ में 'धा'-प्रत्यय होता है ।

२११७. एक शब्द से विहित धा को ध्यमुञ् आदेश होता है विकल्प से ।

२११८. द्वि त्रि से परे धा को धमुञ् आदेश होता है विकल्प से ।

२११९. द्वि व त्रि से परे धा को एधाच् आदेश भी होता है विकल्प से ।

२१२०. कुत्सित अर्थ में पाशप् प्रत्यय होता है ।

वा. तीय प्रत्ययान्त से स्वार्थ में ईकक् प्रत्यय होता है ।

वा. विद्या के अर्थ में विद्यमान तीयप्रत्ययान्त से ईकक् नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१२१. एकादाकिनिच्चासहाये-५।३।५२।। चात्कन् लुकौ । एकः, एकाकी, एककः।
२१२२. भूतपूर्वे चरट्-५।३।५३।। आढ्यो भूतपूर्वः आढ्यचरः ।
२१२३. षष्ठ्या रूप्य च-५।३।५४।। षष्ठ्ययन्ताद् भूतपूर्वे रूप्यः स्याच्चरट् च। कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः = कृष्णरूप्यः । कृष्णचरः ।
२१२४. अतिशायने तमबिष्ठनौ-५।३।५५।। अतिशयविशिष्टार्थे एतौ स्तः । अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः । लघुतमः । लघिष्ठः ।
२१२५. तिङश्च-५।३।५६।। तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात् ।
२१२६. तरप्तमपौ घः-१।१।२२।।
२१२७. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे-५।४।११।। किम एदन्ताद् तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्नतु द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । प्राह्णेतमाम् । पचति तमाम् । उच्चैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः ।

मध्यमनोरमापूरणी

एकादाकिनिच्—असहायवाचिनः एकशब्दात् स्वार्थे आकिनिच् भवति, चकारात् कन्लुकौ अपि । लुक् कस्य भवति ? आकिनिचः कनः एव । किन्तु प्रत्यययोः विधानसामर्थ्यात् पक्षे लुक् भवति । **एकाकी**—एकः=असहायः एव इत्यर्थे आकिनिच् । इचौ इतौ । अलोपः, एकाकिन् इति । सौ उपाधादीर्घः, सुलोपनलोपौ । कनि तु एककः इति । पक्षे द्वयोः लुकि एकः इत्येव रूपम् । **चरट्**—भूतपूर्वशब्दः अतिक्रान्तवाची, प्रकृतिविशेषणमेतत् । भूतपूर्वे विद्यमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे चरट् इत्यर्थः । **षष्ठ्य रूप्य च**—रूप्य इति लुप्तप्रथमाकम् । 'भूतपूर्वे चरट्' इत्यनुवर्तते । **अत आह**—षष्ठ्यन्तादित्यादि । अत्र भूतपूर्वग्रहणं प्रत्ययार्थस्य विशेषणम्। तेन कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः इत्यर्थे रूप्यप्रत्यये कृष्णरूप्यः इति । चरटि च कृष्णचरः इति । **अतिशायने**—अतिपूर्वाद् शीङः ल्युट्, निपातनाद्दीर्घे च अतिशायनमिति प्रकर्षेऽर्थे विद्यते । प्रकृत्यर्थविशेषणमेतत् । अतिशयविशिष्टेऽर्थे प्रातिपदिकात् स्वार्थे एतौ स्तः । **आढ्यतमः**—अयमेषामतिशयेन आढ्यः इत्यर्थे तमप्-प्रत्यये पकारस्यानुबन्धलोपेच रूपम् । **लघुतमः, लघिष्ठः**—अयमेषामतिशयेन लघुः इत्यर्थे तमप्, लघुतमः इति । इष्ठनि कृते ओर्गुणः इति गुणं प्रबाध्य टेरिति उकारलोपे स्वादिकार्ये च लघिष्ठः इति । **तिङश्च**—अप्रातिपदिकत्वात् पूर्वेणाप्राप्ते वचनम् । तमप्मात्रममनुवर्तते । **घः**—तरप् तमप् इत्येतौ 'घ'-संज्ञौ भवतः इत्यर्थः। **किमेत्**—किम् एत् तिङ् अव्यय इत्येषां द्वन्द्वः । किमेत्तिङव्ययप्रकृतिको घः इति विग्रहे मध्यमपदलोपिसमासः, तस्मात् घात् इति । आमु अद्रव्य प्रकर्षे इति च्छेदः । **अत उक्तम्**—किम एतदन्तादिति । **किन्तमाम्**—कः इति अत्यन्त स्वार्थे तमप्, किन्तम इत्यस्य घसंज्ञा, किमेत्तिङ

हिन्दी

२१२१. असहायवाची एक शब्द से आकिनिच् व कन् प्रत्यय होते हैं तथा उनका पाक्षिक लुक् भी होता है ।
२१२२. भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान प्रातिपादिक से स्वार्थ में 'चरट्' प्रत्यय होता है ।
२१२३. षष्ठ्यन्त से भूतपूर्व अर्थ में रूप्य एवं चरट् भी होता है ।
२१२४. अतिशायन अर्थ में प्रातिपदिक से तमप् एवं इष्ठन् प्रत्यय होते हैं ।
२१२५. तिङन्त से अतिशय अर्थ में तमप् होता है ।
२१२६. तरप् एवं तमप् को 'घ' संज्ञा होती है ।
२१२७. प्रत्ययान्त किम् एकारान्त तिङन्त एवं अव्यय शब्दों से आमु प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१२८. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ-५।३।५७।। द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः । पूर्वयोरपवादः । अयमनयोरतिशयेन लघुः-लघुतरः, लघीयान् । उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटवः-पटुतराः, पटीयान्सः ।

२१२९. अजादी गुणवचनादेव-५।३।५८।। इष्ठन्नीयसुनौ । नेह । पाचकतरः, याचकतमः ।

२१३०. प्रशस्यस्यश्रः-५।३।६०।। इष्ठेयसोः परतः ।

२१३१. प्रकृत्यैकाच्-६।४।१६३।। इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात् । श्रेष्ठः, श्रेयान्।

मध्यमनोरमापूरणी

इति आम् । मान्तत्वादव्ययसंज्ञा कृन्मेजन्तः इति सूत्रेण । **प्राह्णेतमाम्**—प्राह्णःपूर्वाह्णः । अतिशयिते पूर्वाह्णे इत्यर्थः । **पचतितमाम्**—तिङश्चेति तमप्, आम् । अतिशयिता पाकक्रियेत्यर्थः। **उच्चैस्तमाम्**—अव्ययात्तमप्, आम् । अतिशयेन उच्चैः इति । **उच्चैस्तमस्तरुः**—तरोः द्रव्यत्वान्न आम् । **द्विवचनेति**—द्वयोः अर्थयोः वचनम्, द्विचनम् । द्व्यर्थप्रतिपादकमित्यर्थः । विभज्यः विभक्तव्यः, निपातनाद् यत् । द्विवचनं च विभज्यः चेति समाहारद्वन्द्वः । द्विवचनविभज्यं च तदुपपदं चेति कर्मधारयः । सुप्तिङावित्यनुवर्तेते । **अत आह वृत्तौ**—द्वयोरेकस्यातिशये इत्यादि । पूर्वयोस्तरप्-तमपोरपवादोऽयम् । **लघुतरः-लघीयान्**—अनयोः अयमतिशयेन लघुः इत्यर्थे तरप्, लघुतरः इति । ईयसुनि च कृते भत्वाट्टेरिति उलोपे सौ लघीयस् इत्यस्मात् नुमि, सान्तमहतः इति दीर्घे हल्ङ्यादिना सुलोपे संयोगान्तलोपे च लघीयान् इति । **पटीयान्सः**—विभज्योपपदे उदाहरणमिदम् । पटुशब्दादीयसुनि टिलोपे नुमि दीर्घे सुलोपसंयोगान्तलोपौ । **अजादीति**—तरप् तमप् इष्ठन् ईयसुन् इत्येषु अजादी इष्ठन्ईयसुनौ गुणवाचकादेव भवतः नान्यस्मात् इत्यर्थः । **पाचकतरः**—पाचक इत्यस्य क्रियाशब्दत्वान्नेष्ठन्नीयसुनौ, अपि तु तरप्तमपौ एव । **प्रशस्यस्येति**-अजादी इत्यनुवृत्तं सप्तम्यां विपरिणमते । प्रशस्यशब्दस्यक्रियावचनत्वात् अनेनैव ज्ञापनेन इष्ठन् ईयसुन् च । **प्रकृत्यैकाच्**—तुरिष्ठेमेयःसु इत्यतः इष्ठाद्यनुवृत्तिः । एकः अच् यस्य सः एकाच्, इष्ठादिषु प्रकृत्या स्यादित्यर्थः । **श्रेष्ठः**—अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः इत्यर्थे इष्ठन्, प्रशस्यस्य श्रः, भत्वाट्टिलोपे प्राप्ते सति तत्प्रबाध्य प्रकृत्या भवति । आद्गुणः । अयमनयोः अतिशयेन प्रशस्यः इत्यर्थे ईयसुन्, श्रादेशः, प्रकृतिभावः, गुणः, सौ नुमि दीर्घे सुलोपसलोपयोः **श्रेयान् इति** ।

हिन्दी

२१२८. दो में से एक का उत्कर्ष विवक्षित होने पर अथवा विभक्तव्य उपपद हो तो सुबन्त एवं तिङन्त से तरप् एवं ईयसुन् प्रत्यय होते हैं ।

२१२९. गुणवाचक से अतिशायन अर्थ में इष्ठन् एवं ईयसुन् ही होते हैं ।

२१३०. प्रशस्य को इष्ठन् ईयसुन् परे श्र आदेश होता है ।

२१३१. इष्ठादि-प्रत्यय परे रहते एकाच् को प्रकृति भाव होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१३२. ज्य च-५।३।६१॥ प्रशस्यस्य ज्यादेश इष्ठेयसोः । ज्येष्ठः ।

२१३३. ज्यादादीयसः-६।४।१६०॥ आदेः परस्य । ज्यायान् ।

२१३४. वृद्धस्य च-५।३।६२॥ ज्यादेश अजाद्योः । ज्येष्ठः, ज्यायान् ।

२१३५. अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ-५।३।६३॥ अजाद्योरिष्ठेयसोः । नेदिष्ठः, नेदीयान् । साधिष्ठः, साधीयान् ।

२१३६. स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः-६।४।१५६॥ एषां यणादिपरं लुप्यते पूर्वस्य च गुण इष्ठादिषु । स्थविष्ठः । दविष्ठः । यविष्ठः। ह्रसिष्ठः । क्षेपिष्ठः । क्षोदिष्ठः । एवमीयसुन् । ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वात्-ह्रसिमा । क्षेपिमा । क्षोदिमा ।

मध्यमनोरमापूरणी

ज्य चेति प्रशस्यस्य ज्यादेशे गुणे ज्येष्ठः । ईयसुनि ज्यादेशे ज्यादादीयस इति ईकारस्य आदेः परस्येति बलेन आत् इत्यादेशः । सवर्णदीर्घः, ज्यायस् इति, नुमि दीर्घादौ च **ज्यायान्** इति। **अजाद्योः**—इष्ठनि ईयसुनि च परे इति भावः । **ज्येष्ठः**—अयमनयोरतिशयेन वृद्धः इत्यर्थे वृद्धात् इष्ठन्, वृद्धस्य ज्यादेशः, गुणः । **अन्तिकबाढयोः**—अनयोः नेद साध इत्येतौ आदेशौ भवतः इष्ठनि ईयसुनि च परतः । **नेदिष्ठः**—अयमनयोरतिशयेन अन्तिकः इत्यर्थे इष्ठनि अन्तिकस्य नेद इत्यादेशः, भत्वाद् टिलोपः । ईयसुनि नुमि दीर्घादौ च नेदीयान् इति । **साधिष्ठः**- अयमनयोरतिशयेन बाढः = भृशः, इत्यर्थे इष्ठनि बाढस्य साध इत्यादेशे टिलोपे रूपम् । ईयसुनि साधादेशे टिलोपे च साधीयान् इति । **स्थूलदूरेति**—यण् आदिर्यस्य स यणादिः, परमिति यणादीत्यस्य विशेषणम् । परभूतं यणादि इत्यर्थः । अल्लोपोऽनः इत्यतः लोपपदमनुवृत्तं सत् इह कर्मघञन्तं गृह्यते । पूर्वत्वञ्चात्र यणपेक्षया ज्ञायते । तुरिष्ठेमेयःसु इत्यतः इष्ठाद्यनुवर्तते । स्थूलादीनां परभूतं यणादि लुप्यते, यणः पूर्वस्य चेको गुणो भवति इष्ठेमेयस्सु इत्यर्थः। **स्थविष्ठः**—अयमतिशयेन स्थूलः इत्यर्थे इष्ठन्, सुपो लुक्, स्थूलदूरेति लस्य लोपः, ऊकारस्य च गुणः, अवादेशः । अतिशयेन दूरो **दविष्ठः** । रेफस्य लोपः, गुणावादेशौ । अतिशयितो युवा **यविष्ठः** । वन्नित्यस्य लोपः, ओर्गुणेऽवादेशः । अतिशयो ह्रस्वो ह्रसिष्ठः, वकाराकारलोपौ । **अतिक्षिप्रः**—क्षेपिष्ठः, रेफस्य लोपः, गुणः एकारः । अतिशयः क्षुद्रः = क्षोदिष्ठः, रेफस्य लोपः, गुणः । ईयसुनि तु स्थवीयान् दवीयान् यवीयान् ह्रसीयान् क्षेपीयान् क्षोदीयान् इति भवति। **पृथ्वादित्वात्**—पृथ्वादिभ्य इमनिज्वेति इमनिच् । **ह्रसिमा**—इमनिचि स्थूलदूरेति वलोपः, सौ उपधादीर्घः । एवमेव क्षेपिमा क्षोदिमा ।

हिन्दी

२१३२. इष्ठन् ईयसुन् परे प्रशस्य को ज्य आदेश होता है ।

२१३३. ज्य से परे ईयसुन् को आत् आदेश होता है ।

२१३४. इष्ठन् ईयसुन् परे वृद्ध को 'ज्य' आदेश होता है ।

२१३५. अन्तिक व बाढ़ को नेद तथा साध आदेश होते हैं, इष्ठन् व ईयसुन् प्रत्यय परे।

२१३६. स्थूल दूर युवन् ह्रस्व क्षिप्र एवं क्षुद्र के परभूत यणादि का लोप होता है तथा यण् से पूर्व को गुण होता है इष्ठन् ईयसुन् आदि परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१३७. प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फ वर्बंहिगर्वर्षित्र-ब्द्राघिवृन्दाः-६।४।१५७।। प्रियादीनां प्रादयः स्युरिष्ठादिषु । प्रेष्ठः । स्थेष्ठः । स्फेष्ठः। वरिष्ठः । बंहिष्ठः । गरिष्ठः । वर्षिष्ठः । त्रपिष्ठः । द्राघिष्ठः । वृन्दिष्ठः। एवमीयसुन् । प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वात् प्रेमा इत्यादि ।

२१३८. बहोर्लोपो भू च बहोः-६।४।१५८।। बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद् बहोश्च भूरादेशः । भूमा, भूयान् ।

२१३९. इष्ठस्य यिट् च-६।४।१५९।। बहोः परस्य इष्ठस्य लोपो यिडागमश्च । भूयिष्ठः ।

२१४०. विन्मतोर्लुक्-५।३।६५।। इष्ठेयसोः परतः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः। अतिशयेन त्वग्वान्, त्वचिष्ठः, त्वचीयान् ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रियस्थिरेति—प्रिय स्थिर स्फिर उरु बहुल गुरु वृद्ध तृप्र दीर्घ वृन्दारक इत्येतेषां स्थाने क्रमशः प्र स्थ स्फ वर् बंहि गर् वर्षि त्रप् द्राघि वृन्द इत्येते आदेशाः भवन्ति इष्ठादिषु परेषु । **प्रेष्ठः**- अतिशयेन प्रियः इत्यर्थे इष्ठन्, प्रियस्थिरेति प्रादेशः, गुणः । **अतिस्थिरः स्थेष्ठः**—स्थिरस्य स्थ इत्यादेशः, गुणः । प्रकृत्यैकाच् इति प्रकृतिभावात् न टिलोपः । स्फिरस्य स्फादेशपक्षे स्फेष्ठः । उरोः वर् आदेशे वरिष्ठः । बहुलस्य बंहिः, बंहिष्ठः । इकार उच्चारणार्थः । अन्यथा आभीयत्वेनासिद्धत्वात् इलोपो न स्यात् । गुरोः गर् इत्यादेशः, **गरिष्ठः** इति । वृद्धस्य वर्षि इत्यादेशः, इकार उच्चारणार्थः, **वर्षिष्ठः** इति । **त्रपिष्ठः**—तृप्र शब्दात् इष्ठनि तृप्र इत्यस्य त्रप् इत्यादेशः। **द्राघिष्ठः**—अतिशयो दीर्घः इत्यर्थे इष्ठनि द्राघिरादेशः । इकार उच्चारणार्थः । **वृन्दिष्ठः**—वृन्दारकस्य इष्ठनि वृन्द इत्यादेशः, अकार उच्चारणार्थः । एवमीयसुनि प्रेयान् स्थेयान् स्फेयान् वरीयान् बंहीयान् गरीयान् वर्षीयान् त्रपीयान् द्राघीयान् वृन्दीयानिति बोध्यम् । **प्रेमा**—पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वेति इमनिचि प्रियस्य प्रादेशे गुणे सौ प्रेमा इति । उरोः वरिमा, बहुलस्य बंहिमा, गुरोः गरिमा, दीर्घस्य द्राघिमा चेति बोध्यम् इमनिचि । **भू च बहोः**—बहोः भू इत्यादेशः, इमेयसोरादिलोपः आदेः परस्येति सहकारेण । **भूयान्, भूमा**—बहुशब्दात् इमनिच्, बहोर्लोप इति भूरादेशः, इमनिचः इकारस्य लोपः, सौ रूपम् । **भूयान्**—अयमनयोरतिशयेन बहुः इत्यर्थे ईयसुन्, बहु ईयस् इति जाते बहोर्लोपो भू च बहोरिति भू आदेशः, ईकारलोपश्च। सौ उगित्त्वान्नुमि दीर्घादौ च रूपम् । **इष्ठस्य यिट् च**—लोप इत्यनुवर्तते । आदेः परस्येति इष्ठस्य आदेरिकारस्य लोपः । यिटि टकार इत् । **भूयिष्ठः**—बहुशब्दात् इष्ठनि भू इत्यादेशे भू इष्ठ इति, यिट् आगमः इकारस्य लोपश्च । **विन्मतोर्लुक्**—अजादी गुणवचनादेव इत्यतः 'अजादी' इत्यनुवृत्तं सत् सप्तम्यां विपरिणमते । अत उक्तम्-इष्ठेयसोः विन्मतुपो लुक् स्यादिति। **स्रजिष्ठः**—अतिशयेन स्रग्वी इत्यर्थे स्रग्विन् शब्दात् अतिशायने तमबिष्ठनौ, विन्मतोर्लुक् इति

हिन्दी

२१३७. प्रियस्थिर इत्यादि को प्र स्थ आदि क्रम से होते हैं इष्ठादि प्रत्यय परे ।

२१३८. बहु से परे ईयसुन् एवं इमनिच् के इ का लोप होता है तथा बहु को 'भू' आदेश होता है ।

२१३९. बहु से परे इष्ठ का लोप होता है और यिट् आगम होता है ।

२१४०. इष्ठन् एवं ईयसुन् परे विन् तथा मतुप् का लुक् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१४१. प्रशंसायां रूपप्-५।३।६६॥ सुबन्तात् तिङन्ताच्च। प्रशस्तः पटुः पटुरूपः। पचतिरूपम् ।

२१४२. ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः-५।३।६७॥ ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः, विद्वद्देशीयः, विद्वद्देश्यः । पचतिकल्पम् ।

२१४३. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तातु-५।३।६८॥ ईषदूनः पटुः बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम्-यजतिकल्पम् ।

२१४४. प्रागिवात् कः-५।३।७०॥इवे प्रतिकृताविंत्यतः प्राक्काधिकारः ।

२१४५. अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः-५।३।७१॥ काऽपवादः । तिङश्चेत्यनुवर्तते ।

२१४६. कस्य च दः-५।३।७२॥ कान्ताव्ययस्य दादेशोऽकच्च ।

मध्यमनोरमापूरणी

विन्प्रत्ययस्य लुक् । विन्निमित्तस्य पदत्वस्य नाशात् कुत्वनिवृत्तौ जकारः श्रूयते । **त्वचिष्ठः**—त्वग्वत् शब्दात्इष्ठनि मतोर्लुक्, कुत्वनिवृत्तिः । ईयसुनि मतोर्लुकि **त्वचीयान्** इति । लुग्-विधानादेव इष्ठन्नीयसुनौ भवतः । **रूपप्**—तिङश्च प्रातिपदिकादित्यनयोरनुवृत्तिः । सुबन्तात् तिङन्ताच्च प्रशंसायां रूपप् इत्यर्थः । **पचतिरूपम्**—प्रशस्ता पाकक्रिया इत्यर्थे पचतिशब्दात् रूपप् । लोकाश्रयत्वाद् नपुंसकत्वम् । **ईषदसमाप्तौ**—पदार्थानां सम्पूर्णता समाप्तिः, स्तोकेन असंपूर्णता ईषदसमाप्तिः । ईषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्तात् कल्पप् देश्य देशीयर् इत्येते प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **विद्वत्कल्पः**—ईषदूनो विद्वान् इत्यर्थे कल्पप्, पकार इत् । विद्वस् कल्प इति, पदत्वात् सस्य जश्त्वचर्त्वाभ्यां तः । तिङन्तात् पचतिशब्दात् कल्पपि **पचतिकल्पमिति**। असम्पूर्णा पाकक्रियेत्यर्थः । **विभाषेति**—ईषदसमाप्तावित्यनुवर्तते । सुबन्तात् ईषदसमाप्त्यर्थे वा बहुच् भवति, स तु सुबन्तात् पूर्वभागे भवति न तु परतः । **बहुपटुः**—ईषद् ऊनः पटुः इत्यर्थे पटुशब्दात् प्रागेव बहुच्, चकार इत् । कल्पप् तु परे भवति, तेनास्मिन्नेवार्थे पटुकल्पः इति । सुबन्तादेव बहुच् भवति तेन यजतिकल्पमित्यत्र न । **अव्ययसर्वनाम्नाम्**—तिङश्चेत्यनुवर्तते । अव्ययानां सर्वनाम्नां तिङन्तानां च टेः प्राक् अकच् भवति स्वार्थे इत्यर्थः । **कस्य च दः**—पूर्वसूत्रात् एकदेशे स्वरितत्वप्रतिज्ञाबलात् अव्ययपदमात्रमनुवर्तते । **अत आह**—कान्ताव्ययस्येत्यादि । चकारेण अकचोऽनुकर्षणात् अकच्सन्नियोगशिष्ट एवायं दकारो भवति इति ज्ञेयम् ।

हिन्दी

२१४१. सुबन्त तथा तिङन्त से प्रशंसा अर्थ में रूपप् प्रत्यय होता है ।

२१४२. किञ्चित् अपूर्णता अर्थ में सुबन्त एवं तिङन्त से कल्पप् देश्य व देशीयर् प्रत्यय होते हैं ।

२१४३. ईषदसमाप्ति अर्थ में सुबन्त से पूर्व में विकल्प से बहुच् प्रत्यय होता है ।

२१४४. 'इवे प्रतिकृतौ' से पूर्व तक 'क' का अधिकार है ।

२१४५. अव्यय सर्वनाम एवं तिङन्त की टि से पूर्व स्वार्थ में अकच् प्रत्यय होता है ।

२१४६. ककारान्त अव्यय को दकारान्त आदेश होता है तथा टि से पूर्व में अकच् भी होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१४७. अज्ञाते-५।३।७३॥ कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके। पचतकि । धकित् । हिरुकत् ।

२१४८. कुत्सिते-५।३।७४॥ कुत्सितोऽश्वः अश्वकः ।

२१४९. अल्पे-५।३।८५॥ अल्पं तैलं तैलकम् । ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः ।

वा. अस्मिन् प्रकरणे हलादौ प्रत्यये द्वितीयादचः परस्य लोपो वा वाच्यः ॥ देवदत्तकः । देवकः ।

वा. लोपः पूर्वपदस्य च ॥ दत्तकः ।

वा. विनाऽपि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्लोपो वा वाच्यः ॥ सत्यभामा । भामा, सत्या।

मध्यमनोरमापूरणी

अज्ञाते—अज्ञातेऽर्थे विद्यमानात् सुबन्तात् स्वार्थे कः स्यात् । अव्ययसर्वनामतिङन्तानां च टेः प्राक् अकच् स्यात् । तत्रापि ककारान्तानामव्ययानां दकारोऽन्तादेशः स्यादित्यर्थः । **उच्चकैः**- उच्चैस् इत्यव्ययस्य टेः प्राक् अकचि कृते उच्चकैरिति । **नीचकैः**—नीचैस् इत्यव्ययस्य टेः प्रागकचि नीचकैस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । **सर्वके**—सर्वशब्दात् अकच्, सर्व् अक् अ इति, संयोगे सर्वक इति । जस् विभक्तिः, जसः शी, शकार इत् । आद्गुणः । **पचतकि**—पचति इति तिङन्तस्य टेः इकारात् पूर्वम् अकच्, पचतकि इति । **धकित्**—धिक् इत्यव्ययाद् 'कस्य च दः' इति टेः प्राक् अकच्, प्रकृतेः कस्य दादेशश्च, ध अक् इत् इति, संयोगे धकित् इति। एवमेव हिरुक् इत्यस्मात् हिरुकत् इति । **कुत्सिते**—कुत्सितो निन्दितः । प्रकृत्यर्थविशेषण-मेतत् । कुत्सितार्थाभिधायकात् प्रातिपदिकार्थात् स्वार्थे कः स्यादित्यर्थः । **अश्वकः**—कुत्सितोऽश्व इत्यर्थे कः । **अल्पे**—परिमाणापचयः अल्पः । अल्पत्वविशिष्टेऽर्थे विद्यमानात् प्रातिपदिकात् कः स्यादित्यर्थः । **तैलकम्**—अल्पं तैलमित्यर्थे कः । **अस्मिन्निति**- अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः इति कौमुद्याः पाठः काशिकायाश्चापि । **देवकः**—कुत्सितो देवदत्तः इत्यर्थे संज्ञायां कन् इति कन्, 'हलादौ प्रत्यये' इति दत्तस्य लोपः । पक्षे देवदत्तकः इति । **लोपः पूर्वपदस्य च**—अस्मिन् प्रकरणे पूर्वपदस्यापि लोपो भवति विकल्पेनेत्यर्थः । **दत्तकः**—कप्रत्ययान्तस्य देवदत्तक इत्यस्य पूर्वपदस्य लोपः । ठचि दत्तिकः । घनि दत्तियः, इलचि दत्तिलः, इत्यपि अत्र बोध्यम् । **भामा**—सत्यभामा शब्दस्य पूर्वभागस्य 'विनापि प्रत्ययमिति' लोपः । उत्तर-भागस्य लोपे सत्या इति, अलोपे सत्यभामेति ।

हिन्दी

२१४७. अज्ञात अर्थ में सुबन्त से 'क' प्रत्यय होता है, तथा यथाविहित प्रत्यय भी ।

२१४८. कुत्सितार्थ वाचक से स्वार्थ में क-प्रत्यय होता है ।

२१४९. अल्पत्वविशिष्टार्थक से स्वार्थ में क प्रत्यय होता है ।

वा. इस प्रकरण में हलादिप्रत्यय परे द्वितीय अच् से पर वाले शब्द का लोप होता है विकल्प से ।

वा. इस प्रकरण में पूर्वपद का भी लोप होता है ।

वा प्रत्यय के बिना भी पूर्व पद या उत्तरपद का लोप विकल्प से कहना चाहिए ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१५०. **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः-५।३।८८॥ ह्रस्वा कुटी कुटीरः । शमीरः । शुण्डारः ।**

२१५१. **कुत्वा डुपच्-५।३।८९॥ ह्रस्वा कुतूः कुतुपः । 'कुतूः कृत्तिस्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान्' इत्यमरः ।**

२१५२. **कासूगोणीभ्यां ष्टरच्-५।३।९०॥ आयुधविशेषः कासूः । ह्रस्वा सा कासूतरी । गोणीतरी ।**

२१५३. **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे-५।३।९१॥ वत्सतरः । उक्षतरः । अश्वतरः। ऋषभतरः ।**

२१५४. **किं यत्तदोनिर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्-५।३।९२॥ अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ।**

मध्यमनोरमापूरणी

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः—ह्रस्वे इत्यनुवर्तते । ह्रस्वार्थे द्योत्ये कुटीशमीशुण्डाभ्यो 'र' प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । क प्रत्ययस्यापवादोऽयम् । **कुटीरः**—ह्रस्वा कुटी इत्यर्थे र-प्रत्ययः । र-प्रत्ययस्य स्वार्थिकत्वाद् कथं कुटीर इति पुँल्लिङ्गे भवति इति चेच्छृणु "स्वार्थिकाः क्वचित् प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते" इति पुंस्त्वम् । अथवा लिङ्गस्य लोकाश्रयत्वाद् वा पुंस्त्वम् । ह्रस्वा शमी शमीरः इति । ह्रस्वा शुण्डा शुण्डारः इति च बोध्यम् । **कुत्वा डुपच**-ह्रस्वे द्योत्ये कुतू शब्दात् डुपच् भवतीत्यर्थः । डकारपकारौ इतौ भवतः । उप इत्यवशिष्यते । **कुतुपः**—ह्रस्वा कुतूः इत्यर्थे डुपच् । डित्त्वसामर्थ्याट्टिरूकारस्य लोपः । स्त्रीत्वमपहाय पुंस्त्वं पूर्ववत् । **ष्टरच्**—ह्रस्वे द्योत्ये एव कासू गोणी इत्याभ्यां ष्टरच् भवतीत्यर्थः । **कासूतरी**—ह्रस्वा कासूः इत्यर्थे ष्टरच्, षकारचकारौ इतौ । षकारनिमित्ते नष्टे सति टकारोऽपि तकारत्वमापद्यते । तेन तर इति शिष्यते । प्रादिपदिकत्वात् सुपो लुकि कासूतर इत्यस्मात् षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् । एवमेव ह्रस्वा गोणी गोणीतरी इति बोध्यम् । **वत्सोक्षाश्वेति**—तनुत्वेऽर्थे द्योत्ये वत्स उक्षन् अश्व ऋषभ इत्येतेभ्यः ष्टरच् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । तनुत्वं=न्यूनत्वम् । **वत्सतरः**—तनुः वत्सः इत्यर्थे ष्टरच् । वत्सः प्रथमवयाः । प्रथमस्य वयसश्च तनुत्वमुत्तरवयः प्राप्त्या ज्ञेयम् । **उक्षातरः**-उक्षा तरुणो वलीवर्दः, तनुः उक्षा इत्यर्थे ष्टरच्, नलोपः । तृतीयवयःप्राप्तिरत्र तनुत्वम् । **अश्वतरः**—न्यूनोऽश्वः इत्यर्थे ष्टरच् । अश्वायाम् गर्दभेन उत्पादितः अश्वः अश्वापेक्षया न्यूनो भवति । अतः अत्र अन्यपितृकता तनुत्वमस्ति । **ऋषभतरः**—ऋषभः भारस्य वोढा । भार-वहने मन्दशक्तित्वमत्र तनुत्वमस्ति । **किंयत्तदोनिर्धारणे**- किम् यत् तद् इत्येषां समाहार-द्वन्द्वे कृते पञ्चम्येकवचने किंयत्तदः इति । द्वयोरेकस्य निर्धारणे गम्ये किंयत्तद् इत्येतेभ्यः डतरच् भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी

२१५०. ह्रस्वार्थ द्योतन में कुटी शमी तथा शुण्डा से र-प्रत्यय होता है ।

२१५१. कुतू से ह्रस्वार्थ में डुपच् प्रत्यय होता है ।

२१५२. कासू एवं गोणी शब्दों से 'ष्टरच्' प्रत्यय होता है ।

२१५३. वत्स उक्षन् अश्व व ऋषभ शब्द से तनुत्व = न्यूनत्व, अर्थ में ष्टरच् प्रत्यय होता है ।

२१५४. दो में एक का निर्धारण होने पर किम् यत् एवं तद् से डतरच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१५५. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्-५।३।९३।। जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वा-ग्रहणमकजर्थम्।
२१५६. एकाच्च प्राचाम्-५।३।९४।। डतरच् डतमच् च स्यात् । अनयोरेकतरो मैत्रः । एषामेकतमः ।

इति प्रागिवीयाः

मध्यमनोरमापूरणी

डतरच् इत्यत्र डकारचकारौ इतौ भवतः । अतर इत्यवशिष्यते । **कतरो वैष्णवः**—अनयोः कः वैष्णवः इत्यर्थे किम् शब्दात् डतरच् । डित्त्वाट्टेर्लोपः, **कतरः इति** सौ रूपम् । अनयोः यः इत्यर्थे यत् इत्यस्मात् डतरच् । टेः अत् इत्यस्य लोपः । तत् इत्यस्मात् डतरचि टेर्लोपे च कृते ततरः इति । **वा बहूनाम्**—पूर्वसूत्रात् किंयत्तदः इति, निर्धारणे इति, एकस्य इति चानुवर्तन्ते । जातिश्च परिप्रश्नश्चेति समाहारद्वन्द्वः, तस्मात् सप्तम्येकवचनम् । बहूनां मध्ये एकस्य निर्धारणे जातौ परिप्रश्ने च गम्यमाने किंयत्तदः डतमच् भवतीत्यर्थः । डतमचि अतम इत्यवशिष्यते । जातौ इति किंयत्तदां विशेषणम् । परिप्रश्न इति किमः एव विशेषणम् । **कतमो भवतां कठः**—किम् शब्दात् डतमच्, डित्त्वाट्टेरिमो लोपः । यच्छब्दात् यतमः । तच्छाब्दात् ततमः इति । **वाग्रहणमिति**—तेन यकः सकः इत्यपि । **एकाच्चेति**—एकशब्दात् प्राचामाचार्याणां मतेन डतरच्-डतमच् प्रत्ययौ भवतः, पूर्वसूत्रद्वयविषये । अनयोः एकतरः **मैत्रः**-एकशब्दात् डतरच्, भत्वादलोपः । **एषामेकतमः**—बहूनां निर्धारणे एकशब्दात् डतमच्, भत्वादलोपः । स्वादिकार्यम् ।

।। इति प्रागिवीयाः ।।

हिन्दी

२१५५. बहुतों में एक का निर्धारण होने पर जाति एवं परिप्रश्न गम्य हो तो किम् यत् व तत् से 'डतमच्' होता है ।

२१५६. उक्त दोनों सूत्रों के विषय में प्राचीन आचार्यों के मत में एक शब्द से डतरच् एवं डतमच् प्रत्यय होते हैं ।

।। इति प्रागिवीयाः ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ स्वार्थिकाः

२१५७. इवे प्रतिकृतौ-५।३।९६।। कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः ।

वा. सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् ।। अश्व एव अश्वकः ।

२१५८. शाखादिभ्यो यः[1]-५।३।१०३।। शाखेव शाख्यः । मुख्यः । जघन्यः । अग्र्यः । शरण्यः ।

२१५९. कुशाग्राच्छः-५।३।१०५।। कुशाग्रीया ।

२१६०. तत्प्रकृतवचने मयट्-५।४।२१।। प्राचुर्येण प्रस्तुतं = प्रकृतम् । तस्य वचनं = प्रतिपादनम् । भावेऽधिकरणे च ल्युट् । आद्ये-प्रकृतमन्नम् अन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये-अन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ।

मध्यमनोरमापूरणी

इवे प्रतिकृतौ—अवक्षेपणे कन् इत्यस्मात् 'कन्' इत्यनुवर्तते । इवार्थः सादृश्यम् । प्रतिकृति-शब्दः तस्य विशेषणम् । प्रतिकृतिः काष्ठादिनिर्मितं प्रतिमापर्यायं वस्तु भवति । इवार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् स्यात् प्रतिकृतौ इत्यर्थः । प्रतिकृतिः यद्यपि स्त्रीलिङ्गे तथाऽपि "स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितो लिङ्गवचनानि अनुवर्तन्ते" इति नियमात् प्रकृतिवदेव लिङ्गमत्र बोध्यम् । **अश्वकः**—अश्व इवायमश्वप्रतिकृतिः इत्यर्थे कन् । नकारः इत् । स्वादिकार्यम् । अश्व एव **अश्वकः**-अत्र सर्वप्रातिपदिकेभ्यः इति कन् । **शाखादिभ्यो यः**—यत् इति पाठः काशिकायां विद्यते यः इत्यस्य स्थाने । तैत्तिरीये 'मुख्यो भवति' इत्यादौ मुख्यशब्दस्य आद्युदात्त-दर्शनात् 'यत्' इत्येव पाठः समीचीनः । 'इवे' इत्यनुवर्तते । शाखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः इवार्थे यत् भवतीत्यर्थः । **शाख्यः**—शाखा इव इत्यर्थे शाखा शब्दात् यत्, भसंज्ञा, यस्येति चेत्या-लोपः । एवं मुखमिव मुख्यः, जघनमिव जघन्यः, अग्रमिव अग्र्यः, शरणम् इव शरण्यः इत्यादिषु यत्, भत्वादलोपश्च ज्ञेयः । **कुशाग्राच्छः**—इवार्थे कुशाग्रशब्दात् छ-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **कुशाग्रीया**—कुशाग्रम् इव इत्यर्थे छः, आयनेयीनीयिय इति छस्येयादेशे भत्वाद-लोपे स्त्रीत्वाट्टापि सवर्णदीर्घे रूपम् । बुद्धेः विशेषणमेतत् । अत्र सूक्ष्मत्वेन सादृश्यमस्ति । बुद्धिः सूक्ष्मा इत्यर्थः । **तत्कृतवचने**—तद् इति प्रथमान्तनिर्देशः । प्राचुर्येण प्रस्तुतम्= बहुलतया उपस्थापितम् इत्यर्थः । प्रतिपादनम्=बोधनम् । प्रथमान्ताद् प्रकृतवचनेऽभिधेये स्वार्थे मयट् स्यादित्यर्थः । **अन्नमयम्**—प्रकृतमन्नं=प्रचुरमन्नमित्यर्थे तत्प्रकृतवचने मयडिति मयट् भवति अन्नशब्दात् । स्वार्थिकत्वात् अन्नस्य लिङ्गमेव प्रत्ययान्तादपि भवति । प्रकृतमपूपम् अपूयमयम् । **द्वितीये**—अधिकरणे ल्युटि इत्यर्थः । अत्र पक्षे प्राचुर्यविशिष्टमुच्यमानं वस्तु

हिन्दी

२१५७. सादृश्यविशिष्ट प्रतिमा के अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है ।

वा. सभी प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है ।

२१५८. शाखादि प्रातिपदिकों से सादृश्यार्थ में 'य' प्रत्यय होता है ।

२१५९. कुशाग्र शब्द से सादृश्य अर्थ में छ-प्रत्यय होता है ।

२१६०. प्रथमान्त से 'प्राचुर्येण प्रस्तुत' अर्थ में स्वार्थिक मयट् प्रत्यय होता है ।

---

1. यत् इति काशिकापाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१६१. संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्-५।४।१७॥ अभ्यावृत्तिर्जन्म, क्रियाजन्मगणनवृत्तेः संख्यायाः स्वार्थे कृत्वसुच् । पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते । संख्यायाः किम्- भूरि वारान् भुङ्क्ते ।

२१६२. द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्-५।४।१८॥ कृत्वसुचोऽपवादः । द्विर्भुङ्क्ते त्रिर्भुङ्क्ते। रात्सस्य-चतुर्भुङ्क्ते ।

२१६३. एकस्य सकृच्च-५।४।१९॥ सकृदादेशः चात् सुच् । सकृद् भुङ्क्ते ।

२१६४. देवतान्ताद् तादर्थ्ये यत्-५।४।२४॥ तदर्थ एव तादर्थ्यम्, स्वार्थे ष्यञ्। अग्निदेवतायै इदमग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

प्रकृत्यर्थः । तदधिकरणञ्च प्रत्ययार्थः । तन्त्रेणार्थद्वयं गृह्यतेऽत्र । स्वार्थिकप्रकरणपाठः अस्मिन् पक्षे न सङ्गच्छते । अतः "अथ स्वार्थिकाः" इति मूलं प्रायिकाभिप्रायमिति स्वीक्रियते । **अन्नमयो यज्ञः**—प्राचुर्यविशिष्टानि अन्नानि इत्यर्थः । अन्नं प्रकृतमस्मिन्नित्यर्थे मयट् । विशेष्य-लिङ्गत्वञ्च । अपूपं प्राचुर्येणास्मिन् इति अपूपमयं पर्व । **क्रियाभ्यावृत्तिगणने इति**—पौनः-पुन्यमभ्यावृत्तिः । एककर्तृकाणां तुल्यजातीयानां क्रियाणां जन्मसंख्यानं क्रियाभ्यावृत्तिगणनम्। **अत उक्तं**—क्रियाजन्मगणनवृत्तेरित्यादि । **पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते**—पञ्चवारान् भुङ्क्ते इत्यर्थे कृत्वसुच् । उचौ इतौ । पञ्चन् इति नस्य लोपः । पञ्चकृत्वस् इति । सस्य रुत्वविसर्गौ । पञ्चत्वसंख्याकोत्पत्तिविशिष्टा भोजनक्रिया इति अर्थः । **द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्**—क्रियाभ्यावृत्ति-गणने संख्यावाचकेभ्यः द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् प्रत्ययो भवति । कृत्वसुचोऽपवादोऽयम् । **द्विर्भुङ्क्ते**—द्वौ वारौ भुङ्क्ते इत्यर्थे सुच् । उचौ इतौ । द्विस् इति, तद्धितश्चासर्वविभक्तिरित्यत्र परिगणनात् कृत्वोऽर्थानामव्ययसंज्ञा । तेन जातस्य सुपो लुक् । सस्य रुत्वविसर्गौ, द्विः इति। बारद्वयमित्यर्थः । एवमेव त्रीन् वारान् भुङ्क्ते चतुरः वारान् भुङ्क्ते इत्यर्थे त्रिः चतुः इति रूपम् । **एकस्येति**—एकस्य सकृदादेशः, सुच् प्रत्ययश्च क्रियागणनेऽर्थे भवति इत्यर्थः । अभ्या-वृत्तिरत्र न सम्भवति । **सकृत् इति**—एकबारं भुङ्क्ते इत्यर्थे सुच्, एकस्य सकृदादेशः । हल्-ङ्याब्भ्य इति सुचो लोपः । **तादर्थ्ये**—तदर्थ एव तादर्थ्यम् । तच्छब्देन देवतान्तस्यार्थ उच्यते। तस्मै अयं तदर्थः इति । स्वार्थे ष्यञ् । **अग्निदेवत्यम्**—अग्निदेवतायै इदमित्यर्थे यत्, भत्वाद् आलोपः, सोरम् । पितृदेवतायै इदं पितृदेवत्यम् इति ।

हिन्दी

२१६१. क्रियोत्पत्ति के गणन अर्थ में संख्यावाचक से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।

२१६२. क्रियोत्पत्ति की गणना में वर्तमान द्वि त्रि एवं चतुर् शब्द से स्वार्थ में सुच् होता है ।

२१६३. क्रिया गणना में विद्यमान एक से सुच् प्रत्यय होता है तथा एक को सकृत् आदेश होता है ।

२१६४. देवतान्त शब्द से तादर्थ्य में यत् प्रत्यय होता है, स्वार्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१६५. पादार्घाभ्याञ्च-५।४।२५॥ पादार्थमुदकं पाद्यम् । अर्घ्यम् ।

२१६६. अतिथेर्ञ्यः-५।४।२६॥ अतिथये इदम् आतिथ्यम् ।

वा. नवस्य नू आदेशस्त्नप्तनप्खाश्च वक्तव्याः ॥ नूत्नम् । नूतनम् । नवीनम् ।

वा. भागरूपनामभ्यो धेयः ॥ भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ।

वा. आग्नीध्रसाधारणादञ् ॥ आग्नीध्रम् । साधारणम् ।

२१६७. देवात्तल्-५।४।२७॥ देव एक देवता ।

२१६८. अवेः कः-५।४।२८॥ अविरेव अविकः ।

२१६९. यावादिभ्यः कन्-५।४।२९॥ याव एव यावकः । मणिकः ।

२१७०. मृदस्तिकन्-५।४।३९॥ मृदेव मृत्तिका ।

मध्यमनोरमापूरणी

पादार्घाभ्याञ्च—तादर्थ्ये यत् इत्यनुवर्तते । **पाद्यम्**—पादार्थम् उदकमित्यर्थे पादशब्दात् यत्। भत्वादलोपः । **अर्घ्यम्**—अर्घार्थमुदकम् इत्यर्थे यत् । **अतिथेर्ञ्यः**—तादर्थ्ये एव । **आतिथ्यम्**-अतिथये इदम् इत्यर्थे ञ्यः, ञकार इत् । ञित्वादादिवृद्धिः, भत्वादिकारलोपः, स्वादिकार्यम्। **नूत्नम्**—नवशब्दात् अत्यन्तस्वार्थे 'नवस्य नू' इत्यादिना त्नप् प्रत्ययः, नवस्य नू इत्यादेशश्च। सोरम् । तनपि नूतनम् इति । **नवीनम् इति**—नवशब्दात् 'नवस्य नू' इति ख-प्रत्ययः, नू इत्यादेशश्च । खस्येनादेशे नू ईन इति जाते ओर्गुणः इति गुणे अवादेशे नवीनम् इति । **भागरूपेति**-स्वार्थे धेयप्रत्ययः स्यादित्यर्थः । **भागधेयम्**—भाग एव इत्यर्थे धेय प्रत्ययः । रूपमेवेत्यर्थे रूपधेयम् । नाम एव इत्यर्थे नामधेयम् । **आग्नीध्रेति**—स्वार्थे आग्नीध्रसाधारण-शब्दाभ्यामञ् स्यादित्यर्थः । **आग्नीध्रम्**—अग्नीधः शरणम् आग्नीध्रम् । आग्नीध्रमेव इत्यर्थे अञ्। भत्वादलोपः । अञः प्रयोजनं तु स्त्रियां टिड्ढाणञ् इति ङीप्, आग्नीध्री इति । साधारणम् एवेत्यर्थेऽञि साधारणमिति । स्त्रियां तु साधारणी इति । अनेकं प्रत्ययविशिष्टसम्बन्धं साधारण-मिति कथ्यते । **देवात्तल्**-स्वार्थे एव । **देवता**—देव एव इत्यर्थे तल् । तलन्तं स्त्रियामिति नियमाद् भवत्यत्र टाप्, सवर्णदीर्घः । **अवेः कः**—स्वार्थे कः स्यात् । 'अविः शैलमेषार्काः, इत्यमरः । **अविकः**—अविरेवेत्यर्थे कः । **यावादिभ्यः**—याव मणि अस्थि चण्ड इत्यादिभ्यः यावगणपठितेभ्यः स्वार्थे कन् स्यात् । **यावकः**—याव एव इत्यर्थे कन् । यवानामयं यावः ओदनादिः । 'यवोऽलक्तो द्रुमादयः' इत्यमरात् अलक्तवृक्षो वा यावः । मणिरेव मणिकः । **तिकन्**—स्वार्थ एव मृद् इत्यस्माद् भवति तिकन् प्रत्ययः ।

हिन्दी

२१६५. पाद एवं अर्घ शब्द से तादर्थ्य में यत् प्रत्यय होता है ।

२१६६. 'अतिथि' शब्द से तादर्थ्य में 'ञ्य' प्रत्यय होता है ।

वा. नव शब्द को नू आदेश होता है तथा अत्यन्त स्वार्थिक 'त्नप्, तनप् एवं ख' प्रत्यय भी होते हैं ।

वा. भाग रूप एवं नाम से स्वार्थ में धेय-प्रत्यय होता है ।

वा. आग्नीध्र एवं साधारण से स्वार्थ में 'अञ्'-प्रत्यय होता है ।

२१६७. देव शब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होता है ।

२१६८. अवि से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होता है ।

२१६९. यावादिगण पठित से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय होता है ।

२१७०. मृत् शब्द से स्वार्थ में तिकन् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१७१. स-स्नौ प्रशंसायाम्-५।४।४०॥ रूपपोऽपवादः । प्रशस्ता मृन्मृत्सा । मृत्स्ना॥
२१७२. प्रज्ञादिभ्यश्च-५।४।३८॥ अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । दैवतः । बान्धवः।
२१७३. पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्-५।३।११२॥ स्वार्थे । नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घाः = पूगाः । लौहितध्वज्यः ।
२१७४. ञ्यादयस्तद्राजाः-५।३।११९॥ तद्राजस्येति लुक् । लोहितध्वजाः । व्राते-कपोतपाक्यः, कपोतपाकाः । च्फञ् । कौञ्जायना इत्यादि ।
२१७५. बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्-५।४।४२॥ बहूनि ददाति बहुशः । अल्पशः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नकारः इत् । **मृत्तिका**—मृत् एवेत्यर्थे तिकन्, दस्य चर्त्वेन तः, टाप् । **सस्नौ इति**—मृदः इत्यनुवर्तते । प्रशंसाऽर्थे विद्यमानात् मृच्छब्दात् स, स्न, इत्यैतौ प्रत्ययौ भवतः इत्यर्थः । प्रशंसायां रूपप् इत्यस्यापवादोऽयम् । **मृत्सा**—प्रशस्ता मृत् इत्यर्थे स-प्रत्ययः । प्रकृतेः मृच्छब्दस्य लिङ्गम् । स्न प्रत्यये टापि च **मृत्स्ना** इति । **प्रज्ञादिभ्यश्च**—तद्युक्तात् इत्यतः अण् इत्यनुवर्तते । स्वार्थे प्रज्ञादिशब्दात् अण् स्यादित्यर्थः । **प्राज्ञः**—प्रज्ञ एव इत्यर्थेऽण् । आदि-वृद्धिः । देवताशब्दात् अणि आदिवृद्धौ भत्वादालोपे **दैवतः** इति । बन्धुरेव इत्यर्थे अणि आदि-वृद्धौ ओर्गुणः इत्युकारस्य गुणे ओकारेऽवादेशे **बान्धव** इति । **पूगात् इति**—पूगेति न स्वरूप-ग्रहणं व्याख्यानात् । पूगवाचकात् स्वार्थे ञ्यः स्यान्नतु ग्रामणीपूर्वात् । **लौहितध्वज्यः**—लोहिताः ध्वजाःयस्य पूगस्येति बहुव्रीहौ लोहितध्वजः । लोहितध्वज एवेत्यर्थे ञ्यः, ञकार इत् । आदि-वृद्धिः, भत्वादलोपः । **ञ्यादय इति**—पूगाञ्ञ्यः इत्यारभ्य विहिताः प्रत्ययाः तद्राजसंज्ञकाः स्युरित्यर्थः । **लोहितध्वजाः**—लोहितध्वजा एवेत्यर्थे ञ्यः, तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियामिति ञ्य-प्रत्ययस्य लुक् । **कपोतपाकाः**—कपोतान् भक्षणाय पचन्ति इति कपोतपाकाः, कर्तरि पच्धातोः घञ् । कपोतपाका एवेत्यर्थे व्रातच्फञोरस्त्रियामिति ञ्यः, तस्य तद्राजस्येति लुक्। एकत्वेऽर्थे लुगभावे कपोतपाक य इति जाते भत्वादलोपः । **कौञ्जायना**—कुञ्जात् गोत्रे कुञ्जादिभ्यः च्फञ् इति च्फञ् । फस्यायन्नादेशे आदिवृद्धौ कौञ्जायन इति, बहुत्वे स्वार्थे ञ्य-प्रत्यये तस्य तद्राजस्येति लुक् । **बह्वल्पार्थात्**—बह्वर्थादल्पार्थाच्च कारकाभिधायकात् शब्दात् स्वार्थे 'शस्' प्रत्ययो वा स्यादित्यर्थः । विशेषस्यानभिधानात् सर्वं कर्मादिकारकं गृह्यते । **बहुशः**-बहून् ददाति इत्यर्थे बहुशब्दात् शस् ! सस्य रुत्वविसर्गौ । तद्धितश्चासर्वविभक्तिरित्यव्ययत्वम्।

हिन्दी

२२७१. मृत् से प्रशंसा अर्थ गम्य होने पर स्वार्थ में स एवं स्न प्रत्यय होते हैं ।
२१७२. प्रज्ञादिगणपठित से स्वार्थ में अण् होता है ।
२१७३. पूगवाचक से स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है, ग्रामणीपूर्वक से नहीं होता है ।
२१७४. 'ञ्य' आदि प्रत्ययों को तद्राज संज्ञा होती है ।
२१७५. बह्वर्थक एवं अल्पार्थक कारकवाची शब्दों से शस् प्रत्यय होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ।। नेह-बहु ददाति अनिष्टेषु । अल्पं ददाति आभ्युदयिकेषु ।
२१७६. संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्-५।४।४३।। द्वौ द्वौ ददाति द्विशः । माषं माषं ददाति माषशः । परिमाणशब्दाः वृत्तावेकार्थाः एव । संख्यैकवचनात् किम्-घटं घटं ददाति । वीप्सायां किम्-द्वौ ददाति । कारकादित्येव । द्वयोर्द्वयोः स्वामी ।
२१७७. प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः-५।४।४४।। प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्ताद् तसिः । प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति ।
वा. आद्यादिभ्यः उपसंख्यानम् ।। आदितः । मध्यतः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण-स्वरतः । वर्णतः ।

मध्यमनोरमापूरणी

अल्पं ददाति इत्यर्थे शस्, **अल्पशः** इति । **मङ्गलामङ्गलवचनमिति**—बह्वर्थान्मङ्गलेऽल्पार्थादमङ्गले शस् भवतीति ज्ञेयम् । **बहुददाति**—अत्र मङ्गलार्थाभावान्न शस् । **अल्पं ददाति आभ्युदयिकेषु**-आभ्युदयिकेषु अल्पदानममङ्गलं भवति तस्मान्नात्र शस् । **संख्यैकवचनाच्चेति**—कारकादिति शस् इति चानुवर्तते । संख्या च एकवचनं चेति समाहारद्वन्द्वे पञ्चम्येकवचनम् । एकत्वविशिष्टोऽर्थः उच्यतेऽनेनेति एकवचनः । संख्यावाचकात् एकवचनाच्च कारकाभिधायिनः प्रातिपदिकात् वीप्सायां शस् । **द्विशः**—द्वौ द्वौ ददाति इति वीप्सा । नित्यं वीप्सयोरिति द्वित्वम्। वीप्सायां द्विशब्दाच्छस् । सस्य रुत्वविसर्गौ । अत्र शसैव वीप्सा उक्ता । अव्ययत्वं पूर्ववत्। **माषशः**- माषं माषं ददातीति एकत्वविशिष्टात् माष शब्दात् शस् । घटं घटं ददाति-परिमाणशब्दाः समासादिवृत्तौ एकत्वविशिष्टस्यैवार्थस्य वाचकाः, अत्र एकवचनशब्देन विवक्षिताः, न तु घटादिजातिशब्दाः । अतः नात्र शस् । वामनस्तु जाति शब्देभ्योऽपि शस्भवतीत्युक्तवान्। **द्वौ ददाति**—वीप्सात्वाभावान्न शस् । **द्वयोः द्वयोरिति**—अत्र संबन्धवाचिका संख्या न तु कारकवाचिका, अतः शस् न । **प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति**—कृष्णस्य प्रतिनिधिः प्रद्युम्नः इत्यर्थः । अत्र प्रतिः प्रतिनिधिदानयोः इति प्रतेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञा भवति तद्योगे कृष्णात् पञ्चमी । कृष्ण ङस् इत्यस्मात् तसिः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक् । तद्धितश्चेति अव्ययत्वान्न पुनः सुप् । सस्य रुत्वविसर्गौ । **आद्यादिभ्यः**—सार्वविभक्तिकस्तसिः इत्यर्थः । आदौ इत्यर्थे तसिः, आदितः इति । मध्ये मध्याद् वा इत्यर्थे तसौ मध्यतः इति । पृष्ठे इत्यर्थे तसौ पृष्ठतः, पार्श्वयोः, पार्श्वाभ्यामित्यर्थे पार्श्वतः इति । एवमन्येपि, आकृतिगणत्वात् ।

हिन्दी

वा. बह्वर्थक से मङ्गल अर्थ में तथा अल्पार्थक से अमङ्गल अर्थ में शस् कहना चाहिये ।
२१७६. संख्यावाची तथा एकत्वविशिष्ट कारकवाची प्रातिपदिक से वीप्सा अर्थ में शस्-प्रत्यय होता है ।
२१७७. प्रति के योग में विहित जो पञ्चमी, तदन्त से तसि प्रत्यय होता है ।
वा. आदि इत्यादिशब्दों से सभी विभक्तियों में तसि प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१७८. [1]कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः-५।४।५०॥
वा. अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् ॥ विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद् विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्याद् करोत्यादिभिर्योगे ।
२१७९. अस्य च्वौ-७।४।३२॥ ईत् । अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते, तं करोति-कृष्णीकरोति । ब्रह्मीभवति । गङ्गीस्यात् ।
वा. अव्ययस्य च्वावीत्त्वं नेति वाच्यम् ॥ दोषाभूतमहः । दिवाभूता रात्रिः ।
२१८०. क्यच्व्योश्च-६।४।१५२॥ हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः क्ये च्वौ च परतः । गार्गी भवति ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृभ्वस्ति-अभूतेति—येन रूपेण प्राक् अभूतं यद्वस्तु तस्य तद्रूपप्राप्तौ इत्यर्थः । अत उक्तं विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ इत्यादि । संपद्यते कर्ता इति संपद्यकर्ता, तस्मिन् वर्तमानात् प्रातिपदिकात् अभूततद्भावे गम्यमाने कृभू अस् इत्यादिधातुभिर्योगे च्विः प्रत्ययो वा स्यादिति वास्तविकार्थः । **अस्य च्वौ**—ई घ्राध्मोरित्यनुवर्तते । **कृष्णीकरोति**—अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यमानः, तं करोति वा इत्यर्थे (प्रकृतिभूतः अकृष्णः कृष्णभावं विकारं प्राप्नुवन् सम्पद्यमानत्वात् संपद्यकर्ता भवतीति ज्ञेयम्), कृभ्वस्तियोगे इति च्विः, प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुक्। च्वौ चकारः चूटू इत्यनेन इकारश्च उपदेशेऽजनुनासिक इत्यनेन इतौ भवतः । कृष्णवकरोति इति जाते अस्य च्वौ इति कृष्णाकारस्य ईत्, वेरपृक्तस्येति वलोपः । स्वरादिनिपातमव्ययम् इति अव्ययत्वम् । **ब्रह्मी भवति**—अब्रह्म ब्रह्म सम्पद्यमानं भवतीत्यर्थे ब्रह्मन् शब्दात् च्विः। अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य पदत्वान्नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपः, अस्य च्वौ इतीत्वे वेरपृक्तस्येति वलोपः । अव्ययत्वात्सुपो लुक् । **गङ्गी स्यात्**—अगङ्गा गङ्गात्वेन सम्पद्यमाना स्यादित्यर्थे च्विः, सुपो लुकि, आकारस्य ईत्वे वलोपः । **दोषाभूतम्**—अदोषा दोषा सम्पद्यमानमभूत् इत्यर्थे रात्रिवाचकात् दोषा शब्दात् च्विः, अस्य च्वावितीत्त्वे प्राप्ते अव्ययस्य च्वावीत्त्वं नेति वाच्यमिति निषेधः, वलोपः । एवमेव अदिवा दिवा सम्पद्यमाना अभूत् इत्यर्थे च्वौ ईत्त्वनिषेधे दिवाभूता रात्रिरिति । **क्यच्व्योश्च**—अल्लोपोऽनः इत्यतः लोपः इति, हलस्तद्धितस्येत्यतः हल इति, सूर्यतिष्यागस्त्येत्यत य इति, आपत्यस्य चेत्यनुवर्तन्ते । **अत आह**-हलः परस्येत्यादि । **गार्गी भवति**—अगार्ग्यः गार्ग्यः सम्पद्यमानो भवति, इत्यर्थे च्विः, सुपो लुक्, गार्ग्येति यकारस्य क्यच्व्योश्चेति लोपे अस्य च्वौ इतीत्त्वं, वलोपः ।

हिन्दी

२१७८. अभूत-तद्भाव अर्थ में सम्पूर्वक पद् धातु के कर्ता के प्रतिपादक से कृ भू व अस् धातु के योग में च्वि-प्रत्यय होता है विकल्प से । (जो वस्तु पूर्व में जैसी नहीं थी, बाद में उस रूप को प्राप्त करना अभूततद्भाव है ।)
२१.७९. च्वि प्रत्यय परे अ को ई-होता है ।
वा. अव्यय के अवर्ण को च्वि प्रत्यय परे ईत्त्व नहीं होता है यह कहना चाहिये ।
२१८०. हल् से परे अपत्यर्थाक 'य' का लोप होता है, क्य एवं च्वि प्रत्यय परे रहते ।

1. 'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः' इति काशिकासूत्रम् । तत्र वार्तिकं नास्ति ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१८१. च्वौ च-७।४।२६।। दीर्घः । शुची भवति । पटू स्यात् ।

२१८२. अरुर्मनश्चक्षुश्चेतो-रहो-रजसां लोपश्च-५।४।५१।। चात् च्विः । अरूकरोति । उन्मनीकरोति । उच्चक्षू करोति । विचेतीकरोति । विरही करोति। विरजीकरोति ।

२१८३. विभाषा साति कार्त्स्न्ये-५।४।५२।। च्वेर्विषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये । सात्पदाद्योः । कृत्स्नं शस्त्रमग्निं सम्पद्यते-अग्निसाद् भवति । अग्नीभवति । कार्त्स्न्ये किम्-एकदेशेन शुक्लीभवति पटः ।

२१८४. अभिविधौ संपदा च-५।४।५३।। सम्पदा कृभ्वस्तिभिश्च योगे सातिर्वा व्याप्तौ । पक्षे कृभ्वस्तियोगे च्विः, सम्पदा तु वाक्यमेव । अग्निसात् सम्पद्यते। अग्निसाद् भवति शस्त्रम् । अग्नीभवति । जलसात् सम्पद्यते-जलीभवति लवणम्।

मध्यमनोरमापूरणी

च्वौ चेति—अकृत्सार्वधातुकयोरित्यतः दीर्घ इत्यनुवर्तते । च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः । **अरुर्मनस् इति**—अरुस् मनस् चक्षुस् चेतस् रहस् रजस् इत्येतेभ्यः च्विप्रत्ययः, एषामन्त्यस्य लोपश्च भवतीत्यर्थः । पूर्वेणैव प्रत्ययसिद्धेः अनेन लोपमात्रं विधीयते । **अरूकरोति**—अनरुः अरुः संपद्यते, तद् करोतीत्यर्थे वा च्विः, अरुषः सस्य लोपः, च्वौ चेति उकारस्य दीर्घः, वलोपः। अनुन्मना उन्मना संपद्यते, करोति, इत्यर्थे च्विः, सलोपः ईत्वम्, वेरपृक्तस्येति लोपः । अनुच्चक्षुः उच्चक्षुः सम्पद्यते, तं करोतीत्यर्थे वा उच्चक्षू करोति । च्विः, सलोपः, च्वौ चेति दीर्घः, वलोपः । अविचेताः विचेताः सम्पद्यते, तं करोति-**विचेतीकरोति** । सस्य लोपः, ईत्वं, वलोपः । एवमन्यत्रापि । **विभाषेति**—'अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे' इति सूत्रमनुवर्तते । अस्मिन् विषये सातिः स्यात् साकल्ये वा इत्यर्थः । **अग्निसाद् भवति**—कृत्स्नं शस्त्रमग्निं सम्पद्यते इत्यर्थे सातिप्रत्ययः, इकार इत् । सुपो लुक् । सात्पदाद्योरिति षत्वनिषेधः । पक्षे च्विः, अग्नीभवतीति । **अभिविधौ**—अभिव्याप्तौ गम्यायां सातिः स्यात् सम्पदायोगे, चात् कृभ्वस्तिभिश्च योगे विकल्पेनेत्यर्थः । **अग्निसात् सम्पद्यते**—अभिविधौ अग्निशब्दात् सातिः । आदेशप्रत्यययोरिति प्राप्तषत्वस्य सात्पदाद्योरिति निषेधः । सकलमग्निं सम्पद्यते इत्यर्थः । सकलमग्निमभिव्याप्नोति वेत्यर्थः । पक्षे च्विः । **जलसात् भवति**—सकलं जलम् अभिव्याप्नोतीत्यर्थे अभिविधौ सम्पदा चेति सातिः, सुपो लुक् । पक्षे च्वौ अस्येत्त्वे जलीभवति लवणम् इति । **ननु को भेदः अभिविधौ कार्त्स्न्ये चेति चेच्छृणु**—यत्रैकदेशेनापि सर्वा प्रकृतिः विकारमाप्नोति सोऽभिविधिः यथा वर्षासु सर्वं लवणम् जलसात् सम्पद्यते इति । द्रवस्य सर्वात्मना विकाररूपता कार्त्स्न्यम् ।

हिन्दी

२१८१. च्वि प्रत्यय परे पूर्व को दीर्घ होता है ।

२१८२. पूर्व सूत्रार्थ के विषय में अरुस् मनस् इत्यादि से च्विप्रत्यय होता है तथा इनके अन्त्य वर्ण का लोप होता है ।

२१८३. अभूततद्भाव सूत्र के विषय में साति प्रत्यय होता है विकल्प से साकल्यार्थ में ।

२१८४. सम्पूर्वक पद् धातु एवं कृ भू अस् के योग में साति प्रत्यय होता है अभिव्याप्ति अर्थ में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१८५. तदधीनवचने-५।४।५४।। सातिः कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे । राजसात् करोति । राजाधीनमित्यर्थः ।

२१८६. देये त्रा च-५।४।५५।। तदधीने देये त्रा स्यात् सातिश्च क्रादियोगे । विप्राधीनं देयं करोति विप्रत्रा करोति । विप्रत्रा सम्पद्यते । पक्षे विप्रसात् करोति। देये किम्-राजसाद् भवति राष्ट्रम् ।

२१८७. देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीया-सप्तम्योर्बहुलम्-५।४।५६।। एभ्यो द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्रा स्यात् । देवत्रा वन्दे रमे वा । बहुलोक्तेरन्यत्रापि । बहुत्रा जीवतो मनः ।

२१८८. अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्-५।४।५७।। द्व्यच्-अवरं न्यूनम्, ननु ततो न्यूनम्, अनेकाजिति यावत् । तादृशमर्धं यस्य तस्माद् डाच् कृभ्वस्तिभिर्योगे ।

मध्यमनोरमापूरणी

तदधीनेति—तदधीनं तत्स्वामिकमित्युच्यते । कृभ्वस्तियोगे, सम्पदा इति चानुवर्तते । कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचकात् साति-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः । **राजसात्**-राज्ञः अधीनं करोति इत्यर्थे सातिप्रत्ययः, सुपो लुक् । राजन् सात् इति । नलोपः । **देये त्रा चेति**—तदधीनवचने इत्यनुवर्तते, कृभ्वस्तियोगे इति, सम्पदा च इत्यपि । **विप्रत्रा करोति**-विप्राधीनं देयं करोतीत्यर्थः । विप्रशब्दात् त्रा-प्रत्ययः । सातौ विप्रसात् करोति इति । **राजसाद्**-राज्ञः अधीनमित्येवार्थः, नतु देयम् । तेन सातिरेव तदधीनवचने इत्यनेन । **देवमनुष्येति**-द्वितीयासप्तम्योरिति पञ्चम्यर्थे सप्तमी । त्रा इत्येवानुवर्तते । कृभ्वस्तियोगे इत्यपि न सम्बद्ध्यते । द्वितीयान्त-सप्तम्यन्तेभ्यो देवादिभ्यः 'त्रा' स्यात् । **देवत्रा वन्दे रमे वा**—देवान् वन्दे, देवेषु रमे वा, इत्यर्थे' त्रा प्रत्ययः, सुपो लुक्। अव्ययत्वात् सुपो न श्रवणम् । **अन्यत्रापि**—देवादिभ्योऽन्यत्रापीत्यर्थः । **बहुत्रा जीवतो मनः**—जीवतः मनुष्यस्य मनः बहुषु विषयेषु गच्छति, बहून् व्याप्नोतीत्यर्थः । त्राप्रत्ययः । सुपो लुक् । अव्ययत्वान्न तद्धितान्तात् सुपः श्रवणम् । **अव्यक्तानुकरणाद्**—यत्र ध्वनौ वर्णाः अकारादयः स्पष्टं न व्यक्ताः भवन्ति सः अव्यक्तः । अव्यक्तस्यानुकरणमव्यक्तानुकरणम् । द्वौ अचौ यस्य स द्व्यच् । अवरं भवति न्यूनम् । द्व्यच् एव अवरं न्यूनसंख्याकमिति सामानाधिकरण्येनान्वयः । नतु ततो न्यूनम्= एकाच्कम् इति । द्व्यजवरम्=अनेकाच्कम्, अर्द्धं यस्येति द्व्यजवरार्धम्, तस्मात् अव्यक्तानुकरणाद् अनितिपरात् कृभ्वस्तियोगे डाच् भवति इत्यर्थः ।

हिन्दी

२१८५. स्वामिविशेषवाचक से अधीनीकरण अर्थ में कृ भू अस् एवं सम्पद् के योग में साति प्रत्यय होता है ।

२१८६. तदधीन देय अर्थ में कृ भू अस् एवं सम्पद् के योग में 'त्रा' प्रत्यय एवं 'साति' प्रत्यय होते हैं ।

२१८७. द्वितीयान्त एवं सप्तम्यन्त देव मनुष्य आदि से त्रा-प्रत्यय होता है, बहुल प्रकार से ।

२१८८. द्वित्व के बाद दो अच् से न्यून अर्धभाग जिसका न होता हो ऐसे अव्यक्तानुकरण शब्द से कृभू एवं अस् के योग में डाच् प्रत्यय होता है, इति परे नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. डाचि बहुलं द्वे भवतः ।। डाचि विवक्षिते द्वित्वम् ।

वा. नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् ।। डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन् परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात् । इति तपयोः पः । पटपटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात् किम्-दृषत् करोति । द्व्यज्वरार्धात् किम्-श्रत्करोति । अवरेति किम्-खरटखरटाकरोति । अनितौ किम्-पटिति करोति ।

२१८९. कृञो द्वितीय-तृतीय शंब-बीजात् कृषौ-५।४।५८।। द्वितीयादिभ्यो डाच् कृञो योग एव, कर्षणेऽर्थे । बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि न द्वित्वम् । द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति द्वितीयाकरोति । तृतीयाकरोति । शम्बाकरोति । बीजाकरोति ।

२१९०. संख्यायाश्च गुणान्तायाः-५।४।५९।। द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

पटपटाकरोति—पटत् इति अव्यक्तं शब्दं करोति इत्यर्थे डाच्, डकारचकारौ इतौ । डाचि द्वे बहुलमिति द्वित्वे पटत् पटत् आ करोति इति, नित्यमाम्रेडिते इति तपयोः पररूपेण पकारे कृते पटपटत् आकरोति इति । डित्त्वसामर्थ्याट्टिर्लोपे पटपटा करोति इति । **दृषत्करोति**—अव्यक्तानुकरणत्वाभावान्नात्र कृयोगे डाच् । **श्रत् करोति**—सूत्रे द्व्यजवरार्धात् इत्यस्याभावे श्रत् इत्येकाचोऽपि डाच् स्यात् । **पटिति करोति**—पटत् इति इत्यत्र इति परत्वान्न डाच् । अनितौ इत्यस्याभावे डाजापत्तिः स्यात् । अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ इति अत् इत्यस्य पररूपे पटिति करोति इति । **कृञो द्वितीयेति**—कृञो ग्रहणात् भूअस् इत्येतौ नानुवर्तेते । डाच् इत्येवानुवर्तते । कृञो योगे द्वितीयादिभ्यो डाच् भवति कर्षणेऽर्थे इति । **बहुलोक्तेरिति**—डाचि बहुलं द्वे भवतः, इत्यत्र बहुलग्रहणात् अव्यक्तानुकरणस्य एव डाचि द्वित्वं, नतु अन्यस्येत्यर्थः। **द्वितीया करोति**—द्वितीयं कर्षणं करोतीत्यर्थे डाच्, अनुबन्धलोपः । बहुलग्रहणान्न द्वित्वम् । डित्त्वाट्टेः अस्य लोपः । द्वितीया इति अव्ययम् । एवमेव तृतीयं कर्षणं करोति इत्यर्थे डाचि टिलोपे तृतीया करोतीति । **शम्बा करोति**—शम्बशब्दः प्रतिलोमे वर्तते । तस्माड्डाच्, टेर्लोपः। अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कृषतीत्यर्थः । **बीजा करोति**—बीजेन सह कर्षणं करोति इत्यर्थे डाच् । टेर्लोपः, । **संख्यायाश्चेति**—कृञः इति कृषौ इति चानुवर्तते । गुणः अन्ते यस्याः, तस्याः, गुणान्तायाः, संख्यायाः कृञो योगे कृषौ चार्थे डाच् स्यादित्यर्थः । **द्विगुणा करोति क्षेत्रम्**-द्विगुणं कर्षणं करोति, तत्र क्षेत्रमिति कर्म । संख्यायाश्च गुणान्तायाः इति द्विगुणशब्दात् डाच्, सुपो लुक् । डित्त्वादकारलोपः । द्विगुणा इति अव्ययम् ।

हिन्दी

वा. डाच् प्रत्यय परे प्रकृति को द्वित्व होता है, बहुल प्रकार से ।

वा. डाच् परे जो आम्रेडित उसके पर में रहते पूर्व व पर वर्ण के स्थान में पररुप एकादेश होता है ।

२१८९. द्वितीय तृतीय शम्ब एवं बीज से कृषि अर्थ में कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।

२१९०. गुणान्त संख्यावाचक से कृञ् के योग में कर्षण अर्थ में 'डाच्' होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१९१. समयाच्च यापनायाम्-५।४।६०।। कृषाविति निवृत्तम् । समया करोति= कालं यापयतीत्यर्थः ।

२१९२. सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने-५।४।६१।। सपत्रा करोति मृगम् । सपुङ्खशरप्रवेशेन सपत्रं करोतीत्यर्थः । निष्पत्रा करोति । सपुङ्खस्य शरस्यापरपार्श्वे निर्गमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः । अतिव्यथने किम्-सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम् ।

२१९३. निष्कुलान्निष्कोषणे-५।४।६२। निष्कुला करोति दाडिमम् । निर्गतं कुलम् अन्तरवयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच् ।

२१९४. सुखप्रियादानुलोम्ये-५।४।६३।। सुखा करोति । प्रिया करोति गुरुम् । अनुकूलाचरणेन आनन्दयतीत्यर्थः ।

२१९५. दुःखात् प्रातिलोम्ये-५।४।६४।। दुःखा करोति स्वामिनम् । पीडयतीत्यर्थः ।

२१९६. शूलात् पाके-५।४।६५।। शूलाकरोति मांसम् । शूलेन पचतीत्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

समयाच्चेति—डाच् इति कृञः इति चानुवर्तते । यापनायां गम्यायां समयशब्दात् कृञो योगे डाच् स्यादित्यर्थः । **समया करोति**—समयस्य यापनं करोति इत्यर्थे डाच् । डित्त्वसामर्थ्याट्टेर्लोपः । **सपत्रेति**—कृञो योगेऽतिव्यथनेऽर्थे गम्ये सपत्रनिषत्रशब्दाभ्यां डाच् भवतीत्यर्थः । **अतिव्यथनम्**—अतिपीडनम् । **सपत्रा करोति मृगम्**—सपत्रं शरं मृगस्य शरीरे प्रवेशयति इत्यर्थः । सपत्रशब्दात् डाच्, डित्त्वाट्टेरकारस्य लोपः । **निष्पत्रा करोति**—शरं शरीरात् अपरपार्श्वे निष्क्रामयतीत्यर्थः । निष्पत्र-शब्दात् करोति योगे डाच् । **भूतलमिति**—भूतलस्याचेतनत्वात् अतिव्यथनत्वाभावान्नात्र डाच् । यद्येतन्नोच्येत तदाऽत्रापि डाच् स्यादितिभावः । **निष्कोषणे**—निष्कोषणम् अन्तर्गतावयवानां बहिष्करणम् । अस्मिन्नर्थे गम्ये निष्कुलशब्दात् कृञो योगे डाच् स्यादित्यर्थः । **निष्कुला करोति दाडिमम्**—निर्गतं कुलं यस्मादिति निष्कुलम्, निष्कुलं करोतीत्यर्थे डाच् । **सुखप्रियादिति**—आराध्यचित्तानुकूलता आनुलोम्यं, तस्मिन्द्योत्ये सुख-प्रियाभ्यां डाच् स्यादित्यर्थः । **सुखा करोति**—सुखं करोति इत्यर्थे डाच् । प्रियं करोति इत्यर्थे डाचि अलोपे **प्रिया करोतीति** । अनुकूलेन व्यवहारेण गुरुमानन्दयतीत्यर्थः । **प्रातिलोम्ये**-आराध्यप्रतिकूलव्यवहारः प्रातिलोम्यम्, तस्मिन्, कृञो योगे दुखशब्दात् डाच् इत्यर्थः । **दुःखा करोति**-दुःख शब्दाड्डाच् । **शूलात् पाके**—कृञो योगे डाच् । **शूला करोति**—शूले शूलेन वा पचतीत्यर्थे डाच्, सुपो लुक्, डित्त्वाट्टेर्लोपः । करोती ति पाकेऽर्थेऽत्रास्ति ।

हिन्दी

२१९१. यापन अर्थ गम्य होने पर समय शब्द से कृञ् धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।

२१९२. अतिपीडन अर्थ में सपत्र एवं निष्पत्र से कृञ् योग में डाच् होता है ।

२१९३. निष्कोषणार्थक निष्कुल से कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।

२१९४. अनुकूलता अर्थ में सुख एवं प्रिय से कृञ् के योग में 'डाच्' होता है ।

२१९५. प्रतिकूलता अर्थ में दुख शब्द से कृञ् के योग में 'डाच्' होता है ।

२१.९६. शूल से पाकार्थ में कृञ् के योग में डाच् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२१९७. सत्यादशपथे-५।४।६६।। सत्या करोति भाण्डं वणिक् । क्रेतव्यमिति तथ्यं करोतीत्यर्थः । शपथे तु सत्यं करोति विप्रः ।

२१९८. मद्रात् परिवापणे-५।४।६७।। मद्रशब्दो मङ्गलार्थः । परिवापणं मुण्डनम्। मद्रा करोति कुमारम् । माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोति इत्यर्थः ।

वा. भद्राच्चेति वक्तव्यम् ।। भद्रा करोति । अर्थः प्राग्वत् । परिवापणे किम्-मद्रं करोति, भद्रं करोति ।

।। इति तद्धित प्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमापूरणी

सत्यादशपथे—कृञो योगे डाच् अशपथे इत्यर्थः । सत्य शब्दः क्वचित् शपथवचनः । यथा सत्येन शापयेद् विप्रम् इति, तस्याऽयं निषेधः । **सत्या करोति**—डाच्, टिलोपः । सत्यमत्र तथ्ये वर्तते । एतावता मूल्येनैव क्रेतव्यमिति तथ्यं करोतीत्यर्थः । **शपथे तु नात्र डाच्** । **मद्रात्-** कृञो योगे डाच्, परिवापणेऽर्थे इति । **मद्रा करोति कुमारम्**—मद्रं=मङ्गलं, मुण्डनं करोतीत्यर्थे मद्रशब्दात् डाच्, सुपो लुक्, अलोपः । **भद्राच्चेति**-डाच् । **भद्रा करोति**—भद्रं=मङ्गलं, मुण्डनं करोति नापितः इत्यर्थे भद्रशब्दात् डाच् । **परिवापणे किम्**—यद्येतन्नोच्येत तदा मद्रं करोति भद्रं करोतीत्यादौ परिवापणाद् भिन्नेऽपि डाच् स्यादिति भावः । चौधर्युपाह्वेन मैथिलेन अर्कनाथेन कृतायां मध्यमनोरमापूरण्याम् तद्धितप्रक्रियाः समाप्ताः ।।

हिन्दी

२१९७. अशपथ अर्थ में विद्यमान सत्य शब्द से कृञ् के योग में डाच् होता है ।

२१९८. मङ्गलार्थक मद्र शब्द से मुण्डन अर्थ में कृञ् के योग में 'डाच्' प्रत्यय होता है

वा. मङ्गलार्थक भद्र से मुण्डन अर्थ में डाच् कहना चाहिये ।

।। इति तद्धित प्रक्रिया ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ द्विरुक्तप्रक्रिया

२१९९. सर्वस्य द्वे-८।१।१।। इत्यधिकृत्य ।

२२००. [1]परेर्वर्जने-च-८।१।५।। परेः वर्जनेऽर्थे द्वे स्तः । परि परि बङ्गेभ्यो वृष्टो देवः ।

२२०१. उपर्यध्यधसः सामीप्ये-८।१।७।। उपर्युपरि ग्रामम् । ग्रामस्योपरिष्टात् समीपदेशे इत्यर्थः । अध्यधि सुखम् । सुखस्योपरिष्टात् समीपकाले दुःखमित्यर्थः। अधोऽधो लोकम् । लोकस्याधस्तात्, समीपदेशे इत्यर्थः ।

२२०२. वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु-८।१।८।। सुन्दर ! सुन्दर ! वृथा ते सौन्दर्यम् । देव ! देव ! वन्द्योऽसि । दुर्विनीत ! दुर्विनीत ! इदानीं ज्ञास्यति । धानुष्क ! धानुष्क ! वृथा ते धनुः । चोर ! चोर ! घातयिष्यामि त्वाम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सर्वस्य द्वे—'पदस्य' इत्यतः प्राक् यद् वक्ष्यते तत्र 'सर्वस्य द्वे' इत्यधिकारो वेदितव्यः । परेर्वर्जने-वर्जनेऽर्थे परि इत्यस्य द्वे भवतः इत्यर्थः । **परि परि बङ्गेभ्यो वृष्टो देवः**—अपपरी वर्जने इति परि इत्यस्य कर्मप्रवचनीय संज्ञा, पञ्चम्यपाङ्परिभिः इति बङ्गशब्दात् पञ्चमी । तत्र परि इत्यस्य द्वित्वम् । बङ्गान् परित्यज्यान्यत्र वृष्टो देव इत्यर्थः । **सामीप्ये**—सामीप्ये उपरि अधि अधस् इत्येषां द्वित्वं भवतीत्यर्थः । **उपरि उपरि ग्रामम्**—उपरि इत्यस्य द्वित्वम् । धिगुपर्यादिषु त्रिषु इति द्वितीया । एवमेव अध्यधि सुखम् । द्वित्वे पूर्वेकारस्य यण् । **अधोऽधो लोकम्**—अधस् इत्यस्य द्वित्वम् । सस्य रुत्वे उत्वे गुणे च रूपम् । **वाक्यादेरिति**—पदसमूहो वाक्यम् । सम्बोधनप्रथमान्तम् 'सामन्त्रितम्' इत्यनेन आमन्त्रितसंज्ञं भवति । वाक्यस्यादिः वाक्यादिः, तस्य वाक्यादेः आमन्त्रितसंज्ञकस्य द्वे भवतः, यदि तद्वाक्यम् असूया सम्मति कोप कुत्सन भर्त्सन इत्येतेषु भवति । **सुन्दर ! सुन्दर ! वृथा ते सौन्दर्यम्**—असूयायामिदं वाक्यम्, तत्र वाक्यादेः सुन्दरस्य द्वित्वम् । **देव देवेति**—देवेत्यस्य द्वित्वम्, संमतौ । तव वन्दनं सम्मतमिति अर्थः । **दुर्विनीत ! दर्विनीत** । इदानीं ज्ञास्यसि । कोपाविष्टस्येदं वाक्यम् । दुर्विनीत इत्यस्य द्वित्वम् । **ज्ञास्यसि**—दुर्विनयस्य फलं ज्ञास्यसि इति भावः । **कुत्सने**—धानुष्क इत्यस्य द्वित्वे धानुष्क ! धानुष्क इति । युद्धाय असमर्थं प्रति इदं वाक्यम् । **भर्त्सने** तावत् चोर इत्यस्य द्वित्वे चोर ! चोर ! घातयिष्यामि त्वामिति ।

हिन्दी

२१९९. 'सर्वस्य द्वे' यह 'पदस्य' सूत्र से पूर्व तक अधिकार है ।

२२००. वर्जनार्थक परि को द्वित्व होता है ।

२२०१. सामीप्य अर्थ में विद्यमान उपरि अधि एवं अधः को द्वित्व होता है ।

२२०२. वाक्य के आदि में आमन्त्रित संज्ञक को द्वित्व होता है, असूया सम्मति कोप कुत्सन एवं भर्त्सन व्यक्त होने पर ।

---

1. 'परिर्वर्जने' इति काशिका-पाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२०३. एकं बहुव्रीहिवत्-८।१।९।। द्विरुक्त एकशब्दो बहुव्रीहिवत् । तेन सुलोपपुम्वद्भावौ । एकैकमक्षरम् । इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि सति बहुव्रीहिवद्भावादेव प्रातिपदिकत्वात् समुदायात् सुप् । एकैकया आहुत्या ।

२२०४. आबाधे च-८।१।१०।। पीडायां द्वे स्तो बहुव्रीहिवच्च । गतगतः । गतगता।

२२०५. प्रकारे गुणवचनस्य-८।१।१२।। सादृश्यद्योत्ये गुणवचनस्य द्वेस्तस्तच्च कर्मधारयवत् । पटुपट्वी । पटुपटुः । पटुसदृशः, ईषत्पटुरिति ।

वा. आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये ।। मूले मूले स्थूलः ।

वा. सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः । सर्प ! सर्प ! बुध्यस्व, बुध्यस्व ! सर्प सर्प सर्प ! बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व ।

वा. कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम् ।। बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत् । इतरशब्दस्य तु नित्यम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

एकं बहुव्रीहिवत्—द्विरुक्तः एकशब्दः बहुव्रीहिवद् भवतीत्यर्थः । बहुव्रीहिवद्भावात् कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वात् सुब्लुक्, पुम्वद्भावश्च भवतः । तदेव तेन इत्यादिनोच्यते । **एकैकमक्षरम्**—एकम् इत्यस्य वीप्सायां द्वित्वम् । एकम् एकम् इति जाते बहुव्रीहिवदभावे कृते प्रातिपदिकत्वात् सुपो लुकि वृद्धिः । पुनः सुः, सोरम् । **एकैकया**—एकया इत्यस्य द्वित्वम्, बहुव्रीहिवद्भावे प्रातिपदिकत्वे सुपोर्लुकि एका इत्यस्य स्त्रियाः पुंवद्भाषित इति पुंवत् वृद्धिः। टाविभक्तिः समुदायात् । **आबाधे चेति**—बहुव्रीहिवदित्यनुकृष्यते चकारेण । द्वित्वञ्च भवति। **आबाधः**—पीडा, तस्यां द्योत्यायामित्यर्थः । **गतगतः**—प्रियां विना कालः गतः इति भावः। द्वित्वं गतः इत्यस्य, बहुव्रीहिवच्च । सुपो लुक् । समुदायात् सुबुत्पत्तिः । **गतगता-** गता इत्यस्य द्वित्वम् । प्रियं विना सा गता इति भावः । पुंवद्भावः पूर्वपदस्य च भवति । **प्रकारे**—प्रकारो सादृश्यम्, तस्मिन् द्योत्ये गुणवचनस्य द्वित्वं, कर्मधारयवद्भावश्च भवतीत्यर्थः । **आनुपूर्व्ये**—क्रमेण सन्निवेशे द्वित्वं भवतीत्यर्थः । मूले मूले स्थूलः । पूर्वपूर्वो मूलभागः उत्तरोत्तरमूलभागात् स्थूलः इति क्रमिकता । तत्र मूले इत्यस्य द्वित्वम् । नतु कर्मधारयवद्भावः । तथा सति सुपो लुक् स्यात् । **सम्भ्रमेणेति**—भयादिकृता त्वरा सम्भ्रमः, तेन प्रवृत्तौ गम्यमानायां यथेष्टम्-इच्छानुसारेण शब्दानां प्रयोगो विधेयः इति ! **यथा**—र्पभयाद् त्वरायां जातायां सर्पस्य अनेकधा प्रयोगो मूले दर्शितः, तद्वत् अन्येऽपि प्रयोगाः कर्तव्याः । **कर्मव्यतिहारे**—क्रियाविनिमयः कर्मव्यतिहारः, तस्मिन् गम्ये सर्वनाम्नो द्वित्वं भवति, द्विरुक्ते च पदे समासवद् भवति बहुलम् इत्यर्थः ।

हिन्दी

२२०३. द्वित्व कृत एक शब्द को बहुव्रीहिवद्भाव होता है ।

२२०४. पीडा अर्थ में द्वित्व होता है तथा बहुव्रीहिवद्भाव होता है ।

२२०५. सादृश्य अर्थ में गुणवचन को द्वित्व एवं कर्मधारयवद्भाव होता है ।

वा. आनुपूर्व्य में शब्द को द्वित्व होता है ।

वा. सम्भ्रम से प्रवृत्ति हो तो अनेक बार शब्दों का यथेष्ट प्रयोग उचित है ।

वा. क्रियाविनिमय में सर्वनाम को द्वित्व एवं समासवद्भाव होते हैं बहुल प्रकार से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः ॥ अन्योऽन्यं विप्रा नमन्ति । अन्योऽन्यौ । अन्योऽन्येन कृतम् । अन्योऽन्यस्मै दत्तमित्यादि ।

वा. स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वाच्यः ॥ अन्योऽन्याम्, अन्योऽन्यम्, परस्पराम्, परस्परम्, इतरेतराम्, इतरेतरम् वा इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः ।

दलद्वये टाबभावः क्लीबे चादड्विरहः स्वमोः ।
समासे सोरलुक् चेति सिद्धं बाहुलकात् त्रयम्॥

अन्योऽन्यमित्यादौ दलद्वये टाप् । अदड्तरेत्यदड् च प्राप्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

बहुलग्रहणादिति—अन्य-पर-शब्दयोः समासवद्भावो नेति भावः । इतरस्य तु नित्यं समासवद्भावः इति । इत्थमन्यपरशब्दयोः नित्यं द्वित्वं, समासवत्त्वं बहुलम्, इतरस्य तु उभयं नित्यमेवेत्याशयः । **असमासवद्भावे**—अन्यपरशब्दयोरसमासवद्भावे सुपः स्थाने सु इत्यादेशो भवतीत्यर्थः । **अन्योऽन्यं विप्रा नमन्ति**—अन्यम् इति द्वितीयान्तस्य कर्मव्यतिहारे द्वित्वेऽसमासवत्त्वे च पूर्वपदस्थस्य अमः स्थाने सुः, रुत्वोत्वयोः कृतयोः गुणे पररुपे च रूपम् । एवमेव अन्यौ, अन्येन, अन्यस्मै, इत्यादीनां द्वित्वे कृते पूर्वपदस्थस्य सुपः स्थाने सु इत्यादेशे सोरुत्वे उत्वे गुणे पररुपे च **अन्योऽन्यौ अन्योऽन्येनान्योऽन्यस्मै इत्यादि बोध्यम्** । **स्त्रीनपुंसकयोरिति**-स्त्रीलिङ्गनपुंसकयोर्विद्यमानानाम् अन्य, पर, इतर, इत्येतेषां पदानां कर्मव्यतिहारे द्वित्वे सति उत्तरपदस्थायाः आम् इत्यादेशो भवति बहुलमित्यर्थः । **अन्योऽन्याम्**—इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः इति अन्वयः । अन्याम् इत्यस्य कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नाम् इति द्वित्वम् । टापः निवृत्तिः । अन्यअम् अन्य अम् इति । पूर्वपदस्थायाः विभक्तेः सुः आदेशः, स्त्रीनपुंसकयोरिति उत्तरपदस्थविभक्तेराम् आदेशः, सोः रुत्वे गुणे पररुपे च रूपम् । आमोऽभावे अन्योऽन्यम् इति। दलद्वये टाबभाव इति वक्ष्यमाणत्वाद् पुंवद्भावात् टापो निवृत्तिः सर्वत्र बोध्या । एवमेव परस्पराम्, परस्परमित्यादि । नपुंसके इदं कुलमन्यत् कुलं भोजयति अन्यत् कुलमिदं कुलं भोजयति इति क्रियाविनिमये अन्यदित्यस्य द्वित्वे पूर्वपदस्थविभक्तेः सुः, उत्तरपदस्थायाश्च आम् । शेषं पूर्ववत् । आम्विरहे तु पुंवद् एव रूपमन्योऽन्यमिति । तत्र अदड्विरहः स्वमोः इति वक्ष्यते । **एतदेव कारिकायामुच्यते**—दलद्वये इत्यादिना । स्त्रियां दलद्वये खण्डद्वयेऽपि टापोऽभावो भवति । नपुंसके च स्वमोः अदड् विरहः । समासे, समासे कृते पूर्वपदस्थायाः सुविभक्तेः अलुक् भवति इति सर्वम् बाहुलकात् समाधेयमिति भावः। **अन्योऽन्यमित्यादौ**-उभयोः खण्डयोः स्त्रीलिङ्गे टापोऽभावो भवति, नपुसंके च सोः अदड्डतरादिभ्यःइति अदडादेशो न ।

हिन्दी

वा. जहाँ समासवद्भाव नहीं होता है वहाँ पूर्वपदस्थ सुप् के स्थान पर सु-आदेश होता है।
वा. स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसक में अन्य पर एवं इतर शब्द की उत्तरपदस्थ विभक्ति को आम् आदेश होता है । बहुल प्रकार से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

'अन्योऽन्यसंसक्तमहस्त्रियाम्' । अन्योऽन्याश्रयं, परस्पराक्षिसादृश्यम् अपरस्परै-रित्यादौ सोर्लुक् च प्राप्तः । सर्वं बाहुलकात् समाधेयम् ।

।। इति द्विरुक्त प्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमापूरणी

अन्योऽन्येन संसक्तम् इति तृतीयासमासे कृते अन्योऽन्यस्य आश्रयः इत्यत्र षष्ठीसमासे कृते परस्परस्य अक्षिसादृश्यम् इत्यत्र च षष्ठीसमासे सति, न परस्परे अपरस्परे तैः अपरस्परैः इत्यत्र नञ्समासे कृते प्रातिपदिकत्वात् पूर्वपदस्थस्य सोः लुक् प्राप्तः, स तु बाहुलकादेव न भवतीति ज्ञेयम् ।

।। इति दिरुक्तप्रक्रिया ।।

हिन्दी

दलद्वये-कारिकार्थः—स्त्रीलिङ्ग में पूर्व एवं उत्तर दोनों खण्डों में टाप् का अभाव एवं नपुंसक में सु व ,अम् को अद्ड् आदेश का अभाव होता है । तथा समास करने पर पूर्वपदस्थ सु का अलुक् होता है, इस तरह ये तीनों कार्य बाहुलकात् होते हैं ।

।। इति द्विरुक्तप्रक्रिया ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

२२०६. स्त्रियाम्-४।१।३॥ अधिकारोऽयम् । समर्थानामिति यावत् ।

२२०७. अजाद्यतष्टाप्-४।१।४॥ अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् । अजा । अजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणान्नेह-पञ्चाजी । अत्र हि समासार्थसमाहारनिष्ठं स्त्रीत्वम् । अतः- खटवा । एडका । अश्वा । चटका। मूषिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता ।

मध्यमनोरमा

श्री कृष्णाय नमः ।

नत्वा कृष्णपदाम्भोजं स्मृत्वा च गुरोर्गिरः ।

कुर्वेऽहं मध्यकौमुद्याः व्याख्यां मध्यमनोरमाम् ॥

स्त्रियाम्—अत्र खट्वादीनां शब्दानां "स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः" इति लौकिकलिङ्गाभावेऽपि सत्त्वरजस्तमोगुणामुपचयावस्था पुंस्त्वम्, अपचयावस्था स्त्रीत्वम्, साम्यावस्था नपुंसकत्वमिति शास्त्रीयं स्त्रीत्वं बोध्यम् । **अजाद्यतष्टाप्**—अजशब्दः आदिर्यस्येति बहुव्रीहिः, अजादिश्च अच्चेति समाहारद्वन्द्वः । तस्य अजाद्यतः । **अत इति वर्ण-ग्रहणात् तदन्तविधिरित्याह**—अकारान्तस्येति वाच्यं यत् स्त्रीत्वमिति । लिङ्गस्यापि प्रातिपदि-कार्थत्वादिति भावः । **तत्र द्योत्ये इति**—प्रत्ययस्य वाच्यत्वे वाक् त्वगादौ लिङ्गवाचकप्रत्यया-भावात् ततः स्त्रीत्वबोधो न स्यादिति भावः । टापः पकारः स्वरार्थः । टकारस्तु याडापः आङि चापः इत्यादौ टाप्डाप्चापां सामान्यग्रहणार्थः । अन्यथा एकानुबन्धकपरिभाषया अस्यैव ग्रहणं स्यान्नतु डाप्चापोः, तयोर्द्व्यनुबन्धकत्वात् । **अजेति**—अज् गतिक्षेपणयोः, अस्मात् पचाद्यच्, ततष्टापि सवर्णदीर्घः । अजेर्व्यघञपोरिति वीभावस्तु न, वा लिटीत्यतो वा ग्रहणानु-वृत्त्या व्यवस्थितविभाषाया भाष्यकृता स्वीकारात् । अत एवाजाविभ्यां थ्यनिति सौत्रनिर्देशः सङ्गच्छते । **पञ्चाजीति**—पञ्चानाम् अजानां समाहारः इति तद्धितार्थेत्यादिना द्विगुः । 'अकारान्तोत्तरपद' इति स्त्रीत्वे द्विगोरिति ङीप् । न चात्र समासप्रत्ययविधाविति निषेधेन तदन्त-विधेरभावादेव टापोऽप्राप्तिरिति वाच्यम्, अमहत्पूर्वग्रहणेनानुपसर्जनाधिकारेण च स्त्रीप्रत्ययेषु तदन्तविधेर्ज्ञापनात् । **समाहारनिष्ठमिति**—एवञ्च समुदायवाच्यमत्र स्त्रीत्वं नत्वजशब्दवाच्य-मिति न टाप् । **खट्वेति**— अशूपुषिलटिखटिकणिविशिभ्यः क्वन् । अश्वेत्यत्राप्यनेनैव क्वन्। **एडकेति**—इल् गतिक्षेपणयोः, ण्वुल् तृचाविति ण्वुल्, सार्वधातुकेति गुणः । लस्य डः । डलयोरे-कत्वस्मरणात् । प्रत्ययस्थादितीत्त्वं तु क्षिपकादित्वादिहैव निपातनाद् वा न । **चटकेति**-अत्रापि चटकाया ऐरगिति निर्देशात् क्षिपकादित्वादिहैव निपानाद् वा इत्वं नेति बोध्यम् । **मूषिकेति**-वृश्चिकृषोः किकन्नित्यधिकारे मुषेर्दीर्घश्चेति किकनि इकारमध्यो मूषिकशब्दः । अजादीनां जातेर-स्त्रीविषयादिति ङीषि प्राप्ते तद्बाधनार्थोऽत्र उपात्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

स्त्रियाम्—इत ऊर्ध्वं यत् अनुक्रमिष्यते तत्र स्त्रियाम् इत्येवं वेदनीयम् । ङ्याप्प्रातिपदिकात् इत्यधिकृत्य "स्वौजसमौट्" इति सूत्रं निरूप्य तदग्रे स्त्रीप्रत्ययान् निरूपयितुकाम आह- 'स्त्रियाम्' इति । अधिकारोऽयम् । अजाद्यतष्टाप् इत्युत्तरसूत्रेषु अनुवृत्तिलाभायेदं सूत्रं,

हिन्दी

२२०६. 'स्त्रियाम्' यह अधिकार है, 'समर्थानां प्रथमात्' सूत्र से पूर्व तक ।

२२०७. अजादि एवं अकारान्त का वाच्य स्त्रीत्व द्योत्य होने पर 'टाप्' होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ।। संफला । भस्त्रफला इत्यादि ।

वा. सदच्-काण्ड प्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् ।। सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । प्रत्यक्पुष्पा ।

वा. शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः । पुंयोगे तु शूद्री । अमहत्पूर्वा किम्-महाशूद्री । क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमेति पुंयोगेऽपि । कोकिला जातावपि ।

वा. मूलान्नञः ।। अमूला ।।

२२०८. उगितश्च-४।१।६।। ङीप् । भवन्ती । पचन्ती ।

मध्यमनोरमा

बालादीनां तु वयसि प्रथमे इति ङीपि प्राप्ते इति विवेकः । **सम्फलेति**—पाककर्णेति ङीषि प्राप्तेऽनेन टाप् । **सदच्काण्ड इति**—सदादिभ्यः परो यः पुष्पशब्दस्तस्माट्टाबित्यर्थः । सत्प्राक्-काण्डेति प्राचामपपाठः । **तद्ध्वनयन्नाह**—प्रत्यक्पुष्पेति । **शूद्रा चेति**—जातिलक्षणङीषोऽपवादः। शूद्रशब्दः टापमुत्पादयति जातिश्चेत् वाच्येत्यर्थः । अमहत्पूर्वेत्यत्रापि जातिरिति सम्बद्ध्यते । महत्पूर्वो न टापं लभते जातिश्चेद् वाच्या इति तदर्थः । **पुंयोगे तु शूद्रीति**—पुंयोगादाख्यायामितिङीष् । **महाशूद्रीति**—आभीरी तु महाशूद्री जातिपुंयोगयोः समेत्यमरः । जातेरस्त्रीति ङीष्। क्रुञ्चादयस्त्रयोऽपि हलन्ता इत्येके । अदन्ता इति भाष्ये । अजादिगणे पाठात् टाप् । **पुंयोगेऽपि इति**—यदा ज्येष्ठादयः प्रथमजातादौ वर्तन्ते तदाऽदन्तत्वादेव टाप् सिद्धः । यदा तु ज्येष्ठस्य स्त्रीत्यादिविवक्षा तदा पुंयोगलक्षणो ङीष् प्राप्तः, सोऽप्यनेन बाध्यते इति सूचयितुमपि शब्दः। **जातावपीति**—जातावपि जातेरस्त्रीविषयादिति ङीषि प्राप्ते टाबेवेत्यर्थः । **मूलान्नञः**-नञ्पूर्वकान्मूलशब्दात् टाप् स्यादित्यर्थः । पाककर्णेत्यस्यापवादोऽयम् । **नञः किम्**—शतमूली । **उगितश्च**—उगिच्छब्देन प्रातिपदिकस्य विशेषणात्तदन्तविधिः । तेन उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् इत्यर्थः । **भवतीति**—भाधातोर्डवतु प्रत्ययेऽनेन ङीप् ।

मध्यमनोरमापूरणी

न तु स्वतन्त्रविधिः । कुत्र यावदधिकार इति चेदुच्यते-'समर्थानां प्रथमात्' इति सूत्रात् प्राक्। **संभस्त्रेति**—सम् भस्त्र अजिन शण पिण्ड इत्येभ्यः परो यः फलशब्दः तस्मादपि टाप् वाच्यः। पाककर्णेति प्राप्तस्य ङीषो बाधकः । **सम्फला**—समृद्धानि फलानि यस्याः इति सम्फला । पाककर्णेति ङीषं प्रबाध्य सम्भस्त्रेति टाप् । सवर्णदीर्घः । सोः हल्ङ्यादिना लोपः । **सत्पुष्पा**—सन्ति पुष्पाणि यस्याः इति समासे सत्पुष्पशब्दात् टाप् । सवर्णदीर्घः । प्राञ्चि पुष्पाणि यस्या इति प्राक्पुष्पा । प्रत्यञ्चि पुष्पाणि यस्याः इति प्रत्यक्पुष्पा, टाप्, सवर्णदीर्घः । **शूद्राः**—शूद्रशब्दात् टाप् । शूद्रात् शूद्रायां स्वभार्यायां जाता शूद्रा । **अमूला-** अविद्यमानं मूलं यस्या इति अमूला । अमूला-शब्दात् पाककर्णेति ङीषं प्रबाध्य मूलान्नञः इति टाप्, सवर्णदीर्घः, सोर्लोपः। **भवन्ती**—भूधातोः शतृप्रत्यये भवत् इति, स्त्रीलिङ्गे उगितश्चेति ङीप्, शप्श्यनोरिति नुम् । सौ प्रत्यये तस्य लोपः ।

हिन्दी

वा. सम् भस्त्र अजिन शण व पिण्डपूर्वक फल शब्द से भी टाप् होता है ।

वा. सत् अञ्चु काण्ड प्रान्त शत एवं एक से परे पुष्प शब्द से टाप् होता है ।

वा. अमहत्पूर्वक शूद्र शब्द जाति अर्थ में टाप् को प्राप्त करता है ।

वा. नञ् से परे मूल शब्द से टाप् होता है ।

२२०८. उगिदन्त प्रातिपदिक से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२०९. वनो र च-४।१।७॥ वन्नन्ताद् तदन्ताच्च ङीप् स्याद् रश्चान्तादेशः। सुत्वानमतिक्रान्ता अतिसुत्वरी। अतिधीवरी।

वा. वनो न हश इति वक्तव्यम् ॥ अवावा ब्राह्मणी। राजयुध्वा।

वा. बहुव्रीहौ वा ॥ बहुधीवा। बहुधीवरी।

२२१०. पादोऽन्यतरस्याम्-४।१।८॥ द्विपदी, द्विपात्।

२२११. टाबृचि-४।१।९॥ द्विपदा ऋक्। एकपदा।

मध्यमनोरमा

ननु वितश्चेत्येव सूत्र्यतां, मास्तु उगितश्चेति प्रत्याहारग्रहणमत आह-**पचन्तीति**, पचेर्लटः शतरि कर्तरि शप्, शप्श्यनोरिति नुम् नित्यः। एवं शत्रन्तस्य भवतेर्ङीपि भवन्तीत्यप्युदाहरणं बोध्यम्। **वनो र च**—अत्र वन्निति ङ्वनिप् क्वनिप् वनिपां सामान्यग्रहणं, वनषण-सम्भक्तावित्यस्य तु न ग्रहणं, प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणात्। **वन्नन्तादिति**- प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहित इति तदन्तविधिः। **तदन्ताच्चेति**—प्रातिपदिकस्य विशेषणात् वन्नन्तात् तदन्तविधिः। **अन्तादेश इति**—अलोऽन्त्यपरिभाषयेति भावः। **अतिसुत्वरी**—षुञ् अभिषवे, सुयजोर्ङ्वनिप्, ह्रस्वस्य पितीति तुक्, अत्यादय इति समासः। **अतिधीवरी**—दधातेरन्येऽभ्योऽपि दृश्यते इति क्वनिप्। घुमास्थेतीत्वम्। **शर्वरी**—शॄ धातोरन्येभ्योऽपि दृश्यते इति वनिप्। **वनो न हश इति**—हशन्ताद् विहितो यो वन् तदन्तान्ङीब्रौ नेत्यर्थः। **अवावेति**—ओणृ अपनयने, वनिप्, विड्वनोरित्यात्वम्, अवादेशः, सर्वनामस्थाने चेति दीर्घः, नलोपः, स्त्रीलिङ्गद्योतनार्थं ब्राह्मणीशब्दप्रयोगः। **राजयुध्वेति**—राजनि युधि कृञ इति क्वनिप्। राजानं योधितवतीत्यर्थः। **बहुव्रीहौ वेति**—डाप्सूत्रेऽन्यतरस्यामिति योगविभागादेतल्लभ्यते नत्वपूर्वं वचनम्। **बहुधीवेति**—बहवो धीवानो यस्यां नगर्यामिति विग्रहः। **पादोऽन्यतरस्याम्**—कृतसमासान्तो यः पाच्छब्दस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् ङीब् वा स्यादित्यर्थः। **द्विपदीति**—द्वौ पादौ यस्याः इति बहुव्रीहौ संख्यासुपूर्वस्येति पादशब्दान्त्यलोपः, ततो ङीपि भत्वात् पादः पदिति पदादेशः। **टाबृचि**—ऋचि वाच्यायां पादन्ताट्टाप् स्यादित्यर्थः। द्वौ पादौ यस्याः इति विग्रहे संख्यासुपूर्वस्येति पादशब्दान्त्यलोपः, ततः टापि भत्वात् पदादेशः। **एकपदेति**—एकः पादो यस्या इति विग्रहः।

मध्यमनोरमापूरणी

अतिसुत्वरी—अतिसुत्वन् इत्यस्मात् वनो र चेति ङीप्, नस्य 'र' इत्यादेशः। धीवानमतिक्रान्तेति विग्रहे समासे अतिधीवन् इति, तस्मात् ङीप्, नस्य च रः। **अवावा**—अवावन् इत्यत्र वनो र च इति ङीब्रौ प्राप्तौ, वनो न हश इति निषिध्यते। सौ रूपम्। राजयुध्वन् इत्यस्मात् ङीष्रौ प्राप्तौ, वनो न हश इति निषिद्धौ। **बहुधीवरी**—बहुधीवन् शब्दात् स्त्रीलिङ्गे बहुव्रीहौ वेति विकल्पेन ङीप् रश्चादेशः। पक्षे सौ बहुधीवा इति पुंवद्रूपम्।

हिन्दी

२२०९. वन्नन्त एवं वन्नन्तान्त प्रातिपदिक से ङीप् होता है तथा अन्त में र आदेश भी।

वा. हशन्त से विहित जो वन् तदन्त से ङीप् और र आदेश नहीं होता है।

वा. वनो र च से ङीप् और रादेश बहुव्रीहि समास में विकल्प से होते हैं।

२२१०. पाद शब्दान्त से ङीप् होता है विकल्प से।

२२११. ऋचा वाच्य होने पर पादशब्दान्त से टाप् होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२१२. मनः-४।१।११।। मन्नन्तान्न ङीप् । सीमानौ ।

२२१३. अनो बहुव्रीहेः-४।१।१२।। अन्नन्ताद् बहुव्रीहेर्न ङीप् । बहुयज्वा, बहुयज्वानौ।

२२१४. डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्-४।१।१३।। सूत्रद्वयोपात्ताभ्यां डाब्वा । सीमा । सीमे, सीमानौ । दामे, दामानौ ।

२२१५. अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्-४।१।२८।। अन्नन्ताद् बहुव्रीहेरुपधालोपिनो वा ङीप् । पक्षे डाब्ङीब्निषेधौ । बहुराज्ञी । बहुराज्ञ्यौ । बहुराजा । बहुराजानौ ।

मध्यमनोरमा

मनः—न ङीबिति । न षट्स्वस्रेत्यतो नेत्यनुवर्तते इति भावः । **बहुयज्वानौ इति**—न संयोगादित्युपधालोपिन इति वक्ष्यमाणविकल्पो न । **डाबुभाभ्याम्**—यद्यपि मन्नन्तान्नन्तयोरनुवृत्त्यैव सिद्धं तथाप्युभाभ्यांग्रहणं सन्निहितत्वादन एवानुवृत्तिर्मा भूदित्येवमर्थम् । **अन अपधा-** बहुव्रीहेरूधसो ङीषित्यतो बहुव्रीहिग्रहणं, संख्याव्ययादेरित्यतो ङीब् चानुवर्तते इत्याह—अन्नन्तादित्यादि । **डाब्निषेधाविति**—डाबुभाभ्यामनो बहुव्रीहेरिति सूत्रद्वयेनेत्यर्थः । एवञ्च द्विवचने रूपत्रयम् इति भावः ।

मध्यमनोरमापूरणी

मनः—न षट्स्वस्रेत्यतः नेति ऋन्नेभ्यो ङीप् इत्यतः ङीप् इति चानुवर्तेते, प्रत्ययग्रहण-परिभाषया तदन्तविधिः । **सीमानौ**—सीमन् शब्दात् स्त्रीत्वे ऋन्नेभ्यो ङीप् इति ङीप् प्राप्तः, मनः इति निषिध्यते । औ विभक्तौ रूपम् । **बहुयज्वा-बहुयज्वन्** इत्यस्मात् ऋन्नेभ्यः इति प्राप्तो ङीप् अनो बहुव्रीहेरिति निषिध्यते । **डाबुभाभ्याम्**—उभाभ्यामित्यनेन मनः, अनो बहुव्रीहेः इति सूत्रद्वयं गृह्यते । तेन मन्नन्ताद् अन्नन्ताद् बहुव्रीहेश्च डाब्भवति विकल्पेनेत्यर्थः सिद्ध्यति । **सीमा**—सीमन्-शब्दात् डाप्, डपौ इतौ । डित्त्वाट्टेरनो लोपे सीमा इति जाते ङ्याप्प्रातिपदिकादिति सु प्रत्यये सोः हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घादिति लोपः । डाबभावे मनः इति ङीब्निषेधे राजन्-शब्दवत् सौ रूपम् । **सीमे**—डापि टिलोपे औ विभक्तौ औङ आप इति शी इत्यादेशे गुणे रूपम् । पक्षे सीमानौ इति । एवम् एव दामन् शब्दाड्डापि टिलोपे औङः श्यादेशे गुणे दामे इति । डाबभावे दामानौ । अन्नन्तबहुव्रीहेस्तु बहुयज्वा इति । डापि टिलोपे सोः हल्ङ्यादिलोपे च रूपम् । **बहुराज्ञी**—बहवो राजानो यस्यामिति बहुव्रीहौ बहुराजन् इत्यस्मात् डापं प्रबाध्य अन उपधालोपिन इति ङीप्, भत्वादल्लोपोऽनः इति अनोऽकारस्य लोपे बहुराज्न् ई इति, नस्य श्चुत्वेन ञकारे संयोगे च कृते रूपम् । **पक्षे**—ङीपः अभावे डाबुभाभ्यामिति डापि डित्त्वाट्टेलोपे बहुराजा इति । डाबभावे ङीपोऽनो बहुव्रीहेरिति निषेधेऽपि बहुराजा इत्येव । द्विवचने ङीपि बहुराज्ञ्यौ इति । ङीपोऽभावे डापि औङः श्यादेशे बहुराजे इति । डापोऽभावे अनो बहुव्रीहेः इति ङीब्निषेधे बहुराजानौ इति । इत्थमत्र रूपत्रयं बोध्यम्।

हिन्दी

२२१२. मन्नन्त प्रातिपदिक से ङीप् नहीं होता है ।

२२१३. अन्नन्त बहुव्रीहि से ङीप् नहीं होता है ।

२२१४. मन्नन्त एवं अन्नन्त बहुव्रीहि से स्त्रीत्वार्थ में डाप् होता है विकल्प से ।

२२१५. उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहि से ङीप् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२१६. प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः-७।३।४४।। प्रत्ययस्थात् ककारात् पूर्वस्याऽकारस्येकारः स्यादापि परे स आप् सुपः परो न चेत्। सर्विका। कारिका। अतः किम्-नौका। प्रत्ययस्थात् किम्-शक्नोतीति शका। असुपः किम्- बहुपरिव्राजका नगरी।

वा. मामकनरकयोरुपसंख्यानम् ।। मामिका। नरिका।

वा. त्यक्त्यपोश्च ।। दाक्षिणात्यिका। इहत्यिका।

मध्यमनोरमा

प्रत्ययस्थात् कात्—आप्सुपः परो न चेदिति, सुबन्तात्परो न चेदित्यर्थः। कादित्यकार उच्चारणार्थः, व्यञ्जनमात्रं विवक्षितम्, अन्यथा एतिकाश्चरन्ति इत्यादावकचि इत्वं न स्यात्। पचतकि भिन्धकीत्याद्यर्थम् अकचोऽकारस्य उच्चारणार्थाऽऽवश्यकत्वात्। **सर्विकेति**—अव्ययसर्वनाम्नामित्यज्ञातार्थेऽकच्। न चात्राद्याकारस्यापि इत्वं स्यादनुवादे निर्दिष्टपरिभाषाया अनुपस्थितेरिति वाच्यम्, आपीत्येतदकारस्य विशेषणात् येन नाव्यवधानमिति न्यायेन ककाराकारव्यवधाने एव प्रवृत्तेः। आद्याकारस्य इत्वे त्वधिकव्यवधानं स्पष्टमेव। अत एव रथकट्या पुत्रकाम्या इत्यादावित्त्वं न। **कारिकेति**—करोतेर्ण्वुलि युवोरनाकावित्यकादेशः। णित्त्वाद् वृद्धिः। **अतः किमिति**—अकारग्रहणं किमिति प्रश्नः। **तपरः किम्-राका नौकेति**—नौ शब्दात् स्वार्थे कः। **शकेति**—शक्लृ शक्तौ, पचाद्यच्। स्थग्रहणन्तु स्पष्टार्थमेव, ककारमात्रस्य प्रत्ययस्याभावात्। **बहुपरिव्राजकेति**—परिपूर्वकाद् व्रजेर्ण्वुल्। बहवः परिव्राजकाः यस्यां सेति बहुव्रीहिः। अत्र पत्ययलक्षणेन सुबन्तात् परः टाबस्तीतीत्त्वं न। **मामकनरकयोरिति**—ककारस्य प्रत्ययस्य प्रत्ययस्थत्वाभावादप्राप्तौ वचनम्। **मामिकेति**—ममेयं मामिका, युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् चेत्यण्। तवकममकावेकवचने इति ममकादेशः, आदिवृद्धिः, केवलमामकेति ङीप् तु न, संज्ञाछन्दसोरेवेति नियमात्। **नरिकेति**—कै शब्दे, आदेच उपदेशेऽशितीत्यात्वम्, आतोऽनुपसर्गे कः, आतो लोप इटि चेत्यालोपः, टाप्, इत्वम्। **त्यक्त्यपोश्च**—उदीचामातः स्थाने इति विकल्पस्यापवादः। **दाक्षिणात्यिकेति**—दक्षिणस्यामदूरे दक्षिणा। दक्षिणादाच्।

मध्यमनोरमापूरणी

सर्विका—सर्वशब्दात् टेः प्राक् अकचि सर्वक इति, स्त्रीत्वविवक्षायां टाप्, प्रत्ययस्थादित्यकारस्येत्वम्। सवर्णदीर्घः। कारक इत्यस्मात् टापि इत्वे च **कारिका** इति। **मामकनरकयोः**-इत्वम्आपि परे इति शेषः। **मामिका**—ममेयमित्यर्थे अणि तवकममकावेकवचने इति ममकादेशे आदिवृद्धौ टापि इत्वम्। **नरिका**—नरान् कायतीत्यर्थे कैधातोरादेच उपदेशे इत्यात्वे क-प्रत्यये आलोपे उपपदसमासे सुपो लुकि टाप्, ककारात् पूर्वस्येत्वम्। **दाक्षिणात्यिका**-दक्षिणात्यका इत्यत्र उदीचामात इति सूत्रं प्रबाध्य त्यक्त्यपोश्चेति इत्वम्। **इहत्यिका**—इह शब्दात् त्यप्, टाप्, कः, केऽणः, पुनष्टाप्, इत्वम्।

हिन्दी

२२१६. प्रत्ययस्थ ककार से पूर्व अकार को इकार होता है आप् परे रहते, वह आप् सुप् से परे यदि न हो।

वा. मामक एवं नरक के प्रत्ययस्थककार से पूर्व अकार को इकार् होता है।

वा. त्यगन्त एवं त्यबन्त के क से पूर्व अ को इत्व होता है।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२१७. न यासयोः-७।३।४५।। यत्तदोरस्येन्न । यका । सका । यकाम्।तकाम्।

वा. त्यकनश्च निषेधः । उपत्यका । अधित्यका ।

वा. आशिषि वुनश्च न ।। जीवका । भवका ।

वा. उत्तरपदलोपे न ।। देवका । देवदत्तिका ।

वा. क्षिपकादीनां च ।। क्षिपका । ध्रुवका । चटका । कन्यका ।

वा. तारका ज्योतींषि ।।

मध्यमनोरमा

दक्षिणा भवेति दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्, किति चेत्यादिवृद्धिः, टाप्, ततोऽज्ञाताद्यर्थे कः, केऽणः इति ह्रस्वः, पुनष्टाप् । **इहत्यिकेति**—अव्ययात्त्यप्, टाप्, ततोऽज्ञाताद्यर्थे कः, केऽणः इति ह्रस्वः, पुनष्टाप् । **न यासयोः**—प्रत्ययस्थादिति प्राप्ते निषेधोऽयम् । यासेति यत्तदोरुपलक्षणम्। **यका-सकेति**—यत्तच्छब्दात् अव्ययसर्वनाम्नामित्यकच्, त्यदाद्यत्वे टाप् । न चात्र सन्निपात-परिभाषाविरोधात् कथं टाबिति शङ्क्यम्, न यासयोरिति निर्देशेन तस्या अनित्यत्वात् । **त्यकनश्चेति**—प्रत्ययस्थादिति प्राप्ते निषेधोऽयम् । **उपत्यकेति**—उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयो-रिति त्यकन् । उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यकेत्यमरः । मृदस्तकन्निति वक्तव्ये मृदस्तिकन् इतीत्वभूतनिर्देशसामर्थ्यात् प्रकृते नेत्त्वमिति भाष्यकाराः । पञ्चभिर्मृत्तिकाभिः क्रीतः पञ्चमृत्तिकः इत्यस्यानभिधानमिति तदाशयः । तद्भाष्यस्यैवानुवादइत्यन्ये । **आशिषीति**—आशिषि विहितस्य वुन्प्रत्ययस्यात इत्वं न भवतीति वक्तव्यमित्यर्थः । **जीवका**—भवकेति—जीव् प्राणधारणे, भू सत्तायां, जीवतात् भवतात् इत्यर्थे आभ्यामाशिषिचेति वुन्, तस्याकादेशे कृते टाप् । **उत्तरपदलोप इति**—उत्तरपदलोपे सति प्रत्ययस्यात् कात् पूर्वस्येत्त्वं नेत्यर्थः । **देवकेति**—देवदत्त शब्दादनुकम्पायामिति कन्, अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्य इति द्वितीयादच ऊर्ध्वस्य दत्तशब्दस्य लोपः, टाप् । देवदत्तिकाशब्दोपन्यासस्तु दत्तलोपमभिव्यक्तुं, तद्भावे इत्व निषेधा-भावं च दर्शयितुम् । **क्षिपकादीनामिति**—नेत्यनुवर्तते । **क्षिपकेति**—क्षिप् प्रेरणे, अस्मादि-गुपधेति कः । ततोऽज्ञातादौ कः, टाप् । **ध्रुवकेति**—ध्रु गतिस्थैर्ययोः, पचाद्यच्, कुटादित्वा-न्ङित्वेन गुणाभावे उवङ्, ततष्टाप्यज्ञातार्थे कः, केऽणः इति ह्रस्वः, पुनष्टाप् । **चटकेति**—चट भेदने, संज्ञायां क्वुन्, अकादेशे टाप् । आकृतिगणोऽयम् । तेनालकेष्टकादयः साधवः । **तारकेति**-तॄ प्लवनतरणयोः, अस्मात् ण्वुल्, अकादेशः, णित्त्वाद्वृद्धिः, टाप् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सका—तद्शब्दा दकच्, अत्वपररूपे, टाप्, प्रत्ययस्थादितीत्वे प्राप्ते न यासयोरिति निषेधे सवर्ण-दीर्घे सौ तदोः सः इति तस्य सः । सोर्लोपः । **त्यकनश्चेति**—इत्वस्य निषेधः इति ।

हिन्दी

२२१७. यत् एवं तद् सम्बन्धी अ को इत्व नहीं होता है ।

वा. त्यकन् प्रत्ययान्त के ककार से पूर्व अ को इत्व का निषेध होता है ।

वा. आशीर्वाद अर्थ में वुन् प्रत्ययान्त अत् को इत्त्व नहीं होता है ।

वा. उत्तरपद का लोप होने पर 'प्रत्ययस्थात्' से इत्व नहीं होता है ।

वा. क्षिपकादिगण पठित के अत् को इत्त्व नहीं होता है ।

वा. ज्योति अर्थ में तारका के अ को इत्त्व नहीं होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. वर्णका तान्तवे ॥
वा. वर्तका शकुनौ प्राचाम् ॥
वा. अष्टका पितृदेवत्ये ॥
वा. सूतकापुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम् ॥ एषां वा अकारो भवतीत्यर्थः । सूतिका, सूतकेत्यादि ।

२२१८. उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः-७।३।४६॥ यकपूर्वस्य स्त्रीप्रत्ययस्यातः स्थाने योऽत् तस्य कात्पूर्वस्य इद्वाऽऽपि परे । केऽणः इति ह्रस्वः । आर्यिका, आर्यका । चटकिका, चटकका । आतः किम-साङ्काश्ये भवा सांकाश्यिका । यकेति किम्-अश्विका । स्त्रीप्रत्ययस्येति किम्-शुभंयिका ।

मध्यमनोरमा

ज्योतिर्नक्षत्रं नेत्रकनीनका च । अन्यत्र तु इत्वं भवत्येव । **वर्णकेति**—प्रावारविशेषः, वर्णवर्ण-क्रियाविस्तारगुणवचनेष्विति चौरादिकात् ण्वुल्, अकादेशः, वृद्धिः, टाप् । तन्तूनां विकारस्तान्तवम्, ओरञ् । अन्यत्र वर्णिकेत्येव ।

मध्यमनोरमापूरणी

वर्तका—वर्तयतेर्ण्वुलि अकादेशे णिलोपे टाप् । शकुनौ गम्ये इत्वं न प्राचां मतेन । उदीचां तु **वर्तिकेत्येव** । **अष्टका**—पित्र्यर्थे कर्मणि अष्टका भवति । तत्र प्रत्ययस्थादिति प्राप्तस्येत्त्वस्य निषेधः । **सूतिका-सूतकेति**—षूञ् धातोः आदिकर्तरि क्तः, टाप्, स्वार्थिकः कः, केऽणः इति ह्रस्वः, पुनष्टाप् । अत्र तकाराकारस्य अत्त्वम् । पक्षे प्रत्ययस्थादितीत्त्वम् । **पुत्रिका-पुत्रकेति-** पुत्रीशब्दात् स्वार्थे कन् । केऽणः, टाप्, पुत्रिका इति । सूतकापुत्रिकेति इकारस्य अत्वे **पुत्रकेति।** अत्वाभावे **पुत्रिका** इत्येव । **उदीचाम्**—'प्रत्ययस्थात्' इति सूत्रमनुवर्तते । यकेति वर्णग्रहणम्। यकौ पूर्वौ यस्याः इति विग्रहः । यकपूर्वायाः इति आतः विशेषणम् । **आर्यिका इति**—आर्या-शब्दात् स्वार्थे कः, केऽणः इत्याकारस्य अः, पुनष्टाप्, उदीचामातः इति यकाराकारस्येत्वम् । उदीचामिति विकल्पार्थम् । तेन पक्षे आर्यकेति । चटका-शब्दात् कः, ह्रस्वः, पुनष्टाप्, इत्वम्, **चटकिका इति** । **सांकाश्यिका**—साङ्काश्यशब्दात् भवार्थे वुञ्, वोरकादेशः । अत्र यकारादुत्तरः अकारः न आकारस्थानिकः, अतः नास्य प्रवृत्तिः । प्रत्ययस्थादितीत्वम् । यद्यातः इति नोच्येत सूत्रे तदात्रापि विकल्पेनेत्वं स्यात् । **अश्विका इति-** अश्वाशब्दात् कः, केऽणः, पुनष्टाप्, प्रत्यय-स्थादितीत्वम् । अत्र वकारः अतः पूर्वभागेऽस्ति, अतः उदीचामित्यस्य न प्रवृत्तिः । यदि यकेति नोच्येत तदात्रापि विकल्पेनेत्त्वं स्यात् ।

हिन्दी

वा. तन्तु विकार अर्थ में वर्णका में इत्त्व नहीं होता है ।
वा. शकुनि अर्थ में वर्तका में इत्त्व नहीं होता है, प्राचीनों के मत में ।
वा. पितृदेवत्यकर्म अर्थ में अष्टका को इत्व नहीं होता है ।
वा. सूतका पुत्रिका एवं वृन्दारका के ककार पूर्व को अत् होता है विकल्प से ।
२२१८. य-क-पूर्वक स्त्री प्रत्यय के आत् के स्थान में जो अत्, उस ककार से पूर्व अ को इद् होता है आप् परे, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२१९. अभाषितपुंस्काच्च-७।३।४८।। एतस्माद् विहितस्यातः स्थाने अत इद् वा । गङ्गिका । गङ्गका ।

२२२०. आदाचार्याणाम्-७।३।४९।। पूर्वविषये । गङ्गाका ।

२२२१. अनुपसर्जनात्-४।१।१४।। अधिकारोऽयं 'यूनस्तिः' इत्यभिव्याप्य ।

२२२२. टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः-४।१।१५।। अनुपसर्जनं यट्टिदादि, तदन्तं यददन्तं ततो ङीप् । कुरुचरी । उपसर्जनत्वान्नेह-बहुकुरुचरा । नदट्-नदी । देवट्-देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी । उरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी।

मध्यमनोरमा

कुरुचरी—कुरुषु चरत्यधिकरणे उपपदे चरेष्टः इति कर्तरि टः । **उपसर्जनत्वान्नेहेति**—बहवः कुरुचराः यस्यां सा बहुकुरुचरेति-बहुव्रीहिरन्यपदार्थप्रधानस्तथा च टिदन्तस्योपसर्जनत्वात् ङीप् नेत्यर्थः । **नदट्-नदीति-**—पचादिगणे टिन्निपातनादिति भावः । एवं देवट् इत्यत्रापि बोध्यम्। **सौपर्णेयीति**—सुपर्णी शब्दादपत्येऽर्थे स्त्रीभ्यो ढगिति ढक्, [illegible]नेयीत्येयादेशः । न चात्र निरनुबन्धकढग्रहणात् शिलाया ढ इत्यस्यैव ग्रहणं स्यान्नतु स्त्रीभ्यो ढगित्यादीनामिति वाच्यम्।

मध्यमनोरमापूरणी

शुभंयिका—शुभंपूर्वात् याधातोः विच् । शुभंया इत्यस्माद् कः, केऽणः । अत्राकारः न स्त्रीप्रत्ययस्य, अतः नास्य प्रवृत्तिः । प्रत्ययस्थादिति नित्यमित्त्वम् । **अभाषितपुंस्काच्च**—अभाषितः पुमान् येन सः अभाषितपुंस्कः, तस्मात् इति । 'विहितस्य' इत्यध्याह्रियते । 'उदीचामातः स्थाने' इत्यनुवर्तते । अत इत् इति चानुवर्तते । अभाषितपुंस्कात् विहितस्य आतः स्थाने योऽत् तस्य इत्वं भवति विकल्पेनेत्यर्थः । ननु उदीचामित्येव सिद्धे किमर्थमिदमिति चेन्न । अयकपूर्वार्थं वचनम् । **गङ्गिका**—गङ्गा शब्दात् नित्यस्त्रीलिङ्गात् स्वार्थे कः, केऽणः इति ह्रस्वः, पुनष्टाप्, प्रत्ययस्थादिति नित्यमित्त्वं बाधित्वा अनेन इत्त्वविकल्पः । इत्त्वाभावे गङ्गका इति । **आदाचार्याणाम्-पूर्वविषये इति**—अभाषितपुंस्काद् विहितस्य आतः स्थाने अतः आद् स्यात् सर्वेषामाचार्याणां मतेन । **गङ्गाका**—गङ्गाशब्दात् कः, केऽणः इति ह्रस्वः । पुनष्टाप्, आदाचार्याणामिति अकारस्य आत् । सवर्णदीर्घः । सुः, सोः हल्ङ्याब्भ्यः इति लोपः । **अनुपसर्जनात्**—न उपसर्जनम् अनुपसर्जनम्, तस्मादिति । उपसर्जनं गौणीभूतम् । यूनस्तिः इति सूत्रमभिव्याप्य अनुपसर्जनाद् इत्यस्याधिकारः । अर्थात् तत्सूत्रपर्यन्तं ये स्त्रीप्रत्ययाः विधास्यन्ते ते अनुपसर्जनादेव स्युरिति भावः । ननु बहवः कुरुचराः यस्यां सा बहुकुरुचरा,

हिन्दी

२२१९. अभाषितपुंस्क से विहित आत् के स्थान में हुए अत् को इत्व विकल्प से होता है ।

२२२०. अभाषित पुंस्क से विहित आत् स्थानीय अत् को आत् होता है आचार्यों के मत में ।

२२२१. 'अनुपसर्जनात्' यह अधिकार है, 'यूनस्तिः' सूत्र तक ।

२२२२. अनुपसर्जन टिदाद्यन्त जो अदन्त प्रातिपदिक उनसे ङीप् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनामुपसंख्यानम् ॥ स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुनी ।

मध्यमनोरमा

शिलाया ढस्य स्वभावान्नपुंसके एव प्रवृत्तेः, स्त्रियामसम्भवात् । **ऐन्द्रीति**—इन्द्रो देवता अस्या इत्यर्थे साऽस्य देवतेत्यण्, इन्द्रस्येयमित्यर्थे वा तस्येदम् इत्यण् । **औत्सीति**—उत्से भवा इत्यर्थे उत्सादिभ्योऽञ् । न च शार्ङ्गरवादिसूत्रेऽञ्ग्रहणं व्यर्थम्, अञन्तस्याद्युदात्तत्वेन ङीप्ङीनोः स्वरभेदाभावादनेनैव सिद्धेरिति वाच्यम् । उत्सस्यापत्यं स्त्री औत्सीत्यत्राञन्तलक्षणं ङीपं बाधित्वा परत्वाज्जातिलक्षणे ङीषि प्राप्ते तद्बाधनार्थं तत्राञ्ग्रहणस्यावश्यकत्वात् । न चैवं शार्ङ्गरवाद्यञ इति ङीना सिद्धमिदं रूपमिति, अत्राञ् ग्रहणं न कर्तव्यमिति वाच्यम्, तत्र जातेरित्यनुवृत्तेः । अन्यथा औत्सस्य स्त्री औत्सीत्यादौ पुंयोगेऽपि परत्वात् ङीन् स्यात् न तु ङीष्। इष्यते तु पुंयोगे ङीषेव । तस्माद् भवाद्यर्थे जातित्वाभावेन ङीबर्थमिहाप्यञ्ग्रहणमावश्यकमेवेति दिक् । ऊरुद्वयसीत्यादिऊरू प्रमाणमस्याः सा, प्रमाणे द्वयसच्दघ्नञ्मात्रचः ।

मध्यमनोरमापूरणी

नदमतिक्रान्ता अतिनदा इत्यादिषु कुरुचरनदादिभ्यः टिड्ढाणञ् इत्यादिना विधीयमानानां ङीबादीनां प्रसक्तिरेव नास्ति, समास प्रत्ययविधौ तदन्तविधेः प्रतिषेधात् । अतः अनुपसर्जनाधिकारो व्यर्थ इति चेन्न । अयमेव अनुपसर्जनाधिकारः स्त्रीप्रत्ययेषु तदन्तविधिं ज्ञापयति। तेन वनो र चेत्यादौ वन्नन्तान्तात् ङीप् इत्यर्थो लभ्यते । **कुरुचरी**—टप्रत्ययान्ताद् कुरुचरशब्दात् टिड्ढाणञ् इति ङीप्, भत्वाद् यस्येति चेति रकारस्थाकारस्य लोपः । ङ्यन्तात् सुः, हल्ङ्यादिना सोर्लोपः । **सौपर्णेयी**— सुपर्णी शब्दात् ढक्, ढस्यैयादेशः, आदिवृद्धिः, भत्वाद् ईलोपः, ढान्ताद् ङीपि यस्येति चेति अलोपः, सुः, सोः हल्ङ्याब्भ्य इति लोपः । **ऐन्द्री**—अणन्ताद् ऐन्द्रशब्दात् ङीप्, भत्वादलोपः । **औत्सी**—अञन्ताद् औत्सशब्दान्ङीप् । **ऊरुद्वयसी**- ऊरू प्रमाणमस्या इत्यर्थे प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः इति द्वयसच्, प्रातिपदिकत्वात्सुपो लुक्, ऊरुद्वयस इत्यस्मात् टिड्ढाणञ् इति ङीप्, यचि भम्, यस्येति च । एवमेव ऊरुदघ्नी ऊरुमात्री इति । **पञ्चतयी**- पञ्चन् शब्दात् तयपि पञ्चतय इति, टिड्ढेति ङीप् । **आक्षिकी**—अक्षैः दीव्यति इत्यर्थे ठक्, ठस्येकः, किति चेत्यादिवृद्धौ अलोपे आक्षिक इति, तस्मान्ङीप्, भत्वादलोपः । **लावणिकी**—लवणं पण्यमस्या इत्यर्थे ठञ्, ठस्येकः । शेषं पूर्ववत् । **यादृशी**—यादृश इति कञन्तान्ङीप् । **नञ्स्नञ् इति**—नञ् स्नञ्-ईकक्-ख्युन् इति प्रत्ययान्तेभ्यः तरुण तलुनशब्दाभ्याञ्च ङीप् वक्तव्यमित्यर्थः । **स्त्रैणी**—स्त्रीषु भवा इत्याद्यर्थे नञ्, आदिवृद्धिः, ङीप्, अलोपः, णत्वम् । **पौंस्नी**—पुंसु भवा, पुंसः अपत्यं स्त्री इत्याद्यर्थेषु स्नञ्, ञित्त्वादादिवृद्धौ सकारस्य संयोगादिलोपे 'नञ्स्नञीकक्' इति ङीप्, भत्वादलोपः । **शाक्तीकी**—शक्तिः प्रहरणमस्याः इत्यर्थे शक्तिशब्दात् ईकक्, किति चेत्यादिवृद्धौ भत्वादिलोपे शाक्तीक इति, ङीपि, अलोपे रूपम् । **आढ्यङ्करणी**—ख्युन्प्रत्ययान्ताद् आढ्यकरण शब्दात् ङीपि भत्वादलोपः ।

हिन्दी

वा. नञ् स्नञ् ईकक् व ख्युन्-प्रत्ययान्त तथा तरुण व तलुन शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२२३. यञश्च-४।१।१६।। यञन्तात् प्रातिपदिकात् ङीप् । अकारलोपे कृते ।
२२२४. हलस्तद्धितस्य-६।४।१५०।। हल उत्तरस्योपधाभूतस्य तद्धितयकारस्य लोप ईति परे । गार्गी ।
२२२५. प्राचां ष्फ तद्धितः-४।१।१७।। यञन्तात् ष्फो वा ।

मध्यमनोरमा

टिड्ढेति सूत्रे दघ्नञ्मात्रचोर्ग्रहणमकर्तुं शक्यम् । द्वयसजिति मात्रचश्चकारेण प्रत्याहाराश्रयणात्। **पञ्चतयीति**—पञ्च अवयवा यस्याः, संख्याया अवयवे तयप् । **आक्षिकीति**—तेन दीव्यतीति ठक् । **लावणिकीति**—लवणं पण्यमस्याः । लवणाट्ठञ् । ठग्रहणेनैव सिद्धे ठक्ठञोः पृथगुपादानं ठञ्ञिठोः व्यावृत्त्यर्थम् । **यादृशीति**—त्यदादिषु दृश इति कञ्, आसर्वनाम्न इत्याकारः । न च त्यदादिष्विति सूत्रेऽञ् किच्चेति सूत्रयित्वा प्रकृतसूत्रेऽञ्ग्रहणेनैव सिद्धे कञ्ग्रहणं मास्त्विति वाच्यम्, इह कञ्ग्रहणात् परस्यापि पुंयोगलक्षणङीषो बाधादित्येके, लाघवाभाव इत्यन्ये । इत्वरीति—एति तच्छीला, इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्, ह्रस्वस्य पितीति तुक् । **स्त्रैणी-पौंस्नीति**-स्त्रीपुंसाभ्यामिति नञ्स्नञौ । **शाक्तीकीति**—शक्तिः प्रहरणमस्याः प्रहरणमित्यधिकारे शक्ति-यष्ट्योरीकक् । **आढ्यङ्करणीति**—अनाढ्यःआढ्यः क्रियते अनयेत्यर्थे आढ्यसुभगेत्यादिना कृञः ख्युन्, युवोरित्यनादेशः । अरुर्द्विषदिति मुम् । **तरुणी-तलुनीति**—तॄ प्लवनतरणयोः, अस्मात् त्रोरश्च लो वा इत्युनन्, गुणः, रेफस्य पाक्षिको लकारादेशः, नित्त्वादाद्युदात्तौ । अनयोर्गौरादिषु पाठात् ङीप्ङीषोः पर्यायो बोध्यः । ङीप्ङीषोश्च स्वरे विशेषः । **यञश्च**—प्राचां ष्फ इत्यत्र यञ एवानुवृत्तये योगविभागः । **अकार लोप इति**—यञोऽकारस्य यस्येति लोपः इत्यर्थः । (इतः परं व्याख्यानं नोपलभ्यते। सम्पादकः)

मध्यमनोरमापूरणी

यञश्चेति—ऋन्नेभ्यो ङीप् इत्यतः ङीप् इत्यनुवर्तते । यञ् इति प्रत्ययात्तदन्तग्रहणम् । अत आह-यञन्तादित्यादि । टिड्ढेति सूत्रे यञ् इत्यस्य पाठादेव ङीप् सिद्धः, अत्र पाठस्तु, प्राचा-मित्यत्र अनुवृत्त्यर्थः । **हलस्तद्धितस्य**—हलः इति दिग्योगे पञ्चमी, उत्तरस्येत्यध्याह्रियते । यस्येति चेति सूत्रात् ईति इति, सूर्यतिष्यागस्त्य इत्यतः 'उपधायाः' इति, यः इति च, ढो ढे लोपः इत्यतः 'लोपः' इति चानुवर्तन्ते । अत आह-**हल उत्तरस्येत्यादि** । **गार्गी**—गर्गस्यापत्यमित्यर्थे गर्गशब्दात् यञि आदिवृद्धौ अलोपे गार्ग्य इति जाते यञश्चेति ङीप्, भत्वाद-लोपः, यलोपे कर्तव्येऽलोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वात् हलस्तद्धितस्येति उपधायस्य लोपः । सुः, सोः हल्ङ्याब्भ्य इति लोपः । **प्राचाम् इति**—यञ इत्यनुवर्तते । स्त्रियामित्यधिकृतम् । यञन्तात् स्त्रियां ष्फो वा स्यात् स च तद्धित इत्यर्थः ।

हिन्दी

२३२३. यञन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है
२२२४. हल् से परे उपधाभूत तद्धित य का लोप होता है ईकार परे रहते ।
२२२५. यञन्त प्रातिपदिक से ष्फ प्रत्यय होता है स्त्रीलिङ्ग में, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२२६. षः प्रत्ययस्य-१।३।६।। प्रत्ययादिः षः इत् स्यात् । आयनेयीनीत्यायनादेशः । षित्त्वसामर्थ्यात् षिद्गौरेति ङीष् । गार्ग्यायणी ।

२२२७. वयसि प्रथमे-४।१।२०।। प्रथमवयोवाचिनोऽदन्तात् ङीप् स्यात् । कुमारी ।

वा. वयस्यचरम इति वाच्यम् ।। वधूटी । चिरण्टी ।

२२२८. द्विगोः-४।१।२१।। अदन्ताद् द्विगोर्ङीप् । त्रिलोकी । अजादित्वात्-त्रिफला, त्र्यनीका सेना ।

२२२९. अपरिमाणविस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि-४।१।२२।। अपरिमाणान्ताद् विस्ताद्यन्ताच्च द्विगोर्न ङीप्, तद्धितलुकि । पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा । आर्हीयष्ठक्, अध्यर्धेति लुक् । द्वौ विस्तौ पचति द्विविस्ता ।

मध्यमनोरमापूरणी

षः प्रत्ययस्येति—आदिर्ञिटुडव इत्यतः आदिरिति, उपदेशेऽजनुनासिक इत् इत्यत इत् इति चानुवर्तेते । अत उक्तं प्रत्ययस्यादिः षः इत् भवतीति । **गार्ग्यायणी**—गर्गस्यापत्यं स्त्री इति विग्रहे यञन्ताद् गार्ग्यशब्दात् प्राचां ष्फः इति ष्फः, षकार इत् । आयनेयीति फस्यायन्, भत्वाद-लोपः । षित्त्वाद् षिद्गौरादिभ्यश्चेति गार्ग्यायन शब्दात् ङीष्, भत्वान्नकारस्याकारस्य लोपः । अट्कुप्वाङिति णत्वम् । **वयसि**—कालकृतः अवस्थाविशेषः वयः । तद्वयः कौमारं यौवनं वार्धकञ्चेति त्रिविधम् । तेषु वयःसु प्रथमकौमारवयोवाचिनः अदन्तात् प्रातिपादिकात् ङीप् स्यादित्यर्थः । **कुमारी**—कुमारशब्दात् स्त्रीत्वे वयसि प्रथमे इति ङीप्, भत्वादलोपः । **वयस्यचरमे**—चरमम् अन्त्यम्, अचरमे प्रथमे वयसि इत्यस्य स्थाने अन्त्यभिन्ने वयसि द्योत्ये ङीप् इति वक्तव्यम् । **वधूटी चिरण्टी**—इमौ द्वितीयवयोवाचिनौ अर्थात् यौवनवाचिनौ स्तः। आभ्यां वधूटचिरण्टशब्दाभ्यां ङीप् । **द्विगोः**—अजाद्यत इति सूत्रात् अत् इति ऋन्नेभ्य इत्यतः ङीप् इति चानुवर्तेते । स्त्रियामित्यधिकारः । अदन्ताद् द्विगोः स्त्रियां ङीप् स्यादित्यर्थः । **त्रिलोकी**—त्रयाणां लोकानां समाहारः इति विग्रहे तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे चेति समासे त्रिलोक इति । 'अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः' इति स्त्रीत्वाद् टापं प्रबाध्य द्विगोरिति ङीप्, भत्वाद-लोपः । त्रयाणां फलानां समाहारः, त्रिफला, त्रयाणामनीकानां समाहारः त्र्यनीका इत्युभयत्र द्विगोः इति ङीब्न, अजाद्यतष्टाप् इति बाधात् । **अपरिमाणेति**—द्विगोः इति, ङीप् इति चानुवर्तते । प्रातिपदिकादित्यर्था ऽस्य परिमाणादिविशेष्यत्वात् परिमाणादिभिः तदन्तविधिः । सर्वतो मानं परिमाणम्, न परिमाणमपरिमाणम् । अपरिमाणान्ताद् विस्ताद्यन्ताच्च द्विगोर्न ङीप् तद्धितलुकि सतीत्यर्थः ।

हिन्दी

२२२६. प्रत्ययादि षकार की इत्संज्ञा होती हैं ।

२२२७. प्रथमवय वाची प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है ।

वा. अन्तिम अवस्था से भिन्न अवस्थावाची प्रातिपदिक से ङीप् होता है, ऐसा कहना चाहिये ।

२२२८. अदन्त द्विगु से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है ।

२२२९. अपरिमाणान्त एवं विस्ताद्यन्त द्विगु से ङीप् नहीं होता है तद्धितलुक् होने पर ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

द्व्याचिता । द्विकम्बल्या । परिमाणात्तु द्व्याढकी । तद्धितलुकि किम्-समाहारे पञ्चाश्वी।
२२३०. काण्डान्तात् क्षेत्रे-४।१।२३।। क्षेत्रे यः काण्डान्तो द्विगुस्ततो न ङीप्, तद्धितलुकि । द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः । मात्रचः 'प्रमाणे लः', द्विगोर्नित्यमिति लुक् । क्षेत्रे किम्-द्विकाण्डी रज्जुः ।
२२३१. पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्-४।१।२४।। प्रमाणे यः पुरुषस्तदन्तात् द्विगोर्ङीब्वा स्यात्तद्धितलुकि । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः द्विपुरुषी द्विपुरुषा वा परिखा।
२२३२. ऊधसोऽनङ्-५।४।१३१।। ऊधोऽन्तस्य बहुव्रीहेरनङ् स्त्रियाम् ।
२२३३. बहुव्रीहेरूधसो ङीष्-४।१।२५।। ऊधोऽन्ताद् बहुव्रीहेः । कुण्डोध्नी । स्त्रियाम् किम्-कुण्डोधो धैनुकम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

पञ्चाश्वा—पञ्चभिः अश्वैः क्रीता इत्यर्थे तद्धितार्थे द्विगुः, तेन क्रीतम् इति ठक्, अध्यर्धपूर्वेति ठको लुक् । द्विगोरिति प्राप्तः ङीप् अनेन निषिध्यते । तेन टापि पञ्चाश्वा इत्येव । **द्विविस्ता**-द्वौ विस्तौ पचति इति विग्रहे तद्धितार्थेति समासः, 'सम्भवत्यवहरतिपचति' इति ठक्, ठकोऽध्यर्धपूर्वाद् इति लुक् । द्विविस्त इत्यस्मात् द्विगोरिति प्राप्तः ङीप् अपरिमाणेति निषिध्यते। टापि सति द्विविस्ता । द्वौ आचितौ वहति इत्यर्थे **द्व्याचिता** पूर्ववत् । द्वाभ्यां कम्बल्याभ्यां क्रीता इत्यर्थे ठञो लुकि ङीपो निषेधे टापि द्विकम्बल्या इति । **द्व्याढकी**—द्वौ आढकौ पचतीति समासे प्राग्वतीयष्ठञ्, तस्य, लुक् । द्व्याढक इति परिमाणान्ताद् ङीपो न निषेधः । द्विगोरिति ङीपि द्व्याढकीति । **काण्डान्ताद्**—द्विगोः इति 'न तद्धित लुकि' इति चानुवर्तते । काण्ड-शब्दान्ताद् द्विगोः ङीप् न स्याद् क्षेत्रे वाच्ये तद्धितलुकि सति इत्यर्थः । **द्विकाण्डा**—द्वे काण्डे प्रमाणमस्याः इति विग्रहे तद्धितार्थेति द्विगुः । प्रमाणे द्वयसच् इति मात्रच्, तस्य प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यमिति लुकि सति द्विगोः इति प्राप्तस्य ङीपः काण्डान्तात् इति प्रतिषेधो भवति । अजाद्यतष्टाप्, सवर्णदीर्घः । क्षेत्रभक्तिः=क्षेत्रभागः । ननु काण्डशब्दस्य अपरिमाणवाचित्वात् पूर्वेणैव ङीब्निषेधः सिद्धः, किमर्थमिदमिति चेत्, नियमार्थमिदं सूत्रम् । अर्थात् काण्डान्ताद् द्विगोः क्षेत्रे एव ङीपो निषेधः, नान्यत्र । तेन द्विकाण्डी रज्जुः इत्यत्र काण्डशब्दस्य क्षेत्रवाचित्वा-भावात् न ङीपो निषेधः । **पुरुषात्**—अपरिमाणविस्ताचित इति नित्ये ङीपो निषेधे प्राप्ते अनेन विकल्प्यते । **द्विपुरुषी**—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या इत्यर्थे द्विगुः, प्रमाणे द्वयसच् इति विहितस्य मात्रचः प्रमाणे लः द्विगोर्नित्यमिति लुक् । द्विपुरुष इत्यस्मात् नित्यं ङीप् निषेधः प्राप्तः, पुरुषात् प्रमाणे इति विकल्प्यते । तेन ङीपि द्विपुरुषी इति, ङीपो निषेधे च टापि द्विपुरुषा इति । **कुण्डोध्नी**-कुण्डमिव ऊधः यस्या इति विग्रहे बहुव्रीहौ सुपो लुकि गुणे कुण्डोधस् इति । ऊधसोऽनङ् इति अनङ्, ङित्वात् सस्य स्थाने भवति ।

हिन्दी

२२३०. क्षेत्र अर्थ में काण्डान्त द्विगु से ङीप् नहीं होता है, तद्धि लुक् होने पर ।
२२३१. प्रमाण अर्थ में जो पुरुष शब्द तदन्त द्विगु से ङीप् होता है तद्धितलुक् होने पर, विकल्प से ।
२२३२. ऊधस् अन्त वाले बहुव्रीहि से स्त्रीलिङ्ग में अनङ् होता है ।
२२३३. ऊधस् अन्तवाले बहुव्रीहि से ङीप् होता है, स्त्रीलिङ्ग में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२३४. दामहायनान्ताच्च-४।१।२७॥ संख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताद्धायनान्ताच्च ङीप् । द्विदाम्नी । द्विहायनी बाला ।

वा. त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम् ॥

वा. वयोवाचकहायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते ॥ त्रिहायणी । चतुर्हायणी । वयसोऽन्यत्र-त्रिहायना । चतुर्हायना शाला ।

२२३५. अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्-४।१।३२॥ नान्तत्वान्ङीप् । अन्तर्वत्नी । पतिवत्नी । गर्भभर्तृसंयोगे एवेष्यते । अन्यत्र तु अन्तरस्ति अस्यां शालायां घटः। पतिमती पृथिवी ।

मध्यमनोरमापूरणी

पररूपम् । कुण्डोधन् इति जाते डाबुभाभ्यामिति विकल्पेन डापि प्राप्ते अन उपधालोपिन इति विकल्पेन ङीपि प्राप्ते, ऋन्नेभ्यो ङीप् इत्यस्य च अनो बहुब्रीहेरित्यनेन निषेधे प्राप्ते बहुव्रीहेरूधसो ङीष् इति ङीषि भत्वादल्लोपोऽनः इति अनोऽकारस्य लोपः । **स्त्रियाम् किमिति**— यद्येतन्नोच्येत तदा धेनूनां समूहः धैनुकम्, कुण्डमिव ऊधः यस्य तत् कुण्डोधः इत्यत्रापि अनङ् प्रसज्येत । **दामहायनान्ताच्च**— संख्यादेः ङीप् च इत्यनुवर्तते पूर्वसूत्रात् न त्वव्ययपदम्, अस्वरितत्वात् । अत आह संख्यादेरित्यादि । **द्विदाम्नी**— द्वे दाम्नी यस्याः इति विग्रहे बहुव्रीहौ कृते द्विदामन् इत्यस्मात् डापं ङीब्निषेधं च बाधित्वा ङीप् । भत्वादल्लोपोऽनः इत्यकारलोपः। द्विहायन शब्दान्ङीपि भत्वादलोपे द्विहायनीति । अत्र टापं प्रबाध्य ङीप् । **त्रिचतुर्भ्याम्**— स्पष्टम् । **वयोवाचकहायनस्येति**— दामहायनान्ताच्चेति ङीप् त्रिचतुर्भ्यामिति णत्वं च वयोवाचकस्यैव हायनान्तस्य भवतः इत्यर्थः । **त्रिहायणी**— त्रयो हायनाः यस्याः इति विग्रहे समासे वयोवाचकहांयनस्येति नियमात् ङीप्, भत्वादलोपे च कृते त्रिचतुर्भ्यामिति णत्वम् । एवं च चत्वारो हायना यस्या इति चतुर्हायणी । **वयसोऽन्यत्रेति**— प्राणिनः जीवनकालः वयः उच्यते। प्राणिनः जीवनकालादन्यत्र तु अजाद्यतष्टाप् इत्येव भवति । तेन त्रिहायना शाला चतुर्हायना शाला इत्यादौ शाला इत्यस्य अप्राणित्वान्न ङीप्, न च णत्वं भवतीति बोध्यम् । **अन्तर्वत् इति**— गर्भिण्यां जीवद्भर्तृकायां च अन्तर्वत् इति पतिवत् इति प्रकृतिः निपात्यते, तयोश्च नुक् अन्ते भवतीत्यर्थः । **अन्तर्वत्नी**— अन्तः अस्ति अस्यां गर्भ इत्यर्थे अस्ति इत्यनेन-अधिकरणशक्तिप्रधानस्य अन्तःशब्दस्य सामानाधिकरण्याभावात् अप्राप्तो मतुप् अन्तर्वत्-पतिवतोर्नुगिति निपात्यते नुगागमश्च । मादुपधायाश्चेति मतोर्मस्य वत्वे अन्तर्व त्न् इति जाते ऋन्नेभ्यो ङीप् इति ङीप् । **पतिवत्नी**— पतिः अस्ति अस्याः इत्यर्थे तदस्यास्त्य स्मिन्नति मतुप्। पतिमत् इति जाते अन्तर्वत्पतिवतोरिति मतोर्मस्य निपातनात् वः, नुगागमश्च भवति । पतिवत्न् इति जाते ऋन्नेभ्य इति ङीप् । **अन्यत्रेति**— गर्भभर्तृसंयोग भिन्ने इत्यर्थः । अन्तः अस्ति अस्यां शालायां घट इत्यत्र गर्भिणी इत्यर्थाभावान्न मतुप्, नुक् च । **पतिमती**— जीवद्भर्तृकायामेव वत्वनिपातनान्नेह वत्वम्, नुक् च न ।

हिन्दी

२२३४. संख्यादि दामान्त एवं हायनान्त बहुव्रीहि से ङीप् प्रत्यय होता है ।

वा. त्रि एवं चतुर् शब्द से परे हायन के न को णत्व कहना चाहिये ।

वा. अवस्थावाचक हायन शब्द से ङीप् एवं णत्व होते हैं ।

२२३५. गर्भिणी एवं जीवद्भर्तृका अर्थ में अन्तर्वत् एवं पतिवत् निपातन होते हैं तथा इन्हें नुक्-आगम होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२३६. पत्युर्नो यज्ञसंयोगे-४।१।३३।। वशिष्ठस्य पत्नी ।

२२३७. विभाषा सपूर्वस्य-४।१।३४।। पतिशब्दान्तस्य नो वा । गृहपत्नी, गृहपतिः, दृढपत्नी, दृढपतिः ।

२२३८. नित्यं सपत्त्यादिषु-४।१।३५।। सपत्नी । एकपत्नी । वीरपत्नी ।

२२३९. पूतक्रतोरै च-४।१।३६।। पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी ।

२२४०. वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः-४।१।३७।। एषामुदात्त ऐ आदेशो ङीप् च । वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी । अग्नायी । कुसितायी । कुसिदायी ।

मध्यमनोरमापूरणी

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे—यज्ञेन सम्बन्धः यज्ञसम्बन्धः । स च स्वामिरूपेण भवति । यज्ञफलभोक्तृत्वमित्यर्थो वा । तत्र पतिशब्दस्य नकारान्तादेशो भवतीत्यर्थः । **वसिष्ठस्य पत्नी**-पतिशब्दात् पत्युर्नो यज्ञसंयोगे इति नुक्, ऋन्नेभ्य इति ङीप् । वसिष्ठकर्तृकयज्ञफलभोक्त्रीत्यर्थः । **विभाषेति**—पत्युर्न इत्यनुवर्तते । यज्ञसंयोगाभावेऽपि अप्राप्तविभाषेयम् । **गृहपत्नी-गृहपतिः**—गृहस्य पतिः स्त्री इत्यर्थे गृहपतिशब्दस्य नकारेऽन्तादेशे गृहपत्न् इति जाते ऋन्नेभ्यो ङीप् । नत्वाभावे ङीपोऽभावः । **दृढपत्नी**—दृढः पतिः यस्याः इति बहुव्रीहौ दृढपतिरित्येव। ननु स्त्रियाम् अनुपसर्जनाद् इत्यधिकारात् दृढपतिरित्यत्र पतिशब्दस्योपसर्जनत्वान्न नत्वप्राप्तिरिति चेन्न । विभाषा सपूर्वस्येत्यत्र अनुपसर्जनस्येति उत्तरार्थमनुवृत्तं सदपि न पत्युर्विशेषणं भवति अपि तु तदन्तस्यैव विशेषणं भवति, तेन नात्र दोषः । **नित्यमिति**—सपत्न्यादिविषये नित्यं पत्युर्नकारान्तादेशः स्यादित्यर्थः । पूर्वेण विकल्पे प्राप्ते इदम् । अनेनैव समानस्य सभावोऽपि निपात्यते । **सपत्नी**-समानः पतिर्यस्याः इति बहुव्रीहौ समानपति शब्दस्य नान्तादेशः समानस्य सभावश्च । ऋन्नेभ्य इति ङीप् । एकः पतिः यस्या इति **एकपत्नी** । वीरः पतिः यस्याः इति **वीरपत्नी** । सर्वत्र नित्यं सपत्न्यादिषु इति नत्वम् । **पूतक्रतो रै च**—चात् ङीप् । स्त्रियां पूतक्रतुशब्दस्य ऐकारान्तादेशः ङीप् च भवतीत्यर्थः । **पूतक्रतायी**—पूतः क्रतुः येन इति पूतक्रतुः, तस्य स्त्रीत्यर्थे ऐकारान्तादेशे ङीपि आयादेशः । **वृषाकप्यग्नि**—ऐ च इत्यनुवर्तते । **वृषाकपायी**—कपेरिकारस्य ऐकारः ङीप् च । आयादेशः । **अग्नेः स्त्री अग्नायी**-ऐकारोऽन्तादेशः, ङीप्, आयादेशश्च । **कुसितायी-कुसिदायी**—कुसितकुसिदशब्दौ देवविशेषवाचकौ । स्त्रीत्यर्थे ऐः, ङीप् च । आयादेशः ।

हिन्दी

२२३६. यज्ञसंयोग होने पर पति शब्द को नकारान्त आदेश होता है स्त्रीलिङ्ग में ।

२२३७. सपूर्व पति शब्द को नकारान्त आदेश होता है, विकल्प से ।

२२३८. सपत्न्यादि के विषय में नित्य नकारान्त आदेश होता है ।

२२३९. पूतक्रतु शब्द को ऐ अन्त में आदेश होता है तथा ङीप् प्रत्यय भी होता है ।

२२४०. वृषाकपि आदि को स्त्रीलिङ्ग में उदात्त ऐ अन्त में आदेश होता है व ङीप् प्रत्यय भी ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२४१. मनोरौ वा-४।१।३८॥ मनुशब्दस्यौकारादेशः स्यादुदात्तैकारश्च वा ङीप्। मनायी । मनावी । मनुः ।

२२४२. वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः-४।१।३९॥ वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्ताद्वा ङीप्, तकारस्य नकारः । एता । एनी । रोहिणी । रोहिता ।

२२४३. षिद्गौरादिभ्यश्च-४।१।४१॥ ङीष् । नर्तकी । गौरी । अनुडुही, अनड्वाही ।

वा. पिप्पल्यादयश्च ॥ आकृतिगणोऽयम् ।

वा. मत्स्यस्य ङ्याम् ॥ यलोपः । मत्सी ।

मध्यमनोरमापूरणी

मनोरौ वा—ऐ चेति उदात्त इति ङीप् इति चानुवर्तते । उदात्त इति ऐकारेणैव सम्बध्यते नत्वौकारेण । स्त्रियामित्यस्याधिकारः । मनु शब्दात् स्त्रियां ङीप् भवति, औकारश्चान्तादेशः ऐकारश्चोदात्तः अन्तादेशः वा स्यादित्यर्थः । **मनायी**—मनोः स्त्रीत्यर्थे मनु शब्दात् ङीप् उकारस्य स्थाने ऐकारे आयादेशे सुप्रत्यये तस्य हल्ङ्याब्भ्य इति लोपः । औकारान्तादेशे ङीपि आवादेशे च मनावी इति । उभयोः विकल्पपक्षे मनुरित्येव । **वर्णादिति**—वा इति ङीप् इति चानुवर्तते । अनुदात्तादिति पदं वर्णादित्यस्य विशेषणम्, येन विधिरिति तदन्तविधिः । तः उपधा यस्येति तोपधः, तस्मात् तोपधात् इति वर्णात् इत्यस्मिन् अन्वेति । वर्णादिति वर्णवाचिनः ग्रहणं न तु स्वरूपस्य, तोपधात्वाभावात् । अत उक्तं वर्णवाची योऽनुदात्तान्त इत्यादि। **एनी**—श्वेतवर्णवाचिनः एतशब्दात् स्त्रियां वर्णादित्यादिना ङीप्, तस्य च नः, भत्वादलोपः। ङीपोऽभावे टापि एता इति । **रोहिणी**—रक्तवर्णवाचिनः रोहित-शब्दात् ङीपि तस्य नकारेऽट्कुप्वाङिति णत्वम् । ङीपोऽभावे टाप्, रोहिता इति । **षिद्गौरादिभ्यश्च**—अन्यतो ङीष् इत्यतः ङीष् इत्यनुवर्तते । षकारः इत् यस्मिन् सः षित्, षिद्भ्यः गौरादिभ्यश्च प्रादिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् स्यादित्यर्थः । **नर्तकी**—नृत् धातोः शिल्पिनि ष्वुन्, वोरकादेशः लघूपधगुणः, नर्तक इति प्रादिपदिकात् ङीप्, यचि भम् । यस्येति चेत्यकारलोपः । गौर प्रातिपदिकात् **गौरी** । **अनड्वाही**-अनडुहशब्दात् स्त्रियां ङीपि आम् अनुडुहः स्त्रियां वेति आम् मित्वादन्त्यादचः परः, इकोयणचि इति यणि वकारे रूपम् । आमोऽभावे अनहुडीति । **पिप्पल्यादयश्च**—गौरादिगणे पठिताः । तेन पिप्पली हरीतकी पृथिवी इत्यादिसिद्धिः । **मत्स्येति**-ङ्यामुपधाभूतस्य यस्य लोपः इत्यर्थः । **मत्सी**—मत्स्यशब्दात् गौरादित्वात् ङीप्, मत्स्यस्येति यलोपः, भत्वादलोपः ।

हिन्दी

२२४१. मनु शब्द को औ अन्त में आदेश होता है और ऐकार उदात्त भी, तथा ङीप् प्रत्यय होता है, स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ।

२२४२. वर्णवाची अनुदात्तान्त तोपध प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है व त को न आदेश भी होता है ।

२२४३. षिद् एवं गौरादि प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होता है ।

वा. गौरादिगण में पिप्लल्यादि का भी पाठ समझना चाहिये ।

वा. मत्स्य के उपधाभूत यकार का लोप होता है ङी परे रहते ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२४४. जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककवराद् वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु-४।१।४२॥ एकादशभ्यः क्रमाद् वृत्त्यादिष्वर्थेषु ङीष् । जानपदी वृत्तिश्चेत् । अन्या जानपदी । अञन्तत्वाद् ङीप् । आद्युदात्तः । कुण्डी अमत्रं चेत् । कुण्डाऽन्या । गोणी आवपनं चेत् । गोणाऽन्या । स्थली अकृत्रिमा चेत् । स्थलाऽन्या । भाजी श्राणा चेत् । भाजाऽन्या । 'यवागूरुष्णिका श्राणा विलेपी तरला च सा' इत्यमरः । नागी स्थूला चेत् । नागाऽन्या । काली वर्णश्चेत् । कालाऽन्या । नीली अनाच्छादनं चेत् । नील्याऽन्या । नील्या रक्ता शाटीत्यर्थः । कुशी अयोविकारश्चेत् । कुशाऽन्या । कामुकी मैथुनेच्छावती चेत् । कामुकाऽन्या । कवरी केशानां सन्निवेशश्चेत् । कबराऽन्या ।

२२४५. शोणात् प्राचाम्-४।१।४३॥ शोणी, शोणा ।

२२४६. वोतो गुणवचनात्-४।१।४४॥ उदन्तात् गुणवाचिनो वा ङीष् ।

मध्यमनोरमापूरणी

जानपदेति—जानपदात् वृत्तौ कुण्डात् अमत्रे = पात्रे, गोणात् आवपने, स्थलात् अकृत्रिमायाम् = अपरिष्कृतायां भूमौ, भाजात् श्राणायाम् = पक्वायां यवाग्वाम्, नागात् स्थौल्येऽर्थे, कालात् वर्णेऽर्थे, नीलात् अनाच्छादने = वस्त्रभिन्ने गवादिके, कुशात्- अयोविकारे = फाल इति प्रसिद्धेऽर्थे, कामुकात् मैथुनेच्छायाम्, कवराद् केशवेशे = केशविन्यासे चार्थे ङीप् स्यादित्यर्थः । तेन जानपदी कुण्डी गोणी स्थली भाजी नागी काली नीली कुशी कामुकी कवरी इति यथायथं रूपं ज्ञेयम् । सूत्रोक्तभिन्नेऽर्थे तु टाबेव । जानपदी इति तु अञन्ताद् ङीपि आद्युदात्तार्थं ज्ञेयम् । **कुण्डा**—दहनीया । **गौणा**—संज्ञेयं कस्याश्चित् । **स्थला**—कृत्रिमा परिष्कृता भूमिः । **भाजा** = अपक्वयवागूभिन्ना । नागा = सर्पवाची नाग शब्दः दैर्घ्यगुणयुक्तः यदा स्त्रियां वर्तते तदा न ङीप्, अपितु टाबेव । जातिवाचकात्तु जातिलक्षणे ङीषि नागीत्येव। काला = क्रूरा । नीला = नील्या ओषध्या रागविशेषं प्राप्ता । कुशा = यज्ञसाधनविशेषस्य संज्ञा इयम् । कामुका = धनादिच्छावती । कबरा = चित्रवर्णा । **शोणात् इति**—"रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः" इत्यमरः । ङीष् इत्यनुवर्तते । अन्यतो ङीष् इति नित्यं ङीषि प्राप्तेऽनेन विकल्प्यते । प्राचामाचार्याणां मतेन शोणशब्दात् स्त्रियां ङीष् भवतीत्यर्थः । **शोणी**-शोण शब्दान्ङीष्, भत्वादलोपः । पक्षे टापि शोणा इति । रक्तवर्णेत्यर्थः । **वोतो गुणवचनात्**-वा उतः-वोतः इति । प्रातिपदिकात् इत्यनुवर्तते । उतो गुणवचनात् इति प्रातिपदिकात् इत्यस्य विशेषणम्, येन विधिरिति तदन्तग्रहणम् । गुणमुक्तवान् इति गुणवचनः, तस्मात् इति । उदन्तात् गुणवाचकात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् वा स्यादित्यर्थः ।

हिन्दी

२२४४. जानपद आदि ग्यारह प्रातिपदिकों से वृत्ति आदि अर्थ में ङीष् होता है, स्त्रीलिङ्ग में ।

२२४५. शोण शब्द से प्राचीन आचार्यों के मत से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है ।

२२४६. उदन्त गुणवाची से ङीष् होता है, विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मृद्वी, मृदुः । उतः किम् ? शुचिः । गुणेति किम्- आखुः । वा. खरुसंयोगोपधान्न।। खरुः । पाण्डुः ।

२२४७. बह्वादिभ्यश्च-४।१।४५।। वा ङीष् । बह्वी, बहुः ।

ग. सू. कृदिकारादक्तिनः ।। रात्री, रात्रिः ।

ग. सू. सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके ।। शकटी, शकटिः ।

२२४८. पुंयोगादाख्यायाम्-४।१।४८।। या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री गोपी । वा. पालकान्तान्न ।।

गोपालिका । अश्वपालिका ।

वा. सूर्याद्देवतायां चाप् ।। सूर्यस्य स्त्री देवता = सूर्या । देवतायां किम्-सूरी कुन्ती, मानुषीयम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

मृद्वी—मृदु शब्दात् ङीष्, ङषौ इतौ, इको यणचि इति उकारस्य यण् । ङीषोऽभावे मृदुरित्येव। **शुचिः**—गुणवाचित्वेऽपि उदन्तत्वाभावान्न ङीष् । **आखुः**— जातिविशिष्टद्रव्यवाचकोऽयं शब्दः न तु गुणवाचकः, अतो न ङीष् । **खरुसंयोगेति**—खरुशब्दात् संयोगोपधाच्च गुणवचनेति ङीष् न भवतीत्यर्थः । **खरुः**—न ङीष् । पतिम्वरा कन्येत्यर्थः । **पाण्डुः**—न ङीष् । **बह्वादिभ्यश्च** —वा इति ङीष् इति चानुवर्तते । बह्वादिगणपठितेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् स्यादित्यर्थः । **बह्वी**—बहुशब्दात् ङीषि यणि बह्वी इति । पक्षे बहुः इति । **कृदिकारादिति-** क्तिन्भिन्नात् कृत इकारान्ताद् प्रातिपदिकाद् वा ङीष् स्यादित्यर्थः । बह्वाद्यन्तर्गतगणसूत्रमिदम्। **रात्री**—राधातोरौणादिकः त्रिप् । रात्रि इत्यस्मात् ङीष्, भत्वाद् यस्येति चेतीकारलोपः । पक्षे रात्रिरित्येव । **सर्वतः**—क्तिनभिन्नाद् कृदिकारान्ताद् अकृदिकारान्तादपि ङीष् वा भवतीत्यर्थः। **शकटी-शकटिः**—शकटि इति अव्युत्पन्नप्रातिपदिकात् वा ङीष् । यस्येति चेति इलोपः । ङीषोऽभावे शकटिः । **पुंयोगात्-** हेतौ अत्रपञ्चमी । पुंसा योगः पुंयोगः, तस्मादिति । आख्यायाम् इति पञ्चम्याः सप्तम्यादेशः । आख्या इति वाचकः । कस्य आख्या इति जिज्ञासायां पुंसः इत्येव लभ्यते । पुंयोगात् इति शब्दः स्त्रियामित्यत्रान्वेति । अतः पुंयोगात् हेतोः यः स्त्रियां वर्तते, तस्मात् पुंसः वाचकात् शब्दात् ङीष् प्रत्ययो भवति इत्यर्थः भवति । **गोपी**— गोपस्य स्त्री इत्यर्थे ङीष्, भत्वादलोपः । **पालकान्तान्न**—पुंयोगलक्षणः ङीष् पालकान्तान्न भवतीत्यर्थः । **गोपालिका-** गोपालकस्य स्त्री इत्यर्थे पुंयोगादिति प्राप्तस्य ङीषो निषेधः पालकान्तान्नेत्यनेन । **चाप्**— पुंयोगे सूर्यशब्दात् देवताऽर्थे स्त्रियां चाप् भवतीत्यर्थः । पुंयोगादिति प्राप्तस्य ङीषोऽपवादः । **सूर्या**—सूर्यस्य स्त्री देवता इत्यर्थे चाप्, चुटू इति चस्येत्संज्ञा, पस्य हलन्त्यमिति इत्संज्ञा ।

हिन्दी

वा. खरु एवं संयोगोपध से ङीष् नहीं होता है ।

२२४७. बह्वादिगणपठित से ङीष् होता है विकल्प से ।

ग. सू. क्तिन्भिन्न कृत् इकारान्त से ङीष् होता है विकल्प से ।

ग. सू. क्तिन्प्रत्ययान्तभिन्न कृत् व अकृत् इकारान्त सभी से ङीष् होता है विकल्प से ।

२२४८. जो पुंवाचक शब्द पुंयोग से स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान हो उससे ङीष् होता है ।

वा. सूर्य शब्द से पुंयोग में देवता वाच्य होने पर चाप् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२४९. इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवन-मातुलाचार्याणामानुक्-४।१।४९॥

ङीष् च । इन्द्राणी ।

वा. हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥ महद्धिमं हिमानी ।

वा. यवाद्दोषे ॥ दुष्टो यवो यवानी ।

वा. यवनाल्लिप्याम् । यवनानां लिपिः यवनानी ।

वा. मातुलोपाध्याययोरानुग्वा ॥ मातुलानी, मातुली । उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

वा. आचार्यादणत्वं च ॥ आचार्यानी ।

मध्यमनोरमापूरणी

सूर्य आ इति, दीर्घे स्वादिकार्ये रूपम् । **सूरी**—सूर्यस्य स्त्री मानुषी न तु देवता, इत्यर्थे चाप् न । अपि तु पुंयोगलक्षणो ङीष् । सूर्य ई इति । सूर्यतिष्यागस्त्येति यलोपे यस्येति चेति अलोपः। सूरी कुन्ती इत्युच्यते । **इन्द्रवरुणेति**—अन्यतो ङीष् इत्यतः ङीष् इत्यनुवर्तते । इन्द्रादिभ्यः स्त्रियां ङीष् आनुक् च भवति । **अयं विशेषः**—इन्द्रवरुणभवशर्वमातुल-आचार्य इत्येषां स्त्रीत्वं पुंयोगे एव भवति, अतः एतेभ्यः ङीष् पुंयोगादाख्यायामिति भवति, अनेन चानुक्मात्रं विधीयते । अन्येभ्यस्तु ङीष् आनुक् इत्युभयं विधीयते । **इन्द्राणी**—इन्द्रस्य स्त्रीत्यर्थे पुंयोगादिति ङीष्, इन्द्रवरुणेति आनुक् । कित्त्वादिन्द्रस्यान्तावयवः । इन्द्र आनी इति, सवर्णदीर्घे णत्वे इन्द्राणीति । एवमेव वरुणानी भवानी शर्वाणी रुद्राणी मृडानीति ज्ञेयम् । **हिमेति**—महत्त्व-विशिष्टे हिमे अरण्ये च विद्यमाने ङीषानुकौ स्तः इत्यर्थः । **हिमानी**—महत् हिममित्यर्थे इन्द्र-वरुणेति ङीष्, आनुक् च । **यवानी**—दुष्टो यवः इत्यर्थे यवाद्दोषेति सहकारेण इन्द्रवरुणेति आनुग्ङीषौ । **यवनानी**—यवनानां लिपिः = अक्षरम्, इत्यर्थे ङीष्, आनुक् च । **मातुलोपाध्याययोरिति**—मातुलान्नित्ये आनुकि प्राप्ते उपाध्यायादप्राप्ते च अनेन वार्तिकेन आनुक् विकल्पेन विधीयते । **ङीष् तु पुंयोगे नित्यमेव भवति । मातुलानी**—मातुलस्य स्त्री इत्यर्थे पुंयोगादिति ङीष्, मातुलोपाध्याययोरिति विकल्पेनानुक्, उकौ इतौ । मातुल आन् ई इति, सवर्णदीर्घे मातुलानीति । आनुकोऽभावे ङीषि भत्वादलोपे मातुली इति । उपाध्यायस्य स्त्रीत्यर्थे ङीषि आनुकि **उपाध्यायानी,** आनुकोऽभावे उपाध्यायी । या तु स्वयमध्यापयति तत्र ङीष् विकल्पेन भवति । अतः उपाध्यायी, उपाध्याया इति भवति । **आचार्यादिति**— आचार्य-शब्दात् पुंयोगे ङीष् आनुकौ भवतः नस्य णत्वाभावश्चेति अर्थः । **आचार्यानी**— आचार्यस्य स्त्रीत्यर्थे ङीषि आनुकि च कृते सवर्णदीर्घे आचार्यानी इति जाते अट्कुप्वाङिति णत्वे प्राप्ते आचार्यादिति निषिध्यते । यातु स्वयं व्याख्यात्री सा आचार्या ।

हिन्दी

२२४९. इन्द्रवरुणादि से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् प्रत्यय एवं आनुक् का आगम होता है ।

वा. हिम एवं अरण्य से महत्त्व अर्थ में ङीष् एवं आनुक् होते हैं ।

वा. यव से दोष अर्थ में ङीष् एवं आनुक् होते हैं ।

वा. यवन से लिपि अर्थ में ङीष् व आनुक् होते हैं ।

वा. मातुल एवं उपाध्याय से आनुक्-मात्र विकल्प से होता है ।

वा. आचार्य से ङीष् एवं आनुक् होता है, णत्व नहीं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे ॥ अर्याणी, अर्या । क्षत्रियाणी, क्षत्रिया । पुंयोगे तु-अर्यी । क्षत्रियी ।

२२५०. **क्रीतात्करणपूर्वात्-४।१।५०॥ क्रीतान्तादन्तात् करणादेर्ङीष् । वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न-धनक्रीता ।**

२२५१. **बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात्-४।१।५२॥ क्तान्ताद् ङीष् । ऊरुभिन्नी ।**

२२५२. **अस्वाङ्गपूर्वपदाद् वा-४।१।५३॥ पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पोऽयम् । सुरापीती, सुरापीता ।**

२२५३. **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्-४।१।५४॥ असंयोगोपधमुपसर्जनं यत् स्वाङ्गं तदन्ताद् वा ङीष् ।**

मध्यमनोरमापूरणी

अर्यक्षत्रियेति—वा ङीष् आनुक् च स्वार्थे । अर्थात् पुंयोगे तु ङीष् मात्रं भवति नित्यम् इति लभ्यते । **अर्याणी-अर्या इति**—विकल्पेन ङीष् आनुकौ भवतः । स्वामिनी वैश्या वा इत्यर्थः। पुंयोगे तु ङीषि अलोपे अर्यी क्षत्रियीति । **क्रीतादिति**—करणं पूर्वं यस्मिन्निति तस्मात् करण-पूर्वात् । प्रातिपदिकादित्यनुवृत्तं सत् क्रीतादित्यनेन अत इत्यनेन च विशेष्यते, अतः तदन्तविधिर्भवति । **अत उक्तं**—क्रीतान्तादित्यादि । **वस्त्रक्रीती**—वस्त्रेण क्रीता इत्यर्थे गति-कारकोपपदानामिति वस्त्र टा क्रीत इत्यनयोः समासे वस्त्रक्रीत इति जाते ङीषि भत्वादलोपे रूपम् । **क्वचिन्नेति**—कर्तृकरणे कृता बहुलमिति सूत्रे बहुलग्रहणेन गति कारकोपपदानामित्यस्या अप्रवृत्तौ सुबन्तेन समासे धनक्रीता इत्यस्य अदन्तत्वाभावान्न ङीष्। यतो हि तत्र सुपः पूर्वमेव अन्तरङ्गत्वाट्टापि जाते ततः सुप् जायते । पुनः टाबन्त प्रकृतिकेन सुबन्तेन समासे अदन्तत्वाभावो जायते । **बहुव्रीहेश्चेति**—क्तादल्पाख्यायाम् इत्यतः क्तात् इति, अत इति चानुवर्तते । प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः । क्तान्तादिति अन्तोदात्तादिति अदन्तादिति च बहुव्रीहेः विशेषणम् । अतः क्तान्तादन्तादन्तोदात्तात् बहुव्रीहेः स्त्रियां ङीष् स्यादित्यर्थो भवति । **ऊरुभिन्नी**—उरू भिन्नौ यस्याः इति बहुव्रीहिसमासे सुपो लुकि ऊरुभिन्न शब्दात् ङीप्, भत्वादलोपः । अत्र 'निष्ठा' इति भिन्नस्य पूर्वप्रयोगो न भवति, "जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या" इति वार्तिकनियमात् । **अस्वाङ्गेति**—अन्तोदात्तात् क्तान्ताद् बहुव्रीहेरिति पदत्रयमनुवर्तते । अस्वाङ्गपूर्वपदात् अन्तोदात्तात् क्तान्ताद् बहुव्रीहेः ङीष् वा स्यात् इत्यर्थः । **सुरापीती**—सुरा पीता यया इत्यर्थे समासे बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् इति नित्यं ङीषं बाधित्वाऽनेन विकल्पेन ङीष् । पक्षे टाबेव । **स्वाङ्गाच्चेति**—वा ग्रहणं ङीष् इति चानुवर्तते । उपसर्जनात् असंयोगोपधादित्युभयं पदं स्वाङ्गात् इत्यस्य विशेषणतयाऽन्वेति। अत इत्यनुवृत्तं सत् अनुवृत्तस्य प्रातिपदिकात् इत्यस्य विशेषणं भवति, तदन्तविधिः । उप-सर्जनम् असंयोगोपधं स्वाङ्गवाचि यत् तदन्तात् अदन्तात् प्रातिपदिकात् ङीष् वा स्यादित्यर्थः।

हिन्दी

वा. अर्य एवं क्षत्रिय से स्वार्थ में ङीष् एवं आनुक् होते हैं (पुंयोग में नहीं) ।

२२५०. करणकारकपूर्वक क्रीतान्त अदन्त से स्त्रीत्वार्थ में ङीष् होता है ।

२२५१. अन्तोदात्तान्तात्क्तान्त बहुव्रीहि से स्त्रीत्वार्थ में ङीष् होता है ।

२२५२. अस्वाङ्गपूर्वपद होने पर अन्तोदात्त क्तान्त बहुव्रीहि से ङीष् होता है विकल्प से ।

२२५३. असंयोगोपध उपसर्जन जो स्वाङ्गवाची तदन्त अदन्त प्रातिपदिक से ङीष् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अतिकेशी, अतिकेशा । चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा । संयोगोपधात्तु-सुगुल्फा ।

अद्रवं मूर्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् ।

अतत्स्थं तत्र दृष्टं च तेन चेत्तथा युतम् ॥

सुस्वेदा, द्रवत्वात् । सुज्ञाना, अमूर्तत्वात् । सुमुखा शाला, अप्राणिस्थत्वात् । सुशोफा, विकारजत्वात् । सुकेशी सुकेशा वा रथ्या । अप्राणिस्थस्यापि प्राणिनि दृष्टत्वात् । सुस्तनी सुस्तना वा प्रतिमा । प्राणिवत् प्राणिसदृशे स्थितत्वात् ।

२२५४. नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च-४।१।५५॥ वा ङीष् ।

तुङ्गनासिकी, तुङ्गनासिका ।

मध्यमनोरमापूरणी

अतिकेशी—केशान् अतिक्रान्ता इत्यर्थे समासे अतिकेश इत्यस्मान्ङीष्, भत्वादलोपः । पक्षे टाबेव । **चन्द्रमुखी**—चन्द्र इव मुखं यस्याः इत्यर्थे समासे चन्द्रमुख शब्दात् ङीष्, अलोपः। **सुगुल्फेति**—सु = शोभनौ गुल्फौ यस्याः इति बहुव्रीहौ टाप् । गुल्फशब्दस्य संयोगोपधत्वात् न ङीष् । ननु स्वाङ्गाच्चेति सूत्रे स्वस्य अङ्गम् स्वाङ्गमित्युच्यते तदा सुमुखा शाला इत्यत्रातिव्याप्तिः भवति, मुखस्य शालाङ्गत्वात् । तथा च सुकेशी रथ्या इत्यत्र केशानां रथ्याङ्गत्वाभावात् सूत्रस्याप्राप्तिः स्यादिति चेदुच्यते-स्वाङ्गमत्र त्रिधा पारिभाषिकमुच्यते । तच्च अद्रवमित्यादिनोच्यते । **अद्रवम्**—न विद्यते द्रवो यस्य तत्, मूर्तिः = अवयवसंयोगः अस्ति अस्येति मूर्तिमत्। तथा च **प्राणिस्थम्**—प्राणिनि जन्तौ विद्यमानम्, **अविकारजम्**—रोगादिविकारेण अजन्यं यत् तत् । इत्थं द्रवभिन्नं मूर्तिमत् प्राणिस्थमविकारजं प्रथमं स्वाङ्गलक्षणम् उच्यते । अतत्स्थं = अप्राणिषु स्थितं, किन्तु, तत्र = प्राणिषु दृष्टम् यत् तद् द्वितीयं स्वाङ्गलक्षणम् । तेन = प्राणिस्थेन (स्तनाद्यवयवविशेषेण) तत् = अप्राणि द्रव्यं प्रतिमादि, चेत् = यदि, तथा = प्राणिवत्, युतं = सम्बद्धं स्यात् तदा तदपि स्तनाद्याकृतिकं वस्तु स्वाङ्गं भवति इति तृतीयं लक्षणम्। **सुस्वेदा**—स्वेदः द्रवः, अतः स्वाङ्गत्वाभावान्नात्र ङीष् । **सुज्ञाना**—ज्ञानं हि नहि मूर्तिमत्, अतो नात्र ङीष्, स्वाङ्गत्वाभावात् । **सुमुखा शाला**-अत्र मुखस्य प्राणिस्थत्वाभावान्न स्वाङ्गत्वम्, अतो नात्र ङीष् । **सुशोफा**—शोफः शोथः विकारजः, अतो न स्वाङ्गता, तदभावे ङीषपि न। **द्वितीयलक्षणस्योदाहरणम्-सुकेशी रथ्या-** सु = शोभनाः केशाः यस्याम् इत्यर्थे समासे स्वाङ्गाच्चेति ङीष् । **सुस्तनी सुस्तनेति** तृतीयलक्षणस्योदाहरणम् । सु शोभनौ स्तनौ यस्याः इति बहुव्रीहिः । ङीष् अत्र भवति । **नासिकोदरेति**—स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यनुवर्तते । अस्वाङ्गेत्यत 'वा' इति, अन्यतो ङीष् इत्यतो ङीष् इति चानुवर्तते । नासिका उदर ओष्ठ जङ्घा दन्त कर्ण शृङ्ग इत्येतदन्तेभ्यः उपसर्जनीभूतस्वाङ्गवाचिभ्यः वा ङीष् स्यादित्यर्थः । नासिकोदरयोः न क्रोडादिबह्वचः इति निषेधः प्राप्तः पुरस्तादपवादन्यायात् । सः अनेन विकल्पेन ङीष्कार्येण बाध्यते । ओष्ठादीनां पञ्चानाम् असंयोगोपधादिति पर्युदासादप्राप्तो ङीष् विकल्पेन विधीयते। **तुङ्गनासिकी**—तुङ्ग = उन्नता नासिका यस्येति बहुव्रीहौ नासिकोदरेति ङीष्, भत्वादालोपे रूपम्।

हिन्दी

कारिका (१) जो अद्रव है व मूर्तिमान् है, प्राणिस्थ है किन्तु रोगादि के कारण (विकारज) नहीं है वह स्वाङ्ग है । (2) जो अभी प्राणी में स्थित नहीं है परन्तु पहले प्राणी में स्थित था वह भी स्वाङ्ग है । (3) और वह भी स्वाङ्ग है जो प्राणी के स्तनादि अङ्ग के समान होकर अप्राणी को प्राणी के समान सुशोभित करता है ।

२२५४. नासिका उदर इत्याद्यन्त प्रातिपदिकों से ङीष् होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. पुच्छाच्च । सुपुच्छी, सुपुच्छा ।

वा. कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥ कबरपुच्छी । वा. उपमानात् पक्षाच्च पुच्छाच्च । उलूकपक्षी शाला । उलूकपुच्छी सेना ।

२२५५. न **क्रोडादिबह्वचः-४।१।५६॥ क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् । कल्याणक्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ।**

२२५६. **सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च-४।१।५७॥ न ङीष् । सकेशा । अकेशा । विद्यमाननासिका ।**

२२५७. **नखमुखात् संज्ञायाम्-४।१।५८॥ ङीष् न । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायां किम्-ताम्रमुखी कन्या ।**

मध्यमनोरमापूरणी

पक्षे टाप् । एवं कुम्भोदरी कृशोदरी विम्बोष्ठीत्यादिरूपम् । **पुच्छाच्चेति**—वा ङीष् । संयोगोपधत्वादप्राप्ते वचनम् । **सुपुच्छी**—शोभनं पुच्छं यस्या इति बहुव्रीहौ कृते ङीष् । **कबरेति**—कबरादिभ्यः परः यः पुच्छशब्दः तदन्तान्ङीष् भवति नित्यमिति । **कबरपुच्छी** कबरं पुच्छं यस्या इत्यर्थः । मणिपुच्छी विषपुच्छी इत्याद्यपि रूपं बोध्यम् । **उपमानात्**—उपमानात् परौ यौ पक्षपुच्छशब्दौ तदन्ताभ्यां ङीष् इत्यर्थः । **उलूकपक्षी**—उलूकपक्षौ इव पक्षौ (समीपे) यस्याः इति विग्रहे सप्तम्युपमानपूर्वपदस्येत्यादिना बहुव्रीहिः, पूर्वपक्षशब्दस्य च लोपः, पुनः ङीष्, अलोपः । **उलूकपुच्छी**—उलूकपुच्छमिव पुच्छं पश्चिमान्तो यस्याः इत्यर्थे सर्वं पूर्ववत् । **कल्याणक्रोडा**—कल्याणी क्रोडा यस्या इति बहुव्रीहौ स्त्रियाः पुंवत् इति कल्याणीत्यस्य पुंवत् । उत्तरपदस्य उपसर्जनह्रस्वत्वे कृते स्वाङ्गाच्चेति ङीष् प्राप्तः, न क्रोडादिबह्वचः इति निषिध्यते । क्रोडशब्दः लिङ्गत्रये वर्तते । क्रोडम् अश्वानामुरः । अतः कल्याणं क्रोडं यस्याः, कल्याणः क्रोडः यस्या इत्यपि विग्रहवाक्यं भवितुमर्हति । हरदत्तस्तु क्रोडाशब्दं नित्यस्त्रीलिङ्गमाह । शोभनं जघनं यस्याः सा **सुजघना** । अत्रापि ङीषो निषेधे टाप्। **सहनञ् इति**—स्वाङ्गात् इत्यनुवर्तते । सहनञ्विद्यमान इत्येतत्पूर्वकात् स्वाङ्गवाचिनः न ङीष् इत्यर्थः । **सकेशा**—सह केशा यस्याः इति विग्रहे बहुव्रीहौ विद्यमानवचनस्य सहशब्दस्य वोपसर्जनस्येति सादेशः । स्वाङ्गाच्चेति ङीषि प्राप्ते सहनञ्विद्यमानेति निषेधे टापि रूपम् । **अकेशा**—अविद्यमानाः केशाः यस्या इति समासे ङीषो निषेधः । एवमेव विद्यमाना नासिका यस्या इति बहुव्रीहौ ङीष्निषेधः । **नखमुखेतिः**—नखान्तात् मुखान्तात् च स्वाङ्गवाचकात् स्त्रियां ङीष् नेत्यर्थः । **शूर्पणखा**—शूर्पाणि इव नखानि यस्याः इति अस्वपदविग्रहे नित्यसमासे शूर्पनख इति जाते स्वाङ्गाच्चेति प्राप्तस्य ङीषो नखमुखादिति निषेधे अजाद्यतष्टाप् । पूर्वपदात्संज्ञायामिति नस्य णः । राक्षसीनाम एतत् । गौरं मुखं यस्याः इति बहुव्रीहौ प्राप्तो ङीष् निषिद्धः । टापि **गौरमुखेति** । **ताम्रमुखी**—ताम्रं मुखं यस्याः इत्यर्थः । संज्ञात्वाभावान्न ङीषो निषेधः । स्वाङ्गाच्चेति ङीष् ।

हिन्दी

वा. पुच्छ शब्दान्त से ङीष् होता है विकल्प से ।

वा. कबरादि से परे जो पुच्छ शब्द, तदन्त से ङीष् होता है, नित्य ।

वा. उपमानवाची से परे पक्ष एवं पुच्छ से नित्यङीष् होता है ।

२२५५. क्रोडादिगण पठित एवं बह्वच् स्वाङ्गवाची से ङीष् नहीं होता है ।

२२५६. सह नञ् व विद्यमानपूर्वक स्वाङ्गवाची से ङीष् नहीं होता है ।

२२५७. नखान्तमुखान्त से ङीष् नहीं होता है संज्ञा में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२५८. **वाहः-४।१।६१॥ वाहन्तान्ङीष् । दित्यौही ।**

२२५९. **सख्यशिश्वीति भाषायाम्-४।१।६२॥ सखी । अशिश्वी**

२२६०. **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्-४।१।६३॥ जातिवाचि यन्न च स्त्रियां नियतमयोपधं ततो ङीष् ।**

आकृतिग्रहणा जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक् ।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह ॥

घटी । वृषली । औपगवी । कठी । जातेः किम्-मुण्डा । अस्त्रीविषयात् किम्-बलाका । अयोपधात् किम्-क्षत्रिया ।

मध्यमनोरमापूरणी

दित्यौही—दित्यं वहतीत्यर्थे वहेः ण्विः, उपपदसमासः, उपधावृद्धिः । दित्यवाह्शब्दात् वाहः इति ङीष् । वाह ऊठ् इति वस्य ऊठ्, सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे दित्य ऊही इति, एत्येधत्यूठ्सु इति वृद्धिः । **सख्येति**—सखिशब्दात् अशिशुशब्दाच्च ङीष् स्त्रियां निपात्यते भाषायाम् । **सखी**-सखिशब्दात् सख्यशिश्विति ङीषि भत्वादिकारलोपे सुप्रत्यये सोर्हल्ङ्यादिलोपे सखीति । **अशिश्वी**—अविद्यमानः शिशुर्यस्याः इत्यर्थे बहुव्रीहौ अशिशु इति जाते ङीषि अनुबन्धलोपे इको यणचीति उकारस्य यणि स्वादिकार्ये रूपम् । **जातेरस्त्रीति**—अर्थे व्याकरणप्रक्रियानिर्वाहासम्भवात् शब्दे कार्यं भवति । स्त्री विषयः=नियमेन वाच्यः यस्य इति बहुव्रीहिः । स्त्रीविषयशब्दः=नियतस्त्रीलिङ्गपरः । न स्त्रीविषयः अस्त्रीविषयः, तस्मात् इति । अर्थात् अनियतस्त्रीलिङ्गात् इति । यकारः उपधायां यस्य तद् योपधं, तस्मात् । प्रातिपदिक विशेषणमेतत् । अतः जातिवाचि अनियतस्त्रीलिङ्गम् अयोपधं यत् प्रातिपदिकं तस्मात् स्त्रियां ङीष् स्यादित्यर्थो भवति। जननेन यत् प्राप्यते सा जातिः ब्राह्मणत्वादि, इत्येव यदि उच्येत तदा युवत्यादौ जातित्वाभावात् युवतितरा इत्यत्र जातेश्चेति ह्रस्वत्वं न स्यादतः भाष्योक्तत्रिविधजातित्वमत्र उच्यते-आकृतिग्रहणेत्यादिना । आकृतिः=अवयवसन्निवेशः, गृह्यते अनेन इति करणे ल्युटि ग्रहणमिति । व्यञ्जकमित्यर्थः । आकृतिः ग्रहणं यस्याः सा आकृतिग्रहणा जातिः इति प्रथमलक्षणम् । यथा घटी तटी इत्यादि । आकृतिविशेषेण व्यङ्ग्ये एते । वृषलादीनां जातित्वसिद्धये द्वितीयं लक्षणमुच्यते जातेः ; **लिङ्गानां चेत्यादि**—लिङ्गानामिति कर्मणि षष्ठी । सर्वाणि लिङ्गानि भजते इति सर्वभाक्, सर्वाणि लिङ्गानि न भजते या सा जातिः, अथ सकृत् आख्यातनिर्ग्राह्या स्यात् । अर्थात् एकस्यां व्यक्तौ सकृत् आख्यातेन = कथनेन, निर्ग्राह्या सुग्रहा । असर्वलिङ्गत्वे सति एकस्यां व्यक्तौ कथनात् व्यक्त्यन्तरे (तत्पुत्रादौ) कथनं विनाऽपि सुग्रहा जातिर्भवतीत्याशयः। यथा वृषली, शूद्री इत्यादि । **तृतीयं लक्षणमुच्यते**—गोत्रं च चरणैः सह इति । **गोत्रम्**—अपत्यप्रत्ययान्तम्, न तु पौत्रप्रभृति इति ज्ञेयम् । चरणशब्दः शाखाध्येतरि अस्ति । एवं शाखाध्येतृवाचिभिः सह गोत्रप्रत्ययान्तं जातिः इत्यर्थो लभ्यते । **औपगवी कठी** इति अनयोरुदाहरणे । उपगोरपत्यं स्त्री इत्यर्थे अणि गुणे अवादेशे आदिवृद्धौ औपगव इति जाते 'टिड्ढाणञ्' इति ङीपं बाधित्वा जातेरस्त्रीविषयादिति ङीष्, भत्वादलोपे स्वादिकार्यम् । चरणस्य **कठीति**

हिन्दी

२२५८. वाहन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है ।

२२५९. सखि एवं अशिशु से भाषा में स्त्रीत्वार्थ विवक्षा में ङीष् निपातन होता है ।

२२६०. जातिवाचक जो स्त्रीलिङ्ग में नियत नहीं हो तथा अयोपध हो उससे स्त्रीलिङ्ग, में ङीष् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ॥
हयी । गवयी । मुकयी । मनुषी । मत्सी ।
२२६१. पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च-४।१।६४॥पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः स्त्रीविषयादपि ङीष् । ओदनपाकी । शङ्कुर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोबाली । ओषधिविशेषे रूढाः ।
२२६२. इतो मनुष्यजातेः-४।१।६५॥ ङीष् । दाक्षी ।
२२६३. ऊङुतः ४।१।६६॥ उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिन ऊङ् । कुरूः।
२२६४. पङ्गोश्च-४।१।६८॥ पङ्गूः ।

मध्यमनोरमापूरणी

उदाहरणम् । कठेन प्रोक्तमधीयाना इत्यर्थे तदधीते इत्यणि प्रोक्ताल्लुक् इति अणो लुकि ङीष्। मुण्डा इति न जातिः, अपि तु मुण्डिता इत्यर्थः, तस्मान्नात्र ङीष् । **बलाका**—नियतस्त्रीलिङ्गत्वात् जातिवाचित्वेऽपि न ङीष् । **क्षत्रिया**—जातिवाचकत्वेऽपि योपधात् न ङीष्। **योपधप्रतिषेधे**—अयोपधादिति निषेधे प्राप्तेऽनेन योपधात् हयादेः ङीष् भवतीति ज्ञेयम् । हयी-ङीष्, अश्वेत्यर्थः । **मुकयी**—चतुष्पाज्जातिविशेषः, ङीष् भवति वार्तिकेन । **मनुषी**—मनुष्य शब्दात् स्त्रियां योपधप्रतिषेधे इति ङीष्, हलस्तद्धितस्येति यलोपे यस्येति चेति अलोपे स्वादि-कार्यम् । **मत्सी**—मत्स्यशब्दान्ङीषि मत्स्यस्य ङ्यामिति यलोपे यस्येति चेति अलोपः । **पाककर्णेति**—एभ्यो ङीष् स्यात्स्त्रीविषयादपि । एतेषां जातिवाचित्वेऽपि नियतस्त्रीलिङ्गत्वात् जातेरस्त्रीविषयेति अप्राप्तो ङीष् विधीयते । ओदनपाकी इत्यादि शब्दाः अवयवव्युत्पत्तिरहिताः औषधिविशेषे रूढाः सन्ति । **इतो मनुष्येति**—जातेरस्त्रीत्यादिना अदन्ताद् ङीष् विधीयते, अतः इदन्तादनेन ङीष् विधीयते । इत इति प्रातिपदिकात् इत्यस्य विशेषणमतः तदन्तविधिः । मनुष्यजातिवाचकात् इदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् स्यादित्यर्थः । **दाक्षी**—दक्षस्यापत्यं स्त्री इत्यर्थे दक्षशब्दात् अत इञ् इति इञि यस्येति चेत्यलोपे आदिवृद्धौ दाक्षि इत्यस्मात् इतो मनुष्येति ङीषि भत्वादिकारलोपे स्वादिकार्यम् । **ऊङुतः**—मनुष्यजातेरिति अयोपधादिति चानुवर्तते । अतः उकारान्तादित्याद्युक्तम् । **कुरूः**—कुरोः राजा कुरुः, तस्यापत्यं स्त्रीत्यर्थे कुरुशब्दात् ऊङि अनुबन्धलोपे सवर्णदीर्घः । **पङ्गोश्च**—पङ्गुशब्दात् स्त्रियाम् ऊङ् स्यादित्यर्थः। पङ्गुशब्दस्य जातित्वाभावादूङुत इत्यप्राप्तौ वचनम् । **पङ्गूः**—पङ्गुशब्दादूङि सवर्णदीर्घे सुप्रत्यये सोः रुत्वविसर्गौ ।

हिन्दी

वा. योपध के प्रतिषेध में हय गवय मुकय मनुष्य एवं मत्स्य से ङीष् होता है जाति अर्थ में ।

२२६१. पाकादि उत्तरपद वाले जातिवाची नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द से भी ङीष् होता है ।

२२६२. इकारान्त मनुष्य जाति वाची से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है ।

२२६३. उकारान्त अयोपध मनुष्यजातिवाची से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ।

२२६४. पङ्गु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च ॥ चादूङ्। पुंयोगलक्षणङीषोऽपवादः । श्वश्रूः ॥
२२६५. ऊरूत्तरपदादौपम्ये-४।१।६९॥ उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपदं यस्मात् ऊङ् । करभोरूः ।
२२६६. संहितशफलक्षणवामादेश्च-४।१।७०॥ संहितोरूः ।
वा. सहित-सहाभ्याञ्च ॥ सहितोरूः ।
२२६७. शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्-४।१।७३॥ शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन् स्यात् । शार्ङ्गरवी । वैदी ।

मध्यमनोरमापूरणी

श्वशुरस्येति—चाद् ऊङ् इत्यनुकृष्यते । श्वशुरशब्दात् पुंयोगे स्त्रियाम् ऊङ् स्याद् रकारस्थाकारस्य शकारादुकारस्य लोपश्च भवतीत्यर्थः । पुंयोगलक्षणस्य ङीषोऽपवादः । **श्वश्रूः इति**—श्वशुरस्य स्त्री इत्यर्थे ङीषं प्रबाध्य ऊङि अकारोकारलोपे स्वादिकार्ये च रूपम् । **ऊरूत्तरेति**—प्रातिपदिकात् इत्यनुवर्तते । ऊरुः उत्तरपदं यस्येति बहुव्रीहिः । ऊरुत्तरपदात् इत्यनेन पूर्वपदम् आक्षिप्यते । औपम्ये इति तत्रान्वितं भवति । उपमीयते अनयेत्युपमा, उपमैव औपम्यम्, स्वार्थे ष्यञ् भवति । उपमानवाचि पूर्वपदं यत् ऊरुत्तरपदं प्रातिपदिकं तस्मात् स्त्रियामूङ् स्यादित्यर्थः । **करभोरूः**—करभौ इव ऊरू यस्याः इत्यर्थे बहुव्रीहौ करभोरु इति जाते ऊङि सवर्णदीर्घः, सो रुत्वविसर्गौ । **संहितशफेति**—ऊरूत्तरपदादित्यनुवर्तते । संहित शफ लक्षण वाम इत्येतत्पूर्वकात् ऊरूत्तरपदात् स्त्रियाम् ऊङ् स्यादित्यर्थः । पूर्वेण सिद्धे अनौपम्यार्थं वचनम्। **संहितोरूः**—संहितौ ऊरू यस्याः इत्यर्थे बहुव्रीहौ गुणे च कृते संहितोरु इत्यस्मादूङ्, सवर्णदीर्घः । शफौ इव ऊरू यस्याः इति शफोरूः । लक्षणमनयोरस्ति इत्यर्थे अर्शआदिभ्योऽच् इत्यचि लक्षणशब्दस्य लक्षणयुक्तौ इत्यर्थः । लक्षणौ उरू यस्याः इति **लक्षणोरूः** । वामौ = सुन्दरौ, ऊरू यस्या इति **वामोरूः** । **सहितेति**—आभ्यां परस्मात् ऊरुशब्दात् अपि ऊङ् इत्यर्थः । सहितौ ऊरू यस्या इति सहितोरूः । सहौ उरू यस्या इति सहोरूः । **शार्ङ्गरवादि**—शार्ङ्गरवादि इति लुप्तपञ्चम्यन्तं पदम् । अञ इति जातेर्विशेषणं, तेन तदन्तविधिः । शार्ङ्गरवादिभ्यः अञन्तजातिवाचकाच्च स्त्रियां ङीन् स्यादित्यर्थः । **शार्ङ्गरवी**- शृङ्गरोरपत्यं स्त्री इत्यर्थे अणि आदिवृद्धौ रपरत्वे ओर्गुण इति गुणेऽवादेशे शार्ङ्गरव इति जाते जातिलक्षणङीषं बाधित्वा अनेन ङीन्, भत्वादलोपः । **वैदी**—विदस्यापत्यं स्त्री इत्यर्थे विदादिभ्योऽञ् इति अञि आदिवृद्धौ अलोपे शार्ङ्गरवादीति ङीन्, अलोपः ।

हिन्दी

वा. पुंयोग में श्वशुर शब्द से ऊङ् प्रत्यय एवं श्वशुर के उकार तथा अन्त अकार का लोप होता है ।

२२६५. उपमान वाची पूर्वपद हो तथा ऊरु उत्तर पंद हो जिस प्रातिपदिक में उससे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है ।

२२६६. संहित शफ लक्षण एवं वाम पूर्वपद वाले ऊरु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है।
वा. सहित एवं सह से परे भी ऊरु शब्द से ऊङ् होता है स्त्रीलिङ्ग में ।

२२६७. शार्ङ्गरवादिगणपठित एवं अञन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में ङीन् होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

ग. सू. नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ नारी ।
२२६८. यङश्चाप्-४।१।७४॥ यङन्ताच्चाप् । आम्बष्ठ्या । कारीषगन्ध्या ।
वा. षाद्यञश्चाब्-वाच्यः ॥ पौतिमाष्या ।
२२६९. आवट्याच्च-४।१।७५॥ अस्माच्चाप् । यञश्चेति ङीपोऽपवादः । अवटशब्दो गर्गादिः । आवट्या ।
२२७०. यूनस्तिः-४।१।७७॥ युवन्शब्दात् 'ति' प्रत्ययः । युवतिः । अनुपसर्जनादित्येव । बहवो युवानो यस्यां बहुयुवा । युवतीति तु यौतेः शत्रन्तान्ङीपि बोध्यम् ।

॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

नृनरयोरिति—आभ्याम् स्त्रियां ङीन् स्यात् वृद्धिश्चेत्यर्थः । नृ शब्दात् ऋन्नेभ्यो ङीप् इति प्राप्ते अनेन ङीन् विधीयते । **नारी**—नृशब्दात् ऋन्नेभ्य इति प्राप्तं ङीपं प्रबाध्य नृनरयोरिति ङीन्, ऋकारस्य वृद्धिश्च, उरण् रपर इति रपरत्वम् नारी इति । नर शब्दात् ङीनि उपधावृद्धौ स्वादिकार्ये च **नारीति** । ननु नृशब्दान्ङीनि वृद्धौ नारी इति सिद्धे नरग्रहणमत्र व्यर्थमिति चेन्न । नरत्वजातिवाचकात् नरशब्दात् जातिलक्षणे ङीषि नारीत्यस्य व्यावृत्त्यर्थं गणसूत्रम् । **यङश्चाप्**-यङ इति प्रत्ययग्रहणम्, तस्मात्तदन्तविधौ यङन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां चाप्-प्रत्ययो भवतीत्यर्थः सिद्ध्यति । यङ् इत्यनेन ष्यङ्ष्यङोरपि ग्रहणं भवति । चापि चकारपकारौ इतौ भवतः । **आम्बष्ठ्या**—अम्बष्ठस्यापत्यं स्त्री इत्यर्थे वृद्धेत्कोसल इति ञ्यङ् । ञङौ इतौ । आदिवृद्धिः, यस्येति चेति अलोपे आम्बष्ठ्य इति यङन्तात् यङश्चाप् इति चापि सवर्णदीर्घे स्वादिकार्यम् । **कारीषगन्ध्या**—करीषं पशूनां पुरीषम् । करीषस्य इव गन्धो यस्य इति समासे उपमानाच्च इति गन्धशब्दान्तस्य इत्त्वे करीषगन्धिः । करीषगन्धेरपत्यं स्त्री इत्यर्थे अण्, अणिञोरनार्षयोः इति अणः ष्यङ् । आदिवृद्धिः । कारीषगन्ध्य इति यङन्तप्रातिपदिकात् चाप्। सवर्णदीर्घः । सुप्रत्यये तस्य हल्ङ्याब्भ्य इति लोपः । **षाद्यञ् इति**—षाद् परो यो यञ्, तदन्तादपि चाप् वक्तव्यमित्यर्थः । **पौतिमाष्या**—पूतिमाषस्य अपत्यं स्त्री इत्यर्थे गर्गादिभ्यो यञ् इति यञ्, आदिवृद्धौ यस्येति चेत्यलोपे पौतिमाष्य इति षपरयङन्तात् चाप्, सवर्णदीर्घः। **आवट्याच्च**—चकारात् चाप् इत्यनुकृष्यते । **आवट्या**-अवटस्यापत्यं स्त्रीत्यर्थे गर्गादिगणे अवटपाठात् यञ्, आदिवृद्धौ अलोपे आवट्य इति जाते चाप् । **यूनस्तिः**—तद्धिताः इत्यस्याधिकारः एकवचनान्ततया विपरिणम्य अन्वेति । समर्थानां प्रथमाद् वा इति यावत् स्त्रियामित्यस्यापि अधिकार उक्त एव । अतः युवन्-शब्दात् स्त्रियां ति-प्रत्ययो भवति स च तद्धितः इत्यर्थः । ऋन्नेभ्य इति ङीपोऽपवादोऽयम् । **युवतिः**—युवन् शब्दात् यूनस्तिः इति

हिन्दी

ग. सू. नृ एवं नर शब्द से जाति अर्थ में ङीन् होता है, एवं प्रकृति को वृद्धि होती है ।
२२६८. यङन्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिङ्ग में चाप् प्रत्यय होता है ।
वा. षकार से परे जो यञ् तदन्त से स्त्रीलिङ्ग में चाप् होता है ।
२२६९. यञन्त आवट्य शब्द से स्त्रीलिङ्ग में चाप् होता है ।
२२७०. युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ति-प्रत्यय होता है और वह तद्धित होता है ।

॥ इति स्त्रीप्रत्ययप्रकरण ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यमनोरमापूरणी

'ति' प्रत्ययः, स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इति युवन् इत्यस्य पदत्वात् नलोपः प्रातिपदिकान्तस्येति नलोपे स्वादिकार्यम् । अत्र लिङ्गविशिष्टपरिभाषया एव सुबुत्पत्तिसम्भवे तद्धितान्तात् सुबुत्पत्त्यर्थं तद्धिताधिकारो नावश्यकः इति चेद् उत्तरार्थं गृहाण । **अनुपसर्जनादित्येवेति**— अत्रानुवर्तते इति शेषः । तेन बहवो युवानो यस्यामिति बहुव्रीहौ युवन् इत्यस्योपसर्जनत्वान्न 'ति'-प्रत्ययः । ऋन्नेभ्य इति ङीपःअनो बहुब्रीहेरिति निषेधे जाते डाबुभाभ्यामिति डापि टिलोपे बहुयुवा इति । **युवतीति**—यु मिश्रणामिश्रणयोरित्यस्माल्लटः स्थाने शतृप्रत्यये शपो लुकि उवङ्ङादेशे उगितश्चेति ङीपि युवती इति । पतिं सुखेन मिश्रयन्ती स्त्री युवती इत्युच्यते।

मधुबनीमण्डलान्तर्गतरुद्रपुरग्रामवास्तव्यानां न्यायव्याकरणवेदान्ताद्यनेकशास्त्रपारङ्गतानां शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नानां पं. उमेश शर्मणाम् (चौधरी) आत्मजेन अर्कनाथेन कृतायां मध्यमनोरमापूरणीव्याख्यायां स्त्रीत्यया: समाप्ताः ।

॥ शिवः कल्याणं कुर्यात् ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ वैदिक-प्रक्रिया

२२७१. षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा-१।४।९।। **पतिशब्दो घिसंज्ञः । क्षेत्रस्य पतिना वयम् । इह वेति योगं विभज्य छन्दसीत्यनुवर्तते । तेन सर्वे विधयश्छन्दसि वैकल्पिकाः । बहुलं छन्दसीत्यादिरस्यैव प्रपञ्चः ।**

२२७२. अयस्मयादीनि च्छन्दसि-१।४।२०।। **साधूनि । भपदसंज्ञाधिकारात् यथायोगं संज्ञाद्वयं बोध्यम् । तथा च वार्तिकम्-**

वा. उभयसंज्ञान्यपीति वक्तव्यमिति । **ससुष्टुभा स ऋक्वता गणेन । पदत्वात् कुत्वम् । भत्वाज्जश्त्वाभावः । नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । अत्र पदत्वाज्जश्त्वं भत्वात् कुत्वाभावः । ते प्राग्धातोः ।**

२२७३. छन्दसि परेऽपि-१।।४।८१।।

२२७४. व्यवहिताश्च-४।१।८२।। **हरिभ्यां याह्योक आ । आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि।**

मध्यमनोरमापूरणी

षष्ठीयुक्तः—पतिः समास एवेत्यतः पतिः इत्यनुवर्तते । शेषो घ्यसखि इत्यतः 'घि' इति चापि। छन्दसि=वेदे षष्ठीयुक्तः पतिशब्दः घिसंज्ञां लभते इत्यर्थः । लोके तु समासे एव घिसंज्ञो भवति पतिशब्दः, अतः, इदमारम्भणम् । **क्षेत्रस्य पतिना वयम्**—षष्ठी युक्तः इति पतिशब्दस्य घिसंज्ञायां टास्थाने आङो नाऽस्त्रियामिति नादेशे पतिना इति भवति । **इह वेति**—वा छन्दसि इति पृथग्योगं कृत्वा सर्वे विधयः छन्दसि विकल्पेन भवन्तीत्याशयः । **अयस्मयादीनि**—भसंज्ञापदसंज्ञयोः निपातनार्थमिदम् । लोके तु आकडारादेका संज्ञा इति नियमादेकस्य एकैव संज्ञा भवति किन्तु वेदे उभयसंज्ञासिद्धये इदं सूत्रम् । **अनन्तरस्येति न्यायं बाधित्वा उभय-संज्ञाया विधाने प्रमाणमाह**—उभयसंज्ञान्यपीति । **ऋक्वता इति**—ऋच्+वता इति दशायाम् अयस्मयादीनि च्छन्दसीति ऋचः पदत्वात् चोः कुरिति चस्य कुत्वेन कः, भसंज्ञाकरणात् च पदत्वबाधे जाते झलां जशोऽन्ते इति जश्त्वं न भवति । **वाजिनेषु**—वाच्+इनेषु इति स्थितौ पदत्वात् झलां जशोऽन्ते इति चस्य जः, भसंज्ञात्वात् च पदत्वस्य बाधे जाते चोः कुरिति कुत्वं नेत्याशयः । **ते प्राग्धातोः**—गत्युपसर्गसंज्ञकाः लोके धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्या इति नियमः । **छन्दसि परेऽपि, व्यवहिताश्चेति**—ते गत्युपसर्गसंज्ञकाः छन्दसि परेऽपि प्रयोक्तव्याः, अथ ते व्यवहिताश्चापि प्रयुक्ताः भवन्तीति सूत्रद्वयार्थः । **हरिभ्यां याह्योक आ**—अत्र आयाहि इति पूर्वं प्रयोक्तव्ये छन्दसि परेऽपि इति परप्रयोगः आ इत्यस्यास्ति । **आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि**-आयाहि इति प्रयोक्तव्ये आ इत्यस्य मन्द्रैरित्यादिव्यवधानेऽपि प्रयोगः कृतः ।

हिन्दी

२२७१. षष्ठ्यन्त से युक्त पति शब्द को घि- संज्ञा होती है, छन्द में, विकल्प से ।

२२७२. अयस्मयादिगण पठित की सिद्धि के लिए भ एवं पद इन दोनों संज्ञाओं का निपातन किया जाता है ।

वा. छन्द में भ एवं पद दोनों संज्ञाएँ एक साथ होती हैं ।

२२७३. गति व उपसर्ग संज्ञक का धातु से परे भी छन्द में प्रयोग होता है ।

२२७४. गत्युपसर्गसंज्ञक का धातु के व्यवधान में भी छन्द में प्रयोग होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२७५. तृतीया च होश्छन्दसि-२।३।३।। जुहोतेः कर्मणि तृतीया स्यात् द्वितीया च। यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति।

२२७६. मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्-३।२।७१।।

वा. श्वेतवहादीनां डस् पदस्येति वक्तव्यम्।। यत्र पदत्वं भावि तत्र ण्विनोऽपवादो डस् वक्तव्यः इत्यर्थः। श्वेतवाः। श्वेतवाहौ। श्वेतवाहः। उक्थानि उक्थैर्वा शंसति उक्थशाः = यजमानः। उक्थशासौ। पुरो दाश्यते = दीयते, पुरोडाः।

२२७७. अवे यजः-३।२।७२।। अवयाः। अवयाजौ। अवयाजः।

२२७८. अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च-८।२।६७।। एते सम्बुद्धौ कृतदीर्घा निपात्यन्ते चादुक्थशाः।

मध्यमनोरमापूरणी

तृतीया चेति—कर्मणि द्वितीया इत्यतः 'कर्मणि' इत्यनुवर्तते। कर्मणि द्वितीयास्थाने तृतीया द्वितीया च स्यादित्यर्थः। **यवाग्वा अग्निहोत्रं जुहोति**—अग्निहोत्रशब्दोऽत्र हविषु वर्तते। यवागू-शब्दात् तृतीया अग्निहोत्रशब्दाच्च द्वितीया विधीयते अनेन सूत्रेण। यवाग्वभिन्नं हविरग्नौ प्रक्षिपतीत्यर्थः। **मन्त्रे श्वेतेति**—श्वेतादिपूर्वेभ्यो वहादिभ्यः कर्मणि ण्विन् प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। **डस् वक्तव्यम्**—श्वेतवहादिभ्यः इति शेषः। **श्वेतवाः**—श्वेता एनं वहन्ति इत्यर्थे श्वेतोपपदात् वहेः भाविपदत्वं संलक्ष्य श्वेतवहादीनां डस् पदस्येति वक्तव्यमिति डस्, डकारः चुटू इति इत्। उपपदसमासे सुपो लुकि श्वेतवह् अस् इति जाते डित्त्वसामर्थ्याट्टेर्लोपे श्वेतवस् इति जाते सु-प्रत्यये अत्वसन्तस्येति दीर्घे सुलोपे सस्य रुत्वविसर्गौ। **श्वेतवाहौ**—औ प्रत्यये पदत्वं न भावि, अतः ण्विन् प्रत्यये उपधावृद्धौ ण्विनः सर्वापहारलोपे श्वेतवाहौ इति। हलादौ विभक्तौ तु डस्, तेन श्वेतवोभ्यामित्यादिरूपम्। **उक्थशाः**—उक्थानि उक्थैर्वा शंसति इत्यर्थे डस् प्रत्ययः शंसतेर्नलोपश्च, उपपदसमासे डित्त्वाट्टेर्लोपे उक्थशस् इति जाते सौ अत्वसन्तस्येति दीर्घे सुलोपे सस्य रुत्वविसर्गौ। अजादौ विभक्तौ पदत्वाभावान्न डस्, अपि तु ण्विन्, धातोर्नस्य लोपे उपधावृद्धौ ण्विनो सर्वापहारलोपे च उक्थशासौ उक्थशासः इत्यादि-रूपम्। पुरो दाश्यते इत्यर्थे डस्, दाशः दस्य डत्वे उपपदसमासे **पुरोडाश् अस्** इति। ड़ित्त्वाट्टेर्लोपे सौ उपधादीर्घे सुलोपः, सस्य रुत्वविसर्गौ। **अवे यजः**—अवे उपपदे यजेर्ण्विन्, यत्र पदत्वं भावि तत्र डस् इत्यर्थः। **अवयाः**—अवपूर्वाद् यज्धातोः डस्, डित्त्वाट्टेर्लोपः, अवयस् इत्य-स्मात् सुः, उपधादीर्घः, सुलोपः, रुत्वविसर्गौ। औ-प्रत्यये तु ण्विन्, उपधावृद्धिः, ण्विनः सर्वापहारलोपः। **अवयाः श्वेतवाः इति**—मन्त्रे श्वेतवहेत्यादिना डस् प्रत्यये कृते सौ दीर्घे रुत्वे च अवयाः इत्यादीनां सिद्धिर्भवत्येव, किमर्थं सूत्रमिदमिति चेत्-सम्बुद्धौ अत्वसन्तस्येति दीर्घस्य अप्राप्त्या एते 'अवयाः' इत्यादयः सम्बुद्धौ कृतदीर्घाः अनेन निपात्यन्ते इति जानीहि। चात् उक्थशाः इत्यपि सम्बुद्धौ कृतदीर्घः निपात्यते।

हिन्दी

२२७५. हुधातु के कर्म में तृतीया एवं द्वितीया होती है विकल्प से।

२२७६. मन्त्र में श्वेतवहादि शब्दों से ण्विन् प्रत्यय होता है।

वा. श्वेतवहादि को जहाँ पदत्व होना है वहाँ ण्विन् का अपवाद डस् प्रत्यय होता है।

२२७७. अव उपपद पूर्वक यज् धातु से ण्विन् होता है व पदत्व की सम्भावना में डस् प्रत्यय होता है।

२२७८. अवयाः श्वेतवाः तथा पुरोडाः ये सम्बुद्धि में कृतदीर्घ निपातन हैं।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२७९. लिङर्थे लेट्-३।४।७॥

२२८०. सिब्बहुलं लेटि-३।१।३४॥

२२८१. इतश्च लोपः परस्मैपदेषु-३।४।९७॥ लेटस्तिङां वा ।

२२८२. लेटोऽडाटौ-३।४।९४॥ स्तो वा । तौ च पितौ ।

वा. सिब्बहुलं णिद् वक्तव्यः ॥ वृद्धिः । प्रण आयूंषि तारिषत् । सुपेशस्करति जोषिषद्धि । आ साविषदर्शसानाय । सिप इलोपस्य चाऽभावे पताति दिद्युत् । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति ।

२२८३. स उत्तमस्य-३।४।९८॥ लेट उत्तमस्य वा लोपः । करवाव, करवावः । टेरेत्वम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सम्बुद्धौ पदत्वं भावि इति कृत्वा डस् प्रत्यये टेर्लोपे अवयस् श्वेतवस् उक्थशस् इति जाते अनेनैव निपातनादुपधादीर्घे सस्य रुत्वे विसर्गे च क्रमशः अवयाः, श्वेतवाः उक्थशाः इति ज्ञेयम्। इतश्चेति—लेटोऽडाटौ इत्यतः लेटः, इत्यनुवर्तते । वैतोऽन्यत्रेत्यतः वा इत्यनुवर्तते । लेटस्तिङां परस्मैपदानाम् इकारस्य लोपो वा इत्यर्थः । **लेटोऽडाटौ**—आडुत्तमस्येत्यतः पिच्चेत्यनुवर्तते । **तारिषत् इति**—तॄ प्लवनतरणयोरित्यस्मात् लेट्, लेटः तिबादेशे इतश्च लोप इति इलोपे सिब्बहुलमिति सिप्, पकार इत्, इकार उच्चारणार्थः, सिपः आर्धधातुकत्वात् इट्, तॄइस् त् इति, लेटोऽडाटौ इत्यट्, तॄ इस् अत् इति जाते सिब्बहुलं णिद् वक्तव्यः इति णिद्-वद्भावेऽचो ञ्णितीति वृद्धौ रपरत्वे सस्य षत्वे तारिषत् इति । **जोषिषत्**-जुषी प्रीतिसेवनयोः इत्यस्मात् व्यत्ययेन परस्मैपदे लेटि तिपि इलोपे, अटि, सिपि अनुबन्धलोपे आर्धधातुकस्येड् वलादेरिति इट्, णित्त्वम्, लघूपधगुणः, षत्वम् । **आ साविषत्**—आङ्पूर्वात् षु प्रसवैश्वर्ययो-रित्यस्माल्लेट्, तिप्, इलोपः, अट्, सिप्, इट्, णित्त्वम्, वृद्धिः, आवादेशः, षत्वञ्च । **पताति**-पत्धातोर्लेटि तिपि, आटि तिपः इकारलोपाभावे सिपोऽभावे पताति इत्येव । **भवाति**—भूधातोः लेट्, लेटः स्थाने तिप्, लेटोऽडाटौ इत्याट्, भू आ ति इति, इलोपाभावे सिपोऽभावे सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति सार्वधातुकनिमित्तकगुणेऽवादेशे भवाति इति । **स उत्तमस्य**—लेट इत्यनुवर्तते । लेट उत्तमस्य सस्य लोपो वा इत्यर्थः । **करवाव**—कृधातोर्लेटि तस्य स्थाने वसि, तनादिकृञ्भ्य उः, धातोः ऋकारस्य सार्वधातुकेति गुणः, रपरत्वम्, करु वस् इति, लेटोऽडाटौ इत्याट्, आटः पित्त्वात् उकारस्य गुणे अवादेशे करवा वस् इति, स उत्तमस्येति सलोपः ।

हिन्दी

२२७९. लिङ् के अर्थ में लेट् लकार होता है ।

२२८०. लेट् लकार में सिप् होता है बहुलता से ।

२२८१. लेट् लकार के परस्मैपद तिङ् के इ का लोप होता है विकल्प से ।

२२८२. लेट् लकार को अट् व आट्-आगम होते हैं और वे पित् होते हैं विकल्प से ।

वा. सिप् को णिद्वद्भाव होता है बहुलता से ।

२२८३. लेट् सम्बन्धी उत्तमपुरुष के स का लोप होता है विकल्प से ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२८४. आत ऐ-३।४।९५॥ लेट ऐ स्यात् । सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ।

२२८५. वैतोऽन्यत्र-३।४।९६॥ लेट एकारस्य ऐ स्याद् वा, आत ऐ इत्यस्य विषयं बिना । पशूनामीशै । ग्रहा गृह्यान्तै । अन्यत्र किम्-सुप्रयसा मादयैते ।

२२८६. उपसंवादाशङ्कयोश्च-३।४।८॥ पणबन्धे आशङ्कायां च लेट् । अहमेव पशूनामीशै । नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम ।

२२८७. व्यत्ययो बहुलम्-३।१।८५॥ विकरणानां छन्दसि । आण्डा शुष्णस्य भेदति । भिनत्तीति प्राप्ते । जरसा मरते पतिः । म्रियते इति प्राप्ते । इन्द्रो वस्तेन नेषतु । नयतेर्लोट्, शप्सिपौ द्वौ विकरणौ । इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् । तरेमेत्यर्थः। तरतेर्विध्यादौ लिङ् । उःसिप् शप् चेति त्रयो विकरणाः ।

मध्यमनोरमापूरणी

सलोपाभावे सस्य रुत्वविसर्गौ करवाबः इति । आत ऐ-लेटः आकारस्य ऐ स्यादित्यर्थः । मादयैते—णिजन्तात् मादि धातोः लेटि प्रथमपुरुषस्य द्विवचने आताम्, टित आत्मनेपदानामिति टेरेत्वे मादि आते इति, आत ऐ इति आकारस्य ऐकारः, लेटोऽडाटौ इत्याटि मादि आ ऐते इति, णेर्गुणेऽयादेशे आटश्चेति वृद्धौ मादयैते इति । पशूनाम् ईशै—ईश् ऐश्वर्ये इत्यस्माल्लेटि उत्तमपुरुषैकवचने इटि, टित आत्मनेपदानामिति एत्वे वैतोऽन्यत्रेति एकारस्य ऐकारे ईश् ऐ इति, लेटोऽडाटौ इत्याटि वृद्धौ रूपम् । गृह्यान्तै—ग्रह्धातोः कर्मणि लेट्, झप्रत्ययः, झोऽन्तः इति झस्यान्तादेशः, सार्वधातुके यक् । ग्रह् य अन्ते इति, टेरेत्वम् । ग्रहिज्यावयिव्यधि इत्यादिना धातो रेफस्य सम्प्रसारणे ऋकारे सम्प्रसारणाच्चेति पूर्वरूपे लेटोऽडाटौ इत्याटि गृह्य आ अन्ते इति, वैतोऽन्यत्रेति ऐकारः । सवर्णदीर्घे वृद्धौ गृह्यान्तै इति । मादयैते—यद्यन्यत्रेति पदं नोच्येत तदाऽनेन ऐत्वं विकल्पेन प्रसज्येत । आत ऐ इत्यस्य विषयत्वान्नात्र विकल्पः। उपसंवादाशङ्कयोश्चेति—उपसंवादः समयकरणं पणबन्धो वा । यदि भवान् मे इदं कुर्यात्तर्हि इदमहं दास्यामीत्यादिरूपं समयकरणं पणबन्धः । आशङ्का—सम्भावना । पणबन्धे आशंकायां च लेट् भवतीत्यर्थः । अहमेव पशूनाम् ईशै—ईश् ऐश्वर्ये, उपसंवादाशङ्कयोश्चेति लेट्, आत्मनेपदे उत्तमपुरुषैकवचने इट्, टेरेत्वम्, आट्, वैतोऽन्यत्रेति एकारस्य ऐकारे ईश् आ ऐ इति, आटश्चेति वृद्धिः । पताम- पत्धातोर्लेट्, उत्तमपुरुषबहुवचने मस्, आट्, स उत्तमस्येति सलोपः। आशङ्कायामत्र लेट् । व्यत्ययो बहुलम्—व्यत्ययो विषयान्तरे विधानम्, व्यतिगमनं । छन्दसि शबादयो विकरणाः बहुलं व्यत्ययेन भवन्ति । भेदति—भिद्धातोर्लटि तिपि रुधादित्वात् श्नमि प्राप्ते व्यत्ययेन शप्, सार्वधातुकत्वात् पुगन्तेति गुणः । मरते—मृङ् प्राणत्यागे, तुदादिः । लटि तप्रत्यये शे प्राप्ते व्यत्ययेन शपि गुणे रपरत्वे टेरेत्वे रूपम् । शे कृते तु रिङादेशे इयङि म्रियते इति । नेषतु—नीधातोः लोटि तिपि, एरुः इति उत्वे शप्, बाहुलकात् सिप्, नी स् अतु इति, गुणे षत्वे च रूपम् । अत्र बहुलं द्वौ विकरणौ जातौ । तरुषेम—तृधातोः लिङि

हिन्दी

२२८४. लेट् सम्बन्धी आ को ऐ आदेश होता है ।

२२८५. लेट् सम्बन्धी ए को ऐ होता है विकल्प से, 'आत ऐ' के विषय को छोड़कर ।

२२८६. उपसंवाद एवं आशङ्का अर्थ में धातु से लेट् लकार होता है ।

२२८७. वेद में शप् आदि विकरण का बाहुलकात् व्यत्यय होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥

धुरि दक्षिणायाः, दक्षिणस्यामिति प्राप्ते । चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति, तक्षन्तीति प्राप्ते । उपग्रहः-परस्मैपदात्मनेपदे । ब्रह्मचारिणमिच्छते, इच्छतीति प्राप्ते । प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति, युध्यते इति प्राप्ते । मधोस्तृप्ता इवासते, मधुन इति प्राप्ते । नरः पुरुषः । अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः । वियूयादिति प्राप्ते । कालः कालवाची प्रत्ययः । श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन । लुटो विषये लृट् । तमसो मा अदुक्षत्। अधुक्षदिति प्राप्ते । मित्र वयं च सूरयः । मित्रा वयमिति प्राप्ते । स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते । कर्तृशब्दः कारकमात्रपरः, तथा च तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययः-अन्नादाय । अण्विषयेऽच् । यङो यशब्दादारभ्य लिङ्याशिष्यङिति 'ङ-कारेण' प्रत्याहारः । तेषां व्यत्ययो भेदतीत्यादिरुक्त एव ।

मध्यमनोरमापूरणी

उत्तमपुरुषबहुवचने मसि व्यत्ययेन उः, सिप्, शप् चेति विकरणत्रये जाते धातोः ऋकारस्य गुणे, यासुटः इयादेशे गुणे यलोपे 'नित्यं ङितः' इति सलोपे तरुसेम इति जाते षत्वम् । **सुप्तिङ् इति**—शास्त्रकृत् एषां सुप्तिङुपग्रहादीनाम् कालादीनाञ्च व्यत्ययमिच्छति, सोऽपि च बाहुलकेन सिध्यतीत्यन्वयः । **शास्त्रकृत् = पाणिनिः, एषाम्**—सुप्तिङादीनां कालादीनाञ्च व्यत्ययम्= विपर्यासमिच्छति । **सोऽपि**=व्यत्ययोऽपि बाहुलकेन सिध्यति इत्यर्थः । उदाहरणानि क्रमशः प्रस्तूयन्ते । **सुब्व्यत्ययः**—धुरि दक्षिणायाः इत्यत्र ङि स्थाने ङस् व्यत्ययेन जातः, स्याडागमा-भावश्च । तक्षतीत्यत्र झिस्थाने व्यत्ययेन तिप् भवति । **इच्छते**—इषेः परस्मैपदित्वात् तत्स्थाने व्यत्ययेन आत्मनेपदम् इति उपग्रहव्यत्ययस्योदाहरणम् । तथैव युध्यते इति स्थाने व्यत्ययेन परस्मैपदे युध्यतीति । मधोः इति मधुनः स्थाने । नपुंसकस्य पुलिङ्गत्वं व्यत्ययेन भवति । **नरः**=पुरुषः । वियूयाः इति मध्यमपुरुषैकवचने प्रथमपुरुषस्य व्यत्ययेन भवति । आधास्यमानेन इति लृट्लकारः लुटः प्रसङ्गे भवति । अधुक्षदिति प्राप्ते अदुक्षदिति धकारस्य हलो दकारः व्यत्ययेन । मित्र वयञ्चेत्यादौ मित्रा वयमिति प्राप्ते आकारस्य अचः ह्रस्वो भवति व्यत्ययेन । **स्वरव्यत्ययस्तु वक्ष्यते**—उदात्तादिस्वराणां व्यत्ययो वक्ष्यते स्वरप्रक्रियायाम् । कर्तृशब्दः कारकमात्रपरः, तथा च तद्वाचिनां कृत्तद्धितानां व्यत्ययो भवति । 'तेन दीव्यति' इत्यादौ विधीयमानानां ठगादिप्रत्ययानां देवनादिकर्तृत्वाद् एवमुक्तम् । कर्तृशब्दस्यात्र कारक-मात्रवाचित्वेऽपि इह नाग्रहः, कृत्तद्धितमात्रे तात्पर्यात् । **अन्नादाय**—अन्नमत्तीति विग्रहे अन्नअम् इत्युपपदात् अद्धातोः कर्मण्यण् इति प्राप्ते अच् भवति । अन्न अद् इत्यस्य दीर्घे चतुर्थ्या एकवचने अन्नादायेति । अणि तु अन्न आद इति जाते दीर्घे अन्नाद इति जाते चतुर्थ्या एकवचने अन्नादाय इत्येव रूपम् । किन्तु अवग्रहे विशेषः । यङ् इत्यनेन प्रत्याहारः उच्यते। यङ्प्रत्याहारान्तर्वर्तिप्रत्ययानां व्यत्यय उक्त एव भेदतीत्यादौ ।

हिन्दी

का. शास्त्रकार आचार्य पाणिनि सुप्तिङ् इत्यादिकों का वेद में व्यत्यय चाहते हैं, और यह व्यत्यय भी बाहुलकात् सिद्ध होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२८८. छन्दस्युभयथा-३।४।११७।। धात्वधिकारोक्तः प्रत्ययः सार्वधातुकार्धधातुको भयसंज्ञः स्यात् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयः । वर्धयन्त्वित्यर्थः। आर्धधातुकत्वाण्णिलोपः । विशृण्विरे । सार्वधातुकत्वात् श्नुःशृभावश्च । हुश्नुवोरिति यण् ।

२२८९. तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन् तवैतवेङ्तवेनः-३।४।९।। से-वक्षे रायः । सेन्-ता वामेषे । असे-शरदो जीवसे धाः। असन्-नित्त्वादाद्युदात्तः । क्से-प्रेषे । कसेन्-गवामिव श्रियसे । अध्यै, अध्यैन्-जठरं पृणध्यै । पक्षे आद्युदात्तम् । कध्यै, कध्यैन्-आहुवध्यै । शध्यै-राधसः सह मादयध्यै। शध्यैन्-वायवे पिबध्यै । तवै-दातवा उ । तवेङ्-सूतवे । तवेन्-कर्तवे।

२२९०. प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै-३।४।१०।। एते निपात्यन्ते । प्रयातुं रोढुम् अव्यथितुमित्यर्थः ।

मध्यमनोरमापूरणी

छन्दस्युभयथा—तिङ्शित् सार्वधातुकमित्यतः सार्वधातुकमिति आर्धधातुकं शेष इत्यतः आर्धधातुकमिति चानुवर्तते । धातोरित्यस्याधिकारः । **अत उक्तम्**—धात्वधिकारोक्तः इत्यादिना । **वर्धन्तु त्वेति**—णिजन्ताद् वर्धिधातोः लोट्, झि, झोऽन्तः, एरुः, तिपः सार्वधातुकत्वात् शप्, वर्धइ अ अन्तु इति, शपः, छन्दस्यु... इत्यनेन आर्धधातुकत्वात् णेरनिटीति णिलोपः, पररूपम् । **विशृण्विरे**—वि पूर्वात् श्रुवः लिट् लटः स्थाने झः, झस्य इरेच्, लिट् चेत्यनेन प्राप्तामार्धधातुकसंज्ञां बाधित्वा छन्दस्युभयथा इति सार्वधातुकसंज्ञां करोति, तेन श्रुवः शृ चेति शृ आदेशः, श्नु प्रत्ययश्च, विशृनु इरे इति, हुश्नुवोः इति यण्, ऋवर्णान्नस्येति णत्वम् । **तुमर्थे**—तुमुनः अर्थः तुमर्थः भावः तस्मिन् तुमर्थे इति । अनुबन्धरहितस्य तुम् इति निर्देशः । छन्दसि तुमुनः अर्थे से सेनसे इत्यादयः प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **वक्षे**—वच्धातोः से प्रत्ययः, चोः कुरिति चस्य कः, ककारात् परस्य सस्य आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम्, कषयोः संयोगः क्षः । वक्तुमित्यर्थः । **एषे**—इण् धातोः से प्रत्ययः, धातोर्गुणः, षत्वम् । **जीवसे**—जीव् प्राणधारणे, असे प्रत्ययः । जीवितुमित्यर्थः । असेन्-प्रत्ययेऽपि जीवसे इत्येव । नित्त्वात् ञ्नित्यादिर्नित्यमिति आद्युदात्तो विशेषः । **प्रेषे**—प्रपूर्वादिणः क्से प्रत्ययः, ककार इत् । कित्त्वाद् गुणाभावे आद्गुणः इति गुणे षत्वम् । **श्रियसे**—श्रिञ् सेवायाम्, कसेन्, कनौ इतौ। धातोरियङ् । सेवितुमित्यर्थः । **पृणध्यै**—पृधातोः अध्यै अध्यैन् वा प्रत्ययः, श्नाविकरणम्, प्वादीनां ह्रस्व इति ॠकारस्य ह्रस्वे पृना अध्यै इति, श्नाभ्यस्तयोरातः इति आलोपे ऋवर्णान्नस्येति णत्वम् । **आहुवध्यै**—आङ्पूर्वात् हुधातोः कध्यै कध्यैन् वा प्रत्ययः, ककारनकारौ इतौ। आहुअध्यै इति, कित्त्वान्न गुणः, उवङ् । **मादयध्यै**—ण्यन्ताद् मादिधातोः शध्यैप्रत्ययः, शकार इत्, शप्, सार्वधातुकगुणः, आयादेशः । **पिबध्यै-पाधातोः** शध्यैन्प्रत्ययेऽनुबन्धलोपे शित्त्वात् सार्वधातुकसंज्ञा, शप्, पाघ्राध्मास्था इति पिबादेशः, पररूपम् । **दातवा उ**-दाधातोस्तवै, आयादेशः, लोपः शाकल्यस्येति यलोपः ।

हिन्दी

२२८८. छन्द में सार्वधातुक एवं आर्धधातुक संज्ञायें धात्वधिकारोक्त सभी प्रत्ययों को होती है ।

२२८९. तुमुन् के अर्थ में धातु से 'से सेन्' इत्यादि प्रत्यय होते हैं

२२९०. तुमुन् के अर्थ में प्रयै, रोहिष्यै और अव्यथिष्यै ये निपातनात् सिद्ध होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२९१. दृशे विख्ये च-३।४।११।। निपातौ । द्रष्टुं विख्यातुमित्यर्थः ।

२२९२. कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः-३।४।१४।। धातोरेते स्युः । तवै-अन्वेतवै । केन-अवगाहे । केन्य-दिदृक्षेण्यः । त्वन्-कर्त्वम् ।

२२९३. सृपितृदोः कसुन्-३।४।१७।। तुमर्थे । पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् । पुरा जत्रुभ्यः आतृदः ।

२२९४. प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे-६।१।११५।। ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यान्नतु वकारयकारपरेऽति । उपप्रयन्तो अध्वरम् । सुजाते अश्वसुनृते । अन्तः पादं किम्-एतास एतेऽर्चन्ति । अव्यपरे किम्-तेऽवदन् ।

मध्यमनोरमापूरणी

सूतवे—षूङ्धातोस्तवेङ्, ङित्त्वाद् गुणो न । **कर्तवे**—कृधातोस्तवेन्, सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति गुणः, रपरत्वम् । **प्रयै रोहिष्यै इति**—तुमुनोऽर्थे कृतप्रत्ययान्ता एते निपात्यन्ते इत्यर्थः। **प्रयै**—प्रपूर्वाद् याधातोः कैप्रत्यये आतो लोप इत्यालोपः । **रोहिष्यै**— रुह् धातोः इष्यैप्रत्यये लघूपधगुणः । **अव्यथिष्यै**—नञ्पूर्वात् व्यथ्धातोः इष्यै प्रत्यये नलोपे अव्यथिष्यै इति । **दृशे विख्ये च**—तुमर्थे एतौ निपात्येते । **दृशे**—दृश्धातोः के प्रत्ययः, ककार इत्, कित्त्वान्न गुणः। **विख्ये**—विपूर्वात् ख्याधातोः के प्रत्ययः, आकारलोपः । **कृत्यार्थे इति**-कृत्यानाम्अर्थः, कृत्यार्थः तस्मिन् इति । तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः इति भावकर्मणोः कृत्यविधानात् कृत्यार्थः भावकर्मणी। भावे कर्मणि च तवै केन केन्य त्वन् इत्येते प्रत्ययाः स्युरित्यर्थः । **अन्वेतवै**—अनुपूर्वादिणः तवै प्रत्ययः इकारस्य गुणः, अनोरुकारस्य यण् । अन्वेतव्यम् इत्यर्थः । **अवगाहे**—अवपूर्वात् गाह्धातोः केन् प्रत्ययः । ककारनकारौ इतौ । अवगाहनीयमित्यर्थः । **दिदृक्षेण्यः**—सन्नन्ताद् दृशधातोः दिदृक्ष इत्यस्मात् केन्य-प्रत्ययः, ककार इत् । अतो लोप इति प्रकृतेरन्त्याकारलोपः। रषाभ्यामिति णत्वम् । **कर्त्वम्**— कृधातोस्त्वन्प्रत्यये गुणे रपरत्वे कर्त्वम् इति । कार्यमित्यर्थः। **विसृपः**— विपूर्वात् सृप्धातोः कसुन्, ककार इत् । कित्वान्नोपधागुणः । विसृपस् इति जाते सस्य रुत्वविसर्गौ । गमनादित्यर्थः । **आतृदः**-आङ्पूर्वाद् तृदः कसुन्, सस्य रुत्वविसर्गौ । **प्रकृत्यान्तःपादमिति**—प्रकृत्या अन्तः पादम् अव्यपरे इतिच्छेदः । पादस्य मध्ये इत्यर्थेऽव्ययीभावे कृते अन्तःपादम् इति । पादश्चेह ऋचः पाद एव गृह्यते । वा च्छन्दसीत्यतः छन्दसि इत्यनुवर्तते । एङः पदान्तादति इत्यतः एङःइत्यनुवर्तते, प्रथमया विपरिणम्यते च । व् च य् चेति व्यौ, व्यौ परौ यस्मादिति व्यपरः, न व्यपरः अव्यपरः, तस्मिन् इति । अत उक्तं मूले-ऋक्पादमध्यस्थ इत्यादि । **उपप्रयन्तो अध्ववरम्**—अत्र एङः पदान्तादति इति प्राप्तं पूर्वरूपं प्रबाध्य प्रकृत्यान्तः इति प्रकृतिभावः । **एतेऽर्चन्ति**—एते इति पादस्यान्तेऽस्ति तस्मान्नात्र प्रकृतिभावप्रवृत्तिः । **तेऽवदन्**—वकारपरोऽकारः, तस्मान्न प्रकृतिभावः ।

हिन्दी

२२९१. तुमुन् के अर्थ में दृशे एवं विख्ये निपातन हैं ।

२२९२. कृत्य प्रत्यय के अर्थ में तवै केन् केन्य व त्वन् प्रत्यय होते हैं

२२९३. सृप् एवं तृद् धातु से कसुन् प्रत्यय होते हैं, तुमर्थ में ।

२२९४. ऋक्पादमध्यस्थ एङ् को प्रकृतिभाव होता है वकारयकारपर भिन्न अत् परे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२९५. अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च-६।१।११६॥ एषु व्यपरेऽप्यति एङ् प्रकृत्या । वसुभिर्नो अव्यात् । मित्रमहो अवद्यात् । मा शिवासो अवक्रमुः । ते नो अव्रत । शतधारो अयं मणिः । ते नो अवन्तु ।

२२९६. सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः-७।१।३९॥ ऋजवः सन्तु पन्थाः, पन्थानः इति प्राप्ते । परमे व्योमन्, व्योमनि इति प्राप्ते । धीती, मती, सुष्टुती, धीत्या मत्या सुष्टुत्येति प्राप्ते पूर्वसवर्णः । या सुरथा रथीतमा, यौ सुरथाविति प्राप्ते आ । न ताद् ब्राह्मणम्, न तमिति प्राप्ते आत् । या देव विद्य ता त्वा, यं तमिति प्राप्ते । न युष्मे बाजबन्धवः, अस्मे इन्द्राबृहस्पती, युष्मासु अस्मभ्यमिति प्राप्ते शे । उरुया, धृष्णुया, उरुणा धृष्णुनेति प्राप्ते या । नाभा पृथिव्याः, नाभौ इति प्राप्ते डा । ता अनुष्ठ्योच्यावयतात्, आङो ड्या । साधुया, साध्विति प्राप्ते याच् । वसन्ता यजेत, वसन्ते इति प्राप्ते आल् ।

वा. इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम् । उर्विया, उरुणेति प्राप्ते इया । सुक्षेत्रिया, सुक्षेत्रिणेति प्राप्ते डियाच् । "दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्" सरस्यामिति प्राप्ते ई।

मध्यमनोरमापूरणी

अव्यात्—अव्यात् अवद्यात् अवक्रमुः अवत अयम् अवन्तु अवस्युः इत्येषु परेषु एङः प्रकृतिभावो भवतीत्यर्थः । व्यपरेऽति प्रकृतिभावार्थमिदम् । उदाहरणानि स्पष्टान्येव । **सुपां सुलुक्**-सुपां स्थाने सु लुक् पूर्वसवर्ण आ आत् शे या डा ड्या याच् आल् इत्येते आदेशाः स्युः छन्दसीत्यर्थः । **पन्थाः**—पथिन् जस् इत्यवस्थायां जसः स्थाने सुः आदेशः । नस्यात्वम्, इतोऽत्, न्थादेशश्च पूर्ववत्, सस्य रुत्वविसर्गौ । **व्योमन् इति**—व्योमन् ङि इति जाते ङेर्लुक्। **धीती**—धीति मति सुष्टुति शब्देभ्यः तृतीयैकवचने टाविभक्तौ सुपां सुलुक् इति टा इत्यस्य पूर्वसवर्ण ईकारः प्रमाणकृतान्तर्यतः, सवर्णदीर्घः । **या सुरथा**—औ इत्यस्य आ इत्यादेशे सवर्णदीर्घः । **नताद्**—न त अम् इति जाते अमः आत्, सवर्णदीर्घः । **या देवेति**- यम् तम् इत्युभयोरमः आ । **युष्मे अस्मे इति**—युष्मद् इत्यस्मात् परस्य सुप् इत्यस्य अस्मद् इत्यस्मात् परस्य भ्यसश्च शे इत्यादेशः, शकार इत् । शेषे लोपः इति अद् इत्यस्य लोपः । **उरुया धृष्णुया**—टा स्थाने यादेशः । **नाभा पृथिव्याः**—नाभिशब्दात् परस्य ङि इत्यस्य डादेशः, डित्त्वाट्टेर्लोपः । **अनुष्ठ्या**-अनुष्ठानम् अनुष्ठा, अनुष्ठाशब्दात् परस्य आङ् इत्यस्य ड्यादेशे टेर्लोपः । **साधुया**—साधुशब्दात् परस्य सोर्लुकि प्राप्ते सोर्यादेशः । **वसन्ता यजेत**—वसन्तात् परस्य ङेः आल्, सवर्णदीर्घः । **इयाडीति**—सुपां स्थाने इया डियाच् ईकार इत्येतेऽपि भवन्तीत्यर्थः । **उर्विया**—उरुशब्दात् परस्य टा इत्यस्य इया आदेशे यणि रूपम् । **सुक्षेत्रिया**—सुक्षेत्रिन्शब्दात् परस्य तृतीयैकवचनस्य डियाच्, ङचौ इतौ, डित्त्वाट्टेरिनो लोपः । **सरसी**—सरसीशब्दात् ङिविभक्तौ ङेः स्थाने ईकारः, सवर्णदीर्घः ।

हिन्दी

२२९५. अव्यात् इत्यादि परे एङ् को प्रकृतिभाव होता है ।

२२९६. सुप् के स्थान में सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या डा; ड्या, याच्, एवं आल् आदेश होते हैं ।

वा. सुप् के स्थान पर 'इया डियाच् एवं ई' आदेश भी कहना चाहिये ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२२९७. आज्जसेरसुक्-७।१।५०॥ ब्राह्मणासः ।

वा. तन्वादीनां वेयङुवङौ ॥ तन्वं पुषेम, तनुवं पुषेम । विष्वं पश्य, विषुवं पश्य। स्वर्गो लोकः, सुवर्गो लोकः । त्र्यम्बकम्, त्रियम्बकम् । अतो भिस् ऐस्-

२२९८. बहुलं छन्दसि-७।१।१०. अग्निर्देवेभिः ।

२२९९. मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः-६।४।१४१॥ आत्मन्शब्दस्यादेर्लोप आङि । त्मना देवेषु । अपो भि-

वा. मासश्छन्दसीति वक्तव्यम् ॥ माद्भिः । शरद्भिः ।

२३००. प्रसमुपोदः पादपूरणे-८।१।६॥ एषां द्वे स्तः । प्रप्रायमग्निः । संसमिद्युवसे । उपोप मे परामृश । किन्नो दुदुहर्षसे ।

मध्यमनोरमापूरणी

आज्जसेरिति—अवर्णान्तादङ्गात् परस्य जसः असुक्-आगमः स्यादित्यर्थः । **ब्राह्मणासः**—ब्राह्मणशब्दाज्जस्, ब्राह्मण अस् इति जाते असुक्-आगमः अन्ते भवति । ब्राह्मण अस् अस् इति, पूर्वसवर्णदीर्घे ब्राह्मणासस् इति, सस्य रुत्वविसर्गौ । **तन्वादीनामिति**—तन्वादीनां छन्दसि बहुलम् इत्यस्य संक्षिप्तः पाठः मूले । तन्वादीनामिकः स्थाने इयङ् उवङ् आदेशौ भवतः वा छन्दसीत्यर्थः । **तनुवम्**—तनु अम् इति दशायामधातुत्वादप्राप्त उवङ् अनेन विधीयते । पक्षे यणि तन्वम् इति । **विषुवम्**—विषु अम् इति जाते उवङ् । पक्षे यण् । सु अर्गः इति दशायामुवङि सुवर्गः इति, पक्षे यणि स्वर्गः इति । त्रि अम्बकम् इत्यत्र इयङि **त्रियम्बकमिति,** यणि त्र्यम्बकम् इति । **बहुलं छन्दसि**—छन्दसि विषये बहुलं भिसः ऐसादेशो भवति । तेन क्वचिन्न प्रवृत्तिः । **देवेभिः**—देवशब्दात् भिसि भिस ऐसादेशाभावे बहुवचने झल्येत् इति अस्यैत्वे सस्य रुत्वविसर्गौ । **त्मना देवेषु**—आत्मन् आ इति दशायां मन्त्रेष्वाङ्या देरात्मनः इति आलोपः । **मासश्छन्दसीति**—मास्शब्दावयवस्य सस्य दकारो भवति छन्दसीत्यर्थः । **माद्भिः**—मास् भिस् इति दशायां पद्दन्नोमास इत्यादिना मासः मास् इत्यादेशे मासश्छन्दसीति सस्य दः । **प्रसमुपोदः**—समाहारद्वन्द्वे कृते षष्ठ्येकवचने रूपम् । अत्र द्वन्द्वाच्चुदषहान्तादिति टच् कथं न भवतीति चेत्-'समासान्तविधिः अनित्यः' इत्युक्तत्वात् । पादपूरणे प्र सम् उप उद् इत्येतेषां द्वित्वं भवतीत्यर्थः । **प्रप्रायमग्निः**—अत्र प्र इति निपातस्य द्वित्वम् । नात्र अर्थे विशेषः, केवलं पादपूरणार्थं द्वित्वं जातम् । भाषायामेवंविधः प्रयोगो न भवत्यतः विधानमेतत्।

हिन्दी

२२९७. अवर्णान्त अङ्ग से परे जस् को असुक्-आगम होता है ।

वा. तन्वादि शब्दों को इयङ् एवं उवङ् विकल्प से होते हैं ।

२२९८. अदन्त अङ्ग से परे भिस् को ऐस् बहुलता से होता है ।

२२९९. मन्त्रों में, टा विभक्ति परे आत्मन् के आदि आ का लोप होता है ।

वा. मास् के स् को द् होता है, वेद में ।

२३००. पादपूर्ति करने हेतु प्र सम् उप उद् इनको द्वित्व होता है छन्द में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२३०१. षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु-८।३।५३।। विसर्गस्य सः स्यात्। वाचस्पतिं विश्वकर्माणम् । दिवस्पुत्राय सूर्याय । दिवस्पृष्ठं भन्दमानः । तमसस्पारमस्य । परिवीत इलस्पदे । दिवस्पयो दिधिषाणाः । रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।

।। इति वैदिकप्रक्रिया ।।

मध्यमनोरमापूरणी

षष्ठ्याः इति—षष्ठ्यन्तविसर्गस्य पत्यादिषु परेषु सत्वं भवतीत्यर्थः । पत्यादिषु परेषु उपध्मानीये विसर्गे वा प्राप्ते सत्वं विधीयते छन्दस्यनेन । **वाचस्पतिम्**—वाचः पतिः इति षष्ठी समासे तत्पुरुषे कृति बहुलमिति षष्ठ्याः अलुक् । विसर्गस्य सत्त्वम् । इत्थमेव दिवः पुत्राय दिवः पृष्ठं इत्यनयोः विसर्गस्य सत्वम् । तमसः पारम् इति समासे सति विसर्गस्य सत्वे तमसस्पारम् इति ।

।। इति वैदिकप्रक्रिया (मध्यसिद्धान्तकौमुद्याम्) ।।

हिन्दी

२३०१. षष्ठ्यन्त विसर्ग को पति पुत्र पृष्ठ पार पद पयस् एवं पोष परे रहते सत्व होता है ।

।। इति वैदिकप्रक्रिया ।।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ स्वरप्रक्रिया

२३०२. धातोः-६।१।१६२॥ अन्त उदात्तः स्यात् ।

२३०३. अनुदात्तं पदमेकवर्जम्-६।१।१५८॥ परिभाषेयं स्वरविषया । यस्मिन् पदे यस्योदात्तः स्वरितो वा विधीयते तमेकमचं वर्जयित्वा शेषं तत्पदमनुदात्ताच्कं स्यात् । गो॒पा॒यतं॑ नः । अत्र 'सनाद्यन्ता धातवः, इतिः धातुत्वे धातुस्वरेण यकाराकार उदात्तः, शिष्टमनुदात्तम् ।

२३०४. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः-८।४।६६॥ इति तकाराकारः स्वरितः ।

२३०५. स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्-१।२।३९॥ एकश्रुतिः स्यात् । इति नकाराकार 'प्रचयः' ।

२३०६. अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः-६।१।१६१॥ यस्मिन्अनुदात्ते उदात्तो लुप्यते तस्योदात्तः । दे॒वीं वाचम्, अत्र ङीबुदात्तः ।

मध्यमनोरमापूरणी

धातोः—प्रकृतिर्द्विधा भवति, धातुः, प्रातिपदिकञ्च । धातोरित्यनेन प्रकृतिभूतधातोरन्त उदात्तः भवति । पचति । गोपायति इत्यादौ चकाराकारः यकाराकारश्चोदात्तो भवति । **अनुदात्तमिति**—परिभाषा इयं स्वरविधिविषया । अर्थात् यस्मिन् पदे अन्यः स्वरः उदात्तः स्वरितो वा यस्य अचः विधीयते तत्र एकं तमचं वर्जयित्वा शेषं पदम् अनुदात्तम्=अनुदात्ताच्कं भवतीत्यर्थः । उपस्थितो भवतीति । **गोपायतं नः**—गुप इत्यस्यान्तः धातोः इत्यनेनोदात्तः । ततः आयप्रत्यये आद्युदात्तश्चेति प्रत्ययस्वरेण आकार उदात्तः । गोपाय इत्यस्य धातुसंज्ञायां सत्यां धातोः इत्यनेन यकाराकार उदात्तः भवति । सति शिष्टस्वरबलीयस्त्वमन्यत्रेति नियमात् पूर्वोक्तौ गुपेर्धातुस्वरः आयस्य प्रत्ययस्वरश्च न शिष्येते । गोपाय अ तम् इत्यत्र शपोऽकारस्यानुदात्तस्य पररूपे-सति एकादेश उदात्तेनोदात्त इत्युदात्तः । तमः तास्यनुदात्तेत् इत्यनेन अदुपदेशात् परत्वात् अनुदात्तत्वम् । उदात्तादनुदात्तस्येति अनुदात्तस्य स्वरितः । अतः गोपायतम् इत्यत्र तकाराकारः स्वरितः अवलोक्यते मूले । **उदात्तादिति**—उदात्तात् परस्य अनुदात्तस्य स्वरितो भवतीत्यर्थः। यथा **गो॒पा॒यतं॑** इत्यत्र तकारः । **स्वरितादिति**-स्वरितात् परेषामनुदात्तानां संहितायां विषये एकश्रुतिः स्यात् । **इति नकाराकारप्रचयः**—प्रचयः इत्यस्यार्थः एकश्रुतिरिति । **गो॒पा॒यतं॑** 'नः' इत्यत्र नकारात् परस्याकारस्य एकश्रुतिरित्यर्थः । **अनुदात्तस्य चेति**—उदात्त इत्यनुवर्तते । यस्मिन्ननुदात्ते परे उदात्तो लुप्यते तस्य अनुदात्तस्य आदिः उदात्तो भवतीत्यर्थः । **दे॒वीं वाचम्**-अत्र देवशब्दः अच्प्रत्ययान्तः, 'चितः' इत्यनेन तस्यान्ताकारः उदात्तः ।

हिन्दी

२३०२. धातु का अन्त उदात्त होता है ।

२३०३. जिस पद में किसी अच् को उदात्त या स्वरित कर दिया जाता है उस पद में उस उदात्त या स्वरित अच् को छोड़कर शेष अच् अनुदात्त होते हैं ।

२३०४. उदात्त से परे अनुदात्त को स्वरित होता है ।

२३०५. स्वरित से परे अनुदात्तों को संहिता में एकश्रुति स्वर होता है ।

२३०६. जिस अनुदात्त के परे रहने पर उदात्त का लोप हो जाये उस अनुदात्त को उदात्त होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२३०७. **आद्युदात्तश्च-३।१।३।। प्रत्ययस्याद्युदात्तः स्यात् । कर्तव्यम् ।**

२३०८. **अनुदात्तौ सुप्पितौ-३।१।४।। पूर्वस्याऽपवादः । यज्ञस्य न यो युच्छति । शप्तिपोरनुदात्तत्वे स्वरितप्रचयौ ।**

२३०९. **चितः-६।१।१६३।। अन्त उदात्तः स्यात् ।**

वा. चितः सप्रकृतेर्बह्वकजर्थम् ।। चिति प्रत्यये सति प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्यान्त उदात्तो वाच्य इत्यर्थः । नभन्तामन्यके समे । यके सरस्वतीमनु तकत्सुते ।

२३१०. **तद्धितस्य-६।१।१६४।। चितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः । पूर्वेण सिद्धे ञित्स्वरबाधनार्थम् । कौञ्जायनाः ।**

मध्यमनोरमापूरणी

अनुदात्ते ङीपि प्रत्यये परे तस्यान्तोदात्तस्य यस्येति चेति लोपः । अतः "अनुदात्तौ सुप्पितौ", इत्यनेन विहितस्य अनुदात्तस्य ङीपः अनुदात्तस्य चेति उदात्तो भवति । **कर्तव्यम्**—तव्य इत्यस्यादिः उदात्तः । **अनुदात्तौ सुप्पितौ**—आद्युदात्तश्चेत्यस्यापवादोऽयम् । सुपः पितश्च प्रत्ययाः अनुदात्ताः भवन्तीत्याशयः । **यज्ञस्य** इत्यत्र अनुदात्तः स्य इति । **शप्तिपोरनुदात्तत्वे स्वरितप्रचयौ**-न यो युच्छति इत्यत्र युच्छ इत्यस्य धातोः इत्यन्तोदात्तः, तस्मात् परःअनुदात्तः शप् उदात्तादनुदात्तस्य इति स्वरितो भवति, स्वरिता-त्संहितायामनुदात्तानामित्यनेन तिपः प्रचयः= एकश्रुतिरित्यर्थः । **चितः**—चितः समुदायस्य अन्त उदात्तः स्यादित्यर्थः । चितः इति अवयवाद् एषा षष्ठी । चित् योऽवयवः तस्य सम्बन्धी यः समुदायः स, चितः । अर्शआदिभ्योऽच् इत्यच्-प्रत्ययान्तः । षष्ठ्यर्थेऽत्र प्रथमा । अयमेवार्थः चितः सप्रकृतेरित्यनेन स्फुटीकृतः । अत्र प्रमाणञ्च अकचः चित्करणमेव । अन्यथा अकचः एकाच्त्वात् प्रत्ययाद्युदात्तत्वेनैव सिद्धौ तच्चित्करणं व्यर्थं स्यात् । नभन्तामन्यके समे—अन्यशब्दात् अकचि अन्यके इति प्रथमा-बहुवचनम् । चितः इति अन्त उदात्तः । यके इत्यत्रापि उदात्तः । एवं **तकत्** इत्यत्रापि उदात्तो भवति । **ञित्स्वरबाधनार्थम् इति**—च्फञश्चकारो व्रातच्फञोरस्त्रियाम् इति विशेषणार्थम् अस्ति। ञकारो वृद्धौ चरितार्थः । ततः चितः इति स्वरं बाधित्वा ञ्नित्यादिर्नित्यमिति ञित्स्वरः प्राप्तः तद्बाधनार्थम् इदं सूत्रमिति भावः । **कौञ्जायनाः**—कुञ्जस्यापत्यानि इत्यर्थे च्फञि आयन्नादेशे ञप्रत्यये ञो लुकि रुपम् । तद्धितस्येति अन्त उदात्तः ।

हिन्दी

२३०७. प्रत्यय का आदि उदात्त होता है ।

२३०८. सुप् एवं पित् प्रत्ययों का आदि अनुदात्त होता है ।

२३०९. चित् प्रत्यय का अन्त उदात्त होता है ।

वा. चित् प्रत्यय रहने पर प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय का अन्त उदात्त होता है, ऐसा कहना चाहिये।

२३१०. चित् तद्धित का अन्त उदात्त होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२३११. कितः-६।१।१६५।। कितस्तद्धितस्यान्त उदात्तः । यदाग्नेयः ।
२३१२. तित्स्वरितम्-६।१।१८५।। क्व नूनम् ।

२३१३. उपोत्तमं रिति-६।१।२१७।। रित्प्रत्ययान्तस्य उपोत्तममनुदात्तं स्यात् । यदाहवनीये ।
२३१४. ञ्नित्यादिर्नित्यम्-६।१।१९७।। ञिदन्तस्य निदन्तस्य चादिरुदात्तः । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या । पुंसः कर्मणि ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । सुते दधिष्व नश्चनः । चायतेरसुन् । चायतेरन्ने ह्रस्वश्चेति चकारादसुनो नुडागमः ।
२३१५. लिति-६।१।१९३।। प्रत्ययात् पूर्वमुदात्तं स्यात् । चिकीर्षकः । अत्र ईकारस्योदात्तता । इत्यादिप्रयोगमनुसृत्यान्वाख्यातव्यम् ।

॥ इति स्वरप्रक्रिया ॥

एषा वरदराजेन बालानामुपकारिका ।
अकारि पाणिनीयानां मध्यसिद्धान्तकौमुदी ॥
कृतिर्वरदराजस्य मध्यसिद्धान्तकौमुदी ।
तस्याः संख्या तु विज्ञेया खवाणकरवह्निभिः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

यदाग्नेयः—अग्नेर्ढक्, ढस्य एयः, आग्नेयः इति कित् तद्धितान्तः, तस्यान्त उदात्तः कितः इत्यनेन । **तित् स्वरितम्**—तित्प्रत्ययस्यान्तं स्वरितं भवति । **क्व नूनम्**—किम् शब्दात् अत्, किमोऽत् इति क्वादेशे पररूपे क्व इति, तस्यान्त अकारः स्वरितः । **उपोत्तमम्**—अन्तस्य समीपे भवमुपोत्तमम् । **यदाहवनीये**—आङ्पूर्वात् हुधातोरनीयर्, धातोरुकारस्य गुणेऽवादेशे आहवनीयम् इति, तस्य उपोत्तमम् ईकारः अनुदात्तं भवति । ततो गतिसमासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः । **पौंस्या**—पुंस् शब्दात् ष्यञि पौंस्येति, तस्यादिरुदात्तः । **चन इति**—चाय् धातोः असुन्, चायतेरन्ने इति असुनो नुट्, ह्रस्वश्च, लोपो व्योरिति यलोपः । नित्त्वात् आदिरुदात्तः। **चिकीर्षकः**—ण्वुलोऽकादेशः । तस्मात् पूर्व ईकारः उदात्तः ।

॥ इति स्वरप्रक्रिया ॥

हिन्दी

२३११. कित् तद्धित का अन्त उदात्त होता है ।

२३१२. तित् प्रत्ययान्त स्वरित होता है ।

२३१३. रित् प्रत्ययान्त का अन्त्य से पूर्व अनुदात्त होता है ।

२३१४. ञिदन्त एवं निदन्त का आदि अच् उदात्त होता है ।

२३१५. लित् प्रत्यय परे प्रत्यय से पूर्व स्वर उदात्त होता है । **एषा वरदाराजेनेति**—पाणिनि रचित व्याकरणशास्त्र को पढने वाले बालकों के लिए अत्यन्त उपकारिका यह मध्य सिद्धान्तकौमुदी वरदराज ने रची है । वरदराज की यह कृति मध्यसिद्धान्तकौमुदी है इसकी संख्या (शब्द की दृष्टि से) ३२५० है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ लिङ्गानुशासनम्
स्त्र्यधिकारः (स्त्रीलिङ्गाधिकारः)

१. लिङ्गम् ॥

२, स्त्री ॥ अधिकारसूत्रे एते ।

३. ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृयातृननान्दरः ॥ एते पञ्चैव स्त्रीलिङ्गाः ।

४. अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः । अनिप्रत्ययान्त ऊप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां स्यात् । अवनिः । चमूः ।

५. मिन्यन्तः ॥ मिनिप्रत्ययान्तः स्त्रियाम् । भूमिः । ग्लानिः ।

६. क्तिन्नन्तः ॥ कृतिरित्यादि ।

७. [1]ईप्रत्ययान्तश्च ॥ लक्ष्मीः ।

मध्यमनोरमापूरणी

लिङ्गम्—लिङ्गानुशासनं यावत् अधिकारः । **स्त्री**—अयमधिकारः ताराधाराज्योत्स्नादयश्चेति सूत्रं यावदस्ति । एतदेव मूले उक्तम् अधिकारसूत्रमित्यादिना । **एते पञ्चैवेति**—मातृ दुहितृस्वसृयातृननान्दृ इत्येते पञ्चैव ऋकारान्ताः स्त्रीलिङ्गे प्रयुक्ताः भवन्ति । कर्तृ भर्तृ इत्यादीनां तु ऋन्नेभ्यो ङीप् इति ङीपा कर्त्री भर्त्रीत्यादि रूपं स्त्रीलिङ्गे भवति । तिसृ-चतसृ इत्येतयोः प्रकृतिः त्रि चतुर् इति । प्रकृतेः ऋदन्तत्वाभावान्न ङीप् । स्त्रियामेतौ त्रिचतुरोः आदेशौ भवतः। **अवनिः**—अव्धातोः अर्तिसृधृधम्यम्यश्यवितृभ्योऽनिः इत्यौणादिकः अनिः प्रत्ययः । पृथिवीत्यर्थः । **चमूः**—चम् धातोः कृपिचमितनिधनिसर्जिभ्यः ऊः इति ऊप्रत्ययः औणादिकः । **चमूः**-सेना । **मिन्यतः**—मिप्रत्ययान्तः निप्रत्ययान्तश्च धातुः स्त्रियां भवतीत्यर्थः । **भूमिः**—भूधातोः भुवः कित् इत्यनेन मिप्रत्ययः, सःकित्, अत एव नात्र गुणः, पृथिवीत्यर्थः । **ग्लानिः**—ग्ला इत्यात्वे धातुः "वहिश्रिश्रुयुदुग्लाहात्वरिभ्यो नित् इति नित्प्रत्ययः । **कृतिः**—कृधातोः क्तिन् प्रत्ययः । क्तिन्नन्त इत्यनेन स्त्रीत्वम् । **ईप्रत्ययान्तश्चेति**-स्त्रीलिङ्गे भवतीति शेषः । **लक्ष्मीः**—लक्षेर्मुट् च इति ई-प्रत्ययः । **एवम्**—अवीः = नारी, तरीः = नौः, स्तरीः = धूमः, तन्त्रीः= वीणादेर्गुणः, इत्याद्यपि स्त्रीलिङ्गे भवति । सर्वत्र अवि तृस्तृतन्त्रिभ्य ईः इति ई-प्रत्ययो भवति।

हिन्दी

१. लिङ्गम् का अधिकार है, लिङ्गानुशासन तक ।

२. "स्त्री" यह अधिकार सूत्र है ।

३. ऋकारान्त मातृदुहितृस्वसृयातृ एवं ननान्दृ शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ।

४. अनि एवं ऊप्रत्ययान्त धातु स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं ।

५. मि एवं निप्रत्ययान्त धातु स्त्रीलिङ्ग में हैं ।

६. क्तिन् प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।

७. 'ई प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है ।

---

1. ईकारान्तश्चेति कौमुद्यां पाठः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८. ऊङाबन्तश्च ॥ कुरूः , अजा ।
९. य्वन्तमेकाक्षरम् ॥ स्त्रीः । भूः ।
१०. विंशत्यादिरानवतेः ॥ इयं विंशतिः ।
११. तलन्तः ॥ शुक्लता ।
१२. भाःस्रुक्स्रग्दिगुष्णिगुपानहः ॥ इयं भाः ।
१३. स्थूणोर्णे नपुंसके च ॥ स्थूणा । स्थूणम् ।
१४. शष्कुलिराजिकुट्यशनिवर्तिभृकुटित्रुटिवलिपङ्क्तयः ॥ एते स्त्रियां स्युः । इयं शष्कुलिः ।
१५. अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वञ्च ॥ अबादीनां पञ्चानां स्त्रीत्वं स्याद् बहुत्वं च । आपः इमाः ।
१६. ताराधाराज्योत्स्नादयश्च ॥ इयं तारा ।

॥ इति स्त्र्यधिकारः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

ऊङाबन्तश्च—ऊङ्प्रत्ययान्तः आबन्तश्च स्त्रियां भवति । आप् इत्यनेन टाप्डाप्चापां ग्रहणं भवति । **य्वन्तमिति**—ईकारान्तः ऊकारान्तश्च एकाक्षरशब्दः स्त्रीलिङ्गो भवति । **यथा**—स्त्यायतोऽस्यां शुक्रशोणिते इति स्त्रीशब्दः । स्त्यायतेर्ड्रट् इति ड्रटि यलोपे ङीपि रूपम् । भूः भ्रूः इत्यादि अपि । **विंशत्यादिरानवतेः**—विंशतेः आरभ्य नवतिपर्यन्ताः शब्दाः "पङ्क्तिविंशति" इत्यादिसूत्रनिर्दिष्टाः स्त्रीलिङ्गाः भवन्ति । **यथा**—इयं विंशतिरिति । **तलन्तः**—तल्प्रत्ययान्तः स्त्रीलिङ्गो भवति । शुक्लता, कृष्णता, देवता इत्यादि । **भाः स्रुगिति**—भाः स्रुक्, दिक् उष्णिक्, उपानत् इत्येते स्त्रीलिङ्गे स्युः । **स्थूणोर्णे नपुंसके च**—स्थूणा स्थूणम्, ऊर्णा, ऊर्णम् इति स्त्रीनपुंसकयोर्भवतः । **शष्कुलि इत्यादि**—शष्कुलिः राजिः कुटिः अशनिः वर्तिः भृकुटिः त्रुटिः वलिः पङ्क्तिः इत्येते शब्दाः स्त्रीलिङ्गे भवन्तीत्याशयः । **इयं शष्कुलिः**—कर्णविवरणम् । **अप् सुमनस् इति**—अप् सुमनस् समा सिकता वर्षा इत्येते शब्दाः स्त्रियां सन्ति बहुवचनान्ताश्चेत्यर्थः । **आपः**—जलम् । **सुमनसः**—स्त्रियः पुष्पञ्च । सुमनाः मालतीजातिः । देववाची अयं पुँल्लिङ्गः । एका सिकता इति भाष्यप्रयोगात् समां समां विजायते इत्यत्र समायां समायामिति भाष्याच्च एतेषां बहुत्वं प्रायिकमस्ति । अतः एकत्वेऽपि न क्षतिः । **ताराधारेति**—तारा धारा ज्योत्स्ना इत्यादयः शब्दाः स्त्रियां सन्ति ।

॥ इति स्त्र्यधिकारः ॥

हिन्दी

८. ऊङ् प्रत्ययान्त तथा आबन्तशब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं ।
९. ईकारान्त एवं ऊकारान्त एकाक्षर स्त्रीलिङ्ग में होते हैं ।
१०. विंशति से नवति पर्यन्त स्त्रीलिङ्ग हैं ।
१२. भास् स्रुज् स्रज् दिश् उष्णिह् एवं उपानह् शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ।
१३. स्थूणा एवं ऊर्णा शब्द स्त्रीलिङ्ग एवं नपुंसक दोनों में हैं ।
१४. शष्कुलि राजि कुटि अशनि वर्ति भृकुटि त्रुटि वलि पङ्क्ति ये सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग में हैं ।
१५. अप् सुमनस् समा सिकता व वर्षा शब्द स्त्रीलिङ्ग एवं बहुवचनान्त हैं ।
१६. तारा धारा और ज्योत्स्ना आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पुंलिङ्गाधिकारः

१७. **पुमान् ।। अयमधिकारः ।**

१८. **घञबन्तः ।। पाकः । करः । भावार्थ एवेदम् ।**

१९. **घाजन्तश्च ।। विस्तरः । चयः।**

२०. **भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके ।। भयमित्यादि ।**

२१. **नङन्तः ।। पुंसि स्यात् । यज्ञः इत्यादि ।**

२२. **याच्ञा स्त्रियाम् ।। पूर्वस्याऽपवादः ।**

२३. **क्यन्तो घुः । आधिः । प्रधिः ।**

२४. **इषुधिः स्त्री च ।। चात्पुंसि । इयमयं वा इषुधिः ।**

२५. **द्यौः स्त्रियाम् ।।**

मध्यमनोरमापूरणी

घञबन्तः—घञ्प्रत्ययान्तः अप्प्रत्ययान्तश्च पुंसि स्यात् । **पाकः**—पच्धातोः भावे घञ् । उपधावृद्धिः, चजोरिति कुत्वम् । अनेन पुंस्त्वम् । **करः**—कृधातोः ऋदोरप् इति अप्प्रत्यये गुणे रपत्वम् । **भावार्थ एवेदमिति**—नपुंसकत्वविशिष्टे भावे क्तल्युड्भ्यां स्त्रीत्वविशिष्टे तु स्त्रियां क्तिन्निति बाधात् परिशेषात् भावार्थकः एव घञ् अप् चात्र गृह्यते । कर्मादौ घञि तु विशेष्यलिङ्गता भवति । **घाजन्तश्च**—घप्रत्ययान्तः अचप्रत्ययान्तश्च पुंसि स्यात् । **विस्तरः**—विपूर्वात् स्तॄधातोः घः । **चयः**—चिधातोः एरच् । **भयलिङ्गेति**—भयम् इति अच्प्रत्ययान्तः, लिङ्गम् इत्यच्प्रत्ययान्तः, भज्धातोर्घे भगम् इति, पद्धातोरचि पदमिति भवति । घाजन्तश्च इत्यनेन पुंस्त्वं प्राप्तं तद् प्रबाध्यानेन नपुंसकता भवति । **नङन्तः**—नङ्प्रत्ययान्तः पुंसि भवति । यथा यज्ञः यत्नः विश्नः प्रश्नः इत्यादि । **याच्ञा**—याच्धातोः नङ्, नङन्तःइति सूत्रं प्रबाध्य याच्ञा स्त्रियामिति स्त्रीत्वे टाप् । **क्यन्तो घुः**—किप्रत्ययान्तो घुसंज्ञः पुंसि स्यादित्यर्थः । **यथा**—आधिः प्रधिः विधिः । एषु उपसर्गे घोः किः इति किप्रत्यये धाधातोरालोपः । **इषुधिः**—किप्रत्ययान्तः । **द्यौरिति**—द्यो शब्दः स्वर्गवाचकः, अतः देवासुरात्मस्वर्गगिरि इत्यादिना पुंस्त्वे प्राप्तेऽनेन स्त्रीत्वं विधीयते ।

हिन्दी

१७. 'पुमान्' यह अधिकार सूत्र है ।

१८. घञ् प्रत्ययान्त एवं अप् प्रत्ययान्त पुलिङ्ग होते हैं ।

१९. घ एव अच् प्रत्ययान्त शब्द पुंलिङ्ग होते हैं ।

२०. भय लिङ्ग भग एवं पद नपुंसक में हैं ।

२१. नङ्प्रत्ययान्त शब्द पुँलिङ्ग होते हैं ।

२२. याच्ञा (नङन्त) स्त्रीलिङ्ग में होता है

२३. कि प्रत्ययान्त घुसंज्ञक पुंलिङ्ग में होता है ।

२४. इषुधि (किप्रत्ययान्त) स्त्रीलिङ्ग एवं पुंलिङ्ग दोनों हैं ।

२५. द्यो शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

२६. क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि ॥ क्रतुरध्वरः ।
२७. अभ्रं नपुंसकम् ॥ पूर्वस्यापवादः ।
२८. उदन्तः ॥ अयं पुंसि स्यात् । प्रभुः । विभुः ।
२९. धेनुरज्जुकुहुसरयुतनुरेणुप्रियङ्गवः स्त्रियाम् ॥ इयं धेनुः ।
३०. रुत्वन्तः ॥ मेरुः । सेतुः ।
३१. दारुकसेरुजतुवस्तुमस्तूनि नपुंससके च । इदं दारु । अयं दारुः ।
३२. सक्तुर्नपुंसके च ॥ सक्तु । सक्तुः । अदन्त इत्यधिकृत्य-
३३. कोपधः ॥ कोपधोऽकारान्तः पुंसि स्यात् । स्तबकः । कल्कः ।
३४. चिबुकादीनि नपुंसके ॥ चिबुकम् ।
३५. टोपधः ॥ अदन्तः पुंसि । घटः । पटः ।

मध्यमनोरमापूरणी

क्रतुपुरुषेति—एते क्रत्वादयः पुंसि स्युः । क्रतुः अध्वरः । कपोलः=गण्डः । गुल्फः=प्रपदः । भाषायां 'टखना' इति प्रसिद्धः । मेघः = वारिदः । अभिधानः करणल्युडन्तः वाचकशब्दपरः । शब्दस्वरूपापेक्षया नपुंसकत्वमपि भवत्यस्य । **अभ्रम्**—क्रतुपुरुषेति प्राप्तं पुस्त्वं प्रबाध्य नपुंसकत्वं विधीयते । **धेनुरज्जु इत्यादि**—उदन्तः इत्यनेन पुंस्त्वं प्राप्तं तत्प्रबाध्य स्त्रीत्वं क्रियते। अतः इयं धेनुः रज्जुः सरयुः तनुः रेणुः प्रियङ्गुः इत्यादयः स्त्रीलिङ्गे सन्ति इति बोध्यम् । **रुत्वन्तः**- रुप्रत्ययान्तः तुप्रत्ययान्तश्च पुंसि भवतीत्यर्थः । मेरुः, सेतुः इत्याद्युदाहरणम् । **दारुकसेरु इत्यादि**- रुतुप्रत्ययान्तौ पूर्वेण पुंसि स्याताम्, किन्तु दारु-कसेरु इति रुप्रत्ययान्तौ जतु वस्तु मस्तु इति तुप्रत्ययान्तश्च पुंसिनपुंसके च भवन्ति इति बोध्यम् । **सक्तुरिति**—रुत्वन्तः इति नित्यं पुंस्त्वं प्रबाध्यानेन नपुसकत्वं पुंस्त्वं च विधीयते । अतः इदं सक्तु,अयं सक्तुः इत्यपि भवति । **अदन्त इत्यधिकृत्येति**—प्राग्रश्मेरकारान्तः इत्यनेन अकारान्त इत्यधिक्रियते । रश्मिर्दिवसाभिधानमिति सूत्रं यावदधिकारः इति बोध्यम् । **कोपधः**—अकारान्तः कोपधः पुँल्लिङ्गे भवति । कल्कः, स्तबकः इत्याद्युदाहरणम् । **चिबुकादीनि इति**—अकारान्तकोपधेषु चिबुक शालूक प्रातिपदिक अंशुक उल्मुक इत्येते पुंसि भवन्तीत्यर्थः । कोपधः इत्यस्याऽपवादोऽयम् ।

हिन्दी

२६. क्रतु पुरुष इत्यादि पुंलिङ्ग में होते हैं ।
२७. अभ्र शब्द नपुंसक में प्रयुक्त होता है ।
२८. उदन्त शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं ।
२९. धेनु रज्जु कुहु सरयु इत्यादि उदन्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।
३०. रु एवं तु प्रत्ययान्त पुंलिङ्ग हैं ।
३१. दारु कसेरु जतु पुंलिङ्ग एवं नपुंसक दोनों हैं ।
३२. सक्तु शब्द पुँल्लिङ्ग एवं नपुंसक दोनों में प्रयुक्त होते हैं ।
३३. अकारान्त कोपध शब्द पुँल्लिङ्ग है ।
३४. चिबुक आदि कोपध नपुंसक में है ।
३५. टोपध अकारान्त पुंलिङ्ग होता है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

३६. किरीटादीनि नपुंसके च ॥ किरीटम् । किरीटः ।
३७. णोपधः ॥ अदन्तः पुंसि । गणः । पाषाणः ।
३८. ऋणादीनि नपुंसके ॥ ऋणम् ।
३९. कार्षापणादीनि नपुंसके च ॥ चात् पुंसि ।
४०. थोपधः ॥ अदन्तः पुंसिः । रथः । यूथः ।
४१. नोपधः ॥ अदन्तः पुंसि । इनः । फेनः ।
४२. जघनादीनि नपुंसके ॥ जघनम् ।
४३. पोपधः ॥ अदन्तः पुंसि । दीपः । पर्पः । सर्पः ।
४४. पापादीनि नपुंसके ॥ पापम् ।
४५. शूर्पकुतपकुणपद्वीपविटपानि नपुंसके च ॥ चात् पुंसि ।

मध्यमनोरमापूरणी

टोपधः—अकारान्तः टोपधः पुँल्लिङ्गे भवति । घटः पटः इत्याद्युदाहरणम् । **किरीटादीनि इति**-किरीट मुकुट ललाट वटवीट श्रृंगाट कराट लोष्ट इत्येते शब्दाः नपुंसके भवन्ति चात् पुंसि अपि । टोपधः इत्यस्याऽपवादोऽयम् । गणः पाषाणः इत्यादि णोपधः इत्यस्योदाहरणम् । **ऋणादीनि इति**—णोपधः इत्यस्यापवादोऽयम् । णोपधेषु ऋणलवणपर्णतोरण, उष्ण इत्येते शब्दाः नपुंसके स्युरित्यर्थः । यथा ऋणं लवणमिति । **कार्षापणादीनि**—कार्षापण स्वर्ण सुवर्ण व्रण चरण वृषण विषाण चूर्ण तृण इत्येते णोपधाः नपुंसके पुंसि च भवन्ति इत्यर्थः । **थोपधः**-पुंसि स्यात् । यथा रथः । इनः फेनः इति नोपधः पुंसि भवति । **जघनादीनि**—नोपधेषु जघन अजिन तुहिन कानन वन वृजिनविपिनवेतनशासनसोपानमिथुनश्मशानरत्ननिम्नचिह्न इत्येते शब्दाः नपुंसके भवन्तीत्यर्थः । नोपधः इत्यस्यापवादोऽयम् । **पोपधः**—अकारान्तः पोपधः पुंसि स्यादित्यर्थः । अस्यापवादसूत्रमाह-**पापादीनि नपुंसके इति**-पाप रूप उडुप तल्प शिल्पपुष्पसमीप-अन्तरीप इत्येते शब्दाः नपुंसके भवन्तीत्यर्थः । **शूर्पकुतपेति**—एते शूर्पादयः शब्दाः नपुंसके भवन्ति चात् पुंस्यपि इत्यर्थः । अतः शूर्पम् शूर्पः कुतपं कुतपः इत्यपि रूपं भवति ।

हिन्दी

३६. किरीट आदि टोपध नपुंसक एवं पुंलिङ्ग होता है ।
३७. णोपध पुंलिङ्ग होता है ।
३८. ऋण आदि णोपध शब्द नपुंसक होता है ।
३९. कार्षापण सुवर्ण आदि णोपध शब्द पुंलिङ्ग एवं नपुंसक दोनों में हैं ।
४०. अकारान्त थोपध पुंलिङ्ग है ।
४१. अकारान्त नोपध पुंलिङ्ग होता है ।
४२. नोपध शब्दों में जघन अजिन तुहिन इत्यादि नपुंसक होते हैं ।
४३. अकारान्त पोपध पुंलिङ्ग होता है ।
४४. पोपध में पाप रूप उडुप तल्प शिल्प पुष्प समीप अन्तरीप ये सभी नपुंसक होते हैं ।
४५. शूर्पकुतप कुणप द्वीप एवं विटप शब्द नपुंसक तथा पुंलिङ्ग दोनों हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

४६. भोपधः । कुम्भः । सरभः ।
४७. तलभं नपुंसकम् ॥
४८. जृम्भं नपुंसके च ॥
४९. मोपधः ॥ होमः । धर्मः ।
५०. रुक्मादीनि नपुंसके ॥ इदं रुक्मम् ।
५१. संग्रामादीनि नपुंसके च ॥ चात् पुंसि । संग्रामः, संग्रामम् ।
५२. योपधः ॥ हयः । समयः ।
५३. किसलयादीनि नपुंसके ॥
५४. गोमयादीनि नपुंसके च ॥
५५. रोपधः ॥ क्षुरः । खुरः । अङ्कुरः ।
५६. द्वारादीनि नपुंसके च ॥ इदं द्वारम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

भोपधः—अकारान्तः भोपधः पुंसि स्यात् । यथा इभः कुम्भः सरभः इत्यादि । **तलभं नपुंसकम्**-पूर्वसूत्रापवादोऽयम् । **जृम्भं नपुंसके च**—जृम्भशब्दः नपुंसके चात् पुंस्यपि स्यादित्यर्थः । **मोपधः**-अकारान्तः मोपधः पुंसि भवति इत्यर्थः । **होमः**—हुदानादनयोः, मन् प्रत्ययः । **धर्मः**—ध्रियतेऽनेन लोक इत्यर्थे धृधातोः मन् प्रत्ययः । मोपधः पुंसि प्रयुज्यते इति नियमेन पुंलिङ्गता। **रुक्मादीनि**—मोपधः इत्यस्यापवादोऽयम् । **रुक्मम्**—सुवर्णाभूषणम्, सिध्म युग्म इध्म गुल्म अध्यात्म कुङ्कुम इत्यादि मोपधाः नपुंसके भवन्ति । **संग्रामादीनि**—मोपधेषु संग्राम दाडिम कुसुम आश्रम क्षेम क्षौम होम उद्दाम = "निरंकुशवाची", इत्येते शब्दाः पुंसि नपुंसके च प्रयुज्यन्ते । **हयः-समयः**—योपधः इत्यनेनात्र पुंस्त्वम् । **किसलयादीनि**—योपधः इत्यस्यापवादोऽयम् । किसलय हृदय इन्द्रिय उत्तरीय इत्येते शब्दाः नपुंसके भवन्तीत्यर्थः । **गोमयादीनि**-योपधेषु गोमय कषाय मलय अन्वय अव्यय इत्येते शब्दाः नपुंसके पुंसि च सन्ति इत्यर्थः। **रोपधः**—अकारान्तः पुंसि स्यादित्यर्थः । **द्वारादीनि इति**—रोपधः इत्यस्यापवादोऽयम् । द्वार अग्र स्फार = (विस्तारवचनः) तक्र वक्र वप्र क्षिप्र क्षुद्र, नार= (जलं जनसमूहश्च) तीर दूर

हिन्दी

४६. अकारान्त भोपध पुंलिङ्ग होता है ।
४७. तलभ शब्द नपुंसक होता है ।
४८. जृम्भ शब्द पुंलिङ्ग एवं नपुंसक दोनों में है ।
४९. मकारोपध अदन्त शब्द पुंलिङ्ग होता है ।
५०. रुक्म आदि मोपध नपुंसक होते हैं ।
५१. संग्राम आदि मोपध पुंल्लिङ्ग एवं नपुंसक होते हैं ।
५२. योपध पुंल्लिङ्ग में होता है ।
५३. किसलय आदि योपध नपुंसकलिङ्ग हैं ।
५४. गोमय आदि योपध नपुंसक लिङ्ग एवं पुंलिङ्ग दोनों हैं ।
५५. रोपध शब्द पुंल्लिङ्ग हैं ।
५६. द्वार अग्र आदि रोपध शब्द नपुंसकलिङ्ग होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

५७. शुक्रमदेवतायाम् ॥ देवतायां तु शुक्रः ।
५८. षोपधः ॥ वृषः, वृक्षः ।
५९. शिरीषादीनि नपुंसके ॥ इदं शिरीषम् ।
६०. सोपधः ॥ वायसः । महानसः ।
६१. पनसबिसबुससाहसानि नपुंसके ॥
६२. चमसादीनि नपुंसके च ॥ चात्पुंसि ।
६३. कसं चाप्राणिनि ॥ कंसम् । प्राणिनि तु कंस औग्रसेनिः ।
६४. रश्मिदिवसाभिधानानि ॥ अत इति निवृत्तम् ।
६५. दीधितिः स्त्रियाम् ।

मध्यमनोरमापूरणी

कृच्छ्र रन्ध्र अश्र श्वभ्र भीर गभीर क्रूर विचित्र केयूर केदार उदर अजस्र शरीर कन्दर मन्दार पञ्जर अजर जठर अजिर वैर चामर पुष्कर गह्वर कुहर कुटीर कुलीर चत्वर काश्मीर नीर अम्बर शिशिर तन्त्र यन्त्र नक्षत्र क्षेत्र मित्र कलत्र चित्र मूत्र सूत्र वक्त्र नेत्र गोत्र अङ्गुलित्र भलत्र शस्त्र शास्त्र वस्त्र पत्र पात्र छत्र इत्येते नपुंसके स्युरित्यर्थः । **शुक्रमदेवतायाम्**—देवताभिन्नेऽर्थे शुक्रशब्दो नपुंसके स्यात् । यथा इदं शुक्रं, वीर्यम् इत्यर्थः । देवतायां तु रोपधः इति पुंस्त्वे शुक्रः इति । **षोपधः**—अकारान्तः पोषधः पुंसि स्यात् इत्यर्थः । **शिरीषादीनि**—षोपधेषु शिरीष ऋजीष = (कटाहवाची) अम्बरीष पीयूष पुरीष किल्बिष कल्माष इत्येते नपुंसके स्युरित्यर्थः। षोपधः इत्यस्यापवादोऽयम् । **पनसेति**—सोपधः इत्यस्य बाधकोऽयम् । सोपधेषु पनसादीनि नपुंसके स्युरित्यर्थः । इदं पनसं, बिसम्, बुसम् धनं, शुष्ककरीषम्, भाषायां 'भूसी' इति वा प्रसिद्धम् । **चमसादीनि**—चमस अंस रस निर्यास उपवास कार्पास वास मास कास कांस मांस इत्येते शब्दाः पुंसि नपुंसके च भवन्तीत्यर्थः । इदं चमसम्, अयं चमस इत्यादि । **कंसं चाप्राणिनि**—अप्राणिनि वाच्ये कंसशब्दो नपुंसके स्यादित्यर्थः । कंसम्=पानपात्रम् । प्राणिनि तु कंसः उग्रसेनपुत्रः प्रसिद्ध एव । **रश्मिदिवसेति-** अत इति नानुवर्तते । रश्मिनामानि दिवसनामानि च पुंसि स्युरित्यर्थः । अयं रश्मिः दिवसः इत्यादि । **दीधितिः स्त्रियाम्**—दीधितिः रश्मिनाम, अतः पूर्वेण पुंस्त्वे प्राप्ते अनेन स्त्रीत्वं विधीयते । इयं दीधितिः इति ।

हिन्दी

५७. देवताभिन्न अर्थ में शुक्र शब्द नपुंसक होता है ।
५८. अकारान्त षोपध पुंल्लिङ्ग होता है ।
५९. शिरीष आदि षोपध नपुंसक होते हैं ।
६०. सोपध शब्द पुंल्लिङ्ग होता है ।
६१. सोपध में पनस आदि नपुंसक होते हैं ।
६२. चमस आदि पुंलिङ्ग एवं नपुंसक दोनों में हैं ।
६३. अप्राणी अर्थ में कंस शब्द नपुंसक है ।
६४. रश्मि एवं दिवस के नामवाची पुंलिङ्ग में होते हैं ।
६५. रश्मिवाची दीधिति शब्द स्त्रीलिङ्ग में है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

६६. दिनाहनी नपुंसके ॥ दिनम् । अहः ।

६७. मानाभिधानानि ॥ कुडवः ।

६८. द्रोणाढकौ नपुंसके च ॥ चात् पुंसि ।

६९. खारीमानिके स्त्रियाम् ॥ इयं खारी ।

७०. दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च ॥ इमे दाराः ।

७१. मरुद्गरुत्तरदृत्विजः ॥ अयं मरुत् ।

७२. ध्वजगजमुञ्जपुञ्जाः ॥ एते पुंसि ।

७३. वंशांशपुरोडाशाः ॥ अयं वंशः ।

७४. ह्रदकन्दकुन्दबुदबुदशब्दाः । अयं ह्रदः ।

७५. अर्घपथिमथ्यृभुक्षिस्तम्बनितम्बपूगाः ॥ अयमर्घः ।

मध्यमनोरमापूरणी

दिनाहनीति—पूर्वस्यापवादोऽयम् । दिवसाभिधानेषु दिन अहन् इत्येतौ नपुंसके स्यातामित्यर्थः। **मानाभिधानानि**—परिमाणनामानि पुंसि स्युरित्यर्थः । अयं प्रस्थः, अयं कुडवः। कुडवः प्रस्थचतुर्थांशः । द्वादशमुष्टिपरिमितान्नमापः । **द्रोणाढकौ**—परिमाणनामसु द्रोणआढक इत्येतौ नपुंसके पुंसि च स्याताम् । द्रोणो व्रीहिः । इदम् आढकम् । अयमाढक इति । **खारीमानिके**—एतौ मापविशेषवाचिनौ स्त्रियां स्यातामित्यर्थः । इयं खारी, मानिका । **दाराक्षतेति**—दारा अक्षत लाज असु इत्येते शब्दाः पुंलिङ्गे नित्यबहुवचनाश्च भवन्ति । इमे दाराः । इमे अक्षताः, लाजाः, असवः इति । **मरुत् इति**—एते पुंसि स्युरित्यर्थः । **ध्वजेति**-पुंसि भवन्तीति । अयं ध्वजः, गजः, मुञ्जः, पुञ्जः इति । **वंशेति**—वंश अंश पुरोडाश इति पुंसि स्युः । अयं वंशः, अंशः, पुरोडाशः इति । **ह्रदेति**—एते पुंसि स्युः । अयं ह्रदः, अयं कन्दः = ग्रन्थियुक्तमूलम् । अयं बुदबुदः, शब्दश्च । **अर्घेति**—पुंसि स्युरित्यर्थः । अयमर्घः, पन्थाः, मन्थाः, ऋभुक्षाः, स्तम्बः, नितम्बः पूगः इत्युदाहरणम् ।

हिन्दी

६६. दिन एवं अहन् शब्द नपुंसक हैं ।

६७. माप वाची नाम पुंलिङ्ग होते हैं ।

६८. मापवाची द्रोण व आढक पुंलिङ्ग तथा नपुंसक दोनों हैं ।

६९. मापवाची खारी एवं मानिका स्त्रीलिङ्ग में हैं ।

७०. दारा अक्षत लाजा व असु शब्द पुंलिङ्ग तथा नित्य बहुवचनान्त हैं ।

७१. मरुत् गरुत् तरत् व ऋत्विज् पुंलिङ्ग में हैं ।

७२. ध्वजादि शब्द पुंलिङ्ग हैं ।

७३. वंश अंश व पुरोडाश पुंलिङ्ग हैं ।

७४. ह्रदादि शब्द पुंलिङ्ग हैं ।

७५. अर्घ पथिन् मथिन् ऋभुक्षिन् स्तम्ब नितम्ब एवं पूग शब्द पुंलिङ्ग हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

७६. सारथ्यतिथिकुक्षिवस्तिपाण्यञ्जलयः ॥

७७. पल्लवपल्वलकफरेफकटाहनिर्व्यूहमठमणितरङ्गतुरङ्गगन्धस्कन्ध- मृदङ्गसङ्ग-समुद्रपुङ्खाः ॥ अयं पल्लव इत्यादि ।

७८. ऋषिराशिदृतिग्रन्थिकृमिध्वनिबलिकौलिमौलिरविविकपि मुनयः ॥ एते पुंसि स्युः । अयम् ऋषिः ।

७९. हस्तकृन्तान्तव्रातवातदूतधूर्तसूतचूतमुहूर्ताः ॥ एते पुंसि । अयं हस्त इत्यादि।

॥ इति पुँलिङ्गाधिकारः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

सारथ्यतिथि—सारथि अतिथि कुक्षि वस्ति = (आवासमूत्राशयार्थवाची) पाणि अञ्जलि इत्येते शब्दाः पुंसि स्युः । **पल्लवेति**—पल्लवादयः पुंसि स्युरित्यर्थः । अयं पल्वलः = लघु तडागः। पुंखः = पुमांसं खनति इत्यर्थे उः । वाणपक्षः श्येनश्च । **ऋषिराशीति**—ऋष्यादयः शब्दाः पुंसि स्युः । अयं दृतिः = मशकः, चर्मभस्त्रिका च । **हस्तेत्यादि**—हस्त कृन्त अन्त व्रात वात दूत धूर्त सूत चूत मूहूर्त इत्येते शब्दाः पुंसि स्युः । अयं हस्तः इत्याद्युदाहरणम् ।

॥ इति मध्यमनोरमापूरण्यां पुँल्लिङ्गाधिकारः ॥

हिन्दी

७६. सारथि अतिथि कुक्षि वस्ति पाणि व अञ्जलि शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं ।

७७. पल्लव पल्वल कफ रेफ कटाह निर्व्यूह मठ मणि तरङ्ग तुरङ्ग गन्ध स्कन्ध मृदङ्ग सङ्ग समुद्र पुङ्ख ये सभी शब्द पुंलिङ्ग हैं ।

७८. ऋषि राशि दृति ग्रन्थि इत्यादि शब्द पुँल्लिङ्ग हैं ।

७९. हस्त कृन्त अन्त इत्यादि शब्द पुंलिङ्ग हैं ।

॥ इति पुँल्लिङ्गाधिकार ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ नपुंसकाधिकारः

८०. **नपुंसकम् ।। अयमधिकारः ।**

८१. **भावे ल्युडन्तः ।। ज्ञानम् । हसनम् । भावे किम्-पचनः ।**

८२. **निष्ठा च ।। भावे या निष्ठा तदन्तं क्लीबं स्यात् । गीतम् ।**

८३. **त्वष्यञौ तद्धितौ ।। शुक्लत्वम् । शौक्ल्यम् । षित्त्वसामर्थ्यात् पक्षे स्त्रीत्वे ङीष् । चातुर्यम् । चातुरी ।**

८४. **कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्यः ।। ब्राह्मण्यम् ।**

८५. **यद्यढग्यग्यगञणवुञ्छाश्च भावकर्मणि ।। एतानि क्लीबानि । स्तेयम् । सख्यम् । कापेयम् । सैनापत्यम् । औष्ट्रम् । द्वैहायनम् । पितापुत्रकम् । अच्छावाकीयम् ।**

मध्यमनोरमापूरणी

भावे ल्युडन्तः—भावे ल्युट्प्रत्ययान्तः नपुंसके स्यात् इत्यर्थः । नपुंसके भावे क्तः, "ल्युट् च", इत्यनेनैव गतार्थमिदमत्र स्पष्टार्थमुक्तम् । **भावे किमिति**—पचतीति पचनः इत्यत्र कृत्यल्युटो बहुलमिति कर्तरि ल्युट् । भावे ल्युटोऽभावादत्र न भवति नपुंसकत्वम् । **निष्ठेति**—भावे इति अनुवर्तते । निष्ठापदं क्तप्रत्ययस्य बोधकमस्ति । भावे या निष्ठा तदन्तं नपुंसकं भवतीत्याशयः। 'नपुंसके भावे क्तः' इत्यनेनैव गतार्थमिदमपि । गीतम् हसितम् इत्याद्युदाहरणम् । **त्वष्यञौ**-भावे इत्यनुवर्तते । भावेऽर्थे विहितौ यौ त्वष्यञ्प्रत्ययौ तदन्तौ नपुंसके भवतः इत्यर्थः । **यथा**-शुक्लस्य भावः शुक्लत्वम्, शौक्ल्यम्, कृष्णत्वम् कार्ष्ण्यमित्यादि । **चातुर्यम्, चातुरी**—ष्यञः षित्करणसामर्थ्यात् पक्षे स्त्रीत्वं भवति । स्त्रीत्वे च षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् भवति । चतुरस्य भावः इत्यर्थे ष्यञि चातुर्य इति जाते स्त्रीत्वविवक्षायां ङीषि हलस्तद्धितस्येति यलोपे यस्येति चेत्यलोपे चातुरीति सिद्ध्यति । **कर्मणि चेति**—चात् 'भावे' इत्यपि ग्राह्यम् । त्वष्यञौ तद्धितौ इत्यनुवर्तते । ब्राह्मणादिभ्यः गुणवाचकेभ्यश्च कर्मणि अर्थे भावे चार्थे विहितौ यौ त्वष्यञौ तदन्तौ नपुंसके भवतः । **ब्राह्मण्यम्**—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा इत्यर्थे गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि चेति ष्यञ् । नपुंसकत्वम् । **यद्यढगिति**—भावकर्मणि यत् य ढक् यक् अञ् अण् वुञ् छ-प्रत्ययान्ताः नपुंसके भवन्तीत्यर्थः । **स्तेयम्**—स्तेनाद्यन्नलोपश्चेति यत् नलोपश्च । **सख्यम्**—सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् । सख्युर्यः इति यप्रत्ययः । **कापेयम्**—कपेः भावः कर्म वा इत्यर्थे कपिज्ञात्योर्ढक् इति ढकि एयादेशः । **सैनापत्यम्**—सेनापतेः कर्म भावो वा इत्यर्थे पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् इति यक्, आदिवृद्धिः, इलोपः । **औष्ट्रम्**—उष्ट्रशब्दात् प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् । **द्वैहायनम्**—द्विहायनशब्दात् हायनान्तयुवादिभ्योऽण् इत्यण् । **पितापुत्रकम्**—पितापुत्र शब्दात् द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यो वुञ् इति वुञ्, वोरकादेशः ।

हिन्दी

८०. 'नपुंसकम्' का अधिकार है ।

८१. भाव में विहित ल्युट्प्रत्ययान्त नपुंसक होता है ।

८२. भाव में विहित जो निष्ठा, तदन्त नपुंसक होता है ।

८३. तद्धित त्व ष्यञ् प्रत्ययान्त नपुंसक होते हैं ।

८४. ब्राह्मणादि एवं गुणवाची शब्दों से 'कर्म' अर्थ या भाव में विहित जो प्रत्यय तदन्त शब्द नपुंसक होते हैं ।

८५. यद् आदि प्रत्ययान्तशब्द नपुंसक हैं, भावकर्म में ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

८६. अव्ययीभावः ॥ अधिहरि ।

८७. द्वन्द्वैकत्वम् ॥ पाणिपादम् ।

८८. अनल्पे छाया ॥ शरच्छायम् ।

८९. इसुसन्तः ॥ हविः । सर्पिः । धनुः ।

९०. अर्चिः स्त्रियाञ्च ॥ इदमियं वा अर्चिः ।

९१. छदिः स्त्रियामेव ॥ इयं छदिः ।

९२. मुखनयनलोहवनमांसरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि ॥ एषामभिधायकानि क्लीबे स्युः । मुखमाननं वक्त्रम् इत्यादि ।

९३. सीरार्थौदनाः पुंसि ॥

९४. वक्त्रनेत्रारण्यगाण्डीवानि पुंसि च ॥ चात् क्लीबे ।

मध्यमनोरमापूरणी

अच्छावाकीम्— अच्छावाच् शब्दात् होत्रादिभ्यश्छः, छस्येयः । **अव्ययीभावः** — अव्ययीभावसमासः नपुंसकसंज्ञो भवति । **यथा**—अधिहरि, यथाशक्ति अध्यात्मम् । **द्वन्द्वैकत्वम्**— द्वन्द्वश्च प्राणितूर्येत्यादिना येषां द्वन्द्वानाम् एकवद्भावो भवति ते द्वन्द्वाः नपुंसके भवन्ति । पाणिपादम्। रथिकाश्वारोहम् इत्याद्युदाहरणम् ।**अनल्पे छाया**—अनल्पविषये छायाशब्दो नपुंसके भवति । **इसुसन्तः**—इस् उस्-प्रत्ययान्तौ नपुंसके भवतः । हविः, सर्पिः धनुः इत्याद्युदाहरणम् । **अर्चिरिति**—इस्प्रत्ययान्तः अर्चिस् शब्दः स्त्रियां च भवति । **छर्दिः**— इस्प्रत्ययान्तः छर्दिश्शब्दः स्त्रियामेव भवति । **मुखनयनेति**—एतेषां वाचकानि नपुंसके स्युरित्यर्थः । **यथा-मुखम्**—आननम् । **नयनम्**—लोचनम् । **लोहं**—कालम्, अयः । **वनम्**- गहनमरण्यम् । मांसम् आमिषम् । **रुधिरम्**—रक्तम् । **कार्मुकम्**—शरासनम् । **विवरम्**—विलम्, गह्वरम् । **जलम्**—वनम्, पानीयं, वारि । **हलम्**—लाङ्गलम् । **धनम्**—द्रविणम् । **अन्नं**—भक्ष्यमशनम्। **अस्य सूत्रस्यापवादभूता त्रिसूत्री उच्यते-सीरार्थौदनेति**—सीरः हलवाची, अर्थः धनवाची, ओदनः अन्नवाची च पुंसि स्युः । **वक्त्रेति**—वक्त्रादयः पुंसि नपुंसके च स्युः । वक्त्रः, वक्त्रम् । नेत्रः, नेत्रम् । अरण्यः, अरण्यम् । गाण्डीवं गाण्डीवः इति धनुर्वाची ।

हिन्दी

८६. अव्ययीभाव समास नपुंसक होता है ।

८७. एकवद्भाव वाला द्वन्द्व नपुंसक होता है ।

८८. अनल्पविषय में छाया शब्द नपुंसक होता है ।

८९. इसन्त उसन्त शब्द नपुंसक होते हैं ।

९०. इसन्त अर्चिस् शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है तथा नपुंसक भी ।

९१. इसन्त छर्दिस् शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होता है ।

९२. मुखनयन इत्यादि के वाचक शब्द नपुंसक में हैं ।

९३. सीर, अर्थ एवं ओदन शब्द पुँल्लिङ्ग हैं ।

९४. वक्त्रनेत्र अरण्य एवं गाण्डीव शब्द पुंलिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

९५. **अटवी स्त्रियाम् ॥ पूर्वस्येयं त्रिसूत्री बाधिका ।**

९६. **लोपधः ॥ कुशलम् ।**

९७. **शीलादीनि पुंसि च ॥ चात् क्लीबे । शीलम् ।**

९८. **शतादिःसंख्या ॥ शतम्, सहस्रम् ।**

९९. **शतायुतप्रयुताः पुंसि च ॥**

१००. **लक्षा कोटिः स्त्रियाम् ॥ इयं लक्षा । 'वा लक्षा' इत्यमरात् क्लीबेऽपि, । लक्षम् ।**

१०१. **सहस्रः पुंसि ॥**

१०२. **मन्द्व्यच्कोऽकर्तरि । मन्प्रत्ययान्तो द्व्यच्कः पुंसि स्यात् चात् क्लीबे न तु कर्तरि । वर्म, चर्म । अकर्तरि किम्-ददातीति दामा ।**

१०३. **ब्रह्मन् पुंसि च ॥ अयं ब्रह्मा । इदं ब्रह्म ।**

मध्यमनोरमापूरणी

अटवी स्त्रियाम्—वनवाचकः अटवीशब्दः स्त्रियां भवति । **लोपधः**—लकारोपधः नपुंसके स्यादित्यर्थः । कुशलम्, कुलं कूलम् स्थूलमित्याद्युदाहरणम् । **शीलादीनि**— शीलमूलमङ्गल-सालकमलतलमुसलकुण्डलपललमृणालबालनिगलपलाल विडालरिवल शूल इत्येते लोपधाः पुंसि च नपुंसके स्युरित्यर्थः । शीलं शीलः मूलं मूलः इत्यादि । **शतादि**—शतादिः संख्यावाची नपुंसके स्यात् । शतम्, सहस्रम्, अर्बुदम् लक्षम् इत्याद्यूह्यम् । **शतायुतेति**—संख्यावाचिषु शत अयुत प्रयुत इत्येते पुंसि क्लीबे च स्युरित्यर्थः । अयं शतः, इदं शतम् । अयम् अयुतः, इदमयुतं वा, दशसहस्रमित्यर्थकः । प्रयुतः, प्रयुतम् = दशलक्षम् । **लक्षाकोटिरिति**—एतयोः संख्यावाचित्वान्नपुंसकत्वे प्राप्ते स्त्रीत्वं विधीयतेऽनेन । **सहस्रः पुंसि**—नपुंसकत्वे प्राप्ते इदं पुंस्त्वार्थम् । **मन्द्व्यच्कः**—अकर्तरि विहितः द्व्यच्को मन्प्रत्ययान्तः, सर्वधातुभ्यो मनिन् इति विहितः क्लीबे स्यादित्यर्थः । **चर्म** —चर्धातोः मनिन् । **वर्म**—वृधातोर्मनिन् । **अकर्तरीति किम्**—ददातीति दामा, अत्र कर्तरि व्युत्पत्तिः कल्प्यते, अतः न क्लीबता । **ब्रह्मा, ब्रह्मेति-** बृंहेर्नोच्चेति मनिन् । पुंसि नपुंसके च प्रयोगः ।

हिन्दी

९५. वनवाची अटवी शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

९६. लोपध शब्द नपुंसक है ।

९७. लोपध शील मूल मङ्गल आदि पुंलिङ्ग एवं नपुंसक दोनों हैं ।

९८. शत आदि संख्यावाची शब्द नपुंसक हैं ।

९९. शत अयुत एवं प्रयुत पुंलिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

१००. संख्यावाची लक्षा एवं कोटि स्त्रीलिङ्ग हैं ।

१०१. सहस्र शब्द पुंल्लिङ्ग है ।

१०२. मन्प्रत्ययान्त दो अच् वाला पुंलिङ्ग तथा नपुंसक है, कर्ता में नहीं ।

१०३. मन्प्रत्ययान्त ब्रह्मन् पुँल्लिङ्ग व स्त्रीलिङ्ग है ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

१०४. सामरोमणी क्लीबे ।। पूर्वस्यापवादः ।

१०५. असन्तो द्व्यच्कः ।। यशः । मनः । तपः ।

१०६. अप्सराः स्त्रियाम् ।। एता अप्सरसः ।

१०७. [1]त्रन्नन्तः । पत्रम् । छत्रम् ।

१०८. यात्रामात्राभस्त्रादंष्ट्रावरत्राः स्त्रियामेव । इति नपुंसकाधिकारः ।

मध्यमनोरमापूरणी

सामरोमणीति—मनृद्व्यच्कः इत्यस्यापवादः । सामन् रोमन् इति क्लीबे स्याताम् इत्यर्थः । इदं साम इदं रोम । **असन्तः**—सर्वधातुभ्योऽसुन् इति विहितः असुन्प्रत्ययान्तः नपुंसके स्यात् द्व्यच्क एव । यशः तपः मनः इति उदाहरणम् । **अप्सराः**—अप्सु सरन्ति इति अप्सराः, सृधातोरसुन् । असुन्-प्रत्ययान्तः अप्सरस् शब्दः स्त्रियां भवति । प्रायेणायं बहुवचनान्तः । **त्रन्नन्तः**—सर्वधातुभ्यःष्ट्रन् इति विहितः ष्ट्रन् अत्र त्रन् इत्यनेन गृह्यते । षनौ इत्संज्ञकौ स्तः। त्रन्प्रत्ययान्तः नपुंसके स्यादित्यर्थः । पत्रम् छत्रमिति उदाहरणम् । **यात्रामात्रेति**—त्रन्नन्तः इत्यत्र हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन् इति विहितस्त्रन्नपि गृह्यते । अतः तेन नपुंसकत्वे प्राप्ते यामात्रेति स्त्रीत्वं क्रियते । **यात्रा**—याधातोस्त्रन्, स्त्रीत्वे टाप् । **मात्रा**—माधातोस्त्रन्, स्त्रीत्वे टाप् । भसेः भस्त्रा । दंश्धातोः ष्ट्रन्, स्त्रीत्वे टापि दंष्ट्रा इति । **वरत्रा**—वृधातोः अत्रन्, गुणः, स्त्रीत्वे टापि रूपम् । चर्मनिर्मितं बन्धनम् ।

हिन्दी

१०४. सामन् एवं रोमन् नपुंसक हैं ।

१०५. द्व्यच्क असुन् प्रत्ययान्त नपुंसक हैं ।

१०६. असुन् प्रत्ययान्त अप्सरस् शब्द स्त्रीलिङ्ग है ।

१०७. त्रन् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक होता है ।

१०८. त्रन् प्रत्ययान्तों में यात्रा मात्रा इत्यादि शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं ।

1. 'त्रान्तः' इति सिद्धान्तकौमुद्यां पाठः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ स्त्रीपुंसाधिकारः

१०९. स्त्रीपुंसयोः ॥ अयमधिकारः ।

११०. गोमणियष्टिमुष्टिपाटलिवस्तिशाल्मलित्रुटिमसिमरीचयः ॥ इयमयं वा गौः ।

१११. अपत्यार्थतद्धिते ॥ औपगवः । औपगवी ।

॥ इति स्त्रीपुंसाधिकारः ॥

अथ पुंनपुंसकाधिकारः

११२. पुंनपुंसकयोः ॥ अधिकारोऽयम् ।

११३. घृतभूतमुस्तक्ष्वेलितैरावतपुस्तकबुस्तलोहिताः ॥ अयं घृतः, इदं घृतम् ।

११४. कबन्धौषधायुधान्ताः ॥ स्पष्टम् ।

११५. दण्डमण्डखण्डशवसैन्धवपार्श्वकाशाङ्कुशकुलिशाः ॥ दण्डः, दण्डम् ।

॥ इति पुंनपुंसकाधिकारः ॥

मध्यमनोरमापूरणी

स्त्रीपुंसयोः—अयमधिकारः, पुंनपुंसकयोरिति यावत् । **गोमणि इति**—गोमणि इत्यादिशब्दाः स्त्रियां नपुंसके च सन्ति । इयं गौः, अयं गौः । इयं मणिः, अयं मणिः । इयं पाटलिः, अयं पाटलिः । पाटलिः नगरस्य पटना इत्यस्य संज्ञा । रक्तपीतवर्णं 'पादर' इत्यस्य पुष्पं वा । **अपत्यार्थतद्धिते**—अपत्यार्थतद्धितान्तशब्दः स्त्रीपुंसयोरस्तीत्यर्थः । यथा उपगोरपत्यं **औपगवः।** स्त्री अपत्यञ्च औपगवी इति । **पुंनपुंसकयोः**—इतः परसूत्रेषु अस्याधिकारो वेदनीयः । **घृतभूतेति**—घृतादयः शब्दाः पुंसि नपुंसके च स्युरित्यर्थः । **भूतः**—शिवः, सदृशो वा । **भूतम्**-प्राणिमात्रम्, पञ्चतत्त्वानि-पृथिव्यप्तेजोवायुः आकाशम् । अयं मुस्तः घासविशेषः, मोथा इति प्रसिद्धः । मुस्तम् अपि तदेव । क्ष्वेलः । क्ष्वेलं वा क्रीडा, परिहासः । बुस्तः बुस्तं वा भृष्टं मांसखण्डम् । **कबन्धौषधायुधान्ताः**—कबन्ध औषध आयुध अन्त इत्येते शब्दाः पुंसि नपुंसके च स्युः । अयं कबन्धः, इदं कबन्धम् । शिरोहीनं शरीरम् इत्यर्थः । राहुश्चापि । **दण्डमण्डेति**—दण्डादयः शब्दाः पुंसि नपुंसके च स्युरित्यर्थः । अयं दण्डः । इदं दण्डम् । मण्डः, मण्डम् । खण्डः, खण्डम् । शवः, शवम् । सैन्धवः सैन्धवम् । पार्श्वं, पार्श्वः । काशः, काशम् । अङ्कुशम्, अङ्कुशः । कुलिशः, कुलिशम् ।

॥ इति पुंनपुंसकाधिकारः ॥

हिन्दी

१०९. स्त्रीपुंसयोः यह अधिकार है ।

११०. गो मणि यष्टि इत्यादि शब्द स्त्रीलिङ्ग एवं पुँल्लिङ्ग में हैं ।

१११. अपत्यार्थक तद्धितप्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग एवं पुँल्लिङ्ग में हैं ।

११२. पुंनपुंसकयोः यह अधिकार है ।

११३. घृत भूत मुस्त क्ष्वेलित ऐरावत पुस्तक बुस्त एवं लोहित शब्द पुँल्लिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

११४. कबन्ध औषध आयुध एवं अन्त शब्द पुंलिङ्ग व नपुंसक हैं ।

११५. दण्ड मण्ड खण्ड शव सैन्धव पार्श्व काश अङ्कुश व कुलिश पुंलिङ्ग एवं नपुंसक हैं ।

॥ इति पुंनपुंसकाधिकारः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ अविशिष्टलिङ्गाधिकारः

११६. अविशिष्टलिङ्गम् ॥

११७. अव्ययं कतियुष्मदस्मदः ॥

११८. ष्णान्ता संख्या ॥

११९. शिष्टा परवत् ॥ एकः पुरुषः । एका स्त्री । एकं कुलम् ।

१२०. गुणवचनम् । शुक्लः पटः । शुक्ला पटी । शुक्लं वस्त्रम् ।

१२१. कृत्याश्च ॥

१२२. करणाधिकरणयोर्ल्युट् च ॥

१२३. सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ स्पष्टार्थेयं त्रिसूत्री । इति श्रीवरदराजदीक्षितविरचितपाणिनीयलिङ्गानुशासनसारभूता लिङ्गानुशासनसूत्रवृत्तिः समाप्ता ॥

॥ इति श्रीमध्यसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ॥

मध्यमनोरमापूरणी

अविशिष्टेति— तत्तल्लिङ्गवाचकताप्रयुक्तकार्यविशेषशून्यम् अविशिष्टलिङ्गम् । **अव्ययम् इति**- अव्ययानि कति युष्मद् अस्मद् इति एते शब्दाः अविशिष्टलिङ्गाः भवन्तीत्यर्थः । **ष्णान्तेति**— षान्ता नान्ताश्च संख्यावाचिनः शब्दाः अविशिष्टलिङ्गाः सन्ति । **शिष्टेति**— षान्तनान्तभिन्ना संख्या शिष्टा, सा परवत् अर्थात् परवल्लिङ्ग इत्यर्थः । **गुणवचनम्**— गुणवाचिनः शब्दाः परवल्लिङ्गाः इत्यर्थः । **कृत्याश्चेति**— कृत्यप्रत्ययान्ताः परवल्लिङ्गाः भवन्तीत्यर्थः । धार्यः पटः, धार्या शाटी, धार्यं वस्त्रमिति उदाहरणम् । **करणाधिकरणयोरिति**— करणे अधिकरणे च विहितो यः ल्युट्, तदन्तः परवल्लिङ्गे भवतीत्यर्थः । **सर्वादीनि इति**— सर्वनामसंज्ञकानि सर्वादीनि परवल्लिङ्गानि सन्ति इत्यर्थः । सर्वः पटः, सर्वा शाटी, सर्वं वस्त्रम् ।

विहारराज्यस्थमधुबनीमण्डलान्तर्गतरुद्रपुरग्रामवास्तव्येन न्यायव्याकरणवेदान्तसाहित्यशास्त्र-पारङ्गतानां स्वर्गतानाम् पं. उमेश चौधरी (शर्मा) इत्याख्यानामात्मजेन जयपुरस्थ-केन्द्रीयसंस्कृत-विद्यापीठव्याकरणप्राध्यापकेन अर्कनाथेन कृता मध्यसिद्धान्तकौमुदी-व्याख्यानभूता मध्यमनोरमापूरणी पूर्णा, हिन्दी-सूत्रार्थश्च पूर्णः ।

हिन्दी

११६. लिङ्गविशेष के कार्य से शून्य अविशिष्ट लिङ्ग होता है ।

११७. अव्यय कति एवं युष्मद् अस्मद् अविशिष्ट लिङ्ग हैं ।

११८. षान्त व नान्तसंख्यावाची अविशिष्ट लिङ्ग हैं ।

११९. शेष संख्यावाची परवत् लिङ्ग होते हैं ।

१२०. गुणवाची शब्द परवल्लिङ्ग हैं ।

१२१. कृत्प्रत्ययान्त परवल्लिङ्ग हैं ।

१२२. करणअधिकरण में विहित ल्युट् परवल्लिङ्ग होते हैं ।

१२३. सर्वनामसंज्ञक सर्वादि विशेष्य के समान लिङ्ग वाले होते हैं ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ पाणिनीय शिक्षा

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।
शास्त्रानुपूर्वं तद्विद्याद्यथोक्तं लोकवेदयोः ॥१॥
प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमबुद्धिभिः ।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम् ॥२॥
त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ॥३॥
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः ॥४॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ≈ क ≈ पौ चापि पराश्रितौ ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च ॥५॥
आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया ।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥६॥
मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम् ।
प्रातः स्वनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥७॥
कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम् ।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम् ॥८॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥९॥
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः ।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत ॥१०॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥११॥
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥१२॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥१३॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१४॥
यद्योभावप्रसंधानमुकारादिपरं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद् व्यक्तमूष्मणः ॥१५॥
हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम् ।
औरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसंयुतम् ॥१६॥
कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू ।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या ऌतुलसाः स्मृताः ॥१७॥
जिह्वामूले तु कु≈ प्रोक्तो दन्त्योष्ठ्यो वः स्मृतो बुधैः ।
एऐ तु कण्ठ्यतालव्यौ ओऔ कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ ॥१८॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अर्धमात्रा तु कण्ठ्या स्यादेकारैकारयोर्भवेत् ।
ओकारौकारयोर्मात्रा तयोर्विवृतसंवृतम् ॥१९॥
संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम् ।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥२०॥
स्वराणामूष्मणाञ्चैव विवृतं करणं स्मृतम् ।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥२१॥
अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते ।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥२२॥
अलाबुवीणानिर्घोषो दन्त्यमूल्यः[1] स्वरानुगः ।
अनुस्वारस्तु कर्तव्यो नित्यं ह्रोः शषसेषु च ॥२३॥
अनुस्वारे विवृत्यां तु विरामे चाक्षरद्वये ।
द्विरोष्ठ्यौ तु विगृह्णीयाद्यत्रोकारवकारयोः ॥२४॥
व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद् वर्णान् प्रयोजयेत् ॥२५॥
यथा सौराष्ट्रिका नारी तक्रँ इत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्याः खे अराँ इव खेदया ॥२६॥
रङ्गवर्णं प्रयुञ्जीरन्नो ग्रसेत् पूर्वमक्षरम् ।
दीर्घस्वरं प्रयुञ्जीयात् पश्चान्नासिक्यमाचरेत् ॥२७॥
हृदये चैकमात्रस्तु अर्धमात्रस्तु मूर्धनि ।
नासिकायां तथार्धं च रङ्गस्यैवं द्विमात्रता ॥२८॥
हृदयादुत्करे तिष्ठन् कांस्येन समनुस्वरन् ।
मार्दवं च द्विमात्रं च जघन्वाँ इति निदर्शनम् ॥२९॥
मध्ये तु कम्पयेत् कम्पमुभौ पार्श्वौ समौ भवेत् ।
सरङ्गं कम्पयेत् कम्पं रथीवेति निदर्शनम् ॥३०॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्याः नाव्यक्ता न च पीडिताः ।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥३१॥
गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः ।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥३२॥
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः ।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः ॥३३॥
शङ्कितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरसि गतं तथा स्थानविवर्जितम् ॥३४॥
उपांशु दष्टं त्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम् ॥३५॥

1. "दन्त्यमूल्यस्वराननु" इति पाठान्तरम्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रातः पठेन्नित्यमुरःस्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन ।
मध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वसंकूजितसन्निभेन ॥३६॥
सारं तु विद्यात् सवनं तृतीयं शिरोगतं तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसान्यभृतस्वराणां तुल्येन नादेन शिरःस्थितेन ॥३७॥
अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषन्नेम[1]स्पृष्टाः शलः स्मृताः ।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥३८॥
ञमोऽनुनासिका न ह्रौ नादिनो हझषः स्मृताः ।
ईषन्नादा यणौ जश्च श्वासिनस्तु खफादयः ॥३९॥
ईषच्छ्वासांश्चरो विद्यात् गोर्धामैतत् प्रचक्षते ।
दाक्षीपुत्रपाणिनिना येनेदं व्यापितं भुवि ॥४०॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥४१॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥४२॥
उदात्तमाख्याति वृषोऽङ्गुलीनां प्रदेशिनीमूलनिविष्टमूर्धा ।
उपान्त्यमध्ये स्वरितं धृतञ्च कनिष्ठिकायामनुदात्तमेव ॥४३॥
उदात्तं प्रदेशिनीं विद्यात् प्रचयं मध्यतोऽङ्गुलिम् ।
निहतं तु कनिष्ठिक्यां स्वरितोपकनिष्ठिकाम् ॥४४॥
अन्तोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।
मध्योदात्तं स्वरितं द्व्युदात्तं त्र्युदात्तमिति नवपदशय्या ॥४५॥
अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषां स्वर्बृहस्पतिरिन्द्राबृहस्पती ।
अग्निरित्यन्तोदात्तं सोम इत्याद्युदात्तं प्रेत्युदात्तं व इत्यनुदात्तं वीर्यं नीचस्वरितम् ॥४६॥
हविषां मध्योदात्तं स्वरिति स्वरितम् ।
बृहस्पतिरिति द्व्युदात्तमिन्द्राबृहस्पती इति त्र्युदात्तम् ॥४७॥
अनुदात्तो हृदि ज्ञेयो मूर्ध्न्युदात्त उदाहृतः ।
स्वरितः कर्णमूलीयः सर्वास्ये प्रचयः स्मृतः ॥४८॥
चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं त्वेव वायसः ।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्धमात्रिकम् ॥४९॥
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम् ।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्बिषात् ॥५०॥
सुतीर्थादागतं व्यक्तं स्वाम्नायं सुव्यवस्थितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजते ॥५१॥
मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥५२॥

---

1. "ईषन्नेमि" इति पाठान्तरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अवक्षरमनायुष्यं विस्वरं व्याधिपीडितम् ।
अक्षता शस्त्ररूपेण वज्रं पतति मस्तके ।।५३।।
[1]हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।
ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो [2]वियोनिमधिगच्छति ।।५४।।
हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते ।।५५।।
शङ्करः शाङ्करीं प्रादात् दाक्षीपुत्राय धीमते ।
वाङ्मयेभ्यः समाहृत्य देवीं वाचमिति स्थितिः ।।५६।।
येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ।।५७।।
येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः ।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ।।५८।।
अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः ।।५९।।
त्रिनयनमभिमुखनिःसृतामिमां य इह पठेत् प्रयतश्च सदा द्विजः ।
स भवति धनधान्यपशुपुत्रकीर्तिमानतुलं च सुखं समश्नुते दिवीति दिवीति ।।६०।।
[1]अथ शिक्षामात्मोदात्तश्च हकारं स्वराणां यथागीत्यचोऽस्पृष्टोदात्तं चाषस्तु शंकर एकादश ।

॥ इति पाणिनीयशिक्षा समाप्ता ॥

---

1. इयं पाणिनीयशिक्षा एकादशखण्डे विभक्ता । यथा-(१) अथ शिक्षाम् । (2) आत्मा। (3) उदात्तश्च । (4) हकारम् । (5) स्वराणाम् । (6) यथा । (7) गीती । (8) अचोऽस्पृष्टाः । (9) उदात्तम् । (10) चाषस्तु । (11) शंकरः ।
2. "हस्तेहीनं तु" इति, "विनियोगम्" इति च पाठान्तरम् ।

टिप्पणी :- 1. "हस्तहीनं तु" इति पाठान्तरम् ।
2. "विनियोगम्" इति पाठान्तरम् ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ गणपाठः

(अत्र मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः कृते उपयोगिगणपाठः प्रदर्श्यते)

प्रथमोऽध्यायः

सर्वादीनि सर्वनामानि-(१-१-२७) सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् । इति सर्वादिः ।

स्वरादिनिपातमव्ययम्-(१-१-३७) मूले एव पठितः ।

चादयोऽसत्त्वे-(१-४-५७) च वा ह अह एव एवं नूनम् शश्वत् युगपत् भूयस् सूपत् कूपत् माकिर् नकिम् नकीम् नकिर्आकीम् माङ् नञ् तावत् यावत् त्वा त्वै द्वै न्वै रै (रे) श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा ओम् तथा तथाहि खलु किल अथ सुष्टु स्म अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा वधा (वध्वा) धिक् हाहा हेहै (हहे) पाट् प्याट् आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु मन्ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात वन बत (सम् वशम् शिकम् दिकम्) सनुकं छंवट् शङ्के शुकम् खम् सनात् सनुतर् नहिकम् सत्यम् ऋतम् अद्धा इद्धा नो चेत् नचेत् नहि जातु कथम् कुतः कुत्र अव अनु हा हे आहोस्वित् शम् कम् दिष्ट्या पशु नट् सह (आनुषट्) आनुषक् अङ्ग फट् ताजक् भाजक् अये अरे वाट् (चाटु) कुम् खुम् घुम् अम् ईम् सीम् सिम्सिम् सिवै । उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः । इति चादयः ।

प्रादयः—(१-१-५८) प्रादयः "उपसर्गाः क्रियायोगे" इति सूत्रे मूले (मध्यकौमुद्यामुक्ताः ।)

ऊर्यादि च्विडाचश्च-(१-४-६१) ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला संशकला ध्वंसकला भ्रंसकला गुलुगुधा सजूस् फल फली विक्ली अक्ली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमसा वश्मशा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा बन्धा प्रादुस् श्रत् अविस् । इति ऊर्यादयः ।

साक्षात् प्रभृतीनि च-(१-४-७४)

साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचना आस्था अमा अद्धा प्राजर्या । प्राजरुहा । बीजर्या बीजरुहा संसर्या अर्थे लवणम् उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम् अग्नौ वशे विकसने प्रहसने प्रतपने प्रादुस् नमस् । इति साक्षात्प्रभृतयः । आकृतिगणोऽयम् ।

द्वितीयोऽध्यायः

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च (२-१-१७)

तिष्ठद्गु वहद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमाणयवम् संहृतबुसम्, संह्रियमाणबुसम् समभूमि समपदाति सुषमम् विषमम् दुःषमम् निःषमम् अपसमम् आयतीसमम् पापसमम् पुण्यसमम् प्राह्णम् प्ररथम् प्रमृगम् प्रदक्षिणम् संप्रति असम्प्रति । इच्प्रत्ययः समासान्तः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

(५-४-१२७-५-४-१२८) इति तिष्ठद्गवादिः ।

सप्तमी शौण्डैः-(२-१-४०) मध्यकौमुद्यामेव पठितम्

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे-२-१-५६) व्याघ्र सिंह ऋक्ष ऋषभ चन्दन वृक बृष वराह हस्तिन् तरु कुञ्जर रुरु पृषत् पुण्डरीक पलाश कितव इति व्याघ्रादिराकृतिगणः ॥

शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानम् (२-१-५६)

शाकपार्थिव कुतुपसौश्रुत अजातौल्वलि । आकृतिगणोऽयम् । कृताकृत भुक्तविभुक्त पीत-विपीत गतप्रत्यागत यातानुयात क्रयाक्रयिका, पुटापुटिका फलाफलिका मानोन्मानिका । इति शाकपार्थिवादयः ।

मयूर व्यंसकादयश्च-(२-१-७२)

मयूरव्यंसक छात्रव्यंसक कम्बोजमुण्ड यवनमुण्ड । छन्दसि । हस्तेगृह्य पादेगृह्य लाङ्गूलेगृह्य पुनर्दाय । (एहीडादयोऽन्यपदार्थे) एहीडम् एहियवम् च एहिवाणिजा क्रिया अपेहिवाणिजा प्रेहिवाणिजा एहिस्वागता अपेहिस्वागता एहिद्वितीया अपेहिद्वितीया प्रेहिद्वितीया एहिकटा, अपेहिकटा, प्रेहिकटा, अपहरकरटा, प्रोहिकरटा, प्रोहिकर्दमा, प्रेहिकर्दमा, विधमचूडा, उद्धमचूडा, आहरचेला, आहरवनिता, आहरवसना, कृन्तविचक्षणा, उद्धरोत्सृजा, उद्धरावसृजा, उद्धमविधमा, उत्पतनिपचा, उत्पतनिपता, उच्चावचम् उच्चनीचम् आचोपचम् आचपराचम् निश्चप्रचम् अकिंचनः स्नात्वाकालकः पीत्वास्थिरकः भुक्त्वासुहितः प्रोष्यपापीयान् उत्पत्यपाकुला निपत्यरोहिणी, निषण्णश्यामा अपेहिप्रघसा एहिविघसा इहपञ्चमी इहद्वितीया (जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति) जहिजोडः जहिस्तम्बः उज्जहिजोडः । (आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये) अश्नीतपिबता पचतभृज्जता खादतमोदता खादतवमता आहरनिवपा आहरनिष्किरा भिन्धि लवणा कृन्धिविचक्षणा पचलवणा पचप्रकूटा आकृतिगणोऽयम् । तेन अकुतोभयम् कान्दिशीक आहोपुरुषिका अहमहमिका यदृच्छा एहिरेयाहिरा उन्मृजविमृजा द्रव्यान्तरम् अवश्यकार्यम् इत्यादि सिद्धम् । इति मयूरव्यंसकादयः।

याजकादिभिश्च-(२-२-९) मूले पठितम् ।

राजदन्तादिषु परम्-(२-२-३१)

राजदन्तः अग्रेवणम् लिप्तवासितम् नग्नमुषितम् सिक्तसंमृष्टम् मृष्टलुञ्चितम् अवक्लिन्नपक्वम् अर्पितोप्तम् उप्तगाढम् उलूखलमुसलम् तण्डुलकिण्वम् दृषदुपलम् आरड्वायनि । आरग्वायनवन्धकी । चित्ररथवाह्लीकम् । अवन्त्यश्मकम् ।

शूद्रार्यम् स्नातकराजानौ विष्वक्सेनार्जुनौ अक्षिभ्रुवम् दारगवम् (धर्मादिषूभयम्) अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ, अर्थशब्दौ, शब्दार्थौ । अर्थकामौ, कामार्थौ, वैकारिमतम् गाजवाजम् गोजवाजम् गोपालधानीपुलासम् पुलासककरण्डम् स्थूलपुलासम् उशीरबीजम् सिञ्जास्थम् चित्रास्वाती भार्यापती दम्पती जम्पती जायापती पुत्रपती पुत्रपशू, केशश्मश्रु शिरोबीजम् । शिरोजानु, सर्पिर्मधुनी, मधुसर्पिषी, आद्यन्तौ, अन्तादी, गुणवृद्धी, वृद्धिगुणौ । आकृतिगणोऽयं राजदन्तादिः।

वाहिताग्न्यादिषु, (२-२-३७) आहिताग्नि जातपुत्र जातदन्त जातश्मश्रु

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

तैलपीत घृतपीत (मद्यपीत) ऊढभार्य गतार्थ आकृतिगणोऽयम् । तेन गडुकण्ठ अस्युद्यत (अरमुद्यत) दण्डपाणि प्रभृतयः ।

कडाराः कर्मधारये-(२-२-३८) कडार गडुल खञ्ज खोड काण कुण्ठ खलति गौर वृद्ध भिक्षुक पिङ्ग पिङ्गुल (पिङ्गल) तड तनु (जठर) बधिर मठर कब्ज बर्बर इति कडारादयः ।

गवाश्वप्रभृतीनि च-(२-४-११) गवाश्वम् गवाविकम् गवैडकम् अजाविकम् अजैडकम् कुब्जवामनम् कुब्जकिरातम् पुत्रपौत्रम् श्वचण्डालम् स्त्रीकुमारम् दासीमाणवकम् शाटीपटीरम् शाटीप्रच्छदम् शाटीपट्टिकम् उष्ट्रखरम् उष्ट्रशशम् मूत्रशकृत् । मूत्रपुरीषम् यकृन्मेदः मांसशोणितम् दर्भशरम् दर्भपूतीकम् अर्जुनशिरीषम् अर्जुनपुरुषम् तृणोपलम् (तृणोलपम्) दासीदासम् । कुटीकुटम् भागवतीभागवतम् । इति गवाश्वप्रभृतीनि ।

न दधिपय आदीनि-(२-४-१४) दधिपयसी सर्पिर्मधुनी मधुसर्पिषी ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणौ स्कन्दविशाखौ, परिव्राजककौशिकौ (परिव्राट्कौशिकौ) । प्रवर्ग्योपसदौ शुक्लकृष्णौ इध्माबर्हिषी दीक्षातपसी श्रद्धातपसी मेधातपसी अध्ययनतपसी उलूखलमुसले आद्यवसाने श्रद्धामेधे ऋक्सामे वाङ्मनसे ।

अर्धर्चाः पुंसि-(२-४-३१) अर्धर्च गोमय कषाय कार्षापण कुतप कपाट शङ्ख गूथ यूथ ध्वज कबन्ध पद्म गृह सरक कंस दिवस यूष अन्धकार दण्ड कमण्डलु मण्ड भूत द्वीप द्यूत चक्र धर्म कर्मन् मोदक शतमान यान नख नखर चरण पुच्छ दाडिम हिम रजत सक्तु पिधान सार पात्र घृत सैन्धव औषध आढक चषक द्रोण खलीन पात्रीव षष्ठिक वार वाण प्रोथ कपित्थ शुष्क शील शुल्व शीधु (सीधु) कवच रेणु कपट सीकर मुसल सुवर्णयूप चमस वर्ण क्षीर कर्ण आकाश अष्टापद मङ्गल निधन निर्यास जृम्भ वृत्त पुस्त क्ष्वेडित शृङ्ग शृङ्खल मधु मूल मूलक शराव शाल वप्र विमान मुख प्रग्रीव शूल वज्र कर्पट शिखर कल्क नाट मस्तकं वलय कुसुम तृण पङ्क कुण्डल किरीट अर्बुद अङ्कुश तिमिर आश्रम भूषण इल्कस मुकुल वसन्त तडाग पिटक विटङ्क माप कोश फलक दिन दैवत पिनाक समर स्थाणु अनीक उपवास शाक कर्पास चषाल खण्ड दर विटप रण बल मल मृणाल हस्त सूत्र ताण्डव गाण्डीव मण्डप पटह सौध पार्श्व शरीर फल छल पुर राष्ट्र विश्व अम्बर कुट्टिम मण्डल ककुद तोमर तोरण मञ्चक पुङ्ख मध्य बाल वल्मीक वर्ष वस्त्र देह उद्यान उद्योग स्नेह स्वर सङ्गम निष्क क्षेम शुक छत्र पवित्र यौवन पानक मूषिक वल्कल कुञ्ज विहार लोहित विषाण भवन अरण्य पुलिन दृढ आसन ऐरावत शूर्प तीर्थ लोमश तमाल लोह दण्डक शपथ प्रतिसर दारु धनुष मान तङ्क वितङ्क मव सहस्र ओदन प्रवाल शकट अपराह्ण नीड सकल शकल तण्डुल इति अर्धर्चादिः ।

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्-(३-१-१३) लोहित चरित नील फेन मद हरित दास मन्द । लोहितादिराकृतिगणः ।

कण्ड्वादिभ्यो यक्-(३-१-२७) कण्डूञ् मन्तु हृणीङ् वल्गु असु (मनस्) महीङ् लोट् लेट् इरस् इरज् इरञ् उवस् उषस् वेद् मेधा कुषुभ (कुसुभ) मगध तन्तस् पम्पस् सुख दुःख (भिक्ष चरम चरण अवर) सपर अरर भिषज् भिष्णुज् (भिष्णज्) इषुध वरण चुरण तुरण भुरण गद्गद एला-

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

केला खेला (वेला शेला) लिट् लाट् रेखा द्रवस् तिरस् अगद उरस् तरण पयस् संभूयस् सम्बर। आकृतिगणोऽयम् ।

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः-(३-१-१३४) नन्दिवाशिमदिदूषिसाधिवर्धि शोभिरो-चिभ्यो ण्यन्तेभ्यः संज्ञायाम् । नन्दनः वाशनः मदनः इषणः साधनः वर्धनः शोभनः रोचनः। सहितपिदमः संज्ञायाम् । सहनः तपनः दमनः जल्पनः रमणः दर्पणः संक्रन्दनः संकर्षणः संहर्षणः जनार्दनः यवनः मधुसूदनः विभीषणः लवणः चित्तविनाशनः कुलदमनः शत्रुदमनः इति नन्द्यादिः । ग्राही उत्साही उद्दासी उद्भासी स्थायी मन्त्री संमर्दी । रक्षश्रुवसवपशां नौ । निरक्षी निश्रावी निवासी निवापी निशावी (निशायी) याचृव्याहृसंव्याहृव्रजवदवसां प्रतिषिद्धानाम् । अयाची अव्याहारी असंव्याहारी अव्राजी अवादी अवासी । अचामचित्तकर्तृकाणाम्-अकारी अहारी अविनायी (विशायी विषायी) विषयी विशयी देशे । विषयी विशयी देशः । अभिभावी भूते । अपराधी उपरोधी परिभवी परिभावी । इति ग्राह्यादिः ।। पच वच वप वदचलपतनदट् भषट् प्लवट् चरट् गरट् तरट् चोरट् गाहट् सरट् देवट् (दोषट्) जर (रज) मर (मद) क्षम (क्षप) सेव मेषकोष (कोप) मेध नर्त व्रण दर्श सर्प (दम्भ दर्प) जारभर श्वपच । पचादिराकृतिगणः ।।

मूलविभुजादिभ्यः कः (३-२-३ सूत्रे) मूलविभुज नखमुच काकगुह कुमुद महीध्र कुध्र । गिध्र । आकृतिगणोऽयम् ।

पार्श्वादिषूपसंख्यानम् (३-२-१५) सूत्रे । पार्श्व उदर पृष्ठ उत्तान अवमूर्धन् । इति पार्श्वादिः ।

षिद्भिदादिभ्योऽङ्-(३-३-१०४) भिदा विदारणे छिदा द्वैधीकरणे । विदा क्षिपा गुहा गिर्योषध्योः । श्रद्धा मेधा गोधा । आरा शस्त्र्याम् । हारा कारा बन्धने । क्षिया । तारा ज्योतिषि । धारा प्रपातने । रेखा चूडा पीडा वपा वसा मृजा । क्रपेः सम्प्रसारणं च । कृपा । इति भिदादिः ।

संपदादिभ्यः क्विप्-(३-३-९४) सूत्रे वा. संपद् विपद् आपद् प्रतिपद् परिषद् एते संपदादयः ।।

चतुर्थोध्यायः

अजाद्यतष्टाप्-(४-१-४) मूले पठितम् न षट्स्वस्रादिभ्यः-(४-१-१०) मूले पठितम् ।

नित्यं सपत्न्यादिषु-(४-१-३५) समान एक वीर पिण्ड भ्रातृ भद्र पुत्र । दासाच्छन्दसि । इति समानादिः ।

षिद्गौरादिभ्यश्च-(४-१-४१) गौर मत्स्य मनुष्य शृङ्ग पिङ्गल हय गवय मुकय ऋष्य पुट तूण द्रुण द्रोण हरिण कोकण (कण) पटर डकण आमलक कुवल बदर बिम्ब तर्कार शर्कार पुष्कर शिखण्ड सुषम सलन्द गडुज आनन्द सृपाट सृगेठ आढक शष्कुल सूर्म सुब सूर्य्य पूषमूष घातक सक लूक सल्लक मालक मालत साल्वक वेतस अतस पृस मंह मठ छेद श्वन् तक्षन् अनडुही । एषणः करणे । देह काकादन गवादन तेजन रजन लवण पान मेध गौतम

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

आयस्थूण भौरि भौलिकि भौलिङ्गि औद्गाहमानि आलिङ्गि (आलिपि) आपिच्छिक आरट टोट नट नाट मूलाट शातन पातन पावन आस्तरण अधिकरण एत अधिकार आग्रहायणी प्रत्यवरोहिणी सेवन । सुमङ्गलात् संज्ञायाम् । सुन्दर मण्डल पट पिण्ड कुर्द्द गूर्द्द पाण्ट लोफाण्ट कन्दर कन्दल तरुण तलुन बृहत् महत् सौधर्म्म । रोहिणी नक्षत्रे । रेवती नक्षत्रे । विकल निष्फल पुष्कल । कटाच्छ्रेणिवचने । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली हरीतकी कोशातकी शमी करीरी पृथिवी क्रोष्ट्री मातामह पितामह । मातामहपितामहयोः मातरि षिच्चेति षित्त्वादेव सिद्धे ज्ञापनार्थं वचनम्-अनित्यः षिल्लक्षणो ङीषिति, तेन "दंष्ट्रा इत्युपपन्नं भवति ।

बह्वादिभ्यश्च-(४-१-४५) बहु पद्धति अञ्चति

अङ्कति अंहति अहंति वहति शकटि । शक्तिः शस्त्रे । शारि । वारि । गति । अहि । कपि मुनि यष्टि । इतः प्राण्यङ्गात् । कृदिकारादक्तिनः । सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । चण्ड अराल कमल कृपाण धिकट विशाल विशङ्कट भरुज ध्वज । चन्द्रभागान्नद्याम् । कल्याण उदार पुराण अहन्। बहुशब्दो गुणवचन एव तस्येह पाठ उत्तरार्थः । क्रोड नख खुर शिखा बाल शफ गुद । आकृतिगणोऽयम् । तेन भग गल राग इत्यादि । इति बह्वादयः ।

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् (४-१-७३) शार्ङ्गरव कापटव गौग्गुलव ब्राह्मण वैद गौतम कामण्डलेय ब्राह्मणकृतेय (आनिचेय) आनिधेय आशोकेय वात्स्यायन मौञ्जायन ककैस काप्य (काव्य) शैब्य एहि पर्येहि आश्मरथ्य औदपान अराल चण्डाल वतण्ड भोगवद्गौरिमतोः, संज्ञायां घादिषु (६-३-४३) नित्यं ह्रस्वार्थम् । नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥

इति शार्ङ्गरवादिः ।

अश्वपत्यादिभ्यश्च-(४-१-८४)

अश्वपति (ज्ञानपति) शतपति धनपति गणपति राष्ट्रपति कुलपति गृहपति (स्थानपति धनपति पशुपति) धान्यपति धन्वपति (बन्धुपति धर्मपति) सभापति प्राणपति क्षेत्रपति (अधिपति)

इत्यश्वपत्यादिः

उत्सादिभ्योऽञ्-(४-१-८६) उत्स उदपान विकर विनद महानद महानस महाप्राण तरुण तलुन वष्कयासे पृथिवी धेनु पङ्क्ति जगति त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जनपद भरत उशीनर ग्रीष्म पीलुकण, उदस्थान देशे पृषदंश भल्लकीय रथन्तर मध्यन्दिन बृहत् महत् सत्त्वत् कुरु पञ्चाल इन्द्रावसान उष्णिह् ककुभ् सुवर्ण देव गीष्मादच्छन्दसि । इत्युत्सादिः ।

बाह्वादिभ्यश्च-(४-१-९६)

बाहु उपबाहु, उपवाकु निवाकु शिवाकु वटाकुः उपनिन्दु उपबिन्दु वृषली वृकला चूडा बलाका मूषिका कुशला भगला छगला ध्रुवका धुवका सुमित्रा दुर्मित्रा पुष्करसद् अनुहरत् देवशर्मन् अग्नि-शर्मन् भद्रशर्मन् सुशर्मन् कुनामन् सुनामन् पञ्चन् सप्तन् अष्टन् । अमितौजसः सलोपश्च । सुधावत् उदञ्चु शिरस् भाव शराविन् मरीचि क्षेमवृद्धिन् । शृङ्खलतोदिन् खरनादिन् नगरमर्दिन् प्राकारमर्दिन् लोमन् अजीगर्त कृष्ण युधिष्ठिर अर्जुन साम्ब गदप्रद्युम्न राम (उदङ्क) उदकः संज्ञायाम् । संभूयोऽम्भसोः सलोपश्च । आकृतिगणोऽयम् । तेन सात्वकिः जाङ्घिः ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि । इति बाह्वादयः ।

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्-(४-१-९८) कुञ्ज ब्रध्न शङ्ख भस्मन् गण लोमन् शठ शाक शाकट शुण्डा शुभ विपाश स्कन्द स्कम्भ । इति कुञ्जादिः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

नडादिभ्यः फक्-(४-१-९९)

नड चर (वर बक मुञ्ज इतिक इतिश उपक एक) लमक शलङ्कु शलङ्कं च । सप्तल वाजप्य तिक । अग्निशर्मन्वृषगणे । प्राण नर सायक दास मित्र द्वीप पिङ्गर पिङ्गल किंकर किङ्कल (कातर) कातल काश्यप (कुश्यप) काश्य काल्य (काव्य) अज अमुष्य (अमुष्म) कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः । अमित्र लिगु चित्र कुमार क्रोष्टु क्रोष्टं च । लोह दुर्ग स्तम्भ शिंशपा अग्र तृण शकट सुमनस् सुमत मिमत ऋच् जलन्धर अध्वर युगंधर हंसक दण्डिन् हस्तिन् (पिण्ड) पञ्चाल चमसिन् सुकृत्य स्थिरक ब्राह्मण चटक बदर अश्वर खरप लङ्क इन्ध अस्र, कामुक ब्रह्मदत्त उदुम्बर शोण अलोह दण्डप । इति ।

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्-(४-१-१०४)

विद उर्व कश्यप कुशिक भरद्वाज उपमन्यु किलात कन्दर्प (किन्दर्भ) विश्वानर ऋषिषेण (ऋष्टिषेण) ऋतमान हर्यश्व प्रियक आपस्तम्ब कूचवार शरद्वत् शुनक धेनु गोपवन शिग्रु बिन्दु भोगक भाजन शमिक अश्वावतान श्यामाक श्यामक श्यावलि श्यापर्ण हरित किंदास बह्यक अर्कजूष (अर्कलूष) वध्योग विष्णुवृद्ध प्रतिबोध रचित (रथीतर) रथन्तर गविष्ठिर निषाद (शबर अलस) मठर मृडाकु सुपाकु मृदु पुनर्भू पुत्र दुहितृ ननान्दृ । परस्त्री परशुञ्च ।

गर्गादिभ्यो यञ्-(४-१-१०५) गर्ग वत्स वाजासे संकृति अज व्याघ्रपात् विदभृत् प्राचीनयोग अगस्ति पुलस्ति चमस रेभ अग्निवेश शङ्ख शट शक एक धूम अवट मनस् धनञ्जय वृक्ष विश्वावसु जरमाण लोहित शंसित बभ्रु वल्गु मण्डु शङ्कु लिगु गुहलु मन्तु मङ्क्षु अलिगु जिगीषु मनु तन्तु मनायी सूनु, कथक कन्थक ऋक्ष तृक्ष वृक्ष तनु तरुक्ष तलुक्ष तण्ड वतण्ड कपिकत कुरुकत अनडुह् कण्व शकल गोकक्ष अगस्त्य कण्डिनी यज्ञवल्क पर्णवल्क अभयजात विरोहित वृषगण रहूगण शण्डिल वर्णक चणक चुलुक मुद्गल मुसल जमदग्नि पराशर जतूकर्ण जातूकर्ण महित मन्त्रित अश्मरथ शर्कराक्ष पूतिमाष स्थूरा अदरक अररक एलाक पिङ्गल कृष्ण गोलन्द उलूक तितिक्ष भिषज भिषज् भिष्णज् भडित भण्डित दल्भ चेकित चिकित्सित देवहू इन्द्रहू एकलु पिप्पलु बृहदग्नि (सुलोहिन्) सुलाभिन् उक्थ गुटीगु । इति गर्गादिः ।

अश्वादिभ्यः फञ्-(४-१-११०)

अश्व अश्मन् शङ्ख शूद्रक विद पुट रोहिण खर्जूर खजूर खञ्जार वस्त पिजूर भडिल भण्डिल भडित भण्डित प्रकृत रामोद क्षान्त काश तीक्ष्ण गोलाङ्क अर्क स्वर स्फुट चक्र श्रविष्ठ पविन्द पवित्र गोमिन् श्याम धूम धूम्र वाग्मिन् विश्वानर कुट शप आत्रेये । जन जड खड ग्रीष्म अर्ह कित विशंप दिशाल गिरि चपल चुप दासक बैल्य बैल्व प्राच्य धर्म्य आनडुह्य पुंसिजात अर्जुन प्रहृत सुमनस् दुर्मनस् मन मनन प्रान्तध्वन आत्रेय भारद्वाजे । भरद्वाज आत्रेये । उत्स आतव कितव वद धन्य पाद शिव खदिर इति अश्वादिः ।

शिवादिभ्योऽण्-(४-१-११२) शिव प्रोष्ठ प्रोष्ठिक चण्ड जम्भ भूरि दण्ड कुठार ककुभ् (ककुभा) अनभिम्लान कोहित सुख संधि मुनि ककुत्स्थ कहोड कोहड कहूय कहय रोद कपिञ्जल कुपिञ्जल खञ्जन वतण्ड तृण क्षीर ह्रद जलह्रद परिल (पथिक) पिष्ट हैहय (पार्षिका) गोपिका कपिलिका जटिलिका बधिरिका मञ्जीरक मजिरक वृष्णिक

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अथ गणपाठः

(अत्र मध्यसिद्धान्तकौमुद्याः कृते उपयोगिगणपाठः प्रदर्श्यते)

प्रथमोऽध्यायः

सर्वादीनि सर्वनामानि-(१-१-२७) सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् । इति सर्वादिः ।

स्वरादिनिपातमव्ययम्-(१-१-३७) मूले एव पठितः ।

चादयोऽसंत्त्वे-(१-४-५७) च वा ह अह एव एवं नूनम् शश्वत् युगपत् भूयस् सूपत् कूपत् माकिर् नकिम् नकीम् नकिर्आकीम् माङ् नञ् तावत् यावत् त्वा त्वै द्वै न्वै रै (रे) श्रौषट् वौषट् स्वाहा स्वधा ओम् तथा तथाहिं खलु किल अथ सुष्टु स्म अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ आदह उञ् उकञ् वेलायाम् मात्रायाम् यथा यत् तत् किम् पुरा वधा (वध्वा) धिक् हाहा हेहै (हहे) पाट् प्याट् आहो उताहो हो अहो नो (नौ) अथो ननु मन्ये मिथ्या असि ब्रूहि तु नु इति इव वत् वात वन बत (सम् वशम् शिकम् दिंकम्) सनुकं छंवट् शङ्के शुकम् खम् सनात् सनुतर् नहिकम् सत्यम् ऋतम् अद्धा इद्धा नो चेत् नचेत् नहि जातु कथम् कुतः कुत्र अव अनु हा हे आहोस्वित् शम् कम् दिष्ट्या पशु नट् सह (आनुषट्) आनुषक् अङ्ग फट् ताजक् भाजक् अये अरे वाट् (चाटु) कुम् खुम् घुम् अम् ईम् सीम् सिम्सिम् सिवै । उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः । इति चादयः ।

प्रादयः—(१-१-५८) प्रादयः "उपसर्गाः क्रियायोगे" इति सूत्रे मूले (मध्यकौमुद्यामुक्ताः ।)

ऊर्यादि च्विडाचश्च-(१-४-६१) ऊरी उररी तन्थी ताली आताली वेताली धूली धूसी शकला संशकला ध्वंसकला भ्रंसकला गुलुगुधा सजूस् फल फली विक्ली अक्ली आलोष्ठी केवाली केवासी सेवासी पर्याली शेवाली वर्षाली अत्यूमसा वश्मशा मस्मसा मसमसा औषट् श्रौषट् वौषट् वषट् स्वाहा स्वधा बन्धा प्रादुस् श्रत् अविस् । इति ऊर्यादयः ।

साक्षात् प्रभृतीनि च-(१-४-७४)

साक्षात् मिथ्या चिन्ता भद्रा रोचना आस्था अमा अद्धा प्राजर्या । प्राजरुहा । बीजर्या बीजरुहा संसर्या अर्थे लवणम् उष्णम् शीतम् उदकम् आर्द्रम् अग्नौ वशे विकसने प्रहसने प्रतपने प्रादुस् नमस् । इति साक्षात्प्रभृतयः । आकृतिगणोऽयम् ।

द्वितीयोऽध्यायः

तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च (२-१-१७)

तिष्ठद्गु वहद्गु आयतीगवम् खलेयवम् खलेबुसम् लूनयवम् लूयमानयवम् पूतयवम् पूयमानयवम् संहृतयवम् संह्रियमाणयवम् संहृतबुसम्, संह्रियमाणबुसम् समभूमि समपदाति सुषमम् विषमम् दुःषमम् निःषमम् अपसमम् आयतीसमम् पापसमम् पुण्यसमम् प्राह्णम् प्ररथम् प्रमृगम् प्रदक्षिणम् संप्रति असम्प्रति । इच्प्रत्ययः समासान्तः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

बधिर इति **अरीहणादिः** ।। कृशाश्व अरिष्ट अरीश्व वेश्मन् विशाल रोमक शबल कूट रोमन् बर्बर सुकर सूकर प्रतर सदृश पुरग सुख धूम अजिन विनता (वनिता) अवनत विकुघास अरुस अवयास (अयावस्) मौद्गल्य इति कृशाश्वादिः ।। ऋश्य न्यग्रोध शिरा निलीन निवास निधान निवात निबद्ध विबद्ध परिगूढ उपगूढ उत्तराश्मन् स्थूलबाहु खदिर शर्करा अनडुह् परिवंश वेणु वीरण (भण्ड परिवृत्त कर्दम अंशु) इति **ऋश्यादिः** ।। कुमुद शर्करा न्यग्रोध इत्कट (उत्कट) गर्त बीज अश्वत्थ बल्वज परिवाप शिरीष यवाष कूप विकङ्कत (कङ्कट कण्टक सङ्कट पलाश त्रिक कत दशग्राम) **इति कुमुदादिः** ।। काश वाश अश्वत्थ पलाश पीयूष विश (विस) तृण नर चरण कर्दम कर्प्पूर कण्टक गृह (आवास नड वन वधूल वर्वर) इति **काशादिः** ।। तृण नड बुस पर्ण चरण अर्ण जन वल लव वन इति तृणादिः ।। प्रेक्षा हलका (फलका) बन्धुका ध्रुवका क्षिपका न्यग्रोध इर्कुट । **प्रेक्षादिः** ।। अश्मन् यूष रूष मीन दर्भ वृन्द गुड खण्ड नग शिखा । इति **अश्मादिः** ।। सखि सखिदत्त वायुदत्त गोहित (गोहिल) भल्ल पाल चक्रपाल चक्रवाल छगल अशोक करवीर सीकर सकर सरस समल चर्क वक्रपाल उशीर सुरस रोह तमाल कदल सप्तल) इति **सख्यादिः** ।। संकाश काम्पिल्य समीर कश्मर शूरसेन सुपथिन् सक्थच् यूप अंश एग अश्मन् कूट मलिन तीर्थ अगस्ति विरत चिकार विरह नासिका । इति **संकाशादिः** ।। बल वुल तुल उल डुल कवल वन कुल । इति **बलादिः** ।। पक्ष तुष अण्ड कम्बलिक चित्र अश्मन् अतिस्वन् परिपन्थ च (कुम्भसीरज सीरक सरक सलक सरस समल रोमन् लोमन् हंसका लोमक सकण्डक अस्तिबल यमल हस्त सिंहक) इति **पक्षादिः** ।। कर्ण वशिष्ठ अलुश शल डुपद अनडुह्य पाञ्चजन्य स्थिरा कुलिश कुम्भी जिवन्ती **जित्व आण्डीवत्** (अर्क लूष स्फिक श्यावत) इति **कर्णादिः** ।। सुतङ्गम मुनिचित्त विप्रचित्त महापुत्र श्वेत गडिक शुक्र विग्र बीजवापिन् श्वन् अर्जुन अजिर जीव । इति सुतङ्गमादिः ।। प्रगदिन् मगदिन् शरदिन् कलिव खडिव गडिव चूडार मार्जार कोविदार । **प्रगद्यादिः** ।। वराह पलाश शिरीष पिनद्ध स्थूण वदग्ध विजगध विभग्न बाहु खदिर शर्करा (विनद्ध निबद्ध विरुद्ध मूल) इति **वराहादिः** ।। कुमुद गोमथ रथकार दशग्राम अश्वत्थ शाल्मली कुण्डल मुनिस्थूल कूट मुचुकर्ण (कुन्द मधुकर्ण शुचिकर्ण शिरीष) इति **कुमुदादिः** ।।

उत्करादिभ्यश्छः-(४-२-९०)

उत्कर संफल शफर पिप्पल पिप्पलीमूल अश्मन् सुवर्ण स्वलाजिन् तिक कितव अणक त्रैवण पिचुक अश्वत्थ काश क्षुद्र भस्त्रा शाल जन्या अजिर चर्मन् उत्क्रोश क्षान्त खदिर शूर्पणाय श्यावनाय नैवाकव तृण वृक्ष शाक पलाश विजिगीषा अनेक आतप फल संपर अर्क गर्त अग्नि वैराणक इडा अरण्य निशान्त पण नीचायक शंकर अवरोहित क्षार विशाल वेत्र अरीहण खण्ड वातागार मन्त्रणार्ह इन्द्र वृक्ष नितान्तवृक्ष (नितान्तावृक्ष) आर्द्रवृक्ष ।। इत्युत्करादिः ।।

नडादीनां कुक्च-(४-२-९१) नड प्लक्ष विल्व वेणु वेत्र वेतस इक्षु काष्ठ कपोत तृण क्रुञ्चा ह्रस्वञ्च । तक्षन्नलोपश्च । इति नडादिः ।।

नद्यादिभ्यो ढक्-(४-२-९७)

नदी मही वाराणसी श्रावस्ती कौशाम्बी वनकौशाम्बी (वनकोशाम्बी) काशपरी काशफारी (काशफरी) खादिरी पूर्वनगरी पाठा माया शाल्वा दार्वा सेतकी बडवाया वृषे । इति नद्यादिः।।

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ-४-२-११६) काशि चेदि (वेदि) सांयाति संवाह अच्युत मोदमान

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

शकुलाद हस्तिकर्षू कुनामन् हिरण्या करण गोवासन भारङ्गी अरिन्दम अरित्र देवदत्त दशग्राम शौवावतान युवराज उपराज देवराज मोदन सिन्धुमित्र दासमित्र सुधामित्र सोममित्र छागमित्र साधमित्र (सधमित्र) आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् । आपद् ऊर्ध्व तत् । **इति काश्यादिः॥**

गहादिभ्यश्च-(४-२-१३८) गह अन्तःस्थ सम विषम । मध्यमध्यमं चाण्चरणे । उत्तम अङ्ग बङ्ग मगध पूर्वपक्ष अपरपक्ष अधमशाख उत्तमशाख समानशाख एकग्राम एकवृक्ष एकपलाश इष्वग्र इष्वन्दी (इष्वनीक) अवस्यन्दी (अवस्कन्द) कामप्रस्थ खाडायनि (खाण्डायनी) कावेरणि (कामवेरणि) शैशिरि शौङ्गि आसुरि आहिंसि आमित्रि व्याडि वैदजि भौजि आद्ध्यथि आनृशंसि सौविपारकि अग्निशर्मन् देवशर्मन् श्रौति आरटकि बाल्मीकि क्षेमवृद्धिन् उत्तर अन्तर् । मुखपाश्वतसोर्लोपः । जनपरयोः कुक् च । देवस्य च । वेणुकादिभ्यश्छण् । इति **गहादिः** । आकृतिगणः ।

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् (४-३-१६) मूले पठितम् ।

दिगादिभ्यो यत्-(४-३-५४) दिश् वर्ग पूग गण पक्ष धाय्या मित्र मेधा अन्तर पथिन् रहस् अलीक उखा साक्षिन् आदि अन्त मुख जघन मेघ यूथ । उदकात्संज्ञायाम् । (उदक्या रजस्वला) न्याय वंश अनुवंश विष काल अप् आकाश इति **दिगादिः** ॥

वा. परिमुखादिभ्यः एवेष्यते (सूत्राङ्क-४-३-५९)

परिमुख परिहनु पर्योष्ठ पर्यलूखल (पर्यूल) परिसीर अनुसीर उपसीर उपस्थल (उपस्थूण) उपकलाप अनुपथ अनुखड्ग अनुतिल अनुशीत अनुमाष अनुयव अनुयूप अनुवंश (अनुस्वङ्ग) अधुसाय प्रतिशाख ।

वा. अध्यात्मादेः ठञिष्यते ॥ सूत्राङ्क-(४-३-६०)

अध्यात्म अधिदेव अधिभूत इहलोक परलोक । इत्यध्यात्मादिः ॥

पलाशादिभ्यो वा-(४-३-१४१) पलाश खदिर शिंशपा स्पन्दन पूलाक करीर शिरीष यवास विकङ्कत इति **पलाशादिः** ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः-(४-३-१४४) शर दर्भ मृद् कुटी तृण सोम बल्वज । इति **शारादिः**।

प्लक्षादिभ्योऽण्-(४-३-१६४) प्लक्ष न्यग्रोध अश्वत्थ इङ्गुदी शिग्रु रुरु कक्षतु वृहती । इति प्लक्षादिः ॥

हरीतक्यादिभ्यश्च-(४-३-१६७) हरीतकी कोशातकी नखरञ्जनी शष्कण्डी दाडी दोडी श्वेतपाकी अर्जुनपाकी द्राक्षा काला ध्वाक्षा गभीका कण्टकारिका पिप्लर्ली चिम्पा (चिञ्चा) शेफालिका । इति हरीतक्यादिः ॥

वा. आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥ सूत्राङ्क-(४-४-१) प्रभूत पर्याप्त ॥

वा. माशब्दादिभ्यः उपसंख्यानम् ॥ मा शब्दः नित्यशब्दः कार्यशब्दः । वा. पृछतौ सुस्नातादिभ्यः ॥ सुस्नात सुखरात्रि सुखशयन ।

वा. गच्छतौ परदारादिभ्यः ॥ परदार गुरुतल्प ॥

पर्पादिभ्यष्ठन्-(४-४-१०) पर्प अश्वत्थ अश्व रथ जाल न्यास व्याल पादः पञ्च । इति पर्पादिः।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वेतनादिभ्यो जीवति-(४-४-१२) वेतन वाहन अर्धवाहन धनुर्दण्ड जाल वेश उपवेश प्रेषण उपवस्ति सुख शय्या शक्ति उपनिषद् उपदेश स्फिज् (स्फिज) पाद उपस्थ उपस्थान उपहस्त । इति **वेतनादिभ्यः** ॥

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः-(४-४-१५) उत्सङ्ग उडुप उत्पूत उत्पन्न उत्पुट पिटक पिटाक । इत्युत्सङ्गादिः ॥

भस्त्रादिभ्यष्ठन्-(४-४-१६) भस्त्रा भरट भरण (भारण) शीर्षभार शीर्षेभार अंसभार अंसेभार । इति भस्त्रादिः ॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः-(४-४-१९) अक्षद्यूत (अक्षद्यत) जानुप्रहृत जङ्घाप्रहृत पादस्वेदन कण्टकमर्दन गतागत यातोपयात अनुगत । इति अक्षद्यूतादिः ॥

छत्रादिभ्यो णः-(४-४-६२) छत्र बुभुक्षा शिक्षा पुरोह स्था चुरा उपस्थान ऋषि कर्मन् विश्वधा तपस सत्य अनृत शिबिका (तितिक्षा प्ररोहस्था विशिखा विशिका पुरोडा विक्षा चुक्षा मन्द्र) इति छत्रादिः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोध्यायः

उगवादिभ्यो यत्-(५-१-२-) गो हविस् अक्षर विष बर्हिस् अष्टका स्वदा युग मेधा स्रच् । नाभि नभंच । शुनः सम्प्रसारणं वा दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम् । ऊधसोऽनङ् च । कूप खद दर खर असुर अध्वन् क्षर वेद बीज दीस (दीप्त) इति गवादिः ॥

विभाषा हविरपूपादिभ्यः-(५-१-४) अपूप तण्डुल अभ्युष (अभ्यूष) अभ्येण अवोष पृथुक ओदन सूप यूप किण्व प्रदीप मुसल कटक कर्णवेष्टक इर्गल अर्गल । अन्नविकारेभ्यश्च । यूप स्थूणा दीप अश्व पत्र । इति **अपूपादिः** ॥

असमासे निष्कादिभ्यः-(५-१-१०) निष्क पण पाद माष द्रोण वाह षष्टि । इति निष्कादिः ॥

दण्डादिभ्यो यत्-(५-१-६६) दण्ड मुसल मधुपर्क कशा अर्घ मेधा मेघ युग उदक वध गुहा भाग इभ । इति **दण्डादिः** ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिच् वा-(५-१-१२२) पृथु मुदु महत् पटु तनु लघु बहु साधु वेणु आसु बहुल गुरु दण्ड ऊरु खण्ड बाल अकिञ्चन होड पान (पाक) वत्स मन्द स्वादु ह्रस्व दीर्घ वृष ऋजु क्षिप्र क्षुप्र क्षुद्र अणु । इति पृथ्वादिः ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्-(५-१-१२३) दृढ वृढ परिवृढ भृश कृश वक्र शुक्र चुक्र आम्र कृष्ट लवण ताम्र शीत उष्ण जड बधिर पण्डित मधुर मूर्ख मूक स्थिर । वेर्यातलातमतिर्मनः शारदानाम्। समो मतिमनसोः ॥ (जवन) इति दृढादिः ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च-(५-१-१२४) ब्राह्मण वाडव माणव । अर्हतो नुम् च । चोर धूर्त आराधय विराधय अपराधय उपराधय एकभाव द्विभाव त्रिभाव अन्यभाव अक्षेत्रज्ञ संवादिन् संवेशिन् संभाषिन् बहुभाषिन् शीर्षघातिन् विघातिन् समस्थ विषमस्थ परमस्थ मध्यमस्थ अनीश्वर कुशल चपल निपुण पिशुन कूतूहल क्षेत्रज्ञ निश्न बालिश अलस दुःपुरुष कापुरुष राजन् गणपति अधिपति गडुल दायाद विशस्ति विषम विपात निपात । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे । चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च । शौटीर । आकृतिगणोऽयम् । इति ब्राह्मणादिः ॥

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

वा. चतुर्वेदादिभ्य उभयपदवृद्धिश्च- (सू.-५-१-१२४) चतुर्वेद चतुर्वर्ण चतुराश्रम सर्वविद्य त्रिलोक त्रिस्वर षड्गुण सेना अनन्तर सन्निधि समीप उपमा सुख तदर्थ इतिह मणिक । इति चतुर्वेदादिः ॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्-(५-१-१२८) पुरोहित राजासे ग्रामिक पिण्डिक सुहित वालमन्द (बालमन्द) खण्डिक दण्डिक वर्मिक कर्मिक धर्मिक शितिक सूतिक मूलिक तिलक अञ्जलिक (अन्तलिक) रूपिक ऋषिक पुत्रिक अविक छत्रिक पर्षिक पथिक चर्मिक प्रतिक सारथि आस्थिक सूचिक संरक्ष सूचक (संरक्षसूचक) नास्तिक अजानिक शाक्वर नागर चूडिका । इति पुरोहितादिः ।

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्-(५-१-१२९) उद्गातृ उन्नेतृ प्रतिहर्तृ प्रशास्तृ होतृ पोतृ हर्तृ रथगणक पक्षिगणक सुष्ठु दुष्ठु ध्वर्यु वधू सुभगमन्त्रे । इत्युद्गात्रादिः ॥

हायनान्तयुवादिभ्योऽण्-(५-१-१३०) युवन् स्थविर होतृ यजमान पुरुषासे भ्रातृ कुतुक श्रमण (श्रवण) कटुक कमण्डलु कुस्त्री सुस्त्री दुःस्त्री सुहृदय दुर्हृदय सुहृद् दुर्हृद् सुभ्रातृ दुर्भ्रातृ वृषल परिव्राजक सब्रह्मचारिन् अनृशंस हृदयासे कुशल चपल निपुण पिशुन कुतूहल क्षेत्रज्ञ । श्रोत्रियस्य यलोपश्च । इति युवादिः ॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च-(५-१-१३३) मनोज्ञ प्रियरूप अभिरूप कल्याण मेधाविन् आढ्य कुलपुत्र छान्दस छात्र श्रोत्रिय चोर धूर्त विश्वदेव युवन् कुपुत्र ग्रामपुत्र ग्रामकुलाल ग्रामड (ग्रामषण्ड) ग्रामकुमार सुकुमार बहुल अवश्यपुत्र अमुष्यपुत्र सारपुत्र शतपुत्र । इति मनोज्ञादिः ॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ-(५-२-२४) पीलु कर्कन्धू (कर्कन्धु) शमी करीर बल (कुबल) बदर अश्वत्थ खदिर इति पील्वादिः ॥ कर्ण अक्षि नख मुख केश पाद गुल्फ भ्रू शृङ्ग दन्त ओष्ठ पृष्ठ । इति कर्णादिः ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्-(५-२-३६) तारका पुष्प कर्णक मञ्जरी ऋजीष क्षण सूत्र मूत्र निष्क्रमण पुरीष उच्चार प्रचार विचार कुड्मल कण्टक मुसल मुकुल कुसुम कुतूहल स्तबक किसलय पल्लव खण्ड वेग निद्रा मुद्रा बुभुक्षा धेनुष्या पिपासा श्रद्धा अभ्र पुलक अङ्गारक वर्णक द्रोह दोह सुख दुःख उत्कण्ठा भर व्याधि वर्मन् व्रण गौरव शास्त्र तरङ्ग तिलक चन्द्रक अन्धकार गर्व कुमुर (मुकुर) हर्ष उत्कर्ष रण कुवलय गर्ध क्षुध् सीमन्त ज्वर गर रोग रोमाञ्च पण्डा कज्जल तृष् कोरक कल्लोल रथपुट फल कञ्चुक शृङ्गार अङ्कुर शैवल बकुल श्वभ्र आराल कलङ्क कर्दम कन्दल मूर्च्छा अङ्गार हस्तक प्रतिबिम्ब विघ्नतन्त्र प्रत्यय दीक्षा गर्ज । गर्भादप्राणिनि ॥ इति तारकादिः ॥

इष्टादिभ्यश्च-(५-२-८८) इष्ट पूर्त उपासादित निगदित परिगदित परिवादित निकथित निषादित निपठित सकलित परिकलित संरक्षित परिरक्षित अर्चित गणित अवकीर्ण आयुक्त गृहीत आम्नात श्रुत अधीत अवधान आसेवित अवधारित अवकल्पित निराकृत उपकृत उपाकृत अनुयुक्त अनुगणित अनुपठित व्याकुलित । इतीष्टादिः ॥

सिध्मादिभ्यश्च-(५-२-९७) सिध्म गडु मणि नाभि बीज वीणा कृष्ण निष्पाव पांसु पार्श्व पर्शु हनु सक्तु मास (मांस) पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च । वातदन्तबलललाटानामूङ् च ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

जटाघटाकटाकालाः क्षेपे । पर्ण उदक प्रजा सक्थि कर्ण स्नेह शीत श्याम पिङ्ग पित्त पुष्क पृथु मृदु मञ्जु मण्ड पत्र चटु कपि गण्डु ग्रन्थि श्री कुश धारा वर्ष्मन् पक्ष्मन् श्लेष्मन् पेश निष्पाद कुण्ड क्षुद्रजन्तूपतापयोश्च । इति सिध्मादिः ॥

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः (५-२-१००) लोमन् रोमन् बभ्रु हरि गिरि कर्क कपि मुनि तरु । इति लोमादिः ॥ पामन् वामन् वेमन् हेमन् श्लेष्मन् कद्रु (कद्रू) बलि सामन् ऊष्मन् कृमि श्रेष्ठ पलल । अङ्गात् कल्याणे । शाकीपलालीदद्रूणां ह्रस्वत्वं च । विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः । लक्ष्म्या अच्च । इति पामादिः ॥ पिच्छ उरस् ध्रुवक ध्रुवक क्षुवका जटाघटाकालाः क्षेपे । वर्ण उदक पङ्क प्रज्ञा । इति पिच्छादिः ॥

वा. ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम-॥ सू. (५-२-१०३) ज्योत्स्ना तमिस्रा कुण्डल कुतप विसर्प विपादिका । इति ज्योत्स्नादिः ॥

ब्रीह्यादिभ्यश्च-(५-२-११६) व्रीहि माया शाला शिखा माला मेखला केका अष्टका पताका चर्मन् कर्मन् वर्मन् दंष्ट्रा संज्ञा वडवा कुमारी नौ वीणा बलाका यवखदनौ कुमारी । शीर्षान्नञः। इति ब्रीह्यादिः ॥

अर्शआदिभ्योऽच्-(५-२-१२७) अर्शस् उरस् तुन्द चतुर कलित जटा घटा घाटा अभ्र अघ कर्दम अम्ल लवण । स्वाङ्गाद्धीनात् । वर्णात् । इत्यर्श आदिराकृतिगणः ॥

वा. दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव ॥ सूत्राङ्क (५-३-१४) भवान् दीर्घायुः देवानां प्रियः आयुष्मान् इति । इति भवदादिः ॥

शाखादिभ्यो यः-(५-३-१०३) शाखा मुख जघन शृङ्ग मेघ अभ्र चरण स्कन्ध स्कद (स्कन्द) उरस् शिरस् अग्र (शाण) शरण । इति शाखादिः ॥

यावादिभ्यः कन्-(५-४-२९) याव मणि अस्थि तालु जानु सान्द्र पीत स्तम्ब । ऋता उष्णशीते। पशौ लूनविपाते । अणु निपुणे । पुत्र कृत्रिमे । स्नातवेद समाप्तौ । शून्य रिक्ते । दान कुत्सिते। तनु सूत्रे । ईयसश्च । ज्ञात अज्ञात । कुमारीक्रीडनकानि च (कुमारक्रीडनकानि च) इति यवादिः॥

प्रज्ञादिभ्यश्च-(५-४-३८) प्रज्ञ वणिज् उशिज् उष्णिज् प्रत्यक्ष विद्वस् विदन् षोडन् विद्या मनस्। श्रोत्र शरीरे । जुह्वत् । कृष्ण मृगे । चिकीर्षत् । चोर शत्र योध चक्षुस् वसु (एनस्) मरुत् क्रुञ्च सत्त्वत् दशार्ह वयस् (व्याकृत) असुर रक्षस् पिशाच अशनि कार्षापण देवता बन्धु । इति प्रज्ञादिः ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः-(५-४-१०७) हस्तिन् कुद्दाल अश्व कशिक कुरुत कटोल कटोलक गण्डोल गण्डोलक कण्डोल कण्डोलक अज कपोत जाल गण्ड महिला दासी गणिका कुसूल। इति हस्त्यादिः ॥

उरः प्रभृतिभ्यः कप्-(५-४-१५१) उरस् सर्पिस् उपानह् पुमान् अनड्वान् पयः नौः लक्ष्मीः दधि मधु शाली शालिः । अर्थान्नञः ॥

षष्ठाऽध्यायः

वा. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् ॥ (सू. ६-१-९४) मूले पठितम् ।)

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्-(६-१-१५७) मूले पठितम् ।

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः-(६-३-३५) तसिल् त्रत् तरप् तमप् चरट् जातीयर् कल्पप् देशीयर् रूपप् पाशप् थल् थाल् दा र्हिल् तिल् थ्यन् । इति तसिलादिः ।

वा. कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु सूत्राङ्क-(६-३-३५) कुक्कुटी मृगी काकी । अण्ड पद शाव भ्रकुंस भृकुटी ।

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्-(६-३-१०९) पृषोदर पृषोत्थान बलाहक जीमूत श्मशान उलूखल पिशाच वृसी मयूर ।

मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्-(६-३-११९) अजिर खदिर पुलिन हंसक (हंस) कारण्ड (कारण्डव) चक्रवाक ।

शरादीनाञ्च-(६-३-१२०) शर वंश धूम अहि कपि मणि मुनि शुचि हनु ।

सप्तमोऽध्यायः

द्वारादीनाञ्च-(७-३-४) द्वार स्वर स्वग्राम स्वाध्याय व्यल्कश स्वस्ति स्वर् स्फ्यकृत् स्वादु मृदु श्वस् श्वन् स्व इति द्वारादिः ।

अनुशतिकादीनां च-(७-३-२०) अनुशतिक अनुहोड अनुसंवरण (अनुसंचरण) अनुसंवत्सर अङ्गारवेणु असिहत्य (अस्यहत्य) अस्यहेति वध्योग पुष्करसद् अनुहरत् कुरुकत कुरुपञ्चाल उदकशुद्ध इहलोक परलोक सर्वलोक सर्वपुरुष सर्वभूमि प्रयोग परस्त्री । राजपुरुषात् ष्यञि । सूत्रनड । इत्यनुशतिकादिः । आकृतिगणोऽयम् । तेन अभिगम अधिभूत अधिदेव चतुर्विद्या इत्यादयोऽप्यन्ये विज्ञेयाः ।

वा. क्षिपकादीनाञ्च ॥ सूत्राङ्क-(७-३-३४५) क्षिपका ध्रुवका चरका सेवका करका चटका अवका लहका अलका कन्यका ध्रुवका एडका । आकृतिगणोऽयम् ।

अष्टमोऽध्यायः

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः-(८-२-९) यव दल्मि ऊर्मि (उर्मि) भूमि कृमि कुञ्चा वशा द्राक्षा ध्राक्षा घ्रजि व्रजि ध्वजि निजि सिजि सञ्जि हरित् ककुद् मरुत् गरुत् इक्षु द्रु मधु इति यवादिः । आकृतिगणोऽयम् ।

कस्कादिषु च-(८-३-४८) कस्कः कौतस्कुतः भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः सद्यस्कालः सद्यस्कीः साद्यस्कः कांस्कान् सर्पिष्कुण्डिका धनुष्कपालम् बहिष्पलम् (बर्हिष्पलम्) यजुष्पात्रम् । अयस्कान्तः तमस्काण्डः अयस्काण्डः मेदस्पिण्डः भास्करः अहस्करः । इति कस्कादिराकृतिगणः।

क्षुभ्नादिषु च-(८-४-३९) क्षुभ्ना नृगमन् नन्दिन् नन्दन नगर । यतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति । हरिनन्दी हरिनन्दनः गिरिनगरम् । नृतिर्यङि प्रयोजयन्ति । परिनर्तनम् परिगहनम् परिनन्दनम् शरनिवेशः शरनिवासः शरग्निः दर्भानूपः । आचार्यादणत्वञ्च । आचार्यभोगीनः । आकृतिगणोऽयम् ।

पाठान्तरम्-क्षुभ्ना तृप्नु नृनमन नरनगर नन्दन । यङ्नृती । गिरिनदी गृहगमन निवेश निवास अग्नि अनूप आचार्यभोगीन चतुर्हायन ।

'इरिकादीनि वनोत्तरपदानि संज्ञायाम्' । इरिका तिमिर समीर कुबेर हरि कर्मार इति क्षुभ्नादिः।

श्रीपाणिनिमुनिप्रणीतो गणपाठः समाप्तः ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यकौमुदीस्थ-सूत्राणामकारादिवर्णक्रमेण सूची ।

अइउण् १ ऋलृक् २ एओङ् ३ ऐऔच् ४ हयवरट् ५ लण् ६ अमङणनम् ७ झभञ् ८ घढधष् ९ जबगडदश् १० खफछठथचटतव् ११ कपय् १२ शषसर् १३ हल् १४ । इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि । (प्रथमपृष्ठे)।

पृष्ठम्	सूत्रम्
	अ
४४५	अकथितं च
४३१	अकर्तरि च०
३०८	अकर्मकाच्च
१६	अकः सव०
१३८	अकृत्सार्द०
४६४	अकेनोभवि०
१५५	अक्षोन्यतर०
५५०	अक्ष्णोऽदर्श०
५४३	अग्नेःस्तुत्स्तो०
३८३	अग्नौ चेः
३५३	अग्नौ परि०
५१४	अग्राख्या०
५३३	अग्रान्तशुद्ध०
५५०	अचतुरवि०
१३७	अचस्तास्व०
५९०	अचित्तहस्ति०
६०	अचि र०
२४५	अचि विभा०
५२	अचि श्नुधातु०
४९	अचो ञ्णि०
१५	अचोऽन्त्या०
३४३	अचो यत्
१५	अचो रहा०
८७	अचः
३२६	अचः कर्म०
२६४	अचः पर०
५९०	अचित्तहस्ति०
४८	अच्च घेः
५०६	अच्छगत्यर्थ०
५५०	अच्प्रत्यन्व०
३४६	अजर्यं संग०
६७१	अजादी गुण०
५३८	अजाद्यदन्त०
६९३	अजाद्यतष्टाप्
६३१	अजाविभ्यां०
२७७	अज्झनगमां०
६७५	अज्ञाते
५३०	अञ्नासि०
३९२	अञ्चेः पूजायाम्
६६७	अञ्चेर्लुक्
३८९	अञ्चोऽनपा०
२४९	अञ्जेः सिचि
३८	अट् कुप्वाङ्०
१९७	अड् गार्ग्य०
३१७	अणावकर्म०
५८३	अणिञोरना०
७	अणुदित्सव०
६५४	अण् च
१२५	अत आदेः
५७४	अत इञ्
६५७	अत इनिठ०
१२९	अत उपधा०
१९१	अत उत्सा०
१२९	अत एकह०
६८०	अतिथेर्ज्यः
४५३	अतिरतिक्र०
६७०	अतिशायने०
५१४	अतेः शुनः
७२	अतो गुणे
११३	अतो दीर्घो०
३८	अतो भिस् ऐस्
६३	अतोऽम्
१२१	अतो येयः
३०	अतो रोर०
१३४	अतो लोपः
१४१	अतो ल्रान्तस्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
१२९	अतो हलादे०
११८	अतो हेः
३६७	अतः कृकमि०
७६	अत्पूर्वस्य
२८०	अत्र लोपो०
२५	अत्रानुनासिक०
५७७	अत्रिभृगु०
९०	अत्वसन्तस्य
२६१	अत्स्मृदृत्वर०
२००	अदभ्यस्तात्
३	अदर्शनं लोपः
९५	अदस औ०
१८	अदसो मात्
९५	अदसोऽसे०
१८४	अदिप्रभृति०
५९५	अदूरभवश्च
११	अदेङ्गुणः
३८६	अदो जग्धि०
३७८	अदोऽनन्ने
५०६	अदोऽनुपदेशे
१८५	अदः सर्वेषाम्
६४	अद्ड्डतरा०
४९१	अधिकरणवाचिना
४६२	अधिकरणवा०
३६७	अधिकरणे शेतेः
६१४	अधिकृत्यकृ०
४६९	अधिरीश्वरे
४४९	अधिशीङ्०
६६३	अधुना

पृष्ठम्	सूत्रम्
५३९	अध्ययनतो०
६३४	अध्यर्धपूर्व०
६९६	अन उपधा०
४८	अनङ् सौ
९	अनचि च
५०७	अनत्याधान०
११६	अनद्यतने०
१२०	अनद्यतनेलङ्
६६४	अनद्यतनेर्हिल्
४८३	अनश्च
७३	अनाप्यकः
२००	अनितेः
८७	अनिदितां०
५०४	अनुकरणं०
५५३	अनुगवमाया०
१११	अनुदात्तङित०
७२९	अनुदात्तं प०
१५४	अनुदात्तस्यचर्दु०
७२९	अनुदात्तस्य
६१७	अनुदात्तादेश्च
४०४	अनुदात्ते०
१८६	अनुदात्तोपदेश
७३०	अनुदात्तौ सु०
२९९	अनुनासिक०
२५	अनुनासिकात्०
६५१	अनुपद्यन्वेष्टा
३१५	अनुपराभ्यां०
३०८	अनुपसर्गाद्वा
३५७	अनुपसर्गाल्लिम्प

पृष्ठम्	सूत्रम्
३९०	अनुपसर्गात्फुल्ल
७००	अनुपसर्ज०
४५१	अनुर्लक्षणे
१७२	अनुविपर्य०
६११	अनुशतिका०
२३	अनुस्वारस्य
५७४	अनुष्यान०
५२०	अनेकमन्य०
१६	अनेकाल्शित्
६९६	अनो बहुब्रीहेः०
३८५	अनौ कर्म०
५७६	अन्
४९०	अनश्च
५०५	अन्तरपरि०
६११	अन्तः पूर्व०
७०५	अन्तर्वत्पति०
४३	अन्तरं बहि०
३७९	अन्तः
५२९	अन्तर्बहि०
४५१	अन्तरान्तरेण०
१९५	अन्तादिवच्च
३७४	अन्तात्यन्ता०
६७२	अन्तिकबा०
४८७	अन्नेन व्यञ्ज०
४८२	अन्यपदार्थे०
४४१	अन्यथैवंकथ०
४५९	अन्यारादित०
३७९	अन्येभ्योऽपि०
५२७	अन्येषामपि०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
३८५	अन्येष्वपि०
५५२	अन्ववतप्ता०
५७२	अपत्यं पौ०
५१७	अपथं नपुं०
४८०	अपपरिबहि०
४५९	अपपरी वर्जने
७०३	अपरिमाण०
३२९	अपरोक्षे च
४५६	अपवर्गे तृतीया
३०८	अपह्नवे ज्ञः
४५८	अपादाने०
५७९	अपूर्वपदा
४८	अपृक्त एका०
३७५	अपे क्लेश०
४०३	अपे च लषः
९८	अपो भि
५५	अप्तृन्तृच्०
५२२	अप्पूरणी०
४३४	अप्रत्ययात्
७००	अभाषितपुं०
२२८	अभिज्ञावच०
४५०	अभिनिविश०
६१३	अभिनिष्का०
३१६	अभिप्रत्य०
४५३	अभिरभागे
६८४	अभिविधौ सं०
१८२	अभ्यस्तस्य०
१९४	अभ्यासस्या०
१८६	अभ्यासाच्च

पृष्ठम्	सूत्रम्
११५	अभ्यासे चर्चि
३७६	अमनुष्य०
३५३	अमावस्यद०
३८	अमि पूर्वः
५५६	अमूर्धमस्त०
५११	अमैवाव्ययेन
७१	अम्संबुद्धौ
३६३	अम्बाम्ब०
५२	अम्बार्थन०
७१९	अयस्मया०
२९०	अयङ्यि०
१६३	अयामन्ता०
६०४	अरण्यान्म०
३६९	अरुर्द्विषद०
६८४	अरुर्मनश्च०
२१५	अर्तिपिपर्त्यो०
४०७	अर्तिलूधूसू०
२७१	अर्तिह्रीब्ली०
३४	अर्थवदधा०
५६३	अर्थे विभाषा
५१८	अर्धर्चाः पुं०
४९३	अर्धं नपुंस०
५१५	अर्धाच्च
३४५	अर्यः स्वामि
७८	अवर्णस्त्र०
६५९	अर्शआ०
३६६	अर्हः
३३२	अर्हे कृत्य०
५५५	अलुगुत्तरपदे

पृष्ठम्	सूत्रम्
९	अलोऽन्त्यस्य
४८	अलोन्त्यात्
४०२	अलंकृञ०
४३८	अलंखल्वोः
५३८	अल्पाच्तरम्
६७५	अल्पे०
६७	अल्लोपो०
१६	अवङ्स्फो०
३४४	अवद्यप०
६१७	अवयवे०
७२०	अवयाः श्वेत०
५५२	अवसमन्धे०
१२८	अवाच्चालं०
६४५	अवात्कुटार०
४३७	अवे तृस्त्रो०
७२०	अवे यजः
६८०	अवेः कः
६८५	अव्यक्तानु०
६७४	अव्ययसर्व०
६०१	अव्ययात्यप्
१०९	अव्ययादाप्
१०९	अव्ययीभावश्च
४७८	अव्ययीभावे चा
४८२	अव्ययीभावे
४७५	अव्ययीभावश्च
४७४	अव्ययीभावः
६१०	अव्ययीभावाच्च
५१२	अव्ययेऽयथा०
४७४	अव्ययं विभ०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
७२६	अव्यादवद्या०
२९६	अशनायो०
५१८	अशाला च
२३८	अश्नोतेश्च
२९७	अश्वक्षीरवृ०
५६९	अश्वपत्या०
५७७	अश्वादि०
५६३	अषष्ठ्यतृ०
७९	अष्टन आ०
७९	अष्टाभ्य औ०
६३३	असमासे०
१२७	असंयोगाल्लि०
६०५	असांप्रतिके
१८७	असिद्धवद०
३७१	असूर्यलला०
५०५	अस्तं च
६६६	अस्ताति च
६२७	अस्तिनास्ति०
१२५	अस्तिसिचो०
१९२	अस्तेर्भूः
६७	अस्थिदधि०
११२	अस्मद्युत्तमः
६५७	अस्माया०
६८३	अस्य च्वौ०
१९६	अस्यतिवक्ति०
२२७	अस्यतेस्थुक्
७११	अस्वाङ्गपूर्व०
१०२	अहन्
६६०	अहंशुभमो०
५१२	अहः सर्वैक०
५१३	अह्नष्टखो०
५१३	अह्नोऽह्न एते०
५१३	अह्नोऽदन्ता०
	आ
४६	आकडारा०
४०१	आक्वेस्त०
३०८	आङ उद्गम०
४६०	आङ्मर्यादा०
५८	आङि चा०
३६६	आङि ता०
४७	आङो ना०
३१०	आङो यम०
३४३	आङो यि०
२८	आङ्माङोश्च
६३७	आ च त्वा०
२१७	आ च हौ
१०३	आच्छीनद्यो०
७२७	आज्जसेर०
५२	आटश्च
१२५	आडजादी०
११९	आड्डुत्तमस्य०
३७७	आढ्यसुभग०
५२	आण्नद्याः
७२२	आत ऐ
१४२	आत औ णलः
३५७	आतश्चोपसर्गे
४३५	आतश्चोप०
१५८	आतो ङितः
४७	आतो धा०
३६२	आतोऽनुप०
३२२	आतो युक्०
४३७	आतो युच्
१४२	आतो लोप०
१४३	आतः
५५५	आत्मनश्च
३१०	आत्मनेपदेष्व०
१६३	आत्मनेपदेष्व०
१८२	आत्मनेपदेष्वन्य०
६३२	आत्मन्विश्च०
३८१	आत्ममाने०
६३२	आत्माध्वा०
५०४	आदरानाद०
७००	आदाचार्या०
३९३	आदिकर्म०
३९०	आदितश्च
३	आदिरन्त्येन
१३१	आदिर्ञिटुडवः
१४३	आदेच उप०
४०	आदेशप्रत्य०
२१	आदेः परस्य
११	आद्गुणः
७३	आद्यन्तव०
२४	आद्यन्तौ ट०
७३०	आद्युदात्तश्च०
४६६	आधारोऽधि०
५४२	आनङ्तो०
११९	आनि लोट

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
४००	आने मुक्
४९९	आन्महतः
५७३	आपत्यस्य०
५३४	आपोऽन्यतरस्याम्
२८०	आप्ज्ञप्यृ०
६९०	आबाधे च
४४०	आभीक्ष्ण्ये०
८६	आमन्त्रितं०
४१	आमि सर्व०
१६१	आमेतः
१३४	आमः
१५८	आम्प्रत्यय०
५७३	आयनेयीनी०
१३४	आयादय०
४६८	आयुक्तकुश०
११६	आर्धधातुकस्येड्
११६	आर्धधातुकं०
१८७	आर्धधातुके
६३३	आर्हादगो०
६५८	आलजाट०
७१७	आवट्याच्च
४३८	आवश्यका०
३७३	आशिते भुवः०
११७	आशिषि लिङ्
३६१	आशिषि च
३७५	आशिषि हनः
३३०	आशंसायां०
३३०	आशंसावचने
९१	आ सर्वना०

पृष्ठम्	सूत्रम्
२११	आहस्थः
६६८	आहि च दूरे
	इ
६५	इकोऽचि०
२७७	इको झल्
९	इको यणचि
१९	इकोऽसव०
५६१	इको ह्रस्वो०
६४०	इगन्ताच्च०
३५६	इगुपधज्ञा०
७०	इग्यणः सं०
२७८	इङश्च
३८१	इच एकाचो०
५२७	इच कर्म०
३३१	इच्छार्थेषु०
४३४	इच्छा
१५८	इजादेश्च०
३४०	इजादेः सनु०
१२५	इट ईटि
१६२	इटोऽत्
२८३	इट् सनि वा
१८१	इडत्त्यर्ति०
१९५	इणो गा लु०
१९३	इणो यण्
२७	इणः षः
१५९	इणः षीध्वं०
३९२	इण् निष्ठायाम्
६६२	इतराभ्यो०
३०६	इतरेतरा०

पृष्ठम्	सूत्रम्
१२०	इतश्च
७२१	इतश्च लोपः
५७७	इतश्चानि०
७८	इतोऽत्सर्व०
७१५	इतो मनुष्य०
४५६	इत्थं भूत०
५६३, ६४७	इदंकिमोरीश्
६६१	इदम इश्
६६५	इदमस्थमुः
७२	इदमो मः
६६३	इदमोर्हिल्
६६२	इदमो हः
१३२	इदितो नुम्
५९	इदुद्भ्याम्
७२	इदोऽय् पुं०
२०१	इद्दरिद्रस्य
५४३	इद्वृद्धौ
५८९	इनण्यन०
५३४	इनः स्त्रि०
५९१	इनित्रकट्य०
७१०	इन्द्रवरुण०
१७	इन्द्रे च
७५	इन्हन्पूषा०
१३१	इरितो वा
६७८	इवे प्रतिकृ०
१५३	इषुगमियमां०
५६१	इष्टकेषीका०
६५१	इष्टादिभ्यश्च
६७३	इष्टस्य यि०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
५९०	इसुसुक्ता०
४१५	इस्मन्त्रन्
	ई
२९०	ई घ्राध्मोः
२६५	ई च गणः
२०५	ईडजनोर्ध्वे
५४२	ईदग्नेः सोम०
४००	ईदासः
१७	ईदूदेद्द्विवच०
३४३	ईद्यति
५३४	ईयसश्च
२०५	ईशः से
५६४	ईषदर्थे
६७४	ईषदसमा०
४३७	ईषद्दुःसुषु०
२१९	ई हल्यघोः
	उ
६३०	उगवादिभ्यो०
५६०	उगितश्च
६९४	उगितश्च
७७	उगिदचां०
४	उच्चैरुदात्तः
६२५	उञ्छति
४३०	उणादयो बहु०
१५२	उतश्च प्र०
५९९	उत्करादिभ्यः०
१८८	उतो वृद्धिः०
५१३	उत्तमैका०
५१४	उत्तरमृग०
६६८	उत्तराच्च

पृष्ठम्	सूत्रम्
६६८	उत्तराधर०
२८८	उत्परस्यातः
५७१	उत्सादिभ्यो०
८८	उद ईत्
५६०	उदकस्योदः०
३१२	उदश्चरः स०
७२९	उदात्तादनु०
३७०	उदिकूले रुजि०
४३९	उदितो वा
६९९	उदीचामातः
५८१	उदीचां वृ०
३९५	उदुपधाद्भा०
३०९	उदोनूर्ध्व
२१५	उदोष्ठ्यपूर्व
२१	उदःस्थास्त०
५२९	उद्विभ्यां काकुदस्य
३१०	उद्विभ्यां तपः
६१५	उपज्ञाते
१२	उपदेशेऽज०
१३८	उपदेशेऽत्वतः
१५६	उपधायां च
२६२	उपधायाश्च
५१०	उपपदमतिङ्०
५३३	उपमानाच्च
५१४	उपमानादप्रा०
२९९	उपमानादा०
५००	उपमानानि०
५०१	उपमितं व्या०
६६७	उपर्युपरि०

पृष्ठम्	सूत्रम्
६८९	उपर्यध्यधसः
१९२	उपसर्गप्रा दुर्भ्याम्
५६५	उपसर्गस्य०
१६९	उपसर्गस्या०
१२९	उपसर्गादस०
५५३	उपसर्गादध्वनः
१४	उपसर्गादृति०
३१२	उपसर्गाद्ध्र०
१४	उपसर्गाः क्रिया
१२७	उपसर्गात्सुनोति
५३०	उपसर्गाच्च
३८४	उपसर्गे च०
४३३	उपसर्गे घोः०
४७५	उपसर्जनं०
३४६	उपसर्या०
७२२	उपसंवादा०
३१६	उपाच्च
५०७	उपाजेऽन्वा०
३१३	उपाद्यमः
२५३	उपात्प्रतियत्न
३४४	उपात्प्रशंसा०
६४५	उपाधिभ्यां०
३०९	उपान्मन्त्र०
४५०	उपान्वध्या०
३९९	उपेयिवा०
४५२	उपोऽधिके च
७३१	उपोत्तमम्
४६२	उभयप्राप्तौ
६४७	उभादुदात्तो

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्
९१ उभे अभ्य०
२७३ उभौ सा०
१२ उरण् रपरः
१३४ उरत्
५३३ उरःप्रभृतिभ्यः कप्
२६१ उर्ऋत्
१७६ उश्च
१९० उषविदजागृ
१५२
१४३
१४२ उस्यपदान्तात्
ऊ
३ ऊकालोऽज्झस्व
७१५ ऊङुतः
४३४ ऊतियूति
५४९ ऊदनोर्देशे
५३२ ऊधसोऽनङ्
७०४
७१६ ऊरूत्तरपदा०
६५८ ऊर्णाया युस्
२११ ऊर्णोतेर्विभाषा
२१३ ऊर्णोतेर्विभाषा
५३२ ऊर्ध्वाद्वि०
५०३ ऊर्यादिच्वि०
६५५ ऊषशुषि०
ऋ
५४९ ऋक्पूरब्धूः
२१६ ऋच्छत्यृताम्
३९२ ऋणमाधम०
५५ ऋत उत्

पृष्ठम् सूत्रम्
२९४ ऋतश्च
६१२ ऋतष्ठञ्०
१४७ ऋतश्च सं०
२३५ ऋतश्च संयोगादेः
१८४ ऋतेरीयङ्
५४ ऋतो ङि
१३८ ऋतो भार०
५५७ ऋतो विद्या०
१९ ऋत्यकः
७९ ऋत्विग्दधृग्
३४२ ऋदुपधाच्चा०
५५ ऋदुशनस्पु०
१५० ऋदृशोऽङि०
१४८ ऋद्धनोः स्ये
६१ ऋन्नेभ्यो ङीप्
५७५ ऋष्यन्धक०
३४८ ऋहलोर्ण्य०
ॠ
२४५ ॠत इद्धातोः
४३२ ॠदोरप्
ए
६९० एकं बहुव्रीहिवत्
८३ एकवचनस्य
३७ एकवचनं
५०९ एकविभक्ति०
६७९ एकस्य सकृ०
५६१ एकहलादौ
१३५ एकाच उप०
६९ एकाचो बशो

पृष्ठम् सूत्रम्
६७७ एकाच्च प्राचां
६७० एकादाकिनिच्चा०
६६९ एकाद्धो ध्य०
७५ एकाजुत्तर०
५७२ एको गोत्रे
१६ एङः पदा०
१५ एङि पररूपम्
३७ एङ् ह्रस्वात्सं०
६८ एच इग्घ्र०
१० एचोऽयवायावः
३६९ एजेः खश्
६१९ एण्या ढञ्
९५ एत ईद्बहु०
१६१ एत ऐ
३३ एतत्तदोः०
६६१ एतदोऽन्
५७४ एतदः
३४७ एतिस्तु०
६६३ एतेतौ रथोः
१९४ एतेर्लिङि
१३ एत्येधत्यूठ्सु०
६६९ एधाच्च
४६५ एनपा द्वि०
६६८ एनबन्यत०
५३ एरनेकाचो०
११७ एरुः
१४२ एर्लिङि
४३२ एरच्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
	ऐ
६०२	ऐषमोह्यः०
	ओ
५५५	ओजः सहो०
२२३	ओतःश्यनि
१९	ओत्
३१	ओतो गार्ग्य०
३८८	ओदितश्च
१६	ओमाङोश्च
६१७	ओरञ्
३४८	ओरावश्यके
५७१	ओर्गुणः
४०	ओसि च
२६९	ओः पुयण्ज्य०
५६	ओः सुपि
	औ
५९	औङ आपः
५७	औतोऽम्शसोः
४९	औत्
	क
५०१	कडाराः कर्म०
५०५	कणेमनसी०
३०६	कण्ड्वादि०
५७५	कन्यायाः
६३९	कपिञ्ज्ञा०
१६३	कमेर्णिङ्
६३०	कम्बलाच्च०
५८२	कम्बोजा०
४३६	करणाधि०
३८२	करणे यजः
४४२	करणे हनः
३०६	कर्तरि कर्म
४९२	कर्तरि च
३३८	कर्तरि कृत्
३७७	कर्तरि भुवः
११२	कर्तरि शप्
४४५	कर्तुरीप्सिततमं०
३००	कर्तुः क्यङ्
४५४	कर्तृकरण०
४८७	कर्तृकरणे
४६१	कर्तृकर्मणोः
४५६	कर्मणा यमभि०
६४५	कर्मणि घटो०
४९२	कर्मणि च
४४५	कर्मणि द्विती०
३८२	कर्मणि हनः
३८३	कर्मणीनि वि०
३०२	कर्मणो रोम०
३८३	कर्मण्यग्न्या०
३६२	कर्मण्यण्
६१४	कर्मन्दकृ०
४५१	कर्मप्रवचनीयाः
४५२	कर्मप्रवचनीय यु०
३२४	कर्मवत् कर्मणा
५७७	कल्याण्या०
५६४	कवं चोष्णे
४४२	कषादिषु यथा
३०२	कष्टाय क्रम०
६६०	कंशंभ्यां०
६३४	कंसाट्टिठन्
२७	कस्कादिषु०
५८६	कस्येत्
६७४	कस्य च दः
६५६	काण्डाण्डा०
७०४	काण्डान्तात्०
२७	कानाम्रेडिते
५६४	कापथ्यक्षयोः०
२९९	काम्यच्च
४३१	कालसमय
६०६	कालाट्ठञ्
४५४	कालाध्वनोर०
४९५	कालाः परि०
६०३	काश्यादि०
६७६	कासूगोणी०
७३१	कितः
५७०	किति च
१२२	किदाशिषि
६६५	किमश्च
६४६	किमिदंभ्यां०
६७०	किमेत्तिङ०
६६२	किमोत्
७२	किमः कः
५५३	किमः क्षेपे
६४७	किमः संख्या०
२४५	किरतौ ल०
२७८	किरश्च पञ्चभ्यः
६७६	किंयत्तदोर्नि०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
६६१	किंसर्वनाम
५०३	कुगतिप्रादयः०
६७६	कुटीशमी०
६६१	कुतिहोः
६७६	कुत्वाङ्पच्
६७५	कुत्सिते
२६	कुप्वोः≍कः
५६७	कुमति च
५१५	कुमहद्भ्याम्
३७५	कुमारशीर्ष०
५९८	कुमुदनड०
५८२	कुरुनादि०
५७८	कुलटाया०
५७९	कुलात्खः
६७८	कुशाग्रा०
३२६	कुषिरजोः
१२९	कुहोश्चुः
४३४	कृञः
३८६	कृञो द्विती०
३६७	कृञो हेतु०
१३४	कृञ्चानु०
३४	कृत्तद्धित०
३३९	कृत्यचः
३४१	कृत्यल्युटो०
७२५	कृत्यार्थे त०
३३७	कृत्याः
४६२	कृत्यानां क०
४३८	कृत्याश्च
७९	कृदतिङ्

पृष्ठम्	सूत्रम्
१०८	कृन्मेजन्तः
१७३	कृपो रो लः
६८३	कृभ्वस्तियो०
१३७	कृसृभृवृ०
५२२	केऽणः
५९०	केदाराद्यञ्च०
६५५	केशाद्वोऽन्यतरस्याम्
५९१	केशाश्वाभ्याम्
५६४	कोः कत्त०
६०९	कोशाड्ढञ्
१२२	क्ङिति च
३८५	क्तक्तवतू०
४६२	क्तस्य च वर्त०
४३८	क्तिच्क्तौ०
४९१	क्तेन च पूजा०
३९६	क्तोऽधिकरणे०
४३२	क्त्रेर्मम्०
१०८	क्त्वातोसुन्
५११	क्त्वा च
२९६	क्यचि च
५२४	क्यङ्मानि०
६८३	क्यच्व्योश्च०
२९७	क्यस्य वि०
५९३	क्रतूक्थादि०
२५३	क्रतौ कुण्डपाय्य०
५९३	क्रमादिभ्यो०
१४०	क्रमः परस्मै०
११	क्रय्यस्तदर्थे
३७८	क्रव्ये च

पृष्ठम्	सूत्रम्
३३३	क्रियासमभि०
३१६	क्रीङ्जीनां
३०७	क्रीडोऽनुसंप०
७११	क्रीतात्करण०
२५४	क्र्यादिभ्यः०
३९३	क्लिशः क्त्वा०
३९८	क्वसुश्च
६६२	क्वाति
८०	क्विन्प्रत्यय०
३७९	क्विप् च
५७६	क्षत्राद्धः
११	क्षय्यजय्यौ
३८९	क्षायो मः
३३०	क्षिप्रवचने
३८६	क्षियो दीर्घात्
५४०	क्षुद्रजन्तवः
५७८	क्षुद्राभ्यो०
२३८	क्षुभ्नादिषु च
३७३	क्षेमप्रियम०
२०९	क्सस्याचि०
	ख
३७२	खचि ह्रस्वः
२५	खरवसान०
२१	खरि च
५९१	खलगोरथात्
५१५	खार्याः प्रा०
३७०	खित्यनव्य०
४९	ख्यत्यात्परस्य

पृष्ठम्	सूत्रम्
	ग
४४७	गतिबुद्धि०
५३	गतिश्च
३९६	गत्यर्थाकर्म०
३४४	गदमदच०
३१४	गन्धनावक्षे०
५३३	गन्धस्येदु०
३७४	गमश्च
१५३	गमहनजन
१५३	गमेरिट्
३८०	गम: क्वौ
६१०	गम्भीराञ्ञ्य:
५७२	गर्गादिभ्यो
६०४	गर्तोत्तर०
५४१	गवाश्वप्रभृ०
५५५	गवियुधि
३६१	गस्थकन्
६०४	गहादिभ्य०
२०५	गाङ्कुटा०
२०४	गाङ् लिटि
६५६	गाण्ड्यजगात्
१२३	गातिस्थाघुपा०
३६५	गापोष्ठक्
४८४	गिरेश्च से०
६३८	गुणवचन०
२१२	गणोऽपृक्ते
२८६	गुणो यङ्लुको:
१४८	गुणोऽर्तिसं०
१३३	गुपूधूप०
२८४	गुप्तिज्किद्भ्य:
१७	गुरोरनृतो
४३४	गुरोश्च हल:
३६०	गेहे क:
५७	गोतो णित्
६१५	गोत्रचर
६१२	गोत्रादङ्क
५७३	गोत्राद्यून्य
५७६	गोत्रे कुञ्जा०
५७२	गोत्रेऽलुग०
५८९	गोत्रोक्षोष्ट्रो०
५७८	गोधाया०
६१९	गोपयसोर्यत्
६२३	गोपुच्छाट्ठञ्
४९७	गोरतद्धित
५०९	गोस्त्रियोरु०
१८०	ग्रहिज्यावयि
२५७	ग्रहोऽलिटि
५१४	ग्रामकौटा०
५९०	ग्रामजनव०
६०१	ग्रामाद्यख०
५४७	ग्राम्यपशुसं०
६१०	ग्रीवाभ्योऽण्
२८८	ग्रो यङि
४०२	ग्लाजिस्थ०
	घ
५९२	घञ: सास्यां
४३१	घञि च भाव०
६१८	घोश्च पुरीषे
५५९	घरूपकल्प
२०५	घुमास्थागा
४७	घेर्ङिति
१९२	घ्वसोरेद्धाव०
	ङ
२५	ङमो ह्रस्वा०
४८	ङसिङसोश्च
४१	ङसिङ्यो:०
१६	ङिच्च
५९	ङिति ह्रस्वश्च
८१	ङे प्रथमयोरम्
५२	ङेराम्नद्या०
३९	ङेर्य:
२४	ङ्णो: कुक्०
३४	ङ्याप्प्राति०
	च
२०७	चक्षिङ:०
१४४	चङि
३४८	चजो: कु०
५७८	चटकाया०
७०	चतुरनडुहो०
४८८	चतुर्थी तद०
४५७	चतुर्थी संप्र०
५६२	चरणे ब्रह्म०
६२३	चरति
२८८	चरफलोश्च
३६७	चरेष्ट:
४०४	चलनश०
१८	चादयोऽसत्त्वे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
२९०	चायः की
५३७	चार्थे द्वन्द्वः
२३०	चिणो लुक्
३२२	चिण्णमुलो०
२३१	चिण् ते पदः
३२०	चिण्भाव०
३५३	चित्याग्नि०
७३०	चितः
३६	चुटू
८०	चोः कुः
८७	चौ
२७९	च्छ्वोः शूड्
१२२	च्लि लुङि
१२२	च्लेः सिच्
६८४	च्वौ च
	छ
३९८	छन्दसि लिट्
७१९	छन्दसि परे०
७२४	छन्दस्युभयथा
६२७	छत्रादिभ्यो०
४३६	छादेर्घेऽद्व्यु०
५१८	छायाबाहु०
२८	छे च
	ज
९१	जक्षित्यादयः
५८१	जनपदशब्दात्
५९७	जनपदे लुप्
२५१	जनसनखनां
४५८	जनिकर्तुः प्र०

पृष्ठम्	सूत्रम्
२३०	जनिवध्योश्च
२८८	जपजभद०
६२०	जम्ब्वा वा
४५	जराया०
४०५	जल्पभिक्ष
६३	जश्शसोः
४७	जसि च
४१	जशः शी
२१७	जहातेश्च
४३९	जहातेश्च
२००	जाग्रोऽविचि०
५३९	जातिरप्राणि०
७१४	जातेरस्त्री
५२५	जातेश्च
७०८	जानपदकुं०
५३२	जायायानिङ्
२७१	जिघ्रतेर्वा
६११	जिह्वामूला०
३९८	जीर्यतेरतृन्
५७३	जीवति तु
५०९	जीविकोप०
२००	जुसि च
२१४	जुहोत्यादिभ्यः
२५५	जॄस्तम्भु
२३०	ज्ञाजनोर्जा
३१३	ज्ञाश्रुस्मृदृ०
६७२	ज्य च
६७२	ज्यादादीयसः
५६२	ज्योतिर्जन०

पृष्ठम्	सूत्रम्
३४८	ज्वरत्वर०
३५९	ज्वलितिकसन्तेभ्यो०
	झ
४८३	झयः
५९८	झयः
२२	झयो होऽन्य
२१	झरो झरि
९	झलां जश्
२०	झलां जशोऽन्ते
१३६	झलो झलि
१५४	झषस्तथो०
१६२	झस्य रन्
१२१	झेर्जुस्
११३	झोऽन्तः
	ञ
३९७	ञीतः क्तः
७३१	ञ्नित्यादिर्नित्यं
६८१	ञ्यादयस्त०
	ट
३८	टाङसिङसाम्
६९५	टावृचि
७००	टिड्ढाणञ्
१५८	टित आत्म०
६३८	टेः
६४	टेः
४३२	ट्वितोऽथुच्
	ठ
५९७	ठक्छौ च
६१२	ठगायस्थानेभ्यः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्
५९० ठक्कवचि०
५७६ ठस्येकः

ड

५० डति च
२३ डः सि धुट्
६९६ डाबुभाभ्याम्
४३२ ड्वितः क्त्रिः

ढ

५७९ ढकि लोपः
१७८ ढो ढे लोपः
३२ ढ्रलोपे पूर्वस्य

ण

१२९ ण्लुत्तमो वा
२५९ णिचश्च
१६४ णिश्रिद्रुस्रु०
१६४ णेरनिटि
३४० णेर्विभाषा
१२९ णो नः
२७४ णौ गमिर०
१६३ णौ चङ्युपधाया
२७० णौ च संश्चङोः
३१७ णौ च संश्चङोः
४३५ ण्यासश्र०
३६१ ण्युट् च
३५५ ण्वुल्तृचौ

त

११० तङानावा०
६११ तत आगतः
५१२ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः

पृष्ठम् सूत्रम्
५५६ तत्पुरुषे कृति
३८४ तत्पुरुषे
४८५ तत्पुरुषः
५०० तत्पुरुषः स०
६७८ तत्प्रकृतवचने
२६८ तत्प्रयोजको०
६०९ तत्र जातः
६३७ तत्र तस्ये०
५२७ तत्र तेनेद०
६२७ तत्र नियुक्तः
६०९ तत्र भवः
६२९ तत्र साधुः
५८५ तत्रोद्धृत०
५१० तत्रोपपदं०
३६२ तत्रोपपदं
६४२ तत्सर्वादि०
५९२ तदधीते
६८५ तदधीनव०
६३६ तदर्हति
५९५ तदस्मिन्नस्तीति
६४८ तदस्मिन्नधिकं
६२६ तदस्य पण्यम्
६३५ तदस्य परि०
६४५ तदस्य संजा०
६५१ तदस्यास्त्य०
५९२ तदस्यां प्रहर०
८१ तदोः सः
६६४ तदो दा च
६१३ तद्गच्छति

पृष्ठम् सूत्रम्
१०८ तद्धितश्चा०
७३० तद्धितस्य
४८२ तद्धिताः
४९६ तद्धितार्थो०
४९६ तद्धितेष्व०
५८२ तद्राजस्य०
६२८ तद्वहति रथ०
१९०
२५१ तनादिकृञ्भ्यः०
२५१ तनादिभ्य०
१५६ तनूकरणे०
३२२ तनोतेर्यकि
२८२ तनोतेर्विभाषा
६५४ तपःसहस्रा०
११ तपरस्तत्का०
३२५ तपस्तपःकर्म०
३२२ तपोऽनुतापे
३३८ तयोरेव०
६२३ तरति
६७० तरप्तमपौ
६०५ तवकाममका
८३ तवममौ
३३८ तव्यत्तव्या
५२३ तसिलादि०
६५१ तसौ मत्वर्थे
११८ तस्थस्थमिपां
३८ तस्माच्छसो
२१ तस्मादित्यु
५०३ तस्मान्नुडचि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
१२८	तस्मान्नुड् द्वि०
६०४	तस्मिन्नणि च
९	तस्मिन्निति
६३१	तस्मै हितम्
५९५	तस्य निवासः
२७	तस्य परमा०
६४३	तस्य पाक०
६४८	तस्य पूरणे०
६३७	तस्य भावः
३	तस्य लोपः
६१७	तस्य वि०
५८८	तस्य समूहः
५७१	तस्यापत्यम्
६१५	तस्येदम्
६३५	तस्येश्वरः
४०१	ताच्छील्य०
११२	तान्येकवचन
११७	तासस्त्यो०
१७३	तासि च क्लृपः
५८०	तिकादिभ्यः
६७०	तिङश्च
१११	तिङस्त्रीणि
११२	तिङशित्
३९०	ति च
४०७	तितुत्रतथ
७३१	तित्स्वरितम्
११०	तिप्तस्झि
२०२	तिप्यनस्तेः
८९	तिरसस्तिर्य०
५०६	तिरसोऽन्य०
५०६	तिरोऽन्तर्धौ
५२६	तिविंशतेर्डिति
४९१	तिष्यपुष्ययोः
२७१	तिष्ठतेरित्
४८०	तिष्ठद्गुप्र०
५६२	तीर्थे ये
१५७	तीषसह
२३९	तुदादिभ्यशः
६५७	तुन्दादिभ्यः
३६४	तुन्दशोकयोः
६६०	तुन्दिवलि
८३	तुभ्यमह्यौ
७२४	तुमर्थे सेसे
४३०	तुमुन्ण्वुलौ
१९३	तुरुस्तुशम्यमः
५	तुल्यास्यप्रय०
११८	तुह्योस्तातङ्०
४९२	तृजकाभ्यां
५४	तृज्वत्क्रोष्टुः
२४८	तृहण इम्
५६४	तृणे च जातौ
७२०	तृतीया च
४८६	तृतीया तत्
६६	तृतीयादिषु
५११	तृतीयाप्रभृ०
४७६	तृतीयासप्त०
४४	तृतीया समासे
४५२	तृतीयार्थे
४०१	तृन्
१७४	तृफलभज०
५८२	ते तद्राजाः
६३५	तेन क्रीतम्
६३७	तेन तुल्यं
६२२	तेन दीव्यति
६३६	तेन निर्वृत्तम्
५९५	तेन निर्वृत्तम्
६१४	तेन प्रोक्तम्
५८४	तेन रक्तं रागात्
६४३	तेन वित्तश्चु०
५२७	तेन सहेति०
११९	ते प्राग्धातोः
८४	ते मयावेक
२१	तोर्लि
२०	तोः षि
४०१	तौ सत्
९१	त्यदादिषु०
५१	त्यदादीनामः
६०२	त्यदादीनि
५४७	त्यदादीनि
४०२	त्रसिगृधि
६१७	त्रपुजतुनोः
६०	त्रिचतुरो
५०	त्रेस्त्रयः
५१६	त्रेस्त्रयः
६४९	त्रेः संप्रसार०
८२	त्वमावेक०
८४	त्वामौ द्विती०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्
८२ त्वाहौ सौ०
थ
१३१ थलि च
१५८ थासः से
७८ थोऽन्यः
द
६६८ दक्षिणादाच्
६६७ दक्षिणोत्तरा०
६०१ दक्षिणापश्चा०
६३६ दण्डादिभ्यो
३५८ ददातिदधात्योः
२२० दधस्तथोश्च
३९५ दधातेर्हिः
५८६ दध्नष्ठक्
६५४ दन्त उन्नत
६५६ दन्तशिखा
२८० दम्भ इच्च
१६९ दयायासश्च
७३ दश्च
१९१ दश्च
३१३ दाणश्च सा
६९ दादेर्धातोर्घः
१४४ दाधाघ्वदाप्
६६४ दार्नी च
७०५ दामहायना,
४०७ दाम्नीशस
४३० दाशगोघ्नौ
४९६ दिक्पूर्वपदात्
६६६ दिक्शब्दे

पृष्ठम् सूत्रम्
४९५ दिक्संख्ये०
६१० दिगादिभ्यो०
५२६ दिङ्नामा०
५६९ दित्यदित्या०
७२ दिव उत्
७१ दिव औत्
४६५ दिवस्तदथस्य
४५५ दिवः कर्म०
२२२ दिवादिभ्यः०
३६८ दिवाविभा०
५४३ दिवो द्यावा
३८९ दिवोऽविजि०
२२९ दीङो युडचि
२३० दीपजन
१९४ दीर्घ इणः
५८८ दीर्घाच्च
४६ दीर्घाज्जसि च
२८ दीर्घात्
२८६ दीर्घोऽकितः
१६५ दीर्घो लघोः
१७ दीर्घं च
६८७ दुःखात्प्राति
५७९ दुष्कुलाड्ढक्
३७८ दुहः कप् घश्च
३२६ दुहश्च
४६५ दूरान्तिका०
१७ दूराद्धूते च
५६२ दृग्दृशवतु०
३९५ दृढः स्थूल०

पृष्ठम् सूत्रम्
६१० दृतिकुक्षि०
३८४ दृशेः क्वनिप्
७२५ दृशे विख्ये०
५८५ दृष्टं साम
६८५ देये त्रा च
५४२ देवताद्वन्द्वे च
५८८ देवताद्वन्द्वे च
६८० देवात्तल्
४०४ देविक्रुशो०
६५४ देशे लुबि०
६७९ देवतान्ताद्
६८५ देवमनुष्य०
३९५ दोदद्घोः
२७३ दोषो णौ
३९६ द्यतिस्यति०
५८७ द्यावापृथि०
१६९ द्युतिस्वाप्योः
६५५ द्युद्रुभ्यां
१७० द्युद्भ्यो लुङि
६०१ द्युप्रागपागु
३८८ द्रवमूर्तिस्प०
६४० द्वन्द्वमनो०
५३९ द्वन्द्वश्च प्राणि०
५४४ द्वन्द्वाच्चुदष
५३८ द्वन्द्वे घि
४४ द्वन्द्वे च
६०७ द्वारादीनां च
४९८ द्विगुरेकवचनम्
४८५ द्विगुश्च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्	पृष्ठम्	सूत्रम्	पृष्ठम्	सूत्रम्
७०३	द्विगोः	२७६	धातोः कर्मणः	४८४	नदीपौर्ण०
४९४	द्वितीयतृतीय	३३६	धातोः	४८१	नदीभिश्च
७४	द्वितीयाटौ०	७०	धात्वादेः षः सः	३२५	न दुहस्नुन०
८२	द्वितीयायां च	६४२	धान्यानां भ०	१५०	न दृशः
४८५	द्वितीयाश्रि०	१६०	धि च	६०१	नद्यादिभ्यो०
६७९	द्वित्रिचतु०	६२८	धुरो यड्ढकौ	५५९	नद्याः शेषस्या०
६४७	द्वित्रिभ्यां	४५८	ध्रुवमपाये	५९८	नद्यां मतुप्
५२८	द्वित्रिभ्यां		**न**	५२२	नद्यृतश्च
५१५	द्वित्रिभ्यां	५२२	न कपि	३९१	न ध्याख्या०
६६९	द्वित्र्योश्च	२८९	न कवतेर्यङि०	४९०	न निर्धारणे
१३५	द्विर्वचनेऽचि	५२४	न कोपधायाः	३२९	ननौ पृष्टप्र०
२०८	द्विषश्च	४३९	न क्त्वा सेट्	३५५	नन्दिग्रहि०
६७१	द्विवचनवि०	७१३	न क्रोडादि	२१२	नन्द्राः संयो०
३७२	द्विषत्परयोस्तापेः	२९८	नः क्ये	३२९	नन्वोर्विभाषा
६०५	द्वीपादनुस०	५८४	नक्षत्रेण युक्तः	४०५	न पदान्त०
६४९	द्वेस्तीयः	७१३	नखमुखात्	२०	न पदान्ता०
५८१	द्व्यञ्मगध	३०६	न गतिहिंसा०	२३	नपरे नः
५१६	द्व्यष्टनः सं०	६०४	नगरात्कु०	३१८	न पादम्याङ
५४९	द्व्यन्तरुप	७४	न ङिसंबुद्ध्योः	५४६	नपुंसकम्०
३५	द्व्येकयोर्द्वि०	८५	न चवाहा०	६३	नपुंसकस्य०
	ध	५०३	नञ्	६३	नपुंसकाच्च
५३२	धनुषश्च	५५३	नञस्तत्पुरु०	४८३	नपुंसकादन्य०
६०३	धन्वयोप०	५३१	नञ् दुःसु	४३६	नपुंसके भावेक्त
५३१	धर्मादनि०	५९८	नडशादाद्	३९८	नपुंसके भावे
६२६	धर्मं चरति	५७७	नडादिभ्यः	५५३	न पूजनात्
३३२	धातुसम्बन्धे	५९९	नडादीनां०	२५२	न भकुर्छुराम्
२८६	धातोरेकाचो	६०	न तिसृचतसृ	३४१	न भाभूपू०
१०	धातोस्त०	६४५	नते नासिका०	५४	न भूसुधियोः
७२९	धातोः	५४२	न दधिपय०	१२३	न माङ्योगे

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
९५	नमुने
४५७	नमः स्वस्ति
३२८	न यदि
६९८	न यासयोः
५९३	न य्वाभ्यां
५६६	नरे संज्ञा०
२३६	न लिङि
५०	न लुमताङ्गस्य
४६२	न लोकाव्यय
५०३	नलोपो नञः
४९	नलोपः प्राति
७४	नलोपः सुप्
४४०	न ल्यपि
२९०	न वशः
३७	न विभक्तौ
१७१	न वृद्भ्यश्चतु
१८१	न व्यो लिटि
३६८	न शब्दश्लोक०
१२९	न शसद द०
९२	नशेर्वा
२२४	नशेः षान्तस्य
२४	नश्च
२३	नश्चापदा०
२६	नश्छव्य०
६२	न षट्स्वस्रादि०
५१३	न संख्यादेः
५३४	न संज्ञायाम्
७७	न संप्रसारणे
७५	न संयोगा०

पृष्ठम्	सूत्रम्
४८३	नस्तद्धिते
९७	नहिवृति
९७	नहो धः
२६२	नाग्लोपिशा
८९	नाञ्चेः पूजा
३७०	नाडीमुष्ट्योश्च
४३६	नादिचि
३१३	नानोर्ज्ञः
६४८	नान्तादसं०
२२१	नाभ्यस्तस्या०
९१	नाभ्यस्ताच्छतुः
८६	नामन्त्रिते०
४०	नामि
५१५	नावो द्विगोः
४७६	नाव्ययीभावा०
३७०	नासिकास्त०
६१२	नासिकोदरौ०
६२७	निकटे वसति
३१७	निगरणचल०
२२०	निजां त्रयाणां०
२५२	नित्यं करोतेः
२८६	नित्यं कौटिल्ये
११९	नित्यं ङितः
५३१	नित्यमसिच्
४४१	नित्यवीप्स०
६१८	नित्यं वृद्ध०
६५०	नित्यं शतादि०
७०६	नित्यं सप०
५०८	नित्यं हस्ते०

पृष्ठम्	सूत्रम्
४०४	निन्दहिंस०
१८	निपात एकाज०
४४१	निमूलसमू०
२५७	निरः कुषः
३८९	निर्वाणोऽवा०
६२५	निर्वृत्तेऽक्षद्यू०
४३१	निवासचिति०
६०६	निशाप्रदो०
६८७	निष्कुलान्नि०
५३६	निष्ठा
३८५	निष्ठा
३९३	निष्ठाशीङ्
३८६	निष्ठायामन्यदर्थे
३९५	निष्ठायां सेटि
३१२	निसमुपवि०
१३९	निसस्तपता०
२९१	नीग्वञ्चु०
४	नीचैरनुदात्तः
२९०	नुगतोऽनु०
३९१	नुदविदोन्द०
९३	नुम्विसर्ज०
५७	नृ च
२६	नॄन्पे
१३६	नेटि
२२५	नेट्यलिटिर०
३७९	नेड्वशि कृति
७४	नेदमदसो०
५८८	नेन्द्रस्य पर०
६१	नेयङुवङ्०
१२९	नेर्गदनद०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्
३०७ नेर्विंशः
३२३ नोदात्तोपदे०
७९ नोपधायाः
६२३ नौ द्व्यचष्ठन्०
६२८ नौवयोधर्म०
६१९ न्यग्रोधस्य च०

प

६४३ पक्षात्तिः
६२५ पक्षिमत्स्य०
७१५ पङ्क्तेश्च
६३५ पङ्क्तिविंशति०
३८९ पचो वः
४६९ पञ्चमीवि०
४८९ पञ्चमी भयेन
४६० पञ्चम्यपाङ्०
८३ पञ्चम्या अत्
३८५ पञ्चम्यामजातौ
६६१ पञ्चम्यास्तसिल्
४८९ पञ्चम्याः स्तो०
४९ पतिः समास०
६३९ पत्यन्तपु०
७०६ पत्युर्नोयज्ञ०
६१५ पत्रपूर्वादञ्
७८ पथिमथ्यृ०
५५४ पथो विभाषा
५६७ पदव्यवाये०
३८ पदान्तस्य
२८ पदान्ताद्वा
३५२ पदास्वैरि०

पृष्ठम् सूत्रम्
४५ पद्दन्नोमास्०
५६० पद्यत्यतदर्थे
५१६ परवल्लिङ्गं
३४ परश्च
११४ परस्मैपदानां
५५५ परस्य च
७ परः सन्निकर्षः
४५७ परिक्रयणे०
१२८ परिनिविभ्यः
६३३ परिमाणान्तंस्या
३७१ परिमाणे पचः
५८५ परिवृतो०
३०७ परिव्यवेभ्यः०
३१६ परेर्मृषः
६८९ परेर्वर्जने
११४ परोक्षे लिट्
६२३ पर्पादिभ्य०
६६२ पर्यभिभ्यां०
६१८ पलाशादि०
६६८ पश्चात्
८५ पश्यार्थे श्चाना०
७१५ पाककर्ण०
३५७ पाघ्राध्माधेट्
१४१ पाघ्रध्मा०
३७६ पाणिघता०
५६० पादस्य पदा०
५२९ पादस्य लोपो०
८७ पादः पत्
६८० पादार्घभ्यां०

पृष्ठम् सूत्रम्
६९५ पादोऽन्यतरस्याम्
५६७ पानं देशे
५६८ पारस्करप्रभृ०
६१४ पाराशर्य०
४८० पारेमध्ये०
५९१ पाशादिभ्यो०
५४६ पिता मात्रा
६१२ पितुर्यच्च
५८८ पितृव्यमातुल
५७८ पितृष्वसु०
१२६ पुगन्तलघू०
३०४ पुच्छभाण्ड०
२५ पुमः खय्य०
५४५ पुमान्स्त्रिया
७०९ पुंयोगादा०
३२९ पुरि लुङ् चास्मे
६४६ पुरुषहस्ति०
७०४ पुरुषात्प्रमा०
५०५ पुरोऽव्ययम्
५०० पुंवत्कर्म०
४०८ पुवः संज्ञायाम्
१५३ पुषादिद्युता०
३५१ पुष्यसिध्यौ
४३६ पुंसि संज्ञायां
९४ पुंसोऽसुङ्
६८१ पूगाञ्ञ्यो०
३९३ पूङश्च
३९३ पूङः क्त्वा०
७०६ पूतक्रतौरै च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
४९१	पूरणगुण०
५२९	पूर्णाद्विभाषा
१३	पूर्वत्रासिद्धम्
५३०	पूर्वपदात्संज्ञा०
४९	पूर्वपरावर०
५१७	पूर्ववदश्ववडवौ
२७९	पूर्ववत्सनः
४८६	पूर्वसदृश०
६५१	पूर्वादिनिः
६६६	पूर्वाधरावर
४२	पूर्वपराव०
४९२	पूर्वापराधरो०
४३	पूर्वादिभ्यो०
११५	पूर्वोऽभ्यासः
३७२	पूःसर्वयो०
४५९	पृथग्विना०
६३८	पृथ्वादि०
५६५	पृषोदरा०
५६०	पेषंवासवा०
३४३	पोरदुपधात्
६६५	प्रकारवचने०
६९०	प्रकारे गुण०
३०९	प्रकाशनस्थे०
७२५	प्रकृत्यान्तः०
६७१	प्रकृत्यैकाच्
५२८	प्रकृत्याशि०
६८१	प्रज्ञादिभ्यश्च
६५३	प्रज्ञाश्रद्धा०
४६०	प्रतिः प्रतिनिधि
४६०	प्रतिनिधिप्रतिदाने०

पृष्ठम्	सूत्रम्
६८२	प्रतियोगे०
३८८	प्रतेश्च
५५२	प्रतेरुरसः
३५१	प्रत्यपिभ्यां
३४	प्रत्ययः
४९	प्रत्ययलोपे०
६९७	प्रत्ययस्थात्
५०	प्रत्ययस्य
६०५	प्रत्ययोत्तर०
४४	प्रथमचरम०
३६	प्रथमयोः०
४७४	प्रथमानिर्दिष्टं
८२	प्रथमायाश्च०
५६६	प्रनिरन्तः श०
६१३	प्रभवति
६४६	प्रमाणे द्वयसच्
७२४	प्रयै रोहिष्यै०
६७१	प्रशस्यस्यश्रः
६७४	प्रशंसायां०
३२८	प्रश्ने चासन्न
५३२	प्रसंभ्यां
७२७	प्रसमुपोदः०
३९०	प्रस्त्योऽन्य०
६२६	प्रहरणम्
६३०	प्राक्क्रीताच्छः
४७२	प्राक्कडारात्
१२८	प्राक्सिताद०
६७४	प्रागिवात्कः
६३३	प्राग्वतेष्ठञ्

पृष्ठम्	सूत्रम्
६२२	प्राग्वहतेष्ठक्
६२८	प्राग्घिताद्यत्
६६१	प्राग्दिशो वि
५६९	प्राग्दीव्यतोऽण्
५८१	प्राचामवृद्धात्
७०२	प्राचां ष्फ
६४०	प्राणभृज्जाति
६५२	प्राणिस्थादा०
४४४	प्रातिपदिकार्थ०
५६७	प्रातिपदिकान्त
१८	प्रादयः
३१६	प्राद्वहः
५०८	प्राध्वं बन्धने
४९४	प्राप्तापन्ने च०
६०९	प्रायभवः
६०७	प्रावृष एण्यः
६०९	प्रावृषष्ठप्
३७१	प्रियवशे०
६७३	प्रियस्थिर०
३६१	पुसृल्वः स०
३६५	प्रेदाज्ञः
३३२	प्रैषातिसर्ग०
३०८	प्रोपाभ्यां०
३१३	प्रोपाभ्यां यु०
६१९	प्लक्षादिभ्योऽण्
१७	प्लुतप्रगृह्या.
२५६	प्वादीनां ह्रस्वः
	फ
१७५	फणां च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्
३६९ फलेग्रहिरा०
६१९ फले लुक्
६५२ फेनादिलच्च

ब

२३६ बभूयाततं०
५० बहुगणवतु०
६४९ बहुपूगगण०
७२७ बहुलं छन्दसि
३९ बहुवचने०
८४ बहुवचनस्य०
७०४ बहुव्रीहेरूधसो
७११ बहुव्रीहेश्चा०
५२६ बहुव्रीहौ सं०
५२८ बहुब्रीहौ सक्थ्य०
३६ बहुषु बहु०
६७३ बहोर्लोपो०
६८१ बह्वल्पार्थाच्छ०
७०९ बह्वादिभ्यश्च
३०२ बाष्पोष्म०
५७४ बाह्वादिभ्यश्च
३१६ बुधयुधनश०
५१५ ब्रह्मणो जा०
३८२ ब्रह्मभ्रूण०
५५२ ब्रह्महस्तिभ्यां
६४२ ब्रीहिशाल्योर्ढक्०
६५७ ब्रीह्यादिभ्येश्च०
२११ ब्रुव ईट्
२११ ब्रुवो वचिः
२१० ब्रुवः पञ्चाना०

भ

४८७ भक्ष्येण मि०

पृष्ठम् सूत्रम्
३७८ भजो ण्विः
३२३ भन्वेश्च चि०
११५ भवतेरः
६०३ भवतष्ठक्छसौ
३४९ भव्यगेय०
७८ भस्य टेर्लोपः
६२४ भस्त्रादिभ्यः०
३१९ भावकर्मणोः
४३१ भावे
३९९ भाषायां०
५८९ भिक्षादिभ्योऽण्
३६७ भिक्षासेना०
३९२ भित्तं शकलम्
३५१ भिद्योध्यौ०
२१४ भियोऽन्य०
२१४ भीहीभृहु०
२५० भुजोऽनवने
३४६ भुवो भावे
११४ भुवो वुग्लु०
६७० भूतपूर्वे०
३८२ भूते
१४ भूवादयो०
५०४ भूषणेऽलम्
१२३ भूसुवोस्तिङि
२१८ भृञामित्
३५० भोज्यं भक्ष्ये
३१ भोभगोअ०
८३ भ्यसोऽभ्यम्
२३९ भ्रस्जो रोप०

पृष्ठम् सूत्रम्
२६० भ्राजभास भाष
२६० ४०६ भ्राजभासधु०
५८० भ्रातुर्व्यच्च
५४६ भ्रातृपुत्रौ०

म

७६ मघवाबहु०
३९७ मतिबुद्धि०
६५० मतौ छः
५६५ मतौ बह्वचो०
६८८ मद्रात्परिवापणे
५५६ मध्याद्गुरौ
६०५ मध्यान्मः
५०८ मध्ये पदे०
७०७ मनोरौ वा
५८० मनोर्जाता०
३८१ मनः
६९६ मनः
७२० मन्त्रेश्वेत०
७२७ मन्त्रेष्वाङ्या०
५६१ मन्थौदन०
१९ मय उञो०
६१३ मयट् च
६१८ मयड् वैत०
५०२ मयूरव्यंस०
२२४ मस्जिनशो०
५७९ महाकुलादञ्०
५८७ महाराज०
१२२ माङि लुङ्
५४३ मातरपितरा०
५७५ मातुरुत्संख्या०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्

५५८ मातुःपितुर्भ्यां
५५८ मातृपितृभ्यां
५७९ मातृष्वसुश्च
५९८ मादुपधायाः०
२८४ मान्वधदान्०
३७१ मितनखे च
२७४ मितां ह्रस्वः
५६६ मित्रे चर्षौ
६३ मिदचोऽन्त्या०
२२९ मिदेर्गुणः
२२९ मीनातिमि०
५ मुखनासिका०
२८२ मुचोऽकर्मक०
३०४ मुण्डमिश्र०
६२५ मुद्गादण्
३४७ मृजेर्विभाषा
१९६ मृजेर्वृद्धिः
६८० मृदस्तिकन्
३९४ मृषस्तिति०
३७३ मेघर्तिभयेषु
११८ मेर्निः
२२ मोऽनुस्वारः
७२ मो नो धातोः
२३ मो राजि स०
२४६ म्रियतेर्लुङ्लि०
१६६ म्वोश्च

य

७१७ यङश्चाप्
२८९ यङि च

पृष्ठम् सूत्रम्

२९२ यङोऽचि च
२९२ यङो वा
४६ यचि भम्
४३३ यजयाच०
५७२ यञञोश्च
७०२ यञश्च
५७३ यञिञोश्च
४६८ यतश्च निर्धा०
६४६ यत्तदेतेभ्यः
३३३ यथाविध्यनु०
१० यथासंख्य०
४७९ यथाऽसादृश्ये
१४४ यमरमनमा०
३१० यमो गन्धने
२१ यरोऽनुना०
६४२ यवयवक०
४०५ यश्च यङः
२२७ यसोऽनुप०
३७ यस्मात्प्रत्यय०
४७० यस्मादधिकं
४६७ यस्य च भा०
३८९ यस्य विभाषा०
२८७ यस्य हलः
६३ यस्येति च
४९० याजकादि०
५८ याडापः
६६९ याप्ये पाशप्
४४१ यावति विन्द
३२९ यावत्पुरा०

पृष्ठम् सूत्रम्

४७९ यावदवधा०
६८० यावादिभ्यः०
१२१ यासुट् पर०
३५२ युग्यं च प०
८० युजेरसमासे
८२ युवावौ द्वि०
३५५ युवोरनाकौ
८४ युष्मदस्मदोः
८३ युष्मदस्मद्भ्यां०
६०४ युष्मदस्मदोरन्य
११२ युष्मद्युपपदे
८३ युष्मदस्मदो रनादेशे
७१७ यूनस्तिः
८२ यूयवयौ०
५१ यूस्त्र्याख्यौ
२५२ ये च
५७६ ये चाभाव०
४५५ येनाङ्गविकारः
१३३ ये विभाषा
५४० येषां च विरो०
८३ योऽचि
६४० योपधाद्गुरु०
९७ यः सौ

र

६३८ र ऋतो०
६२५ रक्षति
६५६ रजःकृष्या०
५६४ रथवदयोश्च
६१५ रथाद्यत्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
३८६	रदाभ्यां०
२२४	रधादिभ्यश्च
२२५	रधिजभोरचि
२७५	रभेरशब्लिटोः
४३९	रलो व्युपधा०
७२	रषाभ्यां नो णः०
५३७	राजदन्ता०
३८४	राजनि युधि०
५७५	राजश्वशुराद्
३५०	राजसूयसूर्य०
५१२	राजाहः स०
५१२	रात्राह्नाहाः
५५	रात्सस्य
२३७	राद्यो हिंसा०
५७	रायो हलि
३९१	राल्लोपः
६००	राष्ट्रावारपा०
१४९	रिङ्शयग्०
११७	रि च
२८७	रीगृदुपध०
२८७ ⎤ ५८७ ⎦	रीङृतः
२९४	रुग्रिकौ च
२७८	रुदविदमुष०
१९७	रुदश्च पञ्च०
१९७	रुदादिभ्यः०
२४७	रुधादिभ्यः०
२७३	रुहः पोऽन्य०
६५७	रूपादाहत०

पृष्ठम्	सूत्रम्
५७६	रेवत्यादि०
४३५	रोगाख्या०
३२	रोऽसुपि
३२	रो रि
७२	रोः सुपि
९३	र्वोरुपधाया०
	ल
३७६	लक्षणे जाया०
४५२	लक्षणेत्थंभूत०
१८९	लङः शाक०
४००	लटः शतृ०
३२९	लट् स्मे
२७५	लभेश्च
६२६	लवणाट्ठञ्
६२५	लवणाल्लुक्
३८	लशक्वतद्धिते
४०४	लषपतपद०
५८४	लाक्षारोचना०
७२१	लिङर्थे लेट्
१२२	लिङाशिषि
१२१	लिङः सलो०
१६१	लिङः सीयुट्
१२३	लिङ्निमित्ते
३३१	लिङ् च
१७३	लिङ्सिचा०
२३६	लिङ्सिचो०
१५९	लिटस्तझयो०
११४	लिटि धातो०
१८०	लिटि वयो०

पृष्ठम्	सूत्रम्
३९८	लिटः कान०
११६	लिट् च
१८४	लिट्यन्यतर०
१७७	लिट्यभ्यास०
७३१	लिति
१८२	लिपि सिचि०
६१९	लुक् तद्धितलुकि
२०९	लुग्वा दुह०
१८७	लुङि च
१२२	लुङ्
१२०	लुङ्लङ्०
१८५	लुङ्सनोर्घ०
११६	लुटः प्रथमस्य
१७३	लुटि च क्लृपः
२८८	लुपसदचर०
५९७	लुपि युक्तव०
६२०	लुप् च
५८५	लुबविशेषे
३९३	लुभोऽविमो०
४०१	लृटः सद्वा
११७	लृट् शेषे च
७२१	लेटोऽडाटौ
११८	लोटो लङ्वत्
११७	लोट् च
१५१	लोपश्चा०
२१७	लोपो यि
१६२ ५३२	लोपो व्योर्वलि
२७२	लोपः पिबते०
१२	लोपः शाकल्यस्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
६५३	लोमादि०
३०१	लोहितादि०
११०	लः कर्मणि०
११०	लः परस्मै०
४३६	ल्युट् च
३८७	ल्वादिभ्यः
	व
१९६	वच उम्
१७८	वचिस्वपि०
३५०	वचोऽशब्द०
६३४	वतोरिड्वा
६४९	वतोरिथुक्
६७६	वत्सोक्षाश्वर्ष
६५२	वत्सांसाभ्यां
३४६	वदः सुपि०
१३३	वदव्रजहलन्त०
६९५	वनो र च
५३५	वन्दिते भ्रातुः
१८६	वमोर्वा
३६६	वयसि च
७०३	वयसि प्रथमे
५३३	वयसि दन्तस्य
५९७	वरणादिभ्यश्च
६११	वर्गान्ताच्च
६३८	वर्णदृढा०
७०७	वर्णादनुदा०
६५९	वर्णाद्ब्रह्म०
११०	वर्तमाने लट्
३३०	वर्तमानसा०

पृष्ठम्	सूत्रम्
६०७	वर्षाभ्यष्ठक्
५६	वर्षाभ्वश्च
१८०	वश्चास्यान्य०
३९२	वसतिक्षुधो०
७१	वसुस्रंसुध्वं०
९४	वसोः सं०
३९९	वस्वेकाजा०
३७०	वहाभ्रे लिहः
३४५	वह्यं करणम्
३०१	वा क्यषः
६८९	वाक्यादेरा०
३११	वा गमः
२७३	वा चित्तवि०
३७२	वाचि यमो०
६५८	वाचो ग्मिनिः
३७२	वाचंयमपुर०
२२३	वा जॄभ्रमु०
६५९	वातातीसारा
६९	वा द्रुहमुह०
१०३	वा नपुंसक०
३४१	वा निंसनि०
१०	वान्तो यि०
१४३	वान्यस्य सं०
२३	वा पदान्त०
६७७	वा बहूनां०
५६१	वा भावकर०
१४०	वा भ्राशभ्लाश
५८५	वामदेवाड्०
६१	वामि

पृष्ठम्	सूत्रम्
६१	वाम्शसोः
५८७	वाय्वृतुपित्रु०
२०७	वा लिटि
४४०	वा ल्यपि
३९	वाऽवसाने
२९	वा शरि
३०२	वाष्पोष्म
३३६	वा सरूपो०
१५	वा सुप्या०
५३२	वा संज्ञायाम्
७०	वाह ऊठ्
५६७	वाहनमाहितात्
५३६	वाहिताग्न्या०
७१४	वाहः
२४६	विज इट्
३७९	विड्वनोरनु०
३९१	वित्तो भोग०
१९०	विदाङ्कुर्व०
६१३	विदूराञ्ञ्यः
४००	विदेः शतुर्वसुः
१८९	विदो लटो०
६११	विद्यायोनि०
१२०	विधिनिमन्त्रणा०
६२८	विध्यत्यधनु०
३७१	विध्वरुषो०
६७३	विन्मतोर्लुक्
३०७	विपराभ्यां०
३५१	विपूयवि०
३३	विप्रतिषेधे०
३६	विभक्तिश्च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
४७९	विभाषा
३३०	विभाषा कदा०
३१६	विभाषाऽकर्म०
३५२	विभाषा कृ वृषोः
५०६	विभाषा कृञि
३६०	विभाषा ग्रहः
४५८	विभाषा गुणे
१४५	विभाषा घ्राधेट्
६७	विभाषा ङिस्योः
५१६	विभाषा चत्वा०
३२३	विभाषा चिण्०
२३५	विभाषा चेः
४४	विभाषा जसि
६४२	विभाषा तिल०
५५	विभाषा तृ०
५८	विभाषा दि०
१४४	विभाषा धेट्
६६७	विभाषा परा०
५६४	विभाषा पुरुषे
६०८	विभाषा पूर्वा०
३९४	विभाषा भावादि०
३८८	विभाषाभ्य०
६०६	विभाषा रोगा०
२३१	विभाषा लीय०
२०४	विभाषा लुङ्
६६६	विभाषाऽवरस्य
६२४	विभाषा वि व०
५४१	विभाषा वृक्ष
३१५	विभाषा श्वेः
७०६	विभाषा सपूर्वस्य
३२८	विभाषा सा कांक्षे०
६८४	विभाषा साति०
६७४	विभाषा सु०
१४९	विभाषा सृजि
५१८	विभाषा सेना
५५७	विभाषा स्वसृ
६३१	विभाषा हवि०
१६९	विभाषेटः
५६२	विभाषोदरे
३१३	विभाषोपय०
४६५	विभाषोपसर्गे
२१२	विभाषोर्णोः
५६६	विभाषौषधि०
६७३	विन्मतोर्लुक्
३५	विरामोऽव०
५४०	विशिष्टलिङ्गो०
४९९	विशेषणं वि०
८१	विश्वस्य व०
६५०	विंशत्यादि०
२९, २६	विसर्जनी यस्य
५९६	वुञ्छण्कठ०
३०७	वृत्तिसर्ग०
६७२	वृद्धस्य च
६०२	वृद्धाच्छः
५२५	वृद्धिनिमित्त०
१३	वृद्धिरादैच्
१३	वृद्धिरेचि
५८०	वृद्धिर्यस्या०
५८२	वृद्धेत्कोश०
५४५	वृद्धो यूना०
१७१	वृद्भ्यः स्यस०
७०६	वृषाकप्यग्नि०
२१६	वृतो वा
१८०	वेञो वयिः
१८०	वेञः
६२४	वेतनादिभ्यो०
३११	वेत्तेर्विभाषा
७९	वेरपृक्तस्य
१२८	वेश्च स्वनो०
३०८	वेः पादवि०
६४३	वेः शालच्छं०
७२२	वैतौऽन्यत्र
५५५	वैयाकरणा०
२७३	वो विधूनने जुक्
७०८	वोतो गुणव०
५२७	वोपसर्जनस्य
४०३	वौ कष०
१७४	व्यथो लिटि
७२२	व्यत्ययो बहुलम्
७१९	व्यवहिताश्च
३१६	व्याङ्परि०
३१	व्योर्लघु०
८०	व्रश्चभ्रस्ज०
५७६	व्रातच्फ०
५५१	व्रीहिशाल्यो०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
	श
३३२	शकिलिङ्ग च
३४४	शकिसहोश्च
६२६	शक्तियष्ट्यो०
३७६	शक्तौ हस्ति०
६३३	शताच्च
६४८	शदन्तविंश०
२७३	शदेरगतौ०
२४५	शदेः शितः
१०४	शपूश्यनो०
३०३	शब्दवैर०
६२५	शब्ददर्दुरं
६३३	शताच्च०
२२६	शमामष्टाना०
६१८	शम्याः ष्लञ्
४०२	शमित्यष्टा०
५५६	शयवासवा०
५६५	शरादीनां च
६१०	शरीरावयवाच्च
६३१	शरीरावयवा०
१५	शरोऽचि
५९७	शर्करायाः०
२९	शपरे वि०
१३१	शर्पूर्वाः खयः
१५७	शल इगुपधा०
८३	शसो नः
२२	शश्छोऽटि
६७८	शाखादि०
२७२	शाच्छासा०

पृष्ठम्	सूत्रम्
२०	शात्
७१६	शार्ङ्गरवा०
२०३	शास इदङ्
१८४	शासिवसि०
२०३	शा हौ
५९८	शिखाया०
२४	शि तुक्
६२६	शिल्पम्
३६०	शिल्पिनि०
५७४	शिवादि०
६३	शि सर्वनाम०
६२७	शीलम्
२०३	शीङो रुट्
२०३	शीङः सार्व०
५८७	शुक्राद्धन्
५७७	शुभ्रादि०
३८९	शुषः कः
४४२	शुष्कचूर्णरू०
५४०	शूद्राणामनि०
६८७	शूलात्पाके
५८६	शूलोखाद्यत्
२१६	शॄदॄप्रां ह्रस्वो०
२४१	शे मुचादीनाम्
१११	शेषात्कर्तरि०
५३४	शेषाद्विभाषा
६००	शेषे
११२	शेषे प्रथमः
८२	शेषे लोपः
११३	शेषे विभाषा

पृष्ठम्	सूत्रम्
४७	शेषो घ्यस०
५२०	शेषो बहुव्री०
७०८	शोणात्प्राचाम्
१९१	श्नसोरल्लोपः
२०१	श्नाभ्यस्त०
२४८	श्नान्नलोपः
३५९	श्याद्व्यधा०
५९२	श्येनतिलस्य०
३८८	श्योऽस्पर्शे
६५०	श्राद्धमनेन
६०६	श्राद्धे शरदः
१५१	श्रुवः शृ च
६५०	श्रोत्रियश्छं०
२३५	श्र्युकः किति
२२६	श्लिष आलि०
२१४	श्लौ
६२३	श्वगणाट्ठञ् च
३१५	श्वयतेरः
७७	श्वयुवम०
५४७	श्वशुरः श्व०
६०७	श्वसस्तुट् च
६२३	श्वादेरिञि
३९१	श्वीदितो नि०
	ष
६४९	षट्कतिक०
७२	षट्चतुर्भ्यश्च
५०	षड्भ्यो लुक्
१५५	
१५०	षढोः कः सि

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् सूत्रम्
५८० षपूर्वहन्०
७०३
३६० षः प्रत्ययस्य
६५० षष्ठ्यादेश्चा०
४८९ षष्ठी
४६७ षष्ठी चानादरे
७१९ षष्ठीयुक्त०
४६० षष्ठीशेषे०
४६४ षष्ठ्यतसर्थ०
५५७ षष्ठ्या आक्रोशे
७२८ षष्ठ्याः पति०
६७० षष्ठ्या रूप्य च
४३५ षिद्गौरादि०
७०७
४४५ षिद्भिदा०
२० ष्टुना ष्टुः
१४१ ष्ठिवुक्लमुच०
७८ ष्णान्ता षट्
५६१ ष्यङः संप्रसा०

स

७१४ सख्यशिश्वी०
६३९ सख्युर्यः
४९ सख्युरस०
७२१ स उत्तरमस्य
६८८ सत्यादश्पथे
२५९ सत्यापपाश
३७७ सत्सूद्विष०
१२८ सदिरप्रतेः
६६४ सद्यः परुत्प०
४९८ स नपुंसकम्
१३३ सनाद्यन्ता०

पृष्ठम् सूत्रम्
४०५ सनाशंसभिक्ष उः
२७८ सनि ग्रह०
२७७ सनि च
२८२ सनि मीमा०
२७९ सनीवन्तर्ध०
४९९ सन्महत्पर०
२७६ सन्यङोः
१६५ सन्यतः
१५६ सन् लिटोर्जेः
१६५ सन्वल्लघुनि०
६८७ सपत्रनिष्पत्र०
६५१ सपूर्वाच्च
८५ सपूर्वायाः०
५२० सप्तमी विशे०
४९५ सप्तमी शौ०
४६६ सतम्यधि०
३८४ सतम्यां ज०
६६२ सप्तम्यास्त्रल्
६२९ सभाया यः
५१८ सभाराजा०
६८७ समयाच्च
४७१ समर्थः पद०
५६९ समर्थानां प्र०
३०८ समवप्रवि०
२५२ समवाये च
३१२ समस्तृती०
३१४ समः क्ष्णुवः
८८ समः समि
४३८ समानकर्तृक०

पृष्ठम् सूत्रम्
४४० समासेऽनञ्०
४४३ समासत्तौ
४ समाहारः स्व०
३६५ समि ख्यः
३३३ समुच्चयेऽन्य०
३३३ समुच्चये सा०
४४२ समूलाकृत०
३१० समो गम्यृ०
२५ समः सुटि
५८ सम्बुद्धौ च
१९ सम्बुद्धौ शा०
६०९ सम्भूते
१८९ संयसश्च
३६ सरूपाणामेक
२०३ सतिशास्त्य०
३७२ सर्वकूलाभ्र०
१६ सर्वत्र वि०
६०७ सर्वत्राण् च०
४८ सर्वनामस्थाने
४१ सर्वनाम्नः स्मै०
५८ सर्वनाम्नः स्या०
६६३ सर्वस्य सोऽन्य०
६८९ सर्वस्य द्वे
४० सर्वादीनि०
६६३ सर्वैकान्यकि०
१६१ सवाभ्यां०
३० ससजुषो०
६८१ सस्नौ प्रशं०
२२५ सस्यार्धधातुके०
७१३ सहनव्विद्य०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
४५५	सहयुक्तेऽप्र०
४७२	सह सुपा
८९	सहस्य सध्रिः
१७८	सहिवहोरोदवर्णस्य
३८४	सहे च
७१	सहेः साडः सः
५०७	साक्षात्प्रभृ०
६५१	साक्षाद्द्रष्टरि०
१२७	सात्पदा०
४५४	साधकतमं०
४६९	साधुनिपुणा०
९०	सान्तमहतः०
८३	साम आकम्
८६	सामन्त्रितम्
६०८	सायंचिरं०
१५१	सार्वधातुक०
११३	सार्वधातुकार्ध
३१९	सार्वधातुके०
७०	सावनडुहः
५८६	सास्मिन्पौ०
५८६	सास्य देवता
६५४	सिकताश०
२१७	सिचि च पर०
१३९	सिचि वृद्धिः
२८९	सिचो यङि
१२६	सिजभ्यस्त
६५२	सिध्मादि०
२०२	सिपि धातो०
७२१	सिब्बहुलं०
२२२	सिवादीनां०
३८३	सुकर्मपाप०
६८७	सुखप्रिया०
१६२	सुट् तिथोः
४६	सुडनपुं०
२३४	सुनोतेः स्य०
२९६	सुप आत्मनः
७२६	सुपां सुलुक्
३८	सुपि च
३६३	सुपि स्थः
२९६	सुपो धातु०
३५	सुपः
७	सुप्तिङन्तं०
४७९	सुप्यतिना०
३८१	सुप्यजातौ०
३९८	सुयजोर्ङ्वनिप्
१९८	सुविनिर्दुर्भ्यः
५२९	सुहृद्दुर्हृदौ
४५३	सुः पूजायाम्
१५०	सृजिदृशोः०
७२५	सृपितृदोः०
१२९	सेधतेर्गतौ
२२२	सेऽसिचि०
११८	सेर्ह्यपिच्च
३३	सोऽचि लोपे
२६	सोऽपदादौ
५८७	सोमाट्ट्यण्
३८३	सोमे सुञः
६१४	सोऽस्य नि०
७५	सौ च
५२६	संख्ययाव्य०
४९८	संख्यापूर्वो०
६६९	संख्याया वि०
६४७	संख्याया अव०
६३४	संख्याया अति०
६७९	संख्यायाः क्रि०
६८६	संख्यायाश्च गु०
४८१	संख्या वंश्येन
५२९	संख्यासुपूर्वस्य
६८२	संख्यैकवच०
६१६	संघांकल०
५२४	संज्ञापूरण्यो
३७३	संज्ञायां भृतॄ०
४५६	संज्ञोऽन्यतर०
६०७	संधिवेला०
२५२	संपरिभ्यां
५६१	संप्रसारणस्य
७०	संप्रसारणाच्च
४०३	संपृचानुरुधा०
६४४	संप्रोदश्च क०
४४५	संबोधने च
३१२	संमाननो०
२२७	संयसश्च
३८७	संयोगादे०
९	संयोगान्तं०
१७	संयोगे गुरु
६२५	संसृष्टे
६२३	संस्कृतम्

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
५८५	संस्कृतं भक्षाः
७१६	संहितशफ०
२७७	सः स्यार्धधा०
८१	स्कोः संयो०
१२८	स्तम्भेः
३६६	स्तम्बकर्णयो०
३६८	स्वम्बशकृतोरिन्
२७०	स्तम्भुसिवु०
२५५	स्तन्भुस्तुन्भु०
२३४	स्तुसुधूञ्भ्यः०
६३९	स्तेनाद्यन्न०
४८९	स्तोकान्तिक०
२०	स्तोः श्चुना श्चुः
२७९	स्तौतिण्योरेव
३९०	स्त्यः प्रपूर्वस्य
६९३	स्त्रियाम्
६१	स्त्रियां च
४३३	स्त्रियां क्तिन्
६१	स्त्रियाः
५२१	स्त्रियाः पुंवद्०
५४५	स्त्री पुंवच्च
५७१	स्त्री पुंसाभ्यां
५७५	स्त्रीभ्यो ढक्
३८०	स्थः क च
२२०	स्थाघ्वोरिच्च
१२९	स्थादिष्व०
३९	स्थानिवदा०
९	स्थानेऽन्तरतमः
६७२	स्थूलदूर०

पृष्ठम्	सूत्रम्
४०५	स्थेशभास०
१४०	स्नुक्रमोरना०
४४२	स्नेहने पिषः
३१२	स्पर्धायामा०
९२	स्पृशोऽनुदके०
४०१	स्पृहिगृहि०
३९२	स्फायः स्फी०
२४४	स्फुरतिस्फुलत्योः
२८३	स्मिपूङ्रञ्ज्व
१२२	स्मोत्तरे लङ्
११६	स्यतासी०
३२०	स्यसिच्०
२६९	स्रवतिशृणो०
२६८	स्वतन्त्रः कर्ता
२९०	स्वपिस्यमि०
४३३	स्वपो नन्
४२	स्वमज्ञाति०
६५	स्वमोर्नपुं०
१३६	स्वरतिसूति०
१०५	स्वरादिनिपात
१११	स्वरितञितः
७२९	स्वरितात्संहितायाम्
५८०	स्वसुश्छः
५२५	स्वाङ्गाच्चेतः
७११	स्वाङ्गाच्चोप०
४४३	स्वाङ्गे तस्प्रत्यये
२३४	स्वादिभ्यः०
४६	स्वादिष्व०
२७१	स्वापेश्चङि

पृष्ठम्	सूत्रम्
६५९	स्वामिन्नैश्वर्ये
४६८	स्वामीश्वरा०
४४३	स्वे पुषः
३५	स्वौजसमौट्०
	ह
१६०	ह एति
३४७	हनस्त च
२७१	हनस्तोऽचि०
१८७	हनो वध०
३१०	हनः सिच्
७५	हन्तेः
१८७	हन्तेर्जः
३६५	हरतेरनुद्यमने०
३६९	हरतेर्दृति०
६२४	हरत्युत्सङ्गा०
६२०	हरीतक्या०
५२०	हलदन्तात्सप्तम्या०
२७८	हलन्ताच्च
२	हलन्त्यम्
४३७	हलश्च
३४०	हलश्चेजुप
३८७	हलः
५५	हलः श्नः शा०
६१५	हलसीराट्ठक्
६२८	
४०७	हलसूकर०
७०२	हलस्तद्धितस्य
११५	हलादिः शेषः
२१६	हलि च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
७३	हलि लोपः
३१	हलि सर्वेषाम्
७	हलोऽनन्तरा०
५७०	हलो यमां य०
४८	हल्ङ्याब्भ्यो०
३१	हशि च
६५९	हस्ताज्जातौ
४४२	हस्ते वर्तिग्र०
६४०	हायनान्त०
२३७	हिनुमीना
२४५	हिंसायां प्र०
४५२	हीने
१८५	हुझल्भ्यो०
१५१	हुश्नुवोः सार्व०
४४९	हृक्रोरन्यतर०
२६८	हेतुमति च
६१३	हेतुमनुष्ये०
३३१	हेतुहेतुम०
४५६	हेतौ
२३	हे मपरे वा
२३७	हेरचङि
६४३	हैयङ्गवीनं०
६९	हो ढः
७५	हो हन्तेर्ञ्णि०
१३३	ह्म्यन्तक्षणः०
४०	ह्रस्वनद्यापो०
३४७	ह्रस्वस्य पिति०
६०२	ह्रस्वात्तादौ०
१७६	ह्रस्वादङ्गात्
६५	ह्रस्वो नपुंसके०
१७	ह्रस्वं लघु
४६	ह्रस्वस्य गुणः
११५	ह्रस्वः
२७२	ह्वः संप्रसारणम्

अथोणादिसूत्रसूची ।

पृष्ठम्	सूत्रम्
४१८	अग्नेर्निर्नलोपश्च
४२०	अच इः
४२६	अदिभुवो डुतच्
४१८	अदिशदिभूशुभि०
४०९	अन्दूदृम्भूजम्बू०
४२३	अमिचिमिदिश०
४२६	अमेः सन्
४२८	अमेस्तुट् च
४१५	अर्चिशुचिहुसृपि०
४१६	अर्तिपृवपियजि०
४१७	अर्तिस्तुसुहुसृधृ०
४१८	अर्तेरूच्च
४२४	अर्तेरुच्च
४११	अवतेष्टिलोपश्च
४२१	अवितॄस्तृन्त्रिभ्य०
४१२	अविसिविशुषि०
४१२	अशूप्रूषिलटिकणि०
४२४	अशेर्देवने युट् च
४१७	अशेः सरः
४१९	इगुपधात्कित्
४२२	इन्देः कमिर्न्नलोपश्च
४२०	इषेः क्वसुः
४१७	इस्मन् त्रन्
४२६	उदि चेर्डैसिः
४२६	उदि दृणातेरजलौ०
४१३	उन्देर्नलोपश्च
४२४	उब्जेर्दले बलोपश्च
४२५	उषः कित्
४१२	उषिकुषिगर्तिभ्यः०
४२८	ऊर्णोतेर्डः
४१७	ऋषिवृषिभ्यां कित्
४१६	एतेर्णिच्च
४२२	एतेस्तुट् च
४१०	कणेठः
४१२	कनिन् युवृषित०
४०९	कमेरठः
४२२	कायतेर्डिमिः
४२०	कुण्डिकम्प्योर्नलो०
४१६	कुयुभ्यां च
४२८	कृञः पासः
४२७	कृञादिभ्यः सं०
४०९	कृवापाजिमिस्वदि०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
४२०	कृषेर्वर्णे
४१४	कृपॄवृजिमन्दि०
४१७	कृशॄशलिकलि०
४२७	क्लिशेरन् ललोपश्च
३३४	क्रियासमभिहारे
४१७	खष्पशिल्पशष्प०
४१०	गन् गम्यद्योः
४१३	गर्मेर्डोः
४१३	गमेर्गश्च
४२२	गिर उडच्
४२६	गुधेरूमः
४११	ग्रसेरा च
४२९	ग्रहेरणिः
४१२	ग्रीष्मः
४१३	ग्लानुदिभ्यां डौः
४१२	घर्मः
४१६	चक्षेः शिच्च
४२८	चतेरुरन्
४२४	चन्देरादेश्च छः
४२५	चन्द्रे मो डित्
४२९	चरेश्च
४२७	चीकयतेराद्यन्त०
४१३	च्विरव्ययम्
४२०	जनिघसिभ्यामिण्
४२८	जनेररष्ठ च
४१५	जनेरुसिः
४१९	जनेर्यक्
४२७	जनेष्टन्नलोपश्च
४११	ज्वरत्वरस्रि०
४१०	ञमन्ताड्डः
४२६	डित् खनेर्नुट्०
४२९	तरतेर्ड्रिः
४२४	तृन्तृचौ शंसि०
४२६	तृहेः क्नो हलोपश्च
४२२	त्यजितनियजि०
४२८	दधातेर्यन् नुट् च
४२८	दहेर्गोलोपो दश्च
४२०	दाभाभ्यां नुः
४१५	दिवेर्ऋः
४१५	द्युतेरिसिन्नादे०
४१४	धृषेर्धिष च सं०
४१५	नञि च नन्देः
४२५	नञि हन एह च
४१४	नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृ०
४१५	नयतेर्डिच्च
४२७	नहेर्हलोपश्च
४२१	नामन्सीमन्व्योम०
४१८	नियो मिः
४२६	नौ दीर्घश्च
४२५	पचिवचिभ्यां सुट् च
४१०	पतिचण्डिभ्यामा०
४१२	पातॄतुदिवचिरि०
४१८	पातेर्डतिः
४२३	पातेर्डुम्सुन्
४१६	पानीविषिभ्यः पः
४२३	पुवो ह्रस्वः
४२६	पूञो यण् णुक्०
४२९	प्रथेरमच्
४२८	प्राततेररन्
४२७	फलेरितजादेश्च
४१४	बहुलमन्यत्रापि
४१७	बृहेर्नलोपश्च
४१५	बृंहेर्नोच्च
४२४	भूरञ्जिभ्यां कित्
४१८	भुवः कित्
४११	भृञः कित् नुट् च
४१३	भ्रमेश्च डूः
४२९	मङ्गेरलच्
४१९	मनेरुच्च
४२७	माङ ऊखो मय च
४१९	माछाससिभ्यो यः
४१६	मुहेः किच्च
४२७	मुहेः खो मूर्च
४१४	यतेर्वृद्धिश्च
४२१	यापोः किद् द्वे च
४२२	युष्यसिभ्यां मदिक्
४१०	रमेर्वृद्धिः
४१३	रातेर्डैः
४१७	रासिवल्लिभ्यां च
४२१	लक्षेर्मुट् च
४१९	वलिमलितनिभ्यः०
४२५	वशेः कनसिः
४२४	वसेर्णित्
४२३	वसेस्तिः
४१७	वसेश्च
४१८	वहिश्रिश्रुयुद्रु०
४२१	वातप्रमीः
४२५	विधाञो वेध च
४२०	विषेः किच्च
४२३	वौ तसेः

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	सूत्रम्
४०९	शते च
४१०	शमेः खः
४०९	शमेर्ढः
४२७	शीङो ह्रस्वश्च
४११	शृणातेर्ह्रस्वश्च
४२२	शृद्भसोऽदिः
४२४	श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः
४१७	सपूर्वाच्च
४२५	सर्तेरप्पूर्वादसिः
४१९	सर्वधातुभ्य इन्
४२१	सर्वधातुभ्यो मनिन्
४२३	सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्
४२४	सर्वधातुभ्योऽसुन्
४२२	सातिभ्यां मनिन्
४२३	सावसेः
४१४	सावसेर्ऋन्
४२०	सितनिजनिगमि०
४१६	सुशृभ्यां निच्च
४१८	सूङः क्रिः
४२३	सूचेः स्मन्
४१७	स्तनिहृषिपुषि०
४१६	स्तुवो दीर्घश्च
४२३	स्त्यायतेर्ड्रट्
४२२	हनिमशिभ्यां सिकन्
४२९	हन्तेरच् घुर च
४०९	हरिमितयोर्द्रुवः
४२८	हर्यते कन्यन्०

अथ मध्यकौमुदीस्था वार्त्तिकादिसूची: ।

पृष्ठम्	वार्त्तिकादि
	अ
४४७	अकर्मकधातुभिर्योगे०
५१७	अकारान्तोत्तरपदो०
१४	अक्षादूहिन्यामुपसं०
५२८	अगोवत्सहलेष्विति०
३७८	अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो०
६०८	अग्रादिपश्चाड्डिमच्
५९४	अङ्क्षत्रधर्मविपूर्वात्
६५३	अङ्गात्कल्याणे (ग)
५५५	अञ्जस उपसङ्ख्यानम्
२४५	अडभ्यासव्यवायेऽपि
५६८	अतद्धित इति वक्तव्यम्
३२८	अत्यन्तापह्नवे लिङ् वक्तव्यः
५०९	अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे०
२७८	अत्रेटो दीर्घो नेष्टः
३१७	अदेः प्रतिषेधः
६२६	अधर्माच्चेति वाच्यम्
६११	अध्यात्मादेष्ठञिष्यते
१०	अध्वपरिमाणे च
२६	अनव्ययस्येति वाच्यम्
३२३	अनाचमिकमिवमीनामिति०
२०	अनाम्नवतिनगरीणाम्०
५३४	अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता०
१५२	अनुदात्तेत्त्वलक्षणमा० (प.)
५४९	अनुचबह्वृचावध्येतर्येव०
५४८	अनेकशफेष्विति वाच्यम्
४३	अन्तरमितिगणसूत्रेऽपुरीति०
११९	अन्तःशब्दस्याङ्किविधि०
५५६	अन्ताच्च
६०८	अन्ताच्च
३७४	अन्यत्रापि दृश्यते इति०
६५५	अन्येभ्योऽपि० = दृश्यते
६५६	अन्येभ्योऽपि दृश्यते

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् वार्त्तिकादि
६५७ अन्येभ्योऽपि दृश्यते
१०१ अन्वादेशे नपुंसके०
४९९ अपरस्यार्धे पश्चभावो०
४६९ अप्रत्यादिभिरिति०
३८२ अभितः परितः०
४४९ अभिवादिदृशोः०
४५० अभुक्त्यर्थस्य न
६८३ अभूततद्भाव इति०
५३८ अभ्यर्हितं च
५२५ अमानिनीति वक्तव्यम्
६०१ अमेहक्वतसित्रेभ्य एव
३५ अयोगवाहानामकारस्यो०
६०२ अरण्याण्णः
६५६ अर्णसो लोपश्च
३११ अर्तिश्रुदृशिभ्यः
५३३ अर्थान्नञः (ग.)
४८८ अर्थेन नित्यसमासो०
६३४ अर्धाच्च
७११ अर्यक्षत्रियाभ्यां वा०
४५७ अलमिति पर्याप्त्यर्थ०
६४४ अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो०
४८७ अवरस्योपसङ्ख्यानम्
५४९ अवर्णान्ताद्वा
५१० अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे०
६०० अवारपाराद् विगृहीता०
६८३ अव्ययस्य च्वावीत्वं०
६०६ अव्ययानां भमात्रे०
६१७ अश्मनो विकारे टिलोपो०
२९७ अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम्

पृष्ठम् वार्त्तिकादि
६९९ अष्टका पितृदैवत्ये
६९१ असमासवद्भावे०
५९ असंयुक्ता ये
३६० असि अके अने च०
१६९ असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे (प.)
९४ अस्य सम्बुद्धौ वाऽनङ्०
६७५ अस्मिन् प्रकरणे हलादौ०
३२ अहरादीनां पत्यादिषु वा०
४९७ अह्नः खः क्रतौ

आ

५०२ आख्यातमाख्यातेन० (ग.)
३०७ आगमेः क्षमायाम्
६८० आग्नीध्रसाधारणादञ्
३०८ आङः प्रतिज्ञायामुपसं०
१४१ आङि चम इति वक्तव्यम्
३०० आचारेऽवगल्भक्लीब०
७१० आचार्यादणत्वं च
६३२ आचार्यादणत्वं च (ग.)
३२० आदिकर्मणि निष्ठा०
४४८ आदिखाद्योर्न
६८२ आद्यादिभ्य०
६९० आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये
६०३ आपदादिपूर्वपदात्० (ग.)
५१७ आबन्तो वा
५५७ आमुष्यायणामुष्य०
३६४ आलस्यसुखाहरण०
२८१ आशङ्कायां सन्वक्तव्यः
३८० आशासः क्वावुपधाया०
१६६ आशिषि नाथ इति०
६९८ आशिषि वुनश्च न

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् वार्तिकादि

६२२ आहौ प्रभूतादिभ्यो:

इ

६२४ इकारादाविति वाच्यम्
४३६ इकश्तिपौ धातुनिर्देशे
१९५ इण्वदिक इति वक्तव्यम्
२४५ इत्वोत्वाभ्यां गुणवृद्धी०
७२६ इयाडियाजीकाराणा मुप०
१३१ इर इत्संज्ञा वाच्या
५६६ इरिकादिभ्यो न
४७३ इवेन समासो विभ०

ई

५७० ईकक् च
५३५ ईयसो बहुव्रीहेर्न
२७५ ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति०

उ

६९८ उत्तरपदलोपे न
५६० उत्तरपदस्य चेति०
६०२ उत्तरादाहञ्
४५७ उत्पातेन ज्ञापिते च
३९० उत्फुल्लसंफुल्लयोरुप०
७१३ उपमानात्पक्षाच्च०
३१२ उपसर्गादस्यत्यूह्यो०
३०९ उपाद्देवपूजासंगति०
१९५ उभयत आश्रयणे०
७१९ उभयसंज्ञान्यपीति०
३७४ उरसो लोपश्च

ऊ

३८० उङ् च गमादीनामिति०
१७७ ऊर्णोतेराम् नेति०
२१२ ऊर्णोतेराम् नेति०
३८६ ऊर्णोतेर्नुवद्भावो वाच्य:०
६३० ऊधसोऽनङ् च

पृष्ठम् वार्तिकादि

ऋ

२० ऋति सवर्णे ऋ वा
५३८ ऋतुनक्षत्राणां०
१४ ऋते च तृतीयासमासे
१४९ ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं०
१७०
५ ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यम्०
४३३ ॠल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठा०
५६ ऋवर्णान्नस्य णत्वं०

ए

६४ एकतरात्प्रीषेध:
८५ एकतिङ् वाक्यम्
६८ एकदेश विकृत (प)
८५ एकवाक्ये निघात
४९३ एकविभक्ताष्ठ्यन्त
६१८ एकाचो नित्यम्
६६५ एतदोऽपि वाच्य:
८५ एते वांनावादय०
१५ एवेचानियोगे

ओ

३०० ओजसोऽप्सरसो०
१५ ओत्वोष्ठयो: समासे

औ

६३ औङः श्यां प्रतिषेधो
९५ औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् वार्तिकादि

क

६५५ कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च
७१३ कबरमणिविषश०
४६३ कमेरनिषेध्ः
१६५ कमेश्च्लेश्चङ्
५८२ कम्बोजादिभ्य इति
५४१ कर्मधारयादेवेष्यते
६९० कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो
२७२ काण्यादीनां वा
३३१ कामप्रवेदन इति०
२६ काम्ये रोरेवेति
५६३ कारके छे च नायं०
५०४ कारिकाशब्दस्योप
१३४ कास्यनेकाच आम्
२८४ कितेव्याधिप्रतीकारे०
५२३ कुक्कुट्यादीनाम०
३८३ कुत्सितग्रहणं कर्त०
५५९ कुत्सित इति व०
७०९ कृदिकाराद० (ग)
४८७ कृद्ग्रहणे ग० (प)
५५९ कृन्नद्या न
५५० कृष्णोदक्पाण्डुसं०
३३८ केलिमर उपसं०
५२४ कोपधप्रतिषेधे०
२३९ क्ङिति रमागमम्०
१९७ क्ङित्यजादौ०
४६६ क्तस्येन्विषयस्य कर्म
४३४ क्तिन्नपीष्यते
३६६ क्रपेः संप्रसा० (ग)
४५७ क्रियया यमभिप्रैति
२७२ क्रियासमभिहारे०
५९९ क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च (ग)
३३३ क्विचिप्रच्छ्यो०
५८१ क्षत्रिय॰समानशब्दात्
६९८ क्षिपकादीनां च

पृष्ठम् वार्तिकादि

२९७ क्षीरलवणयोलेलि०

ख

३७१ खच्च डिद्वा०
७०९ खरुसंयोगोपधान्न
२९ खर्परे शरि वा
५९१ खलादिभ्य इनिर्व०
५३० खुरखराभ्यां वा०
५३१ ख्यश्च

ग

६२२ गच्छतौ परदारा०
५९० गजसहायाभ्यां
५३५ गड्वादेः परा स०
५९० गणिकाया यञ्
५३ गतिकारकेतरपूर्व०
५११ गतिकारकोपपदा०
३८० गमादीनामिति व०
३७१ गमेः सुपि त्रा०
३५८ गवादिषु विन्देः सं०
४६१ गुणकर्मणि वेष्यते
४९० गुणात्तरेण तरलोपश्च०
६५२ गुणवचने
२८४ गुपेर्निन्दायां
५७० गोरजादिप्रसङ्गे०
६४४ गोष्ठजादयः०

घ

६१६ घोषग्रहणमपि क०
४३२ घञर्थे कविधानम्
२७४ घटादयो मितः

ङ

७४ ङावुत्तरपदे प्रति०

च

५७८ चटकादिति वाच्यम्
६४९ चतुरश्छयतावाद्यक्षरः०
६३९ चतुर्वर्णादीनां०

पृष्ठम् वार्तिकादि

२४ चयो द्वितीयाः०
६१६ चरणाद्धर्माम्नाययोरिति
३४४ चरेराङि चागुरौ
३७५ चारौ वा
७३० चितः सप्रकृतेर्बह्वक०
६०८ चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो
३०४ चीवरादर्जने परि०
५०७ च्व्यर्थ इति वक्तव्यम्

छ

२२ छत्वममीति वाच्यम्
२८३ छन्दसीति वक्तव्यम्

ज

४८३ जरायाः जरस् (ग.)
४४९ जल्पतिप्रभृतीना०
५३६ जातिकालसुखा०
३०८ ज्योतिरुद्गमन इति०
६५४ ज्योत्स्नादिभ्य०

ड

६८६ डाचि बहुलं द्वे भ०
३७४ डे च विहायसो वि०

ण

३४१ ण्यन्तभादीनामुप०
२७० ण्यल्लोपावियङ्०

त

५८० तक्ष्णोऽणुपस०
५९९ तक्षन्नलोपश्च
६२२ तदाहेति माशब्दा०
५६८ तद्बृहतोः करप०
२८१ तनिपतिदरिद्रा
१९ तच्च टेः
७२७ तन्वादीनां वे०
२४७ तपसः परस्मैपदं च
६५८ तप्पर्वमरुद्भ्यां०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् वार्तिकादि

४५७ तादर्थ्ये चतुर्थी वा०
६९८ तारका ज्योतिषि
२८४ तिजेः क्षमायां
५८५ तिष्यपुष्ययोर्न०
४४ तीयस्य ङित्सु वा
६६९ तीयादीकक् स्वार्थे
६९७ त्यक्त्यपोश्च
६९८ त्यक नञ्च०
५४७ त्यदादितः शेषे पुं०
५४७ त्यदादीनां मिथः०
६०१ त्यब्नेर्ध्रुव इति०
७०५ त्रिचतुर्भ्यां हा०
४७१ त्रौ च
५५१ त्र्युपाभ्यां चतुरो०
५२३ त्वतलोर्गुणव०

द

२३८ दम्भेश्च
२०१ दरिद्रातेरार्धधातुके०
२८४ दानेशार्जवे०
३७५ दारावाहनोऽण०
५५७ दिवश्च दासे
३८७ दुग्वोर्दीर्घश्च
११९ दुरः षत्वणत्वयो०
३२५ दुहिपच्योर्बहुलं०
६०२ दूरादेत्यः
५६ दृन्करपुनःपूर्वस्य०
६६३ दृशिग्रहणाद्भव०
४४९ दृशेश्च
५६३ दृक्षे च
५६३ दृक्षे चेति
५७० देवाद्यञञौ
५५७ देवानां प्रिय इति च०

पृष्ठम् वार्तिकादि

६६५ द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः
४९७ द्वंद्वतत्पुरुषयोरुत्तर०
५३५ द्वन्द्वेऽपि
५१७ द्विगुप्तापन्नालम्
६४४ द्वित्वे गोयुगच्
५१ द्विपर्यन्तानाम्
४६३ द्विषः शतुर्वा
५६६ द्व्यच्त्र्यज्भ्यामेव

ध

५३७ धर्मादिष्वनियमः
४३५ धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्
२६३ धूम्रीञोर्नुग्
३१८ धेट उपसंख्यानम्
३३३ ध्यायतेः सं०

न

६५५ नगापांसुपाण्डुभ्यश्च
५२१ नञोऽस्त्यर्थानां वा०
७०१ नञ्स्नञीकक्०
६८० नवस्य नू आदेश०
६६९ न विद्यायाः
२५ न समासे
७८ नानर्थके (प)
३७१ नान्तानिटां नि०
६३० नाभि नभं च (ग)
६८६ नित्यमाम्रेडिते डा०
४६४ निमित्तपर्यायप्रयो०
४६७ निमित्तात्कर्मयोगे
४४८ नियन्तृकर्तृकस्य०
५१० निरादयः क्रान्ताद्य०
३३९ निर्विण्णस्योपसं०

पृष्ठम् वार्तिकादि

३४८ निष्ठायामनिट०
६०२ निसो गते
५८४ नील्या अन्
४४८ नीवह्योर्न
१५१ नुड्विधौ ऋकारैक०
५६ नुमचिरतृज्वद्भावे०
३६० नृतिखनिरञ्जिभ्य०
७१७ नृनरयोर्वृद्धिश्च (ग)
५३० नेतुर्नक्षत्रेऽब्वक्तव्यः

प

६३२ पञ्चजनादुपसं०
५९६ पथः पन्थ च (ग)
६०४ पथ्यध्याय०
३०६ परस्परोपपदाच्चेति०
४८ परिगणनं कर्तव्यम्०
६१० परिमुखादिभ्य एवे०
८१ परौ व्रजेः षः
५१० पर्यादयो ग्लानाद्य०
५५२ पल्यराजभ्यां च
५८२ पाण्डोर्ड्यण्
२७३ पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः
५१७ पात्राद्यन्तस्य न
३६७ पार्श्वादिषूपसं०
२६ पाशकल्यककाम्ये०
७०९ पालकान्तात्र
६५३ पिच्छादिभ्य०
७०७ पिप्पल्यादयश्च (ग)
३६५ पिबतेः सुराशीध्वो०
६५९ पिशाचाच्च

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

प्रथम भाग 800 पृष्ठ पर देखें

पृष्ठम्	वार्तिकादि
१६७	सुब्धातुष्ठिवुष्वक्क०
२८८	सुचिसूत्रिमूत्र्य०
६९९	सूतकापुत्रिका०
५९४	सूत्रान्तात्तु अकल्पा०
७०९	सूर्यद्देवतायं चाप्
२९६	स्तन धेटो नासिकायां०
६३५	स्तोमे डविधिः
५७८	स्त्रियामपत्ये लु०
६९१	स्त्रीनपुंसकयोरु०
२२९	स्थाघ्वोरित्वे०
६४४	स्नेहे तैलच्
२२५	स्पृशमृशकृषतृप्
५५३	स्वतिभ्यामेव
३१३	स्वराद्यन्त्तोपसर्गात्
३१०	स्वाङ्गकर्मकाच्चेति०
१४	स्वादीरेरिणोः
	ह
३०२	हनुचलन इति वा०
२८९	हन्तेर्हिंसायां यङि०
३०६	हरतेरप्रतिषेधः
५८४	हरिद्रामहारज०
६२१	हरीतक्या०
३०४	हल्यादिभ्यो ग्र०
३६६	हस्तिसूचकयो०
७१०	हिमारण्ययोर्म०
६५८	हृदयाच्चालुरण्य०
५५६	हृद्द्युभ्यां च

मध्यकौमुदीस्थानां श्लोकानां कारिकाणां वा सूचीः ।

पृष्ठम्	श्लोकादि
१	नत्वा वरदराजः श्री०
२	हकारो द्विरुपात्तो०
१८	वस्तूपलक्षणं यत्र०
२४	अच्छौ अच्छा०
६२	स्वसा तिस्रश्चत०
७२	यन्निमित्तमुपादाय०
७२	पीलुर्वृक्षः फलं
८५	श्रीशस्त्वाऽवतु०
९	सुखं वां नौ ददा०
९४	जक्षिजागृद०
१०२	गवाक्शब्दस्य०
१	स्वम्सप्सु नव, षट्०
१०९	सदृशं त्रिषु लिंगेषु०
१७	वष्टि भागुरिरल्लोप०
१२४	संहितैकपदे नित्या०
१२४	उपसर्गेण धात्वर्थो०
१२६	सेक् सृप् सृ स्तृ०
१३३	सन् क्यच् का०
१३५	उद्दृदन्तैर्यौति०
१३७	अजन्तोऽकारवा०
१४७	नकारजावनुस्वार०
१७८	यजिर्वपिर्वहिश्चैव०
१८८	अषितः क्षाम्यतेः०
२७६	शैषिकान्मतुबर्थीया०
२९३	श्तिपा शपानुबन्धेन०
३११	धातोतर्थान्तरे वृत्ते०
३३५	पुरीमवस्कन्द लुनी०
३४१	क्वचित्प्रवृत्तिः क्व०
३४९	लुम्पेदवश्यमः०
३९६	मुकुन्दस्यासित०
३४	गौर्नादित्ये०
३४८	हरिर्विष्णा०
३६०	संज्ञासु धातुरूपाणि
४४६	दुह्याच् पच्-दण्ड०
४४८	शत्रूनगमयत्०
४५०	उभसर्वतसोः कार्या०
४६७	चर्मणि द्वीपिनं
५६५	भवेद्वर्णागमाद्०
६४६	प्रथमश्च द्वितीयश्च०
६९१	दलद्वये टाबभावः
७१२	अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्ग०
७१४	आकृतिग्रहणा०
७२३	सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां०
६३९	एषा वरदराजेन०
६३९	कृतिर्वरदराजस्य

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

अकारादिक्रमेण मध्यकौमुदीस्थ-धातुसूचीः ।

पृष्ठम् धातुः

अ

१६७ अकि लक्षणे
१५५ अक्षू व्याप्तौ
१८२ अञ्चु गतौ पूजने च
२४९ अञ्जू व्यक्तिम्रक्षण
२८८ अट गतौ
१२४ अत सातत्यगमने
१३२ अति बन्धने
१८४ अद भक्षणे
१३२ अदि बन्धने ।
१९९ अन प्राणने
१६८ अय गतौ
१२६ अव रक्षणगति
२६३ अर्च पूजायाम्
१३२ अर्च पूजायाम्
१३२ अर्द गतौ याचने च
२६३ अर्ह पूजायाम्
२५७ अश् भोजने ।
२३८ अशू व्याप्तौ संघाते च
१९१ अस् भुवि
१८३ अस गतिदीप्त्यादानेषु
२२७ असु क्षेपणे ।

आ

२३७ आप्लृ व्याप्तौ ।
२०६ आस उपवेशने ।

इ

१९५ इक् स्मरणे ।
२०४ इङ् अध्ययने ।
१९३ इण गतौ ।
२५० ञि इन्धी दीप्तौ
२४३ इषु इच्छायाम् ।

ई

२०५ ईड स्तुतौ
२६२ ईड स्तुतौ
२०५ ईर गतौ कम्पने च
२०५ ईश ऐश्वर्ये
१६८ ईह चेष्टायाम्

उ

२२८ उच समवाये ।
३४२ उछि उच्छे ।
२४३ उज्झ उत्सर्गे ।
२४८ उन्दी क्लेदने ।
१६६ उर्द माने क्रीडायां च

ऊ

२६५ ऊन परिहाणे ।
२११ ऊर्णुञ् आच्छादने
१६८ ऊह वितर्के ।

पृष्ठम् धातुः

ऋ

२१८ ऋ गतौ ।
२४३ ऋच्छ गतीन्द्रिय
१६८ ऋज गतिस्थाना
१६८ ऋजि भर्जने
१६· ऋति जुगुप्सायां०
२२९ ऋधु वृद्धौ

ए

१६८ एजृ दीप्तौ
१५८ एध वृद्धौ

क

१६७ ककि गत्यर्थे ।
१३३ कटे वर्षावरणयोः ।
३०६ कण्डूञ् गात्रविघ०
१६७ कत्थ श्लाघायाम्
२६४ कथ वाक्यप्रबन्धे
१३२ कदि आह्वाने रोदने च
१६८ कपि चलने
१६३ कमु कान्तौ
२६५ कल गतौ संख्याने च
१५६ कष हिंसार्थः
१५६ काक्षि कांक्षायाम्
१६८ काशृ दीप्तौ

अग्रिम भाग ४०१ पृष्ठ पर देखें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	वार्तिकादि
५८४	पीतात्कन्
७१३	पुच्छाच्च
३०४	पुच्छादुदसने०
५१४	पुण्यसुदिनाभ्याम्
६२०	पुष्पमूलेषु बहुलम्
३८७	पूञो विनाशे
५८१	पूरोरण्
१७०	पूर्वत्रासिद्धीयमद्वि०
५४७	पूर्वशेषोऽपि दृश्यते
६२२	पृच्छतौ सुस्नाता०
६४८	प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः०
४१७	प्रकृतेरुकारादेश०
५८९	प्रकृत्या अके राज०
४५५	प्रकृत्यादिभ्य उप०
४८४	प्रतिपरसमनु० (ग)
२१	प्रत्यये भाषायां नि०
५१	प्रथमलिङ्गग्रहणं च
१४	प्रवत्सतरकम्बल०
५१६	प्राक्शताद्०
६५२	प्राण्यङ्गादेव
३०३	प्रातिपदिकाद्धा० (ग)
५०९	प्रादयो गताद्यर्थे०
५२१	प्रादिभ्यो धातु०
१४	प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु
५६८	प्रायस्य चित्तिचि०
	फ
६२०	फलपाकशुषामुप०
६५८	फलवर्हाभ्यामि०
५४१	फलसेनावनस्पति०
३०२	फेनाच्चेति वक्तव्यम्
	ब
२८४	बधेश्चित्त०
५७०	बहिषष्टिलोपो यञ्च
६९५	बहुव्रीहौ वा
६८२	बह्वल्पार्थान्मङ्गला०
	भ
४४८	भक्षेरहिंसार्थस्य न
६८८	भद्राच्चेति०
३३१	भविष्यत्येवेष्यते
५२३	भस्याढे तद्धिते
६८०	भागरूपनामभ्यो०
३०४	भाण्डात्समाचयने
२६४	भाषावाचिनां०
३२४	भूषावाचिनां
५३९	भ्रातुर्ज्यायसः
	म
७०७	मत्स्यस्य ङ्याम्
२४४	मस्जेरन्त्यात् पू०
७१०	मातुलोपाध्याययो०
२८४	मानेर्जिज्ञासायां०
३७३	मान्तानिटां वा
२९६	मान्तप्रकृतिक०
६९७	मामकनरकयोरुप०
७२७	मासच्छन्दसि०
५९४	मुख्यार्थात्तूक्यश०
३६३	मूलविभुजादि
६९४	मूलांन्नञः
	य
९	यणः प्रतिषेधो वा०
	यणो मयो द्वे०
७१०	यवनाल्लिप्याम्
२३	यवलपरे यवला वे०
७१०	यवाद्दोषे
७१५	योपधप्रतिषेधे०
	र
६५५	रप्रकरणे खमुख०
३७७	राजघ उपसंख्यानम्
६३९	राजाऽसे (ग)
५७५	राज्ञो जातावेव
४३६	रादिफः
२८७	रीगृत्वत इति वा०
३२	रूपरात्रिरथन्तरेषु
	ल
१३९	लक्षणप्रति (प)
६५६	लक्ष्म्या अच्च
५३८	लघ्वक्षरं पूर्वम्
२०१	लुङि वा
६७५	लोपः पूर्वपदस्य च
५७४	लोम्नोऽपत्येषु बहु०
४५८	ल्यब्लोपे कर्म०
	व
६९५	वनो न हश इति
७०३	वयस्यचरम इति
७०५	वयोवाचकहायनस्य०
४०६	वरे लुप्तं न
२०७	वर्जने क्शान्०
६९९	वर्णका तान्तवे
४३६	वर्णात्कारः
५३९	वर्णानामानुपू०
६९९	वर्तका शकुनौ प्रा०
३३८	वसेस्तव्यत्कर्तरि०

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम्	वार्तिकादि
३०४	वस्त्रात्समाच्छादने
२४	वाक्यस्मरणयो०
५५७	वाग्दिक्पश्यद्भ्यो०
६५२	वातदन्तबल०
३६९	वातशुनीतिलशर्धे०
६०३	वा नामधेयस्य वृद्ध०
५३५	वा प्रियस्य
५४२	वायोः प्रयोगे०
३०९	वा लिप्सायाम्
३११	विदिप्रच्छिस्व
५९४	विद्यालक्षणकल्पा०
६००	विपरीताच्चेति
६७५	विनापि प्रत्ययं पू०
५४५	विरूपाणामपि०
५४३	विष्णौ न
६४४	विस्तारे पटच्
३७१	विहायसो विह०
२२९	वुग्युटावुवङ्यणोः०
६५३	वृत्तेश्च
५३०	वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्
६६	वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भाव०
५३०	वेर्ग्रो वक्तव्यः
३०४	व्रताद्भोजनतन्निवृ०
३६८	व्रीहिवत्सयोरिति०
	श
१५	शकन्ध्वादिषु पर०
५८४	शकलकर्दमाभ्या०
३६५	शक्तिलाङ्गलाङ्कुश
६४८	शतसहस्रयोरेवे०
३९५	शब्विकरणेभ्यः
४४९	शब्दायतेर्न
५०१	शाकपार्थिवादीनां०
२८४	शानेर्निशाने
३०७	शिक्षेर्जिज्ञासायाम्
४०२	शीङो वाच्यः
६५८	शीतोष्णतृप्रेभ्य०
६३०	शुनः संप्रसारणं
५६६	शुनो दन्तदंष्ट्राक०
६९४	शूद्रा चामहत्वपूर्वा०
६५८	श्रृङ्गवृन्दाभ्यामा०
२४३	शे तृम्फादीनां नुम्०
५५७	शेपपुच्छलाङ्गूलेषु०
२३८	श्रन्थिग्रन्थि०
६४०	श्रोत्रियस्य यलोपश्च
३१५	श्वयतेर्लिट्यभ्यास०
७१६	श्वशुरस्योकाराकार०
७२०	श्वेतवहादीनां ड०
	ष
६४४	षट्त्वे षड्गवच्
७१७	षाद्यन्तश्चाब्वाच्यः
	स
२६५	सकर्मकाणां प्र०
५१२	संख्यापूर्वं०
५३५	संख्याया अल्पीयस्याः०
५५०	संख्याया नदीगोदा०
४३	संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु०
६४४	सङ्घाते कटच्
३०२	सत्रकक्षकष्टकृच्छ्र०
६९४	सदच्काण्डप्रान्त०
२०१	सनि ण्वुलि ल्युटि०
३०५	सत्यार्थवेदानां०
२४४	संनियोगशिष्टानां०
४३४	संपदादिभ्यः क्विप्
२५	संपुंकानां सो वक्तव्यः
२७०	संप्रसारणं तदा० (ग)
१०१	संबुद्धौ नपुंसकानां०
६९४	संभस्त्राजिनशण०
६९०	संभ्रमेण प्रवृत्तौ०
४८२	समाहारे चाय०
६१५	समिधामाधाने०
३०७	समोऽकूजने
३९४	सर्वोऽयं कारक०
७०९	सर्वतोऽक्तिन्नर्था०
३७४	सर्वत्रन्नयो०
५३५	सर्वनामसंख्ययोर्ब०
६७८	सर्वप्रातिपदिकेभ्यो
२९९	सर्वप्रातिपदिके०
२९७	सर्वप्रातिपदिकानां०
५७१	सर्वोभयार्थाभ्यामेव
६४०	सहायाद्वा
७१६	सहितसहाभ्यां च
४६६	साध्वसाधुप्रयोगे च
५१९	सामान्ये नपुंसकम्
१२५	सिज्लोप एकादे०
६०२	सिति च
३८७	सिनोतेर्ग्रासकर्म०
७२१	सिब्बहुलं णिद्वक्त०
३०३	सुदिनदुर्दिननीहारे०
३७४	सुदुरोरधिकरणे

अग्रिम भाग 798 पृष्ठ पर देखें

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः

१९३ कु शब्दे
२४३ कुट कौटिल्ये
१३२ कुथि हिंसासंक्लेशनयोः ।
२६० कुद्रि अनृतभाषणे
२१४ कुप भाषार्थे
२२८ कुप क्रोधे
२६५ कुमार क्रीडायाम्
१६६ कुर्द क्रीडायाम्
२६२ कुशि भाषार्थे
२५७ कुष निष्कर्षे
२६२ कुसि भाषार्थे
२५६ कृञ् हिंसायाम्
२५१ (डु) कृञ् करणे
२४१ कृती छेदने
२४८ कृती वेष्टने
२६२ कृप् भाषार्थे
१७२ कृपू सामर्थ्ये
२२८ कृश तनूकरणे
२४० कृष विलेखने
२४५ कॄ विक्षेपे
२३६ कॄञ् हिंसायाम्
२६२ कॄत संशब्दने
१४५ कै शब्दे ।
२५५ क्नूञ् शब्दे ।
१३२ क्रदि आह्वाने रोदने च
१७४ क्रप कृपायां गतौ च
१३५ क्रमु पादविक्षेपे ।

पृष्ठम् धातुः

२५४ (डु) क्रीञ् द्रव्यविनिमये
२२६ क्रुध क्रोधे
१३२ क्लदि आह्वाने रोदने च
२२७ क्लमु क्लान्तौ
१३२ क्लिदि परिदेवने
२२८ क्लिदू आर्द्रीभावे
२५८ क्लिशू विबाधने ।
२५१ क्षणु हिंसायाम् ।
१६५ क्षमूष् सहने ।
२२७ क्षमू सहने ।
१३७ क्षि क्षये ।
२५१ क्षिणु हिंसायाम् ।
३१६ क्षिप् प्रेरणे
१९३ (टु) क्षु शब्दे ।
२४८ क्षुदिर संपेषणे ।
२२६ क्षुध बुभुक्षायाम् ।
१७० क्षुभ संचलने ।
२२८ क्षुभ संचलने ।
१४५ क्षै क्षये ।
१९३ क्ष्णु तेजने ।
१७० (ञि) क्ष्विदा
२२९
स्नेहनमोचनयोः ।
१५४ ञिक्ष्विदा अव्यक्ते शब्दे

ख

१८३ खनु अवदारणे ।
१५६ खष हिंसार्थः ।
२४१ खिद परिदेवने ।

पृष्ठम् धातुः

१६६ खुर्द क्रीडायाम्
१४५ खै खदने
१८९ ख्या प्रथकने

ग

१३२ गडि वदनैकदेशे
२६४ गण संख्याने
१२९ गद व्यक्तायां वाचि
१५२ गम्लृ गतौ ।
२६७ गर्व माने ।
१६८ गर्ह कुत्सायाम् ।
१६८ गल्ह कुत्सायाम् ।
१६६ गाधृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च ।
२२८ गुप व्याकुलत्वे ।
२६२ गुप भाषार्थः ।
१३३ गुपू रक्षणे ।
१६६ गुद् क्रीडायाम् ।
१६६ गुर्द क्रीडायाम्
२७८ गुहू संवरणे
१४९ गृ सेचने ।
२२९ गृधु अभिकाङ्क्षायाम् ।
२६७ गृह ग्रहणे ।
२४५ गॄ निगरणे ।
१४५ गै शब्दे ।
१६६ ग्रथि कौटिल्ये ।
२५७ ग्रह उपादाने ।
१४३ ग्लै हर्षक्षये ।

घ

१७४ घट चेष्टायाम् ।
२७४

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः

२६२ घट भाषार्थः ।
२६२ घटि भाषार्थः
१७० घुट परिवर्तने ।
२६२ घुषिर् विशब्दने ।
१३९ घृ सेचने ।
१४६ घ्रा गन्धोपादाने ।

च

२०२ चकासृ दीप्तौ ।
२०६ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि।
१२८
१३२ चदि आह्लादने ।
१४१ चमु अदने ।
१५६ चर्व अदने ।
१८३ चष भक्षणे ।
१५६ चष हिंसार्थः ।
१८३ चायृ पूजानिशामनयोः ।
२३४ चिञ् चयने ।
२५९ चिति स्मृत्याम् ।
१२९ चिती संज्ञाने ।
२६२ चीव भाषार्थः ।
१८३ चीवृ आदानसंवरणयोः ।
२६१ चुद संचोदने ।
२५९ चुर स्तेये ।
१५६ चूष पाने ।
१६८ चेष्ट चेष्टायाम् ।
च्युतिर् आसेचने।

पृष्ठम् सूत्रम्

छ

२६३ छद अपवारणे ।
१४१ छमु अदने ।
२६१ छर्द वमने ।
२४७ छिदिर् द्वैधीकरणे ।
२४८ (उ) छृदिर् दीप्तिदेवनयोः।
२२३ छो छेदने ।

ज

२०० जक्ष भक्षहसनयोः।
२३० जनी प्रादुर्भावे ।
१७५ जभी गात्रविनामे।
१४१ जमु अदने ।
१५६ जष् हिंसार्थः ।
२२७ जसु मोक्षणे ।
२०० जागृ निद्राक्षये ।
१५६ जि जये ।
१५६ जीव प्राणधारणे ।
१३२ जुगि वर्जने ।
२४६ जुषी प्रीतिसेवनयोः
१५६ जूष हिंसायाम् ।
१७५ जृभि गात्रविनामे।
२५८ जॄ वयोहानौ ।
२६३
१४५ जै क्षये ।
२५७ ज्ञा अवबोधने ।
२७४ ज्ञाप ज्ञाने, ज्ञाने, ज्ञापने च,

झ

१३५ झमु अदने ।
१५६ झष हिंसार्थः ।

पृष्ठम् धातुः

१८३ झष आदानसंवरणयोः ।

ट

१६७ टिकृ गतौ ।
१६७ टीकृ गतौ ।

ड

२२९ डीङ् विहायसा गतौ।

ढ

१६७ ढौकृ गतौ ।

ण

१३० णद अव्यक्ते शब्दे ।
२६२ णद भाषायाम् ।
१७० णभ हिंसायाम् ।
१५४ णम प्रह्वत्वे शब्दे च।
२२४ णश अदर्शने ।
२३२ णह बन्धने ।
१५६ णिक्ष चुम्बने ।
२०६ णिजि शुद्धौ
णिजिर शौचपोषणयोः।
२०६ णिसि चुम्बने ।
१७७ णीञ् प्रापणे ।
१५६ णीव स्थौल्ये ।
१९३ णु स्तौ ।
२३९ णुद प्रेरणे ।
२४४ णू स्तवने ।

त

१३२ तकिं कृच्छ्रजीवने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः

१५६ तक्ष त्वचने ।

१५५ तक्षू तनूकरणे ।

२६१ तड आघाते ।

२६० तत्रि कुटुम्बधारणे

२५१ तनु विस्तारे ।

२४९ तञ्चू संकोचने ।

१३९ तप सन्तापे ।

२६३ तप दाहे ।

२१४ तमु कांक्षायाम् ।

२६२ तर्क भाषार्थः ।

२२८ तसु उपक्षये ।

१६७ तिकृ गतौ ।

१६७ तीकृ गतौ ।

१५६ तीव स्थौल्ये ।

१९३ तु गति वृ० ।

२६२ तुजि भाषार्थः ।

२३९ तुद व्यथने ।

१७० तुभ हिंसायाम् ।

२६२ तुल उन्माने ।

१५६ तूष तुष्टौ ।

२०७ तुष तुष्टौ ।

२५१ तृणु अदने ।

२४८ (उ) तृदिर हिंसानादरयोः।

२२५ तृप प्रीणने ।

२३८ तृप प्रीणने ।

२४३ तृप तृप्तौ ।

२६३ तृप तृप्तौ ।

२४३ तृम्फ तृप्तौ ।

पृष्ठम् धातुः

२२८ (ञि) तृषा पिपासायाम्।

२४८ तृह हिंसायाम् ।

१५५ त्यज हानौ ।

१६७ त्रकि गत्यर्थः ।

१३२ त्रदि चेष्टायाम् ।

१७४ त्रपूष् लज्जायाम् ।

२६२ त्रसि भाषार्थः ।

२२२ त्रसी उद्वेगे ।

१६७ त्रौकृ गत्यर्थः ।

१५५ त्वक्षू तनूकरणे ।

१७४ (ञि) त्वरा सम्भ्रमे

१४० त्सर छद्मगतौ

द

१७४ दद दाने ।

१६६ दध धारणे ।

२२७ दमु उपशमे ।

२३७ दम्भु दम्भने ।

२०० दरिद्रा दुर्गतौ ।

२२८ दसु उपक्षये ।

२६२ दसि भाषार्थः ।

२१९ (डु) दाञ् दाने ।

१४७ दाण् दाने ।

१८९ दाप् लवने ।

१८३ दाशृ दाने ।

१८३ दासृ दाने ।

२२२ दिवु क्रीडादिषु ।

२०९ दिह उपचये ।

पृष्ठम् धातुः

२२९ दीङ् क्षये ।

२३० दीपी दीप्तौ

१६८ दीक्ष मौण्ड्यादिषु ।

२३६ (टु) दु उपजापे ।

२२६ दुष वैकृत्ये ।

२०८ दुह प्रपूरणे ।

२२९ दूङ् परितापे

२५५ दृञ् हिंसायाम् ।

२२५ दृप हर्षमोहनयोः ।

१४९ दृशिर प्रेक्षणे ।

२५८ दृ विदारणे ।

१४६ दैप् शोधने ।

२२३ दो अवखण्डने ।

१६९ द्युत दीप्तौ ।

१४५ द्यै न्यक्करणे ।

१८९ द्रा कुत्सायां गतौ ।

१५६ द्राक्षि घोरवाशिते च ।

२२५ द्रुह जिघांसायाम् ।

२५५ द्रूञ् हिसायाम् ।

१४५ द्रै स्वप्ने ।

२०८ द्विष अप्रीतौ ।

ध

१८३ (डु) धाञ् धारणपोषणयोः।

१८३ धावु गतिशुद्ध्योः ।

२३५ धुञ् कम्पने ।

२३५ धूञ् कम्पने ।

२५७ धूञ् कम्पने ।

२१४ धूञ् कम्पने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः
२६२ धूप भाषार्थः ।
१७७ धृञ् धारणे ।
२६३ धृष प्रहसने ।
२३७ (ञि) धृषा प्रागल्भ्ये ।
१४४ धेट् पाने ।
१४६ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः ।
१४५ ध्यै चिन्तायाम् ।
१५६ ध्राक्षि घोरवाशिते च ।
१४५ ध्रै तृप्तौ ।
२६७ ध्वन शब्दने ।
१७० ध्वंसु अवस्रंसने गतौ च ।
१५६ ध्वाक्षि घोरवाशिते च ।
१४९ ध्वृ हूर्च्छने ।

न

१३१ (टु) नदि समृद्धौ
१६६ नाथृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु ।
१६६ नाधृ ,,
१६४ निजि शुद्धौ ।
२२२ नृती गात्रविक्षेपे ।

प

१५६ पक्ष परिग्रहे ।
१७७ (डु) पचष् पाके ।
१६८ पचि व्यक्तीकरणे।

पृष्ठम् धातुः
२८८ पट गतौ
१६२ पट भाषार्थः ।
२७६ पठ व्यक्तायां वाचि
२६७ पद् गतौ ।
२३० पद गतौ ।
१६६ पर्द कुत्सिते शब्दे
१५६ पर्व पूरणे ।
१४० पा पाने ।
१८९ पा रक्षणे ।
२६२ पाल रक्षणे ।
२६२ पिडि संघाते ।
२४१ पिश अवयवे ।
२४९ पिष्लृ संचूर्णने ।
२६२ पिसि भाषार्थः ।
२६२ पिजि भाषार्थाः
२२९ पीङ पाने ।
२६० पीड अवगाहे
१५६ पीव स्थौल्ये ।
२४३ पुट संश्लेषणे ।
२६२ पुट भाषार्थः ।
२६२ पुथ भाषार्थः ।
१३२ पुथि हिंसासंक्लेशनयोः ।
१५७ पुष पुष्टौ ।
२२३ पुष पुष्टौ ।
२५८ पुष पुष्टौ ।
२५५ पूञ् पवने ।
२६२ पूज पूजायाम् ।
१५६ पुर्व पूरणे ।
१५६ पूष वृद्धौ ।
२४६ पृङ् व्यायामे
२१४ पृच संयमने ।

पृष्ठम् धातुः
२०६ पृची संपर्चने ।
२४३ पृड सुखने ।
२६१ पृथ प्रक्षेपे ।
२१५ पॄ पालनपूरणयोः ।
२५८ ,, ,,
१४६ पै शोषणे ।
२४५ प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् ।
१७४ प्रथ प्रख्याने ।
२६१ प्रथ प्रख्याने ।
१७४ प्रस विस्तारे ।
२५४ प्रीञ् तर्पणे
२६३ प्रीञ् तर्पणे
१५७ प्रुषु दाहे ।
१५७ प्लुषु दाहे ।
१८९ प्सा भक्षणे ।

ब

२५८ बन्ध बन्धने ।
२६२ बर्ह भाषार्थः ।
२१४ बल्ह ,, ।
१६६ बाधृ लोडने ।
१३२ बिदि अवयवे ।
२२८ बिस् प्रेरणे
२३१ बुध अवगमने ।
१८३ बुधिर् बोधने ।
२२८ बुस् उत्सर्गे
२१० ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि।
२१४ बृहि भाषार्थः ।

भ

२०० भक्ष हसने
१७७ भज सेवायाम् ।
२६२ भजि भाषार्थः ।
२४९ भञ्जो आमर्दने
२६१ भडि कल्याणे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः
१६६ भदि कल्याणे सुखे च
१५७ भष भर्त्सने ।
१८९ भा दीप्तौ ।
१६५ भाम क्रोधे ।
१६८ भाष व्यक्तायां वाचि ।
१६८ भिक्ष भिक्षायामलाभे लाभे च।
१२८ भिदि अवयवे।
२४७ भिदिर् विदारणे।
२१४ (ञि) भी भये
२५० भुज पालनाऽभ्यवहारयोः ।
२४४ भुजो कौटिल्ये
११० भू सत्तायाम् ।
२६३ भू प्राप्तौ ।
१५६ भूष अलंकारे ।
१७५ भृञ् भरणे ।
२१९ (डु) भृञ् धारणपोषणयोः ।
१६८ भृजी भर्जने
२२८ भृशु अधः पतने
१८३ भेषृ भये ।
२३९ भ्रस्ज पाके ।
१७० भ्रंसु अवस्रंसने
२२८ भ्रंशु अधःपतने
२२७ भ्रमु अनवस्थाने
१६८ भ्राजृ दीप्तौ ।

पृष्ठम् धातुः
१७४ (टु) भ्राज दीप्तौ
१७४ (टु) भ्राशृ दीप्तौ।
१६८ भ्रेजृ ,,
१७४ (टु) भ्लाशृ दीप्तौ।

म

१३२ मघि मण्डने ।
२६१ मडि भूषायां हर्षे च
२६० मत्रि गुप्तभाषणे ।
१३२ मथि हिंसासंक्लेशनयोः ।
१६६ मदि स्तुतिमोहमदस्वप्नकान्तिगतिषु।
२२७ मदी हर्षे ।
२५३ मनु अवबोधने ।
१३२ मन्थ विलोडने ।
१५६ मर्व पूरणे ।
१५६ मष हिंसार्थः ।
२२८ मसी परिणामे ।
१६७ मस्क गत्यर्थः ।
२४४ (टु) मस्जो शुद्धौ
२६५ मह पूजायाम् ।
१५६ माक्षि काङ्क्षायाम्
२१८ माङ् माने शब्दे
२२९ माङ् माने ।
२६३ मान पूजायाम् ।
२६३ मार्ग अन्वेषणे ।
२६२ मिजि भाषार्थः ।
१७० (ञि) मिदा स्नेहने।
२२८ (ञि) मिदा स्नेहने।

पृष्ठम् धातुः
२४१ मिल संगमने ।
२३१ मीङ् हिंसायाम् ।
२५४ मीञ् हिंसायाम् ।
१५६ मीव स्थौल्ये ।
२४१ मुच्लृ मोक्षणे ।
१६६ मुद हर्षे ।
१५६ मुर्वी बन्धने ।
२५८ मुष स्तेये ।
२२८ मुस खण्डने ।
२२५ मुह वैचित्ये ।
१५६ मूक्ष स्तेये ।
२६७ मूत्र प्रस्रवणे,
२६९ मूङ् बन्धने
१५६ मृक्ष संघाते ।
२६७ मृग अन्वेषणे ।
२४६ मृङ् प्राणत्यागे ।
१९६ मृजू शुद्धौ ।
२४३ मृड सुखने ।
२४४ मृश आमर्शने ।
२३२ मृष तितिक्षायाम् ।
१४७ म्ना अभ्यासे ।
१७४ म्रद मर्दने ।
१५६ म्रक्ष ।
२६२ म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि ।
१४३ म्लै हर्षक्षये ।

य

१७७ यज देवपूजादिषु ।
१६६ यती प्रयत्ने ।
२६० यत्रि संकोचे ।
१५४ यभ मैथुने ।
यसु प्रयत्ने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः
१८९ या प्रापणे ।
१८२ (टु) याचृ याच्ञायाम् ।
१८८ यु मिश्रणामिश्रणयोः ।
१३२ युगि वर्जने ।
२१४ युज संयमने ।
२४७ युजिर् योगे ।
२५५ युञ् बन्धने ।
२३१ युध संप्रहारे ।
१५६ यूष हिसायाम् ।

र

१५६ रक्ष पालने ।
१६७ रघि गत्यर्थः ।
२६५ रच प्रतियत्ने ।
२३२ रञ्ज रागे ।
२२५ रध हिंसासंराध्योः।
१७५ रमु क्रीडायाम् ।
१८९ रा दाने ।
१८२ राजृ दीप्तौ ।
२३७ राधसंसिद्धौ
२४७ रिचिर् विरेचने ।
२०३ रिष हिंसार्थः ।
१५६ रिष हिंसार्थः ।
२२८ रिष हिंसायाम् ।
२३१ रीङ श्रवणे ।
१९२ रु शब्दे ।
१७० रुच दीप्तावभिप्रीतौ च ।
२४४ रुजो भङ्गे ।

पृष्ठम् धातुः
१९७ रुदिर् अश्रुविमोचने ।
२४७ रुधिर् आवरणे ।
२२८ रुष हिंसायाम् ।
२६२ रुष रोषे ।
१५६ रुष हिंसार्थः ।
१५६ रुष भूषायाम् ।
१४५ रै शब्दे ।

ल

१६७ लघि गत्यर्थः ।
२६२ लघि भाषार्थः ।
१८३ लष कान्तौ ।
२४६ (ओ) लजी व्रीडायाम् ।
२४६ (ओ) लस्जी ,,
१८९ ला आदाने ।
२४१ लिप उपदेहे ।
२०९ लिह आस्वादने
२३१ लीङ् श्लेषणे ।
२६२ लुजि भाषार्थः ।
२२८ लुठ विलोडने ।
२६२ लुट भाषार्थः ।
२६१ लुठ स्तेये ।
१३२ लुथि हिंसासंक्लेशनयोः ।
२४१ लुप्लृ छेदने ।
२२८ लुभ गार्ध्ये ।
२४३ लुभ विमोहने ।
२५६ लूञ् छेदने ।

पृष्ठम् धातुः ।
१५६ लूष भूषायाम् ।
२६२ लोकृ भाषार्थः ।
२६२ लोचृ ,,

व

१६७ वकि गत्यर्थः
१५६ वक्ष रोषे ।
२६३ वच परिभाषणे ।
१९६ वच ,,
१३३ वज गतौ ।
१६६ वदि अभिवादनस्तुत्योः ।
१३२ वन संभक्तौ ।
२५३ वनु याचने ।
१७९ (टु) वप् बीजसन्ताने ।
१६८ वर्ष स्नेहने ।
२०६ वस आच्छादने ।
२२८ वसु स्तम्भे ।
१६७ वस्क गत्यर्थः ।
२६२ बल्हभाषार्थे
१७८ वह प्रापणे ।
१८९ वा गतिगन्धनयोः ।
१५६ वाक्षि काङ्क्षायाम् ।
२२१, २४७ विचिर् पृथग्भावे।
२६२ विच्छ भाषार्थः ।
२४६, २४९ (ओ) विजी भयसंचलनयोः ।
१८९ विद ज्ञाने ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः

२३१ विद सत्तायाम् ।

२५० विद विचारणे।

२४१ विद्लृ लाभे ।

२४४ विश प्रवेशने ।

२२१ विष्लृ व्याप्तौ।

१८९ विस प्रेरणे ।

१९६ वी गत्यादिषु ।

२६७ वीर विक्रान्तौ ।

१३२ वुगि वर्जने ।

१८६ वुस उत्सर्गे ।

२५८ वृङ संभक्तौ ।

२०६ वृजी वर्जने ।

२३६ वृञ् वरणे ।

२५६ वृञ् वरणे

१७० वृतु वर्तने ।

२६२ वृतु भाषार्थः ।

१७१ वृधु वृद्धौ ।,

२६२ वृधु भाषार्थः ।

१७९ वेञ् तन्तुसन्ताने ।

२६२ वृद्धि भाषार्थः

१६८ (टु) वेपृ कम्पने ।

१६८ वेष्ट वेष्टने ।

१४६ (ओ) वै शोषणे ।

१३३ व्रज गतौ ।

२४२ (ओ) व्रश्चू छेदने

२३१ व्रीङ वृणोत्यर्थे ।

२४२ व्यच व्याजीकरणे।

१७४ व्यथ भयसंचलन-
नयोः ।

पृष्ठम् धातुः

२२३ व्यध ताडने ।

१८३ व्यय गतौ ।

२२८ व्युष विभागे ।

१८१ व्येञ् संवरणे ।

श

२३२ शक विभाषितो-
ऽमर्षणे ।

१६७ शकि शङ्कायाम् ।

२३७ शक्लृ शक्तौ ।

२४५ शद्लृ शातने ।

२३२ शप आक्रोशे ।

२२६ शमु उपशमे ।

२०६ (आ) शासु
इच्छायाम् ।

२०२ शासु अनुशिष्टौ ।

१३२ शिघि आघ्राणे ।

२६३ शिष असर्वोपयोगे।

१५६ शिष हिंसार्थः ।

२४९ शिष्लृ विशेषणे ।

२०३ शीङ स्वप्ने ।

१२९ शुच शोके ।

२२६ शुध शौचे ।

२४३ शुन गतौ ।

१७० शुभ दीप्तौ ।

२६२ शुल्ब माने ।

२२३ शुष शोषणे ।

२६७ शूर विक्रान्तौ ।

१५६ शूष प्रसवे ।

१७१ शृधु शब्दकुत्सायाम्

पृष्ठम् धातुः

२५८ शॄ हिंसायाम् ।

१४५ शै पाके ।

२२३ शो तनूकरणे ।

१३१ श्च्युतिर क्षरणे ।

१३१ श्च्युतिर् आसेचने

१६६ श्रथि शैथिल्ये ।

१७० श्रम्भु विश्वासे ।

२२७ श्रमु तपसि खेदे च।

१८९ श्रा पाके ।

१५६ श्रिषु दाहे ।

१७५ श्रिञ् सेवायाम्

२५४ श्रीञ् पाके ।

१५० श्रु श्रवणे ।

१४५ श्रै पाके ।

१६८ श्लाघृ कत्थने ।

२२६ श्लिष आलिङ्गने ।

१५७ श्लिष दाहे ।

१६७ श्लोकृ संघाते ।

१६७ श्वकि गत्यर्थः ।

२७० टुओश्वि गतिवृद्ध्योः

१९९ श्वस प्राणने ।

१७० श्विता वर्णे ।

१६६ श्विदि स्वैत्ये ।

ष

१३२ षण संभक्तौ ।

२५१ षणु दाने ।

२४४ षद्लृ विशरणग-
त्यवसादनेषु ।

२६३ षह मर्षणे ।

२४१ षिच क्षरणे ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

पृष्ठम् धातुः
२१४ षिजि भाषार्थः ।
२३४ षिञ् बन्धने ।
२५५ षिञ् बन्धने ।
१२६ षिध गत्याम् ।
२२६ षिधु संराद्धौ ।
२२२ षिवु तन्तुसन्ताने ।
१९३ षुप्रसवैश्वर्ययोः ।
२३४ षुञ् अभिषवे ।
२०६ षूङ् प्राणिगर्भ-
विमोचने ।
२२९ षूङ् प्राणिप्रसवे ।
१६६ षूद क्षरणे ।
१३८ षै क्षरणे ।
१४५ षै क्षये ।
२२३ षो अन्तकर्मणि ।
१४६ ष्टै वेष्टने ।
१४५ ष्ट्यै शब्दसंघातयोः ।
१४६ ष्ठा गतिनिवृत्तौ ।
१८९ ष्णा शौचे ।
२२६ ष्णिह प्रीतौ ।
१९३ ष्णु प्रस्रवणे ।
२२६ ष्णुह उद्गिरणे ।
१६७ ष्वष्क गत्यर्थः ।
१९८ (ञि) ष्वप् शये ।
१७० (ञि) ष्विदा
स्नेहनमोचनयोः ।

पृष्ठम् धातुः
स
२३७ साध संसिद्धौ ।
२६५ सूच् पैशुन्ये ।
२६७ सूत्र वेष्ठने ।
१५६ सूर्क्ष आदरे ।
१४९ सृ गतौ ।
२३१ सृज विसर्गे ।
१५२ सृप्लृ गतौ ।
२५५ स्कुञ् आप्रवणे ।
१६६ स्कुदि आप्रवणे ।
१७४ स्खद स्खदने ।
१४० स्खल संचलने ।
२३५ स्तृञ् आच्छादने ।
२५६ स्तॄञ् आच्छादने ।
१४५ स्त्यै शब्दसंघातयोः ।
१४६ स्नै वेष्टने ।
१६६ स्पदि किञ्चिच्चलने।
१८३ स्पश बाधन-
स्पर्शयोः ।
२४३ स्फुट विकसने ।
१६८ स्फुट विकसने ।
२६० स्फुडि परिहासे ।
२४३ स्फुर संचलने ।
२४३ स्फुल संचलने ।

पृष्ठम् धातुः
१४९ स्मृ चिन्तायाम् ।
१७१ स्यन्दू प्रस्रवणे ।
१७० स्रंसु अवस्रंसने ।
१४० स्वृ शब्दापता-
पयोः ।
१६६ स्वाद् आस्वादने ।
ह
१८५ हन् हिंसागत्योः ।
२१७ (ओ) हाक त्यागे ।
२१९ (ओ) हाङ् गतौ ।
२३६ हि गतौ वृद्धौ च ।
१८२ हिक्क अव्यक्तेशब्दे।
२४८ हिसि हिंसायाम् ।
२६३ हिसि हिंसायाम् ।
२१४ हु दानादनयोः ।
१७६ हृञ् हरणे ।
२२८ हृष तुष्टौ ।
१६६ हाद अव्यक्ते शब्दे।
२१५ ही लज्जायाम् ।
१६६ ह्लादी सुखे ।
१४७ ह्वृ कौटिल्ये गतौ
१४९ ह्वृ संवलणे ।
१८२ ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च।

इति धातुसूची ।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

लेखक परिचय

नाम : डॉ. अर्कनाथ चौधरी

पिता का नाम : पं. स्व. उमेश चौधरी (न्यायव्याकरण वेदान्त साहित्याचार्य)

जन्म स्थान : ग्रा. पो. रुद्रपुर, जिला मधुबनी (बिहार)

शिक्षा : व्याकरणाचार्य, एम. ए दर्शन, रा. वि. वि. जयपुर (सर्वप्रथम) शिक्षाशास्त्री, पीएच. डी.

अध्यापन : स्नातक शिक्षाशास्त्री एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं का 20 वर्षों से अधिक का अध्यापनानुभव

कार्यक्षेत्र : होशियारपुर, खन्ना, (पंजाब) डोहगी (हि. प्र.) राँची, (बिहार) तत्कालीन केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति, 18.7.83 से केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जयपुर में कार्यरत।

प्रकाशन : 16 विभिन्न विषयक लेखक प्रकाशित

पुस्तकें : (1) लघुसिद्धान्त कौमुदी—चन्द्रकला हिन्दी व्याख्या, (2) मध्यसिद्धान्त कौमुदी सम्पादन एवं व्याख्या, (3) श्री ललितासहस्रनाम, हिन्दी विमर्श व्याख्या के साथ, (4) मेघदूतम् हिन्दी संस्कृत व्याख्या एवं विस्तृत भूमिका के साथ (यंत्रस्थ) (5) तर्कसंग्रह।

सामाजिक एवं कतिपय शैक्षिक संस्थाओं के अध्यक्ष मन्त्री एवं सम्मानित सदस्य।

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. JK Sanskrit Academy, Jammmu. Digitized by S3 Foundation USA